श्रीमद् रविषेणाचार्य विरचित संस्कृत ग्रंथ की

पण्डितप्रवर दौलतरामजी कृत हिन्दी

श्री पद्मपुराण भाषावचनिका

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्ण कुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी. एच. एस. लिमिटेड, वी. एल. मेहता मार्ग,
विले पार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400056, फोन - 022 26130820

प्रथम आवृत्ति : 1000

लागत मूल्य : 200/-

न्यौछावर राशि : 50/- रुपये

प्रकाशन सहयोग
1,15000/- प्रो. श्रीमान एस. सी. जैन, ग्वालियर

ISBN : 978-93-81057-10-0

प्राप्ति स्थान

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्ण कुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी. एच. एस. लिमिटेड,
   वी.एल. मेहता मार्ग, विले पार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, (महाराष्ट्र) फोन (022) 26130820, 26104912
   Website : www.vitragvani.com, E-mail : info@vitragvani.com
2. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**
   सोनगढ़-364250, जिला-भावनगर (गुजरात), फोन (02846) 244334
3. **श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह**
   राजकोट रोड, पेट्रोल पंप के सामने,
   सोनगढ़-364250, जिला-भावनगर (गुजरात), फोन (02846) 244510
4. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-202001,जिला-हाथरस (उत्तर प्रदेश)
5. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
   ए-4, बापू नगर, जयपुर-302015 (राजस्थान), फोन (0141) 2707458
6. **पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट**
   कहान नगर, लाम रोड,
   देवलाली-422401, जिला-नासिक (महाराष्ट्र), फोन (0253) 2491044

मुद्रक : प्री एलविल सन, जयपुर मो. 095092 32733

प्रकाशकीय

जैन तत्त्व मनीषा को समृद्धिशाली बनाने हेतु समय-समय पर अनेकानेक पुराण ग्रन्थों का प्रणयन हमारे पूज्य आचार्य भगवन्तों द्वारा किया गया है। उस तत्त्व को उन्होंने प्राय: चार अनुयोगों के माध्यम से हमारे कल्याण के लिए प्रस्तुत किया है। प्रथमानुयोग की शैली दृष्टान्त रूप होती है, जिसमें पुराणपुरुषों के जीवन की घटनाओं का उल्लेख करते हुए हमें वीतरागता के पथ में लगने की प्रेरणा दी जाती है।

आचार्य रविषेण विरचित संस्कृत ग्रन्थ पद्मपुराण के आधार से पण्डित दौलतरामजी ने पद्मपुराण भाषावचनिका की रचना की, जिसका वाचन गाँव-गाँव की सभाओं में या व्यक्तिगत रूप से माताओं-बहनों द्वारा किया जाता है। ग्रंथ की भाषा ढूंढारी होने पर भी अत्यन्त मिष्ट है और हिन्दी जैसी ही है। इस ग्रन्थ में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के काल में हुए, मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रसिद्ध पद्म अर्थात् राम का चरित्र वर्णित है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के पुण्य प्रभावना योग में स्थापित श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई वीतरागी जिनेन्द्रदेव की वाणी को देश-विदेश में जन-जन तक पहुँचाने हेतु प्रतिबद्ध है। इसी शृंखला में प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन की मूल भावना प्रोफेसर श्रीमान एस.सी. जैन, ग्वालियर वालों की थी। उन्होंने इसके प्रकाशन हेतु जो आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

ग्रन्थ के सुन्दर और समय पर मुद्रण कार्य के लिए प्री एलविल सन प्रिंटर्स, जयपुर के संजय शास्त्री को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

आशा है, सभी स्वानुभवरसिक जीव प्रस्तुत कृति का स्वाध्याय करते हुए पुराण-पुरुषों के जीवन के दृष्टान्तों से शिक्षा लेते हुए, वीतरागता के पथ पर चलकर मानव-जीवन के अत्यंत आवश्यक कार्य आत्मानुभूति के प्रति अग्रसर होंगे।

– शुभेच्छु

अनंतराय ए. शेठ

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा संचालित गतिविधियाँ

1. सोनगढ़ में श्री कुन्दकुन्द–कहान दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह का संचालन।
2. आत्मार्थी बन्धुओं को शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता प्रदान करना।
3. मुमुक्षु समाज में निर्मित होने वाले जिनमन्दिरों एवं स्वाध्याय भवनों के निर्माण हेतु सहायता प्रदान करना।
4. मुमुक्षु मण्डलों द्वारा संचालित जिनमन्दिरों के पुजारियों को स्वास्थ्य बीमा योजना की सुविधा उपलब्ध कराना।
5. विद्वानों में परस्पर तत्त्वचर्चा एवं वात्सल्य वृद्धि हेतु विद्वत् गोष्ठियों का आयोजन करना।
6. तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धार हेतु आर्थिक सहयोग।
7. आध्यात्मिक सत्साहित्य का प्रकाशन।
8. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों एवं बाल शिविरों को आर्थिक सहयोग।

प्रस्तावना

1. प्रथमानुयोग -

यह पद्मपुराण नामक ग्रंथ है। इसमें मुख्यता से रामचरित्र का कथन है, इसलिए इसका नाम पद्मपुराण है, क्योंकि रामचन्द्रजी का अपर नाम पद्म भी था।

जैन आगम चार अनुयोगों में विभक्त है - 1. प्रथमानुयोग 2. चरणानुयोग 3. करणानुयोग एवं 4. द्रव्यानुयोग। इन चारों अनुयोगों में से यह पद्मपुराण प्रथमानुयोग का ग्रंथ है; क्योंकि इसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों में से आठवें बलभद्र रामचन्द्र, आठवें नारायण लक्ष्मण तथा आठवें प्रतिनारायण रावण के चरित्र का वर्णन है।

प्रथमानुयोग का लक्षण श्री 108 समन्तभद्राचार्य ने इसप्रकार कहा है -

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः।।43।। - रत्नकरण्ड श्रावकाचार

जो शास्त्र अर्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष पुरुषार्थ का या परमार्थ) का उपदेशक है, महान पुरुष के चरित्र या त्रेसठ शलाका पुरुषों के पुराण का कथन करने वाला है तथा बोधि व समाधि (रत्नत्रय की प्राप्ति व पूर्णता) का खजाना है - सम्यग्ज्ञानी ऐसे शास्त्र को प्रथमानुयोग कहता है।

श्री 108 गुणभद्राचार्य ने आत्मानुशासन के श्लोक 11 में सम्यग्दर्शन के दश भेदों का कथन किया है। उनमें चौथे नम्बर पर 'उपदेशसमुद्भवसम्यग्दर्शन' का नामोल्लेख किया गया है।

श्लोक 12 में इस उपदेश समुद्भव सम्यग्दर्शन का स्वरूप निम्नप्रकार कहा गया है -

'पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता या सञ्ज्ञानागमाब्धिप्रसूतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः।'

त्रेसठ शलाका पुरुषों के पुराण के उपदेश से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करने वाले आगम समुद्र में प्रवीण गणधर देवों ने उस सम्यग्दर्शन को उपदेश सम्यग्दर्शन कहा है।

इसप्रकार प्रथमानुयोग का पठन-पाठन व उपदेश सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति तथा रत्नत्रय की प्राप्ति व पूर्णता में मुख्य हेतु है। बाल गोपाल सभी प्रथमानुयोग को सरलता से समझ लेते हैं। अतः मुमुक्षुओं को सर्वप्रथम प्रथमानुयोग का स्वाध्याय व अध्ययन करना चाहिए।

2. निश्चय व व्यवहार -

श्री 108 अमृतचन्द्राचार्य ने भिन्न-भिन्न ग्रंथों में निश्चय व व्यवहार के विषय में इसप्रकार कहा है-

'द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किन्तु तदुभयायत्ता।' - पंचास्तिकाय, गाथा 4, टीका

अर्थ- भगवान ने दो नय कहे हैं - द्रव्यार्थिक (निश्चय[1]) और पर्यायार्थिक (व्यवहार[1])। भगवान की देशना (उपदेश) एक नय के आधीन नहीं होती, किन्तु दोनों नयों के अधीन होती है। क्योंकि-

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा व्यवहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।

---

1. **व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वात्, निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्।** - समयसार, गाथा 56, टीका

अर्थ– यदि तुम जैन धर्म का प्रवर्तन चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहार नय के बिना तो तीर्थरूप मोक्षमार्ग (साधन) का नाश हो जायेगा और निश्चय नय के बिना तत्त्व साध्य) का नाश हो जायेगा।

''तमंतरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशंकमुपमर्दनेन हिंसाऽभावाद्भवत्येव बन्धस्याभावः। तथा रक्तो द्विष्टो विमूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेषमोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः।''

– समयसार, गाथा 46, टीका

अर्थ– यदि उस व्यवहार को न कहें और निश्चय नय, जो जीव को शरीर से भिन्न कहता है, उसका ही एकांत कथन किया जाये तो त्रस–स्थावर जीवों का घात निःशंकरूप से करना ठहरेगा। जिसप्रकार भस्म के मर्दन करने में हिंसा का अभाव है, उसीप्रकार त्रस–स्थावर जीवों के मारने में भी हिंसा सिद्ध नहीं होगी; किन्तु हिंसा का अभाव ठहरेगा। तब त्रस–स्थावर जीवों के घात होने से वध का भी अभाव ठहरेगा।

उसी प्रकार रागी–द्वेषी–मोही जीव कर्म से बँधता है, वह छुड़ाने योग्य है, ऐसा जो कहा गया है, वह भी सिद्ध नहीं होगा; क्योंकि निश्चय की अपेक्षा राग–द्वेष–मोह से जीव को भिन्न दिखलाने पर मोक्ष के उपाय (मोक्षमार्ग) का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा, तब मोक्ष का भी अभाव ठहरेगा।

अब प्रश्न होता है कि निश्चयनय का उपदेश किसके लिए प्रयोजनवान है और व्यवहार नय का उपदेश किसके लिए उपयोगी है? इसका समाधान श्री 108 कुन्दकुन्द आचार्य ने निम्नप्रकार किया है –

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। – समयसार, गाथा 12

अर्थ– जो शुद्ध नय तक पहुँचकर पूर्ण दर्शन–ज्ञान–चरित्रवान हो गये हैं, उनको शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला शुद्ध नय जानने योग्य है और जो जीव अपरम भाव (चौथे से सातवें गुणस्थान[1]) में स्थित हैं, उनको व्यवहार नय का उपदेश करने योग्य है। इसीलिए कहा गया है–

ण च ववहारणओ चप्पलाओ, तत्तो ववहाराणुसरिसिस्साण पउत्तिदंसणादो। जो बहुजीवाणुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वोत्ति मणेणाववहारिय गोदमथेरेण मंगलं तत्थ कयं।

– जयधवला पुस्तक 1, पृष्ठ 8

अर्थ– यदि कहा जाये कि व्यवहार नय असत्य है सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उससे व्यवहार (मोक्षमार्ग) का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहार नय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है, उसी का आश्रय करना चाहिए। ऐसा मन में निश्चय करके गौतम स्थविर ने चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में मंगल किया है।

जिस व्यवहार नय का आश्रय श्री गौतम गणधर ने लिया है, जो अपने विषय में सत्य है, बहुत भव्य जीवों का कल्याण करने वाला है, जिसके बिना मोक्षमार्ग और मोक्ष दोनों के अभाव का प्रसंग आ जाता है, ऐसे

---

1. **अशुद्धे असंयतसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सरासगम्यग्दृष्टिलक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्त–संयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे वा।** – तात्पर्यवृत्ति, गाथा 12

व्यवहार नय को तथा उसके विषय को असत्य मानकर, व्यवहार नय की मुख्यता से कथन करने वाले प्रथमानुयोग के स्वाध्याय व अध्ययन से विमुख रहना उचित नहीं है।

प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में ही चारों अनुयोगों के विषय का कथन पाया जाता है। अत: प्रथमानुयोग के स्वाध्याय से चारों अनुयोगों का स्वाध्याय हो जाता है।

3. पद्मपुराण के रचियता –

संस्कृत पद्मपुराण के रचयिता श्री रविषेण आचार्य हो गये हैं। उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा का कथन पर्व 123, श्लोक 167 में किया है, जो इसप्रकार है –

भगवान श्री महावीर के पश्चात् अशेष आगम के जानकार आचार्य परम्परा में श्री इन्द्र गुरु हुए हैं, उनके शिष्य श्री दिवाकर यति, उनके शिष्य श्री अर्हन्मुनि, उनके शिष्य श्री लक्ष्मण सेन और उनके शिष्य श्री रविषेण आचार्य इस पद्मपुराण के रचियता हुए हैं।

रचनाकाल– यह ग्रन्थ भगवान श्री महावीर स्वामी के 1203 वर्ष पश्चात् विक्रम सम्वत् 834 के लगभग रचा गया है। एक दो ग्रंथ के अतिरिक्त दिगम्बर सम्प्रदाय के कथा विभाग में यह पद्मपुराण ग्रंथ सबसे प्राचीन है।

4. पद्मपुराण के मुख्य कथा पात्र –

यद्यपि श्री राम के नाम पर यह ग्रंथ पद्मपुराण के नाम से प्रसिद्ध है, तथापि इस ग्रंथ के मुख पात्र निम्न महान पुरुष हैं –

1. रावण – भरत क्षेत्र चतुर्थ काल का आठवाँ प्रतिनारायण, तीन खण्ड का अधिपति। इसकी राजधानी लंका थी। इसके माता पिता राजा रत्नश्रवा और रानी केकसी थी। यह विद्याधर था। इसको अनेकों विद्यायें सिद्ध थीं। अंत में इसने बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की, जिसके सिद्ध करने में रावण ध्यान में इतना निमग्न हो गया कि अंगद आदि के उपद्रव किये जाने पर भी वह ध्यान से विचलित नहीं हुआ। इसको अपने विद्या व बल का बहुत मान था। बलशाली होते हुए भी इसने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। यह राक्षसवंशी राजा था, राक्षस नहीं था, किन्तु मनुष्य था। युद्ध में मरकर नरक गया।

2. मन्दोदरी – विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में असुरसंगीत नगरी के राजा मय और रानी हेमवती की पुत्री तथा रावण की मुख्य पटरानी। तपश्चरण कर स्वर्ग में गयी।

3. दशरथ – अयोध्या के राजा थे, जिनकी चार रानियाँ कौशल्या (अपराजिता), केकयी, सुमित्रा और सुप्रभा थीं। जिनके क्रमश: राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न – ये चार पुत्र हुए। दशरथ ने केकयी को जो वचन दिया उस पर दृढ़ रहे। राम के चले जाने पर दीक्षा लेकर वे आत्मकल्याण करते हैं।

4. केकयी – कौतुक मंगल नगर के शुभमति राजा तथा पृथुश्री रानी की पुत्री तथा द्रोणमेघ की बहन। स्वयंवर में राजा दशरथ के कण्ठ में वरमाला डाली। स्वयंवर में पधारे हुए अन्य राजा युद्ध करने लगे। युद्ध में राजा दशरथ की सारथी बनी और युद्ध में विजय प्राप्त की। इसके पुत्र का नाम भरत था। मनोविज्ञान की पूर्ण पण्डिता थी।

5. जनक – मिथिला के राजा तथा सीता व भामण्ल के पिता। इनकी रानी का नाम विदेहा था। राजा

जनक मिथिला का राज्य कनक को देकर भामण्डल के साथ विजयार्ध चले गये। अन्त में दीक्षा ले आत्म-कल्याण किया।

6. राम – अयोध्या के राजा दशरथ तथा रानी कौशल्या (अपराजिता) का पुत्र। नौवें बलभद्र पिता के वचनों की रक्षा हेतु राज्य न लेकर वन को चले जाते हैं। रावण सीता को हरकर ले जाता है। रावण से कहते हैं कि सीता वापस दे दे, हमें राज्य नहीं चाहिए। युद्ध में विजय प्राप्त कर सीता को प्राप्त करते हैं। अन्त में दीक्षा ले मोक्ष चले जाते हैं।

7. सीता – राजा जनक की पुत्री, भाण्डल की बहन, राम की पटरानी। रावण के द्वारा हरण होने पर और भयभीत किये जाने पर भी शील से विचलित नहीं होती। अपवाद होने पर राम के द्वारा वन में भेजे जाने पर संदेश राम के लिए भेजा, उससे स्पष्ट होता है कि आपत्ति काल में भी सीता का विवेक नष्ट नहीं हुआ। निर्भीक होकर अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। अन्त में आर्यिका की दीक्षा लेकर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई।

8. लक्ष्मण – अयोध्या के राजा दशरथ और रानी सुमित्रा के पुत्र। राम के लघु भ्राता तथा छाया के समान साथ रहने वाले। नौवें नारायण। वनवास में राम के साथ रहे। महान शूरवीर, युद्ध में रावण को मारा। राम के इतने अनुरागी कि राम के मरण का झूठा समाचार सुनकर ही शरीर छोड़ देते हैं।

9. भरत – अयोध्या के राजा दशरथ की केकयी रानी के पुत्र। भरत को राजा बनाने के लिए केकयी ने सब कुछ किया, किन्तु इन्होंने राज्य लेने की इच्छा नहीं की। राम के वनवास जाने पर उनको लौटाने का प्रयत्न करते हैं। असफल रहने पर राज्य करते हुए भी गृह से सदा उदास रहते थे। राम के वनवास से आने पर विरक्त हो दीक्षा ले लेते हैं।

10. हनुमान – वानरवंशी पवनंजय और अंजना के पुत्र। सीताहरण के पश्चात् हनुमान राम के सम्पर्क में आते हैं और राम को वापस भेज देने तक बड़ी तत्परता से उनकी सेवा करते हैं। अन्त में दीक्षा लेकर मोक्ष जाते हैं।

11. विभीषण – राक्षसवंशी रावण के लघुभ्राता। सीता हरण पर रावण को समझाते हैं। जब रावण अपनी हठ नहीं छोड़ता तो राम से मिल जाते हैं। विजय के पश्चात् राम विभीषण को लंका का राज्य देते हैं। अन्त मे राज्य त्याग कर दीक्षा ले लेते हैं।

इनके अतिरिक्त कुम्भकर्ण, मेघरथ, इन्द्रजीत, चन्द्रनखा, खरदूषण, सुग्रीव, बाली, अंगद, नल, नील, हस्त-प्रहस्त आदि का भी इस पुराण से सम्बन्ध है।

इस पुराण में अनेकों उपकथायें हैं। इसमें स्वर्ग-नरकादिक द्वीप समुद्र का वर्णन, आर्य-अनार्यों के आचार विचार, रात्रिभोजनादि और पुण्य-पाप आदि के फल का भी कथन है। जिससे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति तथा वृद्धि होती है।

5. कवि दौलतरामजी का परिचय –

कवि दौलतरामजी कासलीवाल का जन्म जयपुर राज्य के बसवा नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी वि. सं.1749 में हुआ था। आपके पिता का नाम आनन्दराम और पितामह का नाम घासीराम था। दौलतरामजी का जन्म नाम बेगराज था। दौलतरामजी के बड़े भाई निर्भयराम थे और छोटे बख्तावरलाल। इनके 6 पुत्र थे।

युवावस्था में आगरा गये। वहां कवि भूधरदासजी के सम्पर्क में आये। वहां अध्यात्मशैली चलती थी, उसमें आप भी जाते आते थे। सर्व प्रथम इनने 1777 में पुण्यास्रव कथा कोश की रचना समाप्त की।

आगरा से ये जयपुर निर्माण के साथ-साथ जयपुर आ गये। जयपुर निर्माता महाराजा सवाई जयसिंहजी की सेवा में रहे। ये महाराज कुमार माधोसिंह के दीवान रूप में उदयपुर गये। अपनी सेवाओं के कारण राज्य द्वारा कई बार पुरस्कृत हुए। उदयपुर में भी इनकी विद्वत्ता की छाप समाज पर पड़ी और वहां भी इनने अध्यात्म प्रचार की शैली बनाई और प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन करने लगे। वहां इनने कई ग्रन्थों की रचना की।

इसके पश्चात् सं. 1807 के आस-पास ये जयपुर आ गये। जयपुर उस समय विद्या का प्रमुख केन्द्र था। महाकवि पंडित टोडरमलजी और उनकी शैली का प्रभाव चारों ओर फैला हुआ था। ये पंडित टोडरमलजी के सम्पर्क में आये और गद्य साहित्य रचना प्रारम्भ किया।

पुण्यास्रव कथा-कोष के बाद पद्मपुराण ग्रन्थ की रचना इनने प्रारम्भ की, जो सं.1823 में समाप्त हुई। कवि की यह एक ऐसी महान कृति है, जो समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय है। विद्वान और साधारण गृहस्थ तक पद्मपुराण का स्वाध्याय बड़े चाव से करते हैं। कवि की अन्तिम कृति हरिवंश पुराण है, जो 1829 में समाप्त हुई और इसी वर्ष भाद्रपद शुक्ला 2 को कवि का स्वर्गवास हो गया।

कवि ने अपने जीवन में 18 ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। हो सकता है इसमें ज्यादा हों, पर अभी तक 18 निम्न ग्रन्थों की ही जानकारी है -

1.	पुण्यास्रव कथा कोष	भाद्रपद शुक्ला पंचमी, शुक्रवार सं. 1777 में
2.	श्रेणिक चरित्र	चैत्र शुक्ला 5, सं. 1782 में
3.	त्रेपन क्रिया कोष	उदयपुर में भाद्रपद शुक्ला 12, मंगलवार सं. 1795
4.	अध्यात्म बारह खड़ी	उदयपुर में फाल्गुन शुक्ला 2, गुरुवार सं. 1798 में
5.	जीवन्धर चरित	उदयपुर में आषाढ़ शुक्ला 2, सं. 1805 में
6.	वसुनन्दि श्रावकाचार	उदयपुर में सं.1808 में
7.	विवेक विलास	उदयपुर में
8.	श्रीपाल चरित्र	जयपुर में फाल्गुण शुक्ला 11, सं. 1822
9.	पद्मपुराण	जयपुर में माघ शुक्ला 9, शनिवार सं. 1823 में
10.	आदिपुराण	जयपुर में चैत्र शुक्ला 15, सं. 1826 में
11.	स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा	ज्येष्ठ कृष्णा 12 सं. 1826 में
12.	पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	जयपुर में मंगसर शुक्ला 2, शनिवार सं.1827 में
13.	हरिवंश पुराण	जयपुर में चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, शुक्रवार सं.1829 में

उक्त 13 ग्रन्थों के अतिरिक्त 14 चौबीस दण्डक, 15 सिद्ध पूजाष्टक, 16 परमात्मा प्रकाश, 17 सार समुच्चय, 18 तत्त्वार्थ सूत्र टीका और हैं, जिनकी रचना काल की खोज होना अपेक्षित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि दौलतरामजी गद्य और पद्य दोनों के विद्वान थे और उनने कथा साहित्य की वचनिकाएँ बना कर धर्म और समाज की महान सेवा की है।

श्री पद्मपुराण भाषावचनिका

विषय-सूची

दुखी होता हुआ मरकर महाकाल नाम का असुर हुआ। पूर्व वैर के कारण वह कुण्डलमण्डित को नष्ट करने के प्रयत्न में तत्पर रहने लगा।

रानी विदेहा के एक साथ पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ। महाकाल असुर अवधिज्ञान से पुत्र को अपनी स्त्री का हरण करने वाला कुण्डलमण्डित जानकर रोष से उबल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दया से द्रवीभूत हो उसे आकाश से नीचे गिरा दिया। साथ ही उसे दिव्य कुण्डलों से अलंकृत भी कर दिया।

सत्ताईसवाँ पर्व **283-287**

म्लेच्छ राजाजों के द्वारा जनक के देश में उपद्रव होना। सहायता के लिए राजा जनक का दशरथ को बुलाना। दशरथ का तत्काल वहाँ आना और म्लेच्छों को परास्त करना। इस अभूतपूर्व सहयोग से प्रसन्न होकर राजा जनक का, दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री सीता को देने का निश्चय करना।

अट्ठाईसवाँ पर्व **287-300**

नारद का सीता के महल में पहुँचना। उस समय सीता का दर्पण में मुँह देखना और नारद की प्रतिकृति उसमें देखकर सीता का भयभीत होना। अन्त:पुर की स्त्रियों के बीच होहल्ला सुनकर द्वारपालों द्वारा नारद को रोकना, पर किसी प्रकार बच कर उसका आकाश-मार्ग से उड़कर कैलाश पर्वत पर जाना और बदला लेने की भावना से चित्रपट बनाना। नारद द्वारा विजयार्ध पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगर के राजा के उद्यान में चित्रपट का छोड़ना व उसे देखकर भामंडल का मोहित होना व परिचय पाकर व्यामोह बढ़ना।

राजा चन्द्रगति की सम्मति से चपलवेग विद्याधर अश्व का रूप रख राजा जनक को हरकर रथनूपुर नगर ले जाना व वहाँ का वैभव देखकर प्रसन्न होना। विद्याधरों के राजा द्वारा जनक के सामने भामण्डल के लिए सीता देने का प्रस्ताव रखना। जनक का दृढ़ता के साथ उत्तर देना कि उसे राम के लिए पहले से देना निश्चित कर लिया है।

अन्त में 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा देंगे तो सीता ले सकेंगे, अन्यथा भामण्डल लेगा' - इस शर्त पर जनक का मिथिला में वापस आना। स्वयंवर का होना और धनुष चढ़ाकर राम का सीता के साथ वरण व लक्ष्मण का भी दूसरा धनुष चढ़ाकर 18 कन्याओं को प्राप्त करना व भरत का जनक के भाई कनक की पुत्री लोक सुन्दरी के साथ विवाह।

उनतीसवाँ पर्व **300-305**

आसाढ़ की अष्टाह्निका में राजा दशरथ ने भगवान का अभिषेक कर गन्धोदक सब रानियों के पास भेजा। सुप्रभा रानी के पास एक वृद्ध कंचुकी ले गया, इसलिए देर से पहुँचा अन्य रानियों के पास तरुण दासियाँ ले गईं, इसलिए जल्दी पहुँच गया। सुप्रभा ने इसे अपमान समझ प्राणघात के लिए विष मँगवाया, ज्योंहि कंचुकी विष लेकर सुप्रभा के पास पहुँचा, उसी समय दशरथ उसके पास पहुँच गए। राजा तथा अन्य रानियां जब तक उसे समझाती हैं, तब तक वृद्ध कंचुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा।

प्रसन्न होकर सुप्रभा ने गन्धोदक सिर पर धारण किया। दशरथ ने कंचुकी को विलम्ब का कारण पूछा तो उसने वृद्ध अवस्था का कारण बतलाया। उसकी जर्जर देह को देख कर राजा दशरथ को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय अयोध्या के महेन्द्रोदय उद्यान में सर्वभूतहित मुनिराज का आगमन हुआ।

तीसवाँ पर्व 305-313

विद्याधरों ने यथार्थ बात भामण्डल से छिपा रखी थी, इसलिए वह सीता के मिलने में विलम्ब देख विह्वल हो उठा। निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसके पिता के समक्ष अपने मित्र बसन्तध्वज को उलाहना दिया, तब विद्याधरों ने सब बात स्पष्ट कर दी। भामण्डल सीताहरण की भावना से सेना लेकर अयोध्या की ओर चला।

विदग्ध नामक देश के मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी, तब उसे पूर्वभव का स्मरण हो आया, जिससे मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर उसे अपने कुविचारों पर बहुत घृणा हुई। उसने चन्द्रयान विद्याधर को बताया कि पूर्वभव में यहाँ का राजा कुण्डलमण्डित था। धर्म के प्रभाव से राजा जनक का पुत्र हुआ। उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ और आपके यहाँ पलकर पुष्ट हुआ। सीता तो मेरी सगी बहिन है।

अन्त में भामण्डल सब के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में स्थित सर्वभूतहित मुनिराज के पास जाता है। चन्द्रयान विद्याधर दीक्षा लेने के भाव प्रकट करता है। भामण्डल का विरहगान होता है, जिसे सुनकर सीता जागती है। सीता अपने भाई से मिलती है। दशरथ राजा जनक को खबर देते हैं। राजा जनक सपरिवार आकर जन्महृत पुत्र से मिलकर परम आनन्द का अनुभव करते हैं। राजा जनक अपना राज्य अपने भाई कनक को सौंप कर भामण्डल के साथ विजयार्ध चले जाते हैं।

इकतीसवाँ पर्व 313-323

सर्वभूतहित मुनिराज के द्वारा दशरथ के पूर्वभवों का कथन, दशरथ का वैराग्य, राम को राज्याभिषेक की घोषणा, केकयी का भरत के लिए राज्य माँगना, दशरथ का राम से अपनी दुखों का कहना। भरत को राज्य देने के लिए राम का दृढ़चित्त होना। भरत का विरक्त होना, दशरथ और राम का भरत को रोकना तथा भरत का राज्याभिषेक।

राम का अपनी माता अपराजिता (कौशल्या) को समझाना, वन को जाना, सीता और लक्ष्मण का साथ जाना, रात को नगर के बाहर जिनमन्दिर में ठहरना। रानियों का दशरथ को राम को लौटाकर लाने के लिए कहना, दशरथ का इन्कार करना।

बत्तीसवाँ पर्व 323-331

राम-लक्ष्मण और सीता का मध्यरात्रि को पश्चिम द्वार से निकलकर दक्षिण को जाना। प्रात: कुछ लोगों का उनके पीछे दौड़ना, पदयात्रा, वन में राम का भयंकर नदी को तैर कर पार करना, किन्तु प्रजाजन पार नहीं कर सके। अत: कितने ही घर को लौट गये और कितने ही दीक्षित हो गये।

दशरथ का दीक्षा लेना। कौशल्या और सुमित्रा का पति व पुत्र के वियोग में दुखी होना, कैकयी का भरत को राम-लक्ष्मण को लौटाने के लिए जाने के लिए कहना, सघन वन में सरोवर के तीर पर भरत और कैकयी का राम से मिलाप, वापस चलने के लिए आग्रह करना, राम नहीं लौटे, भरत का निराश हो लौटना, द्युतिभट्टारक के समक्ष भरत का प्रतिज्ञा लेना कि राम के दर्शनमात्र से मुनिदीक्षा लूँगा। भट्टारक का सबको धर्मोपदेश।

तेतीसवाँ पर्व 331-344

राम का चित्रकूट वन को पारकर अवन्ति देश में पहुँचना, ऊजड़ देश को देख कारण पूछना, दशांगपुर के राजा वज्रकर्ण का तथा सिंहोदर की उद्दण्डता का कथन।

चौहत्तरवाँ पर्व **519-524**

रावण का बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित्त हजार हाथियों से जुते ऐन्द्र रथ पर सवार हो सेना के साथ युद्ध के लिए आगे बढ़ना, वानरों और राक्षसों का युद्ध। राम का मन्दोदरी के पिता 'मय' को विह्वल करना। ज्यों ही रावण आगे बढ़ा, त्यों ही लक्ष्मण आगे बढ़ा और दोनों में युद्ध हुआ।

पचहत्तरवाँ पर्व **524-526**

चन्द्रवर्धन विद्याधर की आठ पुत्रियाँ लक्ष्मण के प्रति अनुराग प्रकट करती हैं। लक्ष्मण को कहती हैं, अपने कार्य में सिद्धार्थ हो। लक्ष्मण को सिद्धार्थ शस्त्र का स्मरण हो गया और सिद्धार्थ शस्त्र का प्रयोग किया। रावण बहुरूपिणी विद्या से युद्ध करने लगा। रावण चक्ररत्न लक्ष्मण पर चलाता है, किन्तु वह चक्र लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है।

छिहत्तरवाँ पर्व **526-528**

रावण का अपनी दीन दशा पर पश्चात्ताप, किन्तु मान के वश संधि न करना। लक्ष्मण ने मधुर शब्द में रावण को सीता वापस करने के लिए और राज्य भोगने के लिए कहा, किन्तु रावण नहीं माना। अन्त में लक्ष्मण ने चक्र से रावण को मार डाला और लोगों को अभयदान दिया।

सतत्तरवाँ पर्व **528-532**

रावण की मृत्यु से विभीषण मूर्छित हो जाता है। आत्मघात की इच्छा करता है, अठारह हजार रानियाँ रावण के शव से लिपट जाती हैं। राम आदि का सान्त्वना देना। प्रीतिंकर की संक्षिप्त कथा।

अठहत्तरवाँ पर्व **532-538**

रामादि द्वारा रावण का दाह-संस्कार। भानुकरण (कुम्भकर्ण) इन्द्रजीत, मेघवाहन का राम के पास लाया जाना, राम इनको भोग भोगने को कहते हैं, किन्तु वे उदासीन हो जाते हैं। लंका में सर्वत्र शोक। अनन्तवीर्य मुनि का लंका में आना, रात को केवलज्ञान होना, दिव्यध्वनि खिरना। इन्द्रजीत, मेघवाहन, कुम्भकर्ण और मन्दोदरी आदि के पूर्वभव, अन्त में इन्द्रजीत, मेघवाहन, कुम्भकर्ण तथा मय आदि का दीक्षा लेना, मन्दोदरी, चन्द्रनखा आदि का अर्यिका होना।

उन्न्यासीवाँ पर्व **538-541**

राम-लक्ष्मण का लंका में प्रवेश, सीता के पास वाटिका में राम का जाना, बाहुपाश से सीता को आलिंगन करना। लक्ष्मण का सीता के चरण स्पर्श कर खड़े हो जाना, विद्याधरों द्वारा पुष्पांजलि व गन्धोदक की वृष्टि।

अस्सीवाँ पर्व **541-550**

राम सीता सहित रावण के महल में गये। जिनालय में शांतिनाथ की भक्ति, रावण के परिवार को सान्त्वना दी। निमन्त्रित होकर राम सपरिवार विभीषण के घर में गये। विभीषण ने अर्घावतारण किया तथा सबको भोजन कराया। भरत के होते हुए राम ने अपने लिए राज्याभिषेक के लिए इन्कार कर दिया। वनवास के समय विवाहित स्त्रियों को बुलाकर छह वर्ष तक लंका में रहे। मुनिराज इन्द्रजीत, मेघवाहन का मोक्ष जाना।

मय मुनिराज के माहात्म्य का वर्णन।

लव-कुश सीता के पास पहुँच जाते हैं। रामचन्द्रजी सीता से क्षमा माँग चलने को कहते हैं, परन्तु सीता राम से विरक्त हो चुकी थी, अत: सीता ने घर न जाकर पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले ली। राम ने सर्वभूषण केवली के पास जाकर चतुर्गति के दुख सुने। राम के पूछने पर उत्तर मिला कि तुम इसी भव से मोक्ष जाओगे।

एक सौ छठवाँ पर्व **658-669**

राम, लक्ष्मण और सीता के पूर्व भव।

एक सौ सातवाँ पर्व **669-672**

राम ने कृतांतवक्त्र सेनापति दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है। राम उसकी प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि यदि तुम देव हो तो मुझको संबोधित करना न भूलना। सेनापति दीक्षा ले लेता है। सर्वभूषण केवली के विहार हो जाने पर राम सीता के पास जाकर उसके कठिन तप पर आश्चर्य करते हैं।

एक सौ आठवाँ पर्व **672-674**

लव और कुश के चरित्र का कथन।

एक सौ नौवाँ पर्व **674-681**

बासठ वर्ष तपकर सीता तेतीस दिन की सल्लेखना धारण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई। तत्कालीन इन्द्र राजा मधु का वर्णन।

एक सौ दशवाँ पर्व **682-686**

कांचन नगर के राजा कांचन रथ की दो पुत्रियों मन्दाकिनी व चन्द्रभागा ने लव व कुश को वर लिया। लक्ष्मण के पुत्र उत्तेजित हुए, किन्तु आठ प्रमुख पुत्रों ने समझाया और स्वयं विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली।

एक सौ ग्यारहवाँ पर्व **686-687**

वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु।

एक सौ बारहवाँ पर्व **687-692**

राम-लक्ष्मण के भोगों का कथन। हनुमान अपनी स्त्री सहित मेरु पर्वत की वन्दना को गया, जब वह लौट रहा था, तब उल्का को देखकर विरक्त हो गया।

एक सौ तेरहवाँ पर्व **692-694**

मंत्रियों और स्त्रियों ने प्रयत्न किया कि हनुमान दीक्षा न लेवे, किन्तु वह विचलित नहीं हुआ। धर्मरत्न मुनिराज के पास दीक्षा ले निर्वाण गिरि से मोक्ष गये।

एक सौ चौदहवाँ पर्व **694-697**

सौधर्म इन्द्र ने अपनी सभा में धर्मोपदेश में कहा कि स्नेह का बंधन सुदृढ़ बंधन है।

एक सौ पन्द्रहवाँ पर्व **697-700**

राम और लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा करने दो देव आये और मायामयी रुदन दिखा लक्ष्मण से कहा कि राम की मृत्यु हो गई। यह सुनते ही लक्ष्मण मर गया। राम दौड़े आये। देव पछताये। इस घटना से लव और कुश ने विरक्त हो दीक्षा ले ली

अनुयोगों का प्रयोजन

(आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा रचित श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ के आठवें अधिकार में उपदेश का स्वरूप विशद रूप से वर्णित है। पाठकों को प्रथमानुयोग का स्वरूप ज्ञात हो एवं वे प्रथमानुयोग की कथन पद्धति को हृदयंगम कर सकें, अत: यहाँ प्रथमानुयोग का प्रयोजन, प्रथमानुयोग के व्याख्यान का विधान, अनुयोगों के व्याख्यान की पद्धति, प्रथमानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण एवं अनुयोगों का अभ्यास क्रम आदि विषय दिये जा रहे हैं।

चारों अनुयोगों का सम्पूर्ण स्वरूप जानने के लिए उक्त ग्रन्थ का आठवाँ अधिकार मूलत: पठनीय है।)

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव तुच्छबुद्धि हों, वे भी उससे धर्मसम्मुख होते हैं, क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपण को नहीं पहचानते, लौकिक कथाओं को जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है। तथा प्रथमानुयोग में लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होने से उसे वे भली-भाँति समझ जाते हैं। तथा लोक में तो राजादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है। यहाँ महन्तपुरुष राजादिक की कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ-तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रकट करते हैं; इसलिए वे जीव कथाओं के लालच से उन्हें पढ़ते-सुनते हैं और फिर पाप को बुरा, धर्म को भला जानकर धर्म में रुचिवंत होते हैं।

इसप्रकार तुच्छबुद्धियों को समझाने के लिये यह अनुयोग है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसार की टीका में किया है।

तथा जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें-सुनें तो उन्हें यह उसके उदाहरणरूप भासित होता है। जैसे - जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसा यह जानता था। तथा पुराणों में जीवों के भवान्तर निरूपित किये हैं, वे उस जानने के उदाहरण हुए तथा शुभ-अशुभ शुद्धोपयोग को जानता था, व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति और उनका फल जीव के हुआ सो निरूपण किया है, वही उस जानने का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार अन्य जानना।

यहाँ उदाहरण का अर्थ यह है कि जिसप्रकार जानता था, उसीप्रकार वहाँ किसी जीव के अवस्था हुई - इसलिए यह उस जानने की साक्षी हुई।

तथा जैसे कोई सुभट है - वह सुभटों की प्रशंसा और कायरों की निन्दा जिसमें हो, ऐसी किन्हीं पुराण-पुष्पों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है; उसीप्रकार धर्मात्मा है - वह धर्मात्माओं की प्रशंसा और पापियों की निन्दा जिसमें हो ऐसे किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने में धर्म में अति उत्साहवान होता है।

इसप्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

प्रथमानुयोग के व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोग में जो मूल कथाएँ हैं; वे तो जैसी हैं, वैसी ही निरूपित करते हैं। तथा उनमें प्रसंगोपात्त व्याख्यान होता है; वह कोई तो ज्यों का त्यों होता है, कोई ग्रन्थकर्त्ता के विचारानुसार होता है; परन्तु प्रयोजन अन्यथा नहीं होता।

उदाहरण : जैसे – तीर्थंकर देवों के कल्याणकों में इन्द्र आये, यह कथा तो सत्य है तथा इन्द्र ने स्तुति की, उसका व्याख्यान किया; सो इन्द्र ने तो अन्य प्रकार से ही स्तुति की थी और यहाँ ग्रन्थकर्ता ने अन्य ही प्रकार से स्तुति करना लिखा है; परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा नहीं हुआ तथा परस्पर किन्हीं के वचनालाप हुआ; वहाँ उनके तो अन्य प्रकार अक्षर निकले थे, यहाँ ग्रन्थकर्ता ने अन्य प्रकार कहे; परन्तु प्रयोजन एक ही दिखलाते हैं तथा नगर, वन, संग्रामादिक के नामादिक तो यथावत् ही लिखते हैं और वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजन का पोषण करता हुआ निरूपित करते हैं। इत्यादि इसी प्रकार जानना।

तथा प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्ता अपने विचारानुसार कहते हैं। जैसे – धर्मपरीक्षा में मूर्खों की कथा लिखी; सो वही कथा मनोवेग ने कही थी, ऐसा नियम नहीं है; परन्तु मूर्खपने का पोषण करने वाली कोई कथा कही थी, ऐसे अभिप्राय का पोषण करते हैं। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

यहाँ कोई कहे – अयथार्थ कहना जो जैन शास्त्र में सम्भव नहीं है?

उत्तर – अन्यथा तो उसका नाम है जो प्रयोजन अन्य का अन्य प्रकट करे। जैसे – किसी से कहा कि तू ऐसा कहना, उसने वे ही अक्षर तो नहीं कहे, परन्तु उसी प्रयोजन सहित कहे तो उसे मिथ्यावादी नहीं कहते – ऐसा जानना। यदि जैसे का तैसा लिखने का सम्प्रदाय हो तो किसी ने बहुत प्रकार से वैराग्य चिन्तवन किया था, उसका सर्व वर्णन लिखने से ग्रन्थ बढ़ जायेगा, तथा कुछ न लिखने से उसका भाव भासित नहीं होगा, इसलिए वैराग्य के ठिकाने थोड़ा-बहुत अपने विचार के अनुसार वैराग्य पोषक ही कथन करेंगे, सराग पोषक कथन नहीं करेंगे। वहाँ प्रयोजन अन्यथा नहीं हुआ, इसलिए अयथार्थ नहीं कहते। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा प्रथमानुयोग में जिसकी मुख्यता हो उसी का पोषण करते हैं। जैसे – किसी ने उपवास किया, उसका तो फल अल्प था, परन्तु उसे अन्य धर्मपरिणति की विशेषता हुई, इसलिए विशेष उच्च पद की प्राप्ति हुई, वहाँ उसको उपवास ही का फल निरूपित करते हैं। इसीप्रकार अन्य जानना।

तथा जिसप्रकार किसी ने शीलादि की प्रतिज्ञा दृढ़ रखी व नमस्कार मंत्र का स्मरण किया व अन्य धर्म-साधन किया, उसके कष्ट दूर हुए, अतिशय प्रकट हुए; वहाँ उन्हीं का वैसा फल नहीं हुआ है, परन्तु अन्य किसी कर्म के उदय से वैसे कार्य हुए हैं; तथापि उनको उन शीलादिक का ही फल निरूपित करते हैं। उसीप्रकार कोई पाप कार्य किया, उसको उसी का तो वैसा फल नहीं हुआ है, परन्तु अन्य कर्म के उदय से नीचगति को प्राप्त हुआ अथवा कष्टादिक हुए; उसे उसी पापकार्य का फल निरूपित करते हैं। – इत्यादि इसीप्रकार जानना।

यहाँ कोई कहे – ऐसा झूठा फल दिखलाना तो योग्य नहीं है; ऐसे कथन को प्रमाण कैसे करें?

समाधान – जो अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाये बिना धर्म में न लगें व पाप से न डरें, उनका भला करने के अर्थ ऐसा वर्णन करते हैं। झूठ तो तब हो, जब धर्म के फल को पाप का फल बतलायें, पाप के फल को धर्म

का फल बतलायें, परन्तु ऐसा तो है नहीं। जैसे – दस पुरुष मिलकर कोई कार्य करें, वहाँ उपचार से एक पुरुष का भी किया कहा जाये तो दोष नहीं है। अथवा जिसके पितादिक ने कोई कार्य किया हो, उसे एक जाति अपेक्षा उपचार से पुत्रादिक का किया कहा जाये तो दोष नहीं है। उसीप्रकार बहुत शुभ व अशुभकार्यों का एक फल हुआ, उसे उपचार से एक शुभ व अशुभकार्य का फल कहा जाये तो दोष नहीं है। अथवा अन्य शुभ व अशुभकार्य का फल जो हुआ हो, उसे एक जाति अपेक्षा उपचार से किसी अन्य ही शुभ व अशुभकार्य का फल कहें तो दोष नहीं है।

उपदेश में कहीं व्यवहारवर्णन है, कहीं निश्चयवर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, इसप्रकार इसे प्रमाण करते हैं। इसको तारतम्य नहीं मान लेना; तारतम्य का तो करणानुयोग में निरूपण किया है, सो जानना।

तथा प्रथमानुयोग में उपचाररूप किसी धर्म का अंग होने पर सम्पूर्ण धर्म हुआ कहते हैं। जैसे – जिन जीवों के शंका-कांक्षादिक नहीं हुए, उनको सम्यक्त्व हुआ कहते हैं; परन्तु किसी एक कार्य में शंका-कांक्षा न करने से ही तो सम्यक्त्व नहीं होता, सम्यक्त्व तो तत्त्वश्रद्धान होने पर होता है; परन्तु निश्चय सम्यक्त्व का तो व्यवहार सम्यक्त्व में उपचार किया और व्यवहार सम्यक्त्व के किसी एक अंग में सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त्व का उपचार किया – इसप्रकार उपचार द्वारा सम्यक्त्व हुआ कहते हैं।

तथा किसी जैनशास्त्र का एक अंग जानने पर सम्यग्ज्ञान हुआ कहते हैं। सो संशयादि रहित तत्त्वज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान होता है; परन्तु यहाँ पूर्ववत् उपचार से सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

तथा कोई भला आचरण होने पर सम्यक्चारित्र हुआ कहते हैं। वहाँ जिसने जैनधर्म अंगीकार किया हो व कोई छोटी-मोटी प्रतिज्ञा ग्रहण की हो, उसे श्रावक कहते हैं। सो श्रावक तो पंचम गुणस्थानवर्ती होने पर होता है; परन्तु पूर्ववत् उपचार से इसे श्रावक कहा है। उत्तरपुराण में श्रेणिक को श्रावकोत्तम कहा है सो वह तो असंयत था; परन्तु जैन था इसलिए कहा है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा जो सम्यक्त्वरहित मुनिलिंग धारण करे, व द्रव्य से भी कोई अतिचार लगाता हो, उसे मुनि कहते हैं। सो मुनि तो षष्ठादि गुणस्थानवर्ती होने पर होता है; परन्तु पूर्ववत् उपचार से उसे मुनि कहा है। समवसरण सभा में मुनियों की संख्या कही, वहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि नहीं थे; परन्तु मुनिलिंग धारण करने से सभी को मुनि कहा। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा प्रथमानुयोग में कोई धर्मबुद्धि से अनुचित कार्य करे, उसकी भी प्रशंसा करते हैं। जैसे – विष्णुकुमार ने मुनियों का उपसर्ग दूर किया सो धर्मानुराग से किया; परन्तु मुनिपद छोड़कर यह कार्य करना योग्य नहीं था; क्योंकि ऐसा कार्य तो गृहस्थ धर्म में सम्भव है, और गृहस्थ धर्म से मुनिधर्म ऊँचा है; सो ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार किया, वह अयोग्य है; परन्तु वात्सल्य अंग की प्रधानता से विष्णुकुमारजी की प्रशंसा की है। इस छल से औरों को ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नहीं है।

तथा जिसप्रकार ग्वाले ने मुनि को अग्नि से तपाया, सो करुणा से यह कार्य किया; परन्तु आये हुए उपसर्ग को तो दूर करे, सहज अवस्था में जो शीतादिक परीषह होता है, उसे दूर करने पर रति मानने का कारण होता है, और उन्हें रति करना नहीं है, तब उल्टा उपसर्ग होता है। इसी से विवेकी उनके शीतादिक का उपचार नहीं

करते। ग्वाला अविवेकी था, करुणा से यह कार्य किया, इसलिए उसकी प्रशंसा की है, परन्तु इस छल से औरों को धर्मपद्धति में जो विरुद्ध हो, वह कार्य करना योग्य नहीं है।

तथा जैसे – वज्रकरण राजा ने सिंहोदर राजा को नमन नहीं किया, मुद्रिका में प्रतिमा रखी; सो बड़े-बड़े सम्यग्दृष्टि राजादिक को नमन करते हैं, उसमें दोष नहीं है; तथा मुद्रिका में प्रतिमा रखने में अविनय होती है, यथावत् विधि से ऐसी प्रतिमा नहीं होती, इसलिये इस कार्य में दोष है; परन्तु उसे ऐसा ज्ञान नहीं था, उसे तो धर्मानुराग से 'मैं और को नमन नहीं करूँगा' ऐसी बुद्धि हुई; इसलिए उसकी प्रशंसा की है। परन्तु इस छल से औरों को ऐसे कार्य करना योग्य नहीं है।

तथा कितने ही पुरुषों ने पुत्रादिक की प्राप्ति के अर्थ अथवा रोग-कष्टादि दूर करने के अर्थ चैत्यालय पूजनादि कार्य किये, स्तोत्रादि किये, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया; परन्तु ऐसा करने से तो निःकांक्षितगुण का अभाव होता है, निदानबन्ध नामक आर्तध्यान होता है, पाप ही का प्रयोजन अन्तरंग में है, इसलिये पाप ही का बन्ध होता है; परन्तु मोहित होकर भी बहुत पापबन्ध का कारण कुदेवादि का तो पूजनादि नहीं किया, इतना उसका गुण ग्रहण करके उसकी प्रशंसा करते हैं। इस छल से औरों को लौकिक कार्यों के अर्थ धर्म साधन करना युक्त नहीं है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

इसीप्रकार प्रथमानुयोग में अन्य कथन भी हों, उन्हें यथासम्भव जानकर भ्रमरूप नहीं होना।

अनुयोगों के व्याख्यान की पद्धति

अब, इन अनुयोगों में कैसी पद्धति की मुख्यता पायी जाती है, सो कहते हैं:-

प्रथमानुयोग में तो अलंकार शास्त्र की व काव्यादि शास्त्रों की पद्धति मुख्य है; क्योंकि अलंकारादिक से मन रंजायमान होता है, सीधी बात कहने से ऐसा उपयोग नहीं लगता – जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथन से उपयोग लगता है। तथा परोक्ष बात को कुछ अधिकतापूर्वक निरूपण किया जाये तो उसका स्वरूप भली-भाँति भासित होता है।

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

कितने ही जीव कहते हैं – प्रथमानुयोग में शृंगारादिक व संग्रामादिक का बहुत कथन करते हैं, उनके निमित्त से रागादिक बढ़ जाते हैं, इसलिये ऐसा कथन नहीं करना था व ऐसा कथन सुनना नहीं।

उनसे कहते हैं – कथा कहना हो, तब तो सभी अवस्थाओं का कथन करना चाहिए; तथा यदि अलंकारादि द्वारा बढ़ाकर कथन करते हैं, सो पण्डितों के वचन तो युक्तिसहित ही निकलते हैं।

और यदि तुम कहोगे कि सम्बन्ध मिलाने को सामान्य कथन किया होता, बढ़ाकर कथन किसलिये किया?

उसका उत्तर यह है कि परोक्ष कथन को बढ़ाकर कहे बिना उसका स्वरूप भासित नहीं होता। तथा पहले तो भोग-संग्रामादि इसप्रकार किये, पश्चात् सबका त्याग करके मुनि हुए; इत्यादि चमत्कार तभी भासित होंगे, जब बढ़ाकर कथन किया जाये।

तथा तुम कहते हो – उसके निमित्त से रागादिक बढ़ जाते हैं; सो जैसे कोई चैत्यालय बनवाये, उसका प्रयोजन तो वहाँ धर्मकार्य कराने का है; और कोई पापी वहाँ पापकार्य करे तो चैत्यालय बनवाने वाले का तो दोष नहीं है। उसीप्रकार श्रीगुरु ने पुराणादि में शृंगारादि का वर्णन किया; वहाँ उनका प्रयोजन रागादिक कराने का तो है नहीं, धर्म में लगाने का प्रयोजन है; परन्तु कोई पापी धर्म न करे और रागादिक ही बढ़ाये तो श्रीगुरु का क्या दोष है?

यदि तू कहे कि रागादिक का निमित्त हो ऐसा कथन ही नहीं करना था।

उसका उत्तर यह है – सरागी जीवों का मन केवल वैराग्य कथन में नहीं लगता। इसलिये जिस प्रकार बालक को बताशे के आश्रय से औषधि देते हैं; उसीप्रकार सरागी को भोगादि कथन के आश्रय से धर्म में रुचि कराते हैं।

यदि तू कहेगा – ऐसा है तो विरागी पुरुषों को तो ऐसे ग्रन्थों का अभ्यास करना योग्य नहीं है?

उसका उत्तर यह है – जिनके अन्तरंग में रागभाव नहीं है, उनको शृंगारादि कथन सुनने पर रागादि उत्पन्न ही नहीं होते। वे जानते हैं कि यहाँ इसीप्रकार कथन करने की पद्धति है।

फिर तू कहेगा – जिनको शृंगारादि का कथन सुनने पर रागादि हो आयें, उन्हें तो वैसा कथन सुनना योग्य नहीं है?

उसका उत्तर यह है – जहाँ धर्म ही का प्रयोजन है और जहाँ-तहाँ धर्म का पोषण करते हैं – ऐसे जैन पुराणादिक में प्रसंगवश शृंगारादिक का कथन किया है। उसे सुनकर भी जो बहुत रागी हुआ तो वह अन्यत्र कहाँ विरागी होगा? वह तो पुराण सुनना छोड़कर अन्य कार्य भी ऐसे ही करेगा, जहाँ बहुत रागादि हों; इसलिये उसको भी पुराण सुनने से थोड़ी-बहुत धर्मबुद्धि हो तो हो। अन्य कार्यों से तो यह कार्य भला ही है।

तथा कोई कहे – प्रथमानुयोग में अन्य जीवों की कहानियाँ हैं, उनसे अपना क्या प्रयोजन सधता है?

उससे कहते हैं – जैसे कामी पुरुषों की कथा सुनने पर अपने को भी काम का प्रेम बढ़ता है; उसी प्रकार धर्मात्मा पुरुषों की कथा सुनने पर अपने को धर्म की प्रीति विशेष होती है। इसलिये प्रथमानुयोग का अभ्यास करना योग्य है।

अनुयोगों का अभ्यास क्रम

वहाँ प्रथमानुयोगादिक का अभ्यास करना। पहले इसका अभ्यास करना, फिर इसका करना ऐसा नियम नहीं है, परन्तु अपने परिणामों की अवस्था देखकर जिसके अभ्यास से अपनी धर्म में प्रवृत्ति हो उसी का अभ्यास करना। अथवा कभी किसी शास्त्र का अभ्यास करे, कभी किसी शास्त्र का अभ्यास करे। तथा जैसे – रोजनामचे में तो अनेक रकमें जहाँ-तहाँ लिखी हैं, उनकी खाते में ठीक खतौनी करे तो लेन-देन का निश्चय हो; उसीप्रकार शास्त्रों में तो अनेक प्रकार का उपदेश जहाँ-तहाँ दिया है, उसे सम्यग्ज्ञान में यथार्थ प्रयोजनसहित पहचाने तो हित-अहित का निश्चय हो।

इसलिये स्यात्पद की सापेक्षता सहित सम्यग्ज्ञान द्वारा जो जीव जिनवचनों में रमते हैं, वे शीघ्र ही शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं। मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगमज्ञान कहा है, आगमज्ञान बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हें भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

– मोक्षमार्ग प्रकाशक, आठवाँ अधिकार

ॐ

।।शास्त्र–स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण।।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती! हरतु नो दुरितान्।।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः–प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीपद्मपुराणभाषावचनिका नामधेयं अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्यश्रीकुन्दकुन्दाम्नाये आचार्यरविषेण–विरचितं पद्मपुराणं तदाधारेण पण्डितदौलतरामेण विरचितम्।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।

।। श्री वीतरागाय नमः ।।

पंडित दौलतरामजी कृत

श्री पद्मपुराणजी भाषावचनिका

(मूलग्रन्थ कर्ता श्रीमद्-रविषेणाचार्य)

भाषाकार का मंगलाचरण

।।दोहा।।

चिदानन्द चैतन्य के, गुण अनन्त उर धार।
भाषा पद्मपुराण की, भाषूं श्रुति अनुसार।।1।।

पंच परमपद पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर बानि।
नमि जिनप्रतिमा जिनभवन जिनमारग उर आनि।।2।।

ऋषभ अजित संभव प्रणमि, नमि अभिनन्दन देव।
सुमति जु पद्म सुपार्श्व नमि, करि चन्द्राप्रभ सेव।।3।।

पुष्पदंत शीतल प्रणमि, श्री श्रेयांस को ध्याय।
वासुपूज्य विमलेश नमि, नमि अनंत के पाय।।4।।

धर्म शांति जिन कुन्थु नमि, और मल्लि यशगाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि नमि, नमि पारस के पाय।।5।।

वर्द्धमान वर वीर नमि, गुरु गौतम मुनि बंद।
सकल जिनंद मुनिन्द नमि, जैनधर्म अभिनन्द।।6।।

निर्वाणादि अतीत जिन, नमों नाथ चौबीस।
महापद्म परमुख प्रभू, चौबीसों जगदीश।।7।।

होंगे तिनको वंदि कर, द्वादशांग उर लाय।
सीमंधर आदिक नमूं, दश दूने जिनराय।।8।।

विहरमान भगवान ये, क्षेत्र विदेह मझारि।
पूजैं जिनको सुरपती, नागपती निरधार।।9।।

द्वीप अढाई के विषै, भये जिनेन्द्र अनंत।
होंगे केवलज्ञानमय, नाथ अनंतानंत।।10।।

सबको वंदन कर सदा, गणधर मुनिवर ध्याय।
केवलि श्रुतकेवलि नमूं, आचारज उवझाय।।11।।

वंदूं शुद्ध स्वभाव को, धर सिद्धन को ध्यान।
संतन को परणाम कर, नमि दृग व्रत निज ज्ञान।।12।।

शिवपुरदायक सुगुरु नमि, सिद्धलोक यश गाय।
केवल दर्शन ज्ञान को, पूजें मन वच काय।।13।।

यथाख्यात चारित्र अरु, क्षपकश्रेणि गुण ध्याय।
धर्म शुक्ल निज ध्यान को, वंदूं भाव लगाय।।14।।

उपशम वेदक क्षायिका, सम्यग्दर्शन सार।
कर वंदन समभाव को, पूजूं पंचाचार।।15।।

मूलोत्तर गुण मुनिन के, पंच महाव्रत आदि।
पंच समिति अरु गुप्ति त्रय, ये शिवमूल अनादि।।16।।

अनित्य आदिक भावना, सेऊं चित्त लगाय।
अध्यातम आगम नमूं, शांतिभाव उरलाय।।17।।

अनुप्रेक्षा द्वादश महा, चितवैं श्रीजिनराय।
तिनकी थुति करि भाव सों, षोडश कारण ध्याय।।18।।

दश लक्षणमय धर्म की, धर सरधा मनमाहिं।
जीवदया सत् शील तप, जिनकर पाप नसाहिं।।19।।

तीर्थंकर भगवान के, पूजूं पाँच कल्याण।
अवर केवलिन को नमूं, केवल अरु निर्वाण।।20।।

श्री जिन तीरथक्षेत्र नमि, प्रणमि उभय विध धर्म।
थुति कर चउविध संघ की, तजकर मिथ्या भर्म।।21।।

वंदूं गौतम स्वामि के, चरण कमल सुखदाय।
वंदूं धर्म मुनींद्र को, जंबू केवलि ध्याय।।22।।

भद्रबाहु को कर प्रणति, भद्र भाव उर लाय।
वंदि समाधि सुतंत्र को, ज्ञानतणे गुणगाय।।23।।

महाधवल अरु जयधवल, तथा धवल जिनग्रंथ।
वंदूं तन मन वचन कर, जे शिवपुर के पंथ।।24।।

षट्पाहुड नाटक जु त्रय, तत्त्वारथ सूत्रादि।
तिनको वंदूं भाव कर, हरैं दोष रागादि।।25।।

गोमटसागर अगाध श्रुत, लब्धिसार जगसार।
क्षपणसार भवतार है, योगसार रसधार।।26।।

ज्ञानार्णव है ज्ञानमय, नमूं ध्यान का मूल।
पद्मनंदि पच्चीसिका, करै कर्म उन्मूल।।27।।

यत्नाचार विचार नमि, नमूं श्रावकाचार।
द्रव्यसंग्रह नयचक्र फुनि, नमूं शांति रसधार।।28।।

आदिपुराणादिक सबै, जैनपुराण बखान।
वंदूं मन वच काय कर, दायक पद निर्वान।।29।।

तत्त्वसार आराधना, ह्वसार महारस धार।
परमातम परकाश को, पूजूं बारंबार।।30।।

बंदु विशाखाचार्यवर, अनुभव के गुण गाय।
कुन्दकुन्द-पद धोक दे, कहूं कथा सुखदाय।।31।।

कुमुदचंद अकलंक नमि, नेमिचंद्र गुण ध्याय।
पात्रकेशरी को प्रणमि, समंतभद्र यश गाय।।32।।

अमृतचंद्र यतिचंद्र को, उमास्वामि को वंद।
पूज्यपाद को कर प्रणति, पूजादिक अभिनंद।।33।।

ब्रह्मचर्यव्रत बंदिकर, दानादिक उर लाय।
श्री योगीन्द्र मुनींद्र को, वंदू मन वच काय।।34।।

वंदू मुनि शुभचंद्र को, देवसेन को पूज।
करि वंदन जिनसेन को, जिनके सम नहिं दूज।।35।।

पद्मपुराण निधान को, हाथ जोड़ि सिरनाय।
ताकी भाषा वचनिका, भाखूं सब सुखदाय।।36।।

पद्मनाम बलभद्र का, रामचंद्र बलभद्र।
भये आठवें धार नर, धारक श्री जिनमुद्र।।37।।

ता पीछे मुनिसुव्रत के, प्रगटे अति गुणधाम।
सुर-नर-वंदित धर्ममय, दशरथ के सुत राम।।38।।

शिवगामी नामी महा, ज्ञानी करुणावंत।
न्यायवंत बलवंत अति, कर्महरण जयवंत।।39।।

जिनके लक्ष्मण वीर हरि, महाबली गुणवंत।
भ्रातृभक्त अनुरक्त अति, जैनधर्म यशवंत।।40।।

चंद्र-सूर्य-से वीर ये, हरैं सदा परपीर।
कथा तिनों की शुभ महा, भाषी गौतम धीर।।41।।

सुनी सबै श्रेणिक नृपति, धर सरधा मनमाहिं।
सो भाषी रविषेण ने, यामैं संशय नाहिं।।42।।

महा सती सीता सुभा, रामचंद्र की नारि।
भरत शत्रुघन अनुज हैं, यही बात उरधारि।।43।।

तद्भव शिवगामी भरत, अरु, लव अंकुश पूत।
मुक्त भये मुनिवरत धरि, नमैं तिनै पुरहूत।।44।।

रामचंद्र को करि प्रणति, नमि रविषेण ऋषीश।
रामकथा भाखूं यथा, नमि जिनश्रुति मुनि ईश।।45।।

संस्कृत ग्रंथकार का मंगलाचरण

सिद्धं संपूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्त - दर्शनज्ञान - चारित्रप्रतिपादनम्।।1।।
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्ट - पादपद्मांशुकेसरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमङ्गलम्।।2।।

अर्थ ह्न सिद्ध कहिये कृतकृत्य हैं और सम्पूर्ण भए हैं सर्व सुन्दर अर्थ जिनके, अथवा भव्य जीवों के सर्व अर्थ पूर्ण करैं हैं, आप उत्तम अर्थात् मुक्त हैं, औरों को मुक्ति के कारण हैं। प्रशंसा योग्य दर्शन, ज्ञान और चारित्र के प्रकाशनहारे हैं। बहुरि सुरेंद्र के मुकुटकर पूज्य हैं, किरणरूप केसर ताकों धरें चरणकमल जिनके, ऐसे भगवान महावीर, तीन लोक के प्राणियों को मंगलरूप हैं, तिनको नमस्कार करूं हूं।

भावार्थ ह्न सिद्धि कहिए मुक्ति अर्थात् सर्व बाधारहित, उपमारहित, अनुपम अविनाशी जो सुख ताकी प्राप्ति के कारण श्री महावीर स्वामी जो काम, क्रोध, मान, मद, माया, मत्सर, लोभ, अहंकार, पाखंड, दुर्जनता, क्षुधा, तृषा, व्याधि, वेदना, जरा, भय, रोग, शोक, हर्ष, जन्म, मरणादि रहित हैं। शिव कहिये अविनश्वर हैं, द्रव्यार्थिकनय से जिनकी आदि भी नाहीं और अंत भी नाहीं, अछेद्य-अभेद्य, क्लेशरहित, शोकरहित, सर्वव्यापी, सर्वसम्मुख, सर्व विद्या के ईश्वर हैं। यह उपमा औरों को नाहीं बने है। जो मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, बौद्धादिक मत हैं तिनके कर्त्ता जैमिनि, कपिल, काणभिक्ष, अक्षपाद, कणादबुद्ध हैं, वे मुक्ति के कारण नाहीं। जटा, मृगछाला, वस्त्र, अस्त्र, शस्त्र, स्त्री, रुद्राक्ष, कपालमाला के धारक हैं और जीवों के दहन घातन छेदनविषै प्रवृत्त हैं। विरुद्ध अर्थ कथन करनेवाले हैं।

मीमांसी तो धर्म का अहिंसा लक्षण बताय हिंसाविषै प्रवृत्ते हैं और सांख्य जो हैं सो आत्मा को अकर्ता और निर्गुण भोक्ता मानै है और प्रकृति ही को कर्त्ता माने हैं। और नैयायिक वैशेषिक आत्मा को ज्ञानरहित जड़ माने हैं और जगतकर्त्ता ईश्वर मानै हैं। और बौद्ध क्षणभंगुर मानै हैं। शून्यवादी शून्य मानैं हैं। और वेदान्तवादी एक ही आत्मा त्रैलोक्यव्यापी नर नारक देव तिर्यंच मोक्ष सुख दुःखादि अवस्था विषै माने हैं। तातैं ये सर्व ही मुक्ति के कारण नाहीं। मोक्ष का कारण एक जिनशासन ही है, जो सर्व जीवमात्र का मित्र है। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का, प्रकट करने वाला है। ऐसे जिनशासन को श्री वीतराग देव प्रकटकर दिखावैं हैं।

कैसे हैं श्री वद्‌र्धमान, वीतराग देव? वह सिद्‌ध कहिये जीवनमुक्त हैं और सर्व अर्थकरि पूर्ण हैं, मुक्ति के कारण हैं, सर्वोत्तम हैं और सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्र के प्रकाशनहारे हैं। बहुरि कैसे

हैं? इंद्रनि के मुकुटनिकर स्पर्शे गये हैं चरणारविंद जिनके ऐसे श्रीमहावीर वद्र्धमान सन्मतिनाथ अंतिम तीर्थंकर तिनकूं नमस्कार करूं हूं। तीनलोक के सर्व प्राणियों को महामंगलरूप हैं, महा योगीश्वर हैं, मोहमल्ल के जीतनहारे हैं, अनंत बल के धारक हैं, संसार-समुद्रविषैं डूब रहे जे प्राणी तिनके उद्धार करनहारे हैं। शिव, विष्णु, दामोदर, त्र्यम्बक, चतुर्मुख, बुद्ध, ब्रह्मा, हरि, शंकर, रुद्र, नारायण, हर, भास्कर, परममूर्ति इत्यादि जिनके अनेक नाम हैं, तिनको शास्त्र की आदिविषै महामंगल के अर्थि सर्वविघ्न के विनाशवे निमित्त मन वचन कायकर नमस्कार करूं हूं।

इस अवसर्पिणी काल में प्रथम ही भगवान श्री ऋषभ देव भए, सर्व योगीश्वरनि के नाथ, सर्व विद्या के निधान स्वयम्भू तिनको हमारा नमस्कार होहु। जिनके प्रसाद कर अनेक भव्यजीव भवसागर से तिरे। बहुरि दूजे श्री अजितनाथ स्वामी, जीते हैं बाह्य-अभ्यंतर शत्रु जिन्होंने, हमको रागादिक रहित करहु। अर तीजे संभवनाथ, जिनकरि जीवन को सुख होय और चौथे श्री अभिनंदन स्वामी आनंद के करनेहारे हैं, अर पांचवें सुमति के देनहारे सुमतिनाथ मिथ्यात्व के नाशक हैं और छठे श्रीपद्मप्रभ, ऊगते सूर्य की किरणों कर प्रफुल्लित कमल के समान है प्रभा जिनकी, अर सातवें श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी सर्व के वेत्ता सर्वज्ञ सबनि के निकटवर्त्ती ही हैं। बहुरि शरद की पूर्णमासी के चंद्रमा समान है प्रभा जिनकी ऐसे आठवें श्री चंद्रप्रभ, ते हमारे भवताप हरो।

बहुरि प्रफुल्लित कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल हैं दंत जिनके ऐसे नवमे श्री पुष्पदंत जगत के कंत हैं और दशवें शीतलनाथ शुक्लध्यान के दाता परम इष्ट ते हमारे क्रोधादिक अनिष्ट हरो। अर जीवनिकूं सकल कल्याण के कर्त्ता धर्म के उपदेशक ग्यारहवें श्री श्रेयांसनाथ स्वामी ते हमको परम आनंद करो। अर देवनिकूं पूज्य संतों के ईश्वर कर्म शत्रुओं के जीतनेहारे बारहवें श्री वासुपूज्य स्वामी ते हमको निज वास देवो, और संसार के मूल जो रागादि मल तिनसे अत्यंत दूर ऐसे तेरहवें श्री विमलनाथ देव, ते हमारे कर्मकलंक हरो, अर अनंतज्ञान के धरनहारे, सुन्दर है दर्शन जिनका ऐसे चौदहवें श्री अनन्तनाथ देवाधिदेव हमको अनंतज्ञान की प्राप्ति करो। और धर्म की धुरा के धारक पन्द्रहवें श्री धर्मनाथ स्वामी हमारे अधर्म को हरकर परम धर्म की प्राप्ति करो।

बहुरि जीते हैं ज्ञानावरणादिक शत्रु जिन्होंने ऐसे सोलहवें श्री शांतिनाथ परमशांत हमको शांतभाव की प्राप्ति करो। अर कुंथु आदि सर्व जीवों के हितकारी सतरहवें श्री कुंथुनाथ स्वामी हमको भ्रमरहित करो। समस्त क्लेश से रहित मोक्ष के मूल अनन्त सुख के भण्डार अठारहवें श्री अरनाथ स्वामी कर्मरजरहित करो। संसार के तारक मोहमल्ल के जीतने हारे बाह्याभ्यन्तर मलरहित ऐसे उन्नीसवें श्री मल्लिनाथ स्वामी ते अनन्तवीर्य की प्राप्ति करो। अर भले व्रतों के उपदेशक, समस्त दोषों के विदारक बीसवें श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनके तीर्थविषै श्रीरामचन्द्र का शुभ चरित्र प्रगट भया ते हमारे अव्रत मेट महाव्रत की प्राप्ति करो। और नम्रीभूत भये हैं सुर नर असुरों के इन्द्र

जिनको ऐसे इक्कीसवें श्री नमिनाथ प्रभु ते हमको निर्वाण की प्राप्ति करो। अर समस्त अशुभ कर्म, तेई भये अरिष्ट तिनके काटवेकूं, चक्र की धारा समान बाईसवें श्री अरिष्टनेमि भगवान् हरिवंश के तिलक श्री नेमिनाथ स्वामी ते हमको यम नियमादि अष्टांग योग की सिद्धि करो और तेईसवें श्री पार्श्वनाथ देवाधिदेव इन्द्र नागेन्द्र चन्द्र सूर्य्यादिक कर पूजित हमारे भव-सन्ताप हरो।

अर चौबीसवें श्री महावीर स्वामी जो चतुर्थ काल के अन्त में भये हैं ते हमारे महा मंगल करो। और भी जो गणधरादिक महामुनि तिनको मन, वचन, काय कर बारम्बार नमस्कार कर श्री रामचन्द्र के चरित्र का व्याख्यान करूं हूं।

कैसे हैं श्रीराम? लक्ष्मीकर आलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुखरूपी कमल जिनका, महापुण्याधिकारी हैं, महाबुद्धिमान् हैं, गुणन के मंदिर हैं, उदार है चरित्र जिनका। जिनका चरित्र केवलज्ञान के ही गम्य है, ऐसे जो श्री रामचन्द्र उनका चरित्र श्री गणधरदेव ही किंचित् मात्र कहने को समर्थ हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि जो हम सारिखे अल्पबुद्धि पुरुष भी उनके चरित्र को कहे हैं। यद्यपि हम सारिखे इस चरित्र को कहने को समर्थ नाहीं, तथापि परंपरा से महामुनि जिस प्रकार कहते आए हैं, उनके कहे अनुसार कुछ इक संक्षेपता कर कहैं हैं।

जैसे जिस मार्ग विषै मदमाते हाथी चालें, तिस मार्ग विषै मृग भी गमन करैं हैं और जैसे युद्धविषै महा सुभट आगे होय कर शस्त्रपात करे हैं तिनके पीछैं और भी पुरुष रणविषै जाय हैं, अर सूर्य करि प्रकाशित जे पदार्थ तिनकूं नेत्रवारे लोक सुखसूं देखे हैं अर जैसे वज्रसूची के मुख कर भेदी जो मणि उस विषै सूत्र भी प्रवेश करे हैं, तैसे ज्ञानी की पंकति कर भाषा हुआ चला आया जो राम सम्बन्धी चरित्र ताके कहने को भक्ति कर प्रेरी जो हमारी अल्प बुद्धि सो भी उद्यमवती भई है। बड़े पुरुष के चिंतवन कर उपजा जो पुण्य ताके प्रसाद कर हमारी शक्ति प्रकट भई है, महा पुरुषन के यशकीर्तन से बुद्धि की वृद्धि होय है और यश अत्यन्त निर्मल होय है और पाप दूर जाय है।

यह प्राणीन का शरीर अनेक रोगोंकर भरा है। इसकी स्थिति अल्पकाल है, अर सत्पुरुष की कथा कर उपज्या जो यश सो जब तक चांद सूर्य्य हैं तब तक रहे हैं। इसलिए जो आत्मवेदी पुरुष हैं वे सर्व यत्नकर महापुरुषन के यश कीर्तन से अपना अपना यश स्थित करे हैं। जिसने सज्जनों को आनंद की देनहारी जो सत्पुरुषन की रमणीक कथा उसका आरम्भ किया, उसने दोनों लोक का फल लिया। जो कान सत्पुरुषन की कथा श्रवण विषै प्रवृत्ते हैं वे ही कान उत्तम हैं और जे कुकथा के सुननेहारे कान हैं वे कान नाहीं, वृथा आकारकूं धरै हैं।

और जे मस्तक सत्पुरुषन की चेष्टा के वर्णन विषै घूमे हैं ते ही मस्तक धन्य हैं और जे शेष मस्तक हैं, वे थोथे नारियल समान जानने। अर सत्पुरुषन के यशकीर्तन रूप अमृत के आस्वाद विषैं जो रसना प्रवरती सोई धन्य है और रसना दुर्वचन की बोलनहारी छुरी के अग्रभाग समान

जाननी। अर सत्पुरुषन के यशकीर्तन विषै प्रवृत्ते जे होंठ ते ही श्रेष्ठ हैं और जे शेष होंठ हैं, ते जोंक की पीठ समान विफल जानने। जे पुरुष सत्पुरुषन की कथा के प्रसंग विषै अनुराग को प्राप्त भये, उन ही का जन्म सफल है। और मुख वे ही हैं, जो मुख्य पुरुषन की कथा विषै रत भये। शेष मुख मल का भर्‍या दांतरूपी कीड़ान का बिल समान हैं और जो सत्पुरुषन की कथा के वक्ता हैं अथवा श्रोता हैं, सो ही पुरुष प्रशंसा योग्य हैं और शेष पुरुष चित्राम समान जानने।

गुण और दोषन के संग्रहविषै जे उत्तम पुरुष हैं ते गुणन ही को ग्रहण करै हैं, जैसे दुग्ध और पानी के मिलापविषै हंस दुग्ध ही को ग्रहण करै है। और गुण दोषन के मिलापविषै जे नीच पुरुष हैं ते दोषन ही को ग्रहण करै हैं। जैसे गज कै मस्तकविषै मोती मांस दोऊ हैं तिन विषै काग मोती को तज मांस को ही ग्रहण करै हैं। जो दुष्ट हैं ते निर्दोष रचना को भी दोषरूप देखे हैं, जैसे उल्लू सूर्य के बिम्ब को तमाल वृक्ष के पत्र समान स्याम देखे है। जे दुर्जन हैं ते सरोवर में जल आने का जाली समान हैं। जैसे जाली जल को तज तृण पत्रादि कंटकादिक का ग्रहण करै है तैसे दुर्जन गुण को तज दोषन ही को धारै हैं। इसलिये सज्जन और दुर्जन का ऐसा स्वभाव जानकर जो साधु पुरुष हैं ते अपने कल्याणनिमित्त सत्पुरुषन की कथा के प्रबंध विषै ही प्रवृत्तै हैं।

सत्पुरुषन की कथा के श्रवण से मनुष्यों को परम सुख होय है। जे विवेकी पुरुष हैं, उनको धर्मकथा पुण्य के उपजावने का कारण है। सो जैसा कथन श्रीवर्द्धमान जिनेंद्र की दिव्यध्वनि में खिरा, तिसका अर्थ गौतम गणधर धारते भये। अर गौतम से सुधर्माचार्य धारते भये। ता पीछे जंबूस्वामी प्रकाशते भये। जंबूस्वामी के पीछे पांच श्रुतकेवली और भए, वे भी उसी भांति कथन करते भये। इसी प्रकार महापुरुषन की परम्पराकर कथन चला आया, उसके अनुसार रविषेणाचार्य व्याख्यान करते भये। यह सर्व रामचन्द्र का चरित्र सज्जन पुरुष सावधान होकर सुनो।

यह चरित्र सिद्धपदरूप मंदिर की प्राप्ति का कारण है और सर्वप्रकार के सुख का देनहारा है। और जे मनुष्य श्री रामचन्द्र कौं आदि दे जे महापुरुष तिनको चिंतवन करे हैं वे अतिशयकर भावन के समूहकर नम्रीभूत होय प्रमोद कों धरें हैं। तिनका अनेक जन्मों का संचित किया जो पाप सो नाश को प्राप्त होय है। और जे सम्पूर्ण पुराण का श्रवण करें, तिनका पाप दूर अवश्य ही होय, यामें संदेह नाहीं। कैसा है पुराण? चन्द्रमा समान उज्ज्वल है। इसलिये जे विवेकी चतुर पुरुष हैं ते इस चरित्र का सेवन करें। यह चरित्र बड़े पुरुषनिकर सेवन योग्य है।

इस ग्रन्थ विषै 6 महा अधिकार हैं। तिन विषै अवांतर अधिकार बहुत हैं। मूल अधिकारन के नाम कहै हैं। प्रथम ही 1 लोकस्थिति, बहुरि 2 वंशनि की उत्पत्ति, पीछे 3 वनविहार अर संग्राम तथा 4 लवणांकुश की उत्पत्ति, बहुरि 5 भवनिरूपण अर 6 रामचंद्र का निर्वाण। ते श्री वर्धमान देवाधिदेव सर्व कथन के वक्ता हैं, जिनको अति वीर कहिये या महावीर कहिये हैं। रामचरित्र हू

के कथनहारे हैं। जातैं ताके कारण श्री महावीर स्वामी हैं, तातैं प्रथम ही तिनका कथन कीजिये हैं।

विपुलाचल पर्वत के शिखर पर समोसरणविषै श्री वर्धमान स्वामी विराजे। तहां श्रेणिकराजा गौतम स्वामी सों प्रश्न करते भये। कैसे हैं गौतमस्वामी? भगवान के मुख्य गणधर हैं, महा महंत हैं, जिनका इंद्रभूति भी नाम है। आगे श्री गौतम स्वामी कहै हैं तहां प्रश्न विषै प्रथम ही युगनि का कथन है। बहुरि कुलकरनि की उत्पत्ति, अकस्मात् चंद्र सूर्य के अवलोकनतैं जुगलियानिकूं भय का उपजना, सो प्रथम कुलकर प्रतिश्रुत के ऊपदेशतैं भय का दूर होना, बहुरि नाभिराजा अन्त के कुलकर तिनके घर श्री ऋषभदेव का जन्म, सुमेरु पर्वत विषै इंद्रादिक देवनिकर जन्माभिषेक। बहुरि बाललीला अर राज्याभिषेक, कल्पवृक्षनि के वियोगकरि उपज्या प्रजानिकूं दु:ख, सो कर्मभूमि की विधि के बतावने करि दूर होना।

बहुरि भगवान का वैराग्य, केवलोत्पत्ति, समोसरन की रचना, जीवनिकूं, धर्मोपदेश बहुरि भगवान का निर्वाणगमन, भरत चक्रवर्ती अर बाहुबलि के परस्पर युद्ध। बहुरि विप्रन की उत्पत्ति, इक्ष्वाकु आदि वंशनि का कथन, विद्याधरनि का वर्णन, तिनकै वंशविषै राजा विद्युद्दंष्ट्र का जन्म। संजयंत स्वामीकूं विद्युद्दंष्ट्र ने उपसर्ग किया, सो उपसर्ग सहि करि अंत:कृत्केवली होइ करि निर्वाण गये। विद्युद्दंष्ट्र ने ऊपसर्ग किया यह जानि धरणेंद्र ने तासूं कोप किया, ताकी विद्या छेद करी।

बहुरि श्री अजितनाथ स्वामी का जन्म, पूर्णमेघ विद्याधर भगवान के शरणे आया। राक्षस द्वीप का स्वामी व्यन्तर देवता ने प्रसन्न होइ पूर्णमेघकूं राक्षसद्वीप दिया। बहुरि सगर चक्रवर्ती की उत्पत्ति का कथन, पुत्रनि के दु:ख करि दीक्षा ग्रहण, अर मोक्ष प्राप्ति, पूर्णमेघ के वंशविषै महारक्ष का जन्म, अर वानरवंशी विद्याधरनि की उत्पत्ति का कथन, बहुरि विद्युत्केश विद्याधर का चरित्र, बहुरि उदधिविक्रम अर अमरविक्रम विद्याधर का कथन, वानरवंशीनि कै किष्किंधापुर का निवास, अर अंधक विद्याधर का कथन, श्रीमाला विद्याधरी का संगम, विजयसंघ के मरणतैं अशनिवेग के क्रोध का उपजना और सुकेशी के पुत्रनि का लंका आवने का निरूपण, निर्घात विद्याधर के बधतैं माली नाम विद्याधर रावण के दादे का बड़ा बाई, ताके संपदा की प्राप्ति का कथन, अर विजयार्द्ध की दक्षिण की श्रेणी विषै रथनूपुर नगर में इंद्रनामा विद्याधर का जन्म, इंद्र सर्व विद्याधरनि का अधिपति है। इंद्र के अर माली के युद्ध विषै माली का मरण, अर लंकाविषै इंद्र का राज्य अर वैश्रवण नामा विद्याधर का थाणै रहना। अर सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा का पुष्पांतक नामा नगर बसावना, अर केकसी का परणना और केकसी के शुभस्वप्न का अवलोकन, रावण का जन्म।

अर विद्यानि का साधन, विद्यानि के साधन विषै अनावृत्त देव आय विघ्न किया तहां रावण का अचल रहना। बहुरि बहुत विद्यान का सिद्ध होना अर अनावृत देव का वश होना, अपने नगर आय माता पितासूं मिलना, बहुरि अपने पिता का पिता जो राजा सुमाली, ताकूं बहुत आदरसूं

बुलावना, बहुरि मंदोदरी का रावणसों विवाह और बहुत राजानि की कन्या का ब्याहना, कुंभकरण का चरित्र, वैश्रवण का कोप, यक्ष अर राक्षस कहावैं अैसे विद्याधर तिनका बड़ा संग्राम, वैश्रवण का भागना बहुरि तप धरना, अर रावण का लंका मैं कुटुम्ब सहित आवना अर सब राक्षसनिकूं धीरज बंधावना, अर ठौर ठौर जिन मंदिरन का निर्माण करना, अर जिन धर्म का उद्योत करना और श्री हरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र राजा सुमाली ने रावणकूं कह्या सो भावसहित सुनना।

कैसा है हरिषेण चक्रवर्ती चरित्र? पापनि का नाश करणहारा, बहुरि त्रिलोकमंडन हाथी का वश करना, अर राजा इंद्र का लोकपाल यम नामा विद्याधर ताने वानरवंशीनि का राजा सूर्यरजकूं पकड़कर बंदीखाने डारया, सो रावण सम्मेदशिखर की यात्रा करि डेरा आये थे सो सूर्यरज के समाचार सुनि ताही समय गमन करना, अर जाय यमकूं जीतना। यम के थाने उठावना अर यम का भाजना, राजा सूर्यरजकूं बंदीखाने तैं छुड़ावना अर किहकंधापुर का राज्य देना।

बहुरि रावण की बहिन सूर्पनखा ताकूं खरदूषण हरि ले गया सो वाहीकूं परिणाय देना, अर ताहि पाताल लंका का राज्य देना, सो खरदूषण का पाताल लंका जाना अर चंद्रोदर कौं युद्ध विषैं हनना, अर चंद्रोदर की रानी अनुराधाकूं पति के वियोगतैं महा दु:ख का होना, अर चंद्रोदर के पुत्र विराधित का राज्यभ्रष्ट होइ कहूं का कहूं रहना अर बाली का वैराग्य होना, सुग्रीवकूं राज्य की प्राप्ति अर कैलाशपर्वतविषै बाल्य का विराजना, रावण का बालीसूं कोप करि कैलाश उठावना, अर चैत्यालयनि की भक्ति के निमित्त बाल्य पग का अंगूठा दाब्या तब रावण का दबिकर रोवना, अर रानीनि की वीनती तैं बाली का अंगुष्ठ का ढीला करना।

अर बाल्य के भाई सुग्रीव का सुतारासूं विवाह अर साहसगति विद्याधर कें सुतारा की अभिलाषा हुती सो अलाभतें संताप का होना अर राजा अनारण्य अर सहसरश्मि का वैराग्य होना, अर रावण ने यज्ञ नाश किया ताका वर्णन, अर राजा मधु के पूर्व भव का व्याख्यान अर रावण की पुत्री उपरंभा का मधुसों विवाह, अर रावण का इंद्र पर जाना, इंद्र विद्याधर को युद्धकरि जीतना, पकरिकरि लंका में ल्यावना बहुरि छोड़ना, अर ताका वैराग्य लेय निर्वाण होना अर रावण का प्रताप अर सुमेरु पर्वत गमन बहुरि पाछा आवना, अर अनंतवीर्य मुनिकूं केवलज्ञान की प्राप्ति, रावण का नेम ग्रहण – जो परस्त्री मोहि न अभिलाषै ताहि मैं न सेवूं।

बहुरि हनुमान की उत्पत्ति, कैसे हैं? हनुमान बानरवंशीनिविषै महात्मा हैं अर कैलाश पर्वतविषै अंजनी का पिता जो राजा महेन्द्र तानै पवनंजय का पिता जो राजा प्रह्लाद तासों सम्भाषण किया– जो हमारी पुत्री का तुम्हारे पुत्रसूं सम्बन्ध करहु। सो राजा प्रह्लाद ने प्रमाण किया। अंजनी का पवनंजयसूं विवाह होना, बहुरि पवनंजय का अंजनीसों कोप, अर चकवा

चकवी के वियोग का वृत्तांत देखि अंजनीसूं प्रसन्न होना, अंजनी के गर्भ का रहना। अर हनुमान के पूर्व जन्म, वन में अंजनीकूं मुनि ने कहा।

अर हनुमान का गिरि की गुफाविषै जन्म, बहुरि अनुरुद्ध द्वीप में वृद्धि, प्रतिसूर्य मामा ने अंजनीकूं बहुत आदरसों राखी, बहुरि पवनंजय का भूताटवीविषै प्रवेश अर पवनंजय के हाथीकूं देखि प्रतिसूर्य का तहां आवना, पवनंजयकूं अंजनी के मिलाप का परम उत्साह होना, पुत्र का मिलाप होना अर पवनंजय का रावण के निकट जाना। अर आज्ञातैं बरुणसूं युद्धकरि ताहि जीतना। रावण के बड़े राज्य का वर्णन, तीर्थंकरों की आयु काय अंतराल का वर्णन, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्तीनि के सकल चरित्र का वर्णन। अर राजा दशरथ की उत्पत्ति, अर केकईकूं वरदान का देना, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म, सीता की उत्पत्ति, भामंडल का हरण, अर ताकी माताकूं शोक का होना। अर नारद ने सीता का चरित्र चित्रपट भामण्डलकूं दिखाया सो देखकर मोहित होना।

बहुरि जनक के स्वयंवर मंडप का वृत्तांत, अर धनुष रतन का स्वयंवर मंडप में धरना, श्री रामचन्द्र का आवना, धनुष का चढ़ावना अर सीताकूं विवाहना। अर सर्वभूत शरण्य मुनि के निकट दशरथ का दीक्षा लेना। अर भामण्डल कों पूर्व जन्म का ज्ञान होना। अर सीता का दर्शन।

बहुरि केकयी के वरतैं भरत का राज्य, अर राम लक्ष्मण सीता का दक्षिण दिशाकूं गमन करना। वज्रकिरण का चरित्र, लक्ष्मणकूं कल्याणमाला का लाभ, अर रुद्रभूत कों वश करना अर बालखिल्य का छुड़ावना, अर अरुण ग्रामविषै श्रीराम आए तहां वन में देवतानि ने नगर बसाये तहां चौमासे रहना। लक्ष्मण के वनमाला का संगम, अतिवीर्य का वैराग्य, बहुरि लक्ष्मण के जितपद्‌मा की प्राप्ति, अर कुलभूषण देशभूषण मुनि का चरित्र अर श्रीराम ने वंशस्थल पर्वतविषै भगवान के मंदिर कराए तिनका वर्णन, अर जटायु पंखी नें नेम की प्राप्ति, पात्रदान के फल की महिमा, संबूक का मरण, सूर्पनखा का विलाप, खरदूषणसूं लक्ष्मण का युद्ध, सीता का हरण, सीताकूं राम के वियोग का अत्यन्त शोक, अर रामकूं सीता के वियोग का अत्यन्त शोक, बहुरि विराधित विद्याधर का आगमन अर खरदूषण का मरण, अर रतनजटीकैं रावणकरि विद्या का छेद, अर सुग्रीव का राम के निकट आवना, बहुरि सुग्रीव के कारण श्रीराम ने साहसगति कों मार्‍या, अर सीता का वृत्तांत रतनजटी ने श्रीरामसूं कह्या।

श्रीराम का लंका उपरि गमन। राम रावण के युद्ध। राम लक्ष्मणकूं सिंहवाहिनी गरुडवाहिनी विद्या की प्राप्ति। लक्ष्मण के रावण की शक्ति का लगना, अर विशल्या के प्रसादतैं शक्ति दूर होना, रावण का शांतिनाथ के मंदिर विषै बहुरूपिणी विद्या का साधना अर राम के कटक के

विद्याधर कुमारनि का लंकाविषैं प्रवेश, अर रावण के चित्त के डिगावने का उपाय, पूर्णभद्र मणिभद्र के प्रभावतैं विद्याधर कुमारनि का कटक में पाछा आवना। रावणकूं विद्या की सिद्धि, बहुरि राम रावण के युद्ध, रावण का चक्र लक्ष्मण के हाथ आवना। अर रावण का परलोक गमन, रावण की स्त्रीनि का विलाप।

बहुरि केवली का लंका के वनविषै आगमन। इंद्रजीत कुंभकर्णादि का दीक्षा ग्रहण। अर रावण की स्त्रीनि का दीक्षा ग्रहण। अर श्रीराम का सीता सूं मिलाप। विभीषण के भोजन कैइक दिन लंकाविषै निवास, बहुरि नारद का राम के निकट आवना। राम का अयोध्यागमन, भरत के अर त्रिलोकमंडन हाथी के पूर्व भव का वर्णन। भरत का वैराग्य, राम लक्ष्मण का राज्य अर रणविषै मधु का अर लवण का मरण। मथुराविषै शत्रुघ्न का राज्य, मथुराविषै अर सकलदेशविषै धरणींद्र के कोपतैं रोगानि की उत्पत्ति, बहुरि सप्तऋषिनि के प्रभावतैं रोगनि की निवृत्ति। अर लोकापवादतैं सीता का वनविषै त्यजन अर वज्रजंघ राजा का वनविषै आगमन, सीता कूं बहुत आदरतैं ले जाना। तहां लवणांकुश का जन्म। अर लवणांकुश बड़े होई अनेक राजानिकूं जीति वज्रजंघ के राज्य का विस्तार कीया। बहुरि अयोध्या जाय श्रीराम सूं युद्ध कीया। अर सर्वभूषण मुनिकूं केवलज्ञान की प्राप्ति देवनि का आगमन। सीता के शीलतैं अग्निकुण्ड का शीतल होना। अर विभीषण के पूर्वभव का वर्णन। कृतांतवक्र का तप लेना। स्वयम्बर मण्डपविषै राम के पुत्रनितैं लक्ष्मण के पुत्रनि का विरोध। बहुरि लक्ष्मण के पुत्रनि का वैराग्य। अर विद्युत्पाततैं भामण्डल का मरण। हनुमान का वैराग्य। लक्ष्मण की मृत्यु। राम के पुत्रनि का तप। श्रीराम कूं लक्ष्मण के वियोगतैं अत्यंत शोक अर देवतानि के प्रतिबोधतैं मुनिव्रत का अंगीकार, केवलज्ञान की प्राप्ति। निर्वाण गमन।

यह सब रामचन्द्र का चरित्र सज्जन पुरुष मनकूं समाधान करिके सुनहु। यह चरित्र सिद्धपदरूप मंदिर की प्राप्ति का सिवाण है, अर सर्वप्रकार सुखनि का दायक है। श्रीरामचन्द्र कों आदि दे जे महामुनि तिनका जे मनुष्य चिंतवन करै हैं, अर अतिशयपणेकरि भावनि के समूहकरि नम्रीभूत होइ प्रमोदकूं धरै हैं तिनका अनेक जन्मनि का संचित जो पाप सो नाश होइ है। सम्पूर्ण पुराण का जे श्रवण करैं तिनका पाप दूर होय ही होय, तामें संदेह कहा? कैसा है पुराण? चन्द्रमा समान उज्ज्वल है। तातैं जो विवेकी चतुर पुरुष हैं ते या चरित्र का सेवन करहु। कैसा है चरित्र? बड़े पुरुषनिकरि सेइवे योग्य है। जैसे सूर्यकरि प्रकाश्या जो मार्ग ताविषै भले नेत्रनि के धारक पुरुष काहेकूं डिगै?

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै पीठबंध विधाननामा प्रथम पर्व पूर्ण भया।।1।।

।।अथ लोकस्थिति महा अधिकार।।

मगध देश के राजगृह नगर में श्री महावीर स्वामी के समोसरण का आना और राजा श्रेणिक का श्री रामचंद्र जी की कथा पूछना।

जम्बद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश अति सुन्दर है, जहां पुण्याधिकारी बसै हैं। इन्द्र के लोक समान सदा भोगोपभोग करै हैं, जहां योग्य व्यवहार से लोक पूर्ण मर्यादा रूप प्रवृत्ते हैं और जहां सरोवर में कमल फूल रहे हैं और भूमि में अमृत समान मीठे सांठेन के बाड़े शोभायमान हैं और जहां नाना प्रकार के अन्नों के समूह के पर्वत समान ढेर होय रहे, अरहट की घड़ी से सींचे जीरान के धणा के खेत हरित होय रहे हैं, जहां भूमि अत्यन्त श्रेष्ठ है, सर्व वस्तु निपजे हैं। चावलों के खेत शोभायमान और मूंग मौठ ठौर ठौर फल रहे हैं। गेहू आदि सर्व अन्नकूं काहू भांति विघ्न नाहीं और जहां भैंस की पीठ पर चढ़े ग्वाला गावें हैं, गऊओं के समूह अनेक वर्ण के हैं, जिनके गले में घंटा बाजे हैं और दुग्ध झरती अन्यन्त शोभे हैं, जहां दूधमयी धरती हो रही है, अत्यन्त स्वादु रस के भरे तृण तिनको चरकर गाय भैंस पुष्ट होय रही हैं और श्याम सुंदर हिरण हजारों विचरे हैं, मानो इंद्र के हजारों नेत्र ही हैं। जहां जीवन को कोई बाधा नहीं।

जिनधर्मियों का राज्य है और बन के प्रदेश केतक की धूलिकरि धूसरित होय रहे हैं, फूलों से धवल होय रहे हैं, गंगा के पुलिन समान उज्ज्वल बहुत शोभायमान हैं और जहां केसर की क्यारी अति मनोहर है और जहां ठौर-ठौर नारियल के वृक्ष हैं और अनेक प्रकार के शाक पत्र से खेत हरित हो रहे हैं और वनपाल नारेल आदि मेवान का आस्वाद करे हैं और जहां दाडम के बहुत वृक्ष हैं। जहां सूवादि अनेक पक्षी बहुत प्रकार के फल भक्षण करे हैं, जहां बंदर अनेक प्रकार किलोल करे हैं, बिजौरा के वृक्ष फल रहे हैं। बहुत स्वादरूप अनेक जाति के फल तिनका रस पीकर पंखी सुख सों सोय रहे हैं और दाख के मण्डप छाय रहे हैं।

जहां बन विषैं देव बिहार करे हैं, जहां खजूर को पथिक भक्षण करे हैं केला के वन फल रहे हैं। ऊंचे ऊंचे अरजुन वृक्षों के वन सोहे हैं और नदी के तट गोकुलन के शब्द से रमणीक हैं। नदियों में मच्छीनि के समूह किलोल करैं हैं, तरंग के समूह उठे हैं। मानो नदी नृत्य ही करे हैं और हंसों के मधुर शब्दों कर मानो नदी गान ही करे हैं। जहां सरोवर के तीर पर सारस क्रीडा करे हैं और वस्त्र आभरण सुगंधादि सहित मनुष्यों के समूह तिष्ठे हैं, कमलों के समूह फूल रहे हैं, और अनेक जीव क्रीड़ा करे हैं। जहां हंसों के समूह उत्तम मनुष्यों के गुणों के समान उज्ज्वल सुन्दर शब्द सुनकर चाल वाले तिनकर वन धवल होय रहा है। जहां कोकिलान के रमणीक शब्द और

भंवरों का गुंजार, मोरों के मनोहर शब्द, संगीत की ध्वनि, बीन मृदंगों का बाजना, इन करि दशों दिशा रमणीक होय रही हैं और वह देश गुणवंत पुरुषों से भरा है, जहां दयावान क्षमावान शीलवान उदारचित्त तपस्वी त्यागी विवेकी आचारी लोग बसे हैं, मुनि विचरै हैं, आर्यिका विहार करे हैं, उत्तम श्रावक श्राविका बसे हैं। शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान है चित्त की वृत्ति जिनकी, मुक्ताफल समान उज्ज्वल हैं। आनन्द के देनेहारे हैं, और वह देश बड़े बड़े गृहस्थीन कर मनोहर हैं।

कैसे हैं गृहस्थी? कल्पवृक्ष समान हैं, तृप्त किये हैं अनेक पथिक जिन्होंने। जहां अनेक शुभ ग्राम हैं। जिनमैं भले भले किसान बसे हैं, और उस देश विषै कस्तूरी कर्पूरादि सुगन्ध द्रव्य बहुत हैं और भांति भांति के वस्त्र आभूषणों कर मण्डित नर नारी विचरे हैं, मानो देव देवी ही हैं। जहां जैन वचनरूपी अंजन (सुरमा) से मिथ्यात्वरूपी दृष्टिविकार दूर होवे है और महा मुनियों के तप रूपी अग्नि से पाप रूपी वन भस्म होय है। ऐसा धर्मरूपी महा मनोहर मगध देश बसै है।

मगध देश में राजगृह नामा नगर महा मनोहर, पुष्पों की वास कर महा सुगंधित, अनेक सम्पदा कर भर्‍या है। मानो तीन भवन का यौवन ही है और वह नगर इन्द्र के नगर समान मन का मोहने वाला है। इन्द्र के नगर में तो इन्द्राणी कुंकुम कर लिप्त शरीर बिचरै है, और इस नगर में राजा की रानी सुगन्ध कर लिप्त शरीर विचरे हैं। महिषी ऐसा नाम रानी का है, और भैंस का भी है, सो जहां भैंस भी केसर की क्यारी में लोटकर केसर सो लिप्त भई फिरे है। और सुन्दर उज्ज्वल घरों की पंक्ति और टाकीन के घड़े सफेद पाषाण तिनकी शिलानिकरि मंदिर बने हैं, मानो चंद्रकांति मणिन का नगर बना है। मुनियों को तो वह नगर तपोवन भासै है (मालूम होता है) वेश्या को काम मंदिर। नृत्यकारनी को नृत्य का मंदिर और वैरी को यमपुर है, सुभट को वीरनि का स्थान, याचनि को चिंतामणि, विद्यार्थी को गुरुगृह, गीतशास्त्र के पाठी को गंधर्व नगर, चतुरन कूं सर्वकला (चतुराई) सीखने का स्थान और ठगनि को धूर्तनि का मंदिर भासे है।

संतन को साधुओं का संगम, व्यापारी को लाभभूमि, शरणागत को वज्रपिंजर, नीति के वेत्ता को नीति का मंदिर, कौतुकी (खिलारियों) को कौतुक का निवास, कामिनि को अप्सरों का नगर, सुखिया को आनन्द का निवास भासे है। जहां गजगामिनी शीलवंती व्रतवंती रूपवंती अनेक स्त्री हैं। जिनके शरीर की पद्मरागमणि की सी प्रभा है और चन्द्रकांति मणि जैसा वदन है, सुकुमार अंग है, पतिव्रता हैं, व्यभिचारी को अगम्य हैं, महा सौन्दर्य है, मिष्ट वचन की बोलनेहारी हैं, और सदा हर्षरूप मनोहर हैं मुख जिनके और प्रमाद रहित है चेष्टा जिनकी, सामायिक प्रोषध प्रतिक्रमण की करनेहारी हैं, व्रत नेमादि विषै सावधान हैं, अन्न का शोधन, जल का छानना, पात्रनिकूं भक्तिकरि दान देना और दुखित भुखित जीव को दया कर दान देना इत्यादि शुभ क्रिया में सावधान हैं।

जहां महा मनोहर जिनमंदिर हैं, जिनेश्वर भक्ति और सिद्धांत की चरचा ठौर ठौर है। ऐसा राजगृह नगर बसा है जिसकी उपमा कथन में न आवे। स्वर्ग लोक तो केवल भोग ही का विलास है, और यह नगर भोग और योग दोनों ही का निवास है। जहां पर्वत समान तो ऊंचा कोट है और महागम्भीर खाई है, जिसमें वैरी प्रवेश नहीं कर सकते, ऐसा देवलोक समान शोभायमान राजगृह नगर बसे है।

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करे है, जो इंद्र समान विख्यात है। बड़ा योद्धा, कल्याण रूप है प्रकृति जिसकी। कल्याण ऐसा नाम स्वर्ण का भी है और मंगल का भी है। सुमेरु तो सुवर्ण रूप है और राजा कल्याण रूप है। वह राजा समुद्र समान गम्भीर है, मर्यादा उलंघन का है भय जिसको, कला के ग्रहण में चंद्रमा के समान है, प्रताप में सूर्य समान है, धन सम्पदा में कुबेर के समान है शूरवीरपने में प्रसिद्ध है, लोक का रक्षक है, महा न्यायवंत है। लक्ष्मीकरि पूर्ण है, गर्व से दूषित नहीं, सब शत्रुओं का विजय कर बैठा है तथापि शस्त्र (हथियार) का अभ्यास रखता है, और जो आपसे नम्रीभूत भये हैं तिनके मान का बढ़ावनहारा है। जे आपते कठोर हैं तिनके मान का मोड़नहारा है। और आपदा विषै उद्वेगचित्त नाहीं। सम्पदा विषै मदोन्मत्त नाहीं, जाकी निर्मल साधुनिविषैं रतबुद्धि है, और रत्न के विषै पाषाणबुद्धि है, जो दानयुक्त क्रिया में बड़ा सावधान है, और ऐसा सामन्त है कि मदोन्मत्त हाथी को कीट समान जाने है और दीन पर दयालु है, जिसकी जिनशासन में परम प्रीति है। धन और जीतव्य में जीर्ण तृण समान बुद्धि है, दशों दिशा वश करी है, प्रजा के प्रतिपालन में सावधान है, और स्त्रियों को चर्म की पुतली के समान देखे है, धन को रज समान गिने है, गुणनकर नम्रीभूत जो धनुष ताही को अपना सहाई जाने है, चतुरंग सेना को केवल शोभारूप माने है।

भावार्थ – अपने बल पराक्रम से राज करे है। जिसके राज में पवन भी वस्त्रादि का हरण नहीं करे तो ठग चोरों की क्या बात? जिसके राज में क्रूर पशु भी हिंसा न करते भये तो मनुष्य हिंसा कैसे करे? यद्यपि राजा श्रेणिक से वासुदेव बड़े होते हैं, परन्तु उन्होंने वृष कहिए वृषासुर का पराभव किया है, और यह राजा श्रेणिक वृष कहिये धर्मता का प्रतिपालक है, इसलिये उनसे श्रेष्ठ है। और पिनाकी कहिये शंकर, उसने राजा दक्ष के वर्गकूं आताप किया। अर यह दक्ष अर्थात् चतुर पुरुषों को आनन्दकारी है, इसलिये शंकर से भी अधिक है। और इंद्र के वंश नाहीं, अर यह वंश करि विस्तीर्ण है। और दक्षिण दिशा का दिग्पाल जो यम, सो कठोर है, यह राजा कोमल चित्त है। और पश्चिम दिशा का दिग्पाल जो वरुण सो दुष्ट जलचरों का अधिपति है, इसके दुष्टों का अधिकार ही नाहीं। और उत्तर दिशा का अधिपति जो कुवेर, वह धन का रक्षक है, यह धन का त्यागी है। और बौद्ध के समान क्षणिकमती नाहीं, चंद्रमा की नाईं कलंकी नाहीं।

यह राजा श्रेणिक सर्वोत्कृष्ट है। जिसके त्याग का अर्थी पार न पावै, जिसकी बुद्धि का पार

पण्डित न पावते भये। शूरवीर जिसके साहस का पार न पावते भये। जिसकी कीर्ति दशों दिशा में विस्तरी है, जिनके गुणन की संख्या नाहीं, सम्पदा का क्षय नाहीं। सेना अर बहुत बड़े बड़े सामंत सेवा करै हैं। हाथी घोड़े रथ पयादे सब ही राजा का ठाठ सबसे अधिक है। और पृथिवीविषै प्राणी का चित्त जिससे अति अनुरागी होता भया, जिसके प्रताप का शत्रु पार न पावते भये। सब कलाविषै प्रवीण है, इसलिये हम सरीखे पुरुष वाके गुण कैसें गा सकैं? जिसके क्षायिक सम्यक्त्व की महिमा इंद्र अपनी सभा विषै सदा ही करै है, वह राजा मुनिराज के समूह में वेत की लता के समान नम्रीभूत है। अर उद्धत वैरीनि को वज्रदण्ड सैं वश करने वाला है। जिसने अपनी भुजाओं से पृथिवी की रक्षा करी। कोट खाई तो नगर की शोभा मात्र है। जिनचैत्यालयों का कराने वाला, जिनपूजा का कराने वाला। जिसके चेलना नामा रानी महा पतिव्रता शीलवंती गुणवंती रूपवंती कुलवंती शुद्ध सम्यग्दर्शन की धरनहारी, श्राविका के व्रत पालने वाली, सर्वकला निपुण, उसका वर्णन कहां लग करैं? ऐसा उपमा कर रहित राजा श्रेणिक गुणों का समूह राजगृह नगर में राज करे है।

आगैं अंतिम तीर्थंकर का समवसरण का आगमन जानि राजा श्रेणिक उछाहसहित भए ताका वर्णन करिए हैं ह्न

एक समय राजगृह नगर केसमीप विपुलाचल पर्वत के ऊपर भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर समोसरण सहित आय विराजे। तब भगवान के आगमन का वृत्तांत वनपाल ने आकर राजा से कहा और छहों ऋतुओं के फल फूल लाकर आगै धरे। तब राजा ने सिंहासन से उठकर सात पैंड पर्वत के सम्मुख जाय भगवान को अष्टांग नमस्कार किया और बनपाल को अपने सर्व आभरण उतारकर पारितोषिक में देकर भगवान के दर्शनों की तैयारी करता भया।

श्री वर्धमान भगवान के चरण-कमल सुर नर असुरों से नमस्कार करने योग्य हैं। गर्भकल्याणविषै छप्पन कुमारियों ने शोधा जो माता का उदर, उसमें तीन ज्ञान संयुक्त अच्युत स्वर्ग से आय विराजे हैं। और इंद्र के आदेश से धनपति ने गर्भ में आवने से छह मास पहिले से रत्नवृष्टि करके जिनके पिता का घर पूर्‌या है। अर जन्मकल्याणक में सुमेरु पर्वत के मस्तक पर इंद्रादि देवों ने क्षीरसागर के जल करि जिनका जन्माभिषेक किया है और धरा है महावीर नाम जिनका। और बाल अवस्था में इंद्र ने जो देवकुमार रखे तिन सहित जिन्होंने क्रीड़ा करी है। और जिनके जन्म में माता पितान कूं तथा अन्य समस्त परिवार कूं अर प्रजाकूं और तीन लोक के जीवनि कूं परम आनन्द हुवा।

नारकियों का भी त्रास एक मुहूरत के वास्ते मिट गया। जिनके प्रभावकरि पिता के बहुत दिनों के विरोधी जो राजा थे, वे स्वयमेव ही आय नम्रीभूत भये और हाथी घोड़े रथ रत्नादिक अनेक प्रकार के भेंट किये और छत्र चमर बाहनादिक तज, दीन होय, हाथ जोड़ आय पायन पड़े। और नाना देशों की प्रजा आयकर निवास करती भई। जिन भगवान का चित्त जोगविषैं सदा रत,

भोगनिविषै रत न भया। जैसे सरोवर में कमल जल से निर्लेप रहै तैसे भगवान जगत की माया से अलिप्त रहे। वह भगवान स्वयंबुद्ध बिजली के चमत्कारवत् जगत की माया को चंचल जान वैरागी भये। और किया है लौकांतिक देवों ने स्तवन जिनका, मुनिव्रत को धारण कर सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र का आराधन कर घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त भये। वह केवलज्ञान समस्त लोकालोक का प्रकाशक है। ऐसे केवलज्ञान के धारक भगवान ने जगत के भव्य जीवों के उपकार के निमित्त धर्मतीर्थ प्रगट किया।

वह श्री भगवान मलरहित पसेव से रहित हैं। जिनका रुधिर क्षीर (दूध) समान है और सुगंधित शरीर शुभ लक्षण, अतुलबल मिष्टवचन, महा सुन्दर स्वरूप, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभ नाराच संहनन के धारक हैं। जिनके, विहार में चारों ही दिशाओं में दुर्भिक्ष नाहीं। सकल ईति भीति का अभाव रहै है, और सर्व विद्या के परमेश्वर हैं। जिनका शरीर निर्मल स्फटिक समान है, अर आंखों की पलक नाहीं लागै। अर नख केश बढ़ै नाहीं, समस्त जीवों में मैत्रीभाव रहता है, और शीतल मंद सुगंध पवन पीछे लगी आवै है। छह ऋतु के फल फूल फलै हैं, और धरती दर्पण समान निर्मल हो जाती है, और पवन कुमार देव एक योजन पर्यंत भूमि तृण पाषाण कंटकादि रहित करे हैं। और मेघकुमार देव गंधोदक की सुवृष्टि महा उत्साह से करै और प्रभु के विहार में देव चरण कमल के तलै स्वर्णमयी कमल रचै हैं। चरणों को भूमि का स्पर्श नाहीं, आकाश में ही गमन करै हैं। धरती पर छह ऋतु के सर्वधान्य फलै हैं। शरद के सरोवर के समान आकाश निर्मल होय है।

अर दशों दिशा धूम्रादिरहित निर्मल हो रही हैं, सूर्य की कांति को हरणे वाला सहस्र आरों से युक्त धर्मचक्र भगवान के आगे आगे चलै है। इस भांति आर्यखण्ड में विहार कर श्री महावीर स्वामी विपुलाचल पर्वत ऊपर विराजे हैं। उस पर्वत पर नाना प्रकार के जल के निरझरने झरै हैं, उनका शब्द मन का हरणहारा है। जहां बेलि और वृक्ष शोभायमान हैं। और जहां जातिविरोधी जीवों ने भी बैर छोड़ दिया है। पक्षी बोल रहे हैं, उनके शब्दों से मानो पहाड़ गुंजार ही करै है, और भ्रमरों के नाद से मानों पहाड़ गान ही करै है। सघन वृक्षों के तले हाथियों के समूह बैठे हैं। गुफाओं के मध्य सिंह तिष्ठै हैं। जैसे कैलाश पर्वत पर भगवान ऋषभदेव विराजे थे, तैसे विपुलाचल पर श्री वर्द्धमान स्वामी विराजै हैं।

जब श्री भगवान समोसरण में केवलज्ञान से संयुक्त विराजमान भये, तब इन्द्र का आसन कम्पायमान भया, तदि इंद्र जानी कि भगवान केवलज्ञान संयुक्त विराजै हैं, मैं जाय कर वंदना करूं। सो इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर आए। वह हाथी शरद के बादल समान उज्ज्वल है। मानो कैलाश पर्वत सुवर्ण की सांकलनि करि संयुक्त है। जिसका कुम्भस्थल भ्रमरों की पंक्तिकरि मंडित

है, जिसने दशों दिशा सुगंध से व्याप्त करी है, महा मदोन्मत्त है, जिसके नख सचिक्कण हैं, जिसके रोम कठोर हैं, जिसका मस्तक भले शिष्य के समान बहुत विनयवान और कोमल है, जिसका अंग दृढ़ है और दीर्घ काय है, जिसका स्कंध छोटा है, मद झरै है, अर नारद-समान कलहप्रिय है। जैसैं गरुड़ नाग को जीतैं, तैसैं यह नाग अर्थात् हाथियों को जीतै है। जैसे रात्रि नक्षत्रों की माला कहिये पंकति ताकरि शोभै है। तैसैं यह नक्षत्रमाला जो आभरण तासों शोभै है। सिंदूर कर अरुण (लाल) ऊंचा जो कुंभस्थल उससे देव मनुष्यों के मन को हरै है। ऐसे ऐरावत गज पर चढ़ कर सुरपति आए। और भी देव अपने अपने वाहनों पर चढ़कर इन्द्र के संग आए, जिनके मुख कमल जिनेंद्र के दर्शन के उत्साह से फूल रहे हैं। सोलह ही स्वर्गों के समस्त देव और भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी सर्व ही आए। कमलायुध आदि अखिल विद्याधर अपनी स्त्रियों सहित आए। वे विद्याधर रूप और विभव में देवों के समान हैं।

तहां समोसरणविषै इन्द्र भगवान की ऐसे स्तुति करते भए। हे नाथ! महामोहरूपी निद्रा में सोता यह जगत् तुमने ज्ञानरूप सूर्य के उदय से जगाया। हे सर्वज्ञ वीतराग! तुमको नमस्कार होहु, तुम परमात्मा पुरुषोत्तम हो, संसार-समुद्र के पार तिष्ठो हो। तुम बड़े सार्थवाही हो। भव्य जीव चेतनरूपी धन के व्यापारी तुम्हारे संग निर्वाण द्वीप को जायेंगे तो मार्ग में दोषरूपी चोरों से नाहीं लुटेंगे। तुमने मोक्षाभिलाषियों को निर्मल मोक्ष का पंथ दिखाया और ध्यानरूपी अग्नि कर कर्म ईंधन को भस्म किया है। जिनके कोई बांधव नाहीं, दुःखरूपी अग्नि के ताप कर संतापित जगत के प्राणी तिनके तुम भाई हो और नाथ हो, परम प्रतापरूप प्रगट भए हो। हम तुम्हारे गुण कैसे वर्णन कर सकें। तुम्हारे गुण उपमारहित अनन्त हैं, सो केवलज्ञान गोचर हैं। इस भांति इन्द्र भगवान की स्तुति कर अष्टांग नमस्कार करते भये। समोसरण की विभूति देख बहुत आश्चर्य को प्राप्त भये सो संक्षेपकरि वर्णन करिये हैह्नह्न

वह समोसरण नाना वर्ण के अनेक महारत्न और स्वर्ण से रचा हुवा। जिसमें प्रथम ही रत्न की धूलि का धूलिसाल कोट है। और उसके ऊपर तीन कोट हैं, एक एक कोट के चार चार द्वार हैं, द्वारे द्वारे अष्ट मंगल द्रव्य हैं, और जहां रमणीक वापी हैं, सरोवर हैं। अर ध्वजा अद्भुत शोभा धरै है। तहां स्फटिक मणि की भीति (दीवार) करि बाहर कोठे प्रदक्षिणरूप बने हैं। एक कोठे में मुनिराज हैं। दूसरे में कल्पवासी देवों की देवांगना हैं। तीसरे में आर्यिका हैं। चौथे में ज्योतिषी देवों की देवी हैं। पांचवें में व्यन्तर देवी हैं। छठे में भवनवासिनी देवी हैं। सातवें में ज्योतिषी देव हैं। आठवें में व्यंतर देव हैं। नववें में भवनवासी, दशवें में कल्पवासी, ग्यारहवें में मनुष्य, बारहवें में तिर्यंच। सर्व जीव परस्पर वैर भाव रहित तिष्ठैं हैं। भगवान् अशोक वृक्ष के समीप सिंहासन पर विराजैं हैं। वह अशोक वृक्ष प्राणियों के शोक को दूर करै है। और सिंहासन नाना प्रकार के रत्नों

के उद्योत से इन्द्रधनुष के समान अनेक रंगों को धरै है, इन्द्र के मुकुट में जो रत्न लगे हैं, उनकी कांति के समूह को जीतै हैं। तीन लोक की ईश्वरता के चिह्न जो तीन छत्र उनसे श्री भगवान शोभायमान हैं। और देव पुष्पों की वर्षा करै हैं। चौंसठ चमर सिर पर ढुरै हैं। दुंदुभी बाजे बजै हैं। उनकी अत्यंत सुन्दर ध्वनि होय रही है।

राजगृह नगर से राजा श्रेणिक आवते भये। अपना मंत्री तथा परिवार और नगरवासियों सहित समोसरण के पास पहुँच, समोसरण को देख दूर ही से छत्र चमर वाहनादिक तज कर स्तुतिपूर्वक नमस्कार करते भये। पीछे आयकर मनुष्यों के कोठे में बैठे, अर कुंवर वारिषेण अभय कुमार, विजयबाहु इत्यादिक राजपुत्र भी नमस्कार कर आय बैठे। जहां भगवान की दिव्यध्वनि खिरै है, देव मनुष्य तिर्यंच सब ही अपनी अपनी भाषा में समझै हैं। वह ध्वनि मेघ के शब्द को जीतै है। देव और सूर्य की कांति को जीतने वाला भामण्डल शौभै है। सिंहासन पर जो कमल है, उस पर आप अलिप्त विराजैं हैं। गणधर प्रश्न करै हैं और दिव्यध्वनि विषै सर्व का उत्तर होय है।

गणधर देव ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! तत्त्व के स्वरूप का व्याख्यान करो।

तब भगवान तत्त्वनि का निरूपण करते भये। तत्त्व दो प्रकार के हैं ह्न एक जीव दूसरा अजीव। जीवों के दो भेद हैं ह्न सिद्ध और संसारी। संसारी के दो भेद हैं ह्न एक भव्य दूसरा अभव्य। मुक्त होने योग्य को भव्य कहिये और कोरडू (कुडकू) मूंग समान जो कभी भी न सीझै तिसको अभव्य कहिये। भगवान् के भाषे तत्त्वों का श्रद्धान भव्य जीवों के ही होय, अभव्य को न होय।

और संसारी जीवों के एकेंद्रिय आदि भेद और गति काय आदि चौदह मार्गणा का स्वरूप कहा और उपशमश्रेणी क्षपकश्रेणी दोनों का स्वरूप कहा और संसारी जीव दुःखरूप कहे, सो मूढ़ों को दुःखरूप अवस्था सुखरूप भासै है। चारों ही गति दुख रूप है। नारकियों को तो आंख के पलक मात्र भी सुख नाहीं। मारण, ताडन, छेदन, भेदन शूलारोपणादिक अनेक प्रकार के दुःख निरंतर हैं। अर तिर्यंचों को ताडन, मारण, लादन, शीत-उष्ण, भूख-प्यास आदि के अनेक दुःख हैं। और मनुष्यों को इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग आदि अनेक दुःख हैं।

और देवों को बड़े देवों की विभूति देखकर संताप उपजै है और दूसरे देवों का मरण देख बहुत दुःख उपजै है, तथा अपनी देवांगनाओं का मरण देख वियोग उपजै है और जब अपना मरण निकट आवै, तब अत्यन्त विलापकर झूरै हैं। इसी भांति महादुःख कर संयुक्त चतुर्गति मैं जीव भ्रमण करै है।

कर्मभूमि में जो मनुष्य जन्म पाकर सुकृत (पुण्य) नाहीं करै हैं, उनके हस्त में प्राप्त हुआ अमृत जाता रहै है। संसार में अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ यह जीव अनंत काल में कभी ही मनुष्य जन्म पावै है। तब भीलादिक नीच कुल में उपजा तो क्या हुआ? अर म्लेच्छ खंडों में उपजा तो क्या हुआ? और कदाचित् आर्य खण्ड में उत्तम कुल में उपज्या, और अंगहीन हुआ

तो क्या, और सुन्दर रूप हुआ और रोग संयुक्त हुआ तो क्या? और सब ही सामग्री योग्य भी मिली, परन्तु विषयाभिलाषी होकर धर्म में अनुरागी न भया तो कुछ भी नहीं। इसलिए धर्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। कई एक तो पराये किंकर होकर अत्यंत दु:ख से पेट भरै हैं, कई एक संग्राम में प्रवेश करै हैं। संग्राम शस्त्र के पात से भयानक है और रुधिर के कर्दम (कीचड़) से महाग्लानि रूप है। और कई एक किसान वृत्तिकर क्लेश से कुटुम्ब का भरण पोषण करै हैं, जिसमें अनेक जीवों की हिंसा करनी पड़ती है। इस भांति अनेक उद्यम प्राणी करै हैं। उनमें दु:ख क्लेश ही भोगै हैं।

संसारी जीव विषय सुख के अत्यन्त अभिलाषी हैं। कई एक तो दरिद्रता से महादुखी हैं, कई एक धन पायकर चोर वा अग्नि वा जल वा राजादि के भय से सदा आकुलतारूप रहै हैं। और कई एक द्रव्य को भोगते हैं। परन्तु तृष्णारूप अग्नि के बढ़ने से जलै हैं, कई एक को धर्म की रुचि उपजी है, परन्तु उनको दुष्ट जीव संसार ही के मार्ग में डारै हैं। परिग्रहधारियों के चित्त की निर्मलता कहां से होय, और चित्त की निर्मलता बिना धर्म का सेवन कैसैं होय? जब तक परिग्रह की आसक्तता है, तब तक जीव हिंसा विषै प्रवृतै है और हिंसा से नरक निगोद आदि कुयोनि में महादु:ख भौगै हैं। संसार भ्रमण का मूल हिंसा ही है। अर जीव दया मोक्ष का मूल है। परिग्रह के संयोग से राग द्वेष उपजै हैं सो राग द्वेष ही संसार के दु:ख के कारण हैं।

कई एक जीव दर्शन मोह के अभाव से सम्यग्दर्शन को भी पावै हैं, परन्तु चारित्रमोह के उदय से चारित्र को नहीं धरि सकै हैं, और कई एक चारित्र को भी धारकर बाईस परीषहों से पीड़ित होकर चारित्र से भ्रष्ट होय हैं। कई एक अणुव्रत ही धारै हैं और कई एक अणुव्रत भी धार नहीं सके हैं, केवल अव्रत सम्यक्त्वी ही होय हैं। अर संसार के अनंत जीव सम्यक्त्व से रहित मिथ्या-दृष्टि ही हैं। जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे बार-बार जन्म मरण करै हैं, दु:खरूप अग्नि से तप्तायमान भव-संकट मैं पड़े हैं। मिथ्यादृष्टि जीव जीभ के लोलुपी हैं और काम कलंक से मलीन हैं, क्रोध मान माया लोभ मैं प्रवृत्तै हैं। और जो पुण्याधिकारी जीव संसार शरीर भोगनितैं विरक्त होइ करि शीघ्र ही चारित्र को धारै हैं, और निवाहै हैं और संयम मैं प्रवृत्तै हैं। वे महाधीर परम समाधि से शरीर छोड़कर स्वर्ग में बड़े देव होकर अद्भुत सुख भौगै हैं। वहां से चयकर उत्तम मनुष्य होकर मोक्ष पावै हैं।

कई एक मुनि तप कर अनुत्तर विमान मैं अहमेन्द्र होय हैं, तहांतैं चयकर तीर्थंकर पद पावै हैं, कई एक चक्रवर्ती बलदेव कामदेव पद पावै हैं। कई एक मुनि महातप कर निदान बांध स्वर्ग मैं जाय वहां से चयकर वासुदेव होय हैं। वे भोग को नाहीं तज सकै हैं। इस प्रकार श्री वर्द्धमान स्वामी के मुख से धर्मोपदेश श्रवण कर देव मनुष्य तिर्यंच अनेक जीव ज्ञान को प्राप्त भये। कई

एक उत्तम पुरुष मुनि भए, कई एक श्रावक भए, कई एक तिर्यंच भी श्रावक भए। देव व्रत नहीं धारण कर सकते हैं तातैं अव्रत सम्यक्त्व को ही प्राप्त भए। अपनी अपनी शक्ति अनुसार अनेक जीव धर्म मैं प्रवृत्त पापकर्म के उपार्जन से विरक्त भए। धर्म श्रवण कर भगवान को नमस्कार कर अपने अपने स्थान गए। श्रेणिक महाराज भी जिनवचन श्रवणकर हर्षित होय अपने नगर को गए।

अथानंतर सन्ध्या समय सूर्य अस्त होने को सम्मुख भया, अस्ताचल के निकट आया, अत्यन्त आरक्तता (सुरखी) को प्राप्त भया, किरण मन्द भई, सो यह बात उचित ही है। जब सूर्य का अस्त होय तब किरण मंद होय ही होय, जैसैं अपने स्वामी को आपदा परे तब किसके तेज की वृद्धि रहै? चकवीन के अश्रुपात सहित जे नेत्र तिनको देख मानो दयाकर सूर्य अस्त भया। भगवान के समवसरणविषै तो सदा प्रकाश ही रहै है, रात्रि दिन का विचार नाहीं। अर सब पृथ्वीविषै रात्रि पड़ी, सन्ध्या समय दिशा लाल भई सो मानो धर्म श्रवणकर प्राणियों के चित्त से नष्ट भया जो राग, सो सन्ध्या के छलकर दशों दिशान में प्रवेश करता भया।

भावार्थ – राग का स्वरूप भी लाल होय है, अर दिशाविषै भी ललाई भई। अर सूर्य के अस्त होने से लोगों के नेत्र देखने से रहित भए, क्योंकि सूर्य के उदय से जो देखने की शक्ति प्रकट भई थी सो अस्त होने से नष्ट भई, अर कमल संकुचित भए। जैसे बड़े राजाओं के अस्त भए चौरादिक दुर्जन जगतविषै परधन हरणादिक कुचेष्टा करैं तैसैं सूर्य के अस्त होने से पृथ्वीविषै अन्धकार फैल गया। रात्रि समय घर घर चम्पे की कली के समान जो दीपक तिनका प्रकाश भया। वह दीपक मानो रात्रिरूप स्त्री के आभूषण ही हैं। कमल के रस से तृप्त होकर राजहंस शयन करते भए, अर रात्रिसम्बन्धी शीतल मंद सुगंध पवन चलती भई, मानो निशा (रात) का स्वास ही है। अर भ्रमरों के समूह कमलों में विश्राम करते भए। अर जैसैं भगवान के वचनों कर तीन लोक के प्राणी धर्म का साधन कर शोभायमान होय हैं, तैसैं मनोज्ञ तारों के समूह से आकाश शोभायमान भया। अर जैसे जिनेन्द्र के उपदेश से एकांतवादियों का संशय विलाय जाय तैसे चन्द्रमा की किरणों से अन्धकार विलाय गया। लोगों के नेत्रों को आनंद का करनहारा चंद्रमा उद्योग समय कम्पायमान भया, मानो अन्धकार पर अत्यन्त कोप भया।

भावार्थ – क्रोध समय प्राणी कम्पायमान होय है। अन्धकार कर जे लोक खेद को प्राप्त भए थे, चन्द्रमा के उद्योत कर हर्ष को प्राप्त भए। अर चन्द्रमा की किरण को स्पर्श कर कुमुद प्रफुल्लित भए। इस भांति रात्रि का समय लोगों को विश्राम का देनहारा प्रगट भया। राजा श्रेणिक को सन्ध्या समय सामायिक पाठ करते, जिनेन्द्र की कथा करते करते घनी रात्रि गई, सोने को उद्यमी भया। कैसा है रात्रि का समय, जिसमें स्त्री–पुरुषों के हित की वृद्धि होय है। राजा के शयन का महल गंगा के पुलिन (किनारों) समान उज्ज्वल है, अर रत्नों की ज्योति से अति उद्योत रूप

है। अर फूलों की सुगंधि जहां झरोखों के द्वारा आवै है, अर महल के समीप सुन्दर स्त्री मनोहर गीत गाय रही हैं। अर महल के चौगिरद सावधान सामंतों की चौकी है, अर अति शोभा बन रही है। सेज पर अति कोमल बिछौने बिछ रहे हैं। वह राजा भगवान के पवित्र चरण अपने मस्तक पर धारै हैं, अर स्वप्न में भी बारंबार भगवान ही का दर्शन करै है। अर स्वप्न में गणधर देव से भी प्रश्न करै है। इस भांति सुख से रात्रि पूर्ण भई। पीछे मेघ की ध्वनि के समान प्रभात के वादित्र बाजते भए। उनके नाद से राजा निद्रा से रहित भया।

प्रभात समय देहक्रिया करि राजा श्रेणिक अपने मन में विचार करता भया कि भगवान की दिव्यध्वनि में तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिक के जो चरित्र कहे गए, वे मैंने सावधान होकर सुने। अब श्री रामचन्द्र के चरित्र सुनने में मेरी अभिलाषा है। लौकिक ग्रन्थों में रावणादिक को मांसभक्षी राक्षस कहा है, परन्तु वे विद्याधर महाकुलवंत कैसैं मद्य मांस रुधिरादिक का भक्षण करैं? अर रावण के भाई कुम्भकरण को कहै है कि वह छै महीने की निद्रा लेता था। अर उसके ऊपर हाथी फेरते, अर ताते तेल से कान पूरते तो भी छह महीना से पहले नहीं जागता, तब ऐसी भूख प्यास लगती कि अनेक हस्ती महिषी (भैंसा) आदि तिर्यंच, अर मनुष्यों को भक्षण कर जाता था। अर राधि रुधिर का पान करता तौ भी तृप्ति नहीं होती थी, अर सुग्रीव हनुमानादिक को बानर कहे हैं। परन्तु वे तो बड़े राजा विद्याधर थे, बड़े पुरुष को विपरीत कहने में महापाप का बंध होय है। जैसे अग्नि के संयोग से शीतलता न होय, अर तुषार (बर्फ) के संयोग से उष्णता (गरमी) न होय, जल के मंथन से घी की प्राप्ति न होय, अर बालू रेत के पेलने से तैल की प्राप्ति न होय, तैसैं महापुरुषों के चरित्र विरुद्ध सुनने से पुण्य न होय।

अर लोक ऐसा कहै हैं कि देवों के स्वामी इन्द्र को रावण ने जीता, परंतु यह बात न बनै। कहां वह देवों का इंद्र? अर कहां यह मनुष्य ह्व जो इन्द्र के कोपमात्र से ही भस्म हो जाय। जाके ऐरावत हस्ती, वज्र-सा आयुध, जिसकी ऐसी सामर्थ कि सर्व पृथिवी को वश कर ले। सो ऐसे स्वर्ग के स्वामी इंद्र को यह अल्प शक्ति का धनी मनुष्य विद्याधर कैसे लाकर बन्दी में डारै? मृग से सिंह को कैसे बाधा होय? तिल से शिला को पीसना, अर गिंडोले से सांप का मारना, अर श्वान से गजेंद्र का हनना कैसै होय? अर लोक कहै हैं कि रामचन्द्र मृगादिक की हिंसा करते थे सो यह बात न बनैं। वे व्रती विवेकी दयावान् महापुरुष कैसैं जीवों की हिंसा करैं, अर कैसैं अभक्ष्य का भक्षण करैं? अर सुग्रीव का बड़ा भाई बाली को कहै हैं कि उसने सुग्रीव की स्त्री अंगीकार करी। सो बड़ा भाई जो बाप समान है, कैसे छोटे भाई की स्त्री अंगीकार करै, सो यह सर्व बात संभवै नाहीं। इसलिए गणधर देव को पूछकर श्री रामचन्द्र की यथार्थ कथा श्रवण करूं।

ऐसा विचार श्रेणिक महाराज ने किया। बहुरि मन में विचारै है कि नित्य गुरुनि के दर्शन किए, धर्म के प्रश्न किए, तत्त्व निश्चय किएतैं परम सुख होय है। ये आनन्द के कारण हैं। ऐसा विचार कर राजा सेज से उठे, अर रानी अपने स्थान गई। कैसी है रानी? जिसकी कांति लक्ष्मी समान है, महा पतिव्रता अर पति की बहुत विनयवान है। अर कैसा है राजा? जिसका चित्त अत्यंत धर्मानुराग में निष्कम्प है। दोनों प्रभात क्रिया का साधन करते भए। अर जैसैं सूर्य शरद के बादलों से बाहिर आवै, तैसैं राजा सुफेद कमल के समान उज्ज्वल सुगंध महल से बाहिर आवतै भए। उस सुगंध महल में भंवर गुंजार करै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै श्रेणिक ने रामचन्द्र रावण के चरित्र सुनने के अर्थ प्रश्न करने का विचार किया – ऐसा द्वितीय पर्व संपूर्ण भया।।2।।

आगैं राजा सभा मैं आय सर्व आभरण सहित बिराजे ताकी शोभा कहिये हैं। प्रभात ही बड़े बड़े सामन्त आये, उनको द्वारपाल ने राजा का दर्शन कराया। सामंतों के वस्त्र आभूषण सुंदर हैं। उन समेत राजा हाथी पर चढ़कर नगर से समोसरण को चाले। आगैं बन्दीजन विरद बखानते जाय हैं। राजा समोसरण के पास पहुँचे। कैसा है समोसरण – जहां अनंत महिमा के निवास महावीर स्वामी विराजै हैं। तिनके समीप गौतम गणधर तिष्ठै हैं। तत्त्वों के व्याख्यान में तत्पर अर कांति में चंद्रमा के तुल्य, प्रकाश में सूर्य के समान, जिनके चरण वा नेत्ररूपी कमल अशोक वृक्ष के पल्लव समान लाल हैं, अर अपनी शांतताकरि जगत को शांत करै हैं, मुनियों के समूह के स्वामी हैं। राजा दूर से ही समोसरण को देख करि हाथी से उतर समोसरण गए। हर्ष कर फूल रहे हैं मुखकमल जिनके सो भगवान की तीन प्रदक्षिणा दे हाथ जोड़ नमस्कार कर मनुष्यों की सभा में बैठे।

प्रथम ही राजा श्रेणिक ने श्री गणधरदेव को 'नमोऽस्तु' कहकर समाधान (कुशल) पूछकर प्रश्न किया – भगवन्! मैं रामचरित्र सुनने की इच्छा करूं हूं। यह कथा जगत में लोगों ने और भांति प्ररूपी है। इसलिए हे प्रभो! कृपा धार संदेहरूप कीचड़तैं जीवनि को काढ़ो।

राजा श्रेणिक का प्रश्न सुन श्री गणधरदेव अपने दांतों की किरण से जगत को उज्ज्वल करते गंभीर मेघ की ध्वनि समान भगवान की दिव्यध्वनि के अनुसार व्याख्यान करते भए। हे राजा! तू सुन, मैं जिन आज्ञाप्रमाण कहूं हूं। जिनवचन तत्त्व के कथन में तत्पर हैं। तू यह निश्चय कर कि रावण राक्षस नहीं, मनुष्य है, मांस का आहारी नहीं, विद्याधरों का अधिपति है; राजा विनमि के वंश में उपज्या है। अर सुग्रीवादिक बन्दर नहीं, ये बड़े राजा मनुष्य हैं, विद्याधर हैं। जैसे नींव बिना मंदिर का मांडण न होय तैसैं जिन वचन रूपी मूल विना कथा की प्रमाणता न होय है। इसलिए प्रथम ही क्षेत्र कालादिक का वर्णन सुन, अर फिर महापुरुषों का चरित्र जो पाप का विनाशहारा है, सो सुन।

लोकालोक, कालचक्र, नाभिराजा, श्री ऋषभदेव और भरत का वर्णन

गौतम स्वामी कहै हैं कि हे राजा श्रेणिक! अनन्तप्रदेशी जो अलोकाकाश, ता मध्य तीन बातवलयतैं वेष्टित तीनलोक तिष्ठै है। तीनलोक के मध्य यह मध्यलोक है। इसमें असंख्यातद्वीप और समुद्र हैं। तिनके बीच लवणसमुद्र करि बेढ्या लक्षयोजन प्रमाण यह जंबूद्वीप है। उसके मध्य सुमेरु पर्वत है, वह मूल में बज्रमणिमयी है, अर ऊपर समस्त सुवर्णमयी है, अनेक रत्नों से संयुक्त है। संध्या समय रक्त ताको धरै है, मेघों के समूह के समान स्वर्ग पर्यंत ऊंचा शिखर है। शिखर के और सौधर्मस्वर्ग के बीच में एक बाल की अणी का अन्तर है। सुमेरु पर्वत निन्यानवें हजार योजन ऊंचा है। अर एक हजार योजन स्कंद है। अर पृथ्वीविषै तो दश हजार योजन चौड़ा है, अर शिखर पर एक हजार योजन चौड़ा है, मानो मध्य लोक के नापने का दंड ही है।

जम्बूद्वीप में एक देवकुरु एक उत्तरकुरु, भोगभूमि है, अर भरत आदि सप्त क्षेत्र हैं, षट्कुलाचलों से जिनका विभाग है। जम्बू अर शाल्मली यह दोय वृक्ष हैं। जम्बूद्वीप में चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं। एक एक विजयार्ध मैं एक सौ दश दश विद्याधरों की नगरी हैं। एक एक नगरी कूं कोटि कोटि ग्राम लागै है। अर जम्बूद्वीप मैं बत्तीस विदेह, एक भरत, एक ऐरावत ऐसैं चौंतीस क्षेत्र हैं। एक एक क्षेत्र मैं एक एक राजधानी है। अर जम्बूद्वीप मैं गंगा आदिक 14 महानदी हैं, अर छह भोगभूमि हैं। एक एक विजयार्धपर्वत मैं दोय दोय गुफा हैं। सो चौंतीस विजयार्ध के अड़सठ गुफा हैं। षट्कुलाचलों मैं अर विजयार्ध पर्वतों मैं तथा वक्षार पर्वतों मैं सर्वत्र भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय हैं, अर जंबूद्वीप अर शाल्मली वृक्ष मैं भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय हैं जो रत्नों की ज्योति से शोभायमान हैं। जंबूद्वीप की दक्षिण दिशा की ओर राक्षस द्वीप है, अर ऐरावत क्षेत्र की उत्तर दिशा में गन्धर्व नामा द्वीप है, अर पूर्व विदेह की पूर्व दिशा मैं वरुण द्वीप है, अर पश्चिम विदेह की पश्चिम दिशा मैं किन्नर द्वीप है। वे चारों ही द्वीप जिन मंदिरों से मण्डित हैं।

जैसैं एक मास में शुक्लपक्ष अर कृष्णपक्ष यह दोय पक्ष होय हैं तैसैं ही एक कल्प में अवसर्पिणी अर उत्सर्पिणी दोनों काल प्रवर्तैं हैं। अवसर्पिणी काल मैं प्रथम ही सुखमासुखमा काल की प्रवृत्ति होय है, फिर दूसरा सुखमा, तीसरा सुखमादुखमा, चौथा दुखमासुखमा, पांचवां दुखमा अर छठा दुखमदुखमा प्रवर्तै है। तिसके पीछे उत्सर्पिणी काल प्रवर्तै है। उसकी आदि में प्रथम ही छठा काल दुखमादुखमा प्रवर्तै है, फिर पांचवां दुखमा, फिर चौथा दुखमासुखमा फिर तीसरा सुखमादुखमा, फिर दूसरा सुखमा, फिर पहला सुखमासुखमा।

इसी प्रकार अरहट की घड़ी समान अवसर्पिणी के पीछे उत्सर्पिणी अर उत्सर्पिणी पीछे अवसर्पिणी है। सदा यह कालचक्र इसी प्रकार फिरता रहता है, परन्तु इस काल का पलटना

केवल भरत अर ऐरावत क्षेत्र में ही है। तातैं इनमें ही आयु कायादिक की हानि वृद्धि होय है। अर महाविदेह क्षेत्रादि में तथा स्वर्ग पाताल में, अर भोग भूमि आदि में तथा सर्व द्वीप समुद्रादिक में कालचक्र नाहीं फिरता, इसलिये उनमें रीति पलट नाहीं, एक ही रीति रहै है। देवलोकविषैं तो सुखमासुखमा जो पहला काल है सदा उसकी ही रीति रहै है। अर उत्कृष्ट भोगभूमि में भी सुखमासुखमा काल की रीति रहै है, अर मध्य भोगभूमि में सुखमा अर्थात् दूजे काल की रीति रहै है, अर जघन्य भोगभूमि में सुखमादुखमा जो तीसरा काल है, उसकी रीति रहै है। अर महा विदेह क्षेत्रों में दुखमासुखमा जो चौथा काल है, उसकी रीति रहै है।

अर अढ़ाई द्वीप के परे अन्त के आधे स्वयंभूरमण द्वीप पर्यंत बीच के असंख्यात द्वीपसमुद्र में जघन्य भोगभूमिविषै सदा तीजे काल की रीति है। अर अंत के आधे द्वीपविषै तथा अंत में स्वयंभूरमण समुद्रविषै तथा चारों कोण में दुखमा अर्थात् पंचमकाल की रीति सदा रहै है। अर नरक में दुखमादुखमा जो छठा काल उसकी रीति रहै है। अर भरत ऐरावत क्षेत्रों में छहों काल प्रवर्त्तै हैं। जब पहला सुखमासुखमा काल ही प्रवर्त्तै है, तब यहां देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमि की रचना होय है, कल्पवृक्षों से मंडित भूमि सुखमयी शोभै है, अर मनुष्यनि के शरीर तीन कोस ऊंचे अर तीन पल्य की आयु सब ही मनुष्य तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचनि की होय है, अर ऊगत सूर्य समान मनुष्य की कांति होय है। सब लक्षण पूर्ण लोक शोभे है। स्त्री पुरुष युगल ही उपजै है, अर साथ ही मरै है। स्त्री पुरुषों में अत्यन्त प्रीति होय है, मरकर देवगति पावै है। भूमि काल के प्रभाव से रत्न सुवर्णमयी है। अर कल्पवृक्ष दश जाति के सर्व ही मनवांछित पूर्ण करै है। जहां चार चार अंगुल के महासुगंध महामिष्ट अत्यन्त कोमल तृणों से भूमि आच्छादित है, सर्व ऋतु के फल फूलों से वृक्ष शोभै हैं।

अर जहां हाथी घोड़े गाय भैंस आदि अनेक जाति के पशु सुख से रहै हैं। अर कल्पवृक्षकरि उत्पन्न महा मनोहर आहार मनुष्य करै हैं। जहां सिंहादिक भी हिंसक नाहीं, मांस का आहार नाहीं, योग्य आहार करै हैं। अर जहां वापी सुवर्ण अर रत्ननि कै सिवाण तिनकरि संयुक्त कमलनकर शोभित दुग्ध दही घी मिष्टान्न की भरी अत्यन्त शोभा को धरै है। अर पहाड़ अत्यन्त ऊंचे नाना प्रकार रत्न की किरणों से मनोज्ञ, सर्व प्राणियों को सुख के देनहारे, पांच प्रकार के वर्ण को धरैं विराजै हैं। अर जहां नदी जलचरादि जन्तुरहित महारमणीक दुग्ध (दूध) घी मिष्टान्न जल की भरी अत्यन्त स्वाद संयुक्त प्रवाहरूप बहै है, जिनके तट रत्ननि की ज्योति से शोभायमान हैं।

जहां बेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री असैनी पंचेन्द्री तथा जलचरादि असैनी पंचेन्द्री जीव नाहीं, जहां थलचर, नभचर, गर्भज, तिर्यंच हैं, सो तिर्यंच भी युगल उपजै हैं। वहां शीत उष्ण वर्षा नाहीं, तीव्र

पवन नाहीं। शीतल मंद सुगंध पवन चलै है। अर काहू प्रकार का भय नाहीं, सदा अद्भुत उछाह ही प्रवर्त्तै हैं। अर ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति कर चांद सूर्य नजर नहीं आवै हैं। अर दश ही जाति के कल्पवृक्ष सर्व ही इन्द्रियनि के सुखास्वाद के देनहारे शोभै हैं, जहां खाना, पीना, सोना, बैठना, वस्त्र, आभूषण, सुगंधादिक सर्व ही कल्पवृक्षों से उपजै हैं। यह कल्पवृक्ष वनस्पतिकाय नाहीं, अर देवाधिष्ठित भी नाहीं, केवल पृथ्वीकायरूप सार वस्तु है। तहां मनुष्यों के युगल ऐसे रमैं हैं, जैसे स्वर्गलोक में देव। या भांति गणधर देव ने भोगभूमि का वर्णन किया।

आगैं राजा श्रेणिक भोगभूमि में उपजनै का कारण पूछते भये तो गणधर देव कहै हैं – जे सरलचित्त साधुनकूं आहारादिक दान के देनहारे ते भोगभूमिविषै मनुष्य होय हैं। जैसै भले खेत में बोया बीज बहुतगुणा होकर फलै है, अर इक्षु (सांठे) में प्राप्त हुआ जल मिष्ट होय है, अर गाय ने पिया जो जल सो दूध होय परिणमै है। तैसै व्रतनिकर मंडित परिग्रहरहित मुनि को दिया जो दान सो महाफल को फलै है। अर जैसै नीरस क्षेत्र में बोया बीज अल्पफल को प्राप्त होय, अर नींब में गया जल कटुक होय है तैसै ही भोगतृष्णा से जे कुदान करै हैं ते भोगभूमि में पशु जन्म पावै हैं।

भावार्थ ह्न दान चार प्रकार का है – एक आहारदान, दूजा औषधदान, तीजा शास्त्रदान, चौथा अभयदान। तिसमें मुनि आर्यिका उत्कृष्ट श्रावकों को भक्तिकर देना पात्रदान है। अर गुणोंकर आप समान साधर्मीजनों को देना समदान है। अर दुखित जीव को दया भावकर देना करुणादान है। सर्व त्याग करके मुनिव्रत लेना सकलदान है। ये दान के भेद कहे। आगे कालचक्र की रीति कहै हैं। जैसैं एक मास विषैं शुक्लपक्ष अर कृष्णपक्ष दोय होय हैं, तैसैं एक कल्पविषै अवसर्पिणी उत्सर्पिणी दो काल प्रवर्त्तै हैं। अवसर्पिणी कालविषैं प्रथम ही सुखमासुखमा प्रवर्त्या बहुरि दूजा सुखमा, तीजे काल में पल्य का आठवां भाग बाकी रहा तब कुलकर उपजे।

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति भये। तिनके वचन सुनकर लोक आनन्द को प्राप्त भये। वह कुलकर अपने तीन जन्म को जाने हैं। अर उनकी चेष्टा सुन्दर है, अर वह कर्मभूमि में व्यवहार का उपदेशक है। अर तिनके पीछे सहस्र कोटि असंख्यात वर्ष गये दूजा कुलकर सन्मति भया। तिनके पीछे तीसरा कुलकर क्षेमंकर, चौथा क्षेमंधर, पांचवां सीमंकर, छठा सीमंधर, सातवां विमलवाहन, आठवां चक्षुष्मान्, नवां यशस्वी, दशवां अभिचन्द्र, ग्यारहवां चन्द्राभ, बारहवां मरुदेव, तेरहवां प्रसेनजित, चौदहवां नाभिराज, यह चौदह कुलकर प्रजा के पिता समान शुभ कर्म से उत्पन्न भये।

जब ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति मंद भई, अर चांद सूर्य नजर आए, तिनको देखकर लोग भयभीत भये। कुलकरों को पूछते भये ह्न हे नाथ! यह आकाश में क्या दीखै हैं? तब कुलकर ने कहा कि अब भोगभूमि समाप्त हुई, कर्मभूमि का आगमन है। ज्योतिरांग जाति

के कल्पवृक्षों की ज्योति मंद भई है, इसलिये चांद सूर्य नजर आए हैं। देव चार प्रकार के हैं– कल्पवासी, भवनवासी, व्यंतर, अर ज्योतिषी। तिनमें चांद सूर्य ज्योतिषियों के इंद्र प्रतींद्र हैं। चन्द्रमा तो शीत किरण है, अर सूर्य उष्णकिरण है। जब सूर्य अस्त होय है तब चन्द्रमा कांति कों धरै है। अर आकाश विषै नक्षत्रों के समूह प्रगट होय हैं, सूर्य की कांति से नक्षत्रादि नहीं भासै हैं। इसी प्रकार पहिले कल्पवृक्षों की ज्योति से चन्द्रमा सूर्यादिक नाहीं भासते थे, अब कल्पवृक्षों की ज्योति मंद भई, तातैं भासै हैं। यह काल का स्वभाव जानकर तुम भय तजो। यह कुलकर का वचन सुनिकर तिनका भय निवृत्त भया।

अथानन्तर चौदहवें कुलकर श्री नाभिराजा जगत्पूज्य तिनके समय में सब ही कल्पवृक्षों का अभाव भया। अर युगल उत्पत्ति मिटी। ते अकेले ही उत्पन्न भये। तिनके मरुदेवी राणी मन को हरणहारी, उत्तम पतिव्रता, जैसे चंद्रमा के रोहिणी, समुद्र के गंगा, राजहंस के हंसिनी तैसे यह नाभिराजा के होती भई। कैसी है राणी? सदा राजा के मन विषै बसै है, जाकी हंसिनी की सी चाल अर कोयल कै से वचन हैं। जैसे चकवी की चकवे सों प्रीति होय है तैसे राणी की राजा सौं प्रीति होती भई। राणी कूं क्या उपमा दी जाय, वह पदार्थ राणी से न्यून दीखै है। सर्व लोकपूज्य मरुदेवी ह्न जैसे धर्म के दया होय तैसै त्रैलोक्यपूज्य जो नाभिराजा ह्न उसके परमप्रिय होती भई। मानो यह राणी आताप की हरणहारी चंद्रकलानि ही कर निरमयी (बनाई) है आत्मस्वरूप की जाननहारी ह्न सिद्धपद का है ध्यान जिसको त्रैलोक्य की माता पुण्याधिकारणी मानूं जिनवाणी ही है। अर अमृत का स्वरूप तृष्णा की हरणहारी मानूं रत्नवृष्टि ही है।

सखियों को आनन्द की उपजावनहारी महा रूपवंती काम की स्त्री जो रति उससे भी अति सुन्दरी है। महा आनन्दरूप माता जिसका शरीर ही सर्व आभूषण है, जिसके नेत्रों के समान नीलकमल नाहीं, अर जाकै केश भ्रमरहूतैं अधिक श्याम, सो केश ही ललाट के शृंगार हैं, यद्यपि इनको आभूषणों की अभिलाष नाहीं, तथापि पति की आज्ञा प्रमाण कर कर्णफूलादि आभूषण पहिरे हैं। जिनके मुख का हास्य ही सुगंधित चूर्ण है ह्न उन समान कपूर की रज कहा? अर जिनकी वाणी वीणा के स्वर को जीते हैं, उनके शरीर के रंग के आगे स्वर्ण कुंकुमादिक का रंग कहा? जिनके चरणारविन्दनि पर भ्रमर गुंजार करैं हैं। नाभिराजा करि सहित मरुदेवी राणी के यश का वर्णन सैंकड़ों ग्रंथों में भी न हो सकै तो थोड़े से श्लोकों मैं कैसे होय?

जब मरुदेवी गर्भविषै भगवान के छह महीना बाकी रहे तब इन्द्र की आज्ञा से छप्पन कुमारिका हर्षित भई थकी माता की सेवा करती भईं। अर 1. श्री 2. ह्री 3. धृति 4. कीर्ति 5. बुद्धि 6. लक्ष्मी – यह षट् (6) कुमारिका स्तुति करती भईं – हे माता! तुम आनन्दरूप हो,

हमको आज्ञा करहु, तुम्हारी आयु दीर्घ होऊ। या भांति मनोहर शब्द कहती भईं। अर नाना प्रकार की सेवा करती भईं। कईएक बीणा बजाय महा सुन्दर गान कर माता को रिझावती भईं। अर कईएक आसन बिछावती भईं, अर कईएक कोमल हाथों से माता के पांव पलोटती भईं। कईएक देवी माता को तांबूल (पान) देती भई। कईएक खड्ग हाथ में धारण कर माता की चौकी देती भईं। कईएक बाहरले द्वार में सुवर्ण आसे लिये खड़ी होती भईं। अर कईएक चंवर ढोरती भईं। कईएक आभूषण पहरावती भईं, कईएक सेज बिछावती भईं, कईएक स्नान करावती भईं, कईएक आंगन बहारती भईं, कईएक फूलों के हार गूंथती भईं, कईएक सुगन्ध लगावती भईं, कईएक खाने पीने की विधि में सावधान होती भईं, कईएक जिसको बुलावे, उसको बुलावती भईं। या भांति सर्व कार्य देवी करती भईं; माताकूं काहू प्रकार की भी चिन्ता न रहती भई।

एक दिन माता कोमल सेज पर शयन करती हुती, उसने रात्रि के पिछले पहर अत्यन्त कल्याणकारी सोलह स्वप्न देखे। 1. पहले स्वप्न में ऐसा चन्द्र समान उज्ज्वल मद झरता गाजता हाथी देखा जिस पर भ्रमर गुंजार करै हैं। 2. दूजे स्वप्न में शरद के मेघ समान उज्ज्वल धवल दहाड़ता हुआ बैल देखा जिसके बड़े-बड़े कन्धे हैं। 3. तीसरे स्वप्न में चन्द्रमा की किरण समान सफेद केशावली विराजमान सिंह देखा। 4. चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को हाथी सुवर्ण के कलशों से स्नान करावता देखा, वह लक्ष्मी प्रफुल्लित कमल पर निश्चल तिष्ठै हैं। 5. पांचवें स्वप्न में दो पुष्पों की माला आकाश में लटकती हुई देखीं जिन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। 6. छठे स्वप्न में उदयाचल पर्वत के शिखर पर तिमिर के हरणहारे मेघपटल रहित सूर्यकूं देख्या। 7. सातवें स्वप्न में कुमुदिनी को प्रफुल्लित करणहारा रात्रि का आभूषण जिसने किरणों से दशोंदिशा उज्ज्वल करी हैं, ऐसा तारों का पति चन्द्रमा देख्या। 8. आठवें स्वप्न में निर्मल जल में कलोल करते अत्यन्त प्रेम के भरे हुवे महामनोहर मीन युगल (दो मच्छ) देखे।

9. नवमें स्वप्न में जिनके गले में मोतियों के हार अर पुष्पों की माला शोभायमान हैं – ऐसे पंच प्रकार के रत्नोंकर पूर्ण स्वर्ण के कलश देखे। अर 10. दशवें स्वप्न में नाना प्रकार के पक्षियों से संयुक्त कमलोंकर मंडित, सुन्दर सिवाण (पैड़ी) कर शोभित, निर्मल जलकर भर्‍या महा सरोवर देख्या। 11. ग्यारहवें स्वप्न में आकाश तुल्य निर्मल समुद्र देख्या, जिसमें अनेक प्रकार के जलचर केलि करै हैं, अर उतंग लहरें उठे हैं। 12. बारहवें स्वप्न में अत्यन्त ऊंचा नाना प्रकार के रत्नोंकर जड़ित स्वर्ण का सिंहासन देख्या। 13. तेरहवें स्वप्न में देवताओं के विमान आवते देखे जो सुमेरु के शिखर समान, अर रत्ननिकरि मंडित चामरादिकरि शोभित देखे। अर 14. चौदहवें स्वप्न में धरणेन्द्र का भवन देख्या। कैसा है भवन? जाके अनेक खण (मंजिल) हैं, अर मोतियों की

मालाकर मंडित, रत्नों की ज्योतिकर उद्योत मानो कल्पवृक्ष कर शोभित है। 15. पन्द्रहवें स्वप्न में पंच वर्ण के महारत्ननि की राशि अत्यन्त ऊंची देखी, जहां परस्पर रत्नों की किरणों के उद्योत से इन्द्रधनुष चढ़ रहा है। 16. सोलहवें स्वप्न में निर्धूम अग्नि ज्वाला के समूहकरि प्रज्वलित देखी। अथानन्तर सुन्दर है दर्शन जिनका ऐसे सोलह स्वप्न देखकर मंगल शब्दनि के श्रवणकरि माता प्रबोधकूं प्राप्त भई। जिन मंगल शब्दनि का कथन सुनहु।

सखी जन कहै हैं – हे देवी! तेरे मुखरूप चंद्रमा की कांतितैं लज्जावान हुआ जो यह निशाकर (चन्द्रमा) सो मानो कांतिकर रहित हुआ है। अर उदयाचल पर्वत के मस्तक पर सूर्य उदय होने को संमुख भया है, मानो मंगल के अर्थ सिंदूर से लिप्त स्वर्ण का कलश ही है। अर तुम्हारे मुख की ज्योति से, अर शरीर की प्रभा से तिमिर का क्षय होयगा। अपना उद्योत वृथा जान दीपक मंद ज्योति भये हैं। अर पक्षियों के समूह मनोहर शब्द करै हैं, सो मानो तिहारे अर्थ मंगल ही पढै हैं। अर जो यह मंदिर में बाग है, ताके वृक्षों के पत्र प्रभात की शीतल मंद सुगंध पवनतैं हालै हैं, अर मंदिर की वापिका में सूर्य के बिम्ब के विलोकन से चकवी हर्षित भई, मिष्ट शब्द करती संती चकवे को बुलावै है। अर ये हंस तिहारी चाल देखकरि करी है अति अभिलाषा जिन्होंने – सो हर्षित हो महामनोहर शब्द करै हैं। अर सारसनि के समूहनि करि सुन्दर शब्द होय रहे हैं। तातैं हे देवी! अब रात्रि पूर्ण भई, तुम निद्रा को तजो। यह शब्द सुनकर माता सेज से उठी। कैसी है सेज? बिखर रहे हैं कल्पवृक्षनि के फूल अर मोती जाविषैं, मानो तारानिकरि संयुक्त आकाश ही है।

मरुदेवी माता सुगन्ध महल से बाहिर आईं, अर सकल प्रभात की क्रिया कर जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य के समीप जाय तैसैं नाभिराजा के समीप गई। राजा देखकर सिंहासनतैं उठे, राणी बराबर आय बैठी, हाथ जोड़कर स्वप्ननि के समाचार कहे। तब राजा ने कहा – हे कल्याणरूपिणी! तेरे त्रैलोक्य का नाथ श्री आदीश्वर स्वामी प्रकट होयगा। यह शब्द सुनकर कमलनयनी चन्द्रवदनी परमहर्ष को प्राप्त भई। अर इन्द्र की आज्ञा से कुवेर पन्द्रह महिनों तक रत्नों की वर्षा करते भए। जिन के गर्भ में आए छै मास पहिले से ही रत्नों की बरषा भई। इसलिये इन्द्रादिक देव इनका हिरण्यगर्भ ऐसा नाम कहि स्तुति करते भए। अर तीन ज्ञानकर संयुक्त भगवान माता के गर्भ में आय विराजे। माताकूं काहू प्रकार की पीड़ा न भई।

जैसैं निर्मल स्फटिक के महल से बाहिर निकसिए तैसे नवमें महीने ऋषभदेव स्वामी गर्भ से बाहिर आए, तब नाभिराजा ने पुत्र के जन्म का महान उत्सव किया। त्रैलोक्य के प्राणी अति हर्षित भए। इन्द्र के आसन कम्पायमान भए। अर भवनवासी देवनि के यहां बिना बजाये शंख बाजे। अर

व्यंतरनि के स्वयमेव ही ढोल बाजे, अर ज्योतिषीनि के देवों के अकस्मात् सिंहनाद बाजे, अर कल्पवासीन के बिना बजाये घंटा बाजे, या भांति शुभ चेष्टानि करि तीर्थंकर देव का जन्म जान इन्द्रादिक देवता नाभिराजा के घर आये। कैसे हैं इन्द्र? ऐरावत हाथी पर चढ़े हैं, अर नाना प्रकार के आभूषण पहरे हैं। अनेक प्रकार के देव नृत्य करते भए। देवनि के शब्द करि दशों दिशा गुंजार करती भई। अयोध्यापुरी की तीन प्रदक्षिणा देय करि राजा के आंगन में आए। कैसी है अयोध्या? धनपति ने रची है, पर्वत समान ऊंचे कोट से मंडित है, जिसकी गंभीर खाई है, अर जहां नाना प्रकार के रत्नों के उद्योत से घर ज्योतिरूप होय रहे हैं।

तब इन्द्र ने इन्द्राणी कूं भगवान के लावने को माता के पास भेजी। इन्द्राणी जाय नमस्कार कर मायामयी बालक कूं माता के निकट राखि, भगवान को लाय इन्द्र के हाथ में दिया। कैसे हैं भगवान? त्रैलोक्य के रूप को जीतै ऐसा है रूप जिनका। सो इन्द्र हजार नेत्रनिकरि भगवान का रूप देखता तृप्त न भया। बहुरि भगवानकूं सौधर्म इन्द्र गोद में लेय हस्ती पर चढ़े, ईशान इन्द्र ने छत्र धरे, अर सनत्कुमार-महेन्द्र चमर ढोरते भये। अन्य सकल इन्द्र अर देव जय जयकार शब्द उच्चारते भए। फिर सुमेरु पर्वत के शिखर पर पांडुक शिला पर सिंहासन ऊपर धराये, अर अनेक बाजों का शब्द होता भया, जैसा समुद्र गरजै। अर यक्ष किन्नर गंधर्व तुंवरु नारद अपनी स्त्रियों सहित गान करते भये। कैसा है वह गान? मन अर श्रोत्र (कान) का हरणहारा है। जहां बीन आदि अनेक वादित्र बाजते भए, अप्सरा हाव-भाव कर नृत्य करती भई, अर इन्द्र स्नान के अर्थ क्षीरसागर के जलतैं स्वर्णकलश भर अभिषेक करने को उद्यमी भए।

कैसे हैं कलश? जिनका मुख एक योजन का है, अर चार योजन का उदर है, आठ योजन ओंड़े, अर कमल तथा पल्लवनिकरि ढके हैं मुख जिनके। अैसे एक हजार आठ कलशों से इन्द्र ने अभिषेक कराया। विक्रिया ऋद्धि की समर्थता से इन्द्र ने अपने अनेक रूप किए। अर इन्द्रों के लोकपाल सोम वरुण यम कुवेर सर्व ही अभिषेक करावते भए। इन्द्राणी आदि देवी अपने हाथों से भगवान के शरीर पर सुगंध का लेपन करती भईं। कैसी है इन्द्राणी? पल्लव (पत्र) समान हैं कर जाके। महागिरि समान जो भगवान तिनको मेघ समान कलशनितैं अभिषेक कराया, गहना पहरावने का उद्यम किया। चांद सूर्य समान दोय कुंडल कानों में पहराये, अर पद्मरागमणि के आभूषण मस्तक विषै पहराए, जिनकी कांति दशों दिशाविषै प्रकट होती भई, अर अर्द्धचन्द्राकार ललाटविषै चंदन का तिलक किया, अर दोनों भुजानविषै रत्नों के बाजूबंद पहराए, अर श्री वत्सलक्षण कर युक्त जो हृदय उस पर नक्षत्रमाला समान मोतियों का सत्ताईस लड़ी का हार पहनाया, अर अनेक लक्षण के धारक भगवान को महामणिमई कड़े पहराए, अर रत्नमयी कटि

सूत्र से नितंब शोभायमान भया, जैसा पहाड़ का तट सांझ की बिजली कर शौभै, अर सर्व अंगुरियोंविषै रत्नजड़ित मुद्रिका पहराई।

इस भांति भक्ति करि देवियों ने सर्व आभूषण पहराये, सो त्रैलोक्य के आभूषण जो श्री भगवान तिनके शरीर की ज्योतितैं आभूषण अत्यन्त ज्योति को धारते भए। अर आभूषणों की आपके शरीर को कहा शोभा होय? अर कल्पवृक्ष के फूलों से युक्त जो उत्तरासन सो भी दिया। जैसैं तारानितैं आकाश शोभै है तैसैं पुष्पन कर यह उत्तरासन शोभै है। बहुरि पारिजात सन्तानकादिक जे कल्पवृक्ष तिनके पुष्पनिकरि सेहरा रच्या, सिर पर पधराया, जापर भ्रमर गुंजार करै हैं। या भांति त्रैलोक्यभूषण को आभूषण पहराये।

इन्द्रादिक देव स्तुति करते भए – हे देव! काल के प्रभाव करि नष्ट हो गया है धर्म जाविषै ऐसा यह जगत् महा अज्ञान अन्धकारकरि भरया है। ताविषै भ्रमण करते भव्य जीव, तेई भए कमल, तिनको प्रफुल्लित करने को, अर मोहतिमिर के हरण को तुम सूर्य उगे हो। हे जिनचंद्र! तुम्हारे बचनरूप किरणों से भब्य जीवरूपी कुमुदनी की पंक्ति प्रफुल्लित होगी। भव्यों को तत्त्व दिखावने के अर्थि इस जगत्रूप घर में तुम केवलज्ञानमयी दीपक प्रगट भए हो। अर पापरूप शत्रुओं के नाशने के अर्थि मानो तुम तीक्ष्ण वाण ही हो। अर तुम ध्यानाग्निकरि भवअटवी को भस्म करने वाले हो। अर दुष्ट इन्द्रियरूप जो सर्प तिनके वशिकरवे के अर्थि तुम गरुडरूप ही हो। अर संदेहरूप जे मेघ तिनके उड़ावने को महा प्रबल पवन ही हो।

हे नाथ! भव्यजीवरूपी पपैए तिहारे धर्मामृतरूप वचन के तिसाए तुम ही को महामेघ जानकरि सन्मुख भए देखैं हैं। तुम्हारी अत्यन्त निर्मल कीर्ति तीन लोक में गाई जाती है, तुम्हारे ताईं नमस्कार होहु। अर तुम कल्पवृक्ष हो, गुणरूप पुष्पनिकरि मण्डित मनबांछित फल के देनेहारे हो, कर्मरूप काष्ठ के काटने को तीक्ष्ण धार के धरणहारे महा कुठाररूप हो, तातैं हे भगवान! तुम्हारे अर्थि हमारा बारंबार नमस्कार होहु। अर मोहरूप पर्वत के भंजिवे को महा वज्ररूप ही हो, अर दुःखरूप अग्नि के बुझावने को तुम जलरूप ही हो, या अर्थि तुमको बारम्बार नमस्कार करूं हूं। हे निर्मल स्वरूप! तुम कर्मरूप रज के समूह से रहित केवल आकाशरूप ही हो।

या भांति इन्द्रादिक देव भगवान् की स्तुति करि बारंबार नमस्कार करि, ऐरावत गज पर चढ़ाय, अयोध्या मैं लावने को सन्मुख भए। अयोध्या आए। इन्द्र माता की गोदविषैं भगवान को पधराय कर परम आनन्दित हो तांडव नृत्य करते भए। या भांति जन्मोत्सव कर देव अपने अपने स्थान को गए।

माता-पिता भगवान को देखकर बहुत हर्षित भए। कैसे हैं श्री भगवान्? अद्‌भुत आभूषणनितैं

विभूषित हैं। बहुरि परम सुगन्ध के लेपतैं चरचित हैं, अर सुन्दर चारित्र हैं जिनके। अपने शरीर की कांति से दशोंदिशा प्रकाशित हो रही है, महा कोमल शरीर है। माता भगवान को देख करि महा हर्ष को प्राप्त भईं। अर कहने में न आवै सुख जिसका, ऐसे परमानंद सागर मैं मग्न भई। वह माता भगवान को गोद में लिये ऐसी शोभती भई जैसैं ऊगते सूर्यतैं पूर्वदिशा शौभै। अर त्रैलोक्य के ईश्वर को देख नाभिराजा आपको कृतार्थ मानते भए, पुत्र के गात्र को स्पर्श कर नेत्र हर्षित भए, मन आनंदित भया। समस्त जगतविषै मुख्य ऐसे जे जिनराज तिनका ऋषभ नाम धर माता पिता सेवा करते भए। हाथ के अंगुष्ठ में इंद्र ने अमृत रस मेल्या, उसको पान कर शरीर वृद्धि को प्राप्त भया। बहुरि प्रभु की वय (उमर) प्रमाण इन्द्र ने देवकुमार राखे, तिन सहित नि:पाप क्रीड़ा (खेल) करते भये। कैसी है वह क्रीड़ा? माता पिता को अतिसुख देनहारी है।

अथानन्तर भगवान के आसन शयन सवारी वस्त्र आभूषण अशन पान सुगंधादि-विलेपन गीत नृत्य वादित्रादि सब सामग्री देवोपनीत होती भई। थोड़े ही काल मैं। अनेक गुणनि की वृद्धि होती भई। उनका रूप अत्यन्त सुन्दर जो वर्णन में न आवै, मन अर नेत्रनि का तृप्त करनहारा, मेरु की भीति समान महा उन्नत, महादृढ़ वृक्षस्थल शोभता भया। अर दिग्गजनि के थंभ समान बाहु होती भई। कैसी है वह बाहु? जगत के अर्थ पूर्ण करने को कल्पवृक्ष ही है। बहुरि दोऊ जंघा त्रैलोक्यरूप घर के थांभवे को थंभ ही हैं, अर मुख महासुन्दर मनोहर जिसने अपनी कांतितैं चंद्रमा को जीता है, अर दीप्तिकरि जीता है सूर्य जिसने, अर दोऊं हाथ कोमलहूते अति कोमल, अर लाल है हथेली जिनकी, अर केश महासुन्दर सघन दीर्घ वक्र पतले चीकने श्याम हैं। मानो सुमेरु के शिखर पर नीलाचल ही विराजै हैं। अर रूप महा अद्भुत अनुपम सर्वलोक के लोचन को प्रिय, जिस पर अनेक कामदेव वारि नाखिये। ऐसे सर्व उपमा को उलंघै, सबका मन अर नेत्र हरै। या भांति भगवान कुमार अवस्था में भी जगत को सुखदायक होते भए।

उस समय कल्पवृक्ष सर्वथा नष्ट भए, अर बिना चाहे धान आपतैं आप ऊगे। तिनतैं पृथ्वी शोभती भई। अर लोक निपट भोले, षट्कर्मतैं अनजान, उन्होंने प्रथम इक्षुरस का आहार किया। वह आहार कांति अर वीर्यादिक के करने को समर्थ है। कई एक दिन पीछे लोगों को क्षुधा बढ़ी जो इक्षुरसतैं तृप्ति न भई। तब सर्व लोक नाभिराजा के निकट आए, अर नमस्कार कर विनती करते भए कि- हे नाथ! कल्पवृक्ष समस्त क्षय हो गए, अर हम क्षुधा तृषाकर पीड़ित हैं; तुम्हारे शरण आए हैं, तुम रक्षा करो। यह कितनेक फलयुक्त वृक्ष पृथ्वी पर प्रकट भए हैं इनकी विधि हम जानते नहीं हैं। इनमें कौन भक्ष्य हैं कौन अभक्ष्य हैं। अर गाय भैंस के थनों से कुछ झरै है, पर वह क्या है? अर यह व्याघ्र सिंहादिक पहले सरल थे, अब वक्रतारूप दीखै हैं। अर ये

महामनोहर स्थल पर अर जल में पुष्प दीखैं हैं सो कहा हैं? हे प्रभु! तुम्हारे प्रसाद कर आजीविका का उपाय जानैं तो हम सुखसों जीवैं।

यह वचन प्रजा के सुन करि नाभिराजा को दया उपजी। नाभिराजा महाधीर तिनसों कहते भए कि या संसारविषै ऋषभदेव समान और कोऊ भी नाहीं। जिनकी उत्पत्ति में रत्नों की वृष्टि, अर इन्द्रादिक देवों का आगमन भया, लोकनि को हर्ष उपज्या, वह भगवान महा अतिशय संयुक्त हैं। तिनके निकट जायकर हम तुम आजीवका का उपाय पूछैं, भगवान का ज्ञान मोहतिमिर से अंत तिष्ठ्या है। तिन प्रजासहित नाभिराजा भगवान के समीप गए अर समस्त प्रजा नमस्कार कर भगवान की स्तुति करती भई – हे देव! तुम्हारा शरीर सब लोकनि को उलंघकर तेजमय भासै है। सर्व लक्षण संपूर्ण महा शोभायमान है, अर तुम्हारे अत्यन्त निर्मलगुण सब जगत मैं व्याप रहे हैं, वे गुण चन्द्रमा की किरण समान उज्ज्वल महा आनंद के करणहारे हैं। हे प्रभु! हम या कार्य के अर्थ तुम्हारे पिता के पास आये थे, सो ये तुम्हारे निकट लाए हैं। तुम महापुरुष महाविद्वान् महा अतिशयकर मंडित हो, जो ऐसैं बड़े पुरुष भी तुमको सेवैं हैं, इसलिए तुम दयालु हो, हमारी रक्षा करो। क्षुधा-तृषा हरने का उपाय कहो, अर जाकरि सिंहादिक क्रूर जीवनि का भी भय मिटै, सो उपाय बताओ।

तब भगवान कृपानिधि, कोमल है हृदय जिनका, इंद्र को कर्मभूमि की रीति प्रकट करने की आज्ञा करते भए। प्रथम नगर ग्राम गृहादिक की रचना भई, अर जे मनुष्य शूरवीर जाने, तिनको क्षत्री वर्ण ठहराए, अर उनको यह आज्ञा भई कि तुम दीन अनाथनि की रक्षा करो। कईएकन को वाणिज्यादिक कर्म बताकर वैश्य ठहराए। अर जो सेवादिक अनेक कर्म के करनहारे थे, उनको शूद्र ठहराए। या भांति भगवान ने किया जो यह कर्मभूमिरूप युग उसको प्रजा कृतयुग (सत्ययुग) कहते भए अर परम हर्ष को प्राप्त भए। श्रीऋषभदेव के सुनंदा अर नंदा यह दो राणी भई। बड़ी राणी के भरतादिक सौ पुत्र अर एक ब्राह्मी पुत्री भईं। अर दूसरी राणी के बाहुबल एक पुत्र अर सुन्दरी एक पुत्री भईं। ऐसै भगवान ने त्रेसठ लाख पूर्वकाल तक राज किया, अर पहले बीस लाख पूर्व कुमार रहे। या भांति तिरासीलाख पूर्व गृह में रहे।

एक दिन नीलांजना अप्सरा भगवान के निकट नृत्य करती करती विलाय (मर) गईं, ताकों देखकर भगवान की बुद्धि वैराग्य में तत्पर भई। वह विचारने लगे कि ये संसार के प्राणी वृथा ही इंद्रियों को रिझाकर उन्मत्त चारित्रनि की विडंबना करै हैं, अपने शरीर को खेद का कारण जो जगत की चेष्टा, तातैं जगत के जीव सुख मानै हैं। इस जगत में कई एक तो पराधीन चाकर होय रहे हैं। कईएक आपको स्वामी मान तिन पर आज्ञा करै हैं, जिनके वचन गर्वतैं भरे हैं। धिक्कार है

या संसार को, जामें जीव दुख ही भोगे हैं, अर दुख ही को सुख मान रहे हैं। तातैं मैं जगत के विषय-सुखों को तजकर तपसंयमादि शुभ चेष्टा कर मोक्षसुख की प्राप्ति के अर्थि यत्न करूं। यह विषयसुख क्षणभंगुर हैं, अर कर्म के उदय से उपजे हैं, इसलिये कृत्रिम (बनावटी) है।

या भांति श्रीऋषभदेव का मन वैराग्यचिंतवन में प्रवरत्या। तब ही लौकांतिक देव आय स्तुति करते भए कि हे नाथ! तुमने भली विचारी। त्रैलोक्य में कल्याण का कारण यह ही है। भरतक्षेत्र में मोक्ष का मार्ग विच्छेद भया था, सो आपके प्रसादतैं अब प्रवरतैगा। ये जीव तुम्हारे दिखाए मार्ग से लोकशिखर अर्थात् निर्वाण को प्राप्त होंगे। या भांति लौकांतिक देव स्तुति कर अपने धाम गए। अर इन्द्रादिक देव आयकर तपकल्याण समय साधते भए। रत्नजड़ित सुदर्शन नामा पालकी में भगवान को चढ़ाया।

कैसी है वह पालकी? कल्पवृक्षनि के फूलों की मालातैं महा सुगंधित है, अर मोतिन के हारों से शोभायमान है। भगवान ता पालकी पर चढ़कर घरतैं वन को चले। नानाप्रकार के वादित्रों के शब्द अर देवों के नृत्य से दशोंदिशा शब्दरूप भई। अर महा विभूति संयुक्त तिलकनामा उद्यान में गए। माता पितादिक सर्व कुटुंबतैं, क्षमाभाव कराकर अर सिद्धों को नमस्कार कर मुनिपद अंगीकार किया। समस्त वस्त्र आभूषण तजे, अर केशों का लौंच किया। वे केश इन्द्र ने रत्नों के पिटारे में रखकर क्षीरसागर में डारे। भगवान जब मुनिराज भए, तदि चार हजार राजा मुनिपद को न जानते हुए केवल स्वामी की भक्ति के कारण तिनके साथ नग्नरूप भए। भगवान ने छ: महिने पर्यंत निश्चल कायोत्सर्ग धर्‍या। अर्थात् सुमेरु पर्वत समान निश्चल होय तिष्ठे, अर इंद्रियनि का निरोध किया।

अथानंतर कच्छ महाकच्छादिक राजा जो नग्नरूप धारण करि दीक्षित भए हुते, ते सर्व ही क्षुधा तृषादि परीषहनिकरि चलायमान भए। कईएक तो परीषहरूप पवन के मारे भूमि पर गिर पड़े। कई एक जो महा बलवान हुते, वे भूमि पर तो न पड़े परन्तु बैठ गये। कईएक कायोत्सर्ग को तज क्षुधा तृषातैं पीड़ित होय फलादिक आहार करते भए। अर कईएक गरमीतैं तप्तायमान होयकर शीतलजल में प्रवेश करते भए। तिनकी यह चेष्टा देखकर आकाश में देववाणी भई कि 'मुनिरूप धारकर तुम ऐसा काम मत करो। यह रूप धार तुमको ऐसा कार्य करना नरकादि दुखनि का कारण है। तदि वे नग्नमुद्रा तजकर बल्कल पत्र धारते भए। कईएक चर्मादि धारते (पहनते) भए। कईएक दर्भ (कुशादिक) धारते भए अर फलादिकतैं क्षुधा को, शीतल जलतैं तृषा को निवारते भए। या प्रकार ये लोग चारित्र-भ्रष्ट होयकर, अर स्वेच्छाकारी बनकर भगवान के मत से पराङ्मुख होय शरीर का पोषण करते भए। किसी ने पूछा कि तुम यह कार्य भगवान की आज्ञातैं करो हो? तब

उन्होंने कह्या कि भगवान तो मौनरूप हैं, कुछ कहते नाहीं। हम क्षुधा तृषा शीत उष्ण से पीड़ित होइकर यह कार्य करै हैं।

बहुरि कईएक परस्पर (आपस मैं) कहते भए कि आवो, गृह में जायकर पुत्र दारादिक का अवलोकन करैं। तदि उनमेंतैं किसी ने कहा – जो हम घर मैं जावैंगे तो भरत घर में तैं निकास देइंगे। अर तीव्र दंड देंगे, इसलिए घर नहीं जाना। तदि बन ही में रहे। इन सबमें महामानी मारीच भरत का पुत्र, भगवान का पोता भगवे वस्त्र पहनकर परिव्राजक (संन्यासी का) मार्ग प्रकट करता भया।

अथानन्तर कच्छ महाकच्छ के पुत्र नमि विनमि आयकर भगवान के चरणों में पड़े, अर कहने लगे कि हे प्रभु! तुमने सबको राज दिया, हमको भी दीजिये। या भांति याचना करते भए। तब धरणींद्र का आसन कम्पायमान भया। धरणींद्र ने आयकर इनको विजयार्द्ध का राज दिया। कैसा है वह विजयार्द्ध पर्वत? भोगभूमि के समान है। पृथ्वी तल से पच्चीस योजन ऊंचा है, अर सवा छै योजन का केन्द्र है, अर भूमि पर पचास योजन चौड़ा है; अर भूमितैं दश योजन ऊंचे उठिए तहां दश दश योजनि की दोय श्रेणी हैं – एक दक्षिणश्रेणी, एक उत्तरश्रेणी। इन दोनों श्रेणियों में विद्याधर बसै हैं। दक्षिणश्रेणी की नगरी पचास, अर उत्तरश्रेणी की साठ। एक एक नगरी को कोटिकोटि ग्राम लागै हैं। अर दश योजन से बहुरि ऊपर दश योजन जाइये तहां गंधर्वकिन्नर देवों के निवास हैं। अर पांच योजन ऊपर जाइये तहां नवशिखर हैं। उनमें प्रथम सिद्धकूट उसमें भगवान कै अकृत्रिम चैत्यालय हैं, अर देवों के स्थान हैं। सिद्धकूट पर चारणमुनि आयकर ध्यान धरै हैं। विद्याधरों की दक्षिणश्रेणी की जो पचास नगरी हैं उनमें रथनूपुर मुख्य है। अर उत्तरश्रेणी की साठ नगरी है उनमें अलकावती नगरी मुख्य है।

कैसा है वह विद्याधरनि का लोक? स्वर्गलोक समान है सुख जहां, सदा उत्साह ही प्रवर्त्तै हैं। नगरी के बड़े बड़े दरवाजे, अर कपाटयुगल, अर सुवर्ण के कोट, गम्भीर खाई, अर वन उपवन वापी कूप सरोवरादि से महा शोभायमान है। जहां सब ऋतु के धान अर सर्व ऋतु के फल-फूल सदा पाइए हैं। जहां सर्व औषधि सदा पाइये है, जहां सर्व काम का साधन है, सरोवर कमलों से भरे जिनमें हंस क्रीड़ा करै हैं, अर जहां दधि दुग्ध घृत मिष्टान्नों के नीझरने बहै हैं। कैसी है वापी? जिनके मणिसुवर्ण के सिवान (पैड़ी) हैं अर कमल के मकरंदों से शोभायमान है। जहां कामधेनुसमान गाय हैं, अर पर्वत समान अनाज के ढेर हैं, अर मार्ग धूलकंटकादि रहित हैं, मोटे वृक्षों की छाया है। अर महामनोहर जल के निवाण हैं।

चौमासे में मेघ मनवांछित बरसै हैं, अर मेघों की आनन्दकारी ध्वनि होय है। शीतकाल में शीत की विशेष बाधा नाहीं। अर ग्रीष्म ऋतु में विशेष आताप नाहीं। जहां छहों ऋतु के विलास

हैं, जहां स्त्री सर्व आभूषणमंडित कोमल अंगवाली है अर सर्वकलानि मैं प्रवीण षट्कुमारिका समान प्रभाववाली हैं। कैसी हैं वे विद्याधरी? कईएक तो कमल के गर्भ समान प्रभा को धरै हैं, कईएक श्यामसुन्दर नीलकमल की प्रभा को धारै हैं, कईएक सिहझना के फूलसमान रंगकूं धरै हैं, कईएक विद्युत समान ज्योति को धरै हैं। ये विद्याधरी, महासुगंधित शरीरवाली हैं मानों नंदनवन की पवन ही से बनाई हैं। सुन्दर फूलों के गहने पहरे हैं सो मानो बसंत की पुत्री ही हैं। अर चन्द्रमा समान कांति है मानो अपनी ज्योतिरूप सरोवर में तिरै ही हैं। अर श्याम श्वेत सुरंग तीन वर्ण के नेत्रनि की शोभा को धरणहारी, मृगसमान हैं नेत्र जिनके, हंसनी समान है चाल जिनकी, वे विद्याधरी देवांगना समान शोभै हैं।

अर पुरुष विद्याधर महासुन्दर शूरवीर सिंहसमान पराक्रमी हैं। महाबाहु, महापराक्रमी, आकाशगमनविषैं समर्थ, भले लक्षण - भली क्रिया के धरणहारे, न्यायमार्गी, देवों के समान है प्रभा जिनकी, ऐसी अपनी स्त्रियों सहित विमान में बैठे अढ़ाई द्वीप में जहां इच्छा होये तहां ही गमन करै हैं। या भांति दोनों श्रेणियों मैं वे विद्याधर देवतुल्य इष्टभोगनि कों भोगते महाविद्याओं को धरै हैं। कामदेवसमान है रूप जिनका, अर चन्द्रमा समान है वदन जिनका, धर्म के प्रसाद से प्राणी सुख सम्पत्ति पावै हैं। तातैं एक धर्म ही विषैं यत्न करो, अर ज्ञान रूप सूर्य से अज्ञानरूप तिमिर को हरो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै विद्याधर लोक का कथन जाविषै है, ऐसा तीसरा पर्व संपूर्ण भया।।3।।

अथानन्तर वे भगवान ऋषभदेव महाध्यानी, सुवर्ण समान प्रभा के धरणहारे प्रभु, जगत के हित करने निमित्त छैमास पीछैं आहार लेने को प्रवृत्ते। लोक मुनि के आहार की विधि जानै नाहीं। अनेक नगर ग्रामविषै विहार किया, मानो अद्‌भुत सूर्य ही विहार करै हैं। जिन्होंने अपने देह की कांति से पृथ्वीमंडल पर प्रकाश कर दिया है, जिनके कांधे सुमेरु के शिखर समान दैदीप्यमान हैं, अर परम समाधानरूप अधोदृष्टि देखते, जीव दया पालते, विहार करै हैं। पुर ग्रामादि में लोक अज्ञानी नाना प्रकार के वस्त्र रत्न हाथी घोड़े रथ कन्यादिक भेंट करते सो प्रभु के कुछ भी प्रयोजन नाहीं। या कारण प्रभु फिर वन को चले जाय हैं। या भांति छै महीने तक विधिपूर्वक आहार की प्राप्ति न भई अर्थात् दीक्षा समय से एक वर्ष विना आहार बीता। पीछैं विहार करते हुए हस्तिनापुर आये।

तदि सर्व ही लोक पुरुषोत्तम भगवान को देखकर आश्चर्य को प्राप्त भये। राजा सोमप्रभ अर तिनके लघुभ्राता श्रेयांस ये दोनों ही भाई उठकर सन्मुख चाले। श्रेयांस को भगवान के देखनतैं ही पूर्वभव का स्मरण भया, अर मुनि के आहार की विधि जानी। वह नृप भगवान की प्रदक्षिणा देते

ऐसे शोभै हैं मानो सुमेरु की प्रदक्षिणा सूर्य ही दे रहा है। अर बारम्बार नमस्कार कर रत्नपात्रतैं अर्घ देय चरणारविन्द धोय, अर अपने शिर के केशनितैं पोंछे। तदि आनन्द के अश्रुपात आये, अर गदगद बाणी भई।

श्रेयांस ने – जिसका चित्त भगवान के गुणनि मैं अनुरागी भया है, महा पवित्र रत्नन के कलशों में रखे हुवे महाशीतल मिष्ट इक्षुरस का आहार दिया। परम श्रद्धा अर नवधा भक्ति से दान दिया। वर्षोपवास पारणा भया ताके अतिशयतैं देव हर्षित होय पांच आश्चर्य करते भए। प्रथम ही रत्ननि की वर्षा भई। बहुरि कल्पवृक्षों के पंच प्रकार के पुष्प बरसे। शीतल मंद सुगंध पवन चाली। अर अनेक प्रकार दुन्दुभी बाजे बाजे। अर यह देववाणी भई कि धन्य यह पात्र, अर धन्य यह दान, अर दान का देनहारा श्रेयांस! ऐसे शब्द देवताओं के आकाश में भये। श्रेयांस की कीर्ति देखकर दान की रीति प्रकट भई। देवतानिकर श्रेयांस प्रशंसा योग्य भए, अर भरत ने अयोध्यातैं आयकर श्रेयांस की बहुत स्तुति करी, अति प्रीति जनाई। भगवान आहार लेयकर वन में गये।

अथानन्तर भगवान ने एक हजार वर्षपर्यंत महातप किया। अर शुक्लध्यानतैं मोह का नाशकर केवलज्ञान उपजाया। कैसा है वह केवलज्ञान? लोकालोक का अवलोकन है जाविषै। जब भगवान् केवलज्ञान को प्राप्त भए तदि अष्ट प्रातिहार्य प्रकटे, प्रथम तो आपके शरीर की कांति का ऐसा मंडल हुआ जातैं चंद्र सूर्यादि का प्रकाश मंद नजर आवै, रात्रि दिवस का भेद नजर न आवे। अर अशोकवृक्ष रत्नमई पुष्पों से शोभित रक्त हैं पल्लव जाके। अर आकाशतैं देवों ने फूलों की वर्षा करी, जिनकी सुगंध से भ्रमर गुंजार करै हैं। महा दुंदुभी बाजों की ध्वनि होती भई, जो समुद्र के शब्दनितैं भी अधिक देवों ने बाजे बजाए।

कैसे हैं देव? जिनका शरीर मायामई करि दीखता नाहिं। अर चन्द्रमा की किरणतैं भी अधिक उज्ज्वल चमर इंद्रादिक ढारते भए, अर सुमेरु के शिखरतुल्य पृथ्वी का मुकुट सिंहासन आपके विराजने को प्रकट भया। कैसा है सिंहासन? अपनी ज्योतिकर जीती है सूर्यादिक की ज्योति जानै, अर तीन लोक की प्रभुता के चिह्न मोतियों की झालर से शोभायमान तीन छत्र अति शोभैं है, मानो भगवान के निर्मल यक्ष ही है। अर समोसरण मैं भगवान सिंहासन पर विराजे सो समोसरण की शोभा कहनेकूं केवली ही समर्थ हैं, और नाहीं। चतुरनिकाय के देव सब ही बंदना करने को आए। भगवान के मुख्य गणधर वृषभसेन भये। आपके द्वितीय पुत्र अर अन्य भी बहुत जे मुनि भए थे, वे महा वैराग्य के करणहारे मुनि आदि बारह सभा के प्राणी अपने अपने स्थानकविषै बैठे। तदनन्तर भगवान की दिव्यध्वनि होती भई, जो अपने नादकर दुंदुभी बाजों की ध्वनि को जीतैं हैं।

भगवान जीवों के कल्याणनिमित्त तत्त्वार्थ का कथन करते भये कि तीन लोक में जीवों को

धर्म ही परम शरण है। याही मैं परम सुख होय है। सुख के अर्थि सभी चेष्टा करै हैं, अर सुख धर्म के निमित्त से ही होय है। ऐसा जानकर धर्म का यत्न करहु। जैसैं मेघ बिना वर्षा नाहीं, बीज बिना धान्य नाहीं, तैसैं जीवनि के धर्म बिना सुख नाहीं। अर जैसे कोई पंगु (लंगड़ा) पुरुष चलने की इच्छा करै, अर गूंगा बोलने की इच्छा करै, अर अन्धा देखने की इच्छा करै, तैसैं मूढ़प्राणी धर्म विना सुख की इच्छा करै है। जैसैं परमाणुतैं और कोई अल्प (सूक्ष्म) नाहीं, अर आकाशतैं कोई महान् (बड़ा) नाहीं, तैसैं धर्म समान जीवों का अन्य कोई मित्र नाहीं, अर दया समान कोई धर्म नाहीं। मनुष्य के भोग, अर स्वर्ग के भोग, अर सिद्धन के परमसुख धर्म ही तैं होय हैं। तातैं धर्म बिना और उद्यम कर कहा? जे पंडित जीवदयाकर निर्मल धर्म को सेवै हैं, तिनही का ऊर्ध्वगमन है दूसरे अधोगति जाय है। यद्यपि द्रव्यलिंगी मुनि तप की शक्तितैं स्वर्गलोक मैं जाय हैं, तथापि बड़े देवों के किंकर होयकर तिनकी सेवा करै हैं। देवलोक मैं नीच देव होना देव-दुर्गति है। सो देवदुर्गति के दुःख को भोगकर तिर्यंच गति के दुख को भोगै हैं।

अर जे सम्यग्दृष्टि जिनशासन के अभ्यासी, तपसंयम के धरणहारे, देवलोक मैं जाय हैं, ते इन्द्रादिक बड़े देव होयकर बहुत काल सुख भोग, देवलोकतैं चय, मनुष्य होय मोक्ष पावै हैं। सो धर्म दोय प्रकार का है- एक यतिधर्म, दूसरा श्रावकधर्म। तीजा धर्म जो मानै हैं वे मोह-अग्नि से दग्ध हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत यह श्रावक का धर्म है। श्रावक मरण समय सर्व आरम्भ तज शरीरतैं भी निर्ममत्व होय, समाधिमरण करि उत्तमगति को जाय हैं। अर यतीन को धर्म पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार का चारित्र है। दशों दिशा ही यति के वस्त्र हैं। जो पुरुष यति का धर्म धारै हैं, वे शुद्धोपयोग केप्रसाद करि निर्वाण पावै हैं। अर जिनके शुभोपयोग की मुख्यता है ते स्वर्ग पावै हैं, परम्पराय मोक्ष जाय हैं। अर जे भावों से मुनियों की स्तुति करैं हैं ते हू धर्म को प्राप्त होय हैं? कैसे हैं मुनि? परम ब्रह्मचर्य्य के धारणहारे हैं।

यह प्राणी धर्म के प्रभावतैं सर्व पापों से छूटै है अर ज्ञानकूं पावै है। इत्यादिक धर्म का कथन देवाधिदेव ने किया सो सुनकर सर्व पापनितैं निवृत्त भए। अर देव मनुष्य सर्व ही परम हर्षकूं प्राप्त भए। कईएक तो सम्यक्त्व को धारण करते भए, कईएक सम्यक्त्व सहित श्रावक के व्रतकूं धारते भए, कईएक मुनिव्रत धारते भए। बहुरि सुर असुर मनुष्य धर्मश्रवण कर अपने अपने धाम गए। भगवान ने जिन जिन देशों मैं गमन किया उन उन देशों में धर्म का उद्योत भया। आप जहां जहां विराजे तहां तहां सौ सौ योजन तक दुर्भिक्षादिक सर्व बाधा मिटी। प्रभु के चौरासी गणधर भए, अर चौरासी हजार साधु भए। इनकरि मंडित सर्व उत्तम देशानिविषै विहार किया।

अथानन्तर भरत चक्रवर्तीपदकूं प्राप्त भए, अर भरत के भाई सब ही मुनिव्रत धार परमपद को प्राप्त भए। भरत ने कुछ काल छै खंड का राज्य किया, अयोध्या राजधानी, नवनिधि चौदह रत्न,

प्रत्येक की हजार हजार देव सेवा करै, तीन कोटि गाय, एक कोटि हल, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारा कोड घोड़े, बत्तीस हजार मुकुटबंद राजा अर इतने ही देश महासंपदा के भरे, छियानवे हजार रानी देवांगना समान, इत्यादिक चक्रवर्ती के विभव का कहां तक वर्णन करिए। पोदनापुर में दूसरी माता का पुत्र बाहुबली, सो भरत की आज्ञा न मानते भए। कह्या कि– हम भी ऋषभदेव के पुत्र हैं, किसकी आज्ञा मानें? तब भरत बाहुबली पर चढ़े, सेना का युद्ध न ठहरा, दोऊं भाई परस्पर युद्ध करैं – ठहरा। तीन युद्ध थापे – 1 दृष्टियुद्ध, 2 जलयुद्ध अर 3 मल्लयुद्ध। तीनों ही युद्धों में बाहुबली जीते, अर भरत हारे। तब भरत ने बाहुबली पर चक्र चलाया, वह उनके चरम शरीर पर घात न कर सका, लौटकर भरत के हाथ पर आया। भरत लज्जित भए, बाहुबली सर्व भोग त्याग कर वैरागी भए।

एक वर्ष पर्यंत कायोत्सर्ग धरि निश्चल तिष्ठे, शरीर बेलों से वेष्टित भया, सांपों ने बिल किए। एक वर्ष पीछे केवलज्ञान उपज्या। भरत चक्रवर्ती ने आय कर केवली की पूजा करी। बाहुबली केवली कुछ काल मैं निर्वाण को प्राप्त भए। अवसर्पिणीकाल मैं प्रथम मोक्ष को गमन किया। भरत चक्रवर्ती ने निष्कंटक छै खंड का राज्य किया। जिसके राज्य मैं विद्याधरों के समान सर्वसंपदा के भरे, अर देवलोक समान नगर, महा विभूति कर मंडित, जिनमैं देवों समान मनुष्य नानाप्रकार के वस्त्राभरण करि शोभायमान अनेक प्रकार की शुभ चेष्टा कर रमते हैं। लोक भोगभूमि समान सुखी, अर लोकपाल समान राजा। अर मदन के निवास की भूमि, अप्सरा समान नारियां। जैसैं स्वर्गविषै इन्द्र राज करै तैसैं भरत ने एक छत्र पृथिवीविषै राज किया। भरत के सुभद्रा राणी इन्द्रानी समान भई। जिसकी हजार देव सेवा करैं। चक्री के अनेक पुत्र भए तिनकों पृथ्वी का राज दिया। इस प्रकार गौतम स्वामी ने भरत का चरित्र श्रेणिक राजा से कहा।

अथानन्तर श्रेणिक ने पूछा – हे प्रभो! तीन वर्ण की उत्पत्ति तुमने कही सो मैंने सुनी, अब विप्रों की उत्पत्ति सुना चाहू हूं सो कृपाकर कहो।

गणधर देव जिनका हृदय जीवदयाकर कोमल है, अर मद–मत्सर कर रहित है, वे कहते भए कि एक दिन भरत ने अयोध्या के समीप भगवान का आगमन जान, समोसरण मैं जाय बंदना कर मुनि के आहार की विधि पूछी। तब भगवान की आज्ञा भई कि मुनि तृष्णाकर रहित, जितेंद्री, अनेक मासोपवास करैं, पराए घर निर्दोष आहार लेय अंतराय पडै तो भोजन न करैं, प्राणरक्षानिमित्त निर्दोष आहार करैं, अर धर्म के हेतु प्राण को राखैं, अर मोक्ष के हेतु उस धर्म को आचरैं, जिसमैं किसी भी प्राणी को बाधा नाहीं।

यह मुनि का धर्म सुनकर चक्रवर्ती विचारै है– 'अहो ! यह जैन का व्रत महा दुर्धर है। मुनि

शरीर से भी निःस्पृह (निर्ममत्व) तिष्ठे हैं तो अन्य वस्तु मैं तो उनकी वांछा कैसे होय? मुनि महा निर्ग्रंथ निर्लोभी सर्व जीवों की दयाविषै तत्पर हैं। मेरे विभूति बहुत है, मैं अणुव्रती श्रावक कों भक्ति कर दूं, अर दीन लोकनि को दया कर दूं। ये श्रावक भी मुनि के लघु भ्राता हैं। ऐसा विचारकर लोकनि को भोजन के अर्थि बुलाए, अर व्रतियों की परीक्षा निमित्त आंगण में जो शालि धान उर्द मूंगनि बोए थे, तिनके अंकुर ऊगे। सो अविवेकी लोक तो हरितकाय को खूंदते आए। अर जे विवेकी थे, वे अंकुर जान खड़े होय रहे। तिनको भरत अंकुररहित जो मार्ग उस पर बुलाया, अर व्रती जान बहुत आदर किया। अर यज्ञोपवीत (जनेऊ) कंठ मैं डाला, आदर से भोजन कराया, वस्त्रभरण दिये, अर मनवांछित दान दिये। अर अंकुर को दल मलते आए थे, तिनकों अव्रती जान उनका आदर नहिं किया। अर व्रतियों को ब्राह्मण ठहराए, चक्रवर्ती के मानने से कईएक तो गर्व को प्राप्त भए, अर कईएक लोभ की अधिकतातैं धनवान् लोकनि को देखकर याचना को प्रवर्तें।

तब मतिसमुद्र मंत्री ने भरत से कहा – समोसरण में मैंने भगवान के मुख से ऐसा सुना है कि जो तुमने विप्र धर्माधिकारी जानकर माने हैं, ते पंचमकाल मैं महा मदोन्मत होयंगे, अर हिंसा मैं धर्म जानकर जीवों को हनेंगे, अर महा कषायसंयुक्त सदा पाप क्रिया मैं प्रवर्त्तेंगे, अर हिंसा के प्ररूपक ग्रंथों को अकृत्रिम मानकर समस्त प्रजा को लोभ उपजावैंगे। महा आरम्भविषै आसक्त, परिग्रह मैं तत्पर, जिनभाषित जो मार्ग ताकी सदा निंदा करेंगे। निर्ग्रंथ मुनि को देख महा क्रोध करेंगे। ए वचन सुन भरत इन पर क्रोधायमान भए। तब यह भगवान के शरण गए।

भगवान ने भरत को कहा – हे भरत! जो कलिकालविषै ऐसा ही होना है, तुम कषाय मत करो। इस भांति विप्रों की प्रवृत्ति भई, अर जो भगवान के साथ वैराग्य को निकले ते चारित्रभ्रष्ट भए। तिनमेंतैं कच्छादिक कईएक तो सुलटे। अर मारीचादिक नहीं सुलटे। तिनके शिष्य प्रतिशिष्यादिक सांख्य योग मैं प्रवर्तें, कोपीन (लंगोटी) पहरी, बल्कलादि धारे। यह विप्रनि की अर परिव्राजक कहिए दंडीनि की प्रवृत्ति कही।

अथानन्तर अनेक जीवनि को भवसागर से तारकर भगवान ऋषभ कैलाश के शिखर से लोकशिखर जो निर्वाण उसको प्राप्त भए। अर भरत भी कुछ काल राज्य कर जीर्ण तृणवत् राज्य को छोड़कर वैराग्य को प्राप्त भए। अन्तर्मुहूर्त मैं केवलज्ञान उपज्या। पीछैं आयु पूर्णकर निर्वाण को प्राप्त भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषैं श्री ऋषभ का कथन जाविषै है ऐसा चौथा पर्व संपूर्ण भया।।4।।

अथ वंशोत्पत्ति नामा महाधिकार

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से वंशों की उत्पत्ति कहते भए कि– हे श्रेणिक! इस जगत विषैं महावंश जो चार तिनके अनेक भेद हैं।

1. प्रथम इक्ष्वाकु वंश। यह लोक का आभूषण है, इसमैं से सूर्य वंश प्रवर्त्या है। 2. दूसरा सोम (चन्द्र) वंश, चंद्रमा की किरण समान निर्मल है। 3. तीसरा विद्याधरों का वंश अत्यन्त मनोहर है। 4. चौथा हरिवंश जगत विषै प्रसिद्ध है। अब इनका भिन्न भिन्न विस्तार कहे हैं–

इक्ष्वाकुवंश में भगवान ऋषभदेव उपजे, तिनके पुत्र भरत भए, भरत के पुत्र अर्ककीर्ति भए। राजा अर्ककीर्ति महा तेजस्वी राजा हुए। इनके नामतैं सूर्यवंश प्रवर्त्या है। अर्क नाम सूर्य का है, अर्ककीर्ति का वंश सूर्यवंश कहलाता है। इस सूर्यवंश मैं राजा अर्ककीर्ति के सतयश नामा पुत्र भए। इनके बलांक, तिनके सुबल, रवितेज, तिनके महाबल, महाबल के अतिबल, तिनके अमृत, अमृत के सुभद्र, तिनके सागर, तिनके भद्र, तिनके रवितेज, तिनके शशी, तिनके प्रभूततेज, तिनके तेजस्वी, तिनके तपबल महाप्रतापी, तिनके अतिवीर्य, तिनके सुवीर्य, तिनके उदितपराक्रम, तिनके सूर्य, तिनके इंद्रद्युमणि, तिनके महेन्द्रजित, तिनके प्रभूत, तिनके विभु, तिनके अविध्वंस, तिनके वीतभी, तिनके वृषभध्वज, तिनके करुणांक, तिनके मृगांक।

इस भांति सूर्यवंशविषै अनेक राजा भए, ते संसार के भ्रमणतैं भयभीत पुत्रों को राज देय मुनिव्रत के धारक भए, महा निर्ग्रन्थ, शरीर से भी निस्पृही। या सूर्यवंश की उत्पत्ति तुझे कही। अब सोमवंश की उत्पत्ति तुझे कहिये है, सो सुनो।

ऋषभदेव की दूसरी राणी के पुत्र बाहुबली, तिनके सोमयश, तिनके सौम्य, तिनके महाबल, तिनके सुबल, तिनके भुजबली, इत्यादि अनेक राजा भये, निर्मल है चेष्टा जिन की मुनिव्रत धार परम धाम को प्राप्त भए। कईएक देव होय मनुष्य जन्म लेकर सिद्ध भए। यह सोमवंश की उत्पत्ति कही। अब विद्याधरन के वंश की उत्पत्ति सुनहु।

नमि, रत्नमाली, तिनके रत्नव्रज, तिनके रत्नरथ, तिनके रत्नचित्र, तिनके चन्द्ररथ, तिनके बज्रजंघ, तिनके बज्रसेन, तिनके बज्रदंष्ट्र, तिनके बज्रध्वज, तिनके बज्रायुध, तिनके वज्र, तिनके सुवज्र, तिनके बज्रभृत, तिनके बज्राभ, तिनके बज्रबाहु, तिनके बज्रांक, तिनके बज्रसुन्दर, तिनके बज्रास्य, तिनके बज्रपाणि, तिनके बज्रभानु, तिनके वज्रवान, तिनके विद्युन्मुख, तिनके सुवक्र, तिनके विद्युद्दंष्ट्र, अर उनके पुत्र विद्युत, अर विद्युदाभ, अर विद्युद्वेग, अर विद्युत इत्यादि विद्याधरों के वंश मैं अनेक राजा भए। अपने अपने पुत्रनि को राज देय जिनदीक्षा धर, रागद्वेष का नाशकर

सिद्ध पद को प्राप्त भए। कई एक देवलोक गये। जे मोहपाश से बंधे हुतै ते राज्यविषै ही मरकर कुगति को गए।

अब संजयति मुनि के उपसर्ग का कारण कहै हैं कि- विद्युद्दंष्ट्र नामा राजा दोऊं श्रेणी का अधिपति विद्यावल उद्धत विमान मैं बैठा विदेहक्षेत्र मैं गया। तहां संजयति स्वामी को ध्यानारूढ़ देख्या, जिनका शरीर पर्वत समान निश्चल है। उस पापी ने मुनि को देखकर पूर्वजन्म के विरोध से उनको उठाकर पंचगिरि पर्वत पर धरे, अर लोकों को कहा कि इसे मारो। पापी जीवों ने यष्टि मुष्टि पाषाणादि अनेक प्रकार से उनको मारया। मुनि को शम भाव के प्रसाद से रंचमात्र भी क्लेश न उपज्या, दुस्सह उपसर्ग को जीत लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान उपार्ज्या, सर्वदेव वंदना को आए। धरणींद्र भी आए। वह धरणींद्र पूर्वभव में मुनि के भाई थे, इसलिए क्रोधकर सब विद्याधरनि को नागफांस से बांधे।

तब सबन ने विनती करी कि यह अपराध विद्युद्दंष्ट्र का है। तब और तो छोड़े, अर विद्युद्दंष्ट्र को न छोड्या, मारने को उद्यमी भए। तदि देवों ने प्रार्थना करके छुडाया सो छोड्या, परन्तु विद्या हर ली, तब याने प्रार्थना करी कि हे प्रभो! मुझे विद्या कैसैं सिद्ध होयगी। धरणींद्र ने कहा कि संजयति स्वामी की प्रतिमा के समीप तपक्लेश करने से तुमको विद्या सिद्ध होयगी, परन्तु चैत्यालय के उल्लंघन से तथा मुनियों के उल्लंघन से विद्या का नाश होवैगा। इसलिए तुमको तिनकी वंदना करके आगैं गमन करना योग्य है। तब धरणींद्र ने संजयति स्वामी को पूछ्या कि- हे प्रभो! विद्युद्दंष्ट्र ने आपको उपसर्ग क्यों किया?

भगवान संजयति स्वामी ने कहा - कि मैं चतुर्गतिविषै भ्रमण करता शकट नामा ग्राम में दयावान प्रियवादी हितकार नामा महाजन भया। निष्कपट स्वभाव साधुसेवा में तत्पर, सो समाधिमरण कर कुमुदावती नगरी में न्यायमार्गी श्रीवर्धन नामा राजा हुआ। उस ग्राम में एक ब्राह्मण जो अज्ञान तपकर कुदेव हुआ था तहां से चयकर राजा श्रीवर्धन से बह्निशिख नामा पुरोहित भया। वह महादुष्ट अकार्य का करणहारा आपको सत्यघोष कहावै, परन्तु महा झूठा, परद्रव्य का हरणहारा, उसके कुकर्म को कोई न जानै, जगत में सत्यवादी कहावै।

एक नेमिदत्त सेठ के रत्न हरे। राणी रामदत्ता ने जूवा में पुरोहित की अंगूठी जीती अर दासी के हाथ पुरोहित के घर भेजकर रत्न मंगाये, अर सेठ को दिए। राजा ने पुरोहित को तीव्र दंड दिया। वह पुरोहित मरकर कईएक भव के पश्चात् यह विद्याधरों का अधिपति भया, अर राजा मुनिव्रत धारकर देव भए। कईएक भव के पश्चात् यह हम संजयति भए, सो इसने पूर्वभव के प्रसंग से हमको उपसर्ग किया। यह कथा सुन नागेन्द्र अपने स्थान को गए।

अथानन्तर उस विद्याधर के दृढ़रथ भए, ताके अश्वधर्मा पुत्र भए, उसके अश्वाय, उसके अश्वध्वज, उसके पद्मनाभि, उसके पद्ममाली, उसके पद्मरथ, उसके सिंहजातिन, उसके मृगोधर्मा, उसके मेघास्त्र, उसके सिंहप्रभ, उसके सिंहकेतु, उसके शशांक, उसके चंद्राह्ण, उसके चन्द्रशेखर, उसके इंद्ररथ, ताके चंद्ररथ ताके वज्रधर्मा, ताके बज्रायुध, उसके चक्रधर्मा, उसके चक्रायुध, उसके चक्रध्वज, उसके मणिग्रीव, उसके मण्यंक, उसके मणिभासुर, उसके मणिरथ, उसके मन्यभास, उसके बिम्बोष्ठ, उसके लंबिताधर, उसके रक्तोष्ठ, उसके हरिचन्द्र, उसके पूर्णचन्द्र, उसके बालेंद्र, उसके चन्द्रमा, उसके चूड़, उसके व्योमचंद्र, उसके उडपानन, उसके एकचूड़, उसके द्विचूड़, उसके त्रिचूड़, उसके वज्रचूड़, उसके भूरिचूड़, उसके अर्कचूड़, उसके वह्निजटी, उसकेवह्नितेज, या भांति अनेक राजा भए। तिनमैं कईएक पुत्रनि को राज देय मुनि होय मोक्ष गए। कईएक स्वर्ग गये, कईएक भोगासक्त होय, वैरागी न भए, सो नरक तिर्यंचगति को प्राप्त भए।

या भांति विद्याधर का वंश कह्या। आगै द्वितीय तीर्थंकर श्रीअजितनाथ स्वामी उनकी उत्पत्ति कहै हैं।

जब ऋषभदेव को मुक्ति गए पचास लाख कोटिसागर गये, चतुर्थकाल आधा व्यतीत भया। जीवनि की आयु, काय, पराक्रम घटते गए। जगत मैं काम लोभादिक की प्रवृत्ति बढ़ती भई। अथानंतर इक्ष्वाकुकुल में ऋषभदेव ही के वंश में अयोध्या नगर में राजा धरणीधर भए। तिनके पुत्र त्रिदशजय देवों के जीतनेहारे, तिनके इन्द्ररेखा रानी, ताके जितशत्रु पुत्र भया। सो पोदनापुर के राजा भव्यानन्द, तिनके अंभोदमाला राणी, ताकी पुत्री विजया जितशत्रु ने परणी। जितशत्रु को राज देयकर राजा त्रिदशजय कैलाश पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त भए।

अथानन्तर राजा जितशत्रु की राणी विजयादेवी के अजितनाथ तीर्थंकर भए। तिनका जन्माभिषेकादिक का वर्णन ऋषभदेववत् जानना। जिनके जन्म होते ही राजा जितशत्रु ने सर्व राजा जीते। तातैं भगवान का अजित नाम धर्‍या। अजितनाथ के सुनयानन्दा आदि अनेक राणी भई। जिनके रूप की समानता इंद्राणी भी न कर सकै। एक दिन भगवान अजितनाथ राजलोक सहित प्रभात समय में ही वनक्रीडा को गए, सो कमलों का वन फूल्या हुवा देख्या। अर सूर्यास्त समय उस ही वन को संकुचा हुआ देख्या, सो लक्ष्मी की अनित्यता मानकर परम वैराग्य को प्राप्त भए। माता पितादि सर्व कुटुम्बतैं क्षमाभावकर ऋषभदेव की भांति दीक्षा धरी। दश हजार राजा साथ निकसे। भगवान ने वेला पारणा अंगीकार किया। ब्रह्मदत्त राजा के घर आहार लिया। चौदह वर्ष तप करके केवलज्ञान उपजाया। चौंतीस अतिशय तथा आठ प्रातिहार्य प्रकट भए। भगवान

के नब्बे गणधर भए, अर एक लाख मुनि भए।

अजितनाथ के काका विजयसागर जिनकी ज्योति सूर्यसमान है, तिनकी राणी सुमंगला, तिनके पुत्र सगर द्वितीय चक्रवर्ती भए। सो नवनिधि चौदह रत्न आदि इनकी विभूति भरत चक्रवर्ती के समान जाननी। तिनके समय मैं एक वृत्तान्त भया, सो हे श्रेणिक! तुम सुनहु।

भरतक्षेत्र के विजयार्ध की दक्षिणश्रेणी में चक्रवाल नगर, तहां राजा पूर्णघन विद्याधरनि के अधिपति, महाप्रभाव-मंडित, विद्याबलकरि अधिक, तिनने विहायतिलक नगर के राजा सुलोचन की कन्या उत्पलमती जाची। राजा सुलोचन ने निमित्तज्ञानी के कहनेतैं ताकूं न दीनी, अर सगर चक्रवर्तीकूं देनी विचारी। तब पूर्णघन सुलोचन पर चढ़ि आए। सुलोचन के पुत्र सहस्रनयन अपनी बहिन को लेकर भागे, सो बन में छिप रहे। पूर्णघन ने युद्ध में सुलोचन को मार नगर में जाय कन्या ढूंढ़ी, परन्तु न पाई। तदि अपने नगर को चले गये। सहस्रनयन निर्बल, सो बाप का वध सुन पूर्णमेघ पर क्रोधायमान भए, परन्तु कुछ कर नाहीं सकै। छिद्र हेरै। गहरे बन मैं घुसा रहै। कैसा है वह वन? सिंह व्याघ्र अष्टापदादिकनिकर भर्‍या है।

पश्चात् चक्रवर्ती को एक मायामई अश्व लेय उड्या, सो जिस बन में सहस्रनयन हुते, तहां आये। उत्पलमती ने चक्रवर्ती को देखकर भाई को कह्या कि चक्रवर्ती आप ही यहां पधारे हैं। तदि भाई प्रसन्न होयकर चक्रवर्ती को बहिन परणाई। सो यह उत्पलमती चक्रवर्ती की पटराणी स्त्रीरत्न भई। अर चक्रवर्ती ने कृपा करि सहस्रनयन को दोनों श्रेणी का अधिपति किया। सो सहस्रनयन ने पूर्णघन पर चढ़कर युद्ध में पूर्णघन को मार्‍या, अर बाप का बैर लिया। चक्रवर्ती छहखंड पृथ्वी का राज करै। अर सहस्रनयन चक्रवर्ती का साला विद्याधरनि की दोऊ श्रेणी का राज करै। अर पूर्णमेघ का बेटा मेघवाहन भयकर भाग्या। सहस्रनयन के योधा मारने को लारें (पीछे) दौड़े सो मेघवाहन समोसरण में श्रीअजितनाथ की शरण आया। इन्द्र ने भय का कारण पूछ्या।

तब मेघवाहन ने कहा- 'हमारे बाप ने सुलोचन को मार्‍या था। सो सुलोचन के पुत्र सहस्रनयन ने चक्रवर्ती का बल पाय, हमारे पिता को मार्‍या, अर हमारे बंधु क्षय किये, अर मेरे मारने के उद्यम मैं है। सो मैं मंदिरतैं हंसों के साथ उड़कर भगवान की शरण आया हूं'। ऐसा कहिकर मनुष्यनि के कोठे में बैठ्या। अर सहस्रनयन के योधा याके मारणे को आये हुते इसको समोसरण में आया जान, पाछे गए। अर सहस्रनयन को सकल वृत्तान्त कह्या। तब वह भी समोसरण में आया। भगवान के चरणारबिंद के प्रसादतैं दोनों निर्वैर होय तिष्ठे। तदि गणधर ने भगवानकूं इनके पिता का चरित्र पूछ्या।

भगवान कहैं हैं कि- जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै सद्गति नामा नगर, जहां भावन नामा

बणिक, ताके आतकी नामा स्त्री, अर हरिदास नामा पुत्र, सो भावन चार कोटि द्रव्य का धनी हुता तो भी लोभ करि व्यापार निमित्त देशांतर को चाल्या। सो चलते समय पुत्र को सब धन सौंप्या, अर द्यूतादिक कुव्यसन न सेवने की शिक्षा दीनी। हे पुत्र! यह द्यूतादि (जूवा) कुव्यसन सब दोषनि का कारण है, इनको सर्वथा तजने, इत्यादि शिक्षा देकर आप धनतृष्णा के कारण जहाज के द्वारा द्वीपांतर को गया। पिता के गए पीछैं पुत्र ने सर्व धन वेश्या, जूआ अर सुरापान इत्यादिक कुव्यसनकरि खोया। जब सर्व धन जाता रह्या, अर जुआरीन का देनदार होय गया तदि द्रव्य के अर्थि सुरंग लगाय राजा के महल में चोरी को गया। सो राजा के महलतैं द्रव्य लावै अर कुव्यसन सेवै।

कईएक दिनों में भावन परदेशतैं आया। घर में पुत्र को न देख्या, तदि स्त्री को पूछ्या। स्त्री ने कही कि ''इस सुरंग में होयकर राजा के महिल में चोरी को गया है।'' तब यह पिता, पुत्र के मरण की आशंका करि ताके लावने को सुरंग में पैठ्या। सो वह तो जावै था, अर पुत्र आवै था सो पुत्र ने जान्या यह कोई बैरी आवै है, सो उसने बैरी जानि खड्ग से मार्‍या। पीछे स्पर्शकर जान्या यह तो मेरा बाप है, तब महादुखी होय, डरकर भाग्या। अर अनेक देश भ्रमणकरि मर्‍या। सो पिता पुत्र दोन्यों कुत्ते भए। फिर गीदड़, फिर मार्जार भए, फिर रीछ भए, फिर न्योला भये, फिर भैंसे भये, फिर बलध भये, सो इतने जन्मों मैं परस्पर घातकरि मरे। फिर विदेहक्षेत्रविषै पुष्कलावती देश में मनुष्य भये। उग्र तप करि एकादश स्वर्ग में उत्तर अनुत्तर नामा देव भए। तहांतैं आयकर जो भावन नामा पिता हुता वह तो पूर्णमेघ विद्याधर भया, अर हरिदास नामा पुत्र हुता सो सुलोचन नामा विद्याधर भया। या ही पूर्णमेघ ने सुलोचन को मार्‍या।

तब गणधर देव ने सहस्रनयन को अर मेघवाहन को कह्या– तुम अपने पिताओं का या भांति चरित्र जान संसार का बैर तजकर समताभावकूं धरो। अर सगरचक्रवर्ती ने गणधरदेव को पूछा कि हे महाराज! मेघवाहन, अर सहस्रनयन का बैर क्यों भया? तदि भगवान की दिव्यध्वनि में आज्ञा भई कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै पद्मक नामा नगर है। तहां आरम्भ नामा गणितशास्त्र का पाठी महाधनवंत, ताके दोय शिष्य एक चन्द्र एक आवली भये। इन दोनों में मित्रता हुती, अर दोनों धनवान गुणवान विख्यात हुए। सो इनके गुरु आरम्भ ने जो अनेक नयचक्र में अति विचक्षण हुता, मन में विचारी कि कदाचित यह दोनों मेरा पदभंग करें। ऐसा जानकर इन दोनों के चित्त जुदे कर डारे।

एक दिन चन्द्र गाय बेचवेकूं गोपाल के घर गया सो गाय बेचकर वह तो घर आवता हुता, अर आवली को उसी गाय को गोपालतैं खरीदकर लावता देख्या, इस कारण मार्ग में चन्द्र ने आवली को मार्‍या। सो म्लेच्छ भया, अर चन्द्र मरकर बलध भया, सो म्लेच्छ ने बलध को

भख्या। म्लेच्छ नरक तिर्यंच योनि मैं भ्रमणकरि मूसा भया, अर चन्द्र का जीव मार्जार भया। मार्जार ने भूसा भख्या। फिर ये दोऊं पापकर्म के योगतैं अनेक योनि मैं भ्रमणकर काशी में संभ्रमदेव की दासी के पुत्र दोऊं भाई भए। एक का नाम कूट अर एक का नाम करवट सो इन दोनों को संभ्रम देव ने चैत्यालय की टहलकूं राखे। सो मरकर पुण्य के योगतैं रूपानन्द अर स्वरूपानंद नामा व्यंतरदेव भए। रूपानन्द तो चन्द्र का जीव, अर स्वरूपानन्द आवली का जीव। फिर रूपानन्द तो चयकर कलूंवी का पुत्र कुलंधर भया। अर स्वरूपानन्द पुरोहित का पुत्र पुष्पभूत भया।

ए दोनों परस्पर मित्र एक हाली के अर्थि बैर को प्राप्त भये, अर कुलंधर पुष्पभूत के मारवे को प्रवृत्या। एक वृक्ष के तलै साधु विराजते हुते तिनसों धर्म श्रवणकर कुलंधर शांत भया। राजा ने याको सामंत जान बहुत बढ़ाया। पुष्पभूत, कुलंधर को जिनधर्म के प्रसादतैं संपत्तिवाहन देखकरि जैनी भया। व्रतधर तीसरे स्वर्ग गया, अर कुलंधर भी तीसरे स्वर्ग गया। स्वर्गतैं चयकर दोनों घातकीखंड के विदेहविषै अरिंजय पिता अर जयावती माता के पुत्र भये। एक का नाम अमरश्रुत दूजे का नाम धनश्रुत। ये दोनों भाई बड़े योधा सहस्रशिरस के एतवारी चाकर जगत में प्रसिद्ध हुवे। एक दिन राजा सहस्रशिरस हाथी पकड़ने को बन में गया। ये दोनों भाई साथ गये।

बन में भगवान केवली बिराजे हुते, तिनके प्रतापतैं सिंह मृगादिक जातिविरोधी जीवों को एक ठौर बैठे देख राजा आश्चर्य को प्राप्त भया, आगै जाकर केवली का दर्शन किया। राजा तो मुनि होय निर्वाण गये, अर ये दोनों मुनि होय; ग्यारहवें स्वर्ग गए। तहांतैं चयकर चन्द्र का जीव अमरश्रुत तो मेघवाहन भया, अर आवली का जीव घनश्रुत सो सहस्रनयन भया। यह इन दोनों के बैर का वृत्तांत है।

फिर सगरचक्रवर्ती ने भगवानकूं पूछ्या कि हे प्रभो! सहस्रनयनसों मेरा जो अतिहित है, सो इसमैं क्या कारण है; तदि भगवान ने कह्या कि वह आरम्भ नामा गणित शास्त्र का पाठी मुनिन को आहार दान देकर देवकुरु भोगभूमि गया। तहांतैं प्रथम स्वर्ग का देव होय कर पीछे चन्द्रपुर में राजा हरि राणी धरादेवी के प्यारा पुत्र ब्रतकीर्तन भया। मुनिपद धार स्वर्ग गया, अर विदेहक्षेत्र में रत्नसंचयपुर में महाघोष पिता चन्द्राणी माता के पयोबलनामा पुत्र होय, मुनिव्रत धार, चौदहवें स्वर्ग गया। तहांतैं चयकर भरतक्षेत्र में पृथ्वीपुर नगर में यशोधर राजा, अर राणी जया के घर जयकीर्तन नामा पुत्र भया, सो पिता के निकट जिनदीक्षा लेकर विजय विमान गया। तहांतैं चयकर तू सगर चक्रवर्ती भया, अर आरम्भ के भव में आवली शिष्य के साथ तेरा स्नेह हुता तो अब आवली का जीव सहस्रनयन, तासों तेरा अधिक स्नेह है।

यह कथा सुन चक्रवर्ती के विशेष धर्मरुचि हुई। अर मेघवाहन तथा सहस्रनयन दोनों अपने

पिता के, अर अपने पूर्वभव श्रवणकर निर्वैर भए, परस्पर मित्र भए। अर इनकी धर्मविषैं अतिरुचि उपजी। पूर्वभव दोनों को याद आये। महाश्रद्धावंत होय भगवान की स्तुति करते भए कि हे नाथ! आप अनाथन के नाथ हैं! ये संसार के प्राणी महादुखी हैं, तिनको धर्मोपदेश देकर उपकार करो हो, तुम्हारा किसी से भी कुछ प्रयोजन नाहीं। तुम नि:कारण जगत के बंधु हो, तुम्हारा रूप उपमा रहित है। अर अप्रमाण बल के धरणहारे हो, इस जगत में तुम समान और नाहीं। तुम पूर्ण परमानन्द हो, कृतकृत्य हो, सदा सर्वदर्शी सब के बल्लभ हो, किसी के चिंतवन में नहीं आते हो, जाने हैं सर्व पदार्थ जिनने, सबकै अंतर्यामी, सर्वज्ञ, जगत के हितु हो, हे जिनेन्द्र! संसाररूप अंधकूप में पड़े ये प्राणी, तिनको धर्मोपदेशरूप हस्तावलंबन ही हो। इत्यादिक बहुत स्तुति करी। अर यह दोनों मेघवाहन अर सहस्रनयन गद्गद बाणी होय, अश्रुपातकरि भीज गए हैं नेत्र जिनके, परम हर्ष को प्राप्त भए। अर विधिपूर्वक नमस्कार कर तिष्ठे। सिंहवीर्यादिक मुनि, इन्द्रादिक देव, सगरादिक राजा परम आश्चर्य को प्राप्त भये।

अथानन्तर भगवान के समोसरणविषै राक्षसों का इंद्र भीम अर सुभीम मेघवाहनतैं प्रसन्न भए अर कहते भए कि– हे विद्याधर के बालक मेघवाहन, तू धन्य है, जो भगवान अजितनाथ की शरण मैं आया। हम तेरे पर अति प्रसन्न भए हैं। हम तेरी स्थिरता का कारण कहै हैं। तू सुन– इस लवणसमुद्र में अत्यन्त विषम महारमणीक हजारों अंतरद्वीप हैं। लवणसमुद्र में मगर मच्छादिक के समूह रमैं हैं। अर तिन अंतर्द्वीपों में कहीं तो गंधर्व क्रीड़ा करैं हैं, कहीं किन्नरों के समूह रमैं हैं, कहीं यक्षों के समूह कोलाहल करैं हैं, कहीं किंपुरुष जाति के देव केलि करैं हैं। उनके मध्य में एक राक्षसद्वीप है, जो सात सौ योजन चौड़ा, अर सात सौ योजन लम्बा है।

उसके मध्य में त्रिकूटाचल पर्वत है जो अत्यन्त दुष्प्रवेश है, शरण की ठौर है, पर्वत के शिखर सुमेरु के शिखर समान मनोहर हैं। अर पर्वत नवयोजन ऊंचा पचास योजन चौड़ा है। नाना प्रकार की रत्नों की ज्योति के समूहकर जड़ित है। जाके सुवर्णमयी सुन्दर तट हैं। नानाप्रकार की बेलों कर मंडित कल्पवृक्षनिकर पूर्ण हैं। ताके तलैं तीस योजन प्रमाण लंका नामा नगरी है। रत्न अर सुवर्ण के महलनिकर अत्यन्त शोभै है। जहां मनोहर उद्यान हैं, कमलनिकर मंडित सरोवर हैं, बड़े बड़े चैत्यालय हैं, वह नगरी इंद्रपुरी समान है। दक्षिण दिशा का मंडन (भूषण) है।

हे विद्याधर! तू समस्त बांधववर्गकर सहित तहां बसिकर सुख से रहो। ऐसा कहकर भीम नामा राक्षसनि का इन्द्र ताकूं रत्नमई हार देता भया, वह हार अपनी किरणों से महाउद्योत करै हैं। तथा धरती के बीच में पाताललंका जिसमें अलंकारोदय नगर, छै योजन ओंडा, अर एक सौ साढ़े इकतीस योजन, अर डेढ़कला चौड़ा यह भी दिया। उस नगर में बैरियों का मन भी प्रवेश न कर

सके, स्वर्ग समान महा मनोहर है। राक्षसों के इन्द्र ने कहा– कदाचित् तुझकूं परचक्र का भय हो तो इस पाताललंका मैं सकल बंशसहित सुखसों रहियो, लंका तो राजधानी, अर पाताललंका भय निवारण का स्थान है। याभांति भीम सुभीम ने पूर्णघन के पुत्र मेघवाहन को कह्या।

तब मेघवाहन परमहर्ष को प्राप्त भया, भगवानकूं नमस्कार करकै उठ्या। तदि राक्षसों के इन्द्र ने राक्षसविद्या दीनी, सो आकाशमार्ग से विमान में चढ़कर लंका को चले, तदि सर्व भाइयों ने सुनी कि मेघवाहन को राक्षसों के इन्द्र ने अति प्रसन्न होय, लंका दी है सो समस्त ही बंधुवर्गों के मन प्रफुल्लित भए। जैसैं सूर्य के उदयतैं समस्त ही कमल प्रफुल्लित होंय, तैसैं सर्व ही विद्याधर मेघवाहन पै आए। तिनकरि मंडित मेघवाहन चाले। कईएक तो राजा आगैं जाय हैं, कईएक पाछें, कईएक दाहिने, कईएक बांये, कईएक हाथियों पर चढ़े, कईएक तुरंगनि (घोड़ों) पर चढ़े, कईएक रथों पर चढ़े जांय हैं, कईएक पालकी पर चढ़े जांय हैं। अर अनेक पियादे ही जांय हैं। जय जय शब्द होय रहे हैं। दुंदुभी बाजे बाजै हैं, राजा पर छत्र फिरै हैं। अर चमर ढुरै हैं, अनेक निशान (झंडे) चले जांय हैं। अनेक विद्याधर शीस निवावै हैं।

या भांति राजा चलते चलते लवणसमुद्र ऊपर आए। वह समुद्र आकाश समान विस्तीर्ण, अर पाताल समान ऊंडा, तमालवन समान श्याम है, तरंगों के समूहतैं भर्‌या है। अनेक मगरमच्छ जिसमें कलोल करै हैं। उस समुद्र को देख राजा हर्षित भए, पर्वत के अधोभाग में कोट, अर दरवाजे अर खाइयोंकर संयुक्त लंकानामा महापुरी है, तहां प्रवेश किया। लंकापुरी में रत्नों की ज्योति करि आकाश संध्यासमान अरुण (लाल) होय रह्या है, कुंद के पुष्प समान उज्ज्वल ऊंचे भगवान के चैत्यालयनिकरि मंडित पुरी शोभै है। चैत्यालयों पर ध्वजा फहरा रही है। चैत्यालयों की बन्दना कर राजा ने महल में प्रवेश किया, और भी यथायोग्य घरों मैं तिष्ठे रत्नों की शोभा से उसके मन अर नेत्र हरे गए।

अथानन्तर किन्नर गीतनामा नगरविषै राजा रतिमयूख, अर राणी अनुमती तिनके सुप्रभा नामा कन्या, नेत्र अर मन की चौरनहारी, काम का निवास, लक्ष्मीरूप, कुमुदनी के प्रफुल्लित करनेकूं चंद्रमा की चांदनी, लावण्यरूप जल की सरोवरी, आभूषणों का आभूषण, इन्द्रियन कों प्रमोद की करणहारी, सो राजा मेघवाहन ने ताकूं महा उत्साह करि परणी। ताके महारक्षनामा पुत्र भया। जैसैं स्वर्ग मैं इन्द्र इन्द्राणीसहित तिष्ठै तैसैं राजा मेघवाहन राणी सुप्रभा सहित लंकाविषै बहुत काल राज किया।

अथानन्तर एक दिन राजा मेघवाहन अजितनाथ के बंदना के अर्थि समोसरण में गए। तहां और कथा हो चुकी तदि सगर ने भगवानकूं नमस्कारकरि पूछ्या कि हे प्रभो! इस अवसर्पिणीकालविषैं

धर्मचक्र के स्वामी तुम सारिखे जिनेश्वर कितने भए, अर कितने होवेंगे? तुम तीन लोक के देनेवाले हो, तुम सारिखे पुरुषों की उत्पत्ति लोकविषै आश्चर्यकारिणी है। अर चक्ररत्न के स्वामी कितने होवेंगे तथा वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलभद्र कितने होवेंगे? या भांति सगर ने प्रश्न किया।

तब भगवान अपनी ध्वनि करि देवदुंदुभीनि की ध्वनि को निराकरण करते हुए व्याख्यान करते भए। अर्धमागधीभाषा के भाषणहारे भगवान तिनके होंठ न हालैं, यह बड़ा आश्चर्य है। कैसी है दिव्यध्वनि? उपजाया है, श्रोतानि के कानों को उत्साह जाने। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रत्येक कालविषै चौबीस तीर्थंकर होय है। मोहरूप अंधकारकरि समस्त जगत आच्छादित हुवा, जा समय धर्म का विचार नाहीं, और कोई भी राजा नाहीं, ता समय भगवान ऋषभदेव उपजे, तिनने कर्मभूमि की रचना करी। तबतैं कृतयुग कहाया। भगवान ने क्रिया के भेद से तीन वर्ण थापे। अर उनके पुत्र भरत ने विप्र वर्ण थापा।

भरत का तेज भी ऋषभ समान है। भगवान ऋषभदेव ने जिनदीक्षा धरी, अर भवतापकर पीड़ित भव्यजीवनि कों शमभावरूप जलकरि शांत किया। श्रावक के धर्म, अर यती के धर्म दोऊ प्रकट किए। जिनके गुणनि की उपमाकूं जगतविषैं कोऊ पदार्थ नाहीं, कैलाश के शिखरतैं आप निर्वाण पधारे। ऋषभदेव की शरण पाय अनेक साधु सिद्ध भए, अर कईएक स्वर्ग के सुख को प्राप्त भए, कईएक भद्रपरिणामी मनुष्यभव को प्राप्त भए, अर कईएक मरीचादि मिथ्यात्व के रागकरि संयुक्त अत्यन्त उज्ज्वल जो भगवान का मार्ग ताहि न अवलोकन करते भए, जैसे घुग्गू (उल्लू) सूर्य कै प्रकाश को न जानै तैसें कुधर्मकूं अंगीकारकरि कुदेव भए, बहुरि नरक तिर्यंचगतिकूं प्राप्त भये। भगवान ऋषभदेव को मुक्ति गये पचास लाख कोटि सागर गये, तब सर्वार्थसिद्धि से चय करि द्वितीय तीर्थंकर हम अजित भए।

जब धर्म की ग्लानि होय, अर मिथ्यादृष्टीनि का अधिकार होय, आचार का अभाव होय, तब भगवान तीर्थंकर प्रकट होय धर्म का उद्योत करैं हैं। अर भव्यजीव धर्म को पाय सिद्धस्थान कों प्राप्त होय है। अब हमको मोक्ष गये पीछे बाईस तीर्थंकर और होंगे। तीन लोकविषै उद्योत करनेवाले ते सर्व मो सारिखे कांति वीर्य विभूति के धनी त्रैलोक्य पूज्य ज्ञानदर्शनरूप होंगे। तिनमें तीन तीर्थंकर शांति, कुंथु, अर ए तीन चक्रवर्ती पद के भी धारक होवेंगे।

तिनि चौबीसों के नाम सुनहु – ऋषभ 1, अजित 2, संभव 3, अभिनन्दन 4, सुमति 5, पद्मप्रभ 6, सुपार्श्व 7, चन्द्रप्रभ 8, पुष्पदंत 9, शीतल 10, श्रेयांस 11, वासुपूज्य 12, विमल 13, अनन्त 14, धर्म 15, शांति 16, कुंथु 17, अर 18, मल्लि 19, मुनिसुब्रत 20, नमि 21, नेमि 22, पार्श्वनाथ 23, महावीर 24 – ये सब ही देवाधिदेव जिनमार्ग के धुरंधर होहिंगे।

अर सर्व के गर्भावतारविषै रत्ननि की वर्षा होयगी। सर्व के जन्मकल्याणक सुमेरुपर्वत पर क्षीरसागर के जलकरि होवेंगे। उपमारहित है तेजरूप सुख अर बल जिनके, ऐसे सर्व ही कर्मशत्रुनि के नाशनहारे महावीर स्वामीरूपी सूर्य के अस्त भए पीछे पाखंडरूप अज्ञानी चमत्कार करेंगे। ते पाखंडी संसाररूपी कूपविषै आप पडैंगे अर औरनिकों पाडैंगे।

चक्रवर्त्तिनि में प्रथम तो भरत भए, दूसरा तू सगर भया, अर तीसरा मघवा, चौथा सनत्कुमार, अर पांचवां शांति, छठा कुंथु, सातवां अर, आठवां सुभूम, नवमां महापद्म, दसवां हरिषेण, ग्यारहवां जयसेन, बारहवां ब्रह्मदत्त – ये बारह चक्रवर्ती, अर वासुदेव नव, अर प्रतिवासुदेव नव, बलभद्र नव होहिंगे। इनका धर्मविषै सावधान चित्त होगा। ये अवसर्पणी के महापुरुष कहे। याही भांति उत्सर्पणीविषै भरत ऐरावत में जानने। या भांति महापुरुषों की विभूति अर काल की प्रवृत्ति अर कर्मनि के वशतैं संसार का भ्रमण, अर कर्म रहितों को मुक्ति का निरुपमसुख – यह सर्वकथन मेघवाहन ने सुना।

यह विचक्षण चित्तविषै विचारता भया कि हाय! हाय!! जिन कर्मनिकर यह जीव आताप को प्राप्त होय है तिन्हीं कर्मनि को मोहमदिराकरि उन्मत्त भया यह जीव बांधै है। यह विषय विषवत् प्राणनि के हरणहारे कल्पनामात्र मनोज्ञ हैं। दुःख के उपजावनहारे हैं। इनमें रति कहा? या जीव ने धन स्त्री कुटुंबादिविषै अनेकभव राग किया परन्तु ये पदार्थ याके नाहीं हुए। यह सदा अकेला संसारविषै परिभ्रमण करै है, अर सर्व कुटुम्बादिक तब तक ही स्नेह करै हैं जब तक दानकरि उनका सम्मान करै है, जैसे श्वान के बालक कों जब लग टूक डारिए, तोलग अपना है। अंतकाल में पुत्र कलत्र बांधव मित्र धनादिक के लार (साथ) कौन गया? अर ये कौन के साथ गये? ये भोग हैं, ते कालसर्प के फण समान भयानक हैं। नरक के कारण हैं, तिनविषै कौन बुद्धिमान संग करै।

अहो यह बड़ा आश्चर्य है। लक्ष्मी ठगनी अपने आश्रितनि कों ठगै है या समान और दुष्टता कहां! जैसे स्वप्नविषै किसी वस्तु का समागम होय है, तैसैं कुटुम्ब का समागम जानना, आर जैसैं इन्द्रधनुष क्षणभंगुर है, तैसै परिवार का सुख क्षणभंगुर जानना। यह शरीर जल के बुदबुदा समान असार है, अर यह जीवितव्य बिजली के चमत्कारवत् असार चंचल है। तातैं इन सबनि को तजिकरि एक धर्म ही का सहाय अंगीकार करूं। धर्म कैसा है? सदा कल्याणकारी ही है, कदापि विघ्नकारी नाहीं। अर संसार शरीर भोगादिक चतुरगति के भ्रमण के कारण हैं, महा दुखरूप हैं। ऐसा जानकरि उस राजा मेघवाहन ने जिसके बकतर महा वैराग्य ही है, महारथ नामा पुत्र को राज्य देकर भगवान श्री अजितनाथ के निकट दीक्षा धारी, राजा के साथ एक सौ दश राजा वैराग्य पाय घररूप बंदीखानेतैं निकसे।

अथानन्तर मेघवाहन का पुत्र महारक्ष राज पर बैठ्या। सो चन्द्रमा समान दानरूपी किरणनिकरि कुटुम्बरूपी समुद्र को पूर्ण करता संता लंकारूपी आकाशविषै प्रकाश करता भया। बड़े बड़े विद्याधरनि के राजा स्वप्नविषै भी ताकी आज्ञा को पायकर आदरतैं प्रतिबोध होय, हाथ जोड़ नमस्कार करते भए। उस महारक्ष के विमलप्रभा राणी होती भई। कैसी है वह राणी? मानो छाया समान पति की अनुगामिनी है। ताके अमररक्ष, उदधिरक्ष, भानुरक्ष ये तीन पुत्र भए। कैसे हैं वे पुत्र? नानाप्रकार के शुभकर्म करि पूर्ण जिनका बड़ा विस्तार, अति ऊंचे, जगतविषै प्रसिद्ध मानो तीन लोक ही हैं।

अथानन्तर अजितनाथ स्वामी अनेक भव्यजीवनि का निस्तारकर सम्मेदशिखरतैं सिद्धपद को प्राप्त भए। सगर के छाणवें हजार राणी इन्द्राणी तुल्य, अर पुत्र साठ हजार ते कदाचित् बंदनाकूं कैलाश पर्वत पर आए। भगवान के चैत्यालयनि की बंदना कर दंडरत्नतैं कैलाश के चौगिरद खाई खोदते भए। सो तिनको क्रोध की दृष्टि करि नागेंद्र ने देख्या, सो ये सब भस्म हो गए! उनमेंतैं दो आयुकर्म के योगतैं बचे, एक भीमरथ, अर दूसरा भगीरथ। तब सबनि ने विचारी जो अचानक यह समाचार चक्रवर्ती को कहेंगे तो चक्रवर्ती तत्काल प्राण तजैंगे। ऐसा जान इनको मिलनेतैं, अर कहवेतैं पंडित लोकों ने मना किए। सर्व राजा अर मंत्री जा विधि आए थे, ताही विधि आए, विनयकरि चक्रवर्ती के पास अपने अपने स्थान पर बैठे।

तासमय एक वृद्ध ब्राह्मण कहता भया कि 'हे सगर! देखहु या संसार की अनित्यता जिसको देखकर भव्यजीवनि का मन संसारविषै न प्रवर्तै। तो आगैं तुम्हारे समान पराक्रमी राजा भरत भए, जिनने छै खंड पृथ्वी दासी समान वश करी, ताके अर्ककीर्ति पुत्र भये – महापराक्रमी जिनके नामतैं सूर्यवंश प्रवृत्या। या भांति जे अनेक राजा भये ते सर्व कालवश भये। सो राजानि की बात तो दूर ही रहो, जे स्वर्गलोक के इन्द्र महाविभव करि युक्त हैं ते हू क्षण में विलाय जाय हैं। अर जे भगवान तीर्थंकर तीनों लोक कूं आनन्द के करणहारे हैं, ते हू आयु के अंत होने पर शरीर को तज निर्वाण पधारै हैं। जैसैं पक्षी एक वृक्ष पर रात्रि को आय बसै हैं प्रभात अनेक दिशानिकूं गमन करैं हैं। यह प्राणी कुटुम्बरूपी वृक्षविषै आय बसै है, स्थिति पूरीकर अपने कर्म के वशतैं चतुर्गतिविषै गमन करै हैं। सबनितैं बलवान महाबली यह काल है, जाने बड़े बड़े बलवान निबल किये।

अहो! बड़ा आश्चर्य है! बड़े पुरुषनि का विनाश देखकर हमारा हृदय नाहीं फट जाय है। इन जीवनि का शरीर संपदा अर इष्ट का संयोग, सर्व इन्द्रधनुष, वा स्वप्न वा बिजली, वा झाग, वा बुदबुदा तिन समान जानना। इस जगतविषै ऐसा कोई नाहीं जो कालतैं बचै। एक सिद्ध ही अविनाशी हैं। अर जो पुरुष पहाड़ को हाथतैं चूर्णकर डारै, अर समुद्र शोष जावै तेहू काल के बदन

मैं प्राप्त होय हैं। यह मृत्यु अलंघ्य है। यह त्रैलोक्य मृत्यु के वश है। केवल महामुनि ही जिनधर्म के प्रसादकरि मृत्यु कों जीतै हैं। ऐसे अनेक राजा कालवश भए तैसैं हमहू कालवश होवेंगे। तीन लोक का यह मार्ग है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष शोक न करै, शोक संसार का कारण है।

या भांति वृद्ध पुरुष ने कही, अर याही भांति सर्व सभा के लोगों ने कही। ताही समय चक्रवर्ती ने दोऊ बालक देखे। तब ये मन में विचारी कि सदा से साठ हजार भेले होय मेरे पास आवते हुते, नमस्कार करते, अर आज ये दोनों ही दीनवदन दीखै हैं, तातैं जानिये है कि और सब कालवशि भए। अर ये राजा मुझे अन्योक्तिकर समझावै है। मेरा दुःख देखबे कों असमर्थ है ऐसा जानि राजा शोकरूप सर्प का डसा हुआ भी प्राणनि कों न तजता भया। मंत्रियों के वचनतैं शोक को दबाय, संसार को कदली के गर्भवत् असार जानि, इन्द्रियनि के सुख छोड़, भगीरथ को राज देय जिनदीक्षा आदरी। यह संपूर्ण छै खंड पृथ्वी जीर्ण तृण समान जान तजी। भीमरथ सहित श्रीअजितनाथ के निकट मुनि होय केवलज्ञान उपाय सिद्धपद को प्राप्त भए।

अथानन्तर एक समय सगर के पुत्र भगीरथ श्रुतसागर मुनि को पूछते भये कि हे प्रभो! जो हमारे भाई एक ही साथ मरण को प्राप्त भये, तिनविषै मैं बचा, सो काहेतैं बचा?

तब मुनि बोले कि एक समय चतुर्विधसंघ बंदना निमित्त सम्मेदशिखर को जाते हुते, सो चलते चलते अंतिकग्राम में आय निकसे। तिनको देखकर अंतिकग्राम के लोक दुर्वचन बोलते भए, हसंते भए। तहां एक कुम्हार ने तिनको मनै करी। अर मुनियों की स्तुति करता भया, तदनन्तर ता ग्राम के एक मनुष्य ने चोरी करी। सो राजा ने सर्वग्राम जला दिया। उस दिन वह कुम्हार काहू ग्राम को गया हुता सो ही बचा। वह कुम्हार मरकर वणिक भया, अर अन्य जे ग्राम के मरे थे द्विइंद्री, कौडी भये। कुम्हार के जीव महाजन ने सर्व कौड़ी खरीदी। बहुरि वह महाजन मरकर राजा भया, अर कौडी मरकर गिजाई भई, सो हाथी के पग के तले चूरी गई। राजा मुनि होय कर देव भये, देवतैं तू भागीरथ भया। ग्राम के लोक कईएक भव लेय सागर के पुत्र भये। सो मुनि के संघ की निंदा के पापतैं जन्म-जन्म में कुगति पाई, अर तू स्तुति करनेतैं ऐसा भया। यह पूर्वभव सुनकर भागीरथ प्रतिबोध को पाय मुनिराज का व्रत धर पर परमपद को प्राप्त भये।

बहुरि गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं – हे श्रेणिक! यह सगर का चरित्र तो तुझे कह्या। आगे लंका की कथा कहिये है, सो सुनहु।

महारिक्ष नामा विद्याधर बड़ी सम्पदाकरि पूर्ण लंकाविषै निःकंटक राज्य करै। सो एक दिन प्रमद नामा उद्यानविषै राजलोक सहित क्रीडाकूं गये। कैसा है प्रमद नामा उद्यान? ऊंचे पर्वतों से महा रमणीक है, अर सुगंधित पुष्पों से फूल रहे वृक्षों के समूह से मंडित, अर मिष्ट शब्दों के

बोलनहारे पक्षियों के समूह से अतिसुन्दर है, जहां रत्नों की राशि है, अर अति सघन पत्र पल्लवन कर मंडित लताओं (बेलों) के मंडप तिनकरि छाय रह्या है। ऐसे बन में राजा राजलोकनि सहित नानाप्रकार की क्रीड़ा करि रतिसागरविषै मग्न हुवा, जैसे नन्दनवनविषै इन्द्र क्रीड़ा करै तैसैं क्रीड़ा करी।

अथानन्तर सूर्य के अस्त भये पीछैं कमल संकोच को प्राप्त भये। तिनविषै भ्रमर को दबकर मूवा देखि राजा के चिंता उपजी। कैसा है राजा? मोह की भई है मंदता जाके, अर भवसागरतैं पार होने की इच्छा उपजी है। राजा विचारै है कि देखो मकरंद के रस मैं आसक्त यह मूढ़ भौंरा गंधतैं तृप्त न भया, तातैं मृत्युकूं प्राप्त भया। धिक्कार होहु या इच्छाकूं। जैसे यह कमल के रस का आसक्त मधुकर मूवा, तैसैं मैं स्त्रियों के मुखरूप कमल का भ्रमर हुआ मरकर कुगति को प्राप्त होऊंगा। जो यह एक नासिका इंद्रिय का लोलुपी नाश को प्राप्त भया, तो मैं तो पंच इन्द्रियों का लोभी हूं मेरी क्या बात? अथवा यह चोइंद्री जीव अज्ञानी भूलै तो भूलै, मैं ज्ञानसम्पन्न विषयनि के वशि क्यों भया? शहद की लपेटी खड्ग की धारा के चाटनेतैं सुख कहा? जीभ ही के खंड होय हैं, तैसे विषयसेवन में सुख कहा? अनन्त दुःखों का उपार्जन ही होय है। विषफल तुल्य ये विषय तिनतैं पराङ्मुख हैं, तिनको मैं मनवचकाय करि नमस्कार करूं हूं।

हाय! हाय!! यह बड़ा कष्ट है जो मैं पापी घने दिन तक इन दुष्ट विषयनिकरि ठगाया गया। इन विषयनि का प्रसंग विषम हैं। विष तो एक भव प्राण हरै है, अर ये विषय अनन्तभव प्राण हरै हैं। यह विचार राजा ने किया तासमय बन में श्रुतसागर मुनि आये। वह मुनि अपने रूप करि चन्द्रमा की चांदनी को जीतै हैं, अर दीप्तिकरि सूर्यकूं जीतै हैं, स्थिरताकरि सुमेरुतैं अधिक हैं। जिनका मन एक धर्मध्यानविषै ही आसक्त है, अर जीते हैं रागद्वेष दोय जिन्होंने, और तजे हैं मनवचकाय के अपराध जिन्होंने, चार कषायों के जीतनेहारे, पांच इन्द्रियनि के वश करणहारे, छह काय के जीवनि पर दयालु, अर सप्त भयवर्जित, आठ मद रहित, नव नय के वेत्ता, शील के नववाडि के धारक, दशलक्षणधर्म के स्वरूप परमतप के धरणहारे, साधुवों के समूह सहित, स्वामी पधारे। सो जीव जंतुरहित पवित्रस्थान देख वन में तिष्ठे। जिनके शरीर की ज्योति का दशों दिशा में उद्योत हो गया।

अथानन्तर बनपाल के मुखतैं स्वामी को आया सुन राजा महारिक्ष विद्याधर वन में आये! कैसे हैं राजा? भक्तिभाव करि विनयरूप है मन जिनका। वह राजा आयकरि मुनि के पांव पड़े। कैसे हैं मुनि? अति प्रसन्न है मन जिनका, अर कल्याण के देनहारे हैं चरण कमल जिनके। राजा समस्त संघ को नमस्कार करि समाधान (कुशल) पूछ एक क्षण बैठिकरि भक्तिभावतैं मुनि धर्म का स्वरूप पूछते भये।

मुनि के हृदय में शांतिभावरूपी चन्द्रमा प्रकाश कर रहा था सो वचनरूपी किरणनिकरि उद्योत करते संते व्याख्यान करते भये कि हे राजन्! धर्म का लक्षण जीवदया ही है। अर ये सत्य वचनादि सर्व धर्म ही का परिवार है। यह जीव कर्म के प्रभावतैं जिस गति में जाय है ताही शरीर में मोहित होय है। इसलिए तीनलोक की संपदा जो कोई देय तौ हू प्राणी अपने प्राण को न तजै। सब जीवनि को प्राण समान और कुछ प्यारा नाहीं। सब ही जीवनै को इच्छै हैं, मरने को कोई भी न इच्छै। बहुत कहवेकरि कहा? जैसैं आप को अपने प्राण प्यारे हैं तैसैं ही सबनि को प्यारे हैं। तातैं जो मूरख परजीवनि के प्राण हरै हैं ते दुष्टकर्मी नरक में पड़े हैं। उन समान और कोऊ पापी नाहीं। यह जीव जीवनि के प्राण हरि अनेक जन्म कुगति में दुःख पावै है।

जैसैं लोह का पिंड पानीमैं डूबि जाय है तैसैं हिंसक जीव भवसागर में डूबै हैं। जे बचनकर मीठे बोल बोलै हैं, अर हृदय में विष के भरे हैं, इन्द्रियनि के वशि भए मलीन मन हैं, भले आचारतैं रहित, स्वेच्छाचारी, काम के सेवनहारे हैं ते नरक तिर्यंच गतिविषै भ्रमण करै हैं। प्रथम तो या संसारविषै जीवनि को मनुष्यदेह दुर्लभ है, बहुरि उत्तमकुल, आर्यक्षेत्र, सुन्दरता, धनकर पूर्णता, विद्या का समागम, तत्त्व का जानना, धर्म का आचरण ये सब अति दुर्लभ हैं। धर्म के प्रसाद तैं कईएक तो सिद्धपद पावै हैं, कईएक स्वर्गलोकविषै सुख पायकरि परम्पराय मोक्ष को जाय हैं, अर कई एक मिथ्यादृष्टि अज्ञान तपकरि देव होय स्थावरयोनि में आय पडै हैं। कईएक पशु होय हैं, कई एक मनुष्यजन्म में आवै हैं।

कैसा है माता का गर्भ? मल-मूत्रकर भर्‌या है, अर कृमियों के समूहकर पूर्ण है, महादुर्गंध अत्यन्त दुस्सह, ताविषै पित्त श्लेष्म के मध्य चर्म के जालतैं ढके ये प्राणी, जननी के आहार का जो रसांश ताहि चाटै हैं। जिनके सर्व अंग संकुचि रहे हैं। दुःख के भारकर पीड़ित नव महीना उदरविषै बसिकरि योनि के द्वारतैं निकसै हैं। मनुष्यदेह पाय पापी धर्म को भूलै हैं। मनुष्यदेह सर्वयोनियों में उत्तम है। मिथ्यादृष्टि नेम धर्म आचारवर्जित पापी विषयनि को सेवै हैं। जे ज्ञानरहित काम के वशि पड़े स्त्री के वशी होय हैं, ते महादुःख भोगवते हुए संसारसमुद्रविषै डूबे हैं। तातैं विषयकषाय न सेवने।

हिंसा का वचन जामैं परजीवनि को पीड़ा होय सो न बोलना। हिंसा ही संसार का कारण है। चोरी न करनी, सांच बोलना, स्त्री की संगति न करनी, धन की वांछा न रखनी, सर्वपापारम्भ तजने, परोपकार करना, पर पीड़ा न करनी। यह मुनि की आज्ञा सुनकर धर्म का स्वरूप जान राजा वैराग्य को प्राप्त भए। मुनि को नमस्कार करि अपने पूर्वभव पूछे।

चार ज्ञान के धारक मुनि श्रुतसागर संक्षेपताकरि पूर्वभव कहते भए कि हे राजन्! पोदनापुरविषै

हित नामा एक मनुष्य, ताके माघवी नामा स्त्री, ताकै प्रीतम नामा तू पुत्र भया। अर ताही नगरविषै राजा उदयाचल, राणी उदयश्री, ताका पुत्र हैमरथ राज करै। सो एक दिन जिनमंदिरविषै महापूजा करवाई। वह पूजा आनन्द की करणहारी है, सो ताके जयजयकार शब्द सुनकर तूने भी जयजयकार शब्द किया सो पुण्य उपार्ज्या। काल पाय मुवा, अर यक्षों में महायक्ष हुवा। एकदिन विदेहक्षेत्रविषै कांचनपुर नगर के वन में मुनियों को पूर्वभव के शत्रु ने उपसर्ग किया सो यक्ष ने ताको डराकर भगा दिया अर मुनिन की रक्षा करी, सो अति पुण्य की राशि उपार्जी। कईएक दिन आयु पूरी करि यक्ष तडिदंगद नामा विद्याधर, ताकी श्रीप्रभा स्त्री के उदित नामा पुत्र भया। अमरविक्रम विद्याधरों के ईश वंदना के निमित्त मुनि के निकट आये थे। तिनको देखकरि निदान किया। महा तपकर दूसरे स्वर्ग जाय तहांतैं चयकर तू मेघवाहन के पुत्र हुवा।

हे राजन्! तूने सूर्य के रथ की नाईं संसार में भ्रमण किया। जिह्वा का लोलुपी स्त्रियों के वशवर्ती होय, तैं अनन्तभव धरै। तेरे शरीर या संसार में एते व्यतीत भए जो उनको एकत्र करिए तो तीनलोक में न समावै। अर सागरों की आयु स्वर्गविषै तेरी भई। जब स्वर्ग ही के भोगनितैं तू तृप्त न भया तो विद्याधरों के अल्प भोगनितैं तू कहा तृप्त होइगा? अर तेरी आयु भी अब आठ दिन बाकी है, यातैं स्वप्न इन्द्रजाल समान जे भोग तिनतैं निवृत्त होहु। ऐसा सुन अपना मरण जान्या तोहू विषाद को न प्राप्त भया। प्रथम तो जिनचैत्यालयविषै बड़ी पूजा कराई। पीछै अनन्त संसार के भ्रमणतैं भयभीत होकर अपने बड़े पुत्र अमररक्ष कों राज देय, अरु लघुपुत्र भानुरक्ष को युवराज पद देय, आप परिग्रह कों त्यागकरि तत्त्वज्ञानविषै मग्न होय, पाषाण के थंभ तुल्य निश्चल होय ध्यान मैं तिष्ठे, अर लोभकर रहित भए। खानपान का त्यागकर शत्रुमित्र में समान बुद्धि धार निश्चल होय कर मौनव्रत के धारक समाधिमरणकरि स्वर्गविषै उत्तम देव भए।

अथानन्तर किन्नरनाद नामा नगरविषै श्रीधर नामा विद्याधर राजा, ताकै विद्या नामा राणी, ताकै अरिंजयानामा कन्या, सो अमररक्ष ने परणी। अर गंधर्वगीतनगरविषै सुरसन्निभ राजा, ताकै पुत्री गंधर्वा सो भानुरक्ष ने परणी। बड़े भाई अमररक्ष के दश पुत्र भए, अर देवांगना समान छह पुत्री भईं, जिनके गुण ही आभूषण हैं। अर लघु भाई भानुरक्ष के दश पुत्र अर छह पुत्री भईं। सो उन पुत्रों ने अपने अपने नाम के नगर बसाए। कैसे हैं वे पुत्र? शत्रुनि के जीतनेहारे, पृथ्वी के रक्षक हैं।

हे श्रेणिक! उन नगरों के नाम सुनो – सन्ध्याकार 1, संवेल 2, मनोह्लाद 3, मनोहर 4, हंसद्वीप 5, हरि 6, जोध 7, समुद्र 8, कांचन 9, अर्धस्वर्ग 10, ए दश नगर तो अमररक्ष के पुत्रनि ने बसाए। अर आवर्तनगर 1, विघट 2, अम्भोद 3, उतकट 4, स्फुट 5, रतुग्रह 6, तट 7, तोय 8, आवली 9, रत्नद्वीप 10, ये दश नगर भानुरक्ष के पुत्रों ने बसाए।

कैसे हैं वे नगर? जिनमें नानाप्रकार के रत्नों से उद्योत हो रहा है, सुवर्ण की भांति तिनकरि दैदीप्यमान वे नगर क्रीड़ा के अर्थी राक्षसों के निवास होते भए। बड़े बड़े विद्याधर देशान्तरों के वासी तहां आये, महा उत्साहकरि निवास करते भए।

अथानन्तर पुत्रनि को राज देय अमररक्ष भानुरक्ष यह दोनों भाई मुनि होय महातपकर मोक्षपद को प्राप्त भए। या भांति राजा मेघवाहन के वंश में बड़े बड़े राजा भए। ते न्यायवंत प्रजापालन कर सकल वस्तुनितैं विरक्त होय मुनि के व्रत धार कईएक मोक्ष को गए, कईएक स्वर्गविषै देव भए। ता वंशविषै एक राजा महारक्ष भए। तिनकी राणी मनोवेगा, ताके पुत्र राक्षस नामा राजा भए। तिनके नामते राक्षसवंश कहाया। ये विद्याधर मनुष्य हैं, राक्षसयोनि नाहीं। राजा राक्षस के राणी सुप्रभा, ताके दोय पुत्र भए। आदित्यगति नामा बड़ा पुत्र अर छोटा वृहत्कीर्ति। ये दोऊ चंद्र सूर्य समान अन्यायरूप अन्धकार को दूर करते भए।

तिन पुत्रनि को राज देय राजा राक्षस मुनि होय देवलोक गए। राजा आदित्यगति राज्य करै, अर छोटा भाई युवराज हुवा। बड़े भाई की स्त्री सदनपद्मा अर छोटे भाई की स्त्री पुष्पनखा भई। आदित्यगति का पुत्र भीमप्रभ भया। ताकै हजार राणी देवांगना समान, अर एक सौ आठ पुत्र भए सो पृथ्वी के स्तम्भ होते भए। उनमें बड़े पुत्र को राज्य देय राजा भीमप्रभ वैराग्य को प्राप्त होय परमपद को प्राप्त भए।

पूर्व राक्षसनि के इन्द्र भीम सुभीम ने कृपाकर मेघवाहन को राक्षसद्वीप दिया सो मेघवाहन के वंश में बड़े बड़े राजा राक्षसद्वीप के रक्षक भए। भीमप्रभ का बड़ा पुत्र पूजार्ह सोहू अपने पुत्र जितभास्कर कों राज्य देय मुनि भए। अर जितभास्कर संपरकीर्ति नामा पुत्र को राज्य देय मुनि भए। अर संपरकीर्ति सुग्रीव नामा पुत्र को राज्य देय मुनि भए। सुग्रीव हरिग्रीव को राज्य देय उग्रपतकरि देवलोक गया। अर हरिग्रीव श्रीग्रीव को राज्य देय वैराग्य को प्राप्त भए। अर श्रीग्रीव सुखमुख नामा पुत्र को राज्य देय मुनि भए। अपने बड़ों ही का मार्ग अंगीकार किया अर सुखमुख भी सुव्यक्त को राज देय आप परम ऋषि भए। अर सुव्यक्त अमृतवेग को राज देय वैरागी भए। अर अमृतवेग भानुगति को राज देय यति भए। अर वे हू चिंतागति को राज देय निश्चिन्त भए मुनिव्रत आदरते भये, अर चिन्तागति भी इन्द्र को राज देय मुनींद्र भए।

या भांति राक्षसवंश में अनेक राजा भए। तथा राजा इन्द्र के इन्द्रप्रभ, ताकै मेघ, ताकै मृगीदमन, ताकै इन्द्रजीत, ताकै भानुवर्मा, ताकै भानु सूर्यसमान तेजस्वी ताकै मुरारी, ताकै त्रिजित्, ताकै भीम, ताकै मोहन, ताकै उद्धारक, ताकै रवि, ताकै चाकार, ताकै बज्रमध्य, ताकै प्रबोध, ताकै सिंहविक्रम, ताकै चामुंड, ताकै मारण, ताकै भीष्म, ताकै द्युपवाहन, ताकै

अरिमदन, ताकै निर्वाणभक्ति, ताकै उग्रश्री, ताकै अर्हद्भक्त, ताकै अनुत्तर, ताकै गतभ्रम, ताकै अनिल, ताकै लंक, ताकै चंड, ताकै मयूरवाहन, ताकै महाबाहु, ताकै मनोग्य, ताकै भास्करप्रभ, ताकै वृहद्गति, ताकै वृहत्कांत, अर ताकै अरिसंत्रास, ताकै चन्द्रावर्त, ताकै महारव, ताकै मेघध्वांत, ताकै ग्रहक्षोम, ताकै नक्षत्रदमन। या भांति कोटिक राजा भए।

बड़े विद्याधर महाबल करि मंडित, महाकांति के धारी, पराक्रमी, परदारा के त्यागी, निजस्त्री में है संतोष जिनके, ऐसे लंका के स्वामी, महासुन्दर, अस्त्रशस्त्रकला के धारक, स्वर्गलोक के आए अनेक राजा भए। ते अपने पुत्रनि कों राज देय, जगततैं उदास होय, जिनदीक्षा धारि, कईएक तो कर्मकाट निर्वाण को गए, जो तीन लोक का शिखर है। अर कईएक राजा पुण्य के प्रभावतैं प्रथम स्वर्ग कों आदि देय सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त प्राप्त भए। या भांति अनेक राजा व्यतीत भए ह्न जैसे स्वर्गविषै इन्द्र राज्य करै।

लंका का अधिपति धनप्रभ ताकी राणी पद्मा का पुत्र कीर्तिधवल प्रसिद्ध भया। अनेक विद्याधर जिसके आज्ञाकारी, जैसे स्वर्ग में इन्द्र राज करै तैसे लंका में कीर्तिधवल राज करता भया। या भांति पूर्वभवविषै किया जो तप, ताके बल करि यह जीव देवगति के तथा मनुष्यगति के सुख भोगवै है। अर सर्वत्यागकर महाव्रत धरि आठ कर्म भस्म करि सिद्ध होय है। अर जे पापी जीव खोटे कर्मनिविषै आसक्त हैं ते याही भवविषै लोकनिंद्य होय मरकर कुयोनि में जाय हैं। अर अनेक प्रकार दुःख भोगवै हैं। ऐसा जान पापरूप अंधकार के हरवे को सूर्य समान जो शुद्धोपयोग ताको भजो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राक्षस का कथन जाविषै है ऐसा पाँचवाँ पर्व संपूर्ण भया।।5।।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं – हे राजा श्रेणिक! यह राक्षसवंश अर विद्याधरनि के वंश का वृत्तांत तो तुझसे कह्या। आगैं वानर वंशनि का कथन सुन।

स्वर्ग समान जो विजयार्धगिरि ताकी दक्षिणश्रेणी विषै मेघपुर नामा नगर ऊंचे महलों से शोभित है। तहां विद्याधरनि का राजा अतींद्र पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भोगसंपदा में इन्द्रतुल्य, ताकै श्रीमती नामा रानी लक्ष्मी समान हुई। ताके मुख की चांदनीकरि सदा पूर्णमासी समान प्रकाश होय है। ताके श्रीकंठ नामा पुत्र भया। शास्त्र में प्रवीण, जिसके नाम को सुनकरि विचक्षण पुरुष हर्ष को प्राप्त होंय। अर ताकै छोटी बहिन महामनोहर देवी नामा हुई, जाके नेत्र काम के बाण ही हैं।

अथानन्तर रत्नपुर नामा नगर अति सुन्दर तहां पुष्पोत्तर नाम राजा विद्याधर महाबलवान, ताकै पद्माभा नाम पुत्री देवांगना समान अर पद्मोत्तर नामा पुत्र महा गुणवान, जाकै देखनेतैं अति

आनंद होय। सो राजा पुष्पोत्तर अपने पुत्र के निमित्त राजा अतींद्र की पुत्री देवी को बहुत बार याचना करी, तोहू श्रीकंठ भाई ने अपनी बहिन लंका के धनी कीर्तिधवल कों दीनी, अर पद्मोत्तर को न दीनी। यह बात सुन राजा पुष्पोत्तर ने अति कोप किया? अर कहा कि देखो हममें कुछ दोष नाहीं। दारिद्र दोष नाहीं, मेरा पुत्र कुरूप नाहीं, अर हमारे उनके कुछ वैर भी नाहीं, तथापि मेरे पुत्र को श्रीकंठ ने अपनी बहिन न परणाई, यह क्या युक्त किया?

एक दिन श्रीकंठ चैत्यालयनि की वंदना के निमित्त सुमेरु पर्वत पर विमान मैं बैठकर गए। कैसा है विमान? पवन समान बेगवाला, अर अतिमनोहर है। सो वंदनाकर आवते हुते। मार्ग में पुष्पोत्तर की पुत्री पद्माभा का राग सुण्या, अर वीन का बजाना सुण्या। कैसा है राग? मन और श्रोत्र का हरनहारा, सो राग सुन मन मोहित भया। तब अवलोकन किया, सो गुरु समीप संगीतगृहविषै वीण बजावती पद्माभा देखी। ताके रूपसमुद्रविषै उसका मन मग्न हो गया, मनकूं काढिवे को असमर्थ भया। वाकी ओर देखता रह्या। अर यह भी अति रूपवान, सो याके देखवेकरि वह भी मोहित भई। ये दोनों परस्पर प्रेमसूतकर बंधे। सो ताका मन जान श्रीकंठ ताहि आकाश मैं लेय चल्या।

तब परिवार के लोगों ने राजा पुष्पोत्तर पै पुकार करी कि तुम्हारी पुत्री को राजा श्रीकंठ ले गया। सो राजा पुष्पोत्तर के पुत्र को श्रीकंठ ने अपनी बहिन न परणाई, ताकरि वह क्रोधरूप था ही। अब अपनी पुत्री के हरवेकरि अत्यन्त कुपित होय सब सेना लेय श्रीकंठ के मारवे को पीछे लग्या। दांतनिकरि होंठनि को पीसता, क्रोधकरि जिसके नेत्र लाल हो रहे हैं, ऐसे महाबली को आवते देख श्रीकंठ डर्‍या। अर भाजकर अपने बहनेऊ लंका के धनी कीर्तिधवल की शरण आया। सो समय पाय बड़ों के शरणै जाय यह न्याय ही है।

राजा कीर्तिधवल श्रीकंठ को देखि अपना साला जान बहुत स्नेह करि सामने आय मिल्या, छातीसों लगाय बहुत सन्मान किया। इनमें आपस में कुशलवार्ता हो रही थी कि पुष्पोत्तर सेना सहित आकाश में आए। कीर्तिधवल ने उनको दूरतैं देख्या। राजा पुष्पोत्तर के संग अनेक विद्याधरों के समूह महा तेजवान हैं। खड्ग, सेल, धनुषवाण इत्यादि शस्त्रनि के समूहकरि आकाश मैं तेज होय रह्या है। ऐसे मायामई तुरंग ह्व वायु के समान है वेग जिनका, अर काली घटासमान मायामई गज चलायमान है घंटा अर सूंड जिनकी, मायामई सिंह, अर बड़े बड़े विमान तिनकरि मंडित आकाश देख्या।

उत्तर दिशा की ओर सेना का समूह देख राजा कीर्तिधवल क्रोधसहित हंसकर मंत्रियों को युद्ध करने की आज्ञा दीनीं। तदि श्रीकंठ लज्जातैं नीचे होय गए। अर श्रीकंठ ने कीर्तिधवल से कह्या

जो मेरी स्त्री अर मेरे कुटुम्ब की तो रक्षा आप करो अर मैं आप के प्रतापतैं युद्ध मैं शत्रुनि को जीत आऊंगा। तब कीर्तिधवल कहते भए कि यह बात तुमको कहना अयुक्त है। तुम सुखसों तिष्ठो, युद्ध करने को हम घने ही हैं। जो यह दुर्जन नरमीतैं शांत होय, तौ भला ही है, नहीं तो इनको मृत्यु के मुख मैं देखो। ऐसा कहि अपने स्त्री के भाई को सुखसैं अपने महल मैं राखि पुष्पोत्तर के निकट बड़ी बुद्धि के धारक दूत भेजे। ते दूत जाय पुष्पोत्तरसों कहते भए।

जो हमारे मुखतैं तुमको राजा कीर्तिधवल बहुत आदरतैं कहै हैं- कि तुम बड़े कुल में उपजे हो, तुम्हारी चेष्टा निर्मल है। तुम सर्व शास्त्र के वेत्ता हो, जगत् में प्रसिद्ध हो, अर सबनि मैं वयकर बड़े हो। तुमने जो मर्यादा की रीत देखी है सो काहू ने काननि से सुनी नाहीं। यह श्रीकंठ हू चंद्रमा की किरण समान निर्मल कुलविषै उपज्या है। अर धनवान है, विनयवान है, सुन्दर है, सर्वकला मैं निपुण है, यह कन्या ऐसे ही वर को देने योग्य है। कन्या के अर याके रूप अर कुल समान हैं। तातैं तुम्हारी सेना का क्षय कौन अर्थ करावना?

यह तो कन्यानि का स्वभाव ही है कि जो पराए गृह का सेवन करै। दूत जब लग यह बात कह ही रहे थे कि पद्माभा की भेजी सखी पुष्पोत्तर के निकट आई, अर कहती भई कि तुम्हारी पुत्री ने तुम्हारे चरणारबिंद को नमस्कार कर वीनती करी है। जो मैं तो लज्जा करि तुम्हारे समीप नहीं आई, तातैं सखी को पठाई है।

हे पिता! यां श्रीकंठ का रंचमात्रहू दूषन नाहीं, अल्पहू अपराध नाहीं। मैं कर्मानुभव करि याके संग आई हूं। जे बड़े कुल में उपजी स्त्री हैं तिनके एक ही वर होय है, तातैं यां टालि (इसके सिवाय) मेरे अन्य पुरुष का त्याग है। ऐसैं आय सखी ने वीनती करी। तब राजा सचिन्त होय रहे, मन में विचारी कि मैं सर्व बातों में समर्थ हूं, युद्ध में लंका के धनी को जीत श्रीकंठ को बांधकर ले जाऊ। परन्तु मेरी कन्या ही ने इसको वरया, तो मैं याकूं कहा कहूं? ऐसा जान युद्ध न किया। अर जो कीर्तिधवल के दूत आये हुते जिनको सन्मान करि विदा किये। अर जो पुत्री की सखी आई थी ताको भी सन्मानकर विदा दीनी। ते हर्ष करि भरे लंका अर राजा पुष्पोत्तर सर्व अर्थ के वेत्ता पुत्री की वीनतीतैं श्रीकंठ पर क्रोध तजि अपने स्थान को गए।

अथानन्तर मार्गशिर सुदी पडवा के दिन श्रीकंठ अर पद्माभा का विवाह भया। अर कीर्तिधवल ने श्रीकंठ सों कही - जो तुम्हारे वैरी विजयार्ध में बहुत हैं, तातैं तुम इहां ही समुद्र के मध्य में जो द्वीप है तहां तिष्ठो, तुम्हारे मन को जो स्थानक रुचे सो लेवो, मेरा मन तुम को छांड़ि नाहीं सकैं है। अर तुमहू मेरी प्रीति का बंधन तुड़ाय कैसे जावोगे? ऐसे श्रीकंठसों कहिकर अपने आनन्दनामा मंत्रीसों कही - जो तुम महाबुद्धिमान हो, अर हमारे दादे के मुह आगिले हो,

तुमतैं सार असार किछू छाना नाहीं। या श्रीकंठ के योग्य जो स्थानक होय सो बताओ।

तदि आनन्द कहते भए कि– महाराज! आपके सब ही स्थानक मनोहर हैं। तथापि आप ही देखिकरि जो दृष्टि में रुचै सो देहु। समुद्र के मध्य में बहुत द्वीप हैं, कल्पवृक्षसमान वृक्षों से मंडित जहां नाना प्रकार के रत्ननिकरि शोभित बड़े बड़े पहाड़ हैं। जहां देव क्रीडा करै हैं। तिन द्वीपों में महारमणीक नगर हैं, जहां स्वर्ण रत्ननि के महल हैं, सो तिनके नाम सुनहु ह्व संध्याकार, सुवेल, कांचन, हरिपुर, जोधन, जलधिध्वान, संसद्वीप, भरक्षमठ, अर्धस्वर्ग, कूटावर्त, विघट, रोधन, अमलकांत, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर अलंघन, नभोभान, क्षेम इत्यादि मनोज्ञ स्थानक हैं। जहां देव भी उपद्रव न कर सकैं।

यहांतैं उत्तरभागविषै तीन सौ योजन समुद्र के मध्य बानरद्वीप है, जो पृथ्वी में प्रसिद्ध है, जहां अवांतरद्वीप बहुत ही रमणीक हैं। कईएक तो सूर्यकांत मणिन की ज्योति से दैदीप्यमान है। अर कईएक हरितमणिनी की कांतिकरि ऐसे शोभै हैं मानो उगते हरे तृणों से भूमि व्याप्त होय रही है। अर कईएक श्याम इन्द्रनीलमणि की कांति के समूह से ऐसे शोभै हैं मानो सूर्य के भयतैं अंधकार वहां शरण आयकरि रह्या है। अर कहूं लाल जे पद्मरागमणिन के समूहकरि मानो रक्त कमलों का वन ही शोभै है। अर जहां ऐसी सुगंध पवन चालै है कि आकाश में उड़ते पक्षी भी सुगंध से मग्न हो जाय हैं, अर तहां वृक्षनि पर आय बैठे हैं।

अर स्फटिकमणिनि के मध्य मिली जो पद्मरागमणि तिनकरि सरोवर में कमल जाने जांय हैं। उन मणिनि की ज्योति करि कमलनि के रंग न जाने जाय हैं। जहां फूलनि की बासतैं पक्षी उन्मत्त भए ऐसैं उन्मत्त सुन्दर शब्द करै हैं मानो समीप के द्वीपनिसों अनुराग भरी बातें करै हैं। जहां औषधिनि की प्रभा के समूहकरि अंधकार दूर होय है, सो अंधारे पक्ष में भी उद्योत ही रहै हैं। जहां फल पुष्पनिकरि मंडित वृक्षों का आकार छत्र समान है। जिनके बड़े बड़े डाले हैं, उन पर पक्षी मिष्ट शब्द कर रहे हैं। जहां बिना बाहे धान आपसे ही उगे हैं।

कैसे हैं वे धान? वीर्य, अर कांति को विस्तीरणहारे सो मंद पवनकरि हिलते हुए शोभै हैं। तिनकरि पृथ्वी मानो कंचुकी (चोली) पहरे है। अर जहां लालकमल फूल रहे हैं। जिन पर भ्रमरों के समूह गुंजार करै है, सो मानो सरोवरी ही नेत्रनिकरि पृथ्वी का विलास देखै है। नीलकमल तो सरोवरीन के नेत्र भए, अर भ्रमर भौहैं भए। जहां पौढे अर सांठानि की विस्तीर्ण बाड हैं। सो पवनकरि हालनेतैं शब्द करै हैं ऐसा सुन्दर बानरद्वीप है। उसके मध्यविषै किहकुंदा नामा पर्वत है। वह पर्वत रत्न अर स्वर्ण की शिला के समूहकरि शोभायमान है। जैसा यह त्रिकूटाचल मनोज्ञ है, तैसा ही किहकुंद पर्वत मनोज्ञ है। अपने शिखरनिकरि दिशारूपी कांता को स्पर्श करै है।

आनन्द मंत्री के ऐसे वचन सुनकर राजा कीर्तिधवल बहुत आनन्द रूप भए, अर वानरद्वीप श्रीकंठ को दिया। तब चैत्र के प्रथम दिन श्रीकंठ परिवारसहित बानरद्वीप में गए। मार्ग में पृथ्वी की शोभा देखते चले जांय हैं। वह पृथ्वी नीलमणिनि की ज्योतिकरि आकाश समान शोभै है, अर महाग्रहों के समूहकरि संयुक्त समुद्र को देखि आश्चर्य को प्राप्त भए बानरद्वीप जाय पहुंचे।

बानरद्वीप मानो दूसरा स्वर्ग ही है। अपने नीझरनों के शब्द से मानों राजा श्रीकंठ को बुलावै ही है। नीझरने के छींटे आकाश को उछलै हैं, सो मानो राजा के आवेकरि अति हर्ष को प्राप्त भए आनन्दकर हंसै हैं। नानाप्रकार की मणिनि की कांतिकरि उपज्या जो कांति का सुन्दर समूह ताकरि मानों तोरणनि के समूह ही ऊंचे चढ़ रहे हैं। अब राजा वानरद्वीप में उतरे, अर सर्व ओर चौगिरद अपनी नीलकमलसमान दृष्टि सर्वत्र विस्तारी। छुहारे, आंवले, कैथ, अगरचन्दन, लाख, पीपरली, अर्जुन कहिए सहीजणां अर कदम्ब, आमली, चारोली केला, दाड़िम, सुपारी, इलायची, लवंग, मौलश्री अर सर्व जाति के मेवों से युक्त नानाप्रकार के वृक्षनिकरि द्वीप शोभायमान देख्या। ऐसी मनोहर भूमि देखी जिसके देखे और ठौर दृष्टि न जाय। जहां वृक्ष सरल अर विस्तीर्ण ऊपरि छत्र से बन रहे हैं । सघन सुन्दर पल्लव अर शाखा फूलनि के समूहकरि शोभै हैं, अर महा रसीले स्वादिष्ट, मिष्ट फलनिकरि नम्रीभूत होय रहे हैं। अर वृक्ष अति रसीले, अति ऊंचे हू नाहीं अति नीचे हूं नाहीं, मानों कल्पवृक्ष ही शोभै हैं।

अर जहां बेलनि पर फूलों के गुच्छे लग रहे हैं, जिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों यह बेलि तो स्त्री है, उनके जो पल्लव हैं सो हाथों की हथेली हैं, अर फूलों के गुच्छे कुच हैं, अर भ्रमर नेत्र हैं, वृक्षों से लग रहे हैं। अर ऐसे ही तो सुन्दर पक्षी बोलै हैं, अर ऐसे ही मनोहर भ्रमर गुंजार करै हैं, मानों परस्पर आलाप करै हैं। जहां कईएक देश तो स्वर्णसमान कांति को धरै हैं, कईएक कमल समान, कईएक वैडूर्य मणि समान हैं। ते देश नानाप्रकार के वृक्षनिकरि मंडित हैं, जिनको देखकर स्वर्गभूमि हू नहीं रुचै है। जहां देव क्रीड़ा करै हैं, जहां हंस, सारिस, सूवा, मैना, कबूतर, कमेड़ी इत्यादि अनेक जाति के पक्षीनि के युगल क्रीड़ा करै हैं। जहां जीवनि कों किसी प्रकार की बाधा नाहीं।

नानाप्रकार के वृक्षनि की छाया के मंडप, रत्न स्वर्ण के अनेक निवास, पुष्पनि की अति सुगंधी, ऐसे उपवन में सुन्दर शिलानि के ऊपर राजा जाय विराजे, अर सेना भी सकल वन में उतरी। हंसों, सारिसों, मयूरों के नानाप्रकार के शब्द सुने अर फल फूलों की शोभा देखी। सरोवरनि में मीन केल करते देखे। वृक्षों के फल गिरै हैं, अर पक्षियों के शब्द होय रहे हैं। सो मानों वह बन राजा के आवनेतैं फूलनि की वर्षा ही करै हैं, अर जयजयकार शब्द करै हैं। नानाप्रकार के

रत्ननिकरि मंडित पृथ्वीमंडल की शोभा देखि विद्याधरनि का चित्त बहुत सुखी भया।

बहुरि नन्दनवन सारिखा वह बन तामैं राजा श्रीकंठ ने क्रीड़ा करते संते बहुत वानर देखे जिनकी अनेक प्रकार की चेष्टा है। राजा देखिकरि मन में चिंतवने लगा कि तिर्यंच योनि के ये प्राणी मनुष्य समान लीला करै हैं। जिनके हाथ पग सर्व आकार मनुष्य का-सा है, सो इनकी चेष्टा देखि राजा चकित होय रहै। निकटवर्ती पुरुषनिसों कही – जो 'इनको मेरे समीप लाओ'। सो राजा की आज्ञातैं कईएक वानरनि को पकरि लाए सो राजा ने उनको बहुत प्रीतिसौं राखे। अर तिनि को नृत्य करणा सिखाया, अर उनके सफेद दांत दाड़िम के फूलनिसों रंगकर तमाशे देखे। अर उनके मुख में सोने के तार लगाय कौतूहल करावता भया। वे आपस में परस्पर जूवां काढ़ैं तिनके तमाशे देखे, अर वे आपस में स्नेह करैं, वा कलह करैं तिनके तमाशे देखे।

राजा ने ते कपि पुरुषनिकूं रक्षा निमित्त सौंपे। अर मीठे मीठे भोजनकरि तिनको पोखे। तिन बानरों को साथ लेकर किहकुंद पर्वत पर चढ़े। राजा का चित्त सुन्दर वृक्षबेलि पानी के नीझरणों से हरा गया। तहां पर्वत के ऊपर विषमतारहित विस्तीर्ण भूमि देखी। तहां किहकुंद नामा नगर बसाया। कैसा है वह नगर? जहां बैरियों का मन भी प्रवेश न कर सकै। चौदह योजन लंबा और चौदह योजन चौड़ा, अर जो परिक्रमा करिए तो वियालीस योजन कछुइक अधिक होय। जाके मणियों के कोट, रत्नों के दरवाजे वा रत्नों के महल। रत्नों का कोट इतना ऊंचा है कि अपने शिखरकरि मानो आकाशसों ही लग रह्या है, अर दरवाजे ऊंचे मणियों से ऐसे शोभै हैं मानो यह अपनी ज्योति से थिरीभूत होय रहे हैं।

घरनि की देहली पद्मराग मणिन की है, सो अत्यन्त लाल है, मानो यह नगरी नारी स्वरूप है, सो तांबूलकरि अपने अधर (होंठ) लाल कर रही है। अर दरवाजे मोतिन की मालाकरि युक्त हैं, सो मानों समस्त लोक की संपदा को हंसै हैं। अर महलनि के शिखरनि पर चन्द्रकांति मणि लगि रही है, सो रात्रि मैं ऐसा भासैं है, मानो अंधेरी रात्रिमैं चन्द्र उग रहा है। अर नानाप्रकार के रत्नों की प्रभा की पंक्ति करि मानो ऊंचे तोरण चढ़ रहे हैं। तहां घरनि की पंक्ति विद्याधरनि की बनाई हुई बहुत शोभै है। घरनि के चौक मणिन के हैं, अर जहां नगर के राजमार्ग बाजार बहुत सीधे हैं, तिनमें वक्रता नाहीं? अति विस्तीर्ण हैं मानो रत्ननि के सागर ही हैं। सागर जलरूप हैं, यह स्थलरूप हैं। अर मन्दिर के ऊपर लोगों ने कबूतरनि के निवास निमित्त नीलमणिनि के स्थान कर राखे हैं।

सो कैसे शोभै हैं, मानो रत्ननि के तेज ने अंधकार नगरीतैं काढ दिया है, सो शरण आयकर समीप पड्या है। इत्यादि नगर का वर्णन कहां तक करिए। इंद्र के नगर के समान वह नगर जिसमें

राजा श्रीकंठ पद्माभा राणीसहित जैसैं स्वर्गविषै शचीसहित सुरेश रमैं हैं, तैसैं बहुतकाल रमत भए। जे वस्तु भद्रशाल वन में तथा सौमनस वन में तथा नन्दन वन में न पाइए ते राजा के वन में पाई जावें।

एक दिन राजा महल ऊपर विराज रहे थे, सो अष्टाह्निका के दिनों में इन्द्र चतुरनिकाय के देवनि सहित नन्दीश्वर द्वीप को जाते देखे, अर देवनि के मुकुटनि की प्रभा के समूह से आकाश को अनेक रंगरूप ज्योतिसहित देख्या। अर बाजा बजानेवालों के समूहकरि दशों दिशा शब्दरूप देखी। किसी को किसी का शब्द सुनाई न देवै। कईएक देव मायामई हंसन पर तथा तुरंगनि पर तथा हंसनि पर अर अनेकप्रकार के बाहननि पर चढ़े जाते देखे। सो देवों के शरीर की सुगंधता से दशों दिशा व्याप्त हो गई।

तब राजा यह अद्भुत चरित्र देखि मन में विचारी कि नंदीश्वर द्वीप को देव जाय हैं। यह राजा हू अपने विद्याधरों सहित नंदीश्वर द्वीप को जाने की इच्छा करते भए। विना विवेक विमान पर चढ़करि राणी सहित आकाश के पथ से चाले, परन्तु मानुषोत्तर के आगैं इनका विमान न चल सक्या, देवता चले गए, यह अटक रहे।

तब राजा ने बहुत विलाप किया, मन का उत्साह भंग होय गया। कांति और ही होय गई। मन में विचारै है कि हाय! बड़ा कष्ट है, हम हीनशक्ति के धनी विद्याधर मनुष्य अभिमान कों धरें सो धिक्कार है हमको। मेरे मन में यह हुती कि नन्दीश्वर द्वीप में भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय हैं उनका मैं भावसहित दर्शन करूंगा, अर महामनोहर नानाप्रकार के पुष्प, धूप, गंध इत्यादि अष्ट द्रव्यनिकरि पूजा करूंगा, बारंबार धरती पर मस्तक लगाय नमस्कार करूंगा, इत्यादि जे मनोरथ किये हुते ते पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मकरि मेरे मंदभागी के भाग्य में न भए।

अथवा मैंने आगैं अनेक बार यह बात सुनी हुती कि मानुषोत्तर पर्वत को उल्लंघकर मनुष्य आगै न जाय है, तथापि अत्यन्त भक्ति रागकर यह बात भूल गया। अब ऐसे कर्म करूं जो अन्य जन्मविषै नन्दीश्वर द्वीप जाने की मेरी शक्ति हो। यह निश्चयकर वज्रकंठ नामा पुत्र को राज देय सर्व परिग्रह को त्याग राजा श्रीकंठ मुनि भए। एक दिन वज्रकंठ ने अपने पिता के पूर्वभव पूछने का अभिलाष किया।

तब वृद्ध पुरुष वज्रकंठ को कहते भए कि जो हमको मुनियों ने उनके पूर्वभव ऐसे कहे हुते– जो पूर्वभव में दो भाई वणिक हुते। तिन में प्रीत बहुत हुती, सो स्त्रियों ने वे जुदे किए। तिनमें छोटा भाई दरिद्री अर बड़ा भाई धनवान। सो बड़ा भाई सेठ की संगतितैं श्रावक भया। अर छोटा भाई कुव्यसनी दुखसों दिन पूरे करै। बड़े भाई ने छोटे भाई की यह दशा देखि बहुत धन दिया। अर भाई को उपदेश देय व्रत लिवाए, अर आप स्त्री का त्यागकर मुनि होय समाधिमरण करि इन्द्र भए।

अर छोटा भाई शांतपरिणामी होय, शरीर छोड़ देव हुवा। देव से चयकरि श्रीकंठ भया। बड़े भाई का जीव द्रव्य भया था, सो छोटे भाई के स्नेहतैं अपना स्वरूप दिखावता संता नन्दीश्वर द्वीप गया सो इंद्र को देखि राजा श्रीकंठ को जातिस्मरण हुवा, सो बैरागी भए।

यह अपने पिता का व्याख्यान सुन राजा वज्रकंठहू इन्द्रायुधप्रभ पुत्र को राज देय मुनि भए। अर इन्द्रायुधप्रभ भी इन्द्रभूत पुत्र को राज्य देय मुनि भए। तिनकैं मेरु, मेरु कै मंदिर तिनकै समीरणगति, तिनकै रविप्रभ, तिनकै अमरप्रभ पुत्र हुआ। सो लंका के धनी की बेटी गुणवती परणी, सो गुणवती राजा अमरप्रभ के महल में अनेक भांति के चित्राम देखती भई। कहीं तो शुभ सरोवर देखे जिनमें कमल फूल रहे हैं, अर भ्रमर गुंजार करै हैं। कहीं नीलकमल फूल रहे हैं। हंस के युगल क्रीड़ा कर रहे हैं, जिनकी चूंचनि में कमलनि के तंतु, ऐसे हंसनि के युगल क्रीड़ा करै हैं। अर क्रोंच, सारस इत्यादि अनेक पक्षियों के चित्राम देखे सो प्रसन्न भई। अर एक ठौर पंच प्रकार के रत्नों के चूर्ण से वानरों के स्वरूप देखे।

वे विद्याधरों ने चितेरे हैं, सो राणी वानरों के चित्राम देखि भयभीत होय कांपने लगी। रोमांच होय आए। पसेव की बूंदों से माथे का तिलक बिगड़ गया, अर आंखों के तारे फिरने लगे। राजा अमरप्रभ यह वृत्तांत देखि घर के चाकरों से बहुत खिझे कि मेरे विवाह में ये चित्राम किसने कराए। मेरी प्यारी राणी इनको देखि डरी। तदि बड़े लोगों ने अरज करी कि महाराज! इसमें किसी का भी अपराध नहीं। आपनै कही जो यह चित्राम कराणेहारे ने हमको विपरीत भाव दिखाया, सो ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा सिवाय काम करै? सबनि के जीवनमूल आप हो, आप प्रसन्न होयकर हमारी विनती सुनो।

आगैं तुम्हारे वंश में पृथ्वी पर प्रसिद्ध राजा श्रीकंठ भए। जिनने यह स्वर्ग समान नगर बसाया, अर नानाप्रकार के कौतूहल का धारणहारा जो यह देश ताके वे मूलकारण ऐसे होते भए जैसें कर्मों का मूलकारण रागादिक प्रपंच है। बननि के मध्य लतागृह में सुखसों तिष्ठी हुई किन्नरी जिनके गुण गावै हैं, अर किन्नर हू गावै हैं। इन्द्र समान जिनकी शक्ति थी ऐसे वे राजा, तिन्होंने अपनी स्थिर प्रकृतितैं लक्ष्मी की चंचलता करि उपज्या जो अपयश सो दूर किया। सो राजा श्रीकंठ इन वानरों को देखकर आश्चर्य को प्राप्त भए अर इन सहित रमे, मीठे मीठे भोजन इनको दिये। अर इनके चित्राम कढाये। पीछे उनके बंश में जो राजा भए, तिनने मंगलीक कार्यों में इनके चित्राम मंडाए, अर वानरनिसों बहुत प्रीत राखी? तातैं पूर्व रीत प्रमाण अब हू लिखे हैं।

ऐसा कह्या तदि राजा क्रोध तजि प्रसन्न होय आज्ञा करते भये- जो हमारे बड़ेनि ने मंगलकार्य में इनके चित्राम दिखाए तो अब भूमि में मत डारो जहां मनुष्यनि के पांव लगै, मैं इनको

मुकुटविषै राखूंगा। अर ध्वजाओं में इनके चिह्न कराओ, अर महलों के शिखर तथा छत्रों के शिखर पर इनके चिह्न करावो। यह आज्ञा मंत्रियों को करी सो मंत्रियों ने उस ही भांति किया। राजा ने गुणवती राणीसहित परम सुख भोगते विजयार्ध की दोऊ श्रेणी के जीतने का मन किया। बड़ी चतुरंग सेना लेकर विजयार्ध गये। राजा की ध्वजाओं में अर मुकुटों में कपिनि के चिह्न हैं। राजा ने विजयार्ध जायकर दोऊ श्रेणी जीत करि सब राजा वश किए। सर्व देश अपनी आज्ञा में किए। किसी का भी धन न लिया। जो बड़े पुरुष हैं तिनका यह व्रत है जो राजानि को नवाबैं, अपनी आज्ञा में करैं, किसी का धन न हरैं।

सो राजा विद्याधरनि को आज्ञा में कर पीछे किहकूपुर आए। विजयार्ध के बड़े बड़े राजा साथ आए। सब विद्याधरों का अधिपति होय घने दिनतक राज्य किया। लक्ष्मी चंचल हुती सो नीति की बेडी डालि निश्चल करी। तिनके पुत्र कपिकेतु भए, जिनके श्रीप्रभा राणी बहुत गुण की धरणहारी। ते राजा कपिकेतु अपने पुत्र विक्रमसंपन्न को राज्य देय वैरागी भए। अर विक्रमसंपन्न प्रतिबल पुत्र को राज्य देय वैरागी भए। यह राज्यलक्ष्मी विष की बेल के समान जानी। बड़े पुरुषों के पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावकरि यह लक्ष्मी विना ही यत्न मिलै है। परन्तु उनके लक्ष्मी में विशेष प्रीति नाहीं। लक्ष्मी को तजते खेद नाहीं होय है। किसी पुण्य के प्रभावकरि राज्यलक्ष्मी पाय देवों के सुख भोग फिर वैराग्य को प्राप्त होयकर परमपद को प्राप्त होय है।

मोक्ष का अविनाशी सुख उपकरणादि सामग्री के आधीन नाहीं। निरन्तर आत्माधीन है। वह महासुख अन्तरहित है, अविनश्वर है। ऐसे सुख को कौन न बांछै? राजा प्रतिबल के गगनानन्द पुत्र भए, तिनके खेचरानन्द, उसके गिरिनन्द, या भांति बानरवंशियों के वंश में अनेक राजा भये। ते राज्य तजि वैराग्य धर स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त भए। इस बंश के समस्त राजाओं के नाम अर पराक्रम कौन कह सकै? जिसका जैसा लक्षण होय सो तेसा ही कहावै। सेवा करै सो सेवक कहावै, धनुष धारै सो धनुषधारी कहावै, पर की पीड़ा टालै सो शरणागति प्रतिपाल होय क्षत्री कहावै, ब्रह्मचर्य पालै सो ब्राह्मण कहावै। जो राजा राज्य तजिकर मुनि होय सो मुनि कहावै। श्रम कहिये तप धारै सो श्रमण कहावै।

यह बात प्रकट ही है– लाठी राखै सो लाठी वाला कहावै, सेल राखै सो सेलवाला कहावै। तैसे यह विद्याधर छत्र ध्वजाओं पर बानरों के चिह्न राखते भयै तातैं बानरवंशी कहाए। भगवान श्रीवासुपूज्य के समय राजा अमरप्रभ भए। तिनने बानरों के चिह्न मुकुट छत्र ध्वजानि में बनाए तबतैं इनके कुल में यह रीति चली आई। या भांति संक्षेपतैं बानर वंशियों की उत्पत्ति कही।

अथानन्तर या कुल विषै महोदधि नामा राजा भए, जिनके विद्युतप्रकाशा नामा राणी भई। वह

राणी पतिव्रता स्त्रियों के गुण की निधान है, जिसने अपने विनय अंगकरि पति का मन प्रसन्न किया है। राजा के सुन्दर सैकड़ों रानी हैं, तिनकी यह राणी शिरोभाग्य है। महा सौभाग्यवती रूपवती ज्ञानवती है। उस राजा के महापराक्रमी एक सौ आठ पुत्र भये। तिनको राज्य का भार देय राजा महासुख भोगते भये। मुनिसुव्रतनाथ के समय में बानरवंशियनि में यह राजा महोदधि भये। अर लंका में विद्युतकेश के अर महोदधि के परम प्रीति भई। कैसे हैं ये दोऊ? सकल प्राणियों के प्यारे, अर आपस में एक चित्त, देह न्यारी भई तो कहा, सो विद्युतकेश मुनि भये। यह वृत्तांत सुन महोदधि भी वैरागी भए।

यह कथा सुन राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी सों पूछी- हे स्वामी! राजा विद्युतकेश किस कारण से वैरागी भये?

तब गौतम स्वामी ने कहा कि एक दिन विद्युतकेश प्रमदानामा उद्यान में क्रीड़ा करने को गये। कैसा है उद्यान? जहां क्रीड़ा के निवास अति सुन्दर हैं, निर्मल जल के भरे सरोवर हैं, तिनमें कमल फूल रहे हैं। अर सरोवरनि में नावैं डार राखी हैं। बन में ठौर ठौर हिंडोले हैं, सुन्दर बेल अर क्रीड़ा करने के सुवर्ण के पर्वत, जिनके रत्नों के सिवाण, वृक्ष मनोज्ञ फल फूलनिकरि मंडित, जिनके पल्लवसौं हालती लता अति शोभै है, अर लताओं से लिपटि रहे हैं। ऐसे में बन में राजा विद्युतकेश राणियों के समूह विषै क्रीड़ा करते हुते।

कैसी हैं राणी? मन की हरणहारी, पुष्पादिक के चूटने में आसक्त हैं। जिनके पल्लव समान कोमल सुगंध हस्त अर मुख की सुगंध करि भ्रमर जिन पर भ्रमै हैं। क्रीड़ा के समय राणी श्री चन्द्रा के कुच एक बानर ने नखनितैं विदारै, तदि राणी खेदखिन्न भई। रुधिर आय गया। राजा ने राणी को दिलासा देय करि अज्ञानभावतैं बानर को वाणतैं बीध्या सो बानर घायल होय एक गगनचारण महामुनि के पास जाय पड्या। वे दयालु बानर को कांपता देखि दयाकरि पंचनमोकार मन्त्र देते भये। सो बानर मरकर उदधिकुमार जाति का भवनवासी देव उपज्या।

यहां बन में बानर के मरण पीछैं राज के लोक अन्य बानरों को मार रहे थे सो उदधिकुमार ने अवधि से विचारकर बानरों को मारते जान, मायामई बानरों की सेना बनाई। वे बानर ऐसे बने, जिनकी दाढ़ विकराल, वदन विकराल, भोंह विकराल, सिंदूर सारिखा लाल मुखसों डरानेवाले शब्द को कहते हुवे आये। कईएक हाथ में पर्वत धरैं, कईएक मूल से उपारे वृक्षों को धरैं, कईएक हाथनिसों धरती कूटते संते, कईएक आकाश में उछलते संते, क्रोध के भारकर रौद्र है अंग जिनका, उन्होंने आय राजा को घेर्‍या, अर कहते भये - अरे दुराचारी! सम्हार, तेरी मृत्यु आई है। तू बानरोंकूं मारकरि अब किसकी शरण जायगा?

तब विद्युतकेश डर्‍या अर जान्या कि यह बानरों का बल नाहीं, देवमाया है। तब देह की आशा छोडि महामिष्ट बाणी करके विनती करता भया कि–''महाराज! आज्ञा करो, आप कौन हो, महादेदीप्यमान प्रचंड शरीर जिनके, यह बानरनि की शक्ति नाहीं। आप देव हैं।'' तदि राजा को अति विनयवान देखि महोदधि कुमार बोले – ''हे राजा! बानर पशु जाति जिनका स्वभाव ही अति चंचल है, उनको तैने स्त्री के अपराधसों हते, सो मैं साधु के प्रसाद से देव भया। मेरी विभूति तू देखि।''

राजा कांपने लग्या, हृदयविषै भय उपज्या, रोमांच होय आए। तब महोदधि कुमार ने कही – ''तू मत डर।'' तब इसने कह्या, कि ''जो आप आज्ञा करो सो करूं।'' तब देव इसको गुरु के निकट लेय गया। वह देव अर राजा ये दोनों मुनि की प्रदक्षिणा देय नमस्कार कर जाय बैठे। देव ने मुनिसों कही कि–''मैं बानर हुता सो आप के प्रसादतैं देव भया, अर राजा विद्युतकेश ने मुनिसों पूछ्या कि मुझे क्या कर्त्तव्य है। मेरा कल्याण किस तरह होय?

तदि मुनि चार ज्ञान के धारक हुते सो तपोधन कहते भएद्ध कि हमारे गुरु निकट ही हैं, उनके समीप चालो। अनादिकाल का यह धर्म है कि गुरुओं के निकट जाय धर्म सुनिये। आचार्यनि के होते संते जो उनके निकट न जाय अर शिष्य ही धर्मोपदेश देय तो वह शिष्य नहीं, कुमार्गी है, आचार से भ्रष्ट है। ऐसा तपोधन ने कह्या तब देव अर विद्याधर चित्त में चिंतवते भये कि ऐसे महापुरुष हैं, ते भी गुरु की आज्ञा बिना उपदेश नाहीं करै हैं। अहो! तप का माहात्म्य अति अधिक है। मुनि की आज्ञा से वह देव अर विद्याधर मुनि के गुरु पै गये। तहां जायकर तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कारकर गुरु के निकट न अति नीरे न घने दूरे बैठे। महामुनि की मूर्ति देखि देव अर विद्याधर आश्चर्य को प्राप्त भये। कैसी है महामुनि की मूर्ति? तप की राशिकर उपजी जो दीप्ति ताकरि दैदीप्यमान है। देखकरि नेत्रकमल फूल गये। महा विनयवान होय देव अर विद्याधर धर्म का स्वरूप पूछते भये।

कैसैं हैं मुनि? जिनका मन प्राणियों के हित में सावधान है, अर रागादिक जो संसार के कारण हैं तिनके प्रसंग से दूर हैं। जैसैं मेघ गम्भीर ध्वनिकरि गर्जै अर बरसै, तैसैं महागम्भीर ध्वनिकरि जगत के कल्याण के निमित्त परम धर्मरूप अमृत बरसाते भए। जब मुनि ज्ञान का व्याख्यान करने लगे तदि मेघ का सा नाद (शब्द) जान लताओं के मंडप में जो मयूर तिष्ठे थे वे नृत्य करते भए।

मुनि कहते भए – अहो देव विद्याधरो! तुम चित्त लगाय सुनो, तीन भव का आनन्द करणहारे श्रीजिनराज ने जो धर्म का स्वरूप कह्या है, सो मैं तुमको कहू हूं। कईएक जो प्राणी नीचबुद्धि हैं, विचार रहित जड़चित्त हैं, ते अधर्म ही को धर्म जानि सेवै हैं। जो मार्ग को न जानैं सो घने

काल में भी मनवांछित स्थान को न पहुंचे। मंदमति मिथ्यादृष्टि विषयाभिलाषी जीव हिंसा कर उपज्या जो अधर्म ताकों धर्म जान सेवैं हैं ते नरक निगोद के दुख भोगवै हैं। जे अज्ञानी खोटे दृष्टांतनि के समूहकरि भरे महापापनि के पुंज मिथ्या ग्रंथों के अर्थ तिनकर धर्म जान प्राणिघात करै हैं, ते अनन्तसंसार भ्रमण करै हैं। जे अधर्मचर्चा करके वृथा बकवाद करै हैं ते दंडों से आकाश को कूटै हैं, सो कैसै कूटा जाय? जो कदाचित् मिथ्यादृष्टियों के कायक्लेशादि तप होय, अर शब्द ज्ञान भी होय, तो भी मुक्ति का कारण नाहीं।

सम्यक्दर्शन बिना जो जानपना है, सो ज्ञान नाहीं। अर जो आचरण है, सो कुचारित्र है। मिथ्यादृष्टियनि का जो तप व्रत है सो पाषाण बराबर है, अर ज्ञानी पुरुषों के जो तप है सो सूर्यमणि समान है। धर्म का मूल जीवदया है, अर दया का मूल कोमल परिणाम हैं। सो कोमल परिणाम दुष्टों के कैसें होय ? अर परिग्रहधारी पुरुषनि कों आरंभ करि हिंसा अवश्य होय है। तातैं दया के निमित्त परिग्रह आरम्भ तजना चाहिए। तथा सत्यवचन धर्म है, परन्तु जिस सत्य से परजीवों को पीड़ा होय, सो सत्य नाहीं झूठ ही है। अर चोरी का त्याग करना, परनारी तजनी, परिग्रह का परिमाण करना, संतोष व्रत धरना, इन्द्रियों के विषय निवारने, कषाय क्षीण करने, देव गुरु धर्म का विनय करना, निरंतर ज्ञान का उपयोग राखना, यह सम्यदृष्टि श्रावकों के व्रत तुझे कहे।

अब घर के त्यागी मुनियों के धर्म सुनो। सर्व आरम्भ का परित्याग, दशलक्षण धर्म का धारण, सम्यग्दर्शनकर युक्त महाज्ञान, वैराग्यरूप यति का मार्ग है। महामुनि पंच महाव्रतरूप हाथी के कांधे चढ़े हैं, अर तीन गुप्तिरूप दृढ़ बकतर पहरे हैं। अर पांच समितिरूप पयादों से संयुक्त हैं। नानाप्रकार तपरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से मंडित हैं, अर चित्त के आनन्द करणहारे है। ऐसे दिगम्बर मुनिराज कालरूप वैरी को जीतै हैं। वह कालरूप बैरी मोहरूप मस्त हाथी पर चढ़ा है। अर कषायरूप सामंतों से मंडित है।

यती का धर्म परमनिर्वाण का कारण है, महामंगलरूप है। उत्तम पुरुषनिकरि सेवने योग्य है। अर श्रावक का धर्म तो साक्षात् स्वर्ग का कारण है, अर परम्पराय मोक्ष का कारण है। स्वर्ग में देवों के समूह के मध्य तिष्ठता मनवांछित इन्द्रियों के सुख को भोगै है। अर मुनि के धर्म से कर्म काट मोक्ष के अतींद्रिय सुख को पावै है, अतीन्द्रिय सुख सर्व बाधा रहित अनुपम है, जिसका अन्त नाहीं, अविनाशी है। अर श्रावक के व्रतकरि स्वर्ग जाय तहांतैं चय, मनुष्य होय मुनिराज के व्रत धर परमपद को पावै है। अर मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् तप कर स्वर्ग जाय तो चय कर एकेंद्रियादिक योनिविषै आयकर प्राप्त होय है, अनन्त संसार भ्रमण करै है।

तातैं जैन ही परम धर्म है, अर जैन ही परम तप है, जैन ही उत्कृष्ट मत है। जिनराज के वचन

ही सार हैं। जिनशासन के मार्ग से जो जीव मोक्ष प्राप्त होने को उद्यमी हुआ, ताको जो भव धरने पड़ें तो देव विद्याधर राजानि के भव तो विना चाहे सहज ही होय हैं, जैसैं खेती के करणहारे का उद्यम धान्य उपजाने का है, घास कवाड़ पराल इत्यादि सहज ही होय हैं, अर जैसैं कोऊ पुरुष नगर को चाल्या ताको मार्ग में वृक्षादिक का संगम खेद का निवारण है, तैसैं ही शिवपुरी को उद्यमी भए। जे महामुनि हैं तिनको इन्द्रादिक पद शुभोपयोग के कारण से होय हैं, मुनि का मन तिनमें नाहीं। शुद्धोपयोग के प्रभाव से सिद्ध होने का उपाय है। अर श्रावक अर मुनि के धर्म से जो विपरीत मार्ग है, सो अधर्म जानना। जिससे यह जीव नानाप्रकार कुगति में दुःख भोगै है।

तिर्यंच योनि में मारण, ताडन, छेदन, भेदन, शीत, उष्ण, भूख, प्यास इत्यादि नानाप्रकार के दुःख भोगै हैं। अर सदा अंधकारसूं भरे जे नरक तिनविषै अत्यन्त उष्ण शीत महा विकराल पवन जहां अग्नि के कण बरसै हैं, नानाप्रकार के भयंकर शब्द जहां नारकियों को घानी में पेलै हैं, करोते से चीरै हैं। जहां भयकारी शाल्मली वृक्षों के पत्र चक्र खडग सेलसमान हैं। तिन करि तिनके तन खंड खंड होय हैं। जहां तांबा शीशा गालकर मदिरा के पीवनहारे पापियों को प्यावें हैं। अर मांस भक्षियों को तिनही के मांस काट काट उनके मुख में देवैं हैं, अर लोह के तप्त गोले सिंडासी से मुख फाड फाड जोरावरी से मुख में देवैं हैं।

अर परदारा संगम करनहारे पापियों को ताती लोहे की पुतलियों से चिपटावै हैं। जहां मायामई सिंह, व्याघ्र, स्याल इत्यादि अनेक प्रकार बाधा करैं हैं। अर जहां मायामयी दुष्ट पक्षी तीक्ष्णचोंच से चूटैं हैं। नारकी सागरों की आयुपर्यंत नानाप्रकार के दुख, त्रास, मार भोगै हैं, मारते मरै नाहीं, आयु पूर्ण कर ही मरै हैं। परस्पर अनेक बाधा करै हैं, अर जहां मायामयी मक्षिका अर मायामयी कृमि सूई समान तीक्ष्ण मुखतैं चूटैं हैं। यह सर्व मायामयी जानने। अर पशु पक्षी तथा विकलत्रय तहां नाहीं, नारकी जीव ही हैं। तथा पंच प्रकार के स्थावर सर्वत्र ही हैं। नरक में जो दुःख जीव भोगै हैं, उसके कहने को कौन समर्थ है? तुम दोऊ कुगति में बहुत भ्रमे हो ऐसा मुनि ने कह्या। तब यह दोऊ अपना पूर्वभव पूछते भए।

संयमी मुनि कहै हैं कि तुम मन लगाकर सुनो – यह दुःखदाई संसार यामैं तुम मोह से उन्मत्त होकर परस्पर द्वेष धरते आपस में मरण मारण करते अनेक योनि में प्राप्त भए। तिनमें एक तो काशी नामा देश में पारधी भया, दूजा श्रावस्तीनामा नगरी में राजा का सूर्यदत्त नामा मंत्री भया। सो गृह त्यागकर मुनि भया, महा तपकर युक्त अतिरूपवान पृथ्वी में विहार करै। सो एक दिन काशी के वन में जीव जंतुरहित पवित्र स्थानक में मुनि विराजे हुते। अर श्रावक श्राविका अनेक दर्शन को आए हुतै, सो वह पापी पारधी मुनि को देख तीक्ष्ण वचनरूप शस्त्रतैं मुनि को बींधता

भया। यह विचारकर कि यह निर्लज्ज मार्गभ्रष्ट स्नानरहित मलीन मुझको शिकार में जाने को अमंगलरूप भया है।

ये वचन पारधी ने कहे तब मुनि को ध्यान का विघ्न करणहारा संक्लेशभाव उपज्या। फिर मन में विचारी कि मैं मुनि भया, सो मोकूं क्लेशरूप भाव कर्त्तव्य नाहीं। ऐसा क्रोध उपजै है जो एक मुष्टि प्रहार कर इस पापी पारधी को चूर्ण कर डारूँ। मुनि के अष्टम स्वर्ग जायवे को पुण्य उपज्या था, सो कषाय के योगतैं क्षीण पुण्य होय मरकर ज्योतिषीदेव भया, तहां मैं चयकर तू विद्युतकेश विद्याधर भया। अर वह पारधी बहुत संसार भ्रमणकर लंका के प्रमदनामा उद्यान में वानर भया, सो तुमने स्त्री के अर्थि बाण कर मार्‍या सो बहुत अयोग्य किया। पशु का अपराध सामंतों को लेना योग्य नाहीं। यह बानर नवकार मंत्र के प्रभावतैं उदधिकुमार देव भया।

ऐसा जानकर हे विद्याधरो! तुम बैर का त्याग करो जिससे इस संसार में तुम्हारा भ्रमण होय रह्या है, जो तुम सिद्धों के सुख चाहो हो तो राग-द्वेष मत करो। सिद्धों के सुखों का मनुष्य अर देवों से वरणन न होय सके, अनन्त अपार सुख है। जो तुम मोक्षाभिलाषी हो अर भले आचारकर युक्त हो तो श्रीमुनिसुव्रतनाथ की शरण लेहु। परम भक्ति से युक्त इन्द्रादिक देव भी तिनको नमस्कार करै हैं। इंद्र अहमिंद्र, लोकपाल सर्व उनके दासों के दास हैं। वे त्रिलोकीनाथ, तिनकी तुम शरण लेयकर परम कल्याण को प्राप्त होवोगे। वे भगवान् ईश्वर कहिए समर्थ हैं, जिनके सर्व अर्थ पूर्ण हैं, कृतकृत्य हैं। ये जो मुनि के वचन, तेई भयी सूर्य की किरण, तिनकरि विद्युतकेश विद्याधर का मन कमलवत् फूल्या, सुकेशनामा पुत्र को राज्य देय मुनि के शिष्य भए। राजा महाधीर है, सम्यक्‌दर्शनज्ञानचारित्र का आराधन कर उत्तम देव भए।

किंहकुपुर के स्वामी राजा महोदधि विद्याधर बानरवंशीन के अधिपति चंद्राकांतमणियों के महल ऊपर विराजे हुते अमृतरूप सुन्दर चर्चाकर इन्द्रसमान सुख भोगते भए। तिनतैं एक विद्याधर श्वेतवस्त्र पहरे शीघ्र जाय नमस्कार कर कहता भया कि प्रभो! राजा विद्युतकेश मुनि होय स्वर्ग सिधारे। यह सुनकर राजा महोदधि ने भोगभावतैं विरक्त होय जैनदीक्षाविषै बुद्धि धरी, अर ए वचन कहे कि मैं भी तपोवन को जाऊंगा। ये वचन सुनि राजलोक मंदिर में विलाप करते भए, सो विलाप कर महल गूंजि उठ्या।

कैसा है राजलोक? वीण बांसुरी मृदंग की ध्वनि समान है शब्द जिनके। अर युवराज भी आयकर राजासों विनती करता भया कि- राजा विद्युतकेश का अर अपना एक व्यवहार है। राजा ने बालक पुत्र सुकेश को राज दिया है, सो तिहारे भरोसे दिया है। सो सुकेश के राज्य की दृढ़ता तुमको राखनी। जैसा उनका पुत्र तैसा तिहारा, तातैं कईएक दिन आप वैराग्य न धारें। आप नव

यौवन हो। इन्द्र के-से भोगनिकरि यह निःकंटक राज्य भोगो। या भांति युवराज ने विनती करी। अर अश्रुपातनि की वर्षा करी तौ भी राजा के मन में न आई।

अर मंत्री महानय के वेत्ता ने भी अतिदीन होय बीनती करी कि हे नाथ! हम अनाथ हैं। जैसें बेल वृक्षिनिसों लगि रही है, तैसें तुम्हारे चरण से लगि रहे हैं, तुम्हारे मन मैं हमारा मन तिष्ठै है, सो हमको छांडिकर जाबो योग्य नाहीं। या भांति बहुत विनती करी तो हू राजा न मानी। अर राणी ने बहुत विनती करी, चरणों में लौट गई। बहुत अश्रुपात डारे। कैसी है राणी? गुणनि के समूहकरि राजा की प्यारी हुती, सो विरक्तभावकरि राजा ने नीरस देखी।

तब राणी कहै है कि- हे नाथ! हम तिहारे गुणनिकर बहुत दिननि की बंधी, अर तुम हमको बहुत लड़ाई, (लाड़-प्यार किया) महालक्ष्मी समान हमको मायाकरि राखी, अब स्नेहपाश तोडि कहां जावो हो? इत्यादि अनेक बात करी, सो राजा चित्त में न धरी। अर राजा के बड़े बड़े सामंतों ने भी विनती करी कि- हे देव! इस नवयौवन में राज छांड़ि कहां जावो हो? सबनितैं मोह क्यों तज्यो? इत्यादि अनेक स्नेह के वचन कहे परन्तु राजा ने किसी की न सुनी। स्नेहपाश छेदि, सर्वपरिग्रह का त्यागकरि, प्रतिचंद्र पुत्र को राज्य देय आप अपने शरीर हूतैं भी उदास होय दिगम्बरी दीक्षा आदरी।

कैसे हैं राजा? पूर्ण बुद्धिवान, महाधीर-वीर, पृथ्वी पर चन्द्रमा समान उज्ज्वल है कीर्ति जाकी, सो ध्यानरूप गज पर चढ़करि तपरूपी तीक्ष्ण शस्त्रसों कर्मरूपशत्रु को काट सिद्धपद को प्राप्त भए। प्रतिचन्द्र भी कईएक दिन राजकर अपने पुत्र किहकंध को राज्य देय अर छोटे पुत्र अंधकरूढ़ को युवराजपद देय आप दिगम्बर होय शुक्लध्यान के प्रभावकरि सिद्धस्थान को प्राप्त भए।

अथानन्तर राजा किहकंध, अर अंधकरूढ़ दोऊ भाई चांद सूर्यसमान औरों के तेज को दाबिकरि पृथ्वी पर प्रकाश करते भए। तासमय विजयार्धपर्वत की दक्षिणश्रेणीविषै रथनूपुरनामा नगर सुरपुर समान तहां राजा अशनिवेग महापराक्रमी, दोऊ श्रेणी के स्वामी जिनकी कीर्ति शत्रुनि का मान को हरनहारी, तिनके पुत्र विजयसिंह महारूपवान, ते आदित्यपुर के राजा विद्यामंदिर विद्याधर, ताकी राणी वेगवती, ताकी पुत्री श्रीमाला, ताके विवाहनिमित्त जो स्वयंवर मंडप रचा हुता, अर अनेक विद्याधर आए हुते, तहां अशनिवेग के पुत्र विजयसिंह भी पधारे। कैसी है श्रीमाला? जाकी कांतिकरि आकाशविषै प्रकाश होय रह्या है।

सकल विद्याधर सिंहासन पर बैठे हैं। बड़े बड़े राजाओं के कुंवर थोड़े थोड़े साथ सों तिष्ठै हैं, सबनि की दृष्टि-सोई भई नीलकमलनि की पांति, सो श्रीमाला के ऊपर पड़ी। श्रीमाला को किसी से भी रागद्वेष नाहीं, मध्यस्थ परिणाम है। अर ते विद्याधरकुमार मदनकरि तप्त हैं चित्त जिनका,

ते अनेक सविकार चेष्टा करते भए। कईएक तो माथे का मुकुट निकंप था तो भी उसको सुन्दर हाथनिकरि ठीक करते भए। कईएक खंजर पास धस्या था तो भी करके अग्रभागसों हिलावते भए, कटाक्षकरि करी है दृष्टि जिन्होंने, अर कईएक के किनारे मनुष्य ढोरते हुते, अर वीजना करते हुते तौ भी लीलासहित महासुन्दर रूमाल से अपने मुख को वयार करते भए। अर कईएक वाम चरण पर दाहिना पांव मेलते भए।

कैसे हैं राजानि के पुत्र? सुन्दर रूपवान हैं, नवयौवन हैं, कामकला में निपुण हैं। दृष्टि तो कन्या की ओर अर पग के अंगुष्ठसों सिंहासन पर किछू लिखते भए। अर कईएक महा मणियों के समूहकरि युक्त जो सूत्र, कटि में गाढा बंध्या हुता तौ भी उसे संवार गाढा बांधते भए। अर कईएक चंचल हैं नेत्र जिनके, निकटवर्तीनितैं केलिकथा करते भए। कईएक अपने सुन्दर कुटिल केशिनि कों संभारते भए। कईएक जापर भ्रमर गुंजार करै हैं, ऐसे कमल को दाहिने हाथसों फिरावते भए, मकरंद की रज विस्तारते भए। इत्यादि अनेक चेष्टा राजानि के पुत्र स्वयंबर मंडप में करते भए।

कैसा है स्वयंबरमंडप? जाविषै बीन बांसुरी मृदंग नगारे इत्यादि अनेक बाजे बाज रहे हैं। अर अनेक मंगलाचरण होय रहे हैं। अर बंदीजनों के समूह सत्पुरुषनि के अनेक शुभ चरित्र वर्णन करै हैं। उस स्वयंवरमंडप में सुमंगला नामा धाय जाके एक हाथ में स्वर्ण की छड़ी एक हाथ में बेंत की छड़ी कन्या को हाथ जोड़ महा विनय कर कहती भई। कन्या नानाप्रकार के मणि भूषणनिकरि साक्षात् कल्पवेल समान है।

हे पुत्री! यह मार्तंडकुंडल नामा कुंवर नभस्तिलक के राजा चंद्रकुंडल, राणी बिमला तिनका पुत्र है, अपनी कांतिकरि सूर्य को भी जीतनहारा अति रमणीक है, अर गुणनि का मंडन है। या सहित रमवे की इच्छा है तो याकूं वर, यह शस्त्रशास्त्र विद्या में निपुण है। तब यह कन्या याकों देख यौवनसों कछुइक चिग्या जानि आगै चाली। बहुरि धाय बोली – हे कन्या! यह रत्नपुर का राजा विद्यांग राणी लक्ष्मी, तिनका पुत्र विद्यासमुद्रघात नामा बहुत विद्याधरों का अधिपति, याका नाम सुन बैरी ऐसा कांपै जैसै पीपल का पत्र पवनसों कांपै। महामनोहर हारों से युक्त याका सुन्दर वक्षस्थल विषै लक्ष्मी निवास करै है, तेरी इच्छा होय तो याकों वर। तदि याकों भी सरल दृष्टिकरि देख आगैं चाली। बहुरि धाय बोली। कैसी है धाय? जो कन्या के अभिप्राय को जाननहारी है।

हे सुते! यह इन्द्रसारिखा राजा बज्रशील का कुंवर खेचरभानु बज्रपंजर नगर का अधिपति है, याकी दोऊ भुजानि मैं राज्यलक्ष्मी चंचल है तो हू निश्चल तिष्ठै, याकूं देखकरि अन्य विद्याधर आगिया समान भासै हैं। यह सूर्य समान भासैं है। एक तो मानकरि याका माथा ऊंचा है ही, अर

रत्ननि के मुकुटकरि अति ही शोभै है, तेरी इच्छा है तो याके कंठविषै माला डारि। तदि यह कन्या कुमुदनी समान खेचरभानु को देख सकुच गई आगे चाली।

तदि धाय बोली – हे कुमारी! यह राजा चन्द्रानन चंद्रपुर का धनी राजा चित्रांगद राणी पद्मश्री का पुत्र। याका वक्षस्थल महासुन्दर चंदनकरि चर्चित जैसैं कैलाश का तट चंद्रकिरणकरि शोभै तैसैं शोभै है। उछले हैं किरणों के समूह जाविषै ऐसा मोतियों का हार याके उरविषै शोभै है, जैसैं कैलाशपर्वत उछलते हुए नीझरनों के समूह करि शोभै है। याके नाम के अक्षरकरि वैरीनि का हू मन परम आनन्द कों प्राप्त होय हैं, अर दुख आताप करि रहित होय है।

धाय श्रीमाला सों कहै है – हे सौम्यदर्शने! कहिए, सुखकारी है दर्शन जाका ऐसी जो तू, तेरा चित्त याविषै प्रसन्न होय तो जैसैं रात्रि चंद्रमातैं संयुक्त होय प्रकाश करै है, तैसैं याके संगमकरि आह्लाद को प्राप्त हो। तदि याविषै भी याका मन प्रीति को प्राप्त न भया। जैसैं चन्द्रमा नेत्रनि कों आनन्दकारी है, तथापि कमलनि की याविषै प्रसन्नता नाहीं। बहुरि धाय बोली– हे कन्ये! मंदरकुंज नगर का स्वामी राजा मेरुकांत राणी श्रीरंभा का पुत्र पुरंदर, मानो पृथ्वी पर इन्द्र ही अवतर्‍या है। मेघ समान है ध्वनि जाकी अर संग्रामविषै जाकी दृष्टि शत्रु संहारवे समर्थ नाहीं, तो ताके वाणनि की चोट कौन संहारै? देव भी यासों युद्ध करवे को समर्थ नाहीं, तो मनुष्यनि की तो कहा बात? अति उन्नत याका सिर सो तू या परि माला डारि, ऐसा कह्या तौ भी याके मन में न आया, क्योंकि चित्त की प्रवृत्ति विचित्र है।

बहुरि धाय कहती भई – हे पुत्री! नाकार्धपुर का रक्षक राजा मनोजव राणी वेगिनी, तिनका पुत्र महाबल, सभारूप सरोवरविषै कमल समान फूल रह्या है। अर याके गुण बहुत हैं, गिनने में आवें नाहीं, यह ऐसा बलवान् है, जो अपनी भौंह टेढ़ी करवे करिही पृथ्वी मंडल कों वश करै है। अर विद्याबल करि आकाशविषै नगर बसावै है, अर सर्व ग्रह-नक्षत्रादिक को पृथ्वीतल पर दिखावै है। चाहैं तो एक लोक नया और बसावैं, इच्छा करैं तो सूर्य को चन्द्रमा समान शीतल करै, पर्वत चूर डारै, पवन को थांभै, जल का स्थलकरि डारै, स्थल का जल कर डारै। इत्यादि याके विद्याबल वर्णन किये तथापि याका मन वाविषै अनुरागी न भया। और भी अनेक विद्याधर धाय ने दिखाए सो कन्या ने दृष्टि में न धरे तिनको उलंघि आगे चाली।

जैसैं चन्द्रमा की किरण पर्वतनि को उलंघै, ते पर्वत श्याम होय जांय तैसैं जिन विद्याधरनि कों उलंघि यह आगे गई तिनका मुख श्याम होय गया। सब विद्याधरनि कों उलंघकरि याकी दृष्टि किहकंधकुमार पर गई ताके कंठ में वरमाला डारी। तदि विजयसिंह विद्याधर की दृष्ट क्रोध की भरी, किहकंध अर अंध्रक दोऊ भाईनि पर गई।

कैसा है विजयसिंह? विद्याबलकरि गर्वित है, सो किहकंध अर अंध्रक को कहता भया कि यह विद्याधरों का समाज, तहां तुम बानर कौन अर्थ आए? विरूप है दर्शन तुम्हारा। क्षुद्र कहिये तुच्छ हो। कैसे हो तुम? विनयरहित हो, या स्थानविषै फलों से नम्रीभूत जे वृक्ष तिनकरि संयुक्त कोई रमणीक वन नाहीं। अर गिरिनि की सुन्दर गुफा नीझरणों की धरणहारी, जहां बानरों के समूह क्रीडा करैं, सो नाहीं। लालमुख के बानरो! तुमको इहां कौन ने बुलाया? जो नीच दूत तुम्हारे बुलवाने को गया होय ताका निपात करूं, अपने चाकरनि कों कही – इनको इहांतैं निकाल देवो। ये वृथा ही विद्याधर कहावैं हैं।

ये शब्द सुनकरि किहकंध अंध्रक दोनों भाई बानरध्वज महाक्रोध को प्राप्त भए, जैसैं हाथिनि पर सिंह कोप करै। अर तिनकी समस्त सेना के लोक अपने स्वामियों का अपवाद सुन विशेष क्रोध को प्राप्त भए। कईएक सामंत अपने दाहिने हाथकरि बावीं भुजा का स्पर्श करि शब्द करते भए। अर कईएक क्रोध के आवेशकरि लाल भए हैं नेत्र जिनके, सो मानो प्रलयकाल के उल्कापात ही हैं, महाकोप को प्राप्त भए। कईएक पृथ्वीविषै दृढ़ बांधी है जड़ जिनकी ऐसे वृक्षनि कों उखाड़ते भए। कैसे हैं वृक्ष? फल अर पल्लवनि को धारै हैं।

कईएक थम्भ उखाड़ते भए, अर कईएक सामंतों के अगले घाव भी क्रोध से फट गए। तिनमें से रुधिर की धारा निकसती भई, सो मानो उत्पात के मेघ ही बरसे हैं। कईएक गाजते भए, सो दशोंदिशा शब्दकर पूरित भई। अर कईएक योधा सिर के केश विकरालते भए, मानो रात्रि ही होय गई। इत्यादि अपूर्व चेष्टाओं से वानरवंशी विद्याधरनि की सेना समस्त विद्याधरनि की सेना सुभटनि कों मारने को उद्यमी भई। हाथियों से हाथी, घोड़ों से घोड़े, रथों से रथ युद्ध करते भए। दोनों सेनाओं में महायुद्ध प्रवरत्या।

आकाश में देव कौतुक देखते भए। यह युद्ध की वार्ता सुनकर राक्षसवंशी विद्याधरों के अधिपति राजा सुकेश, लंका के धनी वानरवंशियों की सहायता को आए। राजा सुकेश किहकंध अर अंध्रक के परम मित्र हैं, मानो इनके मनोरथ पूर्ण करने को ही आये हैं। जैसैं भरत चक्रवर्ती के समय राजा अकंपन की पुत्री सुलोचना के निमित्त अर्ककीर्ति जयकुमार का युद्ध भया हुता तैसा यह युद्ध भया। यह स्त्री ही युद्ध का मूलकारण है। विजयसिंह के अर अंध्रक के राक्षसवंशी बानरवंशिनि के महायुद्ध भया, तासमय किहकंध कन्या को ले गया। अर छोटे भाई अंध्रक ने खड्गकरि विजयसिंह का सिर काट्या। एक विजयसिंह के विना ताकी सर्व सेना बिखर गई, जैसैं एक आत्मा विना सर्व इंद्रियों के समूह विघटि जांहि।

तदि राजा अशनिवेग विजयसिंह का पिता अपने पुत्र का मरण सुनकरि शोक मूर्छा को प्राप्त

भया। अपनी स्त्रियों के नेत्र के जलकरि सींचा है वक्षस्थल जाका, सो घनी बेर में मूर्छा से प्रबोध को प्राप्त भया। पुत्र के वैरकरि शत्रुनि पर भयानक आकार किया, तासमय ताका आकार लोक देख न सके, मानो प्रलयकाल के उत्पात का सूर्य ताके आकार कों धरै हैं। सर्व विद्याधरनि को लार ले जाकर किहकंध को घेरया। सो नगर को घेरया जानि भाई वानरध्वज सुकेश सहित अशनिवेगसों युद्ध करवे को निकस्या। सो परस्पर महायुद्ध भया।

गदाओं से, शक्तियों से, बाणों से, पासों से, शैलों से, खड्गों से महायुद्ध भया! तहां पुत्र के बधसों उपजी जो क्रोधरूप अग्नि की ज्वाला, उससे प्रज्वलित जो अशनिवेग सो अंध्रक के सन्मुख भया। तब बड़े भाई किहकंध ने विचारी कि मेरा भाई अंध्रक तो नवयौवन है, अर यह पापी अशनिवेग महा बलवान है, सो मैं भाई की मदद करूं। तब किहकंध आया अर अशनिवेग का पुत्र विद्युद्वाहन किहकंध सन्मुख आया। सो किहकंध के अर विद्युद्वाहन के महायुद्ध प्रवरत्या ता समय अशनिवेग ने अंध्रक को मारया। सो अंध्रक पृथ्वी पर पड्या, जैसा प्रभात का चन्द्रमा कांतिरहित होय, तैसा अंध्रक का शरीर कांतिरहित होय गया। अर किहकंध ने विद्युद्वाहन के वक्षस्थल पर शिला चलाई सो वह मूर्छित होय गिरया।

बहुरि सचेत होय, तानै वही शिला किहकंध पर चलाई सो किहकंध मूर्छा खाय घूमने लग्या। सो लंका के धनी ने सचेत किया। अर किहकंध को किहकुम्पुर ले आए। तब किहकंध ने दृष्टि उघाड देख्या तो भाई नाहीं। तब निकटवर्तीनि को पूछने लग्या ह्न मेरा भाई कहाँ है? तब लोक नीचे होय रहे, अर राजलोक में अंध्रक के मरवे का विलाप हुवा, सो विलाप सुन किहकंध भी विलाप करने लग्या। शोकरूप अग्निकरि तप्तायमान भया है चित्त जाका, बहुत देर तक भाई के गुणनि का चिंतवन करता संता शोकरूप समुद्र में मग्न भया।

हाय भाई! मेरे होते संते तू मरण को प्राप्त भया, मेरी दक्षिण भुजा भंग भई। जो मैं एकक्षण तुझे न देखता तो महाव्याकुल होता सो अब तुम्हारे बिना प्राणनि को कैसे राखूंगा। अथवा मेरा चित्त वज्र का है, जो तेरा मरण सुनकर भी शरीर को नाहीं तजै है। हे बाल! तेरा वह मुलकना अर छोटी अवस्था में महावीर चेष्टा चितार चितार मुझको महादु:ख उपजै है। इत्यादि महाविलापकरि भाई के स्नेहसों किहकंध खेदखिन्न भया।

तब लंका के धनी सुकेश ने तथा और बड़े बड़े पुरुषों ने किहकंध को बहुत समझाया- जो धीर पुरुषनि को यह रंक चेष्टा योग्य नाहीं। यह क्षत्रीयनि का वीरकुल है, सो महा साहसरूप है। अर या शोक को पंडितों ने बड़ा पिशाच कह्या है। कर्मों के उदयकरि भाईयनि का वियोग होय है, यह शोक निरर्थक है। यदि शोक किए फिर आगमन होय तो शोक करिये। यह शोक शरीर

को शोखै है, अर पापों का बंध करै है। महामोह का मूल है। तातैं या बैरी शोक कों तजकरि प्रसन्न होय कार्य में बुद्धि धारो। यह अशनिवेग विद्याधर अति प्रबल बैरी है। अपना पीछा छोडैगा नाहीं। नाश का उपाय चितवै है, तातैं अब जो कर्त्तव्य होय सो विचारो। बैरी बलवान होय तदि प्रच्छन्न (गुप्त) स्थानविषै कालक्षेप करिये तो शत्रु से अपमान को न पाइए। फिर कईएक दिन में बैरी का बल घटै तब वैरी कों दबाइए। विभूति सदा एक ठौर नाहीं रहै है। तातैं अपनी पाताललंका जो बड़ों से आसरे की ठौर है, सो कुछ काल तहां रहिये। जो अपने कुल में बड़े हैं ते वा स्थानक की बहुत प्रशंसा करै हैं–जाको देखे स्वर्गलोक में भी मन न लागै। तातैं उठो, वह जायगाँ वैरियों से अगम्य है।

या भांति राजा किहकंध को राजा सुकेशी ने बहुत समझाया तो भी शोक न छाँडैं। तदि राणी श्रीमाला को दिखाई सो ताके देखनेतैं शोकनिवृत्ति भया। तब राजा सुकेशी अर किहकिंध समस्त परिवारसहित पाताललंका को चाले, अर अशनिवेग का पुत्र विद्युद्वाहन तिनके पीछें लग्या। अपने भाई विजयसिंह के वैरतैं महा क्रोधवंत शत्रुनि के समूल नाश करने को उद्यमी भया। तदि नीतिशास्त्र के पाठियों ने जो शुद्धबुद्धि के पुरुष हैं, समझाया जो क्षत्री भागै तो ताके पीछें न लागै। अर राजा अशनिवेग ने भी विद्युद्वाहन सों कही जो अंध्रक ने तुम्हारा भाई हत्या, सो तो मैं अंध्रक को रण में मार्‍या। तातैं हे पुत्र! इस हठ सों निवृत्त होवो। दु:खी पर दया ही करनी। जिस कायर ने अपनी पीठ दिखाई सो जीवित ही मृतक है। ताका पीछा क्या करना? या भांति अशनिवेग ने विद्युद्वाहन को समझाया। इतने में राक्षसवंशी अर वानरवंशी पाताललंका जाय पहुँचे।

कैसा है नगर? रत्नों के प्रकाशकरि शोभायमान है। तहां शोक अर हर्ष धरते दोए निर्भय रहैं। एक समय अशनिवेग शरद में मेघपटल देखे, अर उनको विलय होते देखे, विषयों से विरक्त भए। चित्त विषै विचारी 'यह राजा संपदा क्षणभंगुर है, मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है, सो मैं मुनिव्रत धरि आत्मकल्याण करूं।' ऐसा विचारि सहस्रारि पुत्र को राज देय आप विद्युद्वाहन सहित मुनि भए। अर लंकाविषै पहिले अशनिवेग ने निर्घातनामा विद्याधर थानै राख्या हुता सो अब सहस्रार की आज्ञाप्रमाण लंकाविषै थानै रहै। एक समय निर्घात दिग्विजय को निकस्या सो सम्पूर्ण राक्षस द्वीपविषै राक्षसनि का संचार न देख्या। सब ही घुस रहे हैं, सो निर्घात निर्भय लंका में रहैं हैं। एक समय राजा किहकंध राणी श्रीमालासहित सुमेरु पर्वतसों दर्शन कर आवै था, मार्ग में दक्षिणसमुद्र के तट पर देवकुरु भोगभूमि समान पृथ्वी में करनतटनामा वन देख्या, देखकरि प्रसन्न भए, अर श्रीमाला राणीसों कहते भए। राणी के सुन्दर वचन वीणा के स्वर समान हैं।

हे देवी! तुम यह रमणीक वन देखो। जहां वृक्ष फूलोंकरि संयुक्त हैं। निर्मल नदी बहै है, अर

मेघ के आकार समान धरणीमाली नामा पर्वत शोभै है। पर्वत के शिखर ऊंचे हैं, अर कुंदपुष्प समान उज्ज्वल जल के नीझरने झरे हैं। सो मानो यह पर्वत हंसै ही है। अर वृक्षों की शाखा से पुष्प पडै हैं, सो मानो हमको पुष्पांजलि ही देवे हैं। अर पुष्पनि की सुगंध करि पूर्ण पवनतैं हालते जो वृक्ष तिनकरि मानो यह वन हम को देखि उठिकरि ताजिम ही करै है।

अर वृक्ष फलनिकरि नम्रीभूत होय रहे हैं, सो मानो हमको नमस्कार ही करै है। जैसैं गमन करते पुरुषों को स्त्री अपने गुणनितैं मोहितकरि आगैं जाने न दे है, खड़ा करै है, तैसैं यह वन अर पर्वत की शोभा हमको मोहितकर राखै है, आगैं जाने न देहै। अर मैं भी इस पर्वत को उलंघ आगैं नहीं जाय सकूं, तातैं यहां ही नगर बसाऊंगा। जहां भूमिगोचरियों का गमन नहीं। पाताललंका की जगह ऊंडी है, और तहां मेरा मन खेदखिन्न भया है। सो अब यहां रहनेतैं मन प्रसन्न हो गया। या भांति राणी श्रीमाला सों कहिकर आप पहाड़सों उतरे। तहां पहाड़ ऊपर स्वर्गसमान नगर बसाया। नगर का किहकंधपुर नाम धरया। तहां आप सर्व कुटुम्ब सहित निवास किया। कैसा है राजा किहकंध? सम्यग्दर्शन करि संयुक्त है, अर भगवान की पूजाविषै सावधान है। सो राजा किहकंध की राणी श्रीमाला के योगतैं सूर्यरज अर रक्षरज दोय पुत्र भए, अर सूर्यकमला पुत्री भई, जाकी शोभकरि सर्व विद्याधर मोहित हुए।

अथानन्तर मेघपुर का राजा मेरु ताकी राणी मघा, पुत्र मृगारिदमन तानै, किहकंध की पुत्री सूर्यकमला देखी। सो ऐसा आसक्त भया कि रातदिवस चैन जाकें नाहीं पडै। तब वाकै अर्थि वाके कुटुम्ब के लोगों ने सूर्यकमला जाची। सो राजा किहकंध ने राणी श्रीमाला से मंत्रकर अपनी पुत्री सूर्यकमला मृगारिदमन को परणाई सो परणकर जावै था। मार्ग में कर्णपर्वतविषै कर्णकुण्डल नगर बसाया।

अर लंकापुर कहिये पाताललंका, उसमें सुकेश राजा, इन्द्राणी नामा राणी, ताके तीन पुत्र भये। माली, सुमाली अर माल्यवान। बड़े ज्ञानी, गुण ही हैं आभूषण जिनके। अपनी क्रीडाओं से माता पिता का मन हरते भए। देवों समान है क्रीडा जिनकी। सो तीनों पुत्र बड़े भए। महा बलवान, सिद्ध भई है, सर्व विद्या जिनको। एक दिन माता पिता ने इनको कह्या कि जो तुम क्रीडा करने को किहकंधपुर की तरफ जाओ तो दक्षिण के समुद्र की ओर मत जाओ। तदि ये नमस्कार कर माता पिता को कारण पूछते भए।

तब पिता ने कही – हे पुत्रो! यह बात कहिवे की नाहीं। तब पुत्रों ने बहुत हठि करि पूछी तब पिता ने कही कि लंकापुरी अपने कुलक्रमतैं चली आवैं हैं। श्री अजितनाथ स्वामी दूसरे तीर्थंकर के समयसों लगायकर अपना इस खंड मैं राज है। आगैं अगनिवेग के अर अपने युद्ध

भया। सो परस्पर बहुत मरे, लंका अपनेतैं छूटी। अशनिवेग ने निर्घात विद्याधरकूं थापि राख्या। सो महाबलवान है, अर क्रूर है, तानैं देश देश में हलकारे राखे हैं। अर हमारा छिद्र हेरै है। यह पिता के दुख की वार्ता सुनकर माली निश्वास नाखता भया, अर आंखनितैं आंसू निकसे। क्रोध से भर गया है चित्त जिसका, अपनी भुजाओं का बल देखकरि पिता सों कहता भया कि हे तात! ऐते दिनों तक यह बात हमसों क्यों न कही, तुमने स्नेहकरि हमको ठगै।

जे शक्तिवंत होयकरि विना काम किए निरर्थक गाजै हैं, ते लोकविषै लघुता को पावै हैं। सो अब हमको निर्घात पर चढ़ने की आज्ञा देवो, हमारे यह प्रतिज्ञा है ह्न लंका को लेकरि ही और काम करै। तदि माता पिता ने महा धीर वीर जान इनको स्नेहदृष्टि से आज्ञा दी। तब ये पाताललंकासों ऐसे निकसै मानो पाताललोक सै भवनवासी देव निकसैं हैं। बैरी ऊपर अति उत्साहतैं चाले।

कैसे हैं तीनों भाई? शस्त्रकला में महाप्रवीण हैं। समस्त राक्षसों की सेना इनके लार चाली। त्रिकूटाचल पर्वत दूरसों देख्या। देखकरि जान लिया कि लंका याके नीचे बसै है। सो मानो लंका ले ही ली। मार्ग विषै निर्घात के कुटुम्बी जो दैत्यादि कहावैं, ऐसै विद्याधर मिले सो युद्ध करके बहुत मरे। कईएक पायन परे, कईएक स्थान छोड़ भाग गये, कईएक बैरी के कटक में शरण आये। पृथ्वी में इनकी बड़ी कीर्ति विस्तरी। निर्घात इनका आगमन सुन लंकासों बाहिर निकस्या।

कैसा है निर्घात? जो युद्ध में महाशूरवीर है, छत्र की छायाकरि आच्छादित किया है सूर्य जानै। तब दोऊ सेना में महायुद्ध भया। मायामई हाथिनिकरि, घोडनिकरि, विमाननिकरि, रथनिकरि परस्पर युद्ध प्रवरत्या। हाथिनि के मद झरवेतैं आकाश जलरूप होय गया। अर हाथिनि के कान, ते ही भए ताड के बीजने, उनकी पवन से आकाश मानो पवन रूप हो गया। परस्पर शस्त्रों के घातकरि प्रकटी जो अग्नि, ताकरि मानों आकाश अग्निरूप ही हो गया। या भांति बहुत युद्ध भया।

तब माली ने विचारी कि दीननि के मारवेकरि कहा होय? निर्घात ही को मारिये, यह विचारि निर्घात पर आए। ऐसे शब्द कहते भये – कहां वह पापी निर्घात है? सो निर्घात को देखकरि प्रथम तो तीक्ष्ण बाणोंकरि रथतैं नीचे डास्या, फेर वह उठ्या, महायुद्ध किया। तब माली ने खड्ग करि निर्घात को मास्या। सो ताकूं मस्या जानकर ताके वंश के भागकरि विजयार्धविषै अपने अपने स्थानक गये, अर कईएक कायर होय माली ही की शरण आये। माली आदि तीनों भाइयनि ने लंका में प्रवेश किया। कैसी है लंका? महा मंगलरूप है। माता पिता आदि समस्त परिवारनि को लंका में बुलाया।

बहुरि हेमपुर का राजा मेख विद्याधर, रानी भोगवती, तिनकी पुत्री चंद्रमती सो माली ने परणी। कैसी है चन्द्रमती? मन को आनन्दकरणहारी है। अर प्रीतिकूट नगर का राजा प्रीतिकांत, राणी प्रीतिमती, तिनकी पुत्री प्रीतिसंज्ञका सो सुमाली परणी। अर कनककांत नगर का राजा कनक, राणी कनकश्री, तिनकी पुत्री कनकावली सो माल्यवान ने परणी। इनके कईएक पहिली राणी हुती, तिनमें यह प्रथम राणी भई। अर प्रत्येक के हजार हजार राणी कछुइक अधिक होती भई। माली ने अपने पराक्रम से विजयार्ध की दोऊ श्रेणी वश करी। सर्व विद्याधर इनकी आज्ञा आशीर्वाद की नाईं माथै चढावते भए। कईएक दिनों में इनके पिता राजा सुकेश माली को राज देय महामुनि भए। अर राजा किहकंध अपने पुत्र सूर्यरज को राज देय वैरागी भए। ए दोऊ परम मित्र राजा सुकेश अर किहकंध समस्त इन्द्रयनि के सुख का त्याग कर अनेक भव के पापों का हरणहारा जो जिनधर्म ताको पायकर सिद्ध स्थान के निवासी भये।

हे श्रेणिक! या भांति अनेक राजा प्रथम राज्य अवस्था में अनेक विलास कर फिर राज तजकर आत्मध्यान के योग से समस्त पापनि को भस्म कर अविनाशी धाम को प्राप्त भए। ऐसा जानकरि हे राजा! मोह को नाशकर शांतिदशा को प्राप्त होउ।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै बानरवंशीनि का निरूपण है जाविषै ऐसा छठा पर्व संपूर्ण भया।।6।।

अथानन्तर रथनूपुर नगर में राजा सहस्रार राज्य करै। ताके राणी मानसुन्दरी, रूप अर गुणों में अति सुन्दर, सो गर्भिणी भई। अत्यन्त कृश भया है शरीर जाका, शिथिल होय गए हैं सर्व आभूषण जाके। तब भरतार ने बहुत आदरसों पूछी – हे प्रिये! तेरे अंग काहेतैं क्षीण भए हैं, तेरे कहा अभिलाषा है। जो अभिलाषा होय सो मैं अवार ही समस्त पूर्ण करूं, हे देवी! तू मेरे प्राणों से अधिक प्यारी है या भांति राजा ने कही।

तब राणी बहुत विनयकर पतिसों वीनती करती भई कि हे देव! जा दिनतैं बालक मेरे गर्भ में आया है, ता दिनतैं यह मेरी वांछा है कि इन्द्र की सी सम्पदा भोगूं। सो मैंने लाज तज आपके अनुग्रह से आपसों अपना मनोरथ कह्या है, नातर स्त्री की लज्जा प्रधान है, सो मन की बात कहिवे मैं न आवै। तदि राजा सहस्रार ने जो महा विद्याबलकरि पूर्ण हुता, सो तिनने क्षणमात्र में याके मनोरथ पूर्ण किए। तब यह राणी महा आनन्दरूप भई, सर्व अभिलाषा पूर्ण भई, अत्यन्त प्रताप अर कांति को धरती भई। सूर्य ऊपर होय निसरै, सो वाहू का तेज न सहार सके। सर्वदिशानि के राजानि पर आज्ञा चलाया चाहै। नव महीने पूर्ण भए तदि पुत्र का जन्म भया।

कैसा है पुत्र? समस्त बांधवनि को परम सम्पदा का कारण है! तब राजा सहस्रार ने हर्षित

होय पुत्र के जन्म का महान उत्सव किया। अनेक बाजानि के शब्द करि दशों दिशा शब्दरूप भईं। अर अनेक स्त्री नृत्य करती भईं। राजा ने याचकजन को इच्छापूर्ण दान दिया। ऐसा विचार न किया जो यह देना न देना, सर्व ही दिया। अर हाथी गरजते हुते ऊंची सूंडकरि नृत्य करते भए। राजा सहस्रार ने पुत्र का इन्द्र नाम धर्‍या, जादिन इन्द्र का जन्म भया तादिन समस्त बैरीनि के घर में अनेक उत्पात भए, अपशकुन भए। अर भाइयनि के तथा मित्रनि के घर में महा कल्याण के करणहारे शुभ शकुन भए। अर इन्द्र कुंवर की बालक्रीडा तरुण पुरुषों की शक्ति को जीतनेहारी, सुन्दर कर्म की करणहारी बैरियों का गर्व छेदती भई।

अनुक्रमकरि कुंवर यौवन को प्राप्त भया। कैसा है कुंवर? अपने तेजकरि जीत्या है सूर्य का तेज जिसने, अर कांति से जीत्या है चन्द्रमा, अर स्थिरता से जीत्या है पर्वत, अर विस्तीर्ण है वक्षस्थल जाका, दिग्गजनि के कुंभस्थल समान ऊंचे हैं कांधे जाके, अर अति दृढ़ सुन्दर हैं भुजा–दश दिशानि की दाबनहारी। अर दोऊ जंघा जिसकी महा सुन्दर यौवनरूप महल के थांभने को थंभे समान होती भई। विजयार्ध पर्वतविषै सर्व विद्याधर जाने सेवक किये। जो यह आज्ञा करै सो सर्व करैं।

यह महाविद्याधर बलकर मंडित, यानै आपने यहां सब इन्द्र की सी रचना करी। अपना महल इन्द्र के महल समान बनाया, अडतालीस हजार विवाह किये। पटरानी का नाम शची धर्‍या, छबीस हजार नटवा नृत्य करै, सदा इन्द्रकैसा अखाडा रहै। महामनोहर अनेक इन्द्रकैसे हाथी, घोड़े, अर चन्द्रमा समान महा उज्ज्वल ऊंचा आकाश के आंगन में गमन करनेवाला, किसी से निवार्‍या न जाय, महा बलवान, अष्टदंत करि शोभित गजराज, जिसका महा सुन्दर सूंड सो पाट हाथी उसका नाम ऐरावत धर्‍या। चतुरनिकाय के देव थापे, अर परम शक्तियुक्त चार लोकपाल थापे ह्न सोम 1, वरुण 2, कुवेर 3, यम 4 ।

अर सभा का नाम सुधर्मा, बज्र, आयुध तीन सभा, अर उर्वशी, मेनका, रंभा इत्यादि हजारां नृत्यकारिणी तिनकी अप्सरा संज्ञा ठहराई। सेनापति का नाम हिरण्यकेशी, अर आठ बसु थापे, अर अपने लोकनि को सामानिक त्रायस्त्रिंशतादि दश भेद देवसंज्ञा धरी। गानेवालों का नाम नारद 1, तुम्बुरु 2, विश्वासु 3, यह संज्ञा धरी। मंत्री का नाम वृहस्पति, इत्यादि सर्व रीति इन्द्र समान थापी। सो यह राजा इन्द्र समान सब विद्याधरनि का स्वामी पुण्य के उदयकरि इन्द्रकैसी सम्पदा का धरनहारा होता भया। ता समय लंका में माली राज करै, सो महामानी जैसैं आगे सर्व विद्याधरनि पर अमल करै था तैसा ही अबहू करै, इन्द्र की शंका न राखै, विजयार्ध के समस्त पुरों में अपनी आज्ञा राखै। सर्व विद्याधर राजानि के राज में महारत्न हाथी, घोड़े, मनोहर कन्या,

मनोहर वस्त्राभरण, दोनों श्रेणियों में जो सार वस्तु होय सो, मंगाय लेय। ठौर ठौर हलकारे फिरवे करैं। अपने भाइयनि के गर्वतैं महा गर्ववान पृथ्वी पर एक आप ही को बलवान जानै।

अब इन्द्र के बलतैं विद्याधर लोक माली की आज्ञा भंग करने लगे। सो यह समाचार माली ने सुना तब अपने सर्व भाई, अर पुत्र, अर कुटुम्ब समस्त राक्षसवंशी अर किहकंध के पुत्रादि समस्त वानरवंशी तिनको लार लेय विजयार्ध पर्वत के विद्याधरनि पर गमन किया। कईएक विद्याधर अति ऊंचे विमानों पर चढ़े हैं। कईएक चालते महल समान सुवर्ण के रथों पर चढ़े हैं, कईएक काली घटा समान हाथियों पर चढ़े हैं, कईएक मनसमान शीघ्रगामी घोड़ों पर चढ़े, कईएक सिंह शार्दूलों पर चढ़े, कईएक चीतों पर चढ़े, कईएक ऊंटों पर, कईएक खच्चरों पर, कईएक भैंसों पर, कईएक हंसों पर, कईएक स्यालों पर अनेक मायामई वाहनों पर चढ़े, आकाश का आंगन आछादते हुवे, महा दैदीप्यमान शरीर धरकर माली की लार चढ़े।

प्रथम प्रयाण में ही अपशकुन भए। तदि मालीतैं छोटा भाई सुमाली कहता भया। कैसा है वह? बड़े भाई में है अनुराग जाका। हे देव! यहां ही मुकाम करिये, आगैं गमन न करिये, अथवा लंका में उलटा चलिये, आज अपशकुन बहुत भए हैं। सूखे वृक्ष की डाली पर एक पग को संकोचे काग तिष्ठ्या है। अत्यन्त आकुलित है चित्त जाका, बारबार पंख हलावै है, सूखा काठ चोंच में लिए सूर्य की ओर देखै है, अर क्रूरशब्द बोलै है। सो हमारा गमन मनै करै है, अर दाहिनी ओर रौद्र है मुख जाका, ऐसी स्यालिनी रोमांच धरती हुई भयानक शब्द करै है। अर सूर्य के बिंब के मध्य प्रविष्ट हुई जलैरी में रुधिर झरता देखिये है। अर मस्तकरहित धड नजर आवै है। अर महा भयानक वज्रपात होय है।

कैसा है वज्रपात? कम्पाया है समस्त पर्वत जाने। अर आकाश में बिखरि रहे हैं केश जिसके ऐसी मायामई स्त्री नजर आवै है। अर गर्दभ आकाश की तरफ ऊंचा मुखकर खुर के अग्रभागकरि धरती को खोदता हुवा कठोर शब्द करै है। इत्यादि अपशकुन होय हैं। तदि राजा माली सुमालीतैं हंसकर कहते भए। कैसा है राजा माली? अपनी भुजानि के बलकरि शत्रुनि को गिनते नाहीं। अहो वीर! बैरिन को जीतना मन में विचार, विजय हस्ती पर चढ़े महापुरुष धीरता को धरते कैसें पीछे बाहुडैं? जे शूरवीर - दांतनिकरि डसैं हैं अधर जिन्होंने, अर टेढ़ी करी हैं भौंह जिन्होंने, अर विकराल है मुख जिनका, अर बैरीनि को डरानेवाली है आंख जिन्हों की, तीक्षण बाणनिकरि पूर्ण, अर बाजे हैं अनेक बाजे जिनके, अर मद झरते हाथिनि पर चढ़े हैं, अथवा तुरंगन पर चढ़े हैं, महावीररस के स्वरूप आश्चर्य की दृष्टि करि देवों ने देखे जो सामंत वे कैसें पाछै बाहुडैं?

अर मैंने या जन्म के अनेक लीलाविलास किये, सुमेरुपर्वत की गुफा तहां नन्दनवन आदि

मनोहर बन तिनमें देवांगना समान अनेक राणी सहित नानाप्रकार की क्रीडा करी, आकाश में लग रहे हैं शिखर जिनके, ऐसे रत्नमयी चैत्यालय जिनेंद्रदेव के कराए, विधिपूर्वक भाव सहित जिनेंद्रदेव की पूजा करी, अर अर्थी जो जाचे सो दिया। ऐसे किमिच्छिक दान दिये। इस मनुष्यलोक में देवों कैसे भोग भोगे। अर अपने यशकरि पृथ्वी पर वंश उत्पन्न किया। तातैं या जन्म में तो हम सब बातों में इच्छा पूर्ण हैं। अब जो महासंग्राम में प्राणों को तजैं तो यह शूरवीरनि रीति ही है। परन्तु क्या हम लोकों से यह कहावें कि माली कायर होय, पाछे हट गया, अथवा तहां ही मुकाम किया। यह निंदा के लोकनि के शब्द धीरवीर कैसैं सुनें? धीर वीरों का चित्त क्षत्रियव्रत में सावधान है। भाई को या भांति कहि आप वैताड के ऊपर सेना सहित क्षणमात्र में गये। सब विद्याधरों पर आज्ञा पत्र भेजे। सो कईएक विद्याधरन ने न माने, तिनके पुर ग्राम उजाड़े, अर उद्याननि के वृक्ष उपार डारे, जैसैं कमल के वन को मस्त हाथी उखाड़ै तैसैं राक्षसजाति के विद्याधर महाक्रोध को प्राप्त भए हैं।

तदि प्रजा के लोग माली के कटकतैं डरकर कांपते संते रथनूपुर नगर में राजा सहस्रार के शरण गये। चरणनि को नमस्कार कर दीनवचन कहते भए कि – हे प्रभो! सुकेश का पुत्र माली राक्षसकुली समस्त विद्याधरनि पर आज्ञा चलावै, सर्व विजयार्ध में हम को पीडा करै है। आप हमारी रक्षा करो, तब सहस्रार ने आज्ञा करी कि हे विद्याधरो! मेरा पुत्र इंद्र है, ताके शरण जाय सर्व वीनती करो। वह तुम्हारी रक्षा करने कों समर्थ है। जैसैं इन्द्र स्वर्गलोक की रक्षा करै है तैसैं यह इन्द्र समस्त विद्याधरों का रक्षक है।

तब समस्त विद्याधर इन्द्र पै गए, हाथ जोडि नमस्कार करि सर्व वृत्तांत कहे। तब इंद्र माली ऊपर क्रोधायमान होय गर्वकरि मुलकते संते सर्वलोकनि को कहते भए। कैसे हैं इन्द्र? पास धर्‍या जो वज्रायुध ताकी ओर देख्या, लाल भए हैं नेत्र जिनके। मैं लोकपाल लोकनि की रक्षा करूं, जो लोक का कंटक होय ताहि हेरकर मारूं, अर वह आप ही लडने को आया तो या समान और क्या? रण के नगारे बजाए। कैसे हैं वे वादित्र? जिनके श्रवणकरि माते हाथी गज के बंधन को उखाडै हैं।

समस्त विद्याधर युद्ध का साजकरि इन्द्र पै आए। बकतर पहरे। हाथ में अनेकप्रकार के आयुध लिए, परम हर्ष धरतेसंते कईएक, रथनि पर, कईएक घोडनि पर चढ़े तथा हस्ती ऊंट सिंह व्याघ्र स्याली तथा मृग हंस छेला, वलद, इत्यादि मायामई अनेक वाहनों पर बैठि आए। कईएक विमान में बैठे, कईएक मयूरों पर चढ़े, कईएक खच्चरनि पर चढ़करि आए। इंद्र ने जो लोकपाल थापे हैं, ते अपने अपने वर्गसहित नानाप्रकार के हथियारनिकर युक्त भोंह टेढ़ी किये आए। भयानक है मुख

जिनके। पाट हस्ती का नाम ऐरावत तापर इंद्र चढ़े बकतर पहिरे शिर पर छत्र फिरते हुए, रथनूपुरतैं बाहिर निकसे। सेना के विद्याधर जो देव कहावैं, सो इन देवनि के अर लंका के राक्षसनि के साथ महायुद्ध प्रवरत्या।

हे श्रेणिक! ये देव अर राक्षस समस्त विद्याधर मनुष्य हैं। नमि विनमि के वंश के हैं। ऐसा युद्ध प्रवरत्या जो कायरनितैं देख्या न जाय। हाथियनितैं हाथी, घोड़नितैं घोड़े, पयादनितैं पयादे लड़े। सेल, मुग्दर, सामान्य चक्र खड्ग, गौफण, मूसल, गदा, कनक पाश इत्यादि अनेक आयुधनिकरि युद्ध भया। सो देवों की सैना ने कछुइक राक्षकों का बल घटाया, तब वानरवंशी राजा सूर्यरज रक्षरज राक्षसवंशियों के परममित्र राक्षसों की सेना को दव्या देख युद्ध को उद्यमी भए। सो इनके युद्धतैं समस्त इंद्र की सेना के लोक देवजाति के विद्याधर पाछे हटे। इनका बल पाय राक्षसकुली विद्याधर लंका के लोक देवनितैं महायुद्ध करते भए। शस्त्रों के समूह से आकाश में अंधेरा कर डारया।

राक्षस अर बानरवंशियों से देवों का बल हरया देख इन्द्र आप युद्ध करने कों उद्यमी भये। सो समस्त राक्षसवंशी अर वानरवंशी मेघरूप होकर इन्द्ररूप पर्वत पर गाजते हुए शस्त्र की वर्षा करते भये। सो इंद्र महायोधा कुछ भी विषाद न करता भया। किसी का वाण आपकों न लगने दिया। सबनि के बाण काट डारे, अर अपने बाणनिकरि कपि अर राक्षसों को दबाये।

तब राजा माली लंका के धनी अपनी सेना को इन्द्र के बलकरि व्याकुल देख इंद्रतैं युद्ध करवे को आप उद्यमी भये। कैसे हैं राजा माली? क्रोध करि उपज्या जो तेज ताकरि समस्त आकाश में किया है उद्योत जिन्होंने। इन्द्र के अर माली के परस्पर महायुद्ध प्रवरत्या। माली के ललाट पर पर इंद्र ने वाण लगाया सो माली ने उस वाण की वेदना न गिनी। अर इन्द्र के ललाट पर शक्ति लगाई, सो इन्द्र के रुधिर झरने लगा। अर माली उछलकर इन्द्र पै आया, तब इन्द्र ने महाक्रोध से सूर्य के बिंब समान चक्र से माली का शिर काट्या, माली भूमि पर पड्या, तब सुमाली माली को मुआ जानि अर इन्द्र को महा बलवान जानि सब परिवार सहित भाग्या। माली को भाई का अत्यन्त दुःख हुआ।

जब यह राक्षसवंशी अर वानरवंशी भागे तब इन्द्र इनके पीछे लाग्या। तब सौमनामा लोकपाल ने जो स्वामी की भक्ति मैं तत्पर है - इन्द्र से विनती करी कि हे प्रभो! जब मो सारिखा सेवक शत्रुनि के मारवे को समर्थ है। तब आप इन पर क्यों गमन करैं, सो मुझे आज्ञा देवो! शत्रुनि कों निर्मूल करूं। तब इन्द्र ने आज्ञा करी, यह आज्ञा प्रमाण इनके पीछें लाग्या। अर वाणनि के पुंज शत्रुओं पर चलाये, सो कपि अर राक्षसनि की सेना वाणनिकरि बेधी गई। जैसैं मेघ की धाराकरि गायनि के समूह व्याकुल होय तैसैं तिनकी सर्व सेना व्याकुल भई।

अथानन्तर अपनी सेना को व्याकुल देखि सुमाली का छोटाभाई माल्यवान् बाहुडकर सौम पर आये अर सौम की छाती में भिण्डिपाल नामा हथियार मारा, सो मूर्छित होया। सो जबलग वह सावधान होय तब लग राक्षसवंशी अर वानरवंशी पाताललंका जाय पहुंचे। मानो नया जन्म भया, सिंह के मुख से निकले। सौम ने सावधान होकर सर्व दिशा शत्रुओं से शून्य देखी। तब लोकनिकरि गाइये जस जाके, बहुत प्रसन्न होय इन्द्र के निकट गया। अर इन्द्र विजय पाय ऐरावत हस्ती पर चढ्या लोकपालनिकरि मंडित शिर पर छत्र फिरते चँवर ढुरते, आगैं अप्सरा नृत्य करती बड़े उत्साह सैं महाविभूति सहित रथनूपुरविषै आये।

कैसा है रथनूपुर? रत्नमयी वस्त्रों की ध्वजाओं से शोभै है, ठौर ठौर तोरणनिकरि शोभायमान है। जहां फूलनि के ढेर होय रहे हैं, अनेक प्रकार सुगंध से देवलोक समान है। सुन्दर नारियां झरोखों में बैठी इन्द्र की शोभा देखैं हैं। इन्द्र राजमहल मैं आए, अति विनयथकी माता पिता के पायन पड़े। तदि माता-पिता ने माथे हाथ धर्‍या, अर गात्र स्पर्शे, आशीष दई। इंद्र वैरीनिकूं जीति अति आनन्द को प्राप्त भया। प्रजापालनविषै तत्पर इन्द्र के समान भोग भोगे। विजयार्ध पर्वत तो स्वर्ग समान अर यह राजा इन्द्र सर्व लोकविषै प्रसिद्ध भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं - कि हे श्रेणिक! अब लोकपाल की उत्पत्ति सुनो।

ये लोकपाल स्वर्गलोकतैं चयकर विद्याधर भए हैं। राजा मकरध्वज राणी अदिति, तिनका पुत्र सोम नामा लोकपाल महा कांतिधारी, सो इन्द्र नै ज्योतिपुर नगर में थापा अर पूर्व दिशा का लोकपाल किया। अर राजा मेघरथ, राणी वरुणा, उनका पुत्र वरुण उसको इन्द्र ने मेघपुर नगर में थापा अर पश्चिम दिशा का लोकपाल किया, जाकै पास पाश नामा आयुध-जिसका नाम सुनकर शत्रु अति डरैं। अर राजा किहकंध सूर्य, राणी कनकावली, उसका पुत्र कुबेर महा विभूतिवान, उसको इन्द्र ने कांचनपुर में थापा, अर उत्तरदिशा का लोकपाल किया।

अर राजा बालाग्नि विद्याधर, राणी श्रीप्रभा, उसका पुत्र यम नामा तेजस्वी उसको किहकंधपुर में थापा, अर दक्षिणदिशा का लोकपाल किया। अर असुर नामा नगर ताके निवासी विद्याधर वे असुर ठहराये। अर यक्षकीर्ति नामा नगर के विद्याधर यक्ष ठहराए। अर किन्नर नगर के किन्नर, गंधर्व नगर के गंधर्व इत्यादिक विद्याधरों की देव संज्ञा धरी। इन्द्र की प्रजा देव जैसी क्रीडा करै। यह राजा इन्द्र मनुष्य योनि में लक्ष्मी का विस्तार पाय लोगों से प्रशंसा पाय आपको इन्द्र ही मानता भया, अर कोई स्वर्गलोक है, इन्द्र है, देव है - यह सर्व बात भूल गया। अर आप ही को इन्द्र जान, विजयार्धगिरि स्वर्ग जाना, अपने थापै लोकपाल जाने, अर विद्याधरों को देव जाने। या भांति गर्व को प्राप्त भया कि मोतैं अधिक पृथ्वी पर और कोऊ नाहीं, मैं ही सर्व की रक्षा करूं,

यह दोनों श्रेणि का अधिपति होय ऐसा गर्वा कि मैं ही इन्द्र हूं।

अथानन्तर कौतुकमंगल नगर का राजा व्योमबिंदु पृथ्वी पर प्रसिद्ध, उसके राणी मंदवती, उसके दो पुत्री भई, बड़ी कौशिकी छोटी केकसी। सो कौशिकी राजा विश्रव को परणाई। जे यज्ञपुर नगर के धनी, वैश्रवण पुत्र भया। अति शुभ लक्षण का धारणहारा कमल सारिखे नेत्र जाके, उसको इन्द्र ने बुलाकर तिनके बहुत सन्मान किया। अर लंका के थाने राखा। अर कहा मेरे आगे चार लोकपाल हैं, तैसे तू पांचवां महा बलवान है। तब वैश्रवण ने विनती करी कि–''प्रभो जो आज्ञा करो, सो ही मैं करूं'' ऐसा कह इन्द्र को प्रणामकर लंका को चल्या। वो इन्द्र की आज्ञा प्रमाण लंका के थाने रहै। जाको राक्षसों की शंका नाहीं जिसकी आज्ञा विद्याधरों के समूह अपने सिर पर धरै हैं।

पाताललंकाविषै सुमाली के रत्नश्रवा नामा पुत्र भया। महा शूरवीर दातार जगत का प्यारा उदारचित्त मित्रनि के उपकार निमित्त है जीवन जाका, अर सेवकों के उपकार निमित्त है प्रभुत्व जाके, पंडितों के उपकार निमित्त है प्रवीणपणा जाका, भाइयों के उपकार निमित्त है लक्ष्मी का पालन जाके, दरिद्रियों के उपकार निमित्त है ऐश्वर्य जाका, साधुओं की सेवा निमित्त है शरीर जाका, जीवन के कल्याण निमित्त है वचन जाका, सुकृत के स्मरण निमित्त है मन जाका, धर्म के अर्थ है आयु जाकी, शूरवीरता का मूल है स्वभाव जाका, सो पिता समान सब जीवों को दयालु, जाके परस्त्री माता समान, परद्रव्य तृण समान, पराया शरीर अपने शरीर समान, महा गुणवान, जो गुणवंतों की गिनती करैं तहां याको प्रथम गिणे, अर दोषवन्तों की गिणतीविषै नहीं आवै, उसका शरीर अद्भुत परमाणुओं कर रचा है, जैसी शोभा इसमें पाइये तैसी और ठोर दुर्लभ है, संभाषण में मानों अमृत ही सींचे है, अर्थियों को महादान देता भया।

धर्म अर्थ काम में बुद्धिमान, धर्म का अत्यंत प्रिय, निरंतर धर्म ही का यत्न करै, जन्मान्तर से धर्म को लिये आया है, जिसके बड़ा आभूषण यश ही है, अर गुण ही कुटुम्ब है, सो धीर वीर बैरियों का भय तजकर विद्या साधन के अर्थ पुष्पक नामा बन में गया। कैसा है वह बन? भूत पिशाचादिक के शब्द से महा भयानक है। यह तो वहां विद्या साधे है, अर राजा ब्योमविंदु ने अपनी पुत्री केकसी इसकी सेवा करणे को इसके ढिंग भेजी, सो सेवा करे, हाथ जोड़े रहे, आज्ञा की है अभिलाषा जाके। कईएक दिनों में रत्नश्रवा का नियम समाप्त भया। सिद्धों को नमस्कार कर मौन छोड़ा। केकसी को अकेली देखी।

कैसी है केकसी? सरल हैं नेत्र जाके, नीलकमल समान सुन्दर, अर लालकमल समान है मुख जाका, कुंद के पुष्प समान हैं दन्त, अर पुष्पों की माला समान है कोमल सुन्दर भुजा, अर मूंगा

समान है कोमल मनोहर अधर, मौलश्री के पुष्पों की सुगंध समान है निश्वास जाके, चंपे की कली समान है रंग जाका, अथवा उस समान चंपक कहां अर स्वर्ण कहां? मानो लक्ष्मी रत्नश्रवा के रूप में वश हुई, कमलों के निवास को तज, सेवा करने को आई है। चरणारविंद की ओर हैं नेत्र जाके, लज्जा से नम्रीभूत है शरीर जाका, अपने रूप वा लावण्य से कूंपलों की शोभा को उलंघती हुई, स्वासन की सुगंधता से जाके मुख पर भ्रमर गुंजार करै हैं।

अति सुकुमार है तनु जाका, अर यौवन आवता-सा है, मानों इसकी अति सुकुमारता के भय से यौवन भी स्पर्शता शंकै है। मानो समस्त स्त्रियों का रूप एकत्रकर बनाई है। अद्भुत है सुन्दरता जाकी, मानों साक्षात् विद्या ही शरीर धारकर रत्नश्रवा के तप से वशी होकर महा कांति की धरणहारी आई है। तब रत्नश्रवा जिनका स्वभाव ही दयावान है केकसी कों पूछते भए कि तू कौन की पुत्री है, अर कौन अर्थ अकेली यूथ से बिछुरी मृगीसमान महावन में रहे है, अर तेरा क्या नाम है?

तब यह अत्यंत माधुर्यतारूप गद्गद बाणी से कहती भई - 'हे देव! राजा व्योमबिंदु राणी नन्दवती, जिनकी मैं केकसी नामा पुत्री आपकी सेवा करणे को पिता ने राखी है। ताही समय रत्नश्रवा को मानस्तम्भिनी विद्या सिद्ध भई। सो विद्या के प्रभाव से उसी वन में पुष्पांतकनामा नगर बसाया। अर केकसी को विधिपूर्वक परणा। अर उसी नगर में रहकर मनबांछित भोग भोगते भए। प्रिया प्रीतम में अद्भुत प्रीति होती भई। एक क्षण भी आपस में वियोग सहार न सके। यह केकसी रत्नश्रवा के चित्त का बंधन होती भई। दोनों अत्यंत रूपवान नवयौवन महा धनवान इनके धर्म के प्रभाव से किसी भी वस्तु की कमी नाहीं। यह राणी पतिव्रता पति की छायासमान अनुगामिनी होती भई।

एक समय यह राणी रत्न के महल में सुन्दर सेजपर पड़ी हुती। कैसी है सेज? क्षीरसमुद्र की तरंगसमान उज्ज्वल है वस्त्र जहां, अर महा कोमल है, अनेक सुगंधकरि मंडित है, रत्नों का उद्योत होय रहा है। राणी के शरीर की सुगंध से भ्रमर गुंजार करै हैं। अपने मन का मोहनहारा जो अपना पति उसके गुणों को चिंतवती हुई। अर पुत्र की उत्पत्ति को बांछती हुई पड़ी हुती। सो रात्रि के पीछले पहर महा आश्चर्य के करणहारे शुभ स्वप्न देखे। बहुरि प्रभातविषै अनेक बाजे बाजे, शंखों का शब्द भया, मागध बंदीजन विरद बखानते भए। तब राणी सेज से उठकर प्रभातक्रिया कर महामंगलरूप आभूषण पहरे सखियों कर मंडित पति ढिंग आई।

राजा राणी को देख उठे, बहुत आदर किया। दोऊ एक सिंहासन पर विराजे, राणी हाथ जोड़ राजा से विनती करती भई - ''हे नाथ! आज रात्रि के चतुर्थ-पहर में तीन शुभ स्वप्न देखे हैं। एक महाबली सिंह गाजता, अनेक गजेंद्रों के कुंभस्थल विदारता हुआ परम तेजस्वी आकाश से पृथ्वी पर आय मेरे मुख में होकर कुक्षि में आया, अर सूर्य अपनी किरणों से तिमिर का निवारण

करता मेरी गोद में आय तिष्ठ्या, अर चन्द्रमा अखंड है मंडल जाका, सो कुमुदन को प्रफुल्लित करता अर तिमिर को हरता हुआ, मैंने अपने आगे देख्या। यह अद्भुत स्वप्न मैंने देखे सो इनके फल क्या है? तुम सर्व जानने योग्य हो। स्त्रियों को पति की आज्ञा ही प्रमाण है।

तब यह बात सुन राजा स्वप्न के फल का व्याख्यान करते भए। राजा अष्टांग निमित्त के जाननहारे जिनमार्ग में प्रवीण हैं। हे प्रिये! तेरे तीन पुत्र होंगे जिनकी कीर्ति तीन जगत में विस्तरैगी। बड़े पराक्रमी, कुल के वृद्धि करणहारे, पूर्वोपार्जित पुण्य से महासम्पदा के भोगनहारे, देवोंसमान अपनी कांति से जीत्या है चंद्रमा, अपनी दीप्ति से जीता है सूर्य; अपनी गम्भीरताकरि जीत्या है समुद्र अर अपनी स्थिरता से जीत्या है पर्वत जिन्होंने, स्वर्ग के अत्यन्त सुख भोग मनुष्यदेह धरैगा।

महाबलवान, जिनको देव भी न जीत सकैं, मनवांछित दान के देनहारे, कल्पवृक्ष समान अर चक्रवर्ती समान है ऋद्धि जिनके, अपने रूपकरि सुन्दर स्त्रियों के मन हरणहारे, अनेक शुभ लक्षणों कर मंडित उतंग है वक्षस्थल जिनका, जिनका नाम ही श्रवणमात्र से महा बलवान बैरी भय मानेंगे।

तिन में प्रथम पुत्र आठवां प्रतिवासुदेव होयगा। महासाहसी शत्रुओं के मुखरूप कमल मुद्रित करने को चंद्रसमान। तीनों भाई ऐसे योद्धा होंगे कि युद्ध का नाम सुन कर जिनके हर्ष के रोमांच होयंगे। अर बड़ा भाई कछुइक भयंकर होयगा, जिस वस्तु की हठ पकड़ेगा। सो न छोड़ेगा, जिसको इन्द्र भी समझाने को समर्थ नाहीं।

ऐसा पति का वचन सुनकर राणी परम हर्ष को प्राप्त होय विनयथकी भरतार को कहती भई – हे नाथ! हम दोऊ जिनमार्गरूप अमृत के स्वादी कोमलचित्त, अपने पुत्र क्रूरकर्मा कैसे होय? अपने तो जिनवचन में तत्पर कोमल परिणामी होना चाहिए। अमृत की बेल पर विषपुष्प कैसे लागै?

तब राजा कहते भए कि– हे वरानने! सुन्दर है मुख जाका ऐसी तू हमारे वचन सुन। यह प्राणी अपने कर्म के अनुसार शरीर धरै है, तातैं कर्म ही मूलकारण है, हम मूलकारण नाहीं, हम निमित्त कारण हैं। तेरा बड़ा पुत्र जिनधर्मी तो होयगा परन्तु कछुइक क्रूरपरिणामी होयगा, अर ताके दोऊ लघु वीर महाधीर जिनमार्गविषैं प्रवीण, गुणग्रामकरि पूर्ण भली चेष्टा के धरणहारे, शील के सागर होवेंगे। संसार भ्रमण का है भय जिनको, धर्मविषै अति दृढ, महा दयावान, सत्य वचन के अनुरागी होवेंगे। तिन दोऊनि के ऐसा ही सौम्यकर्म का उदय है। हे कोमलभाषिणी! हे दयावती! प्राणी जैसा कर्म करै है तैसा ही शरीर धरै है। ऐसा कहकर वे दोऊ राजा राणी जिनेंद्र की महापूजाविषैं प्रवरते। कैसे हैं ते? रात दिवस नियम धर्मविषैं सावधान हैं।

अथानन्तर प्रथम ही गर्भविषै रावण आए, तब माता की चेष्टा कछुइक क्रूर होती भई। यह बांछा भई कि बैरियों के सिर पर पांव धरूं। राजा इन्द्र के ऊपर आज्ञा चलाऊं, विनकारण भौहें

टेढ़ी करनी, कठोर वाणी बोलना यह चेष्टा होती भई। शरीर में खेद नाहीं। दर्पण विद्यमान है तौ भी खड्ग में मुख देखना सखीजनसूं खिझ उठना, काहू की शंका न राखनी ऐसी उद्धत चेष्टा होती भई। नवमें महीने रावण का जन्म भया। जा समय पुत्र जन्म्या तासमय बैरियों के आसन कम्पायमान भए। सूर्यसमान है ज्योति जाकी ऐसा बालक ताकूं देखकर परिवार के लोकनि के नेत्र थकित होय रहे हैं। देव दुंदुभी बाजे बजाने लगे, बैरीनि के घरविषै अनेक उत्पात होने लगे।

माता पिता ने पुत्र के जन्म का अति हर्ष किया। प्रजा के सर्व भय मिटे, पृथ्वी का पालक उत्पन्न भया, सेज पर सूधे पड़े अपनी लीला कर देवनिसमान है दर्शन जिनका। राजा रत्नश्रवा ने बहुत दान दिया। आगैं इनके बड़े जो राजा मेघवाहन भए उनको राक्षसनि के इन्द्र भीम ने हार दिया हुता, जाकी हजार नागकुमारदेव रक्षा करें, सो हार पास धरा था। सो प्रथम दिवस ही के बालक ने खैंच लिया। बालक की मुट्ठी में हार देख माता आश्चर्य को प्राप्त भई। अर महास्नेहतैं बालक को छाती से लगाय लिया। अर सिर चूम्बा, अर पिता ने भी हारसहित बालक को देख मन में विचारी कि यह कोई महापुरुष है। हजार नागकुमार जाकी सेवा करैं ऐसे हारतैं होता ही बालक क्रीडा करता भया। यह सामान्य पुरुष नाहीं, याकी शक्ति ऐसी होयगी जो सर्व मनुष्यों को उलंघै।

आगे चारणमुनि ने मुझे कह्या हुता कि तेरे पदवीधर पुत्र उत्पन्न होवेंगे। सो अपनै प्रति वासुदेव शलाका पुरुष प्रकट भए हैं। हार के योग से दशवदन पिता को नजर आए, तब उसका दशानन नाम धर्‍या। बहुरि कुछ काल में कुम्भकर्ण भए, सो सूर्य समान है तेज जिनका। बहुरि कुछएक काल में पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है वदन जाका ऐसी चन्द्रनखा बहिन भई। बहुरि विभीषण भए। महा सौम्य, धर्मात्मा, पापकर्मतैं रहित, मानो साक्षात् धर्म ही देहधारी अवतरा है। यद्यपि जिनके गुणनि की कीर्ति जगतविषै गाइए है ऐसे दशानन की बालक्रीडा दुष्टनि भयरूप होती भई। अर दोऊ भाइन की क्रीडा सौम्यरूप होती भई। कुम्भकर्ण अर विभीषण दोनों के मध्य चन्द्रनखा चांद सूर्य के मध्य सन्ध्या समान शोभती भई।

रावण बाल अवस्था को उलंघ कर कुमार अवस्था में आया। एकदिन रावण अपनी माता की गोद में तिष्ठे था, अपने दांतनि की कांति से दशों दिशा में उद्योत करता संता जिनके सिर पर चूडामणि रत्न धरा है, ता समय वैश्रवण आकाशमार्ग से जाय था। सो रावण के ऊपर होय निकस्या। अपनी कांति करि प्रकाश करता संता विद्याधरों के समूहकरि युक्त, महाबलवान विभूति का धनी, मेघसमान अनेक हाथियों की घटा मद की धारा बरसाते, जिनके बिजली समान सांकल चमकै, महाशब्द करते आकाश मार्ग से निकसे। सो दशों दिशा शब्दायमान होय गई। आकाश सेना करि व्याप्त होय गया। सो रावण ने ऊंची दृष्टिकर देख्या तो बड़ा आडम्बर

देखकर माताकूं पूछी यह कौन है? अर अपने मान से जगत को तृण समान गिनता महा सेनासहित कहां जाय है?

तब माता कहती भई ''तेरी मौसी का बेटा है, सर्व विद्या याकूं सिद्ध है, महालक्ष्मीवान है, शत्रुओं को भय उपजावता संता पृथ्वीविषै विचरै है। महा तेजवान है, मानो दूसरा सूर्य ही है। राजा इन्द्र का लोकपाल है। इन्द्र नै तिहारे दादा का भाई माली युद्ध में हराया, अर तुम्हारे कुल में चली आई जो लंकापुरी वहां से तुम्हारे दादे को निकासकर ये राख्या। सो लंका में थाणै रहै हैं। यह लंका के लिये तेरा पिता निरंतर अनेक मनोरथ करै हैं, रात दिन चैन नाहीं पडै है, अर मैं भी इस चिंता में सूख गई हूं।

हे पुत्र! स्थानभ्रष्ट होनेतैं मरण भला? ऐसा दिन कब होय जो तू अपने कुल की भूमि को प्राप्त होय, अर तेरी लक्ष्मी हम देखें, तेरी विभूति देखकर तेरे पिता का अर मेरा मन आनन्द को प्राप्त होय। ऐसा दिन कब होयगा जब तेरे यह दोनों भाइयों को विभूति सहित तेरी लार इस पृथ्वी पर प्रतापयुक्त हम देखेंगे। तिहारे कंटक न रहेगा।'' यह माता के दीनवचन सुन अर अश्रुपात डारती देखकर विभीषण बोले।

कैसे हैं विभीषण? प्रकट भया है क्रोधरूप विष का अंकुर जिनके, हे माता! कहां यह रंक वैश्रवण विद्याधर, जो देव होय तो भी हमारी दृष्टि में न आवे। तुमने इसका इतना प्रभाव वरणन किया सो कहा? तू वीरप्रसवनी अर्थात् योधाओं की माता है, महाधीर है, अर जिनमार्ग में प्रवीण है, यह संसार की क्षणभंगुर माया तोतैं छानी नाहीं। काहे को ऐसे दीन वचन कायर स्त्रियों के समान तू कहै है? क्या तोकूं रावण की खबर नाहीं है। यह श्रीवत्सलक्षण कर मंडित अद्भुत पराक्रम का धरणहारा महाबली, अपार है चेष्टा जाकी, भस्म करि जैसे अग्नि दबी रहै तैसे मौन गह रह्या। यह समस्त शत्रुवर्गनि के भस्म करणे को समर्थ है, तेरे मनविषै अबतक नहीं आया है।

यह रावण अपनी चाल से चित्त को भी जीते है। अर हाथी की चपेट से पर्वतों को चूर कर डारे है। याकी दोऊभुजा त्रिभुवनरूप मन्दिर के स्तंभ हैं अर प्रताप को राजमार्ग है, क्षत्रवतीरूप वृक्ष के अंकुर हैं, सो तैने क्या नहीं जाने? या भांति विभीषण ने रावण के गुण वर्णन किये। तब रावण माता से कहता भया, हे माता! गर्व के वचन कहने योग्य नाहीं, परन्तु तेरे सन्देह के निवारन अर्थि मैं सत्य कहूहूं, सो तू सुन। जो यह सकल विद्याधर अनेक प्रकार विद्याकरि गर्वित दोऊ श्रेणियनि के एकत्र होयकर मेरे से युद्ध करैं तौ भी मैं सबनिकूं एक भुजा से जीतूं।

तथापि हमारे विद्याधरनि के कुलविषै विद्या का साधन उचित है। सो करते लाज नाहीं। जैसे मुनिराज तप का आराधन करैं तैसैं विद्या का आराधन करैं, सो हमको करणा योग्य है। ऐसा

कहकर दोऊ भाईनिसहित माता पिता को नमस्कार कर नवकार मन्त्र का उच्चारण कर रावण विद्या साधने को चाले। माता पिता ने मस्तक चूमा अर असीस दीनी। पाया है मंगल संस्कार जिन्होंने, स्थिरभूत है चित्त जिनका, घरतैं निकरिकर हर्षरूप होय भीम नामा महावन में प्रवेश किया। कैसा है वन? जहां सिंहादि क्रूर जीव नाद कर रहै हैं, विकराल हैं दाढ अर वदन जिनके, अर सूते जे अजगर तिनके निश्वास से कम्पायमान हैं बड़े बड़े वृक्ष जहां, अर नीचे हैं व्यंतरों के समूह जहां, जिनके पायन से कम्पायमान है पृथ्वीतल जहां, अर महा गंभीर गुफाओं से अंधकार का समूह फैल रहा है, मनुष्यों की तो कहा बता?

जहां देव भी गमन न कर सकै हैं। जाकी भयंकरता पृथ्वी में प्रसिद्ध है। जहां पर्वत दुर्गम महा अंधकार कों धरैं, गुफा अर कंटकरूप वृक्ष हैं, मनुष्यों का संचार नाहीं। तहां ये तीनों भाई उज्ज्वल धोती दुपट्टा धारे शांतिभाव को ग्रहणकर सर्व आशा निवृत्तकर विद्या के अर्थ तप करवे को उद्यमी भए। कैसे हैं ते भाई? निशंक है चित्त जिनका, पूर्ण चन्द्रमा समान है बदन जिनका, विद्याधरनि के शिरोमणि, जुदे जुदे वन में विराजे हैं। डेढ दिन में अष्टाक्षर मंत्र के लक्ष जाप किये, सो सर्वकामप्रदा विद्या तीनों भाईयनि कों सिद्ध भई। सो मनवांछित अन्न इनको विद्या पहुँचावे। क्षुधा की वांछा इनको न होती भई।

बहुरि ये स्थिरचित्त होय सहस्रकोटि षोडशाक्षर मंत्र जपते भए। उससमय जम्बूद्वीप का अधिपति अनावृत्ति नामा यक्ष, स्त्रीनि सहित क्रीडा करता आय प्राप्त हुवा। सो ताकी देवांगना इन तीनों भाईनिकूं महा रूपवान, अर नवयौवन, तपविषै सावधान है मन जिनका, ऐसे देख कौतुक कर इनके समीप आई। कमल समान हैं मुख जिनके, भ्रमर समान हैं श्याम सुन्दर केश जिनके।

कईएक आपस में बोली – ''अहो! यह राजकुमार अति कोमलशरीर कांतिधारी वस्त्राभरण रहित कौन अर्थ तप करै हैं? ऐसे इनके शरीर की कांति भोगनि विना न सौहै। कहां इनकी नवयौवन वय अर कहां यह भयानक बनविषै तप करना?'' बहुरि इनके तप के डिगावने के अर्थ कहती भई–''अहो अल्पबुद्धि ! तुम्हारा सुन्दर रूपवान शरीर भोग का साधन है, योग का साधन नाहीं। तातैं काहे को तप का खेद करो हो, उठो घर चलो, अब भी कुछ गया नाहीं।' इत्यादि अनेक वचन कहे, परन्तु इनके मन में एकहू न आई। जैसैं जल की बून्द कमल के पत्र पर न ठहरै। तब वे आपस में कहती भईं।

हे सखी! ये काष्ठमई हैं, सर्व अंग इनके निश्चल दीखै हैं। ऐसा कहकर क्रोधायमान होय तत्काल समीप आई। इनके विस्तीर्ण हृदय पर कुंडल दीनी तौ भी ये चलायमान न भए। स्थिरीभूत हैं चित्त जिनका, कायर पुरुष होय सोई प्रतिज्ञा से डिगै, देविनि के कहते अनावृत यक्ष

ने हंसकर कहा – भो सत्पुरुषो! काहे को दुर्धर तप करो, अर किस देव को आराधो हो ह्व ऐसे कह्या, तौहू ये बोले नाहीं, चित्राम के होय रहे। तब अनावृत यक्ष ने क्रोध किया कि जम्बूद्वीप का देव तो मैं हूं, मुझको छांडकर कौनकूं ध्यावै हैं। ये मंदबुद्धि हैं, इनको उपद्रव करने के अर्थ अपने किंकरनि को आज्ञा दई। सो किंकर स्वभाव ही से क्रूर हुते अर स्वामी के कहे से उन्होंने और भी अधिक अनेक उपद्रव किये।

कई एक तो पर्वत उठाय उठाय लाए अर इनके समीप पटके तिन के भयंकर शब्द भए। कईएक सर्प होय सर्व शरीर से लिपट गए। कईएक नाहर होय मुख फाडकर आए, अर कईएक शब्द काननि में ऐसे करते भए जिनको सुनकर लोक बहिरे हो जांय, तथा मायामई डाँस बहुत किये, सो इनके शरीरतैं आय लगे। अर मायामई हस्ती दिखाये, असराल पवन चलाई, मायामई दावानल लगाई। या भांति अनेक उपद्रव किए, तो भी यह ध्यान से न डिगे। निश्चल है अंत:करण जिनका। तब देवों ने मायामई भीलनि की सेना बनाई। अंधकार समान काल विकराल आयुधों को धर इनको ऐसी माया दिखाई कि पुष्पांतक नगर मार्‍या। अर महायुद्ध में रत्नश्रवा को कुटुम्ब सहित बंधा हुवा दिखाया।

अर यह दिखाया कि माता केकसी विलाप करै है, कि हे पुत्रो! इन चांडाल भीलनि ने तिहारे पिताकूं महाउपद्रव किया। अर ये चांडाल मोकूं मारै हैं, पावों में बेड़ी डारी है, माथे के केश खींचे हैं। हे पुत्रों! तुम्हारे आगे मोकूं ये म्लेच्छ भील पल्ली में लिये जांय हैं। तुम कहते हुते जो समस्त विद्याधर एकत्र होय मुझसे लडैं, तौ ही न जीता जाऊं, सो यह वार्ता तुम मिथ्या ही कहते। अब तुम्हारे आगैं म्लेच्छ चांडाल मोकूं केश पकड़ खींचे लिये जांय हैं, तुम तीनों ही भाई इन म्लेच्छनितैं युद्ध करवे समर्थ नाहीं। मंद पराक्रमी हो। हे दशग्रीव! तेरा स्तोत्र विभीषण वृथा ही करै था, तू तो एक-ग्रीवा भी नाहीं जो माता की रक्षा न करै। अर यह कुंभकरण हू हमारी पुकार काननितैं सुनै नाहीं। अर ये विभीषण कहावै है, सो वृथा है। एक भीलतैं लडने समर्थ भी नाहीं। अर यह म्लेच्छ तिहारी बहिन चन्द्रनखा को लिये जाय हैं। सो तुमको लज्जा नाहीं।

अर विद्या जो साधिए, सो माता पिता की सेवा अर्थ, सो विद्या किस काम आवेगी ? इत्यादि मायामई देवनिनैं चेष्टा दिखाई तो हू ये ध्यान से नाहीं डिगे। तदि देवों ने एक भयानक माया दिखाई अर्थात् रावण के निकट रत्नश्रवा का सिर कट्या दिखाया। रावण के निकट भाईनि के भी सिर कटे दिखाए अर भाइयों के निकट रावण का भी सिर कट्या दिखाया सो रावण तो सुमेरुपर्वत समान अति निश्चल ही रहे। जो ऐसा ध्यान महामुनि करैं तो अष्ट कर्मनिकूं छेदैं, परन्तु कुंभकर्ण विभीषण के कछुएक व्याकुलता भई, परन्तु कुछ विशेष नाहीं, सो रावण को तो अनेक

सहस्र विद्या सिद्धि भईं। जेते मंत्र जपने के नेम किये थे ते पूर्ण होने से पहिले ही विद्या सिद्ध भईं।

धर्म के निश्चयतैं कहा न होय? ऐसा दृढ़ निश्चय भी पूर्वोपार्जित उज्ज्वल कर्मतैं होय हैं, कर्म ही संसार का मूलकारण है, कर्मानुसार यह जीव सुखदुख भोगवै है। समयविषै उत्तम पात्रों को विधि से दान देना अर दयाभाव करि सदा ही सबको देना, अर अन्त समय में समाधिमरण करना, अर सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति किसी उत्तम जीव ही के होय है। कईएक के तो विद्या दश वर्ष में सिद्ध होय है, कईएक के क्षणमात्र में! यह सब कर्मनि का प्रभाव जानो। रात दिन धरतीविषै भ्रमण करो, अथवा जलविषै प्रवेश करो तथा पर्वत के मस्तक परो। अनेक शरीर के कष्ट करो तथापि पुण्य के उदय विना कार्यसिद्ध नाहीं। जे उत्तम कार्य नाहीं करैं हैं ते वृथा ही शरीर खोवै हैं। तातैं आचार्यनि की सेवा कार्य सर्व आदरतैं करनी, पुरुषनि को सदा पुण्य ही करना योग्य है। पुण्य विना कहातैं सिद्धि होय?

हे श्रेणिक! पुण्य का प्रभाव देखि जो थोड़े ही दिनों में विद्या अर मंत्रविधि पूर्ण भये पहिले ही रावण को महाविद्या सिद्ध भईं। जे जे विद्या सिद्धि भईं जिनके संक्षेपता से नाम सुनहु। नभ:संचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा, जगतकंपा, प्रगुप्ति, भानुमालिनी, अणिमा, लघिमा, क्षोभ्या, मनस्तंभनकारिणी, संबाहनि, सुरध्वंसी, कौमारी, वद्धकरिणी, सुविधाना, तमोरूपा, दहना, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि अदर्शिनी, अजरा, अमरा, अनवस्तंभिनी, तोयस्तंभिनी, गिरिदारिणी, अवलोकिनी, ध्वंशी, धीरा, घोरा, भुजंगिनी, वीरिनी, एकभुवना, अवध्या, दारुणा, मदनासिनी, भास्करी, भयसंभूति, ऐशानी, विजया, जया, बंधिनी, मोचनी, बाराही, कुटिलावृति, चित्तोद्भवकरी, शांति, कौवेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, वलोत्साही, चंडा, भीतिप्रवर्षिणी, इत्यादि अनेक महा विद्या रावण को थोड़े ही दिननि में सिद्ध भईं।

तथा कुम्भकरण को पांच विद्या सिद्ध भईं। उनके नाम – सर्वहारिणी, अतिसंवर्धिनी, जंभिनी, व्योमगामिनी, निद्रानी तथा विभीषण को चार विद्या सिद्ध भईं – सिद्धार्था, शत्रुदमनी, व्याघाता, आकाशगामिनी। यह तीनों ही भाई विद्या के ईश्वर होते भए, अर देविनि के उपद्रवतैं मानों नवे जन्म में आए।

तब यक्षों का पति अनावृत जंबूद्वीप का स्वामी इनको विद्यायुक्त देखकर बहुत स्तुति करी अर दिव्य आभूषण पहराए। रावण ने विद्या के प्रभावकरि स्वयंप्रभ नगर बसाया। वह नगर पर्वत के शिखर समान ऊंचे महलों की पंक्ति से शोभायमान है, अर रत्नमई चैत्यालयों से अति प्रभाव को धरै है। जहां मोतीनि की झालरीकरि ऊंचे झरोखे शोभै हैं, पद्मराग मणियों के स्तंभ हैं।

नानाप्रकार के रत्ननि के रंग के समूहकरि जहां इन्द्रधनुष होय रहा है। रावण भाईनि सहित ता नगर में विराजे। कैसे हैं राजमहल? आकाश में लग रहे हैं शिखर जाके, विद्यावलकरि पंडित रावण सुखसूं तिष्ठै।

जम्बूद्वीप का अधिपति अनावृत देव रावणसों कहता भया– ''हे महामते! तेरे धैर्यकरि मैं बहुत प्रसन्न भया, अर मैं सर्व जम्बूद्वीप का अधिपति हूं, तू यथेष्ट बैरियों को जीतता संता सर्वत्र विहार कर। हे पुत्र! मैं बहुत प्रसन्न भया, अर स्मरणमात्रतैं तेरे निकट आऊंगा। तब तुझे कोई भी न जीत सकेगा। अर बहुत काल भाइयोंसहित सुख सों राज कर, तेरे विभूति बहुत होहु'' या भांति आशीर्वाद देय बारम्बार याकी स्तुतिकर यक्ष परिवारसहित अपने स्थान को गया। समस्त राक्षसवंशी विद्याधरों ने सुनी जो रत्नश्रवा का पुत्र रावण महाविद्यासंयुक्त भया सो सबको आनन्द भया। सर्व ही राक्षस बड़े उत्साह सहित रावण के पास आए।

कईएक राक्षस नृत्य करै हैं, कईएक गान करैं हैं, कईएक शत्रुपक्ष कों भयकारी गाजैं हैं, कईएक ऐसे आनन्दकरि भर गए हैं कि आनन्द अंग में न समावै है। कईएक हंसै हैं, कईएक केलि कर रहे हैं, सुमाली रावण का दादा अर छोटा भाई माल्यवान तथा सूर्यरज रक्षरज राजा बानरवंशी सब ही सुजन आनन्दसहित रावण पै चाले। अनेक बाहनों पर चढ़े, हर्षसों आवै हैं। रत्नश्रवा रावण के पिता पुत्र के स्नेहकरि भर गया है मन जाका, ध्वजावों से आकाश को शोभित करता संता परम विभूतिसहित महामन्दिरसमान रत्ननि के रथ पर चढि आया। वंदीजन विरद बखानै हैं। सर्व इकट्ठे होयकर पंचसंगम नामा पर्वत पर आए। रावण सन्मुख गया। दादा पिता अर सूर्यरज रक्षरज बड़े हैं, सो इनको प्रणामकर पांयन लाग्या, अर भाईनि को बगलगीरिकर मिला, अर सेवक लोगों के स्नेह की नजर से देख्या अर अपने दादा पिता अर सूर्यरज रक्षरजसों बहुत विनयकर कुशलक्षेम पूछी। बहुरि उन्होंने रावण से पूछी।

रावण को देख गुरुजन ऐसे खुशी भये जो कहने में न आवै। बारम्बार रावण को सुखवार्ता पूछैं, अर स्वयंप्रभ नगर को देखिकरि आश्चर्य को प्राप्त भए। देवलोक समान यह नगर ताकूं, देखकर राक्षसवंशी अर बानरवंशी सब ही अति प्रसन्न भए, अर पिता रत्नश्रवा अर माता केकसी, पुत्र के गात को स्पर्शते संते अर इसको बारंबार प्रणाम करता हुआ देख कर बहुत आनन्द को प्राप्त भए। दुपहर के समय रावण ने बड़ों को स्नान करावने का उद्यम किया। तदि सुमाली आदि रत्नों के सिंहासन पर स्नान के अर्थ विराजे। सिंहासन पर इनके चरण पल्लवसारिखे कोमल अर लाल कैसे शोभते भए जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य शोभै।

बहुरि स्वर्णरत्नों के कलशादि से स्नान कराया। कलश कमल के पत्रनिकरि आच्छादित हैं

मुख जिनके, अर मोतियों की मालाकरि शोभै हैं, अर महा कांति को धरै हैं, अर सुगंधजलकरि भरे हैं, जिनकी सुगंधकरि दशों दिशा सुगंधमयी होय रही हैं, अर जिन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। स्नान करावते जब कलशों का जल डारिए है तदि मेघ सारिखे गाजैं है। पहले सुगंध द्रव्यनि का उबटना लगाया पीछें स्नान कराया। स्नान के समय अनेक प्रकार के वादित्र बाजे। स्नान कराकर दिव्य वस्त्राभूषण पहराए, अर कुलवंतिनी राणियों ने अनेक मंगलाचरण किए। रावणादि तीनों भाई देवकुमार सारिखे गुरुनि का अति विनयकर चरणों की वंदना करते भए। तदि बड़ों ने बहुत आशीर्वाद दिये – ''हे पुत्रों ! तुम बहुत काल जीवो अर महा संपदा भोगो, तुम्हारी सी विद्या और में नाहीं''।

सुमाली, माल्यवान, सूर्यरज, रक्षरज अर रत्नश्रवा इन्होंने स्नेहकरि रावण, कुंभकरण, विभीषण को उरसों लगाया। बहुरि समस्त भाई अर समस्त सेवकलोग भलीविधिसों भोजन करते भए। रावण ने बड़ेनि की बहुत सेवा करी अर सेवक लोगों का बहुत सन्मान किया। सबनि को वस्त्राभूषण दिये। सुमाली आदि सर्व ही गुरुजन फूल गए हैं नेत्र जिनके, रावण से अति प्रसन्न होय पूछते भए। हे पुत्रो! तुम बहुत सुख से रहो। तब नमस्कार कर कहते भये – हे प्रभो! हम आपके प्रसादकरि सदा कुशलरूप हैं। बहुरि माली की बात चाली, सो सुमाली शोक के भारकरि मूर्छा खाय गिरा, तदि रावण ने शीतोपचारकरि सचेत किया, अर समस्त शत्रुओं के समूह के घातरूप सामंतता के वचन कहकर दादा को बहुत आनन्दरूप किया। सुमाली कमलनेत्र रावण को देखकरि अति आनन्दरूप भए।

सुमाली रावण को कहते भए – अहो पुत्र! तेरा उदार पराक्रम जाहि देख देवता प्रसन्न होय। अहो कांति तेरी सूर्य को जीतनहारी, गंभीरता तेरी समुद्र से अधिक है, पराक्रम तेरा सर्व सामंतनिकूं उलंघै, अहो वत्स! हमारे राक्षस कुल का तू तिलक प्रकट भया है। जैसैं जम्बूद्वीप का आभूषण सुमेरु है, अर आकाश के आभूषण चांद सूर्य हैं। तैसे हे पुत्र रावण! अब हमारे कुल का तू मंडन है। महा आश्चर्य की करणहारी चेष्टा तेरी सकल मित्रों को आनन्द उपजावै है। जब तू प्रकट भया तब हमको क्या चिंता है। आगे अपने वंश में राजा मेघवाहन आदि बड़े बड़े राजा भए, वे लंकापुरी का राज करके पुत्रों को राज देय मुनि होय मोक्ष गए, अब हमारे पुण्यकरि तू भया। सर्व राक्षसों के कष्ट का हरणहारा, शत्रुवर्ग का जीतनहारा तू महा साहसी, हम एक मुखतैं तेरी प्रशंसा कहांलों करैं। तेरे गुण देव भी न कहि सकैं। ये राक्षसवंशी विद्याधर जीवन की आशा छोड़ बैठे हुते, सो अब सब की आशा बंधी। तू महाधीर प्रकट भया है।

एक दिन हम कैलाश पर्वत गए हुते, तहां अवधिज्ञानी मुनि को हमने पूछी कि–'हे प्रभो!

लंका में हमारा प्रवेश होयगा कि नाहीं?' तब मुनि ने कही कि– 'तुम्हारे पुत्र का पुत्र होयगा। ताके प्रभावकरि तुम्हारा लंका में प्रवेश होयगा। वह पुरुषों में उत्तम होयगा। तुम्हारा पुत्र रत्नश्रवा राजा व्योमविंदु की पुत्री केकसी को परणैगा। ताकी कुक्षि में वह पुरुषोत्तम प्रकट होयगा। सो भरतक्षेत्र के तीन खंड का भोक्ता होगा। महा बलवान, विनयवान, जाकी कीर्ति दशोंदिशा में विस्तरैगी। वह बैरियों से अपना बास छुडावैगा, अर बैरियों के बास दाबैगा। सो यामें आश्चर्य नाहीं। सो तू महा उत्सवरूप कुल का मंडन प्रकट्या है। तेरा-सा रूप जगत में और काहू का नाहीं, तू अपने अनुपमरूपकरि सब के नेत्र अर मन को हरै है। इत्यादिक शुभ वचनों से सुमाली ने रावण की स्तुति करी। तब रावण हाथ जोड़कर नमस्कार कर सुमाली सौं कहता भया कि हे प्रभो! तुम्हारे प्रसादकरि ऐसा ही होहु। ऐसा कहिकर णमोकार मंत्र जप पंचपरमेष्ठीनि को नमस्कार किया, सिद्धों का स्मरण किया जिससे सर्व सिद्ध होय।

आगै गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसों कहे हैं– हे श्रेणिक! उस बाल के प्रभाव से बंधुवर्ग, सर्व राक्षसवंशी अर बानरवंशी अपने अपने स्थानक आय बसे। बैरियों का भय न किया। या भांति पूर्व भव के पुण्य से पुरुष लक्ष्मी कों प्राप्त होय है। अपनी कीर्ति से व्याप्त करी है दशों दिशा जिसने, इस पृथ्वी में बड़ी उमर का बूढ़ा होना तेजस्विता का कारण नाहीं है जैसैं अग्नि का कण छोटा ही बड़े वन को भस्म करै है, अर सिंह का बालक छोटा ही माते हाथियों के कुंभस्थल विदारै है, अर चन्द्रमा उगता ही कुमुदों को प्रफुल्लित करै हैं। अर जगत का संताप दूर करै हैं, अर सूर्य ऊगता ही कालीघटा-समान अंधकार को दूर करै है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण का जन्म और विद्यासाधन कहनेवाला सातवाँ पर्व संपूर्ण भया।।7।।

अथानन्तर दक्षिण श्रेणी में असुरसंगीत नामा नगर, तहां राजा मय विद्याधर, बड़े योधा विद्याधरों में दैत्य कहावैं, जैसैं रावण के बड़े राक्षस कहावैं, इन्द्र के कुल के देव कहावैं। ये सब विद्याधर मनुष्य हैं। राजा मय की रानी हैमवती, पुत्री मंदोदरी, जिसके सर्व अंगोपांग सुन्दर, विशाल नेत्र रूप अर लावण्यता रूपी जल की सरोवरी, ताकों नवयौवनपूर्ण देख पिता को परणावने की चिंता भई।

तदि अपनी राणी हैमवतीसों पूछ्या – 'हे प्रिये! अपनी पुत्री मंदोदरी तरुण अवस्था कों प्राप्त भई, सो हमको बड़ी चिंता है। पुत्रियों के यौवन के आरम्भ से जो संतापरूप अग्नि उपजै तामें माता पिता कुटुम्बसहित ईंधन के भाव को प्राप्त होय हैं। तातैं तुम कहो, यह कन्या किसको परणावैं? गुण कुल में कांति में इसके समान होय ताकों देनी।

तब राणी कहती भई – हे देव! हम पुत्री के जनने अर पालने में हैं, परणावना तुम्हारै आश्रय है। जहां तुम्हारा चित्त प्रसन्न होय तहां देहु। जो उत्तम कुल की बालिका हैं ते भरतार के अनुसार चालै हैं। जब राणी ने यह कह्या तदि राजा ने मंत्रीनितैं पूछ्या। तब किसी ने कोई बताया, किसी ने इन्द्र बताया कि वह सब विद्याधरों का पति है ताकी आज्ञा लोपतैं सर्व विद्याधर डरैं हैं।

तब राजा मय ने कही – मेरी तो रुचि यह है, जो यह कन्या रावण को देनी, क्योंकि उसको थोड़े ही दिनों में सर्व विद्या सिद्ध भई हैं, तातैं यह कोई बड़ा पुरुष है, जगत को आश्चर्य का कारण है। तब राजा के वचन मारीच आदि सब मंत्रियों ने प्रमाण किये। मंत्री राजा के साथ कार्य में प्रवीण है। तब भले ग्रह लग्न देख, क्रूर ग्रह टार, मारीच को साथ लेय राजा मय कन्या के परणावने को कन्या रावण पै ले चाले। रावण भीम नामा वन में चंद्रहास खड्ग साधने को आए हुते, अर चंद्रहास की सिद्धिकर सुमेरुपर्वत के चैत्यालयों की वंदना को गए हुते। सो राजा मय हलकारों के कहने से भीम नामा बन में आए।

कैसा है वह वन? मानों काली घटा का समूह ही है, जहां अति सघन अर ऊंचे वृक्ष हैं। बन के मध्य एक ऊंचा महल देख्या, मानो अपने शिखरनिकरि स्वर्ग को स्पर्शै है। रावण ने जो स्वयंप्रभ नामा नया नगर बसाया है ताके समीप ही यह महल है। सो राजा मय विमानतैं उतरि करि महल के समीप डेरा किया, अर वादित्रादि सर्व आडम्बर छोडि कैयक निकटवर्ती लोकनि सहित मन्दोदरी को लेय महल पर चढ़े। सातवें खण गए, तहां रावण की बहिन चन्द्रनखा बैठी हुती। कैसी है चन्द्रनखा ? मानों साक्षात् बनदेवी ही है। या चन्द्रनखा ने राजा मय को अर ताकी पुत्री मंदोदरी को देखकर बहुत आदर किया, सो बड़े कुल के बालकनि के यह लक्षण ही हैं। बहुरि विनयसंयुक्त इनके निकट बैठी।

तब राजामय चन्द्रनखा को पूछते भए – 'हे पुत्री ! तू कौन है? कौन कारण या बन में अकेली बसै है?' तब चन्द्रनखा बहुत विनयसों बोली– 'मेरा बड़ा भाई रावण सो बेलाकरि चंद्रहास खड्ग को सिद्धकरि अब मोहि खड्ग की रक्षा सोंपि सुमेरुपर्वत के चैत्यालनि की बंदना को गए हैं। मैं भगवान श्रीचंद्रप्रभु के चैत्यालयविषै तिष्ठूं हूं। तुम बड़े हितू सम्बन्धी हो, जो तुम रावणसूं मिलवे आये हो तो क्षणइक यहां विराजो।'' या भांति इनके बात होय है। अर रावण आकाश के मार्ग होय आए ही, सो तेज का समूह नजर आया।

तब चन्द्रनखा ने कही 'अपने तेज से सूर्य के तेज को हरता थका यह रावण आया है।'' तब राजा मय मेघनि के समूह समान श्याम सुन्दर अर बिजुरी समान चमकते हुये आभूषण पहिरे रावणकूं देखि बहुत आदरतैं उठ खड़े रहे, अर रावण से मिले, अर सिंहासन पर बिराजे। तब राजा

मय के मंत्री मारीच तथा वज्रमध्य अर बज्रनेत्र अर नभस्तडित उग्रनक्र, मरुध्वज, मेधावी, सारण, शुक्र ये सब ही रावण को देखि बहुत प्रसन्न भए अर राजा मयसों कहते भए। हे देव ! आपकी बुद्धि अति प्रवीण है, जो मनुष्यनि में महा पदार्थ था सो तुम्हारे मन में बस्या।' या भांति मय से कहकर ये मय के मंत्री रावण सों कहते भये – 'हे रावण! हे महाभाग्य! आपका अद्‌भुतरूप अर महा पराक्रम है, अर आप अति विनयवान अतिशय के धारी अनुपम वस्तु हो। यह राजा मय दैत्यों का अधिपति दक्षिण श्रेणी में असुरसंगीत नामा नगर का राजा है, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है। हे कुमार! तुम्हारे निर्मल गुणनिविषै अनुरागी हुआ आया है।'

तब रावण ने इनका बहुत श्रेष्ठाचार किया अर पाहुणगति करी, अर बहुत मिष्ट वचन कहे। सो यह बड़े पुरुषनि के घर की रीति ही है कि जो अपने द्वार आवै तिनका आदर करै ही करै। रावण मय के मंत्रीनिसों कहा कि ये दैत्यनाथ बड़े हैं, मोहि अपना जान अनुग्रह किया। तब मय ने कहा कि हे कुमार! तुमको यही योग्य है, जे तुम सारिखे साधु पुरुष है तिनके सज्जनता ही मुख्य है।

बहुरि रावण श्रीजिनेश्वरदेव की पूजा करने को जिनमंदिरविषै गए। राजा मय को अर याके मंत्रीनि हू कूं ले गए। रावण ने बहुत भाव से पूजा करी, भगवान के आगैं स्तोत्र पढ़े, बारंबार हाथ जोडि नमस्कार किये, रोमांच होय आए, अष्टांग दंडवतकर जिनमंदिरतैं बाहिर आए। कैसे हैं रावण? अधिक है उदय जिनका, अर महा सुन्दर है चेष्टा जिनकी, चूडामणि करि शोभै है शिर जिनका। चैत्यालयतैं बाहिर आय राजा मयसहित आप सिंहासन पर विराजे। राजा से वैताड परवत के विद्याधरों की बात पूछी, अर मंदोदरी की ओर दृष्टि गई तो देखकर मन मोहित भया।

कैसी है मंदोदरी? सौभाग्यरूप रत्ननि की भूमि का, सुन्दर हैं नख जाके, कमल समान हैं चरण जाके, स्निग्ध है तनु जाका, अर केला के थम्भ समान मनोहर है जंघा जाकी, लावण्यतारूप जल का प्रवाह ही है, महा लज्जा के योगतैं नीची है दृष्टि जाकी, सुवर्ण के कुंभसमान हैं स्तन जाके, पुष्पों से अधिक है सुगंधता अर सुकुमारता जाकी, अर कोमल हैं दोऊं भुजलता जाकी, अर शंख के कंठ समान है ग्रीवा (गरदन) जाकी, पूर्णिमा के चंद्रमा समान है मुख जाका, शुक हूतैं अधिक सुन्दर है नासिका जाकी मानो दोऊ नेत्रनि की कांतिरूपी नदी का यह सेतुबंध ही है। मूंगा अर पल्लव से अधिक लाल हैं अधर (होठ) जाके, अर महाज्योति को धरै अति मनोहर हैं कपोल जाके, अर वीणा का नाद, भ्रमर का गुंजार, अर उन्मत्त कोयल के शब्द से भी अति सुन्दर हैं शब्द जाके, अर काम की दूती समान है दृष्टि जाकी, नीलकमल अर रक्तकमल अर कुमुद भी जीते ऐसी श्यामता आरक्तता शुक्लता को धरै, मानों दशोंदिशा में तीन रंग के कमलों के समूह ही विस्तार राखे हैं।

अर अष्टमी के चन्द्रमा समान मनोहर है ललाट जाका, अर लंबे बांके काले सुगंध सघन सचिक्कण हैं केश जाके, कमल समान है हाथ अर पांव जाके, अर हंसनीकूं अर हस्तिनीकूं जीतैं ऐसी है चाल जाकी, अर सिंह हूतैं अति क्षीण हैं कटि जाकी, मानों साक्षात् लक्ष्मी ही कमल के निवास को तजकर रावण के निकट ईर्षा को धरती हुई आई है। क्योंकि मेरे होते संते रावण के शरीर को विद्या क्यों स्पर्शैं? ऐसे अद्‌भुत रूप को धरणहारी मंदोदरी रावण के मन अर नयनिकूं हरती भई। सकल रूपवती स्त्रीनि के रूप लावण्य एकत्रकरि इसका शरीर शुभ कर्मनि के उदयकरि बना है। अंग अंग में अद्‌भुत आभूषण पहरे, महा मनोज्ञ मंदोदरी को अवलोकनकर रावण का हृदय काम बाणकरि बींध्या गया। महा मधुरताकरि युक्त जो वह, ताविषैं रावण की दृष्टि गयी संती नीठ नीठ पाछी आई। परन्तु मत्त मधुकर की नाईं घूमने लग गई।

रावण चित्त में चिंतवै है कि यह उत्तम नारी कौन है? श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी सरस्वती इनमेंसों यह कौन है? परणी है वा कुमारी ? समस्त श्रेष्ठ स्त्रियों की यह शिरोभाग्य है। यह मन इन्द्रियनि कों हरणहारी जो मैं परणूं तो मेरा नवयोवन सफल है, नहीं तो तृणवत् वृथा है। ऐसा चिंतवन रावण ने किया तदि राजा मय, मंदोदरी के पिता बड़े प्रवीण, याका अभिप्राय जानि मन्दोदरी कों निकट बुलाय रावण सों कही – याके तुम ही पति हो।'' यह वचन सुन रावण अति प्रसन्न भया, मानों अमृतिकरि सींच्या है गात जाका, हर्ष के अंकुर समान रोमांच होय आए। सर्व वस्तुनि की इनके सामग्री हुती ही, ताही दिन मन्दोदरी का विवाह भया।

रावण मंदोदरी कों परणकरि अति प्रसन्न होय स्वयंप्रभ नगर में गए। राजा मय भी पुत्री को परणाय निश्चिंत भए। पुत्री के विछोहतैं शोक सहित अपने देश को गए। रावण ने हजारों राणी परणीं, उन सबकी शिरोमणि मंदोदरी होती भई। मंदोदरी भरतार के गुणों में हरा गया है मन जाका, पति की अति आज्ञाकरिणी होती भई। रावण तासहित जैसैं इन्द्र इन्द्राणी सहित रमै तैसैं सुमेरु के नंदन वनादि रमणीक स्थाननि मैं रमते भये। कैसी है मंदोदरी? सर्व चेष्टा मनोज्ञ हैं जाकी। अनेक विद्या जो रावण ने सिद्ध करी हैं तिनकी अनेक चेष्टा रावण दिखावते भए। एक रावण अनेक रूप धर अनेक स्त्रियों के महलों में कोतूहल करै। कभी सूर्य की नाईं तपै, कभी चन्द्रमा की नाईं चांदनी विस्तरै, अमृत बरसै, कभी अग्नि की नाईं ज्वाला विसतारै, कभी मेघ की नाईं जलधारा स्रवै, कभी पवन की नाईं पहाड़ों को चलावै, कभी इन्द्र की-सी लीला करै, कभी वह समुद्र की-सी तरंग धरै, कभी वह पर्वत समान अचल दशा ग्रहै। कभी माते हाथी समान चेष्टा करै, कभी पवनतैं अधिक बेगवाला अश्व बन जाय। क्षण में नजीक, क्षण में अदृश्य, क्षण में सूक्ष्म, क्षण में स्थूल, क्षण में भयानक, क्षण में मनोहर या भांति रमता भया।

एक दिवस रावण मेघवर पर्वत पर गया तहां एक वापिका देखी। निर्मल है जल जाका, अनेक जाति के कमलनि से रमणीक है, अर क्रौंच, हंस, चकवा, सारस इत्यादि अनेक पक्षीनि के शब्द होय रहे हैं। अर मनोहर हैं तट जाके, सुन्दर सिवाणोंकरि शोभित हैं। जिसके समीप अर्जुन आदि जाति के बड़े बड़े वृक्षों की छाया होय रही है। जहां चंचल मीन की कलोल करि जल के छींटे उछल रहे हैं। तहां रावण अति सुन्दर छै हजार राजकन्या क्रीडा करती देखी। कईएक तो जलकेलि में छींटे उछालै हैं, कईएक कमलनि के बन में घुसी हुई कमलवदनी कमलकनि की शोभा को जीतै हैं। भ्रमर कमलों की शोभा को छोड़कर इनके मुख पर गुंजार करै हैं। कईएक मृदंग बजावै हैं, कईएक बीण बजावै हैं। ये समस्त कन्या रावण को देखकरि जलक्रीडा को तज खड़ी होय रहीं। रावण भी उनके बीच जाय जलक्रीडा करने लगे। तब वे भी जलक्रीडा करने लग गईं। वे सर्व रावण का रूप देख कामबाणकरि बींधी गईं। सबकी दृष्टि यासौं ऐसी लगी जो अन्यत्र न जाय। याके अर उनके रागभाव भया। प्रथममिलाप की लज्जा अर मदन का प्रकट होना सो तिनका मन हिंडौले में झूलता भया।

तिन कन्याओं में जो मुख्य हैं उनका नाम सुनो। राजा सुरसुन्दर राणी सर्वश्री की पुत्री पद्मावती, नीलकमल सारिखे हैं नेत्र जाके। बहुरि राजा बुध राणी मनोवेगा, ताकी कन्या अशोकलता, मानो साक्षात् अशोक की लता ही है। अर राजा कनक राणी संध्या की पुत्री विद्युत्प्रभा, जो अपनी प्रभाकर बिजुली की प्रभा को लज्जावंत करै है, सुन्दर है दर्शन जाका, बड़े कुलनि की बेटी, सब ही अनेक कलाकरि प्रवीण, उनमें ये मुख्य है। मानो तीन लोक की सुन्दरता ही मूर्ति धरकर विभूति सहित आई हैं। सो रावण ने छै:हजार कन्या गंधर्व विवाह कर परणी। ते भी रावणसहित नानाप्रकार की क्रीडा करती भईं।

तदि इनकी लार जे खोजे वा सहेली हुतीं ते इनके माता पिताओं से सकल वृत्तांत जाकर कहती भईं। तब उन राजाओं ने रावण के मारिवे को क्रूर सामन्त भेजे। ते भ्रकुटी चढ़ाए होठ डसते आए, नानाप्रकार के शस्त्रों की वर्षा करते भए। ते सकल अकेले रावण ने क्षणमात्र में जीत लिये। तदि भाग कर कांपते हुये राजा सुरसुन्दर पै गए। जायकर हथियार डार दिये अर वीनती करते भए – 'हे नाथ! हमारी आजीवका कों दूर करो, अथवा घर लूट लेवो, अथवा हाथ पांव छेदो तथा प्राण हरो, हम रत्नश्रवा का पुत्र जो रावण तासूं लडवे को समर्थ नाहीं। ते समस्त छै हजार राजकन्या उसने परणीं अर उनके मध्य क्रीडा करै है। इन्द्र सारिखा सुन्दर चंद्रमा समान कांतिधारी, जाकी क्रूर दृष्टि देव भी न सहार सकें, ताके सामने हम रंक कौन?

हमने घने ही शूरवीर देखे, रथनूपुर का धनी राजा इन्द्र आदि याकी तुल्य कोऊ नाहीं। यह

परम सुन्दर महा शूरवीर है। ऐसे वचन सुन राजा सुरसुन्दर महा क्रोधायमान होय राजा बुध अर कनक सहित बड़ी सेना लेय निकले। और भी अनेक राजा इनके संग भए, सो आकाश से शस्त्रनि की कांति से उद्योत करते आए। इन सब राजाओं को देखकरि ये समस्त कन्या भयकर व्याकुल भईं, अर हाथ जोड़ रावण सों कहती भईं कि हे नाथ ! हमारे कारण तुम अत्यन्त संशय को प्राप्त भए, हम पुण्यहीन हैं, अब आप उठकर कहीं शरण लेवो, क्योंकि ये प्राण दुर्लभ हैं तिनकी रक्षा करो। यह निकट ही श्रीभगवान का मंदिर है तहां छिप रहो, यह क्रूर बैरी तुमको न देख आप ही उठ जावेंगे।

ऐसे दीन वचन स्त्रीनि के सुन अर शत्रुनि का कटक निकट आया देख रावण ने लाल नेत्र किये अर इनसों कहते भए – 'तुम मेरा पराक्रम नाहीं जानो हो, काक अनेक भेले भए तो कहा गरुड को जीतेंगे? एक सिंह का बालक अनेक मदोन्मत्त हाथियों के मदकूं दूर करै है।'' ऐसे रावण के वचन सुन स्त्री हर्षित भईं, अर वीनती करी। 'हे प्रभो ! हमारे पिता अर भाई अर कुटुम्बनि की रक्षा करहु'' तब रावण कहते भये– 'हे प्यारी हो ! ऐसैं ही होयगा, तुम भय मत करो, धीरता गहो।' यह बात परस्पर होय है। इतने में राजाओं के कटक आए, तदि रावण विद्या के रचे विमान मैं बैठ क्रोधकरि उनके सन्मुख भया। ते सकल राजा उनके योधाओं के समूह जैसैं पर्वत पर मोटी धारा मेघ की बरसै तैसैं बाणों की वर्षा करते भए। वह रावण विद्याओं के सागर, ताने शिलानि परि सर्व शस्त्र निवारे, अर कईएकनि को शिलानकरि ही भय को प्राप्त किए।

बहुरि मन में विचारा कि इन रंकों के मारवेकरि कहा? इनमें जो मुख्य राजा हैं तिनही को पकड़ लेवो। तब इन राजानि को तामस शस्त्रों से मूर्छितकर नागपास से बांध लिया। तब इन छै हजार स्त्रियों ने विनती कर छुडाये। तदि रावण ने तिन राजानि की बहुत सुश्रूषा करी। तुम हमारे परम हितू संबंधी हो। तब वे रावण का शूरत्वगुण देख, महा विनयवान रूपवान देख बहुत प्रसन्न भए। अपनी अपनी पुत्रीनि का विधिपूर्वक पाणिग्रहण कराया। तीन दिन तक महा उत्सव प्रवरत्या। ते राजा रावण की आज्ञा लेय अपने अपने स्थान कों गए। रावण मंदोदरी के गुणों कर मोहित है चित्त जाका सो स्वयंप्रभ नगर में आए। तब याको स्त्रीनसहित आया सुन कुम्भकरण, विभीषण भी सन्मुख गए। रावण बहुत उत्साह से स्वयंप्रभनगर में आए अर सुरराजवत् रमते भए।

अथानन्तर कुंभपुर का राजा मंदोदर ताके राणी स्वरूपा, ताकी पुत्री तडिन्माला सो, कुंभकर्ण जाका प्रथम नाम भानुकर्ण था, तानै परणी। कैसे हैं कुम्भकर्ण? धर्मविषैं आसक्त है बुद्धि जिनकी, अर महायोधा हैं, अनेक कलागुण में प्रवीण हैं। हे श्रेणिक! अन्यमती लोक जो इनकी कीर्ति और भांति कहै हैं कि मांस अर लोहू का भक्षण करते हुते, छै महीना की निद्रा लेते सो नाहीं। इनका

आहार बहुत पवित्र स्वादरूप सुगंधमय था। प्रथम मुनीनि कों आहार देय अर आर्यादिक को आहार देय दुखित भुखित जीवनि को आहार देय, कुटुम्ब सहित योग्य आहार करतै हुते मांसादिक की प्रवृत्ति नहीं थी। अर निद्रा इनको अर्धरात्रि पीछे अलप थी। सदाकाल धर्मविषै लवलीन था चित्त जिनका, चर्मशरीरी। जो लोग बड़े पुरुषनि को झूठा कलंक लगावै हैं ते महा पाप का बंध करै हैं। ऐसा करना योग्य नाहीं।

अथानन्तर दक्षिण श्रेणी में ज्योतिप्रभनामा नगर, तहां राजा विशुद्धकमल राजा मय का बड़ा मित्र, ताके राणी नन्दनमाला, पुत्री राजीवसरसी, सो विभीषण ने परणी। अति सुन्दर उस राणी सहित विभीषण अति कौतूहल करते भए। अनेक चेष्टा करते, जिनको रतिकेलि करते तृप्ति नहीं। कैसे हैं विभीषण? देवनि समान परम सुन्दर है आकार जिनका। अर कैसी है राणी? लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है। लक्ष्मी तो पद्म कहिए कमल ताकी निवासिनी है अर यह राणी पद्मरागमणि के महल की निवासिनी है।

अथानन्तर रावण की राणी मंदोदरी गर्भवती भई, सो याकों माता पिता के घर ले गए। तहां इंद्रजीत का जन्म भया। इन्द्रजीत का नाम समस्त पृथ्वीविषै प्रसिद्ध हुआ। अपने नाना के घर वृद्धि को प्राप्त भया सिंह के बालक की नाईं साहसरूप उन्मत्त क्रीडा करता भया। रावण ने पुत्रसहित मंदोदरी अपने निकट बुलाई। सो आज्ञा प्रमाण आई। मंदोदरी के माता पिता कों इनके विछोह का अति दुःख भया। रावण पुत्र का मुख देखकरि परम आनन्द को प्राप्त भया, सुपुत्र समान और प्रीति का स्थान नाहीं। फिर मंदोदरी को गर्भ रहा तदि माता पिता के घर फिर ले गए। तहां मेघनाद का जन्म भया। फिर फिर भरतार के पास आई, भोग के सागर में मग्न भई। मंदोदरी ने अपने गुणों से पति का चित्त वश किया। अब ये दोनों बालक इन्द्रजीत अर मेघनाद सज्जनों को आनन्द के करणहारे, सुन्दर चारित्र के धारक तरुण अवस्था को प्राप्त भए। विस्तीर्ण हैं नेत्र जिनके, सो वृषभ समान पृथ्वी का भार चलावनहारे हैं।

अथानन्तर वैश्रवण जिन जिन पुरों में राज करै, उन हजारों पुरों में कुंभकरण धावे करते भये। जहां इन्द्र का, वैश्रवण का माल होय सो छीनकर अपने स्वयंप्रभ नगरी में ले आवैं। या बातसों वैश्रवण, इन्द्र के जोरकरि अति गर्वित है, सो वैश्रवण का दूत द्वारपालसों मिल सभा में आया अर सुमालीसों कहता भया - हे महाराज! वैश्रवण नरेंद्र ने जो कह्या है सो तुम चित्त देय सुनो। वैश्रवण ने यह कहा है कि– तुम पंडित हो, कुलीन हो, लोकरीति के ज्ञायक हो, बड़े हो, अकार्यतैं भयभीत हो, औरों को भले मार्ग के उपदेशक हो, ऐसे जो तुम सो तुम्हारे आगैं ये बालक चपलता करैं तो क्या तुम अपने पोतानि को मनै न करो? तिर्यंच अर मनुष्य में यही भेद है कि मनुष्य तो

योग्य अयोग्य को जाने है अर तिर्यंच न जानै है। यही विवेक की रीति है। करने योग्य कार्य करिए,न करने योग्य कार्य न करिए। जो दृढ़ चित्त हैं वे पूर्व वृत्तांत को नाहीं भूले हैं।

अर बिजुलीसमान क्षणभंगुर विभूति के होते संते भी गर्व को नाहीं धरै हैं। आगैं क्या राजा माली के मरवेकरि तुम्हारे कुल की कुशल भई है? अब यह क्या स्यानपन है जो कुल के मूलनाश का उपाय करते हो। ऐसा जगत मैं कोऊ नाहीं जो अपने कुल के मूलनाश को आदरै। तुम कहा इन्द्र का प्रताप भूल गए जो ऐसे अनुचित काम करो हो। कैसे हैं इन्द्र? विध्वंस किये हैं समस्त बैरी जानै, समुद्र समान अथाह है। सो तुम मींडक के समान सर्प के मुख में क्रीडा करो हो? कैसा है सर्प का मुख? दाढ़रूपी कंटकनिकरि भर्‍या है अर विषरूपी अग्नि के कण जामैं तैं निकसै हैं। ये तुम्हारे पोते चौर हैं। अपने पोते पडोतों को जो तुम शिक्षा देने को समर्थ नाहीं हो तो मुझै सौंपो, मैं इनको तुरन्त सीधे करूं। अर ऐसा न करोगे तो समस्त पुत्र पौत्रादि कुटुम्बसहित बेडियों से बंधे मलिन स्थान में रुके देखोगे, तामैं अनेक भांति की पीड़ा इनको होगी। पाताल लंकातैं नीठि नीठि (मुश्किल से) बाहिर निकसे हो। अब फिर तहां ही प्रवेश किया चाहो हो?

या प्रकार दूत के कठोर वचनरूपी पवनकरि स्पर्श्या है मनरूपी जल जिसका, ऐसा रावणरूपी समुद्र अति क्षोभ कों प्राप्त भया। क्रोधकरि शरीर में पसेव आय गया अर आंखों की आरक्ततासों समस्त आकाश लाल होय गया। अर क्रोधरूपी स्वर के उच्चारण तैं सर्व दिशा बधिर करते हुवे यह हाथियों का मद निवारते हुवे गाज कर ऐसा बोल्या ''कौन है वैश्रवण अर कौन है इन्द्र? जो हमारे गोत्र की परिपाटी करि चली आई जो लंका, ताको दाब रहे हैं। जैसैं काग अपने मन में सियाना होय रहै अर स्याल आपको अष्टापद मानैं, तैसैं वह रंक आपको इन्द्र मान रह्या है। सो वे निर्लज्ज हैं, अधम पुरुष हैं, अपने सेवकनि पै इंद्र कहाया तो क्या इन्द्र होय गया? हे कुदूत! हमारे निकट तू ऐसे कठोर वचन कहता हुआ कुछ भय नाहीं करता?'' ऐसा कहकर म्यानतैं खड्ग काढ्या सो आकाश खड्ग के तेज करि ऐसा व्याप्त हो गया जैसैं नीलकमलों के वनकरि महा सरोवर व्याप्त होय।

तब विभीषण ने बहुत विनयकरि रावणसों विनती करी अर दूत को मारने न दिया, अर यह कहा – ''हे महाराज! यह पराया चाकर है, इसका अपराध क्या? जो वह कहावै सो यह कहै। यामैं पुरुषार्थ नाहीं। अपनी देह आजीविका निमित्त पालने को बेची है। यह सूआ समान है, ज्यों दूसरा बुलावै त्यों बोलै। यह दूत लोग हैं। इनके हिरदे में इनका स्वामी पिशाचरूप प्रवेश कर रह्या है, उसके अनुसार वचन प्रवर्तै है। जैसैं बाजिंत्री जा भांति बादित्र को बजावै ताही भांति बाजै, तैसैं इनका देह पराधीन है स्वतंत्र नाहीं।

तातैं हे कृपानिधे! प्रसन्न होवो अर दुखी जीवों पर दया ही करो। हे निष्कपट महाधीर! रंकनि के मारवेतैं लोक मैं बड़ी अपकीर्ति होय है। यह खड्ग तुम्हारा शत्रु लोगों के शिर पर पडैगा, दीननि के वध करने योग्य नाहीं। जैसैं गरुड गेडुओं को न मारै तैसैं आप अनाथनि को न मारो।'' या भांति विभीषण उत्तम वचन रूपी जलकरि रावण की क्रोधाग्नि बुझाई। कैसे हैं विभीषण? महा सत्पुरुष हैं, न्याय के वेत्ता हैं। रावण के पायनि पड़ि दूत को बचाया अर सभा के लोगों ने दूत को बाहिर निकाला। धिक्कार है सेवक का जन्म जो पराधीन दुःख सहै है।

दूत ने जायकरि सर्व समाचार वैश्रवण कों कहे। रावण मुख की अत्यन्त कठोरवाणीरूप ईंधनसों वैश्रवण के क्रोध रूपी अग्नि उठी सो चित्तविषैं न समावै, वह मानों सर्व सेवकों के चित्त को बांट दीनी।

भावार्थ – सर्व क्रोधरूप भए।

रण संग्राम के बाजे बजाए, वैश्रवण सर्व सेना लेय युद्ध के अर्थि बाहिर निकसे, या वैश्रवण के वंश के विद्याधर यक्ष कहावै, सो समस्त यक्षों को साथ लेय रक्षसनि पर चाले। अति झलझलाहट करते खड्ग सेल चक्र वाणादि अनेक आयुधों को धरै हैं। अंजनगिरि समान माते हाथीनि के मद झरे हैं, मानो नीझरने ही हैं। तथा बड़े रथ अनेक रत्नोंकरि जड़े संध्या के बादल के रंग समान मनोहर, महा तेजवंत, अपने वेगकरि पवन को जीतै हैं, तैसे ही तुरंग अर पयादनि के समूह समुद्र समान गाजते, युद्ध के अर्थि चाले। देवों के विमान समान सुन्दर विमानों पर चढ़े विद्याधर राजा वैश्रवण के लार चले।

अर रावण इनके पहिले ही कुंभकरणादि भाईनि सहित बाहर निकले। युद्ध की अभिलाषा रखती हुई दोनों सेनाओं का संग्राम गुंज नामा पर्वत के ऊपर भया। शस्त्रों के संपात से अग्नि दिखाई देने लगी। खड्गों के घात से, घोड़ों के हींसने से, पयादों के नाद से, हाथियों के गरजने से, रथों के परस्पर शब्द से, वादित्रों के बाजने से तथा बाणों के उग्र शब्द से इत्यादि अनेक भयानक शब्दों से रणभूमि गाज रही है। धरती आकाश शब्दायमान होय रहे हैं, वीर रस का राग होय है, योधाओं के मद चढ़ रह्या है, यम के वदन समान चक्र तीक्ष्ण है धारा जिनकी, अर यमराज की जीभ समान खड्ग रुधिर धारा वर्षावनहारी, अर यम के रोम समान सेल, यम की आंगुली समान शर (वाण), अर यम की भुजा समान परिघ (कुल्हाड़ा), अर यम की मुष्टि समान मुदगर इत्यादि अनेक शस्त्रकरि परस्पर महायुद्ध प्रवरत्या।

कायरों को त्रास अर योधाओं को हर्ष उपज्या। सामंत सिर के बदले यशरूप धन को लेवै हैं। अनेक राक्षस अर कपि जाति के विद्याधर, अर यक्ष जाति के विद्याधर परस्पर युद्ध कर परलोक

को प्राप्त भए। कछुइक यक्षों के आगे राक्षस पीछे हटे। तदि रावण अपनी सेना को दबी देख आप रणसंग्राम को उद्यमी भए। कैसे हैं रावण? महामनोज्ञ सफेद छत्र सिर पर फिरै हैं जाके। काले मेघसमान चंद्रमंडल की कांति का जीतनहारा रावण धनुष बाण धारे, इन्द्रधनुषसमान अनेक रंग का बकतर पहिरे, शिर पर मुकुट धरे, नानाप्रकार के रत्नों के आभूषण संयुक्त, अपनी दीप्ति करि आकाश में उद्योत करता आया।

रावण को देखकर यक्ष जाति के विद्याधर क्षणमात्र विलखे, तेज दूर हो गया, रण की अभिलाषा छोड़ पराङ्मुख भए, त्रासकरि आकुलित भया है चित्त जिनका, भ्रमर की नाईं भ्रमते भए। तब यक्षों के अधिपति बड़े बड़े योधा एकट्ठे होयकरि रावण के सन्मुख आए। रावण सबके छेदने को प्रवरत्या, जैसैं सिंह उछलकर माते हाथियों के कुंभस्थल विदारै तैसैं रावण कोपरूपी वचन के प्रेरे अग्नि स्वरूप होयकर शत्रुसेनारूपी वन को दाह उपजावते भए। सो पुरुष नाहीं, सो रथ नाहीं, सो अश्व नाहीं, सो विमान नाहीं, जो रावण के बाणों से न बींध्या गया। तब रावण को रण में देख वैश्रवण भाईपने का स्नेह जनावता भया, अर अपने मन में पछताया। जैसैं बाहुबलि भरतसों लड़ाई करि पछताए हुते तैसैं वैश्रवण रावणसों विरोध कर पछताया।

हाय! मैं मूर्ख ऐश्वर्य से गर्वित होयकर भाई के विध्वंस करने में प्रवरत्या। यह विचार करि वैश्रवण रावण सों कहता भया – 'हे दशानन! यह राजलक्ष्मी क्षणभंगुर है, याके निमित्त तू कहा पाप करै। मैं तेरी बड़ी मौसी का पुत्र हूं, तातैं भाइयों से अयोग्य व्यवहार करना योग्य नाहीं। अर यह जीव प्राणियों की हिंसा करके महा भयानक नरक कों प्राप्त होय है। नरक महा दुखसों भर्‍या है। कैसे हैं जगत के जीव? विषयों की अभिलाषा में फंसे हैं। आंखों की पलक मात्र क्षण मात्र जीवना क्या तू न जानै है? भोगों के कारण पापकर्म काहे को करै है?

तब रावण ने कह्या – 'हे वैश्रवण! यह धर्मश्रवण का समय नाहीं, जो माते हाथियों पर चढ़ै अर खड्ग हाथ में धरै सो शत्रुवों को मारे तथा आप मरै। बहुत कहने से क्या? तू तलवार के मार्गविषै तिष्ठ अथवा मेरे पांव परि पड़। यदि तू धनपाल है तो हमारा भंडारी हो, अपना कर्म करते पुरुष लज्जा न करै।

तब वैश्रवण बोले – 'हे रावण! तेरी आयु अल्प है, तातैं ऐसे क्रूर वचन कहै है। शक्ति प्रमाण हमारे ऊपर शस्त्र का प्रहार कर। तब रावण कही – तुम बड़े हो, प्रथम बार तुम करो। तदि रावण ऊपर वैश्रवण बाण चलाए, जैसैं पहाड़ के ऊपर सूर्य किरण डारे। सो वैश्रवण के बाण रावण ने अपने बाणनिकरि काट डारे अर अपने बाणनिकरि शर मण्डप करि डारे। बहुरि वैश्रवण अर्धचन्द्र बाणकरि रावण का धनुष छेद्या अर रथतैं रहित किया। तदि रावण ने मेघनादनामा रथ पर चढ़कर

वैश्रवणसूं युद्ध किया, उल्कापात समान वज्रदंडों से वैश्रवण का बकतर चूर डार्‌या। अर वैश्रवण के सुकोमल हृदयविषै भिण्डिमाल मारी, सो मूर्छा प्राप्त भया। तब ताकी सेनाविषै अत्यन्त शोक भया, अर राक्षसों के कटकविषै बहुत हर्ष भया। अर वैश्रवण के लोक वैश्रवणकूं खेतेतैं उठाय कर यक्षपुर ले गए। अर रावण शत्रुवों को जीतकर रण से निवृत्ते। सुभटनि के शत्रुनि के जीतवे ही का प्रयोजन है, धनादिक का प्रयोजन नाहीं।

अथानन्तर वैश्रवण का वैद्यों ने यतन किया सो अच्छा हुवा। तब अपने चित्त में विचारे है – जैसै पुष्प रहित वृक्ष तथा सींग टूटा बैल, कमल बिना सरोवर न सोहै, तैसैं मैं शूरवीरता बिना न सोहूं। जे सामंत हैं अर क्षत्रीवृत्ति का विरद धारै हैं तिनका जीतव्य सुभटता ही करि शोभै है। अर तिनकूं संसारविषै पराक्रम ही तैं सुख है। सो मेरे अब नाहीं रहा। तातैं अब संसार को त्यागकर मुक्ति का यत्न करूं। यह संसार असार है, क्षणभंगुर है, याही तैं सत्पुरुष विषय सुख को नाहीं चाहैं। यह अंतराय सहित है, अर अल्प है, दुखी है।

ये प्राणी पूर्वभवविषै जो अपराध करै है ताका फल इस भवविषै पराभव होय है। सुख दुःख का मूलकारण कर्म ही है, अर प्राणी निमित्तमात्र है। तातैं ज्ञानी तिनसे कोप न करै। कैसा है ज्ञानी? संसार के स्वरूप को भली भांति जानै है। यह केकसी का पुत्र रावण मेरे कल्याण का निमित्त हुवा है जानैं मोकूं गृहवासरूप महा फाँसी से छुडाया। अर कुम्भकरण मेरा परम बांधव, जानै यह संग्राम का कारण मेरे ज्ञान का निमित्त बनाया। ऐसा विचार कर वैश्रवण ने दिगम्बरी दीक्षा आदरी। परमतपकूं आराधकर परम धाम पधारे, संसार-भ्रमण से रहित भए।

अथानन्तर रावण अपने कुल का अपमान रूप मैल धोकर सुख अवस्था को प्राप्त भया। समस्त भाइयों ने उसको राक्षसों का शिखर जाना। वैश्रवण की असवारी का पुष्पक नामा विमान महा मनोग्य है, रत्नों की ज्योति के अंकुर छूट रहे हैं, झरोखे ही हैं नेत्र जाका, निर्मल कांति के धारणहारे, महा मुक्ताफल की झालरों से मानो अपने स्वामी के वियोग से अश्रुपात ही डारै हैं, अर पद्मरागमणियों की प्रभा से आरक्तता को धारे है, मानो यह वैश्रवण का हृदय ही रावण के किये घाव से लाल हो रहा है। पर इन्द्रनील मणियों की प्रभा कैसे अतिश्याम सुन्दरता को धरै है मानो स्वामी के शोक से सांवला होय रहा है, चैत्यालय बन बापी सरोवर अनेक मंदिरों से मंडित मानो नगर का आकार ही है।

रावण के हाथ के नाना प्रकार के घाव से मानों घायल हो रहा है। रावण के मंदिर समान ऊंचा जो वह विमान उसको रावण के सेवक रावण के समीप लाए। वह विमान आकाश का मंडन है। इस विमान को बैरी के भंग का चिह्न जान रावण ने आदरा, अर किसी का कुछ भी न लिया।

रावण के किसी वस्तु की कमी नाहीं। विद्यामई अनेक विमान हैं तथापि पुष्पक विमान में विशेष अनुराग से चढ़े। रत्नश्रवा तथा केकसी माता अर समस्त प्रधान सेनापति तथा भाई बेटों सहित आप पुष्पक विमान में आरूढ़ भया। अर पुरजन नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ भए। पुष्पक के मध्य महा कमलवन हैं तहां आप मंदोदरी आदि समस्त राजलोकों सहित विराजे।

कैसे हैं रावण? अखंड है गति जिनकी, अपनी इच्छा से आश्चर्यकारी आभूषण पहरे है, अर श्रेष्ठ विद्याधरी चमर ढोरे हैं, मलयागिरि के चन्दनादि अनेक सुगन्ध अंग पर लगी हैं, चन्द्रमा की कीर्ति समान उज्ज्वल छत्र फिरै हैं, मानों शत्रुओं के भंग से जो यश विस्तारा है उस यश से शोभायमान है। धनुष त्रिशूल खड्ग सेल पाश इत्यादि अनेक हथियार जिनके हाथ में ऐसे जो सेवक, तिनकरि संयुक्त है। महा भक्तियुक्त हैं, अर अद्भुत कर्मनि के करणहारे हैं। तथा बड़े बड़े विद्याधर राजा सामन्त शत्रुनि के समूह के क्षय करणहारे, अपने गुणनकरि स्वामी के मन के मोहनहारे, महा विभवकरि शोभित, तिनकरि दशमुख मंडित है। परम उदार, सूर्य का-सा तेज धारता, पूर्वोपार्जित पुण्य का फल भोगता संता दक्षिण समुद्र की तरफ जहां लंका है ता ओर इन्द्र की-सी विभूतिकरि युक्त चाल्या। कुम्भकरण भाई हस्ती पर चढ़े, विभीषण रथ पर चढ़े, अपने लोगों सहित महाविभूतिकरि मंडित रावण के पीछे चाले।

राजा मय मंदोदरी के पिता दैत्य जाति के विद्याधरों के अधिपति भाइयों सहित अनेक सामंतनिकरि युक्त तथा मारीच अंवर विद्युतवज्र वज्रोदर बुधबज्राक्षक्रूर क्रूरनक्र सारन सुनय शुक्र इत्यादि मंत्रियों सहित महा विभूतिकर मंडित अनेक विद्याधरों कै राजा रावण के संग चाल्ये। कई एक सिंहों के रथ पर चढ़े, कईएक अष्टापदों के रथ पर चढ़कर वन पर्वत समुद्र की शोभा देखते पृथ्वी पर विहार किया, अर समस्त दक्षिण दिशा वश करी।

अथानन्तर एक दिन रावण ने अपने दादा सुमाली से पूछ्या – 'हे प्रभो! हे पूज्य! या पर्वत के मस्तक पर सरोवर नाहीं सो कमलनि का वन कैसे फूल रहा है? यह आश्चर्य है, अर कमलों का वन चंचल होय, यह निश्चल है।' या भांति सुमालीसूं पूछ्या। कैसा है रावण? विनयकर नम्रीभूत है शरीर जाका।

तब सुमाली 'नमः सिद्धेभ्यः' ये मंत्र पढ़कर कहते भए – 'हे पुत्र! यह कमलनि के वन नाहीं, या पर्वत के शिखरविषै पद्मरागमणिमयी हरिषेण चक्रवर्ती के कराए चैत्यालय हैं। जिन पर निर्मल ध्वजा फरहरे हैं। अर नाना प्रकार के तोरणों से शोभै हैं। कैसे हैं हरिषेण? महा सज्जन पुरुषोत्तम थे जिनके गुण कहने में न आवैं। हे पुत्र! तू उतरकर पवित्र मन होकर नमस्कार कर। तब रावण बहुत विनय करि जिनमंदिरनिकूं नमस्कार किया अर बहुत आश्चर्य को प्राप्त भया अर सुमालीसूं

हरिषेण चक्रवर्ती की कथा पूछी। हे देव! आपने जिसके गुण वर्णन किए ताकी कथा कहो।' यह विनती करी। कैसा है रावण? वैश्रवण का जीतनहारा, बड़ेनिविषै है अति विनय जाकी।

तब सुमाली कहै है – हे रावण! तैं भली पूछी। पाप का नाश करणहारा हरिषेण का चरित्र सो सुन। कंपिल्यानगरविषै राजा सिंहध्वज तिनके राणी वप्रा महा गुणवती सौभाग्यवती। राजा के अनेक राणी थी परन्तु राणी वप्रा उनमें तिलक थी, ताकै हरिषेण चक्रवर्ती पुत्र भए। चौसठ शुभ लक्षणनकरि युक्त, पापकर्म के नाश करनहारे। सो इनकी माता वप्रा महा धर्मवती सदा अष्टाह्निका के उत्सव में रथयात्रा किया करै। सो याकी सौकन राणी महालक्ष्मी सौभाग्य के मद से कहती भई कि पहिले हमारा ब्रह्मरथ नगर में भ्रमण हुआ करेगा, पीछे तिहारा निकसेगा।

यह बात सुन राणी वप्रा हृदयविषै खेदखिन्न भई, मानों वज्रपातकरि पीडी गई। उसने ऐसी प्रतिज्ञा करी कि हमारे वीतराग का रथ अठाइयों में पहिले निकसे तो हमको आहार करना, अन्यथा नाहीं। ऐसा कहकर सर्व काज छोड़ दिया। शोककरि मुरझाय गया है मुखकमल जाका, अर अश्रुपात की बूंद आंखनिसों डालती हुई माता को देखकर हरिषेण कही – 'हे मात! अब तक तुमने स्वप्नमात्र में भी रुदन न किया, अब यह अमंगलकार्य क्यों करो हो?

तदि माता सर्व वृत्तांत कह्या। सुनकर हरिषेण मन में सोची कि क्या करूं? एक ओर पिता अर एक ओर माता। मैं संकट में पड्या, माताकूं अश्रुपात सहित देखवे समर्थ नाहीं। अर एक ओर पिता जिनसूं कछु कहा न जाय। तदि उदास होय घरतैं निकसि बनकूं गए। तहां मिष्ट फलनि का भक्षण करते अर सरोवरनि का निर्मल जल पीवते निर्भय विहार किया। इनका सुन्दर रूप देखकर ता वन के निर्दयी पशु भी शांत हो गये। ऐसे भव्य जीव किसको प्यारे न हों? तहां वनविषै जब माता का रुदन याद आवै तब इनकूं ऐसी बाधा उपजै जो वन की रमणीकता का सुख भूल जावै। सो हरिषेण चक्रवर्ती वनविषै वनदेवता समान भ्रमण करते, जिनको मृगी नेत्रनिकरि देखे हैं। सो वनविषै विहार करते शतमन्यु नामा तापस के आश्रम में गये। कैसा है आश्रम? वन के जीवनि का है आश्रय जहां।

अथानन्तर कालकल्प नामा राजा अति प्रबल, जाका बड़ा तेज अर बड़ी फौजसूं आनकर चंपा नगरी घेरी। सो तहां राजा जनमेजय। सो जनमेजय अर कालकल्प में युद्ध भया। आगे जनमेजय ने महल में सुरंग बना राखी हुती सो ता मार्ग होयकर जनमेजय की माता नागमती अपनी पुत्री मदनावली सहित निकसी, अर शतमन्यु तापस के आश्रम में आई। सो नागमती की पुत्री हरिषेण चक्रवर्ती का रूप देखकर काम के बाण करि बींधी गई। कैसे हैं काम के बाण? शरीर में विकलता के करणहारे हैं। तब वाकूं और भांति देख नागमती कहती भई – हे पुत्री! तू विनयवान

होयकर सुन कि मुनि ने पहिले ही कहा हुता कि यह कन्या चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न होयगी। सो यह चक्रवर्ती तेरे वर हैं। यह सुनकर अति आसक्त भई।

तब तापसी ने हरिषेण को निकास दिया, क्योंकि उसने विचारी कि कदाचित् इनके संसर्ग होय तो इस बात से हमारी अपकीर्ति होयगी। सो चक्रवर्ती इनके आश्रम से और ठौर गये, अर तापसी को दीन जान युद्ध न किया। परन्तु चित्त में वह कन्या बसी रही। सो इनको भोजनविषै अर शयनविषै काहू प्रकार स्थिरता नाहीं। जैसे भ्रामरी विद्याकरि कोऊ भ्रमै तैसे ये पृथ्वी मैं भ्रमते भए। ग्राम नगर वन उपवन लताओं के मंडप में इनको कहीं भी चैन नाहीं। कमलों के वन दावानल समान दीखै। अर चन्द्रमा की किरण बज्र की सूई समान दीखै। अर केतकी बरछी की अणी समान दीखै। पुष्पों की सुगंध मन को न हरै। चित्त में ऐसा चिंतवते भए जो मैं यह स्त्रीरत्न वरूं तो मैं जायकर माता का भी शोक संताप दूर करूं। नदियों के तट पर अर वन में ग्राम में नगर में पर्वत पर भगवान के चैत्यालय कराऊं। यह चिंतवन करते संते अनेक देश भ्रमते सिन्धुनंदन नगर के समीप आए।

कैसे हैं हरिषेण? महा बलवान अति तेजस्वी हैं। वहां नगर के बाहिर अनेक स्त्री क्रीडा को आई हुतीं। एक अंजनगिरि समान हाथी मद झरता स्त्रियों के समीप आया। महावत ने हेला मारकर स्त्रियों से कही – 'जो यह हाथी मेरे वश नाहीं, तुम शीघ्र ही भागो। तब वे स्त्रियां हरिषेण के शरणे आईं। हरिषेण परम दयालु हैं महायोधा हैं। वह स्त्रियों को पीछे करके आप हाथी के सन्मुख भए अर मन में विचारी जो वहां तो तापस दीन थे तातैं उनसे मैंने युद्ध न किया, वे मृग समान थे, परन्तु यहां यह दुष्ट हस्ती मेरे देखते स्त्री बालादिक को हने, अर मैं सहाय न करूं। सो यह क्षत्रीवृत्ति नाहीं। यह हस्ती इन बालादिक दीन जन को पीड़ा देने को समर्थ है। जैसे बैल सींगों से बंमई को खोदे परन्तु पर्वत के खोदने को समर्थ नाहीं। अर कोई बाण से केले के वृक्ष को छेदे परन्तु शिला को न छेद सकै, तैसे ही यह हाथी योधावों को उड़ायवे समर्थ नाहीं।

तदि आप महावत को कठोर वचनकरि कही कि हस्ती को यहां से दूर कर। तब महावत ने कही तू भी बड़ा ढीठ है, हाथी को मनुष्य जानै है। हाथी आप ही मस्त होय रहा है। तेरी मौत आई है अथवा दुष्ट ग्रह लग्या है, तू यहां से बेग भाग। तब आप हंसे आर स्त्रियों को तो पीछे कर दिया अर आप ऊपर को उछल के हाथी के दांतनि पर पग देय कुम्भस्थल पर चढ़े, अर हाथी से बहुत क्रीडा करी। कैसे हैं हरिषेण? कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके, अर उदार है वक्षस्थल जिनका, अर दिग्गजों के कुम्भस्थल समान हैं कांधे जिनके, अर स्तम्भ समान है जांघ जिनकी।

तब ये वृत्तांत सुन सब नगर के लोग देखने को आए। राजा महल ऊपर चढ्या देखै था सो

आश्चर्य को प्राप्त भया। अपने परिवार के लोग भेज इनको बुलाया। यह हाथी पर चढ़ नगर में आए। नगर के नर-नारी समस्त इनको देख मोहित होय रहे। क्षणमात्र में हाथी को निर्मद किया। यह अपने रूप से समस्त का मन हरते नगरविषै आए। राजा की सौ कन्या परणी। सर्व लोकनि में हरिषेण की कथा भई। राजा से अधिकार सम्मान पाय सर्व बातों से सुखी हैं तो भी तापसियों के वन में जो स्त्री देखी थी उस बिना एक रात्रि वर्ष समान बीतै। मन में चिंतवते भये जो मुझ बिना वह मृगनयनी उस विषम वन में मृगी समान परम आकुलताओं को प्राप्त होयगी। तातैं मैं उसके निकट शीघ्र ही जाऊं। यह विचारते रात्रिविषै निद्रा न आती जो कदाचित् अल्प निद्रा आई तौ भी स्वप्न में उस ही को देखा। कैसी है वह? कमल सारिखे हैं नेत्र जाके, मानों इनके मन ही में बस रही है।

अथानन्तर विद्याधर राजा शक्रधनु ताकी पुत्री जयचंद्रा उसकी सखी वेगवती, वह हरिषेण को रात्रिविषै उठायकर आकाश में ले चाली। निद्रा के क्षय होने पर आपको आकाश में जाता देख कोपकर उससे कहते भए – हे पापिनि! हमको कहां ले जाय है। यद्यपि यह विद्याबलकर पूर्ण है तौ भी इनको क्रोध रूप मुष्टि बांधे, होंठ डसते देखकर डरी, अर इनसे कहती भई – हे प्रभु! जैसैं कोई मनुष्य जा वृक्ष की शाखा पर बैठा होय ताही को काटै तो क्या यह सयानपना है? तैसैं मैं तिहारी हितकारिणी, अर तुम मोहि हतो, यह उचित नाहीं। मैं तुमको ताके पास ले जाऊं हूं जो निरंतर तुम्हारे मिलाप की अभिलाषिणी है। तब यह मन में विचारते भए कि यह मिष्टभाषिणी परपीड़ाकरिणी नाहीं है। इसकी आकृति मनोहर दीखै है अर आज मेरी दाहिनी आंख भी फडकै है। इसलिए यह हमारी प्रिया की संगमकारिणी है।

फिर इसको पूछा – 'हे भद्रे! तू अपने आवने का कारण कह।' तब वह कहै है कि सूर्योदय नगर में राजा शक्रधनु, राणी धारा, अर पुत्री जयचन्द्रा, वह गुण रूप के मद से महा उन्मत्त है। कोई पुरुष उसकी दृष्टि में न आवै। पिता जहां परणाया चाहे सो यह धारै नाहीं। मैंने जिन जिन राजपुत्रों के रूप चित्रपट पर लिखे दिखाये उनमें कोऊ भी उसके चित्त में न रुचै। तदि मैंने तुम्हारे रूप का चित्रपट दिखाया। तब वह मोहित भई, अर मोकूं ऐसैं कहती भई कि मेरा इस नर से संयोग न होय तो मैं मृत्युकूं प्राप्त होऊंगी, अर अधम नर से संबंध न करूंगी। तब मैंने उसको धीर्य बंधाया, अर मैं ऐसी प्रतिज्ञा करी – जहां तेरी रुचि है मैं उसे न लाऊं तो अग्नि में प्रवेश करूंगी। अति शोकवंत देख मैंने यह प्रतिज्ञा करी। ताके गुणकरि मेरा चित्त हर्‍या गया है, सो पुण्य के प्रभाव से आप मिले, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण भई। ऐसा कह सूर्योदय नगर में ले गई।

राजा शक्रधनु से ब्यौरा कहा। सो राजा ने अपनी पुत्री का इनसे पाणिग्रहण कराया, अर

वेगवती का बहुत यश माना। इनका विवाह देख परिजन अर पुरजन हर्षित भए। कैसे हैं ये वरकन्या? अद्‌भुत रूप के निधान हैं। इनके विवाह की वार्ता सुन कन्या के मामा के पुत्र गंगाधर महीधर क्रोधायमान भए। जो या कन्या ने हमको तजकर भूमिगोचरी वस्या। यह विचारकर युद्ध को उद्यमी भए। तब राजा शक्रधनु हरिषेणसूं कहता भया कि मैं युद्ध में जाऊं हूं, आप नगर में तिष्ठो। वे दुराचारी विद्याधर युद्ध करने को आए हैं।

तब हरिषेण ससुर से कहते भए कि जो पराए कार्य को उद्यमी होय सो अपने कार्य को कैसे उद्यम न करें? तातैं हे पूज्य! मोहि आज्ञा करो। मैं युद्ध करूंगा। तब ससुर ने अनेक प्रकार निवारण किया, पर यह न रहे। नाना प्रकार हथियारनिकरि पूर्ण ऐसे रथ पर चढ़ जिसमें पवनगामी अश्व जुरे, अर सूर्यवीर्य सारथी हांके, इनके पीछे बड़े बड़े विद्याधर चाले। कई हाथियों पर चढ़े, कई अश्वों पर चढ़े, कई रथों पर चढ़े। परस्पर महायुद्ध भया। कछुइक शक्रधनु की फौज हटी तब आप हरिषेण युद्ध करने को उद्यमी भए, सो जिस ओर रथ चलाया उस ओर घोड़ा हस्ती मनुष्य रथ कोऊ टिकै नाहीं। सब बाणनिकरि बींधे गए। सब कांपते युद्ध से भागे। महा भयभीत होय कहते भए – 'गंगाधर महीधर ने बुरा किया जो ऐसे पुरुषोत्तमतैं युद्ध किया। यह साक्षात् सूर्य समान है, जैसे सूर्य अपनी किरण पसारै, तैसे यह बाण की वर्षा करै है।'

अपनी फौज हटी देख गंगाधर महीधर भाजे, तब इनके क्षणमात्र में रत्न भी उत्पन्न भए। दशवां चक्रवर्ती महाप्रताप को धरै पृथ्वीविषै प्रकट भया। यद्यपि चक्रवर्ती की विभूति पाई परन्तु अपनी स्त्री रत्न जो मदनावाली उसके परणवे की इच्छा से द्वादश योजन परिमाण कटक साथ ले राजाओं को निवारते तपस्वियों के वन के समीप आए। तपस्वी वनफल लेकर आय मिले। पहिले इनका निरादर किया था, ताकरि शंकावान हुते, सो इनको अति विवेकी पुण्याधिकारी देख हर्षित भए। शतमन्यु का पुत्र जो जनमेजय अर मदनावली की माता नागमती उन्होंने मदनावली, चक्रवर्ती को विधिपूर्वक परणाई।

तब आप चक्रवर्ती की विभूतिसहित कम्पिल्यानगर आए, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं ने संग आकर माता के चरणारविंद को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। माता वप्रा ऐसे पुत्र को देखि ऐसी हर्षित भई जो गात में न समावै। हर्ष के अश्रुपात करि व्याप्त भए हैं लोचन जाकै। तब चक्रवर्ती ने जब अष्टाह्निका आई तो भगवान का रथ सूर्य से भी महा मनोज्ञ काढा, अष्टाह्निका की यात्रा करी। मुनि श्रावकनिकूं परम आनंद भया, बहुत जीव जिनधर्म अंगीकार करते भए।

सो यह कथा रावण को सुमाली ने कही। हे पुत्र! ता चक्रवर्ती ने भगवान के मंदिर पृथ्वीविषै सर्वत्र पुर ग्रामादिविषै, पर्वतनि पर तथा नदीन के तट पर अनेक चैत्यालय रत्नस्वर्णमयी कराये।

वे महापुरुष बहुत काल चक्रवर्ती की संपदा भोगि मुनि होय महा तपकर लोकशिखर सिधारे। यह हरिषेण का चरित्र, रावण सुनकर हर्षित भया। सुमाली की बारंबार स्तुति करी, अर जिन मंदिरनि का दर्शनकर रावण डेरा आये। डेरा सम्मेदशिखर के समीप भया।

अथानन्तर रावण को दिग्विजय में उद्यमी देख मानों सूर्य भी भयकरि दृष्टिगोचरसूं रहित भया, ताकी अरुणता प्रकटी, मानों रावण के अनुराग ही करि जगत हर्षित भया। बहुरि संध्या मिटकर रात्रि का अन्धकार फैल्या, मानो अंधकार प्रकाश के भय से दशमुख के शरण आया। बहुरि रात्रि व्यतीत भई अर प्रभात भया। अर रावण प्रभात की क्रिया कर सिंहासन विराजे। अकस्मात् एक ध्वनि सुनी, मानो वर्षाकाल का मेघ ही गरज्या। जाकरि सकल सेना भयभीत हुई। अर कटक के हाथी जिन वृक्षों से बंधे थे तिनका भंग करते भये। करसेरे ऊंचेकर तुरंग हींसते भये। तब रावण बोले – 'यह क्या है? यह मरणे को हमारे ऊपर कौन आया? यह वैश्रवण आया अथवा इन्द्र का प्रेरा सोम आया अथवा हमको निश्चल तिष्ठे देख कोई और शत्रु आया।' तब रावण की आज्ञा पाय प्रहस्त सेनापति उस ओर देखने को गया सो पर्वत के आकार मदोन्मत्त अनेक लीला करता हाथी देख्या।

तब आय रावणसौं वीनती करी कि हे प्रभो! मेघ की घटा समान हाथी है। इनको इन्द्र भी पकड़ने को समर्थ न भया। तब रावण हंसकर बोले – हे प्रहस्त! अपनी प्रशंसा करणी योग्य नाहीं, मैं इस हाथी को क्षणमात्र में वश करूंगा। यह कहकर पुष्पक विमान में चढ़ि, जाय हाथी देख्या। भले भले लक्षणनिकरि इन्द्रनीलमणि समान अति सुन्दर है श्याम शरीर जाका, कमल समान आरक्त है तलुवा जाका, अर महामनोहर उज्ज्वल दीर्घ गोल हैं नेत्र जाके, दांत सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लांबा, दश हाथ चौड़ा, कछुइक पीत हैं, सुन्दर है पीठ जाकी, अगला अंग उतंग है, अर लम्बी पूछ है, अर बड़ी सूंड है, अत्यन्त स्निग्ध सुन्दर नख हैं, गोल कठोर सुन्दर कुम्भस्थल हैं, प्रबल चरण हैं, माधुर्यता को लिये महावीर गंभीर है गर्जना जाकी, अर झरते हुवे मद की सुगंधा से गुंजार करे हैं भ्रमर जापर, दुंदुभी बाजनि की ध्वनि समान गंभीर है नाद जाका, अर ताड़ वृक्ष के पत्र समान जो कान तिनकूं हलावता, मन अर नेत्रनि की हरनहारी सुन्दर लीला को करता, रावण हस्तीकूं देख्या। देखकर बहुत प्रसन्न भया। हर्ष कर रोमांच होय आए। तब पुष्पक नामा विमान से उतर, गाढ़ी कमर बांधकर उसके आगे जाय शंख पूर्‌या। ताके शब्दकरि दशोंदिशा शब्दायमान भईं।

तब शंख का शब्द सुन चित्त में क्षोभ को पाय हाथी गरज्या, अर दशमुख के सम्मुख आया। बलकर गर्वित तब रावण अपने उत्तरासन का गेंद बनाय शीघ्र ही हाथी की ओर फेंका। रावण

गजकेलि में प्रवीण है, सो हाथी तो गेंद के सूंघने को लगा। अर रावण आकाशविषै उछलकर भ्रंगों की ध्वनि से शोभित गज के कुम्भस्थल पर हस्ततल मास्या, हाथी सूंड से पकड़ने को उद्यम किया। तदि रावण अति शीघ्रता कर दोऊं दांत के बीच होय निकस गए। हाथीसूं अनेक क्रीडा करी। दशमुख हाथी की पीठ पर चढ़ बैठे।

हाथी विनयवान शिष्य की न्याईं खड़ा होय रहा। तब आकाश से रावण पर पुष्पों की वर्षा भई। अर देवों ने जय जयकार शब्द किए। अर रावण की सेना बहुत हर्षित भई। रावण ने हाथी का त्रैलोक्यमंडन नाम धस्या। याको पाय रावण बहुत हर्षित भया। रावण ने हाथी के लाभ का बहुत उत्सव किया। अर सम्मेदशिखर पर्वत पर जाय यात्रा करी। विद्याधरों ने नृत्य किया। वह रात्रि वहां ही रह्या। प्रभात हुवा, सूर्य उगा, मानों दिवस ने मंगल का कलश रावण को दिखाया। कैसा है दिवस? सेवा की विधि में प्रवीण है, तब रावण डेरा मैं आय सिंहासन पर विराज्या, हाथी की कथा सभा में कहते भये।

ता समय एक विद्याधर आकाशतैं रावण के निकट आया। सो अत्यन्त कम्पायमान, जाके पसेव की बूंद झरे हैं, बहुत खेदखिन्न घायल हुआ, अश्रुपात डारता, जर्जरा है तनु जाका, हाथ जोड़ नमस्कार की विनती करता भया। हे देव! आज दशवां दिन है, राजा सूर्यरज रक्षरज वानरवंशी विद्याधर तिहारे बलकरि है बल जिनमें, सो आपका प्रताप जानि अपनै किहकंद नगर लेने के अर्थ अलंकारोदय जो पाताललंका तातैं अति उछाह से चाले। कैसे हैं दोऊ भाई? तिहारे बलकरि महा अभिमान युक्त जगत को तृण समान मानैं, ते किहकंधपुर जाय घेस्या। तहां इन्द्र का यमनामा दिग्पाल, ताके योधा युद्ध करने को निकसे, हाथ में हैं आयुध जिनके। वानरवंशनि के अर यम के लोकों में महायुद्ध भया। परस्पर बहुत मारे गए। तब युद्ध का कलकलाट सुन यम आप निकसा। कैसा है यम? महाक्रोधकरि पूर्ण, अति भयंकर, न सहा जाय है तेज जाका। सो यम के आवते ही वानरवंशियों का बल भागा। अनेक आयुधनिकर घायल भए।

यह कथा कहता कहता वह विद्याधर मूर्छा को प्राप्त भया। तब रावण ने शीतोपचारकरि सावधान किया। अर पूछा – 'आगे क्या भया? तब वह विश्राम पाय हाथ जोड़ फिर कहता भया – ' हे नाथ! सूर्यरज का छोटा भाई रक्षरज अपने दल को व्याकुल देख आप युद्ध करने लगे। सो यम के साथ बहुत देर तक युद्ध किया। यम अतिवली, उसने रक्षरज को पकड़ लिया। तब सूर्यरज युद्ध करने लगे, बहुत युद्ध भया। यम ने आयुध का प्रहार किया, सो राजा घायल होय मूर्छित भए। तब अपने पक्ष के सामंतों ने राजा को उठाय मेघला वन में ले जाय शीतोपचार कर सावधान किया।

बहुरि यम अपना यमपना सत्य करता संता एक बंदीगृह बनाया। उसका नरक नाम धस्या।

तहां वैतरनी आदि सर्व विधि बनाई। जे जे वाने जीते, अर पकड़े वे सर्व नरक में दिये। सो उस नरक में कईएक तो मर गए, कईएक दुख भोगै हैं। वहां उस नरक में सूर्यरज अर रक्षरज ये भी दोनों भाई हैं। यह वृत्तांत मैं देखकर बहुत व्याकुल होय आपके निकट आया हूं। आप उनके रक्षक हो, अर जीवनमूल हो। उनके आपका ही विश्वास है, अर मेरा नाम शाखावली है, मेरा पिता रणदक्ष, माता सुश्रोणी। मैं रक्षरज का प्यारा चाकर, सो आपको यह वृत्तांत कहने को आया हूं। मैं तो आपको जतावा देय निश्चिंत भया। अपने पक्ष को दुख-अवस्था में जान आपको जो कर्त्तव्य होय सो करो।

तब रावण ने उसे दिलासा कर, याहि संतोष दे, याके घाव का यत्न कराया, अर तत्काल सूर्यरज रक्षरज के छुड़ावने को महाक्रोध कर यम पर चाले। अर मुसकराय कर कहते भए – कहा यम रंक हमसे युद्ध कर सकै? जो मनुष्य उसने वैतरणी आदि क्लेश के सागर में डार राखे हैं, मैं आज ही उनको छुड़ाऊंगा। अर उस पापी ने जो नरक बना राख्या है, ताहि विध्वंस करूंगा। देखो दुर्जन की दुष्टता! जीवों को ऐसे संताप देहै। यह विचारकर आप ही चाले। प्रहस्त सेनापति आदि अनेक राजा बड़ी सेना से आगे दौड़े। नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़े शस्त्रों के तेज से आकाश में उद्योत करते अनेक वादित्रों के नाद होते महा उत्साह से चाले, विद्याधरों के अधिपति किहकूंपुर के समीप गए। सो दूर से नगर के घरों की शोभा देखकर आश्चर्य को प्राप्त भए।

किहकूंपुर की दक्षिण दिशा के समीप यम विद्याधर का बनाया हुवा अकीर्तम नरक देख्या। जहां एक ऊंचा खाड़ा खोद राखा है। अर नरक की नकल बनाय राखी है। अनेक नरनि के समूह नरक में राखे हैं। तब रावण ने उस नरक के रखवारे, जे यम के किंकर हुते, कूट कर काढ़ दिये, अर सर्व प्राणी सूर्यरज रक्षरज आदि दुख सागर से निकासे। कैसे हैं रावण? दीनन के बंधु, दुष्टों के दंड देनहारे हैं। वह सर्व नरक स्थान ही दूर किया। यह वृत्तांत परचक्र के आवने का सुन यम बड़े आडम्बर से सर्व सेनासहित युद्ध करवेकूं आया। मानों समुद्र ही क्षोभ को प्राप्त भया।

पर्वत सारिखे अनेक गज मदधारा झरते, भयानक शब्द करते, अनेक आभूषणयुक्त, उन पर महायोधा चढ़े, अर तुरंग पवन सारिखे चंचल जिनकी पूंछ चमर समान हालती, अनेक आभूषण पहिरे, उनकी पीठ पर महाबाहु सुभट चढ़े, अर सूर्य के रथ समान अनेक ध्वजाओं की पंक्ति से शोभायमान, जिनमें बड़े बड़े सामंत बकतर पहरे, शस्त्रों के समूह धारै बैठे, इत्यादि महा सेना सहित यम आया। तब विभीषण ने यम की सर्व सेना अपने बाणों से हटाई। कैसे हैं विभीषण? रणविषै प्रवीण, रथविषै आरूढ़ हैं। विभीषण के बाणों से यम किंकर पुकारते हुए भागे। यम, किंकरों के भागने अर नारकियों के छुड़ाने से महा क्रूर होकर विभीषण पर रथ चढ्या धनुष को

धारे आया। ऊंची है ध्वजा जाकी, काले सर्प समान कुटिल है केश जाके, भ्रकुटी चढ़ाए लाल हैं नेत्र जाके, जगत रूप ईंधन के भस्म करणे को अग्नि समान आप तुल्य जो बड़े बड़े सामंत उन कर मंडित, युद्ध करणे को अपने तेज से आकाश विषै उद्योत करता संता आया।

तब रावण यम को देख विभीषण को निवार आप रणसंग्राम में उद्यमी भए। यम के प्रताप से सर्व राक्षस सेना भयभीत होय रावण के पीछे आय गई। कैसा है यम? अनेक आडम्बर धरै हैं, भयानक है मुख जाका। रावण भी रथ पर आरूढ़ होकर यम के सम्मुख भए। अपने बाणन के समूह यम पर चलाए। इन दोनों के बाणनि करि आकाश आच्छादित भया। कैसे हैं बाण? भयानक है शब्द जिनका। जैसे मेघों के समूह से आकाश व्याप्त होय तैसे बाणों से आच्छादित हो गया। रावण ने यम के सारथी को प्रहार किया, सो सारथी भूमि में पड़ा, अर एक बाण यम के लगाया सो यम भी रथ से गिरता भया। तब यम रावण को महा बलवान देखि दक्षिण दिशा का दिग्पालपणा छोड़ भाग्या। सारे कुटुम्ब को लेकर परिजन पुरजन सहित रथनूपुर गया।

इन्द्रसूं नमस्कार कर वीनती करता भया। ''हे देव! आप कृपा करो, अथवा कोप करो, आजीविका राखहु अथवा हरो, तिहारी जो बांछा होय सो करो। यह यमपणा मुझसे न होय। माली के भाई सुमाली का पोता दशानन महायोधा, जिसने पहिले तो वैश्रवण जीता वह तो मुनि हो गया। अर मुझे भी उसने जीता सो मैं भागकर तुम्हारे निकट आया हूं। उसका शरीर वीर रस से बना है। वह महात्मा है, वह जेष्ठ के मध्याह्न का सूर्य समान कभी भी न देखा जाय है।''

यह वार्ता सुन कर रथनूपुर का राजा इन्द्र संग्राम को उद्यमी भया, तब मंत्रियों के समूह ने मने किया। कैसे हैं मंत्री? वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाननहारे हैं। तब इन्द्र समझकर बैठ रहा। इन्द्र यम का जमाई है, उसने यम को दिलासा दिया कि तुम बड़े योधा हो, तुम्हारे योधापने में कमी नाहीं। परन्तु रावण प्रचंड पराक्रमी है यातें तुम चिंता न करो, यहां ही सुख से तिष्ठो। ऐसा कहकर इनका बहुत सम्मान कर राजा इन्द्र राजलोक में गए अर कामभोग के समुद्र में मग्न भए। कैसा है इन्द्र? बड़ा है विभूति का मद जाकै। रावण के चरित्र के जो वृत्तांत यम ने कहे हुते, वैश्रवण का वैराग्य लेना, अर अपना भागना वह इन्द्र ऐश्वर्य के मद में भूल गए, जैसे अभ्यास बिना विद्या भूल जाय। अर यम भी इन्द्र का सत्कार पाय, अर असुर संगीत नगर का राज पाय मान-भंग का दुःख भूल गया। मन में मानता भया कि - जो मेरी पुत्री महा रूपवन्ती सो तो इन्द्र के प्राणों से भी प्यारी है, अर मेरा अर इन्द्र का बड़ा सम्बन्ध है। तातैं मेरे कहा कमी है?

अथानन्तर रावण ने किहकंधपुर तो सूर्यरज को दिया अर किहकूंपुर रक्षरज को दिया। दोऊन को सदा के हितू जान बहुत आदर किया। रावण के प्रसाद से वानरवंशी सुख से तिष्ठे। रावण सब

राजों का राजा महालक्ष्मी अर कीर्ति कों धरै दिग्विजय करै। बड़े बड़े राजा दिनप्रति आय मिलैं। सो रावण का कटकरूप समुद्र अनेक राजावों की सेनारूपी नदी से पूरित होता भया। अर दिन दिन विभव अधिक होता भया। जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा दिन दिन कलाकर बढ़ता जाय तैसे रावण दिन दिन बढ़ता जाय। पुष्पक नामा विमानविषै आरूढ़ होय त्रिकूटाचल के शिखर पर आय तिष्ठा।

कैसा है विमान? रत्नन की माला से मंडित है, अर ऊंचे शिखरों की पंक्ति कर विराजित है, शीघ्र जहां चाहे वहां जाय। ऐसे विमान का स्वामी रावण, महा धीर्यताकरि मण्डित। पुण्य के फल का है उदय जाकै। जब रावण त्रिकूटाचल के शिखर सिधारे सब बातों में प्रवीण तब राक्षसों के समूह नाना प्रकार के वस्त्राभूषण कर मण्डित परम हर्षकूं प्राप्त भए। सर्व राक्षस रावण को ऐसे मंगल वचन गम्भीर शब्द कहते भये – ''हे देव! तुम जयवंत होवो, आनन्द को प्राप्त होवो, चिरकाल जीवो, वृद्धि को प्राप्त होवो, उदय को प्राप्त होवो''। निरन्तर ऐसे मंगल वचन गम्भीर शब्द कर कहते भए।

कईएक सिंह शारदूलों पर चढ़े, कईएक हाथी घोड़ों पर चढ़े, कईएक हंसों पर चढ़े, प्रमोदकर फूल रहे हैं नेत्र जिनके, देवों कैसा आकार धरै, जिनका तेज आकाश विषै फैल रहा है, वन पर्वत अन्तरद्वीप के विद्याधर राक्षस आए समुद्र को देखकर विस्मय को प्राप्त भए। कैसा है समुद्र? नहीं दीखै है पार जिनका, अति गम्भीर है, महामत्स्यादि जलचरों कर भरा है, तमाल बन समान श्याम है, पर्वत समान ऊंची ऊंची उठे हैं लहर के समूह जाविषै, पाताल समान ओंडा, अनेक नाग नागनिकरि भयानक, नाना प्रकार के रत्नों के समूह करि शोभायमान, नाना प्रकार की अद्भुत चेष्टा को धारै। अर लंकापुरी अति सुन्दर हुती ही अर रावण के आने से अधिक समारी गई है।

कैसी है लंका? अति देदीप्यमान रत्नों का कोट है जाकै, अर गम्भीर खाईकर मण्डित है, कुंद के पुष्प समान अति उज्ज्वल स्फटिक मणि के महल हैं जिनमें। इन्द्र नीलमणियों की जाली शोभै हैं, अर कहूं इक पद्मराग मणियों के अरुण महिल हैं, कहूं एक पुष्पराग मणिन के महल, कहूं एक मरकन्दमणिन के महल हैं इत्यादि अनेक मणियों के मन्दिरों से लंका स्वर्गपुरी समान है। नगरी तो सदा ही रमणीक है परन्तु धनी के आयवेकरि अधिक बनी है। रावण अतिहर्ष से लंका में प्रवेश किया। कैसा है रावण? जाकों काहू की शंका नाहीं, पहाड़ समान हाथी, तिनकी अधिक शोभा बनी है, अर मन्दिर समान रत्नमई रथ बहुत समारे हैं, अश्वों के समूह हींसते, चलायमान चमर समान हैं पूंछ जिनकी, अर विमान अनेक प्रभा को धरैं इत्यादि महाविभूति कर रावण आया। चंद्रमा के समान उज्ज्वल सिर पर छत्र फिरते, अनेक ध्वजा पताका फहराती, बंदीजन के समूह विरद बखानते, महामंगल शब्द होते, बीण बांसुरी शंख इत्यादि अनेक वादित्र

बाजते, दशोंदिशा अर आकाश शब्दायमान हो रहा है। इस विधि लंका में पधारे।

तब लंका के लोग अपने स्वामी का आगमन देख दर्शन के लालसी हाथ में अर्घ लिए, पत्र फल पुष्प रत्न लिये, अनेक सुन्दर वस्त्र आभूषण पहरे राग रंग सहित रावण के समीप आए। वृद्धनकूं आगे धर तिनके पीछे आय नमस्कार कर कहते भये – 'हे नाथ! लंका के लोग अजितनाथ के समय से आपके घर के शुभचिन्तक हैं। सो स्वामी को अति प्रबल देख अति प्रसन्न भए हैं, भांति भांति की आसीस दीनी। तब रावण ने बहुत दिलासा देकर सीख दीनी। तब रावण के गुण गावते अपने अपने घर को गये।

अथानन्तर रावण के महल में कौतुकयुक्त नगर की अनेक आभूषण पहिरैं, रावण के देखने की है इच्छा जिनको, सर्व घर के कार्य छोड़ छोड़ पृथ्वीनाथ के देखने को आईं। कैसे हैं रावण? वैश्रवण के जीतनहारे तथा यम विद्याधर के जीतनहारे अपने महलविषै राजलोक सहित सुखसूं तिष्ठे। कैसा है महल? चूडामणि समान मनोहर है। और भी विद्याधरों के अधिपति यथायोग्य स्थान के विषै आनन्द से तिष्ठे, देवन समान है चरित्र।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे श्रेणिक! जो उज्ज्वल कर्म के करणहारे हैं तिनका निर्मल यश पृथ्वीविषैं होय है, नाना प्रकार के रत्नादिक सम्पदा का समागम होय है, अर प्रबल शत्रुओं का निर्मूल पृथ्वीविषै होय है, सकल त्रैलोक्यविषै गुण विस्तरै हैं। या जीव के प्रचण्ड बैरी पांच इंद्रियों के विषय हैं, जो जीव की बुद्धि हरैं हैं, अर पापों को बन्ध करैं हैं। यह इन्द्रियों के विषय धर्म के प्रसाद से वशीभूत होय हैं। अर राजाओं के बाहिर ले बैरी प्रजा के बाधक ते भी आय पावोंविषै पड़े हैं। ऐसा मानकर जो धर्म के विरोधी विषयरूप बैरी हैं वे विवेकियों को वश करने योग्य हैं। तिनका सेवन सर्वथा न करना। जैसे सूर्य की किरणों से उद्योत होते संते भली दृष्टिवाले पुरुष अन्धकारकरि व्याप्त ओंडे खंदकविषै नहीं पड़े हैं, तैसे जे भगवान के मार्गविषै प्रवर्तें हैं तिनके पापबुद्धि की प्रवृत्ति नहीं होय है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषैं दशग्रीव का निरूपण करने वाला आठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।8।।

अथानन्तर आगे अपने इष्टदेवकूं विधिपूर्वक नमस्कार करि। उनके गुण स्तवनकरि किहकंधपुर विषै राजा सूर्यरज वानरवंशी, तिनकी राणी चन्द्रमालिनी अनेक गुणसम्पन्न, ताके बाली नामा पुत्र भए। सो वर्णन करिए हैं। सो हे भव्य! तू सुन।

कैसे हैं बाली? सदा उपकारी शीलवान पंडित प्रवीण धीर–लक्ष्मीवान शूरवीर ज्ञानी अनेक–कला संयुक्त सम्यक्दृष्टि महाबली राजनीतिविषै प्रवीण धीर्यवान दयाकर भीगा है चित्त जिनका,

विद्या के समूह गर्वित मंडित कांतिवान तेजवंत हैं।

ऐसे पुरुष संसार में विरले ही हैं जो समस्त अढ़ाई द्वीपों के जिनमंदिरों के दर्शन में उद्यमी हैं। कैसे हैं वे जिनमंदिर? अति उत्कृष्ट प्रभाकर मंडित हैं। बाली तीनों काल अति श्रेष्ठ भक्तियुक्त संशयरहित श्रद्धावंत जम्बूद्वीप के सर्व चैत्यालयनि के दर्शन कर आवै। महा पराक्रमी, शत्रुपक्ष का जीतनहारा, नगर के लोगों के नेत्ररूपी कुमुद के प्रफुल्लित करने को चन्द्रमा समान, जिसको किसी की शंका नाहीं। किहकंधपुर में देवन की न्याईं रमै। कैसा है किहकंधपुर? महारमणीक नाना प्रकार के रत्नमयी मंदिरों से मंडित, गज तुरंग रथादि से पूर्ण, नाना प्रकार का व्यापार है जहां, अर अनेक सुन्दर हाटन की पंक्तिनकर युक्त है जहां, जैसे स्वर्गविषै इन्द्र रमै तैसे रमै हैं। अनुक्रमतैं जाके छोटा भाई सुग्रीव भया। सो महाधीर वीर मनोज्ञरूप कर युक्त, महा नीतिवान विनयवान है। ये दोनों ही वीर कुल के आभूषण होते भए जिनका, आभूषण बड़ों का विनय है।

सुग्रीव के पीछे श्रीप्रभा बहिन भई जो साक्षात् लक्ष्मी, रूपकर अतुल्य है। अर किहकंधपुरविषै सूर्यरज का छोटा भाई रक्षरज, ताकी राणी हरिकांता, ताके पुत्र नल, अर नील होते भए। सुजनों के आनन्द के उपजावनहारे महासामंत रिपु की शंकारहित मानों किहकंधपुर के मंडन ही हैं। इन दोनों भाइयों के दो पुत्र महागुणवंत भए। राजा सूर्यरज अपने पुत्रों को यौवनवंत देख मर्यादा के पालक जान, आप विषयों को विषमिश्रित अन्न समान जान, संसार से विरक्त भए। कैसे हैं राजा सूर्यरज? महाज्ञानवान हैं। बाली को पृथ्वी के पालने निमित्त राज दिया, अर सुग्रीव को युवराजपद दिया, अपने स्वजन परजन समान जाने, अर यह चतुरगतिरूप जगत महादु:खकरि पीड़ित देख विहतमोह नामा मुनि के शिष्य भए। जैसा भगवान ने भाष्या तैसा चारित्र धार्‍या। कैसे हैं मुनि सूर्यरज? शरीरविषै भी नहीं है ममत्व जिनके, आकाश सारिखा निर्मल है अंत:करण जिनका, समस्त परिग्रहरहित, पवन की नाईं पृथ्वीविषै विहार किया। विषयकषायरहित मुक्ति के अभिलाषी भए।

अथानन्तर बाली के ध्रुव नामा स्त्री महा पतिव्रता, गुणों के उदय से सैकड़ों राणियों में मुख्य उस सहित ऐश्वर्य को धरै राजा बाली वानरवंशियों के मुकुट, विद्याधरनि करि मानिये है आज्ञा जाकी, सुन्दर हैं चरित्र जाके, सो देवन के ऐसे सुख भोगते भए, किहकंधपुर में राज करैं।

रावण की बहिन चन्द्रनखा, जिसके सर्व गात मनोहर, राजा मेघप्रभ का पुत्र खरदूषण ने जिस दिन से इसको देखा उस दिन से कामबाणकरि पीड़ित भया, याकों हरा चाहै। सो एक दिन रावण, राजा प्रवर, राणी आवली, उनकी पुत्री तनूदरी उसके अर्थ एक दिन रावण गए, सो खरदूषण ने लंका रावण बिना खाली देख चिन्तारहित होय चन्द्रनखा हरी। कैसा है खरदूषण? अनेक विद्या का धारक मायाचार में प्रवीण है बुद्धि जाकी। दोऊ भाई कुम्भकरण अर विभीषण बड़े शूरवीर हैं,

परन्तु छिद्र पायकरि मायाचारकरि कन्याकूं हर ले गया। तब वे क्या करैं, ता पीछे सेना दौड़ने लगी। तब कुम्भकरण विभीषन ने यह जानकर मनै करी कि खरदूषण पकड्या तो जावै नाहीं, अर मारणा योग्य नाहीं। बहुरि रावण आए, तदि ए वार्ता सुनि अति क्रोध किया। यद्यपि मार्ग के खेद से शरीर विषै पसेव आया हुता, तथापि तत्काल खरदूषण पर जाने को उद्यमी भए। कैसा है रावण? महामानी है। एक खड्ग ही का सहाय लिया, अर सेना भी लार न लीनी, यह विचारा कि जो महावीर्यवान पराक्रमी है, तिनके एक खड्ग ही का सहारा है।

तब मंदोदरी ने हाथ जोड़ विनती करी – 'हे प्रभो! आप प्रकट लौकिक स्थिति के ज्ञाता हो, अपने घर की कन्या और को देनी, अर औरों की आप लेनी। इन कन्याओं की उत्पत्ति ऐसी ही है। अर खरदूषण चौदह हजार विद्याधरों का स्वामी है, जो विद्याधर युद्ध से कदै ही पीछे न हटें, बड़े बलवान हैं, अर इस खरदूषण कों अनेक सहस्र विद्या सिद्ध हैं। महागर्ववंत हैं, आप समान शूरवीर है, यह बात लोकनि से क्या आपने नाहीं सुनी है। आपके अर उसके भयानक युद्ध प्रवरते तब भी हार जीत का संदेह ही है। अर वह कन्या हर ले गया है, सो वह हरणकरि दूषित भई है, औरनकूं जो न देने आवै सो खरदूषण के मारने से वह विधवा होय है। अर सूर्यरज को मुक्ति गए पीछे चंद्रोदर विद्याधर पाताललंका में थाने हुता। ताहि काढ़कर यह खरदूषण तुम्हारी बहिन सहित पाताल लंकाविषै तिष्ठै है, तिहारा सम्बन्धी है।'

तब रावण बोले – हे प्रिये! मैं युद्ध से कभी नहीं डरूं। परन्तु तिहारे वचन नहीं उलंघने, अर बहिन विधवा नहीं करणी, सो हमने क्षमा करी। तब मंदोदरी प्रसन्न भई।

अथानन्तर कर्मनि के नियोग से चंद्रोदर विद्याधर कालकूं प्राप्त भया। तब ताकी स्त्री अनुराधा गर्भिणी, विचारी भयानक वन में हिरणी की नाईं भ्रमै, सो मणिकांत पर्वत पर सुन्दर पुत्र जना। शिला ऊपर पुत्र का जन्म भया, कैसी है शिला? कोमल पल्लव अर पुष्पों के समूह से संयुक्त है। अनुक्रम से बालक वृद्धि को भया। यह वनवासिनी माता उदास चित्त पुत्र की आशा से पुत्र को पालै। जब यह पुत्र गर्भ में आया तब ही से इनके माता पिता को वैरियों से विराधना उपजी, तातैं याका नाम विराधित, राजसम्पदा वर्जित जहां जहां राजानि पै जाय तहां तहां याका आदर न होय। सो जैसे सिर का केश स्थानक से छूटा आदर न पावै तैसे जो निज स्थानक से रहित होय उसका सम्मान कहांतैं होय?

सो यह राजा का का पुत्र खरदूषण जीतिवै समर्थ नाहीं सो चित्तविषै खरदूषण का उपाय चितवता हुआ सावधान रहै। अर अनेक देशों में भ्रमण करै, षट् कुलाचलनिविषै अर सुमेरु आदि पर्वतनिविषै तथा रमणीक वनों में जो अतिशय स्थानक हैं, जहां देवनि का आगमन है, तहां यह

विहार करै, अर संग्रामविषै योद्धा लड़ें तिनके चरित्र आकाश में देवों के साथ देखै, संग्राम गज अश्व रथादिकर पूर्ण है। अर ध्वजा छत्रादिककर शोभित है। या भांति विराधित कालक्षेप कर अर लंकाविषै रावण इंद्र की नाईं सुखसूं तिष्ठै।

अथानन्तर सूर्यरज का पुत्र बाली, रावण की आज्ञातैं विमुख भया। कैसा है बाली? अद्भुत कर्मों की करणहारी जो महाविद्या तिनकरि मण्डित है, अर महाबली है। तब रावण ने बाली पै दूत भेजा। सो दूत महा बुद्धिमान किहकंधपुर जायकर बाली से कहता भया – 'हे वानराधीश! दशमुख तुमकूं आज्ञा करी है सो सुनो। कैसे हैं दशमुख? महाबली महातेजस्वी महालक्ष्मीवान महानीतिवान महासेनाकरियुक्त, प्रचंडनकूं दंड देनहारे, महा उदयवान, जिस समान भरत क्षेत्र में दूजा नाहीं। पृथ्वी के देव अर शत्रुवों का मानमर्दन करनहारा है, यह आज्ञा करी है, जो तिहारे पिता सूर्यरज को मैंने राजा यम बैरी को काढ़कर किहकंधपुर में थाप्या अर तुम सदा के हमारे मित्र हो, परन्तु आप अब उपकार भूलकर हमसों पराङ्मुख हो गए हो, यह योग्य नाहीं है। मैं तुम्हारे पिता से भी अधिक प्रीति तुमसे करूंगा। अब तुम शीघ्र ही हमारे निकट आवो, प्रणाम करो, अर अपनी बहिन श्रीप्रभा हमको परणावो, हमारे संबंध से तुमको सर्व सुख होयगा।

दूत ने कही – ऐसी रावण की आज्ञा प्रमाण करो। सो बाली के मन में और बात तो आई, परन्तु एक प्रणाम की न आई, काहेतैं? जो याकैं देव गुरु शास्त्र बिना और को नमस्कार नाहीं करै, यह प्रतिज्ञा है। तब दूत ने फिर कही – हे कपिध्वज! अधिक कहने से कहा? मेरे वचन तुम निश्चय करो, अल्प लक्ष्मी पाकर गर्व मत करो, या तो दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करो या आयुध पकड़ो। या तो सेवक होयकर स्वामी पर चंवर ढोरो या भागकर दशों दिशाविषै विचरो, या सिर नवावो या खैंचि के धनुष निवावो। या रावण की आज्ञा को कर्ण का आभूषण करहु या धनुष की प्रत्यंचा खैंचकर कानों तक लावों। रावण आज्ञा करी है कि या तो मेरे चरणारविंद की रज माथे चढ़ावहु या रणसंग्राम विषै सिर पर टोप धरो, या तो बाण छोड़ो या धरती छोड़ो, या तो हाथ में वेत्र दंड लेकर सेवा करो या बरछी हाथ में पकड़ो, या तो अंजली जोड़हु या सेना जोड़हु। या तो मेरे चरणों के नखविषैं मुख देखहु या खड्गरूप दर्पण में मुख देखहु। ये कठोर वचन रावण के दूत ने बाली से कहे।

तदि बाली का व्याघ्रविलंबी नामा सुभट कहता भया – रे कुदूत! नीचपुरुष! तू ऐसे अविवेक वचन कहै है सो तू खोटे ग्रहकर ग्रह्या है। समस्त पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है पराक्रम अर गुण जाका, ऐसा बाली देव तेरे कुराक्षस ने अब तक कर्णगोचर नहीं किया। ऐसा कहकर सुभट ने महा क्रोधायमान होकर दूत के मारणेकूं खड्ग पर हाथ धर्‌या, तदि बाली ने मनै किया, जो इस रंक

के मारणे से कहा? यह तो अपने नाथ के कहे प्रमाण वचन बोलै है। अर रावण ऐसे वचन कहावै है। सो उसी की आयु अल्प है, तदि दूत डर कर सिताव रावण पै गया। रावण को सकल वृत्तांत कह्या, सो रावण महाक्रोधकूं प्राप्त भया।

दुस्सह तेजवान रावण ने बड़ी सेनाकरि मंडित बखतर पहन शीघ्र ही कूच किया। रावण का शरीर तेजोमय परमाणुओं से रचा गया है। रावण किहकंधपुर पहुंचे। तदि बाली संग्रामविषै प्रवीण महा भयानक शब्द सुनकर युद्ध के अर्थ बाहिर निकसने का उद्यम किया। तब महाबुद्धिमान नीतिवान जे सागर वृद्धादिक मंत्री, तिनने वचनरूप जलकर शांत किया कि हे - देव! निष्कारण युद्ध करने से कहा? क्षमा करो, आगे अनेक योधा मान करके क्षय गए। कैसे हैं वे योधा? रण ही है प्रिय जिनकूं, अष्टचन्द्र विद्याधर अर्ककीर्ति के भुज के आधार, जिनके देव सहाई तौ भी मेघेश्वर जयकुमार के बाणों कर क्षय भए। रावण की बड़ी सेना है जिसकी ओर कोई देख सकै नाहीं, खड्ग गदा सेल बाण इत्यादि अनेक आयुधों कर भरी है, अतुल्य है। तातैं आप संदेह की तुला जो संग्राम उसके अर्थ न चढ़ो।

तब बाली ने कही - अहो मंत्री हो! अपनी प्रशंसा करनी योग्य नाहीं तथापि मैं तुमको यथार्थ कहू हूं कि इस रावण को सेना सहित एक क्षणमात्र में बावें हाथ की हथेली से चूर डालने को समर्थ हूं, परन्तु यह भोग क्षण विनश्वर हैं, इनके अर्थ निर्दय कर्म कौन करै? जब क्रोधरूपी अग्नि से मन प्रज्वलित होय तब निर्दय कर्म होय है। यह जगत के भोग केले थंभ समान असार हैं। तिनको पाकर मोहवंत जीव नरक में पड़े हैं। नरक महादु:खों से भरया है। सर्व जीवों को जीतव्य वल्लभ है। सो जीवों के समूह को हत कर इन्द्रियों के भोग सुख पाइए है तिनकरि गुण कहां? इन्द्रिय सुख साक्षात् दु:ख ही हैं। ये प्राणी संसाररूपी महाकूप में अरहट की घड़ी के यंत्र समान रीती भरी करते रहते हैं। कैसे हैं ये जीव? विकल्प जाल से अत्यन्त दु:खी हैं।

श्री जिनेंद्र देव के चरणयुगल संसार के तारणे के कारण हैं, तिनकूं नमस्कारकरि और कूं कैसे नमस्कार करूं? मैंने पहिले से ऐसे प्रतिज्ञा करी है कि देव गुरु शास्त्र के सिवाय और को प्रणाम न करूं? तातैं मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग भी न करूं अर युद्धविषै अनेक प्राणियों का प्रलय भी न करूं। बल्कि मुक्ति की देनहारी सर्व संगरहित दिगम्बरी दीक्षा धरूं। मेरे जो हाथ श्री जिनराज की पूजा में प्रवरतें, दानविषै प्रवरतें, अर पृथ्वी की रक्षाविषै प्रवरतैं, वे मेरे हाथ कैसे किसी को प्रणाम करैं?

अर जो हस्तकमल जोड़कर पराया किंकर होवे, उसका कहा ऐश्वर्य? अर कहा जीतव्य? वह तो दीन है। ऐसा कहकर सुग्रीव को बुलाय आज्ञा करते भये कि 'हे बालक! सुनो, तुम रावण को नमस्कार करो वा न करो, अपनी बहिन उसे देवो अथवा मत देवो, मेरे कछु प्रयोजन नाहीं। मैं

संसार के मार्ग से निवृत्त भया, तुमको रुचै सो करो। ऐसा कहकर सुग्रीव को राज्य देय आप गुणन कर गरिष्ठ श्री गगनचन्द्र मुनितैं परमेश्वरी दीक्षा आदरी। परमार्थ में लगाया है चित्त जिनने, अर पाया है परम उदय जिनने, वे बाली योधा परम ऋषि होय एक चिद्रूप भाव में रत भए। सम्यग्दर्शन है निर्मल जिनके, सम्यग्ज्ञान कर युक्त है आत्मा जिनका, सम्यक्चारित्रविषै तत्पर, बारह अनुप्रेक्षाओं का निरंतर विचार करते भए। आत्मानुभव में मग्न मोह जालरहित स्वगुणरूपी भूमि पर विहार करते भये। कैसी है गुण भूमि? निर्मल आचारी जे मुनि तिनकर सेवनीक है।

बाली मुनि पिता की नाईं सर्व जीवों पर दयालु बाह्याभ्यंतर तप से कर्म की निर्जरा करते भए। वे शांतबुद्ध तपोनिधि महाऋद्धि के निवास होते भए। सुन्दर है दर्शन जिनका, ऊंचे ऊंचे गुणस्थानरूपी जे सिवाण तिनके चढ़ने में उद्यमी भए। भेदी है अंतरंग मिथ्या भावरूपी ग्रंथि (गांठ) जिनने, वाह्याभ्यंतर परिग्रहरहित, जिन सूत्र के द्वारा कृत्य अकृत्य सब जानते भये। महा गुणवान, महासंवरकर मंडित कर्मों के समूह को खिपावते भए। प्राणों की रक्षामात्र सूत्रप्रमाण आहार लेय है। अर प्राणनिकूं धर्म के निमित्त धारै है, अर धर्मकूं मोक्ष के अर्थ उपारजे हैं, भव्यलोकनिकूं आनन्द के करनहारे उत्तम हैं आचरण जिनके, ऐसे बाली मुनि और मुनियों को उपमा योग्य होते भये। अर सुग्रीव रावण को अपनी बहिन परणायकर रावण की आज्ञा प्रमाण किहकंधपुर का राज्य करता भया।

पृथ्वीविषै जो जो विद्याधरों की कन्या रूपवती थीं रावण ने समस्त अपने पराक्रम से परणी। नित्यालोक नगर में राजा नित्यालोक राणी श्रीदेवी, तिनकी रत्नावली नामा पुत्री, उसको परणकर रावण लंका को आवते हुते, सो कैलाश पर्वत ऊपर आय निकसे। सो पुष्पक विमान तहां के जिनमंदिरनि के प्रभाव करि अर बाली मुनि के प्रभाव करि आगैं न चल सका। कैसा है विमान? मन के वेग समान चंचल है। जैसे सुमेरु के तटकूं पायकरि वायुमंडल थंभै तैसे विमान थम्भा। तदि घंटादिक का शब्द होता रह गया। मानों विलखा होय मौन को प्राप्त भया। तदि रावण विमान को अटका देख मारीच मंत्री से पूछते भए कि यह विमान कौन कारण से अटक्या।

तदि मारीच सर्व वृत्तांत विषै प्रवीण, कहता भया। हे देव! सुनो यह कैलाश पर्वत है। यहां कोई मुनि कायोत्सर्गकरि तिष्ठै हैं, शिला के ऊपर रत्न के थंभ समान सूर्य के सम्मुख ग्रीष्म में आतापनयोग धर तिष्ठै हैं। अपनी कांति से सूर्य की कांति को जीतता हुआ विराजै है। यह महामुनि धीर-वीर हैं, महाघोर वीर तप को धरै है, शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हुआ चाहे हैं। इसलिए उतरकर दर्शन करि आगे चालो तथा विमान पीछे फेर कैलाश को छोड़कर और मार्ग होय चलो। जो कदाचित् हठकर कैलाश के ऊपर होय चालोगे, तो विमान खंड खंड हो जायेगा। यह

मारीच के वचन सुनकर राजा यम का जीतनहारा रावण अपने पराक्रम से गर्वित होकर कैलाश पर्वत को देखता भया।

कैसा है पर्वत? मानो व्याकरण ही है, क्योंकि नाना प्रकार के धातुनि करि भर्‌या है। अर सहस्र गुण युक्त नाना प्रकार के सुवर्ण की रचना से रमणीक पद पंक्तियुक्त नाना प्रकार के स्वरों कर पूर्ण है। बहुरि कैसा है पर्वत? ऊंचा तीखे शिखरों के समूहकरि शोभायमान है। आकाश से लग्या है, निसरते उछलते जे जल के नीझरने तिनकरि प्रकट हँसे ही है। कमल आदि अनेक पुष्प, तिनकी सुगंध, सोई भई सुरा, ताकरि मत्त जे भ्रमर, तिनकी गुंजार से अति सुन्दर है। नाना प्रकार के वृक्षोंकर भर्‌या है, बड़े बड़े शाल के जे वृक्ष तिनकर मंडित जहां छहों ऋतुओं के फल फूल शोभै हैं। अनेक जाति के जीव विचरै हैं। जहां ऐसी ऐसी औषध हैं जिनके त्रासतैं सर्पों के समूह दूर रहै हैं। महामनोहर सुगंध से मानों वह पर्वत सदा नवयौवन ही को धरै है।

अर मानों वह पर्वत पूर्वपुरुष समान ही है। विस्तीर्ण जे शिला वे ही हैं हृदय जाके, अर शाल वृक्ष वे ही महा भुजा, अर गंभीर गुफा सो ही वदन, अर वह पर्वत शरद ऋतु के मेघ समान निर्मल तट तिनकरि सुन्दर, मानों दुग्ध समान अपनी कांति से दशों दिशाओं स्नान ही करावै है। कई एक गुफानिविषै सूते जे सिंह तिनकर भयानक है, कहूं एक सूते जे अजगर तिनके स्वांसकरि हालै हैं वृक्ष जहां। कहूं एक भ्रमतैं क्रीड़ा करते जे हिरणों के समूह तिनकर शोभै है, कहूं एक मातै हाथियों के समूह से मंडित है वन जहां, कहूं एक फूलनि के समूह करि मानो रोमांच होय रहा है।

अर कहूं एक वन की सघनता करि भयानक है, कहूं एक कमलों के वन से शोभित है सरोवर जहां, कहूं एक वानरनि के समूह वृक्षनि की शाखानि पर केलि कर रहे हैं। अर कहूं एक गैंडान के पगकर छेदे गए हैं जे चंदनादि सुगंध वृक्ष-तिनकरि सुगंध होय रहा है। कहूं एक बिजली के उद्योत करि मेल्या जो मेघमण्डल उस समान शोभा को धरै हैं, कहूं इक दिवाकर समान जे ज्योतिरूप शिखर तिनकरि उद्योतरूप किया है आकाश जानै। ऐसा कैलाशपर्वत देखि रावण विमानतैं उतर्‌या। तहां ध्यानरूपी समुद्रविषै मग्न, अपने शरीर के तेज से प्रकाश की हैं दशों दिशा जिनने, ऐसे बाली महामुनि देखे। दिग्गजन की सूण्ड समान दोऊ भुजा लम्बाए, कायोत्सर्ग धरै खड़े, लिपटि रहे हैं, शरीर से सर्प जिनके, मानों चंदन के वृक्ष ही हैं। आतापनि शिला पर निश्चल खड़े प्राणियों को ऐसा दीखैं मानों पाषाण का थंभ ही है।

रावण बाली मुनि को देखकरि पूर्व बैर चितारि पापी क्रोधरूपी अग्नि से प्रज्वलित भया। भृकुटि चढ़ाय होंठ डसता कठोर शब्द मुनि को कहता भया - 'अहो, यह कहा तप तेरा, जो अब भी अभिमान न छूट्या। मेरा विमान चलता थांभ्या। कहां उत्तम क्षमारूप वीतराग का धर्म अर

कहां पापरूप क्रोध? तू वृथा खेद करै है। अमृत अर विष को एक किया चाहै है। तातैं मैं तेरा गर्व दूर करूंगा, तुझ सहित कैलाश पर्वत को उखाड़ समुद्र में डार दूंगा।' ऐसे कठोर वचन कहकर रावण ने विकराल रूप किया। सर्व विद्या जे साधी हैं तिनकी अधिष्ठाता देवी चिंतवन मात्र से आय ठाढ़ी भई, सो विद्याबलकरि रावण ने महारूप किया, धरती को भेद पाताल में पैठा।

महा पापविषै उद्यमी है, प्रचंड क्रोधकरि लाल हैं नेत्र जाके, अर हूंकार शब्दकरि वाचाल है मुख जाका, भुजावों कर कैलाशपर्वत के उखाड़ने का उद्यम किया। तदि सिंह हस्ती सर्प हिरण इत्यादि अनेक जीव अर अनेक जाति के पक्षी भयकरि कोलाहल शब्द करते भए जल के नीझरने टूट गए, जल गिरने लगा, वृक्षों के समूह फट गए, पर्वत की शिला पर पाषाण पड़ते भए, तिनके विकराल शब्द करि दशूं दिशातैं कैलाश पर्वत चलायमान भया। जो देव क्रीड़ा करते हुते ते आश्चर्य को प्राप्त भए, दशों दिशा की ओर देखते भए। अर जो अप्सरा लतावों के मण्डप में केलि करती हुतीं सो लतावों को छोड़ आकाश में गमन करती भईं। भगवान बाली ने रावण का कर्त्तव्य जान आप धीर-वीर क्रोध रहित कछु भी खेद न मान्या, जैसे निश्चल विराजे हुते तैसे ही रहे।

चित्त में ऐसा विचार किया - जो पर्वत पर भगवान के चैत्यालय अति उत्तम महासुन्दरताकरि शोभित, सर्व रत्नमय, भरत चक्रवर्ती के कराए हैं, जहां निरंतर भक्तिसंयुक्त सुर असुर विद्याधर पूजा को आवै हैं, या पर्वत के कम्पायमान होनेकरि चैत्यालयों का भंग न होय, अर यहां अनेक जीव विचरैं हैं तिनकूं बाधा न होय, ऐसा विचारकरि अपने चरण का अंगुष्ठ ढीला दाब्या। सो रावण महाभाराक्रांत होय दब्या। बहु रूप बनाया था सो भंग भया, महादु:ख कर व्याकुल नेत्रों से रक्त झरने लगा, मुकुट टूट गया अर माथा भीग गया, पर्वत बैठ गया, रावण के गोडे छिल गए, जंघा भी छिल गई, तत्काल पसेव में भीग गया, अर धरती पसेव करि गीली भई। रावण के गात्र सकुच गए, कछुवे समान हो गया, तब रोणे लगा, ताही कारण से पृथ्वी में रावण कहाया। अब तक दशानन कहावै था। इसके अत्यन्त दीन शब्द सुनकरि राणी अत्यन्त विलाप करती भई।

अर मंत्री सेनापति लार के सर्व सुभट पहिले तो भ्रमकर वृथा युद्ध करने को उद्यमी भए थे, पीछे मुनि का अतिशय जान सर्व आयुध डार दिये। मुनि के कायबल ऋद्धि के प्रभावतैं देव दुंदुभी बजाने लगे, अर कल्पवृक्षों के फूलों की वर्षा भई, तापर भ्रमर गुंजार करते भए, आकाश में देव देवी नृत्य करते भए, गीत की ध्वनि होती भई। तब महामुनि परमदयालु ने अंगुष्ठ ढीला किया।

रावण ने पर्वत के तले से निकसि बाली मुनि के समीप आय नमस्कार कर क्षमा कराई। यह जान्या है तप का बल जानै, योगीश्वर की बारम्बार स्तुति करते भये। हे नाथ! तुमने घर ही तैं यह प्रतिज्ञा करी हुती जो मैं जिनेंद्र मुनींद्र जिनशासन सिवाय काहूकूं भी प्रणाम न करूं, सो यह

सब सामर्थ्य का फल है। अहो, धन्य है निश्चय तिहारा, धन्य यह तप का बल! हे भगवन्! तुम लोग शक्ति से त्रैलोक्य को अन्यथा करने को समर्थ हो, परन्तु उत्तम क्षमा धर्म के योग से सब पै दयालु हो, किसी पर क्रोध नाहीं।

हे प्रभो! जैसा तपकरपूर्ण मुनि को बिना ही यत्न परम सामर्थ्य होय है तैसी इन्द्रादिक के नाहीं। धन्य गुण तिहारे, धन्य रूप तिहारा, धन्य कांति तिहारी, धन्य आश्चर्यकरी बल तिहारा, अद्भुत दीप्ति तिहारी, अद्भुत शील, अद्भुत तप, त्रैलोक्य में जे अद्भुत परमाणु हैं तिनकरि सुकृत का आधार तिहारा शरीर बना है, जन्म ही तैं महाबली, सर्व सामर्थ के धरणहारे, तुम नव यौवन में जगत् की माया को तजकरि परम शांतभावरूप जो अरहंत की दीक्षा ताहि प्राप्त भए हो, सो यह अद्भुत कार्य तुम सारिखे सत्पुरुषोंकर ही बने है। मुझ पापी ने तुम सारिखे सत्पुरुषों से अविनय किया सो पाप का बंध किया!

धिक्कार मेरे मन वचनकार को। मैं पापी मुनिद्रोह में प्रवरत्या, जिनमंदिर का अविनय भया। आप सारिखे पुरुषरत्न अर मुझ सारिखे दुर्बुद्धि सो सुमेरु अर सरसों का-सा अंतर है। मोकूं मरतेकूं आज आप प्राण दिए। आप दयालु हम सारिखे दुष्ट दुर्जन तिन ऊपर भी क्षमा करो, इस समान और कहा। मैं जिनशासन को श्रवण करूं हूं, जानू हूं, देखूं हूं, जो यह संसार असार है, अस्थिर है, दुःखभाव है। तथापि मैं पापी विषयनि से वैराग्य को नाहीं प्राप्त भया। धन्य हैं वे पुण्यवान महापुरुष, अल्प संसारी, मोक्ष के पात्र, जे तरुण अवस्था ही में विषयों को तजि, मोक्ष का मार्ग मुनिव्रत आचरै हैं।

या भांति मुनि की स्तुति कर तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कार करि अपनी निंदा करि बहुत लज्जावान होय मुनि के समीप जे जिनमंदिर हुते तहां वंदना को प्रवेश किया। चंद्रहास खड्ग को पृथ्वीविषै मेलि अपनी राणीनिकरि मंडित जिनवर का अर्चन करता भया। भुजा में से नस रूप तांत काढ़ कर बीण समान बजाता भया। भक्ति में पूर्ण है भाव जाका, स्तुतिकरण जिनेंद्र के गुणानुवाद गावता भया।

हे देवाधिदेव! लोकालोक देखनहारे, नमस्कार हो तुमकूं। कैसे हो? लोक को उलंघे ऐसा है तेज तिहारा। हे कृतार्थ महात्मा! नमस्कार हो। कैसे हो? तीन लोककरि करी है पूजा जिनकी, नष्ट किया है मोह का वेग जिन्होंने, वचन से अगोचर गुणों के समूह के धरनहारे महा ऐश्वर्यकरि मंडित, मोक्षमार्ग के उपदेशक, सुख की उत्कृष्टता में पूर्ण, समस्त कुमार्ग से दूर, जीवन को भुक्ति अर मुक्ति के कारण महाकल्याण के मूल, सर्व कर्म के साक्षी ध्यान कर भस्म किए हैं पाप जिन्होंने, जन्म मरण के दूर करनहारे, समस्त के गुरु, आपके कोई गुरु नाहीं, आप किसी को नवै

नाहीं, अर सबकरि नमस्कार करने योग आदि अन्तरहित, समस्त परमार्थ के जाननहारे, आपको केवली बिना अन्य न जान सकै, सर्व रागादिक उपाधि से शून्य, सर्व के उपदेशक, द्रव्यार्थिक नय से सब नित्य है अर पर्यायार्थिक नय से सब अनित्य है – ऐसा कथन करनहारे, किसी एक नय से द्रव्य गुण का भेद, किसी एक नय से द्रव्य गुण का अभेद – ऐसा अनेकांत दिखावन हारे, जिनेश्वर, सर्वरूप, एकरूप, चिद्रूप, अरूप, जीवन को मुक्ति के देनहारे, ऐसे जो तुम तिनको, हमारा बारम्बार नमस्कार होहु।

श्री ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य के ताईं बारम्बार नमस्कार हो। पाया है आत्मप्रकाश जिन्होंने विमल अनन्त धर्म शांति के ताईं नमस्कार हो। निरंतर सुखों के मूल सबको शांति के करता कुन्थु जिनेन्द्र के ताईं नमस्कार हो। अरनाथ ताईं नमस्कार हो। मल्लिमहेश्वर के ताईं नमस्कार हो। मुनिसुव्रतनाथ के ताईं जो महाव्रतों के देनहारे, अर अब जो होवेंगे नमि नेम पार्श्व वर्द्धमान तिनके ताईं नमस्कार हो। अर जो पद्मनाभादिक अनागत होवेंगे तिनको नमस्कार हो। अर जे निर्वाणादिक अतीत जिन भए तिनको नमस्कार हो। सदा सर्वदा साधुओं को नमस्कार हो, अर सर्व सिद्धों को निरंतर नमस्कार हो। कैसे हैं सिद्ध? केवलज्ञानरूप, केवल दर्शन रूप, क्षायक सम्यक्त्वरूप इत्यादि अनंत गुणरूप हैं। यह पवित्र अक्षर लंका के स्वामी ने गाए।

रावण द्वारा जिनेन्द्र देव की महास्तुति करने से धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान भया। तब अवधिज्ञान से रावण का वृत्तांत जान हर्ष से फूले हैं नेत्र जिनके, सुन्दर है मुख जिनका, देदीप्यमान मणियों के ऊपर जे मणि उनकी कांति से दूर किया है अंधकार का समूह जिनने, पाताल से शीघ्र ही नागों के राजा कैलाश पर आए। जिनेन्द्र को नमस्कार करि विधिपूर्वक समस्त मनोज्ञ द्रव्यों से भगवान की पूजा करि रावण से कहते भए – 'हे भव्य ! तैनें भगवान की बहुत स्तुति करी, अर जिनभक्ति के बहुत सुन्दर गीत गाए। सो हमको बहुत हर्ष उपज्या, हर्ष करि हमारा शरीर आनन्दरूप भया।

हे राक्षसेश्वर! धन्य है तू जो जिनराज की स्तुति करै। तेरे भावकरि अबार हमारा आगमन भया है, मैं तेरे से संतुष्ट भया, तू वर मांग। जो मनवांछित वस्तु तू मांगे सो दूं। जो वस्तु मनुष्यों को दुर्लभ है सो तुम्हें दूं। तब रावण कहते भए – हे नागराज! जिन वंदनातुल्य और कहा शुभ वस्तु है, सो मैं आप से मांगू। आप सर्व बात समर्थ मनवांछित देने लायक हैं। तब नागपति बोले – हे रावण! जिनेन्द्र की वंदना के तुल्य और कल्याण नाहीं। यह जिनभक्ति अराधी हुई मुक्ति के सुख देवै है। तातैं या तुल्य और कोई पदार्थ न हुआ न होयगा।'

तब रावण ने कही – हे महामते! जो इससे अधिक और वस्तु नाहीं तो मैं कहा याचूँ? तब नागपति बोले – ''तातैं जो कहा सो सर्व सत्य है। जिनभक्ति से सब कुछ सिद्ध होय है, याको कुछ दुर्लभ नाहीं। तुम सारिखे, मुझ सारिखे, अर इन्द्र सारिखे अनेक पद सर्व जिनभक्ति से ही होय है। अर यह संसार के सुख अल्प हैं, विनाशीक हैं, इनकी क्या बात? मोक्ष के अविनाशी जो अतींद्रीसुख वे भी जिन भक्तिकरि प्राप्त होय हैं। हे रावण! तुम यद्यपि अत्यन्त त्यागी हो, महा विनयवान बलवान हो, महा ऐश्वर्यवान हो, गुणकरि शोभित हो तथापि मेरा दर्शन तुमको वृथा मत होय। तेरे से प्रार्थना करूं हूं कि तू कुछ मांग। यह मैं जानूं हूं तू जाचक नाहीं, परन्तु मैं अमोघ विजयानामा शक्ति विद्या तुझै दू हूं, सो हे लंकेश! तू ले। हमारा स्नेह खण्डन मत कर।

हे रावण! किसी की दशा एक सी कभी नहीं रहती, संपत्ति के अनन्तर विपत्ति अर विपत्ति के अनन्तर सम्पत्ति होती है। जो कदाचित् मनुष्य शरीर है अर तुझ पर विपत्ति पड़े तो यह शक्ति तेरे शत्रु की नाशनैहारी अर तेरी रक्षा की करनहारी होयगी। मनुष्यों की क्या बात, इससे देव भी डरे हैं। यह शक्ति अग्नि ज्वालाकरि मंडित विस्तीर्ण शक्ति की धारनेहारी है। तब रावण धरणेन्द्र की आज्ञा लोपन को असमर्थ होता हुआ शक्ति को ग्रहण करता भया, क्योंकि किसी से कुछ लेना अत्यन्त लघुता है। सो इस बात से रावण प्रसन्न नहीं भया। रावण अति उदारचित्त है। तब धरणेन्द्र से रावण ने हाथ जोड़ नमस्कार किया। धरणेंद्र आप अपने स्थान को गए। कैसे हैं धरणेंद्र? प्रकटा है हर्ष जिनके। रावण एक मास कैलाश पर रहकर भगवान के चैत्यालयों की महाभक्ति से पूजाकरि अर बाली मुनि की स्तुतिकरि अपने स्थान तक गए।

बाली मुनि ने कछुएक मन के क्षोभ से पापकर्म उपार्ज्या हुता सो गुरुवों के निकट जाय प्रायश्चित्त लिया, शल्य दूरकर परम सुखी भए। जैसैं विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों की रक्षानिमित्त बाली का पराभव किया हुता अर गुरु से प्रायश्चित्त लेय परम सुखी भए थे तैसैं बाली मुनि ने चैत्यालयों की अर अनेक जीवों की रक्षा निमित्त रावण का पराभव किया, कैलाश थाम्भा, फिर गुरु पै प्रायश्चित्त लेय शल्य मेट परम सुखी भए। चारित्र से, गुप्ति से धर्म से, अनुप्रेक्षा से, समिति से, परीषहों के सहने से महासंवर को पाय कर्मों की निर्जराकरि बाली मुनि केवलज्ञान को प्राप्त भए। अष्टकर्म से रहित होय तीन लोक के शिखर अविनाशी स्थाान में अविनाशी अनुपम सुख को प्राप्त भये। अर रावण ने मन में विचारा कि जो इंद्रियों को जीतै तिनको मैं जीतिवे समर्थ नाहीं, तातैं राजाओं को साधुओं की सेवा ही करना योग्य है। ऐसा जान साधुओं की सेवा में तत्पर होता भया। सम्यग्दर्शन मंडित जिनेश्वर में दृढ़ है भक्ति जिसकी, काम भोग में अतृप्त यथेष्ट सुख से तिष्ठता भया।

यह बाली का चरित्र पुण्याधिकारी जीव, भावविषै तत्पर है बुद्धि जाकी भलीभांति सुनै सो कबहू अपमानकूं प्राप्त न होई। अर सूर्य समान प्रतापकूं प्राप्त होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै बाली मुनि का निरूपण करने वाला नववाँ पर्व संपूर्ण भया।।9।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! यह बाली का वृत्तांत तोकूं कह्या, अब सुग्रीव अर सुतारा राणी का वृत्तांत सुन। ज्योतिपुर नामा नगर, तहां अग्निशिख, राणी ह्री, उनकी पुत्री सुतारा, जो सम्पूर्ण स्त्रीगुणों से पूर्ण, सर्व पृथ्वी में रूप गुण की शोभा से प्रसिद्ध, मानों कमलों का निवास तज साक्षात् लक्ष्मी ही आई है। अर राजा चक्रांक, उसकी राणी अनुमति, तिनका पुत्र साहसगति, महादुष्ट। एक दिन अपनी इच्छा से भ्रमण करै था, सो ताने सुतारा देखी, देखकर काम शल्य से अत्यन्त दुखी होकर निरन्तर सुतारा को मन में धरता भया। दशा जाकी उन्मत्त है ऐसा, दूत भेज सुतारा को याचता भया, अर सुग्रीव भी बारम्बार याचता भया। कैसी है वह सुतारा? महामनोहर है। तब राजा अग्निशिख सुतारा का पिता दुविधा में पड़ गया कि कन्या किसको देनी। तब महाज्ञानी मुनि को पूछी।

मुनीन्द्र ने कहा कि साहसगति की अल्प आयु है, अर सुग्रीव की दीर्घ आयु है। तब अमृत समान मुनि के वचन सुनकर राजा अग्निशिख, सुग्रीव को दीर्घ आयुवाला जानकर अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। सुग्रीव का पुण्य विशेष है जो सुतारा की प्राप्ति भई। तदनन्तर सुग्रीव अर सुतारा के अंग अर अंगद दोय पुत्र भए, अर वह पापी साहस गति निर्लज्ज सुतारा की आशा छोड़ै नाहीं। धिक्कार है कामचेष्टा को। वह कामाग्निकर दग्ध चित्तविषै ऐसा चिंतवै कि वह सुखदायिनी कैसे पाऊं? कब उसका मुख चंद्रमा से अधिक मैं निरखूं ? कब उस सहित नंदनवनविषै क्रीड़ा करूं? ऐसा मिथ्या चिंतवन करता संता रूपपरवर्तिनी शेमुषी नामा विद्या के आराधने को हिमवंत नामा पर्वत पर जायकरि अत्यन्त विषम गुफाविषै तिष्ठकर विद्या के आराधवे को आरम्भ करने लगा। जैसे दुखी जीव प्यारे मित्र को चितारै तैसे विद्या को चितारता भया।

अथानन्तर रावण दिग्विजय करने को निकस्या। वन पर्वतादिकरि शोभित पृथ्वी देखता अर समस्त विद्याधरों के अधिपति अंतरद्वीपों के वासियों को अपने वश करता भया। अर तिनको आज्ञाकारी कर तिन ही के देशों में थापता भया। कैसा है रावण? अखण्ड है आज्ञा जाकी, अर विद्याधरों में सिंहसमान बड़े बड़े राजा महापराक्रमी रावण ने वश किये। तिनको पुत्र समान जान बहुत प्रीति करता भया। महन्त पुरुषों का यही धर्म है कि नम्रता मात्र से ही प्रसन्न होवें। राक्षसों के वंश में अथवा कपिवंश में जे प्रचंड राजा हुते वे सर्व वश किए। बड़ी सेनाकरि संयुक्त आकाश

के मार्ग गमन करता जो दशमुख, पवन समान है वेग जाका, उसका तेज विद्याधर सहिबे को असमर्थ भए। संध्याकार सुवेल, हेमा, पूर्ण, सुयोधन, हंसद्वीप, बारिहल्लादि इत्यादि द्वीपों के राजा विद्याधर नमस्कार कर भेंट ले आय मिले। सो रावण ने मधुर वचन कह बहुत संतोषे, अर बहुत संपदा के स्वामी किए। जे विद्याधर बड़े बड़े गढ़ों के निवासी हुते वे रावण के चरणारविंद को नम्रीभूत होय आय मिले, जो सार वस्तु थी सो भेंट करी।

हे श्रेणिक! समस्त बलोंविषै पूर्वोपार्जित पुण्य का बल प्रबल है, ताके उदयकरि कौन वश न होय? सब ही वश होय हैं।

अथानन्तर रथनूपुर का राजा जो इंद्र उसके जीतिवे को रावण गमन को प्रवरत्या। सो जहां पाताल लंकाविषै खरदूषण बहणेऊ है, वहां जाय डेरा किया। पाताल लंका के समीप डेरा भया। रात्रि का समय था, खरदूषण शयन करै था सो चंद्रनखा रावण की बहिन ने जगाया। पाताललंका से निकसकरि रावण के निकट आया, रत्नों के अर्घ देय महा भक्ति से परम उत्साहकरि रावण की पूजा करी। रावण ने भी बहणेऊपना के स्नेहकरि खरदूषण का बहुत सत्कार किया। जगतविषै बहिन बहणेऊ समान अर कोई स्नेह का पात्र नाहीं। खरदूषण ने चौदह हजार विद्याधर मनवांछित नाना रूप के धारनहारे रावण को दिखाए। रावण खरदूषण की सेना देख बहुत प्रसन्न भए। आप समान सेनापति किया।

कैसा है खरदूषण? महा शूरवीर है। उसने अपने गुणों से सर्व सामंतों का चित्त वश किया है। हिडंब, हैहिडिंग, विकट, त्रिजट, हयमाकोट, सुजट, टंक, किहकंधाधिपति, सुग्रीव, तथा त्रिपुर, मलय, हेमपाल कोल, वसुन्दर इत्यादिक अनेक राजा नाना प्रकार के वाहननि पर चढ़े, नाना प्रकार के शस्त्र विद्याविषै प्रवीण, अनेक शस्त्रन के अभ्यासी तिनकरि युक्त, पाताललंकातैं खरदूषण रावण के कटकविषै आया। जैसैं पाताल लोक से असुर कुमारों के समूह करि युक्त चमरेंद्र आवे। या भांति अनेक विद्याधर राजाओं के समूहकरि रावण का कटक पूर्ण होता भया। जैसैं बिजली अप इन्द्रधनुषकर युक्त मेघमालानि के समूह तिनकर श्रावणमास पूर्ण होय। ऐसे एक हजार ऊपर अधिक अक्षोहिणी दल रावण के होय चुका। दिन दिन बढ़ता जाय है। अर हजार हजार देवनिकरि सेवायोग्य रत्न, नाना प्रकार गुणनि के समूह के धारण हारे उन कर युक्त, अर चंद्रकिरण समान उज्ज्वल चमर जापर ढुरै हैं, उज्ज्वल छत्र सिरपर फिरै हैं, जाका रूप सुन्दर है, महाबाहु महाबली पुष्पक नामा विमान पर चढ़ा सुमेरु समान स्थिर, सूर्य समान ज्योति, अपने विमानादि वाहन सम्पदाकरि सूर्यमण्डल को आच्छादित करता हुवा इन्द्र का विध्वंस मन में विचार कर रावण ने प्रयाण किया।

कैसा है रावण? प्रबल है पराक्रम जाका, मानों आकाश को समुद्र समान करता भया, देदीप्यमान जे शस्त्र सोई भई कलोल, अर हाथी घोड़े प्यादे ये ही भए जलचर जीव, अर छत्र भंवर भए, अर चमर तुरंग भए, नाना प्रकार के रत्नों की ज्योति फैल रही हैं अर चमरों के दण्ड मीन भए।

हे श्रेणिक! रावण की विस्तीर्ण सेना का वर्णन कहाँ लग करिये, जिसको देखकर देव डरें तो मनुष्यनि की बात कहा? इन्द्रजीत मेघनाद कुम्भकर्ण विभीषण खरदूषण निकुम्भ कुंभ इत्यादि बहुत सुजन रण में प्रवीण, सिद्ध है विद्या जिनको, महाप्रकाशवन्त, शस्त्र शास्त्र विद्या में प्रवीण हैं, जिनकी कीर्ति बड़ी है, महासेनाकरि युक्त, देवताओं की शोभा को जीतते हुए रावण के संग चाले। विंध्याचल पर्वत के समीप सूर्य अस्त भया। मानों रावण के तेजकरि विलखा होय तेज रहित भया। वहां सेना का निवास भया, मानों विंध्याचल ने सेना सिर पर धारी है। विद्या के बल से नाना प्रकार के आश्रय लिये। फिर अपनी किरणनिकरि अन्धकार के समूहकूं दूर करता संता चन्द्रमा उदय भया, मानों रावण के भयकरि रात्रि रत्न का दीपक लाई है। अर मानों निशा स्त्री भई, चांदनीकरि निर्मल जो आकाश सोई वस्त्र, उसको धरै तारानि के जे समूह तेई सिरविषै फूल गूंथे हैं, चन्द्रमा ही वदन जाका, नाना प्रकार की कथाकर तथा निद्राकर सेना के लोकनि ने रात्री पूर्ण करी।

फिर प्रभात के वादित्र बाजे, मंगल पाठ कर रावण जागे। प्रभात क्रिया करी, सूर्य का उदय भया, मानों सूर्य भुवनविषै भ्रमण कर किसी ठौर शरण न पाया तब रावण ही के शरण आया। पुन: रावण नर्मदा के तट आए। कैसी है नर्मदा? शुद्ध स्फटिक मणि समान है जल जाका, अर उसके तीर अनेक वन के हाथी रहै हैं सो जल में केलि करै हैं, उसकर शोभायमान है। अर नाना प्रकार के पक्षियों के समूह मधुर गान करे हैं सो मानों परस्पर संभाषण ही करै हैं। फेन कहिए झाग के पटल इन कर मंडित है तरंगरूप जे भोंह उनके विलास करि पूर्ण है। भंवर ही है नाभि जाके, अर चंचल जे मीन तेई हैं नेत्र जाके, अर सुन्दर जे पुलिन तेई हैं कटि जाके, नाना प्रकार के पुष्पनिकरि संयुक्त निर्मल जल ही है वस्त्र जाका, मानों साक्षात् सुन्दर स्त्री ही है। ताहि देखकर रावण बहुत प्रसन्न भए। प्रबल जे जलचर उनके समूहकरि मण्डित है, गंभीर है, कहूं एक वेगरूप बहै है, कहूं एक मंदरूप बहै है, कहूं एक कुण्डलाकार बहै है, नाना चेष्टानिकरि पूर्ण ऐसी नर्मदा को देखकर कौतुक रूप भया है मन जाका सो रावण नदी के तीर उतरा। नदी भयानक भी है अर सुन्दर भी है।

अथानन्तर माहिष्मती नगरी का राजा सहस्ररश्मि पृथ्वीविषैं महा बलवान मानों सहस्ररश्मि कहिये सूर्य ही है। उसके हजारों स्त्री, सो नर्मदाविषै रावण के कटक के ऊपर सहस्ररश्मि जलयंत्रकरि नदी का जल थांभ्या अर नदी के पुलिनविषै नाना प्रकार की क्रीड़ा करी। कोई स्त्री मान कर रही थी ताको बहुत शुश्रूषाकरि प्रसन्न करा, दर्शन स्पर्शन मान फिर मानमोचन प्रणाम

परस्पर जलकेलि हास्य, नाना प्रकार पुष्पों के भूषणनि के शृंगार इत्यादि अनेक स्वरूप क्रीड़ा करी। मनोहर है रूप जाका, जैसे देवियोंसहित इन्द्र क्रीड़ा करै तैसे राजा सहस्ररश्मि ने क्रीड़ा करी। जे पुलिन के बालू रेतविषैं रत्न के मोतियों के आभूषण टूटकर पड़े सो न उठाये, जैसे मुरझाई पुष्पों की माला को कोई न उठावै। कई एक राणी चंदन के लेपकरि संयुक्त जलविषै केलि करती भईं सो जल धवल हो गया। कई एक केसर के कीचकरि जल को गाले हुए सुवर्ण के समान पीत करती भईं, कई एक ताम्बूल के रंगकरि लाल जे अधर तिनके प्रक्षालनिकरि नीर को अरुण करती भईं, कई एक आंखों के अंजन धोवनेकरि श्याम करती भईं, सो क्रीड़ा करती जे स्त्री उनके आभूषणनि के सुन्दर शब्द, अर तीर विषै जे पक्षी, उनके सुन्दर शब्द राजा के मन को मोहित करते भये।

अर नदी के निवास की ओर रावण का कटक था सो रावण स्नानकरि पवित्र वस्त्र पहिर, नाना प्रकार के आभूषणनिकरि युक्त, नदी के रमणीक पुलिन में बालू का चौतरा बंधाय उसके ऊपर वैडूर्यमणियों के हैं दंड जिसके, ऐसा मोतियों की झालरी संयुक्त चंदोवा ताण, श्रीभगवान अरहंतदेव की नाना प्रकार पूजा करै था, बहुत भक्ति से पवित्र स्तोत्रों करि स्तुति करै था, सो उपरास का जल का प्रवाह आया, सो पूजा में विघ्न भया। नाना प्रकार की कलुषता सहित प्रवाह वेग दे आया, तब रावण प्रतिमाजी लेय खड़े भये, अर क्रोधकरि कहते भए – जो यह क्या है?

सो सेवक ने खबर दीनी कि हे नाथ! यह कोई महाक्रीड़ावंत पुरुष सुन्दर स्त्रीनि के बीच परम उदय को धर नाना प्रकार की लीला करै है, अर सामन्त लोक शस्त्रनिकूं धरे दूर दूर खड़े हैं, नाना प्रकार जल के यंत्र बांधे उनसे यह चेष्टा भई है, अन्य राजाओं के सेना चाहिए तातैं उसके सेना तो शोभामात्र है अर उसके पुरुषार्थ ऐसा है जो और ठौर दुर्लभ है, बड़े बड़े सामंतों से उसका तेज न सहा जाय, अर स्वर्गविषैं इन्द्र है परन्तु यह तो प्रत्यक्ष ही इन्द्र देखा। यह वार्ता सुनकर रावण क्रोध को प्राप्त भए, भोंह चढ़ गई, आंख लाल हो गई, ढोल बाजने लगे, वीर रस का राग होने लगा, नाना प्रकार के शब्द होय हैं, घोड़े हीसैं हैं, गज गाजे हैं, रावण ने अनेक राजावों को आज्ञा करी कि यह सहस्ररश्मि दुष्टात्मा है इसे पकड़ लावो। ऐसी आज्ञाकरि आप नदी के तट पर पूजा करने लगे। रत्न सुवर्ण के जे पुष्प उनको आदि देय अनेक सुन्दर जे द्रव्य उनसे पूजा करी। अर अनेक विद्याधरों के राजा रावण की आज्ञा आशिष की नाईं माथे चढ़ाय युद्धकूं चाले।

राजा सहस्ररश्मि ने पर दल को आवता देखि स्त्रियों को कहा कि तुम डरो मत, धीर्य बंधाय आप जल से निकसे। कलकलाट शब्द सुन, परदल आया जान, माहिष्मती नगरी के योधा सजकर हाथी, घोड़े, रथों पर चढ़े। नाना प्रकार के आयुध धरे स्वामी धर्म के अत्यन्त अनुराग से राजा के ढिंग आए। जैसे सम्मेदशिखर पर्वत का एक ही काल छहों ऋतु आश्रय करै तैसे समस्त

योधा तत्काल राजा पै आए। विद्याधरों की फौज आवती देखकर सहस्ररश्मि के सामंत जीतव्य की आशा छोड़कर धनव्यूह रचकर धनी की आज्ञा बिना ही लड़नै को उद्यमी भए। जब रावण के योधा युद्ध करने लगे तब आकाश में देवनि की बाणी भई कि अहो (यह बड़ी अनीति है। ये भूमिगौचरी अल्प बली विद्याबलकरि रहित माया युद्धकूं कहां जानै? इनसे विद्याधर मायायुद्ध करै यह कहा योग्य है) अर विद्याधर घने यह थोड़े।

ऐसे आकाशविषै देवनि के शब्द सुनकर जे विद्याधर सत्पुरुष थे वे लज्जावान होय भूमि में उतरे, दोनों सेनाओं में परस्पर युद्ध भया। रथों के, हाथियों के, घोड़ों के असवार तथा पियादे तलवार, बाण, गदा, सेल इत्यादि आयुधोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, सो बहुत युद्ध भया। परस्पर अनेक मारे गये। न्याय युद्ध भया, शस्त्रों के प्रहार करि अग्नि उठी, सहस्ररश्मि की सेना रावण की सेना करि कछुइक हटी तदि सहस्ररश्मि रथ पर चढ़कर युद्ध को उद्यमी भए। माथै मुकुट धरे बखतर पहरे धनुष को धारै, अर अति तेज को धरै विद्याधरों के बल को देखकरि तुच्छमात्र भी भय न किया, तब स्वामी को तेजवंत देखि सेना के लोग जे हते हुते थे तो आगैं आय करि युद्ध करने लगे। दैदीप्यमान हैं शस्त्र जिनके, अर जे भूल गए हैं घावों की वेदना, ये रणधीर भूमिगोचरी राक्षसों की सेना में ऐसैं पड़े जैसैं माते हाथी समुद्र में प्रवेश करैं। अर सहस्ररश्मि अति क्रोध को करते हुए बाणों के समूहकरि जैसे पवन मेघ को हटावैं तैसे शत्रुओं को हटावते भए।

तदि द्वारपाल रावण से कही – हे देव! देखो इसने तुम्हारी सेना हटाई है, यह धनुष का धारी रथ पर चढ़ा जगत को तृणवत् देखे है, इसके बाणनिकरि तुम्हारी सेना एक योजन पीछे हटी है। तब रावण सहस्ररश्मि को देखि आप त्रैलोक्यमंडन हाथी पर सवार भया। रावण को देखकरि शत्रु भी डरे। रावण बाणों की वर्षा करता भया। सहस्ररश्मि को रथ से रहित किया। तब सहस्ररश्मि हाथी पर चढ़करि रावण के सन्मुख आया अर बाण छोड़े सो रावण के वक्तर को भेदि अंगविषै चुभै। तब रावण ने बाण देह से काढ़ि डारे।

सहस्ररश्मि ने हंसकर रावण सों कहा – अहो रावण! तू बड़ा धनुषकारी कहावै है, ऐसी विद्या कहांतें सीखी, तुझै कौन गुरु मिल्या, पहिले धनुषविद्या सीख, फिर हमसे युद्ध करि। ऐसे कठोर शब्द श्रवणतैं रावण क्रोध को प्राप्त भया। सहस्ररश्मि के केशनि मैं सेल की दीनी, तब सहस्ररश्मि रुधिर की धारा चली, जाकरि नेत्र घूमने लगे। पहिले अचेत होय गया पीछे सचेत होय आयुध पकड़ने लग्या तदि रावण उछलकरि सहस्ररश्मि पर आय पड़े। अर जीवता पकड़ लिया, बांधकर अपने स्थान को ले आए। ताहि देखि सब विद्याधर आश्चर्य को प्राप्त भये कि सहस्ररश्मि जैसे योधा कों रावण ने पकड्या। कैसे हैं रावण? धनपति यक्ष के जीतनहारे, यम के मान मर्दन

करनहारे, कैलाश के कम्पावनहारे। सहस्ररश्मि का यह वृत्तांत देखि सहस्ररश्मि जो सूर्य सो भी मानो भय करि अस्ताचल को प्राप्त भया, अन्धकार फैल गया।

भावार्थ – रात्रि का समय भया। भला बुरा दृष्टि में न आवै। तब चन्द्रमा का बिंब उदय भया। सो अन्धकार के हरणे को प्रवीण मानों रावण का निर्मल यश ही प्रकट्या है। युद्धविषै जे योधा घायल भये थे तिनकां वैद्योंकरि यत्न कराया, अर जो मूवे थे तिनको अपने बंधुवर्ग रणखेतसों ले आये तिनकी क्रिया करी। रात्रि व्यतीत भई, प्रभात के वादित्र बाजने लगे, फिर सूर्य रावण की वार्ता जानने के अर्थि राग कहिए ललाई को धारता हुवा कम्पायमान उदय भया। सहस्ररश्मि का पिता राजा शतबाहु जो मुनिराज भए थे, जिनको जंघाचारण ऋद्धि थी, वे महातपस्वी चन्द्रमा के समान कांत, सूर्य समान दीप्तिमान, मेरुसमान स्थिर, समुद्र सारिखे गंभीर, सहस्ररश्मि पकड्या सुनकर जीवन की दया के करणहारे परम दयालु शांतचित्त जिनधर्मी जान रावण पै आये।

रावण मुनि को आवते देख उठ सामने जाय पायन पड़े, भूमि में लग गया है मस्तक तिनका, मुनि को काष्ठ के सिंहासन पर विराजमान करि रावण हाथ जोड़ नम्रीभूत होय भूमिविषै बैठे। अति विनयवान होय मुनिसों कहते भए – हे भगवन्! कृपानिधान! तुम कृतकृत्य, तुम्हारा दर्शन इन्द्रादिक देवों को दुर्लभ है, तुम्हारा आगमन मेरे पवित्र होने के अर्थि है। तब मुनि इसको शलाका पुरुष जानि प्रशंसाकरि कहते भए – हे दशमुख! तू बड़ा कुलवान बलवान विभूतिवान देवगुरुधर्मविषै भक्तिभाव युक्त है। हे दीर्घायु! शूरवीर क्षत्रियों की यही रीति है जो आपसे लड़ै उसका पराभव कर उसे वश करैं। सो तुम महाबाहु परमक्षत्री हो, तुमतैं लड़वे को कौन समर्थ है? अब दयाकर सहस्ररश्मि को छोड़ो।

तब रावण मंत्रियों सहित मुनि को नमस्कार करि कहते भये – हे नाथ! मैं विद्याधर राजानि कों वश करने को उद्यमी भया हूं। लक्ष्मी कर उन्मत्त रथनूपुर का राजा इन्द्र तानैं मेरे दादे का बड़ा भाई राजा माली युद्ध में मारया है, तासूं हमारा द्वेष है। सो मैं इन्द्र ऊपर जाय था। मार्ग में रेवा कहिये नर्मदा उस पर डेरा भया सो पुलिन पर बालू के चौतरे पर पूजा करै था सोई इसने उपरास की, अर जलयंत्रों की केलि करी, सो जल का बेग निवास को आया। सो मेरी पूजा में विघ्न भया, तातैं यह कार्य किया है। बिना अपराध मैं द्वेष न करूं, अर मैं इनके ऊपर गया तब भी इनने क्षमा न कराई कि प्रमादकरि बिना जाने मैंने यह कार्य किया है, तुम क्षमा करो। उलटा मान के उदयकरि मेरे से युद्ध करने लग्या। अर कुवचन कहे। कारण ऐसा भया, जो मैं भूमिगोचरी मनुष्यों को जीतने समर्थ न भया तो विद्याधरों को कैसे जीतूंगा।

कैसे हैं विद्याधर? नाना प्रकार की विद्याकरि महापराक्रमवंत हैं, तातैं जो भूमिगोचरी मानी है, तिनको प्रथम वश करूं, पीछैं विद्याधरों को वश करूं। अनुक्रम से जैसे सिवान चढ़े मंदिर मैं जाइए हैं तातैं इनको वश किया, अब छोड़ना न्याय ही है। फिर आपकी आज्ञा समान और क्या? कैसे हो आप? महापुण्य उदयतैं होय है दर्शन जाका। ऐसे वचन रावण के सुन इन्द्रजीत ने कही – हे नाथ! आपने बहुत योग्य वचन कहे। ऐसे वचन आप बिना कौन कहे। तदि रावण ने मारीच मंत्री को आज्ञा करी कि सहस्रशिम को छुड़ाय महाराज के निकट ल्यावो। तदि मारीच ने अधिकारी को आज्ञा करी। सो आज्ञा प्रमाण जो नांगी तलवारनि के हवाले था सो ले आये। सहस्ररश्मि अपने पिता जो मुनि तिनको नमस्कार करि आय बैठ्या। रावण ने सहस्ररश्मि का बहुत सत्कार करि बहुत प्रसन्न होय कह्या – हे महाबल! जैसे हम तीनों भाई तैसे चौथा तू। तेरे सहायकरि रथनूपुर राजा इन्द्र भ्रमतैं कहावै है, ताहि जीतूंगा। अर मेरी राणी मंदोदरी ताकी लहुरी बहिन स्वयंप्रभा सो तुझे परणाऊंगा।

तब सहस्ररश्मि बोले – धिक्कार है इस राज्य को। यह इंद्रधनुष समान क्षणभंगुर है। अर विषयनि को धिक्कार है। ये देखने मात्र मनोज्ञ हैं, महा दुखरूप हैं। अर स्वर्ग को धिक्कार, जो अव्रत असंयमरूप है। अर मरण के भाजन इस देह को भी धिक्कार, अर मोकों धिक्कार, जो एते काल विषयासक्त होय इतने काल कामादि बैरीनि करि ठगाया। अब मैं ऐसा करूं जाकरि बहुत संसार वनविषै भ्रमण न करूं। अत्यन्त दु:खरूप जो चारगति तिनमैं भ्रमण करता बहुत थक्या। अब भवसागर मैं जासों पतन न होय सो करूंगा।

तब रावण कहते भए – यह मुनि का व्रत वृद्धिनिकूं शोभै है। हे भव्य! तू तो नवयौवन है। तब सहस्ररश्मि ने कहा – 'काल के यह विवेचन नाहीं जो वृद्ध ही को ग्रसै, तरुण को न ग्रसै। काल सर्वभक्षी है, बाल वृद्ध युवा सब ही को ग्रसै है। जैसे शरद का मेघ क्षणमात्र में विलाय जाय तैसे यह देह तत्काल विनसै है। हे रावण! जो इन भोगनि ही के विषय सार होय तौ महापुरुष काहे को तजै? उत्तम है बुद्धि जिनकी ऐसे मेरे यह पिता इन्होंने भोग छोड़ योग आदर्‍या। सो योग ही सार है'। यह कह कर अपने पुत्र को राज देय रावण सो क्षमा कराय पिता निकट जिनदीक्षा आदरी। अर राजा अरण्य, अयोध्या का धनी सहस्ररश्मि का परममित्र है सो उनके पूर्ववचन था – जो हम पहिले दीक्षा धरेंगे तो तुम्हें खबर करेंगे।

अर उनने कही हुती – हम दीक्षा धरेंगे तो तुम्हें खबर करेंगे, सो उन पै वैराग्य के समाचार भेजे। भले मनुष्यों ने राजा सहस्ररश्मि का वैराग्य होने का वृत्तांत राजा अरण्य से कह्या, सो सुनकर पहिले तो सहस्ररश्मि गुण स्मरणकरि आंसू भरि विलाप किया, फिर विषाद को तजिकर

अपने समीपवर्ती लोगनिकूं महा बुद्धिमान कहते भए जो रावण बैरी का वेषकरि उनका परम मित्र भया, जो ऐश्वर्य के पींजरे विषै राजा रुक रहे थे, विषयोंकर मोहित था चित्त जिनका, सो पींजरे तैं छुड़ाया। यह मनुष्यरूपी पक्षी, मायाजाल रूप पींजरे में पड्या है, सो परम हितू ही छुड़ावै है। माहिष्मती नगरी का धनी राजा सहस्त्ररश्मि धन्य है जो रावण रूप जहाज को पायकरि संसार रूप समुद्र को तिरैगा। कृतार्थ भया – अत्यन्त दुख का देनहारा जो राजकाज महापाप, ताहि तजकर जिनराज का व्रत लेने को उद्यमी भया। या भांति मित्र की प्रशंसाकरि आप भी लघु पुत्र को राज देय बड़े पुत्र सहित राजा अरण्य मुनि भए।

हे श्रेणिक! कोई एक उत्कृष्ट पुण्य का उदय आवै तब शत्रु का अथवा मित्र का कारण पाय जीव कों कल्याण की बुद्धि उपजै, अर पापकर्म के उदयकरि दुर्बुद्धि उपजै। जो कोई प्राणी को धर्म के मार्ग में लगावै सोई परम मित्र है अर जो भोग सामग्री में प्रेरै सो परम बैरी है, अस्पृश्य है।

हे श्रेणिक! जो भव्य जीव यह राजा सहस्त्ररश्मि की कथा भाव धर सुने सो मुनिव्रतरूप संपदा को प्राप्त होय करि परम निर्मल होय। जैसैं सूर्य के प्रकाशकरि तिमिर जाय तैसैं जिनवाणी के प्रकाशकरि मोहतिमिर जाय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषै सहस्त्ररश्मि अर अरण्य के वैराग्य निरूपण करने वाला दसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।10।।

अथानन्तर रावण ने जे जे पृथ्वीविषै मानी राजा सुने ते ते सब नवाए, अपने वश किए, अर जो अपने आप आयकरि मिले तिन पर बहुत कृपा करी। अनेक राजानिकरि मंडित सुभूम चक्रवर्ती की नाईं पृथ्वीविषै विहार किया। नाना देशनि के उपजे, नाना भेष के धारणहारे, नाना प्रकार आभूषणनि के पहरनेहारे, नाना प्रकार की भाषा के बोलनहारे, नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़े, नाना प्रकार के मनुष्यनिकरि मंडित अनेक राजा तिन सहित दिग्विजय करता भया। ठौर ठौर रत्नमयी सुवर्णमयी अनेक जिनमंदिर कराए, अर जीर्ण चैत्यालयनि का जीर्णोद्धार कराया, देवाधिदेव जिनेंद्र देव की भावसहित पूजा करी, ठौर ठौर पूजा कराई। जो जैनधर्म के द्वेषी दुष्ट मनुष्य हिंसक थे तिनको शिक्षा दीनी, अर दरिद्रीनि कों दयाकरि धनकरि पूर्ण किया, अर सम्यग्दृष्टि श्रावकनि का बहुत आदर किया। साधर्मीनि पर है वात्सल्यभाव जाका, अर जहां मुनि सुने तहां जाय भक्तिकरि प्रणाम करै, जे सम्यक्त्व रहित द्रव्यलिंगी मुनि अर श्रावक हुते तिनकी भी शुश्रूषा करी, जैनीमात्र का अनुरागी उत्तर दिशा को दुस्सह प्रताप प्रकट करता संता विहार करता भया। जैसे उत्तरायण के सूर्य का अधिक प्रताप होय तैसे पुण्यकर्म के प्रभावकरि रावण का दिन दिन अधिक तेज होता भया।

अथानन्तर रावण ने सुनी कि राजपुर का राजा बहुत बलवान है, अति अभिमान को धरता थका किसी को प्रणाम नाहीं करै है, अर जन्मतैं ही दुष्टचित्त है, मिथ्यामार्ग कर मोहित है, अर जीवहिंसारूप यज्ञमार्गविषै प्रवर्त्या है।

तदि यज्ञ का कथन सुन राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से कह्या – हे प्रभो! रावण का कथन तो पीछे कहिये पहिले यज्ञ की उत्पत्ति कहो। यह कौन वृत्तांत है जामें प्राणी जीवनघातरूप घोर कर्म में प्रवरतै हैं।

तदि गणधर ने कही – 'हे श्रेणिक! अयोध्याविषै इक्ष्वाकुवंशी राजा ययाति ताकी राणी सुरकांता अर पुत्र वसु था, सो जब पढ़ने योग्य भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मण पै पढ़ने को सौंप्या। क्षीरकदंब की स्त्री स्वस्तिमती थी। अर एक नारद ब्राह्मण देशांतरी धर्मात्मा, सो क्षीर कदंब पै पढ़े, अर क्षीरकदंब का पुत्र पर्वत महापापी सो हू पढ़े। क्षीरकदंब अति धर्मात्मा, सर्वशास्त्रनि में प्रवीण, शिष्यनिकूं सिद्धांत तथा क्रियारूप ग्रंथ तथा मंत्रशास्त्र काव्य व्याकरणादि अनेक ग्रंथ पढ़ावै।

एक दिन नारद वसु अर पर्वत – इन तीनों सहित क्षीरकदंब वनविषै गए। तहां चारणमुनि शिष्यनि सहित बिराजे हुते। सो एक मुनि ने कह्या – ये चार जीव हैं – एक गुरु, तीन शिष्य। तिनमैं तैं एक गुरु एक शिष्य ये दोय तो सुबुद्धि हैं, अर दो शिष्य कुबुद्धि हैं। ऐसे शब्द सुनिकरि क्षीरकदंब संसारतैं अत्यन्त भयभीत भए, शिष्यनि कों तो सीख दीनी सो अपने अपने घर गए, मानों गाय के बछड़े बंधन से छूटे, अर क्षीरकदंब मुनि पै दीक्षा धरी। जब शिष्य घर आए तदि क्षीरकदंब की स्त्री स्वस्तिमती पर्वत को पूछती भई – तेरा पिता कहां हैं? तू अकेला ही घर क्यों आया? तदि पर्वत ने कही – हमको तो पिताजी ने सीख दीनी अर कह्या, हम पीछे से आवैं हैं।

यह वचन सुन स्वस्तिमती महाशोकवती होय पृथ्वी पर पड़ी। अर रात्रिविषै चकवी की नाईं दुखकरि पीड़ित विलाप करती भई – हाय हाय! मैं मंदभागिनी! प्राणनाथ बिना हती गई। किसी पापी ने उनको मार्‍या अथवा किसी कारणकरि देशांतर को उठ गए, अथवा सर्वशास्त्रविषै प्रवीण हुते सो सर्वपरिग्रह कों त्यागकरि वैराग्य पाय मुनि होय गए। या भांति विलाप करते रात्रि पूर्ण भई। जब प्रभात भया तब पर्वत पिता को ढूंढ़ने गया। उद्यान में नदी के तट पर मुनियों के संघ सहित श्रीगुरु विराजे हुते, तिनके समीप विनयसहित पिता बैठ्या देख्या। तदि पाछा जायकर मातासों कही कि हे माता! हमारा पिता तो मुनियों ने मोह्या है। सो नग्न होय गया है। तब स्वस्तिमती निश्चय जानकरि पति के वियोगतैं अति दुखी भई। हाथनिकरि उरस्थल को कूटती भई, अर पुकार कर रोवती भई। सो नारद महाधर्मात्मा यह वृत्तांत सुनकरि स्वस्तिमती पै शोक का भर्‍या आया। ताके देखकरि अत्यन्त रोवने लगी, अर सिर कूटती भई। शोकविषै अपने को देखकरि शोक अतीव बढ़ै है।

तदि नारद ने कही – हे माता! काहे को वृथा शोक करो हो। वे धर्मात्मा जीव पुण्याधिकारी, सुन्दर है चेष्टा जिनकी, जीतव्य को अस्थिर जानि तप करने को उद्यमी भए हैं सो निर्मल है बुद्धि जिनकी, अब शोक किएतैं पीछे घर न आवैं। या भांति नारद ने संबोधी तदि किंचित् शोक मंद भया, घरविषै तिष्ठी। महा दु:खित भरतार की स्तुति भी करै अर निन्दा भी करै।

यह क्षीरकदंब के वैराग्य का वृत्तान्त सुन राजा ययाति तत्त्व के वेत्ता हू वसु पुत्र को राज देय महामुनि भए। वसु का राज्य पृथ्वीविषै भया। आकाशतुल्य स्फटिक मणि ताके सिंहासन के पाये बनाए। ता सिंहासन पर तिष्ठै, सो लोक जानै कि राजा सत्य के प्रतापकरि आकाशविषै निराधार तिष्ठै है।

अथानन्तर हे श्रेणिक! एक दिन नारद के अर पर्वत के शास्त्र-चर्चा भई। तदि नारद ने कही कि भगवान वीतरागदेव ने धर्म दोय प्रकार प्ररूप्या है – एक मुनि का, दूसरा गृहस्थी का। मुनि का महाव्रत रूप है, गृहस्थी का अणुव्रत रूप है। जीव हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इनका सर्वथा त्याग सो तो पंच महाव्रत, तिनकी पच्चीस भावना, यह मुनि का धर्म है। अर इन हिंसादिक पापों का किंचित् त्याग सो श्रावक के व्रत हैं। श्रावक के व्रतनि में पूजा दान शास्त्रविषै मुख्य कह्या है। पूजा का नाम यज्ञ है (अजैर्यष्टव्यम्) यां शब्द का अर्थ मुनिनि ने याभांति कह्या है – जो बोने से न ऊगें, जिनमें अंकुरशक्ति नाहीं, ऐसे शालिधान यव, तिनका विवाहादिक क्रियानिविषै होम करिए। यह भी आरंभी श्रावक की रीति है।

ऐसे नारद के वचन सुन पापी पर्वत बोला – अज कहिये छेला (बकरा), तिनका आलंभन कहिये हिंसन, ताका नाम यज्ञ है। तदि नारद कोपकरि दुष्ट पर्वतसों कहते भये – हे पर्वत! ऐसे मत कहै, महा भयंकर वेदना है जाविषै, ऐसे नरक में तू पड़ेगा। दया ही धर्म है, हिंसा पाप है। तब पर्वत कहने लाग्या – मेरा तेरा न्याय राजा वसु पै होयगा। जो झूठा होयगा ताकी जिह्वा छेदी जायेगी। या भांति कहकर पर्वत माता पै गया। नारद कै अर याकै जो विवाद भया सो सर्व वृत्तांत मातासों कह्या। तदि माता ने कह्या कि तू झूठा है। तेरा पितासों हमने व्याख्यान करते अनेक बार सुन्या है जो अज – बोई हुई न उगै, ऐसी पुरानी शालि तथा पुराना यव तिनका नाम है, छेले का नाहीं। जीवनि का भी कभी होम किया जाय है? तू देशांतर जाय मांसभक्षण का लोलुपी भया है। तातैं मान के उदयकरि झूठ कह्या, सौ तुझै दु:ख का कारण होयगा।

हे पुत्र! निश्चय सेती तेरी जिह्वा छेदी जायगी। मैं पुण्यहीन अभागिनी पति अर पुत्ररहित भई क्या करूंगी? या भांति पुत्रसों कहकरि वह पापिनी चितारती भई कि राजा वसु कै गुरुदक्षिणा हमारी धरोहर है। अैसा जानि अति व्याकुल भई वसु के समीप गई। राजा ने स्वस्तिमती को देखि

बहुत विनय किया, सुखासन बैठाई। हाथ जोड़ि पूछता भया – हे माता! तुम आज दुखित दीखो हो, जो तुम आज्ञा करो सो ही करूं? तदि स्वस्तिमती कहती भई – हे पुत्र! मैं महादु:खिनी हूं। जो स्त्री अपने पतिकरि रहित होय ताकों काहे का सुख? संसार में पुत्र दोय भांति के हैं। एक पेट का जाया एक शास्त्र का पढ़ाया। सो इनमें पढ़ाया पुत्र विशेष है। एक समल है दूसरा निर्मल है। मेरे धनी के तुम शिष्य हो, तुम पुत्रतैं हू अधिक हो। तुम्हारी लक्ष्मी देखकरि मैं धीर्य धरूं हूं। तुम कही थी – माता दक्षिणा लेवो। मैं कही, समय पाय लूंगी। यह वचन याद करो। जे राजा पृथिवी के पालन में उद्यमी हैं ते सत्य ही कहै हैं। अर जे ऋषि जीवदया के पालने में तिष्ठै हैं ते भी सत्य ही कहै हैं। तू सत्यकर प्रसिद्ध है। मोकों दक्षिणा देवो। या भांति स्वस्तिमती ने कह्या।

तदि राजा विनयकरि नम्रीभूत होय कहते भये – हे माता! तिहारी आज्ञातैं जो नाहीं करने योग्य काम है सो भी मैं करूं। जो तिहारे चित्त में होय सो कहो। तब पापिनी ब्राह्मणी ने नारद अर पर्वत के विवाद का सर्व वृत्तांत कह्या, अर कह्या – मेरा पुत्र सर्वथा झूठा है, परन्तु याके झूठ को तुम सत्य करो। कारण ताका मानभंग न होय। तदि राजा ने यह अयोग्य जानते हुए भी ताकी बात दुर्गति का कारण, प्रमाण करी। तदि वह राजा को आशीर्वाद देय घर आई। बहुत हर्षित भई। दूजे दिन प्रभात की नारद अर पर्वत राजा के समीप आए। अनेक लोक कौतूहल देखने को आए। सामंत मंत्री, देश के लोग बहुत आय भेले भए। तदि सभा के मध्य नारद पर्वत दोऊनि में बहुत विवाद भया। नारद तो कहै अज शब्द का अर्थ अंकुर – शक्तिरहित शालि है। अर पर्वत कहै पशु है। तदि राजा वसु को पूछ्या। तुम सत्यवादीनि में प्रसिद्ध हो जो क्षीरकंदब अध्यापक कहते हुते सो कहो। तदि राजा, कुगति कों जानहारा, कहता भया। जो पर्वत कहै है सोई क्षीरकंदब कहते हुते।

या भांति कहते ही सिंहासन के स्फटिक के पाए टूट गये, सिंहासन भूमि में गिर पड्या। तदि नारद ने कह्या – हे वसु! असत्य के प्रभावतैं तेरा सिंहासन डिगा। अबहू तुमकूं सांच कहना योग्य है। तदि मोह के मदकरि उन्मत्त भया यह ही कहता भया – जो पर्वत कहै सो सत्य है। तदि महापाप के भारकरि हिंसा मार्ग के प्रवर्तनतैं तत्काल ही सिंहासन समेत धरती में गडि गया। राजा मरकरि सातवें नरक गया।

कैसा है नरक? अत्यंत भयानक है वेदना जहां। तदि राजा वसु को मूवा देखि सभा के लोग वसु अर पर्वत को धिक्कार धिक्कार कर कहते भए। अर महा कलकलाट शब्द भया। दयाधर्म उपदेशकरि नारद की बहुत प्रशंसा भई, अर सर्व कहते भये – यतो धर्मस्ततो जय:। पापी पर्वत हिंसा के उपदेशकरि धिक्कार दंड को प्राप्त भया। पापी पर्वत देशांतरों में भ्रमण करता संता हिंसामई शास्त्र की प्रवृत्ति करता भया, आप पढ़ै औरनि को पढ़ावै। जैसैं पतंग दीपक में पड़ै तैसैं

कई एक बहिरमुख जीव कुमार्ग में पड़े। अभक्ष्य का भक्षण, अर न करने योग्य काम करना, अैसा लोकनि को उपदेश दिया, अर कहता भया कि यज्ञ ही के अर्थ ये पशु बनाये हैं, यज्ञ स्वर्ग का कारण है। तातैं जो यज्ञ में हिंसा होय सो हिंसा नाहीं। अर सौत्रामणिनाम यज्ञ के विधानकरि सुरापान का हू दूषण नाहीं। अर गोयज्ञ नाम यज्ञविषै अगम्यागम्य हू (परस्त्री सेवन भी) करै है। अैसा पर्वत ने लोकनि को हिंसादिमार्ग का उपदेश दिया। आसुरी मायाकरि जीव स्वर्ग जाते दिखाये। कैएक क्रूर जीव कुकर्म में प्रवर्तकरि कुगति के अधिकारी भये।

हे श्रेणिक! यह हिंसा यज्ञ की उत्पत्ति का कारण कह्या। अब रावण का वृत्तांत सुनो।

रावण राजपुर गए, तहां राजा मरुत हिंसाकर्म में प्रवीण यज्ञशालाविषै तिष्ठै था। संवर्तनामा ब्राह्मण यज्ञ करावै था, तहां पुत्रदारादि सहित अनेक विप्र धन के अर्थी आए हुते और अनेक पशु होम निमित्त लाए। ता समय अष्टम नारद पदवीधर बड़े पुरुष आकाशमार्गतैं आय निकसे। बहुत लोकनि का समूह देख आश्चर्य पाय चित्त में चिंतवते भए कि यह नगर कौन का है और यह दूर पर सेना कौन की पड़ी है। अर नगर के समीप एते लोग किस कारण एकत्र भए हैं। ऐसा मन में विचार आकाशतैं भूमि पर उतरे।

अथानन्तर यह बात सुन राजा श्रेणिक गौतमस्वामी कों पूछते भए – हे भगवन्! यह नारद कौन है? यामें कैसे कैसे गुण अर याकी उत्पत्ति किह भांति है?

तदि गणधरदेव कहते भए – हे श्रेणिक! एक ब्रह्मरुचि नाम ब्राह्मण था ताके कुरमी नामा स्त्री, सो ब्राह्मण तापस के व्रत धरि वन में जाय कंदमूल फल भक्षण करै। ब्राह्मणी भी संग रहै। ताकों गर्भ रह्या। तहां एक दिन मार्ग के वशतैं कुछ संयमी महामुनि आए। क्षण एक विराजे। ब्राह्मणी अर ब्राह्मण समीप आय बैठे। ब्राह्मणी गर्भिणी, पांडुर है शरीर जाका, गर्भ के भारकरि दुखित सांस लेती मानों सर्पणी ही है, ताकों देखिकरि मुनि को दया उपजी।

तिनमैं सें बड़े मुनि बोले – देखो, यह प्राणी कर्म के वशकरि जगतविषै भ्रमै है। धर्म की बुद्धिकरि कुटुम्ब को तजिकरि संसार सागर तैं तरणे के अर्थि तो वनविषै आया। सो हे तापस! तैंने क्या दुष्टकर्म किया? स्त्री गर्भवती करी। तेरे में अर गृहस्थी में कहा भेद है? जैसै वमन किया जो आहार ताकूं मनुष्य न भखै तैसैं विवेकी पुरुष तजे हुए कामादिकनि कों फिर नाहीं आदरै। जो कोई भेष धरै अर स्त्री का सेवन करै सो भयानक वन मैं ल्यालिनी होय अनेक कुजन्म पावै। नरकनिगोद में पड़ै है। जो कोई कुशील सेवता सर्व आरम्भनि में प्रवर्त्या मदोन्मत्त आपको तापसी माने है सो महा अज्ञानी है। यह कामसेवन ताकरि दग्ध दुष्टचित्त जो दुरात्मा, आरम्भविषै प्रवर्तै ताकै तप काहे का? कुदृष्टि कर गर्वित भेषधारी विषयाभिलाषी जो कहै मैं तपसी हूं, सो मिथ्यावादी है।

काहे का व्रती! सुखसों बैठना, सुखसूं सोवना, सुखसूं अहार विहार करना, ओढ़ना बिछावना आदि सब काज करैं, अर आपको साधु मानै सो मूर्ख आपको ठगै है। बलता जो घर तहांतैं निकसे फिर ताही मैं कैसे प्रवेश करै? अर जैसैं छिद्र पाय पिंजरे से निकस्या पक्षी भी फिर आपको पिंजरेविषै नाहीं डारै, तैसैं विरक्त होय फिर कौन इन्द्रीनि के वश परै? जो इन्द्रीनि के वश होय सो लोकविषै निंदा योग्य है। आत्मकल्याण को न पावै है।

सर्व परिग्रह के त्यागी मुनिनि को एकाग्रचित कर एक आत्मा ही ध्यावने योग्य है। सो तुम सारिखे आरंभी तिन करि आत्मा कैसे ध्याया जाय? प्राणीनि के परिग्रह के प्रसंगकरि राग द्वेष उपजै है, रागकरि काम उपजै है, द्वेषकरि जीवहिंसा होय है, कामक्रोधकरि पीड़ित जो जीव ताके मन को मोहै पीड़ै है। मूर्ख के कृत्य अकृत्यविषै विवेकरूप बुद्धि न होय। जो अविवेकतैं अशुभ कर्म उपारजै है सो घोर संसार सागर में भ्रमै है। यह संसर्ग के दोष जानकरि जे पंडित हैं ते शीघ्र ही वैरागी होय हैं। आपकरि आपकों जानि विषयवासनातैं निवृत्त होय परमधाम को पावै हैं। या भांति परमार्थरूप उपदेशनि के वचननिकरि महामुनि ने संबोध्या। तदि ब्राह्मण ब्रह्मरुचि निरमोही होय मुनि भया। कुरमी नामा स्त्री का त्यागकरि गुरु के संग ही विहार किया। गुरु में है धर्मराग जाके अर वह ब्राह्मणी कुरमी शुद्ध है बुद्धि जाकी सो पापकर्मतैं निवृत्त होय श्रावक के व्रत आदरे। जान्या है रागादिक के वशतैं संसार का परिभ्रमण जानै, सो कुमार्ग का संग छोड्या।

जिनराज की भक्तिविषै तत्पर होय भरतार रहित अकेली महासती सिंहनी की नाईं महावनविषै भ्रमै। दसवें महीने पुत्र का जन्म भया। तदि वाकों देखकरि वह महासती ज्ञानक्रिया की धरणहारी चित्तविषै चिंतवती भई जो यह पुत्र परिवार का संबंध महा अनर्थ का मूल मुनिराज ने कहा हुता सो सत्य है। तातैं मैं या पुत्र का प्रसंग का परित्यागकरि आत्मकल्याण करूं। अर यह पुत्र महा भाग्यवान है याके रक्षक देव हैं, याने जे कर्म उपारजे हैं तिनका फल अवश्य भोगैगा। वन में तथा समुद्रविषै अथवा वैरियों के वशविषै पड्या जो प्राणी ताकी पूर्वोपार्जित कर्म ही रक्षा करै है, और कोऊ नाहीं। अर जाकी आयु क्षीण होय है सो माता की गोद विषै बैठा हू मृत्यु के वश होय है। ये सब संसारी जीव कर्मों के आधीन हैं। भगवान सिद्ध परमात्मा कर्मकलंकरहित हैं, ऐसा जान्या है तत्त्वज्ञान जानै, सो महानिर्मल बुद्धिकरि बालक कों वनविषै तजकरि यह ब्राह्मणी विकल्परूप जो जडता ताकरि रहित अलोकनगरविषै आई। जहां इन्द्रमालिनी नामा आर्या अनेक आर्यानि की गुरुनी हुती तिनके समीप आर्या भई, सुन्दर है चेष्टा जाकी।

अथानन्तर आकाश के मार्ग ज्रंभनामा देव जाता हुता, सो पुण्याधिकारी रुदनादि रहित जो बालक ताहि देख्या। दयावान होय उठाय लिया, बहुत आदरतैं पाल्या, अनेक आगम अध्यात्मशास्त्र

पढ़ाए, तातैं सिद्धांत का रहस्य जानने लग्या, महापंडित भया, आकाशगामिनी विद्या हू सिद्ध भई, यौवन कों प्राप्त भया, श्रावक के व्रत धारे, शीलव्रत विषै अत्यन्त दृढ़ अपने माता पिता जे आर्यिका मुनि भये हुते, तिनकी वंदना करै। कैसा है नारद? सम्यग्दर्शनविषै तत्पर, ग्यारमी प्रतिमा के छुल्लक श्रावक के व्रत लेय विहार किया, परन्तु कर्म के उदयतैं तीव्र वैराग्य नाहीं। न गृहस्थी न संयमी। धर्मप्रिय है, अर कलह भी प्रिय है। वाचालपने में प्रीति है, गायन विद्या में प्रवीण अर राग सुनते विषै विशेष अनुरागवाला है मन जाका, महाप्रभावकरि युक्त, राजानिकरि पूजित, जाकी आज्ञा कोई लोप न सकै। स्त्रीनिविषै सदा जिसका अति सन्मान है। अढ़ाई द्वीपविषै मुनि जिन चैत्यालयनि का दर्शन करै। सदा धरती आकाश विषै भ्रमता ही रहै। कौतूहल में लगी है दृष्टि जाकी, देवनिकरि वृद्धि पाई, अर देवन के समान है महिमा जाकी, पृथ्वीविषै देवऋषि कहावैं, सदा सर्वत्र प्रसिद्ध, विद्या के भावकरि किया है अद्‌भुत उद्योग जाने।

सो नारद विहार करते संते कदाचित् मरुत के यज्ञ की भूमि पर जाय निकसे। सो बहुत लोकनि की भीड़ देखी अर पशु बंधे देखे। तब दयाभावकरि संयुक्त होय यज्ञभूमि में उतरे। तहां जायकरि मरुत से कहने लगे– 'हे राजा! जीवन की हिंसा दुर्गति का ही द्वार है, तैने यह महापाप का कार्य क्यों रच्या है?' तब मरुत कहता भया– 'यह संवर्त ब्राह्मण सर्व शस्त्रनि के अर्थविषै प्रवीण यज्ञ का अधिकारी है। यह सर्व जाने है, याहीतैं धर्मचर्चा करो। यज्ञकर उत्तम फल पाइये है।'

तदि नारद यज्ञ करावनहारे से कहते भए – 'अहो मानव! तैं यह क्या कर्म आरंभ्या है? यह कर्म – सर्वज्ञ जो वीतराग हैं तिनने दु:ख का कारण कह्या है। तदि संवर्त ब्राह्मण कोपकरि कहता भया – अहो अत्यन्त मूढ़ता तेरी। तू सर्वथा अमिलती बात कहै है। तैंने कोई सर्वज्ञ रागवर्जित वीतराग कह्या, सो जो सर्वज्ञ वीतराग होय सो वक्ता नाहीं, अर जो वक्ता है, सो सर्वज्ञ वीतराग नाहीं। अर अशुद्ध मलिन ते जीव तिनका कह्या वचन प्रमाण नाहीं, अर जो अनुपम सर्वज्ञ है सो कोई देखने में आवे नाहीं। तातैं वेद अकृत्रिम है, वेदोक्तमार्ग प्रमाण है। वेदविषै शूद्र बिना तीन वर्णनि कों यज्ञ करवाना कह्या है। यह यज्ञ अपूर्व धर्म है, स्वर्ग के अनुपम सुख देवै है। वेदी के मध्य पशूनि का वध पाप का कारण नाहीं, शास्त्रनि में कह्या जो मार्ग सो कल्याण ही का कारण है। अर यह पशूनि की सृष्टि विधाता ने यज्ञ ही के अर्थि रची है तातैं यज्ञ में पशु के वध का दोष नाहीं!

ऐसैं संवर्त ब्राह्मण के विपरीत वचन सुन नारद कहते भए – हे विप्र! तैनैं यह सर्व अयोग्य रूप ही कह्या है – कैसा है तू? हिंसा मार्ग कर दूषित है आत्मा जाका। अब तू ग्रंथार्थ का यथार्थ भेद सुन। तू कहै है सर्वज्ञ नाहीं, सो यदि सर्वथा सर्वज्ञ न होय तो शब्दसर्वज्ञ, अर्थसर्वज्ञ, बुद्धिसर्वज्ञ यह तीन भेद काहेकूं कहे। जो सर्वज्ञ पदार्थ है तदि ही कहने में आवै है। जैसैं सिंह है

तो चित्राम में लिखिए है। तातैं सर्व का देखनहारा सबका जाननेहारा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ न होय तो अमूर्तीक अतींद्रिय पदार्थ को कौन जानै? तातैं सर्वज्ञ का वचन प्रमाण है। अर तैनैं कह्या जो यज्ञ में पशु का वध दोषकारी नाहीं, सो पशु को वध करते समय दुःख होय है कि नाहीं? जो दुःख होय है तो पापहू होय हैं। जैसैं पारधी हिंसा करै है सो जीवन को दुःख होय हैं, अर उसको पाप हू होय है।

अर तैनैं कही विधाता सर्वलोक का कर्त्ता है, अर यह पशु यज्ञ के अर्थि बनाए हैं। सो यह कथन प्रमाण नाहीं, भगवान कृतार्थ है। तिनको सृष्टि बनाने तैं क्या प्रयोजन? अर कहोगे ऐसी क्रीड़ा है सो क्रीड़ा तो कृतार्थ का काज नाहीं। क्रीड़ा करै ताकूं बालक समान जानिए। अर जो सृष्टि रचै तो आप सारिखी रचै। वह सुखपिंड अर यह सृष्टि दुःखरूप है। जो कृतार्थ होय सो कर्त्ता नाहीं, अर कर्त्ता है तो कृतार्थ नाहीं। जाकै कछु इच्छा है सो ही करै। जाकै इच्छा है ते ईश्वर नाहीं, अर ईश्वर बिना करवे समर्थ नाहीं। तातैं यह निश्चय भया– जाकै इच्छा है सो करने समर्थ नाहीं। अर जो करवे मैं समर्थ है ताके इच्छा नाहीं। तातैं जाकों तुम विधाता कर्त्ता मानो हो, सो कर्मकर पराधीन तुम सारखा ही है। अर ईश्वर है, सो अमूर्तीक है जाकै शरीर नाहीं। सो शरीर बिना सृष्टि कैसैं रचै?

अर यज्ञ के निमित्त पशु बनाए सो वाहनादिकर्मविषै क्यों प्रवर्ते? तातैं यह निश्चय भया कि इस भवसागरविषै अनादिकालतैं इन जीवों ने, रागादिभावकरि कर्म उपार्जै हैं तिनकरि नानायोनिविषै भ्रमण करै हैं। यह जगत अनादिनिधन है काहू का किया नाहीं, संसारी जीव कर्माधीन हैं। अर जो तुम यह कहोगे कि– कर्म पहिले हैं या शरीर पहिले हैं? सो जैसैं बीज अर वृक्ष तैसैं कर्म अर शरीर जानने। बीजतैं वृक्ष है अर वृक्षतैं बीज है। जिनके कर्मरूप बीज दग्ध भया तिनके शरीररूप वृक्ष नाहीं। अर शरीर वृक्ष बिना सुख दुखादि फल नाहीं। तातैं यह आत्मा मोक्ष अवस्था में कर्मरहित मनइन्द्रियनितैं अगोचर अद्भुत परम आनन्द को भोगै है।

निराकारस्वरूप अविनाशी है, सो अविनाशी पद दयाधर्मतैं ही पाइए हैं। तू कोई पुण्य के उदय कर मनुष्य भया, ब्राह्मण का कुल पाया, तातैं पारधियों के कर्मतैं निवृत्त हो। अर जो जीवहिंसातैं यह मानव स्वर्ग पावै हैं तो हिंसा के अनुमोदनतैं राजा वसु नरक में क्यों पड़े? जो कोई चून का पशु बनायकरि घात करै है सो भी नरक का अधिकारी होय है, तो साक्षात् पशुघात की कहा बात? अबहू यज्ञ के करणहारे ऐसा शब्द कहै हैं– 'हो वसु' उठ स्वर्ग विषै जावो।' यह कहकर अग्निविषै आहूति डारै हैं। तातैं सिद्ध भया कि वसु नरक में गया, अर स्वर्ग न गया। तातैं 'हे संवर्त! यह यज्ञ कल्याण का कारण नाहीं। अर जो तू यज्ञ ही करै तो जैसैं हम कहें सो कर।

यह चिदानन्द आत्मा सो तो जजमान नाम कहिए यज्ञ का करणहारा, अर शरीर है सो विनय कुण्ड कहिए होमकुंड अर संतोष है सो पुरोडास कहिए यज्ञ की सामग्री, अर जो सर्व परिग्रह है सो हवि कहिए होने योग्य वस्तु, अर माधुर्य कहिए केश तेई दर्भ कहिए डाभ, तिनका उपारना, लोंच करना, अर जो सर्व जीवनि की दया सोई दक्षिणा, अर जाका फल सिद्धपद ऐसा जो शुक्लध्यान सोई प्राणायाम, अर जो सत्यमहाव्रत सोई यूप कहिए यज्ञविषै काष्ठ का स्थम्भ, जातैं पशु को बांधै हैं, अर यह चंचल मन सोई पशु। अर तपरूप अग्नि अर पांच इन्द्रिय तेई समाधि कहिए ईंधन। यह यज्ञ धर्मयज्ञ कहिए है।

अर तुम कहो हो कि यज्ञकरि देवों की तृप्ति कीजिये है सो देवन कै तो मनसा आहार है, तिनका शरीर सुगंधमय है। अन्नादिक ही का आहार नाहीं तो मांसादिक की कहा बात? कैसा है मांस? महा दुर्गंध जो देख्या न जाय, पिता का वीर्य माता का लहू ताकरि उपज्या, कृमीनि की है उत्पत्ति जिसविषै, महा अभक्ष सो मांस देव कैसे भखैं? अर तीन अग्नि या शरीरविषै हैं, एक ज्ञानाग्नि, दूसरी दर्शनाग्नि, तीसरी उदराग्नि। सो इन्हीं को आचार्य दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय कहै है। अर स्वर्गलोक के निवासी देव हाडमांस का भक्षण करैं तो देव काहे के? जैसैं स्वान स्याल काक तैसै वे भी भए। ये वचन नारद ने कहे।

कैसे हैं नारद? देवऋषि हैं, अनेकांतरूप जिन मार्ग के प्रकाशिवे को सूर्यसमान महा तेजस्वी, दैदीप्यमान है शरीर जिसका, शास्त्रार्थज्ञान के निधान तिनको मंदबुद्धि संवर्त कहा जीतै! सो पराभव को प्राप्त भया। तदि निर्दई क्रोध के भार कर कम्पायमान आशीविषै सर्पसमान लाल हैं नेत्र जाके, महा कलकलाट करि अनेक विप्र भेले होय लड़ने को काछकछ हस्तपादादिकर नारद के मारने को उद्यमी भए। जैसैं दिन में काक घूघू पर आवै सो नारद भी कैयकनि कों मुक्कीनतैं, कैयकनि कों मुदगर से, कई एकनि को कोहनी से मारते हुए भ्रमण करते हुए, अपने शरीर रूप शस्त्रकरि अनेकनि कों हत्या, बहुत युद्ध भया। निदान यह बहुत अर नारद अकेले, सो सर्वगात्र में अत्यन्त आकुलता कों प्राप्त भये। पक्षी की नाईं बंधकों ने घेरया। आकाशविषै उडवे को असमर्थ भए, प्राण संदेह को प्राप्त भए।

ताही समय रावण का दूत राजा मरुत पै आया हुता सो नारद को घेरया देखि पाछा जाय रावण तैं कहीं – हे महाराज! जाके निकट मोहि भेज्या हुता सो महा दुर्जन है, ताके देखते थके द्विजों ने अकेले नारद को घेरया है। अर मारै हैं जैसै कीड़ी दल सर्प को घेरै। सो मैं यह बात देख न सक्या। सो आपको कहिने को आया हूं। तदि रावण यह वृत्तान्त सुन क्रोध को प्राप्त भया, पवन से भी शीघ्रगामी जे वाहन तिन पर चढ़ि चलने को उद्यमी भया, अर नंगी तलवारनि के

धारक जे सामन्त ते अगाऊ दौड़ाए। ते एक पलक में यज्ञशाला जाय पहुंचे। तत्काल ही नारद को शत्रुओं के घेरतैं छुड़ाया अर निरदई मनुष्य जो पशुनि को घेरि रहे हुते सो सकल पशु तत्काल छुड़ाए। यज्ञ के यूप कहिए स्तंभ ते तोड़ डारे, अर यज्ञ के करावनहारे विप्र बहुत कूटे, यज्ञशाला बखेर डारी। राजा को भी पकड़ लिया, रावण ने द्विजनि पर बहुत कोप किया।

जो मेरे राज्यविषै जीवघात करै यह क्या बात? सो ऐसैं कूटे जो अचेत होय धरती पर गिर पड़े तब सुभटलोक इनको कहते भये – अहो! जैसा दुख तुमको बुरा लागै है, अर सुख भला लागै है, तैसा पशुनि के भी जानों। अर जैसा जीतव्य तुमको वल्लभ है, तैसा सकल जीवनि कों जानों। तुमको कूटते कष्ट होय है तो पशुवों को विनाशनेतैं क्यों न होय? तुम पाप का फल सहो, आगै नरकनि में दुख भोगोगे। सो घोड़ों आदि के सवार तथा खेचर भूचर सब ही पुरुष हिंसकनि को मारने लगे। तब वे विलाप करने लगे, हमको छोड़ो फिर ऐसा काम न करेंगे – ऐसे दीन वचन कह, विलाप करते भए। अर रावण का तिन पर अत्यंत क्रोध सो छोड़े नाहीं।

तदि नारद महा दयावान रावणसों कहने लगे – हे राजन्! तेरा कल्याण होवे, तैने इन दुष्टों से मुझे छुड़ाया। अब इनकी भी दयाकर, जिनशासन में काहू को पीड़ा देनी लिखी नाहीं। सब जीवनि को जीतव्य प्रिय है। तैने सिद्धांत में क्या यह बात न सुनी है कि जो हुंडावसर्पिणी कालविषै पाखंडिनि की प्रवृत्ति होय है। जब के चौथे काल के आदि में भगवान ऋषभ प्रकटे तीन जगत् में उच्च जिनको जन्मते ही देव सुमेरु पर्वत पर ले गये। क्षीर सागर के जलकरि स्नान कराया। वे महाकांति के धारी ऋषभ, जिनका दिव्य चरित्र पापों का नाश करनहारा तीन लोक में प्रसिद्ध है, सो तैने क्या न सुन्या? वे भगवान जीवों के दयालु जिनके गुण इन्द्र भी कहने को समर्थ नाहीं। तै वीतराग निर्वाण के अधिकारी इस पृथ्वीरूप स्त्री को तजकरि जगत के कल्याण निमित्त मुनिपद को आदरतै भये।

कैसे हैं प्रभु! निर्मल है आत्मा जिनका, कैसी है पृथ्वीरूप स्त्री? जो विंध्याचल पर्वत अर हिमालय पर्वत तेई है उतंग कुच जाके, अर आर्यक्षेत्र है मुख जाका, सुन्दर नगर तेई चूड़े तिनकरि युक्त है। अर समुद्र है कटिमेखला जाकी, अर जे नीलवन, तेई हैं सिर के केश जाके, नाना प्रकार के जे रत्न तेई आभूषण हैं। ऋषभदेव मुनि होयकरि हजार वर्ष तक महातप किया, अचल है योग जिनका लम्बायमान हैं बाहु जिनकी, स्वामी के अनुरागकरि कच्छादि चार हजार राजावों ने मुनि के धर्म जाने बिना ही दीक्षा धरी। सो परीषह सह न सके, तदि फलादिक का भक्षण, बक्कलादि का धारणकरि तापसी भए। ऋषभदेव ने हजार वर्ष तपकर वटवृक्ष के तले केवलज्ञान उपजाया। तदि इन्द्रादिक देवों ने केवलज्ञान कल्याण किया, समोसरण की रचना भई। भगवान की

दिव्यध्वनिकर अनेक जीव कृतार्थ भए। जे कच्छादिक राजा चारित्रभ्रष्ट भये हुते ते धर्म में दृढ़ होय गए, मारीच के दीर्घ संसार के योगतैं मिथ्याभाव न छूट्या।

अर जिस स्थान पर भगवान को केवलज्ञान उपज्या ता स्थानक में देवोंकरि चैत्यालयनि की स्थापना भई। ऋषभदेव की प्रतिमा पधराई, अर भरत चक्रवर्ती ने विप्रवर्ण थाप्या हुता ते जलविषै तेल की बूंदवत् विस्तार कों प्राप्त भया। उन्होंने यह जगत मिथ्याचार करि मोहित किया, लोक अति कुकर्मविषै प्रवर्ते, सुकृत का प्रकाश नष्ट होय गया। जीव साधूनि के अनादर में तत्पर भए। आगै सुभूम चक्रवर्ती ने नाश को प्राप्त किए थे तौ भी इनका अभाव न भया, हे दशानन! तो करि कैसे अभाव को प्राप्त होहिंगे? तातैं तू प्राणीनि की हिंसातैं निवृत्त होहु। काहू की कभी भी हिंसा कर्त्तव्य नाहीं। अर जब भगवान के उपदेशकरि जगत मिथ्यामार्गकरि रहित न होय, कोई एक जीव सुलटै तो हम सारिखे तुम सारिखों कर सकल जगत का मिथ्यात्व कैसे जाय? कैसे हैं भगवान? सर्व के देखनहारे, सर्व के जाननेहारे। या भांति देवर्षि जे नारद तिनके वचन सुनकर केकसी माता की कुक्ष में उपज्या जो रावण सो पुराण कथा सुनकर अति प्रसन्न भया, अर बारम्बार जिनेश्वर को नमस्कार किया। नारद अर रावण महापुरुषनि की मनोज्ञ जे कथा तिनके कथनकरि क्षण एक सुखसों तिष्ठे, महापुरुषों की कथा में नाना प्रकार का रस भर्‍या है जिनमें ऐसी है।

अथानन्तर राजा मरुत हाथ जोड़ि धरतीसों मस्तक लगाय रावण को नमस्कार कर विनती करता भया – हे देव, हे लंकेश! मैं आपका सेवक हूं, आप प्रसन्न होउ, मैं अज्ञानीनि के उपदेशकरि हिंसा मार्ग रूप खोटी चेष्टा करी। सो आप क्षमा करो। जीवों के अज्ञानकरि खोटी चेष्टा होय है। अब मुझे धर्म के मार्ग में लेवो, अर मेरी पुत्री कनकप्रभा आप परणो। जे संसार में उत्तम पदार्थ हैं तिनके आप ही पात्र हो। तदि रावण प्रसन्न भए। कैसे हैं रावण? जो नम्रीभूत होय ताविषै दयावान हैं। तब रावण ने पुत्री परणी, अर ताहि अपनो कियो। सो रावण के अति वल्लभा भई। मरुत ने रावण के सामंतलोक बहुत पूजे, नाना प्रकार के वस्त्राभूषण हाथी घोड़े रथ दिए। कनकप्रभा सहित रावण रमता भया।

ताके एक वर्ष बाद कृतचित्रनामा पुत्री भई, सो देखनहारे लोकनि को रूपकर आश्चर्य की उपजावनहारी मानों मूर्तिवंत शोभा ही है। रावण के सामंत महाशूरवीर तेजस्वी जीतकरि उपज्या है उत्साह जिनने, सम्पूर्ण पृथ्वीतल मैं भ्रमते भए। तीन खंड में जो राजा प्रसिद्ध हुता अर बलवान हुता, सो रावण के योधानि के आगे दीनता को प्राप्त भया। सब ही राजा वश भए। कैसे हैं राजा? राज्य के भंग का है भय जिनको, विद्याधरलोक भरतक्षेत्र का मध्यभाग देखि आश्चर्य को प्राप्त भए। मनोज्ञ नदी, मनोज्ञ पहाड़, मनोज्ञ बन तिनको देख लोक कहते भए – अहो स्वर्ग भी यातैं

अधिक रमणीक नाहीं। चित्तविषै ऐसे उपजै है जो यहां ही वास करिए। समुद्रसमान विस्तीर्ण सेना जाकी, ऐसा रावण, जा समान और नाहीं। अहो अद्भुत वीर्य, अद्भुत उदारता या रावण की, यह सब विद्याधरनि मैं श्रेष्ठ नजर आवै है। या भांति समस्त लोक प्रशंसा करै हैं। जा जा देशविषै रावण गया तहां तहां लोक प्रशंसा करैं। फिर जहां जहां रावण गया, तहां तहां लोक सनमुख आय मिलते भए। जे जे पृथ्वीविषै राजानि की सुन्दर पुत्री हुती ते रावण ने परणी। जा नगर के समीप रावण जाय निकसै ताहीं नगर के नर नारी देखकरि आश्चर्य प्राप्त होवें। स्त्री सकल काम छोडि देखवे को दौड़ी, कईएक झरोखों में बैठि ऊपर से असीस देय फूल डारैं।

कैसा है रावण? मेघ समान श्याम सुन्दर, पाकी किंदूरीसमान लाल हैं अधर जाके। अर मुकुट विषै नाना प्रकार की जे मणि तिनकरि शोभै है सीस जाका, मुक्ताफलनि की ज्योति सोई भया जल, ताकरि पखास्या है चंद्रमासमान बदन जाका, इन्द्रनीलमणि समान श्याम सघन जे केश, अर सहस्र पत्र कमलसमान नेत्र, तत्काल खैंच्या नम्रीभूत हुआ जो धनुष, ताके समान वक्र स्याम चिकने, भौंह युगल, ताकरि शोभित शंखसमान ग्रीवा (गरदन) जाकी, अर वृषभसमान कांधे जाके, पुष्ट विस्तीर्ण वक्षस्थल जाके, दिग्गज की सूंड समान भुजा जाके, केहरी समान कटि जाकी, कदली के समान सुन्दर जंघा जाकी, कमल समान चरण, समचतुरस्र संस्थान को धरै महामनोहर शरीर जाका, न अधिक लंबा न अधिक ओछा, न कृश न स्थूल, श्रीवत्सलक्षण को आदि देय बत्तीस लक्षणनिकरि युक्त, अर अनेक प्रकार रत्ननि की किरणोंकरि दैदीप्यमान है मुकुट जाका, अर नाना प्रकार की मणिनिकरि मंडित नाना प्रकार के मनोहर हैं कुण्डल जाके, बाजबूंद की दीप्तिकरि दैदीप्यमान है भुजा जाकी, अर मोतीनि के हारकरि शोभै है उर जाका, अर्धचक्रवर्ती की विभूति का भोगनहारा, ताहि देख प्रजा के लोक बहुत प्रसन्न भए।

परस्पर बात करै हैं कि यह दशमुख महाबलवान, जीत्या है मौसी का बेटा वैश्रवण जानैं, अर जीत्या है राजा यम जिसने, कैलाश के उठाने कों उद्यमी भया, अर प्राप्त किया है राजा सहस्ररश्मि का वैराग्य जाने, मरुत के यज्ञ का विध्वंस करणहारा, महा शूरवीर, साहस का धारी, हमारे सुकृत के उदयकरि या दिशा को आया। यह केकसी माता का पुत्र, याके रूप का अर गुणनि का कौन वर्णन कर सकै? याका दर्शन लोकनि कों परम उत्सव का कारण है। वह स्त्री पुण्यवती धन्य है जाके गर्भतैं यह उत्पन्न भया, अर वह पिता धन्य है जातैं यानै जन्म पाया, अर वे बंधु लोक धन्य हैं जिनके कुलविषै यह प्रकट्या। अर जे स्त्री इनकी राणी भईं तिनकैं भाग्य की कौन कहै? या भांति स्त्री झरोखानि मैं बैठी बात करै हैं, अर रावण की असवारी चली जाय है। जब रावण आय निकसै तदि एक मुहूर्त गांव की नारी चित्राम-सी होय रहै, ताके रूप सौभाग्यकरि हस्या गया है

चित्त जिनका। स्त्रीनि को अर पुरुषनि को रावण की कथा के टारि और कथा न रही।

देशनिविषै तथा नगर ग्राम तथा गांवनि के बाड़े तिनविषै जे प्रधान पुरुष हैं ते नाना प्रकार की भेंट लेयकरि आय मिले, अर हाथ जोड़ि नमस्कारकरि विनती करते भए – हे देव! महाविभव के पात्र तुम, तिहारे घरविषै सकल वस्तु विद्यमान हैं, हे राजानि के राजा! नन्दनादि वन मैं जे मनोज्ञ वस्तु पाइए हैं ते भी सकल वस्तु चिंतवनमात्रतैं ही तुमको सुलभ हैं। ऐसी अपूर्व वस्तु क्या है जो तुम्हारी भेंट करें? तथापि यह न्याय है कि रीते हाथनि राजानि सों न मिलिए। तातैं कछू हम अपनी माफिक भेंट करै हैं। जैसैं भगवान जिनेंद्रदेव की देव सुवर्ण कमलोंकर पूजा करै हैं, तिनको क्या मनुष्य आप योग्य सामग्री कर नाहीं पूजै हैं? या भांति नाना प्रकार के देश देशनि के सामंत बड़ी ऋद्धि के धारी रावण को पूजते भए। रावण तिनका मिष्टवचननि करि बहुत सन्मान करता भया। रावण पृथ्वी कों बहुत सुखी देख प्रसन्न भया, जैसैं कोई अपनी स्त्री को नाना प्रकार के रत्नआभूषणकरि मंडित देख सुखी होय। जहां रावण मार्ग के वशतैं जाय निकसै ता देशविषै विना बाहे धान स्वयमेव उत्पन्न भए। पृथ्वी अति शोभायमान भई, प्रजा के लोक परम आनंद को धरते संते अनुरागरूपी जलकरि याकी कीर्तिरूपी बेलि को सींचते भए।

कैसी है कीर्त्ति? निर्मल है स्वरूप जाका। किसान लोग ऐसे कहते भए कि बड़े भाग्य हमारे, जो हमारे देश में रत्नश्रवा का पुत्र रावण आया। हम रंक लोग कृषिकर्म में आसक्त, रूखे अंग, खोटे वस्त्र, हाथ पग करकश, क्लेशतैं हमारे सुख स्वादरहित एता काल गया, अब इसके प्रभावतैं हम संपदादिकरि पूर्ण भए। पुण्य का उदय आया, सर्व दुखनि का दूर करणहारा रावण आया। जिन जिन देशनि मैं यह कल्याण का भर्‌या विचरै ते देश सर्व संपदा कर पूर्ण होय। दशमुख दरिद्रीनि का दरिद्र देख न सकै। जिनको दुःख मेटवे की शक्ति नाहीं तिन भाइनिकरि कहा सिद्धि होय है? यह तो सर्व प्राणियों का बड़ा भाई होता भया। यह रावण अपने गुणनिकरि लोगनि कों आनन्द उपजावता भया। जाके राज में शीत अर उष्ण भी प्रजा को बाधा न कर सकै तो चोर चुगुल बटमार तथा सिंह गजादिकनि की बाधा कहां से होय? जाके राज्यविषै पवन पानी अग्नि की भी प्रजा को बाधा न होय, सर्व बात सुखदाई ही होती भई।

अथानन्तर रावण की दिग्विजयविषै वर्षा ऋतु आई, मानों रावणसो साम्ही आय मिली, मानों इन्द्र ने श्यामघटा रूपी गज की भेंट भेजी। कैसे हैं काले मेघ? महा नीलाचल समान बिजुरीरूप स्वर्ग की सांकल धरै, अर बगुलनि की पंक्ति भई ध्वजा, तिनकरि शोभित है शरीर जिनके, इन्द्रधनुष रूप आभूषण पहरे जब वर्षाॠतु आई तदि दशोंदिशान में अंधकार हो गया। रात्रि दिवस का भेद जान्या न पड़े। सो यह युक्त ही है श्याम होय सो श्यामता ही प्रकट करै, मेघ भी श्याम

अर अंधकार भी श्याम। पृथ्वीविषै मेघ की मोटी धारा अखंड बरसती भई। जो माननी नायकानि के मनविषै मान का भार हुता, सो मेघ के गर्जनकरि क्षणमात्रविषै विलाय गया। अर मेघ की ध्वनिकरि भय को पाइ जे माननी भामिनी ते स्वयमेव ही भरतारसों स्नेह करती भईं। जे शीतल कोमल मेघ की धारा, ते पंथीनि को वाण के भाव कों प्राप्त करती भईं। मर्म की विदारणहारी धारानि के समूहकरि भेदा गया है हृदय जिनका, ऐसे पंथी, ते महाव्याकुल भए हैं। मानो तीक्ष्ण चक्रकरि विदारे गए हैं। नवीन जो वर्षा का जल ताकरि जड़ता कों प्राप्त भए पंथी, क्षणमात्र में चित्राम के-से होय गए। अर जानिए कि क्षीरसागर के भरे जो मेघ सो गायनि के उदर विषै बैठे हैं। तातैं निरन्तर ही दुग्ध की धारा वर्षे है। वर्षा के समय किसान कृषिकर्म को प्रवर्तें हैं। रावण के प्रभावकरि महाधन के धनी होते भए। रावण सब ही प्राणियों को महा उत्साह का कारण होता भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक सो कहै हैं कि हे श्रेणिक! जे पूर्ण पुण्याधिकारी हैं तिनके सौभाग्य का वर्णन कहां तक करिए।

इन्दीवर कमल-सारिखा श्याम रावण स्त्रियों के चित्त को अभिलाषी करता संता मानों साक्षात् वर्षाकाल का स्वरूप ही है, गम्भीर है ध्वनि जाकी, जैसा मेघ गाजै तैसा रावण गाजै। सो रावण की आज्ञातैं सर्व नरेन्द्र आय मिले, हाथ जोड़ नमस्कार करते भए। जो राजानि की कन्या महा मनोहर ते रावण को स्वयमेव वरती भईं। ते रावण को वरकर अत्यन्त क्रीड़ा करती भईं। जैसैं वर्षा पहाड़ को पायकरि अति वरषै।

कैसी है वर्षा? पयोधर जे मेघ तिनके समूहकरि संयुक्त है। अर कैसी है स्त्री? पयोधर जे कुच तिनकरि मंडित है। कैसा है रावण? पृथ्वी के पालने को समर्थ है। वैश्रवण यज्ञ का मानमर्दन करनहारा दिग्विजय को चढ्या। समस्त पृथ्वी को जीतै सो ताहि देखकरि मानो सूर्य लज्जा अर भयकरि व्याकुल होय दबि गया।

भावार्थ – वर्षाकालविषै सूर्य मेघपटलनिकरि आच्छादित होय है। अर रावण के मुखसमान चंद्रमा भी नाहीं, सो मानों लज्जाकरि भी दब गया, क्योंकि वर्षाकाल में चन्द्रमा भी मेघमालाकरि आच्छादित होय है, अर तारे भी नजर नहीं आवे हैं। सो मानो अपना पति जो चन्द्रमा ताहि रावण के मुखकरि जीत्या जानि भाज गए। अर रावण की हथेली, अर पगतली अत्यन्त लाल अर रावण की स्त्रियों की अत्यन्त लाल जानकर लज्जावान होय, कमलों के समूह भी छिप गए, मानों यह वर्षाऋतु स्त्री समान है। बिजुरी तेई कटिमेखला जो इन्द्रधनुष वह वस्त्राभूषण, पयोधर जे मेघ वे ही पयोधर कहिए कुच अर रावण महामनोहर केतकी की वास तथा पद्मनी स्त्रियों के शरीर की सुगंध इत्यादि सर्वसुगंध अपने शरीर की सुगन्धताकरि जीतता भया। जाके सुगन्ध श्वासरूप पवन

के खैंचे भ्रमरनि के समूह गुंजार करते भए। गंगा का तट जो अति मनोहर है तहां डेराकरि वर्षाऋतु पूर्ण करि। कैसा है गंगा का तट? जाके तीर सुन्दर हरिततृण शोभै हैं, नाना प्रकार के पुष्पों की सुगन्धता फैल रही है। बड़े बड़े वृक्ष शोभै हैं। कैसा है रावण? जगत का बन्धु कहिए हितु है। अति सुखसों चातुर्मास्य पूर्ण किया।

हे श्रेणिक! जे पुण्याधिकारी मनुष्य हैं तिनका नाम श्रवण कर सर्वलोक नमस्कार करै हैं, अर सुन्दर स्त्रियों के समूह स्वयमेव आय वरै हैं, अर ऐश्वर्य के निवास परम विभव प्रकट होय हैं। उनके तेजकरि सूर्य भी शीतल होय है। ऐसा जानकरि आज्ञा मान संशय छोड़ पुण्य के प्रबन्ध का यत्न करो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै मरुत के यज्ञ का विध्वंस अर रावण के दिग्विजय का वर्णन करने वाला ग्यारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।11।।

अथानन्तर रावण मंत्रियों से विचार करता भया एकांतविषै। अहो मंत्रियो! यह अपनी कन्या कृतचित्रा कौन को परनावैं। इन्द्र सो संग्रामविषै जीतने का निश्चय नाहीं। तातैं पुत्री का पाणिग्रहण मंगलकार्य प्रथम करना योग्य है। तदि रावण को पुत्री के विवाह की चिंताविषै तत्पर देखि राजा हरिवाहन ने अपना पुत्र निकट बुलाया। सो हरिवाहन के पुत्र को अति सुन्दराकार विनयवान देखिकर पुत्री के परणायवे का मनोरथ किया। रावण अपने मन में चितवता भया कि सर्व नीतिशास्त्रविषै प्रवीण अहो मथुरा नगरी का नाथ राजा हरिवाहन निरंतर हमारे गुणनि की कीर्तिविषै आसक्त है मन जाका, याका प्राणोंहूते प्यारा मधु नामा पुत्र प्रशंसा योग्य है। महाविनयवान् प्रीतिपात्र महारूपवान अति गुणवान मेरे निकट आया।

तदि मंत्री रावणसों कहते भए – 'हे देव! यह मधुकुमार महापराक्रमी याके गुण वर्णन में न आवैं तथापि कछुइक कहैं हैं। याके शरीर विषै अत्यन्त सुगन्धता है, जो सर्वलोकनि के मन को हरै है ऐसा है रूप जाका। याका मधु नाम यथार्थ है। मधु नाम मिष्टान्न का है, सो यह मिष्टवादी है। अर मधुनाम मकरंद का है सो यह मकरंदतैं भी अतिसुगन्ध है। अर याके ऐते ही गुण आप मत जानों, असुरन का इन्द्र जो चमरेंद्र ताने याकों महागुणरूप त्रिशूलरत्न दिया है। सो त्रिशूलरत्न वैरिन पर डार्‌या वृथा न जाय, अत्यन्त दैदीप्यमान है, सो आप याकी करतूत करि, याके गुण जानोहीगे। वचनों करि कहां लग कहैं, तातैं – 'हे देव! यासों संबंध करने की बुद्धि करो। यह आपसे सम्बन्धकरि कृतार्थ होयगा। ऐसा जब मंत्रियों ने कह्या तदि रावण ने याको अपना जमाई निश्चय किया। अर जमाई योग्य जो सामग्री, सो याको दीनी। बड़ी विभूतिसों रावण ने अपनी पुत्री

परणाई। सर्वलोक हर्षित भए। यह रावण की पुत्री साक्षात् पुण्य लक्ष्मी, महासुन्दर शरीर, पति के मन अर नेत्रनि की हरनहारी, जगत् में ऐसा सुगन्ध नाहीं – ऐसे सुगंधशरीर को धारनहारी, ताको पायकर मधु अति प्रसन्न भया।

अथानन्तर राजा श्रेणिक जिनको कौतूहल उपज्या है सो गौतम स्वामी सों पूछते भए – हे नाथ! असुरेन्द्र ने मधु को कौन कारण त्रिशूल रत्न दिया, दुर्लभ है संगम जाका। तदि गौतम स्वामी जिनधर्मीनितैं है वात्सल्य जिनके, त्रिशूल रत्न की प्राप्ति का कारण कहते भए।

हे श्रेणिक! धातकीखंड नामा द्वीप, तहां ऐरावत क्षेत्र, शतद्वारा नगर, तहां दोय मित्र होते भए। महा प्रेम का है बंधन जिनके, एक का नाम सुमिल, दूसरे का नाम प्रभव। सो ये दोनों एक चटशाला में पढ़कर पंडित भए। कईएक दिनों में सुमित्र राजा भया। सर्व सामंतनिकरि सेवित पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के प्रभावतैं परम उदय को प्राप्त भया। अर दूजा मित्र प्रभव सो दलिद्रकुल में उपज्या, महादलिद्री। सो सुमित्र ने महास्नेहतैं अपनी बराबर कर लिया। एक दिन राजा सुमित्र कों दुष्ट घोड़ा हरकर वन में ले गया। तहां दुरिददष्ट्रनाम भीलनि का राजा सो याकों अपने घर ले गया। ताको वनमाला पुत्री परणाई। सो वह वनमाला साक्षात् वनलक्ष्मी, ताको पाय राजा सुमित्र अति प्रसन्न भया। एक मास तहां रह्या। बहुरि भीलों की सेना लेकर स्त्री सहित शतद्वार नगर मैं आवै था, अर प्रभव ढूंढ़ने को निकस्या। सो मार्ग में स्त्री सहित मित्र को देखा।

कैसी है वह स्त्री? मानों काम की पताका ही है। सो देखकरि यह पापी प्रभव मित्र की भार्याविषै मोहित भया, अशुभ कर्म के उदय से नष्ट भई है कृत्य-अकृत्य की बुद्धि जाकी, प्रबल काम के वाणनिकर बींध्या संता, अति आकुलता को प्राप्त भया। आहार निद्रादिक सर्व विस्मरण भया। संसार में जेती व्याधी हैं तिनमें मदन व्याधी है जाकरि परम दुःख पाइए है। जैसे सर्व देवन में सूर्य प्रधान है, तैसे समस्त रोगनि के मध्य मदन प्रधान है। तब सुमित्र प्रभव को खेद-खिन्न देखि पूछते भए – हे मित्र! तू खेदखिन्न क्यों है? तदि यह मित्र को कहने लगा – जो तुम वनमाला परणी ताको देखकरि चित्त व्याकुल भया है। यह बात सुनकरि राजा सुमित्र मित्र में है अति स्नेह जाका, अपने प्राण समान मित्र को अपनी स्त्री के निमित्त दुखी जानि स्त्री को मित्र के घर पठावता भया। अर आप आपा छिपाय मित्र के झरोखे में जाय बैठा। अर देखे कि यह क्या करै, जो मेरी स्त्री याकी आज्ञा प्रमाण न करै, तो मैं स्त्री का निग्रह करूं। अर जो याकी आज्ञा प्रमाण करै, तो सहस्र ग्राम दूं। वनमाला रात्रि के समय प्रभव के समीप जाय बैठी।

तदि प्रभव पूछता भया – हे भद्रे! तू कौन है। तब इसने विवाह पर्यंत सब वृत्तान्त कह्या। सुनकरि प्रभव प्रभारहित होय गया। चित्तविषै अति उदास भया। विचारै है – हाय! हाय! मैं यह

क्या अशुभ भावना करी, मित्र की स्त्री माता समान कौन बांछै है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट भई, या पापतैं मैं कब छूटूं? बनै तो अपना सिर काट डारूं, कलंकयुक्त जीवन करि कहा? ऐसा विचार मस्तक काटने के अर्थ म्यानतैं खड्ग काढ्या, खड्ग की कांति करि दशों दिशाविषै प्रकाश होय गया। तब तलवार को कंठ के समीप ल्याया, अर सुमित्र झरोखे में बैठता हुता, सो कूदकर आय हाथ पकड़ लिया, मरते को बचाय लिया। छातीसों लगाय करि कहने लगा – हे मित्र! आत्मघात का दोष तू न जाने है। जे अपने शरीर का अविधि से निपाता करै हैं, ते शूद्र मरकरि नरकविषै जाय पड़े हैं। अनेक भव अल्प आयु के धारक होय हैं। यह आत्मघात निगोद का कारण है।

या भांति कहकरि मित्र के हाथ सों खड्ग छीन लिया, अर मनोहर वचनकरि बहुत संतोष्या। अर कहने लगा कि हे मित्र! अब आपस में परस्पर परम मित्रता है, सो यह मित्रता परभव में रहै कि न रहै। यह संसार असार है। यह जीव अपने कर्म के उदयकरि भिन्न भिन्न गति को प्राप्त होय है। या संसार में कौन किसका शत्रु है, सदा एक दशा न रहै है। यह कहकरि दूसरे दिन राजा सुमित्र महामुनि भए। पर्याय पूर्ण करि दूजे स्वर्ग में ईशान इन्द्र भये। तहांतैं चयकरि मथुरापुरी में राजा हरिवाहन, जाके राणी माधवी तिनकै मधु नामा पुत्र भए। हरिवंशरूप आकाशविषै चन्द्रमा समान भए। अर प्रभव सम्यक्त्व बिना अनेक योनियों में भ्रमणकरि विश्ववसु की ज्योतिषमती जो स्त्री, ताकै शिखी नाम पुत्र भया। सो द्रव्यलिंगी मुनि होय, महातपकरि निदान के योगतैं असुरों के अधिपति चमरेंद्र भए।

तदि अवधिज्ञान करि अपने पूर्व भव विचार सुमित्र नामा मित्र के गुण अति निर्मल अपने मनविषै धारै, सुमित्र राजा का अतिमनोज्ञ चरित्र चितारकरि असुरेंद्र का हृदय प्रीतिकरि मोहित भया। मनविषै विचाऱ्या कि राजा सुमित्र महागुणवान मेरा परम मित्र हुता, सर्व कार्यों में सहाई था। ता सहित मैं चटशालाविषै विद्या पढ़ा, मैं दरिद्री हुता ताने आप समान विभूतिवान किया। अर मैं पापी दुष्टचित्त ने ताकी स्त्रीविषै खोटे भाव किए तो हू तानैं द्वेष न किया। स्त्री मेरे घर पठाई। मैं मित्र की स्त्री को माता समान जान अति उदास होय, अपना शिर खड्गतैं काटने लाग्या, तदि ताही ने थांभ लिया। अर मैंने जिनशासन की श्रद्धा विन मरकर अनेक दुख भोगे, अर जे मोक्षमार्ग के प्रवरतनहारे साधु पुरुष तिनकी निंदा करी, सो कुयोनिविषै दुःख भोगे, अर वह मित्र मुनिव्रत अंगीकारकरि दूजे स्वर्ग इन्द्र भया। तहांतैं चयकरि मथुरापुरीविषै राजा हरवाहन का पुत्र मधुवाहन भया है। अर मैं विश्ववसु का पुत्र शिखीनाम द्रव्यलिंगी मुनि होय असुरेन्द्र भया।

यह विचार उपकार का खैंच्या, परम प्रेमकरि भीजा है मन जाका, अपने भवन से निकसकरि मध्यलोकविषै आय मधुवाहन मित्रसों मिल्या। महारत्नोंकरि मित्र का पूजन किया। सहस्रांत नामा

त्रिशूल रत्न दिया, मधुवाहन चमरेन्द्र कों देखि बहुत प्रसन्न भया। फिर चमरेन्द्र अपने स्थान कों गया।

हे श्रेणिक! शस्त्र विद्या का अधिपति, सिंहों का है वाहन जाके, ऐसा मधुकुंवर हरिवंश का तिलक, रावण है श्वसुर जाका, सुखसों तिष्ठै है। यह मधु का चरित्र जो पुरुष पढ़ै सुनै सो कांति को प्राप्त होय, अर ताके सर्व अर्थ सिद्ध होय।

अथानन्तर मरुत के यज्ञ का नाश करणहारे जो रावण सो लोकविषै अपना प्रभाव विस्तारता हुवा, शत्रुनि को वश करता संता अठारह वर्ष विहार करि, जैसैं स्वर्ग में इन्द्र हर्ष उपजावै तैसैं उपजावता भया। पृथ्वी का पति कैलाश पर्वत के समीप आय प्राप्त भया। तहां निर्मल है जल जाका, ऐसी मंदाकिनी कहिए गंगा, समुद्र की पटराणी, कमलनि के मकरंदकरि पीत है जल जाका, ऐसी गंगा के तीर कटक के डेरे कराए और आप कैलाश के कुक्षविषै डेरा करि क्रीड़ा करता भया। गंगा का स्फटिक समान जल निर्मल तामैं खेचर, भूचर, जलचर क्रीड़ा करते भए। जे घोड़े रजविषै लोटकरि मलिन शरीर भए हुते, ते गंगा में निहलाय जलपान कराय फिर ठिकाने लाय बांधे। हाथी सपराए। रावण बाली का वृत्तांत चितार चैत्यालयनि कों नमस्कारकरि धर्मरूप चेष्टा करता तिष्ठ्या।

अथानन्तर इन्द्र ने दुलंघिपुर नामा नगरविषै नलकूवर नामा लोकपाल थाप्या हुता। सो रावण को हलकारों के मुखतैं नजीक आया जानि इन्द्र के निकट शीघ्रगामी सेवक भेजे और सर्व वृत्तांत लिख्या। जो रावण जगत को जीतता समुद्र रूप सेना को लिए हमारी जगह जीतने के अर्थि निकट आय पड्या है, या ओर के सर्वलोक कंपायमान भए हैं। सो यह समाचार लेकर नलकूवर के इतवारी मनुष्य इन्द्र निकट आये। इन्द्र भगवान के चैत्यालयनि की वंदना को जाते हुते, सो मार्गविषै इन्द्र को पत्र दिया। इन्द्र ने बांचकर सर्व रहस्य जानकरि पाछा जवाब लिख्या। जो मैं पांडुवन के चैत्यालयनि की वंदनाकरि आऊं हूं। इतने तुम बहुत यत्न सों रहना, अमोघशस्त्र कहिए खाली न पड़ै – ऐसा जो शस्त्र ताके धारक हो, अर मैं भी शीघ्र ही आऊं हूँ।

ऐसी लिखकर वंदनाविषै आसक्त है मन जाका, बैरी की सेना को न गिनता संता पांडुकवन गया। अर नलकूवर लोकपाल ने अपने निज वर्गसों मंत्रकरि नगर की रक्षा में तत्पर विद्यामय सौ यौजन ऊंचा, बज्रशाल नामा कोट बनाया, प्रदक्षिणाकरि तिगुणा। रावण ने नलकूवर का नगर जानने के अर्थि प्रहस्त नामा सेनापति भेज्या। सो जायकरि पाछा आय रावणसों कहता भया – हे देव! मायामई कोटिकरि मंडित वह नगर है सो लिया न जाय। देखो प्रत्यक्ष दीखै है। सर्व दिशाओं में भयानक विकराल दाढ को धरे सर्प समान शिखर जाके, अर बलता जो सघन बांसन का वन ता समान देखी न जाय ऐसी ज्वाला के समूहकरि संयुक्त उठै हैं स्फुलिंगों की राशि जामें,

अर याके यंत्र वैताल का रूप धरैं विकराल है दाढ़ जिनकी, एक योजन के मध्य जो मनुष्य आवै ताको निगलै हैं, तिन यंत्रनिविषै प्राप्त भए जे प्राणियों के समूह तिनका यह शरीर न रहै, जन्मांतर और शरीर धरै। ऐसा जानकर आप दीर्घदर्शी हो, सो या नगर के लेने का उपाय विचारो। तदि रावण मंत्रियों से उपाय पूछने लाग्या। सो मंत्री मायामई कोट के दूर करवे का उपाय चिंतवते भए। कैसे हैं मंत्री? नीति शास्त्रविषै अति प्रवीण हैं।

अथानन्तर नलकूवर स्त्री उपरंभा इन्द्र की अप्सरा जो रंभा ता समान है गुण, अर रूप जाका, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध, सो रावण को निकट आया सुन अति अभिलाषा करती भई। आगैं रावण के रूप गुण श्रवणकर अनुरागवती थी ही, रात्रिविषै अपनी सखी विचित्रमाला कों एकांत में ऐसैं कहती भई – हे सुन्दरी! मेरे तू प्राण समान सखी है, तो समान और नाहीं। अपना अर जाका, एक मन होय ताकों सखी कहिए। मेरे में अर तेरे में भेद नाहीं। तातैं हे चतुरे! निश्चयतैं मेरे कार्य का साधन तू करै तो तुझे अपनी चित्त की बात कहूं। जे सखी हैं ते निश्चयसेती जीतव्य का अवलंबन होय है। जब ऐसे रानी उपरंभा ने कह्या तदि सखी विचित्रमाया कहती भई – हे देवी! एती बात कहा कहो हो? हम तो तिहारे आज्ञाकारी जो मनवांछित कार्य कहो सो ही करैं। मैं अपने मुखसों अपनी स्तुति कहा करूं, अपनी स्तुति करना लोकविषै निंद्य है, बहुत क्या कहूं। मोहि तुम मूर्तिवती साक्षात् कार्य की सिद्धि जानो। मेरा विश्वासकरि तिहारे मनविषै जो होय सो कहो।

हे स्वामिनी! हमारे होते तोहि खेद कहा? तब उपरंभा निश्वास लेकर कपोलविषै कर धर मुख में तैं न निकसते जो वचन ते बारम्बार प्रेरणाकरि बाहिर निकासती भईं। हे सखी! बालपने ही सों लेकर मेरा मन रावणविषै अनुरागी है। मैं लोकविषै प्रसिद्ध महासुन्दर ताके गुण अनेक बार सुने हैं। सो मैं अंतराय के उदयकरि अब तक रावण के संगम को प्राप्त न भई। चित्तविषै परम प्रीति धरूं हूं। अर अप्राप्ति का मेरे निरंतर पछतावा रहै हैं। हे रूपिणी! मैं जानूं हूं यह कार्य प्रशंसा योग्य नाहीं। नारी दूजे नर के संयोगकरि नरकविषै पड़े है। तथापि मैं मरण कों सहिबे समर्थ नाहीं, तातैं हे मिष्टभाषिणी! मेरा उपाय शीघ्र कर। अब वह मेरे मन का हरणहारा निकट आया है। काहू भांति प्रसन्न होय मेरा तासों संयोग कर दे। मैं तेरे पायन पड़ूं हूं।

ऐसा कहकरि वह भामिनी पाय पड़ने लागी, तदि सखी ने सिर थांभ लिया, अर यह कही कि हे स्वामिनी! तिहारा कार्य क्षणमात्रविषै सिद्धि करूं। यह कहिकर दूती घरसैं निकसी। जानै है इन सकल बातन की रीति। अति सूक्ष्म श्याम वस्त्र पहनकर आकाश के मार्ग रावण के डेरेविषै आई। राजलोक में गई। द्वारपालतैं अपने आगमन का वृत्तांत कहकर रावण के निकट जाय प्रणाम किया। आज्ञा पाय बैठकर विनती करती भई – हे देव! दोष के प्रसंगतैं रहित तिहारे सकल

गुणनिकरि यह सकल लोक व्याप्त हो रह्या है, तुमको यही योग्य है। अति उदार है विभव तिहारा, या पृथ्वीविषै सब ही को तृप्त करो हो, तुम सबके आनन्द निमित्त प्रकट भए हो। तिहारा आकार देखकर यह मनविषै जानिए है कि तुम काहू की प्रार्थना भंग न करो, तुम बड़े दातार, सबके अर्थ पूर्ण करो हो, तुम सारिखे महंत पुरुषनि की जो विभूति है सो परोपकार ही के अर्थि है। सो आप सबनि को सीख देयकरि एक क्षण एकांत विराजकर चित्त लगाय मेरी बात सुनो तो मैं कहूं। तदि रावण ने ऐसा ही किया। तदि याने उपरंभा का सकल वृत्तांत कानविषै कह्या।

तदि रावण दोनों हाथ कानन पर धरि, सिर धुनि, नेत्र संकोच, केकसी माता के पुत्र पुरुषनिविषै उत्तम, सदा आचार परायण कहते भए – हे भद्रे! कहा कही? यह काम पाप के बंध का कारण कैसें करने में आवै? मैं परनारियों को अंगदान करनेविषै दरिद्री हूं। ऐसे कर्मों को धिक्कार होउ। तैंने अभिमान तजकर यह बात कही, परन्तु जिनशासन की यह आज्ञा है कि विधवा अथवा धनी की राणी अथवा कुंवारी तथा वैश्या सर्व ही परनारी सदाकाल सर्वथा तजनी। परनारी रूपवती है तो कहा? यह कार्य लोक अर परलोक का विरोधी विवेकी न करै। जो दोनों लोक भ्रष्ट करै सो काहे का मनुष्य?

हे भद्रे! परपुरुषकरि जाका अंग मर्दित भया ऐसी जो परदारा, सो उच्छिष्ट भोजन समान है, ताहि कौन नर अंगीकार करै? यह बात सुन विभीषण महामंत्री सकल नय के जाननहारे, राजविद्याविषै श्रेष्ठ है बुद्धि जिनकी, रावण को एकांतविषै कहते भए – हे देव! राजानि के अनेक चरित्र हैं। काहू समय काहू प्रयोजन अर्थ किंचित् मात्र अलीक भी प्रतिपादन करै हैं। तातैं आप यासूं अत्यन्त रूखी बात मत कहो। वह उपरंभा वशभई संती कछु गढ़ के लेने का उपाय कहेगी। ऐसे वचन विभीषण के सुनकर रावण राजविद्या में निपुण मायाचारी विचित्रमाला सखीसों कहते भए – हे भद्रे! वह मेरे में मन राखे है, अर मेरे बिना अत्यन्त दुखी है, तातैं वाके प्राणनि की रक्षा मोकूं करनी योग्य है। सो प्राणों से छूटै या प्रकार पहले उसको ले आवो। जीवों के प्राणों की रक्षा यही धर्म है। ऐसा कहकर सखी को सीख दीनी, सो जायकर उपरंभा को तत्काल ले आई। रावण ने याका बहुत सन्मान किया। तदि वह मदन सेवन की प्रार्थना करती भई।

रावण ने कही – हे देवी! दुर्लंघ नगर विषै मेरी रमणे की इच्छा है। यहां उद्यानविषै कहां सुख? ऐसा करो जो नगरविषै तुम सहित रमूं। तदि वह कामातुर ताकी कुटिलता को न जानकरि, स्त्रियों का मूढ़ स्वभाव होय है, ताने नगर के मायामई कोटभंजन का उपाय आसालका नाम विद्या दीनी, अर बहुत आदरतैं नाना प्रकार के दिव्य शस्त्र दिये। देवनिकरि करिए है रक्षा जिनकी, तदि विद्या के लाभतैं तत्काल मायामई कोट जाता रह्या। सो सदा का कोट था सोई रह गया। तदि

रावण बड़ी सेनाकर नगर के निकट गया। अर नगर के कोलाहल शब्द सुनकर राजा नलकूवर क्षोभ को प्राप्त भया। मायामई कोट को न देखकरि विषादमन भया, अर जानी कि रावण ने नगर लिया, तथापि महा पुरुषार्थ को धरता संता युद्ध करवे को बाहिर निकस्या। अनेक सामंतनि सहित परस्पर शस्त्रन के समूहकरि महासंग्राम प्रवरत्या। जहां सूर्य की किरण भी नजर न आवें, क्रूर है शब्द जहां। विभीषण ने शीघ्र ही लात की दे नलकूवर का रथ तोड़ डारया, अर नलकूवर को पकड़ लिया। जैसैं रावण ने सहस्रकिरण को पकड़ा हुता तैसैं विभीषण ने नलकूवर को पकड्या। रावण की आयुधशालाविषै सुदर्शन चक्ररत्न उपज्या।

उपरंभा को रावण ने एकांतविषै कही – जो तुम विद्यादानसों मेरी गुरु हो, अर तुमको यह योग्य नाहीं जो अपने पति को छोड़ दूजा पुरुष सेवो। अर मुझे भी अन्याय मार्ग सेवना योग्य नाहीं? या भांति याको दिलासा करी अर नलकूवर कों याके अर्थि छोड्या। कैसा है नलकूवर? शस्त्रनिकरि विदारया गया है बखतर जाका, नहीं लगा है शरीर के घाव जाकै। रावण ने उपरंभा से कही या भरतार सहित मनवांछित भोगकर। कामसेवनविषै पुरुषों में कहा भेद है। अर अयोगकार्य करनेतैं मेरी अकीर्ति होय, अर मैं ऐसे करूं तो और लोग भी या मार्ग विषै प्रवर्तैं। पृथ्वीविषै अन्याय की प्रवृत्ति होय। अर तू राजा आकाशध्वज की बेटी, तेरी माता मृदुकांता, सो तू विमल कुलविषै उपजी शील को राखने योग्य है। या भांति रावण ने कही तदि उपरंभा लज्जायमान भई, अपने भरतारविषै संतोष किया, अर नलकूवर भी स्त्री का व्यभिचार न जान स्त्रीसहित रमता भया, अर रावण सों बहुत सन्मान पाया।

रावण की यही रीति है कि जो आज्ञा न मानै ताका पराभव करै, अर जो आज्ञा मानै ताका सन्मान करै। अर युद्ध विषै मारया जाय सो मारया जावो, अर पकड्या आवै ताकों छोड़ दे। रावण ने संग्रामविषै शत्रुनि को जीतनेतैं बड़ा यश पाया, बड़ी है लक्ष्मी जाके महासेनाकरि संयुक्त वैताड़ पर्वत के समीप जाय पड्या।

तब राजा इन्द्र रावण कौं समीप आया सुनकर अपने उमराव जे विद्याधर देव कहावैं तिन समस्त ही सों कहता भया – हो विश्वसी आदि देव हो! युद्ध की तैयारी करो। कहां विश्राम कर रहे हो? राक्षसनि का अधिपति आया।

यह कह करि इन्द्र अपने पिता जो सहस्रार तिनके समीप सलाह करवे को गया। नमस्कारकरि बहुत विनयसंयुक्त पृथ्वी पर बैठ बापसों पूछी – हे देव! बैरी प्रबल अनेक शत्रुनि को जीतनहारा निकट आया है सो क्या कर्त्तव्य है? हे तात! मैंने काम बहुत विरुद्ध किया जो यह वैरी होता ही प्रलय को न प्राप्त किया, कांटा उगता ही होठनतैं टूटे, अर कठोर परे पीछैं चुभै, रोग होता ही

मिटै तो सुख उपजै अर रोग की जड़ बंधै तो कटना कठिन है, तैसैं क्षत्री शत्रु की वृद्धि होने न दे, मैं याके निपात का अनेक बेर उद्यम किया परन्तु आपने वृथा मने किया, तब मैं क्षमा करी। हे प्रभो! मैं राजनीति के मार्गकरि विनती करूं हूं। याके मारवे मैं असमर्थ नाहीं हूं।

ऐसे गर्व अर क्रोध के भरे पुत्र के वचन सुनकर सहस्रार ने कही – हे पुत्र! तू शीघ्रता मत करि, अपने श्रेष्ठ मंत्री है तिनसों मंत्र विचारि। जे बिना विचारे कार्य करे हैं, तिनके कार्य विफल होय हैं। अर्थ की सिद्धि का निमित्त केवल पुरुषार्थ नाहीं है। जैसैं कृषिकर्म का प्रयोजन जाकै, ऐसा जो किसान ताकूं मेघ की वृष्टि बिना कहा कार्य होय? अर जैसैं चटशालाविषै शिष्य पढ़ैं हैं, सर्व ही विद्या को चाहै हैं परन्तु कर्म के बशतैं काहू कों विद्यासिद्धि होय है, काहू को सिद्धि न होय। तातैं केवल पुरुषार्थ सों ही सिद्धि न होय। अब भी रावणसों मिलापकरि। जब वह अपना भया, तब तू पृथ्वी का नि:कंटक राज्य करैगा। अर अपनी पुत्री रूपवती नामा महारूपवती रावण कों परणाय दे। यामैं दोष नाहीं। यह राजानि की रीति ही है।

पवित्र है बुद्धि जिनकी ऐसे पिता ने इन्द्र को न्यायरूप वार्त्ता कही, परंतु इन्द्र के मन में न आई। क्षणमात्र में रोसकरि लाल नेत्र होए गए, क्रोधकरि पसेव आय गये। महाक्रोधरूप वाणी कहता भया – हे तात! मारने योग्य वह शत्रु ताहि कन्या कैसे दीजिये। ज्यों ज्यों उमर अधिक होय, त्यों त्यों बुद्धि क्षय होय है। तातैं तुम यह बात योग्य न कही। कहो, मैं कौनसों घाट हूं, मेरे कौन वस्तु की कमी है, जातैं तुम ऐसे कायर वचन कहे। जा सुमेरु के पायनि चांद सूर्य लागि रहे सो उतंग सुमेरु कैसे औरनिकूं नवै। जो वह रावण पुरुषार्थ करि अधिक है, तो मैं भी तातैं अत्यंत अधिक हूं। अर देव उसके अनुकूल है तो यह बात निश्चय तुम कैसैं जानी? अर जो कहोगे, तानैं बहुत वैरी जीते हैं। तो अनेक मृगनि को हतनहारा जो सिंह ताहि कहा अष्टापद न हनै?

हे पिता! शस्त्रन के संपातकरि उपज्या है अग्नि का समूह जहां ऐसे संग्रामविषै प्राण त्यागना भला है। परन्तु काहूसों नम्रीभूत होना बड़े पुरुषनि कों योग्य नाहीं। पृथ्वी पर मेरी हास्य होय कि यह इन्द्र रावणसों नम्रीभूत हुवा। पुत्री देकरि मिल्या, सो तुमने यह तो विचारा ही नाहीं। अर विद्याधरपनेकरि हम अर वह बराबर है, परंतु बुद्धि पराक्रम में वह मेरी बराबर नाहीं। जैसैं सिंह अर स्याल दोऊ वन के निवासी हैं परन्तु पराक्रम में सिंह तुल्य स्याल नाहीं। ऐसे पितासों गर्व के वचन कहे। पिता की बात मानी नाहीं। पितातैं विदा होयकरि आयुधशाला में गए। क्षत्रीनि कों हथियार बांटे अर वक्तर बांटे अर सिंधुराग होने लगे, अनेक प्रकार के वादित्र बजने लगे। अर सेना में यह शब्द भया कि हाथियों को सजावो, घोड़ों के पलान कसो, रथों के घोड़े जोड़ो, खड्ग बांधो, वक्तर पहरो, धनुष बाण लो, सिर पर टोप धरो, शीघ्र ही खंजर लावो इत्यादि शब्द देव जाति के विद्याधरों के होते भए।

अथानन्तर योधा कोप कों प्राप्त भए, ढोल बाजने लगे, हाथी गाजने लगे, घोड़े हींसने लगे और धनुष के टंकार होने लगे, योधाओं के गुंजार शब्द होने लगे और बंदीजन विरद बखानने लगे। जगत शब्दमई होय गया, सर्व दिशा तरवार तथा तोमर जाति के शस्त्र तथा पांसिन करि, ध्वजानिकरि, शस्त्रनिकरि और धनुषनिकरि आच्छादित भई। और सूर्य भी आच्छादित होय गया। राजा इन्द्र की सेना के जे विद्याधर देव कहावै ते समस्त रथनूपुरतैं निकसे। सर्व सामग्री धरे युद्ध के अनुरागी दरवाजे आय भेले भए।

परस्पर कहै हैं रथ आगैं करि, माता हाथी आया है। हे महावत! हाथी इस स्थानतैं परैं करि। हे घोड़े के सवार! कहां खड़ा हो रह्या है, घोड़े को आगैं ले, या भांति के वचनालाप होते संते शीघ्र ही देव बाहिर निकसे गाजते आए। सेनाविषै शामिल भए, और राक्षसनि के सन्मुख आए। रावण के अर इन्द्र के युद्ध होने लगा। देवों ने राक्षसों की सेना कछू हटाई। शस्त्रनि के जे समूह तिनके प्रकारकरि आकाश आच्छादित होय गया। तदि रावण के योधा वज्रवेग, हस्त, प्रहस्त, मारीच, उद्भव, वज्र, वक्र, शुक्र, घोन, सारन, गंगनोज्ज्वल, महाजठर, मध्याभ्रकर इत्यादि अनेक विद्याधर बड़े योधा राक्षसवंशी नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़े अनेक आयुधों के धारक देवों से लड़ने लगे। तिनके प्रभावकरि क्षणमात्र में देवनि की सेना हटी।

तब इन्द्र के बड़े योधा कोपकरि भरे, युद्ध कों सन्मुख भए, तिनके नाम मेघमाली, तडसंग, ज्वलिताक्ष, अरि संचर, पाचकसिंदन इत्यादि बड़े बड़े देवों ने शस्त्रों के समूह चलावते संते राक्षसनि को दबाया, सो कछुएक शिथिल होय गए। तब और बड़े बड़े राक्षस इनको धीर्य बंधावते भये। महासामंत राक्षसवंशी विद्याधर प्राण तजते भये। परन्तु शस्त्र न डारते भए। राजा महेंद्रसेन वानरवंशी राक्षसनि के बड़े मित्र तिनका पुत्र प्रसन्नकीर्ति तानैं बाणों के प्रहारकरि देवन की सेना हटाई, राक्षसनि के बलकूं बड़ा धीर्य बंधाया, तब प्रसन्नकीर्ति के बाणनि के प्रभावकरि देव हटे। तदि अनेक देव प्रसन्नकीर्ति पर आये, सो प्रसन्नकीर्ति ने अपने बाणनिकरि विदारे।

जैसे खोटे तपस्वियों का मन मन्मथ (काम) विदारै। तब और बड़े बड़े देव आए, कपि राक्षस अर देवों के खड्ग कनक गदा शक्ति धनुष मुद्गर इनकरि अति युद्ध भया। तब माल्यवान का बेटा श्रीमाली रावण का काका, महाप्रसिद्ध पुरुष अपनी सेना की मदद के अर्थि देवनि पर आया। सूर्य समान है कांति जाकी, सो ताके बाणनि की वर्षातैं देवों की सेना हट गई। जैसैं महाग्राह समुद्र को झकोले तैसैं देवन की सेना श्रीमाली ने झकोली। तब इन्द्र के योधा अपने बल की रक्षानिमित्त महाक्रोध के भरे अनेक आयुधों के धारक शिखि केशर दंडाग्र कनक प्रवर इत्यादि इन्द्र के भानजे बाण वर्षाकरि आकाश कों आच्छादते संते श्रीमाली पर आए। सो श्रीमाली ने अर्धचन्द्र बाणतैं

उनके शिररूप कमलोंकरि पृथ्वी आच्छादित करी।

तब इन्द्र ने विचास्या कि यह श्रीमाली मनुष्योंविषै महायोधा, राक्षसवंशियों का अधिपति माल्यवान का पुत्र है। यानै मेरे बड़े बड़े देव मारे हैं। अर ये मेरे भानजे मारे या राक्षस के सन्मुख मेरे देवों में कौन आवै? यह अतिवीर्यवान महातेजस्वी देख्या न जाय। तातैं मैं युद्धकरि याहि मारूं। नातर यह मेरे अनेक देवनि को हतैगा। ऐसा विचारि अपने जे देवजाति के विद्याधर श्रीमालीतैं कम्पायमान भये हुते तिनको धीर्य बंधाय, आप युद्ध करवे को उद्यमी भया।

तब इन्द्र का पुत्र जयंत बाप के पायनपरि विनती करता भया – हे देवेंद्र! मेरे होते संते आप युद्ध करो, तदि हमारे जन्म निरर्थक है। हमको आपने बाल अवस्थाविषै अति लड़ाए, अब तिहारे ढिग शत्रुनि को युद्धकरि हटाऊं। यह पुत्र का धर्म है। आप निराकुल विराजिये जो अंकुर नखतैं छेद्या जाय तापर फरसी उठावना कहा? ऐसा कहकरि पिता की आज्ञा लेय मानों अपने शरीरकरि आकाश कों ग्रसैगा – ऐसा क्रोधायमान होय युद्ध के अर्थि श्रीमाली पर आया। श्रीमाली याकों युद्ध योग्य जानै खुशी भया – याके सन्मुख गए। ये दोनों ही कुमार परस्पर युद्ध करने लगे। धनुष खैंच बाण चलावते भये। इन दोनों कुमारनि का बड़ा युद्ध भया। दोनों ही सेना के लोक इनका युद्ध देखते भए। सो इनका युद्ध देखि आश्चर्य को प्राप्त भये।

श्रीमाली ने कनकनामा हथियारकरि जयन्त का रथ तोड्या। अर ताको घायल किया, सो मूर्छा खाय पड्या। फिर सचेत होय लड़ने लग्या। श्रीमाली के भिंडमाल की दीनी, रथ तोड्या, अर मूर्छित किया, तदि देवनि की सेनाविषै अति हर्ष भया – अर राक्षसनि कों सोच भया। फिर श्रीमाली सचेत भया – तदि जयंत के सन्मुख भया, दोनों में महायुद्ध भया। दोनों सुभट राजकुमार युद्ध करते शोभते भए। मानों सिंह के बालक ही हैं। बड़ी देर में इन्द्र के पुत्र जयंत ने माल्यवान का पुत्र जो श्रीमाली ताकै गदा की छाती विषै दीनी सो पृथ्वी पर पड्या, बदन कर रुधिर पड़ने लग्या। तत्काल सूर्य अस्त हो जाय तैसें प्राणांत होय गया।

श्रीमाली कों मार करि इन्द्र का पुत्र जयंत शंखनाद करता भया। तदि राक्षसनि की सेना भयभीत भई अर पाछी हटी। माल्यवान के पुत्र श्रीमाली को प्राणरहित देख, अर जयंत को उद्यत देखि रावण के पुत्र इन्द्रजीत अपनी सेना को धीर्य बंधाया अर कोपकरि जयंत के सन्मुख आया। सो इन्द्रजीत ने जयंत का बखतर तोड़ डाल्या, अर अपने बाणनि करि जयंत को जर्जरा किया। तदि इन्द्र जयंत को घायल देखि छेद्या गया है बखतर जाका, रुधिरकरि लाल होय गया है शरीर जाका, ऐसा देखकरि आप युद्ध को उद्यमी भया। आकाश को अपने आयुधनिकरि आच्छादित करता संता अपने पुत्र की मदद के अर्थि रावण के पुत्र पर आया।

तब रावण कों सुमति नामा सारथी ने कहा – हे देव! ऐरावत हाथी पर चढ्या लोकपालनिकरि मंडित, हाथविषै धरै मुकुट के रत्ननि की प्रभाकरि उद्योत करता संता, उज्ज्वल छत्रकरि सूर्य को आच्छादित करता संता, क्षोभ को प्राप्त भया ऐसा जो समुद्र ता–समान सेनाकरि संयुक्त जो यह इन्द्र महाबलवान है। इन्द्रजीत कुमार यासूं युद्ध करने समर्थ नाहीं। तातैं आप उद्यमी होयकरि अहंकारयुक्त जो यह शत्रु ताहि निराकरण करो। तब रावण इंद्र को सन्मुख आया देखि आगैं माली का मरण यादकरि अर हाल श्रीमाली का बधकरि महाक्रोधरूप भया। अर शत्रुनिकरि अपने पुत्र को बेढ्या देख आप दौड्या। पवन समान है वेग जाका, ऐसे रथविषै चढ्या। दोनों सेना के योधानिविषै परस्पर विषम युद्ध होता भया, सुभटनि के रोमांच होय आए। परस्पर शस्त्रनि के निपात करि अंधकार होय गया, रुधिर की नदी बहने लगी, योधा परस्पर पिछाने न परैं केवल ऊंचे शब्दकरि पिछाने परैं, अपने अपने स्वामी के प्रेरे योधा अति युद्ध करते भये। गदा शक्ति बरछी मूसल खड्ग वाण, परिघजाति के शस्त्र कहिये सामान्यचक्र, बरछी तथा त्रिशूल पाश मुखंडी जाति के शस्त्र, कुहाडा मुद्गर वज्र पाषाण हलदंड कोणजाति के शस्त्र अर नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि परस्पर अति युद्ध भया। परस्पर उनके शस्त्र उनने काटे, उनके उन्होंने काटे। अति विकराल युद्ध होते परस्पर शस्त्रनि के घातकरि अग्नि प्रज्वलित भई। रणविषै नाना प्रकार के शब्द होय रहे हैं, कहीं मार लो मार लो ये शब्द होय हैं। कहीं एक रण रण किण किण, त्रम त्रम, दम दम, छमछम, पटपट, छसछस, दृढ़दृढ़ तथा तटतट, चटचट, घघघघ इत्यादि शत्रुनिकरि उपजे अनेक प्रकार के शब्दनिकर रणमंडल शब्दरूप होय गया।

हाथीनिकरि हाथी मारे गये, घोड़निकर घोड़े मारे गये, रथोंकर रथ तोड़े गये, पियादनिकर पियादे हते भये। हाथियों की सूंडकर उछले जे जल के छींटे तिनकरि शस्त्र संपातकर उपजी थी जो अगिन सो शांत भई। परस्पर गज युद्धकर हाथीन के दांत टूट पड्या, गज मोती बिखर गये। योधानि में परस्पर यह आलाप भए – हे शूरवीर! अस्त्र चलाय, कहा कायर होय रह्या है? हे भटसिंह! हमारे खड्ग का प्रहार संभार, हमारेतैं युद्धकरि। यह मूवा तू अब कहां जाय है। अर कोई कोईसूं कहै है – तू यह युद्धकला कहां सीख्या, तरवार का भी सम्हारना न जानै है। अर कोई कहै है तू इस रणतैं जा, अपनी रक्षाकर, तू कहा युद्ध करना जानैं? तेरा शस्त्र मेरे लाग्या सो मेरी खाज भी न मिटी, तैं वृथा ही धनी की आजीविका अब तक खाई, अब तक तैं युद्ध कहीं देख्या नाहीं। कोई ऐसैं कहै हैं – तू कहा कांपै है, तू थिरता भज, मुष्टि दृढ़ राख, तेरे हाथतैं खड्ग गिरैगा। इत्यादि योधानि मैं परस्पर आलाप होते भये।

कैसे हैं योद्धा? महा उत्साहरूप हैं, जिनको मरने का भय नाहीं। अपने अपने स्वामीनि के

आगैं सुभट भले दिखाये। किसी की एक भुजा शत्रु की गदा के प्रहारकरि टूट गई है, तो भी एक ही हाथतैं युद्ध करता रह्या। काहू का सिर टूट पड्या, तो धड़ ही लडै है। योधानि के बाणनिकरि वक्षस्थल विदारे गये, परन्तु मन न चिगे। सामंतनि के सिर पड़े, परन्तु मान न छोड्या। शूरवीरनि के युद्ध में मरण प्रिय है, टरकर जीवना प्रिय नाहीं। ते चतुर महा धीर-वीर महापराक्रमी महासुभट यश की रक्षा करते संते शस्त्रनि के धारक प्राण त्याग करते भये, परन्तु कायर होयकरि अपयश न लिया। कोई एक सुभट मरता थका भी बैरी के मारवे की अभिलाषा करि क्रोध का भर्या, वैरी के ऊपर जाय पड्या, ताकों मार आप मर्या। काहू के हाथनितैं शस्त्र शत्रु के शस्त्र घातकरि निपात भए?

तदि वह सामंत मुष्टिरूप जो मुद्गर ताके घातकरि शत्रु कों प्राणरहित करता भया। कोई एक महासुभट शत्रुनि कों भुजानितैं मित्रवत् आलिंगनकरि मसल डारता भया। कोई एक सामंत परचक्र के योधानि की पंक्ति को हणता संता अपने पक्ष के योधानि का मार्ग शुद्ध करता भया। कोई एक जोधा रणभूमिविषै परते संते भी वैरीनि को पीठ न दिखावते भए, सूधे पड़े। रावण अर इन्द्र के युद्ध में हाथी घोड़े रथ योधा हजारों पड़े। पहिले जो रज उठी हुती सो मदोन्मत हाथियों के मद झरनेकरि तथा सामंतनि के रुधिर का प्रवाहकरि दब गई। सामंतों के आभूषणनिकरि रत्नों की ज्योतिकरि आकाशविषै इन्द्रधनुष होय गया।

कोई एक योधा बायें हाथकरि अपनी आंतां थांभकरि महाभयंकर खड्गकाढ़ि वैरी ऊपर गया। कोई एक योधा अपनी आंत ही करि गाढ़ी कमर बांधे होठ डसता शत्रु ऊपर गया। कोई एक आयुधरहित होय गया तो भी रुधिर का रंग्या रोषविषै तत्पर वैरी के माथे पर हस्त का प्रहार करता भया। कोई एक रणधीर महा शूरवीर युद्ध का अभिलाषी पाशकरि बैरी को बांधकरि छोड़ देता भया, रणकर उपज्या है हर्ष जाकै ऐसा। कईएक न्यायसंग्रामविषै तत्पर बैरी को आयुध रहित देखकरि आप भी आयुध डारि खड़े होय रहे, कई एक अन्त समय संन्यास धार नमोकार मंत्र का उच्चारणकरि स्वर्ग प्राप्त भये। कई एक योधा आशीविष सर्पसमान भयंकर पड़ता पड़ता भी प्रतिपक्षी को मारकरि मर्या।

कई एक अर्धसिर छेद्या गया ताहि बायें हाथविषै दाबि महापराक्रमी दौड़कर शत्रु का सिर फाड्या। कई एक सुभट पृथ्वी की आगल समान जो अपनी भुजा तिन ही करि युद्ध करते भए। कई एक परम क्षत्रिय धर्मज्ञ शत्रु को मूर्छित भया देखि आप पवन झोल सचेत करते भए। या भांति कायरनि को भय का उपजावनहारा अर योधानि को आनंद का उपजावनहारा महा संग्राम प्रवर्त्या। अनेक गज, अनेक तुरंग, अनेक योधा शस्त्रनिकरि हते गए। अनेक रथ चूर्ण होय गए, अनेक

हाथियों की सूंड कट गई, घोड़ानि के पांव टूट गए, पूंछ कट गई, पियादे काम आय गए। रुधिर के प्रवाहकरि सर्व दिशा आरक्त होय गई। एता रण भया सो रावण किंचित्मात्र भी न गिन्या।

रणविषै है कौतूहल जाके ऐसे सुभटभाव का धारक रावण सुमति नामा सारथी को कहता भया– हे सारथी! इस इन्द्र के सन्मुख रथ चलाय, अर सामान्य मनुष्यों के मारवेकरि कहा? ये तृण समान सामान्य मनुष्य तिन पर मेरा शास्त्र न चालै। मेरा मन महायोधावों के ग्रहणविषै तत्पर है, यह क्षुद्र मनुष्य अभिमानतैं इन्द्र कहावै है। याहि आज मारूं अथवा पकड़ूं। यह विडंबना का करणहारा पाखंड करि रह्या है, सो तत्काल दूर करूं। देखो याकी ढीठता, आपको इन्द्र कहावै है अर कल्पनाकर लोकपाल थापे हैं, अर इन मनुष्यों ने विद्याधरों की देव संज्ञा धरी है। देखो अल्प–सी विभूति पाय मूढ़मती भया है, लोकहास्य का भय नाहीं। जैसैं नट सांग धर्‍या है, दुर्बुद्धि आपको भूल गया। पिता के वीर्य माता के रुधिर करि मांस हाडमई शरीर माता के उदरतैं उपज्या तोहू वृथा आपको देवेंद्र मानै है। विद्या के बलकरि याने यह कल्पना करी है।

जैसैं काग आपको गरुड़ कहावै तैसैं यह इन्द्र कहावै है। या भांति जब रावण ने कह्या तब सुमति सारथी ने रावण का रथ इन्द्र के सन्मुख किया। रावण को देख इन्द्र के सब सुभट भागे। रावणसों युद्ध करने को कोई समर्थ नाहीं। रावण सर्व को दयालु दृष्टिकर कीट समान देखै, रावण के सन्मुख ए इन्द्र ही टिका अर सर्व कृत्रिमदेव याका छत्र देख भाज गए। जैसैं चंद्रमा के उदयतैं अंधकार जाता रहै।

कैसा है रावण? बैरियोंकर झेल्या न जाय। जैसैं जल का प्रवाह ढाहेनिकरि थांभ्या न जाय अर जैसैं क्रोधसहित चित्त का वेग मिथ्यादृष्टि तापसीनिकर थांभ्या न जाय तैसैं सामंतोंकरि रावण थांभ्या न जाय। इन्द्र भी कैलाश पर्वतसमान हाथी पर चढ्या, धनुषनि को धरे तरकशतैं तीर काढ़ता रावण के सन्मुख आया। कान तक धनुष को खींच रावण पर बाण चलाया। जैसैं पहाड़ पर मेघ मोटी धारा वर्षावैं तैसैं रावण पर इन्द्र ने बाणनि की वर्षा करी। रावण ने इन्द्र के बाण आवते आवते काट डारे अर अपने बाणनिकरि शरमंडप किया। सूर्य की किरण बाणनि की दृष्टिकरि न आवैं, ऐसा युद्ध देख नारद आकाशविषै नृत्य करता भया। कलह देख उपजै है हर्ष जाको।

जब इंद्र ने जान्या कि यह रावण सामान्य शस्त्रकर असाध्य है, तदि इन्द्र ने अग्निबाण रावण पर चलाया। ताकरि रावण की सेनाविषैं आकुलता उपजी। जैसैं बांसनि का वन प्रजलै, अर ताकी तडतडात ध्वनि होय, अग्नि की ज्वाला उठै, तैसैं अग्निबाण प्रज्वलता संता आया। तब रावण ने अपनी सेना को व्याकुल देख तत्काल ही जलबाण चलाया। सो मेघमाला उठी, पर्वत समान जल की मोटी धारा बरसने लगी, क्षणमात्र मैं अग्निबाण बुझ गया। तब इन्द्र ने रावण पर तामस

बाण चलाया। ताकरि दशों दिशानि में अंधकार होय गया। रावण के कटकविषै काहू को कुछ भी न सूझै। तब रावण ने प्रभास्त कहिए, प्रकाश बाण चलाया, ताकरि क्षणमात्र में सकल अंधकार विलय होय गया, जैसें जिनशासन के प्रभावकरि मिथ्यात्व का मार्ग विलय जाय। फिर रावण ने कोपकरि इन्द्र पै नागबाण चलाया, सो मानों महा काले नाग ही चलाए। भयंकर है जिह्वा जिनकी, ते सर्प इन्द्र कैं अर सकल सेना कै लिपट गए। सर्पनिकरि बेढ्या इन्द्र अति व्याकुल भया, जैसें भवसागरविषै जीव कर्मजालकर बेढ्या व्याकुल होय है।

तब इंद्र ने गरुडबाण चितार्‍या सो सुवर्णसमान पीत पंखनि के समूहकरि आकाश पीत होय गया, अर पांखीनि की पवनकरि रावण का कटक हालने लग्या, मानों हिंडोले में झूलै है। गरुड के प्रभावकर नाग ऐसे विलाय गए जैसें शुक्लध्यान के प्रभावकरि कर्मनि के बंध विलय होय जाय। जब इन्द्र नागबंधनितैं छूटकर जेठ के सूर्यसमान अति दारुण तपता भया तदि रावण ने त्रैलोक्यमंडन हाथी को इन्द्र के ऐरावत हाथी पर प्रेर्‍या।

कैसा है त्रैलोक्यमंडन? सदा मद झरै है और बैरियों को जीतनहारा है। इन्द्र ने भी ऐरावत को त्रैलोक्यमंडन पर धकाया। दोनों गज महा गर्व के भरे लड़ने लगे। झरै है मद जिनके, क्रूर हैं नेत्र जिनके, हालै हैं कर्ण जिनके, दैदीप्यमान है विजुरी समान स्वर्ण की सांकल जिनके, दोऊं हाथी शरद के मेघसमान अति गाजते, परस्पर अति भयंकर जो दांत तिनके घातनिकरि पृथ्वी को शब्दायमान करते, चपल है शरीर जिनका, परस्पर सूंडों से अद्भुत संग्राम करते भए।

तब रावण ने उछलकरि इन्द्र के हाथी के मस्तक पर पग धरि अति शीघ्रताकरि गज के सारथी को पाद प्रहारतैं नीचे डार्‍या अर इन्द्र को वस्त्रतैं बांध्या, अर बहुत दिलासा देयकरि पकड़ि अपने गज पर लेय आया। अर रावण के पुत्र इन्द्रजीत ने इन्द्र का पुत्र जयंत पकड्या, अपने सुभटों को सौंप्या, आप इन्द्र के सुभटों पर दौड्या। तदि रावण ने मनै किया – हे पुत्र! अब रणतैं निवृत्त होवो, क्योंकि समस्त विजयार्ध के जे निवासी विद्याधर तिनका चूडामणि पकड़ लिया है। अब समस्त अपने अपने स्थानक जावो, सुखसों जीवो। शालितैं चावल लिया, तब पराल का कहा काम?

जब रावण ने ऐसा कह्या तब इन्द्रजीत पिता की आज्ञातैं पाछा बाहुड्या, अर सर्व देवनि की सेना शरद के मेघसमान भाग गई। जैसें पवनकरि शरद के मेघ विलाय जांय। रावण की सेना में जीत के वादित्र बाजे, ढोल नगारे शंख झांझ इत्यादि अनेक वादित्रनि का शब्द भया। इन्द्र को पकड्या देख रावण की सेना अति हर्षित भई। रावण लंका में चलवे को उद्यमी भया, सूर्य के समान रथ ध्वजानिकरि शोभित, अर चंचल तुरंग नृत्य करते भए। अर मद झरते हुए नाद करते हाथी तिनपरि भ्रमर गुंजार करै हैं, इत्यादि महासेनाकरि मंडित राक्षसनि का अधिपति रावण लंका के समीप आया।

तब समस्त बंधुजन अर नगर के रक्षक तथा पुरजन सब ही दर्शन के अभिलाषी भेंट लेय लेय सन्मुख आए, अर रावण की पूजा करते भए। जे बड़े हैं तिनकी रावण ने पूजा करी। रावण कों सकल नमस्कार करते भए अर बड़ों को रावण नमस्कार करता भया। कई एकनि को कृपादृष्टि करि, कई एकनि को मंद हास्य करि, कई एकनि कों वचननिकरि रावण प्रसन्न करता भया। बुद्धि के बलतैं जान्या है सबका अभिप्राय जानै। लंका तो सदा ही मनोहर है, परन्तु रावण बड़ी विजयकरि आया, तातैं अधिक समारी है। ऊंचे रत्ननि के तोरण निरमापे, मंद मंद पवनकरि अनेक वर्ण की ध्वजा फरहरै हैं। कुंकुमादि सुगंध मनोज्ञ जलकरि सींच्या है समस्त पृथ्वीतल जहां और सब ऋतु के फूलनिकरि पूरित है राजमार्ग जहां, अर पंच वर्ण रत्ननि के चूर्ण करि रचे हैं मंगलीक मांडने जहां, अर दरवाजों पर थांभे हैं पूर्ण कलश, कमलों के पत्र अर पल्लवनितैं ढके। सम्पूर्ण नगरी वस्त्राभरणकरि शोभित है।

जैसैं देवों से मंडित इन्द्र अमरावती में आवै, तैसैं विद्याधरनिकरि बेढ्या रावण लंका में आया। पुष्पक विमान में बैठ्या, दैदीप्यमान है मुकुट जाका, महारत्नों के बाजूबंद पहिर, निर्मल प्रभाकरयुक्त, मोतियों का हार वक्षस्थल पर धार, अनेक पुष्पों के समूह करि विराजित, मानों बसंत ही का रूप है। सो ताको हर्षतैं पूर्ण नगर के नर नारी देखते देखते तृप्त न भए। ऐसी मनोहर मूरत है। असीस देय है। नाना प्रकार के वादित्रों के शब्द होय रहे हैं। जय जयकार शब्द होय हैं। आनन्दतैं नृत्यकारिणी नृत्य करै है। इत्यादि हर्षसंयुक्त रावण ने लंका में प्रवेश किया। महा उत्साह की भरी लंका ताहि देखि रावण प्रसन्न भए। बंधुजन सेवकजन सब ही आनंद को प्राप्त भए। रावण राजमहल में आये।

देखो भव्यजीव हो! रथनूपुर के धनी राजा इन्द्र ने पूर्व पुण्य के उदयतैं बैरियों के समूह जीतकर सर्व सामग्रीपूर्ण तिनको तृणवत् जानि सबको जीतकर दोन्यों श्रेणि का राज बहुत वर्ष किया। अर इन्द्र के तुल्य विभूति कों प्राप्त भया। अर जब पुण्य क्षीण भया, तदि सकल विभूति विलय होय गई, रावण ताकों पकड़करि लंका में ले आया। तातैं मनुष्य के चपल सुख को धिक्कार होहु। यद्यपि स्वर्गलोक के देवनि का विनाशीक सुख है, तथापि आयुपर्यंत और रूप न होय अर जब दूसरी पर्याय पावै तब और रूप होय। अर मनुष्य तो एक ही पर्याय में अनेक दशा भोगै। तातैं मनुष्य होय जे माया का गर्व करै हैं ते मूर्ख हैं। अर यह रावण पूर्वपुण्यतैं प्रबल वैरीनि को जीतिकरि अति वृद्धि को प्राप्त भया। यह जानकरि भव्यजीव सकल पाप कर्म का त्याग कर शुभ कर्म ही को अंगीकार करो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषै इन्द्र का पराभवनाम बारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।12।।

अथानन्तर इन्द्र के सामंत धनी के दु:खतैं व्याकुल भए। तदि इन्द्र का पिता सहस्रार जो उदासीन श्रावक है, तासों विनती करि इन्द्र के छुड़ावने के अर्थि सहस्रार को लेयकरि लंका में रावण के समीप गये। द्वारपालनिसों विनती करि इन्द्र के सकल वृत्तांत कहकरि रावण के ढिग गये। रावण ने सहस्रार कों उदासीन श्रावक जानकरि बहुत विनय किया। इनको सिंहासन दिया, आप सिंहासनतैं उतरि बैठे, सहस्रार रावण कों विवेकी जानि कहता भया – हे दशानन! तुम जगजीत हो सो इन्द्र को भी जीत्या। तिहारी भुजानि की सामर्थ्य सबन ने देखी। जे बड़े राजा हैं ते गर्ववंतनि के गर्व दूरकरि फिर कृपा करैं, तातैं अब इन्द्र को छोड़ो! यह सहस्रार ने कही अर जे चारों लोकपाल हुते तिनके मुंहतैं भी यही शब्द निकस्या। मानों सहस्रार का प्रतिशब्द ही कहते भए। तब रावण सहस्रार कों तो हाथ जोड़ि यही कही जो आप कहो सोई होगा, अर लोकपालनितैं हंसकरि क्रीड़ारूप कही जो तुम चारों लोकपाल नगरविषै बुहारी देवो, कमलनि का मकरंद अर तृण कंटकरहित पुरी करो, सुगन्ध करि पृथ्वी को सींचो अर पांच वर्ण के सुगंध मनोहर जो पुष्प तिनतैं नगरी को शोभित करो।

यह बात जब रावण ने कही तब लोकपाल तो लज्जावान होय नीचे होय गये। अर सहस्रार अमृतरूप वचन बोले, हे धीर! तुम जाकों जो आज्ञा करो सो ही वह करै, तुम्हारी आज्ञा सर्वोपरि है। यदि तुम सारिखे गुरुजन पृथ्वी के शिक्षादायक न होंय तो पृथ्वी के लोक अन्याय मार्गविषै प्रवरतैं। यह वचन सुनकर रावण अति प्रसन्न भए, अर कही, हे पूज्य! तुम हमारे राततुल्य हो, अर इन्द्र मेरा चौथा भाई, याकों पायकर मैं सकल पृथ्वी कंटकरहित करूंगा। याकों इन्द्रपद वैसा ही है। अर यह लोकपाल ज्यों के त्यों ही हैं। अर दोन्यों श्रेणी के राज्यतैं और अधिक चाहो सो लेहू। मो मैं अर या मैं कछु भेद नाहीं। अर आप बड़े हो, गुरुजन हो, जैसैं इन्द्र को शिक्षा देवो तैसैं मोहि देवो, तिहारी शिक्षा अलंकाररूप है। अर आप रथनूपुरविषै विराजो अथवा यहां विराजो, दोऊ आप ही की भूमि हैं। ऐसे प्रिय वचनकरि सहस्रार का मन बहुत संतोष्या। तब सहस्रार कहने लाग्या, हे भव्य! तुम सारिखे सज्जन पुरुषनि की उत्पत्ति सर्व लोकनि कों आनन्दकारणी है।

हे चिरंजीव! तिहारे शूरवीरपने का आभूषण यह उत्तम विनय समस्त पृथ्वीविषै प्रशंसा कों प्राप्त भया है। तिहारे देखनेकरि हमारे नेत्र सुफल भए। धन्य तिहारे माता पिता, जिनतैं तिहारी उत्पत्ति भई। कुंद के पुष्पसमान उज्ज्वल तिहारी कीर्ति, तुम समर्थ अर क्षमावान, दातार अर निर्गर्व, ज्ञानी अर गुणप्रिय, तुम जिनशासन के अधिकारी हो। तुमने हमको जो कही यह तिहारा घर है, अर जैसैं इन्द्र पुत्र तैसैं मैं, सो तुम इन बातों के लायक हो, तिहारे मुखतैं ऐसे ही वचन झरैं। तुम महाबाहु, दिग्गज की सूंड समान भुजा तिहारी, तुम सारिखे पुरुष या संसारविषै विरले

हैं। परन्तु जन्मभूमि माता समान है, सो छांड़ी न जाय। जन्मभूमि का वियोग चित्त को आकुल करै हैं, तुम सर्व पृथ्वी के पति हो, परन्तु तुमको भी लंका प्रिय है। मित्र बांधव अर समस्त प्रजा हमारे देखने के अभिलाषी आवने का मार्ग देखै हैं। तातैं हम रथनूपुर ही जायेंगे। अर चित्त सदा तुम्हारे समीप ही है।

हे देवन के प्यारे! तुम बहुत काल पृथ्वी की निर्विघ्न रक्षा करो। तब रावण ने ताही समय इन्द्र को बुलाया और सहस्रार के लार किया। अर आप रावण कितनीक दूर तक सहस्रार को पहुंचाने गए और बहुत विनयकरि सीख दीनी। सहस्रार इन्द्र को लेयकरि लोकपालनि सहित विजयार्ध गिरि पर आए, सर्व राज ज्यों का त्यों ही है। लोकपाल आयकरि अपने अपने स्थानक बैठे परंतु मान भंग से असाता कों प्राप्त भए। ज्यों ज्यों विजयार्ध के लोक इन्द्र के लोकपालनि कों और देवनि कों देखैं त्यों त्यों यह लज्जा कर नीचे होय जांय। अर इन्द्र के भी न तो रथनूपुर से प्रीति, न राणियों में प्रीति, न उपवनादि में प्रीति न लोकपालों में प्रीति, न कमलों के मकरंदसों पीत होय रह्या है जल जिनका, ऐसे मनोहर सरोवर तिनमें प्रीति, और न किसी क्रीड़ाविषै प्रीति, यहां तक कि अपने शरीरसों भी प्रीति नाहीं। लज्जाकर पूर्ण है चित्त जाका।

सो ताको उदास जानि अनेक विधिकर प्रसन्न किया चाहैं और कथा के प्रसंगतैं वह बात भुलाया चाहैं परन्तु यह भूले नाहीं। सर्व लीला विलास तजे, अपने राजमहल के मध्य गंधमादन पर्वत के शिखर समान ऊंचा जो जिनमंदिर ताकै एक थंभ के माथेविषै रहे। कांतिरहित होय गया है शरीर जाका। पंडितनिकरि मंडित यह विचार करै है कि धिक्कार है या विद्याधर पद के ऐश्वर्य को जो एक क्षणमात्रविषै विलाय गया। जैसैं शरद ऋतु के मेघनि के समूह अत्यन्त ऊंचे होवें परन्तु क्षणमात्रविषै विलय जांय। तैसैं ते शस्त्र, ते हाथी, ते योधा, ते तुरंग पूर्वैं अनेक बार अद्भुत कार्य के करणहारे, समस्त तृणसमान होय गए।

अथवा कर्मों की यह विचित्रता है कौन पुरुष अन्यथा करने को समर्थ है? तातै जगत में कर्म प्रबल हैं। मैं पूर्व नाना विधि भोग सामग्रियों के निपजावनहारे कर्म उपार्जे हुते सो अपना फल देयकरि खिरि गए, जातैं यह दशा वरतै है। रणसंग्रामविषै शूरवीर सामंतनि का मरण होय तो भला, जाकरि पृथ्वीविषै अपयश न होय। मैं जन्मतैं लेकर शत्रुओं के सिर पर चरण देकर जिया। सो मैं इन्द्र शत्रु का अनुचर होयकर कैसे राज्यलक्ष्मी भोगूं? तातैं अब संसार के इन्द्रियजनित सुखों की अभिलाषा तजकर मोक्षपद की प्राप्ति के कारण जे मुनिव्रत तिनको अंगीकार करूं। रावण शत्रु का भेष धरि मेरा महामित्र आया। तानै मोहि प्रतिबोध दिया। मैं असार सुख के आस्वादविषै आसक्त हुता। ऐसा विचार इन्द्र ने किया।

ताही समय निर्वाणसंगम नामा चारण मुनि विहार करते हुए आकाश मार्गतैं जाते हुते सो चैत्यालयनि के प्रभावकरि उनका आगैं गमन न होय सक्या। तब वे चैत्यालय जानि नीचें उतरे, भगवान के प्रतिबिंब का दर्शन किया। मुनि चार ज्ञान के धारक थे। सो उनको राजा इन्द्र ने उठकरि नमस्कार किया। मुनि के समीप जाय बैठ्या, बहुत देर तक अपनी निंदा करी। सर्व संसार का वृत्तांत जाननहारे मुनि ने परम अमृतरूप वचनकरि इन्द्र को समाधान किया कि – हे इन्द्र! जैसैं अरहट की घड़ी भरी रीति होय है अर रीति भरी होय है, तैसैं यह संसार की माया क्षणभंगुर है। याके और प्रकार होने का आश्चर्य नाहीं। मुनि के मुखसों धर्मोपदेश सुन इन्द्र ने अपने पूर्वभव पूछे। तब मुनि कहे हैं। कैसे हैं मुनि? अनेक गुणनि के समूहतैं शोभायमान हैं। हे राजन्! अनादिकाल का यह जीव चतुरगतिविषै भ्रमण करे है, जो अनन्तभव धरे सो केवलज्ञानगम्य है। कई एक भव कहिए हैं सो सुन।

शिखापद नामा नगरविषै एक मानुषी महा दलिद्रनी जाका नाम कुलवंती। सो चीपड़ी, अमनोज्ञ नेत्र, नाक चिपटी, अनेक व्याधि की भरी, पाप कर्म के उदयकरि लोगनि की जूठ खायकर जीवे। खोटे वस्त्र, अभागिनी, फाट्या अंग महा रूक्ष खोटे केश, जहां जाय तहां लोक अनादरै हैं, जाको कहीं सुख नाहीं। अंतकालविषै शुभमति होय एक मुहूर्त का अनशन लिया। प्राण त्यागकरि किंपुरुष देव कै शीलधरा नामा किन्नरी भई। तहांसों चय करि रत्ननगरविषै गोमुखनामा कलुंबी, ताकै धरनी नामा स्त्री, ताकै सहस्रभाग नामा पुत्र भया। सो परम सम्यक्त्व को पायकरि श्रावक के व्रत आदरे, शुक्रनामा नवमा स्वर्ग तहां जाय उत्तम देव भया। तहां से चयकर महा विदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नगरविषै मणिनामा मंत्री, ताकै गुणावली नामा स्त्री, ताकै सामंतवर्धन नामा पुत्र भया। सो पिता के साथ वैराग्य अंगीकार किया। अति तीव्र तप किए।

तत्त्वार्थविषै लग्या है चित्त जाका, निर्मल सम्यक्त्व का धारी, कषायरहित, बाईस परीषह सहकरि शरीर त्याग नवग्रीवक गया। अहमिंद्र के बहुत काल सुख भोगकरि राजा सहस्रार विद्याधर के रानी हृदयसुन्दरी तिनकै तू इन्द्र नामा पुत्र भया। या रथनूपुर नगरविषै जन्म लिया। पूर्व के अभ्यासकरि इन्द्र के सुख में मन आसक्त भया। सो तू विद्याधरों का अधिपति इन्द्र कहाया। अब तू वृथा मनविषै खेद करै है, जो मैं विद्याविषै अधिक हुता सो शत्रुनिकरि जीत्या गया है, सो हे इन्द्र! कोई निर्बुद्धि कोदों बोयकरि वृथा शालि की प्रार्थना करै है।

ये प्राणी जैसे कर्म करै हैं तैसै फल भोगे हैं। तैंने भोग का साधन शुभ कर्म पूर्व किया हुता, सो क्षीण भया। कारण बिना कार्य की उत्पत्ति ना होय है। या बात का आश्चर्य कहा? तूने याही जन्मविषै अशुभ कर्म किए, तिनकरि यह अपमानरूप फल पाया। अर रावण तो निमित्तमात्र है।

तैंने जो अज्ञान चेष्टा करी सो कहा नाहीं जानै है? तू ऐश्वर्य मदकरि भ्रष्ट भया बहुत दिन भए, तातैं तोहि याद नाहीं आवै है। एकाग्रचित्तकरि सुन! अरिंजयपुर में बह्विवेग नामा विद्याधर राजा, ताकी रानी वेगवती, पुत्री अहिल्या, ताका स्वयंवर मंडप रच्या हुता। तहां दोनों श्रेणी के विद्याधर अति अभिलाषी होय विभवकरि शोभायमान गये।

अर तू भी बड़ी सम्पदासहित गया। अर एक चंद्रावर्त नामा नगर का धनी राजा आनंदमाल सो भी तहां आया। अहिल्या ने सबको तजकरि ताके कंठविषै वरमाला डाली। कैसी है अहिल्या? सुन्दर है सर्व अंग जाका। सो आनंदमाल अहिल्या को परणकरि जैसे इन्द्र इन्द्राणी सहित स्वर्गलोक में सुख भोगे, तैसै मनवांछित भोग भोगता भया। सो जा दिनतैं अहिल्या परणी ता दिनतैं तेरे यासों ईर्ष्या बढ़ी। तैनै वाको अपना बड़ा बैरी जान्या। कई एक दिन वह घरविषै रह्या। फिर वाको ऐसी बुद्धि उपजी कि यह देह विनाशीक है, यासों मुझे कछु प्रयोजन नाहीं, अब मैं तप करूं जाकरि संसार का दुःख दूर होय। ये इन्द्रियनि के भोग महाठग, तिनविषै सुख की आशा कहां?

ऐसा मन में विचारकरि वह ज्ञानी अंतर-आत्मा सर्व परिग्रह कों तजकरि परम तप आचरता भया। एक दिन हंसावली नदी के तीर कायोत्सर्ग धर तिष्ठै था सो तैंनै देख्या। ताके देखने मात्र रूप ईंधनकरि बढ़ी है क्रोधरूप अग्नि जाके, सो तैं मूर्ख ने गर्वकर हांसी करी। अहो आनन्दमाल! तू काम भोगविषै अति आसक्त हुता, अहिल्या का रमण अब कहां? विरक्त होय पहाड़ सारिखा निश्चल तिष्ठ्या है। तत्त्वार्थ के चिंतवनविषै लग्या है अत्यन्त स्थिर मन जाका। या भांति परम मुनि की तैंनै अवज्ञा करी। सो वह तो आत्मसुखविषै मग्न, तेरी बात कुछ हृदयविषै न धरी। उनके निकट उनका भाई कल्याण नामा मुनि तिष्ठै था तानै तोहि कही - यह महामुनि निरपराध, तैंनै इनकी हांसी करी। सो तेरा भी पराभव होगा। तब तेरी स्त्री सर्वश्री सम्यग्दृष्टि साधुनि की पूजा करनहारी, तानै नमस्कारकरि कल्याण स्वामी को उपशांत किया। जो वह शांत न करती तो तू तत्काल साधुनि की कोपाग्नितैं भस्म हो जाता। तीन लोक में तप समान कोई बलवान नाहीं। जैसी साधुओं की शक्ति है, तैसी इन्द्रादिक देवों की शक्ति भी नाहीं।

जो पुरुष साधु लोगों का निरादर करै हैं ते इस भव में अत्यन्त दुख पाय नरक निगोदविषै पड़े हैं। मनकर भी साधुओं का अपमान न करिए। जे मुनिजन का अपमान करै हैं सो इस भव परभवविषैं दुखी होय हैं। क्रूरचित्त मुनियों को मारैं अथवा पीड़ा करै हैं, सो अनन्तकाल दुःख भोगवै हैं। मुनि की अवज्ञा समान और पाप नाहीं।

मनवचनकायकरि यह प्राणी जैसे कर्म करै हैं तैसै ही फल पावै हैं। या भांति पुण्य पाप कर्मों

के फल भले बुरे जीव भोगै हैं। ऐसा जानकरि धर्मविषैं बुद्धिकरि, अपने आत्मा कों संसार के दु:खनितैं निवृत्ति करो। महा मुनि के मुखसों राजा इन्द्र पूर्वभव सुन आश्चर्य को प्राप्त भया। नमस्कारकरि मुनिसों कहता भया – हे भगवान! तिहारे प्रसादतैं मैंने उत्तम ज्ञान पाया, अब सकल पाप क्षणमात्रविषै विलय गए, साधुनि के संगतैं जगतविषै कुछ दुर्लभ नाहीं। तिनके प्रसादकर अनन्त जन्मविषै न पाया जो आत्मज्ञान सो पाइए है। यह कहकरि मुनि को बारम्बार वंदना करी। मुनि आकाश मार्ग विहार कर गए। इन्द्र गृहस्थाश्रमतैं परम वैराग्य को प्राप्त भया। जल के बुदबुदा समान शरीर कों असार जानि धर्मविषै निश्चल बुद्धिकर अपनी अज्ञान चेष्टा को निंदता संता वह महापुरुष अपनी राजविभूति पुत्र को देयकरि अपने बहुत पुत्रनि सहित अर लोकपालनि सहित तथा अनेक राजानि सहित सर्वकर्मनि की नाशकरनहारी जिनेश्वरी दीक्षा आदरी, सर्व परिग्रह का त्याग किया। निर्मल है चित्त जाका, प्रथम अवस्थाविषै जैसा शरीर भोग मैं लगाया हुता तैसा ही तप के समूह में लगाया। ऐसा तप औरनितैं न बन पड़े। पुरुषों की बड़ी शक्ति है जैसी भोगों में प्रवर्तैं तैसें विशुद्धभावविषै प्रवर्तै है। राजा इन्द्र बहुत काल तपकरि शुक्लध्यान के प्रतापतैं कर्मनि का क्षयकरि निर्वाण पधारे।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसों कहै हैं – देखो! बड़े पुरुषों के चरित्र आश्चर्यकारी हैं, प्रबल पराक्रम के धारक बहुत काल भोगकरि वैराग्य लेय अविनाशी सुख को भोगवै हैं। यामैं कुछ आश्चर्य नाहीं। समस्त परिग्रह का त्यागकर क्षणमात्रविषै ध्यान के बलतैं मोटे पापनि का क्षय करै हैं। जैसैं बहुत कालतैं ईंधन की राशि संचय करी सो क्षणमात्र मैं अग्नि के संयोगकरि भस्म होय है। ऐसा जानकर हे प्राणी! आत्मकल्याण का यत्न करो। अंत:करण विशुद्ध करो, मृत्यु के दिन का कुछ निश्चय नाहीं। ज्ञानरूप सूर्य के प्रतापकरि अज्ञान तिमिर को हरो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै इंद्र का निर्वाणगमन नामा तेरहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।13।।

अथानन्तर रावण विभव और देवेंद्र समान भोगनिकरि मूढ़ है मन जाका, सो मनवांछित अनेक लीला विलास करता भया। यह राजा इन्द्र का पकड़नहारा एक दिन सुमेरु पर्वत के चैत्यालयनि की वंदना करि पीछे आवता हुता। सप्त क्षेत्र, षट् कुलाचल तिनकी शोभा देखता नाना प्रकार के वृक्ष नदी सरोवर स्फटिकमणिहू ते निर्मल महा मनोहर अवलोकन करता थका, सूर्य के भवन समान विमान में विराजमान, महा विभूतिकरि संयुक्त लंकाविषै आवने का है मन जाका, सो तत्काल महा मनोहर उतंग नाद सुनता भया। तब महा हर्षवान होय, मारीच मंत्री को पूछता भया – हे मारीच! यह सुन्दर महानाद काहे का है और दशोंदिशा काहेतैं लाल होय रही हैं। तब

मारीच ने कहा– हे देव! यह केवली की गंधकुटी है और अनेक देव दर्शन को आवै हैं। तिनके मनोहर शब्द होय रहे हैं। अर देवनि के मुकुट आदि की किरणनिकरि यह दशोंदिशा रंगरूप होय रही हैं। इस स्वर्ण पर्वतविषै अनंतवीर्य मुनि तिनको केवलज्ञान उपज्या है।

ये वचन सुनकरि रावण बहुत आनन्द को प्राप्त भया। सम्यक् दर्शनकरि संयुक्त है, अर इन्द्र का वश करणहारा है, महाकांति का धारी आकाशतैं केवली की वंदना के अर्थि पृथ्वी पर उतर्‍या, वंदना कर स्तुति करी। इन्द्रादिक अनेक देव केवली के समीप बैठे हुते, रावण भी हाथ जोड़ नमस्कार करि अनेक विद्याधरनि सहित उचित स्थान में तिष्ठ्या।

चतुरनिकाय के देव तथा तिर्यंच अर अनेक मनुष्य केवली के समीप तिष्ठै हुते। तासमय किसी शिष्य ने पूछ्या – हे देव, हे प्रभो! अनेक प्राणी धर्म अर अधर्म के स्वरूप जानने की तथा तिनके फल जानने की अभिलाषा राखै है, अर मुक्ति के कारण जानना चाहैं हैं, सो तुम ही कहने योग्य हो। तब भगवान केवलज्ञानी अनन्तवीर्य मर्यादारूप अक्षर जिनमें विस्तीर्ण अर्थ, अति निपुण शुद्ध संदेहरहित सबके हितकारी प्रियवचन कहते भए।

अहो भव्य जीव हो! यह जीव चेतनालक्षण अनादिकाल का निरन्तर अष्टकर्मनिकरि बंध्या, आच्छादित है आत्मशक्ति जाकी, सो चतुरगति में भ्रमण करै है, चौरासी लाख योनियों में नाना प्रकार इन्द्रियोंकरि उपजी जो वेदना ताहि भोगता संता सदाकाल दुखी होय रागी द्वेषी मोही हुआ, कर्मनि के तीव्र मंद मध्य विपाकतैं कुम्हार के चक्रवत् पाया है चतुरगति का भ्रमण जानै, ज्ञानावरणी कर्मकरि आच्छादित है ज्ञान जाका, सो अतिदुर्लभ मनुष्यदेह पाई तो भी आत्महित को नाहीं जानै है। रसना का लोलुपी, स्पर्श इन्द्री का विषयी, पांच हू इन्द्रियों के वश भया। अतिनिंद्य पापकर्मकरि नरकविषै पड़े हैं। जैसैं पाषाण पानी में डूबै है।

कैसा है नरक? अनेक प्रकारकरि उपजे जे महादुख तिनका सागर है। महा दुखकारी है। जे पापी क्रूरकर्मा धन के लोभी, माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, मित्र इत्यादि सुजन तिनको हनै हैं, जगत में निंद्य है, चित्त जिनका, ते नरक में पड़े हैं। तथा जे गर्भपात करै हैं तथा बालक हत्या करै हैं, वृद्ध कों हणै हैं, अबला (स्त्रियों) की हत्या करै हैं, मनुष्यों को पकड़े हैं, रोके हैं, बांधे हैं, मारे हैं, पक्षी तथा मृगनि को हनै हैं, जे कुबुद्धि स्थलचर जलचर जीवों की हिंसा करै हैं, धर्मरहित है परिणाम जिनका ते महावेदनारूप जो नरक ता विषै पड़े हैं। अर जे पापी शहद के अर्थि मधुमाखियों का छाता तोड़े हैं तथा मांस आहारी मद्यपायी शहद के भक्षण करनहारे, वन के भस्म करनहारे, तथा ग्रामनि के बालनहारे, बंदी के करणहारे, गायन के घेरनहारे, पशुघाती महा हिंसक, भील, अहेड़ी, बागरा, पारधी इत्यादि पापी महानरक में पड़े हैं। अर जे मिथ्यावादी परदोष के

भाषणहारे, अभक्ष्य के भक्षण करनहारे परधन के हरणहारे, परदारा के रमनहारे, वेश्यानि के मित्र हैं ते घोर नरक में पड़े हैं, जहां काहू की शरण नाहीं।

जे पापी मांस का भक्षण करे हैं ते नरक में प्राप्त होय हैं, तहां तिनही का शरीर काट काट तिनके मुखविषै दीजिए है, अर ताते लोहे के गोले तिनके मुख में दीजिए है। अर मद्यपान करने वालों के मुख में सीसा गाल गाल डारिये है। अर परदारालंपटियों का ताती लोहे की पुतलियों से आलिंगन करावै हैं। जे महापरिग्रह के धारी महाआरंभी, क्रूर है चित्त जिनका, प्रचंड कर्म के करनहारे हैं ते सागरां पर्यंत नरक में बसै हैं। साधुओं के द्वेषी, पापी मिथ्यादृष्टि, कुटिल कुबुद्धि रौद्रध्यानी मरकर नरक में प्राप्त होय हैं। जहां विक्रियामई कुहाड़े तथा खड्गचक्र, करोत, अर नाना प्रकार के विक्रियामई शस्त्र तिनकरि खंड खंड कीजिए है, फिर शरीर मिल जाय है, आयु पर्यंत दुख भोगवै हैं। तीक्ष्ण हैं चौंच जिनकी, ऐसे मायामई पक्षी ते तन विदारैं हैं, तथा मायामई सिंह व्याघ्र स्वान सर्प अष्टापद ल्याली बीछू तथा और प्राणियों से नाना प्रकार के दुख पावै हैं। नरक के दुखनि को कहां लग वरणन करिए।

अर जे मायाचारी प्रपंची विषयाभिलाषी हैं ते प्राणी तिर्यंचगति कों प्राप्त होय हैं, तहां परस्पर बंध अर नाना प्रकार के शस्त्रन की घाततैं महादुख पावै हैं। तथा वाहन तथा अति भार का लादना शीत उष्ण क्षुधा तृषादिकरि अनेक दुख भोगवै हैं। यह जीव भवसंकटविषै भ्रमता स्थलविषै जलविषै गिरिविषै तरुविषै और गहनवनविषै अनेक ठौर सूता। एकेंद्री वेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री, अनेक पर्यायनि में अनेक जन्म मरण किए। जीव अनादिनिधन है, याका आदि अंत नाहीं। तिलमात्र भी लोकाकाशविषै प्रदेश नाहीं, जहां संसारभ्रमणविषै इस जीव ने जन्म-मरण किये हों।

अर जे प्राणी निगर्व हैं, कपटरहित, स्वभाव ही कर संतोषी हैं, ते मनुष्यदेह को पावै हैं। सो यह नर देह परम निर्वाण सुख का कारण ताहि पायकरि भी जे मोहमदकरि उन्मत्त कल्याण मार्ग को तजकरि क्षणमात्र में सुख के अर्थि पाप करै हैं, ते मूर्ख हैं। मनुष्य भी पूर्व कर्म के उदयकरि कोई आर्यखंडविषै उपजै हैं, कोई म्लेच्छखंडविषै उपजै हैं तथा कोई धनाढ्य, कोई अत्यन्त दरिद्री होय हैं, कोई कर्म के प्रेरे अनेक मनोरथ पूर्ण करै हैं, कोई कष्टसों पराए घरों में प्राणपोषण करै हैं, केई कुरूप केई रूपवान, केई दीर्घ आयु, केई अल्प आयु, केई लोकनि कों वल्लभ, केई अभाव ने, केई सभाग, केई अभागे, केई औरों को आज्ञा देवें, केई औरन के आज्ञाकारी, केई यशस्वी, केई अपयशी, केई शूर, केई कायर, केई जलविषै प्रवेश करैं, कई रण मैं प्रवेश करैं, कई देशांतर में गमन करैं, कई कृषिकर्म करैं, कई व्यापार करैं, कई सेवा करैं। या भांति मनुष्यगतिविषै भी सुख-दुख की विचित्रता है। निश्चय विचारिए तो सर्वगति में दुख ही है, दुख ही को कल्पनाकर सुख मानै हैं।

अर मुनिव्रत तथा श्रावक के व्रतनिकरि तथा अव्रत सम्यक्त्वकरि तथा अकामनिर्जरातैं तथा अज्ञानतपतैं देवगति पावै हैं। तिनमें कई बड़ी ऋद्धि के धारी, कई अल्पऋद्धि के धारी, आयु कांति प्रभाव बुद्धि सुख लेश्याकरि ऊपरले देव चढ़ते, अर शरीर अभिमान अर परिग्रह से घटते, देवगति में भी हर्ष विषाद कर कर्म का संग्रह करै हैं।

चतुरगति में यह जीव सदा अरहट की घड़ी के यंत्र समान भ्रमण करै है। अशुभ संकल्पनितैं दुख को पावै है, अर दान के प्रभावतैं भोगविषै भोगनि कों पावै है। जे सर्व परिग्रह रहित मुनिव्रत के धारक हैं सो उत्तमपात्र कहिये, अर जे अणुव्रत के धारक श्रावक हैं तथा आर्यिका सो मध्यमपात्र कहिए हैं। अर व्रतरहित सम्यक्दृष्टि है सो जघन्यपात्र कहिए है। इन पात्रनि कों विनयभक्तिकरि आहार देना पात्र का दान कहिये। अर वाल वृद्ध अंध पंगु रोगी दुर्बल दुखित भुखित इनको करुणाकर अन्न जल औषधि वस्त्रादिक दीजिए सो करुणादान कहिये। पात्र कै दानकरि उत्कृष्ट भोगभूमि, अर मध्यपात्र के दानकरि मध्य भोगभूमि, अर जघन्यपात्र के दानकरि जघन्य भोगभूमि होय है। जो नरक निगोदादि दुखनितैं रक्षा करै सो पात्र कहिये।

सो सम्यक्दृष्टि मुनिराज हैं, ते जीवन की रक्षा करै हैं। जे सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकर निर्मल हैं ते परमपात्र कहिये। जिनके मान अपमान सुख दुख तृण कांचन दोनों बराबर हैं, तिनको उत्तमपात्र कहिए। जिनके राग-द्वेष नाहीं। जे सर्वपरिग्रहरहित महा तपस्वी, आत्मध्यानविषै तत्पर ते मुनि उत्तम पात्र कहिए, तिनको भावकरि अपनी शक्तिप्रमाण अन्न जल औषध देनी तथा वन मैं तिनके रहने के निमित्त वस्तिका करावनी तथा आर्यानि को अन्न जल वस्त्र औषधि देनी। श्रावक श्राविका सम्यक्दृष्टियों को अन्न जल वस्त्र औषधि इत्यादि सर्व सामग्री देनी। बहुत विनयकरि सो पात्रदान की विधि है, दीन अंधादि दु:खित जीवों को अन्न वस्त्रादि देना। बंदी तैं छुड़ावना। यह करुणादान की रीति है।

यद्यपि यह पात्रदान तुल्य नाहीं। तथापि योग्य है, पुण्य का कारण है। अर पर उपकार सो ही पुण्य है। अर जैसे भले क्षेत्र में बोया बीज बहुत गुणा होय फलै है तैसै शुद्धचित्तकरि पात्रनि कों दिया दान अधिक फल को फलै है, अर जे पापी मिथ्यादृष्टि रागद्वेषादियुक्त व्रतक्रिया रहित महामानी ते पात्र दान नाहीं, अर दीन हू नाहीं। तिनको देना निष्फल है। नरकादि का कारण है।

जैसैं ऊसर (कल्लर) खेतविषै बोया बीज वृथा जाय है और जैसैं एक कूप का जल ईखविषै प्राप्त मधुरता कों लहै है, अर नींवविषै गया कटुकता को भजे है तथा एक सरोवर का जल गाय नै पिया सो दूध रूप होय परणवै है, अर सर्प ने पिया विष होय परणवै है, तैसैं सम्यक्दृष्टि पात्रनि को भक्तिकर दिया जो दान सो शुभफल कों फलै है। अर पापी पाखंडी मिथ्यादृष्टि अभिमानी

परिग्रही तिनकों भक्तिकरि दिया दान अशुभफल कों फलै है। जे मांस-आहारी मद्यपायी कुशीली आपको पूज्य मानै, तिनका सत्कार न करना, जिनधर्मियों की सेवा करनी, दु:खियों को देख दया करनी, अर विपरीतियों से मध्यस्थ रहना, दया सब जीवों पर राखनी, किसी को क्लेश न उपजावना। अर जे जिनधर्मतैं पराङ्मुख हैं, परवादी हैं ते भी धर्म कों करना ऐसा कहैं हैं, परन्तु धर्म का स्वरूप जानै नाहीं। तातैं जे विवेकी हैं ते परखकरि अंगीकार करै हैं।

कैसे हैं विवेकी? शुभोपयोगरूप है चित्त जिनका, ते ऐसा विचार करे हैं- जे गृहस्थ स्त्रीसंयुक्त आरम्भ भी परिग्रही हिंसक कामक्रोधादिकर संयुक्त, गर्भवंत, धनाढ्य अर आपको पूज्य मानै तिनको भक्तिकरि बहुत धन देना ताविषै कहा फल है? अर तिनकरि आप कहा पावै? अहो यह बड़ा अज्ञान है, कुमारगतैं ठगे जीव ताहि पात्रदान कहै हैं और दुखी जीवों को करुणदान न करै हैं। दुष्ट धनाढ्यनि को सर्व अवस्था में धन देय है। सो वृथा धन का नाश करै हैं, धनवंतनि कों देनेतैं कहा प्रयोजन? दुखियों को देना कार्यकारी है। धिक्कार है तिन दुष्टनि कों जे लोभ के उदयकरि खोटे ग्रंथ बनाय मूढ़ जीवनि कों ठगैं हैं, जे मृषावाद के प्रभावतैं मांसहू का भक्षण ठहरावैं हैं। पापी पाखंडी मांस का भी त्याग न करै तो और कहा करेंगे? जे क्रूर मांस का भक्षण करै हैं तथा जो मांस का दान करै हैं ते घोर वेदनायुक्त जो नरक ताविषै पड़े हैं और जे हिंसा के उपकरण शस्त्रादिक तथा जे बन्धन के उपाय पांसी इत्यादि तिनका दान करै हैं तथा पंचेंद्रिय पशुओं का दान करै हैं, और जे इन दोनों को निरूपण करै हैं ते सर्वथा निंद्य हैं।

जो कोई पशु का दान करै और वह पशु बांधनेकरि मारबेकरि ताडवेकरि दुखी होय तो देनहारे को दोष लागै और भूमिदान भी हिंसा का कारण है। जहां हिंसा तहां धर्म नाहीं। चैत्यालय के निमित्त भूमि का देना युक्त है, और प्रकार नाहीं। जो जीव घातकरि पुण्य चाहै हैं, ते जीव पाषाणतैं दुग्ध चाहैं हैं। तातैं एकेंद्री आदि पंचेंद्री पर्यंत सब जीवनि को अभयदान देना और विवेकियों को ज्ञान दान देना, पुस्तकादि देना और औषध अन्न जल वस्त्रादि सबकों देना, पशुओं को सूखे तृण देना। और जैसैं समुद्रविषै सीप मेघ का जल पिया सो मोती होय परणवै है, तैसैं संसारविषै द्रव्य के योगतैं सुपात्रनि कों यव आदि अन्न भी दिये तो महा फल को फलै हैं, अर जो धनवान होय सुपात्रों को श्रेष्ठ वस्तु का दान नाहीं करै हैं सो निंद्य है। दान बड़ा धर्म है, सो विधिपूर्वक करना।

पुण्य पापविषै भाव ही प्रधान है। जो बिना भाव दान करै है सो गिरि के सिर पर बरसे जल समान है, सो कार्यकारी नाहीं। क्षेत्रविषै बरसे है सो कार्यकारी है। जो कोई सर्वज्ञ वीतरागदेव कों ध्यावै है और सदा विधिपूर्वक दान करैं है ताकै फल को कौन कह सकै? तातैं भगवान के

प्रतिबिंब तथा जिनमन्दिर, जिनपूजा, जिनप्रतिष्ठा, सिद्धक्षेत्रों की यात्रा, चतुरविध संघ की भक्ति, शास्त्रों का सर्व देशोंविषै प्रचार करना। यह धन खर्चने के सप्त महाक्षेत्र हैं। तिनविषै जो धन लगावै सो सफल है। तथा करुणादान परोपकारविषै लागै सो सफल है।

अर जे आयुध का ग्रहण करै हैं ते द्वेषसंयुक्त जानने। जिनके रागद्वेष है तिनके मोह भी है। अर जे कामिनी के संगतैं आभूषणों को धारण करै हैं ते रागी जानने। अर मोह बिना रागद्वेष होय नाहीं। सकल दोषों का मोह कारण है। जिनके रागादि कलंक हैं ते संसारी जीव हैं। जिनके ये नाहीं ते भगवान हैं। जे देशकालकामादि के सेवनहारे हैं ते मनुष्यतुल्य हैं तिनमें देवत्व नाहीं। तिनकी सेवा शिवपुर का कारण नाहीं। अर काहू के पूर्व पुण्य के उदयकरि शुभ मनोहर फल होय है, सो कुदेव सेवा का फल नाहीं। कुदेवन की सेवातैं सांसारिक सुख भी न होय तो शिवसुख कहांतैं होय? तातैं कुदेवनि को सेवना बालू को पेल तेल का काढ़ना है। अर अग्नि के सेवनतैं तृषा का बुझावना है।

जैसैं कोई पंगु को पंगु देशान्तर न ले जाय सकै, तैसैं कुदेवों के आराधनतैं परमपद की प्राप्ति कदाचित् न होय। भगवान बिना और देवों के सेवन का क्लेश करै सो वृथा है। कुदेवन में देवत्व नाहीं। अर जे कुदेवों के भक्त हैं ते पात्र नाहीं। लोभकरि प्रेरे प्राणी हिंसाकर्मविषै प्रवरते हैं, हिंसा का भय नाहीं। अनेक उपाय कर लोकनिसैं धन लेय है। संसारी लोक भी लोभी, सो लोभियों पै ठगावै हैं। तातैं सर्वदोषरहित जिन-आज्ञा प्रमाण जो महादान करै, सो महाफल पावै। वाणिज्य समान धर्म है, कभी किसी वाणिज्यविषै अधिक नफा होय, कभी अल्प होय, कभी टोटा होय, कदे मूल ही जाता रहै। अल्पतैं बहुत होय जाय, बहुततैं अल्प होय जाय। अर जैसैं विष का कण सरोवरी में प्राप्त भया सरोवरी को विषरूप न करै तैसैं चैत्यालयादि निमित्त अल्प हिंसा सो धर्म का विघ्न न करै, तातैं गृहस्थी भगवान के मंदिर करावै।

कैसे हैं गृहस्थी? जिनेंद्र की भक्तिविषै तत्पर हैं, अर व्रत क्रिया मैं प्रवीण हैं। अपनी विभूतिप्रमाण जिनमंदिर कराय जल चंदन धूप दीपादिकर पूजा करनी। जे जिनमंदिरादि में धन खरचैं, ते स्वर्गलोक में तथा मनुष्य लोकविषै अत्यन्त ऊंचे भोग भोगि परमपद पावै है। अर जे चतुरविधसंघ को भक्तिपूर्वक दान करै हैं, ते गुणनि के भाजन हैं, इन्द्रादिपद के भोगों कों पावै हैं। तातैं जे अपनी शक्ति प्रमाण सम्यक्दृष्टि पात्रनि कों भक्तिकरि दान करैं हैं तथा दुखियों को दया-भावकरि दान करै हैं सो धन सफल है। अर कुमारगतैं लाग्या जो धन सो चोरनिकरि लूट्या जानो।

अर आत्मध्यान के योगतैं केवलज्ञान की प्राप्ति होय है। जिनको केवलज्ञान उपज्या तिनको निर्वाणपद है। सिद्ध सर्व लोक के शिखर तिष्ठै हैं। सर्व बाधारहित, अष्टकर्मरहित, अनंतज्ञान,

अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतीवीर्यकरि संयुक्त, शरीरतैं रहित, अमूर्तिक पुरुषाकार जन्म मरण तैं रहित अविचल विराजे हैं। जिनका संसारविषै आगमन नाहीं। मन इन्द्रीनतैं अगोचर है। यह सिद्धपद धर्मात्मा जीव पावे हैं। अर पापी जीव लोभरूप पवन से वृद्धि को प्राप्त भई जो दुखरूप अग्नि, तामैं बलते सुकृतरूप जल बिना सदा क्लेश कों पावे हैं, पापरूप अंधकार के मध्य तिष्ठै मिथ्यादर्शन के वशीभूत हैं। कोई एक भव्यजीव धर्मरूप सूर्य की किरणनिकरि पाप तिमिर कों हर केवलज्ञान को पावै हैं। अर ये जीव अशुभ रूप लोहे के पिंजरे में पड़े आशारूप पाशकरि बेढ़े धर्मरूप बांधव करि छूटै हैं।

व्याकरणहूतैं धर्म शब्द का यही अर्थ होय है – जो आचरतासंता दुर्गतिविषै पड़ते प्राणियों को थांभै सो धर्म कहिए। ता धर्म का जो लाभ सो लाभ कहिए। जिनशासनविषै जो धर्म का स्वरूप कह्या है सो संक्षेप से तुमको कहै हैं। धर्म के भेद अर धर्म के फल के भेद एकाग्र मनकर सुनो।

हिंसातैं, असत्यतैं, चोरीतैं, कुशीलतैं धन अर परिग्रह के संग्रहतैं विरक्त होना, इन पापों का त्याग करना सो महाव्रत कहिए। विवेकियों को उसका धारण करना, अर भूमि निरख कर चलना, हितमित संदेहरहित वचन बोलना, निर्दोष आहार लेना, यत्नतैं पुस्तकादि उठावना मेलना, निर्जंतुभूमिविषै शरीर का मल डारना, ये पांच समिति कहिए, तिनका पालना यत्नकरि। अर मनवचनकाय की जो वृत्ति ताका अभाव, ताका नाम तीन गुप्ति कहिए। सो परम आदरतैं साधुनि को अंगीकार करनी।

क्रोध मान माया लोभ ये कषाय जीव के महाशत्रु हैं। सो क्षमातैं क्रोध को जीतना, अर मार्दव कहिए निगर्व परिणाम तिनकरि मान को जीतना। अर आर्जव कहिए सरल परिणाम – निकपट भाव ताकरि मायाचार को जीतना। अर संतोषतैं लोभ को जीतना। शास्त्रोक्त धर्म के करनहारे जे मुनि तिनको कषायों का निग्रह करना योग्य है।

ये पांच महाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, कषायनिग्रह मुनिराज का धर्म है। अर मुनि का मुख्य धर्म त्याग है। जो सर्वत्यागी होय सो ही मुनि है। अर स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र – ये प्रसिद्ध पांच इन्द्री तिनका वश करना सो धर्म है।

अर अनशन कहिए उपवास, अवमौदर्य कहिए अल्प आहार, व्रतपरिसंख्या कहिए विषम प्रतिज्ञा का धारणा, अटपटी बात विचारनी, या विधि आहार मिलेगा तो लेवेंगे नातर नाहीं। अर रसपरित्याग कहिए रसनि का त्याग, विविक्तशय्यासन कहिए एकांत वनविषै रहना, स्त्री तथा बालक तथा नपुंसक तथा ग्राम्यपशु इनकी संगति साधुवों को न करनी। तथा और भी संसारी

जीवों की संगति न करनी। मुनि को मुनि ही की संगति करनी। अर कायक्लेश कहिए ग्रीष्म में गिरिशिखर, शीतविषै नदी के तीर, वर्षा में वृक्ष के तलैं, तीनों काल के तप करने तथा विषमभूमिविषै रहना। मासोपवासादि अनेक तप करना, ये षट् बाह्य तप कहे।

अर आभ्यंतर षट् तप सुनो – प्रायश्चित्त कहिए जो कोई मनतैं तथा वचनतैं तथा कायतैं दोष लाग्या सो सरल परिणामकरि श्रीगुरु के निकट प्रकाशकरि तपादि दंड लेना। बहुरि विनय कहिये देवगुरु शास्त्र साधर्मियों का विनय करना तथा दर्शन ज्ञान चारित्र का आचरण सो ही इनका विनय, अर इनके जे धारक तिनका आदर करना, आपतैं जो गुणाधिक होय ताहि देखकरि उठ खड़ा होना, सन्मुख जाना। आप नीचे बैठना उनको ऊंचे बिठाना। मिष्ट वचन बोलना, दुख पीड़ा मेटनी, अर वैयाव्रत कहिए जे तपकरि तप्तायमान हैं, रोगकरि युक्त है गात्र जिनका, वृद्ध हैं अथवा नववय के जे बालक हैं तिनका नाना प्रकार यत्न करना, औषध पथ्य देना, उपसर्ग मेटना, अर स्वाध्याय कहिए जिनशासन का वाचना पूछना। आम्नाय कहिये परिपाटी, अनुप्रेक्षा कहिए बारम्बार चितारना, धर्मोपदेश कहिए धर्म का उपदेश देना। अर व्युत्सर्ग कहिये शरीर का ममत्व तजना तथा एकदिवस आदि वर्ष पर्यंत कायोत्सर्ग धरना। अर ध्यान कहिये आर्तरौद्र ध्यान का त्यागकर धर्मध्यान शुक्लध्यान का ध्यावना, ये छह प्रकार के आभ्यंतर तप कहे।

ये बाह्याभ्यंतर द्वादश तप सब ही धर्म हैं। या धर्म के प्रभाव से भव्यजीव कर्मनि का नाश करै हैं, अर तप के प्रभावकरि अद्भुत शक्ति होय है। सर्व मनुष्य अर देवों को जीतनेकूं समर्थ होय है। विक्रियाशक्तिकरि जो चाहै सो करै। विक्रिया के अष्ट भेद हैं। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। सो महामुनि तपोनिधि परम शांत हैं, सकल इच्छातैं रहित हैं, अर ऐसी सामर्थ्य है चाहैं तो सूर्य का आताप निवारैं, चाहैं तो जल वृष्टि करि क्षणमात्रविषै जगत को पूर्ण करैं, चाहैं तो भस्म करैं, क्रूरदृष्टि कर देखैं तो प्राण हरैं, कृपादृष्टिकर देखैं तो रंक से राजा करैं, चाहैं तो रत्न स्वर्ण की वर्षा करैं, चाहैं तो पाषाण की वर्षा करैं, इत्यादि सामर्थ्य है परन्तु करैं नाहीं। करैं तो चारित्र का नाश होय। तिन मुनियों के चरणरजकर सर्व रोग जाय। मनुष्यों को अद्भुत विभव के कारण तिनके चरण कमल हैं।

जीव धर्मकर अनंतशक्ति को प्राप्त होय हैं, धर्म करि कर्मनि को हरै हैं। अर कदाचित् कोउ जन्म लेय तो सौधर्म स्वर्ग आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाय स्वर्गविषै इन्द्रपद पावै। तथा इन्द्र समान विभूति के धारक देव होय। जिनके अनेक खण के मंदिर स्वर्ण के, स्फटिक मणि के, वैडूर्यमणि के थंभ, अर रत्नमई भीति, देदीप्यमान अर सुन्दर झरोखनिकरि शोभायमान, पद्मरागमणि आदि नाना प्रकार की मणि के शिखर हैं जिनके, अर मोतियों की झालरों से शोभित अर जिनमहलों

में अनेक चित्राम सिंहों के, गजों के, हंसों के, स्वानों के, हिरणों के, मयूर, कोकिलादिकों के दोनों भीतिविषै रत्नमई चित्राम शोभायमान हैं। चन्द्रशालादिकरि युक्त, ध्वजों की पंक्तिकर शोभित, अत्यन्त मन के हरणहारे, मंदिर सजे हैं। आसनादिकरि संयुक्त जहां नाना प्रकार के वादित्र बाजे हैं, आज्ञाकारी सेवक देव अर महामनोहर देवांगना, अद्भुत देवलोक के सुख, महा सुन्दर सरोवर, कमलादिक रसयुक्त कल्पवृक्षों के वन, विमान आदि विभूतियें; यह सभी जीव धर्म के प्रभावकरि पावै हैं।

अर कैसे हैं स्वर्गनिवासी देव, अपनी कांतिकरि अर दीप्तिकरि चांद सूर्य को जीते हैं। स्वर्गलोकविषै रात्रि अर दिवस नाहीं। निद्रा नाहीं। अर देवों का शरीर माता पिता से उत्पन्न नाहीं होता। जब अगला देव खिर जाय तब नया देव उत्पादिक शय्याविषै उपजै है। जैसैं कोई सूता मनुष्य सेजतैं जाग उठै तैसैं क्षणमात्र में देव उत्पादिक शय्याविषै नवयौवन को प्राप्त भया प्रकट होय है। कैसा है तिनका शरीर? सात उपधातु रहित, निर्मल, रज पसेव अर रोगनितैं रहित, सुगंध पवित्र कोमल, परम शोभायुक्त, नेत्रों को प्यारा, ऐसा उत्पादिक शुभ वैक्रियक देवों का शरीर होय, सो ये प्राणी धर्मकरि पावै है। जिनके आभूषण महा दैदीप्यमान तिनकी कांति के समूह करि दशोंदिशा में उद्योत होय रहा है। अर तिनके देवन के देवांगना महासुन्दर हैं, कमलों के पत्र समान सुन्दर हैं चरण जिनके, अर केले के थंभ समान हैं जंघा जिनकी, कांचीदाम (तागड़ी) करि शोभित है सुन्दर कटि अर नितंब जिनके।

जैसैं गजनि के घंटी का शब्द होय तैसैं कांचीदाम की क्षुद्र घंटिकनि का शब्द होय है। उगते चन्द्रमा सैं अधिक कांति धरै हैं। मनोहर है स्तनमंडल जिनका, रत्नों के समूहकरि ज्योति को जीतै अर चांदनी को जीतै ऐसी है प्रभा जिनकी, मालती की जो माला ताहूँ तैं अति कोमल है भुजलता जिनकी, महा अमौलिक वाचाल मणिमई चूड़े तिनकरि शोभित हैं हाथ जिनके, अर अशोक वृक्ष की कोंपल समान कोमल अरुण है हथेली जिनकी, अति सुन्दर कर की आंगुली, शंख समान ग्रीवा, कोकिल हू तैं अति मनोहर हैं कंठ जिनके, अति लाल, अति सुन्दर रस के भरे अधर, तिनकरि आच्छादित कुंद के पुष्प समान दंत, अर निर्मल दर्पणसमान सुन्दर हैं कपोल जिनके, लावण्यताकरि लिप्त भई हैं सर्वदिशा, अर अति सुन्दर तीक्ष्ण काम के बाण समान नेत्र, सो नेत्रों की कटाक्ष कर्णपर्यंत प्राप्त भई हैं सोई मानों कर्णाभरण भए।

अर पद्मरागमणि आदि अनेक मणिनि के आभूषण, अर मोतियों के हार तिनकरि मंडित, अर भ्रमर समान श्याम, अति सूक्ष्म, अति निर्मल, अति चीकने, अति सघन, वक्रता धरैं लंबे केश, अति कोमल शरीर, अति मधुर स्वर, अत्यन्त चतुर सर्व उपचार की जाननहारी, महा

सौभाग्यवंती, रूपवंती, गुणवंती, मनोहर क्रीड़ा की करणहारी, नंदनादि वनोंतैं उपजी जो सुगंध ताहूतैं अति सुगंध है श्वास जिनके, पराए मन का अभिप्राय चेष्टा में जान जांय ऐसी प्रवीण, पंचेंद्रियों के सुख की उपजावनहारी, मनवांछित रूप की धारणहारी ऐसी स्वर्ग में जो अप्सरा सो धर्म के फलतैं पाइए है।

अर जो इच्छा करैं सो चिंतवतमात्र सर्वसिद्धि होय। इच्छा करैं, सो ही उपकरण प्राप्त होय, जो चाहैं सो सदा संग ही हैं। देवांगनानिकर देव मनवांछित सुख भोगै हैं। जो देवलोक में सुख हैं तथा मनुष्यलोविषै चक्रवर्त्यादिकनि के सुख हैं, सो सर्व धर्म का फल जिनेश्वर देव ने कह्या है। अर तीन लोक में जो सुख ऐसा नाम धरावै हैं, सो सर्व धर्मकरि ही उत्पन्न होय हैं। जे तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती बलभद्र कामदेवादि, दाता भोक्ता मर्यादा के कर्त्ता, निरंतर हजारों राजनिकरि तथा देवनिकरि सेइए हैं, सो सर्व धर्म का फल है। अर जो इन्द्र स्वर्गलोक का राज्य, हजारों जे देव मनोहर आभूषण के धरणहारे तिनका प्रभुत्व धरै है सो सर्व धर्म का फल है। यह तो सकल शुभोपयोगरूप व्यवहार धर्म के फल कहे।

अर जे महामुनि निश्चल रत्नत्रय के धरणहारे मोहरिपु का नाशकरि सिद्धिपद पावै हैं सो शुद्धोपयोगरूप आत्मीक धर्म का फल है। सो मुनि का धर्म मनुष्य जन्म बिना नहीं पाइए है। तातैं मनुष्य देह सर्वजन्मविषै श्रेष्ठ है। जैसैं मृग कहिए वन के जीव तिनमें सिंह अर पक्षियोंविषै गरुड़ अर मनुष्योंविषै राजा, देवोंविषै इन्द्र, तृणानिविषै शालि, वृक्षनिविषै चंदन, अर पाषाणविषै रत्न श्रेष्ठ हैं, तैसैं सकल योनिविषै मनुष्यजन्म श्रेष्ठ हैं। तीन लोकविषै धर्म सार है, अर धर्मविषै मुनि का धर्म सार है। सो मुनि का धर्म मनुष्य देहतैं ही होय है। तातैं मनुष्य जन्म समान और नाहीं। अनंत काल यह जीव परिभ्रमण करै है। तामैं मनुष्यजन्म कबहू ही पावै है।

यह मनुष्य देह महादुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य देह को पाय जो मूढ़ प्राणी, समस्त क्लेशनिकरि रहित करणहारा जो मुनि का धर्म अथवा श्रावक का धर्म नाहीं करै है सो बारम्बार दुर्गतिविषै भ्रमण करै है। जैसैं समुद्रविषै गिस्या महागुणनि का धरणहारा रत्न बहुरि हाथ आवना दुर्लभ है, तैसैं भवसमुद्रविषै नष्ट भया नरदेह बहुरि पावना दुर्लभ है। या मनुष्यदेहविषै शास्त्रोक्त धर्म का साधनकरि कोई मुनिव्रत धर सिद्ध होय हैं, अर कोई स्वर्गनिवासी देव तथा अहमिंद्रपद पावैं, परम्परा मोक्ष पद पावै हैं। या भांति धर्म अधर्म के फल केवली के मुखतैं सुनकरि सब ही सुख को प्राप्त भए। ता समय कमल सारिखे हैं नेत्र जाके, ऐसा कुंभकरण, सो हाथ जोड़ नमस्कारकरि पूछता भया, उपज्या है अति आनन्द जाके, हे नाथ ! मेरे अब भी तृप्ति न भई, तातैं विस्तारकरि धर्म का व्याख्यान विधिपूर्वक मोहि कहो।

तब भगवान अनन्तवीर्य कहते भए - हे भव्य! धर्म का विशेष वर्णन सुनो, जाकरि यह प्राणी संसार के बंधननितैं छूटै सो धर्म दोय प्रकार है- एक महाव्रतरूप, दूजा अणुव्रतरूप। सो महाव्रतरूप यति का धर्म है, अणुव्रत रूप श्रावक का धर्म है। यति घर के त्यागी हैं, श्रावक गृहवासी हैं। तुम प्रथम ही सर्व पापनि का नाश करणहारा सर्व परिग्रह के त्यागी जे महामुनि तिनका धर्म सुनो।

या अवसर्पणी कालविषै अब तक ऋषभदेवतैं लगाय मुनिसुव्रत पर्यंत बीस तीर्थंकर हो चुके हैं, अब चार और होयेंगे। या भांति अनन्त भए, अर अनन्त होवेंगे, सो सबनि का एक मत है। यह श्री मुनिसुव्रतनाथ का समय है। सो अनेक महापुरुष जन्म मरण के दुखकरि महा भयभीत भए या शरीर को एरंड की लकड़ी समान असार जानि सर्वपरिग्रह का त्याग करि मुनिव्रत को प्राप्त भए। ते साधु अहिंसा, असत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्यागरूप पंचमहाव्रत तिनविषै रत, तत्त्वज्ञानविषै तत्पर, पंचसमिति के पालनहारे, तीन गुप्ति के धरनहारे, निर्मलचित्त, महापुरुष, परमदयालु, निजदेहविषै भी निर्ममत्व रागभावरहित, जहां सूर्य अस्त होय तहां ही बैठे रहैं, कोई आश्रय नाहीं, तिनके कहा परिग्रह होय?

पाप का उपजावनहारा जो परिग्रह सो तिनके बाल के अग्रभाग मात्र हू नाहीं। ते महाधीर महामुनि, सिंहसमान साहसी, समस्त प्रबंध रहित, पवन सारिखे असंगी, तिनके रंचमात्र भी संग नाहीं। पृथ्वी समान क्षमा, जल सारिखे विमल, अग्नि सारिखे कर्म को भस्म करनहारे, आकाश सारिखे अलिप्त, अर सर्व सम्बन्ध रहित, प्रशंसा योग्य है चेष्टा जिनकी, चन्द्र सारिखे सौम्य, सूर्य सारिखे तिमिर के हरता, समुद्र सारिखे गम्भीर, पर्वत सारिखे अचल, काछिवा समान इन्द्रियों के संकोचनहारे, कषायनि की तीव्रतारहित, अठाईस मूलगुण, चौरासीलाख उत्तरगुणों के धरणहारे, अठारह हजार शील के भेद तिनके धारक, तपोनिधि मोक्षमार्गी, जिनधर्म में लवलीन, जैन शास्त्रों के पारगामी, अर सांख्य-पातंजल, बौद्ध, मीमांसक, नैयायिक, वैशेषिक, वेदांती इत्यादि पर शास्त्रों के भी वेत्ता, महाबुद्धिमान सम्यक्दृष्टि, यावज्जीव पापनि के त्यागी, यम नियम के धरनहारे, परमसंयमी, परम शांत, परम त्यागी, निगर्व, अनेक ऋद्धिसंयुक्त, महामंगलमूर्ति जगत के मंडन, महागुणवान।

केई एक तो ताही भव में कर्म काट सिद्ध होय, कई एक उत्तमदेव होय दोय तीन भव में ध्यानाग्निकरि समस्त कर्मकाष्ठ बाल, अविनाशी सुख को प्राप्त होय हैं। यह यती का धर्म कह्या। अब स्नेहरूपी पींजरे में पड़े जे गृहस्थी तिनका द्वादशव्रतरूप जो धर्म सो सुनो। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, अर अपनी शक्तिप्रमाण हजारों नियम, त्रसघात का त्याग,

अर मृषावाद का परिहार, परधन का त्याग, परदारा परित्याग, अर परिग्रह का परिमाण, तृष्णा का त्याग ये पांच अणुव्रत, अर हिंसादि का प्रमाण, देशों का प्रमाण, जहां जिन धर्म का उद्योत नाहीं तिन देशनि का त्याग, अनर्थदंड का त्याग ये तीन गुणव्रत हैं।

अर सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग, भोगोपभोगपरिमाण, ये चार शिक्षाव्रत – ये बारह व्रत हैं। अब इन व्रतों के भेद सुनो। जैसैं अपना शरीर आपको प्यारा है तैसा सबनि को प्यारा है। ऐसा जान सर्वजीवनि की दया करनी। उत्कृष्ट धर्म जीव दया ही भगवान ने कह्या है। जे निर्दई जीव हनै हैं तिनके रंचमात्र भी धर्म नाहीं।

अर जामैं परजीवनि को पीड़ा होय सो वचन न कहना। परबाधाकारी वचन सोई मिथ्या, अर पर उपकाररूप वचन सोई सत्य।

अर जे पापी चोरी करैं, पराया धन हरैं हैं ते इस भव में बधबंधनादि दुख पावै हैं, कुमरणतैं मरै हैं, अर परभव नरक मैं पड़े हैं, नाना प्रकार के दुख पावै हैं। चोरी दुःख का मूल है। तातैं बुद्धिमान सर्वथा पराया धन न हरै हैं। सो जाकरि दोनों लोक बिगड़े ताहि कैसैं करैं?

अर सर्पिणी समान परनारी को जानिकरि दूर ही तैं तजो। यह पापिनी परनारी कामलोभ के वशीभूत पुरुष की नाश करनहारी है। सर्पिणी तो एकभव ही प्राण हरै है अर परनारी अनन्त भव प्राण हरै है। कुशील के पापतैं निगोद में जाय हैं सो अनन्त जन्म मरण करै हैं। अर याही भवविषै मारना ताड़ना आदि अनेक दुःख पावै हैं। यह परदारासंगम नरकनिगोद के दुस्सह दुखनि का देनहारा है।

जैसैं कोई परपुरुष अपनी स्त्री का पराभव करै तो आपको बहुत बुरा लागै, अति दुख उपजै, तैसैं ही सकल की व्यवस्था जाननी।

अर परिग्रह का परिमाण करना, बहुत तृष्णा न करनी। जो यह जीव इच्छा को न रोकै तो महादुखी होय। यह तृष्णा ही दुःख का मूल है, तृष्णा समान और व्याधि नाहीं।

या ऊपर एक कथा है, सो सुनो – एक भद्र दूजा कंचन, ये दोय पुरुष हुते। तिनमैं भद्र फलादिक का बेचनहारा सो एक दीनारमात्र परिग्रह का परिमाण करता भया। एक दिवस मार्ग में दीनारों का बटवा पड्या देख्या तामैं सों एक दीनार कोतूहलकरि लीनी। अर दूजा कांचन है नाम जिसका। तानै सर्व बटवा ही उठाय लिया। सो दीनारनि का स्वामी राजा, तानै बटवा उठावता देखि कांचन को पिटाया, अर गामतैं काढ्या। अर भद्र ने एक दीनार लीनी हुती सों राजा को बिना मांगे स्वयमेव सौंप दीनी। राजा ने भद्र का बहुत सन्मान किया – ऐसा जानकरि बहुत तृष्णा न करनी। संतोष धरना ये पांच अणुव्रत कहे।

बहुरि चार दिशा, चार विदिशा, एक अधः, एक ऊर्ध्व, इन दश दिशानि का परिमाण करना

कि इस दिशा को एती दूर जाऊंगा। आगैं न जाऊंगा। बहुरि अपध्यान कहिए खोटा चिंतवन, पापोपदेश कहिए अशुभकार्य का उपदेश, हिंसादान कहिए विष फांसी लोहा सीसा खड्गादि शस्त्र तथा चाबुक इत्यादि जीवन के मारवे के उपकरण मांग्या देना तथा जे जाल रस्सा इत्यादि बंधन के उपाय तिनका व्यापार अर श्वान मार्जार चीतादिक का पालना, अर कुश्रुति श्रवण कहिए कुशास्त्र का श्रवण, प्रमादचर्या कहिए प्रमादकरि वृथा छै काय के जीवों की विराधना करनी, ये पांच प्रकार के अनर्थदंड तजने।

अर भोग कहिए आहारादिक उपभोग कहिए स्त्रीवस्त्राभूषणादिक; तिनका परिमाण करना। अर्थात् ये विचार जे अभक्ष्य भक्षणादि परदारा सेवनादि अयोग्य विषय हैं तिनका तो सर्वथा त्याग, अर जे योग्याहार तथा स्वदारसेवनादि तिनका नियमरूप परिमाण। यह भोगोपभोग परिसंख्याव्रत कहिए। ये तीन गुणव्रत कहे।

अर सामायिक कहिए समताभाव, पंचपरमेष्ठी अर जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर तिनका स्तवन, अर सर्व जीवों सों क्षमाभाव, सो प्रभात मध्याह्न सायंकाल छै छै घड़ी तथा चार चार घड़ी तथा दो दोय घड़ी अवश्य करना। अर प्रोषधोपवास कहिए दोय आठें, दोय चोदस, एक मास में चार उपवास, षोडश पहर के पोसे संयुक्त अवश्य करने। सोलह पहर तक संसार के कार्य का त्याग करना, आत्मचिंतवन तथा जिनभजन करना।

अर अतिथिसंविभाग कहिए अतिथि जे परिग्रहरहित मुनि, जिनके तिथि वार का विचार नाहीं सो आहार के निमित्त आवैं, महागुणों के धारक तिनको विधिपूर्वक अपने वृत्तानुसार बहुत आदरतैं योग्य आहार देना, अर आयु के अंत विषै अनशन व्रतधर समाधिमरण करना सो संलेखनाव्रत[1] कहिए। ये चार शिक्षाव्रत कहे।

या प्रकार पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ये बारहव्रत जानने। जे जिनधर्मी हैं तिनके मद्य मांस मधु, मांखण, उदंबरादि अयोग्य फल, रात्रिभोजन, बीध्या अन्न, अनछाना जल, परदारा तथा दासी वेश्यासंगम इत्यादि अयोग्य क्रिया का सर्वथा त्याग होय है। यह श्रावक के धर्म पालकर समाधिमरण कर उत्तम देव होय, फिर उत्तम मनुष्य होय सिद्धपद पावै है। अर जे शास्त्रोक्त आचरण करने को असमर्थ हैं, न श्रावक के व्रत पालैं न यति के परन्तु जिनभाषित की दृढ़ श्रद्धा है ते भी निकट संसारी हैं, सम्यक्त के प्रसाद से व्रत को धारण करि शिवपुर को प्राप्त होय हैं। सर्व लाभ में श्रेष्ठ जो सम्यग्दर्शन का लाभ ताकरि ये जीव दुर्गति के त्रासतैं छूटे है। जो प्राणी भावतैं श्रीजिनेन्द्र देव को नमस्कार करै हैं सो पुण्याधिकारी पापों के क्लेशतैं निवृत्त होय हैं।

1. इस जगह देशावकाशिकव्रत का उल्लेख नहीं किया, उसकी जगह सल्लेखनाव्रत लिखकर चार शिक्षाव्रत पूरे किये गये हैं।

अर जो प्राणी भावकरि सर्वज्ञदेव को सुमरै हैं तथा भव्यजीव के अशुभकर्म कोटि भव के उपारजे तत्काल क्षय होय हैं। अर जो महाभाग्य त्रैलोक्यविषै सार जो अरहंतदेव तिनको हृदयविषै धारै हैं सो भवकूपविषै नाहीं परै हैं। ताके निरन्तर सर्व भाव प्रशस्त हैं। अर ताको अशुभ स्वप्न न आवै, अर शुभ स्वप्न ही आवें, अर शुभ शकुन ही होय हैं। अर जो उत्तम जन ''अर्हते नम:'' यह वचन भावतैं कहै हैं ताके शीघ्र ही मलिन कर्म का नाश होय है, याविषै संदेह नाहीं।

मुक्तियोग्य प्राणी का चित्तरूप कुमुद, परम निर्मल वीतराग जिनचंद्र की कथारूप जो किरण तिनके प्रसंगतैं प्रफुल्लित होय है। अर जे विवेकी अरहंत सिद्धसाधुवों ताईं नमस्कार करै है सो वर्ग जिनधर्मीनि का प्यारा है। ताहि अल्प संसारी जानना। अर जो उदारचरित श्री भगवान के चैत्यालय करावै, जिनबिंब पधरावै है, जिनपूजा करै है, जिनस्तुति करै है तिनकै या जगतविषै कछु दुर्लभ नाहीं। नरनाथ कहिए राजा होहु अथवा कुटुंबी होहु, किसान होहु, धनाढ्य होहु तथा दलिद्री होहु, जो मनुष्य धर्मकरि युक्त है सो सर्व त्रैलोक्यविषै पूज्य है। जे नर महाविनयवान हैं, अर कृत्य अकृत्य के विचारविषै प्रवीण हैं, जो यह कार्य करना यह न करना ऐसा विवेक धरै हैं, ते विवेकी धर्म के संयोगतैं गृहस्थिविषै मुख्य हैं। जे जन मधु मांस मद्य आदि अभक्ष्य का संसर्ग नाहीं करै हैं तिनही का जीवन सफल है। अर शंका कहिए जिन वचनों में संदेह, कांक्षा कहिये या भवविषै अर परभवविषै भोगनि की बांछा, विचिकित्सा कहिए रोगी वा दुखी कों देख घृणा करणी, आदर नाहीं करना, अर आत्मज्ञानतैं दूर जे परदृष्टि कहिए जिनधर्मतैं पराङ्मुख मिथ्यामार्गी तिनकी प्रशंसा करनी, अर अन्यशासन कहिए हिंसामार्ग ताके सेवनहारे जे निर्दयी मिथ्यादृष्टि तिनके निकट जाय स्तुति करनी, ये पांच सम्यक्दर्शन के अतीचार हैं।

तिनके त्यागी जे जंतु कहिए प्राणी ते गृहस्थनिविषै मुख्य हैं। अर जो प्रियदर्शन कहिए प्यारा है दर्शन जाका, सुन्दर वस्त्राभरण पहिरे, सुगंध शरीर, मार्ग चालते, धरती को देखता, निर्विकार जिनमन्दिर में जाय है, शुभ कार्योंविषै उद्यमी ताके पुण्य का पार नाहीं। अर जो पराए द्रव्य को तृणसमान देखै हैं, अर परजीव को आप समान देखै हैं, अर परनारी को माता समान देखे हैं सो धन्य हैं। अर जाके ये भाव हैं – ऐसा दिन कब होयगा जो मैं जिनेंद्रीदीक्षा लेयकरि महामुनि होय पृथ्वीविषै निर्द्वंद्व विहार करूंगा, ये कर्मशत्रु अनादि के लगे हैं तिनका क्षयकरि कब सिद्धपद प्राप्त करूं, या भांति निरंतर ध्यान कर निर्मल भया है चित्त जाका ताके कर्म कैसैं रहैं? भयकरि भाग जांय।

कई एक विवेकी सात आठ भव में मुक्ति जाय हैं, कई एक दोय तीन भवविषै संसार समुद्र के पार होय हैं, कई एक चरमशरीरी उग्र तपकरि शुद्धोपयोग के प्रसादतैं तद्भव मोक्ष होय है। जैसे कोई मार्ग का जाननहारा पुरुष शीघ्र चलै तो शीघ्र ही स्थान को जाय पहुंचे, अर कोई धीरे धीरे

चलै तो घने दिन में जाय पहुंचे, परन्तु मार्ग चलै सो पहुंचे ही, अर जो मार्ग ही न जाने अर सौ-सौ योजन चाले तो भी भ्रमता ही रहै, इष्ट स्थान को न पहुंचे। तैसैं मिथ्यादृष्टि उग्र तप करें तो भी जन्ममरण वर्जित जो अविनाशीपद ताहि न प्राप्त होय। संसार वन ही विषै भ्रमें, नहीं पाया है मुक्ति का मार्ग तिनने। कैसा है संसारवन? मोहरूप अंधकारकरि आच्छादित है, अर कषायरूप सर्पनिकरि भर्‌या है। जिस जीव के शील नाहीं, व्रत नाहीं, सम्यक्त नाहीं, त्याग नाहीं, वैराग्य नाहीं, सो संसार समुद्र को कैसैं तिरै?

जैसैं विंध्याचल पर्वततैं चल्या जो नदी का प्रवाह ताकरि पर्वत समान ऊंचे हाथी बह जांय तहां एक शसा क्यों न बहै? तैसैं जन्मजरामरण रूप भ्रमण को धरैं संसाररूप जो प्रवाह ताविषै जे कुतीर्थी कहिए मिथ्यामार्गी अज्ञान तापस है तेई डूबे हैं, फिर तिनके भक्तों का कहा कहना? जैसैं शिला जलविषै तिरवे समर्थ नाहीं तैसैं परिग्रह के धारी कुदृष्टि शरणागतनि कों तारवे समर्थ नाहीं। अर जे तत्त्वज्ञानी तपकरि पापनि के भस्म करणहारे हलके होय गए हैं कर्म जिनके, ते उपदेशथकी प्राणियों को तारने समर्थ हैं। यह संसारसागर महा भयानक है। यामैं यह मनुष्यक्षेत्र रत्नद्वीप समान है सो महाकष्टतैं पाइए है। तातैं बुद्धिवंतनि को या रत्नद्वीपविषै नेमरूप रत्न ग्रहण करने अवश्य योग्य हैं। यह प्राणी या देह को तजकरि परभवविषै जायगा। अर जैसैं कोई मूर्ख तागा के अर्थि महामणि के हार का तागा निकालने को महामणियों का चूर्ण करै तैसैं यह जड़बुद्धि विषय के अर्थ धर्मरत्न को चूर्ण करै है।

अर ज्ञानी जीवों को सदा द्वादश अनुप्रेक्षा का चिंतवन करना। ये शरीरादि सर्व अनित्य हैं, आत्मा नित्य है, या संसारविषै कोई शरण नाहीं, आपको आप ही शरण है तथा पंच परमेष्ठी का शरण है। और संसार महा दुखरूप है, चतुर्गतिविषै काहू ठौर सुख नाहीं, एक सुख का धाम सिद्धपद है। यह जीव सदा अकेला है, याका कोई संगी नाहीं, अर सर्व द्रव्य जुदे जुदे हैं, कोई काहूसों मिले नाहीं। अर शरीर महा अशुचि है, मलमूत्र का भर्‌या भाजन है। आत्मा निर्मल है। अर मिथ्यात्व अव्रत कषाय योग प्रमादनिकरि कर्म का आस्रव होय है। अर व्रत समिति गुप्ति दशलक्षण धर्म अनुप्रेक्षानि का चिंतवन, परीषहजय चारित्रकरि संवर होय है। आस्रव का रोकना सो संवर अर तपकर पूर्वोपाजित कर्म की निर्जरा होय है। अर यह लोक षट्द्रव्यात्मक अनादि अकृत्रिम शाश्वत है। लोक के शिखर सिद्धलोक है। लोकालोक का ज्ञायक आत्मा है, अर जो आत्मस्वभाव जो ही धर्म है, जीवदया धर्म है। अर जगतविषै शुद्धोपयोग दुर्लभ है, सोई निर्वाण का कारण है। या प्रकार द्वादश अनुप्रेक्षा विवेकी सदा चिंतवै। या भांति मुनि अर श्रावक के धर्म कहे। अपनी शक्ति प्रमाण जो धर्म सेवै उत्कृष्ट मध्यम तथा जघन्य सो सुरलोकादिविषै तैसा ही फल पावै।

या भांति केवली कही तब भानुकर्ण कहिए कुंभकर्ण ने केवली सों पूछी – हे नाथ! भेदसहित नियम का स्वरूप जानना चाहूं हूं। तब भगवान ने कही – हे कुंभकर्ण! नियम में अर तप में भेद नाहीं, नियमकरि युक्त जो प्राणी सो तपस्वी कहिए। तातैं बुद्धिमान नियमविषै सर्वथा यत्न करै। जेता अधिक नियम करै सो ही भला। अर जो बहुत न बनै तो अल्प ही नियम करना, परन्तु नियम बिना न रहना। जैसैं बनै सुकृत का उपार्जन करना। जैसे मेघ की बूंद परै हैं तिन बूंदनिकरि महानदी का प्रवाह होय जाय है, सो समुद्रविषै जाय मिलै है, तैसें जो पुरुष दिनविषै एक मुहूर्तमात्र भी आहार का त्याग करै सो एक मास में एक उपवास के फल कों प्राप्त होय। ताकरि स्वर्गविषै बहुत काल सुख भोग, मनवांछित भोग प्राप्त होय। जो कोई जिनमार्ग की श्रद्धा करता संता यथाशक्ति तप नियम करै ता महात्मा दीर्घकाल स्वर्गविषै सुख होय, बहुरि स्वर्गतैं चयकर मनुष्यभवविषै उत्तम भोग पावै है।

एक अज्ञान तापसी की पुत्री वनविषै रहै सो महादुखवंती वदरीफल (बेर) आदि कर आजीविका पूर्ण करै। तानैं सत्संगतैं एक मुहूर्तमात्र भोजन का नियम लिया। ताके प्रभावतैं एक दिन राजा ने देखी, आदरतैं परणी, बहुत सम्पदा पाई अर धर्मविषै बहुत सावधान भई, अनेक नियम आदरे।

सो जो प्राणी कपटरहित होय जिनवचन कों धारण करै सो निरंतर सुखी होय, परलोक में उत्तमगति पावैं। अर जो दो मुहूर्त प्रति दिवस भोजन का त्याग करै ताके एकमास विषै दोय उपवास का फल होय। तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र गिनो। अर तीन मुहूर्त प्रति दिन अन्न जल का त्याग करै तो एक मास विषै तीन उपवास का फल होय। या भांति जेता अधिक नियम तेता ही अधिक फल। नियम के प्रसादकरि ये प्राणी स्वर्गविषै अद्‌भुत सुख भोगै हैं, अर स्वर्गतैं चयकर अद्‌भुत चेष्टा के धरणहारे मनुष्य होय हैं। महाकुलवंती, महारूपवंती, महागुणवंती, महालावण्यकर लिप्त, मोतियों के हार पहरै, अर मन के हरनहारे जे हाव भाव विलास विभ्रम तिनकों धरें जे शीलवंती स्त्री, तिनके पति होय हैं। अर स्त्री स्वर्गतैं चयकर बड़े कुलविषै उपज बड़े राजानि की रानी होय हैं, लक्ष्मी समान है स्वरूप जिनका।

अर जो प्राणी रात्रि भोजन का त्याग करै है अर जलमात्र नाहीं ग्रहै हैं ताके अति पुण्य उपजै है। पुण्यकरि अधिक प्रताप होय है। अर जो सम्यग्दृष्टि व्रत धारै ताकै फल का कहा कहना? विशेष फल पावै, स्वर्गविषै रत्नमई विमान तहां अप्सरावों के समूह के मध्य में बहुतकाल धर्म के प्रभावकरि तिष्ठै है। बहुरि दुर्लभ मनुष्य देही पावै। तातैं सदा धर्मरूप रहना अर सदा जिनराज की उपासना करनी। जे धर्मपरायण हैं तिनको जिनेंद्र का आराधन ही परमश्रेष्ठ है। कैसे हैं

जिनेन्द्रदेव? जिनके समोसरण की भूमि रत्नकंचनकर निरमापित, देव मनुष्य तिर्यंचनिकर बंदनीक है। जिनेंद्रदेव आठ प्रातिहार्य, चौंतीस अतिशय, महा अद्भुत हजारों सूर्यसमान तेज, महासुन्दर रूप, नेत्रों को सुखदाता हैं। जो भव्यजीव भगवान को भावकर प्रणाम करै सो विचक्षण थोड़े ही कालविषै संसार समुद्र को तिरै।

श्रीवीतरागदेव के सिवाय कोई दूसरा जीवनि को कल्याण की प्राप्ति का उपाय और नाहीं। तातैं जिनेन्द्रचन्द्र ही का सेवन योग्य है। अर हजारों मिथ्यामार्ग हैं तिनविषै प्रमादीजीव भूल रहे हैं। तिन कुतीर्थीनि के सम्यक्त्व नाहीं। अर मद्य मांसादिक के सेवनतैं दया नाहीं। अर जैनविषै परमदया है, रंचमात्र भी दोष की प्ररूपणा नाहीं। अर अज्ञानी जीवों के यह बड़ी जड़ता है जो दिवस में आहार का त्याग करैं अर रात्रि में भोजन कर पाप उपार्जें। चार पहर दिन अनशन व्रत किया। ताका फल रात्रि भोजनतैं जाता रहै, महापाप का बंध होय।

रात्रि का भोजन महा अधर्म, जिन पापियों ने धर्म कह कलप्या, कठोर है चित्त जिनका तिनको प्रतिबोधना बहुत कठिन है। जब सूर्य अस्त होय, जीवजन्तु दृष्टि न आवैं तब जो पापी विषयनि का लालची भोजन करै है सो दुर्गति के दुख कों प्राप्त होय है। योग्य अयोग्य को नहीं जानै है। जो अविवेकी पापबुद्धि अंधकार के पटल कर आच्छादित भए हैं नेत्र जाके, रात्रि को भोजन करै हैं सो मक्षिका कीट केशादिक का भक्षण करै हैं। जो रात्रि भोजन करै है सो डाकिन राक्षस स्वान मार्जार मूसा आदिक मलिन प्राणियों का उच्छिष्ट आहार करै हैं। अथवा बहुत प्रपंचकर कहा? सर्वथा यह व्याख्यान है कि जो रात्रि को भोजन करै है सो सर्व अशुचि का भोजन करै है। सूर्य के अस्त भये पीछे कछु दृष्टि न आवै। तातैं दोय मुहूर्त दिवस बाकी रहै तबतैं लेकर दोय मुहूर्त दिन चढ़े तक विवेकियों को चौविधि आहार न करना। अशन पान खाद स्वाद ये चार प्रकार के आहार तजने।

जे रात्रि भोजन करै हैं ते मनुष्य नहीं पशु हैं। जो जिनशासनतैं विमुख व्रत नियम से रहित है रात्रिदिवस भखवै ही करै हैं सो परलोकविषै कैसैं सुखी होय? जो दयारहित जीव जिनेंद्रदेव की जिन धर्म की अर धर्मात्माओं की निंदा करै हैं सो परभव में महानरक में जाय हैं। अर नरकतैं निकसकर तिर्यंच तथा मनुष्य होय सो दुर्गंधमुख होय हैं। मांस मद्य मधु, निशि भोजन, चोरी अर परनारी सो सेवै हैं सो दोनों जन्म खोवें हैं। जो रात्रिभोजन करै हैं सो अल्पआयु, हीन, व्याधिपीड़ित सुख रहित, महादुखी होय है। रात्रिभोजन के पापतैं बहुतकाल जन्म मरण के दुख पावै हैं, गर्भवासविषै बसे हैं। रात्रिभोजी अनाचारी शूकर, कूकर, गरदभ, मार्जार, काग, वन, नरकनिगोद स्थावर त्रस अनेक योनियों में बहुत काल भ्रमण करे है, हजारों अवसर्पणीकाल अर

हजारों उत्सर्पणी काल योनिनिविषै दुख भोगे हैं। जो कुबुद्धि निशिभोजन करै हैं सो निशाचर कहिए राक्षस समान हैं। अर जे भव्यजीव जिनधर्म कों पायकर नियमविषै तिष्ठैं हैं, सो समस्त पापों को भस्म कर मोक्षपद कों पावै हैं। जो व्रत लेयकरि भंग करै सो दुखी ही हैं, जे अणुव्रतों में परायण रत्नत्रय के धारक श्रावक हैं ते दिवसविषै ही भोजन करैं, दोषरहित योग्य आहार करैं। जे दयावान रात्रिभोजन न करैं ते स्वर्गविषै सुख भोगकर तहांतैं चयकर चक्रवर्त्यादिक के सुख भोगै हैं। शुभ है चेष्टा जिनकी, उत्तम व्रतनियम चेष्टा के धरनहारे सौधर्मादि स्वर्गविषै ऐसे भोग पावैं जो मनुष्यों को दुर्लभ है, अर देवोंतैं मनुष्य होय सिद्धपद पावैं हैं।

कैसे मनुष्य होय? चक्रवर्ति, कामदेव, बलदेव, महामंडलीक, मंडलीक, महाराजा, राजाधिराज महाविभूति के धनी, महागुणवान, उदारचित्त, दीर्घायु, सुन्दररूप, जिनधर्म के मर्मी, जगत के हितु, अनेक नगर ग्रामादिकों के अधिपति, नाना प्रकार के वाहनों कर मंडित, सर्वलोक के वल्लभ, अनेक सामंतों के स्वामी, दुस्सह तेज के धारनहारे ऐसे राजा होय हैं। अथवा राजावों के मंत्री पुरोहित सेनापति राजश्रेष्ठी तथा श्रेष्ठी, बड़े उमराव महा सामंत, मनुष्यों में यह पद रात्रिभोजन के त्यागी पावै हैं।

देवनि के इन्द्र, भवनवासियों के इन्द्र चक्र के धनी, मनुष्यों के इन्द्र महालक्षणोंकर सम्पूर्ण दिनभोजनतैं होय हैं। सूर्य सारिखे प्रतापी, चन्द्रमा सारिखे सौम्यदर्शन, अस्त को प्राप्त न होय प्रताप जिनका, देवनि समान है भोग जिनके ऐसे, तेई होंइ जे सूर्य अस्त भए पीछे भोजन न करैं, अर स्त्री रात्रिभोजन के पापतैं माता, पिता, भाई कुटुम्बरहित, अनाथ कहिए पतिरहित, अभागिनी शोक दलिद्रकर पूर्ण, रूक्ष फटे अधर हस्तपादादि, सूखा शरीर, चिपटी नासिका, जो देखे सो ग्लानि करैं, दुष्टलक्षण बुरी, मांजरी, आंधी, लूली, गूंगी, बहरी, बावरी, कानी, चीपड़ी, दुरगंधयुक्त, स्थूल अधर, खोटे कर्ण, भूरे ऊंचे बुरे सिर के केश, तूंवडी के बीच समान दांत, कुवरण, कुलक्षण, कांतिरहित, कठोर अंग, अनेक रोगों की भरी, मलिन फटे वस्त्र, उच्छिष्ट की भक्षणहारी, पराई मजूरी करणहारी नारी होय है। रात्रिभोजन की करणहारी नारी जो पति पावै तो कुरूप कुशली कोढी, बुरे कान, बुरी नाक, बुरी आंख, चिंतावान, धन कुटुम्बरहित ऐसा पावै। रात्रि भोजनतैं विधवा, बालविधवा, महादुखवती, जल काष्ठादिक भार के बहनहारी, दुखकर भरै है उदर जाका, सर्व लोग करै हैं अपमान जाका, वचनरूप वसूलों कर छीला है चित्त जाका, अनेक फोड़ा फुन्सी की धरणहारी; ऐसी नारी होय है।

अर जे नारी शीलवंती, शांत है चित्त जिनका, दयावंती रात्रि भोजन का त्याग करै हैं, ते स्वर्गविषैं मनवांछित भोग पावै हैं। तिनकी आज्ञा अनेक देव देवी सिर पर धारै हैं, हाथ जोड़ सिर

निवाय सेवा करै हैं। स्वर्ग में मनवांछित भोग कर और महा लक्ष्मीवान ऊंचकुल में जन्म पावैं हैं। शुभलक्षण, सम्पूर्ण सर्व गुणमंडित, सर्वकला प्रवीण, देखनहारों के मन और नेत्रों कों हरणहारी, अमृतसमान वचन बोले, आनन्द को उपजावनहारी, जिनके परिणवे की अभिलाषा चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव तथा विद्याधरों के अधिपति राखें, बिजुरी समान है कांति जिनकी कमल समान है वदन जिनका, सुन्दर कुण्डल आदि आभूषणनि की धरणहारी, सुन्दर वस्त्रों की पहरनहारी, नरेन्द्र की राणी दिन भोजनतैं होय हैं। जिनके मनवांछित अन्न धन होय है और अनेक सेवक नाना प्रकार की सेवा करै। जे दयावंती रात्रिविषै भोजन न करैं ते श्रीकांता, सुभद्रा, लक्ष्मी तुल्य होवैं। तातैं नर अथवा नारी नियमविषै है चित्त जिनका ते निशिभोजन का त्याग करैं। यह रात्रिभोजन अनेक कष्ट का देनहारा है, रात्रिभोजन के त्यागविषै अति अल्प कष्ट है, परन्तु याके फलकरि अति उत्कृष्ट होय है। तातैं विवेकी यह व्रत आदरैं। अपने कल्याण को कौन न वांछे? धर्म तो सुख की उत्पत्ति का मूल है और अधर्म दुख का मूल है। ऐसा जानकर धर्म को भजो, अधर्म को तजो। यह वार्ता लोकविषै समस्त बालगोपाल जानै है – जो धर्मतैं सुख होय है अर अधर्मकरि दु:ख होय है।

धर्म का माहात्म्य देखो जाकरि देवलोक के चये उत्तम मनुष्य होय हैं, जलस्थल के उपजे जे रत्न तिनके स्वामी, अर जगत की मायातैं उदास, परन्तु कईएक दिन तक महाविभूति के धनी होय गृहवास भोगे हैं, जिनके स्वर्ण रत्न वस्त्र धान्यनि के अनेक भण्डार हैं, जिनके विभव की बड़े बड़े सामंत, नाना प्रकार के आयुधों के धारक रक्षा करैं, तिनके बहुत हाथी, घोड़े, रथ पयादे, बहुत गाय भैंस, अनेक देश ग्राम नगर, मन के हरनहारे पांच इन्द्रियों के विषय, अर हंसनी की सी चाल चलें, अति सुन्दर शुभ लक्षण, मधुर शब्द, नेत्रों को प्रिय, मनोहर चेष्टा की धरणहारी नाना प्रकार आभूषण की धरणहारी स्त्री होय हैं। सकल सुख का मूल जो धर्म है ताहि कई एक मूर्ख जानै ही नाहीं, तातैं तिनके धर्म का यत्न नाहीं। अर कई एक मनुष्य सुनकर जानै हैं – जो धर्म भला है परन्तु पाप कर्म के वशतैं अकार्यविषैं प्रवरतैं हैं, सुख का उपाय जो धर्म ताहि नाहीं सेवै हैं। अर कई एक अशुभकर्म के उपशांत होते उत्तम चेष्टा के धरणहारे श्रीगुरु के निकट जाय धर्म का स्वरूप उद्यमी होय पूछै हैं। ते श्रीगुरु के वचन प्रभावतैं वस्तु का रहस्य जानकर श्रेष्ठ आचरण कों आचरैं हैं। ये नियम धर्मात्मा बुद्धिमान पापक्रियातैं रहित होयकर करै हैं ते महा गुणवंत स्वर्गविषै अद्भुत सुख भोगै हैं। परम्पराय मोक्ष पावै हैं।

जे मुनिराजों को निरंतर आहार देय हैं, अर जिनके ऐसा नियम है कि मुनि के आहार का समय टार भौजन करै, पहिले न करै; ते धन्य हैं। तिनके दर्शन की अभिलाषा देव राखै हैं। दान के

प्रभावकरि मनुष्य इन्द्र का पद पावै अथवा मनवांछित सुख का भोक्ता इन्द्र के बराबर के देव होय हैं। जैसैं वट का बीज अल्प है सो बड़ा वृक्ष होय परणवै है, तैसैं दानतप अल्प भी महाफल के दाता हैं। सहस्रभट सुभट ने यह व्रत लिया हुता कि मुनि के आहार की बेला उलंघकर भोजन करूंगा। सो एक दिन ऋद्धि के धारी मुनि आहार कों आए, सो निरंतराय आहार भया। तब रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य सुभट के घर भए। वह सहस्रभट धर्म के प्रसादतैं कुवेरकांत सेठ भया।

सबके नेत्रों को प्रिय, धर्मविषै जाकी बुद्धि सदा आसक्त है, पृथ्वीविषै विख्यात है नाम जाका, उदार, पराक्रमी, महा धनवान, जाके अनेक सेवक, जैसैं पूर्णमासी का चन्द्रमा तैसा कांतिधारी, परम भोगों का भोक्ता, सर्वशास्त्र प्रवीण, पूर्व धर्म के प्रभावकरि ऐसा भया। बहुरि संसारतैं विरक्त होय जिनदीक्षा आदरी। संसार को पार भया। तातैं जे साधु के आहार के समयतैं पहिले आहार न करने का नियम धारैं ते हरिषेण चक्रवर्ती की नाईं महा उत्सव कों प्राप्त होय हैं। हरिषेण चक्रवर्ती याही व्रत के प्रभाव करि महा पुण्य को उपार्जन कर अत्यन्त लक्ष्मी का नाथ भया। ऐसे ही जे सम्यग्दृष्टि समाधान के धारी भव्य जीव मुनि के निकट जायकर एक बार भोजन का नियम करै हैं। ते एकभुक्ति के प्रभावकर स्वर्ग विमानविषै उपजैं हैं।

जहां सदा प्रकाश है अर रात्रि दिवस नाहीं, निद्रा नाहीं, तहां सागरांपर्यंत अप्सरावों के मध्य रमैं हैं। मोतिन के हार, रत्नों के कड़े, कटिसूत्र, मुकुट, बाजूबंद इत्यादि आभूषण पहरें, जिन पर छत्र फिरें, चमर ढुरे, ऐसे देवलोक के सुख भोग चक्रवर्त्यादि पद पावै हैं। उत्तम व्रतोंविषै आसक्त जे अणुव्रत के धारक श्रावक, शरीर को विनाशीक जानकर शांत भया है हृदय जिनका, अष्टमी चतुर्दशी का उपवास मन शुद्ध होय प्रोषध संयुक्त धारे हैं, ते सौधर्मादि सोलहवैं स्वर्गविषै उपजै हैं, बहुरि मनुष्य होय भव वन को तजै हैं, मुनिव्रत के प्रभावकरि अहमिंद्रपद तथा मुक्तिपद पावै हैं।

जे व्रत गुणशील तपकर मंडित हैं ते साधु जिनशासन के प्रसादकरि सर्वकर्मरहित होय सिद्धनि का पद पावै हैं। जे तीनों काल विषै जिनेंद्रदेव की स्तुति कर मन वचन काय कर नमस्कार करै है, अर सुमेरु पर्वत सारिखे अचल मिथ्यारूप पवनकर नाहीं चलै हैं, गुणरूप गहने पहरें, शीलरूप सुगंध लगावै हैं, सो कई एक भव उत्तम देव उत्तम मनुष्य के सुख भोगकर परम स्थान को प्राप्त होय हैं। ये इन्द्रियनि के विषय जीव ने जगतविषै अनंतकाल भोगे, तिन विषयों से मोहित भया विरक्त भाव को नाहीं भजै है, यह बड़ा आश्चर्य है? जो इन विषयों को विषमिश्रित अन्नसमान जानकर पुरुषोत्तम कहिए चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुष भी सेवै हैं। संसार में भ्रमते हुवे इस जीव के सम्यक्त्व उपजै और एक भी नियम व्रत साधै तो यह मुक्ति का बीज है। और जिन प्राणधारियों के एक भी नियम नाहीं ते पशु हैं, अथवा फूटे कलश हैं, गुणरहित हैं।

अर जे भव्य जीव संसार समुद्र को तिरा चाहै हैं, ते प्रमादरहित होय गुण अर व्रतनिकरि पूर्ण सदा नियमरूप रहैं। जे मनुष्य कुबुद्धि खोटे कर्म नाहीं तजै हैं अर व्रत नियम को नाहीं भजै हैं, ते जन्म के अंधे की नाईं अनंतकाल भव वनविषै भटकै हैं। या भांति जे श्री अनन्तवीर्य केवली, तेई भए तीन लोक के चन्द्रमा, तिनके वचनरूप किरण के प्रभावतैं देव, विद्याधर, भूमिगोचरी, मनुष्य तथा तिर्यंच सर्व ही आनन्द को प्राप्त भए। कई एक उत्तम मानव मुनि भए तथा श्रावक भए। सम्यक्त्व को प्राप्त भए और कोई एक उत्तम तिर्यंच भी सम्यक्दृष्टि श्रावक अणुव्रत धारी भए, अर चतुरनिकाय के देवों में कई एक सम्यक्दृष्टि भए, क्योंकि देवनि के व्रत नाहीं।

अथानन्तर एक धर्मरथ नामा मुनि रावण को कहते भए - हे भद्र कहिए भव्यजीव! तू भी अपनी शक्ति प्रमाण कछु नियम धारण कर। यह धर्मरत्न का द्वीप है, अर भगवान केवली महा महेश्वर हैं। या रत्नद्वीपतैं कछु नियमरूप रत्न ग्रहण कर। काहे को चिंता के भार के वशि होय रह्या है? महापुरुषनि के त्याग खेद का कारण नाहीं। जैसैं कोई रत्नद्वीप में प्रवेश करै अर वाका मन भ्रमै - जो मैं कैसा रत्न लूं? तैसैं याका मन आकुलित भया जो मैं कैसा व्रत लूं। यह रावण भोगासक्त, सो याके चित्त में यह चिंता उपजी जो मेरे खान-पान तो सहज ही पवित्र है। सुगंध मनोहर पौष्टिक शुभ स्वाद, मांसादि मलिन वस्तु के प्रसंगतैं रहित आहार है, अर हिंसा व्रत आदि श्रावक का एकहू व्रत करिवे समर्थ नाहीं। मैं अणुव्रत हू धारवे समर्थ नाहीं तो महाव्रत कैसैं धारूं? माते हाथी समान चित्त मेरा सर्व वस्तु विषै भ्रमता फिरै है। मैं आत्मभावरूप अंकुशतैं याकों वशकरवे समर्थ नाहीं। जे निर्ग्रंथ व्रत धरै हैं ते अग्नि की ज्वाला पीवै हैं, अर पवन को वस्त्र मैं बांधै हैं, अर पहाड़ को उठावै हैं। मैं महाशूरवीर भी तप व्रत धरने समर्थ नाहीं।

अहो धन्य हैं वे नरोत्तम! जो मुनिव्रत धारै हैं। मैं एक यह नियम धरूं जो परस्त्री अत्यन्त रूपवती भी होय तो ताहि बलात्कार करि न इच्छूं, अथवा सर्वलोक में ऐसी कौन रूपवती नारी है जो मोहि देखकर मनमथ की पीड़ी बिकल न होय? अथवा ऐसी कौन परस्त्री है जो विवेकी जीवनि के मन को वश करै? कैसी है परस्त्री, परपुरुष के संयोगकरि दूषित है अंग जाका, स्वभाव ही करि दुर्गंध, बिष्टा की राशि, ताविषै कहा राग उपजै?

ऐसा मन में विचार भावसहित अनंतवीर्य केवली को प्रणाम करि देव मनुष्य असुरों की साक्षिता में प्रकट ऐसा वचन कहता भया- हे भगवन्! इच्छारहित जो परनारी ताहि मैं न सेवूं। यह मेरे नियम हैं। अर कुंभकरण अर्हंत सिद्ध साधु केवलीभाषित धर्म का कारण अंगीकार करि, सुमेरु पर्वत सारिखा है अचल चित्त जाका, सो यह नियम करता भया - जो मैं प्रात ही उठकर प्रति दिन जिनेन्द्र की अभिषेक पूजा स्तुति कर, मुनि को विधिपूर्वक आहार देयकरि आहार

करूंगा, अन्यथा नाहीं। मुनि के आहार की बेला पहिले सर्वथा भोजन न करूंगा। अर सर्व पुरुष, साधुनि कों नमस्कार कर और भी घने नियम लिये। अर देव कहिये कल्पवासी, असुर कहिये भवनत्रिक, अर विद्याधर मनुष्य हर्षतैं प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके, सर्व केवली को नमस्कार कर अपने अपने स्थान गए। रावण भी इन्द्र की-सी लीला धरैं प्रबल पराक्रमी लंका की ओर पयान करता भया, अर आकाश के मार्ग शीघ्र ही लंकाविषै प्रवेश किया।

कैसा है रावण? समस्त नरनारियों के समूह ने किया है गुण वर्णन जाका। अर कैसी है लंका? वस्त्रादिकरि बहुत समारी है। राजमहल में प्रवेश कर सुख से तिष्ठते भए। राजमन्दिर सर्व सुख का भऱ्या है। पुण्याधिकारी जीवनि के जब शुभकर्म का उदय होय है, तब नाना प्रकार की सामग्री विस्तार होय है। गुरु के मुखतैं धर्म का उपदेश पाय परमपद के अधिकारी होय हैं, ऐसा जानकरि जिनश्रुत में उद्यमी है मन जिनका ते बारम्बार निज-पर का विचारकर धर्म का सेवन करैं। विनयकर जिन शास्त्र सुनने वालों के जो ज्ञान हैं सो रवि समान प्रकाश कों धरै हैं, मोहतिमिर का नाश करै है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै अनन्तवीर्य केवली के धर्मोपदेश का वर्णन करने वाला चौदहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।14।।

अथानन्तर ताही केवली के निकट हनुमान ने श्रावक के व्रत लिये अर विभीषण ने भी व्रत लिए, भाव शुद्ध होय व्रत नियम आदरे। जैसा सुमेरु पर्वत का स्थिरपना होय ताहूतैं अधिक हनुमान का शील अर सम्यक्त परम निश्चल प्रशंसा योग्य है।

जब गौतम स्वामी ने हनुमान का अत्यन्त सौभाग्य आदि वर्णन किया तब मगध देश के राजा श्रेणिक हर्षित होय गौतम स्वामी सों पूछते भए। हे भगवन् गणाधीश! हनुमान कैसे लक्षणों का धरणहारा, कौन का पुत्र, कहां उपज्या? मैं निश्चय कर ताका चरित्र सुन्या चाहूं हूं।

तदि सत्पुरुषनि की कथाकरि उपज्या है प्रमोद जाकों ऐसे, इन्द्रभूत कहिए गौतम स्वामी आह्लादकारी वचन कहते भए - 'हे नृप! विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पृथ्वीसों दश योजन ऊंची, तहां आदित्यपुर नामा मनोहर नगर, तहां राजा प्रह्लाद, रानी केतुमती, तिनके पुत्र वायुकुमार, ताका विस्तीर्ण वक्षस्थल लक्ष्मी का निवास। सो वायुकुमार कों सम्पूर्ण यौवन धरे देखकरि पिता के मनविषै इनके विवाह की चिंता उपजी। कैसा है पिता? परम्पराय संतान के बढ़ावने की है बांछा जाके। अब जहां यह वायुकुमार परणेगा सो कहिए है। भरतक्षेत्र में समुद्रतैं पूर्व दक्षिण दिशा के मध्य दंतीनामा पर्वत, जाके ऊंचे शिखर आकाश लगि रहे हैं। नाना प्रकार वृक्ष औषधि तिनकरि संयुक्त, अर जल के नीझरने झरै हैं, जहां इंद्र तुल्य राजा महेन्द्र विद्याधर तानै महेन्द्रपुर नगर बसाया। राजा के हृदयवेगा रानी, ताके अरिंदमादि सौ पुत्र, महागुणवान, अर

अंजनी सुंदरी पुत्री, सो मानों त्रैलोक्य की सुन्दरी जे स्त्री तिनके रूप एकत्रकरि बनाई है।

नीलकमल सारिखे हैं नेत्र जाके, काम के बाण समान तीक्ष्ण दूरदर्शी कर्णांतक कटाक्ष, अर प्रशंसायोग्य करपल्लव, रक्तकमल समान चरण, हस्ती के कुंभस्थल समान कुच, अर केहरी समान कटि, सुन्दर नितम्ब, कदलीस्तंभ समान कोमल जंघा, शुभलक्षण, प्रफुल्लित मालती समान मृदु बाहुयुगल, गंधर्वादि सर्व कला की जाननहारी, मानों साक्षात् सरस्वती ही है। अर रूपकरि लक्ष्मीसमान सर्वगुणमंडित। एक दिवस नवयौवन में कंदुक क्रीड़ा करती भ्रमण करती सखियों सहित रमती पिता ने देखी, सो जैसैं सुलोचना कों देखकर राजा अकम्पन को चिंता उपजी हुती, तैसैं अंजना को देख राजा महेन्द्र को चिंता उपजी। तब याके वर ढूंढ़नेविषै उद्यमी भए। संसारविषै माता पिता को कन्या दुख का कारण है। जे बड़े कुल के पुरुष हैं तिनको कन्या की ऐसी चिंता रहै है। यह मेरी कन्या प्रशंसायोग्य पति को प्राप्त होय, अर बहुत काल याका सौभाग्य रहै, अर कन्या निर्दोष सुखी रहै।

राजा महेन्द्र ने अपने मंत्रीनिसों कही – जो तुम सर्व वस्तुविषै प्रवीण हो, कन्यायोग्य श्रेष्ठ वर मोहि बताओ। तदि अमरसागर मंत्री ने कही – यह कन्या राक्षसों का अधीश जो रावण ताहि देवो। सर्व विद्याधरनि का अधिपति ताका सम्बन्ध पाय तुम्हारा प्रभाव समुद्रांत पृथ्वीविषै होयगा, अथवा इन्द्रजीत अथवा मेघनाद को देवो। अर यह भी तुम्हारे मनविषै न आवै तो कन्या का स्वयंवर रचो। ऐसा कहकरि अमरसागर मंत्री चुप रह्या।

तब सुमतिनामा मंत्री महापंडित बोल्या – रावण के तो स्त्री अनेक हैं, अर महा अहंकारी, ताकों परणावै तो भी आपस में अधिक प्रीति न होय। अर कन्या की वय छोटी अर रावण की वय अधिक सो बनै नाहीं। इन्द्रजीत तथा मेघनाद को परणैं तो उन दोनों में परस्पर विरोध होय। आगैं राजा श्रीषेण के पुत्रों विषैं विरोध भया, तातैं यह न करना।

तब ताराधन्य मंत्री कहता भया – दक्षिण श्रेणीविषै कनपुर नामा नगर है तहां राजा हिरण्यप्रभ, ताके रानी सुमना, पुत्र सौदामिनीप्रभ, सो महा यशवंत कीर्तिधारी, नवयौवन, नववय, अति सुन्दर रूप, सर्व विद्या कला का पारगामी, लोकनि के नेत्रनि कों आनन्दकारी, अनुपम गुण, अपनी चेष्टातैं हर्षित किया है सकल मंडल जानै, अर ऐसा पराक्रमी है जो सर्व विद्याधर एकत्र होय तासों लड़ैं तो भी ताहि न जीतैं। मानों शक्ति के समूहकरि निरमाप्या है। सो यह कन्या वाहि देहु। जैसी कन्या तैसा वर, योग्य संबंध है।

यह वार्ता सुनकर संदेहपराग नामा मंत्री माथा धुनि, आंख मीचकर कहता भया। वह सौदामिनीप्रभ महा भव्य है ताके निरन्तर यह विचार है कि यह संसार अनित्य है। सो संसार का

स्वरूप जान बरस अठार में वैराग्य धारैगा, विषयाभिलाषी नाहीं, भोगरूप गजबंधन तुडाय गृहस्थी का त्याग करेगा, बाह्याभ्यंतर परिग्रह परिहारकरि केवलज्ञान कों पाय मोक्ष जायगा, सो याहि परणावै तो कन्या पति बिना शोभा न पावै, जैसैं चन्द्रमा बिना रात्रि नीकी न दीखै।

कैसा है चन्द्रमा? जगत में प्रकाश करणहारा है, तातैं तुम इन्द्र के नगर समान आदित्यपुर नगर है, रत्ननिकर सूर्य समान देदीप्यमान है। तहां राजा प्रह्लाद महाभोगी पुरुष, चन्द्रमा समान कांति का धारी, ताके राणी केतुमती काम की ध्वजा, तिनके वायु कुमार कहिए पवनजंय नामा पुत्र, पराक्रम का समूह, रूपवान, शीलवान, गुणनिधान, सर्व कला का पारगामी, शुभ शरीर, महावीर, खोटी चेष्टासों रहित, ताके समस्त गुण सर्व लोकनि के चितविषै व्याप रहे हैं, हम सौ वर्ष में हू न कह सकें, तातैं आप ही वाहि देख लेहु। पवनंजय के ऐसे गुण सुन सर्व ही हर्ष को प्राप्त भए। कैसा है पवनंजय? देवनि के समान है द्युति जाकी। जैसैं निशाकर की किरणों कर कुमुदनी प्रफुल्लित होय तैसैं कन्या भी यह वार्ता सुनकरि प्रफुल्लित भई।

अथानन्तर बसंत ऋतु आई, स्त्रियों के मुखकमल की लावण्यता की हरणहारी शीतऋतु गई। कमलिनी प्रफुल्लित भई, नवीन कमलों के समूह की सुगंधताकरि दशों दिशा सुगंध भई, कमलों पर भ्रमर गुंजार करते भये। कैसे हैं भ्रमर? मकरंद कहिये पुष्पनि की सुगंधरज ताके अभिलाषी हैं। वृक्षनि के पल्लव पत्र पुष्पादि नवीन प्रकट भए। मानों बसंत के लक्ष्मी के विलापसों हर्ष के अंकुर ही उपजे हैं, अर आम्र मौल आए, तिन पर भ्रमर भ्रमैं हैं, लोकनि के मन को कामबाण बींधते भए, कोकिलन के शब्द मानिनी नायिकानि के मान का मोचन करते भए। बसंत समय परस्पर नर नारियनि के स्नेह बढ़ता भया। हिरण जो है सो दूव के अंकुर उखाड़ हिरणी के मुख में देता भया। सो ताको अमृत समान लागै, अधिक प्रीत होती भई। अर बेल वृक्षनितैं लिपटी, कैसी है बेल? भ्रमर ही है नेत्र जिनके। दक्षिण दिशा की पवन चाली सो सब ही को सुहावनी लागी।

पवन के प्रसंगकरि केसर के समूह पड़े सो मानों बसंतरूपी सिंह के केशों के समूह ही हैं। महा सघन कौरव जाति के जे वृक्ष तिन पर भ्रमरों अशोक जाति के वृक्षनि की नवीन कोपल लहलहाट करै हैं सो मानों सौभाग्यवती स्त्रियों के राग की राशि ही भाषै हैं। अर वनों मैं केसूला (टेसू) अत्यन्त फूल रहे हैं, सो मानों वियोगिनी नायिकानि के मन को दाह उपजावने को अग्नि समान है। दशों दिशाविषै पुष्पनि के समूह की सुगन्ध रज ताहि मकरंद कहिये, सो परागकरि ऐसी फैल रही है मानों बसंत जो है पटवास कहिए सुगंध चूर्ण अबीर, ताकरि महोत्सव करै है। ताकरि एक दिन भी स्त्री पुरुष परस्पर वियोग को नहीं सहार सकै हैं। ता ऋतुविषै विदेश गमन कैसैं रुचै? ऐसी रागरूप बसंत ऋतु प्रकट भई। तासमय फागुण सुदि अष्टमीसों लेकर पूर्णमासी तक अष्टाह्निका

के दिन महामंगलरूप हैं। सो इन्द्रादिक देव शची आदि पूजा के अर्थि नन्दीश्वर द्वीप गए, अर विद्याधर पूजा की सामग्री लेयकर कैलाश गये। श्री ऋषभदेव के निर्वाण कल्याणकरि वह पर्वत पूजनीक है।

सो समस्त परिवार सहित अंजनी के पिता राजा महेन्द्र हू गए। तहां भगवान की पूजाकरि स्तुतिकरि अर भावसहित नमस्कार कर सुवर्ण की शिला पर सुखसों विराजे। अर राजा प्रह्लाद पवनंजय के पिता ते हू भरत चक्रवर्ती के कराये जे जिनमन्दिर तिनकी वंदना के अर्थि कैलाश पर्वत पर गए। सो वंदनाकरि पर्वत पर विहार करते राजा महेन्द्र की दृष्टिविषै आए। सो महेन्द्र को देखकर प्रीतिरूप है चित्त जिनका, प्रफुल्लित भए हैं नेत्र जिनके, ऐसे जे प्रह्लाद ते निकट आए। तब महेन्द्र उठकरि सन्मुख आयकर मिले। एक मनोज्ञ शिला पर दोनों हितसों तिष्ठे, परस्पर शरीरादि कुशल पूछते भए।

तब राजा महेंद्र ने कही – हे मित्र! मेरे कुशल काहे की? कन्या वर योग्य भई सो ताके परणावने की चिंताकरि चित्त व्याकुल रहै हैं। जैसी कन्या है तैसा वर चाहिए, अर बड़ा घर चाहिए कौन कों दें, यह मन भ्रमै है। रावण को परणाइए तो ताके स्त्री बहुत हैं अर आयु अधिक है। अर जो ताके पुत्रोंविषै दें तो तिनमें परस्पर विरोध होय। अर हेमपुर का राजा कनकद्युति ताका पुत्र सौदामिनीप्रभ कहिए विद्युत्प्रभ सो थोड़े ही दिन विषै मुक्ति को प्राप्त होयगा, यह वार्ता सर्व पृथ्वी पर प्रसिद्ध है, ज्ञानी मुनि ने कही है। हमने भी अपने मंत्रियों के मुखतैं सुनी है। अब हमारे यह निश्चय भया है कि आपका पुत्र पवनंजय कन्या के बरिवे योग्य है, यही मनोरथ करि हम आए हैं। सो आपके दर्शनकर अति आनन्द भया जाकरि कछु विकल्प मिट्या। तब प्रह्लाद बोले – मेरे भी चिंता पुत्र के परणावने की है तातैं मैं भी आपका दर्शनकरि अर वचन सुन वचनतैं अगोचर सुख कों प्राप्त भया, जो आप आज्ञा करो सो ही प्रमाण। मेरे पुत्र का बड़ा भाग्य जो आपने कृपा करी। वर कन्या का विवाह मानसरोवर के तट पर करना ठहर्‍या। दोनों सेना में आनन्द के शब्द भए। ज्योतिषियों ने तीन दिन का लग्न थाप्या।

अथानन्तर पवनंजय कुमार अंजनी के रूप की अद्‌भुतता सुनकरि तत्काल देखने को उद्यमी भया। तीन दिन रह न सक्या, संगम की अभिलाषाकरि यह कुमार काम के वश हुआ, काम के दश वेगोंकर पूरित भया।

प्रथम विषय की चिंताकरि व्याकुल भया, अर दूजे वेग देखने की अभिलाषा उपजी, तीजे वेग दीर्घ उच्छवास नाखने लग्या, चौथे वेग कामज्वर उपज्या मानो चन्दन के अग्नि लागी, पांचवें वेग अंग खेदरूप भया, सुगन्ध पुष्पादितैं अरुचि उपजी, छठे वेग भोजन विषसमान बुरा लाग्या,

सातवें वेग ताकी कथा की आसक्तताकर विलाप उपज्या, आठवें वेग उन्मत्त भया विभ्रमरूप सर्पकर डस्या गीत नृत्यादि अनेक चेष्टा करने लग्या, नवमें वेग महामूर्छा उपजी, दशवें वेग दुख के भारसों पीड़ित भया। यद्यपि पवनंजय विवेकी था, तथापि काम के प्रभावकरि विह्वल भया।

सो काम को धिक्कार हो, कैसा है काम? मोक्षमार्ग का विरोधी है, काम के वेगकरि पवनंजय धीरजरहित भया, कपोलनि के कर लगाय शोकवान होय बैठ्या। पसेव से टपके हैं कपोलनितैं जाके, उष्ण निश्वासकर मुरझाए हैं होठ जाके, अर शरीर कम्पायमान भया, बारम्बार जंभाई लेने लग्या, अर अत्यन्त अभिलाषारूप शल्यतैं चिंतावान भया, स्त्री के ध्यानतैं इन्द्रिय व्याकुल भई। मनोज्ञ स्थान भी याकों अरुचिकारी भासै, चित्त की शून्यता धारता संता तजी हैं समस्त शृंगारादि क्रिया जानै। क्षणमात्रविषै तो आभूषण पहिरै, क्षणमात्रविषै खोल डारै, लज्जारहित भया। क्षीण होय गया है समस्त अंग जाका, ऐसी चिंता धारता भया कि वह समय कब होय जो मैं वा सुन्दरी को अपने पास बैठी देखूं अर वाके कमलतुल्य गात्र को स्पर्श करूं, वा कामिनी से रस की वार्ता करूं। वाकी बात ही सुनकरि मेरी यह दशा भई है, न जानिए और कहा होय। वह कल्याणरूपिणी जाके हृदय में बसै है ता हृदय में दु:खरूप अग्नि का दाह क्यों होई?

स्त्री तो निश्चयसेती स्वभावतैं ही कोमलचित्त होय है, मोहि दुख देवे अर्थि चित्त कठोर क्यों भया? यह काम पृथ्वीविषै अनंग कहावै है। जाके अंग नाहीं सो अंग बिना ही मोहि अंगरहित करै है, मार डारै हैं! जो याके अंग होय तो न जाने कहा करै? मेरी देहविषै घाव नाहीं परन्तु वेदना बहुत है। मैं एक जगह बैठ्या हूं अर मन अनेक जगह में भ्रमै है, ये तीन दिन वाहि देखै बिना मोहि कुशलसों न जाय, तातैं ताके देखन का उपाय करूं जाकरि शांति होय। अथवा सर्व कार्यों में मित्र समान जगतविषै और आनंद का कारण कोई नाहीं, मित्रतैं सर्व कार्य सिद्ध होय है। ऐसा विचार अपना जो प्रहस्तनामा मित्र, सर्व विश्वास का भाजन तासों पवनंजय गदगद वाणी करि कहता भया।

कैसा है मित्र? किनारे ही बैठ्या है, छाया की मूर्ति ही है, अपना ही शरीर मानों विक्रियाकरि दूजा शरीर होय रह्या है, ताहि या भांति कही - हे मित्र! तू मेरा सर्व अभिप्राय जानै है, तोहि कहा कहूं? परन्तु यह मेरी दु:ख अवस्था मोहि वाचाल करै है। हे सखे! तुम बिना यह बात कौनसों कही जाय? तू समस्त जगत की रीति जानै है। जैसैं किसान अपना दु:ख राजासों कहै, अर शिष्य गुरुसों कहै, अर स्त्री पतिसों कहै, अर रोगी वैद्यसों कहै, बालक मातासों कहै तो दुख छूटै, तैसैं बुद्धिमान अपने मित्रसों कहै, तातैं मैं तोहि कहूं हूं। वह राजा महेन्द्र की पुत्री, ताकै श्रवण ही कर कामबाणकरि मेरी विकलदशा भई है, जो ताके देखे बिना मैं तीन दिन निबाहिवे समर्थ नाहीं। तातैं कोई ऐसा यत्न कर जो मैं वाहि देखूं, ताहि देखे बिना मेरे स्थिरता न आवै, अर मेरी

स्थिरतासों तोहि प्रसन्नता होय। प्राणियों को सर्वकार्य से जीतव्य वल्लभ है, क्योंकि जीतव्य के होते संते आत्मलाभ होय है। या भांति पवनंजय ने कही तदि प्रहस्त मित्र हंसे, मानों मित्र के मन का अभिप्राय पायकरि कार्य सिद्धि का उपाय करते भए।

हे मित्र! बहुत कहनेकरि कहा? अपने मांही भेद नाहीं, जो करना होय ताकरि ढील न करना। या भांति तिन दोनों के वचनालाप होय हैं, एते ही सूर्य मानों इनके उपकार निमित्त अस्त भया। तब सूर्य के वियोगसों दिशा काली पड़ गई, अंधकार फैल गया, क्षणमात्र में नीला वस्त्र पहिरे निशा प्रकट भई। तब रात्रि के समय उत्साह सहित मित्र को पवनंजय कहते भए – हे मित्र! उठो, आवो तहां चलैं, जहां वह मन की हरणहारी प्राणवल्लभा तिष्ठै है।

तदि ये दोनों मित्र विमान में बैठि आकाश के मार्ग चाले, मानों आकाशरूप समुद्र के मच्छ ही हैं। क्षणमात्रविषै जाय अंजनी के सतखणे महल पर चढ़ि झरोखों में मोतिन की झालरों के आश्रय छिप बैठे। अंजनी सुन्दरी को पवनंजय कुमार ने देख्या कि पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान है मुख जाका, मुख की ज्योतिसों दीपक मंद ज्योति होय रहै हैं, अर श्याम-श्वेत अरुण त्रिविधि रंग को लिये नेत्र महासुन्दर हैं, मानों काम के बाण ही हैं, अर कुच ऊंचे महा मनोहर शृंगार रस के भरे कलश ही हैं, नवीन कोंपलसमान लाल सुन्दर सुलक्षण हैं हस्त अर पांव जाके, अर नखों की कांतिकरि मानों लावण्यता को प्रकट करती शोभै है, अर शरीर महासुन्दर है, अति नाजुक क्षीणकटि कुचों के भारनितैं मति कदाचित् भग्न हो जाय – ऐसी शंकाकरि मानों त्रिवलीरूप डोरीतैं प्रतिबद्ध है। अर जाकी जंघा लावण्यता को धरै हैं, सो केलेहूतैं अति कोमल, मानों काम के मंदिर के स्तम्भ ही हैं, सो मानों वह कन्या चांदनी रात ही है। मुक्ताफलरूप नक्षत्रनिकरि इन्दीवर-कमल समान है रूप जाका। सो पवनंजय कुमार एकाग्र लगे हैं नेत्र जाके, अंजनी को भले प्रकार देख सुख की भूमि कों प्राप्त भया।

ताही समय बसंततिलका नामा सखी महाबुद्धिवती अंजना सुन्दरीतैं कहती भई – हे सुरूपे! तू धन्य है जो तेरे पिता ने तुझे वायुकुमार को दीनी। ते वायुकुमार महाप्रतापी हैं, तिनके गुण चन्द्रमा की किरण समान उज्ज्वल हैं, तिनकरि समस्त जगत व्याप्त होय रह्या है। तिनके गुण सुन अन्य पुरुषों के गुण मंद भासैं हैं। जैसैं समुद्र में लहर तिष्ठै तैसैं तू वा योधा के अंगविषै तिष्ठैगी। कैसी है तू? महा मिष्टभाषिणी, चन्द्रकांति रत्ननि की प्रभा को जीते ऐसी कांति तेरी, तू रत्न की धरा रत्नाचल पर्वत के तटविषै पड़ी, तुम्हारा सम्बन्ध प्रशंसा के योग्य भया, याकरि सर्व ही कुटुंब के जन प्रसन्न भए। या भांति जब पति के गुण सखी ने गाए तदि वह लाज की भरी चरणनि के नख की ओर नीचे देखती भई। आनन्दरूप जलकरि हृदय भर गया। अर पवनंजय कुमार हूं हर्षतैं फूल गए हैं नेत्रकमल जाके, हर्षित भया है वदन जाका।

ता समय एक मिश्रकेशी नामा दूजी सखी होठ दाबिकर चोटी हिलायकर बोली – अहो, परम अज्ञान तेरा, यह कहा पवनंजय का सम्बन्ध सराह्या? जो विद्युतप्रभ कुंवरसों सम्बन्ध होता तो अतिश्रेष्ठ था। जो पुण्य के योगतैं कन्या का विद्युतप्रभ पति होता तो याका जन्म सफल होता। हे बसंतमाला! विद्युतप्रभ और पवनंजय में इतना भेद है जितना समुद्र अर गोष्पद में भेद है। विद्युतप्रभ की कथा बड़े बड़े पुरुषों के मुखतैं सुनी हैं। जैसैं मेघ के बूंद की संख्या नाहीं तैसैं ताके गुणनि का पार नाहीं। वह नवयौवन है। महा सौम्य, विनयवान, देदीप्यमान, प्रतापवान, रूपवान, गुणवान, विद्यावान, बुद्धिमान, बलवान सर्व जगत चाहै है दर्शन जाका। सब यही कहै हैं कि यह कन्या वाहि देनी थी। सो कन्या के बाप ने सुनी – वह थोड़े ही वर्ष में मुनि होयगा तातैं सम्बन्ध न किया सो भला न किया, विद्युतप्रभ का संयोग एक क्षणमात्र ही भला, अर क्षुद्र पुरुष का संयोग बहुतकाल भी किस अर्थ?

यह वार्ता सुनकर पवनंजय क्रोधरूप अग्निकर प्रज्वलित भए, क्षणमात्र मैं और ही छाया होय गई, रसतैं विरस आय गया, लाल आंखैं होय गईं, होंठ डसकर तलवार म्यानसों काढ़ी अर प्रहस्त मित्रसों कहते भए – याही हमारी निंदा सुहावै है, अर यह दासी ऐसे निंद्यवचन कहे अर यह सुनै सो इन दोनों का शिर काट डारूं। विद्युतप्रभ इनके हृदय का प्यारा है, सो कैसैं सहाय करेगा?

यह वचन पवनंजय के सुन प्रहस्त मित्र रोष कर कहता भया – हे सखे, हे मित्र! ऐसे अयोग्य वचन कहनेकरि कहा? तिहारी तलवार बड़े सामंतनि के सीस पर पड़े, स्त्री अबला अबध्य है, तापर कैसै पड़े? यह दुष्ट दासी इनके अभिप्राय बिना ऐसे कहै है। तुम आज्ञा करो तो या दासी को एक दंड की चोटसों मार डालूं, परन्तु स्त्रीहत्या, बालहत्या, पशुहत्या, दुर्बल मनुष्य की हत्या इत्यादि शास्त्र में वर्जनीय कही है। ये वचन मित्र के सुनकर पवनंजय क्रोध को भूल गए अर मित्र को दासी पर क्रूर देखिकर कहते भए।

हे मित्र! तुम अनेक संग्राम के जीतनहारे, यश के अधिकारी, माते हाथियों के कुंभस्थल विदारनहारे तुमको दीन पर दया ही करनी योग्य है। अर सामान्य पुरुष भी स्त्रीहत्या न करें तो तुम कैसैं करो? जे बड़े कुल में उपजे पुरुष हैं अर गुणोंकरि प्रसिद्ध हैं शूरवीर हैं तिनका यश अयोग्य क्रियातैं मलिन होय है। तातैं उठो जा मार्ग आए ताही मार्ग चलो। जैसैं छाने आए हुते तैसैं ही चाले। पवनजंय के मन में भ्रांति पड़ी कि या कन्या को विद्युतप्रभ ही प्रिय है, तातैं वाकी प्रशंसा सुने है, हमारी निंदा सुने है। जो याहि न भावै तो दासी काहे कों कहै। यह रोष धर अपने कहे स्थानक पहुंचे। पवनंजय कुमार अंजनीसों अति फीके पड़ गए। चित्त में ऐसे चिंतवते भए कि दूजे पुरुष का है अनुराग जाको ऐसी जो अंजना सो विकराल नदी की नाईं दूर हीतैं तजनी।

कैसी है वह अंजनारूप नदी? संदेहरूप जे विषम भ्रमण तिनकों धरै है, अर खोटे भावरूप जे ग्राह तिनसों भरी है। अर वह नारी वनी समान है, अज्ञानरूप अंधकारसों भरी इन्द्रियरूप जे सर्प तिनको धरै हैं, पंडितनि को कदाचित् न सेवना। खोटे राजा की सेवा और शत्रु के आश्रय जाना और शिथिलमित्र और अनासक्त स्त्री तिनतैं सुख कहां?

देखो, जे विवेकी हैं ते इष्टबन्धु तथा सुपुत्र अर पतिव्रत नारी इनका भी त्यागकर महाव्रत धारे हैं और शूद्र पुरुष कुसंग भी नहीं तजे हैं। मद्यपायी वैद्य और शिक्षारहित हाथी, अर नि:कारण वैरी, क्रूरजन, अर हिंसारूप धर्म, अर मूर्खनितैं चर्चा, अर मर्यादा का उलंघना, निर्दयी देश, बालक राजा, स्त्री परपुरुष अनुरागिनी, इनको विवेकी तजैं। या भांति चिंतवन करता पवनंजय कुमार ताके जैसैं दुलहिनी सों प्रीति गई तैसैं रात्रि हू गई, अर पूर्व दिशाविषै संध्या प्रकट भई; मानों पवनंजय ने अंजनी का राग छोड्या सो भ्रमता फिरै है।

भावार्थ – राग का स्वरूप लाल है अर इनतैं जो राग मिट्या सो तानैं संध्या के मिसकरि पूर्व दिशा में प्रवेश किया है। अर सूर्य ऐसा आरक्त उग्या जैसैं स्त्री के कोपतैं पवनंजय कुमार कोप्या। कैसा है सूर्य? तरुणविंब को धरे हैं। बहुरि जगत की चेष्टा का कारण है। तब पवनंजय कुमार प्रहस्त मित्र को कहते भए, अत्यन्त अरुचि को धरे अंजनीसों विमुख है मन जाका, हे मित्र! यहां अपने डेरे हैं सो यहांतैं वाका स्थानक समीप है। सो यहां सर्वथा न रहना। ताको स्पर्शकर पवन आवै सो मोहि न सुहावै। तातैं उठो, अपने नगर चालैं, ढील करनी उचित नाहीं।

तब मित्र कुमार की आज्ञा प्रमाण सेना के लोगों को पयाने की आज्ञा करता भया। समुद्र समान सेना रथ घोड़े, हाथी, पयादे इनका बहुत शब्द भया। कन्या का निवास नजीक ही है सो सेना के पयान के शब्द कन्या के कान में पड़े तब कुमार का कूच जानकर कन्या अति दुखित भई। वे शब्द कान को ऐसे बुरे लागे जैसैं वज्र की शिला कान में प्रवेश करै ऊपरसों मुद्गरनि की घात पड़े।

मन में विचारती भई – हाय हाय! मोहि पूर्वोपार्जित कर्म ने महानिधान दिया था सो छिनाय लिया, कहा करूँ? अब कहा होय। मेरे मनोरथ हुता जो इस नरेन्द्र के साथ क्रीड़ा करूँगी सो और ही भांति दृष्टि आवै है, तो अपराध कछु न जान पड़े है, परन्तु यह मेरी बैरिन मिश्रकेशी ताने निंद्य वचन कहे हुते सो कदाचित् कुमार को यह खबर पहुंची होय अर मोविषै कुमाया करी होय। यह विवेकरहित पापिनी कटुभाषिणी धिक्कार याहि जानै मेरा प्राणवल्लभ मोतैं कृपारहित किया। अब जो मेरे भाग्य होय अर मेरा पिता मुझ पर कृपाकरि प्राणनाथ को पाछा बहोड़े अर उनकी सुदृष्टि होय तो मेरा जीतव्य है। अर जो नाथ मेरा परित्याग करै तो मैं आहार को त्यागकरि शरीर कों

तजूंगी। ऐसा चिंतवन करती वह सती मूर्छा खाय धरती पर पड़ी। जैसे बेलि की जड़ उपाड़ी जाय अर वह आश्रयतैं रहित होय कुमलाय जाय, तैसैं कुमलाय गई। तब सर्व सखीजन – यह कहा भया ऐसे कहकर अति संभ्रम को प्राप्त भई। शीतल क्रिया सों याहि सचेत किया। तब यांसू मूर्छा का कारण पूछ्या सो यह लज्जाकरि कहि न सकै, निश्चल लोचन होय रही।

अथानन्तर पवनंजय की सेना के लोक मनविषै आकुल भए अर विचार करते भए जो नि:कारण कूच काहे का? यह कुमार विवाह करने आया हुता सो दुलहिन को परणकरि क्यों न चलै, याके कोप काहे तैं भया? यांको कौन ने कह्या? सर्व वस्तु की सामग्री है, काहू वस्तु की कमी नाहीं। यांका ससुर बड़ा राजा, कन्या अति सुन्दरी, यह पराङ्मुख क्यों भया?

तब कई एक हंसि करि कहते भए याका नाम पवनंजय है सो अपनी चंचलतातैं पवनहू को जीतै है। अर कई एक कहते भए अभी स्त्री का सुख नाहीं जानै है तातैं ऐसी कन्या को छोड़करि जायवे को उद्यमी भया है। जो याकै रतिकाल का राग होय तो जैसैं वनहस्ती प्रेम के बंधनकरि बंधै है तैसैं यह बंध जाय। या भांति सेना के सामंत कहै हैं, अर पवनंजय शीघ्रगामी वाहन पर चढ़ चलने को उद्यमी भए।

तब कन्या का पिता राजा महेन्द्र कुमार कूच सुनकर अति आकुल भया, समस्त भाईनि सहित राजा प्रह्लाद पै आया। प्रह्लाद अर महेंद्र दोनों आय, कुमार को कहते भए – हे कल्याणरूप! हमको शोक का करणहारा यह कूच काहे को करिए है। अहो, कौन ने आपको कह्या है, शोभायमान तुम कौन को अप्रिय हो, जो तुमको न रुचै सो सब ही को न रुचै। तिहारे पिता का अर हमारा वचन सो सदोष होय तो भी तुमको मानना योग्य है। सो तो हम समस्त दोषरहित कहै हैं तुमको अवश्य धारना योग्य है।

हे शूरवीर! कूचतैं पाछे फिरो, हमारे दोउनि के मनवांछित सिद्ध करो। हम तुम्हारे गुरुजन हैं, सो तुम सारिखे सत्पुरुषों को गुरुजनों की आज्ञा आनन्द का कारण है। ऐसा जब राजा महेंद्र ने अर प्रह्लाद से कह्या तब ये कुमार धीर वीर विनयकरि नम्रीभूत भया है मस्तक जाका, जब तात नै अर ससुर ने बहुत आदरसों हाथ पकड़े तब यह कुमार गुरुजनों की जो गुरुता सो उलंघन को असमर्थ भया। तिनकी आज्ञा तैं पाछा बाहुड्या अर मन में विचारी कि याहि परणकरि तज दूंगा ताकि दु:खसों जन्म पूरा करै, अर पर का भी याहि संयोग न होय सकै।

अथानन्तर कन्या प्राण वल्लभ को पाछा आया सुनकर हर्षित भई। रोमांच होय आए, लग्न के समय इनका विवाह मंगल भया। जब दुलहिन का कर ग्रहण कराया सो अशोक के पल्लव समान आरक्त अति कोमल कन्या के कर सो या विरक्त चित्त के अग्नि की ज्वाला समान लागै।

बिना इच्छा कुमार की दृष्टि कन्या के तन पर काहू भांति गई सो क्षणमात्र भी न सह सक्या, जैसे कोई विद्युतपात कों न सह सके। कन्या के प्रीति, वर के अप्रीति, यह याके भाव को न जाने, ऐसा जान मानों अग्नि हंसती भई और शब्द करती भई, बड़े विधान सों इनको विवाह करि सर्व बंधुजन आनंद को प्राप्त भए। मानसरोवर के तट विवाह भया। नाना प्रकार वृक्षलता फल पुष्प विराजित जो सुन्दर वन तहां परम उत्सवकरि एक मास रहे। परस्पर दोनों समधियों ने अति हित के वचन आलाप कहे। परस्पर स्तुति महिमा करी, सन्मान किए, पुत्री के पिता ने बहुत दान दिया। अपने अपने स्थान को गए।

हे श्रेणिक! जे वस्तु का स्वरूप नाहीं जानै हैं अर बिना समझे पराये दोष ग्रहैं, ते मूर्ख हैं। अर पराए दोष कर आप ऊपर दोष आय पड़े है सो सब पाप कर्म का फल है। पाप आतापकारी है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै अंजना-पवनंजय का विवाह वर्णन करने वाला पन्द्रहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।15।।

अथानन्तर पवनंजय कुमार ने अंजनी सुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कबहू बात न बूझे। सो वह सुन्दरी पति के असंभाषण तैं अर कृपादृष्टि कर न देखवे तैं परम दु:ख करती भई। रात्रि में भी निद्रा न लेय। निरंतर अश्रुपात ही झरा करैं, शरीर मलिन होय गया, पतिसों अति स्नेह, धनी का नाम अति सुहावै, पवन जावै सो भी अति प्रिय लागै, पति का रूप तो विवाह वेदी में अवलोकन कीना हुता ताका मन में ध्यान करवो करे अर निश्चल लोचन सर्व चेष्टारहित बैठी रहै। अंतरंग ध्यान में पति का रूप निरूपणकरि बाह्य भी दर्शन किया चाहै सो न होय।

तदि शोककरि बैठी रहै, चित्रपटविषै पति का चित्राम लिखने का उद्यम करै, तदि हाथ कांप करि कलम गिर पड़े। दुर्बल होय गया है समस्त अंग जाका, ढीले होय कर गिर पड़े हैं सर्व आभूषण जाके, दीर्घ उष्ण जे उच्छवास तिनकरि मुरझाय गए हैं कपोल जाके, अंग मैं वस्त्र के भी भारकरि खेद को धरती संती अपने अशुभ कर्मों को निंदती, माता पितानि कों बारम्बार याद करती संती, शून्य भया है हृदय जाका, दु:खकर क्षीण शरीर, मूर्छा आय जाय, चेष्टा रहित होय जाय, अश्रुपातकरि रुक गया है कंठ जाका, दु:खकर निकसै हैं वचन जाके, विह्वल भई संती, देव कहिए पूर्वोपाजित कर्म ताहि उलाहना देय चन्द्रमा की किरण हू करि जाका अतिदाह उपजै, अर मंदिरविषै गमन करती मूर्छा खाय गिर पड़े, अर विकल्प की मारी ऐसे विचार करि अपने मन ही में पति सों बतलावै।

हे नाथ! तिहारे मनोज्ञ अंग मेरे हृदय में निरन्तर तिष्ठै हैं मोहि आताप क्यों करै हैं, अर मैं आपका कछु अपराध नाहीं किया, नि:कारण मेरे पर कोप क्यों करो? अब प्रसन्न होवो, मैं तिहारी

भक्त हूं, मेरे चित्त के विषाद को हरो। जैसैं अंतरंग दर्शन देवो हो, तैसैं बहिरंग देवो। यह मैं हाथ जोड़ वीनती करूं हूं। जैसैं सूर्य बिना दिन की शोभा नाहीं और चन्द्रमा बिना रात्रि की शोभा नाहीं और दया क्षमाशील संतोषादि गुण बिना विद्या शोभै नाहीं, तैसैं तिहारी कृपा बिना मेरी शोभा नाहीं।

या भांति चित्तविषै बसै जो पति ताहि उलाहना देय अर बड़े मोतियों समान नेत्रनितैं आंसुवनि की बूंद झरै, महाकोमल सेज अर अनेक सामग्री सखीजन करै परन्तु याहि कुछ न सुहावै। चक्रारूढ़ समान मन मैं उपज्या है वियोग से भ्रम जाकों, स्नानादि संस्कार रहित कभी भी केश समारे गूंथे नाहीं, केश भी रूखे पड़ गए, सर्व क्रिया में जड़, मानों पृथ्वी ही का रूप होय रही है। अर निरन्तर आंसुवनि के प्रवाहतैं मानों जलरूप ही होय रही है। हृदय के दाह के योगतैं मानों अग्निरूप ही होय रही है। अर निश्चल चित्त के योगतैं मानों वायुरूप ही होय रही है। अर शून्यता के योगतैं मानों गगनरूप ही होय रही है। मोह के योगतैं आच्छादित होय रह्या है ज्ञान जाका, भूमि पर डार दिए हैं सर्व अंग जानै, बैठ न सकै अर तिष्ठै तो उठ न सकै, अर उठै तो देही को थांभ न सकै, सो सखीजन का हाथ पकड़ि विहार करै सो पग डिग जाय। अर चतुर जे सखीजन तिनसों बोलने की इच्छा करै परन्तु बोल न सकै। अर हंसनी कबूतरी आदि गृहपक्षी तिनसों क्रीड़ा किया चाहै पर कर न सकै। यह विचारी सबों से न्यारी बैठी रहै। पति में लग रहा है मन अर नेत्र जाका, नि:कारण पतितैं अपमान पाया सो एक दिन बरस बराबर जाय।

यह याकी अवस्था देख सकल परिवार व्याकुल भया, सब ही चिंतवते भए कि एता दुख याहि बिना कारण क्यों भया है? यह कोई पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है। पिछले जन्म मैं यानैं काहू के सुखविषै अंतराय किया है, सो याकै भी सुख का अंतराय भया। वायु कुमार तो निमित्तमात्र है। यह बारी भोरी निर्दोष याहि परणकरि क्यों तजी? ऐसी दुलहिन सहित देवनि समान भोग क्यों न करै? याने पिता के घर कभी रंचमात्र हू दुख न देख्या सो यह कर्मानुभव कर दुख के भार को प्राप्त भई। याकी सखीजन विचारै हैं कि कहा उपाय करैं, हम भाग्यरहित हमारे यत्नसाधन यह कार्य नाहीं। कोई अशुभकर्म की चाल है। अब ऐसा दिन कब होयगा, वह शुभ मुहूर्त शुभ बेला कब होयगी जो वह प्रीतम या प्रिया को समीप लेय बैठेगा अर कृपादृष्टि कर देखैगा, मिष्टवचन बोलैगा। यह सबके अभिलाषा लाग रही है।

अथानन्तर राजा वरुण ताके रावण सों विरोध पड्या, वरुण महा गर्ववान रावण की सेवा न करै, सो रावण ने दूत भेज्या। दूत जाय वरुण सों कहता भया। दूत धनी की शक्तिकर महाकांति को धरै है। अहो विद्याधराधिपते वरुण! सर्व का स्वामी जो रावण तानै यह आज्ञा करी है जो आप मोहि प्रणाम करो, अथवा युद्ध की तैयारी करो। तब वरुण ने हंसकर कही, हो दूत! कौन है रावण,

कहां रहै है जो मोहि दबावै है, सो मैं इन्द्र नाहीं हूं, वह वृथा गर्वित लोकनिंद्य हुता, मैं वैश्रवण नाहीं, मैं यम नाहीं, मैं सहस्ररश्मि नाहीं, मैं मरुत नाहीं। रावण के देवाधिष्ठित रत्नोंकरि महा गर्व उपज्या है। वाकी सामर्थ्य है तो आवो, मैं वाहि गर्वरहित करूंगा। अर तेरी मृत्यु नजीक है जो हमसों ऐसी बात कहे है। तब दूत जायकर रावण सों सर्व वृत्तांत कहता भया।

रावण ने कोपकर समुद्र तुल्य सेना सहित जाय वरुण का नगर घेर्‌या अर यह प्रतिज्ञा करी जो मैं याहि देवाधिष्ठित रत्न बिना ही वश करूंगा। मारूं अथवा बांधूं। तब वरुण के पुत्र राजीव पुंडरीकादिक क्रोधायमान होय रावण के कटक पर आए। रावण की सेना के अर इनके बड़ा युद्ध भया। परस्पर शस्त्रनि के समूह छेद डारे। हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, रथ रथों से, भट भटों से महायुद्ध करते भए। बड़े बड़े सामंत होठ डसि करि लाल नेत्र हैं जिनके व महा भयानक शब्द करते भए। बड़ी देर तक संग्राम भया। सो वरुण की सेना रावण की सेना सों कछुइक पीछे हटी। तब अपनी सेना को हटी देख वरुण राक्षसनि की सेना पर आप चलायकरि आया, कालाग्निसमान भयानक तब रावण वरुण कों दुर्निवारण भूमिविषै सन्मुख आवता देखकर आप युद्ध करते भए।

कैसे हैं वरुण के पुत्र? महाभटों के प्रलय करनहारे, अर अनेक माते हाथियों के कुम्भस्थल विदारनहारे। सो रावण क्रोधकरि दीप्त है मन जाका, महाक्रूर जो भृकुटि तिनकरि भयानक है मुख जाका, कुटिल हैं केश जाके, जब लगि धनुष के बाण तान वरुण पर चलावै तब लग वरुण के पुत्रों ने रावण के बहनेऊ खरदूषण को पकड़ लिया, तब रावण ने मन में विचारी जो हम वरुण सों युद्ध करैं अर खरदूषण का मरण होय तो उचित नाहीं, तातैं संग्राम मनै किया। जै बुद्धिमान हैं ते मंत्रविषै चूकैं नाहीं। तब मंत्रियों ने मंत्रकर सब देशों के राजा बुलाए, शीघ्रगामी पुरुष भेजे, सबन को लिखा बड़ी सेना सहित शीघ्र ही आवो।

अर राजा प्रह्लाद पर भी पत्र लेय मनुष्य आया सो राजा प्रह्लाद ने स्वामी की भक्ति करि रावण के सेवकनि का बहुत सन्मान किया, अर उठकर बहुत आदरसों पत्र माथैं चढ़ाया अर बांच्या। सो पत्रविषै या भांति लिखा था कि पातालपुर के समीप कल्याण रूप स्थानक मैं तिष्ठता महाक्षेम रूप विद्याधरों के अधिपतियों का पति सुमाली का पुत्र जो रत्नश्रवा ताका पुत्र राक्षसवंश रूप आकाशविषै चन्द्रमा ऐसा जो रावण सो आदित्य नगर के राजा प्रह्लाद को आज्ञा करै है।

कैसा है प्रह्लाद? कल्याणरूप है, न्याय का वेत्ता है, देशकाल विधान का ज्ञायक है। हमारा बहुत वल्लभ है। प्रथम तो तिहारे शरीर की कुशल पूछै है, बहुरि यह समाचार है कि हमकों सर्व खेचर भूचर प्रणाम करै हैं, हाथों की अंगुली तिनके नख की ज्योतिकर ज्योतिरूप किए हैं जिन शिर के केश जिनने, अर एक अति दुर्बुद्धि वरुण पाताल नगर में निवास करै है, सो आज्ञातैं

पराङ्मुख होय लड़ने को उद्यमी भया है। हृदय को व्यथाकारी विद्याधरों के समूहकरि युक्त है। समुद्र के मध्य द्वीप को पायकर वह दुरात्मा गर्व को प्राप्त भया है, सो हम ताके ऊपर चढ़कर आए हैं। बड़ा युद्ध भया। वरुण के पुत्रों ने खरदूषण को जीवता पकड्या है। सो मंत्रियों ने मंत्रकरि खरदूषण के मरण की शंकातैं युद्ध रोक दिया है, तातैं खरदूषण को छुड़ावना अर वरुण को जीतना सो तुम अवश्य शीघ्र आइयो ढील मत करियो, तुम सारिखे पुरुष कर्त्तव्य में न चूकैं, अब सब विचार तिहारे आयवे पर है। यद्यपि सूर्य तेज का पुंज है तथापि अरुण सारिखा सारथी चाहिए।

तब राजा प्रह्लाद पत्र के समाचार जानि मंत्रियों सो मंत्र कर रावण के समीप चलने को उद्यमी भया। तब प्रह्लाद को चलता सुनकर पवनंजय कुमार नै हाथ जोड़ि गोडनितैं धरती स्पर्श नमस्कार कर विनती करी – हे नाथ! मुझ पुत्र के होते संते तुमको गमन युक्त नाहीं, पिता जो पुत्र को पालै है सो पुत्र का यही धर्म है कि पिता की सेवा करै। जो सेवा न करै तो जानिए पुत्र भया ही नाहीं। तातैं आप कूच न करैं आज्ञा करैं।

तब पिता कहते भए – हे पुत्र! तुम कुमार हो, अब तक तुमने कोई युद्ध देख्या नाहीं। तातैं तुम यहां रहो मैं जाऊंगा।

तब पवनंजय कुमार कनकाचल के तट समान जो वक्षस्थल ताहि ऊंचाकर तेज के धरणहारे वचन कहता भया – हे तात! मेरी शक्ति का लक्षण तुमने देख्या नाहीं, जगत के दाहवे में अग्नि के स्फुलिंगें का क्या वीर्य परखना। तुम्हारी आज्ञारूप आशिष कर पवित्र भया है मस्तक मेरा, ऐसा जो मैं इन्द्र को भी जीतने को समर्थ हूं, यामैं संदेह नाहीं। ऐसा कहकर पिता को नमस्कार कर महाहर्ष उठकरि स्नान भोजनादि शरीर की क्रिया करी, अर आदरसहित जे कुल मैं वृद्ध हैं, तिन्होंने अशीष दीनी। भाव सहित अरहंत सिद्ध को नमस्कारकरि परम कांति को धरतासंता महा मंगलरूप पितासों विदा होवे कों आया सो पिता ने अर माता ने मंगल के भयतैं आंसू न काढ़े, आशीर्वाद दिया।

हे पुत्र! तेरी विजय होय, छातीसों लगाय मस्तक चूम्या। पवनंजय कुमार श्रीभगवान का ध्यान धर माता पिता कों प्रणाम करि जे परिवार के लोग पायन पड़े तिनको बहुत धीर्य बन्धाय सबसों अति स्नेह कर विदा भए। पहले अपना दाहना पांव आगैं धर चाले। फुरकै है दाहिनी भुजा जिनकी, अर पूर्ण कलश जिनके मुख पर लाल पल्लव तिन पर प्रथम ही दृष्टि पड़ी अर थंभ सो लगी हुई द्वारे खड़ी जो अंजना सुन्दरी आसुवनि करि भीज रहै हैं नेत्र जाके, तांबूलादिरहित धूसरे होय रहे हैं अधर जाके, मानों थम्भविषै उकेरी पुतली ही है।

कुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पड़ी सो क्षणमात्रविषै दृष्टि संकोच कोपकरि बोले – हे दुरीक्षणे!

कहिए दु:खकारी है दर्शन जाका, या स्थानकतैं जावो, तेरी दृष्टि उल्कापात समान है, सो मैं सहार न सकूं। अहो बड़े कुल की पुत्री कुलवंती, तिनमैं यह ढीठपणा कि मने किए भी निर्लज्ज ऊभी रहैं। ये पति के अतिक्रूर वचन सुने तौ भी याहि अति प्रिय लागै – जैसैं घने दिन के तिसाए पपैये को मेघ की बूंद प्यारी लागैं सो पति के वचन मनकरि अमृत समान पीवती भई, हाथ जोड़ि चरणारबिंद की ओर दृष्टि धरि गदगद बाणीकर डिगते डिगते वचन नीठि नीठि कहती भई – हे नाथ! जब तुम यहां बिराजते हुते, तबहूं मैं वियोगिनी ही हुती परन्तु आप निकट हैं सो आशाकरि प्राण कष्टतैं टिक रहे हैं। अब आप दूर पधारै हैं, मैं कैसैं जीऊंगी?

मैं तिहारे वचन रूप अमृत के आस्वादने की अति आतुर तुम परदेश को गमन करते समय स्नेहतैं दयालु चित्त होयकर वस्ती के पशु पक्षियों को भी दिलासा करी, मनुष्यों को तो कहा बात? सबसों अमृत समान वचन कहे। मेरा चित्त तिहारे चरणारबिंदविषै है, मैं तिहारी अप्राप्तिकर अति दुखी औरनि की श्रीमुखतैं एती दिलासा करी, मेरी औरनि के मुखतैं ही दिलासा कराई होती। जब मोहि आपने तजी तब जगत में शरण नाहीं, मरण ही है।

तब कुमार ने मुख संकोच कर कोपसों कही – मर। तब यह सती खेदखिन्न होय धरती पर गिर पड़ी। पवन कुमार यासों कुमयाहीविषै चाले। बड़ी ऋद्धिसहित हाथी पर असवार होय सामंतों सहित पयान किया। पहले ही दिनविषै मानसरोवर जाय डेरे भए, पुष्ट हैं वाहन जिनके सो विद्याधरनि की सेना देवों की सेना समान आकाशतैं उतरती संती अति शोभायमान भासती भई। कैसी है सेना? नाना प्रकार के जे वाहन अर शस्त्र तेई हैं आभूषण जाके। अपने अपने वाहनों के यथायोग्य यत्न कराये, स्नान कराये, खानपान का यत्न कराया।

अथानन्तर विद्या के प्रभावतैं मनोहर एक बहुखणा महल बनाया, चौड़ा अर ऊंचा, सो आप मित्र सहित महल ऊपर विराजे। संग्राम का उपज्या है अति हर्ष जिनके, झरोखनि की जाली के छिद्रकरि सरोवर के तट के वृक्षनि कों देखते हुते, शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्ष मंद मंद हालते हुते अर सरोवरविषै लहर उठती हुती। सरोवर के जीव कछुआ, मीन, मगर अर अनेक प्रकार के जलचर गर्व के धरणहारे तिनकी भुजानिकरि किलोल होय रही हैं। उज्ज्वल स्फटिक मणि समान निर्मल जल है जामैं, नाना प्रकार के कमल फूल रहे हैं। हंस, कारंड, क्रौंच, सारस इत्यादि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं, जिनके सुननेतैं मन अर कर्ण हर्ष पावै। अर भ्रमर गुंजार कर रहै हैं।

तहां एक चकवी, चकवे बिना अकेली वियोग रूप अग्नितैं तप्तायमान, अति आकुल, नाना प्रकार चेष्टा की करणहारी, अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो वा तरफ लग रहे हैं नेत्र जाके, अर कमलिनी के पत्रनि के छिद्रोंविषैं बारम्बार देखै है, पांखनि कों हिलावती उठै है अर पड़े है? अर

मृणाल कहिए कमल की नाल का तार ताका स्वाद विष समान देखै है, अपना प्रतिबिम्ब जलविषै देखकरि जाने है कि मेरा पीतम है, सो ताहि बुलावै है सो प्रतिबिम्ब कहा आवै? तदि अप्राप्ततैं परम शोक को प्राप्त भई है।

कटक आय उतर्‍या है, सो नाना देशनि के मनुष्यों के शब्द अर हाथी, घोड़ा आदि नाना प्रकार के पशुवनि के शब्द सुनकर अपने वल्लभ चकवा की आशाकर, भ्रमैं है, चित्त जाका, अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके, तट के वृक्ष पर चढ़ि चढ़ि करि दशोंदिशा की ओर देखै है, पीतम को न देखकरि अति शीघ्र ही भूमि पर आय पड़े हैं, पांख हलाय कमलिनि की जो रज शरीर के लागी है सो दूर करै है। सो पवन कुमार बेर तक दृष्टि धारि चकवी की दशा देखी। दयाकर भीज गया है चित्त जाका, चित्त में विचारै हैं कि पीतम के वियोग करि यह शोक रूप अग्निविषै बलै हैं। यह मनोज्ञ मानसरोवर, अर चन्द्रमा की चांदनी चंदन समान शीतल, सो या वियोगिनी चकवी कों दावानल समान है, पति बिना याकों कोमल पल्लव भी खड्ग समान भासै हैं। चंद्रमा की किरण भी वज्र समान भासै है, स्वर्ग हू नरकरूप होय आचरै है। ऐसा चिंतवनकर याका मन प्रियाविषै गया। अर या मानसरोवर पर ही विवाह भया हुता सो वे विवाह के स्थानक दृष्टि में पड़े सो याकों अति शोक के कारण भए, मर्म के भेदनहारे दु:सह करौत समान लागें।

चित्तविषै विचारता भया – हाय! हाय! मैं क्रूरचित्त पापी, वह निर्दोष वृथा तजी, एक रात्रि का वियोग चकवी न सहार सकै तो बाईस वर्ष का वियोग वह महासुन्दरी कैसे सहारै? कटुक वचन वाकी सखी ने कहे हुते, वाने तो न कहे हुते, मैं पराए दोषकरि काहे को ताका परित्याग किया। धिक्कार है मो सारिखै मूर्ख को, जो विना विचारे काम करै। ऐसे निष्कपट प्राणी को विना कारण दुख अवस्था करी। मैं पापचित्त हूं, वज्र समान है हृदय मेरा, जो मैंने एते वर्ष ऐसी प्राणवल्लभा को वियोग दिया, अब क्या करूं? पितासों विदा होयकर घरतैं निकस्या हूं, कैसैं पाछा जाऊं? बड़ा संकट पड्या, जो मैं वासों मिले विना संग्राम में जाऊं तो वह जीवै नाहीं, अर वाके अभाव भए मेरा भी अभाव होयगा। जगतविषै जीतव्य समान कोई पदार्थ नाहीं, तातैं सर्व संदेह का निवारणहारा मेरा परम मित्र प्रहस्त विद्यमान है वाहि सर्व भेद पूछूं। वह सर्व प्रीति की रीति में प्रवीण है। जे विचारकर कार्य करै हैं, ते प्राणी सुख पावै हैं।

ऐसा पवनकुमार को विचार उपज्या, सो प्रहस्त मित्र ताके सुखविषै सुखी दुखविषै दुखी, याके चिंतावान देख पूछता भया कि – हे मित्र! तुम रावण की मदद करने को वरुण सारिखे योधासों लड़ने को जावो हो, सो अति प्रसन्नता चाहिए तब कार्य की सिद्धि होय। आज तिहारा वदनरूप कमल क्यों मुरझाया दीखै है, लज्जा को तजकरि मोहि कहो, तुमको चिंतावान देखकर मेरे व्याकुलभाव भया है।

तब पवनंजय ने कही – हे मित्र! यह वार्ता काहूसों कहनी नाहीं, परन्तु तू मेरे सर्व रहस्य के भाजन हौ तोसूं अंतर नाहीं। यह बात कहते परम लज्जा उपजै है। तब प्रहस्त कहते भए जो तिहारे चित्त विषै होय सो कहो, जो तुम आज्ञा करो सो बात और कोई न जानेगा। जैसैं तातैं लोहे पर पड़ी जल की बूंद विलाय जाय प्रकट न दीखै, तैसैं मोहि कही बात प्रकट न होय।

तब पवन कुमार बोले – हे मित्र! सुनो – मैं कदापि अंजनी सुन्दरीसों प्रीति न करी। सो अब मेरा मन अति व्याकुल है, मेरी क्रूरता देखो, ऐते वर्ष परणे भए सो अब तक वियोग रह्या, निष्कारण अप्रीति भई, सदा वह शोक की भरी रही। अश्रुपात झरते रहे, अन्दर चलते समय द्वारै खड़ी विरह रूप दाहसों मुरझाय गया है मुखरूप कमल जाका, सर्व लावण्य सम्पदारहित मैंने देखी। अब ताके दीर्घ नेत्र नीलकमल समान मेरे हृदय को बाणवत् भेदै हैं। तातैं ऐसा उपाय कर जाकरि मेरा वासों मिलाप होय।

हे सज्जन! जो मिलाप न होयगा तो हम दोनों का ही मरण होयगा। तब प्रहस्त क्षण एक विचारकरि बोले – तुम माता पितासों आज्ञा मांग शत्रु के जीतवे को निकसे हो, तातैं पीछे चलना उचित नाहीं। अर अब तक कदापि अंजना सुन्दरी याद करी नाहीं, अर यहां बुलावैं तो लज्जा उपजै है, तातैं गोप्य चलना अर गोप्य ही आवना, वहां रहना नाहीं। उनका अवलोकनकर सुख संभाषणकरि आनन्दरूप शीघ्र ही आवना। तब आपका चित्त निश्चल होयगा, परम उत्साहरूप चलना, शत्रु के जीतने का निश्चय यही उपाय है। तब मुद्गर नामा सेनापति को कटक रक्षा सौंपकरि मेरु की वंदना का मिसकरि प्रहस्त मित्रसहित गुप्त ही सुगंधादि सामग्री लेयकरि आकाश के मार्गसों चाले। सूर्य भी अस्त होय गया अर सांझ का प्रकाश भी होय गया, निशा प्रकट भई। अंजनी सुन्दरी के महल पर जाय पहुँचे। पवनकुमार तो बाहिर खड़े रहे, प्रहस्त खबर देने कों भीतर गए। दीपक का मंद प्रकाश था, अंजनी कहती भई – कौन है ? बसंतमाला निकट ही सोती हुती, सो जगाई। वह सब बातोंविषै निपुण उठकर अंजनी का भय निवारण करती भई। प्रहस्त ने नमस्कारकरि जब पवनंजय के आगमन का वृत्तांत कह्या तब सुन्दरी ने प्राणनाथ का समागम स्वप्न समान जान्या।

प्रहस्त कों गदगद वाणीकरि कहती भई – हे प्रहस्त! मैं पुण्यहीन, पति की कृपाकरवर्जित, मेरे ऐसा ही पाप कर्म का उदय आया, तू हमसों कहा हंसै है? पतिसों जिसका निरादर होय वाकी कौन अवज्ञा न करै? मैं अभागिनी दुःख अवस्था को प्राप्त भई, कहांतैं सुख अवस्था होय?

तब प्रहस्त ने हाथ जोड़ि नमस्कारकरि विनती करी – हे कल्याणरूपिणी! हे पतिव्रते! हमारा अपराध क्षमा करो, अब सब अशुभ कर्म गए, तुम्हारे प्रेमरूप गुण का प्रेर्‌या तेरा प्राणनाथ आया।

तुमसे अति प्रसन्न भया, तिनकी प्रसन्नताकरि कहा कहा आनन्द न होय, जैसैं चन्द्रमा के योगकरि रात्रि की अति मनोज्ञता होय। तब अंजनासुन्दरी क्षण एक नीची होय रही अर बसंतमाला प्रहस्तसों कही – हे भद्र! मेघ बरसै जब ही भला, तातैं प्राणनाथ इनके महल पधारे, सो इनका बड़ा भाग्य अर हमारा पुण्य रूप वृक्ष फल्या। यह बात होय रही हुती ताही समय आनन्द के अश्रुपातकरि व्याप्त होय गए हैं नेत्र जिनके सो कुमार पधारे ही। मानों करुणारूप सखी ही पीतम को ढिंग ले आई। तब भयभीत हिरणी के नेत्र समान सुन्दर हैं नेत्र जाके, ऐसी प्रिया पति को देख सन्मुख जाय, हाथ जोड़ि सीस निवाय पांयनि पड़ी।

तब प्राणबल्लभ ने अपने करतैं सीस उठाय खड़ी करी। अमृत समान वचन कहे कि – हे देवी! क्लेश का सकल खेद निवृत्त होवै। सुन्दरी हाथ जोड़ि पति के निकट खड़ी हुती। पति ने अपने करतैं कर पकड़करि सेज पर बिठाई, तब नमस्कार कर प्रहस्त तो बाहिर गए अर बसंतमाला हू अपने स्थान जाय बैठी।

पवनंजय कुमार ने अपने अज्ञानतैं लज्जावान होय सुन्दरीसों बारम्बार कुशल पूछी अर कही – हे प्रिये! मैंने अशुभ कर्म के उदयतैं जो तिहारा वृथा निरादार किया सो क्षमा करो। तब सुन्दरी नीचा मुखकरि मंद मंद वचन कहती भई – हे नाथ! आपने पराभव कछु न किया, कर्म का ऐसा ही उदय हुता, अब आपने कृपा करी, अति स्नेह जताया तो मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध भए। आपके ध्यान कर संयुक्त हृदय मेरा, सो आप सदा हृदय ही विषै विराजते, आपका अनादर हू आदर समान भास्या।

या भांति अंजना सुन्दरी ने कह्या तब पवनंजय कुमार हाथ जोड़ कहते भए कि हे प्राणप्रिये! मैं वृथा अपराध किया। पराये दोषतैं तुमको दोष दिया। सो तुम सब हमारा अपराध विस्मरण करो। मैं अपना अपराध क्षमावने निमित्त तिहारे पायन परूं हूं, तुम हमसों अति प्रसन्न होवो। ऐसा कहकर पवनंजय कुमार ने अधिक स्नेह जनाया, तब अंजना सुन्दरी पति का एता स्नेह देखकरि बहुत प्रसन्न भई। अर पति को प्रियवचन कहती भई, हे नाथ! मैं अति प्रसन्न भई, हम तिहारे चरणारबिंद की रज हैं, हमारा इतना विनय तुमको उचित नाहीं, ऐसा कहकर सुखसों सेज पर विराजमान किये, प्राणनाथ की कृपाकरि प्रिया का मन अति प्रसन्न भया। अर शरीर अतिकांति को धरता भया, दोनों परस्पर अतिस्नेह के भरे एक चित्त भए। सुखरूप जागृति रहे, निद्रा न लीनी। पिछले पहिर अल्प निद्रा आई, प्रभात का समय होय आया।

तब यह पतिव्रता सेजसों उतर पति के पाय पलोटने लगी, रात्रि व्यतीत भई, सो सुख में जानी नाहीं, प्रात: समय चन्द्रमा की किरण फीकी पड़ गई, कुमार आनन्द के भार में भर भए। अर

स्वामीजी की आज्ञा भूल गए, तब मित्र प्रहस्त ने कुमार के हितविषै है चित्त जाका, ऊंचा शब्दकर बसंतमाला को जगाकर भीतर पठाई अर मंद मंद आपहू सुगन्धित महल में मित्र के समीप गए, अर कहते भए – हे सुन्दर! उठो, अब कहां सोवो हो? चन्द्रमा भी तिहारे मुख की कांतिकरि रहित होय गया है।

यह वचन सुनकर पवनंजय प्रबोध को प्राप्त भए। शिथिल है शरीर जिनका, जंभाई लेते, निद्रा के आवेशकरि लाल हैं नेत्र जिनके, कानों को बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली सों खुजावते, खुले हैं नेत्र जिनके, दाहिनी भुजा संकोचकरि अरिहंत का नाम लेकर सेजसों उठे। प्राणप्यारी आपके जगनेतैं पहिले ही सेजसों उतरकरि भूमिविषै विराजै है, लज्जाकर नम्रीभूत हैं नेत्र जाके, उठते ही पीतम की दृष्टि प्रिया पर पड़ी, बहुरि प्रहस्त को देखकरि, आवो मित्र, शब्द कहकर सेजसों उठे।

प्रहस्त ने मित्रसों रात्रि की कुशल पूछी, निकट बैठे, मित्र नीतिशास्त्र के वेत्ता कुमारसों कहते भए – हे मित्र! अब उठो, प्रियाजी का सन्मान बहुरि आय कर करियो, कोई न जानै या भांति कटक में जाय पहुंचैं। अन्यथा लज्जा है। रथनूपुर का धनी किन्नर गीत नगर का धनी रावण के निकट गया चाहै है सो तिहारी और देखै है – जो वे आगै आवैं तो हम मिलकर चलें। अर रावण निरंतर मंत्रियोंतैं पूछै जो पवनंजय कुमार के डेरे कहां हैं अर कब आवेंगे? तातैं अब आप शीघ्र ही रावण के निकट पधारो। प्रियाजी सों विदा मांगो, तुमको पिता की अर रावण की आज्ञा अवश्य करनी है। कुशल क्षेमसों कार्यकर शिताब ही आवैंगे, तब प्राणप्रियासों अधिक प्रीत करियो।

तब पवनंजय ने कही – हे मित्र! ऐसे ही करना। ऐसा कहकर मित्र को तो बाहिर पठाया अर आप प्राणवल्लभासों अतिस्नेहकर उरसों लगाय कहते भए – हे प्रिये! अब हम जांय हैं, तुम उद्वेग मत करियो, थोड़े ही दिनों में स्वामी का काम कर हम आवेंगे, तुम आनन्दसों रहियो। तब अंजना सुन्दरी हाथ जोड़कर कहती भई – हे महाराज कुमार! मेरा ऋतुसमय है सो गर्भ मोहि अवश्य रहेगा अर अब तक आपकी कृपा नहीं हती, यह सर्व जानै हैं सो माता पितासों मेरे कल्याण के निमित्त गर्भ का वृत्तांत कह जावो। तुम दीर्घदर्शी सब प्राणियों में प्रसिद्ध हो।

ऐसे जब प्रिया ने कह्या तब प्राणवल्लभा कों कहते भए – हे प्यारी! मैं माता पितासों विदा होय निकस्या। सो अब उनके निकट जाना बनै नाहीं, लज्जा उपजै है। लोक मेरी चेष्टा जान हंसैंगे, तातैं जब तक तिहारा गर्भ प्रकाश न पावै ताके पहिले ही मैं आवूं हूं, तुम चित्त प्रसन्न राखो, अर कोई कहैं तो यह मेरे नाम की मुद्रिका राखो, हाथों के कड़े राखो, तुमको सब शांति

होयगी। ऐसा कहकर मुद्रिका दई अर बसंतमाला को आज्ञा दई – इनकी सेवा बहुत नीके करियो। आप सेजसों उठे, प्रिया विषै लग रह्या है प्रेम जिनका। कैसी है सेज, संयोग के योगतैं बिखर रहे हैं हार के मुक्ताफल जहां। अर पुष्पन की सुगन्ध मकरंदतैं भ्रमै हैं भ्रमर जहां, क्षीरसागर की तरंग समान अति उज्ज्वल बिछे हैं पट जहां। आप उठकर मित्र के सहित विमान पर बैठि आकाश के मार्ग चाले। अंजना सुन्दरी ने अमंगल के कारण आंसू न काढ़े।

हे श्रेणिक! कदाचित् या लोकविषै उत्तम वस्तु के संयोगतैं किंचित् सुख होय है सो क्षणभंगुर है। अर देहधारियों के पाप के उदयतैं दुख होय है, सुख दुख दोनों विनश्वर हैं, तातैं हर्ष विषाद न करना। हो प्राणी हो! जीवों को निरंतर सुख का देनहारा दुखरूप अंधकार का दूर करणहारा जिनवरभाषित धर्म सोई भया सूर्य ताके प्रताप करि मोहतिमिर हरहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै पवनंजय अंजना का संयोग वर्णन करने वाला सोलहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।16।।

अथानन्तर कई एक दिनोंविषै महेन्द्र की पुत्री जो अंजना ताके गर्भ के चिह्न प्रकट भए। कछुइक मुख पांडुवर्ण होय गया। मानों हनुमान गर्भ में आया सो तिनका यश ही प्रकट भया है। मंद चाल चलने लगी जैसा मदोन्मत दिग्गज विचरै है। स्तनयुगल अति उन्नति को प्राप्त भए, श्यामलीभूत है अग्रभाग जिनके। आलसतैं वचन मंद मंद निसरैं, भौहों का कंप होता भया, इन लक्षणनिकरि ताहि सासू गर्भिणी जानकर पूछती भई। तैंने यह कर्म कौन तैं किया?

तब यह हाथ जोड़ प्रणामकर पति के आवने का समस्त वृत्तांत कहती भई। तदि केतुमती सासू क्रोधायमान भई। महा निठुरवाणी रूप पाषाण कर पीडती भई – हे पापिनी! मेरा पुत्र तेरे तैं अति विरक्त, तेरा आकार भी न देख्या चाहै, तेरे शब्द को श्रवणविषै धारै नाहीं, माता पितासों विदा होयकर रणसंग्राम को बाहिर निकस्या। वह धीर कैसे तेरे मंदिर में आवै? हे निर्लज्ज! धिक्कार है तुझ पापिनी को। चन्द्रमा की किरण समान उज्ज्वल वंश को दूषण लगावनहारी यह दोनों लोक में निंद्य अशुभ क्रिया तैनें आचरी, अर तेरी यह सखी बसंतमाला याने तोंहि ऐसी बुद्धि दीनी। कुलटा के पास वेश्या रहै तब काहे की कुशल? मुद्रिका अर कड़े दिखाए तौ भी ताने न मानी, अत्यन्त कोप किया।

एक क्रूर नामा किंकर बुलाया, वह नमस्कार कर आय ठाढा भया। तब क्रोधकर केतुमती ने लाल नेत्र कर कहा – हे क्रूर! सखी सहित याहि गाड़ी में बैठाय महेंद्र नगर के निकट छोड़ आव। तब क्रूर केतुमती की आज्ञातैं सखी सहित अंजना को गाड़ी में बैठाय कर महेंद्र के नगर की ओर ले चाल्या। कैसी है अंजना सुन्दरी? अति कांपै है शरीर जाका, महा पवनकर उपड़ी जो बेल

तासमान निराश्रय, अति आकुल, कांतिरहित, दु:खरूप अग्निकर जल गया है हृदय जाका, भयंकर सासू को कछु उत्तर न दिया। सखी की ओर धरे हैं नेत्र जानै, मनकर अपने अशुभ कर्म को बारंबार निंदती, अश्रुधारा नाखती, निश्चल नहीं है चित्त जाका, सो क्रूर इनको लेय चाल्या। सो क्रूरकर्मविषै अति प्रवीण है। दिवस के अंत में महेंद्र नगर के समीप पहुंचायकर नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया – हे देवी! मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञातैं तुमको दुख का कारण कार्य किया, सो क्षमा करहु। ऐसा कह कर सखीसहित सुन्दरीकूं गाड़ीतैं उतार, विदा होय, गाड़ी लेय स्वामिनी पै गया। जाय विनती करी – आपकी आज्ञा प्रमाण तिनकूं तहां पहुंचाय आया हूं।

अथानन्तर महा उत्तम महापतिव्रता जो अंजना सुन्दरी ताहि पति के योगतैं दुख के भारतैं पीड़ित देख सूर्य भी मानों चिंताकर मंद हो गई है प्रभा जाकी, अस्त होय गया। अर रुदनकर अत्यन्त लाल होय गए हैं नेत्र जाके, ऐसी अंजना मानो याके नेत्र की अरुणताकर पश्चिम दिशा रक्त होय गई। अंधकार फैल गया, रात्रि भई। अंजना के दुखतैं निकसी जो आंसून की धारा, तेई भए मेघ, तिनकर मानो दशोंदिशा श्याम होय गई। अर पंछी कोलाहल शब्द करते भए सो मानों अंजनी के दुखतैं दुखी भए पुकारै हैं। वह अंजना अपवादरूप महादुख का जो सागर तामैं डूबी क्षुधादिक दुख भूल गई। अत्यन्त भयभीत अश्रुपात नाखै, रुदन करै, सो बसंतमाला सखी धीर्य बंधावै। रात्रि को पल्लव का सांथरा विछाय दिया सो याकों निद्रा रंच भी न आई। निरंतर उष्ण अश्रुपात पड़े सो मानों दाह के भयतैं निद्रा भाज गई। बसंतमाला पांव दाबै, खेद दूर किया दिलासा करी। दुख के योगकर एक रात्रि वर्ष बराबर बीती।

प्रभात में सांथरे को तजकर नाना संकल्प विकल्पनि के सैंकडानि शंकाकरि अति विह्वल पिता के घर की ओर चाली। सखी छाया समान संग चाली। पिता के मन्दिर के द्वार जाय पहुंची। भीतर प्रवेश करती द्वारपाल ने रोकी। दु:ख के योगतैं और ही रूप होय गया सो जानी न पड़ी। तब सखी ने सब वृत्तांत कह्या। तदि राजा के निकट प्रसन्नकीर्ति बैठा जानकर शिलाकवाट नामा द्वारपाल ने एक और मनुष्य को द्वारै मेलि आप राजा के निकट जाय नमस्कार करि विनती करी। पुत्री के आगमन का वृत्तांत कह्या। तब राजा के निकट प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र बैठ्या हुता। सो राजा ने पुत्र को आज्ञा करी – तुम सन्मुख जाय उसका शीघ्र ही प्रवेश करावो, अर नगर की शोभा करावो, तुम तो पहिले जावो, और हमारी असवारी तैयार करावो, हम भी पीछेतैं आवै हैं। तदि द्वारपाल ने हाथ जोड़ नमस्कार कर यथार्थ विनती करी।

तब राजा महेंद्र लज्जा का कारण सुनकर महा कोपवान भए। अर पुत्र को आज्ञा करी कि पापिनीकूं नगरतैं काढ़ देवो, जाकी वार्ता सुनकर मेरे कान मानो वज्रकर हते गए हैं।

तब एक महोत्साह नामा बड़ा सामंत राजा का अतिवल्लभ, सो कहता भया – हे नाथ! ऐसी आज्ञा करनी उचित नाहीं, बसंतमाला सों सब ठीक पाड़ लेहु, सासू केतुमती अति क्रूर है, अर जिनधर्मतैं पराङ्मुख है, लौकिकसूत्र जो नास्तिकमत ताविषै प्रवीण है। तानै बिना विचास्या झूठा दोष लगाया। यह धर्मात्मा श्रावक के व्रत की धरणहारी, कल्याण आचारविषै तत्पर। पापिनी सासू ने निकासी है अर तुम भी निकासो तो कौन के शरणै जाय? जैसैं व्याघ्र की दृष्टितैं मृगी त्रास को प्राप्त भई संती महागहन वन का शरण लेय, तैसैं यह भोली निष्कपट सासूतैं शंकित भई, तुम्हारे शरण आई है। मानों जेठ के सूर्य की किरण के संतापतैं दुखित भई, महावृक्ष रूप जो तुम सो तिहारे आश्रय आई है। यह गरीबिनी, विह्वल है आत्मा जाका, अपवादरूप जो आपात ताकर पीड़ित, तिहारे आश्रय भी साता न पावै तो कहां पावै? मानों स्वर्गतैं लक्ष्मी ही आई है। द्वारपाल ने रोकी सो अत्यन्त लज्जा को प्राप्त भई। विलखिकरि माथा ढांकि द्वारै खड़ी है। आपके स्नेहकर सदा लाडली है, सो तुम दया करो। यहु निर्दोष है, मन्दिर मांहि प्रवेश करावो। अर केतुमती की क्रूरता पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है।

ऐसे न्यायरूप वचन महोत्साह सामंत ने कहे, सो राजा कान न धरै। जैसैं कमलों के पत्रनिविषै जल की बूंद न ठहरै तैसैं राजा के चित्त में यह बात न ठहरी।

राजा सामंतसों कहते भए – यह सखी बसंतमाला सदा याके पास रहै, अर याही के स्नेह के योगतैं कदाचित् सत्य न कहै तो हमको निश्चय कैसैं आवै? यातैं याके शीलविषै संदेह है, सो याकों नगरतैं निकास देहु। जब यह बात प्रसिद्ध होयगी तो हमारे निर्मल कुलविषै कलंक आवैगा। जे बड़े कुल की बालिका निर्मल हैं अर महा विनयवंती उत्तम चेष्टा की धरणहारी हैं ते पीहर सासुरै सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं। जे पुण्याधिकारी बड़े पुरुष जन्महीतैं निर्मल शील पालै हैं, ब्रह्मचर्य को धारण करै हैं, अर सर्व दोष का मूल जो स्त्री तिनको अंगीकार नाहीं करै हैं ते धन्य हैं। ब्रह्मचर्य समान और कोई व्रत नाहीं, अर स्त्री के अंगीकार मैं यह सफल होय है। जो कुपूत बेटा बेटी होय अर उनके अवगुण पृथ्वीविषै प्रसिद्ध होय तो पिता का धरती में गड़ जाना होय है। सब ही कुल को लज्जा उपजै है। मेरा मन आज अति दुःखित होय रह्या है, मैं यह बात पूर्व अनेक बार सुनी हुती जो यह भरतार के अप्रिय है, अर वह याहि आंखतैं नाहीं देखैं हैं, सो ताकरि गर्भ की उत्पत्ति कैसैं भई, तातैं यह निश्चय सेती सदोष है। जो कोई याहि मेरे राज्य में राखेगा सो मेरा शत्रु है। ऐसे वचन कहकर राजा ने कोपकर जैसैं कोई जानै नाहीं, या भांति याकों द्वारतैं निकाल दीनी।

सखी सहित दुख की भरी अंजनी राजा के निजवर्ग के जहां जहां आश्रय के अर्थि गई, सो

आनै न दीनी। कपाट दिए, जहां बाप ही क्रोधायमान होय निराकरण करै, तहां कुटुम्ब की कैसी आशा, वे तो सब राजा के आधीन हैं। ऐसा निश्चय कर सबतैं उदास होय सखीसों कहती भई। आंसुवों के समूहकर भीज गया है अंग जाका; हे प्रिये! यहां सर्व पाषाणचित्त हैं, यहां कैसा वास? तातैं वन मैं चालैं, अपमानतैं तो मरना भला। ऐसा कहकर सखीसहित वन को चाली, मानो मृगराजतैं भयभीत ही है। शीत, उष्ण अर वात के खेद करि महा दुख करि पीड़ित वन मैं बैठि महारुदन करती भई।

हाय हाय! मैं मंदभागिनी दुखदाई जो पूर्वोपार्जित कर्म ताकरि महा कष्ट को प्राप्त भई। कौन के शरण जाऊं, कौन मेरी रक्षा करै, मैं दुर्भाग्य सागर के मध्य कौन कर्मतैं पड़ी? नाथ मेरा अशुभ कर्म का प्रेर्या कहांतैं आया? काहे को गर्भ रह्या, मेरा दोनों ही ठौर निरादर भया। माता ने भी मेरी रक्षा न करी, सो वह कहा करै? अपने धनी की आज्ञाकारिणी पतिव्रतानि का यही धर्म है। अर नाथ मेरा यह वचन कह गया हुता कि तेरे गर्भ की वृद्धितैं पहिले ही मैं आऊंगा सो हाय नाथ! दयावान होय वह वचन क्यों भूले? अर सासू ने बिना परखे मेरा त्याग क्यों किया? जिनके शील में संदेह होय तिनके परखने के अनेक उपाय हैं। अर पिता को मैं बाल अवस्था विषै अति लाडिली हुती, निरंतर गोद में खिलावते हुते सो बिना परखे मेरा निरादर किया, तिनकी ऐसी बुद्धि क्यों उपजी? अर माता ने मुझे गर्भ में धारी, प्रतिपालन किया, अब एक बात भी मुखतैं न निकाली कि इसके गुण दोष का निश्चय कर लेवें। अर भाई जो एक माता के उदरसों उत्पन्न भया हुता, सोहु मो दुःखनि को न राख सक्या, सब ही कठोरचित्त होय गए।। जहां माता पिता भ्राता ही की यह दशा, तहां काका बाबा के दूर भाई तथा प्रधान सामंत कहा करै? अथवा उन सबका कहा दोष? मेरा जो कर्मरूप वृक्ष फल्या सो अवश्य भोगना।

या भांति अंजना विलाप करै, सो सखी भी याके लार विलाप करै। मनतैं धीर्य जाता रह्या, अत्यन्त दीनमन होय यह ऊंचे स्वरतैं रुदन करै। सो मृगी भी याकी दशा देख आंसू डालवे लागी। बहुत देर तक रोनेतैं लाल होय गए हैं नेत्र जाके। तब सखी बसंतमाला महाविचक्षण याही छातीसूं लगाय कहती भई – हे स्वामिनी! बहुत रोनेतैं क्या लाभ? जो कर्म तैने उपार्ज्या है सो अवश्य भोगना है। सब ही जीवनि के कर्म आगैं पीछैं लाग रहे हैं, सो कर्म के उदयविषै शोक कहा? हे देवी! जे स्वर्गलोक के देव सैकड़ों अप्सरावों के नेत्रनिकर निरंतर अवलोकिए हैं, तेहू सुकृत के अंत होते परम दुःख पावै हैं। मन मैं चिंतिए कछु और, होय जाय कछु और, जगत के लोक उद्यममैं प्रवरतै हैं तिनको पूर्वोपार्जित कर्म का उदय ही कारण है। जो हितकारी वस्तु आय प्राप्त भई सो अशुभ कर्म के उदयतैं विघटि जाय, अर जो वस्तु मनतैं अगोचर है सो आय मिलै।

कर्मनि की गति विचित्र है। तातैं बाई! तू गर्भ के खेदकरि पीड़ित है, वृथा क्लेश मत कर, तू अपना मन दृढ़ कर। जो तैंने पूर्वजन्म में कर्म उपारजे हैं तिनके फल टारे न टरैं, अर तू तो महाबुद्धिमती है तोहि कहा सिखावूं? जो तू न जानती होय तो मैं कहूं। ऐसा कहकर याके नेत्रनि के आंसू अपने वस्त्रतैं पोंछे, बहुरि कहती भई – हे देवी! यह स्थानक आश्रय रहित है, तातैं उठो, आगैं चालैं या पहाड़ के निकट कोई गुफा होय जहां दुष्ट जीवन का प्रवेश न होय। तेरे प्रसूति का समय आया है सो कैएक दिन यत्नसूं रहना। तब यह गर्भ के भारतैं जो आकाश के मार्ग चलने में हूं असमर्थ है तो भूमि पर सखी के संग गमन करती महा कष्टकरि पांव धरती भई।

कैसी ही वनी? अनेकअजगरनितैं भरी, दुष्ट जीवन के नादकरि अत्यंत भयानक, अति सघन नाना प्रकार के वृक्षनिकरि सूर्य की किरण का भी संचार नाहीं, जहां सूई के अग्रभाग समान डाभ की अणी अतितीक्ष्ण, जहां कंकर बहुत अर माते हाथीनि के समूह अर भीलों के समूह बहुत हैं। अर वनी का नाम मातंगमालिनी है, जहां मन की भी गम्यता नाहीं तो मनुष्यनि की कहा गम्यता? सखी आकाशमार्गतैं जायवे को समर्थ अर यह गर्भ के भारकरि समर्थ नाहीं, तातैं सखी याके प्रेम के बंधनसों बंधी शरीर की छाया समान लार लार चालै है। अंजनी वनी को अतिभयानक देखकर कांपै है, दिशा भूल गई। तब बसंतमाला याकों अति व्याकुल जानकर हाथ पकड़कर कहती भई – हे स्वामिनी! तू डरै मत, मेरे पाछैं पाछैं चली आव।

तब यह सखी के कांधे पर हाथ रखकर चली जाय, ज्यों ज्यों डाभ की अणी चुभै त्यों त्यों खेदखिन्न होय विलाप करती, देह कों कष्टतैं धारती, जल के नीझरने जे अति तीव्र वेग संयुक्त बहैं तिनकों अति कष्टतैं पार उतरती, अपने जे सब स्वजन अति निर्दई तिनका अति चितार करती, अपने अशुभ कर्म कों बारंबार निंदती, बेलों को पकड़ भयभीत हिरणी के-से हैं नेत्र जाके, अंगविषै, पसेव को धारती, कांटों से वस्त्र लाग जांय सो छुड़ावती, लहूतैं लाल होय गए हैं चरण जाके, शोकरूप अग्नि के दाहकरि श्यामता कों धरती, पत्र भी हालै तो त्रास कों प्राप्त होती, चलायमान है शरीर जाका, बारंबार विश्राम लेती, ताहि सखी निरंतर प्रियवाक्य कर धीर्य बंधावै, सो धीरे धीरे अंजनी पहाड़ की तलहटी तक आई, तहां आंसू भर बैठ गई। सखीसों कहती भई – अब मुझमें एक पग धरने की हू शक्ति नाहीं, यहां ही रहूंगी, मरण होय तो होय।

तब सखी ने अत्यन्त प्रेम की भरी महाप्रवीण मनोहर वचननिकरि याको शांति उपजाय नमस्कार कर कहती भई – हे देवी! देख, यह गुफा नजदीक ही है, कृपाकर इहांतैं उठकर तहां सुखसों तिष्ठो। यहां क्रूर जीव विचरै हैं, तोकों गर्भ की रक्षा करनी है, तातैं हठ मति कर। ऐसा कह्या तब वह आताप की भरी सखी के वचननिकरि अर सघन वन के भयकरि चलवे को उठी।

तब सखी हस्तावलंबन देयकर याकों विषम भूमितैं निकास कर गुफा के द्वार पर लेय गई। बिना विचारे गुफा में बैठने का भय होय। सो ये दोनों बाहिर खड़ी विषम पाषाण के उलंघवेकर उपज्या है खेद जिनकों, तातैं बैठ गई। तहां दृष्टि धर देख्या।

कैसी है दृष्टि? श्याम श्वेत आरक्त कमल समान प्रभाव को धरै। सो एक पवित्र शिला पर विराजे चारणमुनि देखे। जो पल्यंकासन धरैं, अनेक ऋद्धि संयुक्त, निश्चल हैं श्वासोच्छ्वास जिनके, नासिका के अग्र भाग पर धरी है दृष्टि जिनने, शरीर स्तंभ समान निश्चल है। गोद पर धर्‍या है जो वामा हाथ ताके ऊपर दाहना हाथ, समुद्र समान गंभीर, अनेक उपमासहित विराजमान, आत्मस्वरूप का जो यथार्थ स्वभाव जैसा जिनशासनविषै गाया है तैसा ध्यान करते, समस्त परिग्रहरहित, पवन जैसे असंगी, आकाश जैसे निर्मल, मानों पहाड़ के शिखर ही हैं। सो इन दोनों ने देखे। कैसे हैं वे साधु? महापराक्रम के धारी महाशांति ज्योतिरूप है शरीर जिनका। ये दोनों मुनि के समीप गईं। सर्व दुःख विस्मरण भया। तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ि नमस्कार किया, मुनि परम बांधव पाए, फूल गए हैं नेत्र जिनके। जा समय जो प्राप्ति होनी होय सो होय।

तदि ये दोनों हाथ जोड़ विनती करती भईं। मुनि के चरणारविंद की ओर धरै हैं अश्रुपातरहित स्थिर नेत्र जिनने। हे भगवन्! हे कल्याणरूप! हे उत्तम चेष्टा के धरणहारे! तिहारे शरीर में कुशल है? कैसा है तिहारा देह? सर्व तपव्रत आदि साधननि का मूल कारण है। हे गुण के सागर! ऊपरां ऊपर तप की है वृद्धि जिनकी! हे महाक्षमावान, शांतिभाव के धारी, मनइन्द्रियों के जीतनहारे! तिहारा जो विहार है सो जीवन के कल्याणनिमित्त है। तुम सारिखे पुरुष सकल पुरुषनि कों कुशल के कारण हैं, सो तिहारा कुशल कहा पूछना। परन्तु यह पूछने का आचार है, तातैं पूछी है। ऐसा कहि विनयतैं नम्रीभूत भया है जिनका, सो चुप होय रही अर मुनि के दर्शनतैं सर्व भय रहित भईं।

अथानन्तर मुनि अमृततुल्य परमशांति के वचन कहते भये – हे कल्याणरूपिणी! हे पुत्री! हमारे कर्मानुसार सब कुशल है। ये सर्व ही जीव अपने अपने कर्मों का फल भोगवै हैं। देखो कर्मनि की विचित्रता, यह राजा महेंद्र की पुत्री अपराधरहित कुटुम्ब के लोगनि ने काढ़ी है। सो मुनि बड़े ज्ञानी, बिना कहे सब वृत्तांत के जाननहारे, तिनको नमस्कार कर बसंतमाला पूछती भई – हे नाथ! कौन कारणतैं भरतार यासों बहुत दिन उदास रहे? बहुरि कौन कारण अनुरागी भए? अर यह महासुखयोग्य वनविषै कौन कारणतैं दुख को प्राप्त भई? कौन मंदभागी याके गर्भ में आया जाकरि याकों जीवने का संशय भया?

तदि स्वामी अमितगति तीन ज्ञान के धारक सर्व वृत्तांत यथार्थ कहते भए। यही महापुरुषों की वृत्ति है जो पराया उपकार करै। बसंतमालासों कहै हैं – हे पुत्री! याके गर्भविषै उत्तम बालक आया

है, सो प्रथम तो ताकै भव सुनि, बहुरि जा कारणतैं यह अंजनी ऐसे दुख को प्राप्त भई जो पूर्व भव में पाप का आचरण किया सो सुन।

जम्बूद्वीप में भरत नामा क्षेत्र, तहां प्रियनन्दी नामा गृहस्थ, ताके जाया नामा स्त्री, अर दमयंत नामा पुत्र हुता, सो महा सौभाग्य संयुक्त कल्याणरूप जे दया क्षमाशील संतोषादि गुण तेई हैं आभूषण जाके। एक समय बसंतऋतु में नन्दन वन तुल्य जो वन तहां नगर के लोग क्रीड़ा को गए। दमयंत ने भी अपने मित्रों सहित बहुत क्रीड़ा करी, अबीरादि सुगन्धनिकरि सुगंधित है शरीर जाका, अर कुंडलादि आभूषणनिकरि शोभायमान सो तानै ताही समयविषै महामुनि देखे।

कैसे हैं मुनि? अम्बर कहिए आकाश सो ही है अम्बर कहिए वस्त्र जिनके, तप ही है धन जिनका, अर ध्यान स्वाध्याय आदि जे क्रिया तिनविषै उद्यमी। सो यह दमयंत महा दैदीप्यमान क्रीड़ा करते जे अपने मित्र तिनको छोड़ मुनियों की मंडली में गया। वंदना कर धर्म का व्याख्यान सुन सम्यक्‌दर्शन संयुक्त भया, श्रावक व्रत धारे। नाना प्रकार के नियम अंगीकार किये। एक दिन जे सप्तगुण दाता के अर नवधा भक्ति तिनकरि संयुक्त होय साधुनि कों आहार दान दिया। कई एक दिनविषै समाधिमरणकर स्वर्गलोक को प्राप्त भया, नियम के अर दान के प्रभावतैं अद्‌भुत भोग भोगता भया। सैकड़ों देवांगनानि के नेत्रनि की कांति ही भई नीलकमल, तिनकी मालाकरि अर्चित चिरकाल स्वर्ग के सुख भोगे।

बहुरि स्वर्गतैं चयकरि जंबूद्वीप में मृगांकनामा नगर में हरिचन्द्र नामा राजा, ताकी प्रियंगुलक्ष्मी राणी, ताकै सिंहचन्द नामा पुत्र भया। अनेक कला गुणनिविषै प्रवीण, अनेक विवेकियों के ह्रदय में बसै। तहां भी देवों के से भोग किए, साधुवों की सेवा करी। बहुरि समाधिमरण कर देवलोक गया। तहां मनवांछित अति उत्कृष्ट सुख पाए। कैसा है वह? देव देवियों के जे वदन, तेई भए कमल, तिनके जो वन तिनके प्रफुल्लित करने कों सूर्य समान है। बहुरि तहांतैं चयकरि या भरतक्षेत्रविषै विजयार्ध गिरि पर अहनपुर नगर में राजा सुकंठ रानी कनकोदरी ताकै सिंहवाहन नामा पुत्र भया। अपने गुणनिकरि खैंचा है समस्त प्राणियों का मन जानै। तहां देवों के-से भोग भोगे। अप्सरा समान स्त्री तिनके मन के चोर।

भावार्थ – अतिरूपवान अति गुणवान सो बहुत दिन राज्य किया। श्रीविमलनाथजी के समोसरण में उपज्या है आत्मज्ञान अर संसारतैं वैराग्य जिनको, सो लक्ष्मीवाहन नामा पुत्र कों राज्य देय, संसार कों असार जानि, लक्ष्मीतिलक मुनि के शिष्य भए। श्रीवीतराग देव का भाख्या महाव्रतरूप यति का धर्म अंगीकार किया। अनित्यादि द्वादश अनुप्रेक्षा का चिंतवनकरि ज्ञानचेतनारूप भए। जो तप काहू पुरुषतैं न बनै सो तप किया। रत्नत्रयरूप अपने निजभावनिविषै निश्चल भए।

तत्त्वज्ञानरूप आत्मा के अनुभव विषै मग्न भए। तप के प्रभावतैं अनेक ऋद्धि उपजी। सर्व बात समर्थ, जिनके शरीर को स्पर्शकरि पवन आवै सो प्राणियों के अनेक रोग दुःख हरै, परन्तु आप कर्म निर्जरा के कारण बाईस परीषह सहते भए।

बहुरि आयु पूर्णकर धर्मध्यान के प्रसादतैं ज्योतिष चक्र को उलंघकर सातवां लांतव नामा जो स्वर्ग तहां बड़ी ऋद्धि के धारी देव भए। चाहै जैसा रूप करैं, चाहैं जहां जांय, जो वचनकरि कहने में न आवै। ऐसे अद्‌भुत सुख भोगे परन्तु स्वर्ग के सुखविषै मग्न न भए। परमधाम की है इच्छा जिनको तहांतैं चयकरि या अंजना की कुक्षिविषै आए हैं, सो महा परमसुख के भाजन हैं। बहुरि देह न धरेंगे, अविनाशी सुख को प्राप्त होवेंगे, चरम शरीरी हैं। यह तो पुत्र के गर्भ में आवने का वृत्तांत कह्या। अब हे कल्याणचेष्टिनी! यानै जिसका कारणतैं पति का विरह अर कुटुम्बतैं निरादर पाया सो वृत्तांत सुन।

इस अंजनी सुन्दरी ने पूर्वभव में देवाधिदेव श्री जिनेंद्र देव की प्रतिमा पटराणी पद के अभिमानकरि सौकन (सौत) के ऊपर क्रोधकर मंदिरतैं बाहिर निकासी। ताही समय एक श्रीआर्यिका याके घर आहार को आई हुती, तपकर पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुती, सो याके द्वारा श्रीजी की मूर्ति का अविनय देख पारणा न किया। पीछे चाली, अर याको अज्ञानरूप जान महा दयावती होय उपदेश देती भई।

जे साधुजन हैं ते सबका भला ही चाहै हैं। जीवनि के समझावने के निमित्त बिना पूछे ही साधुजन श्रीगुरु की आज्ञातैं धर्मोपदेश देने को प्रवरतै हैं। ऐसा जानकर वह संयमश्री शील-संयमरूप आभूषण की धरणहारी पटराणी को महामाधुर्य अनुपम वचन कहती भई - हे भोरी! सुन, तू राजा की पटराणी है, अर महारूपवती है, राजा का बहुत सन्मान है, भोगनि का स्थानक है शरीर तेरा; सो पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है। या चतुर्गतिविषै जीव भ्रमैं हैं, महादुःख भोगै हैं। कबहूक अनंतकालविषै पुण्य के योगतैं मनुष्य देह पावै हैं।

हे शोभने! मनुष्यदेह काहू पुण्य के योगतैं पाई है, तातैं यह निंद्य आचार तू मत कर, योग्य क्रिया करने के योग्य है। यह मनुष्यदेह पाय जो सुकृत न करै है सो हाथ में आया रत्न खोवै है। मन, वचन तथा काय से जो शुभ क्रिया का साधन है, सोई श्रेष्ठ है, अर अशुभ क्रिया का साधन है सो दुःख का मूल है। जे अपने कल्याण के अर्थि सुकृतविषै प्रवरतै हैं, तेई उत्तम हैं। यह लोक महानिंद्य अनाचार का भर्‍या है। जे संत संसार सागरतैं आप तिरै हैं औरनि को तारै हैं, भव्यजीवों को धर्म का उपदेश देय हैं तिन समान और उत्तम नाहीं, ते कृतार्थ हैं। तिन मुनि के नाथ, सर्व जगत के नाथ धर्मचक्री श्री अरहंत देव तिनके प्रतिबिंब का जे अविनय करै हैं ते अज्ञानी अनेक

भवविषै कुगति के महादुख पावै हैं। सो वे दु:ख कौन वर्णन कर सके?

यद्यपि श्री वीतरागदेव रागद्वेष रहित हैं, जे सेवा करैं तिनतैं प्रसन्न नाहीं, अर जे निंदा करैं तिनतैं द्वेष नाहीं, महामध्यम भाव को धारै हैं। परन्तु जे जीव सेवा करैं ते स्वर्ग मोक्ष पावै हैं। जे निंदा करैं ते नरक निगोद पावैं। काहेतैं? जीवों के शुभ अशुभ परणामनितैं सुखदु:ख की उत्पत्ति होय है। जैसैं अग्नि के सेवनतैं शीत का निवारण होय है अर खानपानतैं क्षुधा तृषा की पीड़ा मिटै हैं, तैसैं जिनराज के अर्चनतैं स्वयमेव ही सुख होय है अर अविनयतैं परमदुख होय है। अर हे शोभने! जे संसारविषै दुख दीखै हैं ते सर्व पाप के फल हैं। अर जे सुख हैं ते धर्म के फल हैं। सो तू पूर्व पुण्य के प्रभावतैं महाराज की पटराणी भई, अर महासंपत्तिवती भई, अर अद्भुत कार्य का करणहारा तेरा पुत्र है। अब तू ऐसा कर जो सुख पावै। अपना कल्याणकर मेरे वचनतैं। हे भव्ये! सूर्य के अर नेत्र के होते संते तू कूप में मत पड़। जो ऐसे कर्म करेगी तो घोर नरक में पड़ेगी। देवगुरु शास्त्र का अविनय करना अनंत दु:ख का कारण है। अर ऐसे दोष देखे जो मैं तोहि न संबोधूं तो मोहि प्रमाद का दोष लागै है। तातैं तेरे कल्याण निमित्त धर्मोपदेश दिया है।

जब श्री आर्यिकाजी ने ऐसा कह्या तदि यह नरकतैं डरी। सम्यग्दर्शन धारण किया, श्राविका के व्रत आदरे, श्रीजी की प्रतिमा मंदिरविषै पधराई, बहुत विधानतैं अष्ट प्रकार की पूजा कराई। या भांति राणी कनकोदरी को आर्यिका धर्म का उपदेश देय अपने स्थानक को गई। अर वह कनकोदरी श्री सर्वज्ञदेव का धर्म आराधकर समाधिमरण कर स्वर्गलोक में गई। तहां महासुख भोगे, अर स्वर्गतैं चयकर राजा महेन्द्र की राणी जो मनोवेगा ताके अंजना सुन्दरी नामा तू पुत्री भई। सो पुण्य के प्रभावतैं राजकुलविषै उपजी, उत्तम वर पाया, अर जो जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को एकक्षण मंदिर के बाहिर राखी ताके पापकरि धनी का वियोग अर कुटुम्बतैं पराभव पाया। विवाह के तीन दिन पहिले पवनंजय प्रछन्नरूप आए रात्रि में तिहारे झरोखेविषै प्रहस्त मित्र के सहित बैठे हुते। सो तासमय मिश्रकेशी सखी ने विद्युत्प्रभ की स्तुति करी, अर पवनंजय की निंदा करी। ताकारण पवनंजय द्वेष कों प्राप्त भए।

बहुरि युद्ध के निमित्त घरतैं चालै, मानसरोवर पर डेरा किया, तहां चकवी का विरह देखकर करुणा उपजी। सो करुणा ही मानो सखी का रूप होय कुमार को सुन्दरी के समीप लाई। तब ताकरि गर्भ रह्या। बहुरि कुमार प्रछन्न ही पिता की आज्ञा के साधिवे के अर्थि रावण के निकट गए। ऐसा कहकर फिर मुनि अंजना सों कहते भए, महा करुणाभाव कर अमृतरूप वचन गिरते भए – हे बालिके! तू कर्म के उदयकरि ऐसे दु:ख को प्राप्त भई तातैं बहुरि ऐसा निंद्यकर्म मत करना। संसार समुद्र के तारणहारे जे जिनेन्द्र देव तिनकी भक्ति कर। या पृथ्वीविषै जो सुख हैं ते सर्व जिन

भक्ति के प्रतापतैं होय हैं। ऐसे अपने भव सुनकर अंजना विस्मय को प्राप्त भई। अर अपने किए जे कर्म तिनको निंद्यती अति पश्चाताप करती भई।

तब मुनि ने कही – हे पुत्री! अब तू अपनी शक्तिप्रमाण नियम लेहु, अर जिनधर्म का सेवन कर, यति व्रतियों की उपासना कर। तैनैं ऐसे कर्म किए थे जो अधोगति को जाती, परन्तु संयमश्री आर्या ने कृपाकर धर्म का उपदेश दिया, सो हस्तावलंबन देय कुगति के पतनतैं बचाई। अर यह बालक तेरे गर्भविषै आया है सो महा कल्याण का भाजन है। या पुत्र के प्रभावतैं तू परमसुख पावेगी। तेरा पुत्र अखंडवीर्य है, देवनिहूकरि जीत्या न जाय। अर अब थोड़े ही दिन में तेरा तेरे भरतारतैं मिलाप होयगा।

तातैं हे भव्ये! तू अपने चित्त में खेद मत करे, प्रमादरहित जो शुभ क्रिया तामैं उद्यमी होहु। ये मुनि के वचन सुन अंजनी अर बसंतमाला बहुत प्रसन्न भई, अर बारंबार मुनि को नमस्कार किया, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके। मुनिराज ने इनको धर्मोपदेश देय आकाशमार्गतैं विहार किया। सो निर्मल है चित्त जिनका ऐसे संयमिन को यही उचित है कि जो निर्जन स्थानक होय तहां निवास करैं, सो भी अल्प ही रहैं। या प्रकार निजभव सुन अंजना पाप कर्मतैं अति डरी, अर धर्मविषै सावधान भई। वह गुफा मुनि के विराजवेतैं पवित्र भई हुती सो तहां अंजनी बसंतमाला सहित पुत्र का समय देखकर रही।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! अब वह महेन्द्र की पुत्री गुफा में रहै। बसंतमाला विद्या बलकरि पूर्ण, विद्या के प्रभावकरि खानपान आदि याके मनवांछित सर्व सामग्री करै। अथानन्तर अंजना पतिव्रता पिया रहित वनविषै अकेली, सो मानों सूर्य याका दुख देख न सक्या सो अस्त होने लग्या। मानों याके दुखतैं सूर्य हू की किरण मंद होय गई, सूर्य अस्त होय गया, अर पहाड़ के शिखर अर वृक्षनि के अग्रभाग में जो किरणों का उद्योत रह्या था सो भी संकोच लिया।

अथानन्तर संध्याकर क्षणएक आकाशमंडल लाल होय गया, सो मानों अब क्रोध का भर्‍या सिंह आवेगा, ताके लाल नेत्रनि की ललाई फैली है। बहुरि होनहार जो उपसर्ग ताकी प्रेरी शीघ्र ही अंधकार का स्वरूप रात्रि प्रकट भई, मानों राक्षसिनी ही रसातलतैं नीसरी है। पक्षी संध्या समय चिगचगाटकर गहन वन में शब्दरहित वृक्षनि के अग्र भाग पर तिष्ठे, मानों रात्रि को श्यामरूप डरावनी देख भयकर चुप होय रहे। शिवा कहिए स्यालिनी तिनके भयानक शब्द प्रवरतैं सो मानों होनहार उपसर्ग के ढोल ही बाजै हैं।

अथानन्तर गुफा के मुख सिंह आया, कैसा है सिंह? विदारे हैं हाथियों के जे कुंभस्थल,

तिनके रुधिर कर लाल होय रहे हैं केश जाके, अर काल समान क्रूर भृकुटि को धरै, अर महा विषम शब्द करता, जिसके शब्दकरि वन गुंजि रह्या है, अर प्रलयकाल की अग्नि की ज्वाला समान जीभ को मुखरूप गुफातैं काढ़ता, कैसी है जीभ? महाकुटिल है, अनेक प्राणियों की नाश करनहारी, बहुरि जीवनि के खैंचने को जाकी अंकुश समान श्याम जीभ, तीक्ष्ण दाढ़, महाकुटिल है रौद्र सबनि को भयंकर है, अर जाके नेत्र अतित्रास के कारण ऊगता जो प्रलय काल का सूर्य ता समान तेज को धरै, दिशाओं के समूह को रंग रूप कर वह सिंह पूंछ की अणी को मस्तक ऊपर धरे, नख की अणीतैं विदारी है धरती जानै, पहाड़ के तट समान उरस्थल, अर प्रबल है जांघ जाकी, मानों वह सिंह मृत्यु का स्वरूप दैत्य समान, अनेक प्राणियों का क्षय करणहारा, अंतक को भी अंतक समान, अग्नितैं भी अधिक प्रज्वलित, ऐसे डरावने सिंह को देखकर वन के सब जीव डरे।

ताके नादकर सब गुफा गाज उठी, सो मानों भयकरि पहाड़ रोवने लाग्या। अर याका निठुर शब्द वन के सब जीवों के काननि को ऐसा बुरा लाग्या मानों भयानक मुद्‌गर का घात ही है। जाके चिरमी समान लाल नेत्र। सो ताके भयकरि हिरण चित्राम के-से होय रहे, अर मदोन्मत्त गजनि का मद जाता रह्या। सब ही पशुगण अपने अपने ताईं बचावने के लिए भयंकर कम्पायमान वृक्षों के आसरै होय रहे।

नाहर की ध्वनि सुन अंजना ने ऐसी प्रतिज्ञा करी जो उपसर्गतैं मेरा शरीर जाय तो मेरे अनशनव्रत है, उपसर्ग टरे भोजन लेना। अर सखी बसंतमाला खड्‌ग है हाथ मैं जाके, कबहू तो आकाशविषै जाय, कबहू भूमि पर आवै, अतिव्याकुल भई पक्षिनि की नाईं भ्रमै। ये दोनों महा भयवान, कम्पायमान है हृदय जिनका। तब गुफा का निवासी जो मणिचूल नामा गन्धर्वदेव, तासूं ताकी रत्नचूल नामा स्त्री महादयावंती कहती भई - हे देव! देखो, ये दोनों स्त्री सिंहतैं महाभयभीत हैं, अर अति विह्वल हैं, तुम इनकी रक्षा करो।

तब गंधर्वदेव को दया उपजी, तत्काल विक्रिया करि अष्टापद का स्वरूप रच्या। सो सिंह का अर अष्टापद का महा भयंकर शब्द होता भया। सो अंजनी हृदय में भगवान का ध्यान धरती भई, अर बसंतमाला सारस की नाईं विलाप करै, हाय अंजना! पहिले तो तू धनी के अप्रिय दुर्भागिनी भई, बहुरि काहूइक प्रकार धनी का आगमन भया सो तातैं तोकों गर्भ रह्या, सो सास ने बिना समझे घरतैं निकासी, बहुरि माता पिता ने हू न राखी, सो महा भयानक वनविषै आई। तहां पुण्य के योगतैं मुनि का दर्शन भया, मुनि ने धीर्य बंधाय पूर्वभव कहे, धर्मोपदेश देय आकाश के मार्ग गए, अर तू प्रसूति के अर्थि गुफाविषै रही सो अब या सिंह के मुख में प्रवेश करेगी।

हाय! हाय! राजपुत्री निर्जनवनविषै मरण को प्राप्त होय है, अब या वन के देवता दयाकर रक्षा करो। मुनि ने कही हुती कि तेरा सकल दु:ख गया, सो कहा मुनि हू के वचन अन्यथा होय हैं? या भांति विलाप करती बसंतमाला हिंडोल झूलने की नाईं एक स्थल न रहै, क्षणविषै सुन्दरी के समीप आवै, क्षणविषै बाहिर जावै।

अथानन्तर वह गुफा का गंधर्व देव जो अष्टापद का स्वरूप धरि आया हुता, ताने सिंह के पंजों की दीनी। तब सिंह भाग्या, अर अष्टापद सिंह को भजाय कर निज स्थानक को गया। यह स्वप्न समान सिंह और अष्टापद के युद्ध का चरित्र देख बसंतमाला गुफा में अंजनी सुन्दरी के समीप आई, पल्लवों से भी अति कोमल जो हाथ तिनकरि विश्वासती भई। मानों नवा जन्म पाया। हित का संभाषण करती भई। सो एक वर्ष बराबर जाय है रात्रि जिनको ऐसी यह दोनों कभी तो कुटुम्ब के निर्दईपने की कथा करैं, कभी धर्मकथा करैं। अष्टापद ने सिंह को ऐसे भगाया जैसैं हाथी को सिंह भगावै अर सर्प को गरुड भगावै।

बहुरि वह गंधर्व देव बहुत आनंदरूप होय गावने लग्या सो ऐसा गावता भया, जो देवों के भी मन को मोहै तो मनुष्यों की कहा बात? अर्धरात्रि के समय शब्दरहित होय गए तब यह गावता भया, अर बारंबार वीणा को अति रागतैं बजावता भया, और भी सार बाजे बजावता भया, अर मजीरादिक बजावता भया, मृदंगादिक बजावता भया, बांसुरी आदिक फूंक के बाजे बजावता भया।

अर सप्त स्वरों में गाया तिनके नाम – निषाद 1, ऋषभ 2, गांधार 3, षडज 4, मध्यम 5, धैवत 6, पंचम 7 । इन सप्त स्वरों के तीन ग्राम शीघ्र मध्य विलंबित, अर इक्कीस मूर्छना हैं, सो गंधर्वों में जे बड़े देव हैं तिनके समान गान किया। या गानविद्या में गंधर्व देव प्रसिद्ध हैं। उंचास स्थानक राग के हैं सो सब ही गंधर्व देव जानै हैं। भगवान श्री जिनेन्द्र देव के गुण सुन्दर अक्षरों में गाए। मैं श्री अरिहंत देव को भक्ति कर बंदूं हूं। कैसे हैं भगवान? देव अर दैत्योंकर पूजनीक हैं। देव कहिये स्वर्गवासी, दैत्य कहिए ज्योतिषी विंतर अर भवनवासी, ये चतुरनिकाय के देव हैं, सो भगवान सब देवों के देव हैं, जिनको सुर-नर विद्याधर अष्ट द्रव्यतैं पूजै हैं। बहुरि कैसे हैं?

तीन भुवन में अति प्रवीन हैं, अर पवित्र हैं अतिशय जिनके, ऐसे जे श्री मुनिसुव्रतनाथ तिनके चरणयुगल में भक्तिपूर्वक नमस्कार करूं हूं, जिनके चरणारबिंद के नखनि की कांति इन्द्र के मुकुट की रत्नों की ज्योति को प्रकाश करै हैं। ऐसैं गान गंधर्व देव ने गाए। सो बसंतमाला अति प्रसन्न भई। ऐसे राग कभी सुने नाहीं थे, सो विस्मयकर व्याप्त भया है मन जाका, वा गीत की अतिप्रशंसा करती भई। धन्य यह गीत काहू ने अतिमनोहर गाए, मेरा हृदय अमृतकर आच्छादित किया। अंजनी को बसंतमाला कहती भई – यह कोई दयावान देव हैं जानै अष्टापद का रूपधरि

सिंह को भगाया, अर हमारी रक्षा करी, अर यह मनोहर राग याही ने अपने आनन्द के अर्थि गाए हैं।

हे देवी! हे शोभने, हे शीलवंती! तेरी दया सब ही करैं। जे भव्य जीव हैं तिनके महाभयंकर वन में देव मित्र होय हैं। या उपसर्ग के विनाशतैं निश्चय तेरा पतिसों मिलाप होयगा, अर तेरे पुत्र अद्‌भुत पराक्रमी होयगा। मुनि के वचन अन्यथा न होंय, सो मुनि के ध्यानकर जो पवित्र गुफा ताविषै श्री मुनिसुब्रतनाथ की प्रतिमा पधराय दोनों सुगंध द्रव्यनितैं पूजा करती भईं। दोनों के चित्तविषै यह विचार कि प्रसूति सुखतैं होय। बसंतमाला नाना भांति अंजनी के चित्त को प्रसन्न करै है, अर कहती भई कि हे देवी! मानों यह वन अर गिरि तिहारे पधारनेतैं परम हर्ष को प्राप्त भया है, सो नीझरने के प्रवाह कर यह पर्वत मानों हंसै ही है।

अर यह वन के वृक्ष फलों के भारतैं नम्रीभूत लहलहाट करै हैं। कोमल हैं पल्लव जिनके, बिखर रहे हैं फूल जिनके, सो मानों हर्ष को प्राप्त भए हैं। अर जे मयूर सूवा मैना कोकिलादिक मिष्ट शब्द कर रहे हैं सो मानों वन पहाड़तैं वचनालाप करै हैं। पर्वत नाना प्रकार की जे धातु तिनकी है खान जहां, अर सघन वृक्षों के जे समूह सो इस पर्वतरूप राजा के सुन्दर वस्त्र हैं, अर यहाँ नाना प्रकार के रत्न हैं सोई या गिरि के आभूषण भए। अर या पर्वत में भली-भली गुफा हैं अर यहां अनेक जाति के सुगंध पुष्प हैं, अर या पर्वत ऊपर बड़े बड़े सरोवर हैं तिनमें सुगंध कमल फूल रहे हैं। तेरा मुख महासुन्दर अनुपम जो चन्द्रमा की और कमल की उपमा को जीतै है।

हे कल्याणरूपिणी! चिंता के वश मति होहु, धीर्य धर, या वन में सर्व कल्याण होयगा, देव सेवा करेंगे। पुण्याधिकारिनी तेरा शरीर निष्पाप है, हर्षतैं पक्षी शब्द करै हैं सो मानों तेरी प्रशंसा ही करै हैं। यह वृक्ष शीतल मंद सुगंध के प्रेरे पत्रों के लहलहाटतैं मानों तेरे विराजवे करि महाहर्ष को प्राप्त भए नृत्य ही करै हैं। अब प्रभात का समय भया है, पहले तो आरक्त संध्या भई सो मानों सूर्य ने तेरी सेवा निमित्त सखी पठाई। अर अब सूर्य भी तेरा दर्शन करके के अर्थि मानों उदय होने को उद्यमी भया है।

यह प्रसन्न करने की बात बसंतमाला ने जब कही, तब अंजनी सुन्दरी कहती भई – हे सखी! तोहि होते संते मेरे निकट सर्व कुटुम्ब है, अर यह वन ही तेरे प्रसादतैं नगर है। जो या प्राणी को आपदा में सहाय करै है सो ही परम बांधव है। अर जो बांधव दु:खदाता है सो ही परम शत्रु है। या भांति परस्पर मिष्ट संभाषण करती ये दोनों गुफा में रहै, श्री मुनिसुब्रतनाथ की प्रतिमा का सेवन पूजन करैं। विद्या के प्रभावतैं बसंतमाला खान पान आदि बड़ी विधि सेती सब सामग्री करै। वह गंधर्व देव सब प्रकार इनकी दुष्ट जीवनितैं रक्षा करै, अर निरंतर भक्तितैं भगवान के अनेक गुण नाना प्रकार के राग रचनाकरि गावै।

अथानन्तर अंजनी के प्रसूति का समय आया तब बसंतमाला से कहती भई – हे सखी! आज मेरे कछू व्याकुलता है। तब बसंतमाला बोली – हे शोभने! तेरे प्रसूति का समय है, तू आनन्द को प्राप्त होहु। तब याके लिए कोमल पल्लवों की सेज रची। तापर याके पुत्र का जन्म भया। जैसैं पूर्व दिशा सूर्य की प्रकट करै तैसैं यह हनुमान को प्रकट करती भई। पुत्र के जन्मतैं गुफा का अंधकार जाता रह्या, प्रकाशरूप होय गई। मानों सुवर्णमई ही भई।

तदि अंजनी पुत्र को उरसों लगाय दीनता के वचन कहती भई कि – हे पुत्र! तू गहन वनविषै उत्पन्न भया, तेरे जन्म का उत्सव कैसे करूं? जो तेरा दादे के तथा नाना के घर जन्म होता तो जन्म का बड़ा उत्सव होता। तेरा मुखरूप चन्द्रमा के देखवेतैं कौन को आनंद न होय, मैं कहा करूं? मंदभागिनी सर्व वस्तु रहित हूं। देव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ने मोहि दुःखदायिनी दशा को प्राप्त करी, जो मैं कुछ करने को समर्थ नाहीं हूं, परन्तु प्राणीनि कों सर्व वस्तुतैं दीघार्यु होना दुर्लभ है। सो हे पुत्र! तू चिरंजीव हो, तू है तो मेरे सर्व है। यह प्राणों को हरणहारा महागहन वन है, यामैं जो मैं जीवूं हूं सो तो तेरे ही पुण्य के प्रभावतैं।

ऐसे दीनता के वचन अंजनी के मुखतैं सुनकरि बसंतमाला कहती भई कि – हे देवी! तू कल्याणपूर्ण है ऐसा पुत्र पाया। यह सुन्दर लक्षण शुभरूप दीखै है, बड़ी ऋद्धि का धारी होयगा। तेरे पुत्र के उत्सवतैं मानों यह बेलरूप वनिता नृत्य करै हैं, चलायमान हैं कोमल पल्लव जिनके, अर जो भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों संगीत करै हैं। यह बालक पूर्ण तेज है, सो याकै प्रभावकरि तेरे सकल कल्याण होयंगे। तू वृथा चिंतावती मत हो। या भांति इन दोऊनि के वचनालाप होते भए।

अथानन्तर बसंतमाला ने आकाश में सूर्य के तेज समान प्रकाशरूप एक ऊंचा विमान देख्या, सो देख कर स्वामिनीसों कह्या। तब वह शंका कर विलाप करती भई, यह कोई निःकारण बैरी पुत्र को ले जायगा अथवा मेरा कोई भाई है। तिनके विलाप सुन विद्याधर ने विमान थांभ्या, दया संयुक्त आकाशतैं उतर्‌या, गुफा के द्वार पर विमान को थांभि महा नीतिवान, महा विनयवान शंकाओं को धरता हुवा स्त्री सहित भीतर प्रवेश किया। तब बसंतमाला ने देखकरि आदर किया। यह शुद्ध मन विनयतैं बैठ्या, और क्षण एक बैठकरि महामिष्ट अर गंभीर वाणी कहकर बसंतमाला को पूछता भया। ऐसे गम्भीर वचन कहता भया मानो मयूरनि को हर्षित करता मेघ ही गरज्या है। सुमर्यादा कहिए मर्यादा की धरणहारी यह बाई कौन की बेटी, कौन के परणी, कौन कारणतैं महावन में रहै है। यह बड़े घर की पुत्री है, कौन कारणतैं सब कुटुम्बतैं रहित भई है? अथवा या लोकविषै रागद्वेष रहित जे उत्तम जीव हैं तिनके पूर्व कर्मों के प्रेरे निःकारण बैरी होय हैं।

तदि बसंतमाला दुःख के भारकरि रुक गया है कंठ जाका, आंसू डारती, नीची है दृष्टि

जाकी, कष्टकर वचन कहती भई – महानुभाव! तिहारे वचनहीतैं तिहारे मन की शुद्धता जानी जाय है। जैसे रोग और मृत्यु का मूल जो विषवृक्ष ताकी छाया हू सुन्दर न होय, अर जैसे दाह के नाश का मूल जो चन्दन का वृक्ष ताकी छाया भी सुन्दर लागै है, सो तुम सारिखे जे गुणवान पुरुष हैं सो शुद्धभाव प्रकट करने के स्थानक हैं। आप बड़े ही दयालु हो। यदि तिहारे याके दु:ख सुनवे की इच्छा है तो सुनहु, मैं कहूं हूं। तुम सारिखे बड़े पुरुषनि कों कह्या संता दु:ख निवृत्त होय है। तुम दु:खहारी पुरुष हो, तिहारा यही स्वभाव ही है जो आपदाविषै सहाय करो। सो मैं कहूं, सुनहु।

यह अंजनी सुन्दरी राजा महेन्द्र की पुत्री है। वह राजा पृथ्वी पर प्रसिद्ध महा यशवान नीतिवान निर्मल स्वभाव है। और राजा प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय गुणों का सागर ताकी प्राणहूंतैं प्यारी यह स्त्री है। सो पवनंजय एक समय बाप की आज्ञातैं आप तो रावण के निकट वरुणसों युद्ध के अर्थि विदा होय चाले हुते सो मानसरोवरतैं रात्रि को याके महल मैं गोप्य आए। तातैं याको गर्भ रह्या, सो याकी सासू का क्रूर स्वभाव दयारहित महामूर्ख था ही, वाके चित्त में गर्भ का भर्म उपज्या। तब वानै याकों पिता के घर पठाई। यह सब दोषरहित महासती शीलवंती निर्विकार है, सो पिता ने भी अकीर्ति के भयतैं न राखी। जे सज्जन पुरुष हैं ते झूठे भी दोषतैं डरे हैं। यह बड़े कुल की बालिका सर्व आलंबन रहित या वनविषै मृगीसमान रहै हैं। मैं याकी सेवा करूं हूं। इनके कुलक्रमतैं हम आज्ञाकारी सेवक हैं, इतवारी हैं, अर कृपापात्र हैं। सो यह आज या वनविषै प्रसूति भई है। यह वन नाना उपसर्ग का निवास है। न जानिए कैसे याकों सुख होयगा?

हे राजन्! यह याका वृत्तांत संक्षेपतैं तुम सों कह्या, अर सम्पूर्ण दु:ख कहां तक कहूं? या भांति स्नेहकरि पूरित जो बसंतमाला के हृदय का राग सो अंजनी के तापरूप अग्नितैं पिघल्या संता अंग में न समाया, सो मानों बसंतमाला के वचन द्वारकरि बाहिर निकस्या। तब वह राजा प्रतिसूर्य हनूरुह नाम द्वीप का स्वामी बसंतमाला सूं कहता भया – हे भव्ये! मैं राजा चित्रभानु अर राणी सुन्दरमालिनी का पुत्र हूं, यह अंजनी मेरी भानजी है। मैंने बहुत दिन में देखी सो पिछानी नाहीं। ऐसा कहकर अंजनी को बालावस्थातैं लेकर सकल वृत्तांत कहकर गद्गद वाणीकर वचनालापकर आंसू डालता भया। तब पूर्ण वृत्तांत कहिनेतैं अंजनी ने याकों मामा जान, गले लागि बहुत रुदन किया। सो मानों सकल दु:ख रुदनसहित निकस गया। यह जगत की रीति है हितु के देख अश्रुपात पड़े हैं।

वह राजा भी रुदन करने लाग्या अर ताकी रानी भी रोवने लागी। बसंतमाला ने भी अति रुदन किया। इन सबके रुदनतैं गुफा गुंजार करती भई, सो मानों पर्वत ने भी रुदन किया। जल के जे नीझरने, तेई भए अश्रुपात, तिनतैं सब वन शब्दमई होय गया। वन के जीव जे मृगादि सो भी रुदन

करते भए। तदि राजा प्रतिसूर्य ने जलतैं अंजनी का मुख प्रक्षालन कराया अर आप भी जलतैं मुख पखाल्या। वन हू शब्द रहित होय गया। मानों इनकी वार्ता सुनना चाहै है। अंजनी प्रतिसूर्य की स्त्रीतैं सम्भाषण करती भई। सो बड़ों की यह रीति है जो दुःखविषै हू कर्त्तव्यतैं न चूकैं।

बहुरि अंजनी मामासों कहती भई – हे पूज्य! पुत्र का समस्त शुभाशुभ वृत्तांत ज्योतिषीनितैं पूछो। तब सांवत्सर नामा ज्योतिषी लार था ताकों पूछ्या। तब ज्योतिषी बोल्या बालक के जन्म की वेला बतावो। तब बसंतमाला ने कही आज अर्धरात्रि गए जन्म भया है। तब लग्न थाप कर बालक के शुभ लक्षण जान ज्योतिषी कहता भया कि यह बालक मुक्ति का भाजन है। बहुरि जन्म न धरैगा। जो तिहारे मन में संदेह है तो मैं संक्षेपतासों कहूं हूं सो सुनो।[1]

चैत्रवदी अष्टमी की तिथि है, अर श्रवण नक्षत्र है, अर सूर्य मेष का उच्चस्थानविषै बैठ्या है, अर चन्द्रमा वृष का है अर मकर का मंगल है, अर बुध मीन का है अर बृहस्पति कर्क का है सो उच्च है। शुक्र तथा शनैश्चर दोनों मीन के हैं। सूर्य पूर्ण दृष्टिकर शनि को देखै है, अर मंगल दश विश्वा सूर्य को देखै है अर वृहस्पति पन्द्रह विश्वा सूर्य को देखै है। अर सूर्य वृहस्पति को दशविश्वा देखै है, अर चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि करि वृहस्पति देखै है, अर वृहस्पति को चन्द्रमा देखै है, अर वृहस्पति शनिश्चर को पन्द्रह विश्वा देखै है, अर शनिश्चर वृहस्पति को दश विश्वा देखै है। अर वृहस्पति शुक्र को पन्द्रह विश्वा देखै है, अर शुक्र वृहस्पति को पन्द्रह विश्वा देखै है।

याकै सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं। सूर्य और मंगल दोनों याका अद्भुत राज्य निरूपण करै हैं। अर वृहस्पति अर शनि मुक्ति का देनहारा जो योगीन्द्रपद निर्णय करै हैं। जो एक वृहस्पति ही उच्चस्थान बैठ्या होय तो सर्व कल्याण की प्राप्ति का कारण है। अर ब्रह्मनामा योग है, अर मुहूर्त शुभ है, सो अविनाशी सुख का समागम याके होयगा। या भांति सब ही ग्रह अति बलवान बैठे हैं, सो सब दोषरहित यह होयगा। ऐसा ज्योतिषी ने जब कह्या तब प्रतिसूर्य ने ताकों बहुत दान दिया अर भानजी को अतिहर्ष उपजाया। अर कही कि – हे वत्से! अब हम सब हनूरुहद्वीप को चालैं। तहां बालक का जन्मोत्सव भलीभांति होयगा।

तदि अंजना भगवान की वंदना कर पुत्र को गोदी में लेय, गुफा का अधिपति जो वह गंधर्वदेव तासों बारम्बार क्षमा कराय प्रतिसूर्य के परिवार सहित गुफातैं निकसी, अर विमान के पास आय ऊभी रही, मानों साक्षात् वनलक्ष्मी ही है। कैसा है विमान? मोतीनि के जे हार सोई मानों नीझरने हैं, अर पवन की प्रेरी क्षुद्रघण्टिका बाज रही हैं, अर लहलहाट करती जे रत्नों की झालरी तिनतैं शोभायमान, अर केलि के वनोंतैं शोभायमान है, सूर्य के किरण के स्पर्श कर

1. **नोट** – मूल ग्रंथ में नक्षत्रादि दूसरे प्रकार वर्णन किए हैं, परन्तु हम नहीं समझ सकते कि यह ग्रह ठीक हैं या मूल ग्रंथ के ठीक हैं। इस कारण हमने भाषा ग्रंथ के मुजिब ही रक्खा है। बुद्धिमान स्वयं विचार कर लेवें।

ज्योतिरूप होय रह्या है, अर नाना प्रकार के रत्ननि की प्रभाकर ज्योति का मंडल पड़ रह्या है। सो मानों इन्द्रधनुष ही चढ़ि रह्या है। अर नाना प्रकार के वर्णों की सैकड़ों ध्वजा फरहरै हैं। अर वह विमान कल्पवृक्ष समान मनोहर नाना प्रकार के रत्ननिकरि निर्मापित नाना रूप को धरै मानों स्वर्गलोकतैं आया है। सो वा विमान में पुत्रसहित अंजना, बसंतमाला तथा राजा प्रतिसूर्य का परिवार सकल बैठकर आकाश के मार्ग चाले। सो बालक कौतुक कर मुलकता संता माता की गोद में तैं उछलकर पर्वत ऊपर जा पड्या। माता हाहाकार करती भई, अर राजा प्रतिसूर्य के सर्वलोक हाहाकार करते भए।

अर राजा प्रतिसूर्य बालक के ढूंढ़ने को आकाशतैं उतरिकरि पृथ्वी पर आया, अंजना अतिदीन भई विलाप करै है। ऐसा विलाप करै है जाकों सुनकर तिर्यंचनि का मन भी करुणा कर कोमल होय गया। हाय पुत्र! कहा भया? देव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ने कहा किया? मोहि रत्न सम्पूर्ण निधान दिखायकरि बहुरि हर लिया। वियोग के दुःखतैं व्याकुल जो मैं सो मेरे जीवन का अवलंबन जो बालक भया हुता सो भी पूर्वोपार्जित कर्म ने छिनाय लिया। सो माता तो यह विलाप करै है, अर पुत्र पत्थर पर पड्या, सो पत्थर के हजारों खंड होय गए, अर महाशब्द भया।

प्रतिसूर्य देखै तो बालक एक शिला ऊपर सुख से विराजै है, अपने अंगूठे आप ही चूसै है, क्रीड़ा करै है, अर मुलकै है, अति शोभायमान सूधे पड़े हैं, लहलहाट करै हैं कर चरणकमल जिनके, सुन्दर है शरीर जिनका, वे कामदेव पद के धारक, उनको कौन की उपमा दीजै? मंद मंद जो पवन ताकरि लहलहाट करता जो रक्तकमलों का वन ता समान है प्रभा जिनकी, अपने तेजकरि पहाड़ के खंड-खंड किए। ऐसे बालक को दूरतैं देखकर राजा प्रतिसूर्य अति आश्चर्य को प्राप्त भया। कैसा है बालक? निष्पाप है शरीर जाका, धर्म का स्वरूप, तेज का पुंज। ऐसे पुत्र को देख माता बहुत विस्मय कों प्राप्त भई, उठाय सिर चूमा अर छातीसों लगाय लिया।

तब प्रतिसूर्य अंजनीतैं कहता भया - हे बालिके! यह बालक तेरा समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन का धरणहारा, महा वज्र का स्वरूप है। जाके पड़नेकरि पहाड़ चूर्ण होय गया। जब या बालक की ही देवनितैं अधिक अद्भुत शक्ति है तो यौवन अवस्था की शक्ति का कहा कहना? यह निश्चय सेती चरमशरीरी है। तद्भव मोक्षगामी है, फिर देह न धारैगा। याकी यही पर्याय सिद्धपद का कारण है। ऐसा जानकर तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ सिर नवाय, अपनी स्त्रीनि के समूह सहित बालक को नमस्कार करता भया। यह बालक, ताकी जे स्त्री तिनके जे नेत्र तेई भए श्याम श्वेत अरुणकमल, तिनकी जे माला, तिनकरि पूजनीक अति रमणीक मंद मंद मुलकन का करणहारा, सब ही नरनारीनि का मन हरै।

राजा प्रतिसूर्य पुत्रसहित अंजनी भानजी को विमान में बैठाय अपने स्थानक लेय आया। कैसा है नगर? ध्वजा तोरणनिकरि शोभायमान है। राजा कों आया सुन सर्वनगर के लोक नाना प्रकार के मंगल द्रव्यनिसहित सन्मुख आए। राजा प्रतिसूर्य ने राजमहल में प्रवेश किया। वादित्रों के नादतैं व्याप्त भईं हैं दशों दिशा जहां, बालक के जन्म का बड़ा उत्सव विद्याधर ने किया। जैसा स्वर्गलोकविषै इन्द्र की उत्पत्ति का उत्सव देव करै हैं। पर्वतविषै जन्म पाया, अर विमानतैं पड़करि पर्वत को चूर्ण किया। तातैं बालक का नाम माता अर बालक के मामा प्रतिसूर्य ने श्रीशैल ठहराया। अर हनूरुह द्वीपविषै जन्मोत्सव भया तातैं हनूमान यह नाम पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भया। वह श्रीशैल (हनूमान) हनूरुह द्वीपविषै रमै। कैसा है कुमार? देवनि समान है प्रभा जाकी, महाकांतिवान, सबको महा उत्सवरूप है शरीर की क्रिया जाकी, सर्वलोक के मन अर नेत्रनि कों हरनहारा प्रतिसूर्य के पुरविषै विराजै है।

अथानन्तर गणधर देव राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे नृप! प्राणीनि के पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावतैं गिरिनि का चूर्ण करनहारा महाकठोर जो वज्र सो भी पुष्प समान कोमल होय परणवै है। अर महा आताप की करणहारी जो अग्नि सो भी चन्द्रमा की किरण समान तथा विस्तीर्ण कमलनी के वन समान शीतल होय है। अर महातीक्ष्ण खड्‌ग की धारा सो महा मनोहर कोमल लता समान होय है। ऐसा जानकर जे विवेकी जीव हैं ते पापतैं विरक्त होय हैं। कैसा है पाप? महादु:ख देनेविषै प्रवीण है। तुम जिनराज के चरित्र विषै अनुरागी होवो। कैसा है जिनराज का चरित्र? सारभूत जो मोक्ष का सुख ताके देने विषै चतुर है। यह समस्त जगत निरंतर जन्मजरामरणरूप सूर्य के आतापतैं तप्तायमान है। तामैं हजारों जे व्याधि हैं सोई किरणों का समूह।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान की जन्म कथा का वर्णन करने वाला सत्रहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।17।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसों कहै हैं – हे मगध देश के मंडन! यह हनुमानजी के जन्म का वृत्तांत तो तोहि कह्या, अब हनुमान के पिता पवनंजय का वृत्तांत सुन। पवनंजय पवन की नाईं शीघ्र ही रावण पै गया, अर रावणतैं आज्ञा पाय वरुणतैं युद्ध करता भया। सो बहुत देर तक नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि वरुण के अर पवनंजय के युद्ध भया, सो युद्धविषै वरुण को बांध लिया। तानै जो खरदूषण को बांध्या हुता सो छुड़ाया, अर वरुण को रावण के समीप लाया। वरुण ने रावण की सेवा अंगीकार करी। रावण पवनंजयतैं अति प्रसन्न भये। तब पवनंजय रावणसों विदा होय अंजनी के स्नेहतैं शीघ्र ही घर को चाले।

राजा प्रह्लाद ने सुनी कि पुत्र विजय कर आया, तब ध्वजा तोरण मालादिकों से नगर शोभित

किया। तब सब परिजन पुरजन लोग सन्मुख आय नगर के सर्व नर नारी इनके कर्त्तव्य की प्रशंसा करै हैं। राजमहल के द्वारे अर्थादिककरि बहुत सन्मान कर भीतर प्रवेश कराया। सारभूत मंगलीक वचननिकरि कुंवर की सब ही ने प्रशंसा करी। कुंवर माता पिता को प्रणामकरि सबका मुजरा लेय क्षणएक सभाविषै सबन की शुश्रूषाकर आप अंजनी के महल पधारे। प्रहस्तमित्र लार सो वह महल जैसा जीवरहित शरीर सुन्दर न लागै; तैसै अंजनी बिना मनोहर न लागै। तब मन अप्रसन्न होय गया।

प्रहस्तसों कहते भए – हे मित्र! यहां वह प्राणप्रिया कमलनयनी नहीं दीखै है सो कहां है? यह मन्दिर ताके बिना मुझे उद्यान समान भासै है, अथवा आकाश समान शून्य भासै है। तातैं तुम वार्ता पूछो, वह कहां है? तब प्रहस्त माहिले लोगनितैं निश्चयकर सकल वृत्तांत कहता भया। तब याके हृदय को क्षोभ उपज्या। माता पितासों बिना पूछे ही मित्रसहित महेन्द्र के नगर में गए। चित्त में उदास जब राजा महेन्द्र के नगर के समीप जाय पहुंचे तब मन में ऐसा जान्या जो आज प्रिया का मिलाप होयगा।

तदि मित्रसों कहते भए कि – हे मित्र! देखो यह नगर मनोहर दीखै है, जहां वह सुन्दर कटाक्ष की धरनहारी सुन्दरी विराजै है। जैसैं कैलाश पर्वत के शिखर शोभायमान दीखै है तैसैं यह महल के शिखर रमणीक दीखै हैं। अर वन के वृक्ष ऐसे सुन्दर हैं मानों वर्षाकाल की सघन घटा ही है। ऐसी वार्ता मित्रसों करते संते नगर के पास जाय पहुंचे। मित्र भी बहुत प्रसन्न प्रशंसा करता आया। राजा महेन्द्र ने सुनी कि पवनंजय कुमार विजय कर पितासों मिल यहां आए हैं, तब नगर की बड़ी शोभा कराई। अर आप अर्घादिक उपचार लेय सन्मुख आया, बहुत आदरतैं कुंवर को नगर में लाए। नगर के लोगों ने बहुत आदरतैं गुण वर्णन किये। कुंवर राजमंदिर में आए। एक मुहूर्त ससुर के निकट विराजे, सब ही का सन्मान किया, अर यथायोग्य वार्ता करी। बहुरि राजातैं आज्ञा लेयकर सासू का मुजरा कर्‍या, बहुरि प्रिया के महल पधारे।

कैसे हैं कुमार? कांता के देखने की अभिलाषा जाकै। तहां भी स्त्री को न देख्या तब अति विरहातुर होय काहू कों पूछ्या – हे बालिके! हमारी प्रिया कहां है? तब वह बोली – हे देव! यहां तिहारी प्रिया नाहीं। तब वाके वचनरूप वज्रकर हृदय चूर्ण होय गया अर कान मानों ताते खारे पानी से सींचे गए। जैसा जीवरहित मृतक शरीर होय तैसा होय गया। शोकरूप दाहकरि मुरझाय गया है मुखकमल जाका, यह ससुराल के नगरतैं निकसिकरि पृथ्वीविषै स्त्री की वार्ता के निमित्त भ्रमता भया, मानों वायुकुमार को वायु लागी।

तब प्रहस्तमित्र याकों अति आतुर देखकरि याके दु:खतैं अति दुखी भया, अर यासों कहता भया – हे मित्र! कहा खेद-खिन्न होय है? अपना चित्त निराकुल कर। यह पृथ्वी केतीक है जहां

होयगी वहां ठीककर लेवेंगे। तब कुमार ने मित्रसों कही – तुम आदित्यपुर मेरे पिता पै जावो अर सकल वृत्तांत कहो। जो मुझे प्रिया की प्राप्ति न होयगी तो मेरा जीवना नहीं होयगा। मैं सकल पृथ्वीपर भ्रमण करूं हूं, अर तुम भी ठीक करो।

तब मित्र यह वृत्तांत कहने को आदित्यपुर नगरविषै आया, पिता को सब वृत्तांत कह्या। अर पवन कुमार अम्बरगोचर हाथी पर चढ़करि पृथ्वीविषै विचरता भया। अर मनविषै यह चिन्ता करी कि वह सुन्दरी कमलसमान कोमल शरीर शोक के आताप को संताप को प्राप्त भई कहा गई? मेरा ही है हृदयविषै ध्यान जाके वह गरीबिनी विरहरूप अग्नितैं प्रज्वलित विषम वन में कौन दिशा कों गई? वह सत्यवादिनी नि:कपट धर्म की धरनहारी, गर्भ का है भार जाकै, कदापि बसंतमालासों रहित होय गई होय।

वह पतिव्रता श्रावक के व्रत पालनहारी राजकुमारी शोक कर अंध होय गए हैं दोनों नेत्र जाके, अर विकट वन विहार करती, क्षुधासों पीड़ित, अजगरकर युक्त जो अंधकूप तामैं ही पड़ी हो अथवा वह गर्भवती दुष्ट पशुओं के भयंकर शब्द सुन प्राणरहित ही होय गई होय। वह प्राणनितैं भी अधिक प्यारी या भयंकर अरण्यविषै जलबिना प्यास कर सूख गए हैं कंठतालु जाके, सो प्राणों से रहित होय गई होय? वह भोरी कदाचित् गंगाविषै उतरी होय तहां नाना प्रकार के ग्राह सो पानी में बह गई हो, अथवा वह अतिकोमल तनु डाभ की अणीकर विदारे गए होंय चरण जाके सो एक पैंड़ भी पग धरने की शक्ति नाहीं सो न जानिए कहा दशा भई? अथवा दु:खतैं गर्भपात भया होय अर कदाचित् वह जिनधर्म की सेवनहारी महाविरक्त भाव होय आर्या भई होय।

ऐसा चिंतवन करते पवनंजय कुमार ने पृथ्वीविषै भ्रमण किया। सो वह प्राणवल्लभा न देखी। तदि विरहकर पीड़ित सर्वजगत को शून्य देखता भया, मरण का निश्चय किया। न पर्वतविषै न मनोहर वृक्षनिविषै, न नदी के तट पर काहू ठौर ही प्राणप्रिया बिना उसका मन न रमता भया। ऐसा विवेकवर्जित भया जो सुन्दरी की वार्ता वृक्षनि कों पूछै भ्रमता भ्रमता भूतरुवर नामा वन मैं आया। तहां हाथीतैं उतर्‌या अर जैसैं मुनि आत्मा का ध्यान करैं तैसैं प्रिया का ध्यान करै।

बहुरि हथियार अर वखतर पृथ्वी पर डार दिए अर गजेन्द्रतैं कहते भए – हे गजराज! अब तुम वनस्वच्छन्द विहारी होवो। हाथी विनयकरि निकट खड्या है। आप कहै हैं – हे गजेन्द्र! नदी के तीर में शल्य की वन है ताके जो पल्लव सो चरते विचरो। अर यहां हथिनीनि के समूह हैं सो तुम नायक होय विचरो। कुंवर ने ऐसा कह्या परंतु वह कृतज्ञ, धनी के स्नेहविषै प्रवीण कुंवर का संग नहीं छोड़ता भया। जैसैं भला भाई, भाई का संग न छोड़े। कुंवर अति शोकवंत ऐसे विकल्प करै कि अति मनोहर जो वह स्त्री ताहि यदि न पाऊं तो या वनविषै प्राण त्याग करूं। प्रिया विषै लग्या

है मन जाका, ऐसा जो पवनंजय ताहि वनविषै रात्रि भई। सो रात्रि के चार पहर चार वर्ष समान बीते। नाना प्रकार के विकल्पकरि व्याकुल भया।

यहां की तो यह कथा, अर मित्र पिता पै गया सो पिता को सर्व वृत्तांत कह्या। पिता सुनकर परम शोक को प्राप्त भया। सब को शोक उपज्या। अर केतुमती माता पुत्र के शोककरि अति पीड़ित होय रोवती संती प्रहस्तसूं कहती भई कि जो तू मेरे पुत्र को अकेला छोड़ आया सो भला न किया। तदि प्रहस्त ने कही – मोहि अति आग्रह कर तिहारे निकट भेज्या सो आया, अब तहां जाऊंगा। सो माता ने कही – वह कहाँ है? तब प्रहस्त ने कही, जहां अंजनी है तहां होयगा। तदि यानै कही अंजनी कहां है, तानै कही – मैं न जानूं।

हे माता! जो बिना विचारै शीघ्र ही काम करै तिनको पश्चाताप होय। तिहारे पुत्र ने ऐसा निश्चय किया कि जो मैं प्रिया को न देखूं तो प्राणत्याग करूं। यह सुनकर माता अति विलाप करती भई। अंत:पुर की सकल स्त्री रुदन करती भई, माता विलाप करै है – हाय! मो पापिनी ने कहा किया जो महासती को कलंक लगाया, जाकरि मेरा पुत्र जीवन के संशय को प्राप्त भया। मैं क्रूरभाव की धरणहारी महावक्र मंदभागिनी ने बिना विचारे यह काम किया। यह नगर, यह कुल, अर विजयार्ध पर्वत, अर रावण का कटक पवनंजय बिना शोभै नाहीं। मेरे पुत्र समान और कौन? जानै वरुण जो रावणहू तैं असाध्य ताहि रणविषै क्षणमात्र मैं बांध लिया। हाय वत्स! विनय के आधार, गुरु पूजन मैं तत्पर, जगतसुन्दर, विख्यातगुण तू कहां गया? तेरे दुखरूप अग्निकरि तप्तायमान जो मैं, सो हे पुत्र! मातासों वचनालाप कर, मेरा शोक निवार। ऐसे विलाप करती अपना उरस्थल अर सिर कूटती जो केतुमती सो तानैं सब कुटुम्ब शोकरूप किया। प्रह्लाद हू आंसू डारते भए।

सर्व परिवार को साथ लेय प्रहस्त को अगवानी कर अपने नगरतैं पुत्र को ढूंढ़ने को चाले। दोनों श्रेणियों के सर्व विद्याधर प्रीतिसों बुलाये सो परिवार सहित आए। सब ही आकाश के मार्ग कुंवर को ढूंढ़े हैं, पृथ्वी में देखै हैं, अर गंभीर वन और लतावों में देखै हैं। अर प्रतिसूर्य के पास भी प्रह्लाद का दूत गया सो सुन कर महा शोकवान भया। अर अंजनासों कह्या।

सो अंजना प्रथम दु:खतैं भी अधिक दु:ख को प्राप्त भई। अश्रुधारा करि वदन पखालती रुदन करती भई, कि हाय नाथ! मेरे प्राणों के आधार! मुझमें बांध्या है मन जिन्होंने सो मोहि जन्मदुखारी को छोड़करि कहां गए? कहा मुझसों कोप न छोड़ो हो, जो सर्व विद्याधरनितैं अदृश्य होय रहे हो। एक बार एक भी अमृत समान वचन मोसों बोलो। एते दिन ये प्राण तिहारे दर्शन को वांछाकरि राखे हैं, अब जो तुम न दीखो तो ये प्राण मेरे किस काम के हैं? मेरे यह मनोरथ हुता

कि पति का समागम होयगा सो देव ने मनोरथ भग्न किया। मुझ मंदभागिनी के अर्थि आप कष्ट अवस्था को प्राप्त भए। तिहारे कष्ट की दशा सुनकर मेरे प्राण पापी क्यों न विनश जाय।

ऐसे विलाप करती अंजना को देखकरि बसंतमाला कहती भई – हे देवी! ऐसे अमंगल वचन मत कहो, तिहारे धनीसों अवश्य मिलाप होयगा। अर प्रतिसूर्य बहुत दिलासा करता भया कि तेरे पति को शीघ्र ही लावै हैं। ऐसा कहकर राजा प्रतिसूर्य ने मनतैं भी उतावला जो विमान ताविषै चढ़ कर आकाशतैं उतरकर पृथ्वीविषै ढूंढ्या। प्रतिसूर्य के लार दोनों श्रेणियों के विद्याधर, अर लंका के लोग यत्नकरि ढूंढ़े हैं। देखते देखते भूतरवर नामा अटवीविषै आए। तहां अंबरगोचर नामा हाथी देख्या। वर्षाकाल के सघन मेघ समान है आकार जाका, तदि हाथी कों देखकरि सर्व विद्याधर प्रसन्न भए कि जहां यह हाथी है तहां पवनंजय है। पूर्वे हमने यह हाथी अनेक बार देख्या है। यह हाथी अंजनगिरि समान है रंग जाका, अर कुंद के फूल समान श्वेत हैं दांत जाके, अर जैसी चाहिए, तैसी सुन्दर है सूंड जाकी।

जब हाथी के समीप विद्याधर आए तब वाहि निरकुंश देख डरे अर हाथी विद्याधरों के कटक का शब्द सुन महाक्षोभ को प्राप्त भया। हाथी महाभयंकर दुर्निवार शीघ्र है वेग जाका, मदकर भीज रहे हैं कपोल जाके, अर हाले हैं अर गाजै हैं कान जाके। जिस दिशा को हाथी दौड़े ताही दिशातैं विद्याधर हट जावें। यह हाथी लोगों का समूह देख स्वामी की रक्षाविषै तत्पर, सूंडसों बंधी है तलवार जाके, महाभयंकर, पवनंजय का समीप न तजै। सो विद्याधर त्रास पाय याके समीप न आवै। तब विद्याधरों ने हथिनियों के समूहसों याहि वश किया, क्योंकि जेते वशीकरण के उपाय हैं, तिनमें स्त्री समान और कोई उपाय नाहीं। तब ये आगे आय पवन कुमार कों देखते भए। मानों काठ का है, मौनसों बैठ्या है। वे यथायोग्य याका उपचार करते भए पर यह चिंता में लीन काहूसों न बोलै। जैसै ध्यानारूढ़ मुनि काहूसों न बोलैं।

तब पवनंजय के माता पिता आंसू डार्‌या याके मस्तक को चूमते भए, अर छातीसों लगावते भए, अर कहते भए कि – हे पुत्र! तू ऐसा विनयवान हमको छोड़करि कहां आया? महाकोमल सेज पर सोवनहारा तेरा शरीर या भीमवनविषै कैसै रात्रि व्यतीत करी? ऐसैं वचन कहे तो भी न बोलै। तदि याहि नम्रीभूत और मौनव्रत धरै, मरण का है निश्चय जाकै ऐसा जानकरि समस्त विद्याधर शोक को प्राप्त भए, पिता सहित सब विलाप करते भए।

तदि प्रतिसूर्य अंजनी का मामा सब विद्याधरनि कों कहता भया कि मैं वायुकुमारसों वचनालाप करूंगा। तब वह पवनंजय को छातीसों लगायकर कहता भया – हे कुमार! मैं समस्त वृत्तांत कहूं हूं सो सुनो। एक महा रमणीक संध्याभ्रनामा पर्वत, तहां अनंगवीचि नामा मुनि को

केवलज्ञान उपज्या था, सो इन्द्रादिकदेव दर्शन को आए हुते, अर मैं भी गया हुता। सो बंदनाकर आवता हुता सो मार्ग में एक पर्वत की गुफा, ता ऊपर मेरा विमान आया, सो मैंने स्त्री के रुदन की ध्वनि सुनी। मानों बीन बाजै है। तब मैं वहां गया, गुफाविषै अंजनी देखी। मैंने वन के निवास का कारण पूछ्या। तदि बसंतमाला ने सर्व वृत्तांत कह्या। अंजनी शोक कर विह्वल रुदन करै सो मैं धीर्य बंधाया, अर गुफा में ताके पुत्र का जन्म भया, सो गुफा पुत्र के शरीर की कांतिकर प्रकाश रूप होय गई, मानों सुवर्ण की रची है।

यह वार्ता सुनकर पवनंजय परम हर्ष को प्राप्त भए। अर प्रतिसूर्य को पूछते भए - बालक सुखसों तिष्ठै है? तब प्रतिसूर्य ने कह्या - ''बालक को मैं विमान में थापकर हनुरुहद्वीप को जाता था सो मार्ग में बालक एक पर्वत पर पड्या।'' सो पर्वत के पड़ने का नाम सुनकर पवनंजय ने हाय हाय ऐसा शब्द कह्या। तदि प्रतिसूर्य ने कह्या - ''सोच मत कर, जो वृत्तांत भया सो सुनहु, जाकरि सर्व दुखसों निवृत्ति होय। बालक को पड्या देख मैं विलाप करता भया। विमानतैं नीचे उतर्‍या, तब क्या देखा - पर्वत के खंड-खंड होय गए, अर एक शिला पर बालक पड्या है, अर ताकी ज्योतिकरि दशोंदिशा प्रकाशरूप होय रही हैं। तब मैंने तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कार कर बालक को उठाय लिया, अर माता को सौंप्या। सो माता अति विस्मय को प्राप्त भई। पुत्र का श्रीशैल नाम धर्‍या। बसंतमाला अर पुत्र सहित अंजनी को हनुरुहद्वीप लेय गया। वहां पुत्र का जन्मोत्सव भया। सो बालक का दूजा नाम हनुमान भी है। यह तुमकों मैंने सकल वृत्तांत कह्या। हमारे नगर में वह पतिव्रता पुत्र सहित आनंदसों तिष्ठै है।''

यह वृतांत सुनकर पवनंजय तत्काल अंजनी के अवलोकन के अभिलाषी हनुरुहद्वीप कों चाले। अर सर्व विद्याधर भी इनके संग चाले। हनुरुहद्वीप में गए। सो दोय महीना सबकों प्रतिसूर्य ने बहुत आदर सों राख्या। बहुरि सब प्रसन्न होय अपने अपने स्थानक को गए। बहुत दिनों में पाया है स्त्री का संयोग जानैं सो ऐसा पवनंजय यहां ही रहै। कैसा है पवनंजय? सुन्दर है चेष्टा जाकी, और पुत्र की चेष्टा सों अति आनन्दरूप हनुरुहद्वीप में देवन की नाईं रमते भए। हनुमान नवयौवन को प्राप्त भए। मेरु के शिखर समान सुन्दर है सीस जाका, सर्व जीवनि के मन के हरणहारे होते भए। सिद्ध भई हैं अनेक विद्या जाको, अर महाप्रभाव रूप विनयवान् बुद्धिमान महाबली, सर्व शास्त्रनि के अर्थविषै प्रवीण, परोपकार करने को चतुर, पूर्वभव स्वर्ग में सुख भोगि आए, अब यहां हनुरुहद्वीपविषै देवों की नाईं रमै हैं।

हे श्रेणिक! गुरुपूजा में तत्पर श्री हनुमान के जन्म का वर्णन, अर पवनंजय का अंजनीसों मिलाप, यह अद्भुत कथा नाना रस की भरी है। जे प्राणी भाव धर यह कथा पढ़े पढ़ावैं, सुनैं

सुनावैं तिनकी अशुभ कर्म में प्रवृत्ति न होय, शुभक्रिया के उद्यमी होंय। उनकी परभव में शुभगति, दीर्घ आयु होय, शरीर निरोग सुन्दर होय, महापराक्रमी होय, अर उनकी बुद्धि करने योग्य कार्य के पार कौं प्राप्त होय, अर चन्द्रमा समान निर्मलकीर्ति होय, अर जासों स्वर्ग-मुक्ति के सुख पाइए, ऐसे धर्म की बढ़वारी होय, जो लोकविषै दुर्लभ वस्तु है सो सब सुलभ होंय, सूर्यसमान प्रताप के धारक होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै पवनंजय अंजना का मिलाप वर्णन करने वाला अठारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।18।।

अथानन्तर राजा वरुण बहुरि आज्ञालोप भया तदि कोपकरि तापर रावण फेर चढ़े। सर्व भूमिगोचरी विद्याधरनि कों अपने समीप बुलवाया, सबके निकट आज्ञापत्र लेय दूत गए। कैसा है रावण? राज्यकार्यविषै निपुण है, किहकंधापुर के धनी, अर लंका के धनी, रथनूपुर अर चक्रबालपुर के धनी तथा वैताढ्य की दोनों श्रेणी के विद्याधर तथा भूमिगोचर, सब ही आज्ञा प्रमाण रावण के समीप आए। हनुरुहद्वीपविषै भी प्रतिसूर्य तथा पवनंजय के नाम आज्ञापत्र लेय दूत आए सो ये दोनों आज्ञापत्र को माथे चढ़ाय दूत का बहुत सन्मान कर, आज्ञा प्रमाण गमन के उद्यमी भए। तदि हनुमान को राज्याभिषेक देने लागे। वादित्रादिक के समूह बाजने लागे। अर कलश हैं जिनके हाथ में ऐसे मनुष्य आगैं आय ठाढ़े भए।

तदि हनुमान ने प्रतिसूर्य अर पवनंजय को पूछ्या यह कहा है? तदि उन्होंने कही – हे वत्स! हनुरुहद्वीप का प्रतिपालन कर, हम दोनों को रावण बुलावै है सो जांय हैं, रावण की मदद के अर्थि। रावण वरुण पर जाय है। वरुण ने बहुरि माथा उठाया है, महासामंत है, ताके बड़ी सेना है, पुत्र बलवान हैं, अर गढ़ का बल है। तदि हनुमान विनय कर कहते भए कि मेरे होते तुमको जाना उचित नाहीं, तुम मेरे गुरुजन हो।

तब उन्होंने कही – हे वत्स! तू बालक है अब तक रण देख्या नाहीं। तदि हनुमान बोले – अनादिकालतैं जीव चतुर्गतिविषै भ्रमण करै हैं, पंचमगति जो मुक्ति सो जब तक अज्ञान का उदय है तब तक जीव ने पाई नाहीं, परन्तु भव्यजीव पावैं ही हैं। तैसैं हमने अब तक युद्ध किया नाहीं, परन्तु अब युद्धकर वरुण को जीतेंगे ही। अर विजय कर तिहारे पास आवैं। सो जब पिता आदि कुटुम्ब के जन उनने राखने का घना ही यत्न किया, परन्तु ये न रहते जाने, तदि उन्होंने आज्ञा दई। यह स्नान भोजन कर पहिले पहिल मंगलीक द्रव्यों कर भगवान् की पूजा कर, अरहंत सिद्ध को नमस्कार कर माता पिता अर मामा की आज्ञा लेय, बड़ों का विनयकरि, यथायोग्य संभाषण कर, सूर्यतुल्य उद्योत रूप जो विमान तामैं चढ़करि शस्त्र के समूहकरि संयुक्त जे सामंत उन सहित,

दशों दिशा में व्याप्त रह्या है यश जाका, लंका की ओर चाल्या।

सो त्रिकूटाचल के सन्मुख विमान में बैठया जाता ऐसा शोभता जैसा मंदराचल के सन्मुख जाता ईशान इन्द्र शोभै है। तदि जलबीचीनामा पर्वत पर सूर्य अस्त भया। कैसा है पर्वत? समुद्र की लहरों के समूहकर शीतल हैं तट जाके। तहां रात्रि सुखसों पूर्ण करी। अर करी है महा योधानितैं वीर रस की कथा जानैं, महा उत्साहकर नाना प्रकार के देश द्वीप पर्वतों को उलंघता, समुद्र के तरंगनिकरि शीतल जे स्थानक तिनकों अवलोकन करता, समुद्रविषै बड़े-बड़े जलचर जीवनि कों देखता, रावण के कटक में पोंहच्या। हनुमान की सेना देखकरि बड़े बड़े राक्षस विद्याधर विस्मय को प्राप्त भए। परस्पर वार्ता करै हैं यह बली श्रीशैल हनुमान भव्यजीवोंविषै उत्तम, जाने बाल अवस्था में गिरि को चूर्ण किया। ऐसे अपने यश श्रवण करता हनुमान रावण के निकट गया।

रावण हनुमान को देखकर सिंहासन सों उठे अर विनय किया। कैसा है सिंहासन? पारिजातादिक कहिए कल्पवृक्षों के फूलों से पूरित है, जाकी सुगन्धकरि भ्रमर गुंजार करै हैं, जाके रत्ननि की ज्योतिकर आकाशविषै उद्योत होय रह्या है, जाके चारों ही तरफ बड़े सामंत हैं। ऐसे सिंहासनतैं उठकर रावण ने हनुमान को उरसों लगाया। कैसा है हनुमान? रावण के विनयकरि नम्रीभूत होय गया है शरीर जाका। रावण हनुमान को निकट लेय बैठ्या, प्रीतिकर प्रसन्न है मुख जाका, परस्पर कुशल पूछी। अर परस्पर रूपसंपदा देख हर्षित भए। दोनों ही महाभाग्य ऐसे मिले मानों इन्द्र मिले। रावण अति स्नेहकरि पूर्ण है मन जाका, सो कहता भया - पवन कुमार ने हमतैं बहुत स्नेह बढ़ाया जो ऐसा गुणों का सागर पुत्र हम पर पठाया। ऐसे महाबली को पायकरि मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध होवेंगे। ऐसा रूपवान, ऐसा तेजस्वी और नाहीं, जैसा यह योधा सुन्या तैसा ही है, यामैं संदेह नाहीं। यह अनेक शुभ लक्षणों का भर्‍या है, याके शरीर का आकार ही गुणों को प्रकट करै है। रावण ने जब हनुमान के गुण वर्णन किए तदि हनुमान नीचा होय रह्या, लज्जावंत पुरुष की नाईं नम्रीभूत है शरीर जाका, सो संतों की यह रीति है।

अब रावण का वरुण से संग्राम होयगा सो मानों सूर्य भयकर अस्त होने को उद्यमी भया, मंद होय गई हैं किरण जाकी। सूर्य के अस्त भए पीछैं संध्या प्रकट भई, बहुरि गई, सो मानों प्राणनाथ की विनयवंती पतिव्रता स्त्री ही है, अर चन्द्रमारूप तिलक को धरे रात्रि रूप शोभती भई। बहुरि प्रभात भया, सूर्य की किरणनिकरि पृथ्वीविषै प्रकाश भया। तब रावण समस्त सेना को लेय युद्ध को उद्यमी भया। हनुमान विद्याकर समुद्र को भेद वरुण के नगरविषै गया, वरुण पर जाता हनुमान ऐसी कांति को धरता भया जैसा सुभूम चक्रवर्ती परशुराम के ऊपर जाता शोभै। रावण को कटक सहित आया जानकर वरुण की प्रजा भयभीत भई।

पाताल पुण्डरीक नगर का वह धनी सो नगर में योधावों के महाशब्द होते भए। योधा नगरसों निकसे, मानों वह योधा असुरकुमार देवों के समान हैं। अर वरुण चमरेंद्र तुल्य है, महाशूरवीरपनेविषै गर्वित। अर वरुण के सौ पुत्र महा उद्धत युद्ध करने को आए। नाना प्रकार के शस्त्रों के समूहकरि रोका है सूर्य का दर्शन जिन्होंने। सो वरुण के पुत्रों ने आवते ही रावण का कटक ऐसा व्याकुल किया जैसैं असुरकुमार देव क्षुद्र देवों को कम्पायमान करैं। चक्र, धनुष, वज्र, सेल, बरछी इत्यादि शस्त्रों के समूह राक्षसनि के हाथ से गिर पड़े, अर वरुण के सौ पुत्रनि के आगे राक्षसनि का कटक ऐसा भ्रमता भया जैसा वृक्षनि का समूह असनपात के भय से भ्रमै। तब अपने कटककूं व्याकुल देख रावण वरुण के पुत्रनि पर गया। जैसैं गजेंद्र वृक्षनिकूं उपाड़े तैसैं बड़े बड़े योधानिकूं उपाड़े। एक तरफ रावण अकेला एक तरफ वरुण के सौ पुत्र, सो तिनके बाणनिकर रावण का शरीर भेदा गया तथापि रावण महायोधा ने कछु न गिन्या। जैसैं मेघ के पटल गाजैं तैसैं वर्षते सूर्यमंडल को आच्छादित करें तैसैं वरुण के पुत्रनि ने रावण को बेढ्या, अर कुम्भकरण इन्द्रजीतसूं वरुण लड़ने लाग्या।

जब हनुमान ने रावण को वरुण के पुत्रनिकर बेढ्या टेसू के फूलों के रंगसमान आरक्त शरीर देख्या तदि रथ में असवार होय वरुण के पुत्रनि पर दौड्या। कैसा है हनुमान? रावणसूं प्रीतियुक्त है चित्त जाका, अर शत्रुरूप अंधकार के हरिवेकूं सूर्य समान है। पवन के वेग से भी शीघ्र वरुण के पुत्रों पर गया सो हनुमान से वरुण के पुत्र सौ कम्पायमान भए, जैसैं मेघ के समूह पवन से कम्पायमान होय। बहुरि हनुमान वरुण के कटक पर ऐसा पड्या जैसा माता हाथी कदली के वन में प्रवेश करै। कईयनिकूं विद्यामई लांगूल पाशकर बांध लिया, अर कइयों को मुद्गर के घात कर घायल किया।

वरुण का समस्त कटक हनुमानतैं हार्‍या, जैसैं जिनमार्गी के अनेकांतनयकरि मिथ्यादृष्टि हारैं। हनुमान को अपने कटकविषै रण क्रीड़ा करते देख राजा वरुण ने कोपकर रक्त नेत्र किए, अर हनुमान पर आया। तब रावण वरुणकूं हनुमान पर आवता देख आप जाय रोक्या, जैसैं नदी के प्रवाह को पर्वत रोकै। वरुण के अर रावण के महायुद्ध भया। तब ताही समय में वरुण के सौ पुत्र हनुमान ने बांध लिए अर कईएकनिकूं मुद्गरनि के घातकरि घायल किए। सो वरुण सौऊ पुत्रनिकूं बांधे सुनकर शोककर विह्वल भया। अर विद्या का स्मरण न रह्या तदि रावण ने याको पकड़ लिया। सो मानों वरुण सूर्य, अर याके पुत्र किरण तिनके रोकनेकरि मानू रावण राहू का रूप धारता भया। वरुण को कुम्भकरण के हवाले किया अर आप डेरा भवनोन्माद नाम वन में किया। कैसा है वह वन? समुद्र की शीतल पवन से महाशीतल है। सो ताके निवासकर सेना को रणजनित खेद रहित किया। अर वरुण को पकड़ा सुन उसकी सेना भाजी, पुण्डरीकपुरविषै जाय प्रवेश किया।

देखो पुण्य का प्रभाव जो एक नायक के हारनेतैं सब ही हारे, अर एक नायक के जीतनेतैं सब ही जीते। कुम्भकरण ने कोपकर वरुण के नगर लूटने का विचार किया तदि रावण ने मने किया, यह राजानि का धर्म नाहीं। कैसे हैं रावण? वरुण पर कोमल है चित्त जाका, सो कुम्भकरण से कहते भए – हे बालक! तैने यह दुराचार की बात कही? जो अपराध था सो तो वरुण का था, प्रजा का कहा अपराध? दुर्बल को दुख देना दुरगति का कारण है, अर महाअन्याय है। ऐसा कहकर कुंभकरण को प्रशांत किया अर वरुण को बुलाया। कैसा है वरुण? नीचा है मुख जाका।

तदि रावण वरुण को कहते भए – हे प्रवीण! तुम शोक मत करो, जो मैं युद्धविषै पकड़ा गया। योधावों की दोय ही रीति हैं, मारे जांय अथवा पकड़े जांय। अर रणतैं भागना यह कायरनि का काम है। तातैं हम पै क्षमा करो, अर अपने स्थानक जाय कर मित्र बान्धव सहित सकल उपद्रव रहित अपना राज्य सुखतैं करहू। ऐसे मिष्ट वचन रावण के सुनकर वरुण हाथ जोड़ रावणसूं कहता भया – हे वीराधिवीर! हे महाधीर! तुम या लोकविषै महापुण्याधिकारी हो, तुमसे जो वैर भाव करै सो मूर्ख है। अहो स्वामिन्! यह तिहारा परम धीर्य हजारों स्तोत्रनिषैं स्तुति करने योग्य है, तुमने देवाधिष्ठित रत्न बिना मुझे सामान्य शस्त्रों से जीता। कैसे हो तुम? अद्भुत है प्रताप जिनका। अर इस पवन के पुत्र हनुमान के अद्भुत प्रभाव की कहा महिमा कहूं? तिहारे पुण्य के प्रभावतैं ऐसे सत्पुरुष तिहारी सेवा करै हैं।

हे प्रभो! यह पृथ्वी काहू के गोत्र में अनुक्रमण कर नाहीं चली आई है। यह केवल पराक्रमिणि के वश है। शूरवीर ही याके भोक्ता हैं। सो आप सर्व योधावों के शिरोमणि हो, सो भूमि का प्रतिपालन करहु। हे उदारकीर्ति! हमारे अपराध क्षमा करहु। हे नाथ! आप जैसी उत्तम क्षमा कहू न देखी। तातैं आप सारिखे उदार चित्त पुरुष से सम्बन्ध कर मैं कृतार्थ होऊंगा। तातैं मेरी सत्यवती नामा पुत्री आप परणो, याके परिणवे योग्य आप ही हो। या भांति वीनती कर अति उत्साहतैं पुत्री परणाई।

कैसी है वह सत्यवती? सर्वरूपवतियों का तिलक है, कमल समान है मुख जाका। वरुण ने रावण का बहुत सत्कार किया अर कई एक प्रयाण रावण के लार गया। रावण ने अतिस्नेहकरि सीख दीनी। तदि रावण अपनी राजधानी में आया। पुत्री के वियोगतैं व्याकुल है चित्त जाका। कैलाशकंप जो रावण ताने हनुमान का अति सन्मान कर अपनी बहिन जो चन्द्रनखा ताकी पुत्री अनंगकुसुमा महारूपवती सो हनुमान को परणाई। सो हनुमान ताकूं परण कर अतिप्रसन्न भए। कैसी है अनंगकुसुमा? सर्वलोकविषै जो प्रसिद्ध गुण तिनकी राजधानी है।

बहुरि कैसी है? काम के आयुध हैं नेत्र जाके। अर अति सम्पदा दीनी, अर कर्णकुण्डलपुर

का राज्य दिया, अभिषेक कराया। ता नगर में हनुमान सुखसूं विराजे, जैसैं स्वर्गलोक में इन्द्र विराजे। तथा किहकूंपुर नगर का राजा नल, ताकी पुत्री हरमालिनी नामा रूप सम्पदाकर लक्ष्मी को जीतनहारी सो महाविभूतितैं हनुमान कों परणाई। तथा किन्नरगीत नगरविषै जे किन्नर जाति के विद्याधर तिनकी सौ पुत्री परणी। या भांति एकसहस्र रानी परणीं। पृथ्वीविषै हनुमान का श्रीशैल नाम प्रसिद्ध भया। काहेतैं? पर्वत की गुफा मैं जन्म भया था। सो हनुमान पहाड़ पर आय निकसे सो देख अति प्रसन्न भए। रमणीक है तलहटी जाकी। वह पर्वत भी पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भया।

अथानन्तर किहकंधपुर नगरविषै राजा सुग्रीव ताके रानी सुतारा, चन्द्रसमान कांतिकूं धरै है मुख जाका, अर रति समान है रूप जाका, तिनके पुत्री पद्मरागा, नवीन कमल समान है रंग जाका, अर अनेक गुणनिकरि मंडित है, पृथ्वी पर प्रसिद्ध, लक्ष्मी समान सुन्दर हैं नेत्र जाके, ज्योति के मण्डल से मंडित है मुखकमल जाका, अर महा गजराज के कुम्भस्थल समान ऊंचे कठोर स्तन हैं जाके, अर सिंह समान है कटि जाकी महा विस्तीर्ण, अर लावण्यतारूप सरोवर में मग्न है मूर्ति जाकी, जाहि देख चित्त प्रसन्न होय, शोभायमान है चेष्टा जाकी।

ऐसी पुत्री को नवयौवन देख माता पिता कों याके परणायवे की चिंता भई। या योग्य वर चाहिए, सो माता पिता को रात दिन निद्रा न आवै। अर दिन में भोजन की रुचि गई, चिंता रूप है चित्त जिनका। तब रावण के पुत्र इन्द्रजीत आदि अनेक राजकुमार कुलवान शीलवान तिनके चित्रपट लिखे, रूप लिखाय सखियों के हाथ पुत्री को दिखाए। सुन्दर है कांति जिनकी सो कन्या की दृष्टि में कोई न आया, अपनी दृष्टि संकोच लीनी। बहुरि हनुमान का चित्रपट देख्या ताहि देखकर शोषण, संतापन, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण काम के यह पंचबाणों से बंधी गई। तब ताहि हनुमानविषै अनुरागिनी जान सखीजन ताके गुण वर्णन करती भईं।

हे कन्ये! यह पवनंजय का पुत्र हनुमान ताके अपार गुण कहांलों कहैं। अर रूप सौभाग्य तो याके चित्रपट में तैनें देखे तातैं याको वर, माता पिता की चिंता निवार। कन्या तो चित्रपट को देख मोहित भई हुती और सखीजनों ने गुण वर्णन किया ही है तब लज्जाकर नीची होय गई अर हाथ में क्रीड़ा करने का कमल था ताकी चित्रपट में दी। तब सबने जाना कि यह हनुमान से प्रीतवंती भई। तब याके पिता सुग्रीव ने याका चित्रपट लिखाय भले मनुष्य के हाथ वायुपुत्र पै भेजा। सो सुग्रीव का सेवक श्रीनगर में गया अर कन्या का चित्रपट हनुमान को दिखाया। सो अंजना का पुत्र सुतारा की पुत्री के रूप का चित्रपट देख मोहित भया। यह बात सत्य है कि काम के पांच ही बाण हैं परन्तु कन्या के प्रेरे पवन पुत्र के मानों सौ बाण होय लागे। चित्त में चिंतवता भया, मैं सहस्र विवाह किए अर बड़ी बड़ी ठौर परणा, खरदूषण की पुत्री रावण की भाणजी परणी तथापि जबलग

यह पद्मरागा न परणूं तौलग परणा ही नाहीं। ऐसा विचार, महाऋद्धिसंयुक्त एक क्षण में सुग्रीव के पुर में गया।

सुग्रीव सुना जो हनुमान पधारे, तब सुग्रीव अति हर्षित होय सन्मुख आए। बड़े उत्साह से नगर में ले गए सो राजमहल की स्त्री झरोखनि की जाली से इनका अद्भुत रूप देख सकल चेष्टा तज आश्चर्यरूप होय गईं। अर सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा इनके रूप को देखकर थकित होय गई। कैसी है कन्या? अति सुकुमार है शरीर जाका। बड़ी विभूतिकरि पवनपुत्र से पद्मरागा का विवाह भया। जैसा वर तैसी वींदनी। सो दोनों अति हर्ष को प्राप्त भए। स्त्री सहित हनुमान अपने नगर में आए। राजा सुग्रीव और राणी सुतारा पुत्री के वियोगतैं कई एक दिन शोकसहित रहे। अर हनुमान महालक्ष्मीवान समस्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध है कीर्ति जाकी, सो ऐसे पुत्रकूं देख पवनंजय महासुखरूप समुद्रविषै मग्न भए।

रावण तीन खंड का नाथ, अर सुग्रीव समस्त है पराक्रम जाका, हनुमान सारिखे महाभट विद्याधरों के अधिपति तिनका नायक लंका नगरीविषै सुखसों रमै। समस्त लोककूं सुखदाई जैसैं स्वर्गलोकविषै इन्द्र रमै तैसैं रमै। विस्तीर्ण है कांति जाकी, महासुन्दर, अठारह हजार राणी, तिनके मुखकमल, तिनका भ्रमर भया। आयु व्यतीत होती न जानी। जाके एक स्त्री कुरूप और आज्ञारहित होय सो पुरुष उन्मत्त होय रहे हैं, जाके अष्टादश सहस्र पद्मनी पतिव्रता आज्ञाकारिणी लक्ष्मीसमान होंय ताके प्रभाव का कहा कहना?

तीन खंड का अधिपति, अनुपम है कांति जाकी, समस्त विद्याधर अर भूमिगोचरी सिर पर धारे हैं आज्ञा जाकी, सो सर्व राजावों ने अर्धचक्री पद का अभिषेक कराया और अपना स्वामी जान्या। विद्याधरनि के अधिपति तिनकरि पूजनीक हैं चरणकमल जाके, लक्ष्मी कीर्ति कांति परिवार जासमान और के नाहीं, मनोज्ञ है देह जाका, वह दशमुख राजा चन्द्रमा समान बड़े-बड़े पुरुषरूप जे ग्रह तिनसे मंडित, आह्लाद को उपजावनहारा कौन के चित्त को न हरै?

जाके सुदर्शन चक्र सर्व कार्य की सिद्धि करणहारा, देवाधिष्ठित मध्याह्न के सूर्य की किरणों के समान है किरणों का समूह जाविषै, उद्धत प्रचंड नृपवर्ग आज्ञा न माने तिनका विध्वंसक, अति देदीप्यमान, नाना प्रकार के रत्ननिकरि मंडित शोभता भया। और दंडरत्न दुष्ट जीवनि को कालसमान भयंकर, देदीप्यमान है उग्र तेज जाका, मानों उल्कापात का समूह ही है सो प्रचंड जाकी आयुधशाला विषै प्रकाश करता भया। सो रावण आठमा प्रतिवासुदेव सुन्दर है कीर्ति जाकी, पूर्वोपार्जित कर्म के वशतैं कुल की परिपाटी कर चली आई जो लंकापुरी ताविषै संसार के अद्भुत सुख भोगता भया।

कैसा है रावण? राक्षस कहावै ऐसे जे विद्याधर तिनके कुल का तिलक है। अर कैसी है लंका? कोई प्रकार का प्रजा को नहीं है दुख जहां, मुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति गए पीछे और नमिनाथ के उपजने में पहिले रावण भया, सो बहुत पुरुष जे परमार्थरहित मूढलोक तिन्होंने उनका कथन और से और किया, मांसभक्षी ठहराया, सो वे मांसाहारी नहीं थे, अन्न के आहारी थे। एक सीता के हरण का अपराधी बना, उसकर मारे गए और परलोकविषै कष्ट पाया। कैसा है श्री मुनिसुव्रतनाथ का समय? सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र की उत्पत्ति का कारण है। सो वह समय बीते बहुत वर्ष भए। तातैं तत्त्वज्ञानरहित विषयी जीवों ने बड़े पुरुषनि का वर्णन और से और किया। पापाचारी शीलव्रतरहित जे मनुष्य सो तिनकी कल्पना जालरूप फांसीकर अविवेकी मंदभाग्य जे मनुष्य तेई भए मृग सो बांधे।

गौतम स्वामी कहै हैं ऐसा जानकर हे श्रेणिक! इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि कर वंदनीक जो जिनराज का शास्त्र, सोई रत्न भया, ताहि अंगीकार कर। कैसा है जिनका शास्त्र? सूर्यतैं अधिक है तेज जाका। और कैसा है तू? जिनशास्त्र के श्रवणकर जान्या है वस्तु का स्वरूप जाने और धोया है मिथ्यात्वरूप कर्दम का कलंक जाने।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण का चक्रराज्याभिषेक वर्णन करने वाला उन्नीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।19।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक महा विनयवान् निर्मल है बुद्धि जाकी सो विद्याधरनि का सकल वृत्तांत सुन कर गौतम गणधर के चरणारबिंद को नमस्कार कर आश्चर्य को प्राप्त होता संता कहता भया – हे नाथ ! तिहारे प्रसादतैं आठवां प्रतिनारायण जो रावण ताकी उत्पत्ति और सकल वृत्तांत मैंने जान्या तथा राक्षसवंशी और वानरवंशी जे विद्याधर तिनके कुल का भेद भली भांति जान्या। अब मैं तीर्थंकरों के पूर्व भव सहित सकल चरित्र सुना चाहूं हूं? सो कैसा है तिनका चरित्र? बुद्धि की निर्मलता का कारण है, अर आठवें बलभद्र जे श्रीरामचन्द्र, सकल पृथ्वीविषै प्रसिद्ध सो कौन वंश विषै उपजे तिनका चरित्र कहो। अर तीर्थंकरनि के नाम अर उनके माता पिता के नाम सब सुनवे की मेरी इच्छा है सो तुम कहने योग्य हो। या भांति श्रेणिक ने प्रार्थना करी, तब गौतम गणधर भगवत चरित्र के प्रश्न कर बहुत हर्षित भए।

कैसे हैं गणधर? महा बुद्धिमान, परमार्थविषै प्रवीण। ते कहे हैं कि – हे श्रेणिक! तू सुन, चौबीस तीर्थंकरनि के नाम अर इनके पितादिकनि के नाम सर्व पूर्व भव सहित कथन करूं हूं।

पाप के विध्वंस का कारण इन्द्रादिक कर नमस्कार करने योग्य ऋषभ 1, अजित 2, संभव 3, अभिनन्दन 4, सुमति 5, पद्मप्रभ 6, सुपार्श्व 7, चन्द्रप्रभ 8, पुष्पदंत (दूजा नाम सुविधिनाथ)

9, शीतल 10, श्रेयांस 11, वासुपूज्य 12, विमल 13, अनन्त 14, धर्म 15, शांति 16, कुंथु 17, अर 18, मल्लि 19, मुनिसुव्रत 20, नमि 21, नेमि 22, पार्श्व 23, महावीर 24, जिनका अब शासन प्रवरतै है। ये चौबीस तीर्थंकरिनि के नाम कहे हैं।

अब इनकी पूर्व भव की नगरीनि के नाम कहै हैं। पुण्डरीकनी 1, सुसीमा 2, क्षमा 3, रत्नसंचयपुर 4, ऋषभदेव आदि तीन तीन एक एक नगरविषै अनुक्रमतैं वासुपूज्य पर्यंत की ये चार नगरी पूर्व भव के निवास की जाननी। अर महानगर 13, अरिष्टपुर 14, सुभद्रिका 15, पुण्डरीकनी 16, सुसीमा 17, क्षेम 18, वीतशोका 19, चम्पा 20, कौशांबी 21, नागपुर 22, साकेता 23, छत्राकार 24 - ये चौबीस तीर्थंकरनि की या भव के पहले जो देवलोक, ता भव पहिले जो मनुष्य भव ताका स्वर्गपुरी समान राजधानी कही।

अब तिनके परभव के नाम सुनो - वज्रनाभि 1, विमलवाहन 2, विपुलख्याति 3, विपुलवाहन 4, महाबल 5, अतिबल 6, अपराजित 7, नंदिषेण 8, पद्म 9, महापद्म 10, पद्मोत्तर 11, पंकजगुल्म 12, कमल समान है मुख जाका ऐसा नलिनगुल्म 13, पद्मासन 14, पद्मरथ 15, दृढ़रथ 16, मेघरथ 17, सिंहरथ 18, वैश्रवण 19, श्रीधर्मा 20, सुरश्रेष्ठ 21, सिद्धार्थ 22, आनंद 23, सुनन्द 24 - ये तीर्थंकरनि के या भव पहिले तीजे भव के नाम कहे।

अब इनके पूर्वभव के पितानि के नाम सुन - वज्रसेन 1, महातेज 2, रिपुदमन 3, स्वयंप्रभ 4, विमलवाहन 5, सीमंधर 6, पिहिताश्रव 7, अरिंदम 8, युगंधर 9, सर्वजनानन्द 10, अभयानन्द 11, वज्रदंत 12, वज्रनाभि 13, सर्वगुप्ति 14, गुप्तिमान् 15, चिंतारक्ष 16, विमलवाहन 17, धनरव 18, धीर 19, संवर 20, त्रिलोकीरवि 21, सुनन्द 22, वीतशोक 23, प्रोष्ठिल 24 - ये पूर्व भव के पितावों के नाम कहे।

अब चौबीस तीर्थंकर जिस जिस देवलोक से आए तिन देवलोकों के नाम सुनो। सर्वार्थसिद्धि 1, बैजयन्त 2, ग्रैवयेक 3, वैजयन्त 4, ऊर्ध्वग्रैवेयक 5, वैजयन्त 6, मध्यग्रैवेयक 7, वैजयन्त 8, अपराजित 9, आरणस्वर्ग 10, पुष्पोत्तर विमान 11, कापिष्ठस्वर्ग 12, शुक्रस्वर्ग 13, सहस्रारस्वर्ग 14, पुष्पोत्तर 15-16-17, सर्वार्थसिद्धि 18, विजय 19, अपराजित 20, प्राणत 21, वैजयन्त 22, आनत 23, पुष्पोत्तर 24 - ये चौबीस तीर्थंकरों के आवने के स्वर्ग कहे।

अब आगे चौबीस तीर्थंकरनि की जन्मपुरी जन्म-नक्षत्र माता-पिता अर वैराग्य के वृक्ष अर मोक्ष के स्थान मैं कहूं हूं सो तुम सुनो।

अयोध्या नगरी, पिता नाभिराजा, माता मरुदेवी राणी, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, वटवृक्ष, कैलाश पर्वत, प्रथम जिन हे मगध देश के भूपति! तोहि अतींद्रिय सुख की प्राप्ति करहु 1 ।

अयोध्यानगरी, जितशत्रु पिता, विजया माता, रोहिणी नक्षत्र, सप्तच्छदवृक्ष, सम्मेदशिखर, अजितनाथ, हे श्रेणिक! तुझे मंगल के कारण होउ 2 ।

श्रावस्ती नगरी, जितारि पिता, सेना माता, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, शालवृक्ष, सम्मेदशिखर, संभवनाथ तेरे भव बंधन हरहु 3 ।

अयोध्यापुरी नगरी, संवर पिता, सिद्धार्था माता, पनर्बसु नक्षत्र, सालवृक्ष, सम्मेदशिखर, अभिनन्दन तोहि कल्याण के कारण होऊ 4 ।

अयोध्यापुरी नगरी, मेघप्रभ पिता, सुमंगला माता, मघा नक्षत्र, प्रियंगुवृक्ष, सम्मेदशिखर, सुमतिनाथ जगत में महामंगलरूप तेरे सर्वविघ्न हरहु 5 ।

कौशांबीनगरी, धारणपिता, सुसीमा माता, चित्रा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष, सम्मेदशिखर, पद्मप्रभ तेरे कामक्रोधादि अमंगल हरहु 6 ।

काशीपुरी नगरी, सुप्रतिष्ठ पिता, पृथ्वी माता, विशाखा नक्षत्र, शिरीषवृक्ष, सम्मेदशिखर, सुपार्श्वनाथ हे राजन्! तेरे जन्मजरामृत्यु हरहु 7 ।

चंद्रपुरी नगरी, महासेन पिता, लक्ष्मणा माता, अनुराधा नक्षत्र, नागवृक्ष, सम्मेदशिखर, चन्द्रप्रभ तोहि शांतिभाव के दाता होहु 8 ।

काकंदी नगरी, सुग्रीव पिता, रामा माता, मूलनक्षत्र, शालवृक्ष, सम्मेदशिखर, पुष्पदंत तेरे चित्त को पवित्र करहु 9 ।

भद्रिकापुरी नगरी, दृढ़रथ पिता, सुनन्दा माता, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, प्लक्षवृक्ष सम्मेदशिखर, शीतलनाथ तेरे त्रिविधि ताप हरहु 10 ।

सिंहपुरी नगरी, विष्णुराज पिता, विष्णुश्री देवी माता, श्रवन नक्षत्र, तिन्दुक वृक्ष, सम्मेदशिखर, श्रेयांसनाथ तेरे विषय कषाय हरहु, कल्याण करहु 11 ।

चंपापुरी नगरी, वासुपूज्य पिता, विजया माता, शतभिषा नक्षत्र, पाठलवृक्ष, निर्वाणक्षेत्र चम्पापुरी का वन, श्रीवासुपूज्य तोहि निर्वाण की प्राप्ति करहु 12 ।

कपिलानगरी, कृतवर्मा पिता, सुरम्या माता, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, जंबूवृक्ष, सम्मेदशिखर, विमलनाथ तोहि रागादिमल रहित करहु 13 ।

अयोध्यानगरी, सिंहसेन पिता, सर्वयशा माता, रेवती नक्षत्र, पीपलवृक्ष, सम्मेदशिखर, अनंतनाथ तुझे अंतररहित करहु 14 ।

रत्नपुरी नगरी, भानु पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, दधिपूर्ण वृक्ष, सम्मेदशिखर, धर्मनाथ

तोहि धर्मरूप करहु 15 ।

हस्तनागपुरनगर, विश्वसेन पिता, ऐरा मता, भरणी नक्षत्र, नदी वृक्ष, सम्मेदशिखर, शांतिनाथ तुझे सदा शांति करहु 16 ।

हस्तनागपुर नगर, सूर्य पिता, श्रीदेवी माता, कृतिका नक्षत्र, तिलक वृक्ष, सम्मेदशिखर, कुंथुनाथ हे राजेन्द्र! तेरे पाप हरण के कारण होहू 17 ।

हस्तिनागपुर नगर, सुदर्शन पिता, मित्रा माता, रोहिणी नक्षत्र, आम्र वृक्ष, सम्मेदशिखर, अरनाथ हे श्रेणिक! तेरे कर्मरज हरहु 18 ।

मिथिलापुरी नगरी, कुंभ पिता, रक्षता माता, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष, सम्मेदशिखर, मल्लिनाथ हे राजा! तुझे मन शोक रहित करहु 19 ।

कुशाग्रनगर, सुमित्र पिता, पद्मावती माता, श्रवण नक्षत्र, चम्पक वृक्ष, सम्मेदशिखर, मुनिसुब्रतनाथ सदा तेरे मनविषै बसहु 20 ।

मिथिलापुरी नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, अश्विनी नक्षत्र, मौलश्री वृक्ष, सम्मेदशिखर, नमिनाथ तुझे धर्म का समागम करहु 21 ।

सौरीपुर नगर, समुद्रविजय पिता, शिवादेवी माता, चित्रा नक्षत्र, मेषशृंग वृक्ष, गिरिनार पर्वत, नेमिनाथ तुझे शिवसुखदाता होहु 22 ।

काशीपुरी नगरी, अश्वसेन पिता, वामा माता, विशाखा नक्षत्र, धवल वृक्ष, सम्मेदशिखर, पार्श्वनाथ तेरे मन को धीर्य देहु 23 ।

कुण्डलपुरनगर, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, शालवृक्ष, पावापुर, महावीर तुझे परम मंगल करहु, आप-समान करहु 24 ।

ऋषभदेव का निर्वाणकल्याण कैलाश 1, बासुपूज्य का चंपापुर, 2, नेमिनाथ का गिरनार 3, महावीर का पावापुर 4, औरनि का सम्मेदशिखर है। शांति कुंथु अर तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती भी भए और कामदेव भी भए, राज्य छोड़ वैराग्य लिया। और वासुपूज्य मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था में वैरागी भए, राज भी न किया और विवाह भी न किया। अन्य तीर्थंकर महामंडलीक राजा भए, राज छोड़ वैराग्य लिया।

और चन्द्रप्रभ पुष्पदंत ये दोय श्वेत वर्ण भए और श्रीसुपार्श्वनाथ प्रियंगु पंजरीक रंग समान हरितवर्ण भए और पार्श्वनाथ का वर्ण कच्चा शालि समान हरितवर्ण भया, पद्मप्रभ का वर्ण कमल समान आरक्त भया, और वासुपूज्य का वर्ण टेसू के फूल समान आरक्त भया, और

मुनिसुब्रतनाथ का वर्ण अंजनी गिरिसमान श्याम, और नेमिनाथ का वर्ण मोर के कंठ समान श्याम, और सोलह तीर्थंकरों के ताता सोने के समान भए। ये सब ही तीर्थंकर इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्त्यादिकों से पूजने योग्य और स्तुति करने योग्य भए और सबका ही सुमेरु के शिखर पांडुकशिला पर जन्माभिषेक भया। सबके ही पंचकल्याणक प्रकट भये, सम्पूर्ण कल्याण की प्राप्ति का कारण है सेवा जिनकी वे जिनेन्द्र तेरी अविद्या हरैं। या भांति गणधर देव ने वर्णन किया।

तब राजा श्रेणिक नमस्कार कर विनती करते भए – हे प्रभो! छहों काल की वर्तमान आयु का प्रमाण कहो और पाप की निवृत्ति का कारण परम तत्त्व जो आत्मस्वरूप उसका वर्णन बारम्बार करो और जिस जिनेन्द्र के अंतराल में श्री रामचन्द्र प्रकट भए सो आपके प्रसादतैं मैं सर्व वर्णन सुना चाहूं हूं।

ऐसा जब श्रेणिक ने प्रश्न किया तब गणधर देव कृपा कर कहते भए – कैसे हैं गणधर देव? क्षीरसागर के जल समान निर्मल है चित्त जिनका, हे श्रेणिक! कालनामा द्रव्य है सो अनन्त समय है, जाकी आदि अंत नाहीं, ताकी संख्या कल्पनारूप दृष्टांत से पल्यसागरादि रूप महामुनि कहै हैं। एक महायोजन प्रमाण लम्बा चौड़ा ऊंचा गोल गर्त (गड्ढा) उत्कृष्ट भोग भूमि का तत्काल का जन्म्या हुवा भेड़ का बच्चा, ताके रोम के अग्रभाग तैं भरिए, सो गर्त घना गाढ़ा भरिए और सौ वर्ष गए एक रोम काढ़े सो व्योहारपल्य कहिए। सो यह कल्पना दृष्टांत मात्र है, काहू ने ऐसा किया नाहीं। यातैं असंख्यात गुणी उद्धारपल्य है। इससे असंख्यातगुणी अद्धापल्य है। ऐसी दस कोटाकोटि पल्य जाय तदि एक सागर कहिए और दश कोटाकोटि सागर जाय तब एक अवसर्पिणीकाल कहिए और दस कोटाकोटि सागर की एक उत्सर्पिणी और बीस कोटाकोटि सागर का कल्पकाल कहिए। जैसैं एक मास में शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष ये दोय वर्तैं तैसैं एक कल्पकालविषै एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी ये दोय वर्तैं।

इनके प्रत्येक प्रत्येक छह छह काल हैं तिनमें प्रथम सुखमासुखमाकाल चार कोटाकोटि सागर का है, दूजा सुखमाकाल तीन कोटाकोटि सागर का है, तीजा सुखमा दुखमा काल दो कोटाकोटि सागर का है, और चौथा दुखमासुखमाकाल बयालीस हजार वर्ष घाट एक कोटाकोटि सागर का है, पंचमा दुःखमाकाल इक्कीस हजार वर्ष का है, छठा दुःखमादुःखमाकाल, सो भी इक्कीस हजार वर्ष का है। यह अवसर्पणीकाल की रीति कही। प्रथम काल से लेय छठे काल पर्यंत आयु आदि सब घटती गई। और इससे उलटी जो उत्सर्पणी उसमें फिर छठे से लेकर पहिले पर्यंत आयु काय बल पराक्रम बढ़ते गए। यह कालचक्र की रचना जाननी।

अथानन्तर जब तीजे काल में पल्य का आठवां भाग बाकी रहा तब चौदह कुलकर भए।

तिनका कथन पूर्व कर आए हैं। चौदहवें नाभिराजा तिनके आदि तीर्थंकर ऋषभदेव पुत्र भए। तिनकों मोक्ष गए पीछे पचास लाख कोटिसागर गए श्रीअजितनाथ द्वितीय तीर्थंकर भए। उनके पीछे तीस लाख कोटि सागर गये श्री संभवनाथ भये। ता पीछे दश लाख कोटि सागर गये श्री अभिनन्दन भये। ता पीछैं नव लाख कोटिसागर गये श्रीसुमतिनाथ भये। ता पीछैं नब्बे हजार कोटिसागर गये श्री पद्‌मप्रभ भये। ता पीछे नव हजार कोटिसागर गये श्री सुपार्श्वनाथ भये। ता पीछे नौ सौ कोटिसागर गये श्री चन्द्रप्रभ भये। ता पीछे नब्बे कोटिसागर गये श्री पुष्पदन्त भये। ता पीछे नव कोटिसागर गये श्री शीतलनाथ भए। ता पीछे सौ सागर घाट कोटिसागर गये श्रेयांसनाथ भये। ता पीछे चव्वन सागर गये श्री वासुपूज्य भये।

ता पीछे तीस सागर गये श्री विमलनाथ भये। ता पीछे नव सागर गये श्री अनन्तनाथ भये। ता पीछे चार सागर गये श्री धर्मनाथ भये। ता पीछे पौन पल्यघाट तीन सागर गये श्री शांतिनाथ भये। ता पीछे आधापल्य गये श्री कुन्थुनाथ भये। ता पीछे हजारकोटि वर्ष घाट पाव पल्य गये श्री अरनाथ भये। उनके पीछे पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष घाट हजार कोटिवर्ष गये श्री मल्लिनाथ भए। ता पीछे चौवन लाख वर्ष गये श्री मुनिसुव्रतनाथ भए। उनके पीछे छह लाख वर्ष गये श्री नमिनाथ भए। उनके पीछे पांच लाख वर्ष गए श्री नेमिनाथ भये। उनके पीछे पौने चौरासी हजार वर्ष गए श्री पार्श्वनाथ भए। उनके पीछे अढ़ाई सौ वर्ष गए श्री वर्द्धमान भए। जब वर्द्धमान स्वामी मोक्ष को प्राप्त होवेंगे तब चौथे काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रहेंगे। और इतने ही तेजी काल के बाकी रहे थे तब श्री ऋषभदेव मुक्ति पधारे।

हे श्रेणिक! धर्मचक्र के अधिपति श्री वर्द्धमान इन्द्र के मुकुट के रत्ननि की जो ज्योति, सोई भया जल, ताकरि धोए हैं चरणयुगल जिनके, सो तिनको मोक्ष पधारे पीछे पांचवां काल लगेगा जामैं देवनि का आगमन नाहीं और अतिशय के धारक मुनि नाहीं, केवलज्ञान की उत्पत्ति नाहीं, चक्रवर्ती बलभद्र और नारायण की उत्पत्ति नाहीं, तुम सारिखे न्यायवान राजा नाहीं, अनीतिकारी राजा होवेंगे और प्रजा के लोक दुष्ट, महा ढीठ, परधन हरवे कों उद्यमी होवेंगे, शील रहित, व्रत रहित, महाक्लेश व्याधि के भरे, मिथ्यादृष्टि घोरकर्मी होवेंगे और अतिवृष्टि अनावृष्टि, टिड्डी सूवा मूषक, अपनी सेना और पराई सेनायें जो सप्त ईतियें तिनका भय सदा ही होयगा।

मोहरूप मदिरा के माते, रागद्वेष के भरे, भौंह को टेढ़ा करनहारे, क्रूरदृष्टि, पापी, महामानी, कुटिलजीव होवेंगे। कुवचन के बोलनहारे, क्रूरजीव, धन के लोभी पृथ्वी पर ऐसे विचरेंगे जैसे रात्रिविषै घूघू विचरै। और जैसैं पटवीजना चमत्कार करैं तैसैं थोड़े ही दिन चमत्कार करेंगे। वे मूर्ख दुर्जन जिनधर्म सैं पराङ्मुख कुधर्मविषै आप प्रवर्तैंगे, औरों को प्रवर्तेवेंगे। परोपकार रहित पराए

कार्यों में निरुद्यमी आप डूबेंगे औरों को डुबोवेंगे। वे दुर्गतिगामी आपको महंत मानेंगे। ते क्रूर कर्म चंडाल मदोन्मत्त अनर्थकर माना है हर्ष जिन्होंने, मोहरूप अंधकारकरि अंधे, कलिकाल के प्रभावतैं हिंसारूप जे कुशास्त्र वेई भए कुठार, तिनकरि अज्ञानी जीवरूप वृक्षनि कों काटेंगे। पंचम काल के आदि में मनुष्यों का सात हाथ का ऊंचा शरीर होयगा और एक सौ बीस वर्ष की उत्कृष्ट आयु होयगी। फिर पंचमकाल के अन्त दोय हाथ का शरीर और बीस वर्ष की आयु उत्कृष्ट रहेगी।

बहुरि छठे के अन्त एक हाथ का शरीर, उत्कृष्ट सोला वर्ष की आयु रहेगी। वे छठे काल के मनुष्य महाविरूप, मांसाहारी, महादुःखी, पापक्रियारत, महारोगी, तिर्यंच समान महा अज्ञानी होवेंगे। न कोई सम्बन्ध, न कोई व्यवहार, न कोई ठाकुर, न कोई चाकर, न राजा न प्रजा, न धन न घर, न सुख, महादुखी होवेंगे। अन्याय काम के सेवनहारे धर्म के, आचार से शून्य, महापाप के स्वरूप होहिंगे। जैसैं कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कला घटे और शुक्लपक्ष में बढ़े जैसे अवसर्पिणीकाल में घटे, उत्सर्पिणीविषै बढ़े। और जैसैं दक्षिणायण में दिन घटे और उत्तरायण में बढ़े तैसैं अवसर्पिणी उत्सर्पिणीविषै हानि वृद्धि जाननी। ये तीर्थंकरनि का अंतराल तोहि कह्या।

हे श्रेणिक! अब तू तीर्थंकरनि के शरीर की ऊंचाई का कथन सुन! प्रथम तीर्थंकर का शरीर पांच सौ धनुष 500, दूजे का साढ़े चार सौ धनुष 450, तीजे का चार सौ धनुष 400, चौथे का साढ़े तीन सौ धनुष 350, पांचवें का तीन सौ धनुष 300, छठे का ढाई सौ धनुष 250, सातवें का दो सौ धनुष 200, आठवें का डेढ़ सौ धनुष 150, नौवें का सौ धनुष 100, दसवें का नब्बे धनुष 90, ग्यारहवें का अस्सी धनुष 80, बारहवें का सत्तर धनुष 70, तेरहवें का साठ धनुष 60, चौदहवें का पच्चास धनुष 50, पन्द्रहवें का पैंतालीस धनुष 45, सोलहवें का चालीस धनुष 40, सत्रहवें का पैंतीस धनुष 35, अठारहवें का तीस धनुष 30, उन्नीसवें का पच्चीस धनुष 25, बीसवें का बीस धनुष 20, इक्कीसवें का पन्द्रह धनुष 15, बाईसवें का दस धनुष 10, तेईसवें का नौ हाथ 9, चौबीसवें का सात हाथ 7 ।

अब आगैं इन चौबीस तीर्थंकरनि की आयु का प्रमाण कहिए है। प्रथम का चौरासी लाख पूर्व (चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग और चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होय है), और दूजे का बहत्तर लाख पूर्व, तीजे का साठ लाख पूर्व, चौथे का पचास लाख पूर्व, पांचवें का चालीस लाख पूर्व, छठे का तीस लाख पूर्व, सातवें का बीस लाख पूर्व, आठवें का दस लाख पूर्व, नवमें का दोय लाख पूर्व, दसवें का लाख पूर्व, ग्यारहवें का चौरासी लाख वर्ष, बारहवें का बहत्तर लाख वर्ष, तेरहवें का साठ लाख वर्ष, चौदहवें का तीस लाख वर्ष, पन्द्रहवें का दस लाख वर्ष, सोलहवें का लाख वर्ष, सत्रहवें का पचानवै हजार वर्ष, अठारहवें का चौरासी हजार वर्ष, उन्नीसवें का

पचावन हजार वर्ष, बीसवें का तीस हजार वर्ष, इक्कीसवें का दस हजार वर्ष, बाईसवें का हजार वर्ष, तेईसवें का सौ वर्ष, चौबीसवें का बहत्तर वर्ष का आयु प्रमाण जानना।

अथानन्तर ऋषभदेव पहिले जे चौदह कुलकर भए तिनके आयु काय का वर्णन करिए है – प्रथम कुलकर की काय अठारह सौ धनुष, दूसरे की तेरह सौ धनुष, तीसरे की आठ सौ धनुष, चौथे की सात सौ पिचहत्तर धनुष, पांचवें की साढ़े सात सौ धनुष, छठे की सवा सात सौ धनुष, सातवें की सात सौ धनुष, आठवें की पौने सात सौ धनुष, नवें की साढ़े छह सौ धनुष, दसवें की सवा छह सौ धनुष, ग्यारहवें की छह सौ धनुष, बारहवें की पौने छह सौ धनुष, तेरहवें की साढ़े पांच सौ धनुष, चौदहवें की सवा पांच सौ धनुष है।

अब इन कुलकरनि की आयु का वर्णन करै हैं – पहिले की आयु पल्य का दसवां भाग, दूजे की पल्य का सौवां भाग, तीजे की पल्य का हजारवां भाग, चौथे की पल्य का दस हजारवां भाग, पांचवें की पल्य का लाखवां भाग, छठे की पल्य का दस लाखवां भाग, सातवें की पल्य का कोडवां भाग, आठवें की पल्य का दस कोडवां भाग, नौवें की पल्य का सौ कोडवां भाग, दसवें की पल्य का हजार कोडवां भाग, ग्यारहवें की पल्य का दश हजार कोड्वां भाग, बारहवें की पल्य का लाख कोडवां भाग, तेरहवें की पल्य का दस लाख कोडवां भाग, चौदहवें की कोटि पूर्व की आयु भई।

अथानन्तर हे श्रेणिक! अब तू बारह जे चक्रवर्ती तिनकी वार्ता सुन। प्रथम चक्रवर्ती भरत, श्री ऋषभदेव के यशस्वती राणी, ताकूं सुनन्दा भी कहे हैं ताके पुत्र, या भरतक्षेत्र का अधिपति। ते पूर्वभवविषै पुण्डरीकनी नगरीविषै पीठ नाम राजकुमार थे। वे कुशसेन स्वामी के शिष्य होय मुनिव्रत धर सर्वार्थसिद्धि गए। तहां सैं चयकर षट्खंड का राज्य कर फिर मुनि होय, अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान उपजाय, निर्वाण को प्राप्त भए। फिर पृथ्वीपुर नामा नगरविषै राजा विजयतेज, यशोधर नामा मुनि के निकट जिनदीक्षा धर विजयनाम विमान गए। वहां से चयकर अयोध्याविषै राजा विजय, राणी सुमंगला, तिनके पुत्र सगर नाम द्वितीय चक्रवर्ती भए।

ते महा भोग भोगकर इन्द्र समान, देव-विद्याधरनिकरि धारिए है आज्ञा जिनकी, ते पुत्रनि के शोककरि राज्य का त्याग कर अजितनाथ के समोसरण में मुनि होय, केवल उपजाय, सिद्ध भए। और पुंडरीकनी नगरीविषै एक राजा शशिप्रभ वह विमल स्वामी का शिष्य होय ग्रैवेयक गये। वहां से चयकर श्रावस्ती नगरी में राजा सुमित्र, राणी भद्रवती, तिनके पुत्र मघवा नाम तृतीय चक्रवर्ती भए। लक्ष्मीरूप बेल के लिपटने को वृक्ष ते श्री धर्मनाथ के पीछे शांतिनाथ के उपजने से पहिले भए। समाधान रूप जिनमुद्रा धार सौधर्म स्वर्ग गए। फिर चौथे चक्रवर्ती जो श्री सनत्कुमार भए,

तिनकी गौतम स्वामी ने बहुत बड़ाई करी।

तब राजा श्रेणिक पूछते भए – हे प्रभो! वे किस पुण्य से ऐसे रूपवान भए। तब उनका चरित्र संक्षेपताकरि गणधर कहते भए। कैसा है सनत्कुमार का चरित्र? जो सौ वर्ष में भी कोऊ कहिवे को समर्थ नाहीं। यह जीवन जब लग जैन धर्म को नाहीं प्राप्त होय है तब लग तिर्यंच नारकी कुमानुष कुदेव कुगति में दु:ख भोगवै है। जीवों ने अनंतभव किए सो कहां लों कहिए। परन्तु एक एक भव कहिए है। एक गोवर्धन नाम ग्राम, वहां भले भले मनुष्य बसे। तहां एक जिनदत्त नामा श्रावक बड़ा गृहस्थ, जैसे सर्व जलस्थानकों से सागर शिरोमणि है और सर्व गिरनि में सुमेरु, और सर्व ग्रहोंविषै सूर्य, तृणों में इक्षु, बेलों में नागर बेल, वृक्षों में हरिचंदन प्रशंसा योग्य है तैसे कुलों में श्रावक का कुल सर्वोत्कृष्ट आचार कर पूजनीक है, सुगति का कारण है।

सो जिनदत्त नामा श्रावक गुण रूप आभूषणनिकरि मंडित श्रावक के व्रत पाल उत्तम गति गया। और ताकी स्त्री विनयवती महा पतिव्रता श्रावक के व्रत पालनेहारी सो अपने घर की जगह में भगवान का चैत्यालय बनाया, सकल द्रव्य तहां लगाया और आर्या होय महा तपकर स्वर्ग में प्राप्त भई। अर ताही ग्रामविषै एक और हेमबाहु नामा गृहस्थ, आस्तिक, दुराचार से रहित, सो विनयवती का कराया जो जिन मंदिर ताकी भक्तिकरि जयदेव भया। सो चतुर्विधसंघ की सेवा में सावधान, सम्यग्दृष्टि, जिनवंदना में तत्पर, सो चयकर मनुष्य भया।

बहुरि देव बहुरि मनुष्य। या भांति भवधर महापुरी नगरीविषै सुप्रभ नामा राजा। ताके तिलक सुन्दरी रानी गुणरूप आभूषण की मंजूषा, ताके धर्मरुचि नामा पुत्र भया। सो राज्य तज सुप्रभनामा पिता जो मुनि ताका शिष्य होय, मुनिव्रत अंगीकार करता भया। पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति का प्रतिपालक, आत्मध्यानी, गुरुसेवा में अत्यन्त तत्पर, अपनी देहविषै अत्यन्त निस्पृह, जीवदया का धारक, मन इन्द्रियों का जीतनहारा, शील का सुमेरु, शंका आदि जे दोष तिनसे अतिदूर, साधुओं का वैयाव्रत करनहारा, सो समाधिमरण कर चौथे देवलोकविषै गया। तहां सुख भोगता भया। तहां से चयकर नागपुर में राजा विजय, राणी सहदेवी, तिनके सनत्कुमार नामा पुत्र चौथा चक्रवर्ती भया। छह खण्ड पृथ्वी में जाकी आज्ञा प्रवरती, सो महारूपवान।

एक दिवस सौधर्म इन्द्र ने इनके रूप की अति प्रशंसा करी सो रूप देखने को देव आए। सो प्रच्छन्न आयकर चक्रवर्ती का रूप देख्या। ता समय चक्रवर्ती ने कुस्ती का अभ्यास किया था, सो शरीर रजकर धूसरा होय रहा था, अर सुगन्ध उबटना लगाया था, अर स्नान की एक धोती ही पहिने नाना प्रकार के जे सुगन्ध जल तिनसे पूर्ण नाना प्रकार के रत्ननि के कलश, तिनके मध्य स्नान के आसन पर विराजे हुते। सो देव रूप को देख आश्चर्य को प्राप्त भए। परस्पर कहते भए –

जैसा इन्द्र ने वर्णन किया तैसा ही है यह मनुष्य का रूप, देवों के चित्त को मोहित करणहारा है।

बहुरि चक्रवर्ती स्नानकर वस्त्राभरण पहर सिंहासन पर आय विराजे। रत्नाचल के शिखर समान है ज्योति जाकी। अर वह देव प्रकट होयकर द्वारे ठाढ़े रहे। अर द्वारपाल से हाथ जोड़ चक्रवर्ती को कहलाया जो स्वर्गलोक के देव तिहारा रूप देखने आए हैं। तब चक्रवर्ती अद्भुत श्रृंगार किए विराजे हुते ही, तब देवों के आयबेकर विशेष शोभा करी, तिनको बुलाया। ते आय चक्रवर्ती का रूप देख माथा धुनते भए। अर कहते भए – एक क्षण पहिले हमने स्नान के समय जैसा देखा था तैसा अब नाहीं।

मनुष्यों के शरीर की शोभा क्षणभंगुर है। धिक्कार है इस असार जगत की माया को। प्रथम दर्शन में जो रूप यौवन की अद्भुतता हुती सो क्षणमात्र में ऐसे विलाय गई जैसैं बिजुली चमत्कार कर क्षणमात्र में विलाय जाय है। ये देवनि के वचन सनत्कुमार सुन, रूप अर लक्ष्मी को क्षणभंगुर जान, वीतराग भाव धर, महामुनि होय, महातप करते भए। महाऋद्धि उपजी। पुनि कर्मनिर्जरा निमित्त महारोग की परीषह सहते भए, महाध्यानारूढ़ होय समाधिमरण कर सनत्कुमार स्वर्ग सिधारे। वे शांतिनाथ के पहिले अर मघवा तीजा चक्रवर्ती ताके पीछे भए। अर पुण्डरीकनी नगरविषै राजा मेघरथ, वह अपने पिता घनरथ तीर्थंकर के शिष्य मुनि होय सर्वार्थसिद्धि को पधारे। तहांतैं चयकर हस्तनागपुर में राजा विश्वसेन, राणी ऐरा, तिनके शांतिनाथ नामा सोलहवें तीर्थंकर, अर पंचम चक्रवर्ती भए। जगत कूं शांति के करणहारे, जिनका जन्म कल्याणक सुमेरु पर्वत पर इन्द्र ने किया, बहुरि षट्खण्ड के भोक्ता भए। तृण समान राज्य को जान तजा, मुनिव्रत धर मोक्ष गए।

बहुरि कुंथुनाथ छठे चक्रवर्ती सत्रहवें तीर्थंकर, अरनाथ सातवें चक्रवर्ती अठारहवें तीर्थंकर ते मुनि होय निर्वाण पधारे सो तिनका वर्णन तीर्थंकरों के कथन में पहिले कहा ही है। अर धान्यपुर नगर में राजा कनकप्रभ, सो विचित्रगुप्त स्वामी के शिष्य मुनि होय, स्वर्ग गए। तहांतैं चयकर अयोध्या नगरी विषै राजा कीर्तिवीर्य, राणी तारा, तिनके सुभूमि नामा अष्टम चक्रवर्ती भए। जाकरि यह भूमि शोभायमान भई। तिनके पिता का मारणहारा जो परशुराम तानैं क्षत्री मारे हुते, अर तिनके सिर थम्भनविषै चिनाए हुते, सो सुभूमि अतिथि का भेष कर परशुराम के भोजन को आए। परशुराम ने निमित्त ज्ञानी के वचनतैं क्षत्रीनि के दांत पात्र में मेलि सुभूमि को दिखाये, तदि दांत क्षीर का रूप होय परणये, अर भोजन का पात्र चक्र होय गया। ता करि परशुराम को मार्या। परशुराम ने क्षत्री मारे पृथ्वी निक्षत्री करी हुती सो सुभूमि परशुराम को मार द्विजवर्गतैं द्वेष किया। पृथ्वी अब्राह्मण करी। जैसैं परशुराम के राज्य में क्षत्री कुल छिपाय रहे हुते तैसैं याके राज्य में विप्र अपने कुल छिपाए रहे। सो स्वामी अरनाथ के मुक्ति गए पीछे अर मल्लिनाथ के होयवे पहिले

सुभूमि भए। अति भोगासक्त निर्दय परिणामी अव्रती मरकर सातवें नरक गए।

अर वीतशोका नगरी, ताविषै राजा चित्तसुप्रभ स्वामी के शिष्य मुनि होय ब्रह्मस्वर्ग गए। तहांतैं चयकर हस्तनागपुर विषै राजा पद्मरथ राणी मयूरी, तिनके महापद्म नामा नौवें चक्रवर्ती भए। षट्खंड पृथ्वी के भोक्ता, तिनकूं आठ पुत्री महारूपवंती, सो रूप के अतिशयकरि गर्वित, तिनके विवाह की इच्छा नाहीं। सो विद्याधर तिनै हर ले गये। सो चक्रवर्ती ने छुड़ाय मंगाई। ये आठों ही कन्या आर्यिका के व्रत धर समाधि मरण कर देवलोक में प्राप्त भई। अर विद्याधर इनको ले गए हुते ते भी विरक्त होय मुनिव्रत धर आत्मकल्याण करते भए। यह वृत्तांत देख महापद्म चक्रवर्ती पद्मनामा पुत्र को राज देय विष्णु नामा पुत्र सहित वैरागी भए। महातप कर केवल उपजाय मोक्ष कों प्राप्त भए। अरनाथ स्वामी के मुक्ति गए पीछे अर मल्लिनाथ के उपजने से पहिले सुभूमि के पीछे भए।

अर विजय नामा नगरविषै राजा महेन्द्रदत्त, ते अभिनन्दन स्वामी के शिष्य होय महेंद्र स्वर्ग को गए। तहां से चयकर कांपिल नगर में राजा हरिकेतु ताकी राणी विप्रा, तिनके हरिषेण नामा दसवें चक्रवर्ती भए। तिनने सर्व भरत क्षेत्र की पृथ्वी चैत्यालयनिकरि मंडित करी, अर मुनिसुब्रतनाथ स्वामी के तीर्थ में मुनि होय सिद्धपदकूं प्राप्त भए। अर राजपुर नामा नगर में राजा जो असीकांत थे वह सुधर्ममित्र स्वामी के शिष्य मुनि होय ब्रह्मस्वर्ग गये। तहांतैं चयकर राजा विजय, राणी यशोवती तिनके जयसेन नामा ग्यारहवें चक्रवर्ती भए। ते राज्य तज दिगम्बरी दीक्षा धर रत्नत्रय का आराधन कर सिद्धपद कों प्राप्त भए। यह श्रीमुनिसुब्रतनाथ स्वामी के मुक्ति गए पीछे नमिनाथ स्वामी के अंतराल में भये।

अर काशीपुरी में राजा सम्भूत, ते स्वतंत्र लिंग स्वामी के शिष्य मुनि होय पद्मयुगल नामा विमानविषै देव भए। तहांतैं चयकर कांपिल नगर में राजा ब्रह्मरथ राणी चूला, तिनके ब्रह्मदत्त नामा बारहवें चक्रवर्ती भए। ते छै खण्ड पृथ्वी का राज्य कर, मुनिव्रत बिना रौद्र ध्यान कर सातवें नरक गये। यह श्री नेमिनाथ स्वामी को मुक्ति गये पीछे पार्श्वनाथ स्वामी के अंतराल में भए। ये बारह चक्रवर्ती बड़े पुरुष हैं, छै खण्ड पृथ्वी के नाथ जिनकी आज्ञा देव विद्याधर सब ही मानैं हैं।

हे श्रेणिक! तोहि पुण्य पाप का फल प्रत्यक्ष कह्या, सो यह कथन सुन कर योग्य कार्य करना, अयोग्य काम न करना। जैसे बटसारी बिना कोई मार्ग में चलै तो सुखसूं स्थानक नाहीं पहुंचे, तैसैं सुकृत बिना परलोक में सुख न पावै। कैलाश शिखर समान जे ऊंचे महल तिनमें जो निवास करै हैं सो सर्व पुण्यरूप वृक्ष का फल है। अर जहां शीत उष्ण पवन पानी की बाधा ऐसी कुटियों में बसे हैं दलिद्ररूप कीच में फंसे हैं, सो सर्व अधर्म रूप वृक्ष का फल है। विंध्याचल पर्वत के शिखर

समान ऊंचे जे गजराज उन पर चढ़कर सेना सहित चले हैं, चंवर ढुरै हैं, सो सर्व पुण्य रूप वृक्ष का फल है।

जे महा तुरंगनि पर चमर ढुरते अर अनेक असवार पियादे जिनके चौगिर्द चले हैं सो सब पुण्य रूप राजा का चरित्र है। अर देवनि के विमान समान मनोज्ञ जे रथ तिन पर चढ़कर जे मनुष्य गमन करे हैं सो पुण्य रूप पर्वत के मीठे नीझरने हैं। अर जो फटे मेले कपड़े अर पियादे फिरे हैं सो सब पाप रूप वृक्ष का फल है। अर जो अमृत सारिखा अन्न स्वर्ण के पात्र में भोजन करे हैं सो सब धर्म रसायन का फल मुनियों ने कहा है। अर जो देवों का अधिपति इन्द्र अर मनुष्यों का अधिपति चक्रवर्ती तिनका पद भव्य जीव पावे हैं सो सब जीव दया रूप बेल का फल है। कैसे हैं भव्य जीव? कर्मरूप कुंजर को शार्दूल समान हैं। अर राम कहिए बलभद्र, केशव कहिए नारायण तिनके पद जो भव्यजीव पावे हैं सो सब धर्म का फल है।

हे श्रेणिक! आगे वासुदेवों का वर्णन करिए है सो सुनो – या अवसर्पणी काल के भरत क्षेत्र के नव वासुदेव हैं। प्रथम ही इनके पूर्वभव की नगरियों के नाम सुनो – हस्तिनागपुर 1, अयोध्या 2, श्रावस्ती 3, कौशांबी 4, पोदनापुर 5, शैलनगर 6, सिंहपुर, 7 कौशांबी 8, हस्तनागपुर 9। ये नव ही नगर कैसे हैं? सर्व ही द्रव्य के भरे हैं अर ईति-भीति रहित हैं।

अब वासुदेवों के पूर्व भव के नाम सुनो – विश्वनन्दी 1, पर्वत 2, धनमित्र 3, सागरदत्त 4, विकट 5, प्रियमित्र 6, मानचेष्टित 7, पुनर्वसु 8, गंगदेव जिसे निर्णामिक भी कहे हैं 9। ये नव ही वासुदेवों के जीव पूर्वभवविषै विरूप दौर्भाग्य राज्यभ्रष्ट होय हैं। बहुरि मुनि होय महा तप करै हैं। बहुरि निदान के योगतैं स्वर्गविषै देव होय हैं। तहांतैं चयकर बलभद्र के लघु भ्राता वासुदेव होय हैं। तातैं तपतैं निदान करना ज्ञानियों को वर्जित है। निदान नाम भोगाभिलाष का है, सो महा भयानक दुःख देने को प्रवीण हैं।

आगे वासुदेवों के पूर्वभव के गुरुवों के नाम सुनो, जिन पै इन्होंने मुनिव्रत आदरे- संभूत 1, सुभद्र 2, वसुदर्शन 3, श्रेयांस 4, भूतिसंग 5, वसुभूति 6, घोषसेन 7, परांभोधि 8, द्रुमसेन 9।

अब जिस जिस स्वर्गतैं आय वासुदेव भए तिनके नाम सुनो – महाशुक्र 1, प्राणत 2, लांतव 3, सहस्रार 4, ब्रह्म 5, महेंद्र 6, सौधर्म 7, सनत्कुमार 8, महाशुक्र 9।

आगे वासुदेवों की जन्मपुरियों के नाम सुनो – पोदनापुर 1, द्वापुर 2, हस्तनागपुर 3, बहुरि हस्तनागपुर 4, चक्रपुर 5, कुशाग्रपुर 6, मिथिलापुर 7, अयोध्या 8, मथुरा 9। ये वासुदेवों के उत्पत्ति के नगर हैं। कैसे हैं नगर? समस्त धन धान्य कर पूर्ण महाउत्सव के भरे हैं।

आगे वासुदेवों के पिता के नाम सुनो – प्रजापति 1, ब्रह्मभूति 2, रौद्रनन्द 3, सौम 4,

प्रख्यात 5, शिवाकर 6, सममूर्धाग्निनाद 7, दशरथ 8, वासुदेव 9 । बहुरि इन नव वासुदेवों की मातावों के नाम सुनो - मृगावती 1, माधवी 2, पृथिवी 3, सीता 4, अंबिका 5, लक्ष्मी 6, केशिनी 7, सुमित्रा 8, देवकी 9 । ये नव ही वासुदेवों की नव माता। कैसी हैं? अतिरूपगुणनिकरि मंडित महा सौभाग्यवती जिनमती हैं।

आगे नव वासुदेवों के नाम सुनो - त्रिपृष्ट 1, द्विपृष्ट 2, स्वयंभू 3, पुरुषोत्तम 4, पुरुषसिंह 5, पुण्डरीक 6, दत्त 7, लक्ष्मण 8, कृष्ण 9 ।

आगे नव ही वासुदेवों की पटराणियों के नाम सुनो - सुप्रभा 1, रूपिणी 2, प्रभवा 3, मनोहरा 4, सुनेत्रा 5, विमलसुन्दरी 6, आनन्दवती 7, प्रभावती 8, रुक्मिणी 9। ये वासुदेवों की मुख्य पटराणी। कैसी हैं? महागुण कलानिपुण धर्मवती व्रतवती हैं।

अथानन्तर अब नव बलभद्रों का वर्णन सुनो। सो पहिले नव ही बलभद्रों की पूर्व जन्म की पुरियों के नाम कहै हैं - पुण्डरीकनी 1, पृथिवी 2, आनंदपुरी 3, नंदपुरी 4, वीतशोका 5, विजयपुर 6, सुसीमा 7, क्षेमा 8, हस्तनागपुर 9 ।

और बलभद्रों के नाम सुनो - बाल 1, मारुतदेव 2, नंदिमित्र 3, महाबल 4, पुरुषर्षभ 5, सुदर्शन 6, वसुधर 7, श्रीरामचन्द्र 8, शंख 9 ।

अब इनके पूर्वभव के गुरुवों के नाम सुनो जिन पै इन्होंने जिनदीक्षा आदरी- अमृतार 1, महासुब्रत 2, सुब्रत 3, वृषभ 4, प्रजापाल 5, दम्बर 6, सुधर्म 7, आर्णव 8, विद्रुम 9 । बहुरि नव बलदेव जिन जिन देवलोकनितैं आए तिनके नाम सुनहु - तीन बलभद्र तो अनुत्तर विमानतैं आए, अर तीन सहस्रार स्वर्गतैं आए, दो ब्रह्मस्वर्गतैं आए, अर एक महाशुक्रतैं आया।

अब इन नव बलभद्रों की मातानि के नाम सुनो, क्योंकि पिता तो बलभद्रों के और नारायणों के एक ही होय हैं। भद्रांभोजा 1, सुभद्रा 2, सुवेषा 3, सुदर्शना 4, सुप्रभा 5, विजया 6, वैजयंती 7, अपराजिता जाहि कोशल्या भी कहै हैं 8, रोहिणी 9 ।

नव बलभद्र, नव नारायण, तिनमें पांच बलभद्र पांच नारायण तो श्रेयांसनाथ स्वामी के समय आदि ले धर्मनाथ स्वामी के समय पर्यंत भए और छठे और सातवें अरनाथ स्वामी को मुक्ति गए पीछे मल्लिनाथ स्वामी के पहिले भए और अष्टम बलभद्र वासुदेव मुनिसुब्रतनाथ स्वामी के मुक्ति गए पीछे नेमिनाथ के समय के पहिले भए। अर नवमें श्री नेमिनाथ के काका के बेटे भाई महाजिनभक्त अद्भुत क्रिया के धारणहारे भए।

अब इनके नाम सुनहु - अचल 1, विजय 2, भद्र 3, सुप्रभ 4, सुदर्शन 5, नंदिमित्र (आनंद) 6, नन्दिषेण (नन्दन) 7, रामचन्द्र 8, पद्म 9 । आगे जिन महामुनियों पै बलभद्रों ने दीक्षा धरी

तिनके नाम कहिए हैं – सुवर्णकुम्भ 1, सत्यकीर्ति 2, सुधर्म 3, मृगांक 4, श्रुतिकीर्ति 5, सुमित्र 6, भवनश्रुत 7, सुब्रत 8, सिद्धार्थ 9। यह बलभद्रों के गुरुवों के नाम कहे। महातप के भार कर कर्मनिर्जरा के कारण हारे, तीन लोक में प्रकट है कीर्ति जिनकी, नव बलभद्रों में आठ तो कर्मरूप वन को भस्म कर मोक्ष प्राप्त भए। कैसा है संसार वन? आकुलता को प्राप्त भए हैं नाना प्रकार की व्याधि कर पीड़ित प्राणी जहां, बहुरि वह वन कालरूप जो व्याघ्र ताकरि अति भयानक है। अर कैसा है यह वन? अनंत जन्मरूप जे कंटकवृक्ष तिनका है समूह जहां। विजय बलभद्र आदि श्री रामचन्द्र पर्यंत आठ तो सिद्ध भए और पद्मनामा जो नवमां बलभद्र वह ब्रह्मस्वर्ग में महाऋद्धि का धारी देव भया।

अब नारायणों के शत्रु जे प्रतिनारायण तिनके नाम सुनो – अश्वग्रीव 1, तारक 2, मेरक 3, मधुकैटभ 4, निशुंभ 5, बलि 6, प्रहलाद 7, रावण 8, जरासिंध 9।

अब इन प्रतिनारायणों की राजधानियों का नाम सुनो – अलका 1, विजयपुर 2, नंदनपुर 3, पृथ्वीपुर 4, हरिपुर 5, सूर्यपुर 6, सिंहपुर 7, लंका 8, राजगृही 9। ये नौ ही नगर कैसे हैं? महा रत्नजड़ित, अति देदीप्यमान, स्वर्गलोक समान हैं।

हे श्रेणिक! प्रथम ही श्री जिनेन्द्र देव का चरित्र तुझे कह्या, बहुरि भरत आदि चक्रवर्तियों का कथन कह्या और नारायण बलभद्र तिनका कथन कह्या, इनके पूर्व जन्म सकल वृत्तांत कहे, अर नव ही प्रतिनारायण तिनके नाम कहे। ये त्रेसठ शलाका पुरुष हैं। तिनमें कई एक पुरुष तो जिनभाषित तपकरि ताहि भव में मोक्ष को प्राप्त होय हैं, कई एक स्वर्ग प्राप्त होय पीछे मोक्ष पावै हैं, अर कई एक जे वैराग्य नाहीं धरै हैं चक्री तथा हरि प्रतिहरि ते कई एक भव धर फिर तपकर मोक्ष को प्राप्त होय हैं। ये संसार के प्राणी नाना प्रकार के जे पाप तिनकरि मलीन, मोहरूप सागर के भ्रमण में मग्न महा दु:खरूप चार गति तिनमें भ्रमण कर तप्तायमान सदा व्याकुल होय हैं। ऐसा जानकर जे निकट संसारी भव्यजीव हैं ते संसार का भ्रमण नाहीं चाहै हैं, मोह तिमिर का अंत कर सूर्य समान केवलज्ञान का प्रकाश करै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै चौदह कुलकर, चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र, ग्यारह रुद्र, इनके माता-पिता, पूर्वभव, नगरीनिनि के नाम, पूर्व गुरु कथन नाम वर्णन करने वाला बीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।20।।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं – हे मगधाधिपति! आगैं बलभद्र जो श्री रामचन्द्र, तिनका सम्बन्ध कहिए हैं, सो सुनहु, अर राजनि के वंश अर महा पुरुषनि की उत्पत्ति, तिनका कथन

कहिए है सो उर में धारहु। भगवान दशम तीर्थंकर जे शीतलनाथ स्वामी तिनको मोक्ष गये पीछे कौशांबी नगर में एक राजा सुमुख भया, अर ताही नगर में एक श्रेष्ठी वीरक, ताकी स्त्री वनमाला, सो अज्ञान के उदयतैं राजा सुमुख ने घर मैं राखी। फिर विवेक को प्राप्त होय मुनियों को दान दिया। सो मरकर विद्याधर और वह वनमाला विद्याधरी भई, सो ता विद्याधर ने परणी।

एक दिवस ये दोनों क्रीड़ा करवे कूं हरिक्षेत्र गए अर वह श्रेष्ठी वीरक वनमाला का पति विरहरूप अग्निकर दग्धायमान सो तपकर देवलोक को प्राप्त भया। एक दिवस अवधिकर वह देव अपने बैरी सुमुख के जीव को हरिक्षेत्रविषै क्रीड़ा करता जान क्रोधकर तहांतैं भार्या सहित उठाय लाया, सो या क्षेत्र में हरि ऐसा नामकरि प्रसिद्ध भया। जाही कारण से याका कुल हरिवंश कहलाया। ता हरि के महागिरि नामा पुत्र भया, ताके हिमगिरि ताके वसुगिरि, ताके इन्द्रगिरि, ताके रत्नमाल, ताके संभूत, ताके भूतदेव इत्यादि सैकड़ों राजा हरिवंश विषै भए। ताही हरिवंशविषै कुशाग्र नामा नगर विषै एक राजा सुमित्र जगत्विषै प्रसिद्ध भया।

कैसा है राजा सुमित्र? भोगों कर इन्द्र समान कांतिकरि जीत्या है चन्द्रमा जाने, अर दीप्तिकर जीत्या है सूर्य, अर प्रताप कर नवाए हैं शत्रु जाने। ताके राणी पद्मावती, कमल सारिखे हैं नेत्र जाके, शुभ लक्षणनिकरि संपूर्ण, अर पूर्ण भये हैं सकल मनोरथ जाके, सो रात्रिविषै मनोहर महल में सुखरूप सेज पर सूती हुती सो पिछले पहर सोलह स्वप्न देखे – गजराज 1, वृषभ 2, सिंह 3, लक्ष्मी स्नान करती 4, दोय पुष्पमाला 5, चन्द्रमा 6, सूर्य 7, मच्छ जल में केलि करते 8, जल का भरा कलश, कमल समूह से मुंह ढका 9, सरोवर कमल पूर्ण 10, समुद्र 11, सिंहासन रत्न जड़ित 12, स्वर्गलोक के विमान आकाशतैं आवते देखे 13, अर नागकुमार के विमान पातालतैं निकसते देखे 14, रत्ननि की राशि 15, निर्धूम अग्नि 16।

तब राणी पद्मावती सुबुद्धिवंती जागकर आश्चर्यरूप भया है चित्त जाका, प्रभात क्रिया कर विनयरूप भरतार के निकट आई, पति के सिंहासन पै आय विराजी। फूल रह्या है मुखकमल जाका, महान्याय की वेत्ता, पतिव्रता हाथ जोड़ नमस्कार कर पति सों स्वप्नों का फल पूछती भई। तब राजा सुमित्र स्वप्नों का फल यथार्थ कहते भए। तदि ही रत्नों की वर्षा आकाशतैं बरसती भई। साढ़े तीन कोटि रत्न एक संध्या में बरसे, सो त्रिकाल संध्या वर्षा होती भई। पन्द्रह महीनों लग राजा के घर में रत्नधारा वर्षी। अर जे षट्कुमारिका ते समस्त परिवार सहित माता की सेवा करती भईं।

अर जन्म होते ही भगवानकूं क्षीरसागर के जलकरि इन्द्र लोकपालनि सहित सुमेरु पर्वत पर स्नान करावते भए। अर इन्द्र ने भक्तिथकी पूजा अर स्तुति कर नमस्कार करी, फिर सुमेरुसैं ल्याय

माता की गोदविषै पधराए। जब से भगवान माता के गर्भ में आये तब ही तैं लोग अणुव्रत रूप महाव्रतकरि विशेष प्रवर्ते, अर माता व्रतरूप होती भई। तातैं पृथ्वीविषै मुनिसुब्रत कहाए। अंजनगिरि समान है वर्ण जिनका, परन्तु शरीर के तेज से सूर्य को जीतते भए, अर कांतिकरि चन्द्रमाकूं जीतते भए। सब भोग सामग्री इन्द्रलोकतैं कुवेर लावै। अर जैसा आपको मनुष्य भव में सुख है तैसा अहमिंद्रनि को नाहीं।

अर हाहा हूहू तुंवर नारद विश्वावसु इत्यादि गंधर्वनि की जाति है सो सदा निकट गान करा ही करैं। अर किन्नरी जाति की देवांगना तथा स्वर्ग की अप्सरा नृत्य किया ही करैं, अर वीणा बांसुरी मृदंग आदि वादित्र नाना विध के देव बजाया ही करैं, अर इन्द्र सदा सेवा करैं। अर आप महासुन्दर यौवन अवस्था विषै विवाह भी करते भए। सो जिनके राणी अद्भुत आवती भई, अनेक गुणकला चातुर्यताकर पूर्ण हावभाव विलास विभ्रम की धरणहारी। सो कई एक वर्ष आप राज किया, मनवांछित भोग भोगे। एक दिवस शरद के मेघ विलय होते देख आप प्रतिबोध को प्राप्त भए। तब लौकांतिक देवनि ने आय स्तुति करी। तब सुब्रतनाम पुत्रकूं राज्य देय बैरागी भए। कैसे हैं भगवान? नहीं है काहू वस्तु की वांछा जिनके।

आप वीतराग भाव धर दिव्य स्त्रीरूप जो कमलनि का वन तहांतैं निकसे। कैसा है वह सुन्दर स्त्रीरूप कमलनि का वन? सुगन्धकरि व्याप्त किया है दशोंदिशा का समूह जाने, बहुरि महादिव्य जे सुगन्धादिक तेई हैं मकरंद जामें और सुगन्धताकर भ्रमैं हैं भ्रमरों के समूह जाविषै, अर हरितमणि की जे प्रभा तिनके जो पुंज सोई हैं पत्रनि का समूह जाविषै। अर दांतों की जो पंक्ति, तिनकी जो उज्ज्वल प्रभा, सोई है कमल तंतु जाविषै। अर नाना प्रकार आभूषणनि के जे नाद तेई भये पक्षी उनके शब्दकरि पूरित है। अर स्तनरूप जे चकवे तिनकरि शोभित है, अर उज्ज्वल कीर्तिरूप जे राजहंस तिनकरि मंडित है। सो ऐसे अद्भुत विलास तजकर वैराग्य के अर्थ देवोपुनीत पालकीविषै चढ़कर विपुलनाम उद्यान विषै गए। कैसे हैं भगवान मुनिसुब्रत? सर्व राजनि के मुकुटमणि हैं। सो वन मैं पालकीतैं उतरकर अनेक राजानि सहित जिनेश्वरी दीक्षा धरते भए। वेले पारणा करना यह प्रतिज्ञा आदरी। राजगृह नगर में वृषभदत्त महाभक्तिकर श्रेष्ठ अन्न कर पारणा करावता भया।

आप भगवान महाशक्तिकरि पूर्ण, कुछ क्षुधा नाहीं, परन्तु आचारांग सूत्र की आज्ञा प्रमाण अंतरायरहित भोजन करते भए। वृषभदत्त भगवानकूं आहार देय कृतार्थ भया। भगवान कई एक महीना तपकर चम्पा के वृक्ष के तले शुक्लध्यान के प्रतापतैं घातिया कर्मनि का नाशकर, केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। तब इन्द्रसहित देव आयकर प्रणाम अर स्तुति कर धर्मश्रवण करते भए। आपने यति श्रावक का धर्म विधिपूर्वक वर्णन किया। धर्म श्रवणकर कई मनुष्य मुनि भए, कई

मनुष्य श्रावक भए, कई तिर्यंच श्रावक के व्रत धारते भए। अर देवनि को व्रत नाहीं, सो कई सम्यक्त्व को प्राप्त होते भए। श्री मुनिसुब्रतनाथ धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कर सुर असुर मनुष्यनिकरि स्तुति करने योग्य अनेक साधुवों सहित पृथ्वी पर विहार करते भए। सम्मेद शिखर पर्वत से लोकशिखरकूं प्राप्त भए।

यह श्री मुनिसुब्रतनाथ का चरित्र जे प्राणी भाव धर सुनें तिनके समस्त पाप नाशकूं प्राप्त होय, अर ज्ञानसहित तप से परम स्थानकूं पावें, जहांतैं फेर आगमन न होय।

अथानन्तर मुनिसुब्रतनाथ के पुत्र राजा सुब्रत बहुत काल राज्य कर, दक्ष पुत्र को राज्य देय, जिनदीक्षा धर मोक्ष को प्राप्त भए। अर दक्ष के एलावर्धन पुत्र भया, ताके श्रीवृक्ष, ताके संजयंत, ताके कुणिम, ताके महारथ, ताके पुलोमई इत्यादि अनेक राजा हरिवंश कुल में भए। तिनमैं कई एक मुक्ति को गए, कई एक स्वर्गलोक गये। या भांति अनेक राजा भये। बहुरि याही कुलविषै एक राजा वासवकेतु भया, मिथिला नगरी का पति, ताके विपुला नामा पटराणी, सुन्दर हैं नेत्र जाके। सो वह रानी परम लक्ष्मी का स्वरूप ताके जनक नाम पुत्र होते भए। समस्त नयों में प्रवीण वे राज्य पाय प्रजा को ऐसे पालते भए जैसें पिता पुत्र को पालै।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! यह जनक की उत्पत्ति कही, जनक हरिवंशी है।

अब ऋषभदेव के कुल में राजा दशरथ भए तिनका वर्णन सुन। इक्ष्वाकुवंश में श्री ऋषभदेव निर्वाण पधारे। बहुरि तिनके पुत्र भरत भी निर्वाण पधारे। सो ऋषभदेव के समय से लेकर मुनिसुब्रतनाथ के समय पर्यंत बहुत काल बीत्या, तामैं असंख्य राजा भए। कई एक तो महादुर्द्धर तपकर निर्वाण को प्राप्त भये। कई एक अहमिंद्र भए। कई एक इन्द्रादिक बड़ी ऋद्धि के धारी देव भये। कई एक पाप के उदयकर नरक में गये।

हे श्रेणिक! या संसार में अज्ञानी जीव चक्र की नाईं भ्रमण करै हैं। कबहूं स्वर्गादिक भोग पावै हैं, तिनविषै मग्न होय क्रीड़ा करै हैं। कई एक पापी जीव नरक निगोद में क्लेश भोगै हैं। ये प्राणी पुण्य पाप के उदयतैं अनादिकाल भ्रमण करै हैं। कबहूं कष्ट, कबहूं उत्सव। यदि विचार कर देखिये तो दु:ख मेरु समान, सुख राई समान है। कई एक द्रव्यरहित क्लेश भोगवै हैं, कई एक बाल अवस्था में मरण करै हैं, कई एक शोक करै हैं, कई एक रुदन करै हैं, कई एक विवाद करै हैं, कई एक पढ़े हैं, कई एक पराई रक्षा करै हैं, कई एक पापी बाधा करै हैं, कई एक गरजै हैं, कई एक गान करै हैं, कई एक पराई सेवा करै हैं, कई एक भार बहै हैं, कई एक शयन करै हैं, कई एक पराई निन्दा करै हैं, कई एक केलि करै हैं, कई एक युद्धकरि शत्रुवों को जीतै हैं, कई एक शत्रु को छोड़ देय हैं, कई एक कायर युद्ध को देख भागै हैं, कईएक शूरवीर पृथ्वी का राज्य करैं हैं, बहुरि राज्य तज वैराग्य धारै हैं।

कई एक पापी हिंसा करै हैं, परद्रव्य की वांछा करै हैं, परद्रव्यकूं हरै हैं, दौड़े हैं, कूट कपट करै हैं, ते नरक में पड़े हैं। अर जे कई एक लज्जा धारै हैं, शील पालै हैं, करुणाभाव धारै हैं, परद्रव्य तजै हैं, वीतरागता को भजै हैं, संतोष धारै हैं, प्राणियों को साता उपजावै हैं, ते स्वर्ग पाय परंपराय मोक्ष पावै हैं। जे दान करै हैं, तप करै हैं, अशुभ क्रिया का त्याग करै हैं, जिनेंद्र की अर्चा करै हैं, जिनशास्त्र की चर्चा करै हैं, सब जीवनिसूं मित्रता करै हैं, विवेकियों का विनय करै हैं ते उत्तम पद पावै हैं। कई एक क्रोध करै हैं, काम सेवै हैं, राग द्वेष मोह के वशीभूत हैं, परजीवों को ठगै हैं, ते भवसागर में डूबे हैं, नाना विध नाचै हैं, जगत में राचै हैं, खेद खिन्न हैं, दीर्घ शोक करै हैं, झगड़ा करै हैं, संताप करै हैं, असि मसि कृषि वाणिज्यादि व्यापार करै हैं, ज्योतिष वैद्यक यंत्र मंत्रादिक करै हैं, शृंगारादि शास्त्र रचै हैं वे वृथा पच पच मरै हैं।

इत्यादि शुभाशुभकर्मकरि आत्मधर्म को भूल रहे हैं। संसारी जीव चतुर्गतिविषै भ्रमण करैं हैं। या अवसर्पिणी कालविषै आयु काय घटती जाय है। श्री मल्लिनाथ के मुक्ति गये पीछे मुनिसुब्रतनाथ के अंतरालविषै या क्षेत्र में अयोध्या नगरीविषै एक विजय नामा राजा भया। महा शूरवीर, प्रतापकरि संयुक्त, प्रजा के पालनविषै प्रवीण, जीते हैं समस्त शत्रु जानैं। ताके हेमचूलनी नामा पटराणी, ताके महागुणवान, सुरेन्द्रमन्यु नामा पुत्र भया। ताके कीर्तिसमा नामा राणी, ताके दोय पुत्र भये – एक बज्रबाहु दूजा पुरंदर चन्द्रसूर्य समान है कांति जाकी, महागुणवान, अर्थसंयुक्त है नाम जिनके, वे दोऊ भाई पृथ्वीविषै सुखसूं रमते भये।

अथानन्तर हस्तिनापुर में एक राजा इन्द्रबाहन, ताके राणी चूड़ामणी, ताके पुत्री मनोदया अति सुन्दरी सो वज्रबाहु कुमार ने परणी। सो कन्या का भाई उदयसुन्दर बहिन के लेनेकूं आया सो वज्रबाहु कुमार का स्त्रीसूं अतिप्रेम था, स्त्री अति सुन्दरी सो कुमार स्त्री के लार सासरे चाले। मार्गविषै बसंत का समय था और बसंतगिरि पर्वत के समीप जाय निकसे। ज्यों ज्यों वह पहाड़ निकट आवै त्यों त्यों उसकी परमशोभा देख कुमार अतिहर्षकूं प्राप्त भए। पुष्पनि की मकरंदता उससे मिली सुगन्ध पवन सो कुमार के शरीर से स्पर्शी, ताकरि ऐसा सुख भया जैसा बहुत दिनों के विछुरे मित्रसों मिले सुख होय। कोकिलावों के मिष्ट शब्दनिकरि अतिहर्षित भया जैसैं जीत का शब्द सुन हर्ष होय। पवन से हालै हैं वृक्षों के अग्रभाग सो मानों पर्वत वज्रबाहु का सनमान ही करै है, और भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों वीणा का नाद ही होय है।

वज्रबाहु का मन प्रसन्न भया। वज्रबाहु पहाड़ की शोभा देखै है कि यह आम्रवृक्ष, यह कर्णकार जाति का वृक्ष, यह रौद्र जाति का वृक्ष, फलनिकर मंडित यह प्रयालवृक्ष, यह पलाश का वृक्ष, अग्नि समान दैदीप्यमान है पुष्प जाकै। वृक्षनि की शोभा देखते देखते राजकुमार की दृष्टि मुनिराज

पर पड़ी। देखकर विचारता भया – यह थंभ है अथवा पर्वत का शिखर है अथवा मुनिराज हैं। कायोत्सर्ग धर खड़े जो मुनि तिनविषै वज्रबाहु का ऐसा विचार भया। कैसे हैं मुनि? जिनको ठूंठ जानकर जिनके शरीर से मृग खाज खुजावै हैं। जब नृप निकट गया तब निश्चय भया कि जो ये महा योगीश्वर विदेह अवस्था को धरे कायोत्सर्ग ध्यान धरै स्थिररूप खड़े हैं, सूर्य की किरणनिकरि स्पर्श्या है मुखकमल जिनका और महासर्प के फण समान दैदीप्यमान भुजावों को लम्बाय ऊभे हैं। सुमेरु का जो तट उस समान सुन्दर है वक्षस्थल जिनका, और दिग्गजों के बांधने के थंभ तिन समान अचल हैं जंघा जिनकी, तप से क्षीण शरीर है परन्तु कांति से पुष्ट दीखैं हैं, नासिका के अग्रभागविषै लगाये हैं निश्चल सौम्य नेत्र जिन्होंने, आत्माकूं एकाग्र ध्यावैं हैं।

ऐसे मुनिकूं देखकर राजकुमार चितवता भया – अहो धन्य हैं ये महामुनि शांतिभाव के धारक जो समस्त परिग्रहकूं तजकर मोक्षाभिलाषी होय तप करै हैं। इनकूं निर्वाण निकट है। निज कल्याण में लगी है बुद्धि जिनकी, परजीवनकूं पीड़ा देने से निवृत्त भया है आत्मा जिनका, अर मुनिपद की क्रिया करि मंडित हैं। जिनके शत्रु मित्र समान हैं, तृण अर कंचन समान, पाषाण अर रत्न समान, मान और मत्सर से रहित है मन जिनका। वश करी हैं पांचों इन्द्रियें जिन्होंने निश्चल पर्वत समान वीतराग भाव है, जिनको देखे जीवनि का कल्याण होय। मनुष्य देह का फल इन ही ने पाया। यह विषयकषायों से न ठगाए। कैसे हैं विषय कषाय? महाक्रूर हैं, अर मलिनता के कारण हैं। मैं पापी कर्म-पाशकरि निरंतर बंधा, जैसैं चन्दन का वृक्ष सर्पों से वेष्टित होय है तैसैं मैं पापी असावधानचित्त अचेत समान होय रहा। धिक्कार है मुझे। मैं भोगादिरूप जो महापर्वत उसके शिखर पर निद्रा करूं हूं, सो नीचे ही पड़ूंगा। जो इस योगींद्र की सी अवस्था धरूं तो मेरा जन्म कृतार्थ होय। ऐसा चिंतवन करते वज्रबाहु की दृष्टि मुनिनाथ में अत्यन्त निश्चल भई, मानों थंभ से बांधी गई।

तब उसका उदयसुन्दर साला इसको निश्चल देख मुलकता हुवा याहि हास्य के वचन कहता भया – मुनि की ओर अत्यन्त निश्चल होय निरखो हो सो क्या दिगम्बरी दीक्षा धरोगे? तब वज्रबाहु बोले – जो हमारा भाव था सो तुमने प्रकट किया, अब तुम इस ही भाव की वार्ता कहो। तब वह इसको रागी जान हास्यरूप बोला कि तुम दीक्षा धरोगे तो मैं भी धरूंगा, परन्तु इस दीक्षा से तुम अत्यन्त उदास होवोगे। तब वज्रबाहु बोले यह तो ऐसे ही भई – कह कर विवाह के आभूषण उतार डारे और हाथी से उतरे। तब मृगनयनी स्त्री रोवने लगी। स्थूल मोती समान अश्रुपात डारती भई। तब उदयसुन्दर आंसू डारता भया, हे देव! यह हास्य में कहा विपरीत करो हो? तब वज्रबाहु अति मधुरवचनसूं ताको शांतता उपजावते हुए कहते भए – हे कल्याणरूप! तुम समान उपकारी कौन? मैं कूप में पड़ूं था सो तुमने राखा। तुम समान मेरा तीन लोक में मित्र नाहीं।

हे उदयसुन्दर! जो जन्म्या है सो अवश्य मरेगा और जो मूआ है सो अवश्य जन्मेगा। ये जन्म और मरण अरहट की घड़ी समान है, तिन में संसारी जीव निरंतर भ्रमै हैं। यह जीतव्य बिजली के चमत्कार समान है तथा जल की तरंग समान, तथा दुष्ट सर्प की जिह्वा समान चंचल है। यह जगत के जीव दु:खसागरविषै डूब रहे हैं। यह संसार के भोग स्वप्न के भोग समान असार हैं। जल के बुदबुदा समान काया है, सांझ के रंग समान यह जगत का स्नेह है, और यह यौवन फूल समान कुमलाय जाय है। यह तुम्हारा हंसना भी हमको अमृतसमान कल्याणरूप भया।

क्या हास्य से जो औषधि को पीये तो रोग को न हरै? अवश्य हरै ही। अर तुम हमको मोक्षमार्ग के उद्यम के सहाई भए, तुम समान हमारे और हितु नाहीं। मैं संसार के आचारविषै आसक्त होय रहा था सो वीतरागभाव को प्राप्त भया। अब मैं जिनदीक्षा धरूं हूं। तुम्हारी जो इच्छा होय सो तुम करो। ऐसा कहकर सर्व परिवारसूं क्षमा कराय वह गुणसागर नामा मुनि, तप ही है धन जिनके, तिनके निकट जाय चरणारबिंद को नमस्कार कर विनयवान होय कहता भया – हे स्वामी! तुम्हारे प्रसाद से मेरा मन पवित्र भया, अब मैं संसाररूप कीच से निकस्या चाहूं हूं।

तब इसके वचन सुन गुरु आज्ञा दई – तुमको भवसागर से पार करणहारी यह भगवती दीक्षा है। कैसे हैं गुरु? सप्तम गुणस्थान से छठे गुणस्थान आये हैं। यह गुरु की आज्ञा उर में धार वस्त्राभूषण का त्याग कर पल्लव समान जे अपने कर तिन सें केशों का लौंचकर पल्यंकासन धरता भया। इस देह को विनश्वर जान देह से स्नेह तजकर राजपुत्री को और राग अवस्था को तज मोक्ष की देनहारी जो जिन दीक्षा सो अंगीकार करता भया। और उदयसुन्दर को आदि दे छबीस राजकुमार जिनदीक्षा धरते भये।

कैसे हैं वे कुमार? कामदेव समान है रूप जिनका, तजे हैं रागद्वेष मद मत्सर जिन्होंने, उपज्या है वैराग्य का अनुराग जिनके, परम उत्साह के भरे नग्न मुद्रा धरते भये। और यह वृत्तांत देख वज्रबाहु की स्त्री मनोदेवी पति के और भाई के स्नेहसों मोहित हुई, मोह तज आर्यिका के व्रत धारती भई, सर्व वस्त्राभूषण तजकर एक सफेद साड़ी धारती भई। महातप व्रत आदरे। यह वज्रबाहु की कथा इसका दादा जो राजा विजय उसने सुनी। सभा के मध्य बैठ्या था सो शोक से पीड़ित होय ऐसे कहता भया – यह आश्चर्य देखो कि मेरा पोता नवयौवन में विषय विष समान जान विरक्त होय मुनि भया और मो सारिखा मूर्ख विषयों का लोलुपी वृद्ध अवस्था में भी भोगों को न तजता भया। कुमार ने कैसे तजे? अथवा वह महाभाग्य जो भोगों को तृणवत् तजकर मोक्ष के निमित्त शांत भावों में तिष्ठ्या, मैं मंदभाग्य जराकर पीड़ित हूं सो इन पापी विषयों ने मोहि चिरकाल ठग्या।

कैसे हैं यह विषय? देखने में तो अति सुन्दर हैं परन्तु फल इनके अति कटुक हैं। मेरे इन्द्रनीलमणि समान श्याम जो केशों के समूह थे सो कफ की राशि समान श्वेत होय गए। जे यौवन अवस्था में मेरे नेत्र श्यामता श्वेतता अरुणता लिये अतिमनोहर थे सो अब ऊंडे पड़ गये, और मेरा जो शरीर अति दैदीप्यमान शोभायमान महाबलवान स्वरूपवान था सो वृद्धावस्थाविषै वर्षा से हता जो चित्राम ता समान होय गया। जे धर्म अर्थ काम तरुण अवस्थाविषै भलीभांति सधे हैं सो जराकर मंडित जे प्राणी तिनसे सघन विषम है। धिक्कार है मो पापी दुराचारी प्रमादी को जो मैं चेतन थका अचेतन दशा आदरी। यह झूठा घर, झूठी माया, झूठी काया, झूठे बांधव, झूठा परिवार तिनके स्नेहकरि भवसागर के भ्रमण में भ्रमा। ऐसा कहकर सर्व परिवारसों क्षमा कराय, छोटा पोता जो पुरन्दर उसे राज्य देय, अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्यु सहित राजा विजय ने वृद्ध अवस्था में निर्वाणघोष स्वामी के समीप जिनदीक्षा आदरी। कैसा है राजा? महा उदार है मन जाका।

अथानन्तर पुरन्दर राज्य करै है। उसके पृथ्वीमती राणी, कीर्तिधर नामा पुत्र भया, सो गुणों का सागर पृथ्वीविषै विख्यात। वह विनयवान अनुक्रम कर यौवन को प्राप्त भया। सर्व कुटुम्ब को आनन्द बढ़ावता हुवा अपनी सुन्दर चेष्टासूं सबको प्रिय भया। तब राजा पुरन्दर ने अपने पुत्र को राजा कौशल की पुत्री परणाई और इसको राज्य देय राजा पुरंदर ने गुण ही है आभरण जाकै, क्षेमंकर मुनि के समीप मुनिव्रत धरे, कर्मनिर्जरा का कारण महातप आरंभा।

अथानन्तर राजा कीर्तिधर कुलक्रम से चला आया जो राज्य उसे पाय जीते हैं सब शत्रु जिसने, देव समान उत्तम भोग भोगता हुवा रमता भया। एक दिवस राजा कीर्तिधर प्रजा का बन्धु, जे प्रजा के बाधक शत्रु तिनको भयंकर, सिंहासनविषै जैसैं इन्द्र विराजे तैसैं विराजे थे। सो सूर्यग्रहण देख चित्त में चिंतवते भए कि देखो, यह सूर्य जो ज्योति का मंडल है सो राहु के विमान के योग से श्याम होय गया। यह सूर्य, प्रताप का स्वामी, अंधकार को मेट प्रकाश करै है और जिसके प्रताप से चन्द्रमा का बिंब कांतिरहित भासै है, और कमलनि के बन को प्रफुल्लित करै है सो राहु के विमान से मंदकांति भासै है। उदय होता ही सूर्य ज्योति रहित होय गया, इसलिए संसार की दशा अनित्य है। यह जगत के जीव विषयाभिलाषी, रंक समान मोहपाश से बंधे अवश्य काल के मुख में पड़ेंगे। ऐसा विचारकर यह महाभाग्य संसार की अवस्था को क्षणभंगुर जान मंत्री पुरोहित सेनापति सामंतनि कों कहता भया कि यह समुद्र पर्यंत पृथ्वी के राज्य की तुम भलीभांति रक्षा करियो, मैं मुनि के व्रत धरूं हूं।

तब समुद्र विनती करते भए – हे प्रभो! तुम बिना यह पृथ्वी हमसे दबै नाहीं, तुम शत्रुवों के जीतनहारै हो, लोकों के रक्षक हो, तुम्हारी वय भी नवयौवन है। इसलिए यह इन्द्रतुल्य राज्य

कईएक दिन करो, इस राज्य के पति अद्वितीय तुम ही हो, यह पृथ्वी तुम ही से शोभायमान है।

तब राजा बोले – यह संसार अटवी अति दीर्घ है। इसे देख मोहि अतिभय उपजै है। कैसी है यह भवरूप बन, अनेक जे दुख, वे ही हैं फल जिनके, ऐसे कर्मरूप वृक्षनि से भरी है। अर जन्म जरा मरण रोग शोक रति अरति इष्टवियोग अनिष्टसंयोगरूप अग्नि से प्रज्वलित है। तब मंत्रीजनों ने राजा के परिणाम विरक्त जान बुझे अंगारों के समूह लाय धरे और तिनके मध्य एक वैडूर्यमणि ज्योति का पुंज अति अमोलक लाय धर्‍या। सो मणि के प्रताप सैं कोयला प्रकाशरूप होय गए। फिर वह मणि उठाय लई, तब वह कोयला नीके न लागे। तब मंत्रियों ने राजा से विनती करी – हे देव! जैसे यह काष्ठ के कोयला रत्ननि विना न शोभैं हैं तैसैं तुम बिना हम सब ही न शोभै। हे नाथ! तुम बिना प्रजा के लोक अनाथ मारे जायेंगे और लूटे जायेंगे और प्रजा के नष्ट होते धर्म का अभाव होवेगा। इसलिए जैसैं तुम्हारा पिता तुमको राज्य देय मुनि भया था तैसैं तुम भी अपने पुत्र को राज देय जिनदीक्षा धरियो। या भांति प्रधान पुरुषों ने विनती करी।

तब राजा ने यह नियम किया कि जो मैं पुत्र का जन्म सुनूं उस ही दिन मुनिव्रत धरूं। यह प्रतिज्ञा कर इन्द्र समान भोग भोगता भया। प्रजा को साता उपजाय राज्य किया। जिसके राज्य में किसी भांति का भी प्रजा को भय न उपजा। कैसा है राजा? समाधान रूप है चित्त जाका। एक समय राणी सहदेवी राजा सहित शयन करती थी सो उसको गर्भ रह्या। कैसा पुत्र गर्भ में आया? सम्पूर्ण गुणनि का पात्र और पृथ्वी के प्रतिपालन को समर्थ। सो जब पुत्र का जन्म भया तब राणी ने पति के वैरागी होने के भय से पुत्र का जन्म प्रकट न किया। कई एक दिवस वार्ता गोप राखी। जैसैं सूर्य के उदय को कोई छिपाय न सकै तैसैं राजपुत्र का जन्म कैसैं छिपै? किसी मनुष्य दरिद्री ने द्रव्य के अर्थ के लोभतैं राजा से प्रकट किया।

तब राजा ने मुकुट आदि सर्व आभूषण उसको अंग से उतार दिये और घोषशाखा नामा नगर, महा रमणीक, अतिधन की उत्पत्ति का स्थानक, सौ गांव सहित दिया और पुत्र पन्द्रह दिन का माता की गोद में तिष्ठता था सो तिलक कर उसको राजपद दिया जिससे अयोध्या अति रमणीक होती भई। और अयोध्या का नाम कौशल भी है, इसलिए उसका सुकौशल नाम प्रसिद्ध भया। कैसा है सुकौशल? सुन्दर है चेष्टा जाकी, सुकौशल को राज्य देय राजा कीर्तिधर घररूप बंदीगृहतैं निकसकरि तपोवन को गए, मुनिव्रत आदरे। तप से उपज्या जो तेज उससे जैसै मेघपटल से रहित सूर्य शोभै तैसैं शोभते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै वज्रबाहु कीर्तिधर माहात्म्य वर्णन करने वाला इक्कीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।21।।

अथानन्तर कईएक वर्ष में कीर्तिधर मुनि पृथ्वीसमान है क्षमा जिनके, दूर भया है मान मत्सर जिनका, और उदार है चित्त जिनका, तपकरि शोखा है सर्व अंग जिन्होंने, अर लोचन ही हैं सर्व आभूषण जिनके, प्रलम्बित हैं महाबाहु और जूड़े प्रमाण धरती देख अधोदृष्टि गमन करै हैं। जैसैं मत्त गजेन्द्र मन्द मन्द गमन करै तैसैं जीवदया के अर्थ धीरा धीरा गमन करै हैं। सर्व विकार रहित महा सावधानी ज्ञानी, महा विनयवान, लोभ रहित, पंच आचार के पालनहारे, जीवदया से विमल है चित्त जिनका, स्नेहरूप कर्दम से रहित, स्नानादि शरीर संस्कार से रहित, मुनिपद की शोभा से मंडित। सो आहार के निमित्त बहुत दिनों के उपवासे नगर में प्रवेश करते भए।

तिनकों देखकर पापिनी सहदेवी उनकी स्त्री मन में विचार करती भई कि कभी इनको देख मेरा पुत्र भी वैराग्य को प्राप्त न होय। तब महा क्रोधकर लाल होय गया है मुख जाका, दुष्ट चित्त द्वारपालनिसों कहती भई, यह यति नग्न महा मलिन घर का खोऊ है। इसे नगर से बाहिर निकास देवो, फिर नगर में न आवने पावै। मेरा पुत्र सुकुमार है, भोला है कोमल चित्त है सो उसे देखने न पावै। इसके सिवाय और भी यति हमारे द्वारे आवने न पावै। रे द्वारपाल हो! इस बात में चूक पड़ी तो मैं तुम्हारा निग्रह करूंगी। जब से यह दया रहित बालक पुत्र को तजकर मुनि भया तबसूं इस भेष का मेरे आदर नाहीं। यह राज्यलक्ष्मी निंदै है अर लोगों को वैराग्य प्राप्त करावै है, भोग छुड़ाय योग सिखावै है।

जब राणी ने ऐसे वचन कहे तब वे क्रूर द्वारपाल, बैंत की छड़ी है जिनके हाथ में, मुनि को मुख से दुरवचन कहकर नगर से निकास दिए। अर आहार को और भी साधु नगर में आए थे वे भी निकास दिए। मत कदाचित् मेरा पुत्र धर्म श्रवण करै या भांति कीर्तिधर का अविनय देख राजा सुकौशल की धाय महाशोक कर रुदन करती भई। तब राजा सुकौशल धाय को रोवती देख कहते भए – हे माता! तेरा अपमान करै ऐसा कौन? माता तो मेरी गर्भ धारण मात्र है और तेरे दुग्धकरि मेरा शरीर वृद्धि को प्राप्त भया, सो मेरे तू माता से भी अधिक है। जो मृत्यु के मुख में प्रवेश किया चाहे सो तोहि दुखावै, जो मेरी माता ने भी तेरा अनादर किया होय तो मैं उसका अविनय करूं, औरों की क्या बात?

तब बसंतलता धाय कहती भई – हे राजन्! तेरे पिता तुझे बाल अवस्था में राज्य देय संसाररूप कष्ट के पींजरे से भयभीत होय तपोवन को गए। सो वह आज इस नगर में आहार को आए थे सो तिहारी माता ने द्वारपालनिसों आज्ञाकर नगरतैं कढाए। हे पुत्र! वे हमारे सबके स्वामी सो उनका अविनय मैं देख न सकी। इसलिए रुदन करूं हूं, और तिहारी कृपाकर मेरा अपमान कौन करै? और साधुवों को देखकर मेरा पुत्र ज्ञान को प्राप्त होय ऐसा जान मुनिन का प्रवेश नगर से

निकास्या। सो तिहारे गोत्रविषै यह धर्म परम्पराय से चला आया है कि जो पुत्र को राज्य देय पिता वैरागी होय हैं, और तिहारे घर से आहार बिना कभी भी साधु पाछे न गए।

यह वृत्तांत सुन राजा सुकौशल मुनि के दर्शन को महल से उतर, चमरछत्र वाहन इत्यादि राजचिह्न तजकर कमल से भी अतिकोमल जो चरण सो उबाणे ही मुनि के दर्शन को दौड़े और लोकनि कों पूछते जावैं – तुमने मुनि देखे, तुमने मुनि देखे। या भांति परम अभिलाषासंयुक्त अपने पिता जो कीर्तिधर मुनि तिनके समीप गए। अर इनके पीछे छत्र चमरवारे सब दौड़े ही गए। महामुनि उद्यानविषै शिला पर विराजे हुते सो राजा सुकौशल अश्रुपात कर पूर्ण हैं नेत्र जाके, शुभ है भावना जाकी, हाथ जोड़ि नमस्कार करि बहुत विनयसों मुनि के आगैं खड़े।

द्वारपालनि ने द्वारतैं निकासे थे सो ताकर अतिलज्जावंत होय, महामुनिसों विनती करते भए – हे नाथ! जैसैं कोई पुरुष अग्नि प्रज्वलित घरविषै सूता होवे ताहि कोऊ मेघ के नाद समान ऊंचा शब्द कर जगावैं, तैसैं संसाररूप महाजन्म मृत्युरूप अग्निकरि प्रज्वलित, ताविषै मैं मोहनिद्राकरि युक्त शयन करूं था सो मोहि आप जगाया। अब कृपा कर यह तिहारी दिगम्बरी दीक्षा मोहि देहु। यह कष्ट का सागर संसार तासों मोहि उबारहु। जब ऐसे वचन मुनिसों राजा सुकौशल ने कहे, तब ही समस्त सामंत लोक आए और राणी विचित्रमाला गर्भवती हुती सो हू अति कष्टकरि विषादसहित समस्त राजलोकसहित आई। इनको दीक्षा के लिए उद्यमी सुन सब ही अंत:पुर के अर प्रजा के शोक उपज्या।

तब राजा सुकौशल कहते भए या राणी विचित्रमाला के गर्भविषै पुत्र है, ताहि मैं राज्य दिया। ऐसा कहकरि निस्पृह भए। आशारूप फांसी को छेदि, स्नेहरूप जो पींजरा ताहि तोड़, स्त्रीरूप बंधनसों छूट, जीर्ण तृणवत् राज्य को जानि तज्या और वस्त्राभूषण सब ही तजि बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग करके केशनि का लोंच किया अर पद्मासन धार तिष्ठे। कीर्तिधर मुनींद्र इनके पिता, तिनके निकट जिनदीक्षा धरी। पंच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति अंगीकार करि सुकौशल मुनि ने गुरु के संग विहार किया। कमल समान आरक्त जो चरण तिनकरि पृथ्वी को शोभायमान करते संते विहार करते भए। अर इनकी माता सहदेवी आर्तध्यानकरि मरकैं तिर्यंच योनि मैं नाहरी भई। अर ए पिता पुत्र दोनों मुनि महाविरक्त जिनकों एक स्थानक रहना, पिछले पहर दिनसूं निर्जन प्रासुक स्थान देखि बैठि रहैं। अर चातुर्मासिक में साधुवों को विहार न करना। सो चातुर्मासिक जान एक स्थान बैठि रहैं। दशों दिशा को श्याम करता संता चातुरमासिक पृथ्वीविषै प्रवर्त्या। आकाश मेघमाला के समूहकरि ऐसा शोभे मानों काजलतैं लिप्या है। अर कहूं एक बगुलानि की पंक्ति उड़ती ऐसी सौहै मानों कुमुद फूल रहे हैं।

अर ठौर ठौर कमल फूल रहे हैं, जिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं। सो मानों वर्षाकाल रूप राजा के यश ही गावैं हैं। अंजनगिरि समान महानील जो अंधकार ताकरि जगत् व्याप्त होय गया। मेघ के गाजनेतैं मानों चांद सूर्य डरकर छिप गए। अखण्ड जल की धारातैं पृथ्वी सजल होय गई और तृण ऊग उठे, सो मानों पृथ्वी हर्ष के अंकुर धरै है। अर जल के प्रवाहकरि पृथ्वीविषै नीचा ऊंचा स्थल नजर नाहीं आवै, अर पृथ्वीविषै जल के समूह गाजै हैं, अर आकाशविषै मेघ गाजै हैं सो मानों ज्येष्ठ का समय जो बैरी ताहि जीतकर गाज रहे हैं।

अर धरती नीझरननिकरि शोभित भई। भांति भांति की वनस्पति पृथ्वीविषै ऊगी सो ता करि पृथ्वी ऐसी शोभै है मानों हरितमणि के समान बिछोना कर राखे हैं। पृथ्वीविषै सर्वत्र जल ही जल होय रहा है, मानों मेघ ही जल के भारतैं टूट पड़े हैं। अर ठौर ठौर इन्द्रगोप अर्थात् वीरबहूटी दीखै हैं सो मानों वैराग्यरूप बज्रतैं चूर्ण भए राग के खण्ड ही पृथ्वीविषै फैल रहे हैं। अर बिजली का तेज सर्व दिशाविषै विचरै है सो मानों मेघ नेत्रकरि जलपूरित तथा अपूरित स्थानक को देखै हैं। अर नाना प्रकार के रंग को धरै जो इन्द्रधनुष ताकरि मण्डित आकाश, सो ऐसा शोभता भया मानों अति ऊंचे तोरणों कर युक्त है। अर दोऊ पालि ढाहती, महा भयानक भ्रमण को धरै, अतिवेगकरयुक्त कलुषता संयुक्त नदी बहै है। सो मानों मर्यादारहित स्वछंद स्त्री के स्वरूप कों को आचरै है।

अर मेघ के शब्दकर त्रास कों प्राप्त भई जे मृगनयनी विरहिणी ते स्तम्भनसूं स्पर्श करै हैं, अर महा विह्वल हैं, पति के आवने की आशाविषै लगाए हैं नेत्र जिनने। ऐसे वर्षाकालविषै जीवदया के पालनहारे महाशांत, अनेक निर्ग्रंथ मुनि प्रासुक स्थानकविषै चौमासी उपवास लेय तिष्ठे। अर जे गृहस्थी श्रावक साधु-सेवाविषै तत्पर ते भी चार महीना गमन का त्याग कर नाना प्रकार के नियम धर तिष्ठे। ऐसे मेघकर व्याप्त वर्षाकालविषै वे पिता पुत्र यथार्थ आचार के आचरनहारे प्रेतवन कहिए श्मसान ताविषै चार महीना उपवास धर वृक्ष के तलैं विराजे। कभी पद्मासन, कभी कायोत्सर्ग, कभी वीरासन आदि अनेक आसन धरै चातुर्मास पूर्ण किया। कैसा है वह प्रेतवन? वृक्षनि के अंधकार करि महागहन है, अर सिंह व्याघ्र रीछ स्याल सर्प इत्यादि अनेक दुष्ट जीवनिकरि भर्‍या है। भयंकर जीवनि कों भी भयकारी महा विषम है, गीध सियाल चील इत्यादि जीवनिकर पूर्ण होय रहा है। अर्धदग्ध मृतकनि का स्थानक, महा भयानक विषमभूमि, मनुष्यनि के सिर के कपाल के समूहकर जहां पृथ्वी श्वेत होय रही है और दुष्ट शब्द करते पिशाचनि के समूह विचरै हैं, अर जहां तृणजाल कंटक बहुत हैं। सो ये पिता पुत्र दोनों मुनि धीर वीर पवित्र मन चार महीना तहां पूर्ण करते भए।

अथानन्तर वर्षाऋतु गई, शरद ऋतु आई। सो मानों रात्रि पूर्ण भई, प्रभात भया। कैसा है प्रभात? जगत के प्रकाशन करने में प्रवीण है। शरद के समय आकाशविषै बादल श्वेत प्रकट भए, अर सूर्य मेघपटल रहित कांतिसों प्रकाशमान भया। जैसैं उत्सर्पिणीकाल का जो दु:खमाकाल ताके अन्त में दुखमासुखमा के आदि ही श्री जिनेन्द्रदेव प्रकट होय। अर चन्द्रमा रात्रिविषै तारानि के समूह के मध्य शोभता भया। जैसैं सरोवर के मध्य तरुण राजहंस शोभै। अर रात्रि में चन्द्रमा की चांदनी कर पृथ्वी उज्ज्वल भई सो मानों क्षीरसागर ही पृथ्वीविषै विस्तर रह्या है। अर नदी निर्मल भई, कुरचि सारस चकवा आदि पक्षी सुन्दर शब्द करने लगे, अर सरोवर में कमल फूले जिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं, अर उड़े हैं, सो मानों भव्यजीवनि ने मिथ्यात्व परिणाम तजे हैं सो उड़ते फिरै हैं।

भावार्थ – मिथ्यात्व का स्वरूप श्याम अर भ्रमर का भी स्वरूप श्याम। अनेक प्रकार सुगन्ध का है प्रचार जहां ऐसे जे ऊंचे महल, तिनके निवासविषै रात्रि के समय लोक निज प्रियानिसहित क्रीड़ा करै हैं। शरदऋतुविषै मनुष्यनि के समूह महा उत्सवकर प्रवर्तै है, सन्मान किया है मित्र बांधवनि का जहां। अर जो स्त्री पीहर गई तिनका सासरे आगमन सोय है। कार्तिक सुदी पूर्णमासी के व्यतीत भए पीछे तपोधर जे मुनि ते जैन तीर्थों में विहार करते भए। तदि ये पिता अर पुत्र कीर्तिधर सुकौशल मुनि समाप्त भया है नियम जिनका, शास्त्रोक्त ईर्य्यासमिति सहित पारणा के निमित्त नगर की ओर विहार करते भए।

अर वह सहदेवी सुकौशल की माता मरकरि नाहरी भई हुती सो पापिनी महाक्रोध की भरी, लोहूकर लाल है केशों के समूह जाके, विकराल है वदन जाका, तीक्ष्ण हैं दांत जाके, कषायरूप पीत हैं नेत्र जाके, सिर पर धरी है पूछ जाने, नखोंकरि विदारे हैं अनेक जीव जाने, अर किए हैं भयंकर शब्द जाने, मानों मरी ही शरीर धरि आई है। लहलहाट करे है लाल जीभ का अग्रभाग जाका, मध्याह्न के सूर्य समान आतापकारी, सो पापिनी सुकौशल स्वामी को देखकरि महावेगतैं उछलकर आई। ताहि आवती देख वे दोनों मुनि सुन्दर हैं चरित्र जिनके, सर्व आलंब रहित कायोत्सर्ग धर तिष्ठे। सो पापिनी सिंहनी सुकौशल स्वामी का शरीर नखों करि विदारती भई।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे राजन्! देख संसार का चरित्र, जहां माता पुत्र के शरीर के भक्षण का उद्यम करै है। या उपरांत और कष्ट कहा? जन्मांतर के स्नेही बांधव कर्म के उदयतैं बैरी होय परिणमैं। तदि सुमेरुतैं भी अधिक स्थिर सुकौशल मुनि शुक्लध्यान के धरणहारे तिनको केवलज्ञान उपज्या, अन्त:कृत केवली भए। तब इन्द्रादिक देवों ने आय इनके देह की कल्पवृक्षादिक पुष्पनिसों अर्चा करी, चतुरनिकाय के सर्व ही देव आए।

अर नाहरी को कीर्तिधर मुनि धर्मोपदेश वचनों से संबोधते भए – हे पापिनी! तू सुकौशल की माता सहदेवी हुती। अर पुत्र से तेरा अधिक स्नेह हुता ताका शरीर तैने नखनितैं विदारया। तब वह जातिस्मरण होय श्रावक के व्रतधर संन्यास धारण कर शरीर तजि स्वर्गलोक में गई। बहुरि कीर्तिधर मुनि को भी केवलज्ञान उपज्या तब इनके केवलज्ञान की सुर असुर पूजाकर अपने अपने स्थान को गए। यह सुकौशल मुनि का माहात्म्य जो कोई पुरुष पढ़े सुनै सो सर्व उपसर्गतैं रहित होय सुखसों चिरकाल जीवै।

अथानन्तर सुकौशल की राणी विचित्रमाला ताके सम्पूर्ण समय पर सुन्दर लक्षणकरि मंडित पुत्र होता भया। जब पुत्र गर्भ में आया। तब ही तैं माता सुवर्ण की कांति को धरती भई। तातैं पुत्र का नाम हिरण्यगर्भ पृथ्वी पर प्रसिद्ध भया। सो हिरण्यगर्भ ऐसा राजा भया मानों अपने गुणनिकर बहुरि ऋषभदेव समय प्रकट किया। सो राजा हरि की पुत्री अमृतवती महामनोहर ताहि तानै परणी। राजा अपने मित्र बांधवनिकरि संयुक्त पूर्ण द्रव्य के स्वामी मानों स्वर्ण के पर्वत ही हैं। सर्व शास्त्र के पारगामी देवनि समान उत्कृष्ट भोग भोगते भए।

एक समय राजा उदार है चित्त जिनका, दर्पण में मुख देखते हुते। सो भ्रमर समान श्याम केशनि के मध्य एक सफेद केश देख्या। तब चित्त में विचारते भए कि यह काल का दूत आया। बलात्कार यह जराशक्ति कांति की नाश करणहारी ताकरि मेरे अंगोपांग शिथिल होवेंगे। यह चंदन के वृक्षसमान मेरी काया अब जरारूप अग्निकरि जल्या अंगार तुल्य होयगी। यह जरा छिद्र हेरै ही है। सो समय पाय पिशाचनी की नाईं मेरे शरीर में प्रवेश कर बाधा करेगी। अर कालरूप सिंह चिरकालतैं मेरे भक्षण का अभिलाषी हुता, सो अब मेरे देह को बलात्कारतैं भखेगा। धन्य है वह पुरुष जो कर्मभूमि कों पायकर तरुण अवस्था मैं व्रतरूप जहाजविषै चढ़ि कर भवसागर कों तिरै। ऐसा चिंतवनकर राणी अमृतवती का पुत्र जो नघोष ताहि राजविषै थापकरि विमल मुनि के निकट दिगम्बरी दीक्षा धरी।

यह नघोष जबतैं माता के गर्भ में आया तब ही तैं कोई पाप का वचन न कहै, तातैं नघोष कहाए। पृथ्वी पर प्रसिद्ध हैं गुण जिनके, तिन गुणों के पुंज, तिनके सिंहिका नाम राणी। ताहि अयोध्याविषै राख उत्तर दिशा के सामंतों को जीतवे को चढ़े। तब राजा को दूर गया जान दक्षिण दिशा के राजा बड़ी सेना के स्वामी अयोध्या लेने को आए। तब राणी सिंहिका महाप्रतापिनी बड़ी फौज करि चढ़ी। सो सर्व बैरीनि को रण में जीतकर अयोध्या दृढ़ थाना राखि आप अनेक सामंतनि को लेय दक्षिण दिशा जीतने को गई। कैसी है राणी? शस्त्रविद्या का किया है अभ्यास जानै, प्रतापकरि दक्षिण दिशा के सामंतों को जीतकर जयशब्दकर पूरित पाछी अयोध्या आई। अर राजा

नघोष उत्तर दिशा को जीतकर आए सो स्त्री का पराक्रम सुन कोप कों प्राप्त भए, मन में विचारी जे कुलवंती स्त्री अखंडित शील की पालनहारी हैं तिनमें एती धीठता न चाहिए। ऐसा निश्चयकर राणी सिंहिकासों उदासचित्त भए। यह पतिव्रता महाशीलवती पवित्र है चेष्टा जाकी, पटराणी पदतैं दूर करी सो महादरिद्रता को प्राप्त भई।

अथानन्तर राजा के महादाहज्वर का विकार उपज्या सो सर्व वैद्य यत्न करै पर तिनकी औषधि न लागै। तब राणी सिंहिका राजा को रोगग्रस्त जानकर व्याकुलचित्त भई, अर अपनी शुद्धता के अर्थि यह पतिव्रता पुरोहित मंत्री सामंत सबनि कों बुलायकर पुरोहित के हाथ अपने हाथ का जल दिया, अर कही कि यदि मैं मन वचन कायकरि पतिव्रता हूं तो या जलकरि सींच्या राजा दाहज्वरकर रहित होवे। तब जल करि सींचते ही राजा का ज्वर मिट गया अर हिमविषै मग्न जैसा शीतल होय गया। मुखतैं ऐसे मनोहर शब्द कहता भया जैसैं वीणा के शब्द होवे। अर आकाशविषै यह शब्द होते भए कि यह राणी सिंहिका पतिव्रता महाशीलवंती धन्य है धन्य है। अर आकाशतैं पुष्पवर्षा भई। तब राजा ने राणी को महाशीलवंती जान बहुरि पटराणी का पद दिया, अर बहुत दिन निष्कंटक राज किया। बहुरि अपने बड़ों के चरित्र चित्तविषै धरि संसार की मायातैं निस्पृह होय सिंहिका राणी का पुत्र जो सौदास, ताहि राज देय आप धीर वीर मुनिव्रत धर, जो कार्य परम्परा इनके बड़े करते आए हैं सो किया। सौदास राज करै, सो पापी मांस आहारी भया। इनके वंश में किसी ने यह आहार न किया। यह दुराचारी अष्टाह्निका के दिवसविषै भी अभक्ष्य आहार न तजता भया।

एक दिन रसोईदारसों कहता भया कि – मेरे मांसभक्षण का अभिलाष उपज्या है। तब तानै कही – हे महाराज! अष्टाह्निका के दिन हैं, सर्व लोक भगवान की पूजा अर व्रत नियमविषै तत्पर हैं, पृथ्वी पर धर्म का उद्योत होय रह्या है, इन दिनों में यह वस्तु अभक्ष्य है। तदि राजा ने कही – या वस्तु बिना मेरा मन रहै नाहीं, तातैं जा उपायकरि यह वस्तु मिलै सो कर। तदि रसोईदार राजा की यह दशा देख नगर के बाहिर गया। एक मूवा हुवा बालक देख्या। ताहि दिन वह मूआ था। सो ताहि वस्त्र में लपेट वह पापी लेय आया, स्वादु वस्तुनिकरि ताहि मिलाय पकाय राजा को भोजन दिया, सो राजा महादुराचारी अभक्ष्य का भक्षण कर प्रसन्न भया।

अर रसोईदारतैं एकांत में पूछता भया कि – हे भद्र! यह मांस तू कहांतैं लाया, अब तक ऐसा मांस मैंने भक्षण नहीं किया हुता। तदि रसोईदार अभयदान मांग यथावत् कहता भया। तब राजा कहता भया, ऐसे ही मांस सदा लाया कर। तदि यह रसोईदार बालकनि कों लाडू बांटता भया, तिन लाडुओं के लालचवशि बालक निरन्तर आवै। सो बालक लाडू लेयकर जावें तब जो पीछे

रह जाय ताहि यह रसोईदार मार राजा को भक्षण करावै। निरंतर नगरविषै बालक छीजने लगे, तदि यह वृत्तांत लोकनि ने जान रसोईदार सहित राजा कों देशतैं निकाल दिया, अर याकी राणी कनकप्रभा, ताका पुत्र सिंहरथ ताहि राज्य दिया। तदि यह पापी सर्वत्र निरादर हुआ, महादुखी पृथ्वी पर भ्रमण किया करै। जे मृतक बालक मसानविषै लोक डार आवैं तिनकों भखै, जैसैं सिंह मनुष्यों का भक्षण करै। तातैं याका नाम सिंहसौदास पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भया।

बहुरि यह दक्षिणदिशा को गया। तहां मुनिनि के दर्शन कर धर्म श्रवणकर श्रावक के व्रत धरता भया। बहुरि एक महापुर नामा नगर, तहां का राजा मूवा। ताके पुत्र नहीं था, तब सबने यह विचार किया कि पाटबांध हस्ती जाय कांधे चढ़ाय लावै सोई राजा होवै। तदि याहि कांधे चढ़ाय हस्ती लेय गया तब याकों राज्य दिया। यह न्यायसंयुक्त राज्य करै, अर पुत्र के निकट दूत भेज्या कि तू मेरी आज्ञा मान, तदि वानै लिख्या जो तू महा निंद्य है, मैं तोहि नमस्कार न करूं। तब यह पुत्र पर चढ़करि गया। याहि आवता सुन लोग भागने लगे कि यह मनुष्यनि कों खायगा। पुत्र अर याके महायुद्ध भया। सो पुत्र को युद्ध में जीत दोनों ठौर का राज्य पुत्र को देयकर आप महा वैराग्य को प्राप्त होय तप के अर्थि वन में गया।

अथानन्तर याके पुत्र सिंहरथ के ब्रह्मरथ पुत्र भया, ताके चतुर्मुख, ताके हेमरथ, ताके सत्यरथ, ताके पृथुरथ, ताके पयोरथ, ताके दृढ़रथ, ताके सूर्यरथ, ताके मानधाता, ताके वीरसेन, ताके पृथ्वीमन्यु, ताके कमलबंधु, दीप्तितैं मानों सूर्य ही है। समस्त मर्यादा में प्रवीण ताके रविमन्यु, ताके बसंततिलक, ताके कुवेरदत्त, ताके कुन्थुभक्त सो महा कीर्ति का धारी, ताके शतरथ, ताके द्विरदरथ, ताके सिंहदमन, ताके हिरण्यकशिपु, ताके पुंजस्थल, ताके ककूस्थल, ताके रघु, महापराक्रमी। यह इक्ष्वाकुवंश श्रीऋषभदेवतैं प्रवरत्या सो वंश की महिमा हे श्रेणिक! तोहि कही। ऋषभदेव के वंश में श्रीराम पर्यंत अनेक बड़े बड़े राजा भये ते मुनिव्रत धार मोक्ष गए। कई एक अहमिंद्र भए, कईएक स्वर्ग में प्राप्त भए। या वंशविषै पापी विरले भए।

बहुरि अयोध्या नगरविषै राजा रघु के अरण्य पुत्र भया, जाके प्रतापकरि उद्यान में वस्तु होती भई, ताके पृथ्वीमती राणी महा गुणवंती महाकांति की धरणहारी, महारूपवंती, महापतिव्रता, ताके दोय पुत्र होते भए। महा शुभलक्षण एक अनंतरथ दूसरा दशरथ। सो राजा सहस्ररश्मि माहिष्मती नगरी का पति ताकी अर राजा अरण्य की परम मित्रता होती भई। मानों ये दोनों सौधर्म अर ईशानइन्द्र ही हैं। जब रावण ने युद्ध में सहस्ररश्मि को जीत्या, अर तानै मुनिव्रत धरे सो सहस्ररश्मि के अर अरण्य के यह वचन हुता कि जो तुम वैराग्य धारो तब मोहि जतावना। अर मैं वैराग्य धारूंगा तो तुम्हें जताऊंगा। सो वाने जब वैराग्य धार्‍या तदि अरण्य को जतावा दिया। तदि

राजा अरण्य ने सहस्ररश्मि को मुनि हुवा जानकरि दशरथ पुत्र को राज्य देय आप अनंतरथ पुत्र सहित अभयसेन मुनि के समीप जिनदीक्षा धारी। महातपकरि कर्मों का नाश कर मोक्ष को प्राप्त भए। अर अनंतरथ मुनि सर्व परिग्रहरहित पृथ्वी पर विहार करते भए। बाईस परीषह के सहनहारे किसी प्रकार उद्वेग को न प्राप्त भए। तदि इनका अनंतवीर्य नाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध भया। अर राजा दशरथ राज्य करै, सो महासुन्दर शरीर नवयौवनविषै अति शोभायमान होता भया। अनेक प्रकार पुष्पनिकरि शोभित मानों पर्वत का उतंग शिखर ही है।

अथानन्तर दर्भस्थल नगर का राजा कौशल प्रशंसायोग्य गुणों का धरणहारा, ताकै राणी अमृतप्रभा की पुत्री कौशल्या, ताहि अपराजिता भी कहै हैं। काहेतैं कि यह स्त्री के गुणनिकरि शोभायमान, काम की स्त्री रति समान महासुन्दर, किसीतैं न जीती जाय, महारूपवंती, सो राजा दशरथ ने परणी। बहुरि एक कमलसंकुल नामा बड़ा नगर, तहां का राजा सुबंधुतिलक, ताके राणी मित्रा, ताकै पुत्री सुमित्रा सर्वगुणनिकरि मंडित, महा रूपवती जाहि नेत्र रूप कमलनिकरि देख मन हर्षित होय। पृथ्वी पर प्रसिद्ध सो भी दशरथ ने परणी। बहुरि एक और महाराजा नामा राजा ताकी पुत्री सुप्रभा, रूप लावण्य की खानि, जाहि लखै लक्ष्मी लज्जावान होय सोहू राजा दशरथ ने परणी।

अर राजा दशरथ सम्यग्दर्शन को प्राप्त होते भये, अर राज्य का परम उदय पाय सो सम्यग्दर्शन कों रत्नों समान जानते भए। अर राज्य को तृण समान मानते भए कि जो राज्य न तजै तो यह जीव नरक में प्राप्त होय, राज्य तजै तो स्वर्ग मुक्ति पावै। अर सम्यग्दर्शन के योगतैं निःसंदेह ऊर्ध्वगति ही है। सो ऐसा जानि राजा के सम्यग्दर्शन की दृढ़ता होती भई, अर जे भगवान के चैत्यालय प्रशंसा योग्य आगै भरत चक्रवर्त्यादिक ने कराए हुते तिनमें कई एक ठौर, कई एक भंगभाव को प्राप्त भए हुते सो राजा दशरथ ने तिनकों मरम्मत कराय ऐसे किए मानों नवीन ही हैं। अर इन्द्रनिकरि नमस्कार करने योग्य महा रमणीक जे तीर्थंकरनि के कल्याणक स्थानक तिनकी रत्ननि के समूह करि यह राजा पूजा करता भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक सों कहै हैं – हे भव्यजीव! दशरथ सारिखे जीव परभव में महाधर्म को उपार्जन कर अति मनोज्ञ देवलोक की लक्ष्मी पायकर या लोक में नरेंद्र भये हैं, महाराज ऋद्धि के भोक्ता सूर्य समान दशों दिशाविषै है प्रकाश जिनका।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राजा सुकौशल का माहात्म्य अर तिनके वंशविषै राजा दशरथ की उत्पत्ति का कथन वर्णन करने वाला बाईसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।22।।

अथानन्तर एक दिन राजा दशरथ महा तेज प्रतापकरि संयुक्त सभा में विराजते हुते। कैसे हैं

राजा? जिनेन्द्र की कथाविषै आसक्त है मन जिनका, और सुरेन्द्र समान है विभव जिनका। ता समय अपने शरीर के तेजकरि आकाशविषै उद्योत करते नारद आए। तब दूर ही सों नारद को देखकर राजा उठकर सन्मुख गए। बड़े आदरसों नारदकूं ल्याय सिंहासन पर विराजमान किए। राजा ने नारद की कुशल पूछी। नारद ने कही – जिनेन्द्र देव के प्रसाद करि कुशल है। बहुरि नारद ने राजा की कुशल पूछी, राजा ने कही – देव धर्म गुरु के प्रसादकरि कुशल है।

बहुरि राजा ने पूछी – हे प्रभो! आप कौन स्थानकतैं आए, इन दिनों में कहां कहां विहार किया, कहा देख्या? कहा सुन्या? तुमतैं अढ़ाई द्वीप में कोई स्थान अगोचर नाहीं। तदि नारद कहते भए।

कैसे हैं नारद? जिनेन्द्र चन्द्र के चरित्र देखकर उपज्या है परमहर्ष जिनको, हे राजन्! मैं महा विदेहक्षेत्रनिविषै गया हुता। कैसा है वह क्षेत्र? उत्तम जीवनिकरि भर्‍या है, जहां ठौर ठौर श्री जिनराज के मंदिर अर ठौर ठौर महामुनिराज विराजे हैं, जहां धर्म का बड़ा उपगार अतिशयकरि उद्योत है। श्री तीर्थंकर देव चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेवादि उपजै हैं। तहां श्री सीमंधर स्वामी का मैंने पुंडरीकनी नगरी में तपकल्याणक देख्या। कैसी है पुण्डरीकनी नगरी? नाना प्रकार के रत्ननिकरि जे महल तिनके तेज प्रकाशरूप है।

अर सीमंधर स्वामी के तपकल्याणकविषै नाना प्रकार के देवनि का आगमन भया। तिनके भांति भांति के विमान ध्वजा अर छत्रादि करि महाशोभित। अर नाना प्रकार के जे वाहन तिनकरि नगरी पूर्ण देखी। अर जैसा श्री मुनिसुब्रतनाथ का सुमेरु विषै जन्माभिषेक का उत्सव हम सुनै हैं तैसा श्री सीमंधर स्वामी के जन्माभिषेक का उत्सव मैंने सुन्या। अर तपकल्याणक तो मैंने प्रत्यक्ष ही देखा। अर नाना प्रकार के रत्ननिकरि जड़ित जिनमन्दिर देखे, जहां महा मनोहर भगवान के बड़े बड़े विंब विराजै हैं, अर विधिपूर्वक निरंतर पूजा होय है। अर महा विदेहतैं मैं सुमेरु पर्वत आया। सुमेरु की प्रदक्षिणा कर सुमेरु के वन, तहां भगवान के जे अकृत्रिम चैत्यालय तिनका दर्शन किया।

हे राजन्! नन्दनवन के चैत्यालय नाना प्रकार के रत्ननिसूं जड़े अतिरमणीक मैं देखे। जहां स्वर्ण के पीत अति देदीप्यमान हैं सुन्दर हैं मोतियों के हार अर तोरण जहां। जिनमन्दिर देखते सूर्य का मंदिर कहा? अर चैत्यालयनि की वैडूर्य मणिमई भीति देखीं, तिनमें गज सिंहादिरूप अनेक चित्राम मढ़े हैं, अर जहां देवदेवी संगीत शास्त्ररूप नृत्य कर रहे हैं। अर देवारण्यवनविषै चैत्यालय, तहां मैंने जिनप्रतिमा का दर्शन किया। अर कुलाचलनि के शिखरविषै जिनेन्द्र के चैत्यालय मैं देखे, बंदे। या भांति नारद कही तब राजा दशरथ 'देवेभ्यो नमः' ऐसा शब्द कहकर हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार करता भया।

बहुरि नारद ने राजाकूं सैन करी। तदि राजा ने दरबार को कहकर सबको सीख दीनी, आप एकांत विराजे। तब नारद कही – हे सुकौशल देश के अधिपति! चित्त लगाय सुन, तेरे कल्याण की कहूं हूं। मैं भगवान का भक्त जहां जिनमन्दिर होय तहां वंदना करूं हूं। सो लंका में गया हुता, तहां महामनोहर श्री शांतिनाथ का चैत्यालय बंद्या। सो एक वार्ता विभीषणादि के मुख से सुनी कि रावण ने बुद्धिसार निमित्तज्ञानी को पूछा कि मृत्यु कौन निमित्ततैं है।

तदि निमित्तज्ञानी कही – दशरथ का पुत्र अर जनक राजा की पुत्री इनके निमित्ततैं तेरी मृत्यु है, सुनकर रावण सचिंत भया।

तब विभीषण कही – आप चिंता न करहु, दोऊनि के पुत्र पुत्री न होय ता पहिले दोऊन को मैं मारूंगा। सो तिहारे ठीक करने को विभीषण ने हलकारे पठाए हुते, सो वे तिहारा स्थान निरूपादि सब ठीक कर गए हैं। अर मेरा विश्वास जान मुझे विभीषण ने पूछी कि क्या तुम दशरथ और जनक का स्वरूप नीके जानो हो। तब मैं कही मोहि उनको देखे बहुत दिन भए हैं, अब उनको देख तुमको कहूंगा। सो उनका अभिप्राय खोटा देखकर तुम पै आया। सो जब तक वह विभीषण तिहारे मारने का उपाय करै ता पहिले तुम आपा छिपाय कहीं बैठ रहो। जे सम्यक्‌दृष्टि जिनधर्मी देव गुरु धर्म के भक्त हैं तिन सबनिसों मेरी प्रीति है, तुम सारिखों से विशेष है। तुम योग्य होय सो करहु, तिहारा कल्याण होहु।

अब मैं राजा जनक से यह वृत्तांत कहने जाऊं हूं। तब राजा ने उठ नारद का सत्कार किया। नारद आकाश के मार्ग होय मिथिलापुरी की ओर गए, जनक को समस्त वृत्तांत कह्या। नारद को भव्यजीव जिनधर्मी प्राणनिहूतैं प्यारे हैं। नारद तो वृत्तांत कह देशांतर को गए, अर दोनों ही राजावों को मरण की शंका उपजी। राजा दशरथ ने अपने मंत्री समुद्रहृदय को बुलाय एकांत में नारद का सकल वृत्तांत कह्या। तब राजा के मुखतैं मंत्री महाभय के समाचार सुन कर स्वामी की भक्तिविषै परायण, अर मंत्रशक्तिविषै महाश्रेष्ठ, राजाकूं कहता भया – हे नाथ! जीतव्य के अर्थ सकल करिए है। जो त्रिलोकी का राज्य आवै अर जीव जाय तो कौन अर्थ? तातैं जौ लग मैं तिहारे वैरीनि का उपाय करूं तब लग तुम अपना रूप छिपायकर पृथ्वी पर विहार करहु। ऐसा मंत्री ने कह्या।

तदि राजा देश, भण्डार, नगर याकों सोंपकर नगरतैं बाहिर निकसे। राजा के गए पीछे मंत्री ने राजा दशरथ के रूप का पुतला बनाया, एक चेतना नाहीं और सब राजा ही के चिह्न बनाए। लाखादि रस के योगकर उसविषै रुधिर निरमाप्या। अर शरीर की कोमलता जैसी प्राणधारी के होय तैसी ही बनाई। सो महिल के सातवें खण में सिंहासनविषै राजा विराजमान किया सो समस्त

लोकनि कों नीचे से मुजरा होय, ऊपर कोई जाने न पावै। राजा के शरीर में रोग है पृथ्वी पर ऐसा प्रसिद्ध। एक मंत्री अर दूजा पूतला बनाने वाला यह भेद जानै। इनहूंकूं देखकर ऐसा भ्रम उपजै जो राजा ही है।

अर यही वृतांत राजा जनक के भया। जो कोई पंडित है तिनके बुद्धि एक-सी होय है। मंत्रीनि की बुद्धि सबके ऊपर होय विचरै है। यह दोनों राजा लोकस्थिति के वेत्ता पृथ्वीविषै भागे फिरैं। आपदाकालविषै जे रीति बताई है ता भांति करैं। जैसैं वर्षाकाल में चांद सूर्य मेघ के जोर से छिपे रहैं तैसैं जनक और दशरथ दोऊ छिप रहे।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं - हे मगधदेश के अधिपति! वे दोऊ बड़े राजा, महासुन्दर हैं राजमन्दिर जिनके, अर महामनोहर देवांगना सारिखी स्त्री जिनके, महामनोहर भोगनि के भोक्ता, सो पायनपियादे दलिद्री लोकनि की नाईं, कोई नहीं संग जिनके, अकेले भ्रमते भए। धिक्कार है संसार के स्वरूप को - ऐसा निश्चयकर जो प्राणी स्थावर जंगम सब जीवनिकूं अभयदान दे सो आप भी भय से कम्पायमान न हो। इस अभयदान समान कोऊ दान नाहीं। जाने अभयदान दिया तानैं सब ही दिया। अभयदान का दाता सत्पुरुषनि में मुख्य है।

अथानन्तर विभीषण ने दशरथ जनक के मारवेकूं सुभट विदा किए। हलकारे जिनके संग में ते सुभट, शस्त्र हैं हाथनि में जिनके, महाक्रूर, छिपे छिपे रात दिन नगरी में फिरैं। राजा के महल अति ऊंचे सो प्रवेश न कर सकैं। इनकूं दिन बहुत लगे। तब विभीषण स्वयमेव आय महिल में गीत नाद सुन महल में प्रवेश किया। राजा दशरथ अंत:पुर के मध्य शयन करता देख्या। विभीषण तो दूर ठाढ़े रहे अर एक विद्युतविलसित नामा विद्याधर ताकों पठाया कि याका मस्तक ले आवो। सो आय मस्तक काट विभीषण को दिखाया, अर समस्त राजलोक रोय उठे। विभीषण इनका और जनक का सिर समुद्रविषै डार आप रावण के निकट गया। रावण कों हर्षित किया। इन दोनों राजानि की राणी विलाप करैं। फिर यह जानकर कि कृत्रिम पूतला था तब यह संतोषकर बैठ रही। अर विभीषण लंका जाय अशुभ कर्म के शांति के निमित्त दान पूजादि शुभक्रिया करता भया।

अर विभीषण के चित्त में ऐसा पश्चाताप उपज्या जो देखो मेरे कौन कर्म उदय आया जो भाई के मोह से वृथा भय मान वापरे रंक भूमिगोचरी मृत्यु कों प्राप्त किए। जो कदाचित् आशीविष (आशीविष सर्प कहिए जिसे देख विष चढ़े) जाति का सर्प होय तो भी क्या गरुड़ को प्रहार कर सकै? कहां वह अल्प ऐश्वर्य के स्वामी भूमिगोचरी अर कहां इन्द्र समान शूरवीरता का धरणहारा रावण? अर कहां मूसा, कहां केशरी सिंह, जाकै अवलोकनतैं माते गजराजनि का मद उतर जाय। कैसा है केशरी सिंह? पवन समान है वेग जाका।

अथवा जा प्राणी को जा स्थानक में जा कारणकरि जेता दु:ख अर सुख होना है सो ताको ताकर ता स्थानकविषै कर्मनि के वशकरि अवश्य होय है। अर यह निमित्तज्ञानी जो कोऊ यथार्थ जानै तो अपना कल्याण ही क्यों न करे, जाकरि मोक्ष के अविनाशी सुख पाइए। निमित्तज्ञानी पराई मृत्यु को निश्चय जाने तो अपनी मृत्यु के निश्चय से मृत्यु के पहिले आत्मकल्याण क्यों न करै? निमित्तज्ञानी के कहने से मैं मूर्ख भया। खोटे मनुष्यनि की शिक्षा से जे मन्दबुद्धि हैं ते अकार्यविषै प्रवरतै हैं। यह लंकापुरी पाताल है तल जाका ऐसा जो समुद्र ताके मध्य तिष्ठे। जो देवनहू को अगम्य, तहां विचारे भूमिगोचरियों के कहां से गम्य होय? मैं यह अत्यन्त अयोग्य किया, बहुरि ऐसा काम कबहूं न करूं। ऐसी धारणा धार उत्तम दीप्ति से जैसें सूर्य प्रकाश रूप विचरै तैसें मनुष्यलोक में रमते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै राजा दशरथ अर जनक को विभीषणकृत भय वर्णन करने वाला तेईसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।23।।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! अरण्य के पुत्र दशरथ ने पृथ्वी पर भ्रमण करते केकई को परणा, सो कथा महा आश्चर्य का कारण तू सुन। उत्तर दिशाविषै एक कौतुकमंगल नामा नगर, ताके पर्वत समान ऊंचा कोट, तहां राजा शुभमति राज करै। सो वह शुभमति नाममात्र नाहीं, यथार्थ शुभमति ही है। ताकी राणी पृथुश्री गुण रूप आभरणनिकरि मंडित, ताके केकई पुत्री, द्रोणमेघ पुत्र भए, जिनके गुण दशोंदिशा में व्याप्त रहे। केकई अतिसुन्दर, सर्व अंग मनोहर, अद्भुत लक्षणनि की धरणहारी, सर्व कलावों की पारगामिनी अति शोभती भई। सम्यग्दर्शनकरि संयुक्त श्राविका के व्रत पालनहारी, जिनशासन की वेत्ता, महाश्रद्धावंती तथा सांख्य पातांजल वैशेषिक वेदांत न्याय मीमांसा चार्वाकादिक परशास्त्रनि के रहस्य की ज्ञाता तथा लौकिकशास्त्र शृंगारादिक तिनका रहस्य जानै, नृत्यकला में अति निपुण, सर्व भेदों से मंडित जो संगीत सो भलीभांति जानै।

उर कंठ सिर इन तीन स्थानक से स्वर निकसे हैं अर स्वरों के सात भेद हैं – षडज 1, ऋषभ 2, गांधार 3, मध्यम 4, पंचम 5, धैवत 6, निषाद 7, सो केकई को सर्वगम्य अर तीन प्रकार का लय शीघ्र 1, मध्यम 2, विलम्बित 3, अर चार प्रकार का ताल स्थायी 1, संचारी 2, आरोहक 3, अवरोहक 4, अर तीन प्रकार की भाषा संस्कृत 1, प्राकृत 2, शौरसेनी 3, स्थाईचाल के भूषण चार प्रसंगादि 1, प्रसन्नान्त 2, मध्यप्रसाद 3, प्रसन्नाद्यवसान 4, अर संचारी के छह भूषण निवृत्त 1, प्रस्थिल 2, बिंदु 3, प्रखोलित 4, तमोमंद 5, प्रसन्न 6, आरोहण का एक प्रसन्नादि

भूषण अर अवरोहण के दो भूषण प्रसन्नान्त 1, कहर 2, ये तेरह अलंकार अर चार प्रकार वादित्र वेताररूप सो तांत 1 और चाम के मढ़े ते आनद्ध 2, अर बांसुरी आदि फूक के बाजे वे सुषिर 3, अर कांसी के बाजे वे घन 4, ये चार प्रकार के वादित्र जैसैं केकई बजावैं तैसैं और न बजावै। गीत नृत्य वादित्र ये तीन भेद हैं सो नृत्य में तीनों आए।

अर रस के भेद नव – शृंगार 1, हास्य 2, करुणा 3, वीर 4, अद्‌भुत 5, भयानक 6, रौद्र 7, वीभत्स 8, शांत 9 । तिनके भेद जैसैं केकई जानै तैसैं ओर कोऊ न जानै। अक्षर मात्रा अर गणितशास्त्र में निपुण, गद्यपद्य सर्व में प्रवीण, व्याकरण, छंद, अलंकार, नाममाला, लक्षणशास्त्र, तर्क, इतिहास अर चित्रकला में अति प्रवीण, तथा रत्नपरीक्षा अश्वपरीक्षा, नरपरीक्षा, शस्त्रपरीक्षा, गजपरीक्षा, वृक्षपरीक्षा, वस्त्रपरीक्षा, सुगंधपरीक्षा, सुगन्धादिक द्रव्यनि का निपजावना इत्यादि सर्व बातनि में प्रवीण, ज्योतिष विद्या में निपुण, बाल वृद्ध तरुण मनुष्य तथा घोड़े, हाथी इत्यादि सब के इलाज जानै, मंत्र औषधादि सर्व में तत्पर, वैद्यविद्यानिधान, सर्व कला में सावधान, महा शीलवंती, महामनोहर, युद्धकला में अतिप्रवीण, शृंगारादि कला में अति निपुण, विनय ही है आभूषण जाके, कला, अर गुण, अर रूप में ऐसी कन्या और नाहीं।

गौतम स्वामी कहे हैं – हे श्रेणिक! बहुत कहवेकर कहा? केकई के गुणनि का वर्णन कहां तक करिए। तब ताके पिता ने विचारा कि ऐसी कन्या के योग्य वर कौन? स्वयंवर मंडप करिये, तहां यह आप ही वरै। ताने हरिवाहन आदि अनेक राजा स्वयंवर मंडप में बुलाए सो विभवकर संयुक्त आये। तहां भ्रमते संते जनकसहित दशरथ हू आए। सो यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नाहीं तथापि रूप अर गुणनिकर सर्व राजावोंतैं अधिक हैं। सर्व राजा सिंहासन पर बैठे, अर केकई को द्वारपाली सबन के नाम ग्राम गुण कहै हैं। सो वह विवेकनी साधुरूपिणी मनुष्यों के लक्षण जानने वाली प्रथम तो दशरथ की ओर नेत्ररूप नीलकमल की माला डारी।

बहुरि वह सुन्दर बुद्धि की धरनहारी जैसे राजहंसनी बगुलों के मध्य बैठे जो राजहंस उसकी ओर जाय तैसैं अनेक राजावों के मध्य बैठा जो दशरथ ताकी ओर गई। सो भावमाला तो पहिले ही डारी हुती, अर द्रव्यरूप जो रत्नमाला सो भी लोकाचार के अर्थ दशरथ के गले में डारी। तदि कई एक नृप जे न्यायवंत बैठे हुते ते प्रसन्न भए। अर कहते भए कि जैसी कन्या थी वैसा ही योग्य वर पाया। अर कई एक विलखे होय अपने देश उठ गए। अर कई एक जे अति ढीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धकूं उद्यमी भये। अर कहते भये जे बड़े बड़े वंश के उपजे, अर महाऋद्धि के मंडित ऐसे नृप उनको तजकर यह कन्या, नहीं जानिये कुलशील जिसका ऐसा यह विदेशी, उसे कैसे वरै? खोटा है अभिप्राय जाका ऐसी कन्या है, इसलिए इस विदेशी को यहां से काढकर कन्या

के केश पकड़ बलात्कार हर लो। ऐसा कहकर वे दुष्ट कई एक युद्ध कों उद्यमी भये।

तदि राजा शुभमति अति व्याकुल होय दशरथकूं कहता भया – हे भव्य! मैं इन दुष्टनिकूं निवारूं हूं। तुम इस कन्या कों रथ में चढ़ाय अन्यत्र जावो। जैसा समय देखिये तैसा करिये, सर्व राजनीति में यह बात मुख्य है। या भांति जब ससुर ने कह्या तदि राजा दशरथ अत्यन्त धीर है बुद्धि जिनकी, हंसकर कहते भये – हे महाराज! आप निश्चिन्त रहो। देखो इन सबनि कों दशों दिशा कों भगाऊं। ऐसा कहकर आप रथविषै चढ़े और केकई कों चढ़ाय लीनी। कैसा है रथ? जाके महामनोहर अश्व जुड़े हैं। कैसे हैं दशरथ? मानों रथ पर चढ़े शरदऋतु के सूर्य ही हैं।

अर केकई घोड़ों की वाघ समारती भई। केकई कैसी है? महापुरुषों के स्वरूपकूं धरै युद्ध की मूर्ति ही है। पतिसूं विनती करती भई – हे नाथ! आपकी आज्ञा होय और जाकी मृत्यु उदय आई होय उस ही की तरफ रथ चलाऊं। तदि राजा कहते भये – हे प्रिय! गरीबनि के मारवेकर क्या? जो इस सर्व सेना का अधिपति हेमप्रभ है, जाके सिर पर चन्द्रमा सारिखा सफेद छत्र फिरै है ताकी तरफ रथ चला।

हे रणपण्डिते! आज मैं इस अधिपति ही कों मारूंगा। जब दशरथ ने ऐसा कह्या तदि वह पति की आज्ञा प्रमाण वाहीउर रथ चलावती भई। कैसा है रथ? ऊंचा है सुफेद छत्र जाके, अर तरंगरूप है महाध्वजा जाके। रथविषै ये दोनों दम्पती देवरूप विराजे हैं। इनका रथ अग्नि समान है, जे या रथ की ओर आए वे हजारों पतंग की न्याईं भस्म भए। दशरथ के चलाए जे वाण तिनसे अनेक राजा बींधे गए। सो क्षणमात्र में भागे। तब हेमप्रभ जो सबनि का अधिपति था उसके प्रेरे, अर लज्जावान होय दशरथसूं लडवे को हाथी घोड़ा रथ पयादों से मण्डित आए, किया है शूरपने का महाशब्द जिनने, तोमर जाति के हथियार बाण चक्र कनक इत्यादि अनेक जाति के शस्त्र, अकेले दशरथ पर डारते भए। सो बड़ा आश्चर्य है। दशरथ राजा एक रथ का स्वामी था सो युद्ध समय मानों असंख्यात रथ होय गए। अपने वाणिनिकरि समस्त वैरियनि के बाण काट डाले।

अर आप जे बाण चलाए वे काहू की दृष्टि में न आए और शत्रुवों के लागे। सो राजा दशरथ ने हेमप्रभ को क्षणमात्र में जीत लिया, ताकी ध्वजा छेदी, छत्र उड़ाया और रथ के अश्व घायल किए, रथ तोड़ डाला, रथतैं नीचे डार दिया। तदि वह राजा हेमप्रभ और रथ पर चढ़कर भयकर कंपायमान होय अपना यश काला कर शीघ्र ही भाग्या। दशरथ ने आपको बचाया, स्त्रीकूं बचाई, अपने अश्व बचाये, बैरियों के शस्त्र छेदे अर बैरियों को भगाया। एक दशरथ अनंत रथ जैसे काम करता भया। एक दशरथ सिंह समान उसको देख सर्व योधा सर्वदिशा को हिरण समान हो भागे। अहो धन्य शक्ति या पुरुष की अर धन्य शक्ति याकी, ऐसा शब्द ससुर की सेना में और शत्रुवों

की सेना में सर्वत्र भया। अर बंदीजन बिरद बखानते भए। राजा दशरथ ने महाप्रतापकूं धरै कौतुकमंगल नगरविषै केकईसूं पाणिग्रहण किया। महामंगलाचार भया। राजा केकई कों परणकर अयोध्या आए और जनक भी मिथिलापुर गए। फिर इनका जन्मोत्सव और राज्याभिषेक विभूति से भया अर समस्त भय रहित इन्द्र समान रमते भए।

अथानन्तर सर्व राणियों के मध्य राजा दशरथ केकईसूं कहते भए – हे चंद्रवदनी। तेरे मन में जो वस्तु की अभिलाषा होय सो मांग। जो तू मांगे सोई देऊं। हे प्राणप्यारी! तेरे से अति प्रसन्न भया हूं, जो तू अतिविज्ञान से उस युद्ध में रथ को न प्रेरती तो एक साथ एते बैरी आये थे तिनको में कैसे जीतता? जब रात्रि को अन्धकार जगत में व्याप रह्या है जो अरुण सारिखा सारथी न होय तो उसे सूर्य कैसे जीतै? या भांति केकई के गुण वर्णन राजा ने किये। तदि वह पतिव्रता लज्जा के भार कर अधोमुख होय गई। राजा ने बहुरि कही – वर मांग। तब केकई ने विनती करी – हे नाथ! मेरा वर आपके धरोहर रहै, जा समय मेरी इच्छा होयगी ता समय लूंगी। तब राजा प्रसन्न होय कहते भये – हे कमलवदनी मृगनयनी! श्वेतता श्यामता अर रक्तता ये तीन वर्ण कों धरे अद्भुत हैं नेत्र जाके, अद्भुत बुद्धि तेरी है, महा नरपति की पुत्री, अति नय की वेत्ता, सर्वकला की पारगामिनी, सर्व भोगोपभोग की निधि, तेरा वर मैं धरोहर राख्या, तू जब जो मांगेगी सो ही मैं दूंगा। अर सब ही राजलोक केकई को देख हर्ष को प्राप्त भये और चित्त में चिंतवते भये, यह अद्भुत बुद्धिनिधान है सो कोई अपूर्व वस्तु मांगेगी, अल्पवस्तु कहा मांगे।

अथानन्तर गौतम स्वामी श्रेणिक से कहे हैं – हे श्रेणिक! लोक का चरित्र मैं तुझे संक्षेपताकर कह्या। जो पापी दुराचारी हैं वे नरक निगोद के परम दुःख पावै हैं। अर जे धर्मात्मा साधुजन हैं वे स्वर्गमोक्ष में महा सुख पावै हैं। भगवान की आज्ञा के अनुसार बड़े सत्पुरुषनि के चरित्र तुझे कहे। अब श्रीरामचन्द्रजी की उत्पत्ति सुन। कैसे हैं श्रीरामचन्द्र जी? महा उदार, प्रजा के दुखहरणहारे, महान्यायवन्त, महाधर्मवन्त, महाविवेकी, महाशूरवीर, महाज्ञानी, इक्ष्वाकुवंश का उद्योत करणहारे बड़े सत्पुरुष हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रानी केकईकूं राजा दशरथ का वरदान कथन वर्णन करने वाला चौबीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।24।।

अथानन्तर जाहि अपराजिता कहै हैं ऐसी जो कौशल्या सो रत्नजड़ित महलविषै महासुन्दर सेज पर सूती थी सो रात्रि के पिछले पहिर अतिशयकरि अद्भुत स्वप्न देखती भई। उज्ज्वल हस्ती इन्द्र के ऐरावत हस्तीसमान 1 और महाकेसरी सिंह 2 अर सूर्य 3 तथा सर्वकला पूर्ण चन्द्रमा 4,

ये पुराण पुरुषों के गर्भ में आवने के अद्भुत स्वप्न देख आश्चर्य कों प्राप्त भई। फिर प्रभात के वादित्र और मंगल शब्द सुनकर सेज से उठी। प्रभात क्रिया से हर्षकूं प्राप्त भया है मन जाका, महा विनयवंती, सखीजन मंडित भरतार के समीप जाय सिंहासन पर बैठी।

कैसी है राणी? सिंहासन को शोभित करणहारी, हाथ जोड़ नम्रीभूत होय महामनोहर स्वप्ने जे देखे तिनका वृत्तांत स्वामीसूं कहती भई। तदि समस्त विज्ञान के पारगामी राजा स्वप्ननि का फल कहते भए – हे कांते! परम आश्चर्यकारी तेरे मोक्षगामी पुत्र, अन्तर बाह्य शत्रुवों का जीतनहारा, महापराक्रमी होयगा। रागद्वेष मोहादिक अंतरंग के शत्रु कहिये, अर प्रजा के बाधक दुष्ट भूपति बहिरंग शत्रु कहिये। या भांति राजा कही तदि राणी अति हर्षित होय अपने स्थानक गई, मंद मुलकन रूप जो केश उनसे संयुक्त है मुखकमल जाका। अर राणी केकई पति सहित श्री जिनेन्द्रदेव के जे चैत्यालय तिनमें भाव संयुक्त महापूजा करावती भई। सो भगवान की पूजा के प्रभाव सैं राजा का सर्व उद्वेग मिटा, चित्त में महाशांति होती भई।

अथानन्तर राणी कौशल्या के श्रीराम का जन्म भया। राजा दशरथ ने महा उत्सव किया। छत्र चमर सिंहासन टार बहुत द्रव्य याचकनि कों दिए। उगते सूर्य समान है वर्ण राम का, कमल समान हैं नेत्र और लक्ष्मी से आलिंगित हैं वक्षस्थल जाका, तातैं माता पिता सर्व कुटुम्ब ने इनका नाम पद्म धरा। फिर राणी सुमित्रा अति सुन्दर है रूप जाका, सो महा शुभस्वप्न अवलोकन कर आश्चर्य को प्राप्त होती भई।

वे स्वप्न कैसे? सो सुनो – एक बड़ा केहरी सिंह देख्या, लक्ष्मी और कीर्ति बहुत आदर से सुन्दर जल के भरे कलश, कमल से ढके, उनसे स्नान करावै हैं। और आप सुमित्रा बड़े पहाड़ के मस्तक पर बैठी है। अर समुद्र पर्यंत पृथ्वी को देखै है। अर देदीप्यमान है किरणनि के समूह जाकै, ऐसा सूर्य देख्या, अर नाना प्रकार के रत्ननिकरि मंडित चक्र देख्या। ये स्वप्न देख प्रभात के मंगलीक शब्द भए तब सेज से उठकर प्रातः क्रिया कर, बहुत विनयसंयुक्त पति के समीप जाय, मिष्टबानीकरि स्वप्ननि का वृत्तांत कहती भई।

तदि राजा कही – हे वरानने कहिए सुन्दर है वदन जाका! तेरे पृथ्वी पर प्रसिद्ध पुत्र होयगा, शत्रुवों के समूह का नाश करनहारा, महातेजस्वी, आश्चर्यकारी है चेष्टा जाकी। ऐसा पति ने कहा तदि वह पतिव्रता हर्षकरि भर्‍या है चित्त जाका, अपने स्थानक गई। सर्व लोकनि कों अपने सेवक जानती भई। फिर याके परमज्योति का धारी पुत्र होता भया। मानों रत्नों की खानविषै रत्न ही उपज्या। सो जैसा श्रीराम के जन्म का उत्सव किया हुता तैसा ही उत्सव भया। जा दिन सुमित्रा के पुत्र का जन्म भया, ताही दिन रावण के नगरविषै हजारों उत्पात होते भए। अर हितुवों के

नगरविषै शुभ शकुन भए। इन्दीवर कमल समान श्यामसुन्दर, अर कांतिरूप जल का प्रवाह, भले लक्षणनि का धरणहारा, तातैं माता पिता ने लक्ष्मण नाम धर्‍या।

राम लक्ष्मण ये दोऊ बालक महामनोहर रूप, मूंगा समान हैं लाल होंठ जिनके, अर लाल कमल समान हैं कर अर चरण जिनके, माखनहूतैं अतिकोमल है शरीर का स्पर्श जिनका, अर महासुगन्ध शरीर, ये दोऊ भाई बाल लीला करते कौन के चित्तकूं न हरै? चन्दनकरि लिप्त है शरीर निज का, केसर का तिलक किये कैसैं सोहै हैं मानों विजयार्धगिरि अर अंजनगिरि ही, स्वर्ण के रस से लिप्त है शरीर जिनका, अनेक जन्म का बढ़ा जो स्नेह तातैं परम स्नेहरूप चन्द्र सूर्य समान ही है। महल मांही जावें तब तो सर्व स्त्रीजन कों अतिप्रिय लागैं। अर बाहिर आवैं, तब सर्व जननि कों प्यारे लागैं। जब ये वचन बोलैं तब मानों जगत को अमृतकर सींचै हैं। अर नेत्रनिकर अवलोकन करै हैं, तब सबनि कों हर्ष करि पूर्ण करै हैं। सबनि के दारिद्र हरणहारे, सबके हितु, सबके अन्त:करण पोषणहारे, मानों ये दोऊ हर्ष की अर शूरवीर की मूर्ति ही हैं, अयोध्यापुरीविषै सुखसूं रमते भए। कैसे हैं दोनों कुमार? अनेक सुभट करै हैं सेवा जिनकी, जैसैं पहले बलभद्र विजय अर वासुदेव त्रिपृष्ट होते भये, तिन समान है चेष्टा जिनकी। बहुरि केकई को दिव्यरूप धरणहारा महाभाग्य पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भरत नामा पुत्र भया।

बहुरि सुप्रभा के सर्व लोक में सुन्दर, शत्रुवों का जीतनहारा शत्रुघ्न ऐसा नाम पुत्र भया। अर रामचन्द्र का नाम पद्म तथा बलदेव, अर लक्ष्मण का नाम हरि अर वासुदेव अर अर्द्धचक्री भी कहै हैं। एक दशरथ की जो चार राणी सो मानों चार दिशा ही हैं, तिनके चार ही पुत्र समुद्र समान गम्भीर, पर्वत समान अचल, जगत के प्यारे। इन चारों ही कुमारनि को पिता विद्या पढ़ावनै के अर्थि योग्य पाठक कों सौंपते भए।

अथानन्तर कापिल्य नामा नगर अतिसुन्दर, तहां एक शिवी नामा ब्राह्मण, ताकी इषु नामा स्त्री, ताके अरि नामा पुत्र सो महा अविवेकी अविनई, माता पिता ने लडाया सो महा कुचेष्टा का धरणहारा, हजारों उलहनों का पात्र होता भया। यद्यपि द्रव्य का उपार्जन, धर्म का संग्रह, विद्या का ग्रहण, वा नगर में ये सब ही बातें सुलभ हैं परन्तु याको विद्या सिद्ध न भई। तदि माता पिता विचारी विदेश में याहि सिद्धि होय। यह विचार खेदखिन्न होय घरतैं निकास दिया, सो महा दुखी होय केवल वस्त्र याके पास सो यह राजगृह नगर में गया।

तहां एक वैवस्वत नामा धनुर्विद्या का पाठी महापंडित, ताके हजारों शिष्य विद्या का अभ्यास करै। ताकै निकट ये अरि यथार्थ धनुषविद्या का अभ्यास करता भया। सो हजारों शिष्यनिविषै यह महाप्रवीण होता भया। ता नगर का राजा कुशाग्र सो ताके पुत्र भी वैवस्वत के निकट बाणविद्या

पढ़े सो राजा ने सुनी कि एक विदेशी ब्राह्मण का पुत्र आया है जो राजपुत्रनितैंहू अधिक बाणविद्या का अभ्यासी भया। सो राजा मन में रोष किया। जब यह बात वैवस्वत ने सुनी तब अरि को समझाया, कि तू राजा के निकट मूर्ख हो जा, विद्या मत प्रकाशै। सो राजा ने धनुषविद्या के गुरु कों बुलाया। जो मैं तेरे सर्व शिष्यनि की विद्या देखूंगा। तब सब शिष्यनि कों लेयकर गया।

सर्व ही शिष्यनि यथायोग्य अपनी अपनी बाणविद्या दिखाई, निशाने बींधे, ब्राह्मण का जो पुत्र अरि, ताने ऐसे बाण चलाए सो विद्यारहित जाना गया। तब राजा जानी, याकी प्रशंसा काहू ने झूठी कही। तब वैवस्वत कों सर्व शिष्यनि सहित सीख दीनी। तब अपने घर आय वैवस्वत ने अपनी पुत्री अरि को परणाय विदा किया, सो रात्रि ही पयाणकर अयोध्या आया, राजा दशरथसों मिल्या, अपनी बाणविद्या दिखाई। तब राजा प्रसन्न होय अपने चारों पुत्र बाणविद्या सीखने को याके निकट राखे। ते बाणविद्याविषै अतिप्रवीण भए। जैसैं निर्मल सरोवर में चन्द्रमा की कांति विस्तार को प्राप्त होय तैसैं इनविषै बाणविद्या विस्तार को प्राप्त भईं। और भी अनेक विद्या गुरुसंयोगतैं तिनकों सिद्ध भईं। जैसैं काहू ठौर रत्न मिले होवें, अर ढकने से ढके होवें, सो ढकना उघाड़े प्रकट होय, तैसैं सर्व विद्या प्रकट भई। तब राजा अपने पुत्रनिकूं सर्व शास्त्रविषै अति प्रवीणता देख, अर पुत्रों का विनय उदार चेष्टा अवलोकन कर अतिप्रसन्न भया। इनके सर्व विद्या के गुरुवों की बहुत सन्मानता करी।

राजा दशरथ गुणों के समूह से युक्त, महाज्ञानी ने जो उनकी वांछा हुती तातैं अधिक संपदा दीनी, दान विषै विख्यात है कीर्ति जाकी। केतेक जीव शास्त्रज्ञान को पायकर परम उत्कृष्टता को प्राप्त होय है, अर कई एक जैसे के तैसे ही रहै हैं, अर कई एक विषम कर्म के योगतैं मदकरि आंधे होय हैं। जैसैं सूर्य की किरण स्फटिकगिरि के तटविषै अति प्रकाश को धरै है, और स्थानकविषै यथास्थित प्रकाश को धरै है अर उल्लुवों के समूह में अति तिमिररूप होय परणवै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै चारि भाईनि के जन्म का वर्णन करने वाला पच्चीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।25।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! अब जनक का कथन सुनहु। राजा जनक की स्त्री विदेहा, ताहि गर्भ रह्या। सो एक देव के यह अभिलाषा हुई कि जो याके बालक होय सो मैं ले जाऊं।

तब श्रेणिक ने पूछी – हे नाथ! वा देव के ऐसी अभिलाषा काहेतैं उपजी? सो मैं सुना चाहूं हूं।

तदि गौतम स्वामी कहते भए – हे राजन्! चक्रपुर नामा एक नगर है। तहां चक्रध्वज नामा राजा, ताके राणी मनस्विनी, तिनके पुत्री चित्तोत्सवा, सो कुंवारी चटशाला में पढ़े। अर राजा का

पुरोहित धूम्रकेश, ताके स्वाहा नामा स्त्री, ताका पुत्र पिंगल सो भी चटशाला में पड़े। सो चित्तोत्सवा का अर पिंगल का चित्त मिल गया। सो इनकूं विद्या की सिद्धि न भई। जिनका मन कामबाणकरि बेधा जाय तिनकूं विद्या अर धर्म की प्राप्ति न होय है। प्रथम स्त्री पुरुष का संसर्ग होय, बहुरि प्रीति उपजै, प्रीतितैं परस्पर अनुराग बढ़े, बहुरि विश्वास उपजै, ताकरि विकार उपजै। जैसैं हिंसादिक पंच पापनिकरि अशुभकर्म बंधे तैसैं स्त्रीसंगतैं काम उपजै है।

अथानन्तर वह पापी पिंगल चित्तोत्सवाकूं हर ले गया, जैसे कीर्ति को अपयश हर ले जाय। जब दूर देशनिविषै हर ले गया तदि सब कुटुम्ब के लोकनि जानी, अपने प्रमाद के दोषकरि ताने वह हरी है। जैसैं अज्ञान सुगति को हरै तैसैं वह पिंगल कन्याकूं चोरीकरि हर ले गया। परन्तु धनरहित शोभै नाहीं। जैसैं लोभी धर्मवर्जित तृष्णा करि न सोहै। सो यह विदग्ध नगर में गया। तहां अन्य राजानि की गम्यता नाहीं। सो निर्धन नगर के बाहिर कुटी बनायकर रह्या। ता कुटी के किवाड़ नाहीं। अर यह ज्ञान विज्ञान रहित तृण काष्ठादिक संग्रहकर विक्रयकर उदर भरै, दारिद्र के सागर में मग्न सो स्त्री का अर आपका उदर महा कठिनतासूं भरै। तहां राजा प्रकाशसिंह, अर राणी प्रवरावली का पुत्र जो राजा कुण्डलमण्डित, सो याकी स्त्रीकूं देख, शोषण-संतापन-उच्चाटन-वशीकरण-मोहन ये काम के पंच बाण इनकरि बेध्या गया। ताने रात्रि को दूती पठाई सो चित्तोत्सवा को राजमंदिर में ले गई। जैसैं राजा सुमुख के मंदिर विषै दूती वनमाला को ले गई हुती। सो कुण्डलमण्डित वा सहित सुखसूं रमैं।

अथानन्तर वह पिंगल काष्ठ का भार लेकर घर आया। सो सुन्दरीकूं न देखकर अतिकष्ट के समुद्र में डूबा, विरहकरि महा दुखित भया, काहू ठौर सुख न पावै। चक्रविषै आरूढ़ समान याका चित्त व्याकुल भया। हरी गई है भार्या जाकी ऐसा जो यह दीन ब्राह्मण सो राजा पै गया और कहता भया - हे राजन्! मेरी स्त्री तिहारै राज में चोरी गई। जे दरिद्री आर्तिवंत भयभीति स्त्री वा पुरुष उनका राजा ही शरण है।

तब राजा धूर्त, सो राजा ने मंत्री को बुलाय झूठ-मूठ कहा - याकी स्त्री चोरी गई है ताहि पैदा करो, ढील मत करो। तब एक सेवक ने नेत्रों की सैन मार कर झूठ कहा। हे देव! मैं या ब्राह्मण की स्त्री पोदनापुर के मार्ग में पथिकनि के साथ जाती देखी, सो आर्यिकानि के मध्य तप करवे को उद्यमी है, तातैं हे ब्राह्मण! तू ताहि लाया चाहे तो शीघ्र ही जा, ढील काहे कों करैं। ताका अवार दीक्षा धरने का समय कहां? तरुण है शरीर जाका, अर महा श्रेष्ठ स्त्री के गुणनि से पूर्ण है। ऐसा जब झूठ कहा तब ब्राह्मण गाढ़ी कमर बांध शीघ्र वाकी ओर दौड्या, जैसे तेज घोड़ा शीघ्र दौड़े। सो पोदनापुर में चैत्यालय तथा उपवनादि वन में सर्वत्र ढूंढ़ी, काहू ठौर न देखी। तब पाछा

विदग्ध नगर में आया। सो राजा की आज्ञातैं क्रूर मनुष्यों ने गलहटा देय लष्टमुष्टि प्रहार कर दूर किया। ब्राह्मण स्थानभ्रष्ट भया क्लेश भोगा, अपमान लहा, मार खाई। एते दु:ख भोग कर दूर देशांतर उठ गया। सो प्रिया विना याको किसी ठौर सुख नाहीं। जैसैं अग्नि में पड़ा सर्प सूंसै तैसैं यह रात दिन सूंसता भया। विस्तीर्ण कमलनि का वन याहि दावानल समान दीखै, अर सरोवर अवगाह करता विरहरूप अग्नि से बलै। या भांति यह महा दुखी पृथ्वीविषै भ्रमण करे।

एक दिन नगर से दूर वन में मुनि देखे। मुनि का नाम आर्यगुप्ति बड़े आचार्य, तिनके निकट जाय हाथ जोड़ नमस्कार कर धर्म श्रवण करता भया। धर्म श्रवण कर याकों वैराग्य उपजा। महा शांतिचित होय जिनेन्द्र के मार्ग की प्रशंसा करता भया। मन में विचारै है – अहो यह जिनराज का मार्ग परम उत्कृष्ट है। मैं अंधकार में पड़ा हुता, सो यह जिनधर्म उपदेश मेरे घट में सूर्य समान प्रकाश करता भया। मैं अब पापों का नाश करनहारा जिनशासन ताका शरण लेऊं। मेरा मन और तन विरहरूप अग्नि में जरै है सो मैं शीतल करूं।

तब गुरु की आज्ञातैं वैराग्य को पाय, परिग्रह का त्यागकर दिगम्बरी दीक्षा धरता भया। पृथ्वी पर विहार करता, सर्व संग का परित्यागी, नदी पर्वत समान वन उपवनों में निवास करता, तपकर शरीर का शोषण करता भया। जाके मन को वर्षाकाल में अति वर्षा भई तो भी खेद न उपज्या, और शीतकाल में शीत वायुकरि जाका शरीर न कांपा, और ग्रीषम ऋतु में सूर्य की किरण कर व्याकुल न भया। याका मन विरहरूप अग्निकर जला हुता सो जिनवचन रूप जल की तरंगकरि शीतल भया। तपकर शरीर अर्धदग्ध वृक्ष के समान होय गया।

अब विदग्धपुर का राजा जो कुण्डलमंडित ताकी कथा सुनहूं। राजा दशरथ का पिता अरण्य अयोध्या में राज्य करै। सो यह कुण्डलमंडित पापी गढ़ के बलकर अरण्य के देश कों विराधै। जैसैं कुशील पुरुष मर्यादा लोप करै तैसैं यह ताकी प्रजा को बाधा करै। राजा अरण्य बड़ा राजा ताके बहुत देश। सो याने कई एक देश उजाड़े। जैसे दुर्जन गुणों को उजाड़ै, अर राजा के बहुत सामंत विराधै जैसैं कषाई जीवनि के परिणाम विराधै, अर योगी कषायों का निग्रह करै, तैसैं याने राजा से विरोध कर अपने नाश का उपाय किया। सो यद्यपि यह राजा अरण्य के आगे रंक है तथापि गढ़ के बल से पकड़ा न जाय। जैसैं मूसा पहाड़ के नीचे जो बिल तामें बैठ जाय तब नाहर क्या करै? सो राजा अरण्य को या चिंता से रात दिन चैन न पड़े, आहारादिक शरीर की क्रिया अनादर से करै। तब राजा का बालचन्द्र नामा सेनापति सो राजा को चिंतावान् देख पूछता भया – हे नाथ! आपको व्याकुलता का कारण कहा?

जब राजा ने कुण्डलमंडित का वृत्तांत कहा तब बालचन्द्र ने राजा से कही आप निश्चित

होवो, उस पापी कुंडलमंडित को बांधकर आपके निकट ले आऊं। तब राजा ने प्रसन्न होय बालचन्द्र को विदा किया। चतुरंग सेना ले बालचन्द्र सेनापति चढ्या सो कुण्डलमंडित मूर्ख चित्तोत्सवा से आसक्तचित्त सर्व राज्य चेष्टारहित महाप्रमाद में लीन था। नहीं जाना है लोक का वृत्तांत जाने, वह कुंडलमंडित, नष्ट भया है उद्यम जाकां। जो बालचन्द्र ने जायकर क्रीड़ामात्र में जैसैं मृग को बांधे तैसैं बांध लिया अर उसके सर्व राज्य में राजा अरण्य का अधिकार किया, अर कुंडलमंडित कों राजा अरण्य के समीप लाया। बालचन्द्र सेनापति ने राजा अरण्य का सर्व देश बाधा रहित किया। राजा सेनापति से बहुत हर्षित भया अर बहुत बधारा, अर पारितोषिक दिये, अर कुंडलमंडित अन्याय मार्गतैं राज्य से भ्रष्ट भया, हाथी घोड़े रथ पयादे सब गए, शरीरमात्र रह गया, पयादे फिरें, सो महादुखी पृथ्वी पर भ्रमण करता खेदखिन्न भया। मन में बहुत पछतावै जो मैं अन्यायमार्गी ने बड़ों से विरोध कर बुरा किया। एक दिन यह मुनियों के आश्रम जाय आचार्य कों नमस्कार कर भावसहित धर्म का भेद पूछता भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे राजन्! दुखी दरिद्री कुटुम्बरहित व्याधिकरि पीड़ित तिन मैं काहू एक भव्यजीव के धर्म बुद्धि उपजै है।

ताने आचार्य सूं पूछा – हे भगवन्! जाकी मुनि होने की शक्ति न होय सो गृहस्थाश्रम में कैसे धर्म का साधन करै? आहार भय मैथुन परिग्रह यह चार संज्ञा, तिनमें तत्पर यह जीव कैसैं पापनिकरि छूटै? सो मैं सुना चाहूं हूं, आप कृपाकर कहो।

तब गुरु कहते भये – धर्म जीवदयामई है। ये सर्व प्राणी अपनी निंदाकर अर गुरुनि के पास आलोचना कर पापतैं छूटै हैं। तू अपना कल्याण चाहै है, अर शुद्ध कर्म की अभिलाषा करै है तो हिंसा का कारण महाघोर कर्म लहू अर वीर्य से उपजा ऐसा जो मांस ताका भक्षण सर्वथा तज। सर्व ही संसारी जीव मरणतैं डरै हैं। तिनके मांसकर जे अपने शरीर को पोखै हैं ते पापी निःसंदेह नरक में पड़ेंगे। जे मांस का भक्षण करै हैं अर नित्य स्नान करै हैं तिनका स्नान वृथा है।

अर मूंड मुडाय भेष लिया सो भेष भी वृथा है। अर अनेक प्रकार के दान उपवासादिक यह मांसाहारी कों नरक से नाहीं बचा सकै हैं। या जगत में ये सर्व ही जाति के जीव पूर्वजन्म में या जीव के बांधव भए हैं। तातैं जो पापी मांस का भक्षण करै हैं ताने तो सर्व बांधव भखे। जो दुष्ट निर्दई मच्छ मृग पक्षियों को हनै हैं अर मिथ्यामार्ग में प्रवरतैं हैं सो मधु मांस के भक्षणतैं महाकुगतिविषै जावै है। यह मांस वृक्षनितैं नाहीं उपजै है, भूमितैं नाहीं उपजै है, अर कमल की न्याईं जल से नाहीं निपजै है, अथवा अनेक वस्तुनि के योगतैं जैसैं औषधि बनै है तैसैं मांस की उत्पत्ति नाहीं होय है। दुष्ट जीव निर्दयी वा गरीब बड़ा वल्लभ है जीतव्य जिनको ऐसे पक्षी मृग

मत्स्यादिक तिनको हन कर मांस उपजावै हैं। सो उत्तम जीव दयावान नाहीं भखैं हैं।

अर जिनके दुग्धकरि शरीर वृद्धि को प्राप्त होय ऐसी गाय भैंस छेरी तिनके मृतक शरीर को भखै हैं अथवा मार मारकर भखै हैं, तथा तिनके पुत्र पौत्रादिक को भखै हैं ते अधर्मी महानीच नरक निगोद के अधिकारी हैं। जो दुराचारी मांस भखै हैं ते माता पिता पुत्र मित्र सहोदर सर्व ही भखै। या पृथ्वी के तले भवनवासी अर व्यंतर देवनि के निवास हैं, अर मध्यलोक में भी हैं। ते दुष्ट कर्म के करनहारे नीच देव हैं। जो जीव कषाय सहित तापस होय हैं ते नीच देवनि में निपजै हैं। पाताल में प्रथम ही रत्नप्रभा पृथ्वी, ताके छै भाग, अर पंच भाग में तो भवनवासी अर व्यंतर देवनि के निवास हैं, अर बहलभाग में पहिला नरक, ताके नीचे छह नरक और हैं। ये सातों नरक छह राजू में हैं। अर सातवें नरक के नीचे एक राजू में निगोदादि स्थावर ही हैं, त्रस जीव नाहीं हैं अर निगोद से तीन लोक भरे हैं।

अथानन्तर नरक का व्याख्यान सुनहु – कैसे हैं नारकी जीव? महाक्रूर, महाकुशब्द बोलनहारे, अति कठोर है स्पर्श जाका, महा दुर्गंध अन्धकार रूप नरक में पड़े हैं, उपमारहित जे दु:ख तिनका भोगनहारा है शरीर जिनका। महा भयंकर नरक ताहि कुम्भीपाक कहिए जहां वैतरणी नदी है, अर तीक्ष्ण कंटकयुक्त शाल्मली वृक्ष, जहां असिपत्रवन तीक्ष्ण खड्ग की धारा समान है पत्र जिनके, अर जहां देदीप्यमान अग्नि से तप्तायमान तीखे लोहे के कीले निरंतर हैं। उन नरकनि में मधुमांस के भक्षणहारे, अर जीवनि के मारणहारे निरंतर दुख भोगै हैं। जहां एक आध अंगुल मात्र भी क्षेत्र सुख का कारण नाहीं, अर एक पल को भी नारकियों का विश्राम नाहीं जो चाहैं कि कहू भाजकर छिप रहैं, तो जहां जांय तहां ही नारकी मारैं। अर असुर कुमार पापी देव बताय देय। महाप्रज्वलित अंगार तुल्य जो नरक की भूमि ताविषै पड़े ऐसे विलाप करैं जैसैं अग्नि में मत्स्य व्याकुल हुआ विलाप करै।

अर भय से व्याप्त काहू प्रकार निकस कर अन्य ठौर गया चाहैं तो तिनको शीतलता निमित्त और नारकी वैतरणी नदी के जल से छांटे देय, सो वैतरणी महादुर्गंध क्षीरजल की भरी ताकरि अधिक दाह को प्राप्त होय। बहुरि विश्राम के अर्थ असिपत्रवन में जाय सो असिपत्र सिर पर पड़े, मानों चक्र खड्ग गदादिक हैं, तिनकरि विदारे जावें, छिद गए हैं नासिका कर्ण कंघा जंघा आदि शरीर के अंग जिनके। नरक में महा विकराल महा दुखदाई पवन है, अर रुधिर के कण बरसै हैं। जहां घानी में पेलिए हैं, अर क्रूर शब्द होय हैं तीक्ष्ण शूलों से भेदिए हैं, महा विलाप के शब्द करै हैं, अर शाल्मली वृक्षनि से घसीटिए, अर महा मुद्गरों के घात से कूटिए हैं। अर जब तिसाए होय हैं तब जल की प्रार्थना करै हैं तब उन्हें तांबा गलाकर प्यावै हैं?

तातैं देह महा दग्धमान होय है, ताकर महादुखी होय हैं, अर कहैं हैं कि हमें तृष्णा नाहीं। तो पुनि बलात्कार इनको पृथ्वी पर पछाड़कर, ऊपर पग देय, संडासियों से मुख फाड़, ताता तांबा प्यावै हैं। तातैं कंठ भी दग्ध होय हैं अर हृदय भी दग्ध होय है। नारकियों को नारकीनि का अनेक प्रकार का परस्पर दु:ख, तथा भवनवासी देव जे असुरकुमार तिनकरि करवाया दु:ख, सो कौन वरणन कर सकै; नरक में मद्यमांस के भक्षण से उपजा जो दु:ख ताहि जानकर मद्य मांस का भक्षण सर्वथा तजना। ऐसे मुनि के वचन सुन, नरक के दुख से डरा है मन जाका, ऐसा जो कुण्डलमंडित सो बोला – हे नाथ! पापी जीव तो नरक ही के पात्र हैं, अर जे विवेकी सम्यग्दृष्टि श्रावक के व्रत पालै हैं तिनकी कहा गति है?

तब मुनि कहते भए – जे दृढ़व्रत सम्यक्दृष्टि श्रावक के व्रत पालै हैं ते स्वर्ग मोक्ष के पात्र होय हैं। औरहु जे जीव मद्य मांस शहद का त्याग करै हैं ते भी कुगति से बचै हैं। जे अभक्ष्य का त्याग करै हैं सो शुभगति पावै हैं। जो उपवासादिक रहित हैं, अर दानादिक भी नहीं बनै हैं, परन्तु मद्यमांस के त्यागी हैं तो भले हैं। अर जो कोई शीलव्रत मंडित हैं, अर जिनशासन का सेवक है, अर श्रावक के व्रत पालै हैं ताका कहा पूछना? सो तो सौधर्मादि स्वर्ग में उपजै ही है। अहिंसाव्रत धर्म का मूल कहा है। अहिंसा मांसादिक के त्यागी के अत्यन्त निर्मल होय है। जे म्लेच्छ अर चांडाल हैं, अर दयावान होवे हैं ते मधु मांसादिक का त्याग करै हैं, सो भी पापनि से छूटै हैं। पापनिकरि छूटा हुआ पुण्य को ग्रहै हैं, अर पुण्य के बंधन से देव अथवा मनुष्य होय है। अर जो सम्यक्दृष्टि जीव हैं सो अणुव्रत को धारण कर देवों का इन्द्र होय, परम भोगों को भोगै हैं।

बहुरि मनुष्य होय मुनिव्रत धर मोक्षपद पावै हैं। ऐसे आचार्य के वचन सुनकर यद्यपि कुण्डलमंडित अणुव्रत के धारने में शक्तिरहित है तो भी सीस नवाय गुरुनिकूं सविनय नमस्कार कर मद्यमांस का त्याग करता भया, अर समीचीन जो सम्यग्दर्शन ताका शरण ग्रहा। भगवान की प्रतिमा को नमस्कार अर गुरुवों को नमस्कार कर देशांतर को गया। मन में ऐसी चिंता भई कि मेरा मामा महापराक्रमी है सो निश्चय सेती मुझे खेदखिन्न जान मेरी सहायता करेगा। मैं बहुरि राजा होय शत्रुनि कों जीतूंगा। ऐसी आशा धर दक्षिणदिशा जायवें को उद्यमी भया। सो अति खेदखिन्न दुख से भरा, धीरा धीरा जाता हुता सो मार्ग में अत्यन्त व्याधि वेदनाकर सम्यक्त रहित होय मिथ्यात्व गुणठाने मरण को प्राप्त भया। कैसा है मरण? नाहीं है जगत में उपाय जाका।

सो जिस समय कुंडलमंडित के प्राण छूटे सो राजा जनक की स्त्री विदेहा के गर्भ में आया। ताही समय वेदवती का जीव जो चित्तोत्सवा भई हुती, सो भी तप के प्रभावकरि सीता भई, सो हू विदेहा के गर्भ में आई। ये दोनों एक गर्भ में आए।

अर वह पिंगल ब्राह्मण जो मुनिव्रत धर भवनवासी देव भया हुता, सो अवधिकर अपने तप का फल जान, बहुरि विचारता भया कि वह चित्तोत्सवा कहां, अर वह पापी कुंडलमंडित कहां, जाकरि मैं पूर्वभव में दुख अवस्था को प्राप्त भया। अब वे दोनों राजा जनक की स्त्री के गर्भ में आए हैं। सो वह तो स्त्री की जाति पराधीन हुती, उस पापी कुंडलमंडित ने अन्याय मार्ग किया, सो यहा मेरा परमशत्रु है। जो गर्भ में विराधना करूं तो रानी मरण को प्राप्त होय, सो यासैं मेरा बैर नाहीं। तातैं जब यह गर्भतैं बाहिर आवै तब मैं याहि दुख दूं। ऐसा चितवता हुआ पूर्व कर्म के बैरिकर क्रोधायमान जो देव, सो कुंडलमंडित के जीव पर हाथ मसले।

ऐसा जानकर सर्व जीवनकूं क्षमा करनी, काहूकूं दुःख न देना। जो कोई काहूकूं दुःख देय है सो आपको ही दुःखसागर में डुबोवै है।

अथानन्तर समय पाय रानी विदेहा के पुत्र अर पुत्री का युगल जन्म भया। तब वह देव पुत्र को हरता भया। सो प्रथम तो क्रोध के योगकरि ताने ऐसी विचारी कि मैं याही शिला पर पटक मारूं। बहुरि विचारी कि धिक्कार है मोकूं। मैं ऐसा अनन्त संसार का कारण पाप चिंतया। बालहत्या समान और कोई पाप नाहीं। पूर्वभव में मैं मुनिव्रत धरे हुते सो तृणमात्र का भी विराधन न किया, सर्व आरंभ तजा, नाना प्रकार तप किए। श्री गुरु के प्रसाद से निर्मल धर्म पाय ऐसी विभूति को प्राप्त भया। अब मैं ऐसा पाप कैसे करूं?

अल्पमात्र भी पापकर महादुःख की प्राप्ति होय है। पापकरि, यह जीव संसार वनविषै बहुत काल दुखरूप अग्नि में जलै है। अर जो दयावान, निर्दोष है भावना जाकी, महा सावधानरूप है सो धन्य है, सुगति नामा रत्न वाके हाथ में है। वह देव ऐसा विचारकर दयावान होयकर बालक कों आभूषण पहिराय काननविषै महा दैदीप्यमान कुंडल घाले। परणलब्धी नामा विद्याकर आकाशतैं पृथ्वीविषै सुख की ठौर पधराय आप अपने धाम गया। सो रात्रि के समय चंद्रगति नामा विद्याधर ने या बालक को आभरण की ज्योतिकर प्रकाशमान आकाश से पड़ता देखा। तब विचारी कि यह नक्षत्रपात भया या विद्युत्पात भया। यह विचारकर निकट आय देखै तो बालक है। तब हर्षकर बालक को उठाय लिया, अर अपनी रानी पुष्पवती जो सेज में सूती हुती ताकी जांघों के मध्य धर दिया।

अर राजा कहता भया – हे राणी! उठो उठो तिहारे बालक भया है, बालक महाशोभायमान है। तब रानी सुन्दर है मुख जाका, ऐसे बालक को देख प्रसन्न भई, जाकी ज्योति के समूहकर निद्रा जाती रही। महा विस्मय को प्राप्त होय राजा को पूछती भई – हे नाथ! यह अद्‌भुत बालक कौन पुण्यवती स्त्री ने जाया।

तब राजा ने कही – हे प्यारी! तैने जना, तो समान और पुण्यवती कौन है? धन्य है भाग्य तेरा, जाके ऐसा पुत्र भया। तब वह रानी कहती भई – हे देव! मैं तो बांझ हूं, मेरे पुत्र कहा? एक तो मुझे पूर्वोपार्जित कर्म ने ठगी – बहुरि तुम कहा हास्य करो हो?

तब राजा ने कही – हे देवी! तुम शंका मत करहु, स्त्रियों के प्रच्छन्न (गुप्त) भी गर्भ होय है। तब रानी ने कही ऐसे ही होहु। परन्तु याके मनोहर कुंडल कहां तैं आए? ऐसे भूमंडल में नाहीं। तब राजा ने कही – हे रानी! ऐसे विचारकर कहा? यह बालक आकाश से पड़ा, अर मैं झेला, तुझे दिया। यह बड़े कुल का पुत्र है याके लक्षणनिकर जानिए है। यह मोटा पुरुष है, अन्य स्त्री तो गर्भ के भारकर खेदखिन्न भई है, परन्तु हे प्रिये! तैने याहि सुख से पाया। अर अपनी कुक्षि में उपजा भी बालक जो माता पिता का भक्त न होय, अर विवेकी न होय, शुभ काम न करै, तो ताकर कहां? कई एक पुत्र शत्रु समान परणवै हैं। तातैं उदर के पुत्र का कहा विचार? तेरे यह पुत्र सुपुत्र होयगा। शोभनीक वस्तु में सन्देह कहा?

अब तुम या पुत्र को लेवो, अर प्रसूतिघर में प्रवेश कर अर लोकनि को यही जनावना जो राणी के गुप्त गर्भ हुता सो पुत्र भया। तब राणी पति की आज्ञा प्रमाण प्रसन्न होय प्रसूतिगृहविषै गई। प्रभातविषै राजा ने पुत्र के जन्म का उत्सव किया। रथनूपुर में पुत्र के जन्म का ऐसा उत्सव भया जो सर्व कुटुम्ब अर नगर के लोग आश्चर्य को प्राप्त भए। रत्ननि के कुंडल की किरणों कर मंडित जो यह पुत्र सो माता पिता ने याका नाम प्रभामण्डल धरा। अर पोषने के निमित्त धाय को सौंपा। सब अंत:पुर की राणी आदि सकल स्त्री तिनके हाथरूप कमलनि का भ्रमर होता भया।

भावार्थ – यह बालक सर्व लोकनि कों वल्लभ बालक सुखसों तिष्ठै है। यह तो कथा यहां ही रही।

अथानन्तर मिथिलापुरीविषै राजा जनक की रानी विदेहा पुत्र को हरा जान विलाप करती भई। अति ऊंचे स्वरसूं रुदन किया, सर्व कुटुम्ब के लोक शोकसागर में पड़े। रानी ऐसे पुकारे मानों शस्त्रकर मारी है। हाय! हाय पुत्र! तुझे कौन ले गया, मोहि महादुख का करनहारा वह निर्दई कठोर चित्त के हाथ तेरे लेने पर कैसे पड़े? जैसे पश्चिम दिशा की तरफ सूर्य आय अस्त होय जाय तैसैं तू मेरे मंदभागिनी के आयकर अस्त होय गया। मैं हूं परभवविषै काहू का बालक विछोहा हुता सो मैं फल पाया। तातैं कभी भी अशुभ कर्म न करना। जो अशुभ कर्म है सो दुख का बीज है। जैसे बीज बिना वृक्ष नाहीं, तैसे अशुभ कर्म बिना दुख नाहीं। जा पापी ने मेरा पुत्र हर्या सो मोकूं ही क्यों न मार गया? अर्ध मुईकर दुख के सागर में काहे को डुबो गया? या भांति रानी अति विलाप किया।

तदि राजा जनक आये। आय धीर्य बंधावते भये – हे प्रिये! तू शोक को मत प्राप्त होउ, तेरा

पुत्र जीवै है, काहू ने हरया है सो तू निश्चय सेती देखेगी। वृथा काहे को रुदन करै है। पूर्व कर्म के प्रभाव कर गई वस्तु कोई तो देखिए कोई न देखिए। तू थिरता कों प्राप्त होउ। राजा दशरथ मेरा परम मित्र है सो वाकों यह वार्ता लिखूं हूं। वह अर मैं तेरे पुत्र कूं तलाशकर लावेंगे, भले भले प्रवीण मनुष्य तेरे पुत्र के ढूंढ़िवे को पठावेंगे। या भांति कहकर राजा जनक ने अपनी स्त्री को संतोष उपजाय दशरथ के पास लेख भेजा। सो दशरथ लेख बांच महाशोकवंत भए। राजा दशरथ अर जनक दोऊन ने पृथ्वी में बालक को तलाश किया, परन्तु कहूं देख्या नाहीं। तदि महाकष्ट कर शोक को दाब बैठ रहे। ऐसा कोई पुरुष वा स्त्री नाहीं जो इस बालक के गए आंसुओं कर भरे नेत्र न भया होय, सब ही शोक के वश होय रुदन करते भए।

अथानन्तर प्रभामण्डल के गए का शोक भुलावनेकूं महामनोहर जानकी बाललीलाकर सर्व बंधुलोककूं आनन्द उपजावती भई। महा हर्षकूं प्राप्त भई जो स्त्रीजन तिनकी गोद में तिष्ठती, अपने शरीर की कांतिकर दशोदिशाकूं प्रकाशरूप करती वृद्धिकूं प्राप्त भई। कैसी है जानकी? कमल सारिखे हैं नेत्र जाके अर महासुकंठ, प्रसन्न वदन, मानों पद्मद्रह के कमल के निवास से साक्षात् श्रीदेवी ही आई है। याके शरीर रूप क्षेत्रविषै गुणरूप धान्य निपजते भए। ज्यों ज्यों शरीर बढ़ा त्यों त्यों गुण बढ़े। समस्त लोकनिकूं सुखदाता, अत्यन्त मनोज्ञ सुन्दर लक्षणनिकर संयुक्त है अंग जाका।

सीता कहिए भूमि ता समान क्षमा की धरणहारी तातैं जगतविषै सीता कहाई। वदनकर जीत्या है चन्द्रमा जाने, पल्लव समान है कोमल आरक्त हस्ततल जाके, महाश्याम, महासुन्दर, इन्द्रनीलमणि समान है केशनि के समूह जाका, अर जीती है मद की हंसनी की चाल जानै, अर सुन्दर भौंह जाकी, अर मोलश्री के पुष्प समान मुख की सुगन्ध, गुंजार करै हैं भ्रमर जापर, अति कोमल है पुष्पमाला समान भुजा जाकी, अर केहरी समान है कटि जाकी, अर महा श्रेष्ठ रस का भरा जो केलि का थंभ ता समान है जंघा जाकी, स्थलकमल समान महामनोहर हैं चरण जाके, अर अतिसुन्दर है कुचयुग्म जाका, अति शोभायमान है रूप जाका। महाश्रेष्ठ मंदिर के आंगन विषै महारमणीक सात सै कन्याओं के समूह में शास्त्रोक्त क्रीड़ा करै। जो कदाचित् इन्द्र की पटराणी शची व चक्रवर्ती पटराणी सुभद्रा याके अंग की शोभाकूं किंचित्मात्र भी धरै तो वे अति मनोज्ञरूप भासै। ऐसी यह सीता सबनितैं सुन्दर है। याकूं रूप गुणयुक्त देख राजा जनक विचारया – जैसै रति कामदेव ही को योग्य है तैसैं यह कन्या सर्व विज्ञानयुक्त दशरथ के बड़े पुत्र जो राम तिनहीकूं योग्य है। सूर्य की किरण के योगतैं कमलनि की शोभा प्रकट होय है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सीता प्रभामण्डल का जन्म कथन वर्णन करने वाला छब्बीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।26।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक यह कथा सुनकर गौतम स्वामी को पूछता भया – हे प्रभो! जनक ने राम का कहां महात्म्य देख्या जो अपनी पुत्र देनी विचारी। तब गणधर चित्त को आनंदकारी वचन कहते भए – हे राजन्! महा पुण्यधिकारी जो श्रीरामचन्द्र तिनका सुयश सुनि, जो कारणतैं जनक महाबुद्धिमान ने रामकूं अपनी कन्या देनी विचारी।

बैताढ्य पर्वत के दक्षिण भागविषै अर कैलाश पर्वत के उत्तर भागविषै अनेक अंतर देश बसै हैं, तिनमें एक अर्द्धबरवर देश, असंयमी जीवनि का है मान्य जहां, महा मूढजन निर्दई म्लेच्छ लोकनिकरि भरया। ता विषै एक मयूरमाल नामा नगर, काल के नगर समान महा भयानक, तहां अंतरगत नामा म्लेच्छ राज्य करै। सो महापापी दुष्टनि का नायक, महा निर्दई, बड़ी सेनातैं नाना प्रकार के आयुधनिकर मंडित, सकल म्लेच्छ संग लेय आप देश उजाड़नेकूं आए, सो अनके देश उजाड़े। कैसे हैं म्लेच्छ? करुणाभाव रहित प्रचण्ड हैं चित्त जिनके, अर अत्यन्त है दौड़ जिनकी। सो जनक राजा का देश उजाड़नेकूं उद्यमी भए। जैसैं टिड्डीदल आवै तैसैं म्लेच्छों के दल आए, सब को उपद्रव करण लगे।

तब राजा जनक ने अयोध्या को शीघ्र ही मनुष्य पठाए। म्लेच्छ के आवने के सब समाचार राजा दशरथकूं लिखे। सो जनक के जन शीघ्र ही जाय सकल वृत्तांत दशरथ सूं कहते भए – हे देव! जनक वीनती करी है, परचक्र भीलनि का आया, सो सब पृथ्वी उजाड़े है। अनेक आर्यदेश विध्वंस किए। ते पापी प्रजाकूं एक वर्ण किया चाहे हैं, सो प्रजा नष्ट भई। तब हमारे जीवेकर कहा? अब हमको कहां कर्त्तव्य है? उनसे लड़ाई करना अथवा कोई गढ़ पकड़ तिष्ठें, लोकनिकूं गढ़ में राखें। कालिन्द्री भागा नदी की तरफ विषमस्थल है वहां जावै, अथवा विपुलाचल की तरफ जावैं, अथवा सर्व सेना सहित कुंजगिरि की ओर जावें। परसेना महा भयानक आवैं है। साधु श्रावक सर्वलोक अति विह्वल हैं। ते पापी गौ आदि सब जीवनि के भक्षक हैं। सो जो आप आज्ञा देहु सो करैं। यह राज्य भी तिहारा और पृथ्वी भी तिहारी। यहां की प्रतिपालना सब तुमकूं कर्त्तव्य है। प्रजा की रक्षा किए धर्म की रक्षा होय है।

श्रावक लोक भावसहित भगवान की पूजा करै हैं, नाना प्रकार के व्रत धरै हैं, दान करै हैं, शील पालै हैं, सामायिक करै हैं, पोशा परिक्रमणा करै हैं, भगवान के बड़े बड़े चैत्यालय तिनविषै महा उत्सव होय है, विधिपूर्वक अनेक प्रकार महापूजा होय है, अभिषेक होय है, विवेकी लोक प्रभावना करै हैं। अर साधु दशलक्षणधर्म कर युक्त, आत्मध्यान में आरूढ़ मोक्ष का साधन तप करै हैं। तो प्रजा के नष्ट भए साधु अर श्रावक का धर्म लुपै है। अर प्रजा के होते धर्म अर्थ काम मोक्ष सब सधै हैं। जो राजा परचक्रतैं पृथ्वी की प्रतिपालना करै सो प्रशंसा के योग्य है। राजा के

प्रजा की रक्षातैं यालोक परलोकविषै कल्याण की सिद्धि होय है। प्रजा बिना राजा नहीं, अर राजा बिना प्रजा नहीं। जीवदयामय धर्म का जो पालन करै सो यह लोक परलोक में सुखी होय है। धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्रवृत्ति लोकनि के राजा की रक्षा से होय है, अन्यथा कैसे होय? राजा के भुजबल की छाया पायकर प्रजा सुख से रहै है। जाके देश में धर्मात्मा धर्म सेवन करै हैं, दान तप शील पूजादिक करै हैं, सो प्रजा की रक्षा के योगतैं छठा अंश राजा कों प्राप्त होय है।

यह सब वृत्तांत राजा दशरथ सुनकर आप चलने को उद्यमी भए, अर श्रीराम को बुलाय राज्य देना विचार्‍या। वादित्रनि के शब्द होते भए, सब मंत्री आए, अर सब सेवक आए। हाथी घोड़े रथ पयादे सब आय ठाढ़े भए। जल के भरे स्वर्णमयी कलश सेवक लोग स्नान के निमित्त भर लाए। अर शस्त्र बांधकरि बड़े बड़े सामंत लोक आए। अर नृत्यकारिणी नृत्य करती भई। अर राजलोक की स्त्री जन नाना प्रकार के वस्त्र आभूषण पटलनि मैं ले आई। यह राज्याभिषेक का आडम्बर देखकर राम दशरथसूं पूछते भये कि हे प्रभो! यह कहा है?

जब दशरथ कही – हे भद्र! तुम या पृथ्वी की प्रतिपालना करो, मैं प्रजा के हित निमित्त शत्रुवनि के समूहतैं लड़ने जाऊं हूं। वे शत्रु देवनिकर हू दुर्जय हैं।

तदि कमलसारिखे हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीराम कहते भए – हे तात! ऐसे रंकन पर एता परिश्रम कहा? ते आपके जायबे लायक नाहीं। वे पशुसमान दुरात्मा जिनसूं संभाषण करना उचित नाहीं, तिनके सन्मुख युद्ध की अभिलाषा कर आप कहां पधारे? उन्दरु (चूहा) के उपद्रव कर हस्ती कहा क्रोध करै? अर रुई के भस्म करवे के अर्थ अग्नि कहा परिश्रम करै? तिन पर जायवे की हमकूं आज्ञा देहु यही उचित है।

ये राम के वचन सुन दशरथ अति हर्षित भए। तदि रामकूं उरसूं लगाय कहते भए। हे पद्म! कमल समान हैं नेत्र जाके ऐसे तुम बालक, सुकुमार अंग, कैसैं उन दुष्टनिसूं जीतोगे? यह बात मेरे मन में न आवै।

तब राम कहते भए – हे तात! कहा तत्काल का उपज्या अग्नि की कण का मात्र हूं विस्तीर्ण वन को भस्म न करै? करै ही करै। छोटी बड़ी अवस्थासूं कहा प्रयोजन? अर जैसैं अकेला ऊगता ही बालसूर्य घोर अंधकारकूं हरैं ही है तैसैं हम बालक तिन दुष्टनिकूं जीतैं ही जीतैं।

ये वचन राम के सुन राजा दशरथ अति प्रसन्न भए, रोमांच होय आए, अर बालपुत्रकूं भेजने का कछुएक विषाद भी न उपज्या, नेत्र सजल होय गए। राजा मन में विचारै हैं जो महापराक्रमी त्यागादि व्रत के धारणहारे क्षत्री तिनकी यही रीति है – जो प्रजा की रक्षा के निमित्त अपने प्राण भी तजने का उद्यम करैं। अथवा आयु के क्षय बिना मरण नाहीं, यद्यपि गहन रण में जाय तौ हू

न मरै। ऐसा चिंतवन करता जो राजा दशरथ ताके चरणकमल युग सह नमस्कारकरि राम लक्ष्मण बाहिर नीसरे।

सब शास्त्र अर शस्त्र विद्याविषै प्रवीण, सर्व लक्षणनिकरि पूर्ण, सबकूं प्रिय है दर्शन जिनका,चतुरंग सेनाकरि मंडित, विभूतिकरि पूर्ण, अपने तेजकर देदीप्यमान, दोऊ भाई राम लक्ष्मण रथविषै आरूढ़ होय जनक की मदद चाले। सो इनके जायवे पहिले जनक अर कनक दोऊ भाई परसैना का दो योजन अंतर जान युद्ध करवेकूं चढ़े हुते, सो जनक कनक के महारथी योधा शत्रुनि के शब्द न सहते संते म्लेच्छनि के समूह में जैसैं मेघ की घटा में सूर्यादिक ग्रह प्रवेश करैं तैसैं यह थे, सो म्लेच्छों के अर सामंतनि के महायुद्ध भया। जाके देखैं अर सुने रोमांच होय आवै। कैसा संग्राम भया? बड़े शस्त्रनिकरि किया है प्रहार जहां, दोऊ सेना के लोक व्याकुल भए, कनक कूं म्लेच्छनि का दबाव भया तदि जनक भाई की मदद के निमित्त अति क्रोधायमान होय दुर्निवार हाथियों की घटा प्रेरता भया। सो वे बरबर देश के म्लेच्छ महा भयानक जनककूं दबावते भये।

ताही समय राम लक्ष्मण लाय पहुंचे। अति अपार महागहन म्लेच्छनि की सेना रामचन्द्र देखी। सो श्रीरामचन्द्र का उज्ज्वल छत्र देख कर शत्रुनि की सेना कम्पायमान भई, जैसैं पूर्णमासी के चंद्रमा का उदय देखकर अंधकार का समूह चलायमान होय। म्लेच्छनि के बाणनिकरि जनक का बखतर टूट गया हुता, अर जनक खेदखिन्न भया हुता, सो राम ने धीर्य बंधाया। जैसैं संसारी जीव कर्मनिके उदय कर दुखी होय सो धर्म के प्रभावतैं दुखनितैं छूटे सुखी होय, तैसैं जनक राम के प्रभावकर सुखी भया। चंचल तुरंगनि कर युक्त जो रथ, ताविषै आरूढ़, जो राघव, महाउद्योतरूप है शरीर जिनका, बखतर पहिरे, हार अर कुंडल मंडित, धनुष चढ़ाए और बाण हाथ में सिंह के चिह्न की है ध्वजा जिनके, अर जिन पर चमर ढुरे हैं, और महामनोहर उज्ज्वल छत्र सिर पर फिरै हैं, पृथ्वी के रक्षक, धीर वीर है मन जिनका, ऐसे श्रीराम लोक के वल्लभ, प्रजा के पालक, शत्रुनि की विस्तीर्ण सेनाविषै प्रवेश करते भए।

सुभटनि के समूह कर संयुक्त जैसे सूर्य किरणनि के समूह कर सोहै है तैसैं शोभते भए। जैसैं माता हाथी कदलीवन में बैठ्या केलनि के समूह का विध्वंस करै तैसैं शत्रुनि की सेना का भंग किया। जनक अर कनक दोऊ भाई बचाए। अर लक्ष्मण जैसे मेघ बरसै तैसैं बाणनि की वर्षा करता भया। तीक्ष्ण सामान्य चक्र अर शक्ति कनक त्रिशूल कुठार करात इत्यादि शस्त्रनि के समूह लक्ष्मण के भुजानिकर चले। तिनकर अनेक म्लेच्छ मुवे। जैसैं फरसीनकर वृक्ष कटें तैसे भील पारधी महाम्लेच्छ लक्ष्मण के वाणनि कर विदारे गये हैं उरस्थल जिनके, कट गई हैं भुजा अर ग्रीवा जिनकी, हजारों पृथ्वीविषै पड़े। तदि वे पृथ्वी के कटक तिनकी सेना लक्ष्मण आगै भागी।

लक्ष्मण सिंहसमान दुर्निवार, ताहि देखकर जे म्लेच्छ में शार्दूल समान हुते तेहू अति क्षोभकूं प्राप्त भए। महावादित्र के शब्दकरते, अर मुखतैं भयानक शब्द करते, अर धनुषबाण खड्ग चक्रादि अनेक शस्त्रनिकूं धरै, अर रक्त वस्त्र पहिरे, खंजर जिनके हैं हाथ में, नाना वर्ण का अंग जिनका, कई एक काजल समान श्याम, कई एक कर्दम, कई एक ताम्रवर्ण वृक्षनि के बक्कल पहिरे, अर नाना प्रकार के गेरुवादि रंग तिनकरि लिप्त हैं अंग जिनके, अर नाना प्रकार के वृक्षनि की मंजरी तिनके हैं छोगा सिर पर जिनके, अर कौडी सारिखे हैं दांत जिनके, अर विस्तीर्ण हैं उदर जिनके, ऐसे भासैं मानों कुटजजाति के वृक्ष ही फूलै हैं।

अर कई एक निज हाथनि विषै आयुधनिकूं धरे कठोर है जंघा जिनकी, भारी भुजानि के धरणहारे, मानूं असुरकुमार देवनिसारिखे उनमत्त, महानिर्दई, पशुमांस के भक्षक, महामूढ, जीवहिंसाविषै उद्यमी, जन्महीतैं लेकर पापनि के करणहारे, तत्काल खोटे आरम्भ के करणहारे, अर सूकर भैंस व्याघ्र ल्याली इत्यादि जीवनि के चिह्न हैं जिनकी ध्वजानि में नाना प्रकार के जे वाहन तिन पर चढ़े, पत्रनि के हैं छत्र जिनके, नाना प्रकार युद्ध के करणहारे, अति दौड़ के करणहारे, महा प्रचण्ड तुरंग समान चंचल, ते भील मेघमाला समान लक्ष्मणरूप पर्वत पर मेघमाला समान अपने स्वामीरूप पवन के प्रेरे बाणवृष्टि करते भए। तदि लक्ष्मण तिनके निपात करवेकूं उद्यमी तिन पर दौड़े, महाशीघ्र है वेग जिनका, जैसैं महा गजेन्द्र वृक्षनि के समूह पर दौड़े। सो लक्ष्मण के तेज प्रतापकरि वे पापी भागे, सो परस्पर पगनि कर मसले गए।

तदि तिनका अधिपति आतरंगतम अपनी सेनाकूं धीर्य बंधाय सकल सेनासहित आप लक्ष्मण के सन्मुख आया। महाभयंकर युद्ध किया, लक्ष्मणकूं रथरहित किया। तदि श्रीरामचन्द्र अपना रथ चलाया, पवन समान है वेग जाका, लक्ष्मण के समीप आए। लक्ष्मणकूं दूजे रथ पर चढ़ाया अर जैसैं अग्नि बनकूं भस्म करै तैसैं तिनकी अपार सेना बाणनिरूप अग्निकर भस्म करी। कई एक तो बाणनिकर मारे, अर कई एक कनक नामा शस्त्रनिकरि विध्वंसे, कई एक तोमरनामा आयुधनिकरि हते, कई एक सामान्य चक्रनामा शस्त्रनिकरि निपात किए। वह म्लेच्छनि की सेना महाभयंकर दश दिशाकूं जाती रही। छत्र चमर ध्वजा धनुष आदि शस्त्र डारे भाजे। महा पुण्याधिकारी जो राम तिनने एकनिमिष में म्लेच्छनि का निराकरण किया। जैसैं महामुनि क्षणमात्र में सर्व कषायनि का निराकरण करै तैसैं म्लेच्छनि का निपात किया।

वह पापी आतरंगतम अपार सेनारूप समुद्रकरि आया हुता, सो भयकरि युक्त दस घोड़ा के असवार निसूं भाग्या। तदि श्रीराम आज्ञा करी ये नपुंसक युद्धतैं पराङ्गमुख होय भागै, अब इनके मारवेकरि कहा? तब लक्ष्मण भाई सहित पाछे बाहुड़े। वे म्लेच्छ भयकरि व्याकुल होय

सह्याचल विंध्याचल के वननि में छिप गए। श्रीरामचन्द्र के भयतैं पशु हिंसादिक दुष्ट कर्मकूं तजि वन के फलनि का आहार करैं। जैसैं गरुड़तैं सर्प डरै तैसैं श्रीरामसूं डरते भए। लक्ष्मण सहित श्रीराम शांत है स्वरूप जिनका, राजा जनक कूं बहुत प्रसन्न कर विदा किया। अर आप अपने पिता के समीप अयोध्याकूं चाले। सर्व पृथ्वी के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। यह देख सबकूं परम आनन्द उपज्या, परमहर्षकरि रोमांच होय आए। राम के प्रभाव सर्व पृथ्वी शोभायमान भई – जैसैं चतुर्थकाल के आदि ऋषभदेव के समय सम्पदा से शोभायमान भई हुती। धर्म अर्थ कामकरि युक्त जे पुरुष तिनसे जगत ऐसा भासता भया जैसैं बर्फ के अवरोध कर वर्जित जे नक्षत्र तिनसूं आकाश शोभै।

गौतम स्वामी कहे हैं – हे राजा श्रेणिक! ऐसा राम का माहात्म्य देखकर जनक अपनी पुत्री सीता रामकूं देनी विचारी। बहुत कहवेकरि कहा? जीवनि के संयोग तथा वियोग का कारण भाव एक कर्म का उदय ही है। सो वह श्रीराम श्रेष्ठ पुरुष, महासौभाग्यवंत, अतिप्रतापी, औरन में न पाइए ऐसे गुणनिकरि पृथ्वीविषै प्रसिद्ध होता भया, जैसैं किरणनि के समूहकर सूर्य महिमाकूं प्राप्त होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै म्लेच्छनि की हार, राम की जीत का कथन वर्णन करने वाला सत्ताइसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।27।।

अथानन्तर ऐसे पराक्रम कर पूर्ण जो राम तिनकी कथा बिना नारद एक क्षण भी न रहे, सदा राम कथा करवो ही करै। कैसा है नारद? राम के यश सुनकर उपज्या है परम आश्चर्य जाकों।

बहुरि नारद ने सुनी जो जनक ने राम को जानकी देनी विचारी, कैसी है जानकी? सर्व पृथ्वीविषै प्रकट है महिमा जाकी। नारद मन में चिंतवता भया, एक बार सीताकूं देखूं जो कैसी है, कैसे लक्षणनिकर शोभायमान है जो जनक ने राम को देनी करी है। सो नारद शील संयुक्त है हृदय जाका, सीता के देखवेकूं सीता के घर आया। सो सीता दर्पण में मुख देखती हुती। सो नारद की जटा दर्पण में भासी सो कन्या भयकर व्याकुल भई। मन में चितवती भई हाय माता! यह कौन है? भयकर कम्पायमान होय महल के भीतर गई। नारद भी लार ही महल में जाने लगे।

तब द्वारपाल ने रोका सो नारद के अर द्वारपाल के कलह हुवा। कलह के शब्द सुन खड्ग अर धनुष के धारक सामंत दौड़े ही गए कहते भए, पकड़ लो पकड़ लो यह कौन है। ऐसे तिन शस्त्रधारियों के शब्द सुनकर नारद डरा, आकाशविषै गमन कर कैलाश पर्वत गया, तहां तिष्ठकर चितवता भया।

जो मैं महाकष्टकूं प्राप्त भया सो मुश्किल से बचा, नवां जन्म पाया। जैसे पक्षी दावानल से बाहिर निकसै तैसैं मैं वहां से निकस्या। सो धीरे धीरे नारद की कांपनी मिटी। अर ललाट के पसेव

पूंछ, केश बिखर गए हुते ते समारकर बांधे, कांपे हैं हाथ जाके, ज्यों ज्यों वह बात याद आवै त्यों त्यों निश्वास नाखै। महाक्रोधायमान होय मस्तक हलाएं ऐसैं विचारता भया कि देखो कन्या की दुष्टता। मैं अदुष्टचित्त सरल स्वभाव राम के अनुरागतैं ताके देखवेकूं गया हुता सो मृत्यु अवस्थाकूं प्राप्त भया। यम समान दुष्ट मनुष्य मोहि पकड़वे कू आए सो भली भई जो बचा, पकड़ा न गया। अब वह पापिनी मो आगे कहां बचे? जहां जहां जाय तहां ही उसे कष्ट में नाखूं। मैं बिना बजाए वादित्र नाचूं, सो जब वादित्र बाजै तब कैसे टरूं?

ऐसा विचारकर शीघ्र ही वैताड्य की दक्षिण श्रेणीविषै जो रथनूपुर नगर वहां गया। महा सुन्दर जो सीता का रूप सो चित्रपटविषै लिख ले गया। कैसा है सीता का रूप? महा सुन्दर है ऐसा लिखा मानों प्रत्यक्ष ही है। सो उपवनविषै भामंडल,चन्द्रगति का पुत्र अनेक कुमारनि सहित क्रीड़ा करनेकूं आया हुता सो चित्रपट उसके समीप डार आप छिप रह्या। सो भामण्डल ने यह तो न जान्या कि यह मेरी बहिन का चित्रपट है, चित्रपट देख मोहित चित्त भया। लज्जा अर शास्त्रज्ञान अर विचार सब भूल गया। लम्बे लम्बे निश्वास नाखै, होंठ सूख गये, गात शिथिल हो गया, रात्रि अर दिवस निद्रा न आवै। अनेक मनोहर उपचार कराये तो भी इसे सुख नाहीं। सुगन्ध पुष्प अर सुन्दर आहार याहि विष समान लागे। शीतल जल छांटिये तौ भी संताप न जाय। कबहू मौन पकड़ रहे, कबहूं हंसै, कबहू विकथा बकै, कबहू उठ खड़ा रहै, वृथा उठ चलै बहुरि पाछा आवै। ऐसी चेष्टा करै मानो याहि भूत लगा है।

तब बड़े बड़े बुद्धिमान याहि कामातुर जान परस्पर बात करते भए। जो यह कन्या का रूप किसी ने चित्रपटविषै लिखकर याके ढिग आय डार्‍या, सो यह विक्षिप्त होय गया। कदाचित् यह चेष्टा नारद ने ही करी होय। तब नारद ने अपने उपायकर कुमार कूं व्याकुल जान लोगन की बात सुन कुमार के बन्धूनिकूं दर्शन दिया। तब तिनने बहुत आदर कर पूछा – हे देव! कहो यह कौन की कन्या का रूप है? तुमने कहां देखी? यह कोऊ स्वर्गविषै देवांगना का रूप है अथवा नागकुमारी का रूप है, या पृथ्वीविषै आई होवेगी सो तुमने देखी।

तब नारद माथा हलायकर बोला कि मिथिला नामा नगरी है। वहां महासुन्दर राजा इन्द्रकेतु का पुत्र जनक राज्य करै है। ताके विदेहा राणी है। सो राजा को अतिप्रिय है। तिनकी पुत्री सीता का यह रूप है। ऐसा कहकर फिर नारद भामण्डल से कहते भए – हे कुमार! तू विषाद मत कर, तू विद्याधर राजा का पुत्र है। तोहि यह कन्या दुर्लभ नाहीं, सुलभ ही है। अर तू रूपमात्र से ही क्या अनुरागी भया, यामैं बहुत गुण हैं। याके हावभाव विलासादिक कौन वर्णन कर सकै? अर यही देखे तेरा चित्त वशीभूत हुआ सो क्या आश्चर्य है। जिसे देख बड़े पुरुषनि का भी चित्त मोहित

हो जाय। मैं तो आकारमात्र पट में लिख्या है। ताकी लावण्यता वाहीविषै है, लिखवे में कहां आवै? नवयौवन रूप जलकर भरा जो कांतिरूप समुद्र ताकी लहरनिविषै वह स्तनरूप कुम्भनिकर तिरैं है। अर ऐसी स्त्री तोय टार और कौन को योग्य। तेरा अर वाका संगम योग्य है।

या भांति कहकर भामंडलकूं अति स्नेह उपजाया, अर आप नारद आकाशविषै विहार किया। भामंडल काम के बाणकर वेध्या अपने चित्त में विचारता भया कि यदि वह स्त्रीरत्न शीघ्र ही मुझे न मिले तो मेरा जीवना नाहीं। देखो यह आश्चर्य है, वह सुन्दरी परमकांति की धरणहारी मेरी हृदय में तिष्ठती हुई अग्नि की ज्वाला समान हृदयकूं आताप करै हैं। सूर्य है सो तो वाह्य शरीर को आताप करै है अर काम है सो अन्तरबाह्य दाह उपजावै है। सूर्य के आताप निवारवेकूं तो अनेक उपाय हैं परन्तु काम के दाह निवारवेकूं उपाय नाहीं। अब मुझे दो अवस्था आय बनी हैं। कै तो वाका संयोग होय अथवा काम के वाणनिकर मेरा मरण होयगा। निरंतर ऐसा विचारकर भामंडल विह्वल होय गया। सो भोजन तथा शयन सब भूल गया। ना महलविषै ना उपवन विषै याहि काहू ठौर साता नाहीं।

यह सब वृत्तांत कुमार की व्याकुलता का कारण नारदकृत कुमार की माता जानकर कुमार के पितासूं कहती भई – हे नाथ! अनर्थ का मूल जो नारद तानै एक अत्यन्त रूपवती स्त्री का चित्रपट लायकर कुमारकूं दिखाया। सो कुमार चित्रपटकूं देखकर अति विभ्रम चित्त होय गया, सो धीर्य नाहीं धरै हैं। लज्जारहित होय गया है। बारम्बार चित्रपटकूं निरखै है अर सीता ऐसे शब्द उच्चारण करै है। अर नाना प्रकार की अज्ञान चेष्टा करै है मानूं याहि वाय लगी है। तातैं तुम शीघ्र ही साता उपजावने का उपाय विचारो। वह भोजनादिकतैं पराङ्मुख होय गया है। सो वाके प्राण न छूटै ता पहिले ही यत्न करहु।

तब यह वार्ता चन्द्रगति सुनकर अति व्याकुल भया। अपनी स्त्रीसहित आयकर पुत्रकूं ऐसे कहता भया – हे पुत्र! तू स्थिरचित्त हो, अर भोजनादि सर्व क्रिया जैसैं पूर्व करै था तैसैं कर। जो कन्या तेरे मन में बसी है सो तुझे शीघ्र ही परणाऊंगा। या भांति कहकर पुत्र शांतता उपजाय राजा चन्द्रगति एकांतविषै हर्ष विषाद अर आश्चर्यकूं धरता संता अपनी स्त्रीसूं कहता भया – हे प्रिये! विद्याधरनि की कन्या अतिरूपवन्ती अनुपम, उनकूं तजकर भूमिगोचरिन का सम्बन्ध हमकूं कहां उचित? अर भूमिगोचरिन के घर हम कैसे जावेंगे? अर जो कदाचित् हम जाय प्रार्थना करैं अर वह न दे तो हमारे मुख की प्रभा कहां रहेगी? तातैं कोई उपायकर कन्या के पिताकूं यहां शीघ्र ही ल्यावें। अन्य उपाय नाहीं।

तब भामंडल की माता कहती भई – हे नाथ! युक्त अथवा अयुक्त तुम ही जानो। तथापि

ये तिहारे वचन मुझे प्रिय लागैं तब एक चपलवेग नामा विद्याधर अपना सेवक, आदर सहित बुलायकर राजा सकल वृत्तांत बाके कान में कहा, अर नीके समझाया। सो चपलवेग राजा की आज्ञा पाय बहुत हर्षित होय शीघ्र ही मिथिला नगरी को चाल्या। जैसैं प्रसन्न भया तरुणहंस सुगंध की भरी जो कमलिनी ताकी ओर जाय। यह शीघ्र ही मिथला नगरी जाय पहुंच्या। आकाशतैं उतरकर अश्व का भेष धर गौ महिषादि पशूनिकूं त्रास उपजावता भया। राजा के मंडल में उपद्रव किया। तब लोकनि की पुकार आई सो राजा सुनकर नगर के बाहिर निकस्या। प्रमोद उद्वेग अर कौतुक का भर्‌या राजा अश्वकूं देखता भया। कैसा है अश्व? नवयौवन है, अर उछलता संता अति तेजकूं धरै, मन समान है वेग जाका, सुन्दर हैं लक्षण जाके, अर प्रदक्षिणारूप महा आवर्तकूं धरै हैं, मनोहर है मुख जाका, अर महा बलवान खुरों के अग्रभागकर मानों मृदंग ही बजावै है, जापर कोई चढ़ न सकै अर नासिका का शब्द करता संता अति शोभायमान है। ऐसे अश्वकूं देखकर राजा हर्षित होय बारम्बार लोगनिसूं कहता भया – यह काहु का अश्व बंधन तुड़ाय आया है।

तब पंडितनि के समूह राजासूं प्रियवचन कहते भए – हे राजन्! या तुरंग के समान कोई तुरंग नाहीं, औरों की तो क्या बात ऐसा अश्व राजा के भी दुर्लभ। आप के भी देखने में ऐसा अश्व न आया होयगा। सूर्य के रथ के तुरंगनि की अधिक उपमा सुनिए है सो या समान तो ते भी न होयेंगे। कोई दैव के योगतैं आपके निकट ऐसा अश्व आया है सो आप वाहि अंगीकार करहु। आप महापुण्याधिकारी हो।

तब राजा ने अश्व को अंगीकार किया। अश्वशाला में ल्याय सुन्दर डोरीतैं बांधा अर भांतिभांति की योग सामग्री कर याके यत्न किए। एक मास याकूं यहां हुआ। एक दिन सेवक ने आय राजाकूं नमस्कार कर विनती कीनी – हे नाथ! एक वन का मतंग गज आया है सो उपद्रव करै है। तब राजा बड़े गज पर असवार होय वा हाथी की ओर गए। वह सेवक जिसने हाथी का वृत्तांत आय कहा था, ताके कहे मार्गकर राजा ने महावन में प्रवेश किया। सो सरोवर के तट हाथी खड़ा देखा अर चाकरनिसूं कहा जो एक तेज तुरंग ल्यावो। तब मायामई अश्वकूं तत्काल ले गए। सुंदर है शरीर जाका, राजा उस पर चढ़े। सो वह आकाश में राजाकूं ले उड़ा। तब सब परिजन पुरजन हाहाकार कर शोकवंत भए। आश्चर्य कर व्याप्त हुवा है मन जिनका तत्काल पाछे नगर में गये।

अथानन्तर वह अश्व के रूप का धारक विद्याधर, मन समान है वेग जाका, अनेक नदी पहाड़ वन उपवन नगर ग्राम देश उलंघन कर राजाकूं रथनूपुर ले गया। जब नगर निकट रह्या तब एक वृक्ष के नीचे आय निकस्या। सो राजा जनक वृक्ष की डाली पकड़ लूंब रहा। वह तुरंग नगरविषै आया। राजा वृक्षतैं उतर विश्रामकर आश्चर्य सहित आगैं गया। तहां एक स्वर्णमई ऊंचा कोट

देख्या, अर दरवाजा रत्नमई तोरणनि कर शोभायमान, अर महासुन्दर उपवन देख्या। ताविषै नाना जाति के वृक्ष अर बेल फल फूलनिकर सम्पूर्ण देखे, जिन पर नाना प्रकार के पक्षी शब्द करै हैं। अर जैसैं सांझ के बादले होवें तैसैं नाना रंग के अनेक महिल देखे, मानों ये महिल जिनमंदिर की सेवा ही करै हैं।

तब राजा खड्ग को दाहिने हाथ में मेल सिंह समान अति निशंक, क्षत्रीव्रत में प्रवीण दरवाजे में गया। दरवाजे के भीतर नाना जाति के फूलनि की बाड़ी अर रत्न स्वर्ण के सिवाण जाके ऐसी वापिका, स्फटिकमणि समान उज्ज्वल है जल जाका, अर महा सुगन्ध मनोग्य विस्तीर्ण कुंद जाति के फूलनि के मंडप देखे। चलायमान हैं पल्लवों के समूह जिनके अर संगीत करै हैं भ्रमरों के समूह जिन पर, अर माधवी लतानि के समूह फूले देखे। महा सुन्दर अर आगे प्रसन्न नेत्रनिकर भगवान का मंदिर देख्या। कैसा है मंदिर? मोतिनि की झालरिनिकर शोभित, रत्ननि के झरोखनिकर संयुक्त, स्वर्णमई हजारां महास्तम्भ तिनकर मनोहर, अर जहां नाना प्रकार के चित्राम, सुमेरु के शिखर समान ऊंचे शिखर, अर बज्रमणि जे हीरा तिनकर बेढ्या है पीठ (फरश) जाका, ऐसे जिनमन्दिरकूं देखकर जनक विचारता भया कि यह इन्द्र का मंदिर है अथवा अहमिंद्र का मन्दिर है। ऊर्धलोकतैं आया है अथवा नागेन्द्र का भवन पातालतैं आया है, अथवा काहू कारणतैं सूर्य की किरणनि का समूह पृथ्वीविषै एकत्र भया है।

अहो उस मित्र विद्याधर ने मेरा बड़ा उपकार किया जो मोहि यहां ले आया, ऐसा स्थानक अब तक देख्या नाहीं। भला मन्दिर देख्या। ऐसा चिंतवनकर महामनोहर जो जिनमंदिर ताविषै बैठि फूल गया है मुखकमल जाका श्रीजिनराज का दर्शन किया। कैसे हैं श्रीजिनराज? स्वर्ण समान हैं वर्ण जिनका, अर पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है सुन्दर मुख जिनका, अर पद्मासन विराजमान, अष्ट प्रातिहार्य संयुक्त, कनकमई कमलनिकर पूजित, अर नाना प्रकार के रत्ननिकर जड़ित जे छत्र ते हैं सिर पर जिनके, अर ऊंचे सिंहासन पर तिष्ठै हैं। तब जनक हाथ जोड़ सीस निवाय प्रणाम करता भया। हर्ष कर रोमांच होय आए। भक्ति के अनुराग कर मूर्छाकूं प्राप्त भया, क्षण एक सचेत होय भगवान की स्तुति करने लाग्या। अति विश्रामकूं पाय परम आश्चर्यकूं धरता संता जनक चैत्यालयविषै तिष्ठै है।

वह चपलवेग विद्याधर जो अश्व का रूपकर इनको ले आया हुता सो अश्व का रूप दूर कर राजा चन्द्रगति के पास गया, अर नमस्कार कर कहता भया। मैं जनककूं ले आया, मनोग्य वन में भगवान के चैत्यालयविषै तिष्ठै है, तब राजा सनुकर बहुत हर्षकूं प्राप्त भया। थोड़े से समीपी लोक लार लेय राजा चन्द्रगति, उज्ज्वल है मन जाका, पूजा की सामग्री लेय मनोरथ समान रथ

पर आरूढ़ होय चैत्यालयविषै आया। सो राजा जनक चन्द्रगति की सेनाकूं देख अर अनेक वादित्रनि का नाद सुनकर कछुइक शंकायमान भया। कई एक विद्याधर मायामई सिंहों पर चढ़े हैं, कई एक मायामई हाथिनि पर चढ़े हैं, कई एक घोड़ावों पर चढ़े, कई एक हंसों पर चढ़े, तिनके बीच में राजा चन्द्रगति है। सो देखकर जनक विचारता भया जो विजयार्ध पर्वत पर विद्याधर बसै है ऐसी मैं सुनता सो ये विद्याधर हैं। विद्याधरनि की सेना के मध्य यह विद्याधरों का अधिपति कोई परम दीप्ति कर शोभै है। ऐसा चिंतवन जनक करै है।

ताही समय वह चन्द्रगति राजा दैत्यजाति के विद्याधरनि का स्वामी चैत्यालयविषै आय प्राप्त भया। महाहर्षवंत नम्रीभूत है शरीर जाका। तब जनक ताकूं देखकर कछुइक भयवान होय भगवान के सिंहासन के नीचे बैठ रह्या। अर वह राजा चन्द्रगति भक्ति कर भगवान के चैत्यालयविषै जाय प्रणाम कर, विधिपूर्वक महा उत्तम पूजा करी। अर परम स्तुति करता भया। बहुरि सुन्दर हैं स्वर जाके, ऐसी बीणा हाथ में लेयकर महाभावना सहित भगवान के गुण गावता भया। सो कैसैं गावै है सो सुनो।

अहो भव्यजीव हो! जिनेंद्र को आराधहु। कैसे हैं जिनेंद्रदेव? तीन लोक के जीवनिकूं वरदाता, अर अविनाशी है सुख जिनके, अर देवनि में श्रेष्ठ जे इन्द्रादिक तिनकर नमस्कार करने योग्य हैं। कैसे हैं इन्द्रादिक? महा उत्कृष्ट जो पूजा का विधान ताविषै लगाया है चित्त जिन्होंने। अहो उत्तम जन हो! श्रीऋषभदेव को मन वचकायकर निरंतर भजो। कैसे हैं ऋषभदेव? महा उत्कृष्ट हैं, अर शिवदायक हैं। जिनके भजे ते जन्म जन्म के पाप किये समस्त विलय होय हैं। अहो प्राणी हो! जिनवर को नमस्कार करहु। कैसे हैं जिनवर? महा अतिशय धारक हैं, कर्मनि के नाशक हैं, अर परमगति जो निर्वाण ताकूं प्राप्त भए हैं। अर सर्व सुरासुर नर विद्याधर, उन कर पूजित हैं चरण कमल जिनके। क्रोधरूप महाबैरी का भंग करनहारे हैं। मैं भक्तिरूप भया जिनेन्द्रकूं नमस्कार करूं हूं। उत्तम लक्षणकर संयुक्त है देह जिनका, अर विनय कर नमस्कार करै हैं सर्व मुनियों के समूह जिनको ते भगवान नमस्कार मात्र ही से भक्तों के भय हरे हैं।

अहो भव्य जीव हो! जिनवर को बारम्बार प्रणाम करहू। वे जिनवर अनुपम गुण को धरै हैं, अर अनुपम है काया जिनकी, अर हते हैं संसारमई सकल कुकर्म जिनने, अर रागादिक रूप जे मल तिनकर रहित महानिर्मल हैं, अर ज्ञानावरणादिक रूप जो पट तिनके दूर करनहारे, पार करबेकूं अति प्रवीण हैं, अर अत्यन्त पवित्र हैं। या भांति राजा चन्द्रगति बीण बजाय भगवान की स्तुति करी।

तब भगवान के सिंहासन के नीचेतैं राजा जनक भय तज कर जिनराज की स्तुति कर निकस्या, महाशोभायमान। जब चन्द्रगति जनककूं देख हर्षित भया है मन जाका सो पूछता भया

– तुम कौन हो? या निर्जन स्थानकविषै भगवान के चैत्यालयविषै कहांतैं आए हो? तुम नागों के पति नागेन्द्र हो अथवा विद्याधरों के अधिपति हो। हे मित्र! तुम्हारा नाम क्या है सो कहो।

तब जनक कहता भया – हे विद्याधरों के पति! मैं मिथिला नगरी से आया हूं, अर मेरा नाम जनक है। मायामई तुरंग मोहि ले आया है। जब ये समाचार जनक ने कहे तब दोऊ अति प्रीतिकर मिले। परस्पर कुशल पूछी। एक आसन पर बैठ, फिर क्षण एक तिष्ठकर दोउ आपस में विश्वास को प्राप्त भए। तब चन्द्रगति और कथाकर जनककूं कहते भए – हे महाराज! मैं बड़ा पुण्यवान जो मोहि मिथिला नगरी के पति का दर्शन भया। तिहारी पुत्री महा शुभ लक्षणनिकर मण्डित है, मैं बहुत लोकनि के मुख से सुनी है। सो मेरे पुत्र भामंडल को देवो, तुमसे सम्बन्ध पाय मैं अपना परम उदय मानूंगा।

तब जनक कहते भए – हे विद्याधराधिपति! तुम तो कही जो सब योग्य है, परन्तु मैं मेरी पुत्री राजा दशरथ के बड़े पुत्र जो श्रीरामचन्द्र तिनकूं देनी करी है। तब चन्द्रगति बोले काहेते उनको देनी करी है? तब जनक ने कही जो तुमको सुनिवे को कौतुक है तो सुनहु।

मेरी मिथिलापुरी रत्नादिक धनकर अर गौ आदि पशुधन कर पूर्ण, सो अर्धबर्बर देश के म्लेच्छ महा भयंकर उन्होंने आय मेरे देश को पीड़ा करी, धन के समूह लूटने लगे, अर देश में श्रावक अर यति का धर्म मिटने लगा। सो मेरे अर म्लेच्छों के महायुद्ध भया। ता समय राम आय मेरी अर मेरे भाई की सहायता करी। वे म्लेच्छ जो देवों से भी दुर्जय, सो जीते। अर राम का छोटा भाई लक्ष्मण, इन्द्र समान पराक्रम का धरणहारा है, अर बड़े भाई का सदा आज्ञाकारी, महाविनयकर संयुक्त है। वे दोनों भाई आयकर जो म्लेच्छनि की सेना को न जीतते तो समस्त पृथ्वी म्लेच्छमई हो जाती। वे म्लेच्छ महा अविवेकी शुभक्रियारहित, लोककूं पीड़ाकारी, महा भयंकर विष समान दारुण उत्पात का स्वरूप ही हैं।

सो राम के प्रसाद कर सब भाज गए। पृथ्वी का अमंगल मिट गया। वे दोनों राजा दशरथ के पुत्र महादयालु लोकनि के हितकारी, तिनकूं पायकर राजा दशरथ सुख से सुरपति समान राज्य करै है। ता दशरथ के राजविषै महासम्पदावान लोक बसै हैं। अर दशरथ महा शूरवीर है। जाके राज्य में पवन हू काहू का कछु नाहीं हर सकै तो और कौन हरे? राम लक्ष्मण ने मेरा ऐसा उपकार किया तब मोहि ऐसी चिंता उपजी जो मैं इनका कहा प्रतिउपकार करूं। रात्रि दिवस मोहि निद्रा न आवती भई। जाने मेरे प्राण राखे, प्रजा राखी, ता राम समान मेरे कौन? मोंतैं कबहु कछु उनकी सेवा न बनी, अर उनने बड़ा उपकार किया।

तब मैं विचारता भया – जो अपना उपकार करै अर उसकी सेवा कछु न बनै तो कहा

जीतव्य? कृतघ्न का जीतव्य तृण समान है। तब मैंने मेरी पुत्री सीता नवयौवन पूर्ण रामयोग्य जान राम को देनी विचारी। तब मेरा सोच कछु इक मिट्या। मैं चिंतारूप समुद्र में डूबा हुता सो पुत्री नावरूप भई? तातैं मैं सोचसमुद्रतैं निकस्या। राम महा तेजस्वी हैं। यह वचन जनक के सुन चन्द्रगति के निकटवर्ती और विद्याधर मलिन मुख होय कहते भए – अहो! तुम्हारी बुद्धि शोभायमान नाहीं। तुम भूमिगोचरी अपंडित हो। कहां वे रंक म्लेच्छ अर कहां उनके जीतवे की बड़ाई? या में कहा राम का पराक्रम, जाकी एती प्रशंसा तुमने म्लेच्छनि के जीतवे कर करी। राम का जो ऐसा स्तोत्र किया सो इसमें उलटी निंदा है। अहो! तुम्हारी बात सुन हांसी आवै है, जैसैं बालक को विषफल ही अमृत भासै है, अर दरिद्रकूं बदरी (बेरी) फल ही नीके लागैं, अर काक सूके वृक्षविषै प्रीति करै, यह स्वभाव ही दुर्निवार है। अब तुम भूमिगोचरियों का खोटा सम्बन्ध तजकर यह विद्याधरों का इन्द्र राजा चन्द्रगति तासूं संबंध करहु। कहां देवों समान सम्पदा के धरणहारे विद्याधर, अर कहां वे रंक भूमिगोचरी? सर्वथा अति दुखी।

तब जनक बोले – क्षीरसागर अत्यन्त विस्तीर्ण है, परन्तु तृषा हरता नाहीं। अर वापिका थोड़े ही मिष्ट जल से भरी है सो जीवनि की तृषा हरै है। अर अंधकार अत्यन्त विस्तीर्ण है ताकर कहा? अर दीपक अल्प भी है परन्तु पृथ्वी में प्रकाश करै है, पदार्थनि को प्रकट करै है। अर अनेक माते हाथी जो पराक्रम न कर सकै सो अकेला केसरी सिंह का बालक करै है। ऐसे जब राजा जनक ने कहा तब वे सर्व विद्याधर कोपवंत होय अति शब्दकर भूमिगोचरियों की निंदा करते भए।

हो जनक! वे भूमिगोचरी विद्या के प्रभावतैं रहित, सदा खेदखिन्न, शूरवीरतारहित, आपदावान, तुम कहा उनकी स्तुति करो हो? पशुनि में अर उनमें भेद कहा? तुममें विवेक नाहीं तातैं उनकी कीर्ति करो हो।

तब जनक कहते भए – हाय! हाय! बड़ा कष्ट है जो मैंने पाप के उदयकरि बड़े पुरुषनि की निंदा सुनी। तीन भवन में विख्यात जे भगवान ऋषभदेव, इन्द्रादिक देविन में पूजनीक, तिनका इक्ष्वाकुवंश लोक में पवित्र, सो कहा तुम्हारे श्रवण में न आया? तीन लोक के पूज्य श्रीतीर्थंकर देव अर चक्रवर्ती बलभद्र नारायण सो भूमिगोचरियों में उपजे तिनकूं तुम कौन भांति निंदो हो? अहो विद्याधरो! पंचकल्याणक की प्राप्ति भूमिगोचरियों के ही होय है, विद्याधरों में कदाचित् किसी के तुमने देखी? इक्ष्वाकुवंश में उपजे बड़े बड़े राजा, जो षट्खंड पृथ्वी के जीतनहारे, तिनके चक्रादि महारत्न अर बड़ी ऋद्धि के स्वामी, चक्र के धारी, इन्द्रादिककर गाई है जो उदार कीर्ति जिनकी, ऐसे गुणों के सागर, कृतकृत्य पुरुष ऋषभदेव के वंश के बड़े बड़े पृथ्वीपति या भूमि में अनेक भए।

ताही वंश में राजा अरण्य बड़े राजा भए। तिनके राणी सुमंगला, ताके दशरथ पुत्र भए। जे क्षत्री धर्म में तत्पर लोकनि की रक्षा निमित्त अपना प्राण त्याग करते न शंकैं, जिनकी आज्ञा समस्त लोक सिर पर धरैं। जिनकी चार पटराणी मानों चार दिशा ही हैं। सर्व शोभाकूं धरै, गुणनिकर उज्ज्वल पांच सौ और राणी। मुखकर जीता है चन्द्रमा जिनने, जे नाना प्रकार के शुभ चरित्रनिकर पति का मन हरै हैं। अर राजा दशरथ के राम बड़े पुत्र, जिनकूं पद्म कहिए। लक्ष्मीकर मंडित है शरीर जिनका, दीप्तिकर जीता है सूर्य, अर कीर्तिकर जीता है चन्द्रमा, स्थिरता कर जीता है सुमेरु, शोभाकर जीता है इन्द्र, शूरवीरताकर जीते हैं सर्व सुभट जिनने, सुन्दर हैं चरित्र जिनके। जिनका छोटा भाई लक्ष्मण, जाके शरीर में लक्ष्मी का निवास, जाके धनुष को देख शत्रु भयकर भाज जावें। अर तुम विद्याधरों को उनसे भी अधिक बतावो हो सो काक भी तो आकाश में गमन करै हैं तिनमें कहां गुण हैं? अर भूमिगोचरनि में भगवान तीर्थंकर उपजै हैं तिनको इन्द्रादिक देव भूमि में मस्तक लगाय नमस्कार करै हैं, विद्याधरों की कहां बात?

ऐसे वचन जब जनक ने कहे तब वे विद्याधर एकांत में तिष्ठकर आपस में मंत्र कर जनककूं कहते भए – हे भूमिगोचरिनि के नाथ! तुम राम लक्ष्मण का एता प्रभाव ही कहो हो, अर वृथा गरज गरज बातें करो हो सो हमारे उनके बल पराक्रम की प्रतीति नाहीं। तातैं हम कहै हैं सो सुनहु। एक वज्रावर्त दूजा सागरावर्त, ये दो धनुष, तिनकी देव सेवा करै हैं। सो ये धनुष वे दोनों भाई चढ़ावें तो हम उनकी शक्ति जानें। बहुत कहनेकर कहा जो वज्रावर्त धनुष राम चढ़ावें तो तुम्हारी कन्या परणैं, नातर हम बलात्कार कन्याकूं यहां ले आवेंगे, तुम देखते ही रहोगे।

तब जनक ने कही यह बात प्रमाण है। तब उनने दोऊ धनुष दिखाए सो जनक उन धनुषनिकूं अति विषम देखकर कछुएक आकुलताकूं प्राप्त भया। बहुरि वे विद्याधर भाव थकी भगवान की पूजा स्तुति कर गदा अर हलादि रत्नोंकर संयुक्त धनुषनिकूं ले और जनककूं ले मिथिलापुरी आए। अर चन्द्रगति उपवन से रथनूपुर गया।

जब राजा जनक मिथिलापुरी आये तब नगरी की महाशोभा भई, मंगलाचरण भए, अर सब जन सम्मुख आए। अर वे विद्याधर नगर के बाहिर एक आयुधशाला बनाय तहां धनुष धरे अर महागर्व को धरते संते तिष्ठे। जनक खेदसहित, किंचित् भोजन खाय, चिंताकर व्याकुल, उत्साहरहित सेज पर पड़े। तहां महा नम्रीभूत उत्तम स्त्री बहुत आदर सहित चन्द्रमा की किरण समान उज्ज्वल चमर ढारती भई। राजा अति दीर्घ निश्वास महा उष्ण अग्नि समान नाखै।

तब राणी विदेहा ने कहा – हे नाथ! तुमने कौन स्वर्गलोक की देवांगना देखी जिसके अनुरागकर ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भए हो? सो हमारे जानने में वह कामिनी गुणरहित निर्दई है जो

तुम्हारे आतापविषै करुणा नाहीं करै है। हे नाथ! वह स्थानक हमें बतावो जहांतैं वाहि ले आवैं। तुम्हारे दुखकर मोहि दुख अर सकल लोकनिकूं दुख होय है। तुम ऐसे महासौभाग्यवंत ताहि कहा न रुचै। वह कोई पाषाणचित्त है। उठो, राजावों कों जे उचित कार्य होय सो करो। यह तिहारा शरीर है तो सब मनवांछित कार्य होंगे। या भांति राणी विदेहा जो प्राणहूतैं प्रिया हुती सो कहती भई।

तब राजा बोले – हे प्रिये! हे शोभने! हे वल्लभे! मुझे खेद और ही है, तू वृथा ऐसी बात कहि काहे को अधिक खेद उपजावै है। तोहि या वृत्तांत की गम्य नाहीं। तातैं ऐसे कहै है। वह मायामई तुरंग मोहि विजयार्धगिरि में ले गया। तहां रथनूपुर के राजा चन्द्रगति से मेरा मिलाप भया। सो वानैं कही तुम्हारी पुत्री मेरे पुत्र को देवो। तब मैंने कही मेरी पुत्री दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र को देनी करी है। तब वाने कही जो रामचंद्र वज्रावर्त धनुषकूं चढ़ावें तो तिहारी पुत्री परणें नातर मेरा पुत्र परणैगा। सो मैं तो पराए वश जाय पड्या। तब उनके भय थकी अर अशुभकर्म के उदय थकी यह बात प्रमाण करी। सो वज्रावर्त अर सागरावर्त दोऊ धनुष ले विद्याधर यहां आये हैं। ते नगर के बाहिर तिष्ठै हैं। सो मैं ऐसी जानूं हूं ये धनुष इन्द्रहूतैं चढ़ाय न जायं। जिनकी ज्वाला दशोंदिशा में फैल रही है, अर मायामई नाग फुंकारै हैं, सो नेत्रनिसों तो देखा न जावें। धनुष बिना चढ़ाये ही स्वत: स्वभाव महाभयानक शब्द करै हैं। इनको चढ़ायवे की कहा बात? जो कदाचित् श्रीरामचन्द्र धनुषकूं न चढ़ावें तो यह विद्याधर मेरी पुत्रीकूं जोरावरी ले जावेंगे, जैसैं स्याल के समीपतैं मांस की डली खग कहिए पक्षी ले जाय। सो धनुष के चढ़ायवे को बीस दिन बाकी हैं। एही करार है। जो न बना तो वह कन्याकूं ले जायेंगे। फिर याका देखना दुर्लभ है।

हे श्रेणिक! जब राजा जनक या भांति कही तब राणी विदेहा के नेत्र अश्रुपातसूं भर आये, अर पुत्र के हरने का दु:ख भूल गई हुती सो याद आया। एक तो प्राचीन दुख, बहुरि नवीन दुख, अर आगामीदुख, सो महाशोककर पीड़ित भई, महा शब्दकर पुकारने लगी। ऐसा रुदन किया जो सकल परिवार के मनुष्य विह्वल हो गए।

राजासूं राणी कहै है – हे देव! मैं ऐसा कौन-सा पाप किया जो पहिले तो पुत्र हर्‍या गया, अर अब पुत्री भी हरी जाय है। मेरे तो स्नेह का अवलंबन एक यह शुभ चेष्टित पुत्री ही है। मेरे तिहारे सर्व कुटुम्ब लोगनि के यह पुत्री ही आनन्द का कारण है। सो पापिनि के एक दुख नाहीं मिटै है अर दूजा दुख आय प्राप्त होय है। या भांति शोक के सागर में पड़ी राणी रुदन करती। ताहि राजा धीर्य बंधाय कहते भए – हे राणी! रुदनकर कहा? जो पूर्वे या जीव ने कर्म उपार्जे हैं तिनके उदय अनुसार फलै हैं। संसाररूप नाटक का आचार्य जो कर्म सो समस्त प्राणीनिकूं नचावै हैं। तेरा पुत्र गया सो अपने अशुभ के उदयतैं गया। अब शुभ कर्म का उदय है सो सकल मंगल

ही होहिं। ऐसे नाना प्रकार के सार वचननिकर राजा जनक ने राणी विदेहाकूं धीर्य बंधाया। तब राणी शांतिकूं प्राप्त भई।

बहुरि राजा जनक नगर बाहिर जाय धनुषशाला के समीप स्वयंवर मंडप रच्या, अर सकल राजपुत्रनि के बुलायवेकूं पत्र पठाये। सो पत्र बांच बांच सर्व राजपुत्र आये। अर अयोध्या नगरी को हू दूत भेजे सो माता पिता संयुक्त रामादिक चारों भाई आये। राजा जनक बहुत आदरकर पूजे। सीता परम सुन्दरी सात सौ कन्याओं के मध्य महल के ऊपर तिष्ठै है। बड़े बड़े सामंत याकी रक्षा करैं। अर एक महापंडित खोजा जानैं बहुत देखी, बहुत सुनी है, स्वर्णरूप वेत की छड़ी जाके हाथ में, सो ऊंचे शब्द कर कहै है, प्रत्येक राजकुमार को दिखावै है।

हे राजपुत्री! यह श्रीरामचन्द्र कमललोचन राजा दशरथ के पुत्र हैं, तू नीके देख। अर यह इनका छोटा भाई लक्ष्मीवान लक्ष्मण है, महा ज्योतिकूं धरै। अर यह इनका भाई महाबाहु भरत है। अर यह यातैं छोटा शत्रुघ्न है। यह चारों ही भाई गुणनि के सागर हैं। इन पुत्रनिकर राजा दशरथ पृथ्वी की भलीभांति रक्षा करै है, जाके राज्य में भय का अंकुर नाहीं। अर यह हरिबाहन महा बुद्धिमान काली घटासमान है प्रभा जाकी। अर यह चित्ररथ महा गुणवान, तेजस्वी, महासुन्दर है। अर यह हर्मुख नामा कुमार अतिमनोहर महातेजस्वी है। अर यह श्रीसंजय, यह जय, यह भानु, यह सुप्रभ, यह मंदिर, यह बुध, यह विशाल, यह श्रीधर, यह वीर, यह बंधु, यह भद्रवल, यह मयूरकुमार इत्यादि अनेक राजकुमार महापराक्रमी महासौभाग्यवान निर्मल वंश के उपजे, चन्द्रमा समान निर्मल है कांति जिनकी, महागुणवान, भूषण के धरणहारे, परम उत्साह रूप, महाविनयवंत, महाज्ञानी, महाचतुर आय इकट्ठे भए हैं।

अर यह संकाशपुर का नाथ, याके हस्ती पर्वतसमान, अर तुरंग महाश्रेष्ठ, अर रथ महामनोज्ञ, अर योधा अद्भुत पराक्रम के धारी। अर यह सुरपुर का राजा, यह रंध्रपुर का राजा, यह नन्दपुर का राजा, यह कुंदनपुर का अधिपति, यह मगध देश का राजेन्द्र, यह कंपिल्य नगर का नरपति, इनमें कई एक इक्ष्वाकुवंशी अर कई एक नागवंशी, अर कई एक सोमवंशी, अर कई एक उग्रवंशी, अर कई एक हरिवंशी, अर कई एक कुरुवंशी। इत्यादि महागुणवंत जे राजा सुनिए हैं ते सर्व तेरे अर्थ आए हैं। इनके मध्य जो पुरुष बज्रावर्त धनुषकूं चढ़ावै ताहि तू वर। जो पुरुषनि में श्रेष्ठ होयगा ताहीसूं यह कार्य होयगा। या भांति खोजा कही।

अर राजा जनक सबनिकूं एकत्रकर सर्व ही राजकुमार अनुक्रमतैं धनुष की ओर पठाए सो गए। सुन्दर है रूप जिनका सो सर्व ही धनुषकूं देख कम्पायमान भए। धनुषतैं सर्व ओर अग्नि की ज्वाला बिजुली समान निकसै। अर मायामई भयानक सर्प फुंकार करैं। तब कई एक तो कानों पर हाथ

घर भागे। अर कई एक धनुषकूं देख कर दूर ही कीले से ठाढ़े रहे, कांपै हैं समस्त अंग जिनके, अर मुंद गए हैं नेत्र जिनके। अर कई एक ज्वरकरि व्याकुल भए, अर कई एक धरतीविषै गिर पड़े, अर कई एक ऐसे भए जो बोल न सकै। अर कई एक मूर्छाकूं प्राप्त भए। अर कई एक धनुष के नागनि के स्वासकरि जैसैं वृक्ष का सूका पत्र पवन से उड़ा उड़ा फिरै तैसैं उड़ते फिरैं, अर कई एक कहते भए जो अब जीवते घर जावें तो महादान करैं, सकल जीवनिकूं अभयदान देवें।

अर कई एक ऐसे कहते भये, यह रूपवती कन्या है तो कहा? याके निमित्त प्राण तो न देने। अर कई एक कहते भए यह कोई मायामई विद्याधर आया है सो राजावों के पुत्रनिकूं बाधा उपजाई है। अर कई एक महाभाग ऐसे कहते भये अब हमारे स्त्रीतैं प्रयोजन नाहीं, यह काम महा दुखदाई है। जैसैं अनेक साधु अथवा उत्कृष्ट श्रावक शीलव्रत धारै हैं तैसैं हमहू शीलव्रत धारेंगे धर्म ध्यानकर काल व्यतीत करेंगे। या भांति सर्व पराङ्मुख भए।

अर श्री रामचन्द्र धनुष चढ़ावनेकूं उद्यमी उठकर महामाते हाथी की नाईं मनोहर गति से चलते, जगतकूं मोहते, धनुष के निकट गए। सो धनुष राम के प्रभावतैं ज्वाला रहित होय गया। जैसा सुन्दर देवोपुनीत रत्न है तैसा सौम्य होय गया। जैसैं गुरु के निकट शिष्य सौम्य होय जाय। तब श्रीरामचन्द्र धनुषकूं हाथ में लेयकरि चढ़ायकर खैंचते भए सो महाप्रचंड शब्द भया, पृथ्वी कम्पायमान भई।

कैसा है धनुष? विस्तीर्ण है प्रभा जाकी, जैसा मेघ गाजै तैसा धनुष का शब्द भया। मयूरनि के समूह मेघ का आगमन जान नाचने लगे। जाके तेज के आगैं सूर्य ऐसा भासने लग्या जैसा अग्नि का कण भासै। अर स्वर्णमई रजकर आकाश के प्रदेश व्याप्त होय गए। यह धनुष देवाधिष्ठित है सो आकाशविषै धन्य धन्य शब्द कहते भए, अर पुष्पनि की वर्षा होती भई। देव नृत्य करते भए। तब राम महादयावंत धनुष के शब्दकरि लोकनिकूं कम्पायमान देख धनुषकूं उतारते भए। लोक ऐसे डरे मानों समुद्र के भंवर में आय गये हैं।

तब सीता अपने नेत्रनि करि श्रीरामकूं निरखती भई। कैसे हैं नेत्र? पवनकरि चंचल, जैसैं कमलों का दल होय तातैं अधिक है कांति जिनकी, अर जैसा काम का बाण तीक्ष्ण होय तैसैं तीक्ष्ण हैं। सीता रोमांचकर संयुक्त मन की वृत्तिरूप माला जो प्रथम देखते ही इनकी ओर प्रेरी हुती बहुरि लोकाचार निमित्त हाथ में रत्नमाला लेकर श्रीराम के गले में डारी। लज्जा से नम्रीभूत है मुख जाका, तैसैं जिनधर्म के निकट जीवदया तिष्ठै, तैसैं राम के निकट सीता आय तिष्ठी। श्रीराम अतिसुन्दर हुते सो याके समीपतैं अत्यन्त सुन्दर भासते भए। इन दोऊनि के रूप का दृष्टांत देवे में न आवै।

अर लक्ष्मण दूजा धनुष सागरावर्त, क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र समान है शब्द जाका, उसे चढ़ाय खैंचते भए। सो पृथ्वी कम्पायमान भई। आकाश में देव जयजयकार शब्द करते भये, अर पुष्पवर्षा होती भई। लक्ष्मण धनुषकूं चढ़ाय खैंचकर जब बाण पर दृष्टि धरी तब सर्व डरे। लोकनिकूं भयरूप देख आप धनुष की पिणच उतार महाविनय संयुक्त राम के निकट आए। जैसैं ज्ञान के निकट वैराग्य आवै। लक्ष्मण का ऐसा पराक्रम देख चंद्रगति का पठाया जो चंद्रवर्द्धन विद्याधर आया हुता, सो अतिप्रसन्न होय अष्टादश कन्या विद्याधरनि की पुत्री लक्ष्मण कूं दीनी। श्रीराम लक्ष्मण दोऊ धनुष लेय महाविनयवन्त पिता के पास आए – अर सीताहू आई।

अर जेते विद्याधर आये हुते सो राम लक्ष्मण का प्रताप देख चन्द्रवर्द्धन की लार रथनूपुर गये। जाय राजा चन्द्रगतिकूं सर्व वृत्तांत कह्या। सो सुनकर चिंतावान होय तिष्ठ्या। अर स्वयंबर मंडप में राम के भाई भरत हू आए हुते सो मन में विचारते भये कि मेरा अर राम लक्ष्मण का कुल एक, अर पिता एक परन्तु इनका-सा अद्‌भुत पराक्रम मेरा नाहीं। यह पुण्याधिकारी हैं, इनके से पुण्य मैंने न उपार्जे। यह सीता साक्षात् लक्ष्मी, कमल के भीतर दल समान है वर्ण जाका, राम सारिखा पुण्याधिकारी ही की स्त्री होय।

तब केकई इनकी माता सर्व कलाविषै प्रवीण भरत के चित्त का अभिप्राय जान पति के कानविषै कहती भई – हे नाथ! भरत का मन कछुइक बिलखा दीखै है, ऐसा करो जो यह विरक्त न होय। इस जनक के भाई कनक के राणी सुप्रभा, उसकी पुत्री लोकसुन्दरी है, सो स्वयंवर मंडप की विधि बहुरि करावो अर वह कन्या भरत के कण्ठ में वरमाला डारे तो यह प्रसन्न होय। तब दशरथ याकी बात प्रमाणकर कनक के कान पहुंचाई। तब कनक दशरथ की आज्ञा प्रमाणकर जे राजा गए हुते सो पाछे बुलाये। यथायोग्य स्थानविषै तिष्ठे। सब जे भूपति तेई भये नक्षत्रनि के समूह तिन विषै तिष्ठता जो भरतरूप चन्द्रमा ताहि कनक की पुत्री लोकसुन्दरीरूप शुक्लपक्ष की रात्रि सो महा अनुरागकरि वरती भई। मन की अनुरागतारूप माला तो पहिले अवलोकन करते ही डारी हुती, बहुरि लोकाचारमात्र सुमन कहिये पुष्प तिनकी वरमाला भी कण्ठ में डारी। कैसी है कनक की पुत्री? कनक समान है प्रभा जाकी, जैसे सुभद्रा भरत चक्रवर्तीकूं वर्‍या हुता तैसे यह दशरथ के पुत्र भरत कों वरती भई।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! कर्मनि की विचित्रता देखो, भरत जैसे विरक्त चित्त राजकन्या पर मोहित भए। अर सब राजा विलखे होय अपने अपने स्थानक गए। जानै जैसा कर्म उपार्जा होय तैसा ही फल पावै है। किसी के द्रव्य को दूसरा चाहने वाला न पावै।

अथानन्तर मिथिलापुरी में सीता अर लोकसुन्दरी के विवाह का परम उत्साह भया। कैसी है

मिथिलापुरी? ध्वजा अर तोरणनि के समूहकरि मंडित है, अर महा सुगन्ध करि भरी है, शंख आदि वादित्रनि के समूह से पूरित है। श्रीराम का अर भरत का विवाह महाउत्सव सहित भया। द्रव्यकरि भिक्षुक लोक पूर्ण भए। जे राजा विवाह का उत्सव देखवेकूं रहे हुते ते दशरथ अर जनक कनक दोनों भाई से अति सन्मान पाय अपने अपने स्थानक गये। राजा दशरथ के पुत्र चारों, राम की स्त्री सीता, भरत की स्त्री लोकसुन्दरी महा उत्सवनिसूं अयोध्या के निकट आये।

कैसे हैं दशरथ के पुत्र? सकल पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है कीर्ति जिनकी, अर परमरूप परमगुण, सोई भया समुद्र, ताविषै मग्न हैं। अर परम रत्ननि के आभूषण तिनकर शोभित है शरीर जिनके, माता पिताकूं उपजाया है महाहर्ष जिनने, नाना प्रकार के वाहन तिनकर पूर्ण जो सेना, सोई भया सागर, जहां अनेक प्रकार के वादित्र बाजे हैं, जैसैं जलनिधि गाजै, ऐसी सेना सहित राजमार्ग होय महिल पधारे। मार्ग में जनक अर कनक की पुत्रीकूं सब ही देखै हैं। सो देख देख अति हर्षित होय हैं, अर कहै हैं इनकी तुल्य और कोऊ नाहीं। यह उत्तम शरीरकूं धरै हैं इनके देखवेकूं नगर के नर नारी मार्ग में आय इकट्ठे भये, तिनकरि मार्ग अति संकीर्ण भया। नगर के दरवाजे सों ले राजमहिल परियंत मनुष्यनि का पार नाहीं।

किया है समस्त जननि ने आदर जिनका ऐसे दशरथ के पुत्र इनके श्रेष्ठ गुणनि की ज्यों ज्यों लोक स्तुति करैं त्यों त्यों ये नीचे हो रहें। महासुख के भोगनहारे ये चारों ही भाई सुबुद्धि अपने अपने महिलनि में आनन्दसों विराजैं। यह सब शुभ कर्म का फल विवेकी जन जानकर ऐसे सुकृत करहु जाकरि सूर्यतैं अधिक प्रताप होय। जेते शोभायमान उत्कृष्ट फल हैं ते सर्व धर्म के प्रभावतैं हैं। अर जे महानिंद्य कटुक फल हैं ते सब पाप कर्म के उदयतैं। तातैं सुख के अर्थि पाप क्रियाकूं तजहु, अर शुभक्रिया करहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मण का धनुष चढ़ावने आदि प्रताप वर्णन अर राम का सीतासों तथा भरत का लोकसुन्दरीसों विवाह वर्णन करने वाला अट्ठाइसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।28।।

अथानन्तर आषाढ़ शुक्ल अष्टमीतैं अष्टाह्निका का महाउत्सव भया। राजा दशरथ जिनेन्द्र की महाउत्कृष्ट पूजा करनेकूं उद्यमी भया। राजा धर्मविषै अति सावधान है। राजा की सब राणी, पुत्र, बांधव तथा सकल कुटुम्ब जिनराज के प्रतिबिम्बनि की महापूजा करवेकूं उद्यमी भए। केई बहुत आदर से पंच वर्ण के जे रत्न तिनके चूर्ण का माडला मांडे हैं। अर कई नाना प्रकार के रत्ननि की माला बनावे हैं, भक्तिविषै पाया है अधिकार जिनने। अर कोऊ एला (इलायची) कपूरादि सुगन्ध द्रव्यनिकरि जलकूं सुगन्ध करै हैं, अर कोऊ सुगन्ध जल से पृथ्वी को छांटे है, अर कोऊ

नाना प्रकार के परम सुगन्ध पीसे हैं, अर कोऊ जिनमंदिरों के द्वारनि की शोभा अति दैदीप्यमान वस्त्रनिकरि करावै है, अर कोऊ नाना प्रकार के धातुओं के रंगोंकर चैत्यालयनि की भीतियों को मंडवावे हैं।

या भांति अयोध्यापुरी के सब ही लोक वीतराग देव की परम भक्ति को धरते संते अत्यन्त हर्षकरि पूर्ण जिनपूजा के उत्साह से उत्तम पुण्यकूं उपार्जते भए। राजा दशरथ भगवान का अति विभूतिकरि अभिषेक करावता भया। नाना प्रकार के वादित्र बाजते भये। राजा अष्ट दिनों के उपवास किए, अर जिनेन्द्र की अष्ट प्रकार के द्रव्यनितैं महापूजा करी, अर नाना प्रकार के सहज पुष्प अर कृत्रिम कहिए स्वर्ण रत्नादिक के रचे पुष्प तिनकरि अर्चा करी। जैसैं नन्दीश्वर द्वीपविषै देवनिकरि संयुक्त इन्द्र जिनेन्द्र की पूजा करै तैसैं राजा दशरथ ने अयोध्या में करी। अर राजा चारों ही पटरानियों को गंधोदक पठाया सो तीन के निकट तो तरुण स्त्री ले गई, सो शीघ्र ही पहुंचा। वे उठकर समस्त पापों का दूर करनहारा जो गंधोदक ताहि मस्तक अर नेत्रनितैं लगावती भईं।

अर राणी सुप्रभा के निकट वृद्ध खोजा ले गया हुता सो शीघ्र नहीं पहुंचा। तातैं राणी सुप्रभा परम कोप अर शोककूं प्राप्त भई। मन में चिंतवती भई जो राजा उन तीन राणिनि कों गंधोदक भेज्या अर मोहि न भेज्या सो राजा का कहा दोष है? मैं पूर्व जन्म में पुण्य न उपजाया, वे पुण्यवती महा सौभाग्यवती प्रशंसा योग्य हैं जिनको भगवान का गंधोदक महा पवित्र राजा ने पठाया। अपमान कर दग्ध जो मैं सो मेरे हृदय का ताप और भांति न मिटै, अब मुझे मरण ही शरण है। ऐसा विचार एक विशाखनामा भण्डारीकूं बुलाय कहती भई – हे भाई! यह बात तू काहू से मत कहियो, मोहि विषतैं प्रयोजन है। सो तू शीघ्र ले आ। तब प्रथम तो वाने शंकावान होय लायवे में ढील करी, बहुरि विचारी कि औषधि निमित्त मंगाया होगा सो लेवेकूं गया। अर राणी शिथिलगात्र मलिन चित वस्त्र ओढ़े सेज पर पड़ी।

राजा दशरथ ने अंत:पुर में आयकर तीन राणी देखी, सुप्रभा न देखी। सुप्रभासूं राजा का बहुत स्नेह सो इसके महिल में राजा आय खड़े रहे। ता समय जो विष लेनेकूं पठाया हुता सो ले आया अर कहता भया – हे देवि! यह विष लेहु। यह शब्द राजा ने सुना तब उसके हाथ से उठाय लिया अर आप राणी की सेज पर बैठ गए। तब राणी सेज से उतर बैठी। तब राजा आग्रह कर सेज ऊपर बैठाई।

अर कहते भए – हे वल्लभे! ऐसा क्रोध काहेतैं किया, जाकर प्राण तजा चाहे है। सर्ववस्तुनितैं जीतव्य प्रिय है, अर सर्व दु:खों से मरण का बड़ा दु:ख है। ऐसा तोहि कहा दुख है जो विष मंगाया। तू मेरे हृदय का सर्वस्व है, जाने तुझे क्लेश उपजाया हो ताको मैं तत्काल तीव्र

दंड दूं। हे सुन्दरमुखी! तू जिनेन्द्र का सिद्धांत जानै है। शुभ अशुभ गति के कारण जानै है। जो विष तथा शस्त्र आदि से अपघात कर मरै हैं ते दुर्गति में पड़े हैं। ऐसी बुद्धि तोहि क्रोध से उपजी सो क्रोध को धिक्कार। यह क्रोध महा अंधकार है। अब तू प्रसन्न हो। जे पतिव्रता हैं तिनने जौलग प्रीतम के अनुराग के वचन न सुने तौलग ही क्रोध का आवेश है।

तब सुप्रभा कहती भई – हे नाथ! तुम पर कोप कहा? परन्तु मुझे ऐसा दुख भया जो मरण बिना शांत न होय। तब राजा कही – हे राणी! तोहि ऐसा कहा दुख भया? तब राणी कही – भगवान का गंधोदक और राणिनिकूं पठाया अर मोहि न पठाया, सो मोमैं कौन कार्यकर हीनता जानी? अबलों तुम मेरा कभी भी अनादर न किया अब काहेतैं अनादर किया? यह बात राजासों राणी कहै है ता समय वृद्ध खोजा गंधोदक ले आया, अर कहता भया – हे देवी! यह भगवान का गंधोदक नरनाथ तुमको पठाया सो लेहु। अर ता समय तीनों राणी आईं, अर कहती भईं – हे मुग्धे! पति की तोपर अति कृपा है, तू कोप को काहे प्राप्त भई? देख हमकूं तो गंधोदक दासी ले आई अर तेरे वृद्ध खोजा ले आया। पति के तोसूं प्रेम की न्यूनता नाहीं, जो पति में अपराध भी होय अर वह आय स्नेह की बात करे तो उत्तम स्त्री प्रसन्न ही होय है। हे शोभने! पतिसूं क्रोध करना सुख के विघ्न का कारण है। सो कोप उचित नाहीं। सो तिनने जब या भांति संतोष उपजाया तब सुप्रभा ने प्रसन्न होय गंधोदक शीश पर चढ़ाया अर नेत्रनिकूं लगाया।

राजा खोजा से कोपकर कहते भए – हे निकृष्ट! तैं एती ढील कहां लगाई? तब वह भयंकर कंपायमान होय हाथ जोड़ सीस निवाय कहता भया – हे भक्तवत्सल! हे देव! हे विज्ञानभूषण! अत्यन्त वृद्ध अवस्था कर हीनशक्ति जो मैं, सो मेरा कहां अपराध? मोपर आप कोप करो, सो मैं क्रोध का पात्र नाहीं। प्रथम अवस्थाविषै मेरे भुज हाथी केसूंड समान हुते, उरस्थल प्रबल, अर जांघ गजबंधन तुल्य हुती, अर शरीर दृढ़ हुता। अब कर्मनि के उदयकरि शरीर शिथिल होय गया। पूर्वे ऊंची नीची धरती राजहंस की न्याईं उलंघ जाता, मनवांछित स्थान जाय पहुंचता, अब अस्थानक तकतैं उठा भी नहीं जाय है। तिहारे पिता के प्रसादकर मैं यह शरीर नाना प्रकार लड़ाया था सो अब कुमित्र की न्याईं दुख का कारण होय गया। पूर्वे मुझे वैरीनि के विदारने की शक्ति हुती सो अब तो लाठी के अवलंबन कर महाकष्टसूं फिरूं हूं। बलवान पुरुषनिकर खैंचा जो धनुष वासमान वक्र मेरी पीठ हो गई है, अर मस्तक के केश अस्थिसमान श्वेत होय गए हैं, अर मेरे दांतहू गिर गए मानों शरीर का आताप देख न सकैं।

हे राजन्! मेरा समस्त उत्साह विलय गया। ऐसे शरीर कर कोई दिन जीवूं हूं सो बड़ा आश्चर्य है। जराकरि अत्यन्त जर्जरा मेरा शरीर, सांझ सकारे विनस जायगा। मोहि मेरी काया की सुधि

नाहीं तो और सुध कहां से होय? पूर्वे मेरे नेत्रादिक इन्द्रिय विचक्षणताकूं धरे हुते, अब नाम मात्र रह गए हैं। पाय धरूं किसी ठौर अर परैं काहू ठौर। समस्त पृथ्वीतल दृष्टिकर श्याम भासै है। ऐसी अवस्था होय गई तो बहुत दिननितैं राजद्वार सेवा है सो नाहीं तज सकूं हूं। पक्के फल समान जो मेरा तन ताहि काल शीघ्र ही भक्षण करेगा। मोहि मृत्यु का ऐसा भय नाहीं जैसा चाकरी चूकने का भय है। अर मेरे आपकी आज्ञा ही का अवलंबन है और अवलम्बन नाहीं। शरीर की अशक्तिता कर विलंब होय ताकूं मैं कहां करूं।

हे नाथ! मेरा शरीर जरा के आधीन जान कोप मत करो, कृपा ही करो। ऐसे वचन खोजा के राजा दशरथ सुनकर वामा हाथ कपोल के लगाय चिंतावान होय विचारता भया, अहो यह जल के बुदबुदा समान असार शरीर, क्षणभंगुर है, अर यह यौवन बहुत विभ्रमकूं हू धरै संध्या के प्रकाश समान अनित्य है, अर अज्ञान का कारण है, बिजली के चमत्कार समान शरीर अर सम्पदा तिनके अर्थ अत्यन्त दुख के साधन कर्म यह प्राणी करै है। उन्मत्त स्त्री के कटाक्ष समान, चंचल सर्प के फण समान, विष के भरे, महाताप के समूह के कारण ये भोग ही जीवनकूं ठगैं हैं, तातैं महाठग हैं। ये विषय विनाशीक, इनसे प्राप्त हुआ जो दुख सो मूढनिकूं सुखरूप भासै है।

ये मूढ़ जीव विषयनि की अभिलाषा करैं हैं अर इनकूं मनवांछित विषय दुष्प्राप्य हैं, विषयों के सुख देखने मात्र मनोज्ञ हैं। अर इनके फल अति कटुक हैं। ये विषय इन्द्रायण के फल समान हैं, संसारी जीव इनकूं चाहै हैं सो बड़ा आश्चर्य है। जे उत्तमजन विषयनिकूं विषतुल्य जानकर तजै हैं अर तप करै हैं ते धन्य हैं। अनेक विवेकी जीव पुण्याधिकारी महाउत्साह के धरणहारे जिनशासन के प्रसादकरि प्रबोधकूं प्राप्त भए हैं। मैं कब इन विषयनि का त्यागकर स्नेहरूप कीच से निकस निर्वृत्ति का कारण जिनेन्द्र का तप आचरूंगा। मैं पृथ्वी की बहुत सुख से प्रतिपालना करी, अर भोग भी मनवांछित भोगे, अर पुत्र भी मेरे महापराक्रमी उपजे। अब भी मैं वैराग्य विषै विलम्ब करूं तो यह बड़ी विपरीत है। हमारे वंश की यह रीति है कि पुत्रकूं राज्यलक्ष्मी देकर वैराग्य को धारण कर महाधीर तप करनेकूं वन में प्रवेश करै। ऐसा चिंतवनकर राजा भोगनितैं उदासचित्त कई एक दिन घर में रहे।

हे श्रेणिक! जो वस्तु जा समय जा क्षेत्र में जाकी जाको जेती प्राप्त होनी होय सो ता समय ता क्षेत्र में तासे ताकूं तेती निश्चय सेती होय ही होय।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे मगध देश के भूपति! कई एक दिनों में सर्व प्राणीनि के हित सर्वभूतहित नामा मुनि बड़े आचार्य, मन:पर्ययज्ञान के धारक, पृथ्वीविषै विहार करते संघसहित सरयू नदी के तीर आए। कैसे हैं मुनि? पिता समान छह काय के जीवनि के पालक, दयाविषै

लगाई है मन वचन काय की क्रिया, जिन आचार्य की आज्ञा पाय कई एक मुनि तो गहन वन में विराजे, कई एक पर्वतनि की गुफानि में, कई एक वन के चैत्यालयनि में, कई एक वृक्षिनि के कोटरनि में, इत्यादि ध्यान योग्य स्थाननि में साधु तिष्ठे। अर आप आचार्य महेन्द्रोदय नामा वन में एक शिला पर जहां विकलत्रय जीवनि का संचार नाहीं, अर स्त्री नपुंसक बालक ग्राम्यजन पशुनि का संसर्ग नाहीं, ऐसा जो निर्दोष स्थानक तहां नामवृक्षों के नीचे निवास किया। महागम्भीर महाक्षमावान, जिनका दर्शन दुर्लभ, कर्म खिपावन के उद्यमी, महा उदार है मन जिनका, महामुनि तिनके स्वामी, वर्षाकाल पूर्ण करवेकूं समाधि योग धर तिष्ठे।

कैसा है वर्षाकाल? विदेश गमन किया तिनकूं भयानक है। वर्षती जो मेघमाला अर चमकती तो विजुरी अर गरजती कारी घटा तिनकी भयंकर जो ध्वनि, ताकरि मानों सूर्य को खिझावता संता पृथ्वी पर प्रकट भया है। सूर्य ग्रीष्म ऋतुविषै लोकनिकूं आतापकारी हुता सो अब स्थूल मेघ की धारा अंधकारतैं भय थकी भाज मेघमाला में छिप्या चाहै है। अर पृथ्वी तल हरे नाज के अंकुरनिरूप कंचुकिन कर मंडित है। अर महानदियनि के प्रवाह वृद्धिकूं प्राप्त भए हैं ढाहा पहाड़तैं बहै हैं। इस ऋतु में जे गमन करे हैं ते अति कम्पायमान होय हैं अर तिनके चित्त में अनेक प्रकार की भ्रांति उपजै है। ऐसी वर्षा ऋतु में जैनी जन खड्ग की धारा समान कठिन व्रत निरंतर धारै हैं। चारण मुनि अर भूमिगोचरी मुनि चातुर्मासिक में नाना प्रकार के नियम धरते भए। हे श्रेणिक! ते मुनि तेरी रक्षा करहु रागादिक परणतितैं तोहि निवृत्त करहु।

अथानन्तर प्रभात समय राजा दशरथ वादित्रनि के नादकरि जाग्रत भया, जैसैं सूर्य उदयकूं प्राप्त होय। अर प्रात समय कूकड़े बोलने लगे, सारिस चकवा सरोवर तथा नदियनि के तटविषै शब्द करते भए। स्त्री पुरुष सेजनितैं उठे। भगवान के चैत्यालय तिनविषै भेरी मृदंग वीणा वादित्रनि के नाद होते भए। लोक निद्राकूं तज जिन पूजनादिक विषै प्रवरते। दीपक मंद ज्योति भए। चन्द्रमा की प्रभा मंद भई। कमल फूले, कुमुद मुदित भए। अर जैसैं जिन सिद्धांत के ज्ञातनि के वचननिकरि मिथ्यावादी विलय जांय तैसैं सूर्य की किरणनिकरि ग्रह तारा नक्षत्र छिप गए। या भांति प्रभात समय अत्यन्त निर्मल प्रकट भया। तब राजा देहकृत्य क्रिया कर भगवान की पूजा कर बारंबार नमस्कार करता भया। अर भद्र जाति की हथिनी पर चढ़, देवनि सारिखे जे राजा तिनके समूहनिकर संयुक्त, ठौर ठौर मुनिनकूं अर जिनमन्दिरनिकूं नमस्कार करता महेन्द्रोदय वन में पृथ्वीपति गया।

जाकी विभूति पृथ्वीकूं आनंद उपजावनहारी, वर्षोंपर्यंत व्याख्यान करिए तो भी न कह सकिये। जो मुनि गुणरूप रत्ननि का सागर, जा समय याकी नगरी के समीप आवै ताही समय

याकूं खबर होय। जो मुनि आए हैं तब ही यह दर्शनकूं जाय। सो सर्व भूत हित मुनिकूं आए सुन, तिनके निकट केते समीपी लोकनि सहित आया। हथिनीसूं उतर अति हर्ष का भऱ्या नमस्कार कर महाभक्ति संयुक्त सिद्धांत सम्बन्धी कथा सुनता भया। चारों अनुयोगनि की चर्चा धारी, अर अतीत अनागत वर्तमान काल के जे महापुरुष तिनके चरित्र सुने।

लोकालोक का निरूपण, अर छह द्रव्यनि का स्वरूप, छह काय के जीवनि का वर्णन, छह लेश्या का व्याख्यान, अर छहों काल का कथन, अर कुलकरनि की उत्पत्ति, अर अनेक प्रकार क्षत्रियादिकनि के वंश अर सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय का वर्णन आचार्य के मुखतैं श्रवणकर सब मुनियनिकूं बारम्बार नमस्कार कर राजा धर्म के अनुरागकरि पूर्ण नगर में आए। जिनधर्म के गुणनि की कथा निकटवर्ती राजानिसों अर मंत्रियनिसूं कर अर सबनिकूं विदाकर महल में प्रवेश करता भया। विस्तीर्ण है विभव जाके। अर राणी लक्ष्मीतुल्य परमकांतिकर संपूर्ण चन्द्रमा समान सम्पूर्ण सुन्दर बदन की धरणहारी, नेत्र अर मन की हरणहारी, हाव भाव विलास विभ्रमकर मंडित, महानिपुण, परम विनय की करणहारी, प्यारी तेई भईं कमलनि की पंक्ति, तिनकूं राजा सूर्य समान प्रफुल्लित करता भया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै अष्टाह्निका आगम अर राजा दशरथ का धर्मश्रवण कथा नाम वर्णन करने वाला उनतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।29।।

अथानन्तर मेघ के आडम्बर कर युक्त जो वर्षाकाल सो गया अर आकाश संभारे खड्ग की प्रभा-समान निर्मल भया। पद्म महोत्पल पुण्डरीक इन्दीवरादि अनेक जाति के कमल प्रफुल्लित भए। कैसे हैं कमलादिक पुष्प? विषयी जीवनिकूं उन्माद के कारण हैं। अर नदी सरोवरादिविषै जल निर्मल भया जैसा मुनि का चित्त निर्मल होय तैसा। अर इन्द्रधनुष जाते रहे। पृथ्वी कर्दम रहित होय गई। शरदऋतु मानो कुमुदनि के प्रफुल्लित होने से हंसती हुई प्रकट भई। विजुरियों के चमत्कार की संभावना ही गई। सूर्य तुलाराशि पर आया। शरद के श्वेत बादरे कहूं कहूं दृष्टि आवें सो क्षणमात्र में विलाय जांय। निशारूप नवोढ़ा स्त्री संध्या के प्रकाश रूप महासुन्दर लाल अधरनिकूं धरे, चांदनी रूप निर्मल वस्त्रनिकूं पहिर, चन्द्रमारूप हैं चूड़ामणि जाके, सो अत्यन्त शोभती भई। अर वापिका निर्मल जल की भरी मनुष्यनि के मनकूं प्रमोद उपजाती भई। चकवा चकवी के युगल करै हैं केलि जहां, अर मदोन्मत्त जे सारिस ते करै हैं नाद जहां, कमलनि के वन में भ्रमते जो राजहंस अत्यन्त शोभाकूं धरै हैं, सो सीता की है चिंता जाके ऐसा जो भामण्डल ताहि यह ऋतु सुहावनी न लगी, अग्नि समान भासै है जगत जाकूं।

एक दिन यह भामण्डल लज्जाकूं तजकर पिता के आगे बसंतध्वज नामा जो परम मित्र ताहि कहता भया। कैसा है भामंडल? अरति से पीड़ित है अंग जाका, मित्रसूं कहे है – हे मित्र! तू दीर्घशोची है, अर परकार्यविषै उद्यमी है। एते दिन होय गए तोहि मेरी चिंता नाहीं। व्याकुलता रूप भ्रमणकूं धरै जो आशारूप समुद्र ताविषै डूबा हूं, मोहि आलम्बन कहा न देवो? ऐसे आर्तिध्यानकर युक्त भामंडल के वचन सुन राजसभा के सर्वलोकप्रभावरहित विषाद संयुक्त होय गए। तब तिनकूं महा शोककर तप्तायमान देख भामंडल लज्जा से अधोमुख होय गया।

तब एक वृहत्केतु नामा विद्याधर कहता भया – अब कहा छिपाव राखो, कुमारसूं सर्व वृत्तांत यथार्थ कहो जाकरि भ्रांत न रहै। तब वे सर्व वृत्तांत भामंडलसूं कहते भए – हे कुमार! हम कन्या के पिताकूं यहां ले आए हुते, कन्या की बात याचना करी सो वाने कही मैं कन्या रामकूं देनी करी है। हमारे वाके वार्ता बहुत भई वह न मानै। तब वज्रावर्त धनुष का करार भया जो धनुष राम चढ़ावें तो कन्याकूं परणैं नातर हम यहां ले आवेंगे अर भामंडल विवाहेगा। सो धनुष लेकर यहां से विद्याधर मिथिलापुरी गए। सो राम महा पुण्याधिकारी धनुष चढ़ाया ही। तब स्वयंवर मंडप में जनक की पुत्री अति गुणवती, महा विवेकवंती, पति के हृदय की हरणहारी, व्रत नियम की धरणहारी, नवयौवन मंडित, दोषनिकरि अखंडित, सर्व कलापूर्ण, शरदऋतु की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान मुख की कांतिकूं धरै, लक्ष्मी सारिखे शुभलक्षण, लावण्यताकरि युक्त, सीता महासती श्रीराम के कंठ में वरमाला डार वल्लभा होती भई।

हे कुमार! वे धनुष वर्तमान काल के नाहीं, गदा अर हल आदि देवोपुनीत रत्ननिकर युक्त, अनेक देव जिनकी सेवा करै हैं, कोई जिनकूं देख न सकै, सो वज्रावर्त सागरावर्त दोऊ धनुष राम लक्ष्मण दोऊ भाई चढ़ावते भए। वह त्रिलोकसुन्दरी राम ने परणी। अयोध्या ले गए। सो अब वह बलात्कार देवनिकरि भी न हरी जाय, हमारी कहा बात?

अर कदाचित् कहोगे राम को परणाये पहले ही क्यों न हरी। जनक का मित्र रावण का जमाई मधु है सो हम कैसैं हर सकैं। तातैं हे कुमार! अब संतोष आदरौ। निर्मलता भजहु। होनहार होय सो इन्द्रादिक भी और भांति न कर सकैं। तब धनुष चढ़ावने का वृत्तांत अर राम से सीता का विवाह हो गया सुन भामंडल अति लज्जावान होय विषादकरि पूर्ण भया। मन में विचारै है जो मेरा यह विद्याधर का जन्म निरर्थक है जो मैं हीन पुरुष की न्याईं ताहि न परण सक्या। ईर्षा अर क्रोधकर मंडित होय सभा कै लोकनिकूं कहता भया, कहा तुम्हारा विद्याधरपना, तुम भूमिगोचरिनितेहूं डरो हो। मैं आप जायकर भूमिगोचरिनिकूं जीत ताकूं ले आऊंगा। अर जे धनुष के अधिष्ठाता उनकूं धनुष दे आये तिनका निग्रह करूंगा।

ऐसा कहकर शस्त्र सजि विमानविषै चढ़ आकाश के मार्ग गया। अनेक ग्राम नदी नगर वन उपवन सरोवर पर्वतादिक पूर्ण पृथ्वी मंडल देख्या। तब याकी दृष्टि जो अपने पूर्व भव का स्थानक विदग्धपुर पहाड़नि के बीच हुता यहां पड़ी। चित्त में चितई कि यह नगर मैंने देख्या है। जातिस्मरण होय मूर्छा आय गई। तब मंत्री व्याकुल होय पिता के निकट ले आए। चन्दनादि शीतल द्रव्यनिकरि छांट्या तब प्रबोधककूं प्राप्त भया।

राजलोक की स्त्री याहि कहती भई – हे कुमार! तुमको यह उचित नाहीं जो माता पिता के निकट ऐसी लज्जारहित चेष्टा करहु। तुम तो विचक्षण हो, विद्याधरनि की कन्या देवांगनाहूतैं अति सुन्दर हैं, ते परणो। लोकहास कहा करावो हो? तब भामंडल लज्जा अर शोककरि मुख नीचा किया। अर कहता भया – धिक्कार है मोकूं, मैं महामोहकरि विरुद्ध कार्य चिंत्या। जो चांडालादि अत्यन्त नीच कुल हैं तिनहू के यह कर्म न होय। मैं अशुभ कर्मनि के उदयकरि अत्यन्त मलिन परिणाम किए। मैं अर सीता एक ही माता के उदर से उपजे हैं। अब मेरे अशुभ कर्म गया तब यथार्थ जानी।

सो याके ऐसे वचन सुनकर अर शोककर पीड़ित देख याका पिता राजा चन्द्रगति गोद में लेय मुख चूम पूछता भया – हे पुत्र! यह तू कौन भांति कही? तब कुमार कहता भया – हे तात! मेरा चरित्र सुनहु। पूर्वभवविषै मैं इस ही भरतक्षेत्रविषै विदग्धपुर नगर, तहां कुण्डलमंडित राजा हुता। परमंडल का लूटनहारा, सदा विग्रह का करणहारा, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध निज प्रजा का पालक, महाविभवकर संयुक्त। सो मैं पापी मायाचार कर एक विप्र की स्त्री हरी। सो वह विप्र तो अतिदुखी होय कहीं चला गया अर मैं राजा अरण्य के देश में बाधा करी। सो अरण्य का सेनापति बालचन्द्र मोहि पकड़ ले गया अर मेरी सर्वसम्पदा हर लीनी। मैं शरीरमात्र रह गया। कई एक दिन में बंदीगृहतैं छूट्या सो महादुःखित पृथ्वीविषै भ्रमण करता मुनियों के दर्शनकूं गया। महाव्रत अणुव्रत का व्याख्यान सुन्या। तीन लोकपूज्य जो सर्वज्ञ वीतरागदेव तिनका पवित्र जो मार्ग ताकी श्रद्धा करी। जगत के बांधव जे श्रीगुरु तिनकी आज्ञाकर मैंने मद्य मांस का त्यागरूप व्रत आदर्‍या। मेरी शक्ति हीन हुती तातैं ये विशेष व्रत न आदर सक्या। जिनशासन का अद्भुत माहात्म्य जो मैं महापापी हुता सो एते ही व्रत से मैं दुर्गति में न गया।

जिनधर्म के शरणकरि जनक की राणी विदेहा के गर्भ में उपज्या अर सीता भी उपजी। सो कन्या सहित मेरा जन्म भया। अर वह पूर्वभव का विरोधी विप्र जाकी मैं स्त्री हरी हुती सो देव भया। अर मोहि जन्मतैं ही जैसैं गृद्ध पक्षी मांस की डलीकूं ले जाय तैसैं नक्षत्रनितैं ऊपर आकाशविषै ले गया। सो पहिले तो तानै विचार किया कि याकूं मारूं। बहुरि करुणाकरि कुण्डल

पहराय लघुपरण विद्याकर मोहि यत्नसो डास्या सो रात्रिविषै पड़ता तुमने झेल्या। अर दयावान होय अपनी राणीकूं सौंप्या, सो मैं तिहारे प्रसादतैं वृद्धिकूं प्राप्त भया, अनेक विद्या का धारक भया। तुमने बहुत लढ़ाया, अर माता मेरी बहुत प्रतिपालना करी।

भामंडल ऐसे कहके चुप हो रह्या। राजा चन्द्रगति वह वृत्तांत सुनकर परम प्रबोधकूं प्राप्त भया अर इन्द्रियनि की वासना तज महा वैराग्य अंगीकार करवेकूं उद्यमी भया। लोकधर्म कहिए स्त्री सेवन सोई भया वृक्ष, ताहि सुखफलसूं रहित जान्या। अर संसार का बंधन जानकर अपना राज्य भामंडलकूं देय आप सर्व भूतहित स्वामी के समीप शीघ्र आया। वे सर्व भूतहित स्वामी पृथ्वीविषै सूर्यसमान प्रसिद्ध, गुणरूप किरणनि के समूह कर भव्य जीवनिकूं आनन्द के करनहारे, सो राजा चन्द्रगति विद्याधर महेन्द्रोदय उद्यानविषै आय मुनि की अर्चना करी।

बहुरि नमस्कार स्तुति कर सीस नवाय हाथ जोड़ या भांति कहता भया – हे भगवन्! तिहारे प्रसादकर मैं जिनदीक्षा लेय तप किया चाहूं हूं, मैं गृहवासतैं उदास भया। तब मुनि कहते भए – भवसागरसूं पार करणहारी यह भगवती दीक्षा है सो लेउ। राजा तो वैराग्यकूं प्राप्त भया अर भामंडल के राज्य का उत्सव होता भया, ऊंचे स्वर नगारे बाजे, नारी गीत गावती भईं, बांसुरी आदि वादित्रनि के समूह बाजते भए। ताल मंजीरा आदि बांसरी के वादित्र बाजे, 'शोभायमान जनक राजा का पुत्र जयवंत होवे' ऐसा बंदीजननि का शब्द होता भया। सो महेन्द्रोदय उद्यानविषै ऐसा मनोहर शब्द रात्रिविषै भया जातैं अयोध्या के समस्त जन निद्रारहित होय गए। बहुरि प्रात: समय मुनिराज के मुखतैं महाश्रेष्ठ शब्द सुनकर जैनीजन अति हर्षकूं प्राप्त भए। अर सीता जनक राजा का पुत्र जयवंत होए, ऐसी ध्वनि सुनकर मानों अमृत से सींची गई, रोमांचकर संयुक्त भया है सर्व अंग जाका, अर फरकै है बाईं आंख जाकी, मन में चितवती भई।

जो यह बारम्बार ऊंचा शब्द सुनिए कि जनक राजा का पुत्र जयवंत होऊ सो मेरा हू पिता जनक है। कनक का बड़ा भाई, अर मेरा भाई जन्म ताही हस्या गया था सो वही न होय। ऐसा विचारकर भाई के स्नेहरूप गया है मन जाका, सो ऊंचे स्वर कर रुदन करती भई। तब राम अभिराम कहिए सुन्दर है अंग जाका, महामधुर वचनकर कहते – हे प्रिये! तू काहेकूं रुदन करै है, जो यह तेरा भाई है तो अब खबर आवै है। अर जो और है तो हे पंडिते! तू कहा सोच करै है? जे विचक्षण हैं ते मुए का, हरे का, गए का, नष्ट हुए का, सोच न करै। हे वल्लभे! जे कायर हैं अर मूर्ख हैं उनके विषाद होय है। अर जे पंडित हैं, पराक्रमी हैं तिनके विषाद नाहीं होय है। या भांति राम के अर सीता के वचनालाप होवै हैं। ताही समय बधाईवारे मंगल शब्द करते आए।

तब राजा दशरथ ने महाहर्षतैं बहुत आदरतैं नाना प्रकार के दान करै अर पुत्र कलत्रादि सर्व

कुटुम्बसहित वन में गया। सो नगर के बाहिर चारों तरफ विद्याधरनि की सेना सैकड़ों सामंतनि से पूर्ण देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। विद्याधरनि ने इन्द्र के नगर तुल्य सेना का स्थानक क्षणमात्र में बनाय राखा है। जाके ऊंचा कोट, बड़ा दरवाजा, जे पताका तोरण तिनतैं शोभायमान, रत्ननिकरि मंडित ऐसा निवास देख राजा दशरथ जहां वन में साधु विराजे हुते तहां गया, नमस्कार कर स्तुतिकर राजा चन्द्रगति का वैराग्य देख्या। विद्याधरनि सहित श्री गुरु की पूजा करी। राजा दशरथ सर्व बांधव सहित एक तरफ बैठ्या, अर भामंडल सर्व विद्याधरनि सहित एक तरफ बैठ्या। विद्याधर अर भूमिगोचरी मुनि के पास यति अर श्रावक का धर्म श्रवण करते भए। भामंडल पिता के वैराग्य होयवेकर कछुइक शोकवान बैठा।

तब मुनि कहते भए जो यति का धर्म है शूरवीरों का है, जिनके गृहवास नाहीं, महा शांतदशा है, आनन्द का कारण है, महादुर्लभ है, त्रैलोक्य में सार है, कायर जीवनिकूं भयानक भासै है। भव्यजीव मुनिपदकूं पाय कर अविनाशी धामकूं पावै हैं। अथवा इन्द्र अहमिंद्र पद लहै हैं। लोक के शिखर जो सिद्ध स्थानक है, सो मुनिपद बिना नाहीं पाइये है। कैसे हैं मुनि? सम्यग्दर्शनकरि मंडित हैं, जिनमार्ग से निर्वाण के सुखकूं प्राप्त होय अर चतुर्गति के दुखतैं छूटै सो ही मार्ग श्रेष्ठ है। सो सर्व भूतहित मुनि ने मेघ की गर्जना समान है ध्वनि जिनकी, सर्व जीवनि के चित्तकूं आनन्दकारी ऐसे वचन कहे। कैसा है मुनि? समस्त तत्त्वों के ज्ञाता, सो मुनि के वचनरूप जल संदेहरूप तापकूं, हरता प्राणी जीवनि ने कर्णरूप अंजुलीनिकरि पीये। कई एक मुनि भए, कईएक श्रावक भए, महा धर्मानुराग कर युक्त है चित्त जिनका।

धर्म का व्याख्यान हो चुक्या तब दशरथ पूछता भया – हे नाथ! चन्द्रगति विद्याधरकूं कौन कारण वैराग्य उपज्या। अर सीता अपने भाई भामंडल का चरित्र सुनवे की इच्छा करती भई। कैसी है सीता? महाविनयवंती है। तब मुनि कहते भए – हे दशरथ! तुम सुनहु! इन जीवनि की अपने अपने उपार्जे कर्मनिकर विचित्रगति है। यह भामंडल पूर्वे संसार में अनन्त भ्रमणकर अति दुखित भया, कर्मरूपी पवन का प्रेर्‍या या भव में आकाशसूं पड़ता राजा चन्द्रगतिकूं प्राप्त भया, सो चन्द्रगति अपनी स्त्री पुण्यवतीकूं सौंप्या। सो नवयौवन में सीता का चित्रपट देख मोहित भया। तब जनककूं एक विद्याधर कृत्रिम अश्व होय ले गया, यह करार ठहर्‍या जो धनुष चढ़ावै सो कन्या परणै।

बहुरि जनककूं मिथिलापुरी लेय आए, अर धनुष श्रीराम ने चढ़ाया अर सीता परणी। तब भामंडल विद्याधरनि के मुख से यह वार्ता सुन क्रोधकर विमान में बैठ आवै था सो मार्ग में पूर्वभव का नगर देख्या, तब जातिस्मरण हुआ जो मैं कुण्डलमंडित नामा या विदग्धपुर का राजा अधर्मी

हुता। पिंगल ब्राह्मण की स्त्री हरी। बहुरि मोहि अरण्य के सेनापति ने पकड्या, देशतैं काढ़ दिया, सर्वस्व लूट लिया। सो महापुरुषनि के आश्रय आय मधुमांस का त्याग किया, शुभपरिणामनितैं मरणकर जनक की राणी विदेहा के गर्भतैं उपज्या। अर वह पिंगल ब्राह्मण जाकी स्त्री याने हरी सो वन से काष्ठ लाय स्त्रीरहित शून्यकुटी देख अति विलाप करता भया कि हे कमलनयनी! तेरी राणी प्रभावती सारिखी माता, अर चक्रध्वज सारिखे पिता तिनकूं, अर बड़ी विभूति अर बड़ा परिवार ताहि तज मोसूं प्रीतिकर विदेश आई, रूखे आहार अर फाटे वस्त्र तैनैं मेरे अर्थ से आदरे। सुन्दर हैं सर्व अंग जाके, अब तू मोहि तज कहां गई?

या भांति वियोगरूप अग्नि कर दग्धायमान वह पिंगल विप्र पृथ्वीविषै महा दुख सहित भ्रमण कर मुनिराज के उपदेशतैं मुनि होय तप अंगीकार करता भया। तप के प्रभावतैं देव भया सों मन में चिंतवता भया कि वह मेरी कांता सम्यक्त्वरहित हुती सो तिर्यंचगतिकूं गई। अथवा मायाचार रहित सरल परिणाम हुती सो मनुष्यणी भई, अथवा समाधिमरण कर जिनराजकूं उर में धर देवगतिकूं प्राप्त भई। अर वह दुष्ट कुण्डलमंडित जानै आगैं मेरी स्त्री हरी हुती सो कहां? तब अवधिकरि जनक की स्त्री के गर्भ में आया जान जन्म होते ही बालककूं हर्‍या, सो चन्द्रगति झेल्या अर राणी पुष्पवती को सौंप्या। सो भामंडल जातिस्मरण होय सर्व वृत्तांत चन्द्रगतिकूं कहा।

जो सीता मेरी बहिन है अर राणी विदेहा मेरी माता है, अर पुण्यवती मेरी प्रतिपालक माता है। यह वार्ता सुन विद्याधरनि की सर्व सभा आश्चर्यकूं प्राप्त भई। अर चन्द्रगति भामंडलकूं राज्य देय संसार, शरीर अर भोगनितैं उदास होय वैराग्य अंगीकार करना विचार्‍या, अर भामंडलकूं कहता भया – हे पुत्र! तेरे जन्मदाता माता पिता तेरे शोककरि महादुखी तिष्ठै हैं सो अपना दर्शन देय तिनके नेत्रनिकूं आनन्द उपजाय। सो स्वामी सर्वभूतहित मुनिराज राजा दशरथसूं कहै हैं यह राजा चन्द्रगति संसार का स्वरूप असार जान हमारे निकट आय जिनदीक्षा धरता भया। जो जन्म्या है सो निश्चय से मरेगा ही, अर जो मूवा है सो अवश्य नया जन्म धरेगा। यह संसार की अवस्था जान चन्द्रगति भवभ्रमणतैं डर्‍या।

ये मुनि के वचन सुनकर भामंडल पूछता भया – हे प्रभो! चन्द्रगति का अर पुष्पवती का मो पर अधिक स्नेह काहेतैं भया?

तब मुनि बोले – ये पूर्वभव के तेरे माता पिता हैं सो सुन। एक दारूनामा ग्राम, वहां ब्राह्मण विमुचि, ताके स्त्री अनुकोशा, अर अतिभूत पुत्र ताकी स्त्री सरसा। अर एक कयान नामा परदेशी ब्राह्मण सो अपनी माता ऊर्या सहित दारूग्राम में आया सो पापी अतिभूत की स्त्री सरसाकूं अर इनके घर के सारभूत धनकूं ले भागा। सो अतिभूत महादुखी होय ताके ढूंढ़वेकूं पृथ्वी पर भटक्या।

अर याका पिता कईएक दिन पहिले दक्षिणा के अर्थ देशांतर गया हुता सो घर पुरुषनि बिना सूना होय गया। जो घर में थोड़ा बहुत धन रहा था सो भी जाता रहा। अर अतिभूत की माता अनुकोशा सो दरिद्रकरि महादुखी। यह सब वृत्तांत विमुचि ने सुना कि घर का धन हू गया अर पुत्र की बहू हू गई, अर पुत्र ढूंढ़वे निकसा है सो न जानिये कौन तरफ गया।

तब विमुचि घर आया अर अनुकोशाकूं अति विह्वल देख धीर्य बंधाया, अर कयान की माता ऊर्या सो हू महादुखी, पुत्र अन्याय कार्य किया ताकरि अति लज्जायमान सो कह के दिलासा करी जो तेरा अपराध नाहीं, अर आप विमुचि पुत्र के ढूंढ़वेकूं गया। सो एक सर्वारि नाम नगर, ताके वन में एक अवधिज्ञानी मुनि, सो लोकन के मुखतैं उनकी प्रशंसा सुनी – जो अवधिज्ञानरूप किरणोंकर जगत में प्रकाश करै हैं। तब यह मुनि पै गया। धन अर पुत्रवधू के जाने से महादुखी हुता ही सो मुनिराज की तपोऋद्धि देखकर अर संसार की झूठी माया जान तीव्र वैराग्य पाय विमुचि ब्राह्मण मुनि भया। अर विमुचि की स्त्री अनुकोशा अर कयान की माता ऊर्य्या ये दोनों ब्राह्मणी कमलकांता आर्यिका के निकट आर्यिका के व्रत धारती भईं। सो विमुचि मुनि अर ये दोनों आर्यिका तीनों जीव महानिस्पृह धर्मध्यान के प्रसादतैं स्वर्गलोक गए।

कैसा है वह लोक? सदा प्रकाशरूप है। विमुचि का पुत्र अतिभूत हिंसा मार्ग का प्रशंसक, अर संयमी जीवों का निन्दक। सो आर्त रौद्रध्यान के योगतैं दुर्गति गया। अर यह कयान भी दुर्गति गया। अर वह सरसा अतिभूत की स्त्री जो कयान की लार निकसी हुती सो वलाहक पर्वत की तलहटी में मृगी भई, सो व्याघ्र के भयतैं मृगों के यूथ से अकेली होय दावानल में जल मुई। सो जन्मांतर में चित्तोत्सवा भई, अर वह कयान भव भ्रमण कर ऊँट भया। धूम्रकेश का पुत्र पिंगल भया, अर वह अतिभूत सरसा का पति भव भ्रमण करता राक्षस सरोवर के तीर हंस भया। सो सिचानू ने इसका सर्व अंग घायल किया सो चैत्यालय के समीप पड़ा तहां गुरु शिष्य को भगवान का स्तोत्र पढ़ावता भया सो याने सुना। हंस की पर्याय छोड़ दस हजार वर्ष की आयु का धारी नगोत्तम नामा पर्वतविषै किन्नर देव भया। तहांते चयकर विदग्धपुर का राजा कुण्डलमंडित भया सो पिंगल के पास से चित्तोत्सवा हरी, सो ताका सकल वृत्तांत पूर्वे कहा ही है।

अर वह विमुचि ब्राह्मण जो स्वर्गलोककूं गया हुता सो राजा चन्द्रगति भया, अनुकोशा ब्राह्मणी पुष्पवती अर वह कयान कई भव लेय पिंगल होय मुनिव्रत धार देव भया सो वाने भामंडलकूं होते ही हर्‍या, अर वह ऊर्या ब्राह्मणी देवलोकतैं चयकर राणी विदेहा भई। यह सकल वृत्तांत राजा दशरथ सनुकर भामंडलतैं मिल्या अर नेत्र अश्रुपाततैं भर लीये। अर सम्पूर्ण सभा यह कथा सुनकर सजलनेत्र होय गई अर रोमांच होय आए। अर सीता अपने भाई भामंडलकूं देख स्नेह

कर मिली अर रुदन करती भई – हे भाई! मैं तोहि प्रथम ही देख्या, अर श्रीराम लक्ष्मण उठ कर भामंडलतैं मिले। मुनिकूं नमस्कार कर खेचर भूचर सब ही वन से नगरकूं गए। भामंडलसूं मंत्र कर राजा दशरथ ने जनक राजा के पास विद्याधर पठाया अर जनककूं आवने के अर्थ विमान भेजे। राजा दशरथ ने भामंडल का बहुत सन्मान किया, अर भामंडलकूं अतिरमणीक महिल रहिवेकूं दीए, जहां सुन्दर वापी सरोवर उपवन हैं। सो वहां भामंडल सुखसूं तिष्ठ्या।

अर राजा दशरथ ने भामंडल के आवने का बहुत उत्सव किया, याचकनिकूं वांछा से भी अधिक दान दिया, सो दरिद्रतातैं रहित भए। अर राजा जनक के निकट पवन हूते अतिशीघ्र विद्याधर गए, जायकर पुत्र के आगमन की बधाई दी, अर दशरथ का अर भामंडल का पत्र दिया। सो बांचकर जनक अति आनन्दकूं प्राप्त भया, रोमांच होय आए। विद्याधरसूं राजा पूछै है – हे भाई! यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष है? तू आ हमसों मिल। ऐसा कहकर राजा मिले अर लोचन सजल होय आए। जैसा हर्ष पुत्र के मिलने का होय तैसा पत्र लाने वाले ते मिलने का हर्ष भया। सम्पूर्ण वस्त्र आभूषण ताहि दिए। सब कुटुम्ब के लोग भेले होय उत्सव किया। अर बारम्बार पुत्र का वृत्तांत ताहि पूछै है अर सुन सुन तृप्त न होय। विद्याधर सकल वृत्तांत विस्तारसूं कह्या। ताही समय राजा जनक सर्व कुटुम्बसहित विमान में बैठ अयोध्या चाले। सो एक निमिष में जाय पहुंचे।

कैसी है अयोध्या? जहां वादित्रनि के नाद होय रहे हैं। जनक शीघ्र ही विमानतैं उतर पुत्रतैं मिल्या, सुखकर नेत्र मिल गए, क्षणएक मूर्छा आय गई। बहुरि सचेत होय अश्रुपात के भरे नेत्रनिसूं पुत्रकूं देखा अर हाथ से स्पर्शा। अर माता विदेहा हू पुत्रकूं देख मूर्छित होय गई, बहुरि सचेत होय मिली, अर रुदन करती भई। जाके रुदनकूं सुनकर तिर्यंचनिकूं भी दया उपजै। हाय पुत्र! तू जन्मतैं ही उत्कृष्ट बैरीतैं हरा गया हुता। तेरे देखवेकूं चिंतारूप अग्नि कर मेरा शरीर दग्ध भया हुता, सो तेरे दर्शनरूप जलकरि सींचा शीतल भया। अर धन्य है वह राणी पुष्पवती विद्याधरी जानै तेरी बाललीला देखी, अर क्रीड़ा कर धूसरा तेरा अंग उर से लगाया, अर मुख चूमा, अर नवयौवन अवस्थाविषै चन्दन कर लिप्त सुगन्धनिकर युक्त तेरा शरीर देख्या। ऐसे शब्द माता विदेहा ने कहे, अर नेत्रनितैं अश्रुपात झरै, स्तनितैं दुग्ध जरा, अर विदेहाकूं परम आनन्द उपज्या। जैसैं जिन शासन की सेवक देवी आनन्द सहित तिष्ठै तैसैं पुत्रकूं देख सुखसागर में तिष्ठी। एकमास पर्यंत यह सब अयोध्या में रहे।

फिर भामंडल श्रीरामसूं कहते भए – हे देव! या जानकी के तिहारो ही शरण है, धन्य है भाग्य जाके जो तुम सारिखे पति पाए। ऐसे कह बहिनकूं छाती से लगाया। अर माता विदेहा सीताकूं उर से लगाय कर कहती भई – हे पुत्री! सासू ससुर की अधिक सेवा करियो, अर ऐसा करियो

जो सर्व कुटम्ब में तेरी प्रशंसा होय। सो भामंडल ने सबकूं बुलाया, जनक का छोटा भाई जो कनक उसे मिथिलापुरी का राज्य सौंपकर जनक अर विदेहाकूं अपने स्थानक ले गया।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं कि – हे मगध देश के अधिपति! तू धर्म का माहात्म्य देख जो धर्म के प्रसादतैं श्रीरामदेव के सीता सारिखी स्त्री भई, गुणरूपकर पूर्ण जाका भामंडल भाई विद्याधरनि का इन्द्र, अर देवाधिष्ठित वे धनुष सो राम ने चढ़ाए, अर जिनके लक्ष्मण–सा भाई सेवक। यह श्रीराम का चरित्र भामंडल के मिलाप का वर्णन जो निर्मलचित्र होय सुनै ताकि मनवांछित फल की सिद्धि होय अर निरोग शरीर होय, सूर्य समान प्रभाकूं पावै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै भामण्डल का मिलाप कथन वर्णन करने वाला तीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।30।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीसूं पूछते भए – हे प्रभो! वे राजा दशरथ, जगत के हितकारी, राजा अरण्य के पुत्र बहुरि कहा करते भए? अर श्रीराम लक्ष्मण का सकल वृत्तांत मैं सुना चाहूं हूं सो कृपा करके कहो। तुम्हारा यश तीन लोक में विस्तार रहा है। तब मुनियों के स्वामी महातप तेज के धारनहारे गौतम गणधर कहते भए, जैसा यथार्थ कथन श्री सर्वज्ञदेव वीतराग ने भाख्या है तैसा – हे भव्योत्तम! तू सुन।

जब राजा दशरथ बहुरि मुनियों के दर्शनों कूं गए तो सर्वभूतहित स्वामीकूं नमस्कार कर पूछते भए – हे स्वामी! मैं संसार में अनन्त जन्म धरे सो केई भव की वार्ता तिहारे प्रसाद से सुनकर संसारकूं तजा चाहूं हूं। तब साधु दशरथकूं भव सुनने का अभिलाषी जानकर कहते भए – हे राजन्! सब संसार के जीव अनादिकाल से कर्मों के सम्बन्ध से अनंत जन्म मरण करते दुःख ही भोगते आए हैं। इस जगत में जीवनि के कर्मों की स्थिति उत्कृष्ट मध्यम जघन्य तीन प्रकार की है। अर मोक्ष सर्व में उत्तम है जाहि पंचमगति कहै हैं। सो अनंत जीवनि में कोई एक के होय है, सबनि को नाहीं। यह पंचमगति कल्याणरूपिणी है तहां ते बहुरि आवागमन नाहीं। वह अनन्त सुख का स्थानक शुद्ध सिद्ध पद, इंद्रियविषयरूप रोगनिकरि पीड़ित मोहकर अन्ध प्राणी ना पावै। जे तत्त्वार्थ श्रद्धानकर रहित वैराग्यतैं बहिर्मुख हैं, अर हिंसादिक में प्रवृत्ति जिनकी तिनकूं निरंतर चतुर्गति का भ्रमण ही है। अभव्यों को तो सर्वथा मुक्ति नाहीं, निरंतर भव भ्रमण ही है।

अर भव्यनि कै कोई एक को निवृत्ति है। जहां तक जीव पद्‌गल धर्म अधर्म काल है सो लोकाकाश है, अर जहां अकेला आकाश ही है सो अलोकाकाश है। लोक के शिखर सिद्ध विराजै हैं। या लोकाकाश में चेतना लक्षण जीव अनन्त हैं जिनका विनाश नाहीं। संसारी जीव निरंतर पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय ये छै काय तिनमें देह

धार भ्रमण करै है। यह त्रैलोक्य अनादि अनंत है, यामें स्थावर जंगम जीव अपने अपने कर्मनि के समूहकरि बंधे नाना योनिविषै भ्रमण करै हैं। अर जिनराज के धर्मकर अनंत सिद्ध भए अर अनंत सिद्ध होयंगे, अर होय हैं। जिनमारग टारकर और मार्ग मोक्ष नाहीं। अर अनंतकाल व्यतीत भया, अनंत काल व्यतीत होयगा, काल का अंत नाहीं। जो जीव संदेहरूप कलंक कर कलंकी हैं। अर पापकर पूर्ण हैं, अर धर्मनिकूं नाहीं जानै तिनकैं जैन का श्रद्धान कहांतैं होय? अर जिनके श्रद्धान नाहीं, सम्यक्तरहित हैं तिनके धर्म कहांतैं होय? अर धर्मरूप वृक्ष बिना मोक्षफल कैसैं पावैं?

अज्ञान अनंत दु:ख का कारण है। जे मिथ्यादृष्टि अधर्मविषै अनुरागी हैं, अर अति उग्रपाप कर्मरूप कंचुकी (चोला) कर मंडित है, रागादि विष के भरे हैं, तिनका कल्याण कैसैं होय, दुख ही भोगवै हैं। एक हस्तिनापुरविषै उपास्तनामा पुरुष, ताकी वीपनी नामा स्त्री, सो मिथ्याभिमान कर पूर्ण, जाके कछु नियम व्रत नाहीं, श्रद्धानरहित महाक्रोधवंती अदेख सकी, कषायरूप विष की धारणहारी, महादुर्भाव निरन्तर साधुनि की निंदा करणहारी, कुशब्द बोलनहारी, महा कृपण, कुटिल, आप काहूकूं अन्न न देय, अर जो कोई दान करै ताकूं मनै करै, धन की धिरानी अर धर्म न जाने, इत्यादिक महादोष की भरी मिथ्यामार्ग की सेवक सो पाप कर्म के प्रभावकर भवसागरविषै अनंतकाल भ्रमण करती भई।

अर उपास्ति दान के अनुराग कर जंद्रधुर नगरविषै भद्रनामा मनुष्य, ताके धारिणी स्त्री, ताके धारण नामा पुत्र भया। भाग्यवान, बहुत कुटुम्बी, ताके नयनसुन्दरी नामा स्त्री, सो धारण शुद्ध भावतैं मुनिनि को आहारदान देय, अंतकाल शरीर तजकर धातुकी खंड द्वीपविषै उत्तरकुरु भोगभूमि में तीन पल्य सुख भोग, देवपर्याय पाय, तहांतैं चयकर पृथुलावती नगरीविषै राजा नंदिघोष, राणी वसुधा ताके नंदिवर्धन नामा पुत्र भया। एक दिन राजा नंदिघोष यशोधर नामा मुनि के निकट धर्म श्रवणकर नंदिवर्धनकूं राज्य देय आप मुनि भया। महातपकर स्वर्गलोक गया। अर नंदिवर्धन श्रावक के व्रत धारे, पंच णमोकार के स्मरणविषै तत्पर, कोटिपूर्व पर्यंत महाराजपद के सुख भोगकर अंतकाल समाधिमरण कर पांचवें देवलोक गया। तहांतैं चयकर पश्चिम विदेहविषै विजयार्ध पर्वत तहां शशिपुर नामा नगर, तहां राजा रत्नमाली, ताके राणी विद्युल्लता, ताके सूर्यजय नामा पुत्र भया। एक दिन रत्नमाली महा बलवान सिंहपुर का राजा वज्रलोचन तासूं युद्ध करवेकूं गया। अनेक दिव्य रथ हाथी, घोड़े पियादे, महापराक्रमी सामंत लार, नाना प्रकार शस्त्रनि के धारक, राजा होठ डसता धनुष चढ़ाय, वस्त्र पहिरे रथविषै आरूढ़, भयानक आकृतिकूं धरै, आग्नेय विद्याधर, शत्रु के स्थानककूं दग्ध करवे की है इच्छा जाके, ता समय एक देव तत्काल आयकर कहता भया – हे रत्नमाली! तैं यह कहा आरंभ्या?

अब तू क्रोध तज, मैं तेरा पूर्व भव का वृत्तांत कहूं हूं, सो सुन। भरत क्षेत्रविषै गांधारी नगरी तहां राजा भूति, ताकें पुरोहित उपमन्यु सो राजा अर पुराहित दोनों पापी मांसभक्षी। एक दिन राजा केवल गर्भस्वामी के मुखतैं व्याख्यान सुन यह व्रत लिया, जो मैं पाप का आचरण न करूं। सो व्रत उपमन्यु पुरोहित ने छुड़ाय दिया। एक समय राजा पर परशत्रुओं की धाड़ आई। सो राजा अर पुरोहित दोनों मारे गए। पुरोहित का जीव हाथी भया सो हाथी युद्ध में घायल होय अंतकाल नमोकार मंत्र का श्रवणकर तहां गांधारी नगरीविषै राजा भूति की राणी योजनगंधा, ताकै अरिसूदन नामा पुत्र भया। सो तानै केवल गर्भ मुनि का दर्शन कर पूर्व जन्म स्मरण किया, तब महा वैराग्य उपजा। सो मुनिपद आदरा, समाधिमरण कर ग्यारहवें स्वर्गविषै देव भया।

सो मैं उपमन्यु पुरोहित का जीव अर तू राजा भूति मरकर मंदारण्यविषै मृग भया। दावानल में जर मूवा, मरकर कलिंजनामा नीच पुरुष भया सो महापाप कर दूजे नरक गया। सो मैं स्नेह के योगकर नरकविषै तुझे संबोधा। आयु पूर्णकर नरक से निकस रत्नमाली विद्याधर भया, सो तू वे अब नरक के दुख भूल गया। यह वार्ता सुन रत्नमाली सूर्यजय पुत्रसहित परम वैराग्यकूं प्राप्त भया। दुर्गति के दुख से डरया, तिलकसुन्दर स्वामी का शरण लेय पिता पुत्र दोनों मुनि भए। सूर्यजय तपकर दशमें देवलोक देव भया।

तहांतैं चयकर राजा अरण्य का पुत्र दशरथ भया। सो सर्व भूतहित मुनि कहै है – अल्पमात्र भी सुकृतकर उपास्तिका जीव कई एक भवविषै बड़ केबीज की न्याईं वृद्धिकूं प्राप्त भया। तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है अर नंदिवर्धन के भवविषै तेरा पिता राजा नंदिघोष मुनि होय ग्रैवेयक गया, सो तहांतैं चयकर मैं सर्वभूतहित भया। अर जो राजा भूति का जीव रत्नमाली भया हुता सो स्वर्गसूं आयकर यह जनक भया। अर उपमन्यु पुरोहित का जीव जाने रत्नमाली को संबोधा हुता सो जनक का भाई कनक भया। या संसारविषै न कोई अपना है, न कोई पर है, शुभाशुभ कर्मोंकर यह जीव जन्म मरण करै है।

यह पूर्व भव का वर्णन सुन राजा दशरथ नि:संदेह होय संयम को सम्मुख भया। गुरु के चरणनि कों नमस्कार कर नगर में प्रवेश किया। निर्मल है अंत:करण जिनका, मन में विचारता भया कि यह महा मंडलेश्वर पद का राज्य महा सुबुद्धि जे राम तिनको देकर मैं मुनिव्रत अंगीकार करूं। राम धर्मात्मा हैं, अर महाधीर है, धीर्य को धरे हैं। यह समुद्रांत पृथ्वी का राज्य पालवे समर्थ हैं। अर भाई भी इनके आज्ञाकारी हैं। ऐसा राजा दशरथ ने चिंतवन किया। कैसे हैं राजा? मोहतैं पराङ्मुख अर मुक्ति के उद्यमी। ता समय शरद ऋतु पूर्ण भई, अर हिमऋतु का आगमन भया। कैसी है शरदऋतु? कमल ही हैं नेत्र जाके, अर चन्द्रमा की चांदनी सो ही हैं उज्ज्वल वस्त्र जाके, सो

मानों हिमऋतु के भयकर भाग गई।

अथानन्तर हिमऋतु प्रकट भई, शीत पड़ने लगा, वृक्ष दहे, अर ठंडी पवनकर लोक व्याकुल भए। जा ऋतुविषै धनरहित प्राणी जीर्ण कुटी में दुख से काल व्यतीत करै हैं। कैसे हैं दरिद्री? फट गए हैं अधर अर चरण जिनके, अर बाजै हैं दांत जिनके, अर रूखे हैं केश जिनके, अर निरंतर अग्नि का है सेवन जाके, अर कभी भी उदरभर भोजन न मिले, कठोर है चर्म जिनका। अर घर में कुभार्या के वचन रूप शस्त्रनिकर विदारा गया है चित्त जिनका। अर काष्ठादिक के भार लायवे कांधे कुठारादिक को धरे वन वन भटके हैं, अर शाक वोरषलि आदि ऐसे आहारकर पेट भरै हैं।

अर जे पुण्य के उदयकरि राजादिक धनाढ्य पुरुष भए हैं ते बड़े महलों में तिष्ठै हैं, अर शीत के निवारणहारे, अगर के धूप की सुगन्धिताकर युक्त सुन्दर वस्त्र पहरे हैं। अर सुवर्ण अर रूपादिक के पात्रों में षट्रससंयुक्त सुगंधित स्निग्ध भोजन करै हैं। केसर अर सुगंधादिकर लिप्त हैं अंग जाके, अर जिनके निकट धूपदान में धूप खेईये है। अर परिपूर्ण धनकर चिंतारहित हैं, झरोखों में बैठे लोकनि को देखै हैं। अर जिनके समीप गीत नृत्यादिक विनोद होयवे करै हैं। रत्नों के आभूषण अर सुगन्ध मालादिककर मंडित सुन्दर कथा में उद्यमी हैं। अर जिनके विनयवान अनेक कला की जाननहारी महारूपवान पतिव्रता स्त्री हैं। पुण्य के उदयकरि ये संसारी जीव देवगति मनुष्यगति के सुख भोगै हैं, अर पाप के उदयकरि नरक तिर्यंच तथा मनुष होय दुख दरिद्र भोगवे हैं। सब लोक अपने अपने उपार्जित कर्म के फल भोगवे हैं। ऐसे मुनि के वचन दशरथ पहिले सुने हुते सो संसारतैं विरक्त भया। द्वारपालकूं कहता भया, कैसा है द्वारपाल? भूमिविषै थाप्या है मस्तक अर जोड़े हैं हाथ जाने। नृपति ताकों आज्ञा करी।

हे भद्रे! सामंत मंत्री पुरोहित सेनापति आदि सबको ल्यावो। तब वह द्वारपाल द्वारे पर आय दूजे मनुष्य को द्वार पर मेलि तिनकी आज्ञा प्रमाण बुलावने कों गया। तब वे आयकर राजाकूं प्रणामकरि यथायोग्य स्थानकविषै तिष्ठे, विनती करते भए – हे नाथ! आज्ञा करहु, क्या कार्य है? तब राजा कही – मैं संसार का त्यागकर निश्चय सेती संयम धारूंगा। तब मंत्री कहते भए – हे प्रभो! तुमको कौन कारण वैराग्य उपज्या? तब नृपति कही जो प्रत्यक्ष यह समस्त जगत सूके तृण की न्याईं मृत्यु रूप अग्निकर जरै है, अर जो अभव्यनिकूं अलभ्य अर भव्यनिकूं लेने योग्य ऐसा सम्यक्तसहित संयम सो भव ताप का हरणहारा, अर शिवसुख का देनहारा है, सुर असुर नर विद्याधरनिकरि पूज्य प्रशंसा योग्य है। मैं आज मुनि के मुख से जिनशासन का व्याख्यान सुन्या। कैसा है जिनशासन? सकल पापों का वर्जनहारा है। तीन लोकोंविषै प्रकट महासूक्ष्म है चर्चा जाविषै, अति निर्मल उपमारहित है।

सर्व वस्तुनि में सम्यक्त परम वस्तु है ता सम्यक्त का मूल जिनशासन है, श्रीगुरुओं के चरणारबिंद के प्रसाद कर मैं निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्या, मेरी भवभ्रांति रूप नदी की कथा आज मैं मुनि के मुख से सुनी अर मोहि जातिस्मरण भया। सो मेरे अंग देखो, त्रास कर कांपे हैं। कैसी है मेरी भवभ्रांति नदी? नाना प्रकार के जे जन्म वे ही हैं भ्रमर जामैं, अर मोहरूप कीच करि मलिन, कुतर्करूप ग्राहनिकरि पूर्ण, महादु:ख रूप लहर उठै हैं निरन्तर जामैं, मिथ्यारूप जलकर भरी, मृत्यु रूप मगरमच्छनि का है भय जाविषै, रुदन के महाशब्दकूं धरै, अधर्म प्रवाह कर बहती, अज्ञानरूप पर्वततैं निकसी, संसाररूप समुद्र में है प्रवेश जाका। सो अब मैं इस भवनद्वीपकूं उलंघकर शिवपुरी जायवे का उद्यमी भया हूं। तुम मोह के प्रेरे कछु वृथा मत कहो, संसार समुद्र तर निर्वाण द्वीप जाते अंतराय मत करहु। जैसैं सूर्य के उदय होते अंधकार न रहै तैसैं सम्यग्ज्ञान के होते संशय तिमिर कहां रहै? तातैं मेरे पुत्रकूं राज्य देहु, अब ही पुत्र का अभिषेक करावहु, मैं तपोवन में प्रवेश करूं हूं।

ए वचन सुन मंत्री सामंत राजाकूं वैराग्य का निश्चय जान परमशोककूं प्राप्त भए। नीचे होय गए हैं मस्तक जिनके, अर अश्रुपात कर भर गए हैं नेत्र जिनके, अंगुरी कर भूमिकूं कुचरते क्षणमात्र में प्रभारहित होय गए, मौन से तिष्ठे। अर सकल ही रणवास प्राणनाथ निर्ग्रंथ व्रत का निश्चय सुनि शोककूं प्राप्त भया। अनेक विनोद करते हुते सो तजकर आंसुओं से लोचन भर लिए, अर महारुदन किया। भरत पिता का वैराग्य सुन आप भी प्रतिबोधकूं प्राप्त भए। चित्त में चितवते भए अहो यह स्नेह का बंध छेदना कठिन है। हमारा पिता ज्ञानकूं प्राप्त भया। जिनदीक्षा लेवेकूं इच्छै है, अब इनके राज्य की चिंता कहां, मोहि तो न किसी को कुछ पूछना न कछु करना, तपोवन में प्रवेश करूंगा, संयम धारूंगा। कैसा है संयम? संसार के दु:खनि का क्षय करणहारा है, अर मेरे या देह करहू कहा? कैसा है यह देह व्याधि का घर है, अर विनश्वर है, सो यदि देही से मेरा संबंध नाहीं तो बांधवनिसों कहा संबंध? यह सब अपने कर्म फल के भोक्ता हैं। यह प्राणी मोहकर अंधा है दु:खरूप वनविषै अकेला ही भटकै है। कैसा है दु:खरूप वन? अनेक भवभयरूप वृक्षनितैं भरया है।

अथानन्तर केकई सकल कला की जाननहारी भरत की यह चेष्टा जान अति शोककूं धरती भई। मन में चिंतवै है – भरतार अर पुत्र दोनों ही वैराग्य धारया चाहै हैं, कौन उपाय करि इनका निवारण करूं। या भांति चिंता कर व्याकुल भया है मन जाका, तब राजा ने जो वर दिया हुता सो याद आया। अर शीघ्र ही पति पै जाय आधे सिंहासन पर बैठी, अर विनती करती भई – हे नाथ! सर्व ही स्त्रीनि के निकट तुम मोहि कृपाकर कही हुती जो तू मांग सो मैं देऊं, सो अब देवो। तुम सत्यवादी हो, अर दान करि निर्मलकीर्ति तिहारी जगतविषै विस्तार रही है।

तब दशरथ कहते भए – हे प्रिये! जो तेरी बांछा होय सो ही लेहु। तब राणी केकई आंसू

डारती संती कहती भई – हे नाथ! हम पै ऐसी कहा चूक भई जो तुम कठोर चित्त किया? हमकूं तजा चाहो हो, हमारा जीव तो तिहारे अधीन है। अर यह जिनदीक्षा अत्यन्त दुर्धर सो लेयने को तुम्हारी बुद्धि काहेकूं प्रवृत्ति है? यह इन्द्र धनुष समान जे भोग तिन कर लडाया जो तिहारा शरीर सो कैसे मुनिपद धारोगे? कैसा है मुनिपद? अत्यन्त विषम है। या भांति जब राणी केकई ने कह्या तब आप कहते भए – हे कांते! समर्थनिकूं कहा विषम? मैं तो निसंदेह मुनिव्रत धारूंगा, तेरी अभिलाषा होय सो मांग लेहु। राणी चिंतावान होय नीचा मुखकर कहती भई – हे नाथ! मेरे पुत्रकूं राज्य देहु। तब दशरथ बोले यामें कहा संदेह? तैं धरोहरि मेली हुती सो अब लेहु। तैं जो कहा जो हम प्रमाण किया। अब शोक तज, तैं मोहि ऋणरहित किया।

तब राम लक्ष्मणकूं बुलाय दशरथ कहते भए। कैसे हैं दोऊ भाई? महा विनयवान हैं, पिता के आज्ञाकारी हैं। राजा कहैं है – हे वत्स! यह केकई अनेक कला की पारगामिनी, याने पूर्व महा घोर संग्रामविषै मेरा सारथिपना किया, यह अति चतुर है। मेरी जीत भई ते मैं तुष्टायमान होय याहि वर दीया जो तेरी बांछा हो सो मांग। तब याने वचन मेरे धरोहरि मेला। अब यह कहै है मेरे पुत्रकूं राज्य देवो। सो जो याके पुत्रकूं राज्य न देऊं तो याका पुत्र भरत संसार का त्याग करै, अर यह पुत्र के शोककरि प्राण तजै। अर मेरी वचन चूकवे की अकीर्ति जगत में विस्तरै। अर यह काम मर्यादातैं विपरीत है जो बड़े पुत्रकूं छोड़कर छोटे पूत्रकूं राज्य देना! अर भरतकूं सकल पृथ्वी का राज्य दीए तुम लक्ष्मण सहित कहां जावो? तुम दोऊ भाई परमक्षत्रीय तेज के धरनहारे हो, तातैं हे वत्स! मैं कहा करूं? दोऊ ही कठिन बात आय बनी हैं। मैं अत्यन्त दु:खरूप चिंता के सागर में पड्या हूं।

तब श्रीरामचन्द्र महा विनयकूं धरते संते कहते भए, पिता के चरणारबिंद की ओर हैं नेत्र जिनके, अर महा सज्जनभावकूं धरै हैं, हे तात! तुम अपना वचन पालहु, हमारी चिंता तजहु। जो तिहारे वचन चूकने की अपकीर्ति होय अर हमारे इन्द्र की सम्पदा आवै तो कौन अर्थ? जो सुपुत्र है सो ऐसा ही कार्य करैं जाकर माता पिताकूं रंचमात्र भी शोक न उपजै। पुत्र का यही पुत्रपना पंडित कहै हैं – जो पिताकूं पवित्र करै, अर कष्टतैं रक्षा करै। पवित्र करणा यह कहावै जो उनकूं जिनधर्म के सम्मुख करै। दशरथ के अर राम लक्ष्मण के यह बात होय है ताही समय भरत महिलतैं उतर्‍या, मन में विचारी मैं कर्मनिकूं हनूं, मुनिव्रत धरूं, सो लोकनि के मुखतैं हाहाकार शब्द भया। तब पिता ने विह्वल चित्त होय भरतकूं वन जायवेतैं राख्या, गोद में ले बैठे, छाती सूं लगाय लिया, मुख चूमा अर कहते भए – हे पुत्र! तू प्रजा का पालन कर, मैं तप के अर्थि वन में जाऊं हूं।

भरत बोले – मैं राज्य न करूं, जिनदीक्षा धरूंगा। तब राजा कहते भए – हे वत्स! कई एक

दिन राज्य करहु। तिहारी नवीन वय है, वृद्ध अवस्था में तप करियो। भरत कही – हे तात! जो मृत्यु है सो बाल वृद्ध तरुणकूं नाहीं देखै है, सर्वभक्षी है। तुम मोहि वृथा काहेकूं मोह उपजावो हो?

तब राजा कही – हे पुत्र! गृहस्थाश्रमविषै भी धर्म का संग्रह होय है। कुमानुषनितैं नाहीं बनै है। तब भरत कही – हे नाथ! इन्द्रियनि के वशतैं काम क्रोधादिक भरे गृहस्थानिकूं मुक्ति कहां? तब भूपति ने कही – हे भरत! मुनिन हू में सब ही तद्भव मुक्ति नाहीं होय हैं, कई एक होय हैं। तातैं तू कई दिन गृहस्थधर्म आराधि।

तब भरत कही – हे देव! आप जो कही सो सत्य है, परन्तु गृहस्थनि का तो यह नियम ही है जो मुक्ति न होय। अर मुनिनि मैं कोई होय, कोई न होय। गृहस्थधर्मतैं परम्पराय मुक्ति होय है, साक्षात् नाहीं। तातैं हीनशक्ति बारेनि का काम है। मोहि यह बात न रुचै, मैं महाव्रत धरणे का ही अभिलाषी हूं। गरुड़ कहा पतंगनि की रीति आचरै? कुमानुष कामरूप अग्नि की ज्वालाकरि परम दाहकूं प्राप्त भए संते स्पर्शन इन्द्रिय अर जिह्वा इन्द्रियकरि अधर्मकार्यकूं करै हैं, तिनकूं निवृत्ति कहां? पापी जीव धर्मतैं विमुख, विषयभोगनिकूं सेयकरि निश्चयसेती महा दुःखदाता जो दुर्गति ताहि प्राप्त होय हैं। ये भोग दुर्गति के उपजावनहारे, अर राखे न रहें, क्षणभंगुर हैं, तातैं त्याज्य ही हैं। ज्यों ज्यों कामरूप अग्नि में भोगरूप ईंधन डारिए त्यों त्यों अत्यन्त ताप की करणहारी कामाग्नि प्रज्वलित होय है। तातैं हे तात! तुम मोहि आज्ञा देवो जो वन में जाय विधिपूर्वक तप करूं। जिनभाषित तप परम निर्जरा का कारण है। या संसारतैं मैं अतिभयकूं प्राप्त भया हूं।

अर हे प्रभो! जो घर ही विषै कल्याण होय तो तुम काहे को घर तजि मुनि हुआ चाहो हो? तुम मेरे तात हो। सो तात का यही धर्म है – संसार समुद्रतैं तारै, तप की अनुमोदना करै, यह बात विचक्षण पुरुष कहै हैं। शरीर स्त्री धन माता पिता भाई सकलकूं तजि यह जीव अकेला ही परलोककूं जाय है। चिरकाल देवलोक के सुख भोगै हैं, तौ हू यह तृप्त न भया। सो कैसे मनुष्यनि के भोगनिकरि तृप्त होय? पिता भरत के ये वचन सुनकर बहुत प्रसन्न भया, हर्षथकी रोमांच होय आए। अर कहता भया – हे पुत्र! तू धन्य है, भव्यनिविषै मुख्य है, जिनशासन का रहस्य जानि प्रतिबोधकूं प्राप्त भया है। तू जो कहै है सो प्रमाण है, तथापि हे धीर! तैं अब तक कबहू मेरी आज्ञा भंग न करी, तू विनयवान पुरुषों में प्रधान है, मेरी वार्ता सुनि। तेरी माता केकई ने युद्धविषै मेरा सारथीपना किया। वह युद्ध अतिविषम हुता, जामें जीवने की आशा नाहीं। सो याके सारथीपनेकरि युद्धविषै विजय पाई। तब मैं तुष्टायमान होय याकूं कहा – जो तेरी बांछा होय सो मांग। तब याने कही यह वचन भंडार रहै, जादिन मोहि इच्छा होयगी तादिन मांग लूंगी। सो आज

याने यह मांगी कि मेरे पुत्रकूं राज्य देहु सो मैं प्रमाण किया।

अब हे गुणनिधे! तू इन्द्र के राज्य समान यह राज्य निकंटक करि। मेरी प्रतिज्ञा भंग की अकीर्ति जगतविषै न होय, अर यह तेरी माता तेरे शोककरि तप्तायमान होय मरण कों न पावै। कैसी है यह? निरन्तर सुखकर लढ़ाया है शरीर जानै। अपत्य कहिए पुत्र, ताका यही पुत्रपना है कि माता पिताकूं शोक समुद्र में न डारे! यह बात बुद्धिमान कहै हैं। या भांति राजा कही।

अथानन्तर श्रीराम भरत का हाथ पकड़ महामधुर वचनकरि प्रेम की भरी दृष्टिकरि देखते संते कहते भए, हे भ्रात! तात ने जैसे वचन तोहि कहे ऐसे और कौन कहने समर्थ? जो समुद्र से रत्नों की उत्पत्ति होय सो सरोवर से कहां? अवार तेरी वय तप के योग्य नाहीं, कई एक दिन राज्य कर जासै पिता की कीर्ति वचन के पालिवे की चन्द्रमा समान निर्मल होय। अर तो सारिखे पुत्र के होते संते माता शोककर तप्तायमान मरणकूं प्राप्त होय यह योग्य नाहीं। अर मैं पर्वत अथवा वनविषै ऐसी जगह निवास करूंगा जो कोई न जानै। तू निश्चिन्त राज्य करि। मैं सकल राजऋद्धि तज देशतैं दूर रहूंगा। अर पृथ्वी को पीड़ा काहू प्रकार न होयगी। तातैं अब तू दीर्घ सांस मत डारै, कई एक दिन पिता की आज्ञा मान राज्य करि न्याय सहित पृथ्वी की रक्षाकरि। हे निर्मल स्वभाव! यह इक्ष्वाकुवंशनि का कुल, ताहि तू अत्यन्त शोभायमान करि, जैसैं चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रादिक को शोभायमान करै है। भाई का यही भाईपना पंडितनि ने कहा है कि भाइनि की रक्षा करै, संताप हरै।

श्रीरामचन्द्र ऐसे वचन कहिकर पिता के चरणनि कों भावसहित प्रणाम कर चल पड़े। तब पिताकूं मूर्च्छा आय गई, काष्ठ के स्तम्भ समान शरीर होय गया। राम तर्कश बांध धनुष हाथ में लेय माताकूं नमस्कार कर कहते भए – हे माता! हम अन्य देशकूं जांय हैं, तुम चिंता न करनी। तब माता को भी मूर्छा आय गई, बहुरि सचेत होय आंसू डारती संती कहती भई, हाय पुत्र! तुम मोहि शोक के समुद्र में डार कहां जावो हो? तुम उत्तम चेष्टा के धरणहारे हो, माता का पुत्र ही अवलंबन है, जैसैं शाखा के मूल आधार है। माता रुदनकरि विलाप करती भई।

तब श्रीराम माता की भक्तिविषै तत्पर ताहि प्रणामकर कहते भए – हे माता! तुम विषाद मत करहु। मैं दक्षिणदिशाविषै कोई स्थानक कर तुमकूं निसंदेह बुलाऊंगा। हमारे पिता ने माता केकईकूं वर दिया हुता सो भरतकूं राज्य दिया। अब मैं यहां रहूं नाहीं, विंध्याचल के वनविषै अथवा मलयाचल के वनविषै तथा समुद्र के समीप स्थानक करि तुमकूं निसंदेह बुलाऊंगा। मैं सूर्य समान यहां रहूं तो भरत चन्द्रमा की आज्ञा ऐश्वर्यरूप कांति न विस्तरै। तब माता नम्रीभूत जो पुत्र ताहि उरसूं लगाय रुदन करती संती कहती भई – हे पुत्र! मोकूं तिहारे लार ही चलना उचित है, तुमकूं देखे बिना मैं प्राणनिकूं राखिवे समर्थ नाहीं। जे कुलवंती स्त्री हैं तिनके पिता अथवा पति

तथा पुत्र ये ही आश्रय हैं। सो पिता तो कालवश भया, अर पति जिनदीक्षा लेयवेकूं उद्यमी भया है। अब तो पुत्र ही का अवलंबन है। सो तुमहूं छांड चाले तो मेरी कहा गति भई?

तब राम बोले – हे माता! मार्ग में पाषाण, अर कंटक बहुत हैं, तुम कैसें पायन चलोगी? तातैं कोऊ सुख का स्थानककरि असवारी भेज तुमकूं बुलाऊंगा। मोहि तिहारे चरणनि की सौगन्ध है, तिहारे लेनेकूं मैं आऊंगा, तुम चिंता मत करहु। ऐसे कह माताकूं शांतता उपजाय सीख दीनी। बहुरि पिता पै गए। पिता मूर्छित होय गये हुते सो सचेत भए। पिताकूं प्रणामकर और मातानि पैं गए। सुमित्रा, केकई, सुप्रभा, कौशिल्या सबनिकूं प्रणाम कर सीख करी। कैसे हैं राम? न्यायविषै प्रवीण, निराकुल है चित्त जिनका, तथा भाई बंधु मंत्री अनेक राजा उमराव परिवार के लोक सबनिकूं शुभ वचन कह विदा भए। सबनि को बहुत दिलासाकर छातीसूं लगाए, आंसू पूंछे। उनने घनी ही विनती करी जो यहां ही रहो, सो न मानी। सामंत तथा हाथी, घोड़े रथ सबकी ओर कृपादृष्टि कर देख्या। बहुरि बड़े-बड़े सामंत हाथी, घोड़े भेंट लाए सो राम ने न राखे। सीता अपने पतिकूं विदेश गमनकूं उद्यमी देख ससुर अर सासूकूं प्रणामकर नाथ के संग चाली। जैसें शची इन्द्र के साथ चालै अर लक्ष्मण स्नेह कर पूर्ण रामकूं विदेशगमनकूं उद्यमी देख चित्त में क्रोधकर चितवता भया।

जो हमारे पिता ने स्त्री के कहेतैं यह कहा अन्याय कार्य विचारया, जो राम को टार और को राज्य दिया। धिक्कार है स्त्रीनिकूं जो अनुचित काम करती शंका न करैं, स्वार्थविषै आसक्त है चित्त जिनका। अर यह बड़ा भाई महानुभाव पुरुषोत्तम है सो ऐसे परिणाम मुनिन के होय हैं। अर मैं ऐसा समर्थ हूं जो समस्त दुराचारिनि का पराभवकर भरतकूं राज्यलक्ष्मीतैं रहित करूं, अर राज्यलक्ष्मी श्रीराम के चरणनि में लाऊं। परन्तु यह बात उचित नाहीं, क्रोध महा दुखदाई है, जीवनिकूं अंध करै है। पिता तो जिनदीक्षाकूं उद्यमी भया अर मैं क्रोध उपजाऊं, सो योग्य नाहीं। अर मोहि ऐसे विचारकर कहा? योग्य अर अयोग्य पिता जानै अथवा बड़ा भाई जानै। जामैं पिता की कीर्ति उज्ज्वल होय सो कर्त्तव्य है। मोहि काहूसूं कछु न कहना, मैं मौन पकड़ बड़े भाई के संग जाऊंगा।

कैसा है यह भाई? साधु समान हैं भाव जाके। ऐसा विचारकर कोप तज धनुषबाण लेय समस्त गुरुजननिकूं प्रणाम कर महाविनय संपन्न राम के लार चाल्या। दोऊ भाई जैसें देवालयतैं देव निसरैं तैसैं राजमंदिरतैं नीसरे। अर माता पिता सकल परिवार अर भरत शत्रुघ्न सहित इनके वियोगतैं अश्रुपातकरि मानों वर्षाऋतु करते संते राखवेकूं चाले। सो राम लक्ष्मण अति पिताभक्त, अर संबोधवेकूं महापंडित विदेश जायवे का ही है निश्चय जिनके। सो माता पिता की बहुत

स्तुतिकरि बारम्बार नमस्कार कर बहुत धीर्य बंधाय पीठ पीछे फेरे, सो नगर में हाहाकार भया।

लोक वार्ता करै हैं – हे मात! यह कहा भया, यह कौन ने मता उपजाया? या नगरी ही का अभाग्य है अथवा सकल पृथ्वी का अभाग्य है। हे मात! हम तो अब यहां न रहेंगे, इनके लार चालेंगे। ये महा समर्थ हैं। अर देखो यह सीता नाथ के संग चाली है। अर राम की सेवा करणहारा लक्ष्मण भाई है। धन्य है यह जानकी विनयरूप वस्त्र पहिरे भरतार के संग जाय है। नगर की नारी कहै हैं हम सबनिकूं शिक्षा देनहारी यह सीता महापतिव्रता है। या समान और नारी नाहीं, जो महापतिव्रता होय सो याकी उपमा पावें। पतिव्रतानिकैं भरतार ही देव हैं। अर देखो यह लक्ष्मण माताकूं रोवती छोड़ बड़े भाई के संग जाय है। धन्य याकी भक्ति, धन्य याकी प्रीति, धन्य याकी शक्ति, धन्य याकी क्षमा, धन्य याकी विनय की अधिकता। या समान और नाहीं। अर दशरथ भरतकूं यह कहा आज्ञा करी जो तू राज्य लेहु?

अर राम लक्ष्मणकूं यह कहा बुद्धि उपजी जो अयोध्याकूं छांड चाले। जो काल में जो होनी होय सो होय है, जाके जैसा कर्म उदय होय तैसी ही होय, जो भगवान के ज्ञान में भासा है सो होय। देवगति दुर्निवार है। यह बात बहुत अनुचित होय है। यहां के देवता कहां गए। ऐसे लोगनि के मुखध्वनि होती भई। सब लोक इनके लार चालवेकूं उद्यमी भए। घरनितैं निकसे नगरी का उत्साह जाता रह्या, शोककर पूर्ण जो लोक तिनके अश्रुपातनिकरि पृथ्वी सजल होय गई। जैसैं समुद्र की लहर उठै है तैसैं लोक उठे। राम के संग चाले, मनै किए हू लोक न रहे। रामकूं भक्तिकर लोक पूजैं, संभाषण करैं सो राम पैंड पैंड में विघ्न मानें। इनका भाव चलवे का, लोक राख्या चाहै है, कई एक लार चलैं। राम का विदेश गमन मानों सूर्य देख न सक्या सो अस्त होने लग्या। अस्त समय सूर्य के प्रकाशन ने सर्व दिशा तजी, जैसैं भरत चक्रवर्ती मुक्ति के निमित्त राज्यसम्पदा तजी हुती।

सूर्य के अस्त होते परम राग को धरती संती संध्या सूर्य के पीछे ही चाली, तैसैं सीता राम के पीछे चाली। अर समस्त विज्ञान का विध्वंस करणहारा अंधकार जगत में व्याप्त भया, मानों राम के गमनकरि तिमिर विस्तर्‍या। लोग लार लागे सो रहें नाहीं। तब राम लोकनि के टारिवेकूं श्रीअरनाथ तीर्थंकरके चैत्यालयविषै निवास करना विचार्‍या। संसार के तारणहारे भगवान तिनका भवन सदा शोभायमान, महासुगंध अष्ट मंगल द्रव्यनिकर मंडित, जाके तीन दरवाजे, ऊंचा तोरण। सो राम लक्ष्मण सीता प्रदक्षिणा देय चैत्यालय मांहि पैठे, समस्त विधि के वेत्ता। दोय दरवाजे तक तो लोक चले गए, तीसरे दरवाजे पर द्वारपाल ने लोकनिकूं रोक्या जैसैं मोहिनीकर्म मिथ्यादृष्टिनिकूं शिवपुर जायवेतैं रोकै।

राम लक्ष्मण धनुष बाण अर बख्तर बाहिर मेल भीतर दर्शनकूं गए, कमल समान हैं नेत्र

जिनके। श्रीअरनाथ का प्रतिबिंब रत्ननि के सिंहासन पर विराजमान, महाशोभायमान, महासौम्य, कायोत्सर्ग, श्रीवत्स लक्षणकर देदीप्यमान है उरस्थल जिनका, प्रकट हैं समस्त लक्षण जिनके, सम्पूर्ण चन्द्रमा समान वदन, फूले कमल से नेत्र, कथनविषै अर चिंतवनविषै न आवै ऐसा है रूप जिनका, तिनका दर्शनकर भावसहित नमस्कार कर ये दोऊ भाई परम हर्षकूं प्राप्त भए। कैसे हैं दोऊ? बुद्धि पराक्रम रूप लज्जा के भरे जिनेन्द्र की भक्तिविषै तत्पर। रात्रिकूं चैत्यालय के समीप रहे, तहां इनकूं बसे जान माता कौशल्यादिक पुत्रनिविषै है वात्सल्य जिनका आयकर आंसू डारती बारम्बार उरसूं लगावती भईं। पुत्रनि के दर्शनविषै अतृप्त विकल्प रूप हिंडोलविषै झूलै है चित्त जिनका।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! सर्व शुद्धता में मन की शुद्धता महा प्रशंसा योग्य है। स्त्री पुत्रकूं भी उर से लगावै अर पतिकूं भी उर से लगावै, परन्तु परिणामनि का अभिप्राय जुदा जुदा है। दशरथ की चारों ही राणी गुणरूप लावण्यताकर पूर्ण, महामिष्टवादिनी, पुत्रनिसूं मिल पति पै गईं, जायकर कहती भईं। कैसा है पति? सुमेरु समान निश्चल है भाव जाका।

राणी कहै हैं – हे देव! कुलरूप जहाज शोकरूप समुद्रविषै डूबै है सो थांभो। राम लक्ष्मणकूं पीछा ल्यावौ, तब राजा कहते भए यह जगत विकार रूप मेरे अधीन नाहीं। मेरी इच्छा तो यह ही है कि सर्व जीवनिकूं सुख होय, काहूकूं दुख न होय, जन्म जरा मरणरूप पारधीनकरि कोई जीव पीड्या न जाय। परन्तु ये जीव नाना प्रकार के कर्मनि की स्थितिकूं धरै हैं, तातैं कौन विवेकी वृथा शोक करै। बांधवादिक इष्ट पदार्थनि के दर्शनविषै प्राणिनिकूं तृप्ति नाहीं, तथा धन अर जीतव्य इनकरि तृप्ति नाहीं। इन्द्रियनि के सुख पूर्ण न होय सकै अर आयु पूर्ण होय तब जीव देहकूं तज और जन्म धरै, जैसैं पक्षी वृक्षकूं तज चला जाय है। तुम पुत्रनि की माता हो, पुत्रनिकूं ले आवो, पुत्रनि के राज्य का उदय देख विश्रामकूं भजो। मैंने तो राज्य का अधिकार तज्या। पापक्रियातैं निवृत्त भया, भवभ्रमणतैं भयकूं प्राप्त भया। अब मैं मुनिव्रत धारूंगा या भांति राजा रानीनिसों कही। निर्मोहता के निश्चयकूं प्राप्त भया, सकल विषयाभिलाषरूप दोषनितैं रहित, सूर्य समान है तेज जाका सो पृथ्वी मैं तप संयम का उद्योत करता भया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै दशरथ का वैराग्य वर्णन करने वाला इकतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।31।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण क्षण एक निद्रा कर अर्धरात्रि समय जब मनुष्य सोय रहै, लोकनि का शब्द मिट गया, अर अंधकार फैल गया ता समय भगवानकूं नमस्कार कर बखतर पहिर, धनुष बाण लेय, सीताकूं बीच में लेकर चाले। घर घर दीपकनि का उद्योत होय रहा है, कामीजन अनेक चेष्टा करै हैं। ये दोऊ भाई महाप्रवीण नगर के द्वार की खिड़की की ओर से निकसे, दक्षिण दिशा

का पंथ लिया। रात्रि के अंत में दौड़कर सामंत लोक आय मिले, राघव के संग चलने की है अभिलाषा जिनके। दूरतैं राम लक्ष्मणकूं देख महाविनय के भरे असवारी छोड़ प्यादे आए, चरणारविंद को नमस्कार करि निकट आय वचनालाप करते भए।

बहुत सेना आई। अर जानकी की बहुत प्रशंसा करते भए जो याके प्रसादतैं हम राम लक्ष्मण को आय मिले, यह न होती तो ये धीरे-धीरे न चलते तो हम कैसैं पहुंचते। ये दोऊ भाई पवन समान शीघ्रगामी हैं अर यह सीता महासती हमारी माता है। या समान प्रशंसा योग्य पृथ्वीविषै और नाहीं। ये दोऊ भाई नरोत्तम सीता की चाल प्रमाण मंद मंद दो कोस चाले। खेतनिविषै नाना प्रकार के अन्न हरे होय रहे हैं, अर सरोवरनि में कमल फूल रहे हैं, अर वृक्ष महारमणीक दीखै हैं। अनेक ग्राम नगरादि में ठौर ठौर लोक पूजै हैं, भोजनादि सामग्रीकरि, अर बड़े बड़े राजा बड़ी फौज से आय मिले, जैसैं वर्षाकाल में गंगा जमुना के प्रवाहविषै अनेक नदियानि के प्रवाह आय मिलैं। कई एक सामंत मार्ग के खेदकरि इनका निश्चय जान आज्ञा पाय पीछे गए, अर कई एक लज्जाकर, कई एक भय कर, कई एक भक्ति कर लार प्यादे चले जाय हैं। सो राम लक्ष्मण क्रीड़ा करते परियात्रा नामा अटवीविषै पहुंचे।

कैसी है अटवी? नाहर अर हाथीनि के समूहनिकर भरी, महा भयानक, वृक्षनिकर रात्रिसमान अंधकार की भरी, जाके मध्य नदी है, ताके तट आए जहां भीलनि का निवास है, नाना प्रकार के मिष्टफल हैं। आप तहां तिष्ठकर, कई एक राजनि कों विदा किया। अर कई एक पीछे न फिरे, राम ने बहुत कहा तो भी संग ही चाले, सो सकल नदी को महा भयानक देखते भए। कैसी है नदी? पर्वतनिसों निकसती महानील है जल जाका, प्रचण्ड हैं लहर जामें, महा शब्दायमान अनेक जे ग्राह मगर तिनकर भरी, दोऊ ढांहां विदारती, कल्लोलनि के भयकर उड़े हैं तीर के पक्षी जहां, ऐसी नदी को देखकर सकल सामंत त्रासकर कम्पायमान होय राम लक्ष्मणकूं कहते भए - हे नाथ! कृपाकर हमें भी पार उतारहु, हम सेवक भक्तिवंत हमसे प्रसन्न होवो।

हे माता जानकी! लक्ष्मण से कहो जो हमकूं पार उतारै। या भांति आंसू डारते, अनेक नरपति नाना चेष्टा के करणहारे नदीविषै पड़ने लगे। तब राम बोले - अहो! अब तुम पाछे फिरो। यह वन महा भयानक है। हमारा तुमारा यहां लग ही संग हुता। पिता ने भरतकूं सबका स्वामी किया है सो तुम भक्तिकर तिनकूं सेवहु। तब वे कहते भए - हे नाथ! हमारे स्वामी तुम ही हो, महादयावान हो, हम पर प्रसन्न होवो, हमको मत छोडहु। तुम बिना यह प्रजा निराश्रय भई, आकुलतारूप कहो कौन की शरण जाय? तुम समान और कौन है?

व्याघ्र सिंह अर गजेन्द्र, सर्पादिक का भरा भयानक जो यह वन तामें तुम्हारे संग रहेंगे। तुम

बिना हमारे स्वर्गहु सुखकारी नाहीं। तुम कही पाछे जावो सो चित्त फिरै नाहीं, कैसे जाहिं? यह चित्त सब इन्द्रियनि का अधिपति याहीतैं कहिए है जो अद्‌भुत वस्तु में अनुराग करै। हमारे भोगनिकर घरकर तथा स्त्री कुटुम्बादिकर कहा? तुम नररत्न हो, तुमको छांड कहा जाहिं? हे प्रभो! तुमने बालक्रीड़ाविषै भी हमसों कबहू वंचना न करी, अब अत्यन्त निठुरताकूं धारौ हो। हमारा अपराध कहा? तिहारे चरणरजकर परमवृद्धिकूं प्राप्त भए, तुम तो भृत्यवत्सल हो। अहो माता जानकी! अहो लक्ष्मण धीर! हम सीस निवाय हाथ जोड़ विनती करै हैं, नाथकूं हम पर प्रसन्न करहु। ये वचन सबने कहे। तब सीता अर लक्ष्मण राम के चरणनि की ओर निरख रहे।

राम बोले – अब तुम पाछे जाहु। यही उत्तर है। सुखसों रहियो। ऐसा कहकर दोनों धीर नदी के विषै प्रवेश करते भए। श्री राम सीता का कर गह सुख से नदी में ले गए जैसैं कमलीनि कों दिग्गज ले जाय। वह असराल नदी राम लक्ष्मण के प्रभावकर नाभि प्रमाण बहने लगी। दोऊ भाई जलविहारविषै प्रवीण क्रीड़ा करते चले गए। सीता राम के हाथ गहे ऐसी शोभै मानों साक्षात् लक्ष्मी ही कमलदल में तिष्ठी है।

राम लक्ष्मण क्षणमात्रविषै नदी पार भए, वृक्षनि के आश्रय आय गए। तब लोकनि की दृष्टितैं अगोचर भए, तब कईएक तो विलाप करते आंसू डारते घरनिकूं गए, अर कई एक राम लक्ष्मण की ओर धरी है दृष्टि जिनने सो काष्ठ से होय रहे। अर कई एक मूर्छा खाय धरती पर पड़े। अर कई एक ज्ञान को प्राप्त होय जिनदीक्षा को उद्यमी भए, परस्पर कहते भए जो धिक्कार है या असार संसार को, अर धिक्कार इन क्षणभंगुर भोगनि कों, ये काले नाग के फण समान भयानक हैं। ऐसे शूरवीरनि की यह अवस्था, तो हमारी कहा बात? या शरीर को धिक्कार, जो पानी के बुदबुदा समान निस्सार, जरा मरण इष्टवियोग अनिष्टसंयोग इत्यादि कष्ट का भाजन।

धन्य हैं वे महापुरुष, भाग्यवंत, उत्तम चेष्टा के धारक, जे मरकट (बंदर) की भौंह समान लक्ष्मी को चंचल जान तजिकर दीक्षा धरते भए। या भांति अनेक राजा विरक्त दीक्षा को सन्मुख भए। तिनने एक पहाड़ की तलहटी में सुन्दर वन देख्या। अनेक वृक्षनिकर मंडित, महासघन, नाना प्रकार के पुष्पनिकर शोभित, जहां सुगन्ध के लोलुपी भ्रमर गुंजार करै हैं। तहां महापवित्र स्थानक में तिष्ठते ध्यानाध्ययनविषै लीन महातप के धारक साधु देखे। तिनको नमस्कार कर वे राजा जिननाथ का जो चैत्यालय तहां गए। ता समय पहाड़नि की तलहटी तथा पहाड़नि के शिखरविषै, अथवा रमणीक वननिविषै, अथवा नदीनि के तटविषै, नगर ग्रामादिकविषै जिनमंदिर हुते तहां नमस्कारकरि एक समुद्र समान गम्भीर मुनिन के गुरु सत्यकेतु आचार्य तिनके निकट गए। नमस्कार कर महाशांत रस के भरे आचार्य से वीनती करते भए – हे नाथ! हमको संसार समुद्रतैं पार उतारहु।

तब मुनि कही – तुमको भव पार उतारनहारी भगवती दीक्षा है, सो अंगीकार करहु।

यह मुनि की आज्ञा पाय ये परम हर्षकूं प्राप्त भए। राजा विदग्धविजय मेरुक्रूर संग्रामलोलुप श्रीनागदमन धीर शत्रुदमन अर विनोद कंटक सत्यकठोर प्रियवर्धन इत्यादि निर्ग्रंथ होते भए। तिनका गज तुरंग रथादि सकल साज सेवक लौकनि नैं जायकरि उनके पुत्रादकनिकूं सौंप्या। तब वे बहुत चिंतावान भए। बहुरि समझकर नाना प्रकार के नियम धारते भए। कई एक सम्यग्दर्शनकूं अंगीकार कर संतोषकूं प्राप्त भये, कई एक निर्मल जिनेश्वर देव का धर्म श्रवणकरि पापतैं पराङ्मुख भए। बहुत सामंत राम लक्ष्मण की वार्ता सुन साधु भए। कई एक श्रावक के अणुव्रत धारते भए। बहुत राणी आर्यिका भईं, कईएक सुभट राम का सर्व वृत्तांत भरत दशरथ पर जाकर कहते भए सो सुनकर दशरथ अर भरत कछु एक खेदकूं प्राप्त भए।

अथानन्तर राजा दशरथ भरत का राज्याभिषेक कर, कछुयक जो राम के वियोग कर व्याकुल भया हुता हृदय, सो समता में लाय, विलाप करता जो अंत:पुर ताहि प्रतिबोधि, नगरतैं वनकूं गए। सर्वभूतहित स्वामी को प्रणामकरि बहुत नृपनि सहित जिन दीक्षा आदरी। एकाकी विहारी जिनकल्पी भए। परम शुक्लध्यान की है अभिलाषा जिनके तथापि पुत्र के शोककर कबहुंक कछुएक कलुषता उपज आवै सो एक दिन ये विचक्षण विचारते भए कि संसार के दुख का मूल यह जगत का स्नेह है। इसे धिक्कार हो, या करि कर्म बंधे हैं। मैं अनंत जन्म धरे, तिनविषै गर्भ जन्म बहुत धरे, सो मेरे गर्भ जन्म के अनेक माता पिता भाई पुत्र कहां गये?

अनेक बार मैं देवलोक के भोग भोगे, अर अनेक बार नरक के दुख भोगे, तिर्यंच गतिविषै मेरा शरीर अनेक बार इन जीवनि ने भख्या, इनका मैं भख्या, नाना रूप जे योनियें तिनविषै मैं बहुत दुख भोगे, अर बहुत वार रुदन किया, अर रुदन के शब्द सुने, अर बहुत बार वीणाबांसुरी आदि वादित्रों के नाद सुने, गीत सुने, नृत्य देखे, देवलोकविषै मनोहर अप्सरानि के भोग भोगे, अनेक वार मेरा शरीर नरकविषै कुल्हाडनि कर काटा गया, अर अनेक बार मनुष्यगतिविषै महासुगन्ध महावीर्य का करणहारा षट्रस संयुक्त अन्न आहार किया, अर अनेक बार नरकविषै गला सीसा अर तांबा नारकियों ने मार मार मुझे प्याया, अर अनेक वार सुर नर गतिविषै मन के हरणहारे सुन्दररूप देखे अर सुन्दररूप धारे, अर अनेक बार नरकविषै महाकुरूप धारे, अर नाना प्रकार के त्रास देखे, कई एक बार राजपद देवपदविषै नाना प्रकार के सुगन्ध सूंघे तिन पर भ्रमर गुंजार करैं, अर कई एक बार नरक की महादुर्गंध सूंघी, अर अनेक बार मनुष्य तथा देवगतिविषै महालीला की धरणहारी वस्त्राभरण मंडित, मन की चोरणहारी जे नारी तिनसों आलिंगन किया, अर बहुत बार नरकनि विषै कूटशाल्मलि वृक्ष तिनके तीक्ष्ण कंटक अर प्रज्वलिती लोह की

पुतलीनि से स्पर्श किया। या संसारविषै कर्मनि के संयोगतैं मैं कहा कहा न देखा, कहा कहा न सूंघा, कहा कहा न सुना, कहा कहा न भखा?

अर पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकायविषै ऐसा देह नाहीं जो मैं न धारा, तीन लोकविषै ऐसा जीव नाहीं जासूं मेरे अनेक नाते न भए। ये पुत्र मेरे कई बार पिता भए, माता भए, शत्रु भए, मित्र भए, ऐसा स्थानक नाहीं जहां मैं न उपजा न मुआ। ये देह भोगादिक अनित्य, या जगतविषै कोई शरण नाहीं, यह चतुर्गतिरूप संसार दुख का निवास है, मैं सदा अकेला हूं। ये षट्द्रव्य परस्पर सब ही भिन्न हैं, यह काय अशुचि, मैं पवित्र। ये मिथ्यात्वादि अव्रतादिकर्म आस्रव के कारण हैं। सम्यक्त व्रत संयमादि संवर के कारण हैं। तपकर निर्जरा होय है। यह लोक नानारूप, मेरे स्वरूपतैं भिन्न। या जगतविषै आत्मज्ञान दुर्लभ है। अर वस्तु का जो स्वभाव सोई धर्म तथा जीवदया धर्म सो मैं महाभाग्यतैं पाया। धन्य ये मुनि जिनके उपदेशतैं मोक्षमार्ग पाया। सो अब पुत्रनि की कहा चिंता? ऐसा विचारकर दशरथ मुनि निर्मोह दशाकूं प्राप्त भए। जिन देशों में पहिले हाथी चढ़े चमर ढुरते छत्र फिरते हुते अर महारण संग्रामविषै उद्धत वैरिनिकूं जीते तिन देशनिविषै निर्ग्रंथ दशा धरे, बाईस परीषह जीतते, शांतिभाव संयुक्त विहार करते भए।

अर कौशल्या तथा सुमित्रा पति के वैरागी भए अर पुत्रनि के विदेश गए महाशोकवंती भई, निरंतर अश्रुपात डारें। तिनके दुःखकूं देख, भरत राज्य विभूति को विषसमान मानता भया। अर केकई तिनकूं दुखी देख उपजी है करुणा जाके पुत्र को कहती भई – हे पुत्र! तू राज्य पाया, बड़े बड़े राजा सेवा करै हैं परन्तु राम लक्ष्मण बिना यह राज्य शोभै नाहीं। सो वे दोऊ भाई महाविनयवान उन बिना कहा राज्य? अर कहा सुख, अर कहा देश की शोभा, अर कहा तेरी धर्मज्ञता? वे दोऊ कुमार अर वह सीता राजपुत्री सदा सुख के भोगनहारे, पाषाणादिकर पूरित जे मार्ग ताविषै वाहन बिना कैसैं जावेंगे? अर तिन गुणसमुद्रनि की ये दोनों माता निरंतर रुदन करै हैं सो मरणकूं प्राप्त होयंगी। तातैं तुम शीघ्रगामी तुरंग पर चढ़ शिताबी जावो, उनको ले आवो, तिनसहित महासुखसों चिरकाल राज करियो। अर मैं भी तेरे पीछे ही उनके पास आऊं हूं।

यह माता की आज्ञा सुन बहुत प्रसन्न होय ताकी प्रशंसा कर अति आतुर भरत हजार अश्वसहित राम के निकट चला। अर जे राम के समीप वापिस आए हुते तिनकूं संग ले चला। आप तेज तुरंग पर चढ़ा उतावली चाल वनविषै आया। वह नदी असराल बहती हुती सो तामें वृक्षनि के लठे गेर बेड़े बांध क्षणमात्र में सेना सहित पार उतरे। मार्गविषै नरनारिनसों पूछते जांय जो तुम राम लक्ष्मण कहीं देखे? वे कहै हैं यहां ते निकट ही हैं सो भरत एकाग्रचित्त चले गए।

सघन वन में एक सरोवर के तट पर दोऊ भाई सीता सहित बैठे देखे, समीप हैं धनुष बाण जिनके। सीता के साथ ते दोऊ भाई घने दिवसविषै आए अर भरत छह दिन में आया। रामकूं दूरतैं देख भरत तुरंगतैं उतर पायपियादा जाय राम के पांयन पर मूर्छित होय गया। तब राम सचेत किया।

भरत हाथ जोड़ सिर निवाय रामसूं वीनती करता भया – जो हे नाथ! राज्य देयवेकर मेरी कहा विडम्बना करी? तुम सर्व न्यायमार्ग के जाननहारे महाप्रवीण मेरे या राज्य करि कहा प्रयोजन? तुम बिना जीवेकर कहा प्रयोजन? तुम महाउत्तम चेष्टा के धरणहारे मेरे प्राणनि के आधार हो। उठो अपने नगर चलें। हे प्रभो! मोपर कृपा करहु, राज्य तुम करहु, राज्य योग तुम ही हो, मोहि सुख की अवस्था देहु। मैं तिहारे सिर पर छत्र फेरता खड़ा रहूंगा। अर शत्रुघ्न चमर ढारेगा, अर लक्ष्मण मंत्रीपद धारेगा, मेरी माता पश्चातापरूप अग्निकर जरै है। अर तिहारी माता अर लक्ष्मण की माता महाशोक करै है। यह बात भरत करै है ताही समय शीघ्र रथ पर चढ़ी अनेक सामंतनि सहित महाशोक की भरी केकई आई, अर राम लक्ष्मणकूं उरसूं लगाय बहुत रुदन करती भई। राम ने धीर्य बंधाया, तब केकई कहती भई – हे पुत्र! उठो, अयोध्या चालो, राज्य करहु, तुम बिन मेरे सकल पुर वन समान हैं अर तुम महा बुद्धिमान हो, भरतकूं सिखाय लेहु। बहुरि हम स्त्रीजन नष्टबुद्धि हैं मेरा अपराध क्षमा करहु।

तब राम कहते भये – हे माता! तुम तो बातनिविषै प्रवीण हो। तुम कहा न जानौ हो, क्षत्रियनि का यही विरुद है जो वचन न चूकें, जो कार्य विचारया ताहि और भांति न करैं। हमारे तात नैं जो वचन कह्या सो हमकूं, अर तुमकूं निवाहना, या बातविषै भरत की अकीर्ति न होयगी। बहुरि भरतसूं कहा कि – हे भाई! तू चिंता मत करै, तू अनाचारतैं शंकै है सो पिता की आज्ञा अर हमारी आज्ञा पालवेतैं अनाचार नाहीं। ऐसा कह कर वनविषै सब राजानि के समीप भरत का श्री राम ने राज्याभिषेक किया। अर केकईकूं प्रणामकर बहुत स्तुतिकर बारम्बार संभाषणकर, भरतकूं उरसूं लगाय, बहुत दिलासा करी, नीठितैं विदा किया। केकई अर भरत राम लक्ष्मण सीता के समीपतैं पाछे नगरकूं चाले। भरत राम की आज्ञा प्रमाण प्रजा का पिता समान हुआ राज्य करै। जाके राज्यविषै सर्व प्रजाकूं सुख, कोई अनाचार नाहीं, ऐसा नि:कंटक राज्य है तौहु भरत का क्षणमात्र राग नाहीं। तीनों काल श्रीअरनाथ की वंदना करै है। अर मुनिन के मुखतैं धर्मश्रवण करै। द्युति भट्टारक नामा जे मुनि, अनेक मुनि करै हैं सेवा जिनकी, तिनके निकट भरत ने यह नियम लिया कि राम के दर्शनमात्रतैं ही मुनिव्रत धारूंगा।

तब मुनि कहते भये कि – हे भव्य! कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके, ऐसे राम जो लग न आवैं तौ लग तुम गृहस्थ के व्रत धारहु। जे महात्मा निर्ग्रंथ हैं तिनका आचरण अति विषम है। सो पहिले

श्रावक के व्रत पालने तासूं यति का धर्म सुखसूं सधै। जब वृद्ध अवस्था आवैगी तब तप करैंगे, यह वार्ता कहते हुते अनेक जड़बुद्धि मरणकूं प्राप्त भए। महा अमोलक रत्नसमान यति का धर्म जाकी महिमा कहनेविषै न आवै ताहि जे धारै हैं तिनकी उपमा कौन की देहि। यति के धर्मतैं उतरता श्रावक का धर्म है, सो जे प्रमादरहित करै हैं ते धन्य हैं।

यह अणुव्रत हू प्रबोध का दाता है। जैसैं रत्नद्वीपविषै कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतरविषै दुर्लभ है, तैसैं जिनधर्म नियमरूप रत्ननि का द्वीप है, ताविषै जो नियम लेय सोई महाफल का दाता है। जो अहिंसारूप रत्नकूं अंगीकार कर जिनवरकूं भक्ति कर अरचै सो सुरनर के सुख भोग मोक्षकूं प्राप्त होय। अर जो सत्यव्रत का धारक मिथ्यात्व का परिहार कर भावरूप पुष्पनि की माला कर जिनेश्वरकूं पूजै है ताकी कीर्ति पृथ्वीविषै विस्तरे है, अर आज्ञा कोई लोप न सकै। अर जो परधन का त्यागी जिनेन्द्रकूं उरविषै धारै, बारम्बार जिनेन्द्रकूं नमस्कार करै सो नव निधि चौदह रत्न का स्वामी होय अक्षयनिधि पावै। अर जो जिनराज का मार्ग अंगीकार कर परनारी का त्याग करै सौ सबके नेत्रनिकूं आनन्दकारी मोक्षलक्ष्मी का वर होय। अर जो परिग्रह का प्रमाण कर संतोष धर जिनपति का ध्यान करै सो लोकपूजित अनन्त महिमाकूं पावै, अर आहारदान के पुण्यकर महा सुखी होय ताकी सब सेवा करैं। अर अभयदान कर निर्भयपद पावै, सर्व उपद्रवतैं रहित होय।

अर ज्ञानदानकर केवलज्ञानी होय सर्वज्ञपद पावै। अर औषधिदान के प्रभाव कर रोगरहित निर्भयपद पावै। अर जो रात्रिकूं आहार का त्याग करै सो एक वर्षविषै छह महीना उपवास का फल पावै। यद्यपि गृहस्थपद के आरम्भविषै प्रवृत्ते है तो हू शुभगति के सुख पावै। जो त्रिकाल जिनदेव की वंदना करै ताके भाव निर्मल होय, सर्व पाप का नाश करै। अर जो निर्मल भावरूप पहुपनिकरि जिननाथकूं पूजै सो लोकविषै पूजनीक होय। अर जो भोगी पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगन्ध पुष्पनिकर भगवानकूं अरचै सो पुष्पकविमानकूं पाय यथेष्ट क्रीड़ा करै।

अर जो जिनराज पर अगर चंदनानि धूप खेवै सो सुगन्ध शरीर का धारक होय। अर जो गृहस्थी जिनमंदिर विषै विवेकसहित दीपोद्योत करै सो देवलोकविषै प्रभाव संयुक्त पावै। अर जो जिनभवनविषै छत्र चमर झालरी पताका दर्पणादि मंगलद्रव्य चढ़ावै अर जिनमंदिरकूं शोभित करै सो आश्चर्यकारी विभूति पावै। अर जो जल चंदनादितैं जिन पूजा करै – जो मनुष्य सुगन्धि से दिशाओं को व्याप्त करने वाली गन्ध से जिनेन्द्र भगवान का पूजन करता है[1] वह देवनि का स्वामी

1. समालभ्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखैः। सरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान्।।

– पद्मपुराण, 32 वाँ पर्व (ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित)

होय महा निर्मल सुगन्ध शरीर जे देवांगना तिनका वल्लभ होय। अर जो नीरकर जिनेन्द्र का अभिषेक करै सो देवनिकर मनुष्यनितैं सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्याभिषेक देव विद्याधर करै। अभिषेक के प्रभावकर अनेक भव्यजीव देव अर इन्द्रनिकरि अभिषेक पावते भए, तिनकी कथा पुराणनि में प्रसिद्ध है। जो भक्ति कर जिनमंदिरविषै मयूर पिच्छादिक कर बुहारी देय सो पाप रूप रजतैं रहित होय परम विभूति आरोग्यता पावै। अर जो गीत नृत्य वादित्रादिकर जिनमंदिरविषै उत्सव करै ते स्वर्गविषै परम उत्साहकूं पावै।

अर जो जिनेश्वर के चैत्यालय करावै सो ताके पुण्य की महिमा कौन कह सकै? सुरमंदिर के सुखभोग परंपराय अविनाशीधाम पावै। अर जो जिनेन्द्र की प्रतिमा करावै सो सुरनर के सुख भोगि परमपद पावै। व्रत विधान तप दान इत्यादि शुभ चेष्टानिकरि प्राणी जे पुण्य उपारजे हैं सो समस्त कार्य जिनबिंब कराथने के तुल्य नाहीं। जो जिनबिंब करावै सो परंपराय पुरुषाकर सिद्धपद पावै। अर जो भव्य जिनमंदिर के शिखर चढ़ावै सो इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक सुख भोग लोक के शिखर पहुंचै। अर जो जीर्ण जिनमंदिरनि की मरम्मत करावै सो कर्मरूप अजीर्णकूं हर निर्भय निरोगपद पावै। अर जो नवीन चैत्यालय कराय जिनबिंब पधराय प्रतिष्ठा करै सो तीन लोकविषै प्रतिष्ठा पावै।

अर जो सिद्धक्षेत्रादि तीर्थनि की यात्रा करै सो मनुष्यजन्म सफल करै। अर जो जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करै ताहि एक उपवास का फल होय। अर दर्शन को उद्यम का अभिलाषी होय सो बेला का फल पावै। अर जो चैत्यालय जायवे का आरम्भ करै ताहि तेला का फल होय, अर गमन किए चौला का फल होय। कछुएक आगे गए पंच उपवास का फल होय, आधी दूर गए पक्षोपवास का फल होय, अर चैत्यालय के दर्शनते मासोपवास का फल होय, अर भाव भक्ति कर महास्तुति किए अनन्त फल प्राप्ति होय। जिनेन्द्र की भक्ति समान और उत्तम नाहीं। अर जो जिनसूत्र लिखवाय ताका व्याख्यान करैं, करावें, पढ़ें, पढ़ावें, सुनें, सुनावें, शास्त्रनि की तथा पंडितनि की भक्ति करैं, वे सर्वांग के पाठी होय केवल पद पावें। जो चतुर्विध संघ की सेवा करैं सो चतुर्गति के दुख हर पंचमगति पावैं।

मुनि कहै हैं – हे भरत! जिनेन्द्र की भक्ति कर कर्म क्षय होय। अर कर्म क्षय भए – अक्षयपद पावै। ये वचन मुनि के सुन राजा भरत प्रणामकर श्रावक का व्रत अंगीकार किया। भरत बहुश्रुत, अतिधर्मज्ञ, महाविनयवान, श्रद्धावान, चतुर्विध संघकूं भक्ति कर अर दुखित जीवनिकूं दया भाव कर दान देता भया। सम्यग्दर्शन रत्नकूं उरविषै धारता, अर महासुन्दर श्रावक के व्रतविषै तत्पर न्यायसहित राज्य करता भया।

भरत गुणनि का समुद्र ताका प्रताप अर अनुराग समस्त पृथ्वीविषै विस्तरता भया। ताके

देवांगना समान ड्योढ सौ राणी तिनविषै आसक्त न भया, जल में कमल की न्याईं अलिप्त रहा, जाके चित्त में निरन्तर यह चिंता वरते कि कब यति के व्रत धरूं, तप करूं, निर्ग्रंथ हुवा पृथ्वीविषै विचरूं। धन्य हैं वे पुरुष जे धीर सर्व परिग्रह का त्याग कर तप के बल कर समस्त कर्मनिकूं भस्म कर सारभूत जो निर्वाण का सुख सो पावे हैं। मैं पापी संसारविषै मग्न प्रत्यक्ष देखूं हूं जो यह समस्त संसार का चरित्र क्षणभंगुर है, जो प्रभात देखिये सो मध्याह्नविषै नाहीं। मैं मूढ़ होय रहा हूं। जे रंक विषयाभिलाषी संसार में राचै हैं ते खोटी मृत्यु मरें हैं, सर्प, व्याघ्र, गज, जल, अग्नि शस्त्र विद्युत्पात शूलारोपण असाध्य रोग इत्यादि कुरीतितैं शरीर तजेंगे।

यह प्राणी अनेक सहस्रों सुख का भोगनहारा संसारविषै भ्रमण करै है बड़ा आश्चर्य है! अल्प आयु में प्रमादी होय रह्या है। जैसैं कोई मदोन्मत्त क्षीर समुद्र के तट सूता तरंगों के समूह से न डरै तैसैं मैं मोहकर उन्मत्त भव भ्रमण से नाहीं डरूं हूं, निर्भय होय रहा हूं। हाय हाय! मैं हिंसा आरम्भादि अनेक जे पाप तिनकरि लिप्त मैं राज्य कर कौन-से घोर नरक में जाऊंगा। कैसा है नरक? बाण खड्ग चक्र के आकार तीक्षण पत्र हैं जिनके, ऐसे शाल्मलीवृक्ष जहां हैं। अथवा अनेक प्रकार तिर्यंचगति ताविषै जावूंगा। देखो! जिनशास्त्र सारिखा महाज्ञान रूप शास्त्र ताहू को पाय करि मेरा मन पाप युक्त होय रह्या है। निस्पृह होकर यति का धर्म नाहीं धारै है सो न जानिए कौन गति जाना है? ऐसी कर्मनि की नासनहारी जो धर्मरूप चिंता ताकूं निरन्तर प्राप्त हुआ जो राजा भरत सो जैनपुराणादि ग्रंथनि श्रवणविषै आसक्त है, सदैव साधुन की कथाविषै अनुरागी, रात्रि दिन धर्म में उद्यमी होता भया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै दशरथ का वैराग्य, राम का विदेश गमन, भरत का राज्य वर्णन करने वाला बत्तीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।32।।

अथानन्तर श्री रामचन्द्र लक्ष्मण सीता जहां एक तापसी का आश्रम है तहां गए। अनेक तापस जटिल नाना प्रकार के वृक्षिनि के वक्कल पहिरे, अनेक प्रकार का स्वादुफल तिनकर पूर्ण हैं मठ जिनके, वनविषै वृक्षसमान बहुत मठ देखे। विस्तीर्ण पत्तोंकर छाए हैं मठ जिनके, अथवा घास के फूलनिकर आच्छादित हैं निवास जिनके, बिना वोहे सहज ही उगे जे धान्य ते उनके आंगन में सूके हैं, अर मृग भयरहित आंगन में बैठे जुगाले हैं, अर तिनके निवास विषै सूवा मैना पढ़े हैं, अर तिनके मठनि के समीप अनेक गुलक्यारी लगाय राखी हैं, सो तापसनि की कन्या मिष्ट जलकर पूर्ण जे कलश ते थांबलनि मैं डारै है।

श्रीरामचन्द्रकूं आए जान तापस नाना प्रकार के मिष्टफल सुगन्ध पुष्प मिष्टजल इत्यादिक

सामिग्रीनिकर बहुत आदरतैं पाहुन गति करते भए। मिष्ट वचन का संभाषण कर रहने को कुटी, मृदुपल्लवन की शय्या इत्यादि करते भए। ते तापस सहज ही सबनि का आदर करै हैं इनको महा रूपवान अद्भुत पुरुष जान बहुत आदर किया। रात्रिकूं वसकर ये प्रभात उठकर चाले। तब तापस इनकी लार चाले, इनके रूपकूं देख अनुरागी होते हुए पाषाण हू पिघलै तौ मनुष्यनि की कहा बात? ते तापस सूके पत्रनि के आहारी इनके रूपकूं देख अनुरागी होते भए। जे वृद्ध तापस हैं ते इनकूं कहते भये – तुम यहां ही रहो तौ यह सुख का स्थानक है अर कदाचित् न रहो तौ या अटवीविषै सावधान रहियो। यद्यपि यह वनी जल फल पुष्पादिकर भरी है तथापि विश्वास न करना।

नदी वनी नारी ये विश्वास योग्य नाहीं। सो तुम तो सर्व बातनि में सावधान ही हो। फिर राम लक्ष्मण सीता यहां तैं आगैं चाले। अनेक तापसिनी इनके देखवे की अभिलाषाकरि बहुत विह्वल भई संती दूरलग पत्र पुष्प फल ईंधनादिक के मिसकर साथ चली आईं। कई एक तापसिनी मधुर वचनकर इनकूं कहती भई जो तुम हमारे आश्रमविषै क्यों न रहो, हम तिहारी सब सेवा करैं। यहांतैं तीन कोस पर ऐसी वनी है जहां महासघन वृक्ष हैं, मनुष्यनि का नाम नाहीं। अनेक सिंह व्याघ्र दुष्ट जीवनिकर भरी, जहां ईंधन अर फल फूल के अर्थ तापसहू न आवैं। डाभ की तीक्ष्ण अणीनिकर जहां संचार नाहीं। वन महाभयानक है। अर चित्रकूट पर्वत अति ऊंचा दुर्लंघ्य विस्तीर्ण पड्या है, तुम कहा नहीं सुन्या है जो निशंक चले जावो हो?

तब राम कहते भए – अहो तापसिनी हो! हम अवश्य आगें जावैंगे, तुम अपने स्थानक जाहु। कठिनतातैं तिनकूं पाछे फेरी। ते परस्पर इनके गुण रूप का वर्णन करती अपने स्थानक आईं। ये महा गहन वनविषै प्रवेश करते भए। कैसा है वह वन? पर्वत के पाषाणनि के समूहकरि महा कर्कश, अर बड़े बड़े जे वृक्ष तिन पर आरूढ़ बेलनि के समूह जहां, अर क्षुधाकर अति क्रोधायमान जे शार्दूल तिनके नखनिकर विदारे गए हैं वृक्ष जहां, अर सिंहनिकर हते गए जे गजराज तिनके रुधिर कर रक्त भए जे मोती सो ठौर ठौर बिखर रहे हैं।

अर माते जे गजराज तिनकर भग्न भये हैं तरुवर जहां, अर सिंहिनी की ध्वनि सुनकर भाग रहे हैं कुरंग जहां, अर सूते जे अजगर तिनके श्वासनि की पवनकरि गूंज रही हैं गुफा जहां, सूकरनि के समूहकर कर्दमरूप होय रहे हैं तुच्छ सरोवर जहां, अर महा अरण्य भैंसे तिनके सींगनकर भग्न भए हैं बबइयनि के स्थल जहां, अर फणकूं ऊंचे किए फिरै हैं भयानक सर्प जहां, अर कांटनिकर बींधा है पूंछ का अग्रभाग जिनका – ऐसी जे सुरैगाय सो खेदखिन्न भई है, अर फैल रहे हैं कटेरी आदि अनेक प्रकार के कंटक जहां, अर विष पुष्पनि की रज की वासना कर घूमे हैं अनेक प्राणी जहां, अर गैंडानि के नखनिकर विदारे गए हैं वृक्षनि के पींड जहां, अर भ्रमते रोझन के समूह

तिनकर भग्न भए हैं पल्लवनि के समूह जहां, अर नाना प्रकार के जे पक्षिनि के समूह तिनके जो क्रूर शब्द उनकर वन गूंज रह्या है, अर बंदरनि के समूह तिनके कूदने कर कम्पायमान है वृक्षनि की शाखा जहां, अर तीव्र वेगकूं धरें पर्वतसों उतरती जे नदी तिनकर पृथ्वीविषै पड़ गया है दाहना जहां, अर वृक्षनि के पल्लवनि कर नाहीं दीखै हैं सूर्य की किरण जहां, अर नाना प्रकार के फल फूल तिनकर भरा, अनेक प्रकार की फैल रही है सुगन्ध जहां, नाना प्रकार की जे औषधि तिनकरि पूर्ण, अर वन के जे धान्य तिनकरि पूरित, कहूं एक नील, कहूं एक रक्त, कहूं एक हरित नाना प्रकार वर्णकूं धरै जो वन तामैं दोऊ वीर प्रवेश करते भये।

चित्रकूट पर्वत के महामनोहर जे नीझरने तिनविषै क्रीड़ा करते, वन की अनेक सुन्दर वस्तु देखते, परस्पर दोऊ भाई बात करते, वन के मिष्टफल आस्वादन करते, किन्नर देवनि के हू मनकूं हरैं ऐसा मनोहर गान करते, पुष्पनि के परस्पर आभूषण बनावते, सुगन्धद्रव्य अंगविषै लगावते, फूल रहे हैं सुन्दर नेत्र जिनके, महा स्वच्छन्द अत्यन्त शोभा के धारणहारे, सुरनर नागनि के मन के हरणहारे, नेत्रनिकूं प्यारे, उपवन की नाईं भीमवन में रमते भए। अनेक प्रकार के सुन्दर जे लतामण्डप तिनविषै विश्राम करते, नाना प्रकार की कथा करते, विनोद करते, रहस्य की बातें करते, जैसैं नन्दनवनविषै देव भ्रमण करै तैसैं अतिरमणीक लीलासूं वनविहार करते भये।

अथानन्तर साढ़े चार मास में मालव देशविषै आए। सो देश अत्यन्त सुन्दर, नाना प्रकार के धान्यों कर शोभित, जहां ग्राम पट्टन घने, सो केतीक दूर आयकर देखे तो वस्ती नाहीं, तब एक बट की छाया बैठ दोऊ भाई परस्पर बतलावते भये जो काहेतैं यह देश उजाड़ दीखै है? नाना प्रकार के खेत फल रहे हैं अर मनुष्य नाहीं, नाना प्रकार के वृक्ष फलफूलनि कर शोभित हैं, अर पौंड़े सांठे के बाड़ बहुत हैं, अर सरोवरनि में कमल फूल रहे हैं। नाना प्रकार के पक्षी केलि रहे हैं। यह देश अति विस्तीर्ण मनुष्यनि के संचार बिना शोभै नाहीं, जैसैं जिनदीक्षाकूं धरै मुनि वीतराग भावरूप परम संयम बिना शोभै नाहीं। ऐसी सुन्दर वार्ता राम लक्ष्मणसूं करै है। तहां अत्यन्त कोमल स्थानक देख रत्नकम्बल बिछाय श्रीराम बैठे, निकट धरया है धनुष जिनके, अर सीता प्रेमरूप जल की सरोवरी श्रीराम के विषै आसक्त है मन जाका, सो समीप बैठी।

श्रीराम ने लक्ष्मणकूं आज्ञा करी तू बट ऊपर चढ़कर देख कछु वस्ती दीखै है। सो आज्ञा प्रमाण देखता भया अर कहता भया कि – हे देव! विजयार्ध पर्वत समान ऊंचे जिनमंदिर दीखैं हैं, जिनके शरद के बादल समान शिखर शोभै हैं, ध्वजा फरहरै हैं, अर ग्राम हूं बहुत दीखै हैं, कूप वापी सरोवरनि करि मंडित है, अर विद्याधरनि के नगर समान दीखै हैं, खेत फल रहे हैं परन्तु मनुष्य कोई नाहीं दीखै हैं। न जानिये लोक परिवार सहित भाज गये हैं अथवा क्रूरकर्म के करणहारे

म्लेच्छ बांधकर ले गये हैं। एक दरिद्री मनुष्य आवता दीखै है। मृगसमान शीघ्र आवै है। रूक्ष हैं केश जाके, अर मलकर मंडित है शरीर जाका, लम्बी दाढ़ी कर आच्छादित है उरस्थल, अर फाटे वस्त्र पहिरे, फाटे हैं चरण जाके, ढरै है पसेव जाके, मानों पूर्व जन्म के पापकूं प्रत्यक्ष दिखावै है।

तब राम आज्ञा करी जो शीघ्र जाय याकूं ले आव, तदि लक्ष्मण बटतें उतर दरिद्री के पास गये। तब दरिद्री लक्ष्मणकूं देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। जो यह इन्द्र है, वरुण है अथवा नागेन्द्र है, तथा नर है, किन्नर है, चन्द्रमा है, सूर्य है, अग्नि-कुमार है कि कुवेर है। यह कोऊ महातेज का धारक है, ऐसा विचारता संता डरकर मूर्छा खाय भूमिविषै गिर पड्या। तब लक्ष्मण कहते भए - हे भद्र! भय न करहु, उठ उठ, ऐसा कहि उठाया, अर बहुत दिलासाकरि श्रीराम के निकट ले आया। सो दरिद्री पुरुष क्षुधा आदि अनेक दुखनिकर पीड़ित हुता सो रामकूं देख सब दुख भूल गया। राम महासुन्दर सौम्य है मुख जिनका, कांति के समूहतैं विराजमान, नेत्रनिकूं उत्साह के करणहारे, महाविनयवान, सीता समीप बैठी है। सो मनुष्य हाथ जोड़ सिर पृथ्वीसूं लगाय नमस्कार करता भया।

तब आप दयाकर कहते भए - तू छायाविषै आय बैठ भय न करि। तब वह आज्ञा पाय दूर बैठ्या। रघुपति अमृतरूप वचनकर पूछते भए - तेरा नाम कहा, अर कहातैं आया, अर कौन है? तब वह हाथ जोड़ि विनती करता भया। हे नाथ! मैं कुटुम्बी (कुनवी) हूं। मेरा नाम सिरगुप्त है दूरतैं आऊं हूं। तब आप बोले यह देश उजाड़ काहेतैं है? तब वह कहता भया - हे देव! उज्जयनी नाम नगरी, ताके पति राजा सिंहोदर प्रसिद्ध प्रतापकर नवाए हैं बड़े बड़े सामंत जानै, देवनि समान है विभव जाका। अर एक दशांगपुर का पति वज्रकर्ण सो सिंहोदर का सेवक अत्यन्त प्यारा सुभट, जानै स्वामी के बड़े बड़े कार्य किये। सो निर्ग्रंथ मुनिकूं नमस्कार कर धर्म श्रवणकर तानै यह प्रतिज्ञा करी जो मैं देव गुरु शास्त्र टार औरनिकूं नमस्कार न करूं। साधु के प्रसाद कर ताकूं सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भई सो पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है। आप कहा अब लों वाकी वार्ता न सुनी?

तब लक्ष्मण राम के अभिप्रायतैं पूछते भये जो वज्रकर्ण पर कौन भांति संतन की कृपा भई। तब पंथी कहता भया - हे देवराज! एक दिन वज्रकर्ण दसारण्य वनविषै मृगयाकूं गया हुता, जन्महीतैं पापी क्रूरकर्म का करणहारा, इन्द्रियनि का लोलुपी, महामूढ़ शुभक्रियातैं पराङ्मुख, महासूक्ष्म जिनधर्म की चर्चा सो न जानै, कामी क्रोधी लोभी अन्ध, भोग सेवनकर उपजा जो गर्व सोई भया पिशाच, ताकर पीड़ित, सो वनविषै भ्रमण करै - सो ताने ग्रीष्म समयविषै एक शिला पर तिष्ठता संता सत्पुरुषनिकर पूज्य ऐसा महामुनि देख्या। चार महीना सूर्य की किरण का आताप सहनहारा महातपस्वी पक्षीसमान निराश्रय सिंहसमान निर्भय सो तप्तायमान जो शिला ताकर तप्त

शरीर ऐसे दुर्जय तीव्रताप का सहनहारा सज्जन। सो ऐसे तपोनिधि साधुकूं देख वज्रकर्ण तुरंग पर चढ्या बरछी हाथ में लिए, कालसमान महाक्रूर पूछता भया। कैसे हैं साधु? गुणरूप रत्ननि के सागर, परमार्थ के वेत्ता, पापनि के घातक, सब जीवनि के दयालु, तपोविभूतिकर मंडित तिनसूं वज्रकर्ण कहता भया।

हे स्वामी! तुम या निर्जन वनविषै कहा करो हो? ऋषि बोले – आत्मकल्याण करै हैं जो पूर्वे अनन्त भवविषै न आचर्या। तब वज्रकर्ण हंसकर कहता भया या अवस्थाकरि तुमकूं कहा सुख है? तुम तपकर रूपलावण्यरहित शरीर किया। तिहारे अर्थ काम नाहीं, वस्त्राभरण नाहीं, कोई सहाई नाहीं। स्नान सुगन्ध लेपनादि रहित हो, पराए घरनि के आहार कर जीविका पूरी करो हो, तुम सारिखे मनुष्य कहा आत्महित करै? तब याकूं काम भोग कर अत्यन्त आर्तिवंत देख महादयावान संयमी बोले – कहा तूने महा घोर नरक की भूमि न सुनी है जो तू उद्यमी होय पापनिविषै प्रीति करै है?

नरक की महाभयानक सात भूमि हैं ते महादुर्गंधमई देखी न जांय, स्पर्शी न जांय, सुनी न जांय, महातीक्ष्ण लोहे के कांटेनिकर भरी। जहां नारकीनिकूं घानी में पेलै हैं, अनेक वेदना त्रास होय है, छुरियों कर तिल तिल काटिए हैं, अर ताते लोह समान ऊपरले नरकनि का पृथ्वीतल अर महाशीतल नीचले नरकनि का पृथ्वी तल ताकर महापीड़ा उपजै है। जहां महाअंधकार महाभयानक रौरवादि गर्त, असिपत्रवन, महादुर्गंध वैतरणी नदी। जे पापी माते हाथिनि की न्याईं निरकुंश हैं ते नरकविषै हजारां भांति के दुःख देखैं हैं। हम तोहि पूछै हैं तो सारिखे पापारंभी विषयातुर कहा आत्महित करै हैं? ये इन्द्रायण के फल समान इन्द्रियनि के सुख तू निरंतर सेय कर सुख मानै है सो इनमें हित नाहीं, ये दुर्गति के कारण हैं। आत्मा का हित वह करै है जो जीविनि की दया पाले, मुनि के व्रत आदरै, निर्मल है चित्त जिनका। जे महाव्रत तथा अणुव्रत नाहीं आचरै हैं ते मिथ्यात्व अव्रत के योगतैं समस्त दुःख के भाजन होय हैं। तैंने पूर्वजन्मविषै कोई सुकृत किया हुता ता कर मनुष्य देह पाया। अब पाप करैगा तो दुर्गति जायगा।

ये विचारे निर्बल निरपराध मृगादि पशु अनाथ, भूमि ही है शय्या जिनके, चंचल नेत्र सदा भयरूप, वन के तृण अर जल कर जीवनहारे, पूर्व पापकर अनेक दुखनिकर दुखी, रात्रि हू निद्रा न करैं, भयकर महाकायर, सो भले मनुष्य ऐसे दीननिकूं कहा हनें? तातैं जो तू अपना हित चाहै है तो मन वचन काय कर हिंसा तज, जीवदया अंगीकार करि। ऐसे मुनि के श्रेष्ठ वचन सुनि वज्रकर्ण प्रतिबोधकूं प्राप्त भया। जैसैं फला वृक्ष नय जाय तैसैं साधु के चरणारविंदकूं नय गया, अश्वतैं उतर साधुओं के निकट गया। हाथ जोड़ प्रणाम कर अत्यन्त विनय की दृष्टि कर चित्त

में साधु की प्रशंसा करता भया। धन्य हैं ये मुनि परिग्रह के त्यागी, जिनकूं मुक्ति की प्राप्ति होय है। अर या वन के पक्षी अर मृगादि पशु प्रशंसा योग्य हैं जे इस समाधिरूप साधु का दर्शन करै हैं।

अर अति धन्य हूं मैं जो मोहि आज साधु का दर्शन भया। ये तीन जगतकर वंदनीक हैं, अब मैं पापकर्मतैं निवृत्त भया। ये प्रभू ज्ञानस्वरूप नखनिकर बंधुस्नेहमई संसार रूप जो पींजरा, ताहि छेदकर सिंह की न्याईं निकसे। ते साधु देखो मनरूप वैरीकूं वशकरि, नग्नमुद्रा धार शील पालै हैं। अतृप्त आत्मा पूर्ण वैराग्य कूं प्राप्त नाहीं भया, तातैं श्रावक के अणुव्रत आचरूं। ऐसा विचार कर साधु के समीप श्रावक के व्रत आदरे, अर अपना मन शांति रसरूप जल से धोया, अर यह नियम लिया जो देवाधिदेव परमेश्वर परमात्मा जिनेन्द्रदेव, अर तिनके दास महाभाग्य निर्ग्रंथ मुनि, अर जिनवाणी, इन बिना औरनिकूं नमस्कार न करूं। प्रीतिवर्धन नामा जे मुनि तिनके निकट वज्रकर्ण अणुव्रत आदरे, अर उपवास धारे। मुनि याकूं विस्तार कर धर्म का व्याख्यान कह्या, जाकी श्रद्धाकर भव्यजीव संसारपाशतैं छूटै। एक श्रावक का धर्म एक यति का धर्म। इसमें श्रावक का धर्म गृहावलंबन संयुक्त, अर यति का धर्म निरालम्ब निरपेक्ष। दोऊ धर्मनि का मूल सम्यक्त्व की निर्मलता। तप अर ज्ञानकर युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ, जो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगविषै जिनशासन प्रसिद्ध है। यति का धर्म अति कठिन जान अणुव्रतविषै बुद्धि ठहराई, अर महाव्रत की महिमा हृदय में धारी।

जैसैं दरिद्री के हाथ में निधि आवै अर वह हर्षकूं प्राप्त होय तैसैं धर्मध्यानकूं धरता संता आनन्दकूं प्राप्त भया। यह अत्यन्त क्रूरकर्म का करणहारा एक साथ ही शांत दशाकूं प्राप्त भया, या बातकर मुनि भी प्रसन्न भए। राजा तादिन तो उपवास किया, दूजे दिन पारणा कर दिगम्बर के चरणारविंदकूं प्रणामकर अपने स्थानक गया। गुरु के चरणारविंदकूं हृदय में धारता संता संदेहरहित भया। अणुव्रत आराधे। चित्त में यह चिंता उपजी जो उज्जैनी का राजा जो सिंहोदर ताका मैं सेवक सो ताका विनय किए बिना मैं राज्य कैसैं करूं? तब विचार कर एक मुद्रिका बनाई। जामें श्रीमुनिसुब्रतनाथ की प्रतिमा पधराई, दक्षिण अंगुष्ठ में पहरी। जब सिंहोदर के निकट जाय तब मुद्रिका विषै प्रतिमा ताहि बारम्बार नमस्कार करै। सो याका कोऊ बैरी हुता तानै यह छिद्र हेर सिंहोदरतैं कही जो यह तुमकूं नमस्कार नाहीं करै है, जिनप्रतिमाकूं करै है।

तब सिंहोदर पापी क्रोधकूं प्राप्त भया अर कपटकर वज्रकर्णकूं दशांग नगरतैं बुलावता भया, सम्पदा कर उन्मत्त याके मारवेकूं उद्यमी भया। सो वज्रकर्ण सरलचित्त, सो तुरंग पर चढ़ उज्जयिनी जावेकूं उद्यमी भया। ता समय एकपुरुष जवान पुष्ट अर उदार है शरीर जाका, दंड जाके हाथ में, सो आयकर कहता भया – हे राजा! जो तू शरीरतैं और राज्य भोगतैं रहित भया चाहै है तो

उज्जयनी जाहु। सिंहोदर अति क्रोधकूं प्राप्त भया है, तू नमस्कार न करा तातैं तोहि मास्या चाहै है, तू भले जानै सो कर। यह वार्ता सुनकर वज्रकर्ण विचारी कि कोऊ शत्रु मोविषै अर नृपविषै भेद किया चाहै है तानै मंत्रकर यह पठाया होय।

बहुरि विचारी जो याका रहस्य तो लेना। तब एकांतविषै ताहि पूछता भया – तू कौन है अर तेरा नाम कहा, अर कहांतैं आया है, अर यह गौप्य मंत्र तूने कैसैं जान्या? तब वह कहता भया कुन्दन नगरविषै महा धनवंत एक समुद्र संगम सेठ है जाके यमुना स्त्री, ताके वर्षाकाल में विजुरी के चमत्कार समय मेरा जन्म भया, तातैं मेरा विद्युदंग नाम धस्या। सो मैं अनुक्रमतैं नवयोवनकूं प्राप्त भया। व्यापार के अर्थ उज्ज्यनी गया तहां कामलता वेश्याकूं देख अनुरागकर व्याकुल भया। एक रात्रि तासूं संगम किया सो वाने प्रीति के बंधनकर बांध लिया जैसैं पारधी मृगकूं पांसितैं बांधे। मेरे बाप ने बहुत वर्षनि में जो धन उपार्ज्या हुता सो मैं ऐसा कुपूत वेश्या के संग कर षट्मास में सब खोया। जैसैं कमलविषै भ्रमर आसक्त होय तैसैं ताविषै आसक्त भया।

एक दिन वह नगरनायिका अपनी सखी के समीप अपने कुण्डलनि की निंदा करती हुती सो मैं सुनी। तब वासै पूछी, तब तानैं कही – धन्य है रानी श्रीधरा महासौभाग्यवती ताके काननि में जैसैं कुण्डल हैं तैसैं काहू के नाहीं। तब मैं मन में चितई जो मैं राणी के कुण्डल हरकर याकी आशा पूर्ण न करूं तो मेरे जीने कर कहा? तब कुण्डल हरनेकूं मैं अंधेरी रात्रिविषै राजमंदिर गया सो राजा सिंहोदर कोप हो रहा था, अर राणी श्रीधरा निकट बैठी हुती। सो राणी पूछी – हे देव! आज निद्रा काहेतैं न आवै है?

तब राजा कही – हे राणी! मैं वज्रकर्णकूं छोटेतैं मोटा किया, अर मोहि सिर न नवावै, सो वाहि जब तक न मारूं तब तक आकुलता के योगतैं निद्रा कहां आवै? ऐते मनुष्यनितैं निद्रा दूर ही भागै – अपमान से दग्ध, अर कुटुम्बी निर्धन, शत्रु ने आय दबाया अरु जीतने समर्थ नाहीं, अर जाके चित्त में शल्य तथा कायर अर संसारतैं विरक्त, इनतैं निद्रा दूर ही रहै है। यह वार्ता राजा रानीकूं कही। सो मैं सुनकर ऐसा होय गया मानों काहू ने मेरे हृदय में वज्र की दीनी। सो कुण्डल लेयवे की बुद्धि तज यह रहस्य लेय तेरे निकट आया, अब तुम वहां जावो मत। कैसे हो तुम? जिनधर्म में उद्यमी हो। अर निरंतर साधुनि के सेवक हो। अंजनीगिरि पर्वत से हाथी, जिनसे मद झरे, तिन पर चढ़े योधा, वक्तर पहिरे, अर महा तेजस्वी तुरंगनि के असवार, चिलते पहिरे महाक्रूर सामंत तेरे मारवे के अर्थ राजा की आज्ञातैं मार्ग रोके खड़े हैं। तातैं तू कृपाकर अवार वहां मत जाय। मैं तेरे पांयन परूं हूं। मेरा वचन मान, अर तेरे मन में प्रतीत नाहीं आवै तो देख वह फौज आई, धूर के पटल उठे हैं, महा शब्द होते आवै हैं।

यह विद्युदंग के वचन सुन वज्रकर्ण परचक्रकूं आवता देख याकू परम मित्र जान लार लेय अपने गढ़विषै तिष्ठ्या। सिंहोदर के सुभट दरवाजे में आवने न दिये। तब सिंहोदर सर्व सेना लार ले चढ़ आया। सो गढ गाढा जान अपने कटक के लोग इनके मारवे के डरतैं तत्काल गढ़ लेवे की बुद्धि न करी। गढ़ के समीप डेरे कर वज्रकर्ण के समीप दूत भेज्या सो अत्यन्त कठोर वचन कहता भया। तू जिनशासन के गर्वकरि मेरे ऐश्वर्य का कंटक भया। जे घरखोवा यति तिनने तोहि बहकाया, तू न्यायरहित भया, देश मेरा दिया खाय, माथा अरहंतकूं नवावै। तू महा मायाचारी है तातैं शीघ्र ही मेरे समीप आयकर मोहि प्रणाम कर नातर मारा जायगा। यह वार्ता दूत ने वज्रकर्णसूं कही तब वज्रकर्ण जो जवाब दिया सो दूत जाय सिंहोदरसूं कहै है, हे नाथ! वज्रकर्ण की यह वीनती है जो देश नगर भण्डार हाथी, घोड़े सब तिहारे हैं सो लेहु, मोहि स्त्री सहित धर्मद्वार देय काढ़ देहु, मेरा तुमतैं उजर नाहीं। परन्तु मैं यह प्रतिज्ञा करी है जो जिनेन्द्र, मुनि अर जिनवाणी इन बिना और कूं नमस्कार न करूं सो मेरा प्राण जाय तौ हू प्रतिज्ञा भंग न करूं। तुम मेरे द्रव्य के स्वामी हो, आत्मा के स्वामी नाहीं।

यह वार्ता सुन सिंहोदर अति क्रोधकूं प्राप्त भया, नगरकूं चारों तरफ से घेर्‍या अर देश उजाड़ दिया। सो दरिद्री मनुष्य श्रीरामसूं कहै है – हे देव! देश उजाड़ने का कारण मैं तुमसूं कह्या। अब मैं जाऊं हूं, यहां तैं नजदीक मेरा ग्राम है, सो ग्राम सिंहोदर के सेवकनिनैं बाल्या, लोगनि के विमान तुल्य घर हुते सो भस्म भए। मेरी तृण काष्टकर रची कुटी सो हू भस्म होयगी, मेरे घर में एक छाज, एक माटी का घट, एक हांडी यह परिग्रह हुता सो लाऊं हूं। मेरे खोटी स्त्री तानै क्रूर वचन कह मोहि पठाया है। अर वह बारम्बार ऐसे कहै है जो सूने गांव में घरनि के उपकरण बहुत मिलेंगे सो जायकर ले आवहु। सो मैं जाऊं हूं मेरे बड़े भाग्य जो आपका दर्शन भया, स्त्री ने मेरा उपकार किया जो मोहि पठाया।

वह वचन सुन श्रीराम महा दयावान पंथीकूं दुखी देख अमोलक रत्ननि का हार दिया सो पंथी प्रसन्न होय चरणारविंदकूं नमस्कार कर हार लेय अपने घर गया, द्रव्यकर राजानि के तुल्य भया।

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मणसूं कहते भए – हे भाई! यह जेष्ठ का सूर्य अत्यन्त दुस्सह जब अधिक न चढ़े पहिले ही चलें या नगर के समीप निवास करैं। सीता तृषाकर पीड़ित सो याहि जल पिलावैं। अर आहार की विधि भी शीघ्र ही करैं। ऐसा कहि आगैं गमन किया। सो दशांगनगर के समीप जहां श्री चन्द्रप्रभु का चैत्यालय महा उत्तम है तहां आए अर श्रीभगवानकूं प्रणामकर सुखसूं तिष्ठे। अर आहार की सामग्री निमित्त लक्ष्मण गए, सिंहोदर के कटक में प्रवेश करते भए। कटक के रक्षक मनुष्यनितैं मनै किए तब लक्ष्मण विचारी ये दरिद्री अर नीच कुल इनतैं मैं कहा विवाद करूं।

यह विचार नगर की ओर आए सो नगर के दरवाजे अनेक योधा बैठे हुते अर दरवाजे के ऊपर वज्रकर्ण तिष्ठा हुता, महासावधान। सो लक्ष्मणकूं देख लोक कहते भए, तुम कौन हो, अर कहांतैं कौन अर्थ आए हो? तब लक्ष्मण कही दूरतैं आए हैं अर आहार निमित्त नगर में आए हैं। तब वज्रकर्ण इनकूं अति सुन्दर देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया अर कहता भया – हे नरोत्तम! घर मांहि प्रवेश करो। तब यह हर्षित होय गढ़ में गया, वज्रकर्ण बहुत आदरसूं मिल्या अर कहता भया जो भोजन तैयार है सो आप कृपा कर यहां ही भोजन करहु। तब लक्ष्मण कही मेरे गुरुजन बड़े भाई और भावज श्रीचन्द्रप्रभु के चैत्यालयविषै बैठे हैं तिनकूं पहिले भोजन कराय मैं भोजन करूंगा। तब वज्रकर्ण ने कही बहुत भली बात, वहां ले जाइये, उन योग्य सब सामग्री है ले जावो। अपने सेवकनि हाथ ताने भांति भांति की सामग्री पठाई सो लक्ष्मण लिवाय लाए। श्रीराम, लक्ष्मण अर सीता भोजन कर बहुत प्रसन्न भए।

श्रीराम कहते भए – हे लक्ष्मण! देखो वज्रकर्ण की बड़ाई जो ऐसा भोजन कोऊ अपने जमाई को हूं न जिमावै सो बिना परचै अपने ताईं जिमाए। पीने की वस्तु महामनोहर, अर व्यंजन महामिष्ट, यह अमृत तुल्य भोजन जाकरि मार्ग का खेद मिट्या अर जेठ के आताप की तप्त मिटी। चांदनी समान उज्ज्वल दुग्ध महा सुगन्ध, जापरि भ्रमर गुंजार करै हैं, अर सुन्दर घृत सुन्दर दधि, मानो कामधेनु के स्तननिकरि उपजाया दुग्ध, ताकरि निरमापे हैं। ऐसे व्यंजन, ऐसे रस और ठोर दुर्लभ हैं। ता पंथी ने पहिले अपने ताईं कहा हुता जो यह अणुव्रत का धारी श्रावक है, अर जिनेन्द्र मुनीन्द्र जिनसूत्र टार औरनिकूं नमस्कार नाहीं करै है।

सो ऐसा धर्मात्मा, व्रत शील का धारक आपने आगे शत्रुकरि पीड़ित रहैं तो अपने पुरुषार्थ कर कहा? अपना यही धर्म है जो दुखी का दुख निवारैं, साधर्मी का तो अवश्य निवारैं। यह अपराध रहित, साधु सेवाविषै सावधान, महाजिनधर्मी, जाके लोक जिनधर्मी, ऐसे जीवकूं पीड़ा काहे उपजै? यह सिंहोदर ऐसा बलवान है जो याके उपद्रवतैं वज्रकर्णकूं भरत भी न बचाय सकै। तातैं हे लक्ष्मण! तुम याकूं शीघ्र ही सहाय करो, सिंहोदर पै जावो अर वज्रकर्ण का उपद्रव मिटै सो करहु। हम तुमकूं कहा सिखावैं जो यूं कहियो, तुम महाबुद्धिमान हो, जैसैं महामणि प्रभा सहित प्रकट होय है तैसैं तुम महाबुद्धि पराक्रमकूं धर प्रकट भए हो।

या भांति श्रीराम ने भाई के गुण गाए, तब भाई लक्ष्मण लज्जाकर नीचे मुख होय गए। नमस्कार कर कहते भये – हे प्रभो! जो आप आज्ञा करोगे सोई होयगा। महाविनयवान लक्ष्मण राम की आज्ञा प्रमाण धनुषबाण लेय धरतीकूं कम्पायमान करते संते शीघ्र ही सिंहोदर पै गए। सिंहोदर के कटक के रखवारे पूछते भए तुम कौन हो? लक्ष्मण कही मैं राजा भरत का दूत हूं।

तब कटक में पैठने दिया, अनेक डेरे उलंघ राजद्वार गया। द्वारपाल राजासूं मिलाया सो महा बलवान सिंहोदरकूं तृणसमान गिनता संता कहता भया, हे सिंहोदर! अयोध्या का अधिपति भरत तानै यह आज्ञा करी है जो वृथा विरोधकर कहा? वज्रकर्णसूं मित्रभाव करहु।

तब सिंहोदर कहता भया – हे दूत! राजा भरतसूं या भांति कहियो जो अपना सेवक होय अर विनयमार्ग से रहित होय ताहि स्वामी समझाय सेवा में लावै, यामें विरोध कहा? यह वज्रकर्ण दुरात्मा मानी, मायाचारी, कृतघ्न, मित्रनि का निंदक, चाकरीचूक, आलसी, मूढ़, विनयचार रहित, खोटी अभिलाषा का धारक, महाक्षुद्र, सज्जनता रहित है सो याके दोष तब मिटै जब यह मरण कों प्राप्त होय अथवा राज्य रहित करूं। तातैं तुम कछु मत कहो। मेरा सेवक है जो चाहूंगा सो करूंगा।

तब लक्ष्मण बोले – बहुत उत्तरनिकरि कहा? यह परम हितु है, या सेवक का अपराध क्षमा करहु। ऐसा जब कह्या तब सिंहोदर क्रोध कर अपने बहुत सामंतनि के देख गर्वकूं धरता संता उच्च स्वरसूं कहता भया।

यह वज्रकर्ण तो महामानी है ही अर तू याके कार्यकूं आया सो तू भी महामानी है। तेरा तन अर मन मानों पाषाणतैं निरमाप्या है। रंचमात्र हू नम्रता तोमैं नाहीं। तू भरत का मूढ़ सेवक है। जानिए है जो भरत के देश में तो सारिखे मनुष्य होवेंगे। जैसैं सीझती भरी हांडी माहीसूं एक चावल काढ़कर नम्र कठोर की परीक्षा करिए है तैसैं एक तेरे देखवेकरि सबनि की बानिगी जानी जाय है। तब लक्ष्मण क्रोधकर कहते भए, मैं तेरी वाकी सूधि करावेकूं आया हूं, तोहि नमस्कार करवेकूं न आया, बहुत कहनेसूं कहा? थोड़े ही में समझहु। वज्रकर्णसूं संधि कर लेहु, नातर मारा जायगा।

ये वचन सुन सब ही सभा के लोक क्रोधकूं प्राप्त भए। नाना प्रकार के दुर्वचन कहते भए, अर नाना प्रकार क्रोध की चेष्टाकूं प्राप्त भए। कई एक छुरी लेय, कई एक कटारी भाला तलवार लेयकरि याके मारवेकूं उद्यमी भए। हुंकार शब्द करते अनेक सामंत लक्ष्मणकूं बेढ़ते भए। जैसैं पर्वतकूं मच्छर रोकै तैसैं रोकते भए। सो यह धीर वीर युद्धक्रियाविषै पंडित, शीघ्र क्रिया के वेत्ता, चरण के घातकर तिनकूं दूर उड़ाय दिए। कई एक गोड़नितैं मारे, कई एक कुहनिनतैं पछाड़े, कई एक मुष्टिप्रहार करि चूर्ण कर डारे, कई एकनिके केश पकड़ पृथ्वी पर पाड़ि मारे, कई एकनिकूं परस्पर सिर भिड़ाय मारे। या भांति अकेले महाबली लक्ष्मण ने अनेक योधा विध्वंस किए। तब और बहुत सामंत हाथी घोडनि पर चढ़ बखतर पहिर लक्ष्मण की चौगिरद फिरैं, नाना प्रकार के शस्त्रनि के धारक। तब लक्ष्मण जैसैं सिंह स्यालनि को भगावै तैसैं तिनकूं भगावता भया।

तब सिंहोदर कारी घटा समान हाथी पर चढ़कर अनेक सुभटनि सहित लक्ष्मणतैं लडवेकूं

उद्यमी भया। अनेक योधा मेघ समान लक्ष्मण रूप चन्द्रमाकूं बेढ़ते भए। सो सर्व योधा ऐसे भगाए जैसैं पवन आक के डोडनि के जे फफूंदे तिनकूं उड़ावै। ता समय महायोधानि की कामिनी परस्पर वार्ता करै हैं, देखो यह एक महासुभट अनेक योधानिकरि बेढ्या है, परंतु यह सबकूं जीतैं है, कोऊ याहि जीतिवे समर्थ नाहीं। धन्य याहि, धन्य याके माता पिता इत्यादि अनेक वार्ता सुभटनि की स्त्री करै हैं। अर लक्ष्मण सिंहोदरकूं कटकसहित चढ्या देखकर गज का थम्भ उपाड्या अर कटक के सम्मुख गया। जैसैं अग्नि वनकूं भस्म करै तैसैं कटक के बहुत सुभट विध्वंस किए।

अर जो दशांग नगर के योधा नगर के दरवाजे ऊपर वज्रकर्ण के समीप बैठे हुते, सो फूल गए हैं नेत्र जिनके, स्वामीसूं कहते भए – हे नाथ! देखो यह एक पुरुष सिंहोदर के कटकतैं लड़े हैं, ध्वजा रथ चक्र भग्न कर डारे, परम ज्योति का धारी है, खड्ग समान है कांति जाकी, समस्त कटककूं व्याकुलता रूप भ्रमण में डारया है, सब तरफ सेना भागी जाय है जैसै सिंहतैं मृगनि के समूह भागैं। अर भागते थके सुभट परस्पर बतलावें हैं कि वक्तर उतार धरो, हाथी घोड़े छोड़ों गदा खाड़े में डार देहु, ऊंचे शब्द न करहु। ऊंचे शब्द को सुनकर शस्त्र के धारक देख यह भयानक पुरुष आय मारेगा। अरे भाई! यहांतैं हाथी ले जावो, कहां थांभ राखा है, गैल देऊ। अरे दुष्ट सारथी! कहां रथकूं थांभ राख्या है। अर घोड़े आगे करहु। यह आया यह आया।

या भांति के वचनालाप करते महाकष्टकूं प्राप्त भए, सुभट संग्राम तज आगैं भागे जाय हैं। नपुंसक समान होय गए। यह युद्ध में क्रीड़ा का करणहारा कोई देव है, तथा विद्याधर है अथवा काल है, अर कै वायु है? यह महाप्रचण्ड सब सेनाकूं जीतकर सिंहोदर कूं हाथी से उतार गले में वस्त्र डार बांध लिए जाय है, जैसैं बलद को बांध धनी अपने घर ले जांय। यह वचन वज्रकर्ण के योधा वज्रकर्णसूं कहते भए। तब वह कहता भया – हे सुभट हो! बहुत चिंता कर कहा? धर्म के प्रसादतैं सब शांति होयगी।

अर दशांग नगर की स्त्री महलनि के ऊपर बैठी परस्पर वार्ता करै हैं, हे सखी! देखो या सुभट की अद्भुत चेष्टा, जो एक पुरुष अकेला नरेन्द्रकूं बांध लिए जाय है। अहो धन्य याका रूप, धन्य याकी कांति, धन्य याकी शक्ति। यह कोई अतिशय का धारी पुरुषोत्तम है। धन्य हैं वे स्त्री, जिनका यह जगदीश्वर पति हुआ है, तथा होयगा। अर सिंहोदर की पटराणी बाल तथा वृद्धनि सहित रोवती संती लक्ष्मण पांयनि पड़ी अर कहती भई – हे देव! याहि छोड़ देहु, हमें भरतार की भीख देहु। अब जो तिहारी आज्ञा होयगी सो यह करेगा। तब आप कहते भए यह आगै बड़ा वृक्ष है तासूं याहि लटकाऊंगा। तब वाकी राणी हाथ जोड़ बहुत विनती करती भई – हे प्रभो! आप रोस भए हो तो हमें मारों, याहि छांडो, कृपा करो, प्रीतम का दुख हमें मत दिखावो। जे तुम

सारिखे पुरुषोत्तम हैं ते स्त्री अर बालक वृद्धनि पर करुणा ही करै हैं।

तब आप दयाकर कहते भए – तुम चिंता न करहु, आगे भगवान का चैत्यालय है तहां याहि छोड़ेंगे। ऐसा कह आप चैत्यालय में गए। जाय कर श्रीरामतैं कहते भए – हे देव! यह सिंहोदर आया है, आप कहो सो करैं। तब सिंहोदर हाथ जोड़ कांपता संता श्रीराम के पांयन पर्‍या अर कहता भया – हे देव! तुम महाकांति के धारी, परम तेजस्वी हो, सुमेरु सारिखे अचल पुरुषोत्तम हो, मैं आपका आज्ञाकारी, यह राज्य तिहारा, तुम चाहो ताहि देहु। मैं तिहारे चरणारविंद की निरन्तर सेवा करूंगा। अर रानी नमस्कार कर पति की भीख मांगती भई अर सीता सती के पांयन परी अर कहती भई – हे देवी! हे शोभने! तुम स्त्रीनि की शिरोमणि हो, हमारी करुणा करो। तब श्रीराम सिंहोदरकूं कहते भए मानों मेघ गाज्या।

अहो सिंहोदर! तोहि जो वज्रकर्ण कहे सो कर। या बातकरि तेरा जीतव्य है और बात कर नाहीं। या भांति सिंहोदरकूं राम की आज्ञा भई ताही समय जे वज्रकर्ण के हितकारी हुते तिनकूं भेज वज्रकर्ण कूं बुलाया, सो परिवार सहित चैत्यालय आया, तीन प्रदक्षिण देय भगवानकूं नमस्कार करि चन्द्रप्रभु स्वामी की अत्यन्त स्तुति कर रोमांच होय आए। बहुरि वह विनयवान दोनों भाइन के पास आया स्तुति कर शरीर की आरोग्यता पूछता भया, अर सीता की कुशल पूछी। तब श्रीराम अत्यन्त मधुर ध्वनिकर वज्रकर्णकूं कहते भए – हे भव्य! तेरी कुशलकरि हमारे कुशल है। या भांति वज्रकर्ण की अर श्रीराम की वार्ता होय है, तब ही सुन्दर भेष धरे विद्युदंग आया, श्रीराम लक्ष्मण की स्तुति कर वज्रकर्ण के समीप आया। सर्व सभाविषै विद्युदंग की प्रशंसा भई जो यह वज्रकर्ण का परम मित्र है।

बहुरि श्रीरामचन्द्र प्रसन्न होय वज्रकर्णसूं कहते भए – तेरी श्रद्धा महा प्रशंसा योग्य है। कुबुद्धीनि के उत्पातकरि तेरी बुद्धि रंचमात्र भी न डिगी जैसैं पवन के समूहकरि सुमेरु की चूलिका न डिगै। मोहूकूं देखकर तेरा मस्तक न नया सो धन्य है तेरी सम्यक्त की दृढ़ता। जे शुद्ध तत्त्व के अनुभवी पुरुष हैं तिनकी यही रीति है जो जगत कर पूज्य जे जिनेन्द्र तिनकूं प्रणाम करैं। बहुरि मस्तक कौन कों नवावै? मकरंद रस का आस्वाद करणहारा जो भ्रमर सो गर्दभ (गधा) की पूंछ पै कैसे गुंजार करै? तू बुद्धिमान है, धन्य है, निकट भव्य है, चन्द्रमा हूते उज्ज्वल बलकीर्ति तेरी पृथ्वी में विस्तरी है। या भांति वज्रकर्ण के सांचे गुण श्रीरामचन्द्र ने वर्णन कीये। तब वह लज्जावान होय नीचा मुख कर रह्या, श्रीरघुनाथसूं कहता भया – हे नाथ! मोपर यह आपदा तो बहुत पड़ी हुती परन्तु तुम सरीखे सज्जन जगत के हितु मेरे सहाई भए। मेरे भाग्य करि तुम पुरुषोत्तम पधारे। या भांति वज्रकरण ने कही तब लक्ष्मण बोले तेरी वांछा जो होय सो करैं।

वज्रकरण ने कही तुम सारिखे उपकारी पुरुष पायकर मोहि या जगतविषै कछु दुर्लभ नाहीं। मेरी यही विनती है मैं जिनधर्मी हूं, मेरे तृणमात्र को भी पीड़ा की अभिलाषा नाहीं, अर यह सिंहोदर तो मेरा स्वामी है तातैं याहि छोड़ो। ये वचन जब वज्रकरण कहे तब सबके मुखतैं धन्य धन्य यह ध्वनि होती भई। जो देखो यह ऐसा उत्तम पुरुष है द्वेष प्राप्ति भए भी पराया भला ही चाहै है।

जे सज्जन पुरुष हैं ते दुर्जनहू का उपकार करैं। अर जे आपका उपकार करैं ताका तौ करैं ही करैं। लक्ष्मण ने वज्रकर्णकूं कही जो तुम कहोगे सो ही होयगा। सिंहोदर को छोड़ा, अर वज्रकर्ण का अर सिंहोदर का परस्पर हाथ पकड़ाया, परम मित्र किए, वज्रकर्णकूं सिंहोदर का आधा राज्य दिवाया। अर जो माल लूटा हुता सो हू दिवाया, अर देश धन सेना का आधा आधा भाग विभाग कर दिया। वज्रकर्ण के प्रसाद करि विद्युदंग सेनापति भया अर वज्रकर्ण राम लक्ष्मण की बहुत स्तुति करि अपनी आठ पुत्रीनि की लक्ष्मणसों सगाई करी। कैसी हैं ते कन्या? महाविनयवंती, सुन्दर भेष, सुन्दर आभूषण कौं धरैं। अर राजा सिंहोदरकूं आदि देय राजानि की परम कन्या तीन सौ लक्ष्मणकूं दईं।

सिंहोदर अर वज्रकर्ण लक्ष्मणसूं कहते भए – ये कन्या आप अंगीकार करहु, तब लक्ष्मण बोले – विवाह तो तब करूंगा जब अपने भुजा कर राज्य स्थान जमाऊंगा।

अर श्रीराम तिनसूं कहते भए – हमारे अब तक देश नाहीं है। तात नैं राज भरतकूं दिया है। तातैं चन्दनगिरि के समीप तथा दक्षिण समुद्र के समीप स्थानक करैंगे तब हमारी दोऊ मातानिकूं लेनेकूं मैं आऊंगा अथवा लक्ष्मण आवेगा। ता समय तिहारी पुत्रनिकूं परणकर ले आवेगा। अब तक हमारे स्थानक नाहीं, कैसैं पाणिग्रहण करैं? जब या भांति कही, तब वे सब राजकन्या ऐसी होय गईं जैसा जाड़े का मार्‍या कमलनि का बन होय। तब मन में विचारती भई – वह दिन कब होयगा जब हमकूं प्रीतम के संगम रूप रसायन की प्राप्ति होयगी? अर जो कदाचित् प्राणनाथ का विरह भया तो हम प्राण त्याग करैंगी। इन सबका मन विरहरूप अग्निकर जलता भया। यह विचारती भईं एक ओर महा औंडागर्त अर एक ओर महाभयंकर सिंह, कहा करैं? कहां जावैं? विरहरूप व्याघ्रकूं पति के संगम की आशातैं वशीभूत कर प्राणनिकूं राखेंगी, यह चिंतवन करती संती अपने पिता की लार अपने स्थानक गईं।

सिंहोदर वज्रकर्ण आदि सब ही नरपति, रघुपति की आज्ञा लेय घर गए। ते राजकन्या उत्तम चेष्टा की धरणहारी माता पितादि कुटुम्बकरि अत्यन्त है सन्मान जिनका, अर पति में है चित्त जिनका, सो नाना विनोद करतीं पिता के घर में तिष्ठती भईं। अर विद्युदंग ने अपने माता पिताकूं कुटुम्ब सहित बहुत विभूति से बुलाया, तिनके मिलाप का परम उत्सव किया अर वज्रकर्ण के अर

सिंहोदर के परस्पर अतिप्रीति बढ़ी। अर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण अर्धरात्रिकूं चैत्यालयतैं चाले धीरे-धीरे अपनी इच्छा प्रमाण गमन करै हैं। अर प्रभात समय जे लोक चैत्यालय में आए तो श्रीरामकूं न देख शून्यहृदय होय अति पश्चाताप करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मण कृत वज्रकर्ण का उपकार कथन वर्णन करने वाला तेतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।33।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण जानकीकूं धीरे धीरे चलावते, अर रमणीक वन में विश्राम लेते, अर महामिष्ट स्वादुफल का रसपान करते, क्रीड़ा करते, रसभरी बातें करते, सुन्दर चेष्टा के धरणहारे, चले चले नलकूवर नामा नगर आए। कैसा है नगर? नाना प्रकार के रत्ननि के जे मंदिर तिनके उत्तंग शिखरनिकरि मनोहर, अर सुन्दर उपवनोंकरि मंडित, जिनमंदिरनिकरि शोभित, स्वर्गसमान निरंतर उत्सव का भर्‍या लक्ष्मी का निवास है। सो श्रीराम, लक्ष्मण और सीता नलकूवर नामा नगर के परम सुन्दर वन में आय तिष्ठे।

कैसा है वह वन? फल पुष्पनिकर शोभित, जहां भ्रमर गुंजार करै हैं अर कोयल बोले हैं। सो निकट सरोवरी तहां लक्ष्मण जल के निमित्त गए, सो ताही सरोवरी पर क्रीड़ा के निमित्त कल्याणमाला नामा राजपुत्री राजकुमार का भेष किए आई हुती। कैसा है राजकुमार? महारूपवान, नेत्रनिकूं हरणहारा, सबकूं प्रिय, महाविनयवान, कांतिरूप निर्झरनि का पर्वत, श्रेष्ठ हाथी पर चढ्या, सुन्दर प्यादे लार, जो नगर का राज्य करै। सो सरोवरी के तीर लक्ष्मणकूं देख मोहित भया। कैसा है लक्ष्मण? नीलकमल समान श्याम सुन्दर लक्षणनि का धारक। राजकुमार एक मनुष्यकूं आज्ञा करी जो इनकूं ले आव। सो वह मनुष्य जायकर हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया - हे धीर! यह राजपुत्र आपसूं मिल्या चाहै है सो पधारिए।

तब लक्ष्मण राजकुमार के समीप गए। सो हाथीतैं उतरकर कमल तुल्य जे अपने कर तिनकर लक्ष्मण का हाथ पकड़ वस्त्रनि के डेरा में ले गया, एक आसन पर दोऊ बैठे। राजकुमार पूछता भया - आप कौन हो, कहां तैं आए हो? तब लक्ष्मण कही मेरे बड़े भाई मो बिना एक क्षण न रहैं सो उनके निमित्त अन्न पान सामग्री कर उनकी आज्ञा लेय तुम पर आऊंगा, तब सब बात कहूंगा। यह बात सुन राजकुमार कही - जो रसोई यहां ही तैयार भई है सो यहां ही तुम अर वे भोजन करोगे। तदि लक्ष्मण से आज्ञा पाय सुन्दर भात दाल, नाना विधि व्यंजन, नवीन घृत कपूरादि सुगन्ध द्रव्यनि सहित दधि दुग्ध, अर नाना प्रकार पीने की वस्तु, मिश्री के स्वाद जामें ऐसे लाडू, अर पूरी सांकली इत्यादि नाना प्रकार भोजन की सामग्री, अर वस्त्र आभूषण माला

इत्यादि अनेक सुगन्ध नाना प्रकार तैयार किए। अर अपने निकटवर्ती जो द्वारपाल ताहि भेज्या। सो जायकर सीता सहित रामकूं प्रणाम कर कहता भया – हे देव! या वस्त्र भवन के विषै तिहारा भाई तिष्ठे है, अर या नगर के नाथ ने बहुत आदरतैं विनती करी है – वहां छाया शीतल है अर स्थान मनोहर, सो आप कृपाकर पधारौ तो मार्ग का खेद निवृत्त होय।

तब राम सीतासहित पधारै जैसैं चांदनी सहित चांद उद्योत करै। कैसे हैं राम ? माते हाथी समान है चाल जिनकी। लक्ष्मण सहित नगर का राजा दूर ही तैं देख उठकर सामने आया। सीता सहित राम सिंहासन पर विराजे, राजा ने आरती उतार कर अर्घ दिए, अति सन्मान किया, आप प्रसन्न होय स्नान कर भोजन किया, सुगन्ध लगाई।

बहुरि राजा सबनिकूं सीख देय विदा किये। ए चार ही रहे – एक राजा तीन ए। राजा सबनिकूं कह्या – जो मेरे पिता के पासतैं इनके हाथ समाचार आए हैं सो एकांत की वार्ता है, कोई आवने न पावै। जो आवेगा ताही मैं मारूंगा। बड़े बड़े सामंत द्वारे रखे। एकांतविषै इनके आगै लज्जा तज कन्या जो राजा का भेष धारे हुती सो तज अपना स्त्री पद का रूप प्रकट दिखाया। कैसी है कन्या? लज्जाकर नम्रीभूत है मुख जाका, अर रूपकर मानों स्वर्ग की देवांगना है, अथवा नागकुमारी है। ताकी कांतिकरि समस्त मन्दिर प्रकाशरूप होय गया, मानो चन्द्रमा का उदय भया। चंद्रमा किरणोंकरि मंडित है, याका मुख लज्जा अर मुलकन कर मंडित है। मानों यह राजकन्या साक्षात् लक्ष्मी ही है, कमलनि के वनतैं आय तिष्ठी है। अपनी लावण्यता रूप सागरविषै मानों मंदिरकूं गर्क किया है। जाकी द्युति आगैं रत्न अर कंचन द्युतिरहित भासै हैं। जाके स्तन युगल से कांतिरूप जल की तरंगनि समान त्रिबली शोभै है।

अर जैसैं मेघपटलकूं भेद निशाकर निकसै तैसैं वस्त्रकूं भेद अंग की ज्योति फैल रही है। अर अत्यन्त चिकने सुगन्ध कारे बांके पतले लम्बे केश, तिनकरि विराजित है प्रभा रूप बदन जाका, मानो कारी घटा में बिजुरी के समान चमके है। अर महासूक्ष्म स्निग्ध जो रोमनि की पंक्ति ताकर विराजित मानों नीलमणिकरि मंडित सुवर्ण की मूर्ति ही है। तत्काल नररूप तज, नारी का रूप कर, मनोहर नेत्रनि की धरनहारी सीता के पायन लाग समीप जाय बैठी, जैसैं लक्ष्मी रति के निकट जाय बैठे। सो याका रूप देख लक्ष्मण काम बींधा गया, और ही अवस्था होय गई, नेत्र चलायमान भए।

तब श्रीरामचन्द्र कन्यातैं पूछते भए, कौन की पुत्री है अर पुरुष का भेष कौन कारण किया?

तब वह महामिष्टवादिनी अपना अंग वस्त्रतैं ढांक कहती भई – हे देव! मेरा वृत्तांत सुनहु। या नगर का राजा बालखिल्य, महासुबुद्धि, सदा आचारवान, श्रावक के व्रतधारक, महादयालु, जिनधर्मियों पर वात्सल्य अंग का धारणहारा। राजा के पृथ्वी रानी, ताहि गर्भ रह्या, सो मैं

गर्भविषै आई। अर म्लेच्छनि का जो अधिपति तासूं संग्राम भया। मेरा पिता पकड्या गया। सो मेरा पिता सिंहोदर का सेवक सो सिंहोदर ने यह आज्ञा करी जो बाल्यखिल्य के पुत्र होय सो राज्य का कर्त्ता होय, सो मैं पापिनी पुत्री भई। तब हमारे मंत्री सुबुद्धि तानै मनसूबाकर राज्य के अर्थ मोहि पुत्र ठहराया। सिंहोदरकूं विनती लिखी, कल्याणमाला मेरा नाम धर्‍या अर बड़ा उत्सव किया। सो मेरी माता अर मंत्री ये तो जानै है जो यह कन्या है और सब कुमार ही जानै हैं। सो ऐते दिन मैं व्यतीत किए।

अब पुण्य के प्रभावतैं आपका दर्शन भया। मेरा पिता बहुत दुःखसूं तिष्ठे है म्लेच्छनि की बंदी में है। सिंहोदर ताहि छुड़ायवे समर्थ नाहीं। अर जो द्रव्य देशविषै उपजै है सो सब म्लेच्छ के जाय है। मेरी माता वियोग रूप अग्निकर तप्तायमान जैसैं दूज के चन्द्रमा की मूर्ति क्षीण होय तैसी होय तैसी होय गई है। ऐसा कहकर दुख के भारकर पीड़ित है समस्त अंग जाका सो मूर्छा खाय गई अर रुदन करती भई। तदि श्रीरामचन्द्र ने अत्यन्त मधुर वचन कह कर धीर्य बंधाया, सीता गोद में लेय बैठी, मुख धोया। अर लक्ष्मण कहते भए – हे सुन्दरी! सोच तज, अर पुरुष का भेषकरि राज्य करि, कई एक दिननि में म्लेच्छनिकूं पकड़ अर अपने पिताकूं छूट्या ही जान। ऐसा कहकर परम हर्ष उपजाया सो इनके वचन सुनकर कन्या पिताकूं छूट्या ही जानती भई। श्रीराम लक्ष्मण देवन की नाईं तीन दिन यहां बहुत आदरतैं रहे।

बहुरि रात्रि में सीता सहित उपवनतैं निकसकर गोप चले गए। प्रभात समय कन्या जागी तिनकूं न देख व्याकुल भई, अर कहती भई – वे महापुरुष मेरा मन हर ले गए, मो पापिनीकूं नींद आ गई सो गोप चले गए। या भांति विलाप कर मन को थांभ हाथी पर चढ़ पुरुष के भेष नगरविषै गई। अर राम लक्ष्मण कल्याणमाला के विनय कर हर्‍या गया है चित्त जिनका, अनुक्रमतैं मेकला नामा नदी पहुंचे। नदी उतर क्रीड़ा करते अनेक देशनिकूं उल्लंघि विन्ध्याटवीकूं प्राप्त भए। पंथ में जाते संते गुवालनि ने मनै किए कि यह अटवी भयानक है तिहारे जाने योग्य नाहीं। तब आप तिनकी बात न मानी, चले ही गए। कैसी है वनी? कहीं एक लताकर मंडित जे शालवृक्षादिक तिनकरि शोभित है। अर नाना प्रकार के सुगन्ध वृक्षनिकर भरी महा सुगन्धरूप है, अर कहीं एक दावानलकर जले वृक्ष, तिनकर शोभारहित हैं, जैसैं कुपुत्र कलंकित गोत्र न शोभै।

अथानन्तर सीता कहती भई – कंटक वृक्ष के ऊपर बाईं ओर काग बैठ्या है सो यह तो कलह की सूचना करै है। अर दूसरा एक काग क्षीरवृक्ष पर बैठा है सो जीत दिखावै है। तातैं एक मुहूर्त थिरता करहु। या मुहूर्तविषै चालै आगे कलह के अंत जीत है, मेरे चित्त में ऐसा भासै है। तब क्षणएक दोऊ भाई थाम्भे बहुरि चाले। आगे म्लेच्छनि की सेना दृष्टि पड़ी। ते दोऊ भाई निर्भय

धनुषबाण धारे म्लेच्छनि की सेना पर पड़े, सो सेना नाना दिशानिकूं भाग गई। तदि अपनी सेना का भंग देखि और म्लेच्छनि की सेना शस्त्र धरै, बहुत म्लेच्छ वक्तर पहिरैं आए। सो ते भी लीलामात्र में जीते। तब वे सब म्लेच्छ धनुष बाण डार पुकार करते पति पै जाय सब वृत्तांत कहते भए। तब वे सब म्लेच्छ परम क्रोधकर धनुष बाण लीए महा निर्दई बड़ी सेनासूं आए। शस्त्रनि के समूहकरि संयुक्त वे काकोदन जाति के म्लेच्छ, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध, सर्व मांस के भक्षी, राजानहूकरि दुर्जय, ते कारी घटा समान उमडि आए।

तदि लक्ष्मण ने क्रोधकर धनुष चढ़ाया, तब वन कम्पायमान भया, वन के जीव कांपने लग गए। तब लक्ष्मण ने धनुष के शर बांधा तब सब म्लेच्छ डरे, वन में दशों दिश आंधे की न्याईं भटकते भए। तब महा भयंकर पूर्ण म्लेच्छनि का अधिपति रथ से उतर हाथ जोड़ प्रणाम कर पांयन पर्‍या अर अपना सर्व वृत्तांत दोऊ भाइनसूं कहता भया।

हे प्रभो! कौशांबी नाम नगरी है। तहां एक विश्वानल नामा ब्राह्मण अग्निहोत्री, ताके प्रतिसंध्यानामा स्त्री, तिनके रौद्रभूतनामा पुत्र! सो द्यूत कला में प्रवीण, बाल अवस्थाहीतैं क्रूरकर्म का करणहारा। सो एक दिन चोरीतैं पकड्या गया अर सूली देवेकूं उद्यमी भए। तदि एक दयावंत पुरुष छुड़ाया सो मैं कांपता देश तज यहां आया। कर्मानुयोगकर काकोदन जाति के म्लेच्छनि का अधिपति भया। महाभ्रष्ट, पशु समान व्रत क्रिया रहित तिष्ठूं हूं। अब तक महासेना के अधिपति बड़े बड़े राजा मेरे सम्मुख युद्ध करवेकूं समर्थ न भए, मेरी दृष्टिगोचर न आए, सो मैं आप के दर्शनमात्र ही तैं वशीभूत भया। धन्य भाग्य मेरे जो मैंने तुम पुरुषोत्तम देखे। अब मोहि जो आज्ञा देहु सो करूं। आपका किंकर, आपके चरणारविंद की चाकरी सिर पर धरूं हूं। अर यह विंध्याचल पर्वत अर या स्थानक निधिकर पूर्ण है। बहुत धनकर पूर्ण युक्त है। आप यहां राज्य करहु। मैं तिहारा दास।

ऐसा कहकर म्लेच्छ मूर्छा खायकर पायन पर्‍या, जैसैं वृक्ष निर्मूल होय गिर पड़े। ताहि विह्वल देख श्री रामचन्द्र दयारूप वलकर बेढ़े कल्पवृक्ष समान कहते भए, उठ उठ, डरे मत। बालखिल्यकूं छोड़, तत्काल यहां मंगाओ, अर ताका आज्ञाकारी मंत्री होय कर रह। म्लेच्छनिकी क्रिया तज, पापकर्मतैं निवृत्त हो, देश की रक्षा कर। या भांति किये तेरी कुशल है। तब याने कही – हे प्रभो! ऐसा ही करूंगा। यह विनती कर आप गया अर महारथ का पुत्र जो बालखिल्य ताहि छोड्या। बहुत विनयसंयुक्त ताके तैलादि मर्दन कर, स्नान भोजन कराय, आभूषण पहिराय, रथविषै चढ़ाय, श्रीरामचन्द्र के समीप ले जानेकूं उद्यमी किया। तदि बालखिल्य परम आश्चर्यकूं प्राप्त होय विचारता भया – कहां यह म्लेच्छ महाशत्रु कुकर्मी, अत्यन्त निर्दयी? अर मेरा एता

विनय करै है सो जानिये है जो आज मोहि काहू की भेंट देगा। अब मेरा जीवन नाहीं, यह विचार सो बालखिल्य सचिंत चाल्या।

आगै राम लक्ष्मण को देख परम हर्षित भया। रथतैं उतर आय नमस्कार किया अर कहता भया, हे नाथ! मेरे पुण्य के योगतैं आप पधारे मोहि बंधनतैं छुड़ाया। आप महासुन्दर इन्द्र तुल्य मनुष्य हो, पुरुषोत्तम पुरुष हो। तब राम ने आज्ञा करी तू अपने स्थानक जाहु, कुटुम्बतैं मिलहु। तब बालखिल्य रामकूं प्रणामकरि रौद्रभूत सहित अपने नगर गया। श्रीराम बालखिल्यकूं छुड़ाय रौद्रभूतकूं दासकरि वहांते चाले। बालखिल्य कूं आया सुनकर कल्याणमाला महाविभूति सहित सम्मुख आई। अर नगर में महाउत्साह भया। राजा राजकुमार को उर से लगाय अपनी असवारी में चढ़ाय नगरविषै प्रवेश किया। राणी पृथ्वी के हर्ष से रोमांच होय आए। जैसा आगे शरीर सुन्दर हुता तैसा पति के आए भया। सिंहोदरकूं आदि देय बालखिल्य के हितकारी सब ही प्रसन्न भए। अर कल्याणमाला पुत्री ने एते दिवस पुरुष का भेष कर राज थांभ्या हुता सो या बात का सबकूं आश्चर्य भया।

यह कथा राजा श्रेणिकसूं गौतम स्वामी कहै हैं – हे नराधिप! वह रौद्रभूत परद्रव्य का हरणहारा, अनेक देशनि का कंटक सो श्रीराम के प्रतापतैं बालखिल्य का आज्ञाकारी सेवक भया। जब रौद्रभूत वशीभूत भया अर म्लेच्छनि की विषम भूमि में बालखिल्य की आज्ञा प्रवर्ती, तब सिंहोदर भी शंका मानता भया। अर स्नेह सहित सम्मान करता भया। बालखिल्य रघपुति के प्रसादतैं परम विभूति पाय जैसा शरद ऋतु में सूर्य प्रकाश करै तैसा पृथ्वीविषै प्रकाश करता भया। अपनी राणी सहित देवनि की न्याईं रमता भया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै म्लेच्छनि के राजा रौद्रभूति का वर्णन करने वाला चौंतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।34।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण देवनि सारिखे मनोहर नन्दनवन सारिखा वन, ताविषै सुख से विहार करते एक मनोग्य देशविषै आय निकसे। जाके मध्य तापी नदी बहै। नाना प्रकार के पक्षिनि के शब्द करि सुन्दर तहां एक निर्जन वन में सीता तृषाकर अत्यन्त खेदखिन्न भई। तब पतिकूं कहती भई – हे नाथ! तृषा से मेरा कंठ सूखै है। जैसे अनन्त भव के भ्रमण कर खेदखिन्न हुआ। भव्यजीव सम्यक्‌दर्शनकूं बांछे तैसैं मैं तृषा से व्याकुल शीतल जलकूं बांछूं हूं। ऐसा कहिकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।

तब राम ने कही – हे देवी! हे शुभे! तू विषादकूं मत प्राप्त होउ, नजीक ही यह आगे ग्राम है, तहां सुन्दर मंदिर है, उठ आगे चल। या ग्राम में तोहि शीतल जल की प्राप्ति होयगी। ऐसा

जब कह्या तब उठ कर सीता चली, मंद मंद गमन करती गजगामिनी। ता सहित दोऊ भाई अरुणनामा ग्राम में आए। महा धनवान किसान रहैं, जहां एक ब्राह्मणअग्निहोत्री कपिलनामा प्रसिद्ध, ताके घर में आय उतरे। ताकी अग्निहोत्री की शाला में क्षण एक बैठ खेद निवास्या। कपिल की ब्राह्मणी जल लाई सो सीता पिया। तहां विराजे। अर वनतैं ब्राह्मण वील तथा छीला वा खेजड़ा इत्यादि काष्ठ का भार बांधे आया। दावानल समान प्रज्वलित जाका मन, महाक्रोधी, कालकूट विषसमान वचन बोलता भया। उल्लू समान है मुख जाका अर कर में कमण्डलु, चोटी में गांठ दिए, लांबी डाढ़ी, यज्ञोपवीत पहिरे, उंछवृत्ति कहिए अन्न को काटकर ले गये पीछे खेतनतैं अन्न करण वीन लावै। या भांति है आजीविका जाकी। सो इनकूं बैठा देख वक्र मुखकर ब्राह्मणीकूं दुर्वचन कहता भया – हे पापिनी! इनकूं घर में काहे प्रवेश दिया, मैं आज तोहि गायनि के मठन में बांधूंगा। देख! इन निर्लज्ज ढीठ पुरुष धूरकर धूसरों ने मेरा अग्निहोत्र का स्थान मलिन किया।

यह वचन सुन सीता रामतैं कहती भई, हे प्रभो! या क्रोधी के घर में न रहना, वन में चलिए, जहां नाना प्रकार के पुष्प फल तिनकर मंडित वृक्ष शोभै हैं। निर्मल जल के भरे सरोवर हैं, तिनमें कमल फूल रहे हैं, अर मृग अपनी इच्छा से क्रीड़ा करते हैं। यहां ऐसे दुष्ट पुरुषनि के कठोर वचन सुनिए है। यद्यपि यह देश धन से पूर्ण है अर स्वर्ग सारिखा सुन्दर है, परन्तु लोग महाकठोर हैं, अर ग्रामीजन विशेष कठोर ही होय हैं। सो विप्र के रूखे वचन सुन ग्राम के सकल लोक आए, इन दोऊ भाइनि का देवनिसमान रूप देख मोहित भए। ब्राह्मणकूं एकांत में ले जाय लोक समझावते भये। ये एक रात्रि यहां रहै हैं तेरा कहा उजाड़ है ? ये गुणवान, विनयवान, रूपवान, पुरुषोत्तम हैं। तब द्विज सबसे लड्या, अर सबसे कह्या – तुम मेरे घर काहे आये, परे जाहु। अर मूर्ख इन पर क्रोधकर आया जैसे श्वान गज पर आवै। इनकूं कहता भया– रे अपवित्र हो! मेरे घरतैं निकस्यो। इत्यादि कुवचन सुन लक्ष्मण कोप भए। ता दुर्जन के पांव ऊंचेकर नाडि नीचे कर भ्रमाया, भूमि पर पछाड़ने लगा।

तब श्रीराम परम दयालु ताहि मने किया, हे भाई! यह कहा? ऐसे दीन के मारवेकरि कहा? याहि छोड़ देहु, याके मारनेतैं बड़ा अपयश है। जिनशासन में शूरवीरकूं एते न मारने – यति, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक, वृद्ध ये दोष संयुक्त होय तो भी हनने योग्य नाहीं। या भांति भाइकूं समझाया, विप्र छुड़ाया अर आप लक्ष्मणकूं आगे करि सीतासहित कुटीतैं निकसे। आप जानकी से कहै हैं – हे प्रिये! धिक्कार है नीच की संगतिकूं, जिस कर क्रूर वचन सुनिये मन में विकार का कारण महापुरुषनिकर त्याज्य। महाविषम वन में वृक्षनि के नीचे वास भला, न नीचनि के साथ। आहारादिक बिना प्राण जावें तो भले, परन्तु दुर्जन के घर क्षण एक रहना योग्य नाहीं।

नदिनि के तटविषै पर्वतनि की कंदरानिविषै रहेंगे। बहुरि ऐसे दुष्ट के घर न आवेंगे। या भांति दुष्ट के संगकूं निंदते ग्राम से निकसे। राम बनकूं गये, वहां वर्षा समय आय प्राप्त भया।

समस्त आकाश को श्याम करता हुवा अर अपनी गर्जना कर शब्दरूप करी है पर्वत की गुफा जानै, यह नक्षत्र तारानि समूह को ढांककर शब्दसहित बिजुरी के उद्योतकर मानों अम्बर हंसे है। मेघ पटल ग्रीष्म के तापकूं निवारकर पंथिनि को बिजुरीरूप अंगुरिनिकरि डरावता संता गाजै है। श्याम मेघ आकाश में अंधकार करता संता जल की धारा कर मानों सीताकूं स्नान करावै है। जैसें गज लक्ष्मीकूं स्नान करावै। ते दोऊ वीर वन में एक बड़ा वट का वृक्ष, ताके डाहला घर के समान, तहां विराजे। सो एक दंभकर्ण नामा यक्ष उस वट में रहता हुता सो इनको महा तेजस्वी जानकर अपने स्वामीकूं नमस्कार कर कहता भया – हे नाथ! कोई स्वर्गतैं आए हैं, मेरे स्थानकविषै तिष्ठे हैं। जिनने अपने तेजकर मोहि स्थानतैं दूर किया है, वहां मैं जाय न सकूं हूं।

तब यक्ष के वचन सुनकर यक्षाधिपति अपने देवनिसहित बट का वृक्ष जहां राम लक्ष्मण हुते तहां आया, महाविभवसंयुक्त वनक्रीड़ाविषै आसक्त, नूतन है नाम जाका। दूर ही तैं दोऊ भाइनिकूं महा रूपवान देख अवधिकरि जानता भया – जो ये बलभद्र नारायण हैं। तब वह इनके प्रभावकर अत्यन्त वात्सल्यरूप भया। क्षणमात्र में महामनोग्य नगरी निरमापी तहां सुखसूं सोते हुए प्रभात सुन्दर गीतों के शब्दनिकर जागे। रत्नजड़ित सेज पर आपकूं देख्या अर मंदिर महामनोहर, बहुत खण का, अति उज्ज्वल, अर सम्पूर्ण सामग्रीकर पूर्ण। अर सेवक सुन्दर बहुत आदर के करनहारे। नगर में रमणीक शब्द, कोट दरवाजेनिकर शोभायमान, ते पुरुषोत्तम महानुभाव, तिनका चित्त ऐसे नगरकूं तत्काल देख आश्चर्यकूं न प्राप्त भया। वह क्षुद्र पुरुषनि की चेष्टा है जो अपूर्व वस्तु देख आश्चर्य को प्राप्त होय। समस्त वस्तु कर मंडित वह नगर, तहां वे सुन्दर चेष्टा के धारक निवास करते भए, मानों ये देव ही हैं। यक्षाधिपति ने राम के अर्थ नगरी रची। तातैं पृथ्वी पर रामपुरी कहाई। ता नगरी विषै सुभट मंत्री द्वारपाल नगर के लोग अयोध्या समान होते भए।

राजा श्रेणिक गौतम स्वामी को पूछै हैं – हे प्रभो! ये तो देवकृत नगरविषै विराजे अर ब्राह्मण की कहा बात? सो कहो।

तब गणधर बोले – वह ब्राह्मण अन्य दिन दांतला हाथ में लेय वन में गया, लकड़ी ढूंढ़ते अकस्मात् ऊंचे नेत्र किये। निकट ही सुन्दर नगर देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भया। नाना प्रकार के रंग की ध्वजा उन कर शोभित, शरद के मेघ समान सुन्दर महिल देखे। अर एक राजमहिल महाउज्ज्वल, मानों कैलाश का बालक है सो ऐसा देखकर मन में विचारता भया – जो यह अटवी मृगनितैं भरी जहां मैं लकड़ी लेने निरंतर आवता हुता, सो यहां रत्नाचल समान सुन्दर मंदिरनितैं

संयुक्त नगरी कहांसूं बसी? सरोवर जल के भरे कमलनिकरि शोभित दीखे हैं जो मैं अब तक कभी न देखे।

उद्यान महामनोहर, जहां चतुर जन क्रीड़ा करते दीखै हैं, अर देवालय महाध्वजनिकर संयुक्त शोभै हैं, अर हाथी, घोड़े, गाय, भैंस तिनके समूह दृष्टि आवै हैं। घंटादिक के शब्द होय रहे हैं। यह नगरी स्वर्गतैं आई है अथवा पातालतैं निसरी है, कोऊ महाभाग्य के निमित्त। यह स्वप्न है अक प्रत्यक्ष है, अक देवमाया है, अक गन्धर्वनि का नगर है, अक मैं पित्तकर व्याकुल भया हूं, याके निकटवर्ती जो मैं सो मेरे मृत्यु का चिह्न दीखै है। ऐसा विचार कर विप्र विषादकूं प्राप्त भया। सो एक स्त्री नाना प्रकार के आभरण पहरे देखी। ताके निकट जाय पूछता भया। हे भद्रे! यह कौन की पुरी है? तब वह कहती भई यह राम की पुरी है तूने कहा न सुनी? जहां राम राजा जाके लक्ष्मण भाई, सीता स्त्री। अर नगर के मध्य यह बड़ा मंदिर है शरद के मेघ समान उज्ज्वल, जहां वह पुरुषोत्तम विराजे हैं, कैसा है पुरुषोत्तम? लोकविषै दुर्लभ है दर्शन जाका। सो ताने मनवांछित द्रव्य के दानकरि सब दरिद्री लोक राजानि समान किये।

तब ब्राह्मण बोला – हे सुन्दरी! कौन उपाय कर याहि देखूं सो तू कह। ऐसे काष्ठ का भार डारकर हाथ जोड़ ताकैं पांयन पर्‍या। तब वह सुमाया नामा यक्षिनी कृपाकर कहती भई, हे विप्र! या नगरी के तीन द्वार हैं, जहां देव हू प्रवेश न कर सकैं, बड़े–बड़े योधा रक्षक बैठे हैं, रात्रि में जागै हैं, जिनके मुख सिंह गज, व्याघ्र तुल्य हैं, तिनकरि भयकूं मनुष्य प्राप्त होय हैं। यह पूर्व द्वार है जाके निकट बड़े बड़े भगवान के मंदिर हैं, मणि के तोरणकरि मनोग्य। तिनमें इन्द्र का वंदनीक अरहंत के बिंब विराजे हैं। अर जहां भव्यजीव सामायिक आदि स्तवन करै हैं। अर जो नमोकार मंत्र भाव सहित पढ़े हैं सो माहिं प्रवेश कर सकै हैं। जो पुरुष अणुव्रत का धारी गुणशीलकरि शोभित है ताको राम परम प्रीति कर वांछै हैं। यह वचन यक्षिनी के अमृत समान सुनकर ब्राह्मण परम हर्षकूं प्राप्त भया। धन आगम का उपाय पाय, यक्षिनी की बहुत स्तुति करी। रोमांच कर मंडित भया है सर्व अंग जाका। सो चारित्रशूर नामा मुनि के निकट जाय हाथ जोड़ नमस्कार कर श्रावक की क्रिया का भेद पूछता भया।

तदि मुनि ने श्रावक का धर्म याहि सुनाया, चारों अनुयोग का रहस्य बताया। सो ब्राह्मण धर्म का रहस्य जान मुनि की स्तुति करता भया – हे नाथ! तिहारे उपदेशकरि मेरे ज्ञानदृष्टि भई, जैसें तृषावानकूं शीतल जल, अर ग्रीष्म के तापकर तप्तायमान पंथीकूं छाया, अर क्षुधावानकूं मिष्टान्न, अर रोगीकूं औषधि मिलै, तैसें कुमार्ग में प्रतिपत्र जो मैं सो मोहि तिहारा उपदेश रसायन मिल्या, जैसें समुद्रविषै डूबतेकूं जहाज मिलै। मैं यह जैन का मार्ग सर्व दुःखनि का दूर करणहारा तिहारे

प्रसादकरि पाया, जो अविवेकीनिकूं दुर्लभ है। तीन लोक में मेरे तुम समान कोऊ हित नाहीं जिनकर ऐसा जिनधर्म पाया। ऐसा कहकर मुनि के चरणारविंदकूं नमस्कार कर ब्राह्मण अपने घर गया। अति हर्षित, फूल रहे हैं नेत्र जाके, स्त्रीसूं कहता भया, हे प्रिये! मैंने आज गुरु के निकट अद्‌भुत जिनधर्म सुन्या है, जो तेरे बाप ने अथवा मेरे बाप ने अथवा पिता के पिता ने भी न सुन्या।

अर हे ब्राह्मणी! मैंने एक अद्‌भुत वन देख्या तामें एक महामनोग्य नगरी देखी, जाहि देख अचरज उपजै, परन्तु मेरे गुरु के उपदेशकरि अचरज नहिं उपजै है। तब ब्राह्मणी कही, हे विप्र! तैं कहां देख्या अर कहा कहा सुन्या सो कहहु। तब ब्राह्मण कही – हे प्रिये! मैं हर्षथकी कहने समर्थ नाहीं, तब बहुत आदर कर ब्राह्मणी बारम्बार पूछ्या। तब ब्राह्मण कही – हे प्रिये! मैं काष्ठ के अर्थ वनविषै गया हुता। सो वनविषै एक महा रमणीक रामपुरी देखी। ता नगरी के समीप उद्यानविषै एक नारी सुन्दर देखी। सो वह कोई देवता होयगी महा मिष्टवादिनी। मैंने पूछ्या या नगरी कौन की है तब वाने कही यह रामपुरी है, जहां राम श्रावकनिकूं मनवांछित धन देवै हैं।

तब मैं मुनि पै जाय जैनवचन सुने सो मेरा आत्मा बहुत तृप्त भया, मिथ्यादृष्टि कर मेरा आत्मा आताप युक्त हुता सो आताप गया। जिनधर्मकूं पायकर मुनिराज मुक्ति के अभिलाषी सर्व परिग्रह तज महातप कर। सो वह अरहंत का धर्म त्रैलोक्यविषै एक महानिधि मैं पाया। ये बहिर्मुख जीव वृथा क्लेश करै हैं। मुनि थकी जैसा जिनधर्म का स्वरूप सुन्या हुता तैसा ब्राह्मणीकूं कहा। कैसा है जिनधर्म का स्वरूप? उज्ज्वल है। अर कैसा है ब्राह्मण? निर्मल है चित्त जाका।

तब ब्राह्मणी सुनकर कहती भई मैं भी तिहारै प्रसादकरि जिनधर्म की रुचि पाई। अर जैसे कोई विषफल का अर्थी महानिधि पावै, तैसैं ही तुम काष्ठादिक के अर्थी, धर्म इच्छातैं रहित श्रीअरहंत का धर्म रसायन पाया, अब तक तुमने धर्म न जान्या। अपने आंगनविषै आए सत्पुरुष तिनका निरादर किया, उपवासादि करि खेदखिन्न दिगम्बर तिनकूं कबहु आहार न दिया, इन्द्रादिक कर वंदनीक जे अरहंत देव तिनकूं तज कर ज्योतिषी व्यंतरादिकनकूं प्रणाम किया, जीवदयारूप जिनधर्म अमृत तज अज्ञान के योगतैं पापरूप विष का सेवन किया। मनुष्य देहरूप रत्नदीप पाय, साधुनिकरि परखा धर्मरूप रत्न तज, विषयरूप कांच का खंड अंगीकार किया। जे सर्वभक्षी दिवस रात्रि आहारी, अव्रती, कुशीली तिनकी सेवा करी। भोजन के समय अतिथि आवै अर जो निर्बुद्धि अपने विभवप्रमाण अन्नपानादि न दे ताके धर्म नाहीं।

अतिथि पद का अर्थ – तिथि कहिये उत्सव के दिन तिनविषै उत्सव तज जाके तिथि कहिये विचार नाहीं, अर सर्वथा निस्पृह धनरहित साधु सौ अतिथि कहिये, जिनके भाजन नाहीं, कर ही पात्र हैं वे निर्ग्रंथ आप तिरैं औरनिकूं तारैं, अपने शरीर में हू निस्पृह काहू वस्तुविषै जिनका लोभ

नाहीं। ते निरपरिग्रही मुक्ति के कारण जे दशलक्षण तिनकर शोभित हैं। या भांति ब्राह्मण ने ब्राह्मणीकूं धर्म का स्वरूप कह्या। अर सुशर्मा नामा ब्राह्मणी मिथ्यात्वरहित होती भई। जैसैं चन्द्रमा के रोहिणी शोभै, अर बुध के भरणी सोहै, तैसैं कपिल के सुशर्मा शोभती भई। ब्राह्मण ब्राह्मणीकूं वाही गुरु के निकट ले गया, जाके निकट आप व्रत लिये हुते। सो स्त्री को हू श्रावक के व्रत दिवाये। कपिलकूं जिनधर्मविषै अनुरागी जान और हू अनेक ब्राह्मण समभाव धारते भए। मुनिसुव्रतनाथ का मत पायकर अनेक सुबुद्धि श्रावक श्राविका भए।

अर जे कर्मनि के भारकर संयुक्त, मानकर ऊंचा है मस्तक जिनका, वे प्रमादी जीव थोड़े ही आयुविषै पापकर घोर नरकविषै जाय हैं। कई एक उत्तम ब्राह्मण सर्व संग का परित्याग कर मुनि भए। वैराग्य कर पूर्ण, मनविषै ऐसा विचार किया – यह जिनेन्द्र का मार्ग अब तक अन्य जन्म में न पाया, महानिर्मल अब पाया, ध्यानरूप अग्निविषै कर्मरूप सामग्री भाव घृतसहित होम करेंगे। सो जिस के परम वैराग्य उदय भया ते मुनि ही भए। अर कपिल ब्राह्मण महा क्रियावान श्रावक भया। एक दिवस ब्राह्मणीकूं धर्म की अभिलाषिनी जान कहता भया – हे प्रिये! श्रीराम के देखवेकूं रामपुरी क्यों न चालैं? कैसे हैं राम? महापराक्रमी, निर्मल है चेष्टा जिनकी, अर कमल सरीखे हैं नेत्र जिनके, सर्व जीवनि के दयालु, भव्य जीवनि पर है वात्सल्य जिनका। जे प्राणी आशा में तत्पर, नित्य, उपायविषै है मन जिनका, दरिद्रीरूप समुद्र में मग्न, उदर पूर्णविषै असमर्थ, तिनकूं दरिद्ररूप समुद्रतैं पर उतार परम सम्पदाकूं प्राप्त करै हैं।

या भांति कीर्ति जिनकी पृथ्वीविषै फैल रही है, महाआनन्द की करणहारी, तातैं हे प्रिये! उठ, भेंट लेकर चालें। अर मैं सुकुमार बालककूं कांधे लूंगा। ऐसे ब्राह्मणीकूं कह, तैसैं ही कर, दोऊ हर्ष के भरे उज्ज्वल भेष कर शोभित रामपुरीकूं चाले। सो उनकूं मार्गविषै भयानक नागकुमार दृष्टि आए, बहुरि विंतर विकराल वदन हाडहडांस करते दृष्टि आए। इत्यादि भयानक रूप देख ये दोऊ निकम्प हृदय होयकर या भांति भगवान की स्तुति करते भए – श्रीजिनेश्वर ताई निरन्तर मन वचन कायकर नमस्कार होहु। कैसे हैं जिनेश्वर? त्रैलोक्य कर वंदनीक हैं, संसार कीच से पार उतारै हैं, परम कल्याण के देनहारे हैं। यह स्तुति पढ़ते ये दोऊ चले जावै हैं। इनकूं जिन भक्त जान यक्ष शांत होय गए। ये दोऊ जिनालय में गए, नमस्कार होहु – जिनमंदिरकूं ऐसा कह दोऊ हाथ जोड़ अर चैत्यालय की प्रदक्षिणा दई, अर माहीं जाय स्तोत्र पढ़ते भए – हे नाथ! महाकुगति का दाता मिथ्यामार्ग ताही तजकर बहुत दिन में तिहारा शरण गहा।

चौबीस तीर्थंकर अतीत काल के अर चौबीस वर्तमान काल के अर चौबीस अनागत काल के तिनकूं मैं बदूं हूं। अर पंच भरत, पंच ऐरावत, पंच विदेह ये पन्द्रह कर्मभूमि तिनविषै जे तीर्थंकर

भए, अर वर्ते हैं, अर अब होवेंगे, तिन सबनिकूं हमारा नमस्कार होहु। जो संसार समुद्रसूं तिरैं अब औरनकूं तारैं ऐसे श्रीमुनिसुव्रतनाथ के तांई नमस्कार होहु। तीन लोकमैं जिनका यश प्रकाश करै है। या भांति स्तुति कर अष्टांग दण्डवत करि ब्राह्मण स्त्रीसहित श्रीराम के अवलोकनकूं गए। मार्ग में बड़े बड़े मन्दिर महाउद्योतरूप ब्राह्मणीकूं दिखाए अर कहता भया – ये कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल सर्व कामना पूर्ण नगरी के मध्य राम के मंदिर हैं, जिनकरि यह नगरी स्वर्गसमान शोभै है। या भांति वार्ता करता ब्राह्मण राजमंदिरविषै गया। सो दूर हीतैं लक्ष्मणकूं देख व्याकुलताकूं प्राप्त भया।

चित्त में चितारे है – वह श्याम सुन्दर नीलकमल समान प्रभा जाकी, मैं अज्ञानी दुष्ट वचननि करि दुखाया सो मोहि त्रास दीनी। पापिनी जिह्वा, महादुष्टिनी काननकूं कटुक वचन भाखे, अब कहा करूं ? कहां जाऊं ? पृथ्वी के छिद्र में बैठूं, अब मोहि शरण कौन का? जो मैं यह जानता अक ये यहां ही नगरी बसाए रहे हैं तो मैं देश त्यागकर उत्तर दिशाकूं चला जाता। या भांति विकल्परूप होय ब्राह्मणीकूं तज ब्राह्मण भागा। सो लक्ष्मण ने देख्या। तब हंसकर रामकूं कहा – वह ब्राह्मण आया है, अर मृग की नाईं व्याकुल होय मोहि देख भागै है।

तब राम बोले याकूं विश्वास उपजाय शीघ्र लावो। तब सेवकजन दौड़े, दिलासा देय लाए, डिगता अर कांपता आया। निकट आय भय तज, दोऊ भाइन के आगे भेंट मेल 'स्वस्ति' ऐसा शब्द कहता भया, अर अति स्तवन पढ़ता भया। तब राम बोले – हे द्विज! तैं हमकूं अपमान कर अपने घरतैं काढ़े हुते। अब काहे पूजै है। तब विप्र बोला – हे देव! तुम प्रच्छन्न महेश्वर हो, मैं अज्ञानतैं न जाने, तातैं अनादर किया। जैसैं भस्मतैं अग्नि जानी न जाय। हे जगन्नाथ! या लोक की यही रीति है, धनवानकूं पूजिये है। सूर्य शीतऋतु में ताप रहित होय है सो तासे कोई नाहीं संकै है। अब मैं जाना तुम पुरुषोत्तम हो। हे पद्मलोचन! ये लोक द्रव्यकूं पूजै हैं, पुरुष को नाहीं पूजै हैं। जो अर्थकर युक्त होय ताहि लौकिकजन मानै हैं। अर परम सज्जन है अर धनरहित है तो ताहि निष्प्रयोजन जन जान न मानै है।

तब राम बोले – हे विप्र! जाके अर्थ ताके मित्र, जाके अर्थ ताके भाई, जाके अर्थ सोई पंडित, अर्थ बिना न मित्र न सहोदर, जो अर्थकर संयुक्त है, ताके परजन हू निज होय जाय हैं। अर धन वही जो धर्मकरयुक्त। अर धर्म वही जो दयाकरयुक्त। अर दया वही जहां मांस भोजन का त्याग। जब सब जीवनि का मांस तजा, तब अभक्ष्य का त्याग कहिए, ताके और त्याग सहज ही होय। मांस के त्याग बिना और त्याग शोभै नाहीं। ये वचन राम के सुन विप्र प्रसन्न भया अर कहता भया – हे देव! जो तुम सारिखे पुरुषनिकूं महापुरुष पूजिए हैं जिनका भी मूढ़ लोक अनादर

करै हैं। आगे सनत्कुमार चक्रवर्ती भए। बड़ी ऋद्धि के धारी महारूपवान जिनका रूप देव देखने आए। सो मुनि होयकर आहार कूं ग्रामादिकविषै गए। महाआचार प्रवीण सो निरंतराय भिक्षाकूं न प्राप्त होते भए।

एक दिवस विजयपुर नाम नगरविषै एक निर्धन मनुष्य के आहार लिया, याके पंच आश्चर्य भए। हे प्रभो! मैं मंदभाग्य तुम सारिखे पुरुषनि का आदर न किया सो अब मेरा मन पश्चातापरूप अग्नि कर तपै है। तुम महारूपवान, तुमकूं देख महाक्रोधी का क्रोध जाता रहै, अर आश्चर्यकूं प्राप्त होय। ऐसा कह कर सोचकर गृहस्थ कपिल रुदन करता भया। तदि श्रीराम ने शुभवचनकरि संतोष्या अर सुशर्मा ब्राह्मणीकूं जानकी संतोषती भई। बहुरि राघव की आज्ञा पाय स्वर्ण के कलशनिकरि सेवकनि ने द्विजकूं स्त्रीसहित स्नान कराया अर आदरसों भोजन कराया। नाना प्रकार के वस्त्र अर रत्ननि के आभूषण दिए, बहुत धन दिया। सो लेयकर अपने घर आया। मनुष्यनिकूं विस्मय का करणहारा धन याके भया।

यद्यपि याके घरविषै सब उपकार सामग्री अपूर्व है तथापि या प्रवीण का परिणाम विरक्त, घर विषै आसक्त नाहीं। मनविषै विचारता भया – आगे काष्ठ के भार का वहनहारा दरिद्री हुता, सो श्रीरामदेव ने तृप्त किया। याही ग्रामविषै मैं सोषित शरीर अभूषित हुता सो राम ने कुवेर समान किया। चिंता दुखरहित किया। मेरा घर जीर्ण तृण का, जाके अनेक छिद्रकादि, अशुचि पक्षिनि की बींटकर लिप्त, अब राम के प्रसादकरि अनेक स्वर्ण के महिल भए। बहुत गोधन, बहुत धन, काहू वस्तु की कमी नाहीं। हाय हाय मैं दुर्बुद्धि कहा किया? वे दोऊ भाई, चन्द्रमा समान बदन जिनके, कमलनेत्र मेरे घर आए हुते, ग्रीष्म के आतापकरि तप्तायमान सीता सहित, सो मैंने घरते निकासे। या बात की मेरे हृदयविषै महाशल्य है। जो लग घरविषै बसूं हूं तौ लग खेद मिटे नाहीं। तातैं गृहारम्भ का परित्याग कर जिनदीक्षा आदरूं। जब यह विचारी, तब याकूं वैराग्य रूप जान समस्त कुटुम्ब के लोग अर सुशर्मा ब्राह्मणी रुदन करते भए। तब कपिल सबकूं शोकसागरविषै मग्न देख निर्ममत्वबुद्धिकरि कहता भया।

कैसा है कपिल? शिवसुखविषै है अभिलाषा जाकी हो प्राणी हो! परिवार के स्नेहकरि अर नाना प्रकार के मनोरथनिकरि यह मूढ़ जीव भवातापकर जरै है, तुम कहा नाहीं जानो हो? ऐसा कह महा विरक्त होय, दुखकर मूर्छित जो स्त्री ताहि तज, अर सब कुटुम्बकूं तज, अठारह हजार गाय, अर रत्ननिकर पूर्ण घर, अर घर के बालक स्त्रीकूं सौंप आप सर्वारम्भ तज दिगम्बर भया। स्वामी अनंतमति का शिष्य भया – कैसै हैं अनंतमति? जगतविषै प्रसिद्ध तपोनिधि, गुण शील के सागर। यह कपिल मुनि गुरु की आज्ञा प्रमाण महातप करता भया। सुन्दर चरित्र का भार धर

परमार्थविषै लीन है मन जाका, वैराग्य विभूतिकर अर साधुपद की शोभाकर मंडित है शरीर जाका। सो जो विवेकी यह कपिल की कथा पढ़े सुनै ताहि अनेक उपवासनि का फल होय, सूर्य समान ताकी प्रभा होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचननिकाविषै देवनिकर नगर का बसावन कपिल ब्राह्मण का वैराग्य वर्णन करने वाला पैंतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।35।।

अथानन्तर वर्षाऋतु पूर्ण भई। कैसी है वर्षाऋतु ? श्याम घटाकरि महा अंधकार रूप, जहां मेघ जल असराल बरसै, अर बिजुरिनि के चमत्कार कर भयानक। वर्षाऋतु व्यतीत भई, शरदऋतु प्रकट भई, दशों दिशा उज्ज्वल भई, तब वह यक्षाधिपति श्रीरामसूं कहता भया – कैसे हैं श्रीराम? चलवे का है मन जिनका।

यक्ष कहै है – हे देव! हमारी सेवा में जो चूक होय सो क्षमा करो। तुम सारिखे पुरुषनि की सेवा करवेकूं कौन समर्थ है? तब राम कहते भए – हे यक्षाधिपते! तुम सब बातों के योग्य हो, अर तुम पराधीन होय हमारी सेवा करी सो क्षमा करियो।

तब इनके उत्तम भाव विलोक अति हर्षित भया, नमस्कार कर स्वयंप्रभ नामा हार श्रीराम की भेंट किया, महा अद्भुत। अर लक्ष्मणकूं मणिकुण्डल चांद सूर्य सारिखे भेंट किए। अर सीताकूं सकल्याण नामा चूड़ामणि महा दैदीप्यमान दिया, अर महामनोहर मनवांछित नाद की करनहारी देवोपुनीत वीणा दई। ते अपनी इच्छातैं चाले। तब यक्षराज पुरी संकोच लई, अर इनके जायवे का बहुत शोच किया। अर श्रीरामचन्द्र यक्ष की सेवा कर अति प्रसन्न होय आगै चले। देवों की न्याईं रमते, नाना प्रकार की कथाविषै आसक्त, नाना प्रकार के फलनि के रस के भोक्ता पृथ्वी पर अपनी इच्छासूं चलते भ्रमते, मृगराज तथा गजराजनिकर भर्‍या जो महाभयानक वन ताहि उलंघकर, विजयपुर नामा नगर आये। ता समय सूर्य अस्त भया। अंधकार फैल्या, आकाशविषै नक्षत्रनि के समूह प्रकट भए, नगरतैं उत्तर दिशा की तरफ न अति निकट न अतिदूर कायरलोगनिकूं भयानक जो उद्यान वहां विराजे।

अथानन्तर नगर का राजा पृथ्वीधर, जाके इन्द्राणी नामा राणी, स्त्री के गुणनिकरि मंडित, वाके वनमाला नामा पुत्री महासुन्दर, सो बाल अवस्था ही तैं लक्ष्मण के गुण सुन अति आसक्त भई। बहुरि सुनी दशरथ ने दीक्षा धरी, अर केकई के वचनतैं भरतकूं राज्य दिया, राम लक्ष्मण परदेश निकसे हैं। ऐसा विचार याके पिता ने कन्या को इन्द्र नगर का राजा ताका पुत्र जो बालमित्र महासुन्दर ताहि देनी विचारी। सो यह वृत्तांत वनमाला सुना। हृदयविषै विराजै है लक्ष्मण जाके।

तब मनविषै विचारी कंठफांसी लेय मरण भला परन्तु अन्य पुरुष का संबंध शुभ नाहीं। यह विचार सूर्यसूं संभाषण करती भई।

हे भानो! अस्त होय जावो, शीघ्र ही रात्रिकूं पठावहु, अब दिन का एकक्षण मोहि वर्ष समान बीतै है। सो मानों याके चिंतवनकर सूर्य अस्त भया। कन्या का उपवास है, संध्या समय माता पिता की आज्ञा लेय श्रेष्ठ रथविषै चढ़ वनयात्रा का बहाना कर रात्रिविषै तहां आई जहां राम लक्ष्मण तिष्ठे हुते। यो यानैं आनकर ताही वनविषै जागरण किया। जब सकल लोक सोय गए तब यह मंद मंद पैर धरती वन की मृगी समान डेरातैं निकस वनविषै चाली। सो यह महासती पद्मनी ताकै शरीर की सुगंधताकरि वन सुगन्धित होय गया। तब लक्ष्मण विचारता भया यह कोई राजकुमारी महाश्रेष्ठ मानों ज्योति की मूर्ति ही है, सो महाशोक के भार कर पीड़ित है मन जाका, यह अपघात कर मरण वांछै है, सो मैं याकी चेष्टा छिपकर देखूं।

ऐसा विचारकर छिपकर वट के वृक्ष तले बैठ्या, मानों कौतुकयुक्त देव कल्पवृक्ष के नीचे बैठे। ताही वट के तले हंसनी की सी है चाल जाकी, अर चन्द्रमा समान है बदन जाका, कोमल है अंग जाका, ऐसी वनमाला आई। जलसूं आला वस्त्रकर फांसी बनाई, अर मनोहर वाणी कर कहती भई – अहो या वृक्ष के निवासी देवता! कृपाकर मेरी बात सुनहु। कदाचित् वनविषै विचरता लक्ष्मण आवै तो तुम ताहि ऐसे कहियो – जो तिहारे विरहकरि महादु:खित वनमाला तुमविषै चित्त लगाय, वट के वृक्षविषै वस्त्र की फांसी लगाय, मरणकूं प्राप्त भई, हम या देखो। अर तुमकूं यह संदेशा कह्या है जो या भवविषै तिहारा संयोग मोहि न मिल्या, अब परभवविषै तुम ही पति हूजियो। यह वचन कह वृक्ष की शाखासूं फांसी लगाय आप फांसी लेने लगी।

ताही समय लक्ष्मण कहता भया – हे मुग्धे! मेरी भुजाकर आलिंगन योग्य तेरा कंठ ताविषै फांसी काहेकूं डारै है? हे सुन्दरवदनी! परमसुन्दरी! मैं लक्ष्मण हूं। जैसा तेरे श्रवणविषै आया है तैसा देख। अर प्रतीत न आवै तो निश्चयकर लेहु। ऐसा कह ताके कर से फांसी हर लीनी, जैसैं कमलथकी झागों के समूहकूं दूर करै। तब वह लज्जाकरयुक्त प्रेम की दृष्टि कर लक्ष्मणकूं देख मोहित भई। कैसा है लक्ष्मण? जगत के नेत्रनि का हरणहारा है रूप जाका। परम आश्चर्यकूं प्राप्त भई चित्तविषै चिंतवै है यह कोई मोपर देवनि उपकार किया, मेरी अवस्था देख दयाकूं प्राप्त भए। जैसा मैं सुन्या हुता तैसा देवयोगतैं यह नाथ पाया, जाने मेरे प्राण बचाए। ऐसा चिंतवन करती वनमाला लक्ष्मण के मिलापतैं अत्यन्त अनुरागकूं प्राप्त भई।

अथानन्तर महासुगन्ध कोमल सांथरे पर श्रीरामचन्द्र पौढ़े हुते। सो जागकर लक्ष्मणकूं न देख जानकीकूं पूछते भए – हे देवी! यहां लक्ष्मण नाहीं दीखै है। रात्रि के समय मेरे सोवने कूं पुष्प

पल्लवनि का कोमल सांथरा बिछाय आप यहां ही तिष्ठता हुता सो अब नाहीं दीखै है। तब जानकी कही – हे नाथ! ऊंचा स्वर कर बुलाय लेहु। तब आप शब्द किया – हे भाई! हे लक्ष्मण! हे बालक! कहां गया? शीघ्र आवहु।

तब भाई बोला – हे देव! आया वनमाला सहित बड़े भाई के निकट आया। आधी रात्रि का समय चन्द्रमा का उदय भया, कुमुद फूले, शीतल मंद सुगन्ध पवन बाजने लागी। ता समय वनमाला कोपल समान कोमल कर जोड़ वस्त्रकर बेढ्या है सर्व अंग जानै, लज्जाकर नम्रीभूत है मुख जाका, जाना है समस्त कर्तव्य जानै, महाविनयकूं धरती श्रीराम अर सीता के चरणारविंदकूं बन्दती भई। सीता लक्ष्मणकूं कहती भई – हे कुमार! तैने चन्द्रमा की तुल्यता करी। तब लक्ष्मण लज्जाकर नीचा होय गया। श्रीराम जानकीतैं कहते भए, तुम कैसे जानी? तब कही – हे देव! जा समग्र चन्द्रमा का उद्योत भया ताही समय कन्या सहित लक्ष्मण आया। तब श्रीराम सीता के वचन सुन प्रसन्न भए।

अथानन्तर वनमाला महाशुभ शील इनकूं देख, आश्चर्य की भरी, प्रसन्न है मुख चन्द्रमा जाका, फूल रहे हैं नेत्रकमल जाके, सीता के समीप बैठी अर ये दोऊ भाई देवनि समान महासुन्दर निद्रारहित सुखतैं कथा वार्ता करते तिष्ठे हैं। अर वनमाला की सखी जागकर देखै तो सेज सूनी, कन्या नाहीं। तब भयकर खेदित भई अर महाव्याकुल होय रुदन करती भई। ताके शब्दकर योधा जागे, आयुध लगाय तुरंग चढ़ दशों दिशा को दौड़े अर पयादे दौड़े। बरछी अर धनुष है हाथ में जिनके, दशोंदिशा ढूंढ़ी। राजा का भय अर प्रीतिकर संयुक्त है मन जाका, ऐसे दौड़े मानों पवन के बालक हैं। तब कई एक या तरफ दौड़े आए।

वनमालाकूं वनविषै रामलक्ष्मण के समीप बैठी देख बहुत हर्षित होय जायकर राजा पृथ्वी धरकूं बधाई दई अर कहते भए – हे देव! जिनके पावने का बहुत यत्न करिये तो भी न मिलें वे सहज ही आए हैं। हे प्रभो! तेरे नगर में महानिधि आई, बिना बादल आकाशतैं वृष्टि भई, क्षेत्रविषै बिना वाहे धान ऊगा। तिहारा जमाई लक्ष्मण नगर के निकट तिष्ठे है, जानै वनमाला प्राण त्याग करती बचाई, अर राम तिहारे परमहितु सीतासहित विराजे हैं, जैसे शचीसहित इन्द्र विराजै। ये वचन राजा सेवकनि के सुनकर महाहर्षित होय क्षण एक मूर्छित होय गया। बहुरि परम आनन्दकूं प्राप्त होय सेवकनिकूं बहुत धन दिया अर मनविषै विचारता भया – मेरी पुत्री का मनोरथ सिद्ध भया। जीवनि के धन की प्राप्ति, अर इष्ट का समागम और हू सुख के कारण पुण्य के योगकरि होय हैं। जो वस्तु सैकड़ों योजन दूर अर श्रवण में न आवै सो हू पुण्याधिकारी के क्षणमात्रविषै प्राप्त होय है। अर जे प्राणी दुख के भोक्ता पुण्यहीन हैं तिनके हाथ से इष्टवस्तु विलाय जाय है।

पर्वत के मस्तक पर तथा वनविषै सागरविषै पथविषै पुण्याधिकारिन के इष्ट वस्तु का समागम होय है। ऐसा मनविषै चिंतवनकर स्त्रीसूं सब वृत्तांत कह्या। स्त्री बारम्बार पूछै है, यह जानै मानों स्वप्न ही है।

बहुरि राम के अधर समान आरक्त सूर्य का उदय भया। तब राजा प्रेम का भर्‍या सर्व परिवार सहित हाथी पर चढ़कर परम कांतियुक्त रामसूं मिलने चाल्या, अर वनमाला की माता आठ पुत्रनि सहित पालकी पर चढ़कर चाली। सो राजा दूर ही तैं श्रीराम का स्थानक देखकर फूल गए हैं नेत्रकमल जाके, हाथीतैं उतर समीप आया। श्रीराम अर लक्ष्मणसूं मिल्या। अर वाकी रानी सीता के पांयन लागी अर कुशल पूछती भई, वीणा, बांसुरी, मृदंगादिक शब्द होते भए, बंदीजन विरद बखानते भए, बड़ा उत्सव भया। राजा ने लोकनिकूं बहुत दान दिया। नृत्य होता भया, दशोंदिशा नादकर शब्दायमान होती भईं। श्रीराम लक्ष्मणकूं स्नान भोजन कराया।

बहुरि घोड़े, हाथी, रथ तिन पर चढ़े अनेक सामंत अर हिरण समान कूदते प्यादे तिन सहित राम लक्ष्मण ने हाथी पर चढ़े संते पुरविषै प्रवेश किया। राजा ने नगर उछाया। महाचतुर मागध विरद बखानै हैं, मंगल शब्द करै हैं।

राम लक्ष्मण ने अमोलिक वस्त्र पहरे, हारकर विराजै है वक्षस्थल जिनका, मलयागिरि के चंदनतैं लिप्त है अंग जिनका, नाना प्रकार के रत्ननि की किरणनिकरि इन्द्रधनुष होय रह्या है। दोऊ भाई चांद सूर्य सारिखे, नाहीं वरणै जावैं हैं गुण जिनके, सौधर्म ईशान सारिखे जानकी सहित लोकनिकूं आश्चर्य उपजाते राजमन्दिर पधारे। श्रेष्ठ माला धरे, सुगन्धकर गुंजार करै हैं भ्रमर जापर, महा विनयवान चंद्रवदन इनकूं देख लोक मोहित भए। कुबेर कासा किया जो वह सुन्दर नगर वहां अपनी इच्छाकरि परमभोग भोगते भए। या भांति सुकृत मैं है चित्त जिनका, महा गहन वनविषै प्राप्त भए हूं परम विलासकूं अनुभवैं हैं। सूर्य समान है कांति जिनकी, वे पापरूप तिमिर कूं हरै है, निज पदार्थ के लोभतैं आनन्दरूप है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै वनमाला का लाभ वर्णन करने वाला छत्तीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।36।।

अथानन्तर एक दिन श्रीराम सुख से विराजे हुते अर पृथ्वीधर भी समीप बैठा हुता, ता समय एक पुरुष दूर का चाल्या महा खेदखिन्न आयकर नम्रीभूत होय पत्र देता भया। सो राजा पृथ्वीधर ने पत्र लेयकर लेखककूं सौंप्या। लेखक ने खोलकर राजा के निकट बांच्या। तामैं या भांति लिख्या हुता कि इन्द्र समान है उत्कृष्ट प्रभाव जाका, महालक्ष्मीवान, नमै हैं अनेक राजा जाकूं, श्रीनन्द्यावर्त नगर का स्वामी, महाप्रबल पराक्रम का धारी, सुमेरु पर्वत सा अचल, प्रसिद्ध शस्त्र शास्त्रविद्याविषै प्रवीण, सब राजानि का राजा महाराजाधिराज, प्रतापकर वश किए हैं शत्रु अर

मोहित करी है सकल पृथ्वी जानै, उगते सूर्य समान महा बलवान, समस्त कर्तव्यविषै कुशल, महानीतिवान, गुणनिकर विराजमान, श्रीमान, पृथ्वी का नाथ महाराजेन्द्र अतिवीर्य, सो विजयनगरविषै पृथ्वीधरकूं क्षेमपूर्वक आज्ञा करै है – कि जे कई पृथ्वी पर सामंत हैं, वे भण्डार सहित, अर सर्व सेना सहित मेरे निकट प्रवरतैं हैं।

आर्य खंड के अर म्लेच्छ खंड के चतुरंग सेना सहित नाना प्रकार के शस्त्रनि के धरणहारे मेरी आज्ञाकूं शिर पर धारे हैं। अंजनिगिरि सारिखे आठसो हाथी, अर पवन के पुत्रसम तीन हजार तुरंग, अनेक पयादे, तिन सहित महापराक्रम का धारी, महातेजस्वी, मेरे गुणनि से खींचा है मन जाका, ऐसा राजा विजयशार्दूल आया है। अर अंग देश के राजा मृगध्वज, रणोर्मि कलभ केशरी यह प्रत्येक पांच पांच हजार तुरंग अर छह सौ छह सौ हाथी अर रथ पयादे तिन सहित आए हैं, महा उत्साह के धारी, महा न्यायविषै प्रवीण है बुद्धि जिनकी। अर पांचालदेश का राजा पौढ़ परम प्रतापकूं धरता, न्यायशास्त्रविषै प्रवीण, अनेक प्रचंड वलकूं उत्साहरूप करता हजार हाथी अर सात हजार तुरंगनितैं अर रथ पयादनिकरि युक्त हमारे आया है। अर मगध देश का राजा सुकेश बड़ी सेनासूं आया है। अनेक राजानि सहित जैसैं सैकड़नि नदीनि के प्रवाहकूं लिए रेवा का प्रवाह समुद्रविषै आवै, तैसैं ताके संग कालीघटा समान आठ हजार हाथी, अनेक रथ अर तुरंगनि के समूह हैं, अर वज्र का आयुध धारै है।

अर म्लेच्छनि के अधिपति समुद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र, नन्दन इत्यादि राजा मेरे समीप आए हैं। वज्रधर समान, अर नाहीं निवारया जाय पराक्रम जाका, ऐसा राजा सिंहवीर्य आया है। अर राजा वंग अर सिंहरथ ये दोऊ हमारे मामा महा बलवान बड़ी सेनासूं आए हैं। अर वत्सदेश का स्वामी मारुदत्त अनेक पयादे, अनेक रथ, अनेक हाथी, अनेक घोड़ानिकर युक्त आया है। अर राजा प्रौष्ठल सौवीर सुमेरु सारिखे अचल प्रबल सेनातैं आए हैं। ये राजा महापराक्रमी पृथ्वी पर प्रसिद्ध देवनि सारिखे दस अक्षोहिणी दल सहित आए हैं। तिन राजानि सहित मैं बड़े कटकतैं अयोध्या के राजा भरत पर चढ़ा हूं, सो तेरे आयवे की बाट देखू हूं। तातैं आज्ञापत्र पहुंचते प्रमाण पयानकर शीघ्र आइयो, किसी कार्यकर विलम्ब न करियो। जैसैं किसान वर्षाकूं चाहैं तैसैं मैं तेरे आगमन कूं चाहूं हूं। या भांति पत्र के समाचार लेखक ने बांचे तब पृथ्वीधर ने कछू कहने का उद्यम किया।

तासूं पहले लक्ष्मण बोले – अरे दूत! भरत के अर अतिवीर्य के विरोध कौन कारणतैं भया? तब वह वायुगत नाम दूत कहता भया – मैं सब बातों का मरमी हूं। सब चरित्र जानूं हूं। तब लक्ष्मण बोले – हमारे सुनवे की इच्छा है। तानै कही आपको सुनने की इच्छा है तो सुनो। एक श्रुति के नामा दूत हमारे राजा अतिवीर्य ने भरत पर भेज्या सो जायकर कहता भया। इन्द्रतुल्य

राजा अतिवीर्य का मैं दूत हूं, प्रणाम करै हैं समस्त नरेन्द्र जाकूं, न्याय के थापनेविषै महा बुद्धिमान, सो पुरुषनिविषै सिंह समान, जाके भयतैं अरिरूप मृग निद्रा नाहीं करै हैं। ताके यह पृथ्वी वनिता समान है। कैसी है पृथ्वी? चार तरफ के समुद्र, सोई है कटिमेखला जाके, जैसैं परणी स्त्री आज्ञाविषै होय तैसैं समस्त पृथ्वी आज्ञा के वश है। सो पृथ्वीपति महाप्रबल मेरे मुख होय तुमकूं आज्ञा करै है कि – हे भरत! शीघ्र आयकर मेरी सेवा करहु, अथवा अयोध्या तज समुद्र के पार जावो।

ये वचन सुन शत्रुघ्न महा क्रोधरूप दावानल समान प्रज्वलित होय कहता भया। अरे दूत! तोहि ऐसे वचन कहने उचित नाहीं। वह भरत को सेवा करै अब भरत ताकी सेवा करै। अर भरत अयोध्या का भार मंत्रिनिकूं सौंप पृथ्वी के वश करने के निमित्त समुद्र के पर जाय, अक और भांति जाय। अर तेरा स्वामी ऐसे गर्व के वचन कहै है सो गर्दभ माते हाथी की न्याईं गाजै है, अथवा ताकी मृत्यु निकट है तातैं ऐसे वचन कहै हैं, अथवा वायु के वश है। राजा दशरथकूं वैराग्य के योगतैं तपोवन को गए जान वह दुष्ट ऐसी बात कहै है। सो यद्यपि तात की क्रोधरूप अग्नि मुक्ति की अभिलाषा कर शांत भई, तथापि पिता की अग्नि से हम स्फुलिंग समान निकसे हैं, सो अतिवीर्य रूप काष्ठकूं भस्म करने समर्थ हैं। हाथीनि के रुधिर रूप कीच कर लाल भए हैं केश जाके ऐसा जो सिंह सो शांत भया तो ताका बालक हाथिनि के निपात करने समर्थ है। ये वचन कह शत्रुघ्न बलता जो बांसों का वन ता समान तड़तड़ात कर महाक्रोधायमान भया। अर सेवकनिकूं आज्ञा करी जो या दूत का अपमान कर काढ़ देवहु।

तब आज्ञा प्रमाण सेवकनि ने अपराधीकूं स्वान की न्याईं तिरस्कार कर काढ़ दिया। सो पुकारता नगरी के बाहिर गया। धूलिकरि धूसरा है अंग जाका दुरवचनकरि दग्ध, अपने धनी पै जाय पुकारया, अर राजा भरत समुद्र समान गम्भीर परमार्थ का जाननहारा अपूर्व दुर्वचन सुन कछूएक कोपकूं प्राप्त भया। भरत शत्रुघन दोऊ भाई नगरतैं सेनासहित शत्रु पर निकसे। अर मिथिला नगरी का धनी राजा जनक अपने भाई कनक सहित बड़ी सेनासूं आय भेला भया। अर सिंहोदरकूं आदि ने अनेक राजा भरतसूं आय मिले। भरत बड़ी सेना सहित नन्द्यावर्त पुर के धनी अतिवीर्य पर चढ्या। पिता समान प्रजा की रक्षा करता संता, कैसा है भरत? न्यायविषै प्रवीण है। अर राजा अतिवीर्य भी दूत के वचन सुन परम क्रोधकूं प्राप्त भया। क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र ता समान भयानक सर्व सामंतनिकरि मंडित भरत के ऊपर जाइवेकूं उद्यमी भया है।

यह समाचार सुन श्रीरामचन्द्र अपना ललाट दूज के चन्द्रमा समान वक्रकर पृथ्वीधरसूं कहते भए। जो अतिवीर्यकूं भरत से ऐसा करना उचित ही है क्योंकि जाने पिता समान बड़े भाई का अनादर किया। तदि राजा पृथ्वीधर ने रामसूं कही, वह दुष्ट है हम प्रबल जान सेवा करै हैं। तब

मंत्र कर अतिवीर्यकूं जवाब लिख्या कि मैं कागद के पीछे ही आऊं हूं अर दूतकूं विदा किया। बहुरि श्रीरामसूं कहता भया अतिवीर्य महाप्रचण्ड है तातैं मैं जाऊं हूं। तब श्रीराम ने कही तुम तो यहां ही रहो अर मैं तिहारे पुत्रकूं अर तिहारे जंवाई लक्ष्मणकूं ले अतिवीर्य के समीप जावूंगा। ऐसा कहकर रथ पर चढ़ बड़ी सेना सहित पृथ्वीधर के पुत्रकूं लार लेय सीता अर लक्ष्मण सहित नन्द्यावर्त नगरीकूं चाले। सो शीघ्र गमनकर नगर के निकट जाय पहुंचे। वहां पृथ्वीधर के पुत्र सहित स्नान भोजन कर राम लक्ष्मण सीता ये तीनों मंत्र करते भए।

जानकी श्रीरामसूं कहती भई – हे नाथ! यद्यपि मेरे कहिवे का अधिकार नाहीं, जैसैं सूर्य के प्रकाश होते नक्षत्र का उद्योत नाहीं, तथापि हे देव! हित की वांछाकर मैं कछूएक कहूं हूं। जैसैं बांसनितैं मोती लेना तैसैं हम सारिखनितैं हित की बात लेनी, काहू एक बांस के बीड़विषै मोती निपजै है – हे नाथ! यह अतिवीर्य महासेना का स्वामी, क्रूरकर्मी भरत कर कैसैं जीत्या जाय। तातैं याके जीतवे का उपाय करहु। तुमसे अर लक्ष्मणतैं कोई कार्य असाध्य नाहीं, तब लक्ष्मण बोले – हे देवी! यह कहा कहो हो? आज अथवा प्रभात या अतिवीर्यकूं मेरे कर हता ही जानहु। श्रीराम के चरणारविंद की जो रजकर पवित्र है सिर मेरा मेरे आगे देव भी टिक नाहीं सकै, मनुष्य क्षुद्र अतिवीर्य की तो कहा बात? जब तक सूर्य अस्त न होय तातैं पहिले ही या क्षुद्रवीर्यकूं मूवा ही देखियो।

यह लक्ष्मण के वचन सुन पृथ्वीधर का पुत्र गर्जना कर ऐसे कहता भया। तदि श्रीराम भौंह फेर ताहि मनैकर लक्ष्मण से कहते भए। महा धीरवीर है मन जाका – हे भाई! जानकी कही सो युक्त है। यह अतिवीर्य बलकर उद्धत है, रणविषै भरत के वश करने का पात्र नाहीं। भरत याके दसवैं भाग भी नाहीं। यह दावानल समान, याका वह मतंग गज कहा करै? यह हाथिनिकर पूर्ण, रथ पयादनिकर पूर्ण यासूं जीतवे समर्थ भरत नाहीं। जैसैं केशरीसिंह महाप्रबल है परन्तु विंध्याचल पर्वत के ढाहिवे समर्थ नाहीं, तैसैं भरत याकूं जीतै नाहीं, सेना का प्रलय होवेगा। जहां नि:कारण संग्राम होय वहां दोनों पक्षनि के मनुष्यनि का क्षय होय। अर यदि इस दुरात्मा अतिवीर्य ने भरतकूं वश किया, तब रघुवंशिन के कष्ट का क्या कहना?

अर इनविषै संधि भी सूझै नाहीं। शत्रुघ्न अति मानी बालक सो उद्धत वैरीसूं दोष किया, यह न्यायविषै उचित नाहीं। अंधेरी रात्रिविषै रौद्रभूत सहित शत्रुघ्न ने दूर के दौरा जाय अतिवीर्य कटकविषै धाड़ा दिया। अनेक योधा मारे, बहुत हाथी घोड़े काम आए। अर पवन सारिखे तेजस्वी हजारों तुरंग अर सातसै अंजनगिरि समान हाथी ले गया। सो तूने कहा लोगनि के मुखतैं न सुनी? यह समाचार अतिवीर्य सुन महाक्रोधकूं प्राप्त भया। अर अब महा सावधान है, रण का अभिलाषी है। अर भरत महामानी है सो यासूं युद्ध छोड़ संधि न करै। तातैं तू अतिवीर्यकूं वशकर, तेरी शक्ति

सूर्यकूं तिरस्कार कहवे समर्थ है। अर यहांतैं भरतहू निकट है सो हमकूं आपा न प्रकाशना। जे मित्रकूं न जनावैं अर उपकार करैं ते पुरुष अद्‌भुत प्रशंसा करने योग्य है, जैसैं रात्रि का मेघ। या भांति मंत्रकरि रामकूं अतिवीर्यकूं पकड़वे की बुद्धि उपजी।

रात्रि तो प्रमाद रहित होय समीचीन लोगनितैं कथाकर पूर्ण करी, सुखसों निशा व्यतीत भई। प्रात: समय दोऊ वीर उठकर प्रात-क्रिया कर एक जिनमंदिर देख्या सो ताविषै प्रवेश कर जिनेन्द्र का दर्शन किया। तहां आर्यिकानि का समूह विराजता हुता तिनकी वंदना करी। अर आर्यिकानि की जो गुरानी वरधर्मा महाशास्त्र की वेत्ता सीताकूं याके समीप राखी, आप भगवान की पूजा कर लक्ष्मण सहित नृत्यकरिणी स्त्री का भेष कर लीला सहित राजमन्दिर की तरफ चाले। इन्द्र की अप्सरा तुल्य नृत्यकारिणीकूं देख नगर के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए, लार लागे। ये महा आभूषण पहिरे सर्व लोक के मन अर नेत्र हरते राजद्वार गए। चौबीसों तीर्थंकरनि के गुण गाए, पुराणों के रहस्य बताए। प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके, इनकी ध्वनि राजा सुन इनके गुणनि का खैंचा समीप आया। जैसैं रस्सी का खैंचा जल के विषै काष्ठा का भार आवै। नृत्यकरिणी ने नृप के समीप नृत्य किया। रेचक कहिए भ्रमण, अंग मोडना, मुलकना, अवलोकना, भौंहनि का फेरना, मंद मंद हंसना, जंघा बहुरि कर पल्लव तिनका हलावना, पृथ्वीकूं स्पर्शि शीघ्र ही पगनि का उठावना, राग का दृढ़ करना, केशरूप फांस का प्रवर्तना, इत्यादि चेष्टारूप कामबाणनिकर सकल लोकनिकूं बींधै। स्वरनि के ग्राम यथास्थान जोड़वेकरि अर वीणा के बजायवेकर सबनिकूं मोहित किए। जहां नृत्यकी खड़ी रहै वहां सकल सभा के नेत्र चले जांय, रूप कर सबनि के नेत्र, स्वर कर सबनि के श्रवण, गुणकर सबनि के मन बांध लिए।

गौतम स्वामी कहै हैं - हे श्रेणिक! जहां श्रीराम लक्ष्मण नृत्य करैं, अर गावैं बजावैं तहां देवनि के मन हरे जांय तो मनुष्यनि की कहा बात?

श्रीऋषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरनि के यश गाय सकल सभा वश करी, राजाकूं संगीतकरि मोहित देख शृंगार रस से वीर रस में आए। आंख फेर भौहें फेर महाप्रबल तेजरूप होय अतिवीर्यकूं कहते भए - हे अतिवीर्य! तैं यह कहा दुष्टता आरंभी? तोहि यह मंत्र कौन ने दिया, तैं अपने नाश के निमित्त भरतसों विरोध उपजाया। जिया चाहै तो महाविनयकर तिनकूं प्रसन्नकर, दास होय तिनके निकट जावहु। तेरी राणी बड़े वंश की उपजी, कामक्रीड़ा की भूमि विधवा न होय, तोहि मृत्युकूं प्राप्त भए सब आभूषण डार शोभारहित होयगी। जैसैं चन्द्रमा बिना रात्रि शोभारहित होय। तेरा चित्त अशुभविषै आया है सो चित्तकूं फेर भरतकूं नमस्कार कर। हे नीच! या भांति न करेगा तो अबार ही मारा जायेगा।

राजा अरण्य के पोता अर दशरथ के पुत्र तिनके जीवते तू कैसैं अयोध्या का राज्य चाहै है। जैसै सूर्य के प्रकाश होते चन्द्रमा का प्रकाश कैसे होय? जैसैं पतंग द्वीपविषै पड़ मूवा चाहै है तैसै तू मरण चाहै है। राजा भरत गरुड़ समान महाबली तिनके तू सर्पसमान निर्बल बराबरी करै है। यह वचन भरत की प्रशंसा के अर अपनी निंदा के नृत्यकारणी के मुखतैं सुन सकल सभा सहित अतिवीर्य क्रोधकूं प्राप्त भया, लाल नेत्र किए। जैसैं समुद्र की लहर उठै है तैसैं सामंत उठे अर राजा ने खड्ग हाथ में लिया। ता समय नृत्यकारणी ने उछल हाथसों खड्ग खोंस लिया अर सिर के केश पकड़ बांध लिया। अर नृत्यकारिणी अतिवीर्य के पक्षी राजा तिनसों कहती भई – जीवने की बांछा राखो तो अतिवीर्य का पक्ष छोड़ भरत पै जाहु, भरत की सेवा करहु।

तब लोकनि कै मुखतैं ऐसी ध्वनि निकसी – महा शोभायमान गुणवान भरत भूप जयवंत होऊ। सूर्य समान है तेज जाका, न्यायरूप किरणनि के मंडलकर शोभित, दशरथ के वंशरूप आकाशविषै चन्द्रमा समान, लोककूं आनन्दकारी, जाका उदय थकी लक्ष्मीरूपी कुमुदनी विकासकूं प्राप्त होय। शत्रुनि के आतापतैं रहित परम आश्चर्यकूं धरती संती, अहो यह बड़ा आश्चर्य जाकी नृत्य कारणी की यह चेष्टा जो ऐसे नृपतिकूं पकड़ लेय, तो भरत की शक्ति का कहा कहना? इन्द्रहुकूं जीतैं। हम या अतिवीर्यसों आय मिले, सो भरत महाराज कोप भए होयेंगे, न जानिये कहा करैंगे। अथवा वे दयावंत पुरुष हैं जाय मिलें, पायन परें, कृपा ही करेंगे। ऐसा विचारि अतिवीर्य के मित्र राजा कहते भए। अर श्रीराम अतिवीर्यकूं पकड़ हाथी पर चढ़ि जिनमंदिर गए। हाथीसूं उतर जिनमंदिरविषै जाय भगवान की पूजा करी, अर बरधर्मा आर्यिका की वंदना करी, बहुत स्तुति करी।

राम ने अतिवीर्य लक्ष्मणकूं सौंप्या, लक्ष्मण ने केश गह दृढ़ बांध्या। तब सीता कही याहि ढीला करहु, पीड़ा मत देवहु, शांतता भजहु। कर्म के उदयकरि मनुष्य मतिहीन होय जाय है। आपदा मनुष्यनि में ही होय, बड़े पुरुषनिकूं सर्वथा पर की रक्षा ही करना, सत्पुरुषनिकूं सामान्य पुरुष का हूं अनादर न करना, यह तो सहस्रराजनि का शिरोमणि है। तातैं याहि छोड़ देवहु। तुम यह वश किया, अब कृपा ही करना योग्य है। राजानि का यही धर्म है जो प्रबल शत्रुनिकूं पकड़ छोड़ दें। यह अनादि काल की मर्यादा है।

जब या भांति सीता कही तब लक्ष्मण हाथ जोड़ प्रणामकर कहता भया – हे देवी! तिहारी आज्ञा से छोड़वे की कहा बात? ऐसा करूं जो देव याकी सेवा करें। लक्ष्मण का क्रोध शांत भया। तब अतिवीर्य प्रतिबोधकूं पाय श्रीरामसूं कहता भया – हे देव! तुम बहुत भला किया। ऐसी निर्मल बुद्धि मेरी अब तक कबहू न भई हुती सो तिहारे प्रतापतैं भई।

तब श्रीराम ताहि हार मुकुटादिरहित देख विश्राम के वचन कहते भए। कैसे हैं रघुवीर? सौम्य

है आकार जिनका, हे मित्र! दीनता तज, जैसा प्राचीन अवस्था में धैर्य हुता तैसा ही धर, बड़े पुरुषनि के ही सम्पदा अर आपदा दोऊ होय है।

अब तोहि कुछ आपदा नाहीं। नन्द्यावर्तपुर का राज्य भरत का आज्ञाकारी होयकर रहवो कर। तब अतिवीर्य कही मेरे अब राज्य की बांछा नाहीं, मैं राज्य का फल पाया, अब मैं और ही अवस्था धारूंगा। समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का वश करणहारा महामान का धारी जो मैं सो कैसा पराया सेवक हो राज्य करूं? याविषै पुरुषार्थ कहा? अर यह राज्य कहा पदार्थ? जिन पुरुषनि षट्खंड का राज्य किया ते तृप्त न भए तो मैं पांचग्रामों का स्वामी कहा अल्प विभूतिकर तृप्त होऊंगा? जन्मांतरविषै किया जो कर्म ताका प्रभाव देखहु, जो मोहि कांति रहित किया जैसे राहु चन्द्रमाकूं कांतिरहित करै। यह मनुष्यदेह सारभूत, देवनहूतैं अधिक मैं वृथा खोई, नवां जन्म धरनकूं कायर, सो तुमने प्रतिबोध्या, अब मैं ऐसी चेष्टा करूं जाकर मुक्ति प्राप्त होय।

या भांति कहकर श्रीराम लक्ष्मणकूं क्षमा कराय, वह राजा अतिवीर्य, केसरीसिंह जैसा है पराक्रम जाका, श्रुतधरनामा मुनीश्वर के समीप हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया – हे नाथ! मैं दिगम्बरी दीक्षा वांछू हूं। तब आचार्य कही यही बात योग्य है। या दीक्षाकर अनन्त सिद्ध भए, अर होवेंगे। तब अतिवीर्य वस्त्र तज केशनिकूं लुंचकर महाव्रत का धारी भया। आत्मा के अर्थविषै मग्न, रागादि परिग्रह का त्यागी, विधिपूर्वक तप करता पृथ्वी पर विहार करता भया। जहां मनुष्यनि का संचार नाहीं वहां रहै। सिंहादि क्रूरजीवनिकर युक्त जो महागहन वन अथवा गिरिशिखर गुफादि तिनविषै निर्भय निवास करै। ऐसे अतिवीर्य स्वामीकूं नमस्कार होहु, तजी है समस्त परिग्रह की आशा जाने, अर अंगीकार किया है चारित्र का भार जाने, महाशील के धारक, नाना प्रकार तपकर शरीर का शोषणहारा, प्रशंसा योग्य महामुनि सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप सुन्दर हैं आभूषण अर दशोंदिशा ही वस्त्र जिनके, साधुनि के जे मूलगुण उत्तरगुण वे ही सम्पदा, कर्म हरिबेकूं उद्यमी, संजमी, मुक्ति के वर योगीन्द्र तिनकूं नमस्कार होहु। यह अतिवीर्य मुनि का चारित्र जो सुबुद्धि पढ़े सुने सो गुणनि की वृद्धिकूं प्राप्त होय, भानु समान तेजस्वी होय और संसार के कष्टतैं निवृत्त होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै अतिवीर्य का वैराग्य वर्णन करने वाला सैंतीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।37।।

अथानन्तर श्रीरामचन्द्र महा न्याय के वेत्ता ने अतिवीर्य का पुत्र जो विजयरथ ताहि अभिषेक कराय पिता के पदविषै थाप्या। ताने अपना समस्त वित्त दिखाया सो ताका ताकूं दिया अर तानै अपनी बहिन रत्नमाला लक्ष्मणकूं देनी करी सो तिनने प्रमाण करी। ताके रूपकूं देख लक्ष्मण

हर्षित भए मानों साक्षात् लक्ष्मी ही है। बहुरि श्रीराम लक्ष्मण जिनेन्द्र की पूजाकरि पृथ्वीधर के विजयपुर नगर विषै वापिस गए।

अर भरत ने सुनी जो अतिवीर्यकूं नृत्यकारिणी ने पकड्या सो विरक्त होय दीक्षा धरी तब शत्रुघ्न हास्य करने लाग्या। तब ताहि मनेकर भरत कहते भए – अहो भाई! राजा अतिवीर्य महाधन्य है जे महादुखरूप विषयनिकूं तज शांतिभावकूं प्राप्त भए। वे महास्तुति योग्य हैं तिनकी हांसी कहां? तप का प्रभाव देखहु जो रिपु हू प्रणाम योग्य गुरु होय हैं। यह तप देवनिकूं दुर्लभ है। या भांति भरत अतिवीर्य की स्तुति करै है। ताही समय अतिवीर्य का पुत्र विजयरथ आया, अनेक सामंतनि सहित सो भरतकूं नमस्कार कर तिष्ठ्या। क्षणिक और कथाकर जो रत्नमाला लक्ष्मण कूं दई ताकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नाना प्रकार आभूषण की धरणहारी भरतकूं परणाई अर बहुत द्रव्य दिया। सो भरत ताकी बहिन परणकरि प्रसन्न भए। विजयरथ सूं बहुत स्नेह किया। यही बड़ेनि की रीति है।

अर भरत महाहर्षथकी पूर्ण है मन जाका तेज तुरंग पर चढ्या अतिवीर मुनि के दर्शनकूं चाल्या। सो जा गिरि पर मुनि विराजे हुते तहां पहिले मनुष्य देख गए हुते, सो लार हैं। तिनकूं पूछते जाय हैं – कहां महामुनि हैं, कहां महामुनि हैं? वे कहै हैं आगे विराजे हैं। सो जा गिरि पर मुनि हुते वहां जाय पहुंचे, कैसा है गिरि? विषम पाषाणनि के समूहकरि महा अगम्य, अर नाना प्रकार के वृक्षनिकरि पूर्ण, पुष्पनि की सुगन्ध कर महासुगन्धित, अर सिंहादिक क्रूर जीवनिकरि भर्‍या। सो राजा भरत अश्वतैं उतर महा विनयवान मुनि के निकट गए। कैसे हैं मुनि? रागद्वेषरहित हैं, शांत भई हैं इन्द्रियां जिनकी, शिला पर विराजमान, निर्भय, अकेले जिनकलपी, अतिवीर्य मुनीन्द्र महा तपस्वी ध्यानी, मुनिपद की शोभाकर संयुक्त तिनकूं देख भरत आश्चर्य कूं प्राप्त भया। फूल गए हैं नेत्र कमल जाके, रोमांच होय आए।

हाथ जोड़ नमस्कार कर साधु के चरणाविंद की पूजा कर महा नम्रीभूत होय मुनिभक्तिविषै है प्रेम जाका, सो स्तुति करता भया – हे नाथ! परमतत्त्व के वेत्ता तुम ही या जगतविषै शूरवीर हो, जिनने यह जैनेन्द्री दीक्षा महा दुर्द्धर धारी। जे महंत पुरुष विशुद्ध कुलविषै उत्पन्न भए हैं तिनकी यही चेष्टा है। या मनुष्य लोककूं पाय जो फल बड़े पुरुष वांछै हैं सो आपने पाया। अर हम या जगत की मायाकरि अत्यन्त दुखी हैं। हे प्रभो! हमारा अपराध क्षमा करहु, तुम कृतार्थ हो पूज्यपदकूं प्राप्त भए, तुमको बारम्बार नमस्कार होहु। ऐसा कहकर तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ नमस्कार कर मुनिसम्बन्धी कथा करता गिरतैं उतर तुरंग पर चढ़ हजारों सुभटनिकर संयुक्त अयोध्या आया।

समस्त राजानि के निकट सभाविषै कहा कि वे नृत्यकारिणी, समस्त लोकनि के मनकूं मोहित करती, अपने जीवितविषै हूं निर्लोभ प्रबल नृपनकूं जीतनहारी कहां गई? देखो आश्चर्य की बात। अतिवीर्य के निकट मेरी स्तुति करें, अर ताहि पकड़े। स्त्री वर्गविषै ऐसी शक्ति कहां होय? जानिए है जिनशासन की देविनि ने यह चेष्टा करी। ऐसा चिंतवन करता संता प्रसन्नचित्त भया। अर शत्रुघ्न नाना प्रकार के धान्यकर मंडित जो धरा ताके देखवेकूं गया। जगतविषै व्याप्त है कीर्ति जाकी, बहुरि अयोध्या आया, परम प्रतापकूं धरै। अर राजा भरत अतिवीर्य की पुत्री विजयसुन्दरी सहित सुख भोगता सुखसूं तिष्ठे, जैसे सुलोचना सहित मेघेश्वर तिष्ठ्या। यह तो कथा यहां ही रही, आगै श्रीराम लक्ष्मण का वर्णन करै हैं।

अथानन्तर राम लक्ष्मण सर्वलोककूं आनन्द के कारण कई एक दिन पृथ्वीधर के पुरविषै रहे। फिर जानकी सहित मंत्र कर आगै चलवेकूं उद्यमी भए। तदि सुन्दर लक्षण की धरणहारी वनमाला लक्ष्मण सूं कहती भई, नेत्र सजल होय आए, हे नाथ! मैं मंदभागिनी, मोहि आप तज जावो हो तो पहिले मरणतैं क्यों बचाई, तब लक्ष्मण बोले – हे प्रिये! तू विषाद मत करै, थोड़े दिन में तेरे लेवेकूं आवै हैं। हे सुन्दरवदनी! जो तेरे लेयवे को शीघ्र ही न आवैं तो हमको वह गति हूजौ जो सम्यकग्दर्शन रहित मिथ्यादृष्टि की होय है। हे वल्लभे! जो शीघ्र ही तेरे निकट न आवैं तो हमको वह पाप होय जो महा मानकर दग्ध साधुनि के निदंकनि के होय है।

हे गजगामिनी! हम पिता के वचन पालिवे निमित्त दक्षिण के समुद्र के तीर निसंदेह जाय हैं। मलयाचल के निकट कोई परम स्थानकर तोहि लैवे आवेंगे। हे शुभमते! तू धीर्य राख। या भांति कहकर अनेक सौगन्धकर अति दिलासा देय आप सुमित्रा के नन्दन लक्ष्मण श्रीराम के संग चलवेकूं उद्यमी भए। लोकनिकूं सूते जान रात्रि कूं सीता सहित गोप्य निकसे। प्रभातविषै इनकूं न देखकर नगर के लोक परमशोकरूप प्राप्त भए। राजाकूं अतिशोक उपज्या, वनमाला लक्ष्मण बिना घर सूना जानती भई, अपना चित्त जिनशासनविषै लगाय धर्मानुरागरूप तिष्ठी। राम लक्ष्मण पृथ्वीविषै विहार करते नरनारिनिकूं मोहतैं, पराक्रमी, पृथ्वीकूं आश्चर्य के कारण, धीरे धीरे लीलातैं विचरै हैं। जगत के मन अर नेत्रनिकूं अनुराग उपजावते रमै हैं। इनकुं देख लोग विचारै हैं जो यह पुरुषोत्तम कौन पवित्र गोत्रविषै उपजे हैं। धन्य है वह मात जाकी कुक्षिविषै ये उपजे, अर धन्य है वे नारी जिनकूं ये परणे। ऐसा रूप देवनिकूं दुर्लभ, ये सुन्दर कहांतैं आए अर कहां जाय हैं, इनके कहा वांछा है?

परस्पर स्त्रीजन ऐसी वार्ता करै हैं। हे सखी! देखो दोऊ कमल नेत्र, चन्द्रमा सारिखे अद्भुत बदन जिनके अर एक नारी नागकुमारी समान अद्भुत देखी। न जानिये वे सुर हुते वा नर हुते। हे

मुग्धे! महापुण्य बिना उनका दर्शन नाहीं। अब तो वे दूर गए, पाछे फिरो, वे नेत्र अर मन के चोर जगत का मन हरते फिरै हैं। इत्यादि नर नारिनि के आलाप सुनते सब कूं मोहित करते वे स्वेच्छाविहारी, शुद्ध है चित्त जिनके, नाना देशनिविषै विहार करते क्षेमांजलि नामा नगरविषै आए। ताके निकट कारी घटा समान सघन वनविषै सुखसूं तिष्ठै, जैसैं सौमनसवन में देव तिष्ठे। तहां लक्ष्मण महासुन्दर अन्न अर अनेक व्यंजन तैयार किए, दाखनि का रस, सो श्रीराम सीतासूं लक्ष्मण सहित भोजन किया।

अथानन्तर लक्ष्मण श्रीराम की आज्ञा लेय क्षेमांजलि नाम पुर के देखवेकूं चाले। महासुन्दर माला पहिरे, अर पीताम्बर धारे, सुन्दर है रूप जिनका, नाना प्रकार की बेल वृक्ष तिनकरि युक्त बन, अर निर्मल जल की भरी नदी, अर नाना प्रकार के क्रीड़ागिरि अनेक धातु के भरे, अर ऊंचे ऊंचे जिनमन्दिर, अर मनोहर जल के निर्वाण अर नाना प्रकार के लोक तिनकूं देख नगरविषै प्रवेश किया। कैसा है नगर? नाना प्रकार के व्यापार कर पूर्ण। सो नगर के लोक इनका अद्भुत रूप देख परस्पर वार्ता करते भए, तिनके शब्द इनने सुने – जो या नगर के जितपद्मानामा पुत्री है ताहि वह परणे जो राजा के हाथ की शक्ति की चोट खाय जीवता बचे। सो कन्या की कहा बात, स्वर्ग का राज्य देय तो भी यह बात कोई न करै। शक्ति की चोटतैं प्राण ही जाय तब कन्या कौन अर्थ? जगतविषै जीतव्य सर्व वस्तुतैं प्रिय है, तातैं कन्या के अर्थ प्राण कौन देय?

यह वचन सुनकर महाकौतुकी लक्ष्मण काहूंकूं पूछते भए – हे भद्र! यह जितपद्मा कौन है?

तब वह कहता भया – यह कालकन्या पंडित माननीय सर्व लोक प्रसिद्ध तुम कहा न सुनी? या नगर का राजा शत्रुदमन, जाके राणी कनकप्रभा, ताके जितपद्मा पुत्री रूपवंती गुणवंती, जाके वदन की कांतिकरि कमल जीत्या है, अर गात्र की शोभाकर कमलनी जीती, सो तातैं जितपद्मा कहावै है। नवयौवन मंडित, सर्व कलापूर्ण, अद्भुत आभूषण की धरणहारी ताहि पुरुष का नाम रुचै नाहीं। देवनि का दर्शन हूं अप्रिय, मनुष्यनि की तो कहा बात? जाके निकट कोई पुल्लिंग शब्द का उच्चारण हू न कर सकै, यह कैलाश के शिखर समान जो उज्ज्वल मंदिर ताविषै कन्या तिष्ठै है। सैकड़नि सहेली जाकी सेवा करै हैं। जो कोई कन्या के पिता के हाथ की शक्ति की चोटते बचे ताहि यह कन्या वरै।

लक्ष्मण यह वार्ता सुन आश्चर्यकूं प्राप्त भया, अर कोप हू उपज्या। मन में विचारी महागर्वित दुष्ट चेष्टासंयुक्त यह कन्या ताहि देखूं। यह चिंतवन कर राजमार्ग होय विमान समान सुन्दर घर देखता, अर मदोन्मत हाथी कारी घटा समान, अर तुरंग चंचल अवलोकता अर नृत्यशाला निरखता राजमंदिरविषै गया। कैसा है राजमंदिर? अनेक प्रकार के झरोखानिकर ध्वजानिकर

मंडित, शरद के बादर समान उज्ज्वल मंदिर जहां कन्या तिष्ठे है, महामनोहर रचनाकर संयुक्त, ऊंचे कोटकर वेष्टित सो लक्ष्मण जाय द्वार पर ठाढ़ा भया। इन्द्र के धनुष समान अनेक वर्ण का है तोरण जहां, सुभटनि के समूह अनेक देशनि के नाना प्रकार भेंट लेयकर आए हैं। कोई निकसे हैं कोई जाय है। सामंतनि की भीड़ होय रही है।

लक्ष्मणकूं द्वार में प्रवेश करता देख द्वारपाल सौम्य वाणीसूं कहता भया – तुम कौन हो, अर कौन की आज्ञातैं आए हो, कौन प्रयोजन राजमंदिर में प्रवेश करो हो? तब कुमार ने कही राजाकूं देखा चाहै हैं, तू जाय राजासों पूछ। तब वह द्वारपाल अपनी ठौर दूजे को राख आप राजातैं जाय विनती करता भया – हे महाराज! आपके दर्शनकूं एक महारूपवान पुरुष आया है, द्वारै तिष्ठे है, नील कमल समान है वर्ण जाका, अर कमललोचन, महाशोभायमान, सौम्य शुभ मूर्ति है। तब राजा ने प्रधान की ओर निरख आज्ञा करी – आवै। तदि द्वारपाल लक्ष्मणकूं राजा के समीप लेय गया, सो समस्त सभा याकूं अति सुन्दर देख हर्ष की वृद्धिकूं प्राप्त भई, जैसें चन्द्रमाकूं देख समुद्र की शोभा वृद्धिकूं प्राप्त होय। राजा याकूं प्रणामरहित देदीप्यमान विकट स्वरूप देख कछुइक विकारकूं प्राप्त हो पूछता भया। तुम कौन हो, कौन अर्थ कहांतैं यहां आए हो?

तदि लक्ष्मण वर्षाकाल के मेघ समान शब्द करते भए – मैं राजा भरत का सेवक हूं, पृथ्वी के देखबे की अभिलाषाकरि विचरूं हूं। तेरी पुत्री का वृत्तांत सुन यहां आया हूं। यह तेरी पुत्री महादुष्ट मरकनी गाय है, नहीं भग्न भए हैं मानरूपी सींग जाके। यह सर्व लोककिनूं दु:खदायिनी वर्ते है। तब राजा शत्रुदमन ने कही मेरी शक्तिकूं जो सहार सके, सो जितपद्माकूं बरै। तब लक्ष्मण कहता भया तेरी एक शक्तिकरि मेरे कहा होय। तू अपना समस्त शक्तिकरि मेरे पंच शक्ति लगाय। या भांति राजा के अर लक्ष्मण के विवाद भया। ता समय झरोखाते जितपद्मा लक्ष्मणकूं देख मोहित भई, अर हाथ जोड़ इशारा कर मनै करती भई, जो शक्ति की चोट मत खावो। तब आप सैन करते भए तू डरे मत। या भांति समस्याविषै ही धीर्य बंधाया। अर राजासूं कही – काहे कायर होय रह्या है, शक्ति चलाय अपनी शक्ति हमकूं दिखा।

तब राजा कही तू मूवा चाहै है, तो झेल। महाकोपकर प्रज्वलित अग्नि समान एक शक्ति चलाई, सो लक्ष्मण ने दाहिने करतैं ग्रही, जैसे गरुड़ सर्पकूं ग्रहै, अर दूसरी शक्ति दूसरे हाथतैं गही, अर तीजी, चौथी दोनों कांखविषै गही। सो चारों शक्तिनिकूं गहै लक्ष्मण ऐसे शोभै है मानों चोंदता हस्ती है। तब राजा पांचवी शक्ति चलाई सो दांतनितैं गही, जैसे मृगराज मृगी को गहै। तब देवनि के समूह हर्षित होय पुष्पवृष्टि करते भए अर दुन्दुभी बाजे बजाते भए। लक्ष्मण राजासूं कहते भए और है तो और भी चला। तब सकल लोक भयकर कम्पायमान भए। राजा लक्ष्मण

का अखण्डबल देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। लज्जाकर नीचा होय गया अर जितपद्मा लक्ष्मण के रूप अर चरित्र कर खैंची थकी आय ठाढ़ी भई। वह कन्या सुन्दरवदनी मृगनयनी लक्ष्मण के समीप ऐसी शोभती भई, जैसे इन्द्र के समीप शची होय। जितपद्माकूं देख लक्ष्मण का हृदय प्रसन्न भया। महा संग्रामविषै जाका चित्त कंपित न होय, सो याकै स्नेहकरि वशीभूत भया।

लक्ष्मण तत्काल विनयकर नम्रीभूत होय राजाकूं कहता भया – हे माम! हम तुम्हारे बालक हैं। हमारा अपराध क्षमा करहु, जे तुम सारिखे गम्भीर नर हैं ते बालकनि की अज्ञान चेष्टा कर अर कुचवन कर विकारकूं नाहीं प्राप्त होय है। तब शत्रुदमन अति हर्षित होय हाथी की सूण्ड समान अपनी भुजानिकर कुमार सूं मिल्या, अर कहता भया – हे धीर! मैं महायुद्धविषै माते हाथिनिकूं क्षणमात्रविषै जीतनहारा, सो तूने जीत्या। अर बन के हस्ती पर्वत समान तिनकूं मद रहित करनहारा जो मैं, सो तुम मोहि गर्वरहित किया। धन्य तिहारा पराक्रम, धन्य तिहारा रूप, धन्य तिहारी निर्ममता, महा विनयवान अद्भुत चरित्र के धरणहारे! तुमसे तुम ही हो। या भांति राजा ने लक्ष्मण के गुण सभाविषै वर्णन किये। तब लक्ष्मण लज्जाकर नीचा होय गया। अर राजा की आज्ञा कर मेघ की ध्वनि समान वादित्रनि के शब्द सेवक करते भए, अर याचकनिकूं अतिदान देय उनकी इच्छा पूर्ण करते भए।

नगर के विषै आनन्द वार्ता, राजा ने लक्ष्मणसूं कहा – हे पुरुषोत्तम! मेरी पुत्री का तुम पाणिग्रहण किया चाहो हो तो करो। लक्ष्मण ने कही मेरे बड़े भाई अर भावज नगर के निकट तिष्ठे हैं तिनकूं पूछो तिनकी आज्ञा होय सो तुमको हमको करनी उचित है। वे सर्व नीके जाने हैं। तब राजा पुत्रीकूं अर लक्ष्मणकूं रथ में चढ़ाय सर्व कुटुम्ब सहित रघुवीर पै चाल्या। सो क्षोभकूं प्राप्त हुआ जो समुद्र ताकी गर्जना समान याकी सेना का शब्द सुनकर अर धूल के पटल उठते देखकर सीता भयभीत होय कहती भई – हे नाथ! लक्ष्मण ने कुछ उद्धत चेष्टा करी, या दिशाविषै उपद्रव दृष्टि आवै है। तातैं सावधान होय जो कुछ करना होय सो करहु। तब आप जानकीकूं उरसूं लगाय कहते भए – हे देवी! भय मत करहु। ऐसा कहकर उठे, धनुष ऊपर दृष्टि धरी। तब ही मनुष्यनि के समूह के आगे स्त्रीजन सुन्दर गान करती देखीं, बहुरि निकट ही आईं, सुन्दर हैं अंग जिनके, स्त्रीनिकूं गावती अर नृत्य करती देख श्रीरामकूं विश्वास उपज्या। सीता सहित सुखसूं विराजे। स्त्रीजन सर्व आभूषण मंडित अति मनोहर मंगलद्रव्य हाथ में लिये हर्ष के भरे हैं नेत्र जिनके, रथसूं उतर कर आई, अर राजा शत्रुदमन भी बहुत कुटुम्ब सहित श्रीराम के चरणारविंदकूं नमस्कार कर बहुत विनयसूं बैठ्या।

लक्ष्मण अर जितपद्मा एक साथ रथविषै बैठे आए हुते, सो उतरकर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रकूं

अर जानकीकूं सीस निवाय प्रणामकर महाविनयवान दूर बैठ्या। सो श्रीराम राजा शत्रुदमन से कुशल प्रश्न वार्ता करि सुखसूं विराजे। राम के आगमनकरि राजा ने हर्षित होय नृत्य किया, महाभक्ति करि नगर में चलवे की विनती करी। श्रीराम अर सीता अर लक्ष्मण एक रथविषै विराजे। परम उत्साहसूं राजा के महल पधारे। मानों वह राजमन्दिर सरोवर ही है। स्त्री रूप कमलनितैं भरया, लावण्यरूप जल है जाविषै, शब्द करते जे आभूषण ते ही हैं सुन्दर पक्षी जहां। यह दोऊ वीर नवयौवन, महाशोभाकरि पूर्ण, कई एक दिन सुखसूं विराजे, राजा शत्रुदमन करै है सेवा जिनकी।

अथानन्तर सर्वलोक के चित्तकूं आनन्द के करणहारे राम लक्ष्मण महाधीर वीर सीतासहित अर्धरात्रि कूं उठ चले। लक्ष्मण ने प्रिय वचनकर जैसे वनमालाकूं धीर्य बंधाया हुता, तैसे जितपद्मा को धीर्य बंधाया, बहुत दिलासाकर आप श्रीराम के लार भए। नगर के सर्वलोक अर नृप को इनके चले जाने की अति चिंता भई, धीर्य न रह्या।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे है – हे मगधाधिपति! ते दोऊ भाई जन्मांतर के उपार्जे जे पुण्य तिनकरि सब जीवनि के वल्लभ, जहां जहां गमन करें, तहां तहां राजा प्रजा सब लोक सेवा करें, अर यह चाहें कि न जावें तो भला। सब इन्द्रियनि के सुख अर महामिष्ट अन्नपानादि बिना ही यत्न इन कूं सर्वत्र सुलभ, जे पृथ्वीविषै दुर्लभ वस्तु हैं, ते सब इनकूं प्राप्त होय। महाभाग्य भव्य जीव सदा भोगनितैं उदास है। ज्ञान के अर विषयनि के बैर है। ज्ञानी ऐसा चिंतवन करै हैं – इन भोगनिकर प्रयोजन नाहीं, ये दुष्ट नाशकूं प्राप्त होय। या भांति यद्यपि भोगनि की सदा निन्दा ही करें हैं, भोगनितैं विरक्त ही है, दीप्तिकरि जीत्या है सूर्य जिनने, तथापि पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावतैं पहाड़ के शिखरविषै निवास करें हैं तहां हूं नाना प्रकार सामग्री का संयोग होय है, जबलग मुनिपद का उदय नाहीं तब लग देवों समान सुख भोगवै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै जितपद्मा का व्याख्यान वर्णन करने वाला अड़तीसवां पर्व संपूर्ण भया।।38।।

अथानन्तर ये दोय वीर महाधीर सीता सहित वनविषै आए। कैसा है वन? नाना प्रकार के वृक्षनि कर शोभित, अनेक भांति के पुष्पनि की सुगन्धिताकर महासुगन्ध, लतानि के मंडपनिकरि युक्त, तहां राम लक्ष्मण रमते रमते आए। कैसे हैं दोनों? समस्त देवोपुनीत सामग्रीकर शरीर का है आधार जिनके। कहूंइक मूंगों के रंग समान महासुन्दर वृक्षनि का कूपल लेय श्रीराम जानकी के कर्णाभरण करे हैं, कछुइक छोटा वृक्षविषै लग रही जो बेल ताकर हिंडोला बनाय दोऊ भाई झोटा देय देय जानकी कूं झुलावैं हैं, अर आनन्द की कथा कर सीताकूं विनोद उपजावै हैं।

कभी सीता रामसों कहै है – हे देव! यह बेलि, यह वृक्ष महामनोज्ञ दीखै है। अर सीता के शरीर का सुगन्धताकर भ्रमर आय लगे हैं, सो दोऊ उड़ावै हैं। या भांति नाना प्रकार के वननिविषै धीरे धीरे बिहार करते दोऊ धीर, मनोग्य हैं चारित्र जिनके, जैसे स्वर्ग के वनविषै देव रमें तैसे रमते भए। अनेक देशनिकूं देखते अनुक्रम कर वंशस्थल नगर आए। ते दोऊ पुण्याधिकारी तिनकूं सीता के कारण थोड़ी दूर ही आवनेविषै बहुत दिन लागे, सो दीर्घकालहु दुःख क्लेश का देनहारा न भया, सदा सुखरूप ही रहे। नगर के निकट एक वंशधर नामा पर्वत देख्या, मानूं पृथ्वीकूं भेदकर निक्स्या। जहां बांसनि के अति समूह तिनकरि मार्ग विषम हैं, ऊंचे शिखरनि की छायाकरि मानों सदा संध्याकूं धारै है, अर निर्झरनों कर मानों हंसै है।

सो नगरतैं राजा प्रजाकूं निकसती देख श्रीरामचन्द्र पूछते भए – अहो! कहा भय की नगर तजो हो? कोई कहता भया आज तीसरा दिन है। रात्रि के समय या पहाड़ के शिखरविषै ऐसी ध्वनि होय है जो अब तक कबहु नाहीं सुनी, पृथ्वी कम्पायमान होय है, अर दशों दिशा शब्दायमान होय हैं। वृक्षनि की जड़ उपड़ जाय है। सरोवरनि का जल चलायमान होय है। ता भयानक शब्दकर सर्वलोकनि के कान पीड़ित होय मानों लोहे के मुदगरनि कर मारे। कोई एक दुष्ट देव जगत् का कंटक हमारे मारवे के अर्थ उद्यमी होय है, या गिरि पर क्रीड़ा करै है। ताके भयकर संध्या समय लोक भागै हैं, प्रभातविषै बहुरि आवैं हैं, पांच कोस परे जाय रहैं हैं, जहां वाकी ध्वनि न सुनिये।

यह वार्ता सुनि सीता राम लक्ष्मणसों कहती भई – जहां यह सर्व लोक जाय हैं वहां अपनहु चालें। जे नीतिशास्त्र के वेत्ता हैं वे देश कालकूं जानकर पुरुषार्थ करै हैं, ते कदाचित् आपादाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। तब दोऊ धीर हंसकर कहते भये – तू भयकर बहुत कायर है, सो यह लोक जहां जाय हैं तहां तू भी जाहु, प्रभात सब आवें तब तू आइयो। हम तो आज या गिरि पर रहेंगे। यह अत्यन्त भयानक कौन की ध्वनि होय है सो देखेंगे, यह निश्चय है। यह लोक रंक हैं, भयकर पशु बालकनि के लेय भागै हैं, हमकूं काहू का भय नाहीं।

तब सीता कहती भई – तिहारे हठ को कौन हरिवे समर्थ, तिहारा आग्रह दुर्निवार है। ऐसा कहकर वह पति के पीछे चाली। खिन्न भए हैं चरण जाके, पहाड़ के शिखर पर ऐसी शोभै मानों निर्मल चन्द्रकांति ही है। श्रीराम के पीछे अर लक्ष्मण के आगे सीता कैसी सोहै मानों चन्द्रकांति अर इन्द्रनीलमणि के मध्य पुष्पराग मणि ही है, ता पर्वत का आभूषण होती भई। राम लक्ष्मणकूं यह डर है जो यह कहीं गिरि से गिर न पड़े। तातैं याका हाथ पकड़ लिए जाय हैं। वे निर्भय पुरुषोत्तम, विषम हैं पाषाण जाके ऐसे पर्वतकूं उलंघ कर सीतासहित शिखर पर जाय पहुंचे। तहां देशभूषण अर कुलभूषण नामा दोय मुनि महाध्यानारूढ़ दोऊ भुज लुंबाए कायोत्सर्ग आसन धरैं

खड़े, परम तेजकर युक्त समुद्रसारिखे गम्भीर गिरि सारिखे स्थिर, शरीर अर आत्माकूं भिन्न भिन्न जाननहारे, मोह रहित, नग्न स्वरूप यथाजातरूप धरनहारे, कांति के सागर, नवयौवन, परम सुन्दर, महासंयमी, श्रेष्ठ हैं आकार जिनके, जिनभाषित धर्म के आराधनहारे, तिनकूं श्रीराम लक्ष्मण देखकर हाथ जोड़ नमस्कार करते भए। अर बहुत आश्चर्यकूं प्राप्त भए। चित्तविषै चिंतवते भए जो संसार के सर्व कार्य असार हैं, दुःख के कारण हैं। मित्र द्रव्य स्त्री सर्व कुटुम्ब अर इन्द्रियजनित सुख यह सब दुःख ही है, एक धर्म ही सुख का कारण है।

महाभक्ति के भरे दोऊ भाई परम हर्षकूं धरते विनयकरि नम्रीभूत है शरीर जिनके, मुनिनि के समीप बैठे। ताही समय असुर के आगमनतैं महा भयानक शब्द भया। मायामई सर्प अर बिच्छू तिनकर दोनों मुनिनि का शरीर बेष्टित होय गया। सर्प अति भयानक, महा शब्द के करणहारे, काजल समान कारे, चलायमान हैं जिह्वा जिनकी। अर अनेक वर्ण के अतिस्थूल बिच्छू तिनकरि मुनिन के अंग बेढ़े देख राम लक्ष्मण असुर पर कोपकूं प्राप्त भए। सीता भय की भरी भरतार के अंगसूं लिपट गई। तब आप कहते भए – तू भय मत करै। याकूं धीर्य बंधाय, दोऊ सुभट निकट जाय सांप बिच्छू मुनिन के अंगतैं दूर किए, चरणारविंद की पूजा करी। भक्ति से भरी सीता ने निर्झर के जल से देर तक उन मुनियों के पैर धोकर मनोहर गंध से लिप्त किये[1]।

तथा जो वन को सुगंधित कर रहे थे एवं लक्ष्मण ने तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओं के फूलों से उनकी पूजा की। अर योगीश्वरनि की भक्ति वंदना करते भए। श्रीराम वीण लेय बजावते भए अर मधुर स्वरसूं गावते भए – अर लक्ष्मण गान करते भए। गानविषै ये शब्द गाए – महा योगीश्वर धीर वीर मन वचन कायकर वंदनीक हैं, मनोग्य है चेष्टा जिनकी, देवनिहूविषै पूज्य, महाभाग्यवंत जिनने अरहंत का धर्म पाया, जो उपमारहित अखंड महाउत्तम तीन भवनविषै प्रसिद्ध जे महामुनि, जिनधर्म के धुरंधर, ध्यानरूप वज्रदंडकरि महामोहरूप शिलाकूं चूर्ण कर डारे, अर जे धर्मरहित प्राणिनिकूं अविवेकी जान दयाकर विवेक के मार्ग ल्यावें। परम दयालु, आप तिरै औरनिकूं तारैं। या भांति स्तुति करि दोऊ भाई ऐसे गावें, जो वन के तिर्यंचनिहू के मन मोहित भए अर भक्ति की प्रेरी सीता ऐसा नृत्य करती भई, जैसा सुमेरु के विषै शची नृत्य करै।

जाना है समस्त संगीत शास्त्र जानैं, सुन्दर लक्ष्मणकूं धरे, अमोलक हार मालादि पहिरे, परम लीलाकरि युक्त, दिखाई है प्रकटपणे अद्भुत नृत्य की कला जानै, सुन्दर है बाहुलता जाकी, हावभावदि विषै प्रवीण, मंद मंद चरणनिकूं धरती, महा लयकूं लिए गीत अनुसार भावकूं बतावती, अद्भुत नृत्य करती महाशोभायमान भासती भई। अर असुरकृत उपद्रवकूं मानूं सूर्य देख न सक्या सो अस्त भया। अर संध्या हू प्रकट होय जाती रही, आकाशविषै नक्षत्रनि का प्रकाश

भया। दशोंदिशाविषै अंधकार फैल गया। ता समय असुर की मायाकरि महारौद्र भूतनि के गण हडहड हंसते भए, महा भयंकर हैं मुख जिनके, अर राक्षस खोटे शब्द करते भए, अर मायामई स्यालिनी मुखतैं भयानक अग्नि की ज्वाला काढ़ती शब्द बोलती भईं, अर सैकड़ों कलेवर भयकारी नृत्य करते भए, मस्तक भुजा जंघादि की तथा अग्नि की वृष्टि होती भई, अर दुर्गंधसहित स्थूल बूंद लोहू की बरसती भई।

अर डाकिनी नग्न स्वरूप लावैं हाडों के आभरण पहिरे, क्रूर है शरीर जिनके, हालैं हैं स्तन जिनके, खड्ग है हाथ मैं जिनके वे दृष्टिविषै आवती भईं, अर सिंह व्याघ्रादिक के से मुख, तप्तलोह समान लोचन, हस्तविषै त्रिशूल धारे, होंठ डसते, कुटिल हैं भौंह जिनकी, कठोर हैं शब्द जिनके, ऐसे अनेक पिशाच नृत्य करते भए। पर्वत की शिला कम्पायमान भई, अर भूकम्प भया। इत्यादि चेष्टा असुर ने करी, सो मुनि शुक्लध्यानविषै मग्न किछु न जानते भए। ये चेष्टा देख जानकी भयकूं प्राप्त भई, पति के अंग से लग गई, तब श्रीराम कहते भए – हे देवी! भय मत करहु, सर्व विघ्न के हरणहारे जे मुनि के चरण तिनका शरण गहहु।

ऐसा कह कर सीताकूं मुनि के पायन मेल आप लक्ष्मणसहित धनुष हाथविषै लिए महाबली मेघसमान गरजे, धनुष के चढ़ायवे का ऐसा शब्द भया जैसा वज्रपात का शब्द होय। तब वह अग्निप्रभ नामा असुर इन दोऊ वीरनिकूं बलभद्र नारायण जान भाग गया, वाकी सर्व चेष्टा विलाय गई। श्रीराम लक्ष्मण ने मुनि का उपसर्ग दूर किया, तत्काल देशभूषण मुनिनि को केवलज्ञान उपज्या। चतुरनिकाय के देव दर्शनकूं आए। विधिपूर्वक नमस्कार कर यथायोग्य बैठे। केवलज्ञान के प्रतापतैं केवली के निकट रात दिन का भेद न रहे। भूमिगोचरी अर विद्याधर केवली की पूजा कर यथायोग्य बैठे, सुन नर विद्याधर सब ही धर्मोपदेश श्रवण करते भए। राम लक्ष्मण हर्षितचित्त सीतासहित केवली की पूजा कर हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछते भए।

हे भगवन्! असुर ने आपकूं कौन कारण उपसर्ग किया। अर तुम दोऊविषै परस्पर अति स्नेह काहैतैं भया? तब केवली की दिव्यध्वनि होती भई – पद्मिनीनामा नगरीविषै राजा विजयपर्वत गुणधान्य के उपजिवे का उत्तमक्षेत्र, जाके धारणीनामा स्त्री, अर अमृतसुर नामा दूत, सर्व शास्त्रविषै प्रवीण राजकाजविषै निपुण लोकरीति को जानै, अर जाकूं गुण ही प्रिय, जाके उपभोग नामा स्त्री ताकी कुक्षि विषै उपजे उदित मुदित नामा दोय पुत्र व्यवहार में प्रवीण। सो अमृतसुरनामा दूतकूं राजा ने कार्यनिमित्त बाहिर भेज्या। सो वह स्वामी भक्त वसुभूति मित्र सहित चला, वसुभूति पापी याकी स्त्रीसूं आसक्त दुष्टचित्त सो रात्रिविषै अमृतसुर को खड्ग से मार नगरी में वापिस आया।

लोगनितैं कही – मोहि वापिस भेज दिया है। अर ताकी स्त्री उपभोग से यथार्थ वृत्तांत कहा।

तब वह कहती भई – दोऊ पत्रुनि को भी मारि जो हम दोऊ निश्चिंत तिष्ठैं। सो यह वार्ता उदित की बहू ने सुनी अर सर्व वृत्तांत उदित सैं कहा।

यह बहू सास के चरित्रकूं पहिले भी जानती हुती। याकों वसुभूति की बहू ने समाचार कहे हुते जो परदारा के सेवनतैं पति से विरक्त हुती। सो उदित ने सब बातों से सावधान होय मुदित को भी सावधान किया। अर वसुभूति का खड्ग देख पिता के मरण का निश्चय कर उदित ने वसुभूति को मारा, सो पापी मरकर म्लेच्छ की योनिकूं प्राप्त भया। ब्राह्मण हुता सो कुशील के अर हिंसा के दोषतैं चांडाल का जन्म पाया।

एक समय मतिवर्धन नामा आचार्य, मुनिनिविषै महातेजस्वी पद्मनी नगरी आए सो बसंत तिलकनामा उद्यान में संघ सहित विराजे, अर आर्यिकानि की गुरानी अनुधरा धर्मध्यानविषै तत्पर सोहू आर्यिकादिनि के संघसहित आई, सो नगर के समीप उपवनविषै तिष्ठी।

अर जा वन में मुनि विराजे हुते ता बन के अधिकारी आय राजासूं हाथ जोड़ विनती करते भए – हे देव! आगे को या पीछे को कहो संघ कौन तरफ जावे? तब राजा कही जो कहा बात है? ते कहते भए – उद्यानविषै मुनि आए हैं। जो मनै करैं तो डरें, जो नहीं मनैं करें तो तुम कोप करो। यह हमको बड़ा संकट है। स्वर्ग के उद्यान समान यह बन है, अब तक काहू को याविषै आने न दिया। परन्तु मुनिनि का कहा करें? ते दिगम्बर देवनिकर न निवारे जावैं, हम सारखे कैसे निवारै?

तब राजा कही तुम मत मनै करो, जहां साधु विराजे सो स्थानक पवित्र होय है। सो राजा बड़ी विभूतिसूं मुनिनि के दर्शन को गया। ते महाभाग्य उद्यान में विराजे हुते। वन की रजकरि धूसरे हैं अंग जिनके, मुक्ति योग्य जो क्रिया ताकरि युक्त, प्रशांत हैं हृदय जिनके, कई एक कायोत्सर्ग धरे दोनों भुजा लुंबाय खड़े हैं, कई एक पद्मासन धरे विराजे हैं, बेला तेला चौला, पंच उपवास, दस उपवास, पक्षमासादि अनेक उपवासनिकरि शोषा है अंग जिनने, पठन पाठनविषै सावधान, भ्रमर समान मधुर हैं शब्द जिनके, शुद्ध स्वरूपविषै लगाया है चित्त जिनने, सौ राजा ऐसे मुनिनिकूं दूर से देख गर्वरहित होय गजतैं उतर सावधान होय सर्व मुनिनि को नमस्कार कर आचार्य के निकट जाय तीन प्रदखिणा देय प्रणाम कर पूछता भया।

हे नाथ! जैसी तिहारे शरीर में दीप्ति है तैसे भोग नाहीं। तब आचार्य कहते भए – यह कहां बुद्धि तेरी तू शूरवीर कूं स्थिर जानै है, यह बुद्धि संसार की बढ़ावनहारी है। जैसे हाथी के कान चपल तैसा जीतव्य चपल है। यह देह कदली के थम्भ समान असार है अर ऐश्वर्य स्वप्न तुल्य है अर कुटम्ब पुत्र कलत्र बांधव सब असार हैं। ऐसा जानकर या संसार की मायाविषै कहा प्रीति? यह संसार दुःखदायक है। यह प्राणी अनेक बार गर्भवास के संकट भोगवे है। गर्भवास नरक तुल्य

महा भयानक, दुर्गंध कृमिजाल कर पूर्ण, रक्त श्लेषमादिक का सरोवर, महा अशुचि कर्दम का भरा है। यह प्राणी मोहरूप अंधकार करि अंधा भया गर्भवास सूं नाहीं डरै है। धिक्कार है या अत्यन्त अपवित्र देहकूं, सर्व अशुभ का स्थानक, क्षणभंगुर, जाका कोई रक्षक नाहीं। जीव देहकूं पोषै वह याहि दुख देय सो महा कृतघ्न, नसाजालकर बेढा, चर्मकरि ढका अनेक रोगनि का पुंज, जाके आगमनकरि ग्लानिरूप। ऐसे देह में जे प्राणी स्नेह करै हैं, ते ज्ञानरहित अविवेकी हैं। तिनके कल्याण कहांते होय है?

अर या शरीरविषै इन्द्रिय चोर बसै हैं ते बलात्कार धर्मरूप धनकूं हरै हैं। यह जीवरूप राजा कुबुद्धिरूप स्त्रीसूं रमै है, अर मृत्यु याकूं अचानक ग्रसा चाहै है। मनरूप माता हाथी विषयरूप वनविषै क्रीड़ा करै हैं। ज्ञानरूप अंकुशतैं याहि वशकर वैराग्यरूप थंभसूं विवेकी बांधे हैं। यह इन्द्रिय रूप तुरंग मोहरूप पताकाकूं धरै, परस्त्रीरूप हरित तृणनिविषै महालोभ कूं धरते शरीररूप रथकूं कुमार्ग में पाड़े हैं। चित्त के प्रेरै चंचलता धरे हैं तातैं चित्त को वश करना योग्य है। तुम संसार शरीर भोगनितैं विरक्त होय भक्तिकर जिनराजकूं नमस्कार करहु, निरंतर सुमरहु। जाकरि निश्चयतैं संसार समुद्रकूं तिरहु। तप संयमरूप बाणनिकरि मोहरूप शत्रु को हनि, लोक के शिखर अविनाशपुर का अखंड राज्य करहु, निर्भय निजपुरविषै निवास करहु।

यह मुनि के मुखतैं वचन सुनकर राजा विजयपर्वत सुबुद्धि राज्य तज मुनि भया। अर वे दूत के पुत्र दोऊ भाई उदित मुदित जिनवाणी सुन। मुनि होय महीविषै विहार करते भए। सम्मेदशिखर की यात्राकूं जाते हुते, सो काहू प्रकार मार्ग भूल वनविषै जाय पड़े। वह वसुभूति विप्र का जीव महारौद्र भील भया, तानै देखे, अति क्रोधायमान होय कुठार समान कुवचन बोले, इनकूं खड़े राखे अर मारवेकूं उद्यमी भया। तब बड़ा भाई उदित मुदित से कहता भया।

हे भ्रात! भय मत करहु। क्षमा ढाल को अंगीकार करहु। यह मारवे को उद्यमी भया है सो हमने बहुत दिन तपसूं क्षमा का अभ्यास किया है सो अब दृढ़ता राखनी। यह वचन सुन मुदित बोला, हम जिनमार्ग के सरधानी हमकूं कहां भय? देह तो विनश्वर ही है अर यह वसुभूति का जीव है जो पिता के बैरतैं मारा हुता। परस्पर दोऊ मुनि ए वार्ता कर शरीर का ममत्व तज कायोत्सर्ग धार तिष्ठे। वह मारवे को आया सो म्लेच्छ कहिए भील ताके पति ने मने किया, दोऊ मुनि बचाए। यह कथा सुनि राम ने केवलीसूं प्रश्न किया – हे देव! वाने बचाए सो वासूं प्रीति का कारण कहा? तब केवली की दिव्यध्वनिविषै आज्ञा भई। एक यक्षस्थान नाम ग्राम तहां सुरप, अर कर्षक दोऊ भाई हुते।

एक पक्षीकूं पारधी जीवता पकड़ ग्राम में लाया सो इन दोऊ भाईन ने द्रव्य देय छुड़ाया। सो पक्षी मरकर म्लेच्छपति भया, अर वे सुरप कर्षक दोऊ वीर उदित मुदित भए। ता परोपकारकरि वाने इनको बचाए। जो कोई जेती नेकी करै है सो वह भी तासैं नेकी करै है, अर जो काहूंसूं बुरी

करै है वाहूसूं वह हू बुरी करै है। यह संसारी जीवनि की रीति है। तातैं सबनि का उपकार ही करहु। काहू प्राणीसूं बैर न करना। एक जीवदया ही मोक्ष का मार्ग है, दया बिना ग्रंथनि के पढ़वेकरि कहा? एक सुकृत ही सुख का कारण सो करना।

वे उदित मुदित मुनि उपसर्गतैं छूट सम्मेद शिखर की यात्राकूं गए। अर अन्य हू अनेक तीर्थनि की यात्रा करी। रत्नत्रय का आराधनकरि समाधितैं प्राण तज स्वर्गलोक गए। अर वह वसुभूति का जीव जो म्लेच्छ भया हुता सो अनेक कुयौनिविषै भ्रमण कर मनुष्य देह पाय तापस व्रत धर, अज्ञान तपकर मर ज्योतिषी देवनि के विषै अग्निकेतु नामा क्रूर देव भया। अर भरतक्षेत्र के विषम अरिष्टपुर नगर, जहां राजा प्रियव्रत महा भोगी ताके दो राणी महा गुणवंती, एक कनकप्रभा दूजी पद्मावती। सो वे उदित मुदित के जीव स्वर्गसूं चयकर पद्मावती राणी के रत्नरथ विचित्ररथ नामा पुत्र भए। अर कनकप्रभा के वह ज्योतिषी देव चयकर अनुधर नामा पुत्र भया। राजा प्रियव्रत पुत्रकूं राज्य देय भगवान के चैत्यालयविषै छह दिन का अनशन धार देह त्याग स्वर्गलोक गया।

अथानन्तर एक राजा की पुत्री श्रीप्रभा लक्ष्मीसमान, सो रत्नरथ ने परणी। ताकी अभिलाषा अनुधर के हुती। सो रत्नरथतैं अनुधर का पूर्व जन्म का तो वैर हुता ही, बहुरि नया बैर उपजा। सो अनुधर रत्नरथ की पृथ्वी उजाड़ने लगा। तब रत्नरथ अर विचित्ररथ दोऊ भाइनि अनुधरकूं युद्ध में जीत देशतैं निकाल दिया। सो देशतैं निकासनेतैं अर पूर्व वैरतैं महाक्रोधकूं प्राप्त होय जटा अर वक्कल का धारी तापसी भया, विषवृक्ष समान कषाय विष का भर्‍या। अर रत्नरथ विचित्र रथ महा तेजस्वी चिरकाल राज्य कर मुनि होय तपकर स्वर्गविषै देव भए, महासुख भोग तहांतैं चयकर सिद्धार्थ नगर के विषै राजा क्षेमंकर राणी विमला, तिनके महासुन्दर देशभूषण, कुलभूषण नामा पुत्र होते भए। सो विद्या पढ़ने के अर्थ घर में उचित क्रीड़ा करते तिष्ठे।

ता समय एक सागरघोष नामा पंडित अनेक देशनि में भ्रमण करता आया। सो राजा पंडितकूं बहुत आदरसूं राखा। अर ये दोऊ पुत्र पढ़नेकूं सौंपे। सो महा विनयकर संयुक्त सर्वकला सीखीं। केवल एक विद्या गुरु को जाने या विद्या को जाने और कुटुम्ब में काहू को न जाने। तिनके एक विद्याभ्यास ही का कार्य। विद्यागुरुतैं अनेक विद्या पढ़ीं। सर्व कला के पारगामी होय पिता पै आए। सो पिता इनकूं महाविद्वान सर्व कला निपुण देखकर प्रसन्न भया। पंडित को मनवांछित दान दिया।

यह कथा केवली रामसूं कहै है, वे देशभूषण कुलभूषण हम हैं। सो कुमार अवस्था में हमने सुनी जो पिता ने तिहारे विवाह के अर्थ राजकन्या मंगाई है। यह वार्ता सुनकर परमविभूति धरे, तिनकी शोभा देखवे को नगर बाहिर जायवे को उद्यमी भए। सो हमारी बहिन कमलोत्सवा कन्या झरोखे में बैठी नगरी की शोभा देखती हुती। सो हम तो विद्या के अभ्यासी, कबहूं काहू को देखा,

न जाना। हम न जाने यह हमारी बहिन है। अपनी मांग जान विकाररूप चित्त किया। दोऊ भाइनि के चित्त चले, दोऊ परस्पर मनविषै विचारते भए – याहि मैं परणूं, दूजा भाई परणा चाहै तो ताहि मारूं। सो दोऊ के चितविषै विकारभाव अर निर्दईभाव भया। ताही समय बन्दीजन के मुख ऐसा शब्द निकसा कि राजा क्षेमंकर विमला राणी सहित जयवन्त होवे। जाके दोनों पुत्र देवन समान, अर यह झरोखेविषै बैठी कमलोत्सवा इनकी बहिन सरस्वती समान। दोऊ वीर महागुणवान, अर बहिन महागुणवंती। ऐसी संतान पुण्याधिकारिनि के ही होय है।

जब यह वार्ता हमने सुनी तब मनविषै विचारी – अहो! देखो मोह कर्म की दुष्टता, जो हमारे बहिन की अभिलाषा उपजी। यह संसार असार महादु:ख का भरा, हाय! जहां ऐसा भाव उपजें, पाप के योग करि प्राणी नरक जांय, वहां महादु:ख भोगे। यह विचारकर हमारे ज्ञान उपजा सो वैराग्य को उद्यमी भए। तब माता पिता स्नेहसूं व्याकुल भए। हमने सबसूं ममत्व तज दिगम्बरी दीक्षा आदरी। आकाशगामिनी रिद्धि सिद्ध भई। नाना प्रकार के जिन तीर्थादिविषै विहार किया। तप ही है धन जिनके। अर माता पिता राजा क्षेमंकर अगले भी भव का पिता सो हमारे शोकरूप अग्निकर तप्तायमान हुवा। सर्व आहार तज मरण को प्राप्त भया सो गरुडेंद्र भया। भवनवासी देवनिविषै गरुड़ कुमार जाति के देव, तिनका अधिपति, महा सुन्दर, महा पराक्रमी, महालोचन नाम, सो आयकर यह देवनि की सभाविषै बैठा है। अर वह अनुधर तापसी विहार करता कौमुदी नगरी गया। अपने शिष्यनि के समूह करि बेढा।

तहां राजा सुमुख ताके राणी रतिवती परम सुन्दरी, सैंकड़ा राणिनिविषै प्रधान, अर ताके एक नृत्यकारणी मानों मद की पताका ही है, अति सुन्दर रूप अद्‌भुत चेष्टा की धरणहारी। ताने साधुदत्त मुनि के समीप सम्यक्‌दर्शन ग्रह्या, तबतैं कुगुरु कुदेव कुधर्मकूं तृणवत् जाने। ताके निकट एक दिन राजा कही यह अनुधर तापसी महातप का निवास है।

तब मदना ने कही – हे नाथ! अज्ञानी का कहा तप? लोकविषै पाखण्ड रूप है। यह सुनकर राजा ने क्रोध किया। तू तपस्वी की निंदा करै है। तब बाने कही आप कोप मत करहु, थोड़े ही दिनविषै याकी चेष्टा दृष्टि पड़ेगी। ऐसा कहकर घर जाय, अपनी नागदत्ता नामा पुत्री को सिखाय तापसी के आश्रम पठाई। सो वह देवांगना समान परम चेष्टा की धरणहारी महा विभ्रमरूप तापसी को अपना शरीर दिखावती भई। सो याके अंग उपंग महा सुन्दर निरखकर अज्ञानी तापसी का मन मोहित भया, अर लोचन चलायमान भए। जो अंग पर नेत्र गए वहां ही बंध गया। कामबाणनिकरि तापसी पीड़ित भया।

व्याकुल होय देवांगना समान जो यह कन्या ताके समीप आय पूछता भया, तू कौन है अर

यहां कहां आई है? संध्याकालविषै सब ही लघु वृद्ध अपने स्थानकविषै तिष्ठै हैं। तू महासुकुमार अकेली वन में क्यों विचरै है? तब वह कन्या मधुर शब्दकर याका मन हरती संती दीनता को लिये बोली, चंचल नीलकमल समान हैं लोचन जाके, हे नाथ! दयावान! शरणागत-प्रतिपाल! आज मेरी माता ने मोहि घरतैं निकास दई, सो अब मैं तिहारे भेषकर तिहारे स्थानक रहना चाहूं हूं। तुम मोसों कृपा करहु, रात दिन तिहारी सेवाकर मेरा यह लोक परलोक सुधरेगा। धर्म अर्थ काम इनविषै कौन-सा पदार्थ है जो तुम विषै न पाइए। परम निधान हो, मैं पुण्य के योगतैं तुम पाये।

या भांति कन्या ने कही तब याका मन अनुरागी जान विकल तापसी कामकर प्रज्वलित बोला - हे भद्रे! मैं कहा कृपा करूं, तू कृपाकर प्रसन्न होहु, मैं जन्मपर्यंत तेरी सेवा करूंगा। ऐसा कहकर हाथ चलावने का उद्यम किया, तब कन्या अपने हाथसूं मनै कर आदरसहित कहती भई - हे नाथ! मैं कुमारी कन्या, ऐसा करना उचित नाहीं। मेरी माता के घर जायकर पूछो, घर भी निकट ही है। जैसी मोपर तिहारी करुणा भई है, तैसैं मेरी मां को प्रसन्न करहु, वह तुमको देवेगी, तब जो इच्छा होय सो करियो। यह कन्या के वचन सुन मूढ तापसी व्याकुल होय तत्काल कन्या की लार रात्रि को ताकी माता के पास आया। कामकर व्याकुल हैं सर्व इन्द्रिय जाकी। जैसे माता हाथी जल के सरोवरविषै पैठे तैसैं नृत्यकारिणी के घरविषै प्रवेश किया।

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं - हे राजन्! कामकर ग्रसा हुवा प्राणी न स्पर्शे, न स्वादे, न सूंघे, न देखे, न सुने, न जाने, न डरे अर न लज्जा करे। महा मोह से निरंतर कष्टकूं प्राप्त होय है।

जैसैं अंधा प्राणी सर्पनि के भरे कूप में पड़े, तैसैं कामांध जीव स्त्री के विषयरूप विषमकूप में पड़े। सो वह तापसी नृत्यकारिणी के चरण में लोट अति अधीन होय कन्याकूं याचता भया। ताने तापसी को बांध राखा, राजा को समस्या हुती। सो राजा ने आय कर रात्रि को तापसी बन्धा देखा। प्रभात तिरस्कार करि निकास दिया। सो अपमान कर लज्जायमान महादु:ख को धरता संता पृथ्वीविषै भ्रमणकर मूवा। अनेक कुयोनिविषै जन्म मरण किए। बहुरि कर्मानुयोग कर दरिद्री के घर उपजा। जब यह गर्भ में आया तब ही याकी माता ने याके पिता को क्रूर वचन कहकर कलह किया। सो उदास होय विदेश गया, अर याका जन्म भया। बालक अवस्था हुती तब भीलनि देश के मनुष्य बन्द किये, सो याकी माता भी बन्दी में गई। सब कुटुम्ब रहित यह परम दुखी भया।

कई एक दिन पीछे तापसी होय अज्ञान तप कर ज्योतिषी देवनिविषै अग्निप्रभ नामा देव भया। अर एक समय अनन्तवीर्य केवलीकूं धर्मविषै निपुण जो शिष्य, तिनने पूछ्या, कैसे हैं केवली? चतुरनिकाय के देव अर विद्याधर तथा भूमिगोचरी तिनकरि सेवित, हे नाथ! मुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति गये पीछे तुम केवली भए, तुम समान संसार का तारक कौन होयगा। तब तिनने कही

देशभूषण कुलभूषण होवेंगे। केवलज्ञान अर केवलदर्शन के धरणहारे, जगत्‌विषै सार, जिनका उपदेश पायकर लोक संसार समुद्रकूं तिरेंगे। ये वचन अग्निप्रभ ने सुने सो सुनकर अपने स्थानक गया। इन दिननि में कुअवधि कर हमकूं या पर्वतविषै तिष्ठे जान 'अनन्तवीर्य केवली का वचन मिथ्या करूं' ऐसा गर्वधर पूर्व वैरकर उपद्रव करनेकूं आया। सो तुमकू बलभद्र नारायण जान भयकर भाज गया।

हे राम! तुम चरम शरीरी, तद्‌भव मोक्षगामी बलभद्र हो। अर लक्ष्मण नारायण है। ता सहित तुमने सेवा करी अर हमारे घातिया कर्म के क्षय से केवलज्ञान उपज्या। या प्रकार प्राणीनि के बैर का कारण सर्व बैरानुबन्ध है, ऐसा जानकर जीवनि के पूर्वभव श्रवणकर, हे प्राणी हो! रागद्वेष तज, निश्चल होवो। ऐसे महापवित्र केवली के वचन सुन सुर नर असुर बारम्बार नमस्कार करते भये, अर भवदु:खतैं डरे। अर गरुड़ेन्द्र परम हर्षित होय केवली के चरणारविंदकूं नमस्कार कर महा स्नेह की दृष्टि विस्तारता, लहलहाट करै हैं मणि कुण्डल जाके, रघुवंश में उद्योत करणहारे जे राम तिनसों कहता भया – हे भव्योत्तम! तुम मुनिनि की भक्ति करी सो मैं अति प्रसन्न भया। ये मेरे पूर्व भव के पुत्र हैं जो तुम मांगों सो मैं देहूं।

तब श्रीरघुनाथ क्षणएक विचार कर बोले तुम देवनि के स्वामी हो, कभी हम पै आपदा परै तो चितारियो। साधुनिकूं सेवा के प्रसाद से यह फल भया जो तुम सारिखों से मिलाप भया। तब गरुड़ेन्द्र ने कही तुम्हारा वचन मैं प्रमाण किया। जब तुमकूं कार्य पड़ेगा तब मैं तिहारे निकट ही हूं। ऐसा कहा तब अनेक देव मेघ की ध्वनि समान वादित्रनि के नाद करते भये। साधुनि के पूर्वभव सुन कई एक उत्तम मनुष्य मुनि भये, कई एक श्रावक के व्रत धारते भए। वे देशभूषण कुलभूषण केवली, जगत् पूज्य, सर्व संसार के दु:ख से रहित, नगर ग्राम पर्वतादि सर्व स्थानविषै विहार करै, धर्म का उपदेश देते भये।

यह दोऊ केवलिनि के पूर्वभव का चरित्र जे निर्मल स्वभाव के धारक भव्यजीव श्रवण करैं वे सूर्य समान तेजस्वी पापरूप तिमिरकूं शीघ्र ही हरें।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै देशभूषण कुलभूषण केवली का व्याख्यान वर्णन करने वाला उनतालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।39।।

अथानन्तर केवली के मुखतैं रामचन्द्र को चरम शरीरी कहिये तद्‌भव मोक्षगामी सुनकर सकल राजा जय जय शब्द कहकर प्रणाम करते भये। अर वंशस्थलपुर का राजा सुरप्रभ महा निर्मलचित्त राम लक्ष्मण सीता की भक्ति करता भया। महिलनि के शिखर की कांतिकरि उज्ज्वल भया है

आकाश जहां, ऐसा जो नगर वहां चलने की राजा प्रार्थना करी, परन्तु राम ने न मानी। वंशगिरि के शिखर हिमाचल के शिखर समान सुन्दर, जहां नलिनी वनविषै महारमणीक विस्तीर्ण शिला, तहां आय हंस समान विराजे।

कैसा है वन? नाना प्रकार के वृक्ष अर लतानि करि पूर्ण, अर नाना प्रकार के पक्षी करै है नाद जहां, सुगन्ध पवन चालै है, भांति भांति के फल पुष्प तिनकरि शोभित, अर सरोवरनि में कमल फूल रहे हैं, स्थानक अति सुन्दर, सर्व ऋतु की शोभा जहां बन रही है, शुद्ध आरसी के तल समान मनोग्य भूमि, पांच वर्ण के रत्ननिकरि शोभित, जहां कूंद मौलसिरी मालती स्थलकमल, जहां अशोक वृक्ष नागवृक्ष इत्यादि अनेक प्रकार के सुगन्ध वृक्ष फूल रहे हैं, तिनके मनोहर पल्लव लहलहाट करै हैं। तहां राजा की आज्ञाकर महा भक्तिवन्त जे पुरुष तिनने श्रीरामकूं विराजने के निमित्त वस्त्रनि के महा मनोहर मण्डप बनाय, सेवक जन महा चतुर सदा सावधान अति आनन्द के करणहारे, मंगल रूप बाणी के बोलनहारे, स्वामी की भक्तिविषै तत्पर, तिनने बहुत तरह के चौड़े ऊंचे वस्त्रनि के मण्डप बनाये। नाना प्रकार के चित्राम हैं जिनमें, अर जिन पर ध्वाजा फरहरै हैं, मोतिन की माला जिनके लटके हैं, क्षुद्र घंटिकानि के समूह कर युक्त अर जहां मणिनि की झालर लूम्ब रही है, महा दैदीप्यमान सूर्य की-सी किरण धरै हैं, अर पृथ्वी पर पूर्ण कलश थापे हैं, अर छत्र चमर सिंहासनादि राज चिह्न तथा सर्व सामग्री धरै हैं, अनेक मंगलद्रव्य हैं। ऐसे सुन्दर स्थलविषै सुखसों तिष्ठै है।

जहां जहां रघुनाथ पांव धरें तहां तहां पृथ्वी पर राजा अनेक सेवा करैं। शय्या आसन, मणि सुवर्ण के नाना प्रकार के उपकरण, अर इलायची, लवंग, ताम्बूल, मेवा, मिष्टान्न तथा श्रेष्ठ वस्त्र, अद्भुत आभूषण, अर महासुगन्ध, नाना प्रकार के भोजन दधि, दुग्ध, घृत, भांति भांति अन्न इत्यादि अनुपम वस्तु लावें। या भांति सब ठौर सब जन श्रीरामकूं पूंजें। वंशगिरि पर श्रीराम लक्ष्मण सीता के रहिवे को मण्डप रचे। तिनमें किसी ठौर गीत, कहीं नृत्य, कहीं वादित्र बाजै हैं। कहू् सुकृत की कथा होय है अर नृत्य कारिणी ऐसा नृत्य करैं मानों देवांगना ही हैं कहीं दान बटै है। ऐसे मंदिर बनाए जिनका कौन वर्णन कर सकै, जहां सर्व सामग्री पूर्ण, जो याचक आवै सो विमुख न जांय। दोनों भाई सब आभरणनिकरि युक्त, सुन्दर वस्त्र धरें मनवांछित दान के करणहारे, महा यशकर मण्डित, अर सीता परम सौभाग्य की धरणहारी, पाप के प्रसंगसूं रहित, शास्त्रोक्त रीतिकर रहे। ताकी महिमा कहां तक कहिए। अर वंशगिरिविषै श्रीरामचन्द्र ने जिनेश्वर देव के हजारों अद्भुत चैत्यालय बनवाये। महादृढ़ हैं स्तंभ जिनके, योग्य है लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई जिनकी, अर सुन्दर झरोखनिकरि शोभित, तोरण सहित हैं द्वारा जिनके, कोट अर खाई कर मंडित, सुन्दर

ध्वजानिकरि शोभित, वंदना के करणहारे भव्यजीव तिनके मनोहर शब्द संयुक्त, मृदंग, वीणा, बांसुरी, जालरी, झांझ, मजीरा, शंख, भेरी इत्यादि वादित्रनि के शब्दकर शोभायमान, निरंतर आरम्भए हैं महा उत्सव जहां। ऐसे राम के रचे रमणीक जिन मंदिर, तिनकी पंक्ति शोभती भई। तहां पंच वर्ण के प्रतिबिंब जिनेन्द्र सर्व लक्षणनि कर संयुक्त, सर्व लोकनिकरि पूज्य विराजते भए।

एक दिन श्रीराम कमललोचन लक्ष्मणसूं कहते भए – हे भाई! यहां अपने तांई दिन बहुत बीते, अर सुखसूं या गिरि पर रहे, श्री जिनेश्वर के चैत्यालय बनायवे कर पृथ्वी में निर्मल कीर्ति भई, अर या वंशस्थलपुर के राजा ने अपनी बहुत सेवा करी, अपने मन बहुत प्रसन्न किए। अब यहां ही रहें तो कार्य की सिद्धि नाहीं, अर इन भोगनिकर मेरा मन प्रसन्न नाहीं। ये भोग रोग के समान हैं – ऐसा ही जानता हूं, तथापि ये भोगनि के समूह मोहि क्षणमात्र नाहीं छोड़े हैं। सो जब तक संयम का उदय नाहीं तब तक ये बिना यत्न आय प्राप्त होय हैं। या भवविषै जो कर्म यह प्राणी करै है ताका फल परभव में भोगवै है। अर पूर्व उपार्जे के कर्म तिनका फल वर्तमान कालविषै भोगै है। या स्थल में निवास करते अपने सुख सम्पदा है, परन्तु जे दिन जाय हैं वे फेर न आवैं। नदी का वेग, अर आयु के दिन, अर यौवन गए वे फेर न आवें।

ता कर्णरवा नाम नदी के समीप दंडक बन सुनिये है। वहां भूमिगोचरनि की गम्यता नाहीं, अर वहां भरत की आज्ञा का हू प्रवेश नाहीं। वहां समुद्र के तट पर एक स्थान बनाय निवास करेंगे। यह राम की आज्ञा सुन लक्ष्मण ने विनती करी – हे नाथ! आप जो आज्ञा करोगे सोई होयगा। ऐसा विचार दोऊ वीर महाधीर इन्द्रसारिखे भोग भोगि वंश गिरितैं सीता सहित चाले। राजा सुरप्रभ वंशस्थलपुर का पति लार चाल्या सो दूर तक गया। आप विदा किया सो मुश्किल पीछे बाहुड़, महा शोकवंत अपने नगर में आया। श्रीराम का विरह कौन कौन को शोकवंत न करै?

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! वह वंशगिरि बड़ा पर्वत, जहां अनेक धातु सो रामचन्द्र ने जिनमन्दिर की पंक्ति कर महा शोभायमान किया। कैसे हैं जिनमंदिर? दिशानि के समूहकूं अपनी कांति करि प्रकाशरूप करै हैं। ता गिरि पर श्रीराम ने परम सुन्दर जिनमन्दिर बनाए, सो वंशगिरि रामगिरि कहाया, या भांति पृथ्वी पर प्रसिद्ध भया। रवि समान है प्रभा जाकी।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रामगिरि का वर्णन करने वाला चालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।40।।

अथानन्तर राजा अरण्य के पोता दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण सीता सहित दक्षिण दिशा के समुद्रकूं चाले। कैसे हैं दोऊ भाई? महा सुख के भोक्ता, नगर ग्राम तिनकरि भरे जे अनेक देश तिनको उलंघ कर महा वनविषै प्रवेश करते भए। जहां अनेक मृगनि के समूह हैं, अर मार्ग सूझै

नाहीं, अर उत्तम पुरुषनि की बस्ती नाहीं। जहां विषम स्थानक सो भील भी विचर न सकैं, नाना प्रकार के वृक्ष अर बेल तिनकर भर्‍या, महाविषम, अति अंधकाररूप, जहां पर्वतनि की गुफा, गम्भीर निझरने झरैं हैं, ता वनविषै जानकी प्रसंगतैं धीरे धीरे एक एक कोस रोज चाले।

दोऊ भाई निर्भय अनेक क्रीड़ा के करणहारे नरमदा नदी पहुंचे। जाके तट महारमणीक प्रचुर तृणनि के समूह अर समानता धरे, महाछायाकारी अनेक वृक्ष फल पुष्पादिकरि शोभित। अर जाके समीप पर्वत, ऐसे स्थानकूं देख दोऊ भाई वार्ता करते भए। यह वन अति सुन्दर अर नदी सुन्दर ऐसा कहकर रमणीक वृक्ष की छायाविषै सीतासहित तिष्ठे। क्षणएक तिष्ठकर तहां के रमणीक स्थानक निरखकर जलक्रीड़ा करते भए। बहुरि महामिष्ट आरोग्य पक्व फल फूलनि के आहार बनाये, सुख की है कथा जिनके, तहां रसोई के उपकरण अर बासण माटी के अर बांसनि के नाना प्रकार तत्काल बनाय, महास्वादिष्ट सुन्दर सुगन्ध आहार, वन के धान, सीता ने तैयार किए। भोजन के समय दोऊ वीर मुनि के आयवे के अभिलाषी द्वारापेक्षण को खड़े।

ता समय दो चारण मुनि आए – सुगुप्ति अर गुप्ति हैं नाम जिनके, ज्योतिपटल कर संयुक्त है शरीर जिनका, अर सुन्दर है दर्शन जिनका, मति श्रुति अवधि तीन ज्ञान विराजमान, महाव्रत के धारक, परम तपस्वी, सकल वस्तु की अभिलाषा रहित, निर्मल हैं चित्त जिनके, मासोपवासी, महाधीर वीर, शुभ चेष्टा के धरणहारे, नेत्रनिकूं आनन्द के करता, शास्त्रोक्त आचार कर संयुक्त है शरीर जिनका, सो आहारकूं आए। सो दूरतैं सीता ने देखे। तब महाहर्ष के भरे हैं नेत्र जाके, अर रोमांचकर संयुक्त है शरीर जाका, पतिसों कहती भई, हे नाथ! हे नर श्रेष्ठ! देखहु! देखहु! तपकर दुर्बल शरीर दिगम्बर कल्याणरूप चारण युगल आए।

तब राम कही – हे प्रिये! हे पंडिते! सुन्दर मूर्ति! वे साधु कहां हैं? हे रूप आभरण की धरणहारी? धन्य हैं भाग्य तेरे, तूने निर्ग्रंथ युगल देखे, जिनके दर्शनतैं जन्म जन्म के पाप जाहै, भक्तिवंत प्राणी के परम कल्याण होय। जब या भांति राम ने कही तब सीता कहती भई – ये आए, ये आए। तब ही दोनों मुनि राम के दृष्टि पड़े। जीवदया के पालक, ईर्यासमिति सहित, समाधानरूप हैं मन जिनके। तब श्रीराम ने सीता सहित सन्मुख जाय नमस्कार महाभक्तियुक्त श्रद्धा सहित मुनिनिकूं आहार दिया। आरणी भैसों का अर वन की गायों का दुग्ध, अर छुहारे गिरी दाख नाना प्रकार के वन के धान्य, सुन्दर घी मिष्टान्न, इत्यादि मनोहर वस्तु विधिपूर्वक तिनकरि मुनिनकूं पारण करावते भए। ते मुनि भोजन के स्वाद के लोलुपतासूं रहित, निरन्तराय आहार करते भए।

जब राम ने अपनी स्त्री सहित भक्तिकर आहार दिया, तब पंचाश्चर्य भए, रत्ननि की वर्षा, पुष्पवृष्टि, शीतल मंद सुगन्ध पवन, अर दुंदुभी बाजे, जय जयकार शब्द। सो जा समय राम के

मुनिनि का आहार भया ता समय वनविषै एक गृध्र पक्षी अपनी इच्छाकर वृक्ष पर तिष्ठै था। सो अतिशय कर संयुक्त मुनिनकूं देख अपने पूर्वभव जानता भया कि कोई एकभव पहिले मैं मनुष्य हुता, प्रमादी अविवेककर जन्म निष्फल खोया, तप संयम न किया, धिक्कार मो मूढबुद्धिकूं। अब मैं पाप के उदयकरि खोटी योनिविषै आय पड्या, कहा उपाय करूं? मोहि मनुष्य भवविषै पापी जीवनि भरमाया। वे कहिवे के मित्र अर महाशत्रु, सो उनके संग में धर्मरत्न तज्या, अर गुरुनि के वचन उलंघ महापाप आचर्‍या। मैं मोहकर अंध, अज्ञान तिमिरकर धर्म न पहिचान्या। अब अपने कर्म चितार उरविषै जलूं हूं। बहुत चिंतवन कर कहा? दुख के निवारने के अर्थ इन साधुनि का शरण गहूं, ये सर्वसुख के दाता, इनसूं मेरे परम अर्थ की प्राप्ति निश्चय सेती होयगी।

या भांति पूर्वभव के चितारनेतैं प्रथम तो परम शोककूं प्राप्त भया हुता। बहुरि साधुनि के दर्शनतैं तत्काल परम हर्षित होय, अपनी दोऊ पांख हलाय, आंसुनिकर भरे हैं नेत्र जाके, महा विनयकर मंडित पक्षी वृक्ष के अग्रभागतैं भूमिविषै पड्या। सो महामोटा पक्षी ताके पडने के शब्दकरि हाथी अर सिंहादि वन के जीव भयकर भाग गए, अर सीता भी आकुलचित्त भई। देखो, यह ढीठ पक्षी मुनिनि के चरणविषै कहांसूं आय पड्या? कठोर शब्द कर घना ही निवार्‍या, परन्तु वह पक्षी मुनिनि के चरणनि के धोवनविषै आय पड्या।

चरणोदक के प्रभाव कर क्षणमात्रविषै ताका शरीर रत्नों की राशि समान नाना प्रकार के तेजकर मण्डित होय गया, पांख तो स्वर्ण की प्रभा को धरते भए, दोऊ पांव वैडूर्यमणि समान होय गए, अर देह नाना प्रकार के तेजकर रत्ननि की छवि को धरता भया, अर चूंच मूंगा समान आरक्त भई। तब यह पक्षी आपकूं अर रूपकूं देख परम हर्षकूं प्राप्त भया, मधुर नादकर नृत्य करवेकूं उद्यमी भया। देवनि के दुन्दुभी समान है नाद जाका, नेत्रनितैं आनन्द कै अश्रुपात डारता शोभता भया। जैसा मोर मेह के आगमनविषै नृत्य करै तैसा मुनि के आगैं नृत्य करता भया।

महा मुनि विधिपूर्वक पारणाकर बैडूर्य मणिसमान शिला पर विराजे। पद्मराग मणिसमान हैं नेत्र जाके, ऐसा पक्षी पांख संकोच मुनिनि के पांओं को प्रणाम कर आगैं तिष्ठा। तब श्रीराम फूले कमल समान हैं नेत्र जिनके, पक्षीकूं प्रकाशरूप देख आप परम आश्चर्यकूं प्राप्त भए। साधुनि के चरणारविंद को नमस्कार कर पूछते भए। कैसे हैं साधु? अठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण, वे ही हैं आभूषण जिनके।

बारम्बार पक्षी की ओर निरख राम मुनिसूं कहते भए - हे भगवन्! यह पक्षी प्रथम अवस्थाविषै महाविरूप अंग हुता सो क्षणमात्रविषै सुवर्ण अर रत्ननि के समूह की छवि धरता भया। यह अशुचि सर्व मांस का आहारी दुष्ट गृध्रपक्षी आपके चरणनि के निकट तिष्ठकर

महाशांत भया सो कौन कारण?

तब सुगुप्ति नामा मुनि कहते भए – हे राजन्! पूर्वे या स्थल विषै दंडकनामा देश हुता, जहां अनेक ग्राम नगर पट्टण संवाहण मटंब घोष खेट करवट द्रोणमुख हुते। वाडिकरयुक्त, सो ग्राम कोट खाई दरवाजेनिकर मंडित सो नगर, अर जहां रत्ननि की खान सो पट्टण, पर्वत के ऊपर से संवाहन, अर जाहि पांच सौ ग्राम लागे सो मटंब, अर गायनि के निवास गुवालनि के आवास सो घोष, अर जाके आगे नदी सो खेट, अर जाके पीछे पर्वत सो करवट, अर समुद्र के समीप सो द्रोणमुख, इत्यादि अनेक रचनाकर शोभित। तहां कर्णकुण्डल नामा नगर महामनोहर, ताविषै या पक्षी का जीव दंडकनामा राजा हुता, महाप्रतापी उदय धरे, प्रचंड पराक्रम संयुक्त, भग्न किये हैं शत्रुरूप कंटक जानैं, महामानी, बड़ी सेना का स्वामी। सो या मूढ ने अधर्म की श्रद्धाकर पापरूप मिथ्या शास्त्र सेया, जैसैं कोई घृत का अर्थी जलकूं मथे। याकी स्त्री दंडिनि की सेवक हुती। तिनसों अति अनुरागिणी। सो वाके संगकर यह भी ताके मार्गकूं धरता भया। स्त्रिनि की वश हुवा पुरुष कहा कहा न करै?

एक दिवस यह नगर के बाहिर निकस्या सो वनविषै कायोत्सर्ग धरे ध्यानारूढ मुनि देखे। तब या निर्दई ने मुनि के कंठविषै मूवा सर्प डारया। कैसा हुता यह? पाषाण समान कठोर हुता चित्त जाका। सो मुनि ध्यान धरे मौनसूं तिष्ठे, अर यह प्रतिज्ञा करी, जो लग मेरे कंठतैं दूर न करै तौलग मैं हलन चलन नाहीं करूं, योगरूप ही रहूं। सो काहू ने सर्प दूर न किया, मुनि खड़े ही रहे। बहुरि कई एक दिननिविषै राजा ताही मार्ग गया। ताही समय काहू भले मनुष्य ने सांप काढ्या, अर मुनि के पास बैठ्या हुता सो राजा वा मनुष्यसूं पूछा जो मुनि के कंठतैं, सांप कौन काढ्या, अर कब काढ्या? तब वाने कही – हे नरेन्द्र! किसी नरकगामी ने ध्यानारूढ मुनि के कंठविषै मूवा सर्प डारया हुता सो सर्प के संयोगतैं साधु का शरीर अतिखेद खिन्न भया। इनके तो कोई उपाय नहीं, आज सर्प मैंने काढ्या है। तब राजा मुनि को शांतस्वरूप कषायरहित जान प्रणाम कर अपने स्थानक गया। उस दिन से मुनियों की भक्तिविषै अनुरागी भया और किसीकूं उपद्रव न करें।

तब यह वृत्तांत राणी ने दंडियों के मुख से सुना कि राजा जिनधर्म का अनुरागी भया। तब या पापि ने क्रोधकर मुनियों के मारने का उपाय किया। जे दुष्टजीव हैं वे अपने जीने का भी यत्न तज पराया अहित करें। सो पापिनी ने अपने गुरु को कहा – तुम निर्ग्रंथ मुनि का रूपकर मेरे महल में आवो और विकार चेष्टा करहु। तब याने याही भांति करी। सो राजा यह वृत्तांत जानकर मुनियों से कोप भया और मंत्री आदि दुष्ट मिथ्यादृष्टि सदा मुनियों की निन्दा ही करते। अन्य भी और जे क्रूरकर्मी मुनियों के अहितु थे तिन्होंने राजाकूं भरमाया। सो पापी राजा मुनियों को घानीविषै

पेलिवे की आज्ञा करता भया। आश्चर्यसहित सर्व मुनि घानी में पेले।

एक साधु बहिर्भूमि गया पीछे आवता था सो किसी दयावान ने कही – अनेक मुनि पापी राजा ने यंत्र में पेले हैं, तुम भाग जावो। तुम्हारा शरीर धर्म का साधन है सो अपने शरीर की रक्षा करहु। तब यह समाचार सुन, संघ के मरण के शोककर चुभी है दुःखरूप शिला जाके, क्षण एक वज्र के स्तम्भसमान निश्चल होय रहा, बहुरि न सहा जाय ऐसा क्लेश रूप भया, सो मुनिरूप जो पर्वत उसकी समभावरूप गुफा से क्रोधरूप केसरी सिंह निकस्या। जैसैं आरक्त अशोक वृक्ष होय तैसैं मुनि के आरक्त नेत्र भए। तेजकर आकाश संध्या के रंगसमान होय गया। कोप कर तप्तायमान जो मुनि ताके सर्व शरीरविषै पसेव की बूंद प्रकट भईं। फिर कालाग्नि समान प्रज्वलित अग्निपूतला निकस्या, सो धरती आकाश अग्निरूप होय गए, लोक हाहाकार करते मरणकूं प्राप्त भए। जैसैं बांसों का बन बलै तैसैं देश भस्म होय गया, न राजा, न अंतःपुर, न पुर, न ग्राम, न पर्वत, न नदी, न वन, न कोई प्राणी, कुछ भी देश में न बच्या। महाज्ञान वैराग्य के योगकर बहुत दिनों में मुनि ने समभावरूप जो धन उपार्ज्या हुता सो तत्काल क्रोधरूप रिपु ने हरा।

दंडक देश का दंडक राजा पाप के प्रभावकर प्रलय भया और देश प्रलय भया, सो अब यह दंडक बन कहावै है। कई एक दिन तो यहां तृण भी न उपज्या। फिर घने कालविषै मुनियों का बिहार भया, तिनके प्रभावकरि वृक्षादिक भए। यह वन देवों को भी भयंकर है, विद्याधरों की क्या बात? सिंह व्याघ्र अष्टापदादि अनेक जीवों से भर्‍या और नाना प्रकार के पक्षियों कर शब्दरूप है, और अनेक प्रकार के धान्य से पूर्ण है। वह राजा दंडक महाप्रबल शक्ति का धारक हुता सो अपराध कर नरक तिर्यंचगतिविषै बहुत काल भ्रमण कर यह गृध्र पक्षी भया। अब इसके पापकर्म की निवृत्ति भई, हमकूं देख पूर्वभव स्मरण भया। ऐसा जान जिनआज्ञा मान संसार शरीर भोगतैं विरक्त होय, धर्मविषै सावधान होना।

परजीवों का जो दृष्टांत है सो अपनी शांतभाव की उत्पत्ति का कारण है। या पक्षीकूं अपनी विपरीति चेष्टा पूर्वभव की याद आई है सो कम्पायमान है। पक्षी पर दयालु होय, मुनि कहते भए – हे भव्य! अब तू भय मत करै, जा समय जैसी होनी होय सो होय, रुदन काहे को करै है, होनहार के मेटवे समर्थ कोऊ नाहीं। अब तू विश्रामकूं पाय सुखी होय, पश्चाताप तज। देख कहां यह वन और कहां सीता सहित श्रीराम का आवना और कहां हमारा वनचर्या का अवग्रह जो वन में श्रावक के आहार मिलेगा तो लेवेंगे, और कहां तेरा हमको देख प्रतिबोध होना?

कर्मों की गति विचित्र है, कर्मों की विचित्रता से जगत की विचित्रता है। हमने जो अनुभया और सुना देखा है सो कहे हैं – पक्षी के प्रतिबोधवे के अर्थ राम का अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनि

अपना और गुप्ति मुनि दूजा दोनों का वैराग्य का कारण कहते भए। एक वाराणसी नगरी वहां अचल नामा राजा विख्यात उसके राणी गिरदेवी गुणरूप रत्नोंकर शोभित। उसके एक दिन त्रिगुप्तिनामा मुनि शुभ चेष्टा के धरणहारे आहार के अर्थ आए। सो राणी ने परमश्रद्धा कर तिनकूं विधिपूर्वक आहार दिया। जब निरंतराय आहार हो चुका तब राणी ने मुनिकूं पूछी – हे नाथ! यह मेरा गृहवास सफल होयगा या नहीं।

भावार्थ – मेरे पुत्र होगा या नहीं। तब मुनि वचनगुप्ति भेद (तोड़कर) इसके संदेश निवारण के अर्थ आज्ञा करी। तेरे दोय पुत्र विवेकी होयंगे। सो हम दोय पुत्र त्रिगुप्ति मुनि की आज्ञा भए। पीछे भए, इसलिए सुगुप्ति और गुप्ति हमारे नाम माता पिता ने राखे सो हम दोनों राजकुमार लक्ष्मीकर मंडित सर्वकला के पारगामी लोकों के प्यारे नाना प्रकार की क्रीड़ा कर रमते घर में तिष्ठे।

अथानन्तर एक और वृत्तांत भया। गन्धवती नामा नगरी, वहां के राजा का पुरोहित सोम, उसके दोय पुत्र एक सुकेतु दूजा अग्निकेतु, तिनविषै अति प्रीतिसों सुकेतु का विवाह भया। विवाहकर यह चिन्ता भई कि कभी इस स्त्री के योगकर हम दोनों भाइयों में जुदायगी न होय। फिर शुभ कर्म के योग से सुकेतु प्रतिबोध होय अनन्तवीर्य स्वामी के समीप मुनि भया और लहुराभाई अग्निकेतु भाई के वियोग कर अत्यन्त दुखी होय बाराणसीविषै उग्र तापस भया। तब बड़ा भाई सुकेतु जो मुनि भया हुता, सो छोटे भाईकूं तापस भया जान संबोधिबे के अर्थ आयवे का उद्यमी भया, गुरु पै आज्ञा मांगी। तब गुरु ने कहा तू भाई को संबोधा चाहै है तो यह वृत्तांत सुन। तब इसने कहा – हे नाथ! वृत्तांत क्या?

तब गुरु ने कही – वह तुमसों मत पक्ष का वाद करेगा। और तुम्हारे वाद के समय एक कन्या गंगा के तीर तीन स्त्रियों सहित आवेगी। गौर है वर्ण जाका, नाना प्रकार के वस्त्र पहिरे। दिन के पिछले पहिर आवेगी। तो इन चिह्नों कर जान तू भाई से कहियो – इस कन्या का कहा शुभ अशुभ होनहार है सो कहो, तब वह विलखा होय तोहू कहेगा, मैं तो न जानूं तुम जानो हो तो कहो। तब तू कहियो – इस पुरविषै एक प्रवर नामा श्रेष्ठी धनवंत उसकी यह रुचिरा नामा पुत्री है। सो आजतैं तीसरे दिन मरणकर कंवर ग्रामविषै विलास नामा कन्या के पिता का मामा उसके छेली होयगी, ताहि ल्याली मारेगा, सो मरकर गाढर होयगी, फिर भैंस, भैंस से उसी विलास के विधुरा नामा पुत्री होयगी। यह वार्ता गुरु कही, तब सुकेतु सुनकर गुरु कूं प्रणामकर तापसीनि के आश्रम आया।

जा भांति गुरु कही हुती ताही भांति तापससों कही और ताही भांति भई। वह विधुरा नामा विलास की पुत्रीकूं प्रवर नामा श्रेष्ठी परणे लाग्या, तब अग्निकेतु कही यह तेरी रुचिरा नामा पुत्री सो मरकर अजा गाडर भैंस होय तेरे मामा के पुत्री भई, अब तू याहि परनै सो उचित नाहीं और

विलासकूं भी सर्व वृत्तांत कहा, कन्या के पूर्वभव कहे, सो सुनकर कन्याकूं जातिस्मरण भया, कुटुम्ब से मोह तज सब सभाकूं कहती भई – यह प्रवर मेरा पूर्वभव का पिता है सो ऐसा कह आर्यिका भई और अग्निकेतु तापस मुनि भया। यह वृत्तांत सुनकर हम दोनों भाईयों ने महा वैराग्यरूप होय अनन्तवीर्य स्वामी के निकट जैनेन्द्र व्रत अंगीकार किये। मोह के उदयकर प्राणियों के भववन के भटकावनहारे अनेक अनाचार होय हैं। सद्गुरु के प्रभावकर अनाचार का परिहार होय है। संसार असार है, माता पिता बांधव मित्र स्त्री संतानादिक तथा सुख दुख ही विनश्वर हैं। ऐसा सुन कर पक्षी भवदुख से भयभीत भया धर्मग्रहण की वांछा कर बारम्बार शब्द करता भया।

तब गुरु कही हे भद्रे! तू भय मत कर श्रावक के व्रत लेवो, जाकरि फिर दुख की परम्परा न पावै, अब तू शांतभाव धर काहू प्राणीकूं पीड़ा मत करै। अहिंसा व्रत धर, मृषा वाणी तज, सत्यव्रत आदरो परवस्तु का ग्रहण तज, परदारा तज, तथा सर्वथा ब्रह्मचर्य भज। तृष्णा तज सन्तोष भज। रात्रि भोजन का परिहार कर अभक्ष आहार का परित्याग कर। उत्तम चेष्टा का धारक होहु और त्रिकाल संध्याविषै जिनेन्द्र का ध्यान धरहु। हे सुबुद्धि! उपवासादि तपकर नाना प्रकार के नियम अंगीकार कर। प्रमाद रहित होय इन्द्रिय जीत साधुवों की भक्ति कर देव अरहंत गुरु निर्ग्रंथ, दयामयी धर्म निश्चयकर। या भांति मुनि ने आज्ञा करी तब पक्षी बारम्बार नमस्कार कर मुनि के निकट श्रावक के व्रत धरता भया।

सीता ने जानी यह उत्तम श्रावक भया तब हर्षित होय अपने हाथ से बहुत लडाया। ताहि विश्वास उपजाय दोऊ मुनि कहते भये – यह पक्षी तपस्वी शांत चित्त भया कहां जायेगा? गहन वनविषै अनेक क्रूर जीव हैं या सम्यग्दृष्टि पक्षी की तुमने सदा काल रक्षा करनी। यह गुरु के वचन सुन, सीता पक्षी के पालिवेरूप है चित्त जाका, अनुग्रहकर राख्या। राजा जनक की पुत्री कर कमलकर विश्वासती संती कैसी शोभती भई? जैसै गरुड़ की माता गरुड़कूं पालती शोभै। अर श्रीराम लक्ष्मण पक्षी को जिनधर्मी जान अतिधर्मानुराग करते भये। अर मुनिनि की स्तुति कर नमस्कार करते भये। दोनों चारण मुनि आकाश के मार्ग गए, सो जाते कैसे शोभते भये? मानों धर्मरूप समुद्र की कल्लोल ही हैं।

अर एक वन का हाथी मदोन्मत्त वन में उपद्रव करता भया। ताकूं लक्ष्मण वशकर तापर चढ़ राम पै आए। सो गजराज गिरिराज सारिखा ताहि देख राम प्रसन्न भए। अर वह ज्ञानी पक्षी मुनि की आज्ञा प्रमाण यथाविधि अणुव्रत पालता भया। महा भाग्य के योगतैं राम, लक्ष्मण, सीता का ताने समीप पाया। इनके लार पृथ्वीविषै बिहार करैं।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! धर्म का माहात्म्य देखो, याही

जन्मविषै वह विरूप पक्षी अद्भुत रूप होय गया, प्रथम अवस्थाविषै अनेक मांस का आहारी, दुर्गंध निंद्यपक्षी, सुगन्ध के भरे कंचन कलस समान, महासुगन्ध सुन्दर शरीर होय गया। कहूंइक अग्नि की शिखासमान प्रकाशमान, अर कहूंइक वैडूर्यमणि समान कहूंइक स्वर्ण समान, कहूंइक हरितमणि की प्रभाकूं धरे शोभता भया।

राम लक्ष्मण के समीप वह सुन्दर पक्षी श्रावक के व्रत धार महास्वाद संयुक्त भोजन करता भया। महाभाग्य पक्षी के जो श्रीराम की संगति पाई। राम के अनुग्रहतैं अनेक चर्चाधार दृढ़व्रती महाश्रद्धानी भया। श्रीराम ताहि अति लड़ावें, चन्दनकर चर्चित है अंग जाका, स्वर्ण की किंकिणी कर मण्डित रत्न की किरणनिकर शोभित है शरीर जाका, ताके शरीरविषै रत्न हेमकर उपजी किरणनि की जटा, तातैं याका नाम श्रीराम ने जटायू धर्‍या। राम लक्ष्मण सीताकूं यह अतिप्रिय, जीती है हंस की चाल जाने, महासुन्दर मनोहर चेष्टाकूं धरै, राम का मन मोहता भया। ता वन के और जे पक्षी वे देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भए।

यह व्रती तीनों संध्याविषै सीता के साथ भक्तिकर नम्रीभूत हुआ अरहन्त सिद्ध साधुनि की वंदना करै। महा दयावान् जानकी जटायू पक्षी पर अतिकृपा कर सावधान भई, सदा याकी रक्षा करै। कैसी है जानकी? जिन धर्मतैं है अनुराग जाका। वह पक्षी महाशुद्ध अमृत समान फल, अर महापवित्र, सोधा अन्न, निर्मल छाना जल इत्यादि शुभ वस्तु का आहार करता भया। जनक की पुत्री सीता ताल बजावे अर राम लक्ष्मण दोऊ भाई ताल के अनुसार तान लावें तब यह जटायू पक्षी रविसमान है कांति जाकी परम हर्षित भया ताल अर तान के अनुसार नृत्य करै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताको भाषावचनिकाविषै जटायु का व्याख्यान वर्णन करने वाला इकतालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।41।।

अथानन्तर पात्र दान के प्रभावकर राम लक्ष्मण सीता या लोक में रत्नहेमादि सम्पदाकर युक्त भए। एक सुवर्णमई रत्नजड़ित, अनेक रचनाकर सुन्दर, ताके मनोहर स्तम्भ, रमणीक वाड, बीच विराजवे का सुन्दर स्थानक, अर जाके मोतिन की माला लूम्बे, सुन्दर झालरी, सुगन्ध चंदन कपूरादि कर मंडित, जामें सेज आसन वादित्र वस्त्र सर्व सुगन्ध कर पूरित ऐसा एक विमान समान अद्भुत रथ बनाया, जाके चार हाथी जुतैं, ताविषै बैठे राम लक्ष्मण सीता जटायू सहित रमणीक वनविषै विचरें, जिनको काहू का भय नाहीं, काहू की घात नाहीं।

काहू ठौर एक दिन, काहू ठौर पन्द्रह दिन, काहू ठौर एक मास, मनवांछित क्रीड़ा करैं। यहां निवास करैं अक यहां निवास करैं, ऐसी है अभिलाषा जिनके। नवीन शिष्य की इच्छा की न्याईं इनकी इच्छा अनेक ठौर विचरती भई। महा निर्मल जे नीझरने तिनकूं निरखते, ऊंची नीची जायंगा

टार समभूमि निरखते, ऊंचे वृक्षनिकूं उलंघकर धीरे धीरे आगे गए। अपनी स्वेच्छा कर भ्रमण करते ये धीर वीर सिंह समान निर्भय दंडक वन के मध्य जाय प्राप्त भए। कैसा है स्थानक? कायरनकूं भयंकर, जहां पर्वत विचित्र शिखर के धारक, जहां रमणीक नीझरने झरें। जहां ते नदी निकसैं जिनका मोतिन के हार समान उज्ज्वल जल।

जहां अनेक वृक्ष बड़, पीपल बहेड़ा, पीलू, सरसी, बड़े-बड़े सरल वृक्ष, धवल वृक्ष, कदंब, तिलक जाति के वृक्ष, लोंद वृक्ष, अशोक जम्बू वृक्ष, पाटल, आम, आंवला, अमिली, चम्पा, कण्डीरशालि वृक्ष, ताड़ वृक्ष प्रियंगू, सप्तच्छद, तमाल, नागवृक्ष, नन्दीवृक्ष, अर्जुन जाति के वृक्ष, पलाश वृक्ष, मलयगिरि चन्दन, केसरि, भोजवृक्ष, हिंगोट वृक्ष, काला अगर अर सुफेद अगर, कुन्द वृक्ष, पद्माक वृक्ष, कुरंज वृक्ष, पारिजात वृक्ष, मिजन्या, केतकी, केवड़ा, महुवा, केदली, खैर, मदनवृक्ष, नीम्बू, खजूर, छुहारे, चारोली, नारंगी, विजोरा, दाड़िम, नारयल, हरड़े, कैथ, किरमाला, विदारीकंद, अगथिया, करंज, कटालीकूट, अजमोद, कौंच, कंकोल, मिर्च, लवंग, इलायची, जायफल, जावित्री, चव्य, चित्रक, सुपारी।

तांबूलों की बेलि, रक्तचन्दन, बेत, श्यामलता, मीठासींगी, हरिद्रा, अरलू, संहिजडा, कुडा वृक्ष, पद्माख, पिस्ता, मौलश्री, बीलवृक्ष, द्राक्षा, बिदाम, शाल्मलि इत्यादि अनेक जाति के वृक्ष, तिनकर शोभित है, अर स्वयमेव उपजे नाना प्रकार के धान्य, अर महारस के भरे फल अर पौंड़े (सांठे) इत्यादि अनेक वस्तुनिकर वह वन पूर्ण नाना प्रकार के वृक्ष, नाना प्रकार की बेल, नाना प्रकार के फल फूल तिनकर वन अति सुन्दर, मानो दूजा नन्दनवन ही है। सो शीतल मन्द सुगन्ध पवन कर कोमल कपोल हालें। सो ऐसा सोहै मानों वह वन राम के आइवे कर हर्ष कर नृत्य करैं है। अर सुगन्ध पवन कर उठी जो पुष्प की रज सो इनके अंग सूं आय लागै, सो मानों अटवी आलिंगन ही करै है। अर भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों श्रीराम के पधारने कर प्रसन्न भया वन गान ही करै है। अर महा मनोज्ञ गिरिन के नीझरनि के छांटेनि के उछरिवे के शब्द कर मानों हंसै ही हैं।

अर भैरुण्ड जाति के पक्षी तथा हंस, सारिस, कोयल, मयूर, सिचांड, कुरुचि, सूवा, मैना, कपोत, भारद्वाज इत्यादि अनेक पक्षिन के ऊंचे शब्द होय रहे हैं। सो मानों श्रीराम लक्ष्मण सीता के आइवे का आदर ही करै हैं। अर मानों वे पक्षी कोमल वाणी कर ऐसा वचन कहै हैं कि महाराज भले ही यहां आवो। अर सरोवरनि विषै सफेद श्याम अरुण कमल फूल रहे हैं, सो मानों श्रीराम के देखवेकूं कौतूहलतैं कमलरूप नेत्रनिकर देखवेकूं प्रवर्तै हैं। अर फलनि के भारकर नम्रीभूत जो वृक्ष सो मानों रामकूं नमै हैं। अर सुगन्ध पवन चालै है सो मानो वह राम के आयवेसूं आनन्द के स्वांस लेय है। सो श्रीराम सुमेरु के सौमनसवन समान वनकूं देखकर जानकीसूं कहते भए - कैसी

है जानकी? फूले कमल समान हैं नेत्र जाके।

पति कहै है – हे प्रिये! देखो यह वृक्ष बेलनिसूं लिपटे पुष्पनि के गुच्छनिकर मण्डित मानों गृहस्थ समान ही भासै है। अर प्रियंगु की बेल मौलसरी के वृक्षसूं लगी कैसी शोभै है जैसी जीवदया जिनधर्मसूं एकातसूं धरै सोहै। अर यह माधवीलता पवन कर चलायमान जे पल्लव तिनकर समीप के वृक्षनि कों स्पर्शे है। अर हे पतिव्रते! यह वन का हाथी मदकर आलसरूप हैं नेत्र जाके, सो हथिनी के अनुराग का प्रेर्‍या कमलनि के वन में प्रवेश करै हैं, जैसे अविद्या कहिए मिथ्यापरणति ताका प्रेरा अज्ञानी जीव, विषयवासनाविषै प्रवेश करै। कैसा है कमलनि का वन? बिकसि रहे जे कमलदल तिन पर भ्रमर गुंजार करैं हैं। अर दृढ़व्रते! यह इन्द्रनीलमणि समान श्यामवर्ण सर्प बिलते निकसकर मयूरकूं देख भागकर पीछे बिल में धसै हैं, जैसे विवेकतैं काम भाग भवन में छिपै।

अर देखो सिंह केशरी महा सिंह साहसरूप चरित्र इस पर्वत की गुफा में तिष्ठा हुता सो अपने रथ का नाद सुन निद्रा तज गुफा के द्वार आय निर्भय तिष्ठै है। अर वह बघेरा क्रूर है मुख जाका, गर्भ का भर्‍या, मांजरे नेत्रनि का धारक, मस्तक पर धरी है पूंछ जाने, नखनिकर वृक्ष की जडकूं कुचरे। अर मृगनि के समूह दूब के तिनके चरिवेकूं चतुर, अपने बालकनिकूं बीचकर मृगीनि सहित गमन करै हैं। सो नेत्रनिकर दूर ही सों अवलोकन करते अपने तांई दयावंत जान निर्भय भए बिचरै हैं। यह मृग मरणसूं कायर सो पापी जीवनि के भयतैं सावधान हैं, तुमकूं देख अति प्रीतिकूं प्राप्त भए विस्तीर्ण नेत्र कर बारम्बार देखै हैं। तुम्हारे नेत्र इनके नाहीं। तातैं आश्चर्यकूं प्राप्त भए हैं। अर यह वन का शूकर अपनी दांतली कर भूमिकूं विदारता, गर्व का भर्‍या चला जाय है, लग रह्या है कर्दम जाके।

अर हे गजगामिनी! या वनविषै अनेक जाति के गजनि की घटा विचरै है सो तुम्हारी सी चाल तिनकी नाहीं। तातैं तिहारी चाल देख अनुरागी भए हैं। अर ये चीते विचित्र अंग अनेक वर्णकर शोभै हैं, जैसे इन्द्रधनुष अनेक वर्णकर सोहै है। हे कलानिधे! यह वन अनेक अष्टापदादि क्रूर जीवनिकर भर्‍या है, अर अति सघन वृक्षनिकर भर्‍या है, अर नाना प्रकार के तृणनिकर पूर्ण है। कहीं इक महासुन्दर है जहां भयरहित मृगनि के समूह विचरै हैं। कहूं इक महा भयंकर अतिगहन है, जैसे महाराजनि का राज्य अति सुन्दर है तथापि दुष्टनिकूं भयंकर है।

अर कहीं इक महामदोन्मत्त गजराज वृक्षिनिकूं उखाड़े हैं। जैसैं मानी पुरुष धर्मरूप वृक्षकूं उखाड़े है। कहूं इक नवीन वृक्षनि के महासुगन्ध समूह पर भ्रमर गुंजार करै हैं, जैसैं दातानि के निकट याचक आवैं। काहू ठौर बन लाल होय रहा है, काहू ठौर श्वेत, काहू ठौर पीत, काहू ठौर

हरित, काहू ठौर श्याम, काहू ठौर चंचल, काहू ठौर निश्चल, काहू ठौर शब्द सहित, काहू ठौर शब्दरहित, काहू ठौर गहन, काहू ठौर विरले वृक्ष, काठू ठौर सुभग, काहू ठौर दुर्भग, काहू ठौर विरस, काहू ठौर सरस, काहू ठौर सम, काहू ठौर विषम, काहू ठौर तरुण, काहू ठौर वृक्षवृद्धि। या भांति नाना विधि भासै हैं।

यह दंडकवन विचित्र गति लिये है, जैसे कामनि का प्रपंच विचित्र गति लिये है। हे जनकसुते! जे जिनधर्मकूं प्राप्त भए हैं ते ही या कर्मप्रपंचतैं निवृत्त होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। जीवदयासमान कोऊ धर्म नाहीं। जो आप समान परजीवनिकूं जान सर्व जीविनि का दया करैं, तेई भवसागरसूं तिरैं। यह दण्डक नामा पर्वत, जाके शिखर आकाशसों लग रहे हैं ताका नाम यह दण्डक वन कहिए है। या गिरि के ऊंचे शिखर हैं अर अनेक धातु कर भरया है, जहां अनेक रंगनिकर आकाश नाना रंग होय रह्या है। पर्वत में नाना प्रकार की औषधी हैं। कई एक ऐसी जड़ी हैं जे दीपक समान प्रकाशरूप अंधकारकूं हरैं, तिनकूं पवन का भय नाहीं, पवन में प्रज्वलित। और या गिरितैं नीझरने झरैं हैं जिनका सुन्दर शब्द होय है जिनके छांटों की बूंद मोतिन की प्रभा करै है। या गिरि के स्थानक कई एक उज्ज्वल, कई एक नील, कई एक आरक्त दीखै हैं, अर अत्यन्त सुन्दर है।

सूर्य की किरण गिरि के वृक्षनि के अग्रभागविषै आय पड़े हैं अर पत्र पवनकरि चंचल हैं सो अत्यन्त सोहै हैं। हे सुबुद्धिरूपिणी! या वनविषै कहुंइक वृक्ष फूलनि के भारकर नम्रीभूत होय रहे हैं, अर कहुंइक नाना रंग के जे पुष्प तेई भए पट तिनकर शोभित हैं, अर कहुइंक मधुर शब्द बोलनहारे पक्षी तिनकरि शोभित हैं।

हे प्रिये! या पर्वततैं यह क्रौंचरवा नदी जगत् प्रसिद्ध निकसी है जैसे जिनराज के मुखतैं जिनवाणी निकसै। या नदी का जल ऐसा मिष्ट है जैसी तेरी चेष्टा मिष्ट है। हे सुकेशी! या नदी में पवनकरि उठैं हैं लहर, अर किनारे के वृक्षनि के पुष्प जल में पड़े हैं, सो अति शोभित हैं। कैसी है नदी? हंसनि के समूह अर झागनि के पटलनि करि अति उज्ज्वल है, अर ऊंचे शब्दकर युक्त है जल जाका, कहूं एक महाविकट पाषाणनि के समूह तिनकर विषम है, अर हजारां ग्राह मगर तिनकरि अति भयंकर है, अर कहुंइक अति वेगकर चला आवै है जल का जो प्रवाह ताकर दुर्निवार है, जैसैं महा मुनिन के तप की चेष्टा दुर्निवार है।

कहुंइक शीतल बहै हैं, कहुंइक वेगरूप बहै है, कहुंइक काली शिला, कहुंइक श्वेत शिला, तिनकी कांतिकर जल नील श्वेत दुरंग होय रहा है, मानो हलधर हरि का स्वरूप ही है। कहुंइक रक्तशिलानि के किरण की समूहकर नदी आरक्त होय रही है जैसैं सूर्य के उदयकरि पूर्व दिशा आरक्त होय, अर कहुंइक हरित पाषाण के समूहकर जलविषै हरितता भासै है, सो सिवाल की

शंका करै पक्षी पीछे होय जा रहे हैं। हे कांते! यहां कमलनि के समूहविषै मकरंद के लोभी भ्रमर निरंतर भ्रमण करै हैं, अर मकरंद की सुगन्धता कर जल सुगन्धमय होय रहा है, अर मकरंद के रंगनिकर जल सुरंग होय रहा है, परन्तु तिहारे शरीर की सुगन्धता समान मकरंद की सुगन्धि नाहीं, अर तिहारे रंग समान मकरंद का रंग नाहीं, मानों तुम कमलवदनी कहावो हो! सो तिहारे मुख की सुगन्धता ही से कमल सुगन्धित है। अर ये भ्रमर कमलनिकूं तज तिहारे मुखकमल पर गुंजार कर रहे हैं। अर नदी का जल काहू ठौर पाताल समान गम्भीर है मानो तिहारे मन की-सी गम्भीरताकूं धरै है। अर कहूं इक नीलकमलनिकर तिहारे नेत्रनि की छायाकूं धरै है अर यहां अनेक प्रकार के पक्षिनि के समूह नाना प्रकार क्रीड़ा करै हैं, जैसैं राजपुत्र अनेक प्रकार की क्रीड़ा करैं।

हे प्राणप्रिये! या नदी के पुलनि की बालू रेत अति सुन्दर शोभित है, जहां स्त्री सहित स्वर्ग कहिए विद्याधर अथवा खग कहिए पक्षी आनन्दकरि विचरै हैं। हे अखंडव्रते! यह नदी अनेक विलासनिकूं धरै समुद्र की ओर चली जाय है, जैसैं उत्तम शील की धरणहारी राजानि की कन्या भरतार के परणवेकूं जाय। कैसे हैं भरतार? महामनोहर प्रसिद्ध गुण के समूहकूं धर शुभ चेष्टा कर युक्त जगतविषै विख्यात हैं। हे दयारूपिनी! इस नदी के किनारे के वृक्ष फल फूलनिकर युक्त नाना प्रकार पक्षिनिकर मंडित जल की भरी कारी घटा समान सघन शोभाकूं धरै हैं। या भांति श्रीरामचन्द्रजी अति स्नेह के भरे वचन जनकसुतासूं कहते भए, परम विचित्र अर्थकूं धरै, तब वह पतिव्रता अति हर्ष के समूहकरि भरी पतिसूं प्रसन्न भई परम आदरसूं कहती भई।

हे करुणानिधे! यह नदी निर्मल जल जाका, रमणीक है तरंग जाविषै, हंसादिक पक्षिनि के समूह कर सुन्दर है परन्तु जैसा तिहारा चित्त निर्मल है तैसा नदी का जल निर्मल नाहीं। अर जैसैं तुम सघन अर सुगन्ध हो तैसा वन नाहीं, अर जैसैं तुम उच्च अर स्थिर हो तैसैं गिर नाहीं, अर जिनका मन तुम में अनुरागी भया है तिनका मन और ठौर जाय नाहीं। या भांति राजसुता के अनेक शुभ वचन श्रीराम भाई सहित सुनकर अतिप्रसन्न होय याकी प्रशंसा करते भए। कैसे हैं राम? रघुवंश रूप आकाशविषै चन्द्रमा समान उद्योतकारी हैं, नदी के तट पर मनोहर स्थल देख हाथिनि के रथ से उतर लक्ष्मण प्रथम ही नाना स्वादकूं धरै सुन्दर मिष्टफल लाया, अर सुगन्ध पुष्प लाया, बहुरि राम सहित जल क्रीड़ा का अनुरागी भया।

कैसा है लक्ष्मण? गुणनि की खान है मन जाका। जैसी जलक्रीड़ा इन्द्र नागेन्द्र चक्रवर्ती करैं तैसी राम लक्ष्मण ने करी। मानों वह नदी श्रीरामरूप कामदेवकूं देख रति समान मनोहर रूप धारती भई। कैसी है नदी? लहलहाट करती जे लहर तिनकी माला कहिए पंक्ति, ताकरि मर्दित किये हैं श्वेत श्याम कमलनि के पत्र जाने, अर उठे हैं झाग जामें, भ्रमर रूप हैं चूडा जाके, पक्षिनि के

जे शब्द तिनकर मानों मिष्ट शब्द करै है, वचनालाप करै है। राम जलक्रीड़ा कर कमलनि के वनविषै छिप रहे बहुरि शीघ्र ही आए। जनकसुतासूं जलकेलि करते भए। इनकी चेष्टा देख वन के तिर्यंच हू और तरफ से मन रोक एकाग्र चित्त होय इनकी ओर निरखते भए।

कैसे हैं दोऊ वीर? कठोरता से रहित है मन जिनका, अर मनोहर है चेष्टा जिनकी, सीता गान करती भई। सो गान के अनुसार रामचन्द्र ताल देते भए। मृदंगनिकरि अति सुन्दर राम जलक्रीड़ाविषै आसक्त अर लक्ष्मण चौगिरदा फिरै। कैसा है लक्ष्मण? भाई के गुणनिविषै आसक्त है बुद्धि जाकी। राम अपनी इच्छा प्रमाण जलक्रीड़ा कर समीप के मृगनिकूं आनन्द उपजाय, जलक्रीड़ातैं निवृत्त भए। महा प्रसन्न जे वन के मिष्ट फल तिनकर क्षुधा निवारणकर लतामंडपविषै तिष्ठे। जहां सूर्य का आताप नाहीं। ये देवनि सारिखे सुन्दर नाना प्रकार की सुन्दर कथा करते भए। सीता सहित अति आनन्दसूं तिष्ठे। कैसी है सीता? जटायू के मस्तक पर हाथ है जाका।

तहां राम लक्ष्मणसूं कहै हैं – हे भ्रात! यह नाना प्रकार के वृक्ष स्वादुफल कर संयुक्त, अर नदी निर्मल जल की भरी, अर जहां लतानि के मंडप, अर यह दंडकनामागिरि अनेक रत्ननिकर पूर्ण, यहां अनेक स्थानक क्रीड़ा करने के हैं। तातैं या गिरि के निकट एक सुन्दर नगर बसावें। अर यह वन अत्यन्त मनोहर औरनितैं अगोचर, यहां निवास हर्ष का कारण है। यहां स्थानक कर हे भाई! तू दोऊ माताानि के लायवेकूं जाहु, वे अत्यन्त शोकवंती हैं सो शीघ्र ही लावहु, अथवा तू यहां रहै अर सीता तथा जटायू भी यहां रहै, मैं मातानि के ल्यायवेकूं जाऊंगा। तब लक्ष्मण हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया जो आपकी आज्ञा होयगी सो होयगा।

तब राम कहते भए – अब तो वर्षा ऋतु आई, अर ग्रीष्म ऋतु गई, यह वर्षाऋतु अति भयंकर है, जाविषै समुद्र समान गाजते मेघघटानि के समूह विचरै हैं, चालते अंजनगिरि समान दशोंदिशाविषै श्यामता होय रही है। विजुरी चमकै है, बगुलानि की पंक्ति विचरै है अर निरन्तर बादलनि के जल बरसै है जैसैं भगवान के जन्मकल्याणक विषै देव रत्नधारा बरसावैं। अर देख! हे भ्रात! यह श्यामघटा तेरे रंगसमान सुन्दर जल की बूंद बरसावै हैं, जैसैं तू दान की धारा बरसावै। ये बादल आकाशविषै विचरते विजुरी के चमत्कारकरि युक्त बड़े बड़े गिरिनकूं अपनी धाराकर आछादते, ध्वनि करते संते कैसे सोहै हैं, जैसै तुम पीत वस्त्र पहिरे अनेक राजानिकूं आज्ञा करते पृथ्वीकूं कृपादृष्टिरूप अमृत की वृष्टि कर सींचते सोहो।

हे वीर! ये कई एक बादल पवन के वेग से आकाशविषै भ्रमैं हैं, जैसे यौवन अवस्थाविषै असंयमियों का मन विषय वासनाविषै भ्रमै। अर यह मेघ नाज के खेत छोड़ वृथा पर्वत के विषै बरषै है, जैसे कोई द्रव्यवान पात्रदान अर करुणादान तज वेश्यादिक कुमार्गविषै धन खोवै।

हे लक्ष्मण! या वर्षाऋतुविषै अतिवेगसूं नदी बहै है, अर धरती कीचसूं भर रही है अर प्रचंड पवन बाजै है, भूमिविषै हरितकाय फैल रही है, अर त्रसजीव विशेषता से हैं, या समयविषै विवेकिनि का विहार नाहीं। ऐसे वचन श्रीरामचन्द्र के सुनकर सुमित्रा का नन्दन लक्ष्मण बोला – हे नाथ! जो आप आज्ञा करोगे सो ही मैं करूंगा। ऐसी सुन्दर कथा करते दोऊ वीर महाधीर सुन्दर स्थानकविषै सुखसूं वर्षाकाल पूर्ण करते भए। कैसा है वर्षाकाल? जा समय सूर्य नाहीं दीखै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै दंडकवनविषै निवास वर्णन करने वाला बियालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।42।।

अथानन्तर वर्षा ऋतु व्यतीत भई। शरद ऋतु का आगमन भया। मानों यह शरदऋतु चन्द्रमा की किरणरूप वाणनिकरि वर्षारूप बैरीकूं जीत पृथ्वीविषै अपना प्रताप विस्तारती भई। दिशारूप जे स्त्री सो, फूल रहे हैं फूल जिनके ऐसे वृक्षनि की सुगंधता कर सुगन्धित भई है। अर वर्षा समयविषै कारी घटानिकर जो आकाश श्याम हुता सो अब चन्द्रकांति कर उज्ज्वल शोभता भया, मानों क्षीर सागर के जलकरि धोया है। अर विजलीरूप स्वर्ण सांकल कर युक्त, वर्षाकालरूपी गज, पृथ्वीरूप लक्ष्मीकूं स्नान कराय कहां जाता रहा? अर शरद के योगतैं कमल फूले तिन पर भ्रमर गुंजार करते भए, हंस क्रीड़ा करते भए, नदीन के जल निर्मल होय गए, दोऊ किनारे महासुन्दर भासते गए, मानों शरदकाल रूप नायिककूं पाय सरितारूप कामिनी कांतिकूं प्राप्त भई है। अर वन वर्षा अर पवनकर छूटे कैसे शोभते भए मानों निद्राकरि रहित जाग्रत दशाकूं प्राप्त भए हैं। सरोवरनिविषै सरोजनि पर भ्रमर गुंजार करै हैं, अर वनविषै वृक्षनिविषै पक्षी नाद करै हैं सो मानों परस्पर वार्ता ही करै हैं। अर रजनीरूप नायिका नाना प्रकार के पुष्पनि की सुगन्धता कर सुगन्धित निर्मल आकाशरूप वस्त्र पहिरे चन्द्रमारूप तिलक धरे मानो शरदकाल रूप नायक पै जाय है। अर कामीजननिकूं काम उपजावती केतकी के पुष्पनि की रज कर सुगन्ध पवन चलै है। या भांति शरदऋतु प्रवर्ती।

सो लक्ष्मण बड़े भाई की आज्ञा मांग सिंह समान महा पराक्रमी बन देखवेकूं अकेला निकस्या। सो आगै गए एक सुगन्ध पवन आई। तब लक्ष्मण विचारते भए यह सुगन्ध काहे की है? ऐसी अद्भुत सुगन्ध वृक्षनि की न होय, अथवा मेरे शरीर की हू ऐसी सुगन्ध नाहीं। यह सीताजी के अंग की सुगन्ध होय तथा रामजी के अंग की सुगन्ध होय, तथा कोऊ देव आया होय। ऐसा संदेह लक्ष्मणकूं उपजा।

सो यह कथा राजा श्रेणिक सुन गौतम स्वामीसूं पूछता भया – हे प्रभो! जो सुगन्धकर वासुदेवकूं आश्चर्य उपजा सो वह सुगन्ध काहे की? तब गौतम गणधर कहते भए। कैसे हैं

गौतम? संदेहरूप तिमिर दूर करवेकूं सूर्य हैं, सर्वलोक की चेष्टाकूं जाने हैं, पापरूप रज के उड़ावने को पवन हैं।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! द्वितीय तीर्थंकर श्रीअजितनाथ तिनके समोसरण में मेघवाहन विद्याधर रावण का बड़ा, शरणे आया। ताहि राक्षसनि के इन्द्र महाभीम ने त्रिकूटाचल पर्वत के समीप राक्षसद्वीप, तहां लंका नामा नगरी, सो कृपाकर दई। अर यह रहस्य की बात कही, हे विद्याधर! सुनहु। भरत क्षेत्र के दक्षिण दिशा की तरफ लवणसमुद्र के उत्तर की ओर पृथ्वी के उदर विषै एक अलंकारोदय नामा नगर है, सो अद्भुत स्थानक है। अर नाना प्रकार रत्ननि की किरणनिकरि मंडित है। देवनिकूं भी आश्चर्य उपजावै तो मनुष्यनि की कहा बात। भूमिगोचरीनिकूं तो अगम्य है, अर विद्याधरकूं भी अतिविषम है, चिंतवनविषै न आवै, सर्व गुणनिकरि पूर्ण है। जहां मणिनि के मंदिर हैं, परचक्रतैं अगोचर है। सो कदाचित् तुमकूं अथवा तेरे सन्तान के राजानिकूं लंकाविषै परचक्र का भय उपजै तो अलंकारोदयपुरविषै निर्भय भए तिष्ठियो। याहि पाताललंका कहै हैं।

ऐसा कहकर महाभीम बुद्धिमान राक्षसनि के इन्द्र ने अनुग्रह कर रावण के बड़ेनिकूं लंका अर पाताललंका दई, अर राक्षसद्वीप दिया। सो यहां इनके वंश में अनेक राजा भए। बड़े बड़े विवेकी व्रतधारी भए। सो रावण के बड़े विद्याधर कुलविषै उपजे हैं, देव नाहीं। विद्याधर अर देवनिविषै भेद है, जैसा तिलक अर पर्वत कर्दम अर चन्दन, पाषाण अर रत्नविषै बड़ा भेद। देवनि की शक्ति बड़ी, कांति बड़ी। अर विद्याधर तो मनुष्य हैं, क्षत्री, वैश्य, शूद्र यह तीन कुल हैं। गर्भवास के खेद भुगतैं हैं। विद्याधर साधन कर आकाशविषै विचरै हैं। सो अढ़ाई द्वीप पर्यंत गमन करै हैं। अर देव गर्भवास से उपजै नाहीं, महासुन्दर स्वरूप, पवित्र, धातु उपधातुकर रहित, आंखनि की पलक लगे नाहीं, सदा जाग्रत, जरारोग रहित, नवयौवन, तेजस्वी, उदार, सौभाग्यवंत, महासुखी, स्वभावहीतैं विद्यावंत, अवधिनेत्र, चाहें जैसा रूप करैं, स्वेच्छाचारी। देव विद्याधरनि का कहा सम्बन्ध?

हे श्रेणिक! ये लंका के विद्याधर राक्षस द्वीपविषै बसैं, तातैं राक्षस कहाए। ये मनुष्य क्षत्रीवंश विद्याधर हैं, देव हू नाहीं, राक्षस हू नाहीं। इनके वंशविषै लंकाविषै अजितनाथ के समयतैं लेकर मुनिसुव्रतनाथ के समय पर्यंत अनेक सहस्र राजा प्रशंसा करने योग्य भए। कई सिद्ध भए, कई सर्वार्थसिद्ध गए, कई स्वर्गविषै देव भए, कई एक पापी नरक गए। अब ता वंशविषै तीन खण्ड का अधिपति जो रावण सो राज्य करै है। ताकी बहिन चन्द्रनखा रूपकरि अनूपम, सो महा पराक्रमवंत खरदूषण ने परणी, वह चौदह हजार राजानि का शिरोमणी, रावण की सेनाविषै मुख्य, सो दिग्पाल समान अलंकारपुर जो पाताललंका वहां थाने रहे है। ताके सम्बूक अर सुन्दर ये दो

पुत्र, रावण के भानजे पृथ्वीविषै अतिमान्य भए।

सो गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! माता पिता ने सम्बूककूं बहुत मने किया। तथापि काल का प्रेर्या सूर्यहास खड्ग साधिवे के अर्थ महाभयानक वनविषै प्रवेश करता भया। शास्त्रोक्त आचारकूं आचरता संता सूर्यहास खड्ग के साधिवेकूं उद्यमी भया। एक ही अन्न का आहारी, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, विद्या साधिवेकूं बांस के बीड़े में यह कहकर बैठा कि जब मेरा पूर्ण साधन होयगा, तब ही मैं बाहिर आऊंगा, ता पहिली कोई बीड़े में आवेगा अर मेरी दृष्टि पड़ेगा तो ताहि मैं मारूंगा। ऐसा कहकर एकांत बैठा। सो कहां बैठा? दंडकवन में क्रोचवा नदी के उत्तर तीर बांस के बीड़े में बैठा। बारह वर्ष साधन किया, खड्ग प्रकट भया। सो सात दिनविषै यह न लेय तो खड्ग पर के हाथ जाय, अर यह मारा जाय। सो चन्द्रनखा निरन्तर पुत्र के निकट भोजन लेय आवती सो खड्ग देख प्रसन्न भई, अर पतिसूं जाय कही कि सम्बूक को सूर्यहास खड्ग सिद्ध भया। अब मेरा पुत्र मेरु की तीन प्रदक्षिणा कर आवेगा। सो यह तो ऐसे मनोरथ करै, अर ता वनविषै भ्रमता लक्ष्मण आया। हजारां देवनिकरि रक्षायोग्य खड्ग, स्वभाव सुगन्ध, अद्‌भुत रत्न।

सो गौतम कहै हैं – हे श्रेणिक! वह देवोपुनीत खड्ग महासुगन्ध दिव्य गंधादिकर लिप्त, कल्पवृक्षनि के पुष्पनि की माला तिनकरि युक्त, सो सूर्यहास खड्ग की सुगन्ध लक्ष्मणकूं आई। लक्ष्मण आश्चर्यकूं प्राप्त भया और कार्य तज सीधा शीघ्र ही बांस की ओर आया, सिंह समान निर्भय देखता भया। वृक्षनिकरि आच्छादित महाविषम स्थल, जहां बेलनि के समूह अनेक जाल, ऊंचे पाषाण, तहां मध्यविषै समभूमि, सुन्दर क्षेत्र, श्रीविचित्ररथ मुनि का निर्वाणक्षेत्र सुवर्ण के कमलनिकरि पूरित, ताके मध्य एक बांसनि का बीडा, ताके ऊपर खड्ग आय रहा है। सो ताकी किरण के समूहकरि बांसनि का बीड़ा प्रकाशरूप होय रहा है। सो लक्ष्मण ने आश्चर्यकूं पाय निशंक होय खड्ग लिया। अर ताकी तीक्ष्णता जानने के अर्थ बांस के बीड़ा पर बाह्या, सो सम्बूक सहित बांस का बीड़ा कट गया। अर खड्ग के रक्षक सहस्रों देव लक्ष्मण के हाथविषै खड्ग आया जान कहते भए तुम हमारे स्वामी हो। ऐसा कह नमस्कार कर पूजते भए।

अथानन्तर लक्ष्मणकूं बहुत बेर लगी जान, रामचन्द्र सीतासूं कहते भए – लक्ष्मण कहां गया, हे भद्र जटायू! तू उड़कर देख लक्ष्मण आवै है। तब सीता बोली – हे नाथ! वह लक्ष्मण आया, केसर कर चरचा है अंग जाका, नाना प्रकार की माला अर सुन्दर वस्त्र पहिरे, अर एक खड्ग अद्‌भुत लिए आवै है। सो खड्गसूं ऐसा सोहै जैसा केसरी सिंहसूं पर्वत शोभै। तब राम आश्चर्यकूं प्राप्त भया है मन जिनका, अति हर्षित होय लक्ष्मणकूं उठकर उर से लगाय लिया, सकल वृत्तांत पूछ्या।

तब लक्ष्मण सर्व बात कही, आप भाई सहित सुख से विराजे। नाना प्रकार की कथा करैं,

अर सम्बूक की माता चन्द्रनखा प्रतिदिन एक ही अन्न भोजन लावती हुती। सो आगे आय कर देखे तो बांस का बीड़ा कटा पड़ा है। तब विचारती भई जो मेरे पुत्र ने भला न किया, जहां इतने दिन रहा अर विद्या सिद्ध भई ताही बीड़े को काटा सो योग्य नाहीं। अब अटवी छोड़ कहां गया? इत उत देखे तो अस्त होता जो सूर्य ताके मंडल समान कुण्डल सहित सिर पड़ा है। देखकर ताहि मूर्छा आय गई। सो मूर्छा याका परम उपकार किया, नातर पुत्र के मरणकरि यह कहां जीवै। बहुरि केतीक बेर में याहि चेत भया तब हाहाकार कर उठी। पुत्र का कटा मस्तक देख शोककर अतिविलाप किया।

नेत्र आंसूनिसूं भर गए, अकेली वन में कुरची की न्याईं पुकारती भई – हा पुत्र! बारह वर्ष अर चार दिन यहां व्यतीत भए, तैसें तीन दिन और हू क्यों न निकसि गए? तोहि मरण कहां ते आया? हाय पापी काल। मैं तेरा कहा बिगाड्या जो नेत्रनि का निधि पुत्र मेरा तत्काल विनास्या। मैं पापिनी परभव में काहू के बालक हता सो मेरा बालक हता गया।

हे पुत्र! आर्ति का मेटनहारा एक वचन तो मुखसूं कह। हे वत्स! आ, अपना मनोहर रूप मोहि दिखा। ऐसा माया रूप अमंगल क्रीड़ा करना तोहि उचित नाहीं। अब तक तैं माता की आज्ञा कबहु न लोपी। अब नि:कारण यह विनयलोप कार्य करना तोहि योग्य नाहीं। इत्यादिक विकल्प कर विचारती भई – नि:संदेह मेरा पुत्र परलोककूं प्राप्त भया। विचारा कुछ और ही हुता अर भया कुछ और ही, यह बात विचार में न हुती सो भई। हे पुत्र! जो तू जीवता अर सूर्यहास खड्ग सिद्ध होता तो जैसे चन्द्रहास के धारक रावण के सन्मुख कोऊ नाहीं आय सकै है तैसें तेरे सन्मुख कोऊ न आय सकता। मानों चन्द्रहास मेरे भाई के हाथ में स्थानक किया सो अपना विरोधी सूर्यहास ताहि तेरे हाथ में न देख सक्या।

अर भयानक वन में अकेला निर्दोष नियम का धारी ताहि मारवेकूं जाके हाथ चले, सो ऐसा पापी खोटा बैरी कौन है? जा दुष्ट ने तोहि हत्या। अब वह कहां जीवता जायगा। या भांति विलाप करती पुत्र का मस्तक गोद में लेय चूमती भई। मूंगा समान आरक्त हैं नेत्र जाके। बहुरि शोक तज, क्रोधरूप होय, शत्रु के मारवेकूं दौड़ी। सो चली चली तहां आई, जहां दोऊ भाई विराजे हुते। दोऊ महा रूपवान, मन मोहिबे के कारण। तिनकूं देख याका प्रबल क्रोध तत्काल जाता रहा। तत्काल राग उपजा, मनविषै चितवती भई, इन दोऊनि में जो मोहि इच्छै ताहि मैं सेवूं। यह विचार तत्काल कामातुर भई।

जैसैं कमलनि के वनविषै हंसनी मोहित होय, अर महा ह्रदविषै भैंस अनुरागिनी होय, अर हरे धान के खेतविषै हरिणी अभिलाषिणी होय तैसैं इनविषै यह आसक्त भई। सो एक पुन्नागवृक्ष के

नीचे बैठी रुदन करै, अतिदीन शब्द उचारै, वन की रज कर धूसरा होय रहा है अंग जाका। ताहि देखकर राम की रमणी सीता अति दयालुचित्त उठकर ताके समीप आय कहती भई। तू शोक मत कर। हाथ पकड़ ताहि शुभ वचन कह धीर्य बंधाय राम के निकट लाई। तब वह राम ताहि कहते भए। तू कौन है? यह दुष्ट जीवनि का भरा वन ताविषै अकेली क्यों विचरै है?

तब वह कमल सरीखे हैं नेत्र जाके, अर भ्रमर की गुंजार समान हैं वचन जाके, सो कहती भई – हे पुरुषोत्तम! मेरी माता तो मरणकूं प्राप्त भई सो मोकूं गम्य नाहीं, मैं बालक हुती। बहुरि ताके शोककरि पिता भी परलोक गया। सो मैं पूर्वले पापतैं कुटुम्बरहित दंडक वनविषै आई, मेरे मरण की अभिलाषा सो या भयानक वन में काहू दुष्ट जीव ने न भखी, बहुत दिननतैं या वनविषै भटक रही हूं। आज मेरे कोऊ पाप कर्म का नाश भया सो आपका दर्शन भया। अब मेरे प्राण न छूटें ता पहिले मोहि कृपाकर इच्छहु। जो कन्या कुलवंती शीलवंती होय ताहि कौन न इच्छै? सब ही इच्छै।

यह याके लज्जारहित वचन सुनकर दोऊ भाई नरोत्तम परस्पर अवलोकन कर मौनसूं तिष्ठे। कैसे हैं दोऊ भाई? सर्वशास्त्रनि के अर्थ का जो ज्ञान सोई भया जल, ताकरि धोया है मन जिनका, कृत्य अकृत्य के विवेकविषै प्रवीण। तब वह इनका चित्त निष्काम जान निश्वास नाख कहती भई – मैं जाऊं? तब राम लक्ष्मण बोले जो तेरी इच्छा होय सो कर। तब वह चली गई। ताके गए पीछे राम लक्ष्मण सीता आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर यह क्रोधायमान होय शीघ्र पति के समीप गई। अर लक्ष्मण मन में विचारता भया जो यह कौन की पुत्री, कौन देशविषै उपजी, समूह से विछुरी मृगी समान यहां कहांसूं आई।

हे श्रणिक! यह कार्य कर्त्तव्य, यह न कर्त्तव्य, याका परिपाक शुभ वा अशुभ, ऐसा विचार अविवेकी न जानें, अज्ञानरूप तिमिर करि आच्छादित है बुद्धि जिनकी। अर प्रवीण बुद्धि महाविवेकी, अविवेकतैं रहित हैं, सो या लोकविषै ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाशकर योग्य अयोग्यकूं जान अयोग्य के त्यागी होय योग्य क्रियाविषै प्रवृत्तै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै शम्बूक का वध वर्णन करने वाला तेतालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।43।।

अथानन्तर जैसैं ह्रदय का तट फूट जाय अर जल का प्रवाह विस्तारकूं प्राप्त होय तैसैं खरदूषण की स्त्री का राम लक्ष्मण से राग उपजा हुता सो उनकी अबांछातैं विध्वंस भया। तब शोक का प्रवाह प्रकट भया, अतिव्याकुल होय नाना प्रकार विलाप करती भई, अरतिरूप अग्निकर तप्तायमान है अंग जाका। जैसे बछड़े बिना गाय विलाप करै, तैसे शोक करती भई। झरे

हैं नेत्रनि के आंसू जाके सो विलाप करती पति देखी। नष्ट भया है धीर्य जाका अर धूरकर धूसरा है अंग जाका, बिखर रहे हैं केशनि के समूह जाके, अर शिथिल होय रही है कटिमेखला जाकी। अर नखनिकर विदारे गए हैं वक्षस्थल, कुक्ष, अर जंघा जाकी, सो रुधिरकरि आरक्त हैं। अर आवरण रहित लावण्यता रहित, अर फट गई है चोली जाकी।

जैसै माते हाथी ने कमलनीकूं दलमली होय तैसी याहि देख, पति धीर्य बन्धाय पूछता भया – हे कांते! कौन दुष्ट ने तोहि ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त करी। सो कहो, वह कौन है जाहि आज आठवां चन्द्रमा है अथवा मरण ताके निकट आया है। वह मूढ़ पहाड़ के शिखर पर चढ़ सोवै है, सूर्य से क्रीड़ाकर अंधकूप में पड़े हैं। देव तासूं रूसा है, मेरी क्रोधरूप अग्निविषै पतंग की नाईं पड़ेगा। धिक्कार ता पापी अविवेकी को, वह पशु समान अपवित्र, अनीति, यह लोक परलोक भ्रष्ट, जानै तोहि दुखाई। तू बडवानल की शिखा समान है, रुदन मत कर, और स्त्रीनि सारिखी तू नाहीं। बड़े वंश की पुत्री, बड़े घर परणी आई है। अब ही ता दुराचारीकूं हस्त तलते हण परलोककूं प्राप्त कराऊंगा, जैसैं सिंह उन्मत्त हाथीकूं हणै।

या भांति जब पति ने कही तब चन्द्रनखा महाकष्टथकी रुदन तज, गद्‌गद वाणीसूं कहती भई, अलकनिकर आच्छादित हैं कपोल जाके, हे नाथ! मैं पुत्र के देखवेकूं वनविषै नित्य जाती हुती, सो आज पुत्र का मस्तक कटा भूमि में पर्‌या देख्या। अर रुधिर की धाराकर बांसों का बीड़ा आरक्त देख्या, काहू पापी ने मेरे पुत्रकूं मार खड्‌गरत्न लिया। कैसा है खड्‌ग? देवनिकर सेवने योग्य। सो मैं अनेक दुःखनि का भाजन रहित पुत्र का मस्तक गोद में लेय विलाप करती भई सो जा पापी ने शम्बूककूं मार्‌या हुता ताने मोहि अनीति विचारी, भुजाकर पकड़ी, मैं कही मोहि छांड सो पापी नीच कुली छांड़े नाहीं, नखनिकरि दांतननिकरि विदारी।

निर्जन वनविषै मैं अकेली वह बलवान पुरुष, मैं अबला तथापि पूर्ण पुण्य से शील बचाय महाकष्टतैं मैं यहां आई। सर्व विद्याधरनि का स्वामी, तीन खण्ड अधिपति, तीनलोकविषै प्रसिद्ध रावण काहू से न जीत्या जाय सो मेरा भाई, अर तुम खरदूषण नामा महाराज, दैत्यजाति के जे विद्याधर तिनके अधिपति, मेरे भरतार तथापि मैं देवयोगतैं या अवस्थाकूं प्राप्त भई। ऐसे चन्द्रनखा के वचन सुन महा क्रोधकर तत्काल जहां पुत्र का शरीर मृतक पड्या हुता, तहां गया सो मूवा देखकर अति खेदखिन्न भया। पूर्व अवस्थाविषै पुत्र पूर्णमासी के चन्द्रमा समान हुता, सो महा भयानक भासता भया। खरदूषण ने अपने घर आय अपने कुटुम्ब से मन्त्र किया।

तब कई एक मंत्री कर्कशचित्त हुते वे कहते भए – हे देव! जाने खड्‌ग रत्न लिया अर पुत्र हता ताहि जो ढीला छोडोगे तो न जानिए कहा करै? सो ताका शीघ्र यत्न करहु। अर कईएक

विवेकी कहते भए – हे नाथ! यह लघुकार्य नाहीं, सर्व सामन्त एकत्र करहु, अर रावण पै हू पत्र पठावहु। जिनके हाथ सूर्यहास खड्ग आया ते सामान्य पुरुष नाहीं। तातैं सर्व सामंत एकत्रकर जो विचार करना होय सो करहु, शीघ्रता न करहु। तदि रावण के निकट तो तत्काल दूत पठाया, दूत शीघ्रगामी अर तरुण। सो तत्काल रावण पै गया। रावण का उत्तर पीछा आवै ताके पहिले खरदूषण अपने पुत्र के मरणकर महा द्वेष का भर्‍या सामन्तनिसूं कहता भया – वे रंक विद्याबल रहित भूमिगोचरी हमारी विद्याधरनि की सेनारूप समुद्र के तिरवेकूं समर्थ नाहीं। धिक्कार हमारे सूरापनकूं जो और का सहारा चाहै है। हमारी भुजा हैं वही सहाई हैं, अर दूजा कौन? ऐसा कहकर महा अभिमानकूं धरै शीघ्र ही मंदिरसूं निकस्या, आकाशमार्ग गमन किया, तेजरूप है मुख जाका। सो ताहि सर्वथा युद्धकूं सन्मुख जान चौदह हजार राजा संग चाले, सो दण्डक वन में आए तिनकी सेना के वादित्रनि के शब्द समुद्र के शब्द समान सीता सुनकर भयकूं प्राप्त भई।

हे नाथ! कहा है? ऐसे शब्द कह पति के अंगसूं लगी, जैसैं कल्पबेल कल्पवृक्षसूं लगै। तब राम कहते भए – हे प्रिये! भय मत कर। याहि धीर्य बंधाय विचारते भए – यह दुर्धर शब्द सिंह का है, अक मेघ का है, अक समुद्र का है, अक दुष्ट पक्षिन का है, अक आकाश पूर गया है? तब सीतासूं कहते भए – हे प्रिये! ये दुष्टपक्षी हैं जे मनुष्य अर पशुनिकूं ले जाए हैं, धनुष के टंकारतैं इन्हैं भगाऊं हूं। इतने ही में शत्रु की सेना निकट आई। नाना प्रकार के आयुधनिकर युक्त सुभट दृष्टि परे, जैसै पवन के प्रेरे मेघ घटानिक के समूह विचरै तैसैं विद्याधर विचरते भए। तब श्रीराम विचारी ये नन्दीश्वर द्वीपकूं भगवान की पूजा के अर्थ देव जाय हैं, अथवा बांसनि के बीड़े में काहू मनुष्यकूं हतकर लक्ष्मण खड्ग रत्न लाया, अर वह कन्या बन आई हुती सो कुशील स्त्री हुती, तानैं ये अपने कुटुम्ब के सामंत प्रेरे हैं। तातैं अब परसेना समीप आए निश्चिंत रहना उचित नाहीं। धनुष की ओर दृष्टि धरी अर बक्तर पहिरने की तैयारी करी। तब लक्ष्मण हाथ जोड़ सिर नवाय विनती करता भया।

हे देव! मोहि तिष्ठते आपकूं एता परिश्रम करना उचित नाहीं। आप राजपुत्री की रक्षा करहु, मैं शत्रुनि के सन्मुख जाऊं हूं। सो जो कदाचित् भीड़ पडेगी तो मैं सिंहनाद करूंगा, तब आप मेरी सहाय करियो। ऐसा कहिकर वक्तर पहर, शस्त्र धार, लक्ष्मण शत्रुनि के सन्मुख युद्धकूं चाल्या। सो वे विद्याधर लक्ष्मणकूं उत्तम आकार का धरनहारा वीराधिवीर श्रेष्ठ पुरुष देख जैसैं मेघ पर्वतकूं बेढ़े तैसैं बेढ़ते भए। शक्ति, मुदगर, सामान्य चक्र, बरछी, बाण इत्यादि शस्त्रनि की वर्षा करते भए। सो अकेला लक्ष्मण सर्व विद्याधरनि के चलाए बाण अपने शस्त्रनिकरि निवारता भया, अर आप विद्याधरनि की ओर आकाश में वज्रदंड वाण चलावता भया।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! अकेला लक्ष्मण विद्याधरनि की सेनाकूं बाणनिकरि ऐसा रोकता भया जैसैं संयमी साधु आत्मज्ञानकर विषयवासनाकूं रोके। लक्ष्मण ने शस्त्रनिकरि विद्याधरनि के सिर रत्ननि के आभरण कर मंडित, कुण्डलनिकरि शोभित आकाश से धरती पर परे, मानों अम्बर रूप सरोवर के कमल ही हैं। योधानि सहित पर्वत समान हाथी पड़े, अर अश्वनिसहित सामंत पड़े। भयानक शब्द करते होंठ डसते ऊर्धगामी वाणनिकर वासुदेव वाहनसहित योधानिकूं पीडता भया। ताही समय पुष्पकविमानविषै बैठ्या रावण आया।

सम्बूक के मारणहारे पुरुषनि पर उपज्या है महाक्रोध जाकूं सो मार्ग में राम के समीप सीता महा सतीकूं तिष्ठती देखता भया। सो देखकर महा मोहकूं प्राप्त भया। कैसी है सीता? जाहि लखि रति का रूप भी या समान न भासै, मानो साक्षात् लक्ष्मी ही है। चन्द्रमा समान सुन्दर वदन, निझन्यां के फूलसमान अधर, केसरी की कटि के समान कटि, लहलहात करते चंचल कमलपत्र समान लोचन, अर महा गजराज के कुम्भस्थल के शिखरसमान कुच, नवयौवन, सर्व गुणनिकर पूर्ण कांति के समूहकरि संयुक्त है शरीर जाका, मानो काम के धनुष की पिणच ही है, अर नेत्र जाके काम के वाण ही हैं, मानों नामकर्मरूप चितेरे ने अपनी चपलता निवाहने के निमित्त स्थिरताकर सुखसूं जैसी चाहिए तैसी बनाई है। जाहि लखे रावण की बुद्धि हर गई।

महारूप के अतिशयकूं धरे जो सीता ताके अवलोकन से सम्बूक के मारवेवारे पर जो क्रोध हुता सो जाता रह्या। अर सीता पर रागभाव उपज्या। चित्त की विचित्रगति है। मन में चितवता भया या बिना मेरा जीतव्य कहां? अर जो विभूति मेरे घर में है ताकरि कहा? यह अद्भुतरूप, अनुपम महासुन्दर नवयौवन। मोह खरदूषण की सेना में आया कोई न जाने। ता पहिले याहि हरकर घर ले जाऊँ। मेरी कीर्ति चन्द्रमा समान निर्मल सकल लोक में विस्तर रही है सो छिपकर ले जाने में मलिन न होय।

हे श्रेणिक! अर्थी दोषकूं न गिनै, तातैं गोप्य ले जाइवे का यत्न किया। या लोक में लोभसमान और अनर्थ नाहीं, अर लोभ में परस्त्री के लोभसमान महा अनर्थ नाहीं।

रावण ने अवलोकनी विद्यासूं वृत्तान्त पूछ्या सो वाके कहे से याके नाम कुल सब जाने – लक्ष्मण अनेकनिसूं लडनहारा एक युद्ध में गया, अर यह राम हैं। यह इनकी स्त्री सीता है, अर जब लक्ष्मण गया तब रामसूं ऐसा कह गया – जो मोपै भीड़ पड़ेगी तब सिंहनाद करूंगा, तब तुम मेरी सहाय करियो। सो वह सिंहनाद मैं करूं तब यह राम धनुषबाण लेय भाई पै जावैंगे अर मैं सीताकूं ले जाऊंगा, जैसैं पक्षी मांस की डलीकूं ले जाय। अर खरदूषण का पुत्र तो इनने मारा ही हुता अर ताकी स्त्री का अपमान किया। सो वह शक्ति आदि शस्त्रनिकर दोऊ भाइनिकूं मारेहीगा,

जैसैं महाप्रबल नदी का प्रवाह दोऊ ढाहे पाड़े। नदी के प्रवाह की शक्ति छिपी नाहीं है तैसैं खरदूषण की शक्ति काहूतैं छिपी नाहीं सब कोऊ जानै हैं। ऐसा विचार कर मूढ़मति काम कर पीड़ित रावण मरण के अर्थ सीता के हरण का उपाय करता भया। जैसैं दुर्बुद्धि बालक विष के लेने का उपाय करै।

अथानन्तर लक्ष्मण अर कटकसहित खरदूषण दोऊ में महायुद्ध होय रहा है, शस्त्रनि का प्रहार होय रहा है। अर इधर कपटकर रावण ने सिंहनाद किया, तामैं बारम्बार राम राम नाम यह शब्द किया। तब राम जानी कि यह सिंहनाद लक्ष्मण किया। सुनकर व्याकुल चित्त भए। जानी भाई पै भीड़ पड़ी। तब राम ने जानकीकूं कह्या – हे प्रिये! भय मत करहु, क्षण एक तिष्ठ, ऐसा कह निर्मल पुष्पनविषै छिपाई। अर जटायूकूं कहा – हे मित्र! यह स्त्री अबला जाति है, याकी रक्षा करियो। तुम हमारे मित्र हो, सहधर्मी हो। ऐसा कहकर आप धनुषबाण लेय चाले, सो अपशकुन भए, सो न गिने, महासतीकूं अकेली वनविषै छोड़ शीघ्र ही भाई पै गए। महारण में भाई के आगैं जाय ठाढ़े रहे, ता समय रावण सीताकूं उठायबेकूं आया, जैसा माता हाथी कमलनिकूं लेवे आवै।

कामरूप दाहकर प्रज्वलित है मन जाका, भूल गई है समस्त धर्म की बुद्धि जाकी, सीताकूं उठाय पुष्पक विमान पर धरने लाग्या। तब जटायूपक्षी स्वामी की स्त्रीकूं हरता देख क्रोधरूप अग्निकर प्रज्वलित भया। उठकर अतिवेगतैं रावण पर पड्या, तीक्ष्ण नखनि की अणी अर चूंच से रावण का उरस्थल रुधिर संयुक्त किया, अर अपनी कठोर पांखनिकर रावण के वस्त्र फाड़ डाले। रावण का सर्व शरीर खेदखिन्न भया, तब रावण ने जानी यह सीताकूं छुड़ावेगा, झंझट करेगा, तेतैं याका धनी आन पहुंचेगा। सो याहि मनोहर वस्तु का अवरोधक जान महाक्रोधकर हाथ की चपेट से मार्‍या सो अति कठोर हाथ की घात से पक्षी विह्वल होय पुकारता संता पृथ्वी में पड़ा मूर्छाकूं प्राप्त भया। तब रावण जनकसुताकूं पुष्पक विमान में धर अपने स्थान ले चाल्या।

हे श्रेणिक! यद्यपि रावण जानै है यह कार्य योग्य नाहीं। तथापि काम के वशीभूत हुवा सर्व विचार भूल गया। सीता महासती आपकूं परपुरुषकर हरी जान, राम के अनुराग से भीज रहा है चित्त जाका, महा शोकवंती होय, आरति रूप विलाप करती भई। तब रावण याहि निज भरतारविषै अनुरक्त जान, रुदन करती देख कछुइक उदास होय विचारता भया – जो यह निरंतर रोवै है, अर विरहकर व्याकुल है। अपने भरतार के गुण गावै है, अन्य संयोग का अभिलाष नाहीं। सो स्त्री अवध्य हैं, तातैं मैं मार न सकूं, अर कोऊ मेरी आज्ञा उलंघै तो ताहि मारूं।

अर मैं साधुनि के निकट व्रत लिया हुता जो परस्त्री मोहि न इच्छै ताहि मैं न सेऊं। सो मोहि व्रत दृढ़ राखना, याहि कोऊ उपायकर प्रसन्न करूं। उपाय किए प्रसन्न होयगी। जैसैं क्रोधवंत राजा

शीघ्र ही प्रसन्न न किया जाय तैसैं हठवंती स्त्री भी वश न करी जाय। जो कछु वस्तु है सो यत्नतैं सिद्ध होय है। मनवांछित विद्या, परलोक की क्रिया, अर मनभावती स्त्री ये यत्न से सिद्ध होंय। यह विचारकर रावण सीता के प्रसन्न होयवे का समय हेरे। कैसा है रावण? मरण आया है निकट जाके।

अथानन्तर श्रीराम ने वाणरूप जल की धाराकर पूर्ण जो रणमंडल तामें प्रवेश किया। सो लक्ष्मण देखकर कहता भया। हाय! हाय! एते दूर आप क्यों आए – हे देव! जानकींकूं अकेली वनविषै मेल आए। यह वन अनेक विग्रह का भरया है। तब राम कह्या मैं तेरा सिंहनाद सुन शीघ्र ही आया। तब लक्ष्मण कहा आप भली न करी, अब शीघ्र जहां जानकी है वहां जाहु। तब राम जानी वीर तो महाधीर है, याहि शत्रु का भय नाहीं। तब याकूं कही – तू परम उत्साह रूप है, बलवान बैरीकूं जीत, ऐसा कहकर आप, सीता की उपजी है शंका जिनको सो चंचल चित्त होय जानकी की दिशि चाले। क्षणमात्र में आय देखे तो जानकी नाहीं! तदि प्रथम तो विचारी कदाचित् सुरतिभंग भया हूं। बहुरि निर्धारण देखें तो सीता नाहीं। तब आप हाय सीता! ऐसा कह मूर्छा खाय धरती पर पड़े। सो धरती राम के मिलाप से ऐसी सोहती भई जैसे भरतार के मिलाप से भार्या सोहै।

बहुरि सचेत होय वृक्षनि की ओर दृष्टि धर प्रेम के भरे अत्यन्त आकुल होय कहते भए – हे देवी! तू कहां गई? क्यों न बोलहु? बहुत हास्यकरि कहा? वृक्षनि के आश्रय बैठी होय तो शीघ्र ही आवहु! कोपकर कहा? मैं तो शीघ्र ही तिहारे निकट आया। हे प्राणवल्लभे! ये तिहारा कोप हमें सुख का कारण नाहीं। या भांति विलाप करते फिरै हैं। सो एक नीची भूमि में जटायूकूं कंठगत प्राण देख्या। तब आप पक्षीकूं देख अत्यन्त खेदखिन्न होय याके समीप बैठ नमोकार मंत्र दिया। अर दर्शन ज्ञान चरित्र तप ये चार आराधना सुनाई, अरहंत सिद्ध साधु केवली प्रणीत धर्म का शरण लिवाया। पक्षी श्रावक के व्रत का धरणहारा। श्रीराम के अनुग्रहकरि समाधिमरण कर स्वर्गविषै देव भया, परम्पराय मोक्ष जायगा। पक्षी के मरण के पीछे आप यद्यपि ज्ञानरूप हैं, तथापि चारित्रमोह के वश होय महाशोकवन्त अकेले वनविषै प्रिया के वियोग के दाहकर मूर्छा खाय पड़े।

बहुरि सचेत होय महाव्याकुल महासती सीताकूं ढूंढ़ते फिरैं। निराश भए दीन वचन कहैं, जैसे भूत के आवेश कर युक्त पुरुष वृथा आलाप करै। छिद्र पाय महाभीम वन में काहू पापी ने जानकी हरी सो बहुत विपरीत करी, मोहि मारया, अब जो कोई मोहि प्रिया मिलावै, अर मेरा शोक हरै, ता समान मेरा परम बांधव नाहीं। हो वन के वृक्ष हो! तुम जनकसुता देखी? चम्पा के पुष्प समान रंग, कमलदल लोचन, सुकुमार चरण, निर्मल स्वभाव, उत्तम चाल, चित्त की उत्सव करणहारी, कमल के मकरंद समान सुगन्ध मुख का स्वांस, स्त्रीनि के मध्य श्रेष्ठ, तुमने पूर्व देखी होय तो कहो। या भांति वन के वृक्षनिसूं पूछै हैं, सो वे एकेन्द्री वृक्ष कहा उत्तर देवें। तब राम सीता के

गुणनिकरि हस्या है मन जाका, बहुरि मूर्छा खाय धरती पर पड़े। बहुरि सचेत होय महा क्रोधायमान वज्रावर्त धनुष हाथ में लिया, पिणच चढ़ाई टंकार किया, सो दशों दिशा शब्दायमान भई। सिंहनिकूं भय का उपजावनहारा नरसिंह ने धनुष का नाद किया। सो सिंह भाग गए, गजनि के मद उतर गए। तब धनुष उतार अत्यन्त विषादकूं प्राप्त होय बैठकर अपनी भूल का सोच करते भए – हाय हाय! में मिथ्या सिंहनाद के श्रवणकर विश्वास मान, वृथा जाय प्रिया खोई। जैसे मूढ़ जीव कुश्रुत का श्रवण सुन विश्वास मान, अविवेकी होय, शुभगतिकूं खोवै। सो मूढ़ के खोयवे का आश्चर्य नाहीं, परन्तु मैं धर्मबुद्धि वीतराग के मार्ग का श्रद्धानी, असमझ होय असुर की माया में मोहित हुवा, यह आश्चर्य की बात है।

जैसैं या भव वनविषै अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य की देह महापुण्य कर्मकर पाई, ताहि वृथा खोवे, सो बहुरि कब पावे? अर त्रैलोक्यविषै दुर्लभ महारत्न ताहि समुद्र में डारे, बहुरि कहां पावै? तैसै बनितारूप अमृत मेरे हाथ सूं गया? बहुरि कौन उपायकरि पाइये। या निर्जन वनविषै कौनकूं दोष दूं। मैं ताहि तजकर भाई पै गया सो कदाचित् कोपकर आर्या भई होय। अरण्य वनविषै मनुष्य नाहीं, कौनकूं जाय पूछें, जो हमकूं स्त्री की वार्ता कहे। ऐसा कोई या लोकविषै दयावान श्रेष्ठ पुरुष है, जो मोहि सीता दिखावै। वह महासती शीलवन्ती, सर्व पापरहित, मेरे हृदयकूं वल्लभ, मेरा मनरूप मंदिर ताके विरहरूप अग्निकर जरै है सो ताकी वार्तारूप जल के दानकर कौन बुझावै? ऐसा कहकर परम उदास, धरती की ओर है दृष्टि जाकी, बारम्बार कछुइक विचार कर निश्चल होय तिष्ठे। एक चकवी का शब्द निकट ही सुन्या सो सुनकर ताकी ओर निरखा।

बहुरि विचारी या गिरि का तट अत्यन्त सुगन्ध होय रहा है सो याही ओर गई होय अथवा यह कमलनि का वन है यहां कौतूहल के अर्थ गई होय? आगे याने यह वन देखा हुता सो स्थानक मनोहर है, नाना प्रकार पुष्पनिकर पूर्ण है, कदाचित् तहां क्षणमात्र गई होय? सो यह विचार आप वहां गए। वहां हू सीताकूं न देख्या, चकवी देखी। तब विचारी, वह पतिव्रता मेरे बिना अकेली कहां जाय। बहुरि व्याकुलताकूं प्राप्त होय, जायकर पर्वतसूं पूछते भए – हे गिरिराज! तू अनेक धातुनिकरि भस्या है, मैं राजा दशरथ का पुत्र रामचन्द्र तोहि पूछूं हूं, कमल सारिखे नेत्र हैं जाके, सो सीता मेरे मन की प्यारी, हंसगामिनी, सुन्दर स्तन के भारकरि नम्रीभूत है अंग जाका, किंदूरा समान अधर, सुन्दर नितम्ब, सो तुम कहूं देखी? वह कहां है?

तब पहाड़ कहा जवाब देय, इनके शब्द से गूंजा। तब आप जानी कछु याने स्पष्ट न कही, जानिए है याने ने देखी, वह महासती काल प्राप्त भई। यह नदी प्रचंड तरंगनि की धरनहारी अत्यन्त वेगकूं धरे बहै है, अविवेकवंती, ताने मेरी कांता हरी, जैसैं पाप की इच्छा विद्याकूं हरै।

अथवा कोई क्रूर सिंह क्षुधातुर भख गया होय, वह धर्मात्मा साधुवर्गनि की सेवक सिंहादिक के देखते ही नखादि के स्पर्श बिना ही प्राण देय। मेरा भाई भयानक रणविषै संग्राम में है सो जीवने का संशय ही है। यह संसार असार है। अर सर्व जीवराशि संशय रूप ही है।

अहो! यह बड़ा आश्चर्य है! जो मैं संसार का स्वरूप जानूं हूं अर दुखतैं शून्य होय रहा हूं। एक दुख पूरा नहीं परै है अर दूजा और आवै है। तातैं जानिए है यह संसार दुख का सागर ही है। जैसैं खोड़े पगकूं खंडित करना, अर दाहे मारे को भस्म करना, अर डिगेकूं गर्त में डारना। रामचन्द्रजी ने वनविषै भ्रमणकर मृग सिंहादिक अनेक जन्तु देखे परन्तु सीता न देखी। तब अपने आश्रम आय अत्यन्त दीन वदन, धनुष उतार पृथ्वी में तिष्ठे। बारम्बार अनेक विकल्प करते क्षणएक निश्चल होय मुख से पुकारते भए।

हे श्रेणिक! ऐसे महापुरुषनिकूं भी पूर्वोपार्जित अशुभ के उदयसूं दुख होय है। ऐसा जानकर अहो भव्यजीव हो! सदा जिनवर के धर्म में बुद्धि लगावो, संसारतैं ममता तजो। जे पुरुष संसार के विकारसूं पराङ्मुख होंय अर जिनवचनकूं नाहीं आराधे वे संसार के विषै शरणरहित पापरूप वृक्ष के कटुक फल भोगवै हैं, कर्मरूप शत्रु के आताप से खेदखिन्न हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सीताहरण वर्णन करने वाला चवालीसवां पर्व संपूर्ण भया।।44।।

अथानन्तर लक्ष्मण के समीप युद्धविषै खरदूषण का शत्रु विराधितनामा विद्याधर अपने मंत्री अर शूरवीरनि सहित पूर्ण आया, सो लक्ष्मणकूं अकेला युद्ध करता देख महानरोत्तम जान, अपने स्वार्थ की सिद्धि इनसे जान प्रसन्न भया। महा तेजकर देदीप्यमान शोभता भया। बाहनतैं उतर, गोड़े धरती लगाय, हाथ जोड़ सीस निवाय, अति नम्रीभूत होय परम विनयसूं कहता भया – हे नाथ! मैं आपका भक्त हूं, कछुइक मेरी विनती सुनो। तुम सारिखेनि का संसर्ग हम सारिखेनि के दुख का क्षय करनहारा है। वाने आधी कही आप सारी समझ गए। ताके मस्तक पर हाथ धर कहते भए तू डरे मत, हमारे पीछे खड़ा रह।

तब वह नमस्कार कर अति आश्चर्यकूं प्राप्त होय कहता भया – हे प्रभो! यह खरदूषण शत्रु महाशक्तिकूं धरै है, याहि आप निवारहु, अर सेना के योधानिकरि मैं लडूंगा। ऐसा कह खरदूषण के योद्धानिसूं विराधित लड़ने लाग्या। दौड़कर तिनके कटक पर पर्‍या, अपनी सेना सहित, झलझलाट करै है आयुधनि के समूह ताके। विराधित तिनकूं प्रकट कहता भया – मैं राजा चन्द्रोदय का पुत्र विराधित, घने दिननिविषै पिता का बैर लेवे आया हूं, युद्ध का अभिलाषी अब तुम कहां जावो हो? जो युद्ध में प्रवीण हो तो खड़े रहो। मैं ऐसा भयंकर फल दूंगा जैसा यम देय।

ऐसा कहा तब तिन योद्धानि के अर इनके महासंग्राम भया। अनेक सुभट दोऊ सेनानि के मारे गए। पियादे प्यादेनिसूं, घोड़नि के असवार घोड़नि के असवारनिसूं, हाथनि के असवार हाथीनि के असवारनिसूं, रथी रथीनिसूं परस्पर हर्षित होय युद्ध करते भए। वह वाहि बुलावे, या भांति परस्पर युद्ध कर दशों दिशानिकूं बाणनिकरि आच्छादित करते भए।

अथानन्तर लक्ष्मण अर खरदूषण का महायुद्ध भया, जैसे इन्द्र असुरेन्द्र के युद्ध होय। ता समय खरदूषण क्रोध कर मंडित लक्ष्मणसूं लाल नेत्र कर कहता भया – मेरा पुत्र निर्वैर सो तूने हत्या, अर हे चपल! तूने मेरी कांता के कुच मर्दन किए, सो पापी अब मेरी दृष्टिसूं कहां जायेगा। आज तीक्ष्ण वाणनिकरि तेरे प्राण हरूंगा, तैं जैसे कर्म किए हैं तैसा फल भोगवेगा। हे क्षुद्र, निर्लज्ज, परस्त्री संगलोलुपी! मेरे सन्मुख आयकर परलोक जाहु। तब ताके कठोर वचननिकर प्रज्वलित भया है मन जाका सो लक्ष्मण, वचनकर सकल आकाशकूं पूरता संता कहता भया – अरे क्षुद्र! वृथा काहे गाजै है? जहां तेरा पुत्र गया वहां तोहि पठाऊंगा।

ऐसा कहकर आकाश के विषै तिष्ठता जो खरदूषण ताहि लक्ष्मण ने रथरहित किया, अर ताका धनुष तोड्या, अर ध्वजा उड़ाय दई, अर प्रभारहित किया। तब वह क्रोधकर भर्‍या पृथ्वी के विषै पड्या, जैसै क्षीणपुण्य भया देव स्वर्गतैं पड़े। बहुरि महासुभट खड्ग लेय लक्ष्मण पर आया। तब लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग लेय ताके सन्मुख भया। इन दोऊनि में नाना प्रकार महायुद्ध भया। देव पुष्पवृष्टि करते भए, अर धन्य धन्य शब्द करते भए। बहुरि महायुद्ध के विषै सूर्यहास खड्गकर लक्ष्मण ने खरदूषण का सिर काट्या सो निर्जीव होय खरदूषण पृथ्वीविषै पर्‍या, मानों स्वर्गसूं देव पर्‍या, सूर्यसमान है तेज जाका, मानों रत्न पर्वत का शिखर दिग्गज ने ढाहा।

अथानन्तर खरदूषण का सेनापति दूषण विराधितकूं रथ रहित करवेकूं आरम्भता भया। तदि लक्ष्मण बाणकरि मर्मस्थलविषै घायल किया सो घूमता भूमि में पर्‍या। अर लक्ष्मण ने खरदूषण का समुदाय, अर कटक, अर पाताल लंकापुरी विराधितकूं दीनी। अर लक्ष्मण अतिस्नेह का भर्‍या जहां राम तिष्ठे है तहां आया। आकर देखै तो आप भूमि में पड़े हैं, अर स्थानक में सीता नाहीं।

तब लक्ष्मण ने कही – हे नाथ! कहां सोवो हो? जानकी कहां गई? तब राम उठ कर लक्ष्मणकूं घावरहित देख कछुइक हर्षकूं प्राप्त भए। लक्ष्मणकूं उर से लगाया अर कहते भए – हे भाई! मैं न जानूं जानकी कहां गई? कोई हर ले गया अथवा सिंह भख गया। बहुत हेरी सो न पाई। अति सुकुमार शरीर उद्वेग कर विलय गई। तब लक्ष्मण विषादरूप होय क्रोधकर कहता भया। हे देव! सोच के प्रबन्धकर कहा? यह निश्चय करो, कोई दुष्ट दैत्य हर ले गया है। जहां तिष्ठे है सो लावेंगे, आप संदेह न करो। नाना प्रकार के प्रिय वचननिकरि रामकूं धीर्य बंधाया,

अर निर्मल जलकरि सुबुद्धि ने राम का मुख धुवाया।

ताही समय विशेष शब्द सुन राम पूछी – यह शब्द काहे का है? तब लक्ष्मण ने कहा – हे नाथ! यह चन्द्रोदय विद्याधर का पुत्र विराधित, याने रण में मेरा बहुत उपकार किया, सो आपके निकट आया है। याकी सेना का शब्द है। या भांति दोऊ वीर वार्ता करै हैं अर वह बड़ी सेना सहित हाथ जोड़ नमस्कार कर जय जय शब्द कह अपने मंत्रीनि सहित विनती करता भया। आप हमारे स्वामी हो, हम सेवक हैं, जो कार्य होय ताकी आज्ञा देहु। तदि लक्ष्मण कहता भया – हे मित्र! काहू दुराचारी ने ये मेरे प्रभु, तिनकी स्त्री हरी है। ता बिना रामचन्द्र जो शोक के वशी होय कदाचित् प्राणकूं तजे तो मैं भी अग्नि में प्रवेश करूंगा। इनके प्राणनि के आधार मेरे प्राण हैं, यह तू निश्चय जान। तातैं यह कार्य कर्त्तव्य है, भले जाने सो कर।

तब यह बात सुन वह अति दुखित होय नीचा मुख कर रहा। अर मन में विचारता भया – एते दिन मोहि स्थानक भ्रष्ट हुए भए, नाना प्रकार वन विहार किया। अर इन मेरा शत्रु हना, स्थानक दिया, तिनकी यह दशा है। मैं जो जो विकल्प करूं हूं सो यों ही वृथा जाय है। यह समस्त जगत कर्माधीन है तथापि मैं कुछ उद्यम कर इनका कार्य सिद्ध करूं। ऐसा विचार अपने मंत्रीनसूं कहा – पुरुषोत्तम की स्त्रीरत्न पृथ्वीविषै जहां होय तहां जल स्थल आकाश पुर बन गिरि ग्रामादिक में यत्नकर हेरहु। यह कार्य भए मनवांछित फल पावोगे। ऐसी राजा विराधित की आज्ञा सुन यश के अर्थी सब दिशाकूं विद्याधर दौड़े।

अथानन्तर एक अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी, सो आकाशमार्ग में जाता हुता। तानै सीता के रुदन की 'हाय राम हाय लक्ष्मण' यह ध्वनि समुद्र के ऊपर आकाश में सुनी। तब रत्नजटी वहां आय देखे तो रावण के विमान में सीता बैठी विलाप करै हैं। तब सीता को विलाप करती देख रत्नजटी क्रोध का भर्‍या रावणसों कहता भया – हे पापी दुष्ट विद्याधर! ऐसा अपराध कर कहां जायेगा? यह भामंडल की बहन है, रामदेव की राणी है मैं भामण्डल का सेवक हूं, हे दुर्बुद्धे! जिया चाहै तो याहि छोड़। तब रावण अति क्रोधकर युद्धकूं उद्यमी भया। बहुरि विचारी कदाचित् युद्ध के होते अति विह्वल जो सीता सो मर जावे तो भला नाहीं। तातैं यद्यपि यह विद्याधर रंक है तथापि उपाय करि मारना। ऐसा विचार रावण महाबली ने रत्नजटी की विद्या हर लीनी, अर आकाशतैं पृथ्वीविषै पर्‍या।

मंत्र के प्रभावकरि धीरा धीरा स्फुलिंग की न्याईं समुद्र के मध्य कम्पद्वीप में आय पर्‍या। आयु कर्म के योगतैं जीवता बचा। जैसैं बणिक का जहाज फट जाय अर जीवता बचैं। सो रत्नजटी विद्या खोय जीवता बच्या। सो विद्या तो जाती रही जाकरि विमान विषै बैठ घर पहुंचे। सो

अत्यन्त स्वास लेता कम्पूपर्वत पर चढ़ दिशा का अवलोकन करता भया। समुद्र की शीतल पवनकरि खेद मिट्या सो वनफल खाय कम्पूपर्वत पर रहे। अर जे विराधित के सेवक विद्याधर सब दिशा नाना भेषकर दौड़े हुते ते सीताकूं न देख पाछे आए। सो उनका मलिनमुख देख राम ने जानी सीता इनकी दृष्टि न आई, तब राम दीर्घ स्वांस नांख कहते भए – हे भले विद्याधर हो! तुमने हमारे कार्य के अर्थ अपनी शक्ति प्रमाण अति यत्न किया, परन्तु हमारे अशुभ का उदय, तातैं अब तुम सुखसूं अपने स्थानक जाहु। हाथतैं बडवानल में गया रत्न बहुरि कहां दीखै? कर्म का फल है सो अवश्य भोगना, हमारा तिहारा निवार्‍या न निवरै। हम कुटुम्बतैं छूटे, वन में पैठे, तो हू कर्मशत्रुकूं दया न उपजी। तातैं हम जानी हमारे असाता का उदय है। सीता हू गई या समान और दुख कहा होयगा? या भांति कहकर राम रोवने लागे, महाधीर नरनि के अधिपति।

तब विराधित धीर्य बंधायवे विषै पंडित, नमस्कार कर हाथ जोड़ कहता भया – हे देव! आप एता विषाद काहे करो, थोड़े ही दिन में आप जनकसुताकूं देखोगे। कैसी है जनकसुता? नि:पाप है देह जाकी। हे प्रभो! यह शोक महाशत्रु है, शरीर का नास करै और वस्तु की कहा बात? तातैं आप धीर्य अंगीकार करहु। यह धीर्य ही महापुरुषनि का सर्वस्व है। आप सारिखे पुरुष विवेक के निवास हैं। धीर्यवन्त प्राणी अनेक कल्याण देखै। अर आतुर अत्यन्त करैं तो हू इष्ट वस्तुकूं न देखैं। अर यह समय विषाद का नाहीं, आप मन लगाय सुनहु। विद्याधरनि का महाराजा खरदूषण मार्‍या सो अब याका पारिपाक महाविषम है।

सुग्रीव किहकंधापुर का धनी, अर इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, त्रिशिर, अक्षोभ, भीम, क्रूरकर्मा, महोदर, इनकूं आदि दे अनेक विद्याधर महायोद्धा बलवन्त याके परम मित्र हैं सो याके मरण के दु:खतैं क्रोधकूं प्राप्त भए होंगे। ये समस्त नाना प्रकार युद्ध में प्रवीण हैं, हजारां ठौर रणविषै कीर्ति पाय चुके हैं। अर वैताड पर्वत के अनेक विद्याधर खरदूषण के मित्र हैं। अर पवनंजय का पुत्र हनुमान, जाहि लखे सुभट दूरहीतै डरैं, ताके सन्मुख देव हूं न आवे, सो खरदूषण का जमाई है, तातैं वह हू याके मरण का रोष करैगा। तातैं यहां वनविषै न रहना। अलंकारोदय नगर जो पाताल लंका ताविषै विराजिये। अर भामंडलकूं सीता के समाचार पठाइये। वह नगर महादुर्गम है। तहां निश्चल होय कार्य का उपाय सर्वथा करेंगे। या भांति विराधित विनती करी, तब दोऊ भाई चार घोड़नि का रथ तापर चढ़कर पाताल लंकाकूं चाले।

सो दोऊ पुरुष सीता बिना न शोभते भए, जैसैं सम्यक्दृष्टि बिना ज्ञान–चारित्र न सोहै। चतुरंग सेनारूप सागरकरि मंडित दंडकवनतैं चाले। विराधित अगाऊ गया, तहां चन्द्रनखा का पुत्र सुन्दर सो लडवेकूं नगर के बाहिर निकस्या। तानैं युद्ध किया, सो ताकूं जीत नगर में प्रवेश किया। देवनि

के नगर समान वह नगर रत्नमई। तहां खरदूषण के मंदिरविषै विराजे। सो महामनोहर सुरमंदिर समान वह मंदिर। तहां सीता बिना रंचमात्र हू विश्रामकूं न पावते भए। सीता में है मन राम का, सो रामकूं प्रिया के समीपकर वनहू मनोग्य भासता हुवा अब कांता के वियोगकर दग्ध जो राम तिनकूं नगर मंदिर विन्ध्याचल के वन समान भासैं।

अथानन्तर खरदूषण के मन्दिर में जिनमन्दिर देखकर रघुनाथ प्रवेश किया। वहां अरहंत की प्रतिमा देखकर रत्नमई पुष्पनिकर अर्चा करी। क्षण एक सीता का संताप भूल गए। जहां जहां भगवान के चैत्यालय हुते तहां तहां दर्शन किया। प्रशांत भई है दुःख की लहर जिनके, रामचन्द्र खरदूषण के महल विषै तिष्ठे हैं। अर सुन्दर, अपनी माता चन्द्रनखा सहित पिता अर भाई के शोक कर महाशोक सहित लंका गया।

यह परिग्रह विनाशीक है अर महा दुःख का कारण है, विघ्नकर युक्त है तातैं हे भव्यजीव हो! तिनविषै इच्छा निवारहु। यद्यपि जीवनि के पूर्व कर्म के सम्बन्धसूं परिग्रह की अभिलाषा होय है तथापि साधुवर्ग के उपदेशकरि यह तृष्णा निवृत्त होय है, जैसे सूर्य के उदयतैं रात्रि निवृत्त होय है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम को सीता का वियोग, पाताल लंकाविषै निवास वर्णन करने वाला पैंतालीसवां पर्व संपूर्ण भया।।45।।

अथानन्तर रावण सीताकूं लेय ऊंचे विमान के शिखर पर तिष्ठा धीरे धीरे चालता भया, जैसे आकाश विषै सूर्य चाले। शोक कर तप्तायमान जो सीता, ताका मुखकमल कुमलाय गया देख, रति के राग कर मूढ़ भया है मन जाका। ऐसा जो रावण सो सीता के चौगिर्द फिरै, अर दीन वचन कहै – हे देवी! काम के बाण कर मैं हता जाऊं हूं, सो तोहि मनुष्य की हत्या होयगी। हे सुन्दरी! यह तेरा मुखरूप कमल सर्वथा कोप संयुक्त है तो हू मनोग्यते अधिक मनोग्य भासै है। प्रसन्न हो एक वेर मेरी ओर दृष्टि धर। देख, नेत्रनि की कांतिरूप जलकर मोहि स्नान कराय, अर जो कृपादृष्टि कर नाहीं निहारैं, तो अपने चरण कमलकरि मेरा मस्तक तोड़। हाय हाय! तेरी क्रीड़ा के वनविषै मैं अशोक वृक्ष ही क्यों न भया जो तेरे चरण कमल की पगथली की घात, अत्यन्त प्रशंसा योग्य, सो मोहि सुलभ होती।

भावार्थ – अशोक वृक्ष स्त्री के पगथली के घात से फूले। हे कृशोदरी! विमान के शिखर पर तिष्ठी सर्व दिशा देख, मैं सूर्य के ऊपर आकाशविषै आया हूं। मेरु कुलाचल अर समुद्र सहित पृथ्वी देख, मानों काहू सिलावट ने रची है।

ऐसे वचन रावण ने कहे तब वह महासती, शील का सुमेरु, पट के अन्तर अरुचि के अक्षर

कहती भई। हे अधम! दूर रह, मेरे अंग का स्पर्श मत कर, अर ऐसे निंद्य वचन कभी मत कह। रे पापी! अल्प आयु! कुगतिगामी! अपयशी! तेरे यह दुराचार तोहिकूं भयकारी है। परदारा की अभिलाषा करता तू महादु:ख पावेगा। जैसे कोई भस्म कर दबी अग्नि पर पांव धरै तो जरै, तैसैं तू इन कर्मनिकर बहुत पछतावेगा। तू महा मोहरूप कीचकरि मलिन चित्त है। तोहि धर्म का उपदेश देना वृथा है, जैसे अन्ध के निकट नृत्य करै। हे क्षुद्र! जे पर स्त्री की अभिलाषा करै हैं वे इच्छामात्र ही पाप को बांधकर नरकविषै महाकष्टकूं भोगै हैं। इत्यादि रूक्ष वचन सीता रावणसूं कहे। तथापि कामकर हता है चित्त जाका सो अविवेकसूं पाछा न भया। अर खरदूषण की जे मदद गए हुते परम हितु शुक हस्त प्रहस्तादिक वे खरदूषण के मुवे पीछे उदास होय लंका आए। सो रावण काहू की ओर देखै नाहीं, जानकीकूं नाना प्रकार के वचनकर प्रसन्न करै, सो कहां प्रसन्न होय?

जैसे अग्नि की ज्वाला कूं कोई पाय न सकै अर नाग के माथे की मणि को न लेय सकै, तैसे सीताकूं कोऊ मोह न उपजाय सकै। बहुरि रावण हाथ जोड़ सीस निवाय नमस्कार कर नाना प्रकार के दीनता के वचन कहे, सो सीता याके वचन कछू न सुने। अर मंत्री आदि सन्मुख आए सर्व दिशानितैं सामंत आए। राक्षसनि के पति जो रावण सो अनेक लोकनिकर मंडित होता भया, लोक जय जयकार शब्द करते भए। मनोहर गीत नृत्य वादित्र होते भए। रावण इन्द्र की न्याईं लंकाविषै प्रवेश किया।

सीता चित्त में चितवती भई, ऐसा राजा अमर्यादा की रीति करै, तब पृथ्वी कौन के शरण रहै? जबलग रामचन्द्र की कुशल क्षेम की वार्ता में न सुनूं तब लग खान पान का मेरे त्याग है। रावण देवारण्य नामा उपवन, स्वर्गसमान परम सुन्दर, जहां कल्पवृक्ष वहां सीता को मेल कर अपने मन्दिर गया। ताही समय खरदूषण के मरण के समाचार आए सो महाशोक कर रावण की अठारा हजार राणी ऊंचे स्वरकर विलाप करती भईं। अर चन्द्रनखा रावण की गोदविषै लोटकर अति रुदन करती भई। हाय मैं अभागिनी हती गई, मेरा धनी मारा गया। मेह के झरने समान रुदन किया, अश्रुपात का प्रवाह बहा, पति अर पुत्र दोऊ के मरण शोक रूप अग्निकर दग्धायमान है हृदय जाका।

सो याहि विलाप करती देख याका भाई रावण कहता भया – हे वत्स! रोयवेकर कहा? या जगत के प्रसिद्ध चरित्र को कहा न जाने है? बिना काल कोऊ वज्र से भी हता न मरे, अर जब मृत्युकाल आवे तब सहज ही मर जाय। कहां वे भूमिगोचरी राम, अर कहां तेरा भरतार, विद्याधर दैत्यनि का अधिपति खरदूषण? ताहि वे मारें यह काल ही का कारण है। जाने तेरा पति मारा ताको मैं मारूंगा। या भांति बहिनकूं धीर्य बंधाय कहता भया – अब तू भगवान का अर्चन कर, श्राविका के व्रत धार। चन्द्रनखाकूं ऐसा कहकर रावण महलविषै गया। सर्प की न्याईं निश्वास

नाखता सेज पर पड़ा। वहां पटराणी मन्दोदरी आयकर भरतारकूं व्याकुल देख कहती भई – हे नाथ! खरदूषण के मरणकर अति व्याकुल भए हो सो तिहारे सुभट कुलविषै यह बात उचित नाहीं। जे शूरवीर हैं तिनके मोटी आपदाविषै हूं विषाद नाहीं। तुम वीराधिवीर क्षत्री हो। तिहारे कुल में तिहारे पुरुष अर तिहारे मित्र रण संग्रामविषै अनेक क्षय भये, सो कौन कौन का शोक करोगे? तुम कबहूं काहू का शोक न किया, अब खरदूषण का एता सोच क्यों करो हो? पूर्वे इन्द्र के संग्रामविषै तिहारा काका श्रीमाली मरणकूं प्राप्त भया, अर अनेक बांधव रण में हते गए, तुम काहू का कभी शोक न किया। आज ऐसा सोच दृष्टि क्यों पड़ा है जैसा पूर्वे कबहूं हमारी दृष्टि न पड़ा?

तब रावण निश्वास नाख बोला – हे सुन्दरी! सुन, मेरे अन्त:करण का रहस्य तोहि कहूं हूं। तू मेरे प्राणनि की स्वामिनी है अर सदा मेरी वांछा पूर्ण करै है। जो तू मेरा जीतव्य चाहै है तो कोप मत कर, मैं कहूं सो कर। सर्व वस्तु का मूल प्राण हैं। तब मन्दोदरी कही – जो आप कहो सो मैं करूं। रावण याकी सलाह लेय विलखा होय कहता भया – हे प्रिये! एक सीता नामा स्त्री, स्त्रीनि की सृष्टिविषै ऐसी और नाहीं, सो वह मोहि न इच्छै तो मेरा जीवन नाहीं। मेरा लावण्य, रूप, माधुर्यता, सुन्दरता ता सुन्दरीकूं पायकर सफल होय।

तब मन्दोदरी याकी दशा कष्टरूप जान हंसकर दांतनि की कांतिरूप चांदनीकूं प्रकाशतीसंती कहती भई – हे नाथ! यह बड़ा आश्चर्य है? तुम सारिखे प्रार्थना करैं अर वह तुमको न इच्छै सो मंदभागिनी है। या संसार में ऐसी कौन परम सुन्दरी है जाका मन तिहारे देखे खंडित न होय अर मन मोहित न होय? अथवा वह सीता कोई परम उदयरूप अद्भुत त्रैलोक्य सुन्दरी है जाको तुम इच्छो हो अर वह तुमको नाहीं इच्छै है! ये तिहारे कर हस्ती की सूंड समान, रत्नजड़ित बाजूनिकरि युक्त तिनकरि उर से लगाय, बलात्कार क्यों न सेवहु?

तब रावण की कही – या सर्वांगसुन्दरीकूं मैं बलात्कार नाहीं गहूं। ताका कारण सुन – अनन्तवीर्य केवली के निकट मैं एक व्रत लिया है। वे भगवान देव इन्द्रादिक कर बंदनीक ऐसा व्याख्यान करते भए – या संसारविषै भ्रमण करते जे जीव दुखी तिनको पापनि की निवृत्ति निर्वाण का कारण है। एक भी नियम महाफलकूं देय है। अर जिनके एक भी व्रत नाहीं वे नर जर्जर कलशसमान निर्गुण हैं। जिनके मोक्ष का कारण कोई नियम नाहीं तिन मनुष्यनि में अर पशुनि में कछु अंतर नाहीं। तातैं अपनी शक्तिप्रमाण पापनि को तजहु, सुकृतरूप धन को अंगीकार करहु जातैं जन्म के आंधे की न्याईं संसाररूप अंधकूप में न परो। या भांति भगवान के मुखरूप कमलतैं निकसे वचनरूप अमृत पीकर कई एक मनुष्य तो मुनि भए, कई एक अल्पशक्ति अणुव्रतकूं धारणकर श्रावक भए। कर्म के सम्बन्धतैं सबकी एक तुल्य शक्ति नाहीं।

वहां भगवान केवली के समीप एक साधु मोसे कृपा कर कहता भया – हे दशानन! कछू नियम तुम हू लेहु, तू दया धर्मरूप रत्नद्वीपविषै आया है। सो गुणरूप रत्ननि के संग्रह बिना खाली मति जाहु। ऐसा कही तब मैं प्रणाम कर, देव असुर विद्याधर मुनि सर्व की साक्षी व्रत लिया कि जो परनारी मोहि न इच्छै ताहि मैं बलात्कार न सेऊं। हे प्राण प्रिये! मैं विचारी जो मोसे रूपवान नर को देखी ऐसी कौन नारी है जो मान करै? तातैं मैं बलात्कार न सेऊँ। राजानि की यही रीति है जो वचन कहे सो निवाहैं, अन्यथा महादोष लागै। तातैं मैं प्राण तजूं, ता पहिले सीता को प्रसन्न कर। घर के भस्म भए पीछे कुवां खोदना वृथा है। तब मन्दोदरी रावणकूं विह्वल जान कहती भई – हे नाथ! तिहारी आज्ञा प्रमाण ही होयगा। ऐसा कह वह देवारण्यनामा उद्यानविषै गई। अर ताकी आज्ञा पाय रावण की अठारह हजार राणी गईं।

मंदोदरी जायकर सीताकूं या भांति कहती भई – हे सुन्दरी! हर्ष के स्थानकविषै कहा विषाद कर रही है? जा स्त्री के रावण पति सो जगतविषै धन्य। सब विद्याधरनि का अधिपति, सुरपति का जीतनहारा, तीन लोकविषै सुन्दर ताहि क्यों न इच्छै? निर्जन वन के निवासी, निर्धन, शक्तिहीन, भूमिगोचरी तिनके अर्थ कहा दुःख करै है? सर्वलोक विषै श्रेष्ठ ताहि अंगीकार करि क्यों न सुख करै? अपने सुख का साधनकर याविषै दोष कहा? जो कछु करिए है सो अपने सुख के निमित्त करिए है। अर मेरा कहा जो न करेगी तो कुछ तेरा होनहार है सो होगा। रावण महा बलवान है, कदाचित् प्रार्थना भंगतैं कोप करै तो तेरा या बात में अकारज ही है। अर राम लक्ष्मण तेरे सहाई हैं सो रावण के कोप किए उनका भी जीवना नाहीं। तातैं शीघ्र ही विद्याधरनि का जो ईश्वर ताहि अंगीकार कर। जाके प्रसादतैं परम ऐश्वर्य को पायकर देवन के-से सुख भोगवै। जब ऐसा कहा तब जानकी अश्रुपात कर पूर्ण हैं नेत्र जाके, गदगद वाणी कर कहती भई –

हे नारी! यह वचन तूने सब ही विरुद्ध कहे। तू पतिव्रता कहावै है। पतिव्रतानि के मुखतैं ऐसे वचन कैसैं निकसै? यह शरीर मेरा छिद जावे, भिद जावे, हत जावे परन्तु अन्य पुरुषकूं मैं न इच्छूं। रूपकर सनत्कुमार समान होवे अथवा इन्द्र समान होवे तो मेरे कौन अर्थ? मैं सर्वथा अन्य पुरुषकूं न इच्छूं। तुम सब अठारह हजार राणी भेली होयकर आईं हो सो तिहारा कहा मैं न करूं। तिहारी इच्छा होय सो करो। ताही समय रावण आया, मदन के आतापकरि पीड़ित। जैसे तृषातुर माता हाथी गंगा के तीर आवे तैसे सीता के समीप आय मधुर वाणी कर आदरसूं कहता भया – हे देवी! तू भय मत करै। मैं तेरा भक्त हूं! हे सुन्दरी। चित्त लगाय एक विनती सुन। मैं तीन लोक में कौन वस्तुकर हीन जो तू मोहि न इच्छै। ऐसा कहकर स्पर्श की इच्छा चाहता भया।

तब सीता क्रोधकर कहती भई – पापी! परे जा, मेरा अंग मत स्पर्शे। तदि रावण कहता भया –

कोप अर अभिमान तज, प्रसन्न हो, शची इन्द्राणी समान दिव्य भोगनि की स्वामिनी होहू। तब सीता बोली – कुशीले पुरुष का विभव मल–समान है। अर शीलवंत हैं तिनके दरिद्र ही आभूषण हैं। जे उत्तम वंशविषै उपजे हैं तिनके शील की हानिकरि दोऊ लोक बिगरै हैं। तातैं मेरे तो मरण ही शरण है। तू परस्त्री की अभिलाषा राखै है सो तेरा जीतव्य वृथा है। जो शील पालता जीवै है ताही का जीतव्य सफल है। या भांति जब सीता तिरस्कार किया तब रावण क्रोध कर माया की प्रवृत्ति करता भया। राणी अठारह हजार सब जाती रहीं, अर रावण की माया के भयतैं सूर्य अस्त होय गया। मद झरती मायामई हाथिनि की घटा आई।

यद्यपि सीता भयभीत भई तथापि रावण के शरण न गई। बहुरि अग्नि के स्फुलिंगें बरसते भए, अर लबलबाट करै हैं जीभ जिनकी ऐसे सर्प आए, तथापि सीता रावण के शरण न गई। बहुरि महाक्रूर वानर फारे हैं मुख जिन्होंने उछल उछल आए, अतिभयानक शब्द करते भए तथापि सीता रावण के शरण न गई। अर अग्नि के ज्वाला समान चपल है जिह्वा जिनकी, ऐसे मायामई अजगर तिनने भय उपजाया तथापि सीता रावण के शरण न गई। बहुरि अंधकार समान श्याम ऊंचे व्यंतर हुंकार शब्द करते आए, भय उपजावते भए तथापि सीता रावण के शरण न गई। या भांति नाना प्रकार की चेष्टा कर रावण ने उपसर्ग किए तथापि सीता न डरी। रात्रि पूर्ण भई, जिनमंदिर विषै वादित्रनि के शब्द होते भए, द्वारनि के कपाट उघरे, मानों लोकनि के लोचन ही उघरे। प्रातसंध्या कर पूर्वदिशा आरक्त भई, मानों कुंकुम के रंगकरि रंगी ही है।

निशा का अंधकार सर्व दूरकर चन्द्रमा को प्रभारहित कर सूर्य का उदय भया। कमल फूले, पक्षी विचरने लगे, प्रभात भया। तब प्रातक्रिया कर विभीषणादि रावण के भाई खरदूषण के शोककर रावण पै आए। सो नीचा मुख किए आंसू डारते भूमिविषै तिष्ठे। ता समय पट के अंतर शोक की भरी जो सीता ताके रुदन के शब्द विभीषण ने सुने। अर सुनकर कहता भया, यह कौन स्त्री रुदन करै है? अपने स्वामीतैं विछुरी है याका शोकसंयुक्त शब्द दुख को प्रकट दिखावै है। ये विभीषण के शब्द सुन सीता अधिक रोवने लगी, सज्जन को देख शोक बढ़ै ही है। विभीषण पूछता भया – हे बहिन! तू कौन है?

तब सीता कहती भई – मैं राजा जनक की पुत्री, भामंडल की बहिन, राम की राणी, दशरथ मेरा सुसरा, लक्ष्मण मेरा देवर, सो खरदूषणतैं लड़ने गया। ताके पीछे मेरा स्वामी भाई की मदद गया। मैं वनविषै अकेली रही सो छिद्र देख या दुष्टचित्त ने हरी। सो मेरा भरतार मो बिना प्राण तजेगा। तातैं हे भाई! मोहि मेरे भरतार पै शीघ्र ही पठाय देहु। ये वचन सीता के सुन विभीषण रावण से विनय कर कहता भया – हे देव ! यह परनारी अग्नि की ज्वाला है, आशीविष सर्प के

फणसमान भयंकर है, आप काहेकूं लाए? अब शीघ्र ही पठाय देहु।

हे स्वामी! मैं बालबुद्धि हूं, परन्तु मेरी विनती सुनो। मोहि आपने आज्ञा करी हुती जो तू उचित वार्ता हमसों कहिवो कर। तातैं आपकी आज्ञातैं मैं कहूं हूं। तिहारी कीर्तिरूप बेलि के समूह कर सर्व दिशा व्याप्त होय रही है। ऐसा न होय जो अपयशरूप अग्निकर यह कीर्तिलता भस्म होय। यह परदारा का अभिलाष अयुक्त, अति भयंकर, महानिंद्य, दोऊ लोक का नाश करणहारा, जाकरि जगत्‌विषै लज्जा उपजै, उत्तम जननिकरि धिक्कार शब्द पाइए है। जे उत्तम जन हैं तिनके हृदयकूं अप्रिय। ऐसा अनीतिकार्य कदाचित् न कर्त्तव्य। आप सकल वार्ता जानो हो, सब मर्यादा आप ही ते रहे, आप विद्याधरनि के महेश्वर, यह बलता अंगारा काहेकूं हृदय में लगावो? जो पापबुद्धि परदारा सेवै हैं सो नरकविषै प्रवेश करै हैं। जैसैं लोहे का ताता गोला जल में प्रवेश करै तैसैं पापी नरक में पड़े हैं।

ये वचन विभीषण के सुनकर रावण बोला – हे भाई! पृथ्वी पर जो सुन्दर वस्तु हैं ताका मैं स्वामी हूं, सर्व मेरी ही वस्तु है, परवस्तु कहां से आई? ऐसा कहकर और बात करने लगा। बहुरि महानीति का धारी मारीच मंत्री क्षण एक पीछे कहता भया – देखो! यह मोहकर्म की चेष्टा, रावणसारिखे विवेकी, सर्वरीति को जान ऐसे कर्म करे! सर्वथा जे सुबुद्धि पुरुष हैं तिनकूं प्रभात ही उठकर अपना कुशल अकुशल चितवनी, विवेक से न चूकना। या भांति निरपेक्ष भया महाबुद्धिमान मारीच कहता भया।

तब रावण ने कछू पाछा जवाब न दिया, उठकर खड़ा हो गया। त्रैलोक्य मंडन हाथी पर चढ़ि सब सामंतनि सहित उपवनतैं नगरकूं चाल्या। वरछी, खड्ग, तोमर, चमर, छत्र, ध्वजा आदि अनेक वस्तु हैं हाथनि मैं जिनके, ऐसे पुरुष आगे चले जाय हैं। अनेक प्रकार शब्द होय हैं। चंचल हैं ग्रीवा जिनकी, ऐसे हजारां तुरंगनि पर चढ़े सुभट चले जाय हैं। अर कारीघटा समान मद झरते गाजते गजराज चले जाय है। अर नाना प्रकार की चेष्टा करते उछलते पयादे चले जाय हैं। हजारां वादित्र बाजे। या भांति रावण ने लंका में प्रवेश किया। रावण के चक्रवर्ती सम्पदा, तथापि सीता तृण से हू जघन्य जाने।

सीता का मन निष्कलंक, यह लुभायवेकूं समर्थ न भया। जैसे जलविषै कमल अलिप्त रहै, तैसे सीता अलिप्त रहै। सर्व ऋतु के पुष्पनिकरि शोभित, नाना प्रकार के वृक्ष अर लतानिकरि पूर्ण, ऐसा प्रमद नामा बन, तहां सीताकूं राखी। वह वन नन्दन समान सुन्दर, जाहि लखे नेत्र प्रसन्न होंय, फुल्लगिरि के ऊपर यह बन सो देखे पीछे और ठौर दृष्टि न लगे। जाहि लखे देवनि का मन उन्मादकूं प्राप्त होय मनुष्यनि की कहा बात? वह फुल्लगिरि सप्तवनकरि वेष्टित सौहे, जैसे

भद्रशालादि वनकर सुमेरु सौहै है।

हे श्रेणिक! सात ही वन अद्भुत हैं उनके नाम सुन - प्रकीर्णक, जनानन्द, सुखसेव्य, समुच्चय, चारणप्रिय, निबोध, प्रमद। तिनमें प्रकीर्णक पृथ्वीविषै, ताके ऊपर जनानन्द तहां चतुर जन क्रीड़ा करैं। अर तीजा सुखसेव्य अति मनोग्य सुन्दर वृक्ष, अर वेल, कारीघटा समान सघन सरोवर, सरिता, वापिका, अतिमनोहर। अर समुच्चयविषै सूर्य का आताप नाहीं, वृक्ष ऊंचे, कहूं ठौर स्त्री क्रीड़ा करैं, कहूं ठौर पुरुष। अर चारणप्रिय वनविषै चारण मुनि ध्यान करैं। अर निबोध ज्ञान का निवास। सबनि के ऊपर अति सुन्दर प्रमद नामा वन, ताके ऊपर जहां तांबूल का बेल, केतकीनि के बीड़े, जहां स्नान क्रीड़ा करवे को उचित रमणीक वापिका कमलनिकर शोभित हैं, अर अनेक खण के महल, अर जहां नारंगी, विजोरा, नारियल, छुहारे, ताड़वृक्ष इत्यादि अनेक जाति के वृक्ष सर्व ही पुष्पनि के गुच्छनि कर शोभै हैं, जिन पर भ्रमर गुंजार करैं हैं, अर जहां वेलिन के पल्लव मन्द पवन कर हालैं हैं, जा वनविषै सघन वृक्ष समस्त ऋतुनि के फल फूलनिकर कारीघटा समान सघन हैं, मोरन के युगलकर शोभित हैं।

ता वन की विभूति मनोहर वापी, सहस्रदल कमल है मुख जिनके, सो नील कमल नेत्रनिकर निरखे हैं, अर सरोवरविषै मन्द मन्द पवन कर कल्लोल उठै हैं। सो मानों सरोवरी नृत्य ही करैं हैं। अर कोयल बोलै हैं सो मानों वचनालाप ही करै हैं। अर राजहंसनी के समूहकर मानों सरोवरी हंसे ही है। बहुत कहिवे कर कहा? वह प्रमदनामा उद्यान सर्व उत्सव का मूल, भोगिनि का निवास, नन्दन बनहूतैं अधिक। ता वन में एक अशोकमालिनी नामा वापी कमलादि कर शोभित, जाके मणि स्वर्ण के सिवाण, विचित्र आकारकूं धरै हैं द्वार जाके, जहां मनोहर महल, जाके सुन्दर झरोखे, तिनकर शोभित, जहां नीझरने झरै हैं। वहां अशोक वृक्ष के तले सीता राखी।

कैसी है सीता? श्रीराम जी के वियोग कर महा शोककूं धरै है, जैसे इन्द्रते विछुरी इन्द्राणी। रावण की आज्ञातैं अनेक स्त्री विद्याधरी खड़ी ही रहें। नाना प्रकार के वस्त्र सुगन्ध आभूषण जिनके हाथ में, भांति भांति की चेष्टा कर सीताकूं प्रसन्न किया चाहें। दिव्यगीत, दिव्यनृत्य, दिव्यवादित्र, अमृत सारिखे दिव्यवचन तिनकर सीताकूं हर्षित किया चाहें, परन्तु यह कहां हर्षित होय? जैसे मोक्ष संपदाकूं अभव्य जीव सिद्ध न कर सकैं तैसैं रावण की दूती सीताकूं प्रसन्न न कर सकीं। ऊपरां ऊपरि रावण दूती भेजे, कामरूप दावानल की प्रज्वलित ज्वाला, ताकर व्याकुल, महाउन्मत्त, भांति भांति के अनुराग के वचन सीताकूं कह पठावे। यह कछू जवाब नहीं देय।

दूती जाय रावणसों कहैं - हे देव! वह तो आहार पानी तज बैठी है, तुमको कैसे इच्छै? वह काहूसों बात न करै। निश्चल अंगकर तिष्ठै है। हमारी ओर दृष्टि ही नाहीं धरै। अमृत हूते अति

स्वादु दुग्धादि कर मिश्रित बहुत भांति नाना प्रकार के व्यंजन ताके मुख आगे धरे हैं, सो स्पर्शै नाहीं। यह दूतीनि की बात सुन रावण खेदखिन्न होय, मदनाग्नि की ज्वाला कर व्याप्त अंग जाका, महा आरतरूप चिन्ता के सागर में डूबा। कबहू निश्वास नाखे, कबहू सोच करे।

सूख गया है मुख जाका, कबहूं कछूइक गावै। कामरूप अग्निकर दग्ध भया हृदय जाका, कछुइक विचार निश्चल होय है। अपना अंग भूमि में डार देय फिर उठे, सूना-सा होय रहे, बिना समझे उठि चले, बहुरि पीछा आवे। जैसे हस्ती सूंड पटके तैसें भूमि में हाथ पटके। सीता को बराबर चितारता आंखनितैं आंसू डारे। कबहूं शब्द कर बुलावे, कबहूं हुंकार शब्द करे, कबहूं चुप होय रहे, कबहूं वृथा बकवाद करै, कबहूं सीता सीता बार बार बके, कबहुं नीचा मुख कर नखनिकरि धरती कुचरै, कबहूं हाथ अपने हिये लगावे, कबहूं बाहू ऊंचा करै, कबहूं सेज पर पड़े, कबहूं उठ बैठे, कबहूं कमल हिये लगावे, कबहूं दूर डार देय, कबहूं शृंगार का काव्य पढ़े, कबहूं आकाश की ओर देखे, कबहूं हाथ से हाथ मसले, कबहूं पग से पृथ्वी हणे।

निश्वास रूप अग्निकर अधर श्याम होय गए। कबहूं कह कह शब्द करै, कबहूं अपने केश बखेरै, कबहूं बांधे, कबहूं जंभाई लेय, कबहूं मुख पर अंचल डारे, कबहूं वस्त्र सर्व पहिर लेय, सीता के चित्राम बनावे, कबहूं अश्रुपात कर आर्द्रा करे, दीन भया हाहाकार शब्द करे, मदन ग्रहकर पीड़ित अनेक चेष्टाकार आशा रूप ईंधन कर प्रज्वलित जो कामरूप अग्नि उस कर उसका हृदय जरे और शरीर जले। कभी मन में चितवे कि मैं कौन अवस्थाकूं प्राप्त भया जिसकर अपना शरीर भी नहीं धार सकूं हूं। मैं अनेक गढ़ और सागर के मध्य तिष्ठे बड़े बड़े विद्याधर युद्धविषै हजारां जीते, और लोकविषै प्रसिद्ध जो इन्द्र नामा विद्याधर सो बंदीगृह विषै डारा, अनेक युद्धविषै जीते राजाओं के समूह। अब मोहकर उत्मत्त भया मैं प्रमाद के वश प्रवर्त्ता हूं।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं - हे राजन्! रावण तो काम के वश भया और विभीषण महाबुद्धिमान मंत्रविषै निपुण ने सब मंत्रियों को इकट्ठाकर मंत्र विचास्या। कैसा है विभीषण? रावण के राज्य का भार जिसके शिर पर पड्या है, समस्त शास्त्रों के ज्ञानरूप जलकर धोया है मन रूप मैल जिसने, रावण के उस समान और हितू नाहीं। विभीषण को सर्वथा रावण के हित ही का चिंतवन है। सो मंत्रियों से कहता भया - अहो वृद्ध हो! राजा की तो यह दशा, अब अपने ताईं क्या कर्त्तव्य? सो कहो।

तब विभीषण के वचन सुन संभिन्नमति मंत्री कहता भया - हम क्या कहें? सर्वकार्य बिगड़ा। रावण की दाहिनी भुजा खरदूषण था सो मुवा। और विराधित क्या पदार्थ? सो स्याल से सिंह भया, लक्ष्मण के युद्धविषै सहाई भया और वानरवंशी जोर सै बस रहे हैं। इनका आकार तो कुछ

और ही और इनके चित्त में कुछ और ही। जैसैं सर्प ऊपर तो नरम, माहीं विष। और पवन का पुत्र जो हनुमान सो खरदूषण की पुत्री अनंगकुसुमा का पति सो सुग्रीव की पुत्री परणा हैं सुग्रीव की पक्ष विशेष है।

यह वचन संभिन्नमति के सुन पंचमुख मंत्री मुसकाय बोल्या – तुम खरदूषण के मरण कर सोच किया। सो शूरवीरनि की यही रीति है संग्रामविषै शरीर तजैं। अर एक खरदूषण के मरण कर रावण का क्या घट गया? जैसैं पवन के योग से समुद्र से एक जल की कणिका गई तो समुद्र का क्या न्यून भया? और तुम औरों की प्रशंसा करो हो सो मेरे चित्त में लज्जा उपजै है। कहां रावण जगत का स्वामी और कहां वे वनवासी भूमिगोचरी? लक्ष्मण के साथ सूर्यहास खड्ग आया तो क्या और विराधित आय मिला तो क्या? जैसैं पहाड़ विषम है और सिंहकर संयुक्त है तो भी क्या दावानल न दहै? सर्वथा दहै।

तब सहस्रमति मंत्री माथा हलाय कहता भया – कहां ये अर्थहीन बातें कहो हो? जिसमें स्वामी का हित हो सो करना। दूसरा स्वल्प है और हम बड़े हैं – यह विचार बुद्धिमान का नाहीं। समय पाय एक अग्नि का किणका सकलमंडल को दहै। अर अश्वग्रीव के महासेना थी और सर्व पृथ्वी विषै प्रसिद्ध हुवा था सो छोटे से त्रिषष्टि ने रण में मार लिया। इसलिए और यत्न तज लंका की रक्षा का यत्न करो। नगरी परम दुर्गम करो, कोई प्रवेश न कर सकै, महाभयानक मायामई यंत्र सर्व दिशा में विस्तारो, और नगर में परचक्र का मनुष्य न आवने पावै। अर लोक को धीर बंधाओ अर सर्व उपायकर रक्षा करो जिसकर रावण सुखकूं प्राप्त होय, और मधुर वचनकर नाना वस्तुओं की भेंट कर सीताकूं प्रसन्न करो। जैसैं दुग्ध पायवे से नागनी प्रसन्न करिए। और वानर वंशी योद्धाओं की नगर के बाहिर चौकी राखो। ऐसे किए कोऊ परचक्र का धनी न आय सकै और यहां की बात परचक्र में न जाय।

या भांति गढ़ का यत्न कीये, तब कौन जाने सीता कौन ने हरी और कहां है? सीता बिना राम निश्चय सेती प्राण तजेगा। जिसकी स्त्री जाय सो कैसे जीवै? अर राम मूवा तब अकेला लक्ष्मण क्या करेगा? अथवा राम के शोककर लक्ष्मण अवश्य मरै, न जीवै, जैसैं दीपक के गए प्रकाश न रहै। अर यह दोनों भाई मूए तब अपराधरूप समुद्र में डूबा जो विराधित सो क्या करेगा? और सुग्रीव का रूपकर विद्याधर उसके घर में आया सो रावण टार सुग्रीव का दुख कौन हरै?

मायामई यंत्र की रखवारी सुग्रीव को सौंपो जिससे वह प्रसन्न होय। रावण इसके शत्रु का नाश करै। लंका की रक्षा का उपाय मायामई यंत्र कर करना। यह मंत्रकर हर्षित होय सब अपने अपने घर गए। विभीषण ने मायामई यंत्रकर लंका का यत्न किया। अर अध: ऊर्ध तिर्यक् से कोऊ न

आय सकै, नाना प्रकार की विद्याकरि लंका अगम्य करी।

गौतम गणधर कहै हैं – हे श्रेणिक! संसारी जीव सर्व ही लौकिक कार्य में प्रवृत्ते हैं व्याकुलचित्त हैं, अर जे व्याकुलतारहित निर्मलचित्त हैं तिनकूं जिनवचन के अभ्यास टाल और कर्त्तव्य नाहीं। अर जो जिनेश्वर ने भाषा है सो पुरुषार्थ बिना सिद्ध नाहीं। अर भले भवितव्य के बिना पुरुषार्थ की सिद्धि नाहीं। इसलिए जे भव्यजीव हैं वे सर्वथा संसार में विरक्त होय मोक्ष का यत्न करो। नर नारक देव तिर्यंच ये चार ही गति दुःखरूप हैं। अनादिकाल से ये प्राणी कर्म के उदयकर युक्त रागादि में प्रवर्त्तें हैं इसलिए इनके चित्त में कल्याणरूप वचन न आवै। अशुभ का उदय मेट शुभ की प्रवृत्ति करै तब शोकरूप अग्निकर तप्तायमान न होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लंका के मायामई कोट का वर्णन करने वाला छियालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।46।।

अथानन्तर किहकंधापुर स्वामी जो सुग्रीव, सो उसका रूप बनाय विद्याधर इसके पुर में आया। और सुग्रीव कांता के विरह कर दुखी भ्रमता संता वहां आया जहां खरदूषण की सेना के सामंत मुए पड़े थे। बिखरे रथ, मूए हाथी, मूए घोड़े, छिन्न-भिन्न होय रहे हैं शरीर जिनके, कई एक राजाओं का दाह होय है, कई एक सुसके हैं, कई एकनि की भुजा कट गई है, कई एकनि की जंघा कट गई है, कईयों की आंत गिर पड़ी है, कईओं के मस्तक पड़े हैं। कईयों को स्याल भखै हैं, कईयोंकों पक्षी चूथे हैं, कईयकों के परिवार रोवै हैं, कईय कों को टांगि राखे हैं।

यह रणखेत का वृत्तांत देख सुग्रीव किसीकूं पूछता भया। तब उसने कही खरदूषण मारा गया। तब सुग्रीव ने खरदूषण का मरण सुन अति दुःख किया। मन में चितवे है बड़ा अनर्थ भया। वह महाबलवान था जिससे मेरा सर्वदुःख निवृत्त होता सो कालरूप दिग्गज ने मेरा आशारूप वृक्ष तोड़ा। मैं हीन पुण्य, अब मेरा दुःख कैसे शांत होय? यद्यपि बिन उद्यम जीवकूं सुख नाहीं तातैं दुःख दूर करवे का उद्यम अंगीकार करूं। तब हनुमान पै गया। हनुमान दोनों का समान रूप देख पीछे गया। तब सुग्रीव ने विचारी कौन उपाय करूं जिससे चित्त की प्रसन्नता होय, जैसे नवा चांद निरखे हर्ष होय। जो रावण के शरणे जाऊं तो रावण मेरा और शत्रु का एकरूप जान शायद मुझे ही मारे, अथवा दोनों को मार स्त्री हर लेय। वह कामांध है। कामांध का विश्वास नाहीं। मंत्र, दोष, अपमान, दान-पुण्य, वित्त, शूरवीरता, कुशील, मन का दाह, यह सब कुमित्रकूं न कहिए, जो कहें खता पावैं।

तातैं संग्राम में खरदूषणकूं मार्‍या ताही के शरणे जाऊं, वह मेरा दुःख हरै। और जिस पे दुख पड़ा होय सो दुखी के दुःख को जानै। जिनकी तुल्य अवस्था होय तिन ही विषै स्नेह होय। सीता

के वियोग का सीतापति ही को दु:ख उपजा है। ऐसा विचारकर विराधित के निकट अति प्रीतिकर दूत पठाया। सो दूत जाय सुग्रीव के आगम का वृत्तांत विराधितसूं कहता भया। सो विराधित सुनकर मन में हर्षित भया। विचारी बड़ा आश्चर्य है सुग्रीव जैसे महाराज मुझसूं प्रीति करवै की इच्छा करैं। सो बड़ों के आश्रय से क्या न होय? मैं श्रीराम लक्ष्मण का आश्रय किया। इसलिए सुग्रीव से पुरुष मोसे दंभ किया चाहै हैं, सुग्रीव आया। मेघ की गाज समान वादित्रनि के शब्द होते आए। सो पाताल लंका के लोग सुनकर व्याकुल भए।

तब लक्ष्मण ने विराधितसूं पूछा – वादित्रनि का शब्द कौन का सुनिए है? तब अनुराधा का पुत्र विराधित कहता भया – हे नाथ! यह वानरवंशियों का अधिपति प्रेम का भरा तिहारे निकट आया है। किहकंधापुर के राजा सूर्यरज के पुत्र पृथ्वी पर प्रसिद्ध, बड़ा बाली, छोटा सुग्रीव। सो बाली ने तो रावणकूं सिर न नवाया, सुग्रीवकूं राज्य देय वैरागी भया। सब परिग्रह तज सुग्रीव निहकंटक राज्य करै। ताके सुतारा स्त्री। जैसे शची संयुक्त इन्द्र रमै तैसे सुग्रीव सुतारा सहित रमै। जिनके अंगद नामा पुत्र गुण रत्नों कर शोभायमान, जिसकी पृथ्वी पर कीर्ति फैल रही है। यह बात विराधित कहै है।

अर सुग्रीव आया ही, राम और सुग्रीव मिले। रामकूं देख फूल गया है मुखकमल जाका, सुवर्ण के आंगन में बैठे, अमृत समान बाणी कर योग्य संभाषण करते भए। सुग्रीव के संग जे वृद्ध विद्याधर हैं वे रामसूं कहते भए – हे देव! यह राजा सुग्रीव किहकंधापुर का पति, महाबली, गुणवान पुरुषनिकूं प्रिय, सो कोई एक दुष्ट विद्याधर माया कर इनका रूप बनाय इनकी स्त्री सुतारा और राज्य लेयवे का उद्यमी भया है। ये वचन सुन राम मन में चितवते भए – यह कोई मुझसे अधिक दुखिया है, इसके बैठे ही दूजा पुरुष इसके घर में आय धसा है। इसके राज्य विभव है, परन्तु कोई शत्रु को निवारिवे समर्थ नाहीं। लक्ष्मण ने समस्त कारण सुग्रीव के मन्त्री जामवंत को पूछ्या। जामवंत सुग्रीव के मन तुल्य है।

तब वह मुख्यमंत्री महाविनय संयुक्त कहता भया – हे नाथ! काम की फांसी पर बेढ्या वह पापी सुतारा के रूप पर मोहित भया। मायामई सुग्रीव का रूप बनाय राजमंदिर आया, सो सुतारा के महिल में गया। सुतारा महासती अपने सेवकनिसूं कहती भई – यह कोई दुष्ट विद्याधर विद्या से मेरे पति का रूप बनाय आवै है, पाप कर पूर्ण, सो इसका आदर सत्कार कोई मत करो। वह पापी शंकारहित जायकर सुग्रीव के सिंहासन पर बैठ्या और ताही समय सुग्रीव भी आया। अर अपने लोकनिकूं चिंतावान देख तब विचारी मेरे घर में काहे का विषाद है? लोक मलिन वदन, ठौर ठौर भेले होय रहै हैं। कदाचित् अंगद मेरु के चैत्यालयों की वन्दना के अर्थ सुमेरु गया न

आया होय, अथवा रानी ने काहू पर रोष किया होय, अथवा जन्म जरा मरण कर भयभीत विभीषण वैराग्यकूं प्राप्त भया होय, उसका सोच होय। ऐसा विचारकर द्वारे आया। रत्नमई द्वार गीत गान रहित देख्या। लोक सचिंत देखे। मन में विचारी यह मनुष्य और ही हो गये। मन्दिर के भीतर स्त्री जनों के मध्य अपना-सा रूप किए दुष्ट विद्याधर बैठ्या देख्या। दिव्य हार पहिरे, सुन्दर वस्त्र, मुकुट की कांति में प्रकाश रूप।

तब सुग्रीव क्रोधकर गाजा जैसे वर्षा काल का मेघ गाजै, और नेत्रनि की आरक्ततासूं दशोंदिशा आरक्त होय गईं जैसे सांझ फूलै। तब वह पापी कृत्रिम सुग्रीव भी गाजा। जैसे माता हाथी मदकर विह्वल होय तैसा काम कर विह्वल सुग्रीवसूं लडवेकूं उठ्या। दोऊ होंठ डसतें भ्रकुटि चढ़ाय युद्धकूं उद्यमी भए। तब मन्त्रियों ने मने किए और सुतारा पटराणी प्रकट कहती भई - यह कोई दुष्ट विद्याधर मेरे पति का रूप बनाय आया है, देह और बल और वचनों की कांति से तुल्य भया है, परन्तु मेरे भरतार में महापुरुषों के लक्षण हैं, सो इसमें नाहीं। जैसे तुरंग और खर की तुल्यता नाहीं तैसे मेरे पति की और इसकी तुल्यता नाहीं। या भांति राणी सुतारा के वचन सुनकर भी कई एक मंत्रीन ने न मानी, जैसे निर्धन का वचन धनवान न माने। सादृश्य रूप देखकर हरा गया है चित्त जिनका।

सो सब मन्त्रियों ने भेले होय मन्त्र किया - पंडितनिकूं इतनों के वचनों का विश्वास न करना - बालक, अतिवृद्ध, स्त्री, मद्यपायी, वेश्यासक्त इनके वचन प्रमाण नाहीं। और स्त्रीनिकूं शील की शुद्धि राखनी। शील की शुद्धि बिना गोत्र की शुद्धि नाहीं। स्त्रियों को शील ही प्रयोजन है। इसलिए राजलोक में दोनों ही न जाने पावैं, बाहिर रहै। तब इनका पुत्र अंगद तो माता के वचन से इनकी पक्ष आया और जांबूनद कहै है - हम भी इन्हीं के संग रहैं। अर इनका पुत्र, सो अंगद, सुग्रीव की पक्ष है और सात अक्षोहणी दल इनके हैं और सात उस पै है। नगर की दक्षिण के ओर वह राखा, उत्तर की ओर यह राखे। अर बाली का पुत्र चंद्ररश्मि उसने यह प्रतिज्ञा करी जो सुतारा के महिल आवैगा उसे ही खड्ग कर मारूंगा। तब यह सांचा सुग्रीव स्त्री के विरह कर व्याकुल शोक के निवारवे निमित्त खरदूषण पै गया। सो खरदूषण तो लक्ष्मण के खड्ग कर हता गया।

फिर यह हनुमान पै गया जाय प्रार्थना करी, मैं दु:ख कर पीड़ित हूं मेरी सहाय करो। मेरा रूप कर कोई पापी मेरे घर में बैठ्या है, सो मोहि महा बाधा है, जायकर उसे मारो। तब सुग्रीव के वचन सुन हनुमान बडवानल समान क्रोधकर प्रज्वलित होय अपने मंत्रियनि सहित अप्रतीघात नामा विमान में बैठ किहकंधापुर आया। सो हनुमानकूं आया सुन वह मायामई सुग्रीव हाथी चढ़ लडिवेकूं आया। सो हनुमान दोनों का सादृश्य रूप देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भया। मन में

चिंतवता भया ये दोनों समान रूप सुग्रीव ही हैं। इनमें से कौन को मारूं, कुछ विशेष जाना न पड़े। बिना जाने सुग्रीव को ही मारूं तो बड़ा अनर्थ होय।

एक मुहूर्त अपने मंत्रिनिसूं विचारकर उदासीन होय हनुमान पीछा निजपुर गया। सो हनुमानकूं गए सुन सुग्रीव बहुत व्याकुल भया। मन में विचारता भया – हजारां विद्या अर माया, तिनसे मण्डित, महाबली महाप्रताप रूप वायु पुत्र, सो भी सन्देह कूं प्राप्त भया सो बड़ा कष्ट। अब कौन सहाय करै? अतिव्याकुल होय, दुःख निवारवे अर्थ, स्त्री के वियोगरूप दावानल कर तप्तायमान, आपके शरण आया है। आप शरणागत प्रतिपालक हैं। यह सुग्रीव अनेक गुणनिकर शोभित है। हे रघुनाथ! प्रसन्न होहु, याहि अपना करहु। तुम सारिखे पुरुषनि का शरीर परदुःख का नाशक है।

ऐसे जांबूनद के वचन सुन राम लक्ष्मण और विराधित कहते भए – धिक्कार होवे परदारा रत पापी जीवनिकूं। राम ने विचारी – मेरा और इसका दुःख समान है। सो यह मेरा मित्र होयगा। मैं इसका उपकार करूं अर यह पाछा मेरा उपकार करेगा। नहीं तो मैं निर्ग्रंथ मुनि होय मोक्ष का साधन करूंगा। ऐसा विचारकर राम सुग्रीवसूं कहते भए, हे सुग्रीव! मैं सर्वथा तुझे मित्र किया, जो तेरा स्वरूप बनाय आया है उसे जीत तेरा राज्य तुझे निहकंटक कराय दूंगा, और तेरी स्त्री तोहि मिलाय दूंगा। अर तेरा काम होय पीछे तू सीता की सुध हमें आन देना कि कहां है।

तब सुग्रीव कहता भया – हे प्रभो! मेरा कार्य भए पीछे जो सात दिन में सीता की सुध न लाऊं तो अग्नि में प्रवेश करूं। यह बात सुन राम प्रसन्न भए, जैसे चन्द्रमा की किरण करि कुमुद प्रफुल्लित होय। राम का मुखरूप कमल फूल गया। सुग्रीव के अमृतरूप वचन सुनिकर रोमांच खड़े होय आए। जिनराज के चैत्यालय में दोनों धर्ममित्र भए। यह वचन किया परस्पर कोई द्रोह न करै। बहुरि राम लक्ष्मण रथ चढ़ अनेक सामन्तनि सहित सुग्रीव के साथ किहकंधापुर आए। नगर के समीप डेराकर सुग्रीव ने मायामयी सुग्रीव पै दूत भेज्या। सो दूतकूं ताने खेद दिया, अर मायामई सुग्रीव रथ में बैठी बड़ी सेना सहित युद्ध के निमित्त निकस्या। सो दोऊ परस्पर लड़े। मायामई सुग्रीव और सांचे सुग्रीव के नाना प्रकार का युद्ध भया, अन्धकार होय गया, दोऊ ही खेदकूं प्राप्त भए। घनी वेर में मायामई सुग्रीव ने सांचे सुग्रीव के गदा की दीनी सो गिर पड्या। तब वह मायामई सुग्रीव इसकूं मूवा जान हर्षित होय नगर में गया। अर सांचा सुग्रीव मूर्छित होय पर्‍या सो परिवार के लोक डेरा में लाये।

तब सचेत होय रामसूं कहता भया, हे प्रभो! मेरा चोर हाथ में आया हुता सो नगर में क्यों जाने दिया? जो रामचन्द्रकूं पायकर मेरा दुःख नाहीं मिटै तो या समान दुःख कहा? तब राम कही तेरा और उसका रूप देखकर हम भेद न जान्या। तातैं तेरा शत्रु न हन्या। कदाचित् बिना जाने तेरा

ही अगर नाश होय तो योग्य नाहीं। तू हमारा परम मित्र है। तेरे और हमारे जिनमंदिर में वचन हुवा है।

अथानन्तर राम ने मायामई सुग्रीवकूं बहुरि युद्ध के निमित्त बुलाया। सो वह बलवान क्रोधरूप अग्नि कर जलता आया। राम सन्मुख भए। वह समुद्रतुल्य अनेक शस्त्रों के धारक सुभट, तेई भए ग्राह, उनकर पूर्ण। ता समय लक्ष्मण ने सांचा सुग्रीव पकड़ राख्या कि कभी स्त्री के बैर से शत्रु के सन्मुख न जाय। अर श्रीरामकूं देखकर मायामई सुग्रीव के शरीर में जो वैताली विद्या हुती सो ताकूं पूछ कर ताके शरीरतैं निकसी। तब सुग्रीव का आकार मिट वह साहसगति विद्याधर इन्द्रनील के पर्वत समान भासता भया। जैसे सांप की कांचली दूर होय तैसे सुग्रीव का रूप दूर होय गया। तब जो आधी सेना वानरवंशीनि की यामें भेली भई थी, यातैं जुदा होय, युद्धकूं उद्यमी भई। सब वानरवंशी एक होय नाना प्रकार के आयुधनिकरि साहसगतिसूं युद्ध करते भए। सो साहसगति महा तेजस्वी, प्रबल शक्ति का स्वामी सब वानरवंशीनिकूं दशोंदिशाकूं भजाये, जैसैं पवन धूलकूं उडावै।

बहुरि साहसगति धनुषबाण लेय राम पै आया। सो मेघमंडल समान बाणनि की वर्षा करता भया। उद्धत है पराक्रम जाका। साहसगति के और श्रीराम के महायुद्ध भया। प्रबल है पराक्रम जिनका ऐसे राम रणक्रीड़ा में प्रवीण, क्षुद्र बाणनिकरि साहसगति का वक्तर छेद्या और तीक्ष्ण बाणनिकरि साहसगति का शरीर चालिनी समान कर डास्या। सो प्राणरहित होय भूमि में पस्या। सबनि निरख निश्चय किया जो यह प्राणरहित है। तब सुग्रीव राम लक्ष्मण की महास्तुति कर इनकूं नगर में लाया, नगर की शोभा करी, सुग्रीव को सुतारा का संयोग भया सो भोगसागर में मग्न होय गया। रात दिन की सुध नाहीं, सुतारा बहुत दिननि में देखी सो मोहित होय गया। अर नन्दनवन की शोभाकूं ऊलंघे है ऐसा आनन्दनामा बन वहां श्रीरामकूं राखे।

ता वन की रमणीकता का वर्णन कौन कर सकै? जहां महामनोग्य श्रीचन्द्रप्रभ का चैत्यालय, वहां राम लक्ष्मण पूजा करी। अरी विराधितकूं आदि दे सर्व कटक का डेरा वन में गया, खेदरहित तिष्ठै। सुग्रीव की तेरह पुत्री रामचन्द्र के गुण श्रवण करै? अत: अनुराग भरी वरिवे की बुद्धि करती भईं। चन्द्रमा समान है मुख जिनका तिनके नाम सुनो - चन्द्राभा, हृदयावली हृदयधर्म्मा, अनुधरी, श्रीकांता, सुन्दरी, सुरवनी देवांगना समान है विभ्रम जाका, मनोवाहिनी मन में बसनहारी, चारुश्री, मदनोत्सवा, गुणवती अनेक गुणनिकरि शोभित, अर पद्मावती फूल समान है मुख जाका, तथा जिनपति सदा जिनपूजा में तत्पर। ये त्रयोदश कन्या लेकर सुग्रीव राम पै आया।

नमस्कार कर कहता भया - हे नाथ! ये इच्छाकरि आपकूं वरै हैं, हे लोकेश! इन कन्यानि के पति होवो। इनका चित्त जन्महीतैं यह भया जो हम विद्याधरनिकूं न वरें। आपके गुण श्रवणकर अनुरागरूप भई हैं। यह कहकर राम को परणाईं। ये कन्या अति लज्जा की भरीं नम्रीभूत हैं मुख

जिनके, राम का आश्रय करती भईं। महासुन्दर नवयौवन, जिनके गुण वर्णन में न आवैं, विजुरी समान, सुवर्णसमान, कमल के गर्भ समान शरीर की कांति जिनकी, ताकर आकाशविषै उद्योत भया। वे विनयरूप लावण्यताकर मंडित राम के समीप तिष्ठीं। सुन्दर है चेष्टा जिनकी।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे मगधाधिपति! पुरुषनि में सूर्य समान श्रीराम सारिखे पुरुष तिनका चित्त विषयवासनातैं विरक्त है, परन्तु पूर्व जन्म के सम्बन्धसूं कई एक दिन विरक्त रूप गृह में रह बहुरि त्याग करेंगे।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सुग्रीव का व्याख्यान वर्णन करने वाला सैंतालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।47।।

अथानन्तर ते सुग्रीव की कन्या राम के मनमोहिवे के अर्थ अनेक प्रकार की चेष्टा करती भईं, मानों देवलोक ही तैं उतरी है। वीणादि का बजावना, मनोहर गीत का गावना इत्यादि अनेक सुन्दर लीला करती भईं, तथापि रामचन्द्र का मन न मोहा। सर्व प्रकार के विस्तीर्ण विभव प्राप्त भए परन्तु राम ने भोगनिविषै मन न किया। सीताविषै अत्यन्त दत्तचित्त, समस्त चेष्टारहित, महाआदरकरि सीताकूं ध्यावते तिष्ठे, जैसे मुनिराज मुक्ति को ध्यावैं। वे विद्याधर की पुत्री गान करैं, सो उनकी ध्वनि न सुनें, अर देवांगना समान तिनका रूप सो न देखूं। रामकूं सर्व दिशा जानकीमई भासें, अर कुछ भासें नाहीं। और कथा न करैं। ए सुग्रीव की पुत्री परणी, सो पास बैठी। तिनकूं हे जनकसुते! ऐसा कह बतलावैं।

काक से प्रीतिकर पूछें – अरे काक! तू देश देश भ्रमण करै है तैंने जानकी हू देखी? अर सरोवरविषै कमल फूल रहे हैं, तिनकी मकरन्द कर जल सुगन्ध होय रहा है, तहां चकवा चकवी के युगल कलोल करते देख चितारें। सीता बिन रामकूं सर्व शोभा फीकी लागै। सीता के शरीर के संयोग की शंकाकरि पवनसूं आलिंगन कर, कदाचित् पवन सीताजी के निकटतैं आई होय, जा भूमि में सीताजी तिष्ठै हैं ता भूमिकूं धन्य गिनै। अर सीता बिना चन्द्रमा की चांदनीकूं अग्नि समान जाने। मन में चितवैं कदाचित् सीता मेरे वियोगरूप अग्निकरि भस्म भई होय। अर मंद मंद पवन कर लतानिकूं हालती देख जानै हैं यह जानकी ही है। अर वेलपत्र हालते देख जानै जानकी के वस्त्र फरहरै हैं। अर भ्रमरसंयुक्त फूल देख जानै ये जानकी के लोचन ही हैं। अर कोंपल देख जानै ये जानकी के करपल्लव ही हैं। अर श्वेत श्याम आरक्त तीनों जाति के कमल देख जानें सीता के नेत्र तीन रंगकूं धरै हैं। अर पुष्पनि के गुच्छे देख जानैं जानकी के शोभायमान स्तन ही हैं। अर कदली के स्तंभविषै जंघानि की शोभा जानैं, अर लाल कमलनिविषै चरणनि की शोभा जानैं, सम्पूर्ण शोभा जानकीरूप ही जानैं।

अथानन्तर सुग्रीव सुतारा के महिलविषै ही रहा, राम पै आए बहुत दिन भए। तब राम ने विचारी, ताने सीता न देखी। मेरे वियोग कर तप्तायमान भई वह शीलवंती मर गई। तातैं सुग्रीव मेरे पास नाहीं आवै? अथवा वह अपना राज्य पाय निश्चिंत भया, हमारा दुःख भूल गया। यह चिंतवनकरि राम की आंखनि सै आंसू पड़े। तब लक्ष्मण रामकूं सचिंत देख कोपकर लाल भए हैं नेत्र जाके, आकुलित है मन जाका, नांगी तलवार हाथ में लेय सुग्रीव ऊपर चाल्या सो नगर कम्पायमान भया।

सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी तिनकूं उलंघ सुग्रीव के महल में जाय ताकूं कहा – रे पापी? अपने परमेश्वर राम तो स्त्री के दुखकर दुखी अर तू दुर्बुद्धि स्त्रीसहित सुखसों राज्य करै? रे विद्याधरवायस विषयलुब्ध दुष्ट! जहां रघुनाथ तेरा शत्रु पठाया है तहां मैं तोहि पठाऊंगा। या भांति अनेक क्रोध के उग्रवचन लक्ष्मण कहे तब वह हाथ जोड़ नमस्कार कर लक्ष्मण का क्रोध शांत करता भया। सुग्रीव कहै है – हे देव! मेरी भूल माफ करहु, मैं करार भूल गया। हम सारिखे क्षुद्र मनुष्यनि के खोटी चेष्टा होय है। अर सुग्रीव की सम्पूर्ण स्त्री कांपती हुई लक्ष्मणकूं अर्घ देय आरती करती भईं। हाथ जोड़ नमस्कार कर पति की भिक्षा मांगती भईं। तब आप उत्तमपुरुष तिनकूं दीन जान कृपा करते भए। यह महन्तपुरुष प्रणाम मात्र ही करि प्रसन्न होय, अर दुर्जन महादान लेकर हू प्रसन्न न होय। लक्ष्मण ने सुग्रीवकूं प्रतिज्ञा चिताय उपकार किया, जैसैं यक्षदत्तकूं माता का स्मरण कराय मुनि उपकार करते भए।

यह वार्ता सुन राजा श्रेणिक गौतम स्वामीसूं पूछे हैं – हे नाथ! यक्षदत्त का वृत्तांत मैं नीका जानना चाहूं हूं।

तब गौतम स्वामी कहते भए – हे श्रेणिक! एक कौंचपुर नगर, तहां नगर यक्ष, राणी राजिलता, ताके पुत्र यक्षदत्त, सो एक दिन एक स्त्रीकूं नगर के बाहर कुटी में तिष्ठती देख कामबाण कर पीड़ित भया। ताकी ओर चाल्या रात्रिविषै, तब ऐन नामा मुनि याकूं मना करते भए। यह यक्षदत्त, खड्ग है जाके हाथ में सो विजुरी के उद्योतकरि मुनिकूं देखकर तिनके निकट जाय विनय संयुक्त पूछता भया – हे भगवन्! काहे को मोहि मने किया?

तब मुनि कहा – जाको देख तू कामवश भया है सो स्त्री तेरी माता है। तातैं यद्यपि सूत्र में रात्रि को बोलना उचित नाहीं तथापि करुणाकर अशुभ कार्यतैं मनै किया। तब यक्षदत्त ने पूछा – हे स्वामी! मेरी माता कैसे हैं? तब मुनि कही – सुन, एक मृत्युकावती नगरी, तहां कणिक नामा वणिक, ताके धू नामा स्त्री, ताके बन्धुदत्त नामा पुत्र। ताकी स्त्री मित्रवती, लतादत्त की पुत्री, सो स्त्रीकूं छाने गर्भ राखि, बंधुदत्त जहाज बैठि देशांतर गया। ताकूं गए पीछे याकी स्त्री के गर्भ जान

सासू ससुर ने दुराचारणीं जान घर से निकाल दई। सो उत्पलका दासी को लार लेय बड़े सारथी की लार पिता के घर चाली। सो उत्पलका को सर्प ने डसी, वन में मुई।

अर यह मित्रवती शीलमात्र ही है सहाय जाके सो कौंचपुरविषै आई। अर महाशोक की भरी - ताके उपवन विषै पुत्र का जन्म भया। तब यह तो सरोवरविषै वस्त्र धोयवे गई अर पुत्ररत्न कंबल में बेढा सो कंबल संयुक्त पुत्रकूं स्वान लेय गया। सो काहू ने छुड़ाया, राजा यक्षकूं दिया, ताके राणी राजिलता अपुत्रवती, सो राजा ने पुत्र राणी को सौंप्या। ताका यक्षदत्त नाम धस्या सो तू। अर वह तेरी माता वस्त्र धोय आई सो ताहि न देखि विलाप करती भई। एक देव पुजारी ने ताहि दया कर धैर्य बंधाया। तू मेरी बहिन है ऐसा कह राखी। सो यह मित्रवती सहायरहित लज्जाकर अकीर्ति के भयथकी बाप के घर न गई। अत्यन्त शील की भरी जिनधर्मविषै तत्पर, दरिद्री की कुटीविषै रहै। सो तैं भ्रमण करता देख कुभाव किया। अर याका पति बंधुदत्त रत्नकंबल दे गया हुता, ताविषै ताहि लपेट सो सरोवर गई हुती, सो रत्नकंबल राजा के घर में है अर वह बालक तू है। या भांति मुनि कही, तब यह नमस्कार कर खड्ग हाथ में लेय राजा यक्ष पे गया। अर कहता भया या खड्ग कर तेरा सिर काटूंगा। नातर मेरे जन्म का वृत्तांत कहो। तब राजा यक्ष यथावत् वृत्तांत कहा। अर वह रत्नकम्बल दिखाया। सो लेय कर यक्षदत्त अपनी माता कुटी में तिष्ठे थी तासूं मिला।

अर अपना बंधुदत्त पिता ताकूं बुलाया, महाउत्सव अर महा विभवकर मंडित माता पितासूं मिला, यह यक्षदत्त की कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कही। जैसे यक्षदत्त कों मुनि ने माता का वृत्तांत जनाया तैसैं लक्ष्मण ने सुग्रीव को प्रतिज्ञा विस्मरण होय गया हुता सो जनाया। सुग्रीव लक्ष्मण के संग शीघ्र ही रामचन्द्र पै आया, नमस्कार किया, अर अपने सब विद्याधर सेवक महाकुल के उपजे बुलाए। वे या वृत्तांत को जानते हुते, अर स्वामी कार्य विषै तत्पर, तिनकूं समझाय कर कहा सो सर्व ही सुनो, राम ने मेरा बड़ा उपकार किया। अब सीता की खबर इनकूं लाय दो। तातैं तुम दिशानिकूं जाओ। अर सीता कहां है यह खबर लावो, समस्त पृथ्वी पर जल स्थल आकाशविषै हेरो। जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, घातकी खण्ड, कुलाचल, वन, सुमेरु, नाना प्रकार के विद्याधर नगर समस्त अस्थानक, सर्वदिशा ढूंढ़ो।

अथानन्तर ये सब विद्याधर सुग्रीव की आज्ञा सिर पर धारकर हर्षित भए, सब ही दिशानिकूं शीघ्र ही दौड़े। सब ही विचारें - हम पहिली सुध लावें तासों राजा अति प्रसन्न होय। अर भामण्डलकूं हू खबर पठाई जो सीता हरी गई ताकी सुध लेवो। तब भामण्डल बहिन के दुःखकर अति ही दुःखी भया। हेरने का उद्यम किया। अर सुग्रीव आप भी ढूंढ़नेकूं निकसा। सो ज्योतिष

चक्र के ऊपर होय विमान में बैठ्या देखता भया। दुष्ट विद्याधरनि के नगर सर्व देखे, सो समुद्र के मध्य जम्बूद्वीप देखा। वहां महेन्द्र पर्वत पर आकाश से सुग्रीव उतरा। तहां रत्नजटी तिष्ठे था सो डरा, जैसे गरुडते सर्प डरे।

बहुरि विमान नजीक आया तब रत्नजटी जाना कि यह सुग्रीव है, लंकापति ने क्रोधकर मोपर भेजा सो मोहि मारेगा। हाय! मैं समुद्र में क्यों न डूब मूआ? अन्तर द्वीपविषै मारा जाऊंगा। विद्या तो रावण मेरी हर लेय गया अब प्राण हरने याहि पठाया। मेरी बांछा हुती जैसे तैसे भामण्डल पर पहुंचूं तो सर्व कार्य होय, सो न पहुंच सक्या। यह चिंतवन करै है इतने में ही सुग्रीव आया, मानों दूसरा सूर्य ही है, द्वीप का उद्योत करता आया। सो याको वन की रजकर धूसरा देख दया कर पूछता भया, हे रत्नजटी! पहिले तू विद्या कर संयुक्त हुता। अब हे भाई! तेरी कहा अवस्था भई? या भांति सुग्रीव दया कर पूछा सो रत्नजटी अत्यन्त कम्पायमान कछु कह न सकै।

तब सुग्रीव कही – भय मत कर, अपना वृत्तांत कह। बार–बार धैर्य बन्धाया। तब रत्नजटी नमस्कार कर कहता भया – रावण दुष्ट सीताकूं हरण कर ले जाता हुता, सो ताके अर मेरे परस्पर विरोध भया। मेरी विद्या छेद डारी। अब विद्यारहित जीवित विषै सन्देह चिन्तावान तिष्ठे था सो हे कपिवंश के तिलक! मेरे भागतैं तुम आए। ये वचन रत्नजटी के सुन सुग्रीव हर्षित होय ताहि संग लेय अपने नगर में श्रीराम पै लाया। सो रत्नजटी रामलक्ष्मणसों सब के समीप हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया – हे देव! सीता महासती है, ताकूं दुष्ट निर्दई लंकापति रावण हर ले गया। सो रुदन करती विलाप करती विमान में बैठी मृगी समान व्याकुल मैं देखी। वह बलवान बलात्कार लिए जाता हुता। सो मैंने क्रोधकर कहा – यह महासती मेरे स्वामी भामण्डल की बहिन है, तू छोड़ दे। सो वाने कोपकर मेरी विद्या छेदी। वह महा प्रबल, जाने युद्ध में इन्द्रकूं जीता पकड़ लिया अर कैलाश उठाया, तीन खण्ड का स्वामी, सागरांत पृथ्वी जाकी दासी, जो देवनिहूं करि न जीती जाय सो ताहि मैं कैसे जीतूं? ताने मोहि विद्यारहित किया।

यह सकल वृत्तांत रामदेव ने सुनकर ताकूं उर से लगाया अर बारम्बार ताहि पूछते भए। बहुरि राम पूछते भए – हे विद्याधरो! कहो लंका कितनी दूर है? तब वे विद्याधर निश्चल होय रहे, नीचा मुख किया। मुख की छाया और ही होय गई, कुछ जवाब न दिया। तब राम ने उनका अभिप्राय जाना – जो यह हृदयविषै रावणतैं भय रूप हैं। मन्ददृष्टिकर तिनकी ओर निहारे। तब वे जानते भए हमकूं आप कायर जानो हो। लज्जावान होय हाथ जोड़ सिर निवाय कहते भये – हे देव! जाके नाम सुनैं हमकूं भय उपजै है ताकी बात हम कैसैं कहें? कहां हम अल्प शक्ति के धनी अर कहां वह लंका का ईश्वर? तातैं तुम यह हठ छोड़ो, अर वस्तु गई जानो। अथवा तुम सुनो हो

तो हम सब वृत्तांत कहे सो नीके उर में धारो।

लवण समुद्र विषै राक्षसद्वीप प्रसिद्ध है, अद्‌भुत सम्पदा का भरा। सो सात सौ योजन चौड़ा है, अर प्रदक्षिणाकर किंचित् अधिक इक्कीस सौ योजन वाकी परिधि है, ताके मध्य सुमेरु तुल्य त्रिकूटाचल पर्वत है। सो नवयौजन ऊंचा, पचास योजन के विस्ताररूप नाना प्रकार के मणि अर सुवर्ण कर मण्डित। आगैं मेघबाहन को राक्षसनि के इन्द्र ने दिया हुता, ता त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नाम नगरी, शोभायमान, रत्नमई, जहां विमान समान घर, अर अनेक क्रीड़ा करने के निवास, तीस योजन के विस्तार लंकापुरी महाकोट खाई कर मण्डित, मानों दूजी वसुंधरा ही है। अर लंका के चौगिरद बड़े-बड़े रमणीक स्थानक हैं। अति मनोहर मणि सुवर्णमई जहां राक्षसनि के स्थानक हैं, तिनविषै रावण के बन्धुजन बसै है। संध्याकार सुवेल कांचन ल्हादन पोधन हंस हर सागर घोष अर्घस्वर्ग इत्यादि मनोहर स्थानक वन उपवन आदिकरि शोभित देवलोक समान है। जिनविषै भ्रात, पुत्र, मित्र, स्त्री, बांधव, सेवकजन सहित लंकापति रमै हैं।

सो विद्याधरनि सहित क्रीड़ा करता देख लोकनिकूं ऐसी शंका उपजै है मानो देवनि सहित इन्द्र ही रमै है। जाका महाबली विभीषण-सा भाई, औरनिकरि युद्ध में न जीता जाय, ता समान बुद्धि देवनि में नाहीं, अर ता समान मनुष्य नाहीं। ताहिकरि रावण का राज्य पूर्ण है। अर रावण का भाई कुम्भकर्ण त्रिशूल का धारक, जाकी युद्ध में टेढ़ी भौहें देव भी देख सकें नाहीं तो मनुष्यनि की कहा बात? अर रावण का पुत्र इन्द्रजीत पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है। अर जाके बड़े बड़े सामन्त सेवक हैं। नाना प्रकार विद्या के धारक, शत्रुनि के जीतनहारे, अर जाका छत्र पूर्ण चन्द्रमा समान जाहि देखकर बैरी गर्वकूं तजै हैं। तानै सदा रण संग्राम में जीति ही जीति सुभटपने का विरद प्रकट किया है। सो रावण के छत्रकूं देख तिनका सर्व गर्व जाता रहै।

अर रावण का चित्रपट देखे अथवा नाम सुने शत्रु भयकूं प्राप्त होय, जो ऐसा रावण तासों युद्ध कौन कर सकै? तातैं यह कथा ही न करना और बात करो। यह बात विद्याधरनि के मुखतैं सुनकर लक्ष्मण बोला, मानों मेघ गाजा - तुम ऐती प्रशंसा करो हो सो सब मिथ्या है। जो वह बलवान हुता तो अपना नाम छिपाय स्त्रीकूं चुराकर काहे ले गया? वह पाखण्डी, अति कायर, अज्ञानी, पापी नीच, राक्षस। ताके रंच मात्र भी शूरवीरता नाहीं।

अर राम कहते भए - बहुत कहने करि कहा? सीता की सुध ही कठिन हुती। अब सुध आई तब सीता आय चुकी। अर तुम कही और बात करो और चिन्तवन करो सो हमारे और कछु बात नाहीं, और कछु चिंतवन नाहीं। सीताकूं लावना यही उपाय है। राम के वचन सुनकर वृद्ध विद्याधर क्षण एक विचारकर बोले, हे देव! शोक तजो, हमारे स्वामी होवो, अर अनेक विद्याधरनि की

पुत्री, गुणनिकर देवांगना समान, तिनके भरतार होवो। अर समस्त दु:ख की बुद्धि छोड़ो।

तब राम कहते भए – हमारे और स्त्रीनि का प्रयोजन नाहीं। जो शची समान स्त्री होय तो भी हमारे अभिलाषा नाहीं। जो तिहारी हममें प्रीति है तो सीता हमें शीघ्र ही दिखावो। तब जाबूंनद कहता भया – हे प्रभो! या हठ को तजो। एक क्षुद्र पुरुष ने कृत्रिम मयूर का हठ किया ताकी न्याईं स्त्री का हठकर दुखी मत होवो। यह कथा सुनो –

एक बेणातट ग्राम, तहां सर्वरुचि नामा गृहस्थी, ताके विनयदत्त नामा पुत्र, ताकी माता गुणपूर्णा अर विनयदत्त का मित्र विशालभूत, सो पापी विनयदत्त की स्त्रीसों आसक्त भया। स्त्री के वचनकरि विनयदत्तकूं कपटकरि वनविषै ले गया, सो एक वृक्ष के ऊपर बांध वह दुष्ट घर उठि आया। कोई विनयदत्त के समाचार पूछे तो ताहि कुछ मिथ्या उत्तर देय सांचा होय रहै। जहां विनयदत्त बांधा हुता तहां एक क्षुद्र नामा पुरुष आया, वृक्ष के तले बैठा, वृक्ष महा सघन। विनयदत्त कुरलावता हुता, सो क्षुद्र देखे तो दृढ़बन्धन कर मनुष्य वृक्ष की शाखा के अग्रभाग बंधा है। तब क्षुद्र दया कर ऊपर चढ़ा, विनयदत्त को बंधनते निवृत्त किया।

विनयदत्त द्रव्यवान, सो क्षुद्रकूं उपकारी जान अपने घर ले गया। भाईतैं हूं अधिक हित राखे, विनयदत्त के घर उत्साह भया, अर वह विशालभूत कुमित्र दूर भाग गया। क्षुद्र विनयदत्त का परम मित्र भया। सो क्षुद्र का एक रमने (खेलने) का पत्रमयी मयूर, सो पवनकर उड्या, राजपुत्र के घर जाय पड्या। सो ताने राख मेल्या, ताके निमित्त क्षुद्र महा शोककर मित्रकूं कहता भया – मोहि जीवता इच्छै है तो मेरा वही मयूर लाव।

विनयदत्त कहा – मैं तोहि रत्नमई मयूर कराय दूं, अर सांचे मोर मंगाय दूं, वह पत्रमई मयूर पवनतैं उड़ गया सो राजपुत्र ने राखा, मैं कैसे लाऊं?

तब क्षुद्र कही मैं वही लेऊं, रत्ननि के न लूं, न सांचे लूं। विनयदत्त कहे – जो चाहो सो लेहु, वह मेरे हाथ नाहीं। क्षुद्र बारम्बार वही मांगे। सो वह तो मूढ़ हुता, तुम पुरुषोत्तम होय ऐसे क्यों भूलों हो? वह पत्रनि का मयूर राजपुत्र के हाथ गया विनयदत्त कैसे लावै? तातैं अनेक विद्याधरनि की पुत्री, सुवर्ण समान वर्ण जिनका, श्वेत श्याम आरक्त तीन वर्णकूं धारै हैं नेत्र कमल जिनके, सुन्दर पीवर हैं स्तन जिनके, कदली समान जंघा जिनकी, अर मुख की कांति कर शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमाकूं जीते, मनोहर गुणनि की धरणहारी, तिनके पति होऊ। हे रघुनाथ! महाभाग्य! हम पर कृपा करहु। यह दु:ख का बढ़ावनहारा शोक संताप छोड़हु।

तदि लक्ष्मण बोले – हे जाम्बूनद! तैं यह दृष्टांत यथार्थ न दिया। हम कहै हैं सो सुनहु – एक कुसुमपुर नामा नगर, तहां एक प्रभव नामा गृहस्थ, जाके यमुना नामा स्त्री, ताके धनपाल,

बंधपाल, गृहपाल, पशुपाल, क्षेत्रपाल ये पांच पुत्र। सो यह पांचों ही पुत्र यथार्थ गुणनि के धारक, धन के कमाऊ कुटुम्ब के पलिवेविषै उद्यमी। सदा लौकिक धन्धे करैं। क्षणमात्र आलस नाहीं। अर इन सबनितैं छोटा आत्मश्रेय नामा कुमार सो पुण्य के योग करि देवनिकैसे भोग भोगवै। सो याकों माता पिता अर बड़े भाई कटुक वचन कहें। एक दिन यह मानी नगर बाहिर भ्रमैं था सो कोमल शरीर खेदकूं प्राप्त भया। उद्यम करवेकूं असमर्थ, सो आपका मारण वांछता हुता।

ता समय याके पूर्व पुण्यकर्म उदयकरि एक राजपुत्र याहि कहता भया – हे मनुष्य! मैं पृथुस्थान नगर के राजा का पुत्र भानुकुमार हूं, सो देशांतर भ्रमणकूं गया हुता, सो अनेक देश देखे, पृथ्वीविषै भ्रमण करता दैवयोगतैं कर्मपुर गया, सो एक निमित्तज्ञानी पुरुष की संगतिविषै रहा। ताने मोहि दुखी जान करुणाकर यह मंत्रमई लोह का कड़ा दिया अर कही – यह सब रोग का नाशक है, बुद्धिवर्धक है। ग्रह सर्प पिशाचादिक का वश करणहारा है, इत्यादि अनेक गुण हैं। सो तू राख, ऐसे कह मोहि दिया, अर अब मेरे राज्य का उदय आया। मैं राज्य करवेकूं अपने नगर जाऊं हूं, यह कड़ा मैं तोहि दूं हूं, तू मरे मत। जो वस्तु आप पै आई, अपना कार्य कर काहूंकूं दे डारो तो यह महाफल है। सो लोकविषै ऐसे पुरुषनिकूं मनुष्य पूजै हैं। आत्मश्रेय को ऐसा कह राजकुमार अपना कड़ा देय, अपने नगर गया। अर यह कड़ा लेय अपने घर आया। ताही दिन ता नगर के राजा की राणीकूं सर्प ने डसी हुती सो चेष्टा रहित होय गई। ताहि मृतक जान जरायवेकूं लाए हुते, सो आत्मश्रेय ने मंगलमई लोहे के कड़े के प्रसादकरि विषरहित करी।

तब राजा अति दान देय बहुत सत्कार किया, आत्मश्रेय के कड़े के प्रसादकरि महाभोग सामग्री भई। सब भाइनविषै यह मुख्य ठहरा। पुण्यकर्म के प्रभावकरि पृथ्वीविषै प्रसिद्ध भया। एक दिन कड़ेकूं वस्त्रविषै बांध सरोवर गया। सो गोह आय कड़ेकूं लेय, महावृक्ष के तले ऊंडा बिल है ताविषै पैठ गई। बिल शिलानिकरि आच्छादित। सो गोह बिल विषै बैठी भयानक शब्द करै। आत्मश्रेय ने जाना कड़ेकूं गोह बिलविषै ले गई, गर्जना करै है। तब आत्मश्रेय वृक्ष जड़ते उखाड़, शिला दूर कर, गोह का बिल चूर कर डारा, अर बहुत धन लिया। सो राम तो आत्मश्रेय हैं, अर सीता कड़े समान है, लंका बिल समान है, रावण गोह समान है। तातैं हो विद्याधरो! तुम निर्भय होवो। ये लक्ष्मण के वचन जांबूनद के वचननिकूं खंडन करनहारे सुनकर विद्याधर आश्चर्यकूं प्राप्त भए।

अथानन्तर जांबूनद आदि सब रामसूं कहते भए – हे देव! अनन्तवीर्य योगीन्द्रकूं रावण ने नमस्कार कर अपने मृत्यु का कारण पूछ्या। तब अनन्तवीर्य की आज्ञा भई जो कोटिशिलाकूं उठावेगा ताकरि तेरी मृत्यु है। तब ये सर्वज्ञ के वचन सुन रावण ने विचारी ऐसा कौन पुरुष है जो कोटिशिलाकूं उठावै। ये वचन विद्याधरनि के सुन लक्ष्मण बोले – मैं अब ही यात्राकूं वहां

चालूंगा, तब सबही प्रमाद तज इनके लार भए। जांबूनद, महाबुद्धि, सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, नल, नील इत्यादि नामी पुरुष विमान विषै राम लक्ष्मणकूं चढ़ाय कोटिशिला की ओर चाले।

अंधेरी रात्रिविषै शीघ्र ही जाय पहुंचे, शिला के समीप उतरे। शिला महा मनोहर, सुर नर असुरनिकरि नमस्कार करने योग्य, ये सर्व दिशाविषै सामंतनिकूं रखवारे राख, शिला की यात्राकूं गए। हाथ जोड़ सीस निवाय नमस्कार किया। सुगंध कमलनिकरि तथा अन्य पुष्पनिकरि शिला की अर्चा करी। चन्दनकर चरची, सो शिला कैसी शोभती भई मानों साक्षात् शची ही है। ताविषै जे सिद्ध भए तिनकूं नमस्कार कर, हाथ जोड़, भक्तिकर शिला की तीन प्रदक्षिणा दई। सब विधिविषै प्रवीण लक्ष्मण कमर बांध, महाविनयकूं धरता संता, नमोकार मंत्र में तत्पर, महा भक्तिकरि स्तुति करवेकूं उद्यमी भया। अर सुग्रीवादि वानरवंशी सब ही जय जयकार शब्द कर महास्तोत्र पढ़ते भए।

एकाग्रचित कर सिद्धनि की स्तुति करै हैं, जो भगवान सिद्ध त्रैलोक्य के शिखर महादैदीप्यमान हैं। अर वे सिद्ध स्वरूप मात्र सत्ताकर अविनश्वर हैं। तिनका बहुरि जन्म नाहीं। अनन्तीवीर्य कर संयुक्त, अपने स्वभाव में लीन, महा समीचीनता युक्त, समस्त कर्मरहित, संसार समुद्र के पारगामी, कल्याणमूर्ति, आनन्द-पिंड, केवलज्ञान-केवलदर्शन के आधार, पुरुषाकार, परमसूक्ष्म, अमूर्ति, अगुरुलघु, असंख्यात-प्रदेशी, अनन्तगुणरूप, सर्वकूं एक समय में जानैं, सब सिद्ध समान, कृतकृत्य, जिनके कोई कार्य करना रहा नाही। सर्वथा शुद्धभाव, सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल, सर्वभाव के ज्ञाता, निरंजन, आत्मज्ञानरूप, शुक्लध्यान अग्निकर अष्टकर्म वन के भस्म करणहारे, अर महाप्रकाशरूप प्रताप के पुंज, जिनकूं इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि पृथ्वी के नाथ सब ही सेवें, महास्तुति करैं, ते भगवान संसार के प्रपंचतैं रहित, अपने आनन्दस्वभाव तिनमई, अनन्त सिद्ध भए, अर अनंत होहिंगे।

अढ़ाई द्वीप के विषै मोक्ष का मार्ग प्रवृत्तै है। एक सौ साठ महाविदेह, अर पांच भरत, पांच ऐरावत, एक सौ सत्तर क्षेत्र, तिनके आर्यखंड विषै जे सिद्ध भए, अर होहिंगे, तिन सबनिकूं हमारा नमस्कार होहु। या भरतक्षेत्रविषै यह कोटिशिला, यहांतैं सिद्धशिलाकूं प्राप्त भए ते हमकूं कल्याण के कर्ता होहु। जीवनिकूं महामंगलरूप। या भांति चिरकाल स्तुतिकर चित्तविषै सिद्धनि का ध्यान कर सब ही लक्ष्मणकूं आशीर्वाद देते भए।

या कोटिशिलातैं जे सिद्ध भए वे सर्व तिहारा विघ्न हरैं। अरहंत, सिद्ध, साधु, जिनशासन, ये सर्व तुमकूं मंगल के करता होहु। या भांति शब्द करते भए। अर लक्ष्मण सिद्धनि का ध्यान कर शिलाकूं गोड़े प्रमाण उठावता भया। अनेक आभूषण पहिरे, भुज बंधन कर शोभायमान है भुजा

जाकी, सो भुजानिकरि कोटिशिला उठाई। तब आकाशविषै देव जय जय शब्द करते भए। सुग्रीवादिक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। कोटिशिला की यात्राकर बहुरि सम्मेदशिखर गए। अर कैलाश की यात्रा कर भरतक्षेत्र के सर्वतीर्थ वंदे, प्रदक्षिणा करी। सांझ समय विमान बैठ जयजयकार करते संते राम लक्ष्मण के लार किहकंधापुर आए। आप अपने अपने स्थानक सुखतैं शयन किया।

बहुरि प्रभात भया। सब एकत्र होय परस्पर वार्ता करते भए। देखो अब थोड़े ही दिन में इन दोऊ भाइनि का निष्कंटक राज्य होयगा, ये परम शक्तिकूं धरै हैं। वह निर्वाणशिला इनने उठाई सो यह सामान्य मनुष्य नाहीं। यह लक्ष्मण रावणकूं नि:संदेह मारेगा। तब कई एक कहते भए रावण ने कैलाश उठाया। सो बाहु का पराक्रम घाट नाहीं। तब और कहते भए ताने कैलाश विद्या के बलतैं उठाया सो आश्चर्य नाहीं। तब कई एक कहते भये – काहेकूं विवाद करौ, जगत के कल्याण अर्थ इनका उनका हित कराय देवौ। या समान और नाहीं। रावणतैं प्रार्थना कर सीता लाय रामकूं सौंपौ। युद्धतैं कहा प्रयोजन है? आगैं तारक, मेरुक बलवान भए सो संग्राम विषै मारे गए। वे तीनखंड के अधिपति, महाभाग्य, महापराक्रमी हुते, अर और हू अनेक राजा रणविषै हते गए। तातैं साम कहिए परस्पर मित्रता श्रेष्ठ है।

तब ये विद्या की विधि में प्रवीण परस्पर मंत्रकर श्रीराम पै आए। अति भक्तितैं राम के समीप नमस्कार कर बैठे। कैसे शोभते भए? जैसैं इन्द्र के समीप देव सोहैं। कैसे हैं राम? नेत्रनिकूं आनन्द के कारण, सो कहते भए – अब तुम काहे ढील करो हो, मो बिना जानकी लंकाविषै महादु:खकरि तिष्ठै है। तातैं दीर्घ सोच छांडि अवार ही लंका की तरफ गमन का उद्यम करहु। तब जे सुग्रीव के जांबूनदादि मंत्री राजनीति में प्रवीन हैं ते रामसूं विनती करते भए – हे देव! हमारे ढील नाहीं, परन्तु यह निश्चय कहो सीता के लायवे ही का प्रयोजन है, अक राक्षसनितैं युद्ध करना है? यह सामान्य युद्ध नाहीं, विजय पावना अति कठिन है। वह भरत क्षेत्र के तीन खंड का निष्कंटक राज करै है। द्वीप समुद्रनि के विषै रावण प्रसिद्ध है, जासूं धातुकी खंड द्वीप के शंका माने। जम्बूद्वीपविषै जाकी अधिक महिमा, अद्भुत कार्य का करणहारा, सबके उर का शल्य है, सो युद्ध योग्य नाहीं। तातैं रण की बुद्धि छांड़ि हम जो कहैं सो करहु।

हे देव! ताहि युद्ध सन्मुख करिवे में जगतकूं महाक्लेश उपजै है। प्राणीनि के समूह का विध्वंस होय है। समस्त उत्तमक्रिया जगततैं जाय है। तातैं विभीषण रावण का भाई, सौ पापकर्म रहित श्रावकव्रत का धारक है, रावण ताके वचनकूं उलंघै नाहीं। तिन दोऊ भाईनि में अंतरायरहित परमप्रीति है। सो विभीषण चातुर्यतातैं समझावेगा अर रावणहू अपयशतैं शंकेगा। लज्जाकर सीताकूं पठाय देगा। तातैं विचारकर रावण पै ऐसा पुरुष भेजना जो बातें करने में प्रवीण होय, अर

राजनीति में कुशल होय, अनेक नय जाने, अर रावण का कृपापात्र हो, ऐसा हेरहु।

तब महोदधि नामा विद्याधर कहता भया – तुम कछु सुनी है? लंका की चौगिरद मायामई यंत्र रचा है, सो आकाश के मार्गतैं कोऊ जाय सकै नाहीं, पृथ्वी के मार्गतैं जाय सकै नाहीं। लंका अगम्य है, महाभयानक देख्या न जाय ऐसा मायामई यंत्र बनाया है। सो इतने बैठे हैं तिनमें तो ऐसा कोऊ नाहीं जो लंकाविषै प्रवेश करै। तातैं पवनजंय का पुत्र श्रीशैल जाहि हनुमान कहै हैं सो महा विद्याबलवान पराक्रमी प्रतापरूप हैं ताहि जांचो। वह रावण का परममित्र है, अर पुरुषोत्तम है, सो रावणकूं समझाय विघ्न टारेगा। तब यह बात सबने प्रमाण करी। हनुमान के निकट श्रीभूत नामा दूत शीघ्र पठाया।

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतै कहै हैं – हे राजन्! महा बुद्धिमान होय, अर महाशक्तिकूं धरे होय, अर उपाय करैं, तो भी होनहार होय सो ही होय? जैसे उदयकाल में सूर्य का उदय होय ही तैसैं जो होनहार सो होय ही।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै कोटिशिला उठावने का व्याख्यान वर्णन करने वाला अड़तालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।48।।

अथानन्तर श्रीभूतनामा दूत, पवन के वेगतैं शीघ्र ही आकाश के मार्गसों लक्ष्मी का निवास जो श्रीपुर नगर अनेक जिन भवन तिनकरि शोभित, तहां गया। जहां मन्दिर सुवर्ण रत्नमई, सो तिनकी माला करि मण्डित कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल सुन्दर झरोखानिकरि शोभित, मनोहर उपवनकर रमणीक। सो दूत नगर की शोभा अर नगर के अपूर्व लोग देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। बहुरि इन्द्र के महल समान राजमन्दिर, तहां की अद्भुत रचना देख थकित होय रहा। हनुमान खरदूषण की बेटी अनंगकुसुमा, रावण की भानजी, ताके खरदूषण का शोक। कर्म के उदयकरि शुभ अशुभ फल पावै, ताहि कोई निवारिवे शक्त नाहीं। मनुष्यनि की कहा शक्ति देवनिहूकरि अन्यथा न होय। दूत ने द्वारे आय अपने आगमन का वृत्तांत कहा। सो अनंगकुसमा की मर्यादा नामा द्वारपाली दूतकूं भीतर लेय गई। अनंगकुसमा ने सकल वृत्तांत पूछ्या सो श्रीभूत ने नमस्कार कर विस्तारसूं कहा।

दंडकवन में श्रीराम लक्ष्मण का आवना, सम्बूक का वध, खरदूषणतैं युद्ध, बहुरि भले भले सुभटनिसहित खरदूषण का मरण। यह वार्ता सुन अनंगकुसमा मूर्छाकूं प्राप्त भई। तब चन्दन के जलकरि सींच सचेत करी। अनंगकुसमा अश्रुपात डारती विलाप करती भई – हाय पिता हाय भाई! तुम कहां गए? एक बार मोहि दर्शन देवो। वचनालाप करै – महा भयानक वन में भूमिगोचरीनि तुमकूं कैसे हते? या भांति पिता अर भाई के दु:खकरि चन्द्रनखा की पुत्री दुखी भई।

सो महा कष्टकरि सखिनि ने शांति ताकूं प्राप्त करी। अर जे प्रवीण उत्तम जन हुते तिन बहुत संबोधी। तब यह जिनमार्गविषै प्रवीण, समस्त संसार के स्वरूपकूं जान, लोकाचार की रीति प्रमाण पिता के मरण की क्रिया करती भई।

बहुरि दूतकूं हनुमान महाशोक के भरे सकल वृत्तांत पूछते भए। तब इनकूं सकल वृत्तांत कहा सो हनुमान खरदूषण के मरणकरि अति क्रोधकूं प्राप्त भया। भौंह टेढ़ी होय गईं, मुख अर नेत्र आरक्त भए, तब दूत ने कोप निवारिवे के विभिन्न मधुर स्वरनिकरि विनती करी। हे देव! किहकंधापुर के स्वामी सुग्रीव तिनकूं दुख उपजा, सोतो आप जानो ही हो। साहसगति विद्याधर सुग्रीव का रूप बनाय आया। तातैं पीड़ित भया सुग्रीव श्रीराम के शरणे गया। सो राम सुग्रीव का दुख दूर करवे निमित्त किहकंधापुर आए। प्रथम तो सुग्रीव अर वाके युद्ध भया। सो सुग्रीवकरि वह जीता न गया।

बहुरि श्रीराम के वाके युद्ध भया सो रामकूं देख बैताली विद्या भाग गई। तब वह साहसगति सुग्रीव के रूपरहित जैसा हुता तैसा होय गया। महायुद्धविषै राम ने ताहि मार्‍या, सुग्रीव का दुःख दूर किया। यह बात सुन हनुमान का क्रोध दूर भया। मुखकमल फूला हर्षित होय कहते भए – अहो श्रीराम ने हमारा बड़ा उपकार किया। सुग्रीव का कुल अकीर्तिरूप सागर में डूबे था सो शीघ्र ही उधारा। सुवर्णकलश समान सुग्रीव का गोत्र सो अपशयन रूप ऊंड़े कूप में डूबता हुता। श्रीराम सन्मति के धारक ने गणरूप हस्तकरि काढ्या। या भांति हनुमान बहुत प्रशंसा करी अर सुख के सागरविषै मग्न भए। हनुमान की दूजी स्त्री सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा पिता के शोक का अभाव सुन हर्षित भई। ताके बड़ा उत्साह भया। दान पूजा आदि अनेक शुभ कार्य किए। हनुमान के घरविषै अनंगकुसमा के घर खरदूषण का शोक भया अर पद्मराग के सुग्रीव का हर्ष भया। या भांति विषमताकूं प्राप्त भए घर के लोग तिनको समाधानकर हनुमान किहकंधापुर कूं सन्मुख भए।

महा ऋद्धिकर युक्त बड़ी सेना सूं हनुमान चाल्या। आकाशविषै अधिक शोभा भई। महा रत्नमई हनुमान का विमान ताकी किरणनिकरि सूर्य की प्रभा मंद होय गई। हनुमानकूं चालता सुन अनेक राजा लार भए। जैसे इन्द्र की लार बड़े बड़े देव गमन करैं। आगे पीछे दाहिनी बाईं ओर अनेक राजा चाले जाय हैं। विद्याधरनि के शब्द करि आकाश शब्दमई होय गया। आकाशगामी अश्व, अर गज, तिनके समूहकरि आकाश चित्रामरूप होय गया। महातुरंगनिकरि संयुक्त, ध्वजानि कर शोभित सुन्दर रथ, तिनकर आकाश शोभायमान भासता भया। अर उज्ज्वल छत्रनि के समूहकर शोभित आकाश ऐसा भासै मानों कुमुदनि का वन ही है। अर गम्भीर दुंदुभिनि के शब्दनिकरि दशोंदिशा ध्वनि रूप (प्रतिध्वनि रूप) होय गईं, मानों मेघ गाजै है। अर अनेक वर्ण

के आभूषण तिनकी ज्योति के समूहकरि आकाश नाना रंगरूप होय गया, मानों काहू चतुर रंगरेजा का रंगा वस्त्र है।

हनुमान के वादित्रनि का नाद सुन कपिवंशी हर्षित भए, जैसे मेघ की ध्वनि सुन मोर हर्षित होय। सुग्रीव ने सब नगर की शोभा कराई, हाट बाजार उजाले, मन्दिरनि पर ध्वजा चढ़ाई, रत्ननि के तोरणनिकर द्वार शोभित किए, हनुमान के सब सन्मुख गए। सबका पूज्य देवनि की न्याईं नगरविषै प्रवेश किया। सुग्रीव के मन्दिर आए। सुग्रीव ने बहुत आदर किया, अर श्रीराम का समस्त वृत्तांत कहा। तब ही सुग्रीवादिक हनुमान सहित परम हर्षकूं धरते श्रीराम के निकट आए। सो हनुमान रामकूं देखता भया – महासुन्दर, सूक्ष्म, स्निग्धश्याम, सुगन्ध, वक्र, लम्बे महामनोहर हैं केश जिनके, सो लक्ष्मीरूप बल इनकर मंडित महा सुकुमार है अंग जिनका, सूर्य समान प्रतापी, चंद्र समान कांतिधारी, अपनी कांतिकर प्रकाश के करणहारे, नेत्रनि को आनन्द के कारण, महा मनोहर, अतिप्रवीण आश्चर्य के करणहारे, मानों स्वर्गलोकतैं देव ही आए हैं।

दैदीप्यमान निर्मल स्वर्ण के कमल के गर्भ समान है प्रभा जिनकी, सुन्दर श्रवण, सुन्दर नासिका, सर्वांग सुन्दर, मानों साक्षात् कामदेव ही हैं। कमलनयन, नवयौवन, चढ़े धनुष समान भौंह जिनकी, पूर्णमासी के चन्द्रमा समान वदन, महा मनोहर मूंगा समान लाल होंठ कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल दन्त, शंख समान कंठ, मृगेन्द्र समान साहस, सुन्दर कटि, सुन्दर वक्षस्थल, महाबाहु, श्रीवत्सलक्षण दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि, आरक्त कमल समान कर चरण, महा कोमल गोल पुष्ट दोऊ जंघा, अर कछुवे की पीठ समान चरण के अग्रभाग, महा कांतिकूं धरैं अरुण नख, अतुल बल, महायोधा, महागम्भीर, महाउदार, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, मानों सर्व जगत्रय की सुन्दरता एकत्रकर बनाये हैं। महाप्रभाव संयुक्त, परंतु सीता के वियोगकरि व्याकुल चित्त, मानों शचीरहित इन्द्र विराजे हैं, अथवा रोहिणी रहित चन्द्रमा तिष्ठै है। रूप सौभाग्य कर मंडित, सर्व शास्त्रनि के वेत्ता, महाशूरवीर, जिनकी सर्वत्र कीर्ति फैल रही है, महा बुद्धिमान, गुणवान ऐसे श्रीराम तिनकूं देखकर हनुमान आश्चर्यकूं प्राप्त भया। तिनके शरीर की कांति हनुमान पर जा पड़ी, प्रभाव देखकर वशीभूत भया।

पवन का पुत्र मन में विचारता भया – ये श्रीराम दशरथ के पुत्र, भाई लक्ष्मण लोक श्रेष्ठ, याका आज्ञाकारी, संग्रामविषै जाके चन्द्रमा समान उज्ज्वल छत्र देख साहसगति की विद्या वैताली ताके शरीरतैं निकस गई। अर इन्द्र हू कूं मैं देख्या है परन्तु इनकूं देखकर परम आनन्दसंयुक्त हृदय मेरा नम्रीभूत भया। या भांति आश्चर्यकूं प्राप्त भया। अंजनी का पुत्र, श्रीराम कमललोचन ताके दर्शनकूं आगे आया। अर लक्ष्मण ने पहिले ही रामतैं कह राखी हुती सो

हनुमानकूं दूरहीतैं देख उठे, उर से लगाय मिले, परस्पर अतिस्नेह भया। हनुमान अति विनयकर बैठा, आप श्रीराम सिंहासन पर विराजे, भुज बंधनकरि शोभित है भुजा जिनकी, महा निर्मल नीलाम्बर मंडित, राजनि के चूड़ामणि, महासुन्दर हार पहिरे, ऐसे सोहैं मानों नक्षत्रिनि सहित चन्द्रमा ही है।

अर दिव्य पीताम्बर धारे हार कुण्डल कर्पूरादि संयुक्त सुमित्रा के पुत्र श्री लक्ष्मण कैसे सोहै हैं? मानों विजुरी सहित मेघ ही है। अर वानरवंशिनि का मुकुट, देवनिसमान पराक्रम जाका, राजा सुग्रीव कैसा सोहै? मानों लोकपाल ही है। अर लक्ष्मण के पीछे बैठा विराधित विद्याधर कैसा सोहै? मानों लक्ष्मण नरसिंह का चक्ररत्न ही है। राम के समीप हनुमान कैसा शोभता भया? जैसे पूर्ण चन्द्र के समीप बुध सोहै है। अर सुग्रीव के दोय पुत्र एक अंगज दूजा अंगद, सो सुगंध माला अर वस्त्र आभूषणादिकर मंडित ऐसे सोहैं मानों यह कुबेर ही हैं। अर नल नील अर सैकड़ों राजा श्रीराम की सभाविषै ऐसे सोहैं जैसे इन्द्र की सभाविषै देव सोहै। अनेक प्रकार की सुगन्ध अर आभूषणनि का उद्योत ताकरि सभा ऐसी सोहै मानों इन्द्र की सभा है। तब हनुमान आश्चर्यकूं पाय अति प्रीतिकूं प्राप्त भया, श्रीराम को कहता भया –

हे देव! शास्त्र में ऐसा कहा है प्रशंसा परोक्ष करिए, प्रत्यक्ष न करिए। परन्तु आप के गुणनिकर यह मन वशीभूत भया प्रत्यक्ष स्तुति करै है। अर यह रीति है कि आप जिनके आश्रय होय तिनके गुण वर्णन करें, सो जैसी महिमा आपकी हमने सुनी तैसी प्रत्यक्ष देखी। आप जीवनि के दयालु, महापराक्रमी, परमहितू, गुणनि के समूह, जिनके निर्मल यशकर जगत् शोभायमान है। हे नाथ! सीता के स्वयंवर विधानविषै हजारों देव जाकी रक्षा करें ऐसा वज्रावर्त धनुष आपने चढ़ाया। सो वह हम सब पराक्रम सुने। जिनका पिता दशरथ, माता कौशल्या, भाई लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न, स्त्री का भाई भामंडल, सो राम जगत्पति तुम धन्य हो! तिहारी शक्ति धन्य। तिहारा रूप धन्य, सागरावर्त धनुष का धारक लक्ष्मण सो सदा आज्ञाकारी, धन्य यह धीर्य, धन्य यह त्याग, जो पिता के वचन पालिवे अर्थ राज्य का त्यागकर महा भयानक दंडकवन में प्रवेश किया।

अर आप हमारा जैसा उपकार किया तैसा इन्द्र हू न करें। सुग्रीव का रूपकर साहसगति आया हुता सुग्रीव के घर में, सो आप कपिवंश का कलंक दूर किया। आपके दर्शन कर बैताली विद्या साहसगति के शरीरतैं निकस गई। आप युद्धविषै ताहि हत्या सो आपने तो हमारा बड़ा उपकार किया। अब हम कहा सेवा करैं? शास्त्र की यह आज्ञा है जो आपसों उपकार करै अर ताकीं सेवा न करै ताके भावशुद्धता नाहीं। अर जो कृतघ्न उपकार भूले सो न्यायधर्मतैं बहिर्मुख है, पापीनिविषै महापापी है, अर पारधीन में पारधी है, निर्दई हैं, सो बातें सत्पुरुष संभाषण न करैं। तातैं हम अपना शरीरहू तजकर तिहारे कामकूं उद्यमी हैं। मैं जाय लंकापतिकूं समझाय तिहारी स्त्री तिहारे लाऊंगा।

हे राघव! महाबाहू! सीता का मुखरूप कमल पूर्णमासी के चन्द्रमा समान कांति का पुंज, आप निस्संदेह शीघ्र ही सीता देखोगे। जब जांबूनद मंत्री हनुमानकूं परमहित के वचन कहता भया। हे वत्स वायुपुत्र! हमारे सबन के एक तू ही आश्रय है, सावधान लंकाकूं जाना, अर काहूसों कदाचित् विरोध न करना। तब हनुमान कही आपकी आज्ञा प्रमाण ही होयगा।

अथानन्तर हनुमान लंका चलिवेकूं उद्यमी भया। तब राम अति प्रीतिकूं प्राप्त भए। एकांत में कहते भए – हे वायुपुत्र! सीताकूं ऐसे कहियो कि – हे महासती! तिहारे वियोगकरि राम का मन एक क्षण भी सातारूप नाहीं। अर राम ने यों कही– ज्यों लग तुम पराए वश हो त्यों लग हम अपना पुरुषार्थ नाहीं जानै हैं। अर तुम महानिर्मल शीलकरि पूर्ण हो, अर हमारे वियोगकरि प्राण तजा चाहो हो, सो प्राण तजो मति। अपना चित्त समाधान रूप राखहु। विवेकी जीवनिकूं आर्त्त रौद्रतैं प्राण न तजने। मनुष्यदेह अति दुर्लभ है। ताविषै जिनेन्द्र का धर्म दुर्लभ है। ताविषै समाधिमरण दुर्लभ है। जो समाधिमरण न होय तो यह मनुष्य देह तुषवत् असार है। अर यह मेरे हाथ की मुद्रिका जाकर ताहि विश्वास उपजै सो ले जावहु। अर उनका चूड़ामणि महा प्रभावरूप हम पै ले आइयो।

तब हनुमान कही जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। ऐसा कहकर हाथ जोड़ नमस्कार कर, बहुरि लक्ष्मणतैं नम्रीभूत होय बाहिर निकस्या। विभूतिकर परिपूर्ण, अपने तेजकरि सर्वदिशाकूं उद्योत करता, सुग्रीव के मंदिर आया। अर सुग्रीवसों कही – जौलग मेरा आवना न होय तौलग तुम बहुत सावधान यहां ही रहियो। या भांति कहकर सुन्दर हैं शिखर जाके ऐसा जो विमान तापर चढ्या। ऐसा शोभता भया जैसा सुमेरु के ऊपर जिनमंदिर शोभै। परमज्योति करि मंडित, उज्ज्वल छत्रकर शोभित, हंससमान उज्ज्वल चमर जापर ढुरै हैं, अर पवनसमान अश्व चालते, पर्वतसमान गज, अर देवनि की सेना समान सेना ताकरि संयुक्त। या भांति महा विभूतिकरि युक्त आकाशविषै गमन करता रामादिक सर्व ने देख्या।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे राजन्! यह जगत् नाना प्रकार के जीवनिकरि भर्‍या है, तिनमें जो कोई परमार्थ के निमित्त उद्यम करै है सो प्रशंसा योग्य है, अर स्वार्थतैं जगत ही भरा है। जे पराया उपकार करैं ते कृतज्ञ हैं, प्रशंसनीय हैं। अर जे नि:कारण उपकार करै हैं उनके तुल्य इन्द्रचन्द्र कुवेर भी नाहीं। अर जे पापी कृतघ्नी पराया उपकार लोपै हैं वे नरक निगोद के पात्र हैं अर लोकनिंद्य हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान का लंका की दिशा गमन वर्णन करने वाला उनचालीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।49।।

अथानन्तर अंजनी का पुत्र आकाशविषै गमन करता परम उदयकूं धरै कैसा शोभता भया? मानों बहिन समान जानकी, ताहि लायवेकूं भाई भामंडल जाय है। कैसे हैं हनुमान? श्रीराम की आज्ञाविषै प्रवर्त्ते हैं, महा विनयरूप, ज्ञानवंत, शुद्धभाव, राम के काम का चित्त में उत्साह। सो दिशा मंडल अवलोकते, लंका के मार्गविषै राजा महेन्द्र का नगर देखते भये, मानों इन्द्र का नगर है। पर्वत के शिखर पर नगर बसै है। जहां चन्द्रमा समान उज्ज्वल मंदिर है। सो नगर दूरहीतैं नजर आया। तब हनुमान ने देखकरि मन में चिंत्या यह दुर्बुद्धि महेन्द्र का नगर है, वह यहां तिष्ठे है, मेरा काहे का नाना? मेरी माता को जाने संताप उपजाया था। पिता होयकर पुत्री का ऐसा अपमान करे, जो जानै नगर में न राखी।

तब माता बन में गई जहां अनंतगति मुनि तिष्ठे हुते। तिनने अमृतरूप वचन कहकर समाधान करी। सो मेरा उद्यानविषै जन्म भया, जहां कोई बन्धु नाहीं। मेरी माता शरणे आवे अर यह न राखे, यह क्षत्री का धर्म नाहीं। तातैं याका गर्व हरूं। तब क्रोधकर रण के नगारे बजाए अर ढोल बजाते भए, शंखनि की ध्वनि भई, योधानि के आयुध झलकने लगे। राजा महेन्द्र परचक्र आया सुनकर सर्व सेना सहित बाहर निकस्या। दोऊ सेनाविषै महायुद्ध भया। महेन्द्र रथ में चढ़ा। माथे छत्र फिरता धनुष चढ़ाय हनुमान पर आया। सो हनुमान ने तीन वाणिनिकरि ताका धनुष छेद्या, जैसें योगीश्वर तीन गुप्ति कर मानकूं छेदें। बहुरि महेन्द्र ने दूजा धनुष लेवे का उद्यम किया ताके पहिले ही बाणनिकरि ताके घोड़े छुटाय दिए सो रथ के समीप भ्रमै, जैसे मन के प्रेरे इन्द्रिय विषयनि में भ्रमै।

बहुरि महेन्द्र का पुत्र विमान में बैठ हनुमान पर आया। सो हनुमान के अर वाके बाण, चक्र, कनक इत्यादि अनेक आयुधनिकरि परस्पर महायुद्ध भया। हनुमान ने अपनी विद्याकरि वाके शस्त्र निवारे, जैसे योगीश्वर आत्मचिन्तवनकर परीषह के समूहकूं निवारैं। ताने अनेक शस्त्र चलाये सो हनुमान के एक हू न लाग्या, जैसैं मुनि को काम का एक भी बाण न लागै। जैसे तृणनिके समूह अग्नि में भस्म होय तैसैं महेन्द्र के पुत्र के सर्व शस्त्र हनुमान पर विफल गए। अर हनुमान ने ताहि पकड़ा, जैसे सर्प को गरुड़ पकड़े। तब राजा महेन्द्र महारथी पुत्रकूं पकड़ा देख महा क्रोधायमान भया, हनुमान पर आया, जैसे साहसगति राम पर आया हुता।

हनुमानहु महा धनुषधारी, सूर्य के रथ समान रथ पर चढ़ा, मनोहर है उरविषै हार जाके, शूरवीरनि में महाशूरवीर, नाना के सन्मुख भया। सो दोऊनि में करोत कुठार खड्ग बाण आदि अनेक शस्त्रनिकरि पवन अर मेघ की न्याईं महायुद्ध भया। दोऊ सिंह समान महाउद्धत, महाकोप के भरे, बलवंत, अग्नि के कणसमान, रक्तनेत्र, दोऊ अजगर समान भयानक शब्द करते परस्पर शस्त्र चलावते, गर्वहास संयुक्त प्रकट हैं शब्द जिनके, परस्पर ऐसे शब्द करै हैं धिक्कार तेरे शूरपने

को, तू कहा युद्ध कर जाने? इत्यादि वचन परस्पर कहते भए। दोऊ विद्याबलकरि युक्त, परम युद्ध करते बारम्बार अपने लोगनिकरि हाकार जय जयकारादिक शब्द करावते भए।

राजा महेन्द्र महा विक्रिया शक्ति का धारक, क्रोधकर प्रज्वलित है शरीर जाका, सो हनुमान पर आयुधनि के समूह डारता भया। भुषुंडी, फरसा, बाण, शतघ्नी, मुदगर, गदा, पर्वतनि के शिखर, शालवृक्ष, बटवृक्ष इत्यादि अनेक आयुध हनुमान पर महेन्द्र चलाए, सो हनुमान व्याकुलताकूं प्राप्त न भया, जैसे गिरिराज महा मेघ के समूहकरि कम्पायमान न होय। जेते महेन्द्र ने बाण चलाए सो हनुमान ने उनको विद्या के प्रभावकरि सब चूर डारे। बहुरि अपने रथतैं उछल महेन्द्र के रथ में जाय पड़े। दिग्गज की सूंड समान अपने जे हाथ तिनकरि महेन्द्रकूं पकड़ लिया अर अपने रथ में आए। शूरवीरनिकरि पाया है जीत का शब्द जाने, सर्व ही लोक प्रशंसा करते भए।

राजा महेन्द्र हनुमानकूं महाबलवान परम उदयरूप देख महा सौम्य वाणीकर प्रशंसा करता भया – हे पुत्र! तेरी महिमा जो हमने सुनी हुती सो प्रत्यक्ष देखी। मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति जो अब तक काहू ने न जीता, रथनूपुर का स्वामी राजा इन्द्र ताकरि न जीता गया, विजियार्धगिरि के निवासी विद्याधर तिनमें महाप्रभाव संयुक्त सदा महिमाकूं धरै मेरा पुत्र सो तैने जीता, अर पकड़ा। धन्य पराक्रम तेरा। महा धीर्य को धरे तेरे समान और पुरुष नाहीं। अर अनुपमरूप तेरा अर संग्राम विषै अद्भुत पराक्रम।

हे पुत्र हनुमान! तूने हमारे सब कुल उद्योत किये। तू चरमशरीरी अवश्य योगीश्वर होयगा। विनय आदि गुणनिकरि युक्त, परम तेज की राशि, कल्याणमूर्ति कल्पवृक्ष प्रकट भया है। तू जगत्‌विषै गुरु कुल का आश्रय, अर दु:खरूप सूर्यकर जे तप्तायमान हैं तिनकूं मेघ समान। या भांति नाना महेन्द्र ने अति प्रशंसा करी, अर आंख भर आई, अर रोमांच होय आए, मस्तक चूमा, छाती से लगाया। तब हनुमान नमस्कार कर हाथ जोड़ अति विनयकर क्षमा करावते भए। एकक्षण में और ही होय गए।

हनुमान कहे हैं – हे नाथ! मैं बाल बुद्धिकर जो तिहारा अविनय किया सो क्षमा करहु। अर श्रीराम का किहकंधापुर आवने का सकल वृत्तांत कहा। आप लंका की ओर जावने का वृत्तांत कहा। अर कही मैं लंका होय कार्यकर आऊं हूं। तुम किहकंधापुर जावो, राम की सेवा करो।

ऐसा कहिकर हनुमान आकाश के मार्ग लंकाकूं चाले, जैसे स्वर्गलोक को देव जाय। अर राजा महेन्द्र राणी सहित तथा अपने प्रसन्नकीर्ति पुत्र सहित अंजनी पुत्री के गया, अंजनी को माता पिता अर भाई का मिलाप भया सो अति हर्षित भई। बहुरि महेन्द्र किहकंधापुर आए सो राजा सुग्रीव विराधित आदि सन्मुख गए, श्रीराम के निकट लाए। राम बहुत आदर से मिले। जे राम

सारिखे महंत पुरुष महातेज प्रतापरूप निर्मलचित्त हैं, अर जिनने पूर्वजन्म विषै दान व्रत तप आदि पुण्य उपार्जै हैं, तिनकी देव विद्याधर भूमिगोचरी सब ही सेवा करें। जे महा गर्ववंत बलवंत पुरुष हैं, ते सब तिनके वश होवें। तातैं सर्व प्रकार अपने मन को जीत सत्कर्म में यत्न कर। हे भव्यजीव! ता सत्कर्म के फलकर सूर्य समान दीप्तिकूं प्राप्त होहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै महेन्द्र का अर अंजनी का मिलाप बहुरि श्रीराम के निकट आवने का व्याख्यान वर्णन करने वाला पचासवाँ पर्व संपूर्ण भया।।50।।

अथानन्तर हनुमान आकाशविषै विमान में बैठे जाय हैं, अर मार्ग में दधिमुख नामा द्वीप आया। तामें दधिमुख नामा नगर, जहां दधि समान उज्ज्वल मन्दिर, सुन्दर सुवरण के तोरण, काली घटा समान सघन उद्यान, पुष्पनि करि युक्त स्फटिक मणि समान उज्ज्वल जल की भरी वापिका, सोपाननि कर शोभित, कमलादिक कर भरी।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं – हे राजन्! या नगरतैं दूर वन, तहां तृण बेल वृक्ष कांटनि के समूह, सूखे वृक्ष, दुष्ट सिंहादिक जीवनि के नाद, महा भयानक प्रचण्ड पवन, जाकरि वृक्ष गिर पड़े, सूख गये हैं सरोवर जहां, अर गृद्ध उल्लूक आदि दुष्ट पक्षी विचरैं, ता वनविषै दोय चारणमुनि अष्ट दिन का कायोत्सर्ग धरे खड़े थे। अत: तहां से चार कोस तीन कन्या महामनोग्य नेत्र जिनके जटा धरें, सफेद वस्त्र पहरे, विधिपूर्वक महा तपकर निर्मल चित्त जिनका। मानों कन्या तीन लोक की आभूषण ही हैं।

अथानन्तर वन में अग्नि लागी। सो दोऊ मुनि धीर वीर वृक्ष की न्याईं खड़े। समस्त वन दावानल करि जरे। ते दोऊ निर्ग्रंथ योगयुक्त, मोक्षाभिलाषी, रागादिक के त्यागी, प्रशांतवदन, शान्तचित्त, निष्पाप, अवांछक, नासादृष्टि, लम्बी हैं भुजा जिनकी, कायोत्सर्ग धरे। जिनके जीवना मरना तुल्य, शत्रु मित्र समान, कांचन पाषाण समान। जो दोऊ मुनि जरते देख हनुमान कम्पायमान भया। वात्सल्य गुणकरि मंडित, महाभक्ति, संयुक्त, वैयाव्रत करिवे को उद्यमी भया।

समुद्र का जल लेयकर मूसलाधार मेह बरसाया। सो क्षणमात्रविषै पृथ्वी जलरूप होय गई। वह अग्नि ता जलकरि हनुमान ने ऐसे बुझाई जैसे मुनि क्षमाभाव रूप जलकरि क्रोधरूप अग्निकूं बुझावै। मुनिन का उपसर्ग दूर कर तिनकी पूजा करता भया। अर वे तीनों कन्या विद्या साधतीं हुतीं, सो दावानल के दाहकर व्याकुलता का कारण भया हुता, सो हनुमान के मेघकर बन का उपद्रव मिटा, सो विद्या सिद्धि भई। सुमेरु की तीन प्रदक्षिणा करि मुनिनि के निकट आयकर नमस्कार करती भईं। अर हनुमान की स्तुति करती भईं – अहो तात! धन्य तिहारी जिनेश्वरविषै

भक्ति! तुम काहू तरफ जाते हुते सो साधुनि की रक्षा करी। हमारे कारण करि वन में उपद्रव भया सो मुनि ध्यानारूढ़ ध्यानतैं न डिगे।

तब हनुमान ने पूछी तुम कौन अर निर्जन स्थानक में कौन कारण रहो हो? तब सबनि में बड़ी बहिन कहती भई – यह दधिमुख नामा नगर, जहां राजा गन्धर्व, ताकी हम तीन पुत्री – बड़ी चन्द्ररेखा, दूजी विद्युतप्रभा, तीजी तरंगमाला, सर्वगोत्रकूं वल्लभ। सो जेते विजयार्ध विद्याधर राजकुमार हैं वे सब हमारे विवाह के अर्थ हमारे पितासूं याचना करते भए। अर एक दुष्ट अंगारक सो अति अभिलाषी निरंतर काम के दाहकर आतापरूप तिष्ठै। एक दिन हमारै पिता ने अष्टांग निमित्त के वेत्ता जे मुनि तिनकूं पूछी – हे भगवन्! मेरी पुत्रिनि का वर कौन होयगा?

तब मुनि कही जो रणसंग्रामविषै साहसगतिकूं मारेगा, सो तेरी पुत्रिनि का वर होयगा। तब मुनि के अमोघ वचन सुनकर हमारे पिता ने विचारी, विजयार्ध की उत्तर श्रेणीविषै जो साहसगति ताहि कौन मार सकै। जो ताहि मारै सो मनुष्य या लोकविषै इन्द्र के समान है। अर मुनि के वचन अन्यथा नाहीं। सो हमारे माता पिता अर सकल कुटुम्ब मुनि के वचन पर दृढ़ भए। अर अंगारक निरन्तर हमारे पितासूं याचना करै सो पिता हमकूं न देय। तब यह अति चिंतावान दु:ख रूप वैरकूं प्राप्त भया। अर हमारे यही मनोरथ उपजा जो वह दिन कब होय हम साहसगति के हनिवेवारेकूं देखें। सो मनोगामिनी नाम विद्या साधिवेकूं या भयानक वनविषै आईं। सो अनुगामिनी नामा विद्या साधते हमकूं बारवां दिन है, अर मुनिन को आठवां दिन है। आज अंगारक ने हमको देख क्रोधकर वनविषै अग्नि लगाई। जो छहवर्ष कछु इक अधिक दिननिविषै विद्या सिद्ध होय। हमको उपसर्गतैं भय न करवेकर बारह ही दिनविषै विद्या सिद्ध भई। या आपदाविषै हे महाभाग! जो तुम सहाय न करते तो हमारा अग्निकर नाश होता, अर मुनि भस्म होते। तातैं तुम धन्य हो।

तब हनुमान कहते भए तिहारा उद्यम सफल भया। जिनके निश्चय होय तिनकूं सिद्धि होय ही। धन्य निर्मल बुद्धि, तिहारी बड़े स्थानकविषै मनोरथ, धन्य तिहारा भाग्य। ऐसा कहकर श्रीराम के किहकंधापुर आवने का सकल वृत्तांत कहा अर अपने राम की आज्ञा प्रमाण लंका जायवे का वृत्तांत कहा। ताही समय वन के दाह शांति होयवे का अर मुनि उपसर्ग दूर होने का वृत्तांत राजा गन्धर्व सुन हनुमान पै आया।

विद्याधरनि के योगकरि वह वन नन्दनवन जैसा शोभता भया। अर राजा गन्धर्व हनुमान के मुखकरि श्रीराम का किहकंधापुर विराजने का हाल सुन अपनी पुत्रीनिसहित श्रीराम के निकट आया। पुत्री महा विभूतिकर रामकूं परणाई। राम महा विवेकी, ये विद्याधरनि की पुत्री, अर महाराज विभूति कर युक्त हैं तोहू सीता बिना दशों दिशा शून्य देखते भए। समस्त पृथ्वी गुणवान

जीवनितैं शोभित होय है। अर गुणवंतनि बिना नगर गहन वन तुल्य भासै है। कैसे हैं गुणवान जीव? महा मनोहर है चेष्टा जिनकी। अर अति सुन्दर हैं भाव जिनके। ये प्राणी पूर्वोपार्जित कर्म के फलकरि सुख दुख भोगवे है। तातैं जो सुख के अर्थी हैं वे जिनरूप सूर्यकरि प्रकाशित जो पवित्र जिनमार्ग ताविषै प्रवृत्तै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम को राजा गंधर्व की कन्यानि का लाभ वर्णन करने वाला इक्यावनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।51।।

अथानन्तर महाप्रताप कर पूर्ण महाबल हनुमान जैसे सुमेरु को सौम जाय तैसे त्रिकूटाचल को चला। सो आकाशविषै जाती जो हनुमान की सैना ताका महाधनुष के आकार मायामई यंत्रकर निरोध भया। तब हनुमान अपने समीपी लोकनितैं पूछी जो मेरी सेना कौन कारण आगे चल न सके। यहां गर्व का पर्वत असुरनि का नाथ चमरेन्द्र है अथवा इन्द्र है। तथा या पर्वत के शिखरविषै जिनमंदिर हैं अथवा चरमशरीरी मुनि हैं।

तब हनुमान के ये वचन सुनकर पृथुमति मंत्री कहता भया – हे देव! यह क्रूरतासंयुक्त मायामई यंत्र है। तब आप दृष्टि धर देखा कोटविषै प्रवेश कठिन जाना। मानों यह कोट विरक्त स्त्री के मन समान दुःप्रवेश है। अनेक आकारकूं धर, वक्रताकरि पूर्ण, महा भयानक, सर्वभक्षी पूतली, जहां देव भी प्रवेश न कर सकै। जाज्वल्यमान तीक्ष्ण हैं अग्रभाग जिनके ऐसे करोतिनि के समूहकर मण्डित, जिह्वा के अग्रभाग करि रुधिरकूं उगलते, ऐसे हजारां सर्प तिनकरि भयानक फण, में विकराल शब्द करै हैं अर विषरूप अग्नि के कण बरसे हैं। विषरूप धूमकरि अंधकार होय रहा है। जो कोई मूर्ख सामन्तपणा के मानकरि उद्धत भया प्रवेश करै ताहि मायामई सर्प ऐसे निगलै जैसे सर्प मेंढक को निगलें। लंका के कोट का मंडल जोतिष चक्रतैं हू ऊंचा, सर्व दिशानिविषै दुर्लंघ, अर देखा न जाय। प्रलयकाल के मेघ समान भयानक शब्द कर संयुक्त, अर हिंसारूप ग्रन्थनि की न्याईं अत्यन्त पाप कर्मनिकरि निरमापा।

ताहि देख कर हनुमान विचारता भया – यह मायामई कोट राक्षसनि के नाथ ने रचा है सो अपनी विद्या की चातुर्यता दिखाई है। अर अब मैं विद्याबलकरि याहि उपाडता संता राक्षसनि का मद हरूं, जैसे आत्मध्यानी मुनि मोह मदकूं हरे। तब हनुमान युद्धविषै मनकर समुद्र समान जो अपनी सेना सो आकाशविषै राखी। अर आप विद्यामई वक्तर पहिन हाथविषै गदा लेकर मायामई पूतली के मुखविषै प्रवेश किया। जैसे राहु के मुखविषै सूर्य प्रवेश करै। अर वा मायामई पूतली की कुक्षि सोई भई पर्वत की गुफा, अंधकार कर भरी, सो आप नरसिंहरूप तीक्ष्ण नखनिकर

बिदारी अर गदा के घातकरि कोट चूरण किया, जैसैं शुक्लध्यानी मुनि निर्मल भावनिकरि घातिया कर्म की स्थिति चूरण करैं।

अथानन्तर यह विद्या महा भयंकर भंगकूं प्राप्त भई। तब मेघ की ध्वनि समान ध्वनि भई, विद्या भाग गई, कोट विघट गया। जैसे जिनेन्द्र के स्तोत्रकरि पापकर्म विघट जाय। तब प्रलयकाल के मेघ समान भयंकर शब्द भया। मायामई कोट बिखरा देख कोट का अधिकारी वज्रमुख महा क्रोधायमान होय शीघ्र ही रथ पर चढ़ हनुमान पर बिना विचारे मारवेकूं दौड्या। जैसे सिंह अग्नि की और दौड़े। जब वाहि आया देख पवन का पुत्र महा योधा युदध करिवेकूं उद्यमी भया। तब दोऊ सेना के योधा प्रचण्ड नाना प्रकार के वाहननि पर चढ़े, अनेक प्रकार के आयुध धरे परस्पर लड़ने लगे। बहुत कहने करि कहा? स्वामी के कार्य ऐसा युद्ध भया जैसा मान के मार्दव के युद्ध होय। अपने अपने स्वामी की दृष्टिविषै योधा गाज गाज युद्ध करते भए, जीवनिविषै नाहीं है स्नेह जिनके।

फिर हनुमान के सुभटनि कर वज्रमुख के योधा क्षणमात्रविषै दशोंदिशाकूं भाजे। अर हनुमान ने सूर्य हूतैं अधिक है ज्योति जाकी, ऐसे चक्र शस्त्रकरि वज्रमुख का सिर पृथ्वी पर डारा। यह सामान्य चक्र है। चक्री अर्धचक्रिनि के सुदर्शन चक्र होय है। युद्ध विषै पिता का मरण देख, लंकासुन्दरी, वज्रमुख की पुत्री पिता का जो शोक उपजा हुता ताहि कष्टतैं निवार, क्रोधरूप विष की भरी, तेज तुरंग जुते हैं जाके, ऐसे रथ पर चढ़ी। कुण्डलनि के उद्योतकरि प्रकाशरूप है मुख जाका, वक्र है भौंह जाकी, उल्कापात का स्वरूप, सूर्य मंडल समान तेजधारी, क्रोध के वश कर लाल हैं नेत्र जाके, क्रूरता कर डसे हैं किंदूरी समान होंठ जाने, मानों क्रोधायमान शची ही है। सो हनुमान पर दौड़ी, अर कहती भई – रे दुष्ट! मैं तोहि देखा, जो तो मैं शक्ति है तो मोतैं युद्धकर।

जो क्रोधायमान भया रावण न करै सो मैं करूंगी। हे पापी! तोहि यममन्दिर पठाऊंगी। तू दिशाकूं भूल अर अनिष्ट स्थानकूं प्राप्त भया। ऐसे शब्द कहती वह शीघ्र ही आई। सो आवती का हनुमान ने छत्र उडाय दिया, तब वाने बाणनिकर इनका धनुष तोड़ डारा। अर वह शक्ति लेय चलावै ता पहिले हनुमान बीच ही शक्तिकूं तोड डारी। तब वह विद्याबल कर गम्भीर, वज्रदंड समान बाण, अर फरसी, बरछी, चक्र, शतघ्नी, मूसल, शिला इत्यादि वायुपुत्र के रथ पर बरसावती भई, जैसे मेघमाला पर्वत पर जल की धारा बरसावै। नाना प्रकार के आयुधनि के समूहकरि वानै हनुमानकूं बेढा जैसे मेघपटल सूर्यकूं आच्छादै।

तब हनुमान विद्या की सब विधिविषै प्रवीण महापराक्रमी, ताने शत्रुनि के समूह अपने शस्त्रनिकर आप तक न आवने दिये। तोमरादि के बाणनिकरि तोमरादिक बाण निवारे अर शक्तितैं

शक्ति निवारी। या भांति परस्पर अतियुद्ध भया। याके बाण वाने निवारे, वाके बाण याने निवारे। बहुत बेर तक युद्ध भया, कोई नाहीं हारै।

सो गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं – हे राजन्! हनुमान को लंकासुन्दरी बाणशक्ति इत्यादि अनेक आयुधनिकरि जीतती भई, अर काम के बाणनिकरि पीड़ित भई। कैसे हैं काम के बाण? मर्म के विदारण हारे। कैसी है लंकासुन्दरी? साक्षात् लक्ष्मीसमान रूपवंती, कमललोचन, सौभाग्य गुणनिकरि गर्वित, सो हनुमान के हृदयविषै प्रवेश करती भई। जाके कर्ण पर्यंत वाणरूप तीक्ष्ण कटाक्ष नेत्ररूप धनुष तैं चढ़े, ज्ञान धीर्य के हरणहारे, महासुन्दर, दुद्धर मन के भेदनहारे, प्रवीण, अपनी लावण्यताकरि हरी है सुन्दरताई जिनने।

तब हनुमान मोहित होय मन में चिंतवता भया – जो यह मनोहर आकार, महाललित, बाहिर तो विद्याबाण अर सामान्य बाण तिनकरि मोहि भेदै है, और आभ्यंतर मेरे मनकूं काम के बाणकरि बींधै है। यह मोहि बाह्याभ्यंतर हणै है, तन मन को पीड़े है। या युद्धविषै याके बाणनिकर मृत्यु होय तो भली परन्तु याके बिना स्वर्गविषै जीवना भला नाहीं। या भांति पवनपुत्र मोहित भया, अर वह लंकासुंदरी याके रूपकूं देख मोहित भई। क्रूरतारहित करुणाविषै आया है चित्त जाका, तब जो हनुमान के मारिवेकूं शक्ति हाथ में लीनी हुती सो शीघ्र ही हाथतैं भूमि में डार दई, हनुमान पर न चलाई। कैसे हैं हनुमान? प्रफुल्लित है तन अर मन जिनका, अर कमलदल समान है नेत्र जिनके, अर पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है मुख जिनका, नवयौवन, मुकुटविषै वानर का चिह्न, साक्षात् कामदेव हैं।

लंकासुन्दरी मन में चिंतवती भई – याने मेरा पिता मार्‍या, सो बड़ा अपराध किया। यद्यपि द्वेषी है तथापि अनुपम रूपकर मेरे मनकूं हरै है। जो या सहित कामभोग न सेऊं तो मेरा जन्म निष्फल है तब विह्वल होय। एक पत्र तामें अपना नाम सो वाणकूं लगाय चलाया, तामैं ये समाचार हुते – हे नाथ! देवनि के समूहकरि न जीती जाऊं ऐसी मैं, सो तुमने काम के बाणनिकरि जीती। यह पत्र बांच हनुमान प्रसन्न होय। रथतैं उतर जायकर तासूं मिले, जैसे काम रति से मिले। वह प्रशांतवैर भई संती आंसू ढारती तात के मरणकर शोकरत। तब हनुमान कहते भए – हे चन्द्रवदनी! रुदन मत करै, तेरे शोक की निवृत्ति होहु। तेरे पिता परम क्षत्री, महाशूरवीर तिनकी यही रीति, जो स्वामी कार्य के अर्थ युद्ध में प्राण तजें। अर तुम शास्त्रविषै हो सो सब नीके जानै हो। या राज्यविषै यह प्राणी कर्मनि के उदयकर पिता पुत्र बांधवादिक सबको हणे है। तातैं तुम आर्तध्यान तजो। ये सकल प्राणी अपना उपार्जा कर्म भोगवै है। निश्चय मरण का कारण आयु का अन्त है अर परजीवनिमित्त मात्र हैं। इन वचननिकरि लंकासुन्दरी शोकरहित भई। या भांति

या सहित कैसी सोहती भई? जैसे पूर्णचन्द्र से निशा सोहे।

प्रेम के समूहकर पूर्ण दोऊ मिलकर संग्राम का खेद विस्मरण होय गए, दोऊनि का चित्त परस्पर प्रीतिरूप होय गया। तब आकाशविषै स्तम्भिनी विद्याकर कटक थांभा। अर सुन्दर मायामई नगर बसाया, जैसी सांझ की आरक्तता होय ता समान लाल, देवन के नगर समान मनोहर, जामें राजमहल अत्यन्त सुन्दर, सो हाथी, घोड़े विमान रथों पर चढ़े बड़े बड़े राजा नगर में प्रवेश करते भए। नगर ध्वजानि की पंक्तिकर शोभित, सो यथायोग्य नगर में तिष्ठे। महाउत्साह सै संयुक्त रात्रि में शूरवीरनि के युद्ध का वर्णन जैसा भया तैसा सामंत करते भए। हनुमान लंकासुन्दरी के संग रमता भया।

अथानन्तर प्रभात ही हनुमान चलवेकूं उद्यमी भया। तब लंकासुन्दरी महाप्रेम की भरी ऐसी कहती भई – हे कंत! तुम्हारे पराक्रम न सहे जांय ऐसे अनेक मनुष्यों के मुख रावण ने सुने होवेंगे। सो सुनकर अतिखेदखिन्न भया होयगा। तातैं तुम लंका काहे को जावो।

तब हनुमान ने इसे सकल वृत्तांत कहा। जो राम ने वानरवंशियों का उपकार किया सो सबों का प्रेरा राम के प्रति उपकार निमित्त जाऊं हूं। हे प्रिये! राम का सीता से मिलाप कराऊं, राक्षसनि का इन्द्र अन्याय मार्ग से हर ले गया है, सो सर्वथा मैं लाऊंगा। तब ताने कहा – तुम्हारा और रावण का वह स्नेह नाहीं, स्नेह नष्ट भया। सो जैसैं स्नेह कहिए तैल ताके नष्ट होयवेकरि दीपक की शिखा नाहीं रहे है, तैसैं स्नेह के नष्ट होयवेकरि सम्बन्ध का व्यवहार नाहीं रहे है। अब तक तुम्हारा यह व्यवहार था – तुम जब लंका आवते तब नगर उछावतैं गली गली में हर्ष होता, मन्दिर ध्वजानि की पंक्ति से शोभित होते, जैसैं स्वर्ग में देव प्रवेश करैं तैसैं तुम प्रवेश करते। अब रावण प्रचंड दशानन तुमविषै द्वेषरूप है सो नि:संदेह तुमकूं पकड़ेगा। तातैं जब तिहारे उनके संधि होय तब मिलना योग्य है।

तब हनुमान बोले – हे विचक्षणे! जायकर ताका अभिप्राय जाना चाहूं हूं। और वह सीता सती जगत् में प्रसिद्ध है, अर रूपकर अद्वितीय है। जाहि देखकर रावण का सुमेरुसमान अचल मन चला है। वह महा पतिव्रता हमारे नाथ की स्त्री, हमारी माता समान ताका दर्शन किया चाहूं हूं। या भांति हनुमान ने कही और सब सेना लंकासुंदरी के समीप राखी और आप तो विवेकिनी से विदा होयकर लंका के सन्मुख भए।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहैं हैं – हे राजन्! या लोकविषै यह बड़ा आश्चर्य है जो यह प्राणी क्षणमात्र में एक रस को छोड़कर दूजे रस में आ जाय। कभी विरस को छोड़कर रस में आ जाय, कबहूं रस को छोड़कर विरस में आ जाय। या जगतविषै इन कर्मनि की अद्भुत

चेष्टा है। संसारी सर्व जीव कर्मों के आधीन हैं। जैसैं सूर्य दक्षणायन से उत्तरायण आवे तैसैं प्राणी एक अवस्था से दूजी अवस्था में आवै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान लंकासुन्दरी का नाम वर्णन करने वाला बावनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।52।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक तैं कहै हैं – हे श्रेणिक! यह पवन का पुत्र महाप्रभाव के उदय कर संयुक्त, थोड़े ही सेवकनि सहित नि:शंक लंकाविषै प्रवेश करता भया। बहुरि प्रथम ही विभीषण के मंदिर में गया। विभीषण ने बहुत सन्मान किया। फिर क्षणएक तिष्ठकर परस्पर वार्ता कर हनुमान कहता भया – जो रावण आधे भरतक्षेत्र का पति, सर्व का स्वामी, ताहि यह कहा उचित जो दरिद्र मनुष्य की न्याईं चोरी कर परस्त्री लावे। जे राजा हैं सो मर्यादा के मूल हैं, जैसैं नदी का मूल पर्वत। राजा ही अनाचारी होय तो सर्वलोक में अन्याय की प्रवृत्ति होई। ऐसे चरित्र किए राजा की सर्वलोक में निंदा होय।

तातैं जगत् के कल्याण निमित्त रावणकूं शीघ्र ही कहो, न्याय को न उलंघे। यह कहो हे नाथ! जगत में अपयश का कारण यह कर्म है। जिससे लोक नष्ट होय सो न करना। तुम्हारे कुल का निर्मलचरित्र केवल पृथ्वी पर ही प्रशंसा योग्य नाहीं, स्वर्ग में भी देव हाथ जोड़ नमस्कार कर तिहारे बड़ों की प्रशंसा करै हैं। तिहरा यश सर्वत्र प्रसिद्ध है। तब विभीषण कहता भया – मैं बहुत बार भाईकूं समझाया, परन्तु मानै नाहीं। अर जिस दिन से सीता ले आया उस दिन से हमसे बात भी न करै। तथापि तिहारे वचन से बहुरि दबाय कर कहूंगा। परन्तु यह हठ उससे छूटना कठिन है। अर आज ग्यारहवां दिन है, सीता निराहार है, जलहू नाहीं लेय है; तो भी रावणकूं दया नाहीं उपजी, यह कामतैं विरक्त नाहीं होय है। ए बात सुन कर हनुमानकूं अति दया उपजी। प्रमद नामा उद्यान जहां सीता विराजै है, तहां हनुमान गया। ता वन की सुन्दरता देखता भया।

नवीन जे बेलनि के समूह तिनकरि पूर्ण, अर तिनके लाल पल्लव सोहैं, मानों सुन्दर स्त्री के करपल्लव ही हैं। अर पुष्पनि के गुच्छों पर भ्रमर गुंजार करै हैं। और फलनिकरि शाखा नम्रीभूत होय रही है, अर पवन से हालै है। कमलोंकर जहां सरोवर शोभित है, और देदीप्यमान बेलनिकर वृक्ष वेष्टित हैं। मानों वह वन देववन समान है अथवा भोगभूमि समान है। पुष्पनि की मकरन्द से मंडित मानों साक्षात् नन्दनवन है। अनेक अद्भुतताकरि पूर्ण हनुमान कमललोचन वन की लीला देखता संता सीता के दर्शन निमित्त आगे भया। चारों तरफ वन में अवलोकन किया सो दूर हीतैं सीताकूं देखा।

सम्यक्दर्शन सहित महासती, ताहि देखकर हनुमान मन में चिंतवता भया – यह रामदेव की

परम सुन्दरी महासती निर्धूम अग्नि समान असुवन से भर रहे हैं नेत्र जाके, सोच सहित बैठी मुख से हाथ लगाय, सिर के केश बिखर रहे हैं, कृश है शरीर जिसका। सो देखकर हनुमान विचारता भया। धन्य रूप या माता का, लोकविषै जीते हैं सर्वलोक जिसने, मानों यह कमल से निकसी लक्ष्मी ही विराजै है। दुख के समुद्र में डूब रही है तोहू या समान और कोई नारी नाहीं। मैं जैसे होय तैसे इसे श्रीराम से मिलाऊं। इसके और राम के काज अपना तन दूं, याका और राम का विरह न देखूं। यह चिंतवनकर अपना रूप फेर मंद मंद पांव धरता हनुमान आगे जाय श्रीराम की मुद्रिका सीता के पास डारी। सो शीघ्र ही उसे देख रोमांच होय आए और कछूइक मुख हर्षित भया।

सो समीप बैठी थीं जो नारी वे इसकी प्रसन्नता के समाचार जायकर रावणकूं कहती भईं। सो वह तुष्टायमान होय इनकूं वस्त्र रत्नादिक देता भया। और सीताकूं प्रसन्नवदन जान कार्य की सिद्धि चिंतता भया। सो मंदोदरीकूं सर्व अंत:पुरसहित सीता पै पठाई। सो अपने नाथ के वचन से सर्व अन्त:पुर सहित सीता पै आई। सो सीताकूं मन्दोदरी कहती भई – हे बाले! आज तू प्रसन्न भई सुनी सो तैंने हम पर बड़ी कृपा करी। अब लोक का स्वामी रावण उसे अंगीकार कर, जैसे देवलोक की लक्ष्मी इन्द्रकूं भजै।

यह वचन सुन सीता कोपकर मन्दोदरी से कहती भई – हे खेचरी! आज मेरे पति की वार्ता आई है। मेरे पति आनन्द से हैं इसलिये मोहि हर्ष उपजा है। तब मन्दोदरी ने जानी इसे अन्न जल किये ग्यारह दिन भए सो वाय से बकै है। तब सीता मुद्रिका ल्यावनहारासूं कहती भई, हे भाई! मैं इस समुद्र के अंतर्द्वीपविषै भयानक वन में पड़ी हूं सो कोऊ उत्तम जीव मेरा भाई समान अतिवात्सल्य धारणहारा मेरे पति की मुद्रिका लेय आया है सो प्रकट दर्शन देहु।

तब हनुमान महा भव्य जीव सीता का अभिप्राय जान मन में विचारता भया जो पहिले पराया उपकार विचारे, बहुरि अतिकायर होय छिप रहे सो अधम पुरुष है। अर जे परजीव को आपदाविषै खेद खिन्न देख पराई सहाय करै तिन दयावन्तों का जन्म सफल है। तब समस्त रावण की स्त्री मन्दोदरी आदि देखै हैं। अर दूर ही से सीता कूं देख हाथ जोड़ सीस निवाय नमस्कार करता भया।

कैसा है हनुमान? महानिशंक, कांतिकर चन्द्रमा समान, दीप्तिकर सूर्यसमान, वस्त्र आभूषणकर मंडित, रूपकर अतुल्य, मुकुट में वानर का चिह्न, चन्दन कर चर्चित है सर्व अंग जाका, महा बलवान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, सुन्दर केश, रक्त होठ, कुण्डल के उद्योतकरि महा प्रकाशरूप मनोहर मुख, गुणवान, महाप्रताप संयुक्त सीता के निकट आयता कैसा सोभता भया? मानों भामंडल भाई लेयवेकूं आया है। प्रथम ही अपना कुल गोत्र माता पिता का नाम सुनायकर बहुरि अपना नाम कहा।

बहुरि श्रीराम ने जो कहा हुता सो सर्व कहा। अर हाथ जोड़ विनती करी – हे साध्वी! स्वर्गविमान समान महलों में श्रीराम विराजे हैं। परन्तु तिहारे विरहरूप समुद्र में मग्न काहू ठौर रतिकूं नाहीं पावे हैं। समस्त भोगोपभोग तजे मौन धरे तिहारा ध्यान करै हैं जैसैं मुनि शुद्धताकूं ध्यावें, एकाग्रचित्त तिष्ठै हैं। वे वीणा का नाद अर सुन्दर स्त्रियों के गीत कदापि नाहीं सुनै हैं। अर सदा तिहारी ही कथा करै हैं। तिहारे देखवे का अर्थ केवल प्राणों को धरै हैं। यह वचन हनुमान के सुन सीता आनन्दकूं प्राप्त भई।

बहुरि सजल नेत्र होय कहती भई (सीता के निकट हनुमान महा विनयवान हाथ जोड़ खड़ा है) जानकी बोली – हे भाई! दुःख के सागरविषै पड़ी हूं अशुभ के उदयकरि। पति के समाचार सुन तुष्टायमान भई। तोहि कहा दूं? तब हनुमान प्रणामकर कहता भया, हे जगतपूज्य! तिहारे दर्शन ही से मौहि महा लाभ भया। तब सीता मोती समान आंसुनि की बूंद नाखती हनुमान से पूछती भई – हे भाई! यह नगर ग्राह आदि अनेक जलचरों का भरा महा भयानक समुद्र ताहि उलंघकर तू कैसे आया? अर सांचे कहो मेरा प्राणनाथ तैने कहां देख्या? अर लक्ष्मण युद्धविषै गया हुता सो कुशल क्षेमसूं है। अर मेरा नाथ कदाचित् तोहि यह संदेशा कहकर परलोक प्राप्त हुवा होय अथवा जिनमार्गविषै महा प्रवीण सकल परिग्रह त्यागकर तप करता होय, अथवा मेरे वियोगतैं शरीर शिथिल होय गया, अर अंगुरीतैं मुद्रिका गिर पड़ी होय, यह मेरे विकल्प हैं। अब तक मेरे प्रभु का तोसों परिचय न हुता सो कौन भांति मित्रता भई। से सब मोसूं विशेषता कर कहो।

तब हनुमान हाथ जोड़ सिर निवाय कहता भया – हे देवि! सूर्यहास खड्ग लक्ष्मणकूं सिद्ध भया अर चन्द्रनखा ने धनी पै जाय धनीकूं क्रोध उपजाया। सो खरदूषण दंडकवनविषै युद्ध करवेकूं आया। अर लक्ष्मण उससे युद्ध करवेकूं गये। सो तो सब वृत्तांत तुम जानो हो? बहुरि रावण आया अर आप श्रीराम के पास विराजती हुतीं। सो रावण यद्यपि सर्व शास्त्र का वेत्ता हुता, अर धर्म अधर्म का स्वरूप जाने हुता, परन्तु आपकूं देखकर अविवेकी होय गया। समस्त नीति भूल गया, बुद्धि जाती रही, तिहारे हरिवे के कारण कपटकर सिंहनाद किया सो सुनकर राम लक्ष्मण पै गये। अर यह पापी तुमकूं हर ले आया।

बहुरि लक्ष्मण रामसों कही – तुम क्यों आये, शीघ्र जानकी पै जावहु। तब आप स्थानक आए। तुमकूं न देखकर महा खेदखिन्न भए। तिहारे ढूंढ़ने के कारण वनविषै बहुत भ्रमै। बहुरि जटायू को मरता देखा तब ताहि णमोकार मंत्र दिया। अर चार आराधना सुनाय संन्यास देय पक्षी का परलोक सुधारा। बहुरि विरहकर महादुखी सोच में पड़े। अर लक्ष्मण खरदूषणकूं हन राम पै आया, धीर्य बंधाया, अर चन्द्रोदय का पुत्र विराधित लक्ष्मण से युद्ध ही विषै आय मिला हुता। बहुरि

सुग्रीव राम पै आया। अर साहसगति विद्याधर जो सुग्रीव का रूपकर सुग्रीव की स्त्री का अर्थी भया हुता सो रामकूं देख साहसगति की विद्या जाती रही। सुग्रीव का रूप मिट गया। अर साहसगति रामसूं लड़ा सो साहसगतिकूं राम ने मारा। सुग्रीव का उपकार किया। तब सबने मोहि बुलाय रामसूं मिलाया।

अब मैं श्रीराम का पठाया तिहारे छुड़ाइवे अर्थ यहां आया हूं। परस्पर युद्ध करना नि:प्रयोजन है। कार्य की सिद्धि सर्वथा नयकर करना। अर लंकापुरी का नाथ दयावान है विनयवान है, धर्म अर्थ काम का वेत्ता है, कोमल हृदय है, सौम्य है, वक्रतारहित है, सत्यवादी महाधीरवीर है, सो मेरा वचन मानेगा। तोहि राम पै पठावेगा। याकी कीर्ति महा निर्मल पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है, अर यह लोकापवादतैं डरे है। तब सीता हर्षित होय हनुमान से कहती भई – हे कपिध्वज! तो सरीखे पराक्रमी धीरवीर विनयवान मेरे पति के निकट केतेके हैं?

तब मन्दोदरी कहती भई – हे जानकी! तैं यह कहा समझ कर कही। तू याहि न जाने है तातैं ऐसा पूछै है। या सरीखा भरतक्षेत्र में कौन है? या क्षेत्र में यह एक ही है। यह महासुभट युद्ध में कई बार रावण का सहाई भया है। यह पवन का पुत्र अंजनी का सुत रावण का भानजा जमाई है। चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा परणी है। या एक ने अनेक जीते हैं। सदा लोक याके दर्शनकूं बांछै हैं। चन्द्रमा की किरणवत् याकी कीर्ति जगत् में फैल रही है। लंका का धनी याहि भाईनितैं भी अधिक गिनै है। यह हनुमान पृथ्वीविषै प्रसिद्ध गुणनिकर पूर्ण है। परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि भूमिगोचरियों का दूत होय आया है।

तब हनुमान कही – तुम राजा मय की पुत्री अर रावण की पटराणी दूती होय कर आई हो। जा पति के प्रसादतैं देवनि के-से सुख भोगे, ताहि अकार्यविषै प्रवर्तते मनै नाहीं करो हो? और ऐसे कार्य की अनुमोदना करो हो! अपना वल्लभ विष का भरा भोजन करै ताहि नाहीं निवारो हो। जो अपना भला बुरा न जानै ताका जीतव्य पशु समान है। अर तिहारा सौभाग्यरूप सबतैं अधिक, अर पति परस्त्रीरत भया ताका दूतीपना करौ हो! तुम सब वातनिविषै प्रवीण, परमबुद्धिमती हुती सो प्राकृत जीवनिसमान अविधि कार्य करो हो। तुम अर्धचक्री की महिषी कहिए पटराणी हो, सो अब मैं महिषी कहिए भैंस समान जानू हूं।

यह वचन हनुमान के मुखतैं सुन मंदोदरी क्रोधरूप होय बोली – अहो! तू दोषरूप है, तेरा वाचालपना निरर्थक है। जो कदाचित् रावण यह बात जानै कि यह राम का दूत होय सीता पै आया है, तो काहू से न करै ऐसी तोसों करैं। अर जाने रावण का बहनेऊ चन्द्रनखा का पति मारा ताके सुग्रीवादिक सेवक भए, रावण की सेवा छांडी सो वे मंदबुद्धि हैं रंक कहा करेंगे? इनकी मृत्यु

निकट आई है, तातैं भूमिगोचरी के सेवक भए हैं। ते अतिमूढ़, निर्लज्ज, तुच्छवृत्ति, कृतघ्नी, वृथा गर्वरूप होय मृत्यु के समीप तिष्ठै हैं।

ये वचन मंदोदरी के सुनकर सीता क्रोधरूप होय कहती भई – हे मंदोदरी! तू मंदबुद्धि है जो वृथा ऐसे कहै है। तैं मेरा पति अद्भुत पराक्रम का धनी कहा नाहीं सुना है? शूरवीर अर पंडितनि की गोष्ठीविषै मेरा पति मुख्य गाइए हैं। जाकै वज्रावर्त धनुष का शब्द रण संग्रामविषै सुनकर महा रणधीर योधा धीर्य नाहीं धारे हैं, भय से कम्पायमान होयकर दूर भागे हैं। अर जाका लक्ष्मण छोटा भाई लक्ष्मी का निवास, शत्रुपक्ष के क्षय करवेकूं समर्थ, जाके देखते ही शत्रु दूर भाग जावैं। बहुत कहिवेकरि कहा? मेरा पति राम लक्ष्मणसहित समुद्र तरकर शीघ्र ही आवै है। सो युद्धविषै थोड़े ही दिननिविषै तू अपने पतिकूं मूवा देखेगी। मेरा पति प्रबल पराक्रम का धारी है। तू पापी भरतार की आज्ञारूप दूती होय आई है सो शिताब ही विधवा होयगी, अर बहुत रुदन करेगी।

ये वचन सीता के मुखतैं सुनकर मन्दोदरी राजा मय की पुत्री अतिक्रोधकूं प्राप्त भई। अठारा हजार राणी हाथों कर सीता के मारवेकूं उद्यमी भईं और अति क्रूरवचन कहती सीता पर आईं। तब हनुमान बीच आनकर तिनकूं थांभी जैसे पहाड़ नदी के प्रवाहकूं थांभै। ते सब सीता को दुख का कारण वेदनारूप होय हनिवेकूं उद्यमी भईं थी सो हनुमान ने वैद्यरूप होय निवारा। तब ये सब मन्दोदरी आदि रावण की राणी मानभंग होय रावण पै गईं। क्रूर हैं चित्त जिनके। तिनकूं गए पीछे हनुमान सीतासूं नमस्कार करि आहार के निमित्त विनती करता भया – हे देवी! यह सागरांत पृथ्वी श्रीरामचन्द्र की है तातैं यहां का अन्न उन ही का है, वैरिनि का न जानो। या भांति हनुमान ने सम्बोधी अर प्रतिज्ञा भी यही हुती कि जो पति के समाचार सुनूं तब भोजन करूं। सो समाचार आए ही। तब सीता सब आचार में विचक्षण, महा साध्वी, शीलवंती, दयावंती, देशकाल की जाननेवारी, आहार लेना अंगीकार करती भई। तब हनुमान ने एक ईरा नाम की स्त्री कुलपालिकाकूं आज्ञा करी जो शीघ्र ही श्रेष्ठ अन्न लावो। अर हनुमान विभीषण के पास गया, ताही के भोजन किया, अर तासूं कही सीता को भोजन की तैयारी कराय आया हूं। अर ईरा जहां डेरे हुते वहां गई। सो चार मुहूर्त में सर्व सामग्री लेकर आई।

दर्पण समान पृथ्वीकूं चन्दनसूं लीपा और महा सुगन्ध विस्तीर्ण निर्मल सामग्री और सुवर्णादिक के भाजन में भोजन धराय लाई। कई एक पात्र घृत के भरे हैं, कई एक चावलनिकरि भरे हैं, चावल कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल, और कई एक पात्र दालसों भरे हैं। और अनेक रस नाना प्रकार के व्यंजन दूध दही महा स्वादरूप भांति भांति का आहार। सो सीता बहुत क्रिया संयुक्त रसोई कर, ईरा आदि समीपवर्तियों को यहां ही न्योते। हनुमान से भाई का भाव कर अति

वात्सल्य किया। महा श्रद्धासंयुक्त है अंतःकरण जाका ऐसी सीता महा पतिव्रता भगवानकूं नमस्कार कर अपना नियम समाप्त कर, त्रिविध पात्रनिकूं भोजन करावने का अभिलाष कर महा सुन्दर श्रीराम तिनकूं हृदयविषै धार, पवित्र है अंग जाका, दिनविषै शुद्ध आहार करती भई। सूर्य का उद्योत होय तब ही पवित्र मनोहर पुण्य का बढ़ावनहारा आहार योग्य है। रात्रिकूं योग्य नाहीं?

सीता भोजन कर चुकी अर कछु इक विश्रामकूं प्राप्त भई, तब हनुमान ने नमस्कार कर विनती करी – हे पतिव्रते! हे पवित्रे! हे गुणभूषणे! मेरे कांधे चढ़हु अर समुद्र उलंघ क्षण मात्र में राम के निकट ले जाऊं। तिहारे ध्यान में तत्पर महाविभवसंयुक्त जे राम तिनकूं शीघ्र ही देखहु। तिहारे मिलाप कर सबहीकूं आनन्द होई। तब सीता रुदन करती कहती भई – हे भाई! पति की आज्ञा बिना मेरा गमन योग्य नाहीं। जो पूछी कि तू बिना बुलाए क्यों आई तो मैं कहा उत्तर दूंगी। तातैं रावण ने उपद्रव तो सुना होयगा सो अब तुम जावो, तोहि यहां विलम्ब उचित नाहीं। मेरे प्राणनाथ के समीप जाय मेरी तरफ से हाथ जोड़ नमस्कार कर मेरे मुख के वचन या भांति कहियो – हे देव! एक दिन मो सहित आपने चारण मुनि की वन्दना करी; महा स्तुति करी, अर निर्मलजल की भरी सरोवरी कमलनिकर शोभित जहां जलक्रीड़ा करी। ता समय महा भयंकर एक वन का हाथी आया सो वह हाथी महाप्रबल आपने क्षण मात्र में वशकर सुन्दर क्रीड़ा करी। हाथी गर्वरहित निश्चल किया।

अर एक दिन नन्दन वन समान वनविषै मैं वृक्ष की शाखाकूं नवाती क्रीड़ा करती हुती सो भ्रमर मेरे शरीरकूं आय लगे। सो आपने अति शीघ्रताकर मुझे भुजा से उठाय लई, अर आकुलता रहित करी। अर एक दिन सूर्य उद्योत समय आपके समीप सरोवर के तट तिष्ठती थी तब आप शिक्षा देयवे के काज कछू इक मिसकर कोमल कमल नाल की मेरे मधुर-सी दीनी। अर एक दिन पर्वत पर अनेक जाति के वृक्ष देखे। मैं आपकूं पूछी – हे प्रभो! यह कौन जाति के वृक्ष हैं, महा मनोहर? तब आप प्रसन्न मुखकर कही – हे देवी! ये नन्दनी वृक्ष हैं। अर एक दिन करणकुण्डल नामा नदी के तीर आप विराजे हुते, अर मैंहू हुती, ता समय मध्याह्न समय चारण मुनि आए सो तुम उठ कर महा भक्तिकर मुनिकूं आहार दिया। तहां पंचाश्चर्य भए, रत्नवर्षा, कल्प वृक्षों के पुष्पनि की वर्षा, सुगन्ध जल की वर्षा, शीतल मन्द सुगन्ध पवन, दुन्दुभी बाजे, अर आकाशविषै देवनि ने यह ध्वनि करी – धन्य ये पात्र, धन्य ये दाता, धन्य ये दान।

ये सब रहस्य की बातें कहीं अर चूड़ामणि सिरतैं उतार दिया जो याके दिखाने से उनकूं विश्वास आवेगा। अर यह कहियो – मैं जानूं हूं आपकी कृपा मोपै अत्यन्त है तथापि तुम अपने प्राण यत्नसूं राखियो। तिहारे से मेरा वियोग भया। अब तिहारै यत्न से मिलाप होयगा। ऐसा कह

सीता रुदन करती भई। तब हनुमान ने धीर्य बंधाया अर कही – हे माता! जो तुम आज्ञा करोगी सो ही होयगा और शीघ्र ही स्वामीसों मिलाप होयगा। यह कह हनुमान सीता से विदा भया। अर सीता ने पति की मुद्रिका अंगुरी में पहिर ऐसा सुख माना मानों पति का समागम भया।

अथानन्तर वन की नारी हनुमानकूं देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भईं। अर परस्पर ऐसी बात करती भईं – यह कोई साक्षात् कामदेव है अथवा देव है सो वन की शोभा देखवेकूं आया है? तिनमें कोई एक काम कर व्याकुल होय बीन बजावती भई, किन्नरी देवीयों के से हैं स्वर जिनके, कोई इक चन्द्र वदनी बामें हस्तविषै दर्पण राख अर याका प्रतिबिम्ब दर्पण में देखती भई। देखकर आसक्त मन भई। या भांति समस्त स्त्रियों को संभ्रम उपजाय, हार माला सुन्दर वस्त्र धरै, देदीप्यमान अग्निकुमार देववत् सोहता भया।

इनके वनविषै अनेक वार्ता रावण ने सुनी। तब क्रोधरूप होय रावण महानिर्दयी किंकर युद्धविषै जे प्रवीण हुते, ते पठाए। अर तिनकूं यह आज्ञा करी कि मेरी क्रीड़ा का जो पुष्पोद्यान तहां मेरा कोई एक द्रोही आया है सो अवश्य मार डारियो। तब ये जायकर वन के रक्षकनिकूं कहते भए – हो वन के रक्षक हो! तुम कहा प्रमादरूप होय रहे हो? कोऊ उद्यानविषै दुष्ट विद्याधर आया है सो शीघ्र ही मारना अथवा पकड़ना। वह महा अविनयी है। वह कौन है, कहां है? ऐसे किंकरनि के मुखतैं ध्वनि निकसी सो हनुमान ने सुनी। अर धनुष के धरणहारे, शक्ति के धरणहारे, गदा के धरणहारे, खड्ग के बरछी के धरणहारे अनेक लोग आवते हनुमान ने देखे।

तब पवन का पूत सिंहहूतैं अधिक है पराक्रम जाका, मुकुटविषै रत्नजड़ित वानर का चिह्न, ताकर प्रकाश किया है आकाश जाने, आप उनकूं अपना रूप दिखाया, उगते सूर्य समान क्रोध होंठ डसता लाल नेत्र। तब याके भयकरि सब किंकर भागे, तब और क्रूर सुभट आए। शक्ति तोमर खड्ग चक्र गदा धनुष इत्यादि आयुध करविषै धरैं अर अनेक शस्त्र चलावते आए। तब अंजनी का पुत्र शस्त्ररहित हुता सो वन के जे वृक्ष ऊंचे ऊंचे थे उनके समूह उपाड़े अर पर्वतनि की शिला उपाड़ी सो रावण के सुभटनि पर अपनी भुजानिकर वृक्ष अर शिला चलाई, मानों काल ही है, सो बहुत सामंत मारे। कैसी है हनुमान की भुजा? महा भयंकर जो सर्प ताके फण समान है आकार जिनका।

शाल वृक्ष, पीपल, बड़, चम्पा, नीव, अशोक, कदम्ब, कुन्द, नाग अर्जुन, धव, आम्र, लोध, कटहल बड़े बड़े वृक्ष उपार उपार अनेक योधा मारे। कई एक शिलावों से मारे, कई एक मुक्कों अर लातों से पीस डारे। समुद्रसमान रावण के सुभटों की सेना क्षणमात्रविषै बखेर डारी। कई एक मारे, कई एक भागे।

हे श्रेणिक! मृगनि के जीतवेकूं मृगराज कौन सहाई होय अर शरीर बलहीन होय तो घनों की

सहाय कर कहा? ता वन के सब ही भवन अर वापिका अर विमान सारिखे उत्तम मंदिर सब चूर डारे। केवल भूमि रही गई। वन के मन्दिर अर वृक्ष विध्वंस किए, सो मार्ग होय गया जैसे समुद्र सूख जाय अर मार्ग होय जाय।

फोरि डारी है हाटों की पंक्ति, अर मारे हैं अनेक किंकर, सो बाजार ऐसा होय गया मानों संग्राम की भूमि है। उतुंग जे तोरण सो पड़े, अर ध्वजावों की पंक्ति पड़ी, सो आकाश से मानों इन्द्रधनुष पड़ा है। अर अपनी जंघातैं अनेक वर्ण के रत्ननि के महिल ढाहे सो अनेक वर्ण के रत्ननि की रजकर मानों आकाशविषै हजारों इन्द्रधनुष चढ़े हैं। अर पायनि की लातनिकरि पर्वतसमान ऊंचे घर फोर डारे। तिनका भयानक शब्द होता भया। अर कई एक तो हाथनि से मारे, अर पगों से मारे, अर छाती से अर कांधे से। या भांति रावण के हजारों सुभट मारे। सो नगरविषै हाहाकार भया। अर रत्नों के महिल गिर पड़े, तिनका शब्द भया। अर हाथिनि के थम्भ उपार डारे, अर घोड़े पवन मंडल, पानों की न्याईं उड़े उड़े फिरे हैं। अर वापी फोर डारीं। सो कीचड़ रह गया। समस्त लंका व्याकुल भई मानों चाक चढ़ाई है। लंकारूप सरोवर राक्षसरूप मीनों से भरा, सो हनुमानरूप हाथी ने गाह डारा।

तब मेघवाहन बक्तर पहिर बड़ी फौज लेय आया अर ताके पीछे ही इन्द्रजीत आया सो हनुमान उनसे युद्ध करने लगा। लंका की बाह्यभूमिविषै महायुद्ध भया, जैसा खरदूषण अर लक्ष्मण के युद्ध भया हुता। अर हनुमान चार घोड़ों के रथ पर चढ़ धनुषबाण लेय राक्षसनि की सेना पर दौड़ा।

तब इन्द्रजीत ने बहुत देर तक युद्ध कर हनुमानकूं नागफांस से पकड्या अर नगर में ले आया। सो याके आयबे से पहिले ही रावण के निकट हनुमान की पुकार हो रही थी। अनेक लोग नाना प्रकारकरि पुकार कर रहे हुते कि सुग्रीव का बुलाया यह अपने नगरतैं किहकंधापुर आया, रामसों मिला, अर तहांतैं या ओर आया सो महेन्द्रकूं जीता, अर साधवों के उपसर्ग निवारे, दधिमुख की कन्या राम पे पठाई, अर वज्रमई कोट विध्वंसा वज्रमुखकूं मारा, अर ताकी पुत्री लंकासुन्दरी अभिलाषवंती भई सो परनी, अर ता संग रमा, अर पुष्पनामा वन विध्वंसा, वनपालक विह्वल करे, अर बहुत सुभट मारे, अर घटरूप जे स्तन तिनकर सींच सींच मालियों की स्त्रियों ने पुत्रों की नाईं जे वृक्ष बढ़ाए हुते ते उपार डारे, अर वृक्षों से बेल दूर करी, सो विधवा स्त्रियों की न्याईं भूमि विषै पड़ी, तिनके पल्लव सूख गए, अर फल फूलों से नम्रीभूत नाना प्रकार के वृक्ष मसान के से वृक्ष कर डारे। सो यह अपराध सुन रावणकूं अतिकोप भया हुता इतने में इन्द्रजीत हनुमानकूं लेकर आया। सो रावण ने याकूं लोह की सांकलनि कर बंधाया अर कहता भया – यह पापी निर्लज्ज दुराचारी है। अब याके देखवे कर कहा? यह नाना अपराध का करणहारा। ऐसे दुष्ट को क्यों न मारिये?

तब सभी माथा धुनकर कहते भए – हे हनुमान! जाके प्रसाद तैं पृथ्वीविषै तू प्रभुताकूं प्राप्त भया। प्रतिकूल होय भूमिगोचरी का दूत भया। रावण की ऐती कृपा पीठ पीछे डार दई। ऐसे स्वामीकूं तज, जे भिखारी निर्धन पृथ्वी में भ्रमते फिरते दोनों वीर तिनका तू सेवक भया। अर रावण ने कहा कि तू पवन का पुत्र नाहीं काहू और कर उपजा है। तेरी चेष्टा अकुलीन की प्रत्यक्ष दीखै है। जे जारजात हैं तिनके चिह्न अंग में नाहीं दीखे हैं, जब अनाचार को आचरैं तब जानिए। यह जारजात है। कहा केशरी सिंह का बालक स्याल का आश्रय करे? नीच का आश्रय कर कुलवंत पुरुष न जीवें। अब तू राजद्वार का द्रोही है, निग्रह करवे योग्य है।

तब हनुमान यह वचन सुन हंसा अर कहता भया – न जानिए कौन का निग्रह होय। या दुर्बुद्धिकर तेरी मृत्यु नजदीक आई, कई एक दिनविषै दृष्टि परैगी। लक्ष्मणसहित श्रीराम बड़ी सेना से आवै हैं सो किसी से रोके न जांय जैसे पर्वतनितैं मेघ न रुके। अर जैसें कोऊ नाना प्रकार के अमृत समान आहार कर तृप्त न भया अर विष की एक बून्द भखें नाशकूं प्राप्त होय तैसे हजारों स्त्रीनिकर तू तृप्तायमान न होय अर परस्त्री की तृष्णाकर नाशकूं प्राप्त होयगा। जो शुभ अर अशुभकर प्रेरी बुद्धि होनहार माफिक होय है सो इन्द्रादि कर भी अन्यथा न होय। दुर्बुद्धिविषै सैकड़ों प्रियवचन कर उपदेश दीजिये तौहु न लगै, जैसा भवितव्य होय सोही होय। विनाशकाल आवै तब बुद्धि का नाश होय।

जैसे कोऊ प्रमादी विष का भरा सुगन्ध मधुर जल पीवै तो मरणकूं पावै तैसें हे रावण! तू परस्त्री का लोलुपी नाशकूं प्राप्त होयगा। तू गुरु परिजन वृद्ध मित्र प्रिय बांधव मंत्री सबनि के वचन उलंघकर पाकर्मविषै प्रवृत्ते है, सो दुराचार रूप समुद्रविषै कामरूप भ्रमर के मध्य आय नरक के दुख भोगेगा। हे रावण! तू रत्नश्रवा राजा के कुलक्षय नीचपुत्र भया। तोकर राक्षसवंशिनि का क्षय होयगा। आगै तेरे वंश में बड़े बड़े मर्यादा के पालनहारे, पृथ्वीविषै पूज्य, मुक्ति के गमन करणहारे भए, अर तू उनके कुलविषै पुलाक कहिए न्यून पुरुष भया। दुर्बुद्धि मित्रकूं कहता निरर्थक है।

जब हनुमान से यह वचन कहे तब रावण क्रोधकर आरक्त होय दुर्वचन कहता भया – यह पापी मृत्यु से नाहीं डरै है, वाचाल है। तातैं शीघ्र ही याके हाथ पांव ग्रीवा सांकलनिसूं बांधकर अर कुवचन कहते ग्रामविषै फेरो। क्रूर किंकर लार घर घर यह वचन कहो – भूमिगोचरियों का दूत आया है याहि देखहु, अर श्वान बालक लार सो नगर की लुगाई धिक्कार देवैं। अर बालक धूर उड़ावैं, अर स्वान भौंके। सर्व नगरी विषै या भांति इसे फेरो, दुख देवो। तब वे रावण की आज्ञा प्रमाण कुवचन बोलते ले निकसे। सो यह बन्धन तुड़ाय ऊंचा चल्या जैसें यति मोहफांस तोड़ मोक्षपुरीकूं जांय। आकाशतैं उछल अपने पगों की लातों कर लंका का बड़ा द्वार ढाया तथा और

एक छोटे दरवाजे ढाहे। इन्द्र के महिल तुल्य रावण के महिल हनुमान के चरणनि के घात से बिखर गए जिनके बड़े बड़े स्तम्भ हते। अर महल के आस पास रत्न सुवर्ण का कोट हुता सो चूर डारा। जैसैं वज्रपात के मारे पर्वत चूर्ण हो जांय तैसैं रावण के घर हनुमानरूप वज्र के मारे चूर्ण होय गए।

यह हनुमान के पराक्रम सुन सीता ने प्रमोद किया अर हनुमानकूं बंधा सुन विषाद कियो हुता तब वज्रोदरी पास बैठी हुती ताने कहा – हे देवी! वृथा काहेकूं रुदन करै? यह सांकल तुड़ाय आकाश में चला जाय है सो देख। तब सीता अति प्रसन्न भई। अर चित्त में चिंतवती भई यह हनुमान मेरे समाचार पति पे जाय कहेगा सो आसीस देती भई, अर पुष्पांजलि नाखती भई कि तू कल्याण से पहुंचियो, समस्त ग्रह तुझे सुखदाई होंय, तेरे विघ्न सकल नाशकूं प्राप्त होंय, तू चिरंजीव हो। या भांति परोक्ष असीस देती भई। जे पुण्याधिकारी हनुमान सारिखे पुरुष हैं वे अद्‌भुत आश्चर्यकूं उपजावै हैं।

कैसे हैं वे पुरुष? जिन्होंने पूर्वजन्म में उत्कृष्ट तपव्रत आचरे हैं, अर सकलभव में विस्तरै हैं ऐसी कीर्ति के धारक हैं, अर जो काम किसी से न बनै सो करवे समर्थ हैं, अर चिंतवन में न आवै ऐसा सो आश्चर्य उसे उपजावै हैं। इसलिए सर्व तजकर जे पंडितजन हैं वे धर्मकूं भजो। अर जे नीचकर्म हैं वे खोटे फल के दाता है, इसलिए अशुभकर्म तजो। अर परमसुख का आस्वाद तामें आसक्त जे प्राणी, सुन्दर लीला के धारक वे सूर्य के तेजकूं जीतै ऐसे होय हैं।

श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान का लंकासूं पाछा आवने का वर्णन करने वाला तिरेपनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।53।।

अथानन्तर हनुमान अपने कटक में आय, किहकंधापुरकूं आया, लंकापुर में विघ्नकर आया, ध्वजा छत्रादि नगरी की मनोग्यता हर आया। किहकंधापुर के लोग हनुमानकूं आया जान बाहिर निकसे। नगर में उत्साह भया, यह धीर उदार है पराक्रम जाका, नगर में प्रवेश करता भया। सो नगर के नर नारियों को याके देखवे का अतिसंभ्रम भया। अपना जहां निवास तहां जाय सेना के यथायोग्य डेरे कराए। राजा सुग्रीव ने सब वृत्तांत पूछा, सो ताहि कहा। बहुरि राम के समीप गए। राम यह चिंतवन कर रहे हैं कि हनुमान आया है सो यह कहेगा कि तिहारी प्रिया सुखसूं जीवै है। हनुमान ने ताही समय आय रामकूं देखा – महाक्षीण, वियोगरूप अग्नि से तप्तायमान, जैसे हाथी दावानल कर व्याकुल होय महाशोकरूप गर्तविषै पड़े। तिनकूं नमस्कार कर हाथ जोड़ हर्षित वदन होय सीता की वार्ता कहता भया। जेते रहस्य के समाचार कहे हुते ते सब वर्णन किये, अर सिर का चूड़ामणि सौंप निश्चिंत भया।

चिन्ता कर वदन की और ही छाया होय रही है, आंसू पड़े हैं। सो राम याहि देखकर रुदन

करने लग गए अर उठकर मिले। श्रीराम यौं पूछे हैं – हे हनुमान! सत्य कहो, मेरी स्त्री जीवै है? तब हनुमान नमस्कार कर कहता भया। हे नाथ! जीवै है, आपका ध्यान करै है। हे पृथ्वीपते! आप सुखी होवो, आपके विरह कर वह सत्यवती निरंतर रुदन करै है, नेत्रनि के जलकर चतुरमास कर राखा है। गुण के समूह की नदी सीता, ताके केश बिखर रहे हैं, अत्यन्त दुखी है, अर बारम्बार निश्वास नाखती चिंता के सागर में डूब रही है। स्वभाव ही करि दुर्बल शरीर है, अर विशेष दुर्बल होय गई है। रावण की स्त्रीं आराधैं है परन्तु उनसे संभाषण करै नाहीं। निरंतर तिहारा ही ध्यान करै है। शरीर का संस्कार सब तज बैठी है। हे देव! तिहारी राणी बहुत दु:ख से जीवै है। अब तुमकूं जो करना होय सो करो।

ये हनुमान के वचन सुन श्रीराम चिंतावान भए। मुखकमल कुमलाय गया। दीर्घ निश्वास नाखते भये। अर अपने जीतव्यकूं अनेक प्रकार निंदते भए। तब लक्ष्मण ने धीर्य बंधाया। हे महाबुद्धि! कहा सोच करो हो? कर्त्तव्यविषै मन धरो। अर लक्ष्मण सुग्रीवसूं कहता भया – हे किहकन्धाधिपते! तू दीर्घसूत्री है। अब सीता के भाई भामंडलकूं शीघ्र ही बुलावहु। रावण की नगरी हमकूं अवश्य ही जाना है। कै तो जहाजनिकरि समुद्र तिरैं अथवा भुजानितैं। ये बात सुन सिंहनाद नामा विद्याधर बोला – आप चतुर महाप्रवीण होयकर ऐसी बात मत कहो। अर हम तो आपके संग हैं परन्तु ऐसा करना जाविषै सबका हित होय। हनुमान ने जाय लंका के वन विध्वंसे, अर लंका विषै उपद्रव किया सो रावणकूं क्रोध भया है, सो हमारी तो मृत्यु आई है।

तब जामवंत बोला तू नाहर होयकर मृग की न्याईं कहा कायर होय है? अब रावण हू भयरूप है अर वह अन्यायमार्गी है। बाकी मृत्यु निकट आई है। अर अपनी सेना में भी बड़े बड़े योधा महारथी हैं, विद्या विभवकर पूर्ण हैं, हजारां आश्चर्य के कार्य जिन्होंने किये हैं, तिनके नाम धनगति, एकभूत, गजस्वन, क्रूरकेलि, किलभीम, कुण्ड, गोरवि, अंगद, नल, नील, तडिदवक्र, मन्दर, अर्शनी, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेंद्र वज्रदृष्टि, दिवाकर, अर इल्काविद्या, लांगूलविद्या, दिव्यशस्त्र विषै प्रवीण, जिनके पुरुषार्थ में विघ्न नाहीं ऐसे हनुमान महाविद्यावान, अर भामंडल विद्याधरों का ईश्वर, महेन्द्रकेतु अति उग्र है पराक्रम जाका, प्रसन्नकीर्ति उपवति, अर ताके पुत्र महा बलवान, तथा राजा सुग्रीव के अनेक सामंत महाबलवान हैं, परम तेज के धारक वरतै हैं, अनेक कार्य के करणहारे, आज्ञा के पालनहारे।

ये वचन सनुकर विद्याधर लक्ष्मण की ओर देखते भए। अर श्रीरामकूं देखा तो सौम्यतारहित महाविकरालरूप देखा अर भृकुटि चढ़ी महा भयंकर मानों काल के धनुष ही हैं। श्रीराम लक्ष्मण लंका की दिशा, क्रोध के भरे लाल नेत्रकर चौंके मानों राक्षसनि के क्षय करने के कारण ही हैं।

बहुरि वही दृष्टि धनुष की ओर धरी। अर दोनों भाइयों का मुख महा क्रोधरूप होय गया। कोप कर मंडित भये, सिर के केश ढीले होय गये मानों कमल के स्वरूप ही हैं, जगतकूं तामसरूप तमकर व्याप्त किया चाहे हैं – ऐसा दोऊनि का मुख ज्योति के मंडल मध्य देख सब विद्याधर गमनकूं उद्यमी भए। संभ्रमरूप है चित्त जिनका, राघव का अभिप्राय जानकर सुग्रीव हनुमानादि सर्व नाना प्रकार के आयुध अर सम्पदा कर मंडित चलवेकूं उद्यमी भए। राम लक्ष्मण दोनों भाइनि के प्रयाण होने के वादित्रनि से समूह के नादकर पूरित हैं दशोंदिशा सो मार्गसिर वदी पंचमी के दिन सूर्य उदय के समय महा उत्साह सहित भले भले शकुन भए। ता समय प्रयाण करते भए।

कहा कहा शकुन भए कहिए हैं – निर्धूम अग्नि की ज्वाला दक्षिणावर्त देखी, अर मनोहर शब्द करते मोर, अर वस्त्राभूषण संयुक्त सौभाग्यवती नारी, सुगन्ध पवन, निर्ग्रंथ मुनि, छत्र, तुरंगों का गम्भीर हींसना, घटा का शब्द, दही का भरा कलश, काग पांख फैलाए मधुर शब्द करता, भेरी अर शंख का शब्द, अर तिहारी जय होवे सिद्धि होवे नन्दो बर्धो ऐसे वचन इत्यादि शुभ शकुन भए। राजा सुग्रीव श्रीराम के संग चलवेकूं उद्यमी भए। सुग्रीव के ठौर ठौर सुविद्याधरों के समूह आए। कैसा है सुग्रीव? शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा समान है प्रकाश जाका। नाना प्रकार के विमान, नाना प्रकार की ध्वजा, नाना प्रकार के वाहन, नाना प्रकार के आयुध उन सहित बड़े बड़े विद्याधर आकाशविषै जाते शोभते भए।

राजा सुग्रीव, हनुमान, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण, कुमुद इत्यादि अनेक राजा श्रीराम के लार भए। तिनके ध्वजावों पर देदीप्यमान रत्नमई वानरों के चिह्न मानों आकाश के ग्रसवेकूं प्रवरते हैं। अर विराधित की ध्वजा पर नाहर का चिह्न नीझरने समान दैदीप्यमान, अर जांबू की ध्वजा पर वृक्ष, अर सिंहरव की ध्वजा में व्याघ्र, अर मेघकांत की ध्वजा में हाथी का चिह्न इत्यादि राजानि की ध्वजा में नाना प्रकार के चिह्न। इनमें भूतनाद महातेजस्वी लोकपाल समान सो फौज का अग्रसर भया। अर लोकपाल समान हनुमान भूतनाद के पीछे, सामंतनि के चक्र सहित परम तेजकूं धरे लंका पर चढ़े। सो अति हर्ष के भरे शोभते भए। जैसे पूर्व रावण के बड़े सुकेशी के पुत्र माली लंका पर चढ़े हुते, अर अमल किया हुता तैसे।

श्रीराम के सन्मुख विराधित बैठा, अर पीछे जामवंत बैठा, बाईं भुजा सुषेण बैठा, दाहिनी भुजा सुग्रीव बैठा, सो एक निमिष में बेलंधरपुर पहुंचे। तहां का समुद्रनामा राजा सो उसके अर नल के परम युद्ध भया। सो समुद्र के बहुत लोक मारे गए। अर नल ने समुद्र को बांधा बहुरि श्रीराम से मिलाया। अर तहां ही डेरा भए। श्रीराम ने समुद्र पर कृपा करी, ताका राज्य ताको दिया। सो राजा ने अति हर्षित होय अपनी कन्या सत्यश्री, कमला, गुणमाला, रत्नचूड़ा, स्त्रियों के गुणकर

मंडित देवांगना समान सो लक्ष्मण से परणाई। तहां एकरात्रि रहे। बहुरि यहां से प्रयाण कर सुवेल पर्वत पर सुवेल नगर गए। वहां राजा सुवेल नाम विद्याधर, ताकूं संग्राम में जीत राम के अनुचर विद्याधर क्रीड़ा करते भए, जैसे नन्दनवनविषै देव क्रीड़ा करे। तहां अक्षय नाम वन में आनन्द से रात्रि पूर्ण करि।

बहुरि प्रयाणकर लंका जायवेकूं उद्यमी भए। कैसी है लंका? ऊंचे कोट से युक्त, सुवर्ण के मन्दिरनिकर पूर्ण, कैलाश के शिखर समान है आकार जिनके, अर नाना प्रकार के रत्ननि के उद्योतकर प्रकाशरूप, अर कमलनि के जे बन तिनसे युक्त, वापीकूप सरोवरादिक कर शोभित, नाना प्रकार रत्नों के ऊंचे जे चैत्यालय तिनकर मण्डित, महापवित्र इन्द्र की नगरीसमान। ऐसी लंकाकूं दूरतैं देखकर समस्त विद्याधर राम के अनुचर आश्चर्यकूं प्राप्त भए, अर हंसद्वीपविषै डेरे किये। तहां हंसपुर नगर, राजा हंसरथ, ताहि युद्धविषै जीत, हंसपुर में क्रीड़ा करते भए। तहांतैं भामण्डल पर बहुरि दूत भेजा, अर भामंडल के आयवै की वांछा कर तहां निवास किया। जा जा देश में पुण्याधिकारी गमन करैं तहां तहां शत्रुनि को जीत, महाभोग उपभोग को भजें।

इन पुण्याधिकारी उद्यमवंतों से कोई परे नाहीं है। सब आज्ञाकारी हैं। जो जो उनके मन में अभिलाषा होय सो सब इनकी मूठी में है। तातैं सर्व उपायकर त्रैलोक्य में सार ऐसा जो जिनराज का धर्म सो प्रशंसा योग्य है। जो कोई जगजीत भया चाहै वह जिनधर्मकूं आराधो। ये भोग क्षणभंगुर हैं। इनकी कहा बात? यह वीतराग का धर्म निर्वाण देनेहारा है। अर कोई जन्म लेय तो इन्द्र चक्रवर्त्यादिक पद का देनहारा है। ता धर्म के प्रभावतैं ये भव्य जीव सूर्य से अधिक प्रकाश को धरै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मण लंकागमन वर्णन करने वाला चौवनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।54।।

अथानन्तर राम का कटक समीप आया जान प्रलयकाल के तरंग समान लंका क्षोभकूं प्राप्त भई। अर रावण कोपरूप भया, अर सामन्त लोक रणकथा करते भए। जैसा समुद्र का शब्द होय तैसे वादित्रनि के नाद भए। सर्व दिशा शब्दायमान भई। अर रणभेरी के नादतैं सुभट महाहर्षकूं प्राप्त भए। सब साजबाज सज स्वामी के हित स्वामी के निकट आए। तिनके नाम मारीच, अमलचन्द, भास्कर, सिंहप्रभ, हस्त, प्रहस्त इत्यादि अनेक योधा आयुधनिकरि पूर्ण स्वामी के समीप आए।

अथानन्तर लंकापति महायोधा संग्राम के निमित्त उद्यमी भया। तब विभीषण रावण पै आए। प्रणामकर शास्त्रमार्ग के अनुसार अति प्रशंसायोग्य, सबकूं सुखदाई आगामी काल में कल्याणरूप,

वर्तमान कल्याणरूप, ऐसे वचन विभीषण रावण से कहता भया। कैसा है विभीषण? शास्त्रविषै प्रवीण, महा चतुर, नय प्रमाण का वेत्ता, भाई को शान्त वचन कहता भया – हे प्रभो! तिहारी कीर्ति कुन्द के पुष्प समान उज्ज्वल, महाविस्तीर्ण, महाश्रेष्ठ, इन्द्र समान पृथ्वी पर विस्तार रही है, सो परस्त्री के निमित्त यह कीर्ति क्षणमात्र में क्षय होयगी, जैसे सांझ के बादल की रेखा। तातैं हे स्वामी! हे परमेश्वर! हम पर प्रसन्न होवो। शीघ्र ही सीताकूं राम के समीप पठावो। यामें दोष नाहीं, केवल गुण ही है। सुखरूप समुद्र में आप निश्चय तिष्ठो। हे विचक्षण! जे न्यायरूप महाभोग हैं वे सब तुम्हारे स्वाधीन हैं। अर श्रीराम यहां आए हैं सो बड़े पुरुष हैं, तिहारे तुल्य हैं, सो जानकी तिनकूं पठाय देवहु। सर्व प्रकार अपनी वस्तु ही प्रशंसा योग्य है। परवस्तु प्रशंसा योग्य नाहीं।

यह वचन विभीषण के सुन इन्द्रजीत रावण का पुत्र पिता के चित्त की वृत्ति जान विभीषणकूं कहता भया। अत्यन्त मान का भरा, अर जिनशासन से विमुख है। साधो! तुमकूं कौन ने पूछा, अर कौन ने अधिकार दिया जाकरि या भांति उन्मत्त की नाईं वचन कहो हो? तुम अत्यन्त कायर हो, अर दीन लोकनि की नाईं युद्ध से डरो हो अपने घर के विवर में बैठो? कहा ऐसी बातनिकर, ऐसा दुर्लभ स्त्रीरत्न पायकर मूढ़ों की न्याईं कौन तजै? तुम काहेकूं वृथा वचन कहो? जा स्त्री के अर्थ सुभट पुरुष संग्रामविषै तीक्ष्ण खड्ग की धारा करि महाशत्रुनिकूं जीत कर वीर लक्ष्मी भुजानिकरि उपार्जे हैं तिनके कायरता कहा?

कैसा है संग्राम? मानों हाथिनि के समूह से जहां अंधकार होय रहा है। अर नाना प्रकार के शस्त्रनि के समूह चलै हैं, जहां अति भयानक है। यह वचन इन्द्रजीत के सुनकर इन्द्रजीतकूं तिरस्कार करता संता विभीषण बोला – रे पापी! अन्यायमार्गी! कहा तू पुत्रनामा शत्रु है? तोकूं शीत वायु उपजी है, अपना हित नाहीं जानै है, शीतवायु की पीड़ा अर उपाय छांड़ शीतल जलविषै प्रवेश करै तो अपने प्राण खोवे। अर घरविषै आग लागै अर ता अग्निविषै सूखे ईंधन डारे तो कुशल कहां से होय? अहो! मोहरूप ग्राहकर तू पीड़ित है। तेरी चेष्टा विपरीत है। यह स्वर्णमई लंका जहां देवविमान से अर, लक्ष्मण के तीक्ष्ण वाणों से चूर्ण न होहि जाई, ता पहिले जनकसुता पतिव्रताकूं राम पै पठाय देहु।

सर्वलोक के कल्याण के अर्थ शीघ्र ही सीता को पठाना योग्य है। तेरे बाप कुबुद्धि ने यह सीता नाहीं आनी है। राक्षसरूप सर्पों का बिल जो यह लंका ताविषै विषनाशक जड़ी आनी है। सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण सोई भया क्रोधायमान सिंह, ताहि तुम गज समान निवारवे समर्थ नाहीं। जाके हाथ सागरवर्त धनुष अर आदित्यमुख अमोघवाण अर जिनके भामंडल-सा सहाई सो लोकों से कैसे जीता जाय? अर बड़े विद्याधरनि के अधिपति जिनसे जाय मिले, महेन्द्रमलय,

हनुमान, सुग्रीव, त्रिपुर इत्यादि अनेक राजा और रत्नद्वीप का पति, वेलन्धर का पति, संध्या हर द्वीप, हैहयद्वीप, आकाशतिलक, केलीकिल, दधिवक्र अर महाबलवान विद्या के विभवकरि पूर्ण अनेक विद्याधर आय मिलें। या भांति के कठोर वचन कहता जो विभीषण तापर महाक्रोधायमान होय खड्ग काढ रावण मारवेकूं उद्यमी भया। तब विभीषण भी महाक्रोधरूप के वश होय रावणसूं युद्ध करवेकूं वज्रमई स्तम्भ उपास्या। ये दोनों भाई उग्र तेज के धारक युद्धकूं उद्यमी भए, सो मंत्रियों ने समझाय मने किए। विभीषण अपने घर गया, रावण महिल गया।

बहुरि रावण ने कुम्भकरण इन्द्रजीत को कठोरचित्त होय कहा जो यह विभीषण मेरे अहित में तत्पर है, अर दुरात्मा है, वाहि मेरी नगरी से निकासो। या अनर्थी के रहिवेकरि क्या? मेरा अंग ही मोसे प्रतिकूल होय तो मोहि न रुचै। जो यह लंकाविषै रहै अर मैं याहि न मारूं तो मेरा जीवना नाहीं।

ऐसी वार्ता विभीषण सुनकर कही – मैं हू कहा रत्नश्रवा का पुत्र नाहीं? ऐसा कह लंकातैं निकसा। महासामंतनि सहित तीस अक्षौहिणी दल लेयकर राम पै चाल्या।

तीस अक्षौहिणी केतेक भए ताका वर्णन – छह लाख छप्पन हजार एकसौ हाथी, अर एते ही रथ, अर उगणीसलाख अड़सठ हजार तीन सौ तुरंग, अर बत्तीस लाख अस्सी हजार पांचसौ पयादा। विद्युत्घन, इन्द्रवज्र, इन्द्रप्रचंड, चपल, उडत, एक अशनि, संपातकाल, महाकाल ये विभीषण सम्बन्धी परम सामंत अपने कुटुम्ब अर सब समुदाय सहित, नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि मंडित, राम की सेना की तरफ चाले।

नाना प्रकार के वाहननिकर युक्त आकाशकूं आच्छादित कर सर्व परिवार सहित विभीषण हंसद्वीप आया। सो उस द्वीप के समीप मनोग्यस्थल देख जल के तीर सेनासहित तिष्ठा, जैसे नन्दीश्वर द्वीप के विषै देव तिष्ठे। विभीषणकूं आया सुन वानरवंशनि की सेना कम्पायमान भई जैसे शीतकालविषै दलिद्री कांपै। लक्ष्मण ने सागरावर्त धनुष अर सूर्यहास खड्ग की तरफ दृष्टि धरी। अर राम ने वज्रावर्त धनुष हाथ लिया। अर सब मंत्री भेले होय मंत्र करते भए। जैसे सिंह से गज डरे तैसे विभीषण से वानरवंशी डरे।

ताही समय विभीषण ने श्रीराम के निकट विचक्षण द्वारपाल भेजा। सो राम पै आय नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया – हे देव! इन दोनों भाईनिविषै जबते रावण सीता लाया तब ही से विरोध पड़ा, अर आज सर्वथा बिगड़ गई। तातैं आप के पांयन आया है, आपके चरणारविंदकूं नमस्कार पूर्वक विनती करै है। कैसा है विभीषण? धर्मकार्यविषै उद्यमी है। यह प्रार्थना करी है कि आप शरणागत प्रतिपाल हो, मैं तिहारा भक्त शरणे आया हूं, जो आज्ञा होय सो ही करूं? आप कृपा करने योग्य हैं। यह द्वारपाल के वचन सुन राम ने मंत्रीनिसूं मंत्र किया।

तब राम ने सुमतिकांत मंत्री कहता भया कदाचित् कोई बात कर आपस में कलुष होय बहुरि मिलि जांय। कुल अर जल इनके मिलने का अचरज नाहीं। तब महाबुद्धिवान मतिसमुद्र बोला – इनमें विरोध तो भया, यह बात सबसे सुनिए है। अर विभीषण महा धर्मात्मा नीतिवान है, शास्त्ररूप जलकर धोया है चित्त जाका, महा दयावान है, दीन लोकनि पर अनुग्रह करै है, अर मित्रनि में दृढ़ है। अर भाईपने की बात कहो सो भाईपने का कारण नाहीं, कर्म का उदय जीवनि के जुदा जुदा होय है। इन कर्मनि के प्रभावकर या जगतविषै जीवनि की विचित्रता है।

या प्रस्तावविषै एक कथा है सो सुनहु – एक गिरि एक गौभूत ये दोऊ भाई ब्राह्मण हुते। सो एक राजा सूर्यमेघ हुता। ताके राणी मतिक्रिया, ताने दोनोंकूं पुण्य की वांछाकर भात में छिपाय सुवर्ण दिया। सो गिरिकपटी ने भातविषै स्वर्ण जान गोभूतकूं छलकर मार्‍या दोनों का स्वर्ण हर लिया। सो लोभ से प्रीतिभंग होय है।

और भी कथा सुनो – कौशांबी नगरीविषै एक वृहद्धन नामा गृहस्थी, ताके पुरविदा नामा स्त्री, ताके पुत्र अहिदेव महीदेव। सो इनका पिता मूवा तब ये दोऊ भाई धन के उपारजने निमित्त समुद्र में जहाज में बैठ गए। सो सर्वद्रव्य देय एक रत्न मोल लिया। सो वह रत्नकूं जो भाई हाथ में लेय ताके भाव होंय कि मैं दूजे भाईकूं मारूं। सो परस्पर दोऊ भाईनि के खोटे भाव भए। तब घर आये वह रत्न माताकूं सौंपा। सो माता के ये भाव भए कि दोऊ पुत्रनिकूं विष देय मारूं। तब माता अर दोनों भाइयों ने वा रत्न से विरक्त होय कालिन्दी नदी में डारा। सो रत्नकूं मछली निगल गई। सो मछलीकूं धीवर ने पकरी, अर अहिदेव महीदेव ही के बेची सो अहिदेव महीदेव की बहिन मछलीकूं विदारती हुती सो रत्न निकस्या। याहू के ये भाव भए कि माताकूं और दोऊ भाइनिकूं मारूं। तब याने सकल वृत्तांत कह्या कि या रत्न के योग से मेरे ऐसे भाव होय हैं जो तुमकूं मारूं। तब रत्नकूं चूर डार्‍या। माता बहिन अर दोऊ भाई संसार के भाव से विरक्त होय जिनदीक्षा धरते भए। तातैं द्रव्य के लोभकर भाइनि में बैर होय है, अर ज्ञान के उदयकर बैर मिटै है। अर गिरि ने तो लोभ के उदय से गोभूतकूं मार्‍या। अर अहिदेव के महिदेव के वैर मिट गया। सो महाबुद्धि विभीषण का द्वारपाल आया है ताकूं मधुर वचनकर विभीषणकूं बुलाओ।

तब द्वारपालसों स्नेह जताया अर विभीषणकूं अति आदरसूं बुलाया। विभीषण राम के समीप आया। सो राम विभीषण का अति आदरकर मिले। विभीषण विनती करता भया –

हे देव! हे प्रभो! निश्चयकर मेरे इस जन्मविषै तुम ही प्रभु हो। श्रीजिननाथ तो या भव पर भव के स्वामी, अर रघुनाथ या लोक के स्वामी। या भांति प्रतिज्ञा करी। तब श्रीराम कहते भये तुझे नि:संदेह लंका का धनी करूंगा। सेना में विभीषण के आवने का उत्साह भया। अर ताही

समय भामंडल भी आया। कैसा है भामण्डल? अनेक विद्या सिद्ध भई हैं जाकूं। सर्व विजियार्ध का अधिपति जब भामण्डल आया तब राम लक्ष्मण आदि सकल हर्षित भए। भामण्डल का अति सन्मान किया। आठ दिन हंसद्वीपविषै रहे।

बहुरि लंकाकूं सन्मुख भए। नाना प्रकार के अनेक रथ, अर पवन से भी अधिक तेजकूं घरें बहुत तुरंग, अर मेघमाला-से गयदों के समूह, अर अनेक सुभटनि सहित श्रीराम ने लंकाकूं पयान किया समस्त विद्याधर सामंत आकाशकूं आच्छादते हुते राम के संग चाले। सब में अग्रेसर वानरवंशी भए। जहां रणक्षेत्र थापा है तहां गए। संग्रामभूमि बीस योजन चौड़ी है, अर लम्बाई का विस्तार विशेष है। वह युद्धभूमि मानों मृत्यु की भूमि है। या सेना के हाथी गाजे अर अश्व हींसे। अर विद्याधरनि के वाहन सिंह हैं तिनके शब्द हुए, अर वादित्र बाजे। तब सुनकर रावण अति हर्षकूं प्राप्त भया। मनविषै विचारी बहुत दिननि में मेरे रण का उत्साह भया, समस्त सामन्तनिकूं आज्ञा दई जो युद्ध के उद्यमी होवो। सो समस्त ही सामंत आज्ञा प्रमाण आनन्दकर युद्धकूं उद्यमी भए। कैसा है रावण? युद्धविषै है हर्ष जाकूं, जाने कबहु सामंतनिकूं अप्रसन्न न किया, सदा प्रसन्न ही राखे। सो अब युद्ध के समय सब ही एकचित्त भए।

भास्कर नामा पुर तथा पयोरपुर, कांचनपुर, ब्योम, वल्लभपुर, गंधर्वगीतपुर, शिवमंदिर, कंपतपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभासिंहपुर, सत्यगीतपुर, लक्ष्मीगतिपुर, किन्नरपुर, बहुनागपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, स्वर्णपुर, सीमंतपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगृहपुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुंजयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तंडप्रभपुर, विशालपुर, ज्योतिदंडपुर, परिष्योधपुर, अश्वपुर, रत्नपुर इत्यादि अनेक नगरों के स्वामी बड़े बड़े विद्याधर मंत्रिनिसहित महा प्रीति के भरे रावण पै आए। सो रावण राजावों का सम्मान करता भया, जैसे इन्द्र देवनि का करै है। शस्त्र वाहन वक्तर आदि युद्ध की सामग्री सब राजावोंकूं देता भया। चार हजार अक्षौहिणी रावण के होती भईं अर दो हजार अक्षौहिणी राम के होती भईं, सो कौन भांति? हजार अक्षौहणीदल तो भामंडल का अर हजार सुग्रीवादि का। या भांति सुग्रीव अर भामंडल का ये दोऊ मुख्य अपने मंत्रीनि सहित तिनसों मंत्रकर राम लक्ष्मण युद्धकूं उद्यमी भए। अनेक वंश के उपजे, अनेक आचरण के धरणहारे, नाना जातिनि से युक्त, नाना प्रकार गुण क्रियासूं प्रसिद्ध नाना प्रकार भाषा के बोलनहारे विद्याधर श्रीराम रावण पै भेले भए।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! पुण्य के प्रभावकरि मोटे पुरुषनि के बैरी भी अपने मित्र होय हैं, अर पुण्यहीनों के चिरकाल के सेवक अर अतिविश्वास के भाजन ते भी विनाशकाल में शत्रुरूप होय परणवै हैं। या असार संसारविषै जीवनि की विचित्रगति जानकर यह

चिंतवन करना है कि मेरे भाई सदा सुखदाई नाहीं, तथा मित्र बांधव सब ही सुखदाई नाहीं। कबहु मित्र शत्रु हो जाय, कबहु शत्रु मित्र हो जाय। ऐसे विवेकरूप सूर्य के उदय से उरविषै प्रकाश कर बुद्धिवंतों को सदा धर्म ही चिंतवना।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै विभीषण का रामसूं मिलाप अर भामण्डल का आगमन वर्णन करने वाला पचपनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।55।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीकूं पूछता भया – हे प्रभो! अक्षौहिणी का परिमाण आप कहो।

तब गौतम का दूजा नाम इन्द्रभूत है सो इन्द्रभूति कहते भए – हे मगधाधिपति! अक्षौहिणी का प्रमाण तोहि संक्षेप से कहै हैं सो सुन। आगमविषै आठ भेद कहे हैं ते सुन।

प्रथम भेद पत्ति, दूजा भेद सेना, तीजा भेद सेनामुख, चौथा गुल्म, पांचवां वाहिनी, छठा पृतना, सातवां चमू, आठवां अनीकिनी। सो अब इनके यथार्थ भेद सुन। एक रथ, एक गज, पांच पयादे, तीन तुरंग, इसका नाम पत्ति है। अर तीन रथ, तीन गज, पन्द्रह पयादे, नव तुरंग, याकूं सेना कहिए। अर नव रथ, नव गज, पैंतालीस पयादा, सत्ताइस तुरंग, याहि सेनामुख कहिए। अर सत्ताइस रथ, सत्ताइस गज, एक सौ पैंतीस पयादा, इक्कासी अश्व इसे गुल्म कहिए।

अर इक्यासी रथ, इक्यासी गज, चारसै पांच पयादे, दोसौ तैंतालीस अश्व, इसे वाहिनी कहिए। अर दोयसौ तियालिस रथ, दोयसौ तियालिस गज, बारासौ पन्द्रह पयादे, सात सौ उनतीस घोड़े, याहि पृतना कहिए। अर सातसौं गुणतीस रथ, सातसैं गुणतीस गज, छत्तीछसै पैंतालीस पयादे, इक्कीससौ सतासी तुरंग इसे चमू कहिए। अर इक्कीससै सतासी रथ, इक्कीससै सत्तासी गज, दश हजार नौसै पैंतीस पयादे अर पैंसठसौ इकसठ तुरंग, इसे अनीकिनी कहिए। सो पत्ति से लेय अनीकिनी तक आठ भेद भए। सो यहालों तो तिगुने तिगुने बढ़े अर दश अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होय है, ताका वर्णन – रथ इक्कीस हजार आठसौ सत्तर, अर गज इक्कीस हजार आठसौ सत्तर, पयारे एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास, अर घोड़े पैंसठ हजार छहसौ दश, यह एक अक्षौहिणी का प्रमाण भया।

ऐसी चार हजार अक्षौहिणी कर युक्त जो रावण, ताहि अति बलवान जानकर भी किहकन्धापुर स्वामी सुग्रीव की सेना श्रीराम के प्रसादसूं निर्भय रावण के सन्मुख होती भई। श्रीराम की सेनाकूं अतिनिकट आए हुए, नाना पक्षकूं धरैं जो लोक सो परस्पर या भांति वार्ता करते भए – देखो रावणरूप चन्द्रमा विमानरूप जे नक्षत्र तिनके समूह का स्वामी, अर शास्त्र में प्रवीण, सो परस्त्री

की इच्छा रूप जे बादल तिनसूं आच्छादित भया है। जिसके महाकांति की धरणहारी अठारह हजार राणी, तिनसे तो तृप्त न भया अर देखहु एक सीता के अर्थ शोककरि व्याप्त भया है। अब देखिये राक्षसवंशी अर वानरवंशी इनमें कौन का क्षय होय। राम की सेना में पवन का पुत्र हनुमान, महा भयंकर देदीप्यमान, जो शूरता सोई भई उष्णकिरण उनसे सूर्य तुल्य है।

या भांति कई एक तो राम के पक्ष के योधावों के यश वर्णन करते भए। अर कई एक समुद्र से भी अतिगम्भीर जो रावण की सेना ताका वर्णन करते भये। अर कई एक जो दण्डकवन में खरदूषण का अर लक्ष्मण का युद्ध भया था उसका वर्णन करते भये, अर कहते भए – चन्द्रोदय का पुत्र विराधित सो है शरीर तुल्य जिनके, ऐसे लक्ष्मण तिनने खरदूषण हत्या, अतिबल के स्वामी लक्ष्मण तिनका बल क्या तुमने न जान्या? कई एक ऐसे कहते भए। अर कई एक कहते भए कि राम लक्ष्मण की क्या बात? वे तो बड़े पुरुष हैं। एक हनुमान ने केते काम किए, मन्दोदरी का तिरस्कार कर सीताकूं धीर्य बंधाया, अर रावण की सेना जीत लंका में विघ्न किया, कोट दरवाजे ढाहे। या भांति नाना प्रकार के वचन कहते भए।

तब एक सुवक्रनामा विद्याधर हंसकर कहता भया कि कहां समुद्र समान रावण की सेना और कहां गाय के खोज समान वानरवंशियों का बल? जो रावण इन्द्रकूं पकड़ लाया और सबों का जीतनहारा सो वानरवंशियों से कैसे जीता जाय? सर्व तेजस्वियों के सिर पर तिष्ठे हैं, मनुष्यनि में चक्रवर्ती के नामकूं सुनै कौन धीर्य धरै? अर जिसके भाई कुम्भकरण महाबलवान त्रिशूल का धारक युद्ध में प्रलयकाल की अग्नि समान भासै है सो जगत् में प्रबल पराक्रम का धारक कौनकरि जीता जाय? चन्द्रमासमान जाके छत्रकूं देखकर शत्रुओं का सेनारूप अंधकार नाशकूं प्राप्त होय है – सो उदार तेज का धनी उसके आगे कौन ठहर सकै। जो जीतव्य की बांछा तजै सो ही उसके सन्मुख होय। या भांति अनेक प्रकार के रागद्वेषरूप वचन सेना के लोग परस्पर कहते भए। दोनों सेना में नाना प्रकार की वार्ता लोकनि के मुख होती भई। जीवनि के भाव नाना प्रकार के हैं, रागद्वेष के प्रभाव से जीव निजकर्म उपार्जे हैं। सो जैसा उदय होय है तैसे ही कार्य में प्रवृत्ते हैं। जैसे सूर्य का उदय उद्यमी जीवों को नाना कार्य में प्रवृत्तावै है तैसे कर्म का उदय जीवनि के नाना प्रकार के भाव उपजावे हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै दोऊ कटकनि की संख्या का प्रमाण वर्णन करने वाला छप्पनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।56।।

अथानन्तर पर सेना के समीपकूं न सह सकै ऐसे मनुष्य, वे शूरापने के प्रकट होनेकरि अति प्रसन्न होय, लडवेकूं उद्यमी भए। योधा अपने घरों से विदा होय सिंह सारिखे लंका से निकसे।

कोई एक सुभट की नारी रणसंग्राम का वृत्तांत जान अपने भरतार के उर से लग ऐसे कहती भई – हे नाथ! तिहारे कुल की यही रीति है जो रणसंग्राम से पीछे न होंय। अर जो कदाचित् तुम युद्धतैं पीछे होवोगे तो मैं सुनते ही प्राणत्याग करूंगी। योधाओं के किंकरों की स्त्रियें कायरों की स्त्रियों को धिक्कार शब्द कहें – या समान और कष्ट क्या। जो तुम छाती घाव खाय भले दिखाय पीछे आवोगे तो घाव ही आभूषण हैं। अर टूट गया है वक्तर, अर करै हैं अनेक योधा स्तुति, या भांति तुमकूं मैं देखूंगी तो अपना जन्म धन्य गिनूंगी। अर सुवर्ण के कमलनिसों जिनेश्वर की पूजा कराऊंगी। जे महायोधा रण में सन्मुख होय मरणकूं प्राप्त होंय तिनका ही मरण धन्य है। अर जे युद्ध में पराङ्मुख होय, धिक्कार शब्द से मलिन भये जीवै हैं, तिनके जीवने से क्या?

अर कोईयक सुभटानी पति से लिपट या भांति कहती भई जो तुम भले दिखाय कर आवोगे तो हमारे पति हो, अर भागकर आवोगे तो हमारे तुम्हारे सम्बन्ध नाहीं। अर कोईइक स्त्री पतिसूं कहती भई – हे प्रभो! तिहारे पुराने घाव अब विघट गए, इसलिए नवे घाव लगे शरीर अति शोभै। वह दिन होय जो तुम वीरलक्ष्मी के वर प्रफुल्लित वदन हमारे आवो, अर हम तुमकूं हर्षसंयुक्त देखें। तुम्हारी हार हम क्रीड़ा में भी न देख सकें तो युद्ध में हार कैसे देख सकें? अर कोईयक कहती भई कि हे देव! जैसे हम प्रेमकर तिहारा वदन कमल स्पर्श करै हैं तैसे वक्षस्थल में लगे घाव हम देखें तब अति हर्ष पावै। और कई एक रोताणी अति नवोढा हैं परन्तु संग्राम में पतिकूं उद्यमी देख प्रौढ़ा के भावकूं प्राप्त भई।

अर कोईयक मानवती घने दिननिसूं मान कर रही थी सो पतिकूं रण में उद्यमी जान मान तज पति के गले लागी, अर अति स्नेह जमाया, रण योग्य शिक्षा देती भई। और कोईयक कमलनयनी भरतार के वदनकूं ऊंचाकर स्नेह की दृष्टि कर देखती भई, अर युद्ध में दृढ़ करती भईं। अर कई एक सामंतनी पति के वक्षस्थल में अपने नख का चिह्न कर होनहार शस्त्रों के घावनकूं मानों स्थानक करती भईं। या भांति उपजी है चेष्टा जिनके, ऐसी राणी रौताणी अपने प्रीतमों से नाना प्रकार के स्नेह कर वीर रस में दृढ़ करती भईं। तब महासंग्राम के करणहारे योधा तिनसूं कहते भए – हे प्राणवल्लभे! नर वेई हैं जे रण में प्रशंसा पावैं तथा युद्ध के सन्मुख जीव तजैं, तिनकी शत्रु कीर्ति करें। हाथिनि के दांतनि में पग देय शत्रुवों के घावकर तिनकी शत्रु कीर्ति करैं। पुण्य के उदयविना ऐसा सुभटपना नाहीं। हाथियों के कुम्भस्थल विदारणहारे नरसिंह तिनकूं जो हर्ष होय है सो कहिवेकूं कौन समर्थ है? हे प्राणप्रिये! क्षत्री का यही धर्म है जो कायरनिकूं न मारे, शरणागतकूं न मारै, न मारिवे देय, जो पीठ देय उस पर चोट न करै, जिसपै आयुध न होय वासों युद्ध न करैं। सो बाल वृद्ध दीनकूं तज हम योधाओं के मस्तक पर पड़ेंगे। तुम हर्षित रहियो। हम युद्ध में

विजयकर तुमसे आय मिलेंगे। या भांति अनेक वचन कर अपनी अपनी रौताणियों को धीर्य बंधाय योधा संग्राम के उद्यमी घर से रणभूमिकूं निकसे।

कोई एक सुभटानी चलते पति के कंठ में दोनों भुजा से लिपट गई अर हींदती भई, जैसे गजेन्द्र के कंठ में कमलनी लटके। अर कोईयक रौताणी वक्तर पहिरे पति के अंग से लग, अंग का स्पर्श न पाया सो खेद खिन्न होती भई। अर कोईयक अर्द्धबाहुलिका कहिए पेटी, सो वल्लभ के अंग से लगी देख ईर्षा के रस से स्पर्श करती भई कि हम टार दूजी इनके उर से कौन लगे। यह जान लोचन संकोचे। तब पति प्रियाकूं अप्रसन्न जान कहते भए - हे प्रिये! मह आधा वक्तर है स्त्री बाची शब्द नाहीं। तब पुरुष का शब्द सुन हर्षकूं प्राप्त भई। कोईयक अपने पतिकूं ताम्बूल चबावती भईं, अर आप ताम्बूल चाबती भईं। कोईयक पति ने रुखसत करी तौ भी केतीक दूर पति के पीछे पीछे जाती भईं। पति के रण की अभिलाषा सो इनकी ओर निहारें नाहीं, अर रण की भेरी बाजी सो योधावों का चित्त रणभूमि में, अर स्त्रीनि से विदा होना, सो दोनों कारण पाय योधावों का चित्त मानों हिंडोले हींदता भया। रौतानियों को तज रावत चले तिन रौतानियों ने आंसू न डारे। आंसू अमंगल हैं।

अर कईयक योधा युद्ध में जायवे की शीघ्रताकर वक्तर भी न पहिर सके। जो हथियार हाथ आया सो ही लेकर गर्व के भरे निकसे। रणभेरी सुन उपजा है हर्ष जिनकूं, शरीर पुष्ट होय गया सो वक्तर अंग में न आवे। अर कईयक योधावों के रणभेरी का शब्द सुन हर्ष उपजा सो पुराने घाव फट गए तिनमें सूं रुधिर निकसता भया। अर किसी ने नवा वक्तर बनाय पहिरा सो हर्ष के होने से टूट गया सो मानों नया वक्तर पुराने वक्तर के भावकूं प्राप्त भया। अर काहूके सिर का टोप ढीला होय गया सो प्राणवल्लभा दृढ़ कर देती भई। अर कोईयक सुभट संग्राम का लालसी उसके स्त्री सुगन्ध लगायबे की अभिलाषा करती भई सो सुगन्धमैं चित्त न दिया, युद्धकूं निकसा। अर वे स्त्रियां व्याकुलतारूप अपनी अपनी सेज पर पड़ रहीं।

प्रथम ही लंका से हस्त प्रहस्त राजा युद्धकूं निकसे। कैसे हैं दोनों? सर्व में मुख्य जो कीर्ति, सोई भया अमृत, उसके आस्वाद में लालसी और हाथियों के रथ पर चढ़े, नहीं सह सके हैं वैरियों का शब्द, अर महाप्रताप के धारक, शूरवीर, सो रावणकूं विना पूछे ही निकसे। यद्यपि स्वामी की आज्ञा करी बिना कार्य करना दोष है तथापि धनी के कार्यकूं बिना आज्ञा जाय तो दोष नाहीं, गुण के भावकूं भजै है। मारीच, सिंह, जघन्य, स्वयंभू, शम्भू, प्रथम विस्तीर्ण बल से मंडित शुक, अर सारस, चांद सूर्यसारिखे गज, अर वीभत्स तथा वज्राक्ष वज्रभूति गम्भीरनाद नक्र मकर वज्रघोष उग्रनाद सुन्द निकुम्भ कुम्भ संध्याक्ष विभ्रमक्रूर माल्यवान खर निश्चर जम्बूस्वामी शिखीवीर उर्द्धक

महाबल यह सामन्त नाहरनि के रथ चढ़े निकसे।

अर वज्रोदर शकप्रभ, कृतांत, विघटोघर, महामणि, असणिघोष, चन्द्र, चंद्रनख, मृत्युभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्ण, महामारीच, कनक, क्रोधनु, क्षोभणद्वंध, उद्दाम, डिंडी, डिंभव, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड, हालाहाल इत्यादि अनेक राजा व्याघ्रों के रथ चढ़े निकसे। वह कहे मैं आगे रहूं, वह कहे मैं आगे रहूं, शत्रु के विध्वंस करनेकूं है प्रवृत्त बुद्धि जिनकी। विद्या कौशिक, विद्याविख्यात, सर्पवाहू, महाद्युति, शंख, प्रशंख, राजभिन्न, अंजनप्रभ, पुष्पक्रूर, महारक्त घटाश्र, पुष्पखेचर, अनंगकुसुम, कामवर्त्त, स्मरायण कामाग्नि कामराशि कनकप्रभ शशिमुख सौम्यवक्र महाकाम हैमगौर यह पवन सारिखे तेज तुरंगनि के रथ चढ़े निकसे। अर कदम्ब विटप भीमनाद भयानाद भयानक शार्दूल सिंह वलांग विद्युदंग ल्हादन चपल चाल चंचल इत्यादि हाथीनि के रथ चढ़े निकसे।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे मगधाधिपति! कहां लग सामंतों के नाम कहे? सबमें अग्रेसर अढ़ाई कोडि निर्मलवंश के उपजे राक्षसनि के कुमार देवकुमार तुल्य पराक्रमी, प्रसिद्ध है यश जिनके, सकल गुणनि के मंडन, युद्धकूं निकसे। महाबलवान मेघवाहन कुमार इन्द्र के समान रावण का पुत्र अतिप्रिय इन्द्रजीत सो भी निकसा। जयंतसमान धीरबुद्धि कुम्भकर्ण सूर्य के विमान तुल्य ज्योतिप्रभव नामा विमान उसमें आरूढ़ त्रिशूल का आयुध धरे निकसा। अर रावण भी सुमेरु के शिखर तुल्य पुष्पकनाम अपने विमान पर चढ़े इन्द्रतुल्य पराक्रम जिसका, सेनाकर आकाश भूमिकूं आछादित करता हुवा, दैदीप्यमान आयुधनिकूं धरे, सूर्यसमान ज्योति जिसकी, सो भी अनेक सामंतनि सहित लंका से बाहिर निकसा।

वे सामंत शीघ्रगामी बहुरूप के धरणहारे वाहनों पर चढ़े, कई एकनि के रथ, कई एकनि के तुरंग, कई एकनि के हाथी, कई एकनि के सिंह, तथा शूर, सांभर, बलध, भैंसा, उष्ट्र, मीढ़ा, मृग, अष्टापद इत्यादि स्थल के जीव, अर मगरमच्छ आदि अनेक जल के जीव, अर नाना प्रकार के पक्षी तिनका रूप धरे देवरूपी वाहन तिन पर चढ़े अनेक योधा रावण के साथी निकसे। भामंडल अर सुग्रीव पर रावण का अतिक्रोध सो राक्षसवंशी इनसे युद्धकूं उद्यमी भए।

रावणकूं पयान करते अनेक अपशकुन भए तिनका वर्णन सुनो। दाहिनी तरफ शल्यकी कहिए सेह मंडलकूं बांधे भयानक शब्द करते प्रयाण का निवारण करै है। अर गृद्ध पक्षी भयंकर अपशब्द करते आकाश में भ्रमते मानों रावण का क्षय ही कहै हैं। और अन्य भी अनेक अपशकुन भए। स्थल के जीव आकाश के जीव अति व्याकुल भए। क्रूरशब्द करते भए, रुदन करते भए। सो यद्यपि राक्षसनि के समूह सब ही पंडित हैं, शास्त्र का विचार जानै हैं तथापि शूरवीर के गर्व से

मूढ़ भए, महासेना सहित संग्राम के अर्थी निकसे। कर्म के उदय से जीवनि का जब काल आवै है तब अवश्य ऐसा ही कारण होय है। काल को इन्द्र के निवारिवे शक्ति नाहीं औरनिकी क्या बात? वे राक्षसवंशी योधा, बड़े बड़े बलवान युद्ध में दिया है चित्त जिन्होंने, अनेक वाहनों पर चढ़े, नाना प्रकार के आयुध धरै, अनेक अपशकुन भए तो भी न गिने, निर्भय भए राम की सेना के सन्मुख आए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण की सेना लंकातैं निकसि युद्ध के अर्थ आवने का व्याख्यान करने वाला सत्तावनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।57।।

अथानन्तर समुद्रसमान रावण की सेनाकूं देख नल नील हनुमान जाम्बवन्त आदि अनेक विद्याधर राम के हित, राम के कार्यकूं तत्पर, महा उदार, शूरवीर अनेक प्रकार हाथियों के रथ चढ़े कटक से निकसे। जाममित्र, चन्द्रप्रभ, रतिवर्द्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुधर, दृढ़रथ, प्रीतिकंठ, महाबल, समुन्नतबल, सर्वज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, सर्व शरभभर, आभ्रष्टि, निर्विष्ठ, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, बरबरक, कलोट पाटन-मंडल, संग्राम-चपल, इत्यादि विद्याधर नाहरों के रथ चढ़े निकसे। विस्तीर्ण है तेज जिनका, नाना प्रकार के आयुध धरे, अर महासामंतपना का स्वरूप लिए, प्रस्तार, हिमवान, गंगप्रिय, लव इत्यादि सुभट हाथियों के रथ चढ़े निकसे।

दुप्रष्ट, पूर्णचन्द्र, विधिसागर, घोष, प्रियविगृह, स्कंध, चंदन पादा, चन्द्रकिरण, अरप्रतिघात, महाभैरव, कीर्तन, दुष्ट, सिंहकटि, कुष्ट, समाधि, बहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास, संकट-प्रहार ये नाहरनि के रथ चढ़े निकसे। विद्युतकर्ण बलशील सुपक्षरचन, घन, सम्मेद, बिचल, साल, काल, क्षत्रवर, अंगज, विकाल, लोलक, कालि, भंग, भंगोर्मि, उरचित्त, उतरंग, तिलक, कील, सुखेण, चरल करत बलि, भीमरव, धर्म, मनोहर मुख, सुख, प्रमत, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिवभूषण, दूषण, कौल, विघट, विराधित, मनू, रणखनि, शेम वेला, आक्षेपी, महाधर, नक्षत्र लुब्ध, संग्राम-विजय, जय; नक्षत्रमाल क्षोद, अतिविजय, इत्यादि घोड़ों के रथ चढ़े निकसे। कैसे हैं रथ? मनोहर समान शीघ्रवेगकूं धरै। अर विद्युतवाह मरुद्वाह, स्थाणु, मेघवाहन रथियाण, प्रचण्डालि इत्यादि नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़े, युद्ध की श्रद्धाकूं धरै हनुमान के संग निकसे।

अर विभीषण रावण का भाई रत्नप्रभ नामा विमान पर चढ़ा, श्रीराम का पक्षी अति शोभता भया। अर युधावर्त, वसंत, कान्त, कोमुदिनन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित साधुवत्सल, अर्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ जिन, जिनपति इत्यादि योधा नाना वर्ण के विमानों

पर चढ़े महाप्रबल सन्नाह कहिण बखतर पहिरे युद्ध को निकसे। राम लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान ये हंस विमान चढ़े, और आकाशविषै शोभते भए। राम के सुभट महामेघमाला सारिखे नाना प्रकार के वाहन चढ़े लंका के सुभटनिसूं लडवेकूं उद्यमी भए।

प्रलयकाल के मेघसमान भयंकर शब्द, शंख आदि वादित्रनि के शब्द होते भए। झंझा, भेरी, मृदंग, कम्पाल, धुन्धु मंडुक, आमलातक हक्कार दुंदुंकान, उरदर, हेमगुंज, काहल वीणा, इत्यादि अनेक बाजे बाजते भए। अर सिंहों के तथा हाथियों, घोड़ों के, भैंसों के रथों के, ऊंटों मृगों पक्षियों के शब्द होते भए। तिनसे दशोंदिशा व्याप्त भई। जब राम रावण की सेना का संघट्ट भया तब लोक समस्त जीवने के संदेहकूं प्राप्त भए। पृथ्वी कम्पायमान भई, पहाड़ कांपे, योधा गर्व के भरे निगर्व से निकसे। दोनों कटक अति प्रबल, लखिवे न आवै। इन दोनों सेना में युद्ध होने लगा। सामान्य चक्र करोत कुठार, सेल खड्ग गदा शक्ति, बाण, भिंडिमाल इत्यादि अनेक आयुधनिकरि परस्पर युद्ध होता भया। योधा हेलाकर योधाओं को बुलावते भए।

कैसे हैं योधा? शस्त्रों से शोभित हैं भुजा जिनकी, अर युद्धा का है सर्वसाज जिनके, ऐसे योधावों पर पड़ते भए। अतिवेग से दौड़े, पर सेना में प्रवेश करते भए। परस्पर अतियुद्ध भया। लंका के योधावों ने वानरवंशी योधा दबाए जैसे सिंह गजों को दबावै। फिर वानरवंशियों के प्रबल योधा अपने योधावों का भंग देखकर राक्षसों के योधावों को हणते भए अर अपने योधावों को धीर्य बंधाया। वानरवंशियों के आगै लंका के लोकों को चिगते देख बड़े बड़े स्वामीभक्त, रावण के अनुरागी, महाबल से मंडित हाथियों के चिह्न की है ध्वजा जिनके, हाथियों के रथ चढ़े, महायोधा हस्त प्रहस्त वानरवंशियों पर दौड़े, अर अपने लोगों को धीर्य बंधाया – हो सामंत हो! भय मत करो। हस्त प्रहस्त दोनों महा तेजस्वी वानरवंशियों के योधाओं को भगावते भए।

तब वानरवंशियों के नायक महा प्रतापी हाथियों के रथ चढ़े, महा शूरवीर, परम तेज के धारक सुग्रीव के काका के पुत्र, नल नील महा भयंकर क्रोधायमान होय नाना प्रकार के शस्त्रनि के युद्ध करवेकूं उद्यमी भए। अनेक प्रकार के शस्त्रनि से घनी वेर युद्ध भया। दोनों तरफ के अनेक योद्धा मुवे। नल ने उछलकर हस्त को हता अर नील ने प्रहस्तकूं हता। जब यह दोनों पड़े तब राक्षसनि की सेना पराङ्गमुख भई।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं – हे मगधाधिपति! सेना के लोक सेनापतिकूं जबलग देखें तबलग ही ठहरें, अर सेनापति नाश भए सेना बिखर जाय, जैसें माल के टूटे अरहट की घड़ी बिखर जाय, अर सिर बिना शरीर भी न रहै। यद्यपि पुण्याधिकारी बड़े राजा सब बात में पूर्ण हैं तथापि बिना प्रधान कार्य की सिद्धि नाहीं। प्रधान पुरुषनि का सम्बन्ध कर मनवांछित कार्य की

सिद्धि होय है। अर प्रधान पुरुषनि के सम्बन्ध बिना मंदताकूं भजे हैं जैसे राहु के योग से सूर्य को आच्छादित भए किरणों का समूह मन्द होय है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हस्त प्रहस्त का मरण वर्णन करने वाला अठावनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।58।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीसूं पूछता भया – हे प्रभो! हस्त प्रहस्त जैसे सामंत महाविद्या में प्रवीण हुते, बड़ा आश्चर्य है नल नील ने कैसे मारे? इनके पूर्वभव का विरोध है कै याही भव का?

तब गणधर देव कहते भए, हे राजन्! कर्मनिकर बंधे जीव तिनकी नानागति है। पूर्व कर्म के प्रभावकर जीवनि की यही रीति है। जानै जाकूं मारा सो वहहू ताकूं मारनहारा है, अर जाने जाकूं छुड़ाया सो ताका छुड़ावनहारा है। या लोक में यही मर्यादा है।

एक कुशस्थलनामा नगर वहां दोय भाई निर्धन एक माता के पुत्र, इन्धक अर पल्लव ब्राह्मण खेती का कर्म करै, पुत्र स्त्री आदि जिनके कुटुम्ब बहुत, स्वभाव ही से दयावान, साधुनि की निंदातैं पराङ्मुख। सो एक जैनी मित्र के प्रसंगतैं दानादि धर्म के धारक भए। अर एक दूजा निर्धन युगल सो महा निर्दई मिथ्यामार्गी हुते राजा के दान बटा सो विप्रनि में परस्पर कलह भया, सो इंधक पल्लव को इन दुष्टों ने मारा। सो दान के प्रसादतैं भोगभूमि में उपजे, दोय पल्य की आयु पाय मूए सो देव भए। अर वे क्रूर इनके मारणहारे अधर्म परणामनिकर मूवे सो कालिंजर नामा वन में सूस्या भए। मिथ्यादृष्टि साधुनि के निंदक पापी कपटी तिनकी यही गति है। बहुरि तिर्यंचगति में चिरकाल भ्रमण कर मनुष्य भए सो तापसी भए। बढ़ी है जटा जिनके, फल पत्रादि के आहारी, तीव्रतप कर शरीर कृश किया, कुज्ञान के अधिकारी, दोनों मूए सो विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में अरिंजयपुर तहां का राजा अग्निकुमार, राणी अश्विनी, ताके ये दोय पुत्र, जगत प्रसिद्ध रावण के सेनापति भए। अर ते दोऊ भाई इन्धक अर पल्लव देवलोकतैं चयकर मनुष्य भए।

बहुरि श्रावक के व्रतपाल स्वर्ग में उत्तम देव भए। अर स्वर्गतैं चयकर किहकन्धापुरविषै नल नील दोनों भाई भए। पहिले हस्त प्रहस्त के जीव ने नल नील के जीव मारे हुते। सो नल नील ने हस्त प्रहस्त मारे। जो पूर्वभव में काहूकूं मारे है सो ताकर मारा जाय है अर जो काहूकूं पाले है सो ताकर पालिए है। अर जो जासूं उदासीन रहे है सो भी तासूं उदासीन रहे। जाहि देख नि:कारण क्रोध उपजे सो जानिए परभव का शत्रु है, अर जाहि देख चित्त हर्षित होय सो नि:संदेह परभव का मित्र है। जो जलविषै जहाज फट जाय है अर मगर मच्छादि बाधा करै हैं, अर थलविषै म्लेच्छ बाधा करै है सो सब पाप का फल है। पहाड़ समान माते हाथी अर नाना प्रकार के आयुध धरे

अनेक योधा, अर महा तेजकूं धरें अनेक तुरंग, अर वक्तर पहिरे बड़े बड़े सामंत इत्यादि जो अपार सेनासूं युक्त जो राजा अर नि:प्रमाद तौ भी पुण्य के उदय विना युद्ध में शरीर की रक्षा न होय सकै।

अर जहां तहां तिष्ठता, अर जाके कोऊ सहाई नाहीं, ताकी तप अर दान रक्षा करे। न देव सहाई, न बांधव सहाई। अर प्रत्यक्ष देखिए है, धनवान शूरवीर कुटुम्ब का धनी सर्व कुटुम्ब के मध्य मरण करे है कोऊ रक्षा करने समर्थ नाहीं। पात्रदान से व्रत अर शील अर सम्यक्त अर जीवनि की रक्षा होय है। दयादान से जाने धर्म न उपार्जा अर बहुत काल जीया चाहे सो कैसे बने? इन जीवनि के कर्म तप बिना न विनशें। ऐसा जानकर जो पंडित हैं तिनकूं बैरियों पर भी क्षमा करनी। क्षमा समान और तप नाहीं। जे विचक्षण पुरुष हैं वे ऐसी बुद्धि न धरें कि यह दुष्ट बिगाड़ करैं हैं। या जीव का उपकार अर बिगाड़ केवल कर्माधीन है, कर्म ही सुख दु:ख का कारण है।

ऐसा जानकर जे विचक्षण पुरुष हैं ते बाह्य सुख दु:ख के निमित्त कारण अन्य पुरुषनि पर रागद्वेषभाव न धरें। अन्धकार से आच्छादित जो पंथ तामें नेत्रवान पृथ्वी पर पड़े सर्प पर पग धरै अर सूर्य के प्रकाश से मार्ग प्रकट होय तब नेत्रवान सुख से गमन करै। तैसे जौलग मिथ्यारूप अन्धकार से मार्ग नाहीं अवलोके तौलग नरकादि बिवर में पड़े, अर जब ज्ञान सूर्य का उद्योत होय तब सुख से अविनाशीपुर जाय पहुंचे।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हस्त प्रहस्त नल नील के पूर्व भव का वर्णन करने वाला उनसठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।59।।

अथानन्तर हस्त प्रहस्त, नल नील ने हते, सुन बहुत योधा क्रोधकर युद्धकूं उद्यमी भए। मारीच सिंह–जघन शम्भु स्वयंभू, ऊर्जित शुक सारण चन्द्र अर्क जगत्वीभत्स निस्वन ज्वर उग्र क्रमकर वज्राक्ष उद्दाम निष्ठुर गम्भीरनाद संनद संवृद्ध वाहू अनुसिदन इत्यादि राक्षस पक्ष के योद्धा वानरवंशियों की सेना कूं क्षोभ उपजावते भए। तिनकूं प्रबल जान वानरवंशियों के योधा युद्धकूं उद्यमी भए। मदन मदनांकुर संताप प्रक्षित आक्रोश नन्दन दुरित अनघ पुष्पात्र विघ्न प्रियंकर इत्यादि अनेक वानरवंशी योधा राक्षसनि से लड़ते भए। याने वाकूं ऊंचे स्वर से बुलाया, बाने याकूं बुलाया। इनके परस्पर संग्राम भया। नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि आकाश व्याप्त होय गया। संताप तो मारीच से लड़ता भया, अर अप्रथित सिंहज घन से, अर विघ्न उद्याम से, अर आक्रोश सारण से, ज्वर नन्दन से। इन समान योधावों में अद्भुत युद्ध भया। तब मारीच ने संताप का निपात किया, अर नन्दन ने ज्वर के वक्षस्थल में बरछी दई, अर सिंहकटि ने प्रथित के, अर उद्दामकीर्ति ने विघ्नकूं हणा। ता समय सूर्य अस्त भया। अपने अपने पतिकूं प्राणरहित भए सुन इनकी स्त्री शोक के सागर में मग्न भईं, सो उनकी रात्रि दीर्घ होती भई।

दूजे दिन महाक्रोध के भरे सामन्त युद्धकूं उद्यमी भए। वज्राक्ष अर क्षुभितार, मृगेन्द्रदमन अर विधि, शम्भू स्वयम्भू, चन्द्रार्क अर वज्रोदर इत्यादि राक्षस पक्ष के बड़े बड़े सामंत अर वानरवंशियों के सामंत परस्पर जन्मांतर के उपार्जित वैर तिनसे महा क्रोधरूप होय युद्ध करते भए। अपने जीवन में निस्पृह संक्रोध ने महाक्रोधकर खिपितारि को महा ऊंचा स्वर कर बुलाया। अर बाहुबली ने मृगारिदमनकूं बुलाया। अर वितापी ने विधिकूं बुलाया, इत्यादि अनेक योधा परस्पर युद्ध करते भए। अर अनेक योधा मूए। शार्दूल ने वज्रोदरकूं घायल किया, अर खिपितार संक्रोध को मारता भया, अर शम्भू ने विशालद्युति मारा, अर स्वयम्भू ने विजयकूं लोहयष्टि से मारा, अर विधि ने वितापीकूं गदा से मार्‍या, बहुत कष्ट से। या भांति योधावों ने युद्ध में अनेक योधा हते सो बहुत देर तक युद्ध भया।

राजा सुग्रीव अपनी सेनाकूं राक्षसनि की सेना से खेदखिन्न देख आप महा क्रोध का भरा युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। तब अंजनी का पुत्र हनुमान हाथिनि के रथ पर चढ़ा राक्षसनिसूं युद्ध करता भया। सो राक्षसनि के सामंतनि के समूह पवनपुत्रकूं देखकर जैसे नाहरकूं देख गाय डरे तैसे डरते भए। अर राक्षस परस्पर बात करते भए कि यह हनुमान वानरध्वज आज घनों की स्त्रिनिकूं विधवा करेगा। तब याके सन्मुख माली आया। ताहि आया देख हनुमान धनुषविषै बाण तान सन्मुख भए। तिनमें महायुद्ध भया। मन्त्री मन्त्रीनि से लड़ने लगे, रथी रथीनिसूं लड़ने लगे, घोड़नि के असवार घोड़नि के असवारनिसूं लड़ते भए, हाथिनि के असवार हाथिनि के असवारनिसूं लड़ते भए। सो हनुमान की शक्ति करि माली पराङ्मुख भया तब वज्रोदर महा पराक्रमी हनुमान पर दौड़ा, युद्ध करता भया। चिरकाल युद्ध भया सो हनुमान ने वज्रोदरकूं रथरहित किया।

तब वह और दूजे रथ पर चढ़ हनुमान पर दौड़ा। तब हनुमान ने बहुरि ताकूं रथरहित किया। तब बहुरि पवन से हू अधिक वेग है जाका ऐसे रथ पर चढ़ हनुमान पर दौड़ा, तब हनुमान ने ताहि हता सो प्राणरहित भया। तब हनुमान के सन्मुख महाबलवान रावण का पुत्र जम्बूमाली आया। सौ आवते ही हनुमान की ध्वजा छेद करता भया। तब हनुमान ने क्रोध से जम्बूमाली का वक्तर भेद्या, धनुष तोड़ डार्‍या, जैसे तृण को तोड़ैं।

तब मंदोदरी का पुत्र नवा वक्तर पहिर हनुमान के वक्षस्थलविषै तीक्ष्ण वाणनि से घाव करता भया, सो हनुमान ने ऐसा जाना मानों नवीन कमल की नालिका का स्पर्श भया। कैसा है हनुमान? पर्वत समान निश्चल है बुद्धि जाकी, बहुरि हनुमान ने चन्द्रवक्र नामा बाण चलाया सो जम्बूमाली के रथ के अनेक सिंह जुते सो छूट गए, तिनही के कटकविषै पड़े। तिनकी विकराल दाढ़, विकराल वदन, भयंकर नेत्र, तिनकरि सकल सेना विह्वल भई। मानों सेनारूप समुद्रविषै ते सिंह

कल्लोलरूप भए उछलते फिरै है, अथवा दुष्ट जलचर जीवनिसमान विचरै हैं। अथवा सेनारूप मेघविषै बिजलीसमान चमकै हैं, अथवा संग्राम ही भया संसारचक्र ताविषै सेना के लोक, तेई भए जीव, तिनकूं ये रथ के छूटे सिंह कर्मरूप होय महादुखी करै हैं।

इनसे सर्वसेना दुःखरूप भई। तुरंग गजरथ पियादे सब ही विह्वल भए, रण का उद्यम तज दशोंदिशाकूं भाजे। तब पवन का पुत्र सबों को पेल रावण तक जाय पहुंचा, दूर से रावण को देखा। सिंह के रथ पर चढ़ा हनुमान धनुषबाण लेय रावण पर गया। रावण सिंहों से सेनाकूं भयरूप देख अर हनुमानकूं काल समान महादुर्द्धर जान आप युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। तब महोदर रावणकूं प्रणामकर हनुमान पर महाक्रोध से लडवेकूं आया। सो याके अर हनुमान के महायुद्ध भया। ता समयविषै वे सिंह योधावों ने वश किए, सो सिंहों को वशीभूत भए देख महाक्रोधकर समस्त राक्षस हनुमान पर पड़े। तब अंजनी का पुत्र महाभट पुण्याधिकारी तिन सबकूं अनेक वाणनि से थांभता भया। अर अनेक राक्षसनि ने अनेक वाण हनुमान पर चलाए, परन्तु हनुमान को चलायमान न करते भए। जैसे दुर्जन अनेक कुवचनरूप वाण संयमी के लगावैं, परन्तु तिनके एक न लागे, तैसें हनुमान के राक्षसनि का एक वाण भी न लाग्या।

अनेक राक्षसनिकरि अकेला हनुमानकूं बेढा देख वानरवंशी विद्याधर युद्ध के निमित्त उद्यमी भए। सुषेण नल नील प्रीतिकर विराधित संत्रासित हरिकट सूर्यज्योति महाबल जाम्बूनद के पुत्र। कई नाहरनि के रथ, कई गजनि के रथ, कई तुरंगनि के रथ चढ़े रावण की सेना पर दौड़े, सो वानरवंशिनि ने रावण की सेना सब दिशाविषै विध्वंस करी, जैसे क्षुधादि परीषह तुच्छ ब्रतियों के व्रतों को भंग करें। तब रावण अपनी सेना कूं व्याकूल देख आप युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। तब कुम्भकरण रावणकूं नमस्कार कर आप युद्धकूं चला। तब याहि महाप्रबल योधा रण में अग्रगामी जान सुषेण आदि सबही वानरवंशी व्याकुल भए।

जब वे चन्द्ररश्मि जयस्कंध चन्द्राहु रतिवर्धन अंग अंगद, सम्मेद, कुमुद, कशमंडल, बलि, चण्ड तरंग सार रत्नजटी जय वेलक्षिपी वसन्त कोलाहल इत्यादि अनेक योधा राम के पक्षी कुम्भकरण से युद्ध करने लगे तो कुम्भकरण ने सबको निद्रा नामा विद्या से निद्रा के वश किए।

जैसें दर्शनावरणीय कर्म दर्शन के प्रकाशकूं रोकै तैसें कुम्भकरण की विद्या वानरवंशीनि के नेत्रनि के प्रकाशकूं रोकती भई। सब ही कपिध्वज निद्रा से घूमने लगे अर तिनके हाथनि से हथियार गिर पड़े। तब इन सबों को निद्रावश अचेतन समान देख सुग्रीव ने प्रतिबोधनी विद्या प्रकाशी। सो सब वानरवंशी प्रतिबोध भए, अर हनुमानादि युद्धकूं प्रवर्ते।

वानरवंशीनि के बल में उत्साह भया अर युद्ध में उद्यमी भए, अर राक्षसनि की सेना दबी। तब

रावण आप युद्धकूं उद्यमी भए, तब बड़ा बेटा इन्द्रजीत हाथ जोड़ शिर निवाय विनती करता भया – हे तात! यदि मेरे होते आप युद्ध कूं प्रवर्ते तो हमारा जनम निष्फल है, जो तृण नख ही से उपड आवे उस पर फरसी उठावना कहा? तातैं आप निश्चिंत होवें, मैं आपकी आज्ञाप्रमाण करूंगा। ऐसा कहकर महाहर्षित भया पर्वतसमान त्रैलोक्यकंटक नामा गजेन्द्र पर चढ़ युद्धकूं उद्यमी भया। कैसा है गजेन्द्र? इन्द्र के गज समान अर इन्द्रजीतकूं अतिप्रिय, अपना सब साज लेय मंत्रीनि सहित ऋद्धि से इन्द्र समान रावण का पुत्र कपिन पर क्रूर भया। सो महाबल का स्वामी मानी आवत प्रमाण ही वानर वंशीनि का बल अनेक प्रकार के आयुधनिकरि जो पूर्ण हुता सर्व विह्वल किया।

सुग्रीव की सेना में ऐसा सुभट कोई न रहा जो इन्द्रजीत के बाणनिकरि घायल न भया। लोक जानते भए जो यह इन्द्रजीत कुमार नाहीं, अग्निकुमारों का इन्द्र है अथवा सूर्य है। सुग्रीव अर भामंडल ये दोऊ अपनी सेनाकूं इन्द्रजीत कर दबी देख युद्धकूं उद्यमी भए। इनके योधा इन्द्रजीत के योधानि से अर ये दोनों इन्द्रजीत से युद्ध करवे लगे सो परस्पर योधा योधावों को हंकार हंकार बुलावते भए। शस्त्रों से आकाश में अन्धकार होय गया, योधानि के जीवने की आशा नाहीं। गज से गज, रथ से रथ, तुरंग से तुरंग, सामंतों से सामंत उत्साहकर युद्ध करते भए। अपने अपने नाथ के अनुरागविषै योधा परस्पर अनेक आयुधनिकर प्रहार करते भए। ताही समय इन्द्रजीत सुग्रीव कूं समीप आया देख ऊंचे स्वर कर अपूर्व शस्त्ररूप दुर्वचननिकर छेदता भया।

अरे वानरवंशी, पापी स्वामीद्रोही! रावण स्वामी को तज स्वामी के शत्रु का किंकर भया। अब मुझसे कहां जायगा तेरे शिर को तीक्ष्ण बाणनिकर तत्काल छेदूंगा। वे दोनों भाई भूमिगोचरी तेरी रक्षा करें। तब सुग्रीव कहता भया ऐसे वृथा गर्व के वचन कर कहा तू मानशिखर पर चढ़ा है? सो अबार ही तेरा मान भंग करूंगा। जब ऐसा कहा तब इन्द्रजीत ने कोपकर धनुष चढ़ाय बाण चलाया, अर सुग्रीव ने इन्द्रजीत पर चलाया। दोनों महायोधा परस्पर बाणनिकर लड़ते भए। आकाश वाणनि से आच्छादित होय गया, मेघवाहन ने भामण्डल को हंकारा सो दोनों भिड़े। अर विराधित अर वज्रनक्र युद्ध करते भए। सो विराधित ने वज्रनक्र के उरस्थल में चक्रनामा शस्त्र की दई अर वज्रनक्र ने विराधित के दई। शूरवीर घात पाय शत्रु के घाव न करैं तो लज्जा है, चक्रनिकरि वक्तर पीसे गए तिनके अग्नि की कणका उछली सो मानों आकाश से उलकाओं के समूह पड़े हैं।

लंकानाथ के पुत्र ने सुग्रीव पै अनेक शस्त्र चलाए। लंकेश्वर के पुत्र संग्राम में अटल हैं जा समान दूजा योधा नाहीं। तब सुग्रीव ने वज्रदंड सै इन्द्रजीत के शस्त्र निराकरण किए जिनके पुण्य का उदय है जिनका घात न होय। फिर क्रोधकर इन्द्रजीत हाथी से उतर सिंह के रथ पर चढ़ा।

समाधान रूप है बुद्धि जाकी, नाना प्रकार के दिव्य शस्त्र अर सामान्य शस्त्र इनमें प्रवीण। सुग्रीव पर मेघबाण चलाया, सो सम्पूर्ण दिशा जलरूप होय गई। तब सुग्रीव ने पवनबाण चलाया, सो मेघबाण बिलाय गया। अर इन्द्रजीत का छत्र उडाया, अर ध्वजा उडाई। अर मेघवाहन ने भामंडल पर अग्निबाण चलाया, सो भामंडल का धनुष भस्म होय गया अर सेना में अग्नि प्रज्वलित भई। तब भामंडल ने मेघवाहन पर मेघबाण चलाया, सो अग्निबाण बिलाय गया अर अपनी सेना की बहुरि रक्षा करी।

मेघवाहन ने भामंडलकूं रथ रहित किया तब भामण्डल दूजे रथ चढ़ युद्ध करवे लगा। मेघवाहन ने तामस बाण चलाया सो भामण्डल सेना में अंधकार होय गया अपना पराया कुछ सूझे नाहीं, मानों मूर्छाकूं प्राप्त भए। तब मेघवाहन ने भामण्डलकूं नागपास से पकड़ा, मायामई सर्प सर्व अंग में लिपट गए, जैसे चन्दन के वृक्ष के नाग लिपट जावै। कैसे हैं नाग? भयंकर जे फण तिनकर महा विकराल। भामण्डल पृथ्वी पर पड़ा अर याही भांति इन्द्रजीत ने सुग्रीव को नागपाश कर पकड़ा सो धरती पर पड़ा।

तब विभीषण जो विद्या बल में महाप्रवीण श्रीराम लक्ष्मणसूं दोऊ हाथ जोड़ सीस निवाय कहता भया – हे राम महाबाहु! हे लक्ष्मण महावीर! इन्द्रजीत के बाणनि से व्याप्त भई सब दिशा देखहु। धरती अर आकाश बाणनिकर आच्छादित है। उल्कापात के स्वरूप नागबाण तिनकरि सुग्रीव अर भामण्डल दोऊ भूमिविषै बंधे पड़े हैं। मन्दोदरी के दोनों पुत्रों ने अपने दोनों महाभट पकड़े, अपनी सेना के जे दोनों मूल थे वे पकड़े गए। तब हमारे जीवनकरि कहा? इन बिना सेना शिथिल होय गई है। देखो, दशों दिशाकूं लोक भागे हैं, अर कुम्भकरण ने महायुद्धविषै हनुमानकूं पकड़ा है। कुम्भकरण के बाणनिकरि हनुमान जरजरे भए, छत्र उड़ गए, ध्वजा उड़ गई, धनुष टूटा, वक्तर टूटा। रावण के पुत्र इन्द्रजीत अर मेघवाहन युद्धविषै लग रहे हैं। अब वे आयकर सुग्रीव भामंडलकूं ले जायंगे, सो वे न ले जावें ता पहिले ही आप उनकूं ले आवें। वे दोनों चेष्टारहित हैं सो मैं उनके लेवेकूं जाऊं हूं। अर आप भामंडल सुग्रीव की सेना निर्नाथ होय सो उसे थांभहु। या भांति विभीषण राम लक्ष्मण से कहे हैं।

ताही समय सुग्रीव का पुत्र अंगद छाने छाने कुम्भकरण पर गया, अर उसका उत्तरासन वस्त्र परे किया, सो लज्जा के भारकर व्याकुल भया। वस्त्र को थांभे तौ लग, हनुमान इसकी भुजाफांस से निकस गया। जैसे नवा पकड़ा पक्षी पिंजरे से निकस जाय। हनुमान नवीन ज्योतिकूं धरे अर अंगद दोनों एक विमान बैठे ऐसे शोभते भए मानों देव ही हैं। अर अंगद का भाई अंग अर चंद्रोदय का पुत्र विराधित इन सहित लक्ष्मण सुग्रीव की अर भामंडल की सेनाकूं धैर्य बन्धाय थांभते भए।

अर विभीषण इन्द्रजीत मेघवाहन पर गया सो विभीषणकूं आवता देख इन्द्रजीत मन में विचारता भया – जो न्याय विचारिए तो हमारे पिता में अर यामें कहा भेद है? तातैं याके सन्मुख लड़ना उचित नाहीं। सो याके सन्मुख खड़ा न रहना यही योग्य है। अर ये दोनों भामंडल सुग्रीव नागपाश में बंधे सो निःसंदेह मृत्युकूं प्राप्त भए। अर काकातैं भाजिए तो दोष नाहीं।

ऐसा विचार दोनों भाई महा अभिमानी, न्याय के वेत्ता विभीषण से टरि गए। अर विभीषण त्रिशूल का है आयुध जाके, रथ से उतर सुग्रीव भामंडल के समीप गया। सो दोनों को नागपाश से मूर्छित देख खेदखिन्न होता भया। तब लक्ष्मण रामसूं कही – हे नाथ। ये दोनों विद्याधरनि के अधिपति, महासेना के स्वामी, महाशक्ति के धनी, भामण्डल सुग्रीव रावण के पुत्रनि ने शस्त्र रहित कीए, मूर्छित होय पड़े हैं। सो इन बगैर आप रावणकूं कैसैं जीतेंगे।

तब रामकूं पुण्य के उदय से गरुड़ेन्द्र ने वर दिया था सो चितार लक्ष्मण से राम कहते भए – हे भाई! वंशस्थल गिरि पर देशभूषण कुलभूषण मुनि का उपसर्ग निवारा उस समय गरुड़ेन्द्र ने वर दिया था – ऐसा कह महालोचन राम ने गरुड़ेन्द्र को चितारा, सो सुख अवस्था में तिष्ठै था। सिंहासन कम्पायमान भया। तब अवधि कर राम लक्ष्मण का काम जान चिंतावेग नामा देवकूं दोय विद्या देय पठाया, सो आयकर बहुत आदरसूं राम लक्ष्मण से मिल्या। अर दोऊ विद्या तिनकूं दईं। श्रीराम को सिंहवादिनी विद्या दई, अर लक्ष्मणकूं गरुड़वाहिनी विद्या दई। तब यह दोनों धीर विद्या लेय चिन्तावेग को बहुत सन्मान कर जिनेन्द्र की पूजा करते भए अर गरुड़ेन्द्र की बहुत प्रशंसा करी। वह देव इनको जलबाण, पवनबाण इत्यादि अनेक दिव्य शस्त्र देता भया। अर चांद सूर्य सारिखे दोनों भाइयों को छत्र दिए, अर चमर दिए, नानाप्रकार के रत्न दिए, कांति के समूह अर विद्युद्वक्र नाम गदा लक्ष्मण को दई, अर हल–मूसल दुष्टों को भय के कारण रामकूं दिए। या भांति वह देव इनको देवोपनीत शस्त्र देय अर सैकड़ों आशीष देय अपने स्थानक गया।

यह सब धर्म का फल जानों जो संयम में योग्य वस्तु की प्राप्ति होय, विधिपूर्वक निर्दोष धर्म आराधा होय, उसके ये अनुपम फल हैं। जिनकूं पाय करि दुःख की निवृत्ति होय, महावीर्य के धनी आप कुशलरूप, अर औरनिकूं कुशल करै। मनुष्यलोक की सम्पदा की कहा बात, पुण्याधिकारियोंकूं देवलोक की वस्तु भी सुलभ होय है। तातैं निरंतर पुण्य करहु।

अहो प्राणि हो! जो सुख चाहो तो प्राणियों को सुख देवो। जिस धर्म के प्रसाद से सूर्य समान तेज के धारक होवो अर आश्चर्यकारी वस्तुनि का संयोग होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मणकूं अनेक विद्या का लाभ वर्णन करने वाला साठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।60।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण दोऊ वीर, तेज के मंडल में मध्यवर्ती, लक्ष्मी के निवास, श्रीवत्स लक्षण कूं धरे, महामनोज्ञ कवच पहिरे, सिंहबाहन गरुड़वाहन पर चढ़े, महासुन्दर सेना सागर के मध्य, सिंह की अर गरुड़ की ध्वजा धरें, परपक्ष के क्षय करवेकूं उद्यमी, महासमर्थ सुभटों के ईश्वर, संग्राम भूमि के मध्य प्रवेश करते भए। आगे आगे लक्ष्मण चला जाय है। दिव्य शस्त्र के तेज से सूर्य के तेजकूं आछादित करता हुआ हनुमान आदि बड़े बड़े योधा वानरवंशी तिनकर मंडित। वर्णन में न आवे ऐसा देवों का सा रूप धरे, बारह सूर्य की-सी ज्योति लिये, लक्ष्मण को विभीषण ने देखा। सो जगत्कूं आश्चर्य उपजावै ऐसे तेजकर मंडित, सो गरुड़वाहन के प्रतापकर नागपांस का बन्धन भामण्डल सुग्रीव का दूर भया।

गरुड़ के पक्षों की पवन क्षीर सागर के जलकूं क्षोभ रूप करे, उससे वे सर्प विलाय गये जैसे साधुवों के प्रताप से कुभाव मिट जाय। पक्षन की कांतिकर लोक ऐसे होय गए मानों सुवर्ण के रस कर निरमापे हैं।

तब भामण्डल सुग्रीप नागपास से छूट विश्रामकूं प्राप्त भए, मानों सुख निद्रा लेय जाग अधिक शोभते भए। तब इनकूं देख श्रीवृक्ष प्रथादिक सब विद्याधर विस्मयकूं प्राप्त भए अर सब ही श्रीराम लक्ष्मण की पूजा कर विनती करते भए - हे नाथ! आज की सी विभूति हम अब तक कभी न देखी - वाहन, वस्त्र, सम्पदा, छत्र, ध्वजा में अद्‌भुत शोभा दीखे है। तब श्रीराम ने जब से अयोध्या से चले तब से लेय सर्व वृत्तांत कहा, कुलभूषण, देशभूषण का उपसर्ग दूर किया सो सर्व वृत्तांत कहा।

तिन्हों को केवल उपजा अर कही - हमसे गरुड़ेन्द्र तुष्टायमान भया। सो अबार उसका चिन्तवन किया उससे यह विद्या की प्राप्ति भई। तब वे यह कथा सुन परम हर्षकूं प्राप्त भए, अर कहते भए इस ही भव में साधु सेवा से परम यश पाइए है, अर अति उदार चेष्टा होय है, अर पुण्य की विधि प्राप्ति होय है। अर जैसा साधु सेवा से कल्याण होय है वैसा न माता पिता, न मित्र, न भाई, कोई जीवों को न करै। साधु या प्राणी सेवा की प्रशंसा में लगाया है चित्त जिन्होंने, जिनेन्द्र के मार्ग की उन्नति में उपजी है श्रद्धा जिनके, वे राजा बलभद्र नारायण के आश्रय से महा विभूति से शोभते भए।

भव्यजीवरूप कमल तिनकूं प्रफुल्लित करनहारी यह पवित्र कथा, उसे सुनकर वे सर्व ही हर्ष के समुद्र में मग्न भए। अर श्रीराम लक्ष्मण की सेवा में अति प्रीति करते भए। अर भामण्डल सुग्रीव, मूर्छा रूप निद्रा से रहित भए हैं नेत्र कमल जिनके श्री भगवान की पूजा करते भए। वे विद्याधर

श्रेष्ठ देवों सारिखे सर्वथा धर्म में श्रद्धा करते भए। जो पुण्याधिकारी जीव हैं सो इस लोक में परम उत्सव के योगकूं प्राप्त होय है। यह प्राणी अपने स्वार्थ से संसार में महिमा नाहीं पावै है, केवल परमार्थ महिमा होय है। जैसा सूर्य पर पदार्थ को प्रकाशै वैसे शोभा पावै है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सुग्रीव भामंडल का नागपासतैं छूटना अर हनुमान को कुम्भकरण की भुजापासितैं छूटना राम लक्ष्मणकूं सिंहविमान गरुड़विमान की प्राप्ति निरूपण वर्णन करने वाला इकसठवां पर्व संपूर्ण भया।।61।।

अथानन्तर श्रीराम के पक्ष के योधा महा पराक्रमी, रणरीति की वेत्ता, शूरवीर, युद्धकूं उद्यमी भए। वानरवंशियों की सेना से आकाश व्याप्त भया, अर शंख आदि वादित्रनि के शब्द अर गजों की गर्जना अर तुरंगनि के हींसिवे का शब्द सुनकर कैलाश का उठावनहारा जो रावण, अति प्रचंड है बुद्धि जाकी, महामानी, देवन सारिखी है विभूति जाके, महा प्रतापी, बलवान, सेनारूप समुद्रकर संयुक्त, शस्त्रनि के तेजकर पृथ्वी में प्रकाश करता, पुत्र भ्रातादिक सहित लंका से निकसा, युद्धकूं उद्यमी भया।

दोनों सेना के योधा वखतर पहिर संग्राम के अभिलाषी नाना प्रकार वाहननिविषै आरूढ़, अनेक आयुधनि के धरणहारे, पूर्वोपार्जित कर्म से महाक्रोध रूप परस्पर युद्ध करते भए। चक्र, करोत, कुठार, धनुष बाण, खड्ग, लोहयष्टि, वज्र, मुदगर, कनक, परिधे इत्यादि अनेक आयुधनि से परस्पर युद्ध भया। घोड़े के असवार घोड़े के असवारों से लड़ने लगे, हाथियों के असवार हाथियों के असवारों से, रथों के रथियों से महाधीर लड़ने लगे। सिंहों के असवार सिंहों के असवारों से, पयादे पयादों से भिड़ते भए।

बहुत वेर में कपिध्वजों की सेना राक्षसों के योधावों से दबी। तब नल नील संग्राम करने लगे। सो इनके युद्ध से राक्षसों की सेना चिगी। तब लंकेश्वर के योधा समुद्र की कल्लोल सारिखे चंचल, अपनी सेनाकूं कम्पायमान देख, विद्युद्वचन मारीच, चन्द्रार्क, सुखसारण, कृतांतमृत्यु, भूतनाद संक्रोधन इत्यादि महा सामन्त अपनी सेनाकूं धीर्य बंधायकर कपिध्वजों की सेनाकूं दबावते भए। तब मर्कटवंशी योधा अपनी सेनाकूं चिगा जान हजारां युद्ध को उठे। सो उठते ही नाना प्रकार के आयुधनिकरि राक्षसनि की सेनाकूं हरते भए, अति उदार है चेष्टा जिनकी। तब रावण अपनी सेनारूप समुद्रकूं कपिध्वज रूप प्रलय काल की अग्नि से सूखता देख आप कोपकर युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। सो रावणरूप प्रलयकारी की पवन से वानरवंशी सूखे पातसे उड़ने लगे।

तब विभीषण महायोधा वानरवंशियोंकूं धीर्य बंधाय तिनकी रक्षा करवेकूं आप रावण से युद्ध कूं सन्मुख भया। तब रावण लहुरे भाईकूं युद्ध में उद्यमी देख क्रोधकर निरादर वचन कहता भया – रे बालक! तू लघुभ्राता है, सो मारवे योग्य नाहीं। मेरे सन्मुख से दूर हो। मैं तुझे देखे प्रसन्न नाहीं। तब विभीषण ने रावण से कही – काल के योग से तू मेरी दृष्टि पड़ा। अब मौसे कहां जायगा। तब रावण अति क्रोध मैं कहता भया – रे पुरुषत्वरहित क्लिष्ट धृष्ट पापिष्ट कुचेष्टि नरकाधिकार! तोकूं तो सारिखे दीनकूं मारे मुझे हर्ष नाहीं। तू निर्बल रंक अवध्य है। अर तो सारिखा मूर्ख अर कौन जो विद्याधरों की सन्तानों में होयकर भूमिगोचरियों का आश्रय करै, जैसे कोई दुर्बुद्धि पाप कर्म के उदय से जिनधर्म को तज मिथ्यात्व का सेवन करै।

तब विभीषण बोला – हे रावण! बहुत कहनेकरि कहा? तेरे कल्याण की बात तुझे कहूंहूं सो सुन। एती भई तो भी कछु बिगड़ा नाहीं। जो तू अपना कल्याण चाहै है तो रामसूं प्रीतिकर, सीता रामकूं सौंप, अर अभिमान तज रामकूं प्रसन्न कर। स्त्री के निमित्त अपने कुल को कलंक मत लगावै। अथवा तू मेरे वचन नहीं मानै है सो जानिए है तेरी मृत्यु नजीक आई है। समस्त बलवन्तनि में मोह महा बलवान है। तू मोह से उन्मत्त भया है। ये वचन भाई के सुन कर रावण अति क्रोधरूप भया। तीक्ष्णबाण लेय विभीषण पर दौड्या। और भी रथ घोड़े हाथिन के असवार स्वामी भक्ति में तत्पर महायुद्ध करते भए। विभीषण ने भी रावणकूं आवता देख अर्धचन्द्र बाण से रावण की ध्वजा उड़ाई, अर रावण ने क्रोधकर बाण चलाया सो विभीषण का धनुष तोड्या, अर हाथसूं बाण गिरा। तब विभीषण दूजा धनुष लेय बाण चलाया सो रावण का धनुष तोड्या। या भांति दोनों भाई महायोधा परस्पर जोरसूं युद्ध करते भए, अर अनेक सामंतनि का क्षय भया।

तदि इन्द्रजीत महायोधा पिताभक्त पिता की पक्ष विभीषण पर आया। तब ताहि लक्ष्मण ने रोक्या जैसैं पर्वत सागरकूं रोकै। अर श्रीराम ने कुम्भकरणकूं घेर्‍या, अर सिंहकटि से नील, अर शम्भू से नल, अर स्वयंभू से दुर्मती, अर घटोदर से दुर्मुख, शक्रासन से दुष्ट, चन्द्रनख से काली, भिन्नांजन से स्कन्ध, विघ्न से विराधित, अर मय से अंगद, अर कुम्भकरण का पुत्र जो कुम्भ उससे हनुमान का पुत्र, अर सुमाली से सुग्रीव, अर केतु से भामण्डल, काम से दृढरथ, क्षोभ से बुध इत्यादि बड़े बड़े राजा परस्पर युद्ध करते भए। अर समस्त ही योधा परस्पर रण रचते भए। वह वाहि बुलावै। बराबर के सुभट कोई कहै हैं – मेरा शस्त्र आवै है उसे झेल। कोई कहै है तू हमसे युद्ध योग्य नाहीं, बालक है, वृद्ध है, रोगी है, निर्बल है, तू जा। फलाने सुभट युद्ध योग्य है सो आवो। या भांति के वचनालाप होय रहे हैं।

कोई कहै हैं याही छेदो। कोई कहे हैं बाण चलाओ, कोई कहै हैं मार लेवो, पकड़ लेवो, बांध लेवो, ग्रहण करो, छोड़ो, चूर्ण करो, घाव लगे ताहि सहो, घाव देहु, आगे होवो, मूर्छित मत होवो, सावधान होवो, तू कहा डरै है? मैं तुझे न मारूं, कायरनिकूं न मारना, भागों को न मारना, पड़े को न मारना, आयुधरहित पर चोट न करनी, तथा रोग से ग्रसा मूर्छित दीन बाल वृद्ध यति ब्रती स्त्री शरणागत तपस्वी पागल पशु पक्षी इत्यादिकूं सुभट न मारैं। यह सामन्तनि की वृत्ति है।

कोई अपने वंशियों को भागते देख धिक्कार शब्द कहै है और कहै हैं – तू कायर है, नष्ट है मति, कांपै कहां जाय है, धीरा रहो, अपने समूह में खड़ा रहू, तोसूं क्या होय है, तोसूं कौन डरै, तू काहे का क्षत्री? शूर और कायरनि के परखने का यह समय है। मीठा मीठा अन्न तो बहुत खाते यथेष्ट भोजन करते अब युद्ध में पीछे क्यों होवो? या भांति वीरों की गर्जना और वादित्रनि का बाजना तिनसूं दशों दिशा शब्दरूप भईं। और तुरंगनि के खुर की रज से अंधकार होय गया।

चक्र शक्ति गदा लोहयष्टि कनक इत्यादि शस्त्रनि से युद्ध भया, मानों ये शस्त्र काल की डाढ ही हैं। लोग घायल भए। दोनों सेना ऐसी दीखैं मानों लाल अशोक का वन है, अथवा केसू का वन है, अर अथवा पारिभद्र जाति के वृक्षों का वन है। कोई योधा अपने बखतर को टूटा देख दूजा बख्तर पहरता भया, जैसें साधु व्रत में दूषण उपजा देख फिर पीछे दोष स्थापना करै। और कोई दांतों से तरबार थाम्भ कमर गाढी कर फिर युद्धकूं प्रवृत्ता। कोई यक सामन्त माते हाथियों के दासों के अग्रभाग से बिदारा गया है वक्षस्थल जाका, सो हाथी के चालते जे कान, वेई भए बीजना, उससे मानों हवा से सुख रूप कर रहे हैं। और कोई इक सुभट निराकुल बुद्धि हुआ, हाथी के दांतनि पर दोनों भुजा पसार सोवै है, मानों स्वामी कार्यरूप समुद्र से उतरा।

अर कई एक योधा युद्ध से रुधिर का नाला बहावते भए जैसे पर्वत में गेरु की खान से लाल नीझरने बहैं। अर कई एक योधा पृथ्वी में साम्हने मुंह से पड़े होठ डसते, शस्त्र जिनके कर में, टेढी भौंह, विकराल वदन, इस रीति से प्राण तजै हैं। अर कई एक भव्यजीव महा संग्रामसूं अत्यन्त घायल होय, कषाय का त्याग कर, संन्यास धर, अविनाशी पद का ध्यान करते देहकूं तज, उत्तम लोककूं पावै हैं। कई एक धीर-वीर हाथिनि के दांतनिकूं हाथ से पकड़कर ही देह रुधिर की छटा शरीर से पड़े हैं, शस्त्र हैं हाथनि में जिनके। अर कई एक काम आय गए तिनके मस्तक गिर पड़े अर सैकड़ों धड़ नाचे हैं। कई एक शस्त्ररहित भए अर घावों से जरजरे भये तृषातुर होय जल पीवने को बैठे हैं, जीवन की आशा नाहीं। ऐसे भयंकर संग्राम के होते परस्पर अनेक योधावों का क्षय भया।

इन्द्रजीत तीक्ष्ण बाणनि से लक्ष्मणकूं आच्छादने लगा, अर लक्ष्मण उसको। सो इन्द्रजीत ने

लक्ष्मण पर तामस बाण चलाया सो अंधकार होय गया। तब लक्ष्मण ने सूर्यबाण चलाया उससे अंधकार दूर भया। फिर इन्द्रजीत ने आशीविष जाति के नागबाण चलाये सो लक्ष्मण अर लक्ष्मण का रथ नागों से वेष्टित होने लगा। तब लक्ष्मण ने गरुड़बाण के योग से नागबाण का निराकरण किया, जैसे योगी महातप से पूर्वोपार्जित पापों के समूहकूं निराकरण करै। अर लक्ष्मण ने इन्द्रजीतकूं रथरहित किया। कैसा है इन्द्रजीत? मंत्रियों के मध्य तिष्ठै है, अर हाथियों की घटाओं से वेष्टित है। सो इन्द्रजीत दूजे रथ चढ़ि अपनी सेनाकूं वचनकरि, क्रियाकरि रक्षा करता संता लक्ष्मण पर तप्त बाण चलावता भया। उसे लक्ष्मण ने अपने विद्या से निवार इन्द्रजीत पर आशीविष जाति का नागबाण चलाया, सो इन्द्रजीत नागबाण से अचेत होय भूमि में पड़ा, जैसे भामण्डल पड़ा था। और राम ने कुम्भकरणकूं रथरहित किया।

बहुरि कुम्भकरण ने सूर्यबाण राम पर चलाया सो राम ने ताका बाण निराकरण कर नागबाणकर ताहि बेढा सो कुम्भकरण भी नागों का बेढा थका धरती पर पड़ा।

यह कथा गौतम गणधर राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे श्रेणिक! बड़ा आश्चर्य है ते नागबाण धनुष के लगे उल्कापात स्वरूप होय जाय हैं, अर शत्रुओं के शरीर के लग नागरूप होय उसको बेढै हैं। यह दिव्य शस्त्र देवोपनीत हैं, मनवांछित रूप करै हैं, एक क्षण में बाण एक क्षण में दंड, क्षण एक में पाश रूप होय परणवे हैं। जैसे कर्म-पाशकर जीव बंधे तैसे नागपाश कर कुम्भकरण बन्धा? सो राम की आज्ञा पाय भामण्डल ने अपने रथ में राखा। कुम्भकरणकूं राम ने भामंडल के हवाले किया अर इन्द्रजीत को लक्ष्मण ने पकड़ा सो विराधित के हवाले किया। सो विराधित ने अपने रथ में राखा, खेदखिन्न है शरीर जाका।

ता समय युद्ध में रावण विभीषण को कहता भया जो यदि तू आपको योधा मानै है तो एक मेरा घाव सह, जाकर रण की खाज बुझे। यह रावण ने कही। कैसा है विभीषण? क्रोधकर रावण के सन्मुख है, अर विकराल करी है रणक्रीड़ा जाने। रावण ने कोपकर विभीषण पर त्रिशूल चलाया, कैसा है त्रिशूल? प्रज्वलित अग्नि के स्फुलिंगों कर प्रकाश किया है आकाश में जाने, सो त्रिशूल लक्ष्मण ने विभीषण तक आवने न दिया, अपने बाणकर बीच ही भस्म किया। तब रावण अपने त्रिशूल को भस्म किया देख अति क्रोधायमान भया, अर नागेन्द्र की दई शक्ति महादारुण सो ग्रही। अर आगे देखे तो इन्दीवर कहिए नीलकमल ता समान श्याम सुन्दर, महा दैदीप्यमान, पुरुषोत्तम, गरुड़ध्वज लक्ष्मण खड़े हैं।

तब काली घटा समान गम्भीर उदार है शब्द जाका ऐसा दशमुख सो लक्ष्मणकूं ऊंचे स्वर कर कहता भया – मानों ताडना ही करै है, तेरा बल कहां? जो मृत्यु के कारण मेरे शस्त्र तू झेलै।

तू औरनि की तरह मोहि मत जाने। हे दुर्बुद्धि लक्ष्मण! जो तू मूवा चाहे है तो मेरा यह शस्त्र झेल। तब लक्ष्मण यद्यपि चिरकाल संग्रामकर अति खेदखिन्न भया है तथापि विभीषण को पीछे कर आप आगे होय रावण की तरफ दौड़े। तब रावण ने महाक्रोध करि लक्ष्मण पर शक्ति चलाई। कैसी है शक्ति? निकसे हैं तारावों के आकार स्फुलिंगनि के समूह जाविषै। सो लक्ष्मण का वक्षस्थल महा पर्वत के तट समान ता शक्तिकर विदारा गया। कैसी है शक्ति? महादिव्य, अति देदीप्यमान, अमोघक्षेपा कहिए वृथा नाहीं है लगना जाका। सो शक्ति लक्ष्मण के अंगसों लगी। कैसी सोहती भई? मानों प्रेम की भरी वधू ही है। सो लक्ष्मण शक्ति के प्रहार कर पराधीन भया है शरीर जाका सो भूमि पर पड़ा, जैसे वज्र का मारा पहाड़ पड़े।

सो ताहि भूमि पर पड़ा देख श्रीराम कमललोचन शोक को दबाय शत्रु के घात करिवे निमित्त उद्यमी भए। सिंहों के रथ चढ़े क्रोध के भरे शत्रु को तत्काल ही रथरहित किया। तब रावण और रथ चढ़ा। तब राम ने रावण का धनुष तोड़ा। बहुरि रावण और धनुष लिया तितने राम ने रावण का दूजा रथ भी तोड़ा। सो राम के बाणनिकर विह्वल रावण धनुष-बाण लेयवे असमर्थ भया। तीव्र बाणनिकर राम रावण का रथ तोड़ डारें, वह बहुरि रथ चढ़े, सो अत्यन्त खेदखिन्न भया, छेदा है वक्तर जाका। सो छह बार राम ने रथरहित किया तथापि रावण अद्भुत पराक्रम का धारी रामकर हता न गया।

तब राम आश्चर्य पाय रावण से कहते भए - तू अल्प आयु नाहीं, कोईयक दिन आयु बाकी है। तातैं मेरे बाणनिकर न मूवा। मेरी भुजाकर चलाए बाण महातीक्ष्ण तिनकर पहाड़ भी भिद जाय, मनुष्य की तो कहा बात? तथापि आयुकर्म ने तौकूं बचाया। अब मैं तोहि कहूं सो सुन - हे विद्याधरों के अधिपति! मेरा भाई संग्राम में शक्तिकर तैनें हना, सो याकी मृत्युक्रिया कर मैं तौसों प्रभात ही युद्ध करूंगा। तब रावण ने कही ऐसे ही करो। यह कह रावण इन्द्रतुल्य पराक्रमी लंका में गया। कैसा है रावण? प्रार्थनाभंग करिवेकूं असमर्थ है।

रावण मन में विचारै है इन दोनों भाइयों में एक यह मेरा शत्रु अतिप्रबल था। सो तो मैं हत्या। यह विचार कछुइक हर्षित होय महलविषै गया। कई एक जो योधा युद्ध से जीवते आए तिनकूं देख हर्षित भया। कैसा है रावण? योद्धाओं में है वात्सल्य जाके। बहुरि सुनी इन्द्रजीत मेघनाद पकड़े गए अर भाई कुम्भकरण पकड़ा गया सो या वृत्तांतकर रावण अति खेदखिन्न भया। तिनके जीवने की आशा नाहीं।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं - हे भव्योत्तम! अनेकरूप अपने उपार्जे कर्मों के कारण से जीवनि के नाना प्रकार की साता असाता होय है। देख! या जगत्‌विषै नाना प्रकार

के कर्म तिनके उदयकर जीवनि के नाना प्रकार के शुभाशुभ होय हैं, अर नाना प्रकार के फल होय हैं। कई एक तो कर्म के उदयकर रणविषै नाशकूं प्राप्त होय हैं, अर कईएक वैरियों को जीत अपने स्थानकूं प्राप्त होय है। अर काहू की विस्तीर्ण शक्ति विफल होय जाय है, अर बन्धनकूं पावै है। सो जैसे सूर्य पदार्थों के प्रकाशन में प्रवीण है तैसे कर्म जीवनि को नाना प्रकार के फल देने में प्रवीण है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण के रावण के हाथ की शक्ति का लगना और भूमिविषै अचेत होय पड़ना वर्णन करने वाला बासठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।62।।

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण के शोककरि व्याकुल भए। जहां लक्ष्मण पडा हुता तहां आय पृथ्वी मण्डल का मंडन जो भाई ताहि चेष्टारहित शक्ति से आलिंगित देख मूर्छित होय पड़े। बहुरि घनी बेर में सचेत होयकर महाशोक से संयुक्त, दु:खरूप अग्नि से प्रज्वलित, अत्यन्त विलाप करते भए – हा वत्स! कर्म के योग्य कर तेरी यह दारुण अवस्था भई। आप दुर्लंघ्य समुद्र तर यहां आए, तू मेरी भक्ति में सदा सावधान, मेरे कार्य निमित्त सदा उद्यमी, शीघ्र ही मेरे से वचनालाप कर। कहा मौन धरे तिष्ठै है? तू न जाने मैं तेरे वियोगकूं एक क्षणमात्र भी सहिवे सक्त नाहीं, उठ, मेरे उर से लग। तेरा विनय कहां गया? तेरे भुज गज के सूंड समान दीर्घ भुजबन्धनिकर शोभित सो ये क्रियारहित प्रयोजनरहित होय गए, भावमात्र ही रह गए। अर तू माता पिता ने मोहि धरोहर सौंपा हुता सो अब मैं महानिर्लज्ज तिनकूं कहा उत्तर दूंगा?

अत्यन्त प्रेम के भरे अति अभिलाषी राम – हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! ऐसा जगत् में हितु तो समान नाहीं, या भांति के वचन कहते भए। लोक समस्त देखै हैं। अर महादीन भए भाईसूं कहै हैं, तू सुभटनि में रत्न है, तो बिना मैं कैसे जीऊंगा? मैं अपना जीतव्य पुरुषार्थ तेरे बिना विफल मानूं हूं। पापों के उदय का चरित्र मैंने प्रत्यक्ष देखा। मोहि तेरे बिना सीता कर कहा? अर अन्य पदार्थनिकर कहा? जा सीता के निमित्त तेरे सारिखे भाईकूं निर्दय शक्तिकर पृथ्वी पर पड़ा देखू हूं सो तो समान भाई कहा? काम अर्थ पुरुषों को सब सुलभ है, अर और और सम्बन्धी पृथ्वी पर जहां जाइये वहां सब मिलें। परन्तु माता, पिता अर भाई न मिले।

हे सुग्रीव! तैंने अपना मित्रपणा मुझे अति दिखाया। अब तुम अपने स्थानक जावो। अर हे भामण्डल! तुम भी जावो। अब मैं सीता की आशा तजी, अर जीवने की भी आशा तजी। अब मैं भाई के साथ निसंदेह अग्नि में प्रवेश करूंगा। हे विभीषण! मोहि सीता का भी सोच नाहीं, अर भाई का सोच नाहीं, परन्तु तिहारा उपकार हमसे कछु न बना सो यह मेरे मन में महाबाधा है। जे

उत्तम पुरुष हैं ते पहिले ही उपकार करे। अर जे मध्यम पुरुष हैं ते उपकार पीछे उपकार करें। अर जो पीछे भी न करें वे अधम पुरुष हैं। सो तुम उत्तम पुरुष हो, हमारा प्रथम उपकार किया। ऐसे भाई से विरोध कर हम पै आये। अर हमसे तिहारा कछु उपकार न बना। तातैं मैं अति आतापरूप हूं। हो भामंडल सुग्रीव चिता रचो, मैं भाई के साथ अग्नि में प्रवेश करूंगा। तुम जो योग्य हो सो करियो।

यह कहकर लक्ष्मणकूं राम स्पर्शने लगे तब जांबूनद महा बुद्धिमान मना करता भया – हे देव! यह दिव्यास्त्र से मूर्छित भया है तिहारा भाई, सो स्पर्श मत करो। यह अच्छा हो जायेगा। ऐसे होय है। तुम धीरताकूं धरो, कायरता तजो, आपदा में उपाय ही कार्यकारी है। यह विलाप उपाय नाहीं, सुभट जन हो, तुमको विलाप उचित नाहीं। यह विलाप करना क्षुद्र लोगों का काम है। तातैं अपना चित्त धीर करो कोई यक उपाय अब ही बनै है। यह तिहारा भाई नारायण है सो अवश्य जीवेगा। अवार याकी मृत्यु नाहीं।

यह कह सब विद्याधर विषादी भए, अर लक्ष्मण के अंग से शक्ति निकसने का उपाय अपने मन में सब ही चिंतवते भए। यह दिव्य शक्ति है याहि औषधकर कोऊ निवारवे समर्थ नाहीं। अर कदापि सूर्य उगा तो लक्ष्मण का जीवना कठिन है। यह विद्याधर बारम्बार विचारते हुए उपजी है चिन्ता जिनके, कमरबंध आदि सब दूर कर, आध निमिष में धरती शुद्धकर कपड़े के डेरे खड़े किए। अर कटक की सात चौकी मेली। सो बड़े बड़े योधा बक्तर पहिरे, धनुष बाण धारे, बहुत सावधानी से चौकी बैठे।

प्रथम चौकी नील बैठे, धनुषबाण हाथ में धरे हैं। अर दूजी चौकी नल बैठे गदा कर में लिए। अर तीजी चौकी विभीषण बैठे महाउदार मन, त्रिशूल थांभे, अर कल्पवृक्षों की माला रत्ननि के आभूषण पहिरे ईशानइन्द्र समान। अर चौथी चौकी तरकश बांधे कुमुद बैठे, महासाहस धरे। पांचवीं चौकी बरछी संभारे सुषेण बैठे, महाप्रतापी। अर छठी चौकी महा दृढभुज आप सुग्रीव इन्द्र सारिखा शोभायमान भिंडिमाल लिए बैठे। सातवीं चौकी महाशस्त्र का निकन्दक तलवार सम्हाले आप भामंडल बैठा।

पूर्व के द्वार अष्टापदी की है ध्वजा जाके सो शरभ ऐसा सोहता भया मानों महाबली अष्टापद ही है। अर पश्चिम के द्वार जाम्बुकुमार विराजता भया। अर उत्तर के द्वार मंत्रियों के समूह सहित बाली का पुत्र महा बलवान चन्द्रमरीच बैठा। या भांति विद्याधर चौकी बैठे। सो कैसे सोहते भए? जैसे आकाश में नक्षत्रमंडल भासे। अर वानरवंशी महाभट वे सब दक्षिण दिशा की तरफ चौकी बैठे। या भांति चौकी का यत्न कर विद्याधर तिष्ठे। लक्ष्मण के जीने में है संदेह जिनके, प्रबल है शोक जिनका। जीवनि के कर्मरूप सूर्य के उदयकर फल का प्रकाश होय है ताहि न मनुष्य,

न देव, न नाग, न असुर, कोई भी निवारवे समर्थ नाहीं। यह जीव अपना उपार्जा कर्म आप ही भोगवै है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण के शक्ति लगना अर राम का विलाप वर्णन करने वाला त्रेसठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।63।।

अथानन्तर रावण लक्ष्मण का निश्चय से मरण जान, अर अपने भाई दोऊ पुत्रनि कों बुद्धि में मरण रूप ही जान अत्यन्त ही दु:खी भया। रावण विलाप करै है – हाय भाई कुम्भकरण! परम उदार अत्यन्त हितु! कहा ऐसी बन्धन अवस्थाकूं प्राप्त भया? हाय इन्द्रजीत, मेघनाद महापराक्रम के धारी हो! मेरी भुजा समान! दृढ़ कर्म के योगकर बन्ध को प्राप्त भए। ऐसी अवस्था अब तक न भई। मैं शत्रु का भाई हना है सो न जानिए शत्रु व्याकुल भया कहा करै? तुम सारिखे उत्तम पुरुष मेरे प्राणवल्लभ दु:ख अवस्थाकूं प्राप्त भए। या समान मोकों अति कष्ट कहा? ऐसे रावण गोप्य भाई अर पुत्रनि का शोक करता भया।

अर जानकी लक्ष्मण के शक्ति लगी सुन अति रुदन करती भई – हाय लक्ष्मण! विनयवान गुणभूषण! तू मो मंदभागिनी के निमित्त ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया। मैं तोहि ऐसी अवस्थाविषै हू देखा चाहूं हूं, सो दैवयोग से देखने नाहीं पाऊं हूं। तो सारिखे योधा को पापी शत्रु ने हना सो कहा मेरे मरण का संदेह न किया? तो समान पुरुष या संसार में और नाहीं, जो बड़े भाई की सेवा में आसक्त है चित्त जाका, समस्त कुटुम्बकूं तज, भाई के साथ निकसा। अर समुद्र तिर यहां आया। ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया तोहि मैं कब देखूं? कैसा है तू? बालक्रीड़ा में प्रवीण अर महा विनयवान, महा मिष्टवाक्य, वा अद्भुत कार्य का करणहारा। ऐसा दिन कब होयगा जो तुझे मैं देखूं? सर्व देव सर्वथा प्रकार तेरी सहाय करहु।

हे सर्वलोक के मन के हरणहारे! तू शक्ति की शल्य से रहित होय। या भांति महा कष्टतैं शोकरूप जानकी विलाप करै। ताहि भावनिकरि अति प्रीतिरूप जो विद्याधरी तिनने धीर्य बंधाय शांतचित्त करी – हे देवि! तेरे देवर के अब तक मरवे का निश्चय नाहीं, तातैं तू रुदन मत कर। अर महाधीर सामन्तों की यही गति है। अर या पृथ्वीविषै उपाय भी नाना प्रकार के हैं। ऐसे विद्याधरियों के वचन सुन सीता किंचित् निराकुल भई।

अब गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं – हे राजन्! अब जो लक्ष्मण का वृत्तांत भया सो सुन। एक योधा सुन्दर है मूर्ति जाकी, सो डेरों को द्वार पर प्रवेश करता भामण्डल ने देख्या, अर पूछा कि तू कौन, अर कहां से आया, अर कौन अर्थ यहां प्रवेश करै है? यहां ही रह, आगे मत

जावो। तब वह कहता भया मोहि महीने ऊपर कई दिन गए हैं, मेरे अभिलाषा राम के दर्शन की है, सो राम का दर्शन करूंगा। अर जो तुम लक्ष्मण के जीवने की बांछा करो हो तो मैं जीवने का उपाय कहूंगा। जब वाने ऐसा कहा तब भामंडल अति प्रसन्न होय, द्वार आप समान अन्य सुभट मेल, ताहि लार लेय, श्रीराम पै आया। सो विद्याधर श्रीराम से नमस्कार कर कहता भया – हे देव! तुम खेद मत करो, लक्ष्मण कुमार निश्चयसेती जीवेगा।

देवगतिनामा नगर, तहां राजा शशिमंडल, राणी सुप्रभा, तिनका पुत्र मैं चन्द्रप्रीतम। सो एक दिन आकाशविषै विचरता हुता। सो राजा वेलाध्यक्ष का पुत्र सहस्रविजय, सो वासे मेरा यह वैर कि मैं वाकी मांग परणी। सो वह मेरा शत्रु, ताके अर मेरे महायुद्ध भया। सो तानैं चण्डरवा नाम शक्ति मेरे लगाई। सो मैं आकाश से अयोध्या के महेन्द्रनामा उद्यान में पड़ा। सो मोहि पड़ता देख अयोध्या के धनी राजा भरत आय ठाढे भए। शक्ति से विदारा मेरा वक्षस्थल देख, वे महा दयावान उत्तम पुरुष, जीवदाता मुझे चन्दन के जलकर छांटा। सो शक्ति निकस गई। मेरा जैसा रूप हुता वैसा होय गया। अर कुछ अधिक भया। वा नरेन्द्र भरत ने मोहि नवा जन्म दिया जाकर तिहारा दर्शन भया।

यह वचन सुन श्रीरामचन्द्र पूछते भए कि वा गन्धोदक की उत्पत्ति तू जानै है। तब ताने कहा – हे देव! जानूं हूं, तुम सुनो। मैं राजा भरत को पूछी अर ताने मोहि कही – जो यह हमारा समस्त देश रोगनिकर पीड़ित भया। सो काहू इलाज से अच्छा न होय। पृथ्वीविषै कौन कौन रोग उपजे सो सुनो – उरोघात महादाहज्वर, लालपरिश्राव सर्व शूल, अर छर्दि, सोई, फोड़े इत्यादि अनेक रोग सर्वदेश के प्राणियों को भए, मानों क्रोधकर रोगनि की धाड ही देशविषै आई। अर राजा द्रोणमेघ प्रजासहित नीरोग। तब मैं ताको बुलाया अर कही – हे माम! तुम जैसे नीरोग हो तैसा शीघ्र मोहि अर मेरी प्रजा को करो।

तब राजा द्रोणमेघ ने जाकी सुगन्धता से दशोंदिशा सुगन्ध होंय ता जलकर मोहि सींचा सो मैं चंगा भया। अर ता जलकर मेरा राजलोक भी चंगा अर नगर तथा देश चंगा भया, सर्व रोगनिवृत्त भए। सो हजारों रोगों की करणहारी, अत्यन्त दुस्सह वायु, मर्म की भेदनहारी ता जल से जाती रही। तब मैंने द्रोणमेघ को पूछा – यह जल कहां का है? जाकर सर्वरोग का विनाश होय। तब द्रोणमेघ ने कही – हे राजन्! मेरे विशल्यानामा पुत्री सर्वविद्याविषै प्रवीण, महागुणवती। सो जब गर्भ विषै आई तब मेरे देशविषै अनेक व्याधि हुती, सो पुत्री के गर्भविषै आवते ही सर्व रोग गए। पुत्री जिनशासनविषै प्रवीण है, भगवान की पूजाविषै तत्पर है, सर्व कुटुम्ब की पूजनीक है। ताके स्नान का यह जल है। ताके शरीर की सुगन्धता से जल महासुगन्ध है, क्षणमात्रविषै सर्व

रोग का विनाश करै है। ये वचन द्रोणमेघ के सुनकर मैं अचिरज कों प्राप्त भया। ताके नगरविषै जाय ताकी पुत्री की स्तुति करी।

अर नगरी से निकस सत्त्वरहित नामा मुनि को प्रणामकर पूछा – हे प्रभो! द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या का चरित्र कहो।

तब चार ज्ञान के धारक मुनि महावात्सल्य के धरणहारे कहते भए – हे भरत! महाविदेहक्षेत्रविषै स्वर्गसमान पुण्डरीक देश, तहां त्रिभुवनानन्द नामा नगर, तहां चक्रधर नामा चक्रवर्ती राजा राज्य करै। ताके पुत्री अनंगशरा, गुण ही हैं आभूषण जाके, स्त्रीनिविषै ता समान अद्भुत रूप और का नाहीं। सो एक प्रतिष्ठितपुर का धनी राजा पुनर्वसु विद्याधर चक्रवर्ती का सामन्त, सो कन्याकूं देख कामबाण कर पीडित होय, विमान में बैठाय लेय गया। सो चक्रवर्ती ने क्रोधायमान होय किंकर भेजे सो तासूं युद्ध करते भए। ताका विमान चूर डारा। तब ताने व्याकुल होय कन्या आकाशतैं डारी सो शरद के चन्द्रमा की ज्योति समान पुनर्वसु की पर्ण लघुविद्या कर अटवीविषै आय पड़ी। सो अटवी दुष्ट जीवनिकर महा भयानक, जाका नाम श्वापद रौरव, जहां विद्याधरों का भी प्रवेश नाहीं, वृक्षनि के समूहकर महा अंधकाररूप, नाना प्रकार की बेलनिकर बेढ़े नाना प्रकार के ऊंचे वृक्षनि की सघनता से जहां सूर्य की किरण का भी प्रवेश नाहीं, अर चीता, व्याघ्र, सिंह, अष्टापद, गैंड़ा, रीछ इत्यादि अनेक वनचर विचरैं।

अर नीची ऊंची विषम भूमि, जहां बड़े बड़े गर्त (गड्ढे), सो यह चक्रवर्ती की कन्या अनंगशरा बालिका अकेली ता वन में महा भयकर युक्त अति खेदखिन्न होती भई। नदी के तीर जाय दिशा अवलोक कर माता पिताकूं चितार रुदन करती भई – हाय! मैं चक्रवर्ती की पुत्री, मेरा पिता इन्द्रसमान, ताके मैं अति लाडली, दैवयोगकर या अवस्थाकूं प्राप्त भई। अब कहा करूं? या वन का छोर नाहीं, यह वन देख दुःख उपजे। हाय पिता! महा पराक्रमी! सकल लोक प्रसिद्ध! मैं या वन में असहाय पड़ी। मेरी दया कौन करै? हाय माता! ऐसे महादुःखकर मोहि गर्भ में राखी, अब काहे से मेरी दया न करो। हाय परिवार के उत्तम मनुष्य हो! एक क्षणमात्र मोहि न छोड़ते सो अब क्यों तज दीनी। अर मैं होती ही क्यों न मर गई, काहे से दुःख की भूमिका भई। चाही मृत्यु भी न मिलै, कहा करूं? कहां जाऊं? मैं पापिनी कैसे तिष्ठूं? यह स्वप्न है कि साक्षात् है।

या भांति चिरकाल विलाप कर महा विह्वल भई। ऐसे विलाप किए जिनकूं सुन महादुष्ट पशु का चित्त कोमल होय। यह दीनचित्त, क्षुधा तृषा से दग्ध, शोक के सागर में मग्न, फल पत्रादिक से कीनी है आजीविका जाने, कर्म के योग ता वन में कई शीतकाल पूर्ण किए। कैसे हैं शीतकाल? कमलनि के वन की शोभा का जो सर्वस्व ताके हरणहारे, अर जिनने अनेक ग्रीष्म

के आताप सहे। कैसे हैं ग्रीष्म आताप? सूखे हैं जलों के समूह, अर जले हैं दावानलों से अनेक वनवृक्ष, अर जरे हैं, मरे हैं अनेक जन्तु जहां, अर जाने ता वन में वर्षाकाल भी बहुत व्यतीत किए। ता समय जलधारा के अन्धकार कर दब गई है सूर्य की ज्योति, अर ताका शरीर वर्षा का धोया चित्राम के समान होय गया। कांतिरहित दुर्बल, बिखरे केश, मलयुक्त शरीर, लावण्यरहित ऐसा होय गया जैसे सूर्य के प्रकाशकर चन्द्रमा की कला का प्रकाश क्षीण होय जाय।

कैथ का वन फलनिकर नम्रीभूत वहां बैठी पिता को चितार या भांति के वचन कहकर रुदन करै कि मैं जो चक्रवर्ती के तो जन्म पाया अर पूर्व जन्म के पाप कर वनविषै ऐसी दु:ख अवस्था को प्राप्त भई। या भांति आंसुओं की वर्षा कर चातुर्मासिक किया। अर जे वृक्षों से टूटे फल सूख जांय तिनका भक्षण कर अर बेला तेला आदि अनेक उपवासनिकर क्षीण होय गया है शरीर जाका। सो केवल फल अर जलकर पारणा करती भई। अर एक ही बार जल ताही समय फल। वह चक्रवर्ती की पुत्री पुष्पनि की सेज पर सोवती अर अपने केश भी जाको चुभते सो विषम भूमि पर खेदसहित शयन करती भई। अर पिता के अनेक गुणीजन राग करते, तिनके शब्द सुन प्रबोधकूं पावती, सो अब स्याल आदि अनेक वनचरों के भयानक शब्दनिकरि रात्रि व्यतीत करती भई।

या भांति तीन हजार वर्ष तप किया। सूखे फल तथा सूखे पत्र अर पवित्र जल आहार किए अर महा वैराग्य को प्राप्त होय खान पान का त्यागकर धीरता धर संलेखणा मरण आरम्भा। एक सौ हाथ भूमि पावों से परै न जाऊं – यह नियम धारे तिष्ठी। आयु में छह दिन बाकी हुते। अर एक अरहदास नामा विद्याधर सुमेरु की वन्दना करके जावे था सो आय निकसा। सो चक्रवर्ती की पुत्री को देखे पिता के स्थानक ले जाना विचारा, संलेखणा के योगकर कन्या ने मने किया।

तब अरहदास शीघ्र ही चक्रवर्ती पर जाय चक्रवर्ती को लेय कन्या पै आया। सो जा समय चक्रवर्ती आया ता समय एक सर्प कन्या को भखे था। सो कन्या ने पिता को देख अजगर को अभयदान दिवाया। अर आप समाधि धारण कर शरीर तज तीजे स्वर्ग गई। पिता पुत्री की यह अवस्था देखकर बाईस हजार पुत्रनिसहित वैराग्य को प्राप्त होय मुनि भया। कन्या ने अजगर से क्षमा कर अजगर को पीड़ा न होने दई सो ऐसी दृढ़ता ताहीसूं बनै। अर वह पुनर्बसु विद्याधर अनंगशरा को देखता भया सो न पाई। तब खेदखिन्न होय द्रुमसेन मुनि के निकट मुनि होय महातप किया। सो स्वर्ग में देव होय महासुन्दर लक्ष्मण भया।

अर वह अनंगशरा चक्रवर्ती की पुत्री स्वर्गलोकतैं चयकर द्रोणमेघ के विशल्या भई। अर पुनर्वसु ने ताके निमित्त निदान किया हुता सो अब लक्ष्मण याहि वरेगा। यह विशल्या या नगरविषै, या देशविषै तथा भरतक्षेत्र में महागुणवंती है। पूर्वभव के तप के प्रभावकर महापवित्र है।

ताके स्नान का यह जल है सो सकल विकार को हरै है। याने उपसर्ग सहा, महातप किया ताका फल है। याके स्नान के जलकर जो तेरे देश में वायु विषम विकार उपजा हुता सो नाश भया।

ये मुनि के वचन सुन भरत ने मुनि से पूछी – हे प्रभो! मेरे देश में सर्व लोकों को रोगविकार कौन कारण से उपजा।

तब मुनि ने कहा – गजपुर नगरतैं एक व्यापारी, महा धनवन्त विन्ध्य नामा, सो रासभ (गधा) ऊंट, भैंसा लादे अयोध्या में आया। अर ग्यारह महीना अयोध्या में रहा। ताके एक भैंसा सो बहुत बोझ के लगने से घायल हुआ, तीव्र रोग के भार से पीड़ित या नगर में मूवा। सो अकामनिर्जरा के योगकर अश्वकेतुनामा वायुकुमार देव भया। जाका विद्यावर्त नाम। सो अवधिज्ञान से पूर्वभव को चितारा कि पूर्वभवविषै मैं भैंसा था, पीठ कटक रही हुती, अर महा रोगोंकर पीड़ित मार्गविषै कीच में पड़ा हुता सो लोक मेरे सिर पर पाव देय देय गए। यह लोक महा निर्दई। अब मैं देव भया सो मैं इनका निग्रह न करूं तो मैं देव काहे का? ऐसा विचार अयोध्या नगरविषै अर सुकौशल देश में वायु रोग विस्तारा। सो समस्त रोग विशल्या के चरणोदक के प्रभाव से विलय गया। बलवान से अधिक बलवान है। सो यह पूर्ण कथा मुनि ने भरत से कही, अर भरत ने मोसै कही? सो मैं समस्त तुमको कही। विशल्या का स्नानजल शीघ्र ही मंगावो, लक्ष्मण के जीवने का अन्य यत्न नाहीं। या भांति विद्याधर ने श्रीराम से कह्या सो सुनके प्रसन्न भये।

गौतम स्वामी कहै हैं कि हे श्रेणिक! जे पुण्याधिकारी हैं तिनको पुण्य के उदयकरि अनेक उपाय मिले हैं। अहो महंतजन हो! तिन्हें आपदाविषै अनेक उपाय सिद्ध होय हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै विशल्या का पूर्वभव वर्णन करने वाला चौसठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।64।।

अथानन्तर ये विद्याधर के वचन सुनकर राम ने समस्त विद्याधरनि सहित ताकी अति प्रशंसा करी। अर हनुमान, भामण्डल तथा अंगद इनकूं मंत्रकर अयोध्या की तरफ विदा किए। ये क्षणमात्र में गए जहां महाप्रतापी भरत विराजै हैं। सो भरत शयन करते हुते, तिनकूं रागकर जगावने का उद्यम किया, सो भरत जागते भए। तब ये मिले। सीता का हरण, रावण से युद्ध, अर लक्ष्मण के शक्ति का लगना ये समाचार सुन भरत को शोक अर क्रोध उपजा। अर ताही समय युद्ध भेरी दिवाई सो सम्पूर्ण अयोध्या के लोक व्याकुल भए। अर विचार करते भए यह राजमन्दिर में कहा कलकलाट शब्द है? आधी रात के समय कहा अतिवीर्य का पुत्र आय पड्या?

कोईयक सुभट अपनी स्त्रीसहित सोता हुता, ताहि तजकर अपने वक्तर पहिरे, अर खड्ग हाथ में सम्हारा। अर कोई एक मृगनैनी भौरे बालक की गोद लेय अर कुचों पर हाथ धर

दिशावलोकन करती भई। अर कोई एक स्त्री निद्रारहित भई सोते कंत को जगावती भई। अर कोई एक भरतजी का सेवक जानकर अपनी स्त्री को कहता भया – हे प्रिया! कहा सोवै है? आज अयोध्या में कछु भला नाहीं, राजमंदिर में प्रकाश होय रह्या है। अर रथ, हाथी घोड़े, प्यादे, राजद्वार की तरफ जाय हैं। जो सयाने मनुष्य हुते ते सब सावधान होय उठ खड़े हुए। अर कई एक पुरुष स्त्री से कहते भए – ये सुवर्ण कलश अर मणि रत्नों के पिटारे तहखानों में, अर सुन्दर वस्त्रों की पेटी भूमिगृह में धरो और भी द्रव्य ठिकाने धरो। अर शत्रुघ्न भाई निद्रा तज, हाथी चढ़ मंत्रियों सहित शस्त्रधारक योधावों को लेय राजद्वार आया। और भी अनेक राजा राजद्वार आए। सो भरत सबकूं युद्ध का आदेश देय उद्यमी भया।

तब भामण्डल हनुमान अंगद भरतकूं नमस्कार कर कहते भए – हे देव! लंकापुरी यहां से दूर है, अर बीच समुद्र है। तब भरत ने कही कहा करना? तब उन्होंने विशल्या का वृत्तांत कहा – हे प्रभो! राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या ताके स्नान का उदक देवहु, शीघ्र ही कृपा करहु, जो हम ले जांय। सूर्य का उदय भए लक्ष्मण का जीवना कठिन है। तब भरत ने कही ताके स्नान का जल क्या, वाही ले जावो। मोहि मुनि ने कही हुती यह विशल्या लक्ष्मण की स्त्री होयगी। तब द्रोणमेघ के निकट एक निज मनुष्य ताही समय पठाया। सो द्रोणमेघ ने लक्ष्मण के शक्ति लगी सुन अति कोप किया अर युद्धकूं उद्यमी भया। अर ताके पुत्र मंत्रिनि सहित युद्धकूं उद्यमी भए। तब भरत अर माता केकई ने आप द्रोणमेघ को जायकर ताको समझाय विशल्या को पठावना ठहराया।

तब भामण्डल, हनुमान, अंगद विशल्याकूं विमान में बैठाय, एक हजार अधिक राजा की कन्या साथ लेय कटक में आए। एक क्षणमात्र में संग्राम भूमि आय पहुँचे। विमान से कन्या उतरी। ऊपर चमर ढुरै हैं। कन्या के कमल सारिखे नेत्र। सो हाथी, घोड़े बड़े बड़े योधानि को देखती भई। ज्यों ज्यों विशल्या कटक में प्रवेश करै त्यों त्यों लक्ष्मण के शरीर में साता होती भई। वह शक्ति देवरूपिणी लक्ष्मण के अंग से निकसी, ज्योति के समूह से युक्त, मानों दुष्ट स्त्री घर से निकसी। दैदीप्यमान अग्नि के स्फुलिंगों के समूह आकाश में उछलते। सो वह शक्ति हनुमान ने पकड़ी।

दिव्य स्त्री का रूप धर तब हनुमान को हाथ जोड़ कहती भई – हे नाथ! प्रसन्न होवो, मोहि छांडो। मेरा अपराध नाहीं। हमारी यही रीति है कि हमको जो साधे हम ताके वशीभूत हैं। मैं अमोघविजिया नामा शक्ति विद्या तीन लोकविषै प्रसिद्ध हूं। सो कैलाश पर्वतविषै बालमुनि प्रतिमा जोग धरि तिष्ठै हुते। अर रावण ने भगवान के चैत्यालय में गान किया। अर अपने हाथनि की नस बजाई, अर जिनेन्द्र के चरित्र गाए। तब धरणेंद्र का आसन कम्पायमान भया। सो धरणेंद्र परम हर्ष घर आए। रावणसूं अति प्रसन्न होय मोहि सौंपी। रावण याचनाविषै कायर मोहि न इच्छै।

तब धरणेन्द्र ने हठकर दई। सो मैं महाविकरालस्वरूप जाके लागूं ताके प्राण हरूं, कोई मोहि निवार वे समर्थ नाहीं। एक या विशल्या सुन्दरी को टार, मैं देवों की जीतनहारी, सो मैं याके दर्शनहीतैं भाग जाऊं। याके प्रभावकर मैं शक्तिरहित भई।

तप का ऐसा प्रभाव है जो चाहे तो सूर्य को शीतल करै, अर चन्द्रमा को उष्ण करै। याने पूर्व जन्मविषै अति उग्र तप किए। मिझना के फूल समान याका सुकुमार शरीर सो याने तपविषै लगाया। ऐसा उग्र तप किया जो मुनिहूतैं न बनै। मेरे मन में संसारविषै यही भासै है – जो ऐसे तप प्राणी करै। वर्षा, शीतल, आताप, अर महा दुस्सह पवन, तिनसे यह सुमेरु की चूलिका समान न कांपी। धन्य रूप याका, धन्य याका साहस, धन्य याका धर्मविषै दृढ़ मन। याकासा तप और स्त्रीजन करने समर्थ नाहीं। सर्वथा जिनेन्द्र चन्द्र के मत के अनुसार जे तप को धारण करै हैं ते तीन लोक को जीतै हैं। अथवा या बात का कहा आश्चर्य? जो तप कर मोक्ष पाइए ताकर और कहा कठिन? मैं पराए आधीन जो मोहि चलावै ताके शत्रु का मैं नाश करूं। सो याने मोहि जीती। अब मैं अपने स्थानक जाऊं हूं। सो तुम तो मेरा अपराध क्षमा करहु।

या भांति शक्ति देवी ने कहा तब तत्त्व का जाननहारा हनुमान ताहि विदाकर अपनी सेना में आया। अर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या अति लज्जा भरी, राम के चरणारविंदकूं नमस्कार कर हाथ जोड़ ठाढ़ी भई। विद्याधर लोक प्रशंसा करते भए, अर नमस्कार करते भए, अर आशीर्वाद देते भए, जैसे इन्द्र के समीप शची जाय तिष्ठै तैसैं वह विशल्या सुलक्षणा, महा भाग्यवती, सखियों के वचन से लक्ष्मण के समीप तिष्ठी। वह नव यौवन, जाके मृगी कैसे नेत्र, पूर्णमासी के चन्द्रमा समान मुख जाका, अर महा अनुराग की भरी, उदार मन। पृथ्वीविषै सुख से सूते जो लक्ष्मण तिन को एकांतविषै स्पर्श कर अर अपने सुकुमार करकमल सुन्दर तिनकर पति के पांव पलोटने लगी। अर मलयागिरि चन्दन से पति का सर्व अंग लिप्त किया।

अर याकी लार हजार कन्या आई थीं – तिनने याके कर से चन्दन लेय विद्याधरनि के शरीर छांटे। सो सब घायल आछे भए। अर इन्द्रजीत कुम्भकरण मेघनाद घायल भए हुते सो उनको हू चन्दन के लेप से नीके किये। सो परम आनन्द को प्राप्त भए। जैसे कर्मरोगरहित सिद्धपरमेष्ठी परम आनन्द को पावैं। और भी जे योधा घायल भए हुते, हाथी, घोड़े पियादे सो अब नीके भए, घावों की शल्य जाती रही। सब कटक अच्छा भया। अर लक्ष्मण जैसे सूता जागै तैसे बीण के नाद सुन अति प्रसन्न भए। अर लक्ष्मण मोहशय्या छोड़ते भए। स्वांस लिए, आंख उघड़ी। उठकर क्रोध के भरे दशों दिशा निरखि ऐसे वचन कहते भए– कहां गया रावण, कहां गया वो रावण?

ये वचन सुन राम अति हर्षित भए। फूल गए हैं नेत्र कमल जिनके, महा आनन्द के भरे बड़े

भाई! रोमांच होय गया है शरीर में जिनके, अर अपनी भुजानिकर भाई से मिलते भए, अर कहते भए – हे भाई! वह पापी तोहि शक्ति से अचेत कर आपको कृतार्थ मान घर गया। अर या राजकन्या के प्रसादतैं तू नीका भया। अर जामवंत को आदि देय जब विद्याधरनि ने शक्ति के लागवे, ताहि निकसवे पर्यंत सर्व वृत्तांत कहा। अर लक्ष्मण ने विशल्या अनुराग की दृष्टिकरि देखी।

कैसी है विशल्या? श्वेत, श्याम अर रक्त तीन वर्ण कमल तिन समान है नेत्र जाके, अर शरद की पूर्णिमा के चन्द्रसमान है मुख जाका, अर कोमल शरीर, क्षीण कटि, दिग्गज के कुम्भस्थल समान स्तन हैं जाके, नव यौवन, मानों साक्षात् मूर्तिबन्ती काम की क्रीड़ा ही है, मानों तीन लोक की शोभा एकत्र कर नामकर्म ने याहि रचा है।

ताहि लक्ष्मण देख आश्चर्य को प्राप्त होय मन में विचारता भया, यह लक्ष्मी है, अक इन्द्र की इन्द्राणी है, अथवा चन्द्र की कांति है। यह विचार करै है। अर विशल्या की लार की स्त्री कहती भई – हे स्वामी! तिहारा यासूं विवाह का उत्सव हम चाहै हैं। तब लक्ष्मण मुलके, अर विशल्या का पाणिग्रहण किया, अर विशल्या की सर्व जगत में कीर्ति विस्तरी। या भांति जे उत्तम पुरुष हैं अर पूर्वजन्म में महा शुभ चेष्टा करी है तिनको मनोग्य वस्तु का संबंध होय है। अर चांद सूर्य की सी उनकी कांति होय है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै विशल्या का समागम वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व पूर्ण भया।।65।।

अथानन्तर लक्ष्मण का विशल्यासूं विवाह, अर शक्ति का निकासना, यह सब समाचार रावण ने हलकारनि के मुख सुने। अर सुनकर मुलकि कर मंदबुद्धि कर कहता भया– शक्ति निकसी तो कहा? अर विशल्या ब्याही तो कहा? तब मारीच आदि मंत्री मंत्र में प्रवीण कहते भए – हे देव! तिहारे कल्याण की बात यथार्थ कहेंगे। तुम कोप करो अथवा प्रसन्न होवो। सिंहवाहनी, गरुड़वाहनी विद्या राम लक्ष्मण को यत्न बिना सिद्ध भईं, सो तुम देखी। अर तिहारे दोऊ पुत्र अर भाई कुम्भकरण को तिन्होंने बांध लिए सो तुम देखे। अर तिहारी दिव्यशक्ति सो निरर्थक भई। तिहारे शत्रु महाप्रबल हैं। उन कर जो कदाचित् तुम जीते भी तो भ्राता पुत्रों का निश्चय नाश है।

तातैं ऐसा जानकर हम पर कृपा करो। हमारी विनती अब तक आपने कदापि भंग न करी। तातैं सीता को तजो, अर जो तिहारे धर्मबुद्धि सदा रही है सो राखहु। सर्व लोककूं कुशल होय। राघव से संधि करो। यह बात करने में दोष नाहीं। महागुण है। तुम ही कर सर्व लोकविषै मर्यादा चलै है । धर्म की उत्पत्ति तुमसे है, जैसे समुद्र तैं रत्ननि की उत्पत्ति होय। ऐसा कहकर बड़े मंत्री

हाथ जोड़ नमस्कार करते भए, अर हाथ जोड़ विनती करते भए। सबसे यह मंत्र किया जो एक सामंत दूतविद्याविषै प्रवीण, संधि के अर्थि राम पै पठाइये। सो एक बुद्धि से शुक्रसमान महातेजस्वी, प्रतापवान, मिष्टवादी ताहि बुलाया। सो मंत्रिनि ने महासुन्दर महाअमृत औषधि समान वचन कहे।

परन्तु रावण ने नेत्र की समस्या कर मंत्रिनि का अर्थ दूषित कर डाला। जैसे कोई विष से महाऔषधि को विषरूप कर डारे। तैसे रावण संधि की बात विग्रह रूप जताई। सो दूत स्वामी को नमस्कार कर जायवेकूं उद्यमी भया।

कैसा है दूत? बुद्धि के गर्वकर लोक को गोपद समान निरखै हैं। आकाश के मार्ग जाता राम के कटक को भयानक देख दूत को भय न उपजा। याके वादित्र सुन वानरवंशियों की सेना क्षोभ को प्राप्त भई। रावण के आगमन की शंका करी। जब नजीक आया तब जानी यह रावण नाहीं, कोई और पुरुष है। तब वानरवंशियों की सेना को विश्वास उपजा। दूत द्वारे आय पहुंचा। तब द्वारपाल ने भामण्डलसों कही। भामण्डल ने राम से विनती कर कहा। केतेक लोकनि सहित निकट बुलाया अर ताकी सेना कटक में उतरी।

राम से नमस्कार कर दूत वचन कहता भया – हे रघुनन्दन! मेरे वचननिकर मेरे स्वामी ने तुमको कुछ कहा है, सो चित्त लगाय सुनहु – युद्धकर कछु प्रयोजन नाहीं। आगे युद्ध के अभिमानी बहुत नाश को प्राप्त भए। तातैं प्रीति ही योग्य है। युद्धकर लोकनिका क्षय होय है। अर महादोष उपजै हैं, अपवाद होय है। आगे संग्राम की रुचिकर राजा दुर्वर्तक, शंख, धवलांग, असुर, सम्बरादि अनेक राजा नाश को प्राप्त भए। तातैं मेरे सहित तुमको प्रीति ही योग्य है। और जैसे सिंह महापर्वत की गुफा को पायकर सुखी होय है तैसे अपने मिलापकर सुख होय है। मैं रावण जगत प्रसिद्ध कहा तुमने न सुना। जाने इन्द्र से राजा बन्दीगृहविषै किए। जैसे कोई स्त्रीनि को अर सामान्य लोकों को पकड़े तैसे इन्द्र पकड़ा। अर जाकी आज्ञा सुर असुरनिकर न रोकी जाय। न पातालविषै, न जलविषै, न आकाशविषै, आज्ञा को कोई न रोक सके। नाना प्रकार के अनेक युद्धों का जीतनहारा, वीर लक्ष्मी जाको वरै, ऐसा मैं सो तुमको सागरांत पृथ्वी विद्याधरों से मंडित दूं हूं। अर लंका के दोय भागकर बांट दूं हूं।

भावार्थ – समस्त राज्य अर आधी लंका दू हूं। तुम मेरा भाई, अर दोनों पुत्र मोपै पठावो, अर सीता मोहि देवो जाकर सब कुशल होय। अर जो तुम यों न करोगे तो जो मेरे पुत्र भाई बन्धन में हैं तिनको तो बलात्कार छुटाय लूंगा अर तुमको कुशल नाहीं।

तब राम बोले मोहि राज्य से प्रयोजन नाहीं, अर और स्त्रियों से प्रयोजन नाहीं। सीता हमारे

पठावो, हम तिहारे दोऊ पुत्र अर भाई को पठावें। अर तिहारी लंका तिहारे ही रही। अर समस्त राज्य तुम ही करो। मैं सीतासहित दुष्ट जीवनसंयुक्त जो वन ताविषै सुखसूं विचरूंगा। हे दूत! तू लंका के धनी से जाय कह – याही बात में तिहारा कल्याण है, और भांति नाहीं।

ऐसे श्रीराम के सर्व पूज्य वचन, सुख साताकर संयुक्त, तिनकों सुनकर दूत कहता भया – हे नृपति! तुम राज काज विषै समझते नाहीं, मैं तुमकूं बहुरि कल्याण की बात कहूं हूं। निर्भय होय समुद्र उलंघ आए हो सो नीके न करी। अर यह जानकी की आशा तुमकों भली नाहीं। यदि लंकेश्वर कोप भया जब जानकी की कहा बात? तिहारा जीवना भी कठिन है। अर राजनीतिविषै ऐसा कहा है जे बुद्धिमान हैं तिनको निरन्तर अपने शरीर की रक्षा करनी, स्त्री अर धन इन पर दृष्टि न धरनी।

अर जो गरुडेन्द्र ने सिंहवाहन, गरुड़वाहन तुम पै भेजे तो कहा? अर तुम छल छिद्र कर मेरे पुत्र अर सहोदर बांधे तो कहा? जोंलग मैं जीवूं हूं तोलग इन बातों का गर्व तुमको वृथा है। जो तुम युद्ध करोगे तो न जानकी का न तिहारा जीवन। तातैं दोऊ मत खोवहु, सीता का हठ छांडहू। अर रावण यह कही है जे बड़े बड़े राजा विद्याधर इन्द्रतुल्य पराक्रम जिनके, सो समस्त शास्त्रविषै प्रवीण, अनेक युद्धनि के जीतनहारे, ते मैं नाश को प्राप्त किए हैं। तिनके कैलाश पर्वत के शिखर हाडन के समूह देखो।

जब ऐसा दूत ने कहा – तब भामण्डल क्रोधायमान भया, ज्वाला समान महा विकराल मुख, ताकी ज्योति से प्रकाश किया है आकाशविषै जानैं। भामण्डल ने कही – रे पापी दूत! स्याल! चातुर्यता रहित! दुर्बुद्धि! वृथा शंकारहित कहा भासै है? सीता की कहा वार्ता? सीता तो राम लेहींगे। यदि श्रीराम कोपे तब रावण राक्षस कुचेष्टि पशु कहा? ऐसा कहता के मारवेकूं खड्ग सम्हार्‌या। तब लक्ष्मण ने हाथ पकड़े अर मने किया। कैसे हैं लक्ष्मण? नीति ही हैं नेत्र जिनके, भामण्डल के क्रोधकर रक्त नेत्र होय गए, वक्र होय गये, जैसी सांझ की लालकी होय तैसा लाल बदन होय गया। तब मंत्रिनि ने योग्य उपदेश कहे, समताकूं प्राप्त किया। जैसैं विष का भरा सर्प मंत्र से वश कीजिए है।

हे नरेन्द्र! क्रोध तजो, यह दीन तिहारे योग्य नाहीं। यह तो पराया किंकर है जो वह कहावै सो कहे। याके मारवेकर कहा? स्त्री, बालक, दूत, पशु, पक्षी, वृद्ध, रोगी, सोता, आयुधरहित, शरणागत, तपस्वी, गाय ये सर्वथा अबध्य है। जैसैं सिंह कारी घटा समान गाजते जे गज तिनका मर्दन करनहारा सो मींड़कनि पर कोप न करै तैसैं तुमसे नृपति दूत पर कोप न करैं। यह तो वाके शब्दानुसार हैं। जैसैं छायापुरुष है (छाया पुरुष की अनुगामिनी है) अर सूवा को ज्यों पढ़ावैं तैसैं

पढ़े, अर यंत्र का ज्यों बजावैं त्यों बजै, तैसैं यह दीन वह बकावै त्यों बकै। ऐसे शब्द लक्ष्मण ने कहे तब सीता का भाई भामण्डल शांतचित्त भया।

श्रीराम दूत को प्रकट कहते भए – रे मूढ़ दूत! तू शीघ्र ही जाकर अर रावण को ऐसे कहियो – तू ऐसे मूढ़ मंत्रियों का बहकाया, खोटे उपायकर आपा ठगावेगा। तू अपनी बुद्धि कर विचार, किसी कुबुद्धि को पूछै मत, सीता का प्रसंग तज, सर्व पृथ्वी का इन्द्र हो पुष्पक विमान में बैठा जैसैं भ्रमै था तैसैं विभव सहित भ्रम। यह मिथ्या हठ छोड़ दे, क्षुद्रनि की बात मत सुनहु, करने योग्य कार्यविषै चित्त धर जो सुख की प्राप्ति होय। ये वचन कह श्रीराम तो चुप होय रहे अर और पुरुषनि ने दूत को बहुरि बात न करने दई निकाल दिया। दूत को राम के अनुचरनि ने तीक्ष्ण बाणरूप वचकनिकर बींधा अर अति निरादर किया।

तब रावण के निकट गया, मनविषै पीड़ा थका। सो जायकर रावणसूं कहता भया – हे नाथ! मैं तिहारे आदेश प्रमाण रामसों कही – जो या पृथ्वी नाना देशनिकर पूर्ण, समुद्रांत महा रत्ननि की भरी, विद्याधरों के समस्त पट्टनसहित मैं तुमको दूंहूं अर बड़े बड़े हाथी रथ तुरंग दूं हूं, अर यह पुष्पक तुमको विमान लेवहु जो देवों से न निवारा जाय याविषै बैठ विचरो। अर तीन हजार कन्यायें अपने परिवार की परणाय दूं। अर सिंहासन सूर्य समान अर चन्द्रमा समान छत्र वे लेहु, अर निःकंटक राज करो, ऐसी बात मुझे प्रमाण है जो तिहारी आज्ञाकर सीता मोहि इच्छे। यह धन अर धरा लेवो, अर मैं अल्प विभूति राखि बैंत ही के सिंहासन पर रहूंगा। विचक्षण हो तो एक वचन मेरा मानहु – सीता मोहि देवहु। ए वचन मैं बार-बार कहे सो रघुनन्दन सीता का हठ न छोड़े। केवल वाके सीता का अनुराग है और वस्तु की इच्छा नाहीं।

हे देव! जैसैं मुनि महा शांतचित्त अठाईस मूलगुणों की क्रिया न तजे, वह क्रिया मुनिव्रत का मूल है तैसैं राम सीताकूं न तजै। सीता ही राम के सर्वस्व है। कैसी है सीता? त्रैलोक्यविषै ऐसी सुन्दरी नाहीं। अर राम ने तुमसूं यह कही है कि – हे दशानन! ऐसे सर्वलोकनिंद्य वचन तुमसे पुरुषनिकूं कहना योग्य नाहीं। ऐसे वचन पापी कहै हैं। उनकी जीभ के सौ टूक क्यों न होय? मेरे या सीता बिना इन्द्र के भोगनिकर कार्य नाहीं। यह सर्व पृथ्वी तू भोग, मैं बनवास ही करूंगा। अर तू परदारा हरकर मरवे को उद्यमी भया है तो मैं अपनी स्त्री के अर्थ क्यों न मारूंगा? अर मुझे तीन हजार कन्या देहै, सो मेरे अर्थ नाहीं। मैं वन के फल अर पत्रादिक ही भोजन करूंगा, अर सीता सहित वन में विहार करूंगा।

अर कपिध्वजों का स्वामी सुग्रीव ताने हंसकर मोहि कही – जो कहा तेरा स्वामी आग्रहरूप ग्रह के वश भया है? कोऊ वायु का विकार उपजा है जो ऐसी विपरीति वार्ता रंक हूवा बकै है।

अर कहा लंका में कोऊ वैद्य नाहीं, अक मंत्रवादी नाहीं, वाय के तैलादिक कर यत्न क्यों न करै? नातर संग्रामविषै लक्ष्मण सर्वरोग निवारेगा भावार्थ – मारेगा।

तब यह वचन सुन मैं क्रोधरूप अग्निकर प्रज्वलित भया अर सुग्रीवसूं कही – रे वानरध्वज! तू ऐसे बकै हैं जैसे गज के लार स्वान बकै। तू राम के गर्वकर मूवा चाहै है जो चक्रवर्तीकूं निन्दा के वचन कहै है। सो मेरे अर सुग्रीव के बहुत बात भई। अर रामसों कहा – हे राम! तुम महारणविषै रावण का पराक्रम न देखा। कोऊ तिहारे पुण्य के योग कर वह वीर विकराल क्षमा में आया है। वह कैलाश का उठावनहारा, तीन जगत में प्रसिद्ध प्रतापी, तुमसे हित किया चाहै है, अर राज्य देय है, ता समान और कहा? तुम अपनी भुजानिकर दशमुखरूपसमुद्रकूं कैसै तरौगे? कैसा है दशमुखरूपसमुद्र? प्रचण्ड सेना, सोई भई तरंगनि की माला, तिनकर पूर्ण है, अर शस्त्ररूप जलचरनि के समूहकर भरा है।

हे राम! तुम कैसे रावणरूप भयंकर वनविषै प्रवेश करोगे? कैसा है रावणरूप वन? दुर्गम कहिए जाविषै प्रवेश करना कठिन है। अर व्याल कहिए दुष्ट गज, तेई भए नाग तिनकर पूर्ण है। अर सेनारूप वृक्षनि के समूह कर महा विषम है। हे राम! जैसे कमलपत्र की पवनकर सुमेरु न डिगै, अर सूर्य की किरण कर समुद्र न सूकै, अर बलद के सींगों से धरती न उठाई जाय, तैसैं तुम सारिखे नरनिकर नरपति दशानन जीता न जाय। ऐसे प्रचंड वचन मैं कहे तब भामण्डल ने महाक्रोधरूप होय मोहि मारिवेकूं खड्ग काढ्या। तब लक्ष्मण ने मनै किया जो दूतकूं मारना न्याय में नहीं कहा। स्याल पर सिंह कोप न करै, जो सिंह गजेन्द्र के कुम्भस्थल अपने नखनि से विदारैं।

तातैं हे भामण्डल! प्रसन्न होहु, क्रोध तजहु। जे शूरवीर नृपति हैं, महा तेजस्वी, ते दीननि पर प्रहार न करैं। जो भयकर कम्पायमान होय ताहि न हनै, श्रमण कहिए मुनि, अर ब्राह्मण कहिए व्रतधारी गृहस्थी, अर शून्य कहिए सूना, अर स्त्री बालक, वृद्ध, पशु, पक्षी दूत ये अबध्य हैं। इनको शूरवीर सर्वथा न हनैं। इत्यादि वचननि के समूहकर लक्ष्मण महापंडित ताने समझाय भामंडलकूं प्रसन्न किया।

अर कपिध्वजनि के कुमार महाक्रूर तिन वज्र समान वचननिकर मोहि बींधा। तब मैं उनके असार वचन सुन, आकाश में गमनकर, आयु कर्म के योग से आपके निकट आया हूं। हे देव! जो लक्ष्मण न होय तो आज मेरा मरण ही होता। जो शत्रुनि के अर मेरे विवाद भया सो मैं सब आपसूं कहा, मैं कछु शंका न राखी! अब आपके मन में जो होय सो करो। हम सारिखे किंकर तो वचन करै हैं जो कहो सो करैं। या भांति दूत दशमुख से कहता भया।

यह कथा गौतम गणधर श्रेणिक से कहै हैं – हे श्रेणिक! जो अनेक शास्त्रनि के समूह जानें,

अर अनेक नयविषै प्रवीण होय, अर जाके मंत्री भी निपुण होय, अर सूर्य सारिखा तेजस्वी होय तथापि मोहरूप मेघपटलकर आच्छादित भया प्रकाशरहित होय है। यह मोह महा अज्ञान का मूल विवेकियों को तजना योग्य है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण के दूत का आगमन बहुरि पाछा रावण पास गमन वर्णन करने वाला छियासठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।66।।

अथानन्तर लंकेश्वर अपने दूत के वचन सुन, क्षण एक मंत्र के ज्ञाता मंत्रियों से मंत्रकर कपोल पर हाथ धर, अधोमुख होय कछुएक चिंतारूप तिष्ठा। अपने मन में विचारै है जो शत्रुकूं युद्धविषै जीतूं हूं तो भ्राता पुत्रनि की अकुशल दीखै है। अर जो कदाचित् वैरिनि के कटक में रतिहावकर कुमारनिकूं ले आऊं तो या शूरता में न्यूनता है। रतिहाव क्षत्रियों के योग्य नाहीं। कहा करूं? कैसे मोहि सुख होय? यह विचार करते रावणकूं यह बुद्धि उपजी जो मैं बहुरूपिणी विद्या साधूं। कैसी है बहुरूपिणी? जो कदाचित् देव युद्ध करैं तो भी न जीती जाय। ऐसा विचारकर सर्व सेवकनिकूं आज्ञा करी- श्रीशांतिनाथ के मन्दिर में समीचीन तोरणादिकनिकर अति शोभा करहु। सो सर्व चैत्यालयनि में विशेष पूजा करहु। सर्व भार पूजा प्रभावना का मंदोदरी के सिर पर धरया।

गौतम गणधर कहे हैं – हे श्रेणिक! वह श्रीमुनिसुव्रतनाथ बीसमां तीर्थंकर का समय, ता समय या भरतक्षेत्रविषै सर्वठौर जिनमन्दिर हुते। यह पृथ्वी जिनमंदिरनिकर मंडित हुती। चतुरविध संघ की विशेष प्रवृत्ति, राजा, श्रेष्ठि, ग्रामपति अर प्रजा के लोग सकल जैनी हुते। सो महारमणीक जिनमंदिर रचते। जिनमंदिर जिनशासन के भक्त जो देव तिनसे शोभायमान। वे देव धर्म की रक्षा में प्रवीण, शुभकार्य के करणहारे। ता समय पृथ्वी भव्यजीवनिकरि भरी ऐसी सोहती मानों स्वर्गविमान ही है। ठौर ठौर पूजा, ठौर ठौर प्रभावना, ठौर ठौर दान।

हे मगधाधिपति! पर्वत पर्वतविषै गांव गांवविषै नगर नगरविषै, वन वन विषै, मन्दिर मन्दिर विषै, जिनमंदिर हुते। महा शोभाकर संयुक्त, शरद के पूनों की चन्द्रमा समान उज्ज्वल, गीतों की ध्वनिकर मनोहर, नाना प्रकार के वादित्रनि के शब्दकर मानों समुद्र गाजै है। अर तीनों संध्या वंदनाकूं लोग आवैं। सो साधुवों के संग से पूर्ण, नाना प्रकार के आश्चर्यकर संयुक्त, नाना प्रकार के चित्राम कों धरें, अगर चंदन का धूप अर पुष्पनि की सुगन्धकर महा सुगन्धमई, महा विभूतिकरि युक्त, नाना प्रकार कर शोभित, महा विस्तीर्ण, महा उतंग, महा ध्वजानिकर विराजित, तिनमें रत्नमई तथा स्वर्णमई पंचवर्ण की प्रतिमा विराजैं। विद्याधरनि के स्थानविषै अति सुन्दर जिनमंदिरनि के शिखर तिनकर अति शोभा होय रही है। ता समय नाना प्रकार के रत्नमई उपवनादि शोभित

जे जिनभवन तिनकर यह जगत् व्याप्त। अर इन्द्र के नगर समान लंका का अंतर बाहिर जिनेन्द्र के मंदिरनिकर मनोग्य था। सो रावण ने विशेष शोभा कराई। अर आप रावण, अठारह हजार राणी, वेई भईं कमलनि के वन, तिनको प्रफुल्लितकर्त्ता वर्षा के मेघ समान है स्वरूप जाका, सो महा नागसमान है भुजा जाकी, पूर्णमासी के चन्द्रमा समान बदन, सुन्दर केतकी के फूल समान लाल होंठ, विस्तीर्ण नेत्र, स्त्रीनि का मन हरणहारा, लक्ष्मण समान श्याम सुन्दर, दिव्यरूप का धरणहारा, सो अपने मंदिरनिविषै तथा सर्व क्षेत्रविषै जिनमंदिरनि की शोभा करावता भया।

कैसा है रावण का घर? लग रहे हैं लोगनि के नेत्र जहां, अर जिनमंदिरनि की पंक्तिकर मंडित, नाना प्रकार के रत्नमई मंदिर के मध्य उतंग श्रीशांतिनाथ का चैत्यालय, जहां भगवान शांतिनाथ जिनकी प्रतिमा विराजै। जे भव्य जीव हैं ते सकल लोकचरित्र को असार अशास्वता जानकर धर्मविषै बुद्धि धरैं, जिनमंदिरनि की महिमा करैं। कैसे हैं जिनमंदिर? जगतकर बंदनीक हैं, अर इन्द्र के मुकुट के शिखरविषै लगे जे रत्न तिनकी ज्योति को अपने चरणनि के नखों की ज्योति कर बढ़ावनहारे हैं। धन पावने का यही फल जो धर्म करिए। सो गृहस्थ का धर्म दान पूजारूप, अर यति का धर्म शांतभावरूप। या जगतविषै यह जिनधर्म मनवांछित फल का देनहार है। जैसे सूर्य के प्रकाशकर नेत्रनि के धारक पदार्थनि का अवलोकन करै हैं तैसैं जिन धर्म के प्रकाश कर भव्यजीव निज भाव का अवलोकन करै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै श्रीशांतिनाथ के चैत्यालय का वर्णन करने वाला सरसठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।67।।

अथानन्तर फाल्गुण सुदी अष्टमीसूं लेय पूर्णमासी पर्यंत सिद्धचक्र का व्रत है, जाहि अष्टाह्निका कहै हैं। सो इन आठ दिननि में लंका के लोग अर लशकर के लोग नियम ग्रहण को उद्यमी भए। सर्व सेना के उत्तम लोक मन में यह धारणा करते भए जो यह आठ दिन धर्म के हैं सो इन दिननि में न युद्ध करैं, न और आरम्भ करैं, यथाशक्ति कल्याण के अर्थ भगवान की पूजा करेंगे, अर उपवासादि नियम करेंगे। इन दिननि विषै देव भी पूजा प्रभावनाविषै तत्पर होय हैं। क्षीरसागर के जे सुवर्ण के कलश जलकर भरे तिनकर देव भगवान का अभिषेक करै हैं। कैसा है जल? सत्पुरुषनि के यशसमान उज्ज्वल। अर और भी जे मनुष्यादिक हैं तिनकूं भी अपनी शक्तिप्रमाण पूजा अभिषेक करना। इन्द्रादिक देव नन्दीश्वर द्वीप जायकर जिनेश्वर का अर्चन करै है, तो कहा ये मनुष्य अपनी शक्तिप्रमाण यहां के चैत्यालयनि का पूजन न करैं? करैं ही करैं।

देव स्वर्णरत्ननि के कलशनिकरि अभिषेक करैं हैं अर मनुष्य अपनी सम्पदा प्रमाण करै। महा निर्धन मनुष्य होय तो पलाशपत्रनि के पुट ही से अभिषेक करैं। देव रत्न स्वर्ण के कमलनि से पूजा

करैं हैं, निर्धन मनुष्य चित्त ही रूप कमलनि से पूजा करै हैं। लंका के लोक यह विचार कर भगवान के चैत्यालयनिकूं उत्साहसहित ध्वजा पताकादिकर शोभित करते भए। वस्त्र स्वर्ण रत्नादि कर अति शोभा करी। रत्ननि की रज अर कनकरज तिनके मंडल मांडे, अर देवालयनि के द्वार अति सिंगारे, अर मणि सुवर्ण के कलश कमलनि से ढके दधि दुग्ध-घृतादि से पूर्ण, मोतियों की माला है कंठ में जिनके, रत्ननि की कांतिकर शोभित, जिनबिंबों के अभिषेक के अर्थ भक्तिवंत लोक लाये।

जहां भोगी पुरुषों के घर में सैकड़ों हजारों मणिसुवर्णों के कलश हैं, नन्दनवन के पुष्प, अर लंका के वननि के नाना प्रकार के पुष्प कर्णिकार अतिमुक्त कदम्ब सहकार चम्पक पारिजात मन्दार जिनकी सुगन्धताकर भ्रमरनि के समूह गुंजार करै हैं, अर मणि सुवर्णादिक के कमल तिनकर पूजा करते भए। अर ढोल, मृदंग, ताल, शंख इत्यादि अनेक वादित्रनि के नाद होते भए। लंकापुर के निवासी वैर तज आनन्दरूप होय आठ दिन में भगवान की अति महिमाकर पूजा करते भए। जैसैं नंदीश्वर द्वीपविषै देव पूजा के उद्यमी होय तैसै लंका के लोक लंकाविषै पूजा के ही उद्यमी भए। अर रावण विस्तीर्ण प्रताप का धारक श्री शांतिनाथ के मन्दिरविषै जाय पवित्र होय भक्तिकर महा मनोहर पूजा करता भया, जैसैं पहिले प्रतिवासुदेव करै।

गौतम गणधर कहै हैं - हे श्रेणिक! जे महा विभवकर युक्त भगवान के भक्त महाविभूतिवंत अति महिमाकर प्रभु का पूजन करै हैं तिनिके पुण्य के समूह का व्याख्यान कौन कर सकै? वे उत्तम पुरुष देवगति के सुख भोगैं, बहुरि चक्रवर्तियों के भोग पावैं, बहुरि राज्य तज जैनमत के व्रत धार महा तपकर परम मुक्ति पावैं। कैसा है तप? सूर्यहूतैं अधिक है तेज जाका।

इति श्री रविषेणाचार्य महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै श्रीशांतिनाथ के चैत्यालयविषै अष्टाह्निका का उत्सव वर्णन करने वाला अरसठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।68।।

अथानन्तर महाशांति का कारण श्रीशांतिनाथ का मन्दिर, कैलाश के शिखर अर शरद के मेघ समान उज्ज्वल महा देदीप्यमान मन्दिरों की पंक्तिकर मंडित जैसैं जम्बूद्वीप मध्य महा उतंग सुमेरु पर्वत सोहै तैसैं रावण के मंदिर के मध्य जिनमंदिर सोहता भया। तहां रावण जाय विद्या के साधन में आसक्त है चित्त जाका, अर स्थिर निश्चय जाका परम अद्भुत पूजा करता भया। भगवान का अभिषेक कर अनेक वादित्र बजावता अति मनोहर द्रव्यनिकर महासुगन्ध धूपकर नाना प्रकार की सामग्री कर ([1]अत्यन्त मनोहर मालाओं, धूपों, नैवेद्यों के उपहारों-और उत्तम वर्ण के विलेपनों से) शांतचित्त भया शांतिनाथ की पूजा करता भया, मानों दूजा इन्द्र ही है। शुक्ल वस्त्र पहिरे महासुन्दर जे भुजबंध तिनकर शोभित हैं भुजा जाकी, सिर के केश भली भांति बांध, तिनपर मुकुट

धर, तापर चूड़ामणि लहलहाट करती महाज्योतिकूं धरे, रावण दोनों हाथ जोड़ गोड़ों से धरतीकूं स्पर्शता, मन वचन कायकर शांतिनाथकूं प्रणाम करता भया।

श्रीशांतिनाथ के सन्मुख निर्मल भूमि में खड़ा अत्यन्त शोभता भया। कैसी है भूमि? पद्मराग मणि की है फर्श जाविषै। अर रावण स्फटिकमणि की माला हाथविषै अर उरविषै धरे कैसा सोहता भया? मानों बकपंक्तिकर संयुक्त कारी घटा का समूह ही है। वह राक्षसनि का अधिपति महाधीर विद्या का साधन आरम्भता भया। जब शांतिनाथ के चैत्यालय गया ता पहिले मंदोदरी को यह आज्ञा करी, जो तुम मंत्रिनिकूं अर कोटपालकूं बुलायकर यह घोषणा नगर में फेरियो जो सर्वलोक दयाविषै तत्पर नियम धर्म के धारक होवै। समस्त व्यापार तज जिनेन्द्र की पूजा करहु। अर अर्थी लोगनिकूं मनवांछित धन देवहु, अहंकार तजहु। जौलग मेरा नियम न पूरा होय तौलग समस्त लोग श्रद्धाविषै तत्पर संयमरूप रहो। जो कदाचित् कोई बाधा करै तो निश्चयसेती सहियो। महाबलवान होय सो बल का गर्व न करियो।

इन दिवसनिविषै जो कोऊ विकार करेगा सो अवश्य सजा पावेगा। जो मेरे पितासमान पूज्य होय अर इन दिननिविषै कषाय करै, कलह करै ताहि मैं मारूं। जो पुरुष समाधिमरणकर युक्त न होय सो संसारसमुद्र को न तिरै। जैसैं अंधपुरुष पदार्थनिकूं न परखे तैसैं अविवेकी धर्मकूं न निरखें। तातैं सब विवेकरूप रहियो, कोऊ पापक्रिया न करने पावै। यह आज्ञा मंदोदरी मंत्रियों को अर यमदंडनामा कोटपालकूं द्वारे बुलाय पति की आज्ञा प्रमाण आज्ञा करती भई। तब सबने कही जो आज्ञा होयगी सो ही करेंगे। यह कह आज्ञा सिर पर धर घर गए, अर संयमसहित नियम धर्म के उद्यमी होय नृप की आज्ञा प्रमाण करते भए। समस्त प्रजा के लोग जिनपूजाविषै अनुरागी होते भए। अर समस्त कार्य तज सूर्य की कांतितैं हू अधिक है कांति जिनकी ऐसे जे जिनमंदिर तिनविषै तिष्ठे, निर्मल भावकर युक्त संयम नियम का साधन करते भये।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लंका के लोगनि का अनेकानेक नियम धारण वर्णन करने वाला उनत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।69।।

अथानन्तर श्रीराम के कटक में हलकारों के मुख यह समाचार आए कि रावण बहुरूपिणी विद्या के साधन को उद्यमी भया। श्री शांतिनाथ के मंदिर में विद्या साधे है। चौबीस दिन में यह बहुरूपिणी विद्या सिद्ध होयगी। यह विद्या ऐसी प्रबल है जो देवनि का मद हरै। सो समस्त कपिध्वजनि ने यह विचार किया कि जो वह नियम में बैठा विद्या साधै है सो ताको क्रोध उपजावें, जो ताकों यह विद्या सिद्ध न होय। तातैं रावण को कोप उपजावने का यत्न करना, जो वाने विद्या

सिद्ध कर पाई तो इन्द्रादिक देवनिकर हू न जीता जाय, हम सारिखे रंकनि की कहा बात?

तब विभीषण कही – जो कोप उपजावने का उपाय करो शीघ्र ही करो। तब सबने मंत्र कर रामसूं कहा कि यह लंका लेने का समय है। रावण के कार्य में विघ्न करिए अर अपनेकूं जो करना होय सो करिए। तब कपिध्वजनि के यह वचन सुन श्री रामचन्द्र महाधीर महा पुरुषनि की है चेष्टा जिनकी, सो कहते भए – हो विद्याधर हो! तुम महामूढ़ता के वचन कहो हो, क्षत्रिनि के कुल का यह धर्म नाहीं जो ऐसे कार्य करें। अपने कुल की यह रीति है जो भयकर भाजे ताका वध न करना। तो जे नियमधारी जिनमन्दिर में बैठे हैं तिनसे उपद्रव कैसे करिए? यह नीचनि के कर्म हैं, सो कुलवंतनि को योग्य नाहीं। यह अन्याय प्रवृत्ति क्षत्रियनि की नाहीं। कैसे हैं क्षत्री? महामान्य भाव अर शस्त्रकर्मविषै प्रवीण।

यह वचन राम के सुन सबने विचारी जो हमारा प्रभु श्रीराम महा धर्मधारी है, उत्तम भाव का धारक है सो इनकी कदाचित् हू अधर्मविषै प्रवृत्ति न होयगी। तब लक्ष्मण की जान में इन विद्याधरनि ने अपने कुमार उपद्रव को विदा किए। अर सुग्रीवादिक बड़े बड़े पुरुष आठ दिन का नियम धर तिष्ठे। अर पूर्ण चन्द्रमा समान बदन जिनके, कमल समान नेत्र, नाना लक्षण के धरणहारे, सिंह, व्याघ्र, वराह, गज, अष्टापद इनकर युक्त जे रथ तिनविषै बैठे, तथा विमाननि में बैठे, परम आयुधनि को धरे, कपियों के कुमार रावण को कोप उपजायवे का अभिप्राय जिनके, मानों यह असुर कुमार देव ही हैं। प्रीतन्कर दृढ़रथ, चन्द्राहु, रतिवर्धन, वातायन, गुरुभार सूर्यज्योति, महारथ सामंत बल, नन्दन, सर्वदृष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, सागर घोष पुत्र सहित पूर्ण चन्द्रमा, स्कंध चन्द्र मारीच जांवत संकट समाधि बहुल सिंहकट चन्द्रासन इन्द्रमणि बल तुरग सब इत्यादि अनेक कुमार तुरंगनि के रथ चढ़े अर कई एक सिंह, बराह, गज, व्याघ्र इत्यादि मनहूतैं चंचल जे बाहन तिनपर चढ़े, पयादनि के पटल तिनके मध्य महातेज को धरे नाना प्रकार के चिह्न तिनकरि युक्त है छत्र जिनके, अर नाना प्रकार की ध्वजा फहरै हैं जिनके, महागम्भीर शब्द करते, दशोंदिशा को आच्छादित करते, लंकापुरी में प्रवेश करते भए।

मनविषै विचार करते भए बड़ा आश्चर्य है जो लंका के लोक निश्चिंत तिष्ठै है। जानिये है कछू संग्राम का भय नाहीं! अहो। लंकेश्वर बड़ा धीर्य! महागम्भीरता देखहु जो कुम्भकरण सो भाई अर इन्द्रजीत मेघनाद से पुत्र पकड़े गए हैं तो हू चिंता नाहीं। अर अक्षादिक अनेक योधा युद्धविषै हते गए, प्रहस्त सेनापति मारे गए तथापि लंकापति को शंका माहीं। ऐसा चिंतवन करते परस्पर वार्तालाप करते नगर में बैठे।

तथा विभीषण का पुत्र सुभूषण कपि कुमारनिकूं कहता भया – तुम निर्भय लंका में प्रवेश

करहु। बाल वृद्ध स्त्री इनसूं तो कछू न कहना, अर सबकूं व्याकुल करेंगे। तब याका वचन मान विद्याधर कुमार महाउद्धत, कलहप्रिय, आशीविष समान प्रचण्ड, व्रतरहित, चपल, चंचल, लंकाविषै उपद्रव करते भए। सो तिनके महा भयानक शब्द सुन लोक अति व्याकुल भए। अर रावण के महल हू में व्याकुलता भई। जैसे तीव्र पवनकर समुद्र क्षोभकूं प्राप्त होय तैसे लंका कपि कुमारनिसूं उद्वेग को प्राप्त भई। रावण के महिलविषै राजलोकनिकूं चिंता उपजी। कैसा है रावण का मन्दिर? रत्ननि की कांतिकर दैदीप्यमान है। अर जहां मृगादिक के मंगल शब्द होवै हैं, जहां निरन्तर स्त्रीजन नृत्य करैं हैं, अर जिनपूजाविषै उद्यमी राजकन्या धर्म मार्गविषै आरूढ़। सो शत्रुसेना के क्रूर शब्द सुन आकुलता उपजी। स्त्रीनि के आभूषणनि के शब्द होते भए मानों बीणा बाजै हैं।

सब मन में विचारती भईं – न जानिए कहा होय? या भांति समस्त नगरी के लोग व्याकुलताकूं प्राप्त होय विह्वल भए। तब मन्दोदरी का पिता राजा मय, विद्याधरनिविषै दैत्य कहावै सो सब सेनासहित वक्तर पहिर आयुध धार, महा पराक्रमी युद्ध के अर्थ उद्यमी होय राजद्वार आया, जैसे इन्द्र के भवन हिरण्यकेशी देव आवै।

तब मन्दोदरी पिता से कहती भई – हे तात! जा समय लंकेश्वर मन्दिर पधारे ता समय आज्ञा करी जो सब लोक सम्बररूप रहियो, कोई कषाय मत करियो। तातैं तुम कषाय मत करहु। ये दिन धर्मध्यान के हैं सो धर्म सेवो और भांति करोगे तो स्वामी की आज्ञा भंग होयगी, अर तुम भला फल न पावोगे। ये वचन पुत्री के सुन राजा मय उद्धतता तज, महा शांति होय, शस्त्र डारते भए, जैसे अस्त समय सूर्य किरणों को तजै। मणियों के कुण्डलनि कर मंडित अर हार कर शोभै है वक्षस्थल जाका, अपने जिनमन्दिर में प्रवेश करता भया। अर ये वानरवंशी विद्याधरनि के कुमारनि ने निज मर्यादा तज नगर का कोट भंग किया, वज्र के कपाट तोड़े, दरवाजे तोड़े।

अथानन्तर इनको देख नगर के वासियों को अति भय उपज्या। घर घर में ये बात होय है भजकर कहां जाइए। ये आए, बाहिर खड़े मत रहो, भीतर धसो, हाय मात यह कहा भया? हे तात! देखो, हे भ्रात! हमारी रक्षा करो, हे आर्यपुत्र! महाभय उपजा है, ठिकाने रहो। या भांति नगरी के लोक व्याकुलता के वचन कहते भए। लोक भाग रावण के महलविषै आए। अपने वस्त्र हाथनि में लिए अति विह्वल, बालकनि को गोद में लिए स्त्रीजन कांपती भागी जाय हैं। कईयक गिर पड़ी, सो गोड़े फूट गए।

कईएक चली जाय हैं, हार टूट गए सो बड़े बड़े मोती बिखरै हैं। जैसे मेघमाला शीघ्र जाय तैसै जाय है। त्रास को पाई जो हिरणी ता समान हैं नेत्र जिनके, अर ढीले होय गए हैं केशनि के बंधन जिनके, अर कोई भयकर प्रीतम के उर से लिपट गईं। या भांति लोकनि को उद्वेगरूप महा

भयभीत देख जिनशासन के देव, श्री शांतिनाथ के मन्दिर के सेवक, अपनी पक्ष के पालने को उद्यमी, करुणावंत जिनशासन के प्रभाव करनेकूं उद्यमी भए। महाभैरव आकार धरे शांतिनाथ के मन्दिर से निकसे, नाना भेष धरे, विकराल हैं दाढ़ जिनकी, भयंकर है मुख जिनका, मध्याह्न के सूर्य समान तेज हैं नेत्र जिनके, होंठ डसते, दीर्घ है काया जिनकी, नाना वर्ण, भयंकर शब्द, महा विषम भेष को धरे, विकराल स्वरूप, तिनकूं देख कर वानरवंशियों के पुत्र महा भयकर अत्यन्त विह्वल भए। वे देव क्षणविषै सिंह, क्षणविषै मेघ, क्षणविषै हाथी, क्षणविषै सर्प, क्षणविषै वायु, क्षणविषै वृक्ष, क्षणविषै पर्वत, सो इनकर कपिकुमारनि को पीड़ित देख कटक के देव मदद करते भए। देवनि में परस्पर युद्ध भया।

लंका के देव कटक के देवनि से, अर कपिकुमार लंका के सन्मुख भए। तब यक्षनि के स्वामी पूर्णभद्र मणिभद्र महाक्रोधकूं प्राप्त भए। दोनों यक्षेश्वर परस्पर वार्ता करते भए, देखो ए निर्दई कपिनि के पुत्र महाविकारकूं प्राप्त भए। रावण तो निराहार होय देहविषै निस्पृह सर्व जगत का कार्य तज पोसे बैठा है। सो ऐसे शांतिचित्तकूं यह छिद्र पाय पापी पीड़ा चाहे हैं, सो यह योधावों की चेष्टा नाहीं। यह वचन पूर्णभद्र के सुन मणिभद्र बोला - अहो पूर्णभद्र! रावण का इन्द्र भी पराभव करिवे समर्थ नाहीं, रावण सुन्दर लक्षणनिकर पूर्ण शांत स्वभाव है।

तब पूर्णभद्र ने कही - जो लंका को विघ्न उपजा है सो आपां दूर करेंगे। यह वचन कह दोनों धीर सम्यक्दृष्टि जिनधर्मी यक्षनि के ईश्वर युद्धकूं उद्यमी भए। सो वानरवंशिनि के कुमार और उनके पक्षी देव सब भागे। वे दोनों यक्षेश्वर महावायु चलाय, पाषाण बरसावते भए, अर प्रलय काल के मेघ समान गाजते भए। तिनके जांघों की पवनकर कपिदल सूखे पान की न्याईं उड़े, तत्काल भाग गए। तिनके लार ही ये दोनों यक्षेश्वर राम के निकट उलाहना देने को आए। सो पूर्णभद्र सुबुद्धि राम को स्तुति कर कहते भए - राजा दशरथ महाधर्मात्मा तिनके तुम पुत्र, अर अयोग्य कार्य के त्यागी, सदा योग्य कार्यनि के उद्यमी, शास्त्रसमुद्र के पारगामी, शुभ गुणनिकर सकलविषै ऊंचे, तिहारी सेना लंका के लोकनिकूं उपद्रव करै यह कहां की बात? जो जाका द्रव्य हरै सो ताका प्राण हरै है, यह धन जीवनि के बाह्य प्राण हैं। अमोलिक हीरे वैडूर्य मणि मूंगा मोती पद्मराग मणि इत्यादि अनेक रत्ननिकरि भरी लंका उद्वेग को प्राप्त करी।

तब यह वचन पूर्णभद्र के सुन राम का सेवक गरुड़केतु कहिए लक्ष्मण नीलकमल समान, सो तेज से विविध रूप वचन कहता भया। ये श्रीरघुचन्द तिनके राणी सीता प्राणहूंतें प्यारी। शीलरूप आभूषण की धरणहारी वह दुरात्मा रावण छलकर हर ले गया ताका पक्ष तुम कहा करो? हे यक्षेन्द्र! हमने तिहारा कहा अपराध किया? अर तानैं कहा किया जो तुम भृकुटी बांकी कर अर

संध्या की ललाई समान अरुण नेत्र कर उलहना देने को आए। सो योग्य नाहीं। ऐती वार्ता लक्ष्मण ने कही अर राजा सुग्रीव अति भयरूप होय पूणभद्र को अर्घ देय कहता भया – हे यक्षेन्द्र! क्रोध तजो, अर हम लंकाविषै कछु उपद्रव न करें। परन्तु यह वार्ता है रावण बहुरूपिणी विद्या साधे है सो जो कदाचित् ताकूं विद्या सिद्ध होय तो वाके सन्मुख कोई ठहर न सकै, जैसैं जिनधर्म के पाठक के सन्मुख वादी न टिकैं। तातैं वह क्षमावंत होय विद्या साधै है, सो ताकूं क्रोध उपजावेंगे जो विद्या साध न सकै, जैसैं मिथ्यादृष्टि मोक्षकूं साध न सके।

तब पूर्णभद्र बोले – ऐसे ही करो, परन्तु लंका के एक जीर्ण तृनकूं भी बाधा न कर सकोगे। अर तुम रावण के अंग को बाधा मत करो, अर अन्य बातनिकरि क्रोध उपजावो। परन्तु रावण अतिदृढ़ है ताहि क्रोध उपजना कठिन है। ऐसे कह वे दोनों यक्षेन्द्र भव्यजीवनिविषै है वात्सल्य जिनका, प्रसन्न हैं नेत्र जिनके, मुनिनि के समूहों के भक्त, वैयाव्रतविषै उद्यमी, जिनधर्मी अपने स्थानक गए। राम को उलहना देने आए थे सो लक्ष्मण के वचननि कर लज्जावान भए, समभावकर अपने स्थानक गए सो जाए तिष्ठे।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! जौलग निर्दोषता होय तौलग परस्पर अति प्रीति होय अर सदोषता भए प्रीतिभंग होय, जैसे सूर्य उत्पात सहित होय तो नीका न लगै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण का विद्या साधना अर कपिकुमारनि का लंका गमन, बहुरि पूर्णभद्र मणिभद्र का कोप, क्रोध की शांति वर्णन करने वाला सत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।70।।

अथानन्तर पूर्णभद्र मणिभद्रकूं शांतभाव जान सुग्रीव का पुत्र अंगद तानै लंकाविषै प्रवेश किया। सो अंगद किहकंधनामा हाथी चढ्या, मोतिनि की माला कर शोभित, उज्ज्वल चमरनिकर युक्त ऐसा सोहता भया जैसा मेघमालाविषै पूर्णमासी का चन्द्रमा सौहे। अति उदार, महा सामंत, तथा स्कंध इन्द्र नील आदि बड़ी ऋद्धि कर मंडित तुरंगनि पर चढ़े कुमार गमन को उद्यमी भए। अर अनेक पयादे चन्दन कर चर्चित हैं अंग जिनके, तांबुलनिकर लाल अधर, कांधे ऊपर खड्ग धरे, सुन्दर वस्त्र पहिरे, स्वर्ण के आभूषणकर शोभित सुन्दर चेष्टा धरै आगे पीछे अगल बगल पयादे चले जांय है। वीण बांसुरी मृदंगादि वादित्र बाजै है, नृत्य होता जाय है। कपिवंशियों के कुमार लंकाविषै ऐसे पैठे जैसैं स्वर्गपुरीविषै असुरकुमार प्रवेश करै हैं।

अंगदकूं लंकाविषै प्रवेश करता देख स्त्रीजन परस्पर वार्ता करती भईं – देखहु! यह अंगद रूप चन्द्रमा दशमुख की नगरीविषै निर्भय चला जाय है याने कहा आरम्भा? आगे अब कहा होयगा? या भांति लोक बात करै हैं। ए चले चले रावण के मंदिरविषै गए। सो मणियों का चौक देख

इन्होंने जानी ये सरोवर हैं। त्रास को प्राप्त भए। बहुरि निश्चय देख मणियों का चौक जाना तब आगे गए। सुमेरु की गुफा समान महारत्ननिकर निर्मापित मंदिर का द्वार देख्या। मणियों के तोरणनिकर दैदीप्यमान तहां अंजन पर्वत सारिखे इन्द्रनीलमणिनि के गज देखे। महास्कंध कुम्भस्थल, जिनके स्थूल दन्त अत्यन्त मनोज्ञ, अर तिनके मस्तक पर सिंहनि के चिह्न, जिनके सिर पर पूंछ, हाथिनि के कुम्भस्थल पर सिंह, विकराल वदन, तीक्ष्ण दाढ़, डरावने केश, तिनको देख पयादे डरे। जानिए सांचे ही हाथी हैं। तब भयकर भागे अति विह्वल भए।

अंगद ने नीके समझाए तब आगे चले। रावण के महिलविषै कपिवंशी ऐसे जावैं जैसे सिंह की गुफाविषै मृग जांय। अनेक द्वार उलंघ आगे जायवेकूं समर्थ भए। घरनि की रचना गहन सो ऐसे भटकैं जैसैं जन्म का अंधा भ्रमै। स्फटिकमणि के महिल, तहां आकाश की आशंका कर भ्रमकूं प्राप्त भए। अर इन्द्र नीलमणि की भीति सो अंधकारस्वरूप भासै। मस्तकविषै शिला की लागी सो आकुल होय भूमि में पड़े। वेदनाकर व्याकुल हैं नेत्र जिनके, काहू प्रकार मार्ग पाय आगे गए जहां स्फटिक मणि की भीति। सो घननि के गोड़े फूटे, ललाट फूटे, दुखी भए। तब उलटे फिरे सो मार्ग न पावैं। आगे एक रत्नमई स्त्री देखी। साक्षात् स्त्री जान तासैं पूछते भए सो वह कहा कहै? तब महा शंका के भरे आगे गए। विह्वल होय स्फटिकमणि की भूमि में पड़े। आगे शांतिनाथ के मंदिर का शिखर नजर आया, परन्तु जाय सकै नाहीं, स्फटिक की भीति आड़ी। तब वह स्त्री दृष्टि पड़ी थी त्यों एक रत्नमई द्वारपाल दृष्टि पर्‍या, हेमरूप बैंत की छड़ी जाके हाथ में।

ताहि कही – श्री शांतिनाथ के मंदिर का मार्ग बताओ। सो वह कहा बतावै? तब वाहि हाथसूं कूट्या सो कूटनहारे की अंगुरी चूर्ण होय गई। बहुरि आगे गए, जाना यह इन्द्रनीलमणि का द्वार है, शांतिनाथ के चैत्यालय में जाने की बुद्धि करी, कुटिल हैं भाव जिनके। आगे एक वचन बोलता मनुष्य देखा ताके केश पकड़े अर कहा तू हमारे आगे आगे चल। शांतिनाथ का मंदिर दिखाय। जब वह अग्रगामी भया तब ए निराकुल भए। श्री शांतिनाथ के मंदिर जाय पहुंचे। पुष्पांजलि चढ़ाय जयजय शब्द किए, स्फटिक के थम्बनि के ऊपर बड़ा विस्तार देख्या सो अचरजकूं प्राप्त भए। मन में विचारते भए जैसैं चक्रवर्ती के मंदिर में जिनमंदिर होय तैसैं हैं। अंगद पहिले ही वाहनादिक तज भीतर गया। ललाट पर दोनों हाथ धर नमस्कार करि तीन प्रदक्षिणा देय स्तोत्र पाठ करता भया, सेना लार थी सो बाहिरले चौकविषै छांड़ी कैसा है अंगद? फूल रहे हैं नेत्र जाके, रत्ननि के चित्रामकर मंडल लिखा सोलह स्वप्ने का भाव देखकर नमस्कार किया, आदि मंडप की भीतिविषै वह धीर भगवान को नमस्कार कर शांतिनाथ के मंदिर विषै गया। अति हर्ष का भरा भगवान की वंदना करता भया।

बहुरि देखै तो सन्मुख रावण पद्मासन धरै तिष्ठै है। इन्द्रनीलमणि की किरणनि के समूह समान है प्रभा जाकी। भगवान के सन्मुख कैसा बैठा है जैसे सूर्य के सन्मुख राहु बैठा होय। विद्या को ध्यावै जैसैं भरत जिनदीक्षा को ध्यावै। सो रावणसूं अंगद कहता भया – हे रावण! कहो अब तेरी कहा वार्ता? तोसूं ऐसी करूं जैसी यम न करै। तैने कहा पाखण्ड रोप्या? भगवान के सन्मुख यह पाखण्ड कहा? धिक्कार तो पापकर्मीकूं वृथा शुभक्रिया का आरम्भ किया है। ऐसा कहकरि याका उत्तरासन उतार्‌या। अर याकी रानीनिकूं याके आगे कूटता भया। कठोर वचन कहता भया। अर रावण के पास पुष्प पड़े हुते सो उठाय लीए अर स्वर्ण के कमलनिकर भगवान की पूजा करी।

बहुरि रावणसूं कुवचन कहता भया। अर रावण के हाथ में स्फटिक की माला छिनाय लई, सो मणियां बिखर गईं। बहुरि मणियें चुनि, माला पोय, रावण के हाथविषै दई, बहुरि छिनाय लई। बहुरि पोय गलेविषै डाली, बहुरि मस्तक पर मेली। बहुरि रावण का राजलोक, सोई भया कमलनि का बन, ताविषै ग्रीष्मकर तप्तायमान जो वन का हाथी ताकी न्याईं प्रवेश किया। अर नि:शंक भया राजलोक में उपद्रव करता भया। जैसैं चंचल घोड़ा कूदता फिरै तैसैं चपलता करि भ्रमण किया। काहू के कंठविषै कपड़े का रस्सा बनाय बांध्या, अर काहू के कंठविषै उत्तरासन डार थम्भविषै बांध बहुरि छोड़ दिया। काहू को पकड़ अपने मनुष्यनि से कही याहि बेच आवो। ताने हंसकर कही पांच दीनारनि को बेच आया।

या भांति अनेक चेष्टा करीं। काहू के काननविषै घुंघरू घाले, अर केशनिविषै कटिमेखला पहिराई, काहू के मस्तक का चूड़ामणि उतार चरणनिविषै पहिराया। अर काहू को परस्पर केशनिकर बांधी, अर काहू के मस्तकविषै शब्द करते मोर बैठाए।

या भांति जैसैं सांड गायनि के समूहविषै प्रवेश करै अर तिनकूं अति व्याकुल करै तैसैं रावण के समीप सब राजलोकनिकूं क्लेश उपजाया। अर अंगद क्रोधकर रावणसूं कहता भया – हे अधम राक्षस! तैनें कपटकर सीता हरी, अब हम तेरी समस्त स्त्रीनिकूं हरै हैं। तो मैं शक्ति होय तो यत्न कर। ऐसा कहकर याकै आगे मंदोदरीकूं पकड़ ल्याया जैसैं मृगराज मृगीकूं पकड़ ल्यावै, कम्पायमान हैं नेत्र जाके। चोटी पकड़ रावण के निकट खींचता भया जैसैं भरत राज्यलक्ष्मी को खींचै अर रावणसूं कहता भया – देख! यह पटरानी तेरे जीवहूतैं प्यारी मंदोदरी गुणवंती ताहि हम हर ले जाय हैं। यह सुग्रीव के चमरग्राहिणी चेरी होयगी। सो मंदोदरी आंखनितैं आंसू डारती भई अर विलाप करने लगी।

रावण के पायनविषै प्रवेश करै, कभी भुजानिविषै प्रवेश करै, अर भरतारसों कहती भई – हे नाथ! मेरी रक्षा करहु। ऐसी दशा मेरी कहा न देखो हो, तुम क्या और ही होय गए? तुम रावण

हो अक और ही हो। अहो जैसी निरग्रंथ मुनि की वीतरागता होय तैसी तुम वीतरागता पकड़ी। सो ऐसे दु:ख में यह अवस्था कहा? धिक्कार तिहारे बल को, जो या पापी का सिर खड्गसों न काटो। तुम महा बलवान चांद सूर्य समान पुरुषों का पराभव न सहो सो ऐसे रंक का कैसे सहो? हे लंकेश्वर! ध्यानविषै चित्त लगाया, न काहू की सुनो न देखो, अर्धपर्यंकासन धर बैठे अहंकार तज दिया। जैसा सुमेरू का शिखर अचल होय, तैसें अचल होय तिष्ठे। सर्व इन्द्रियनि की क्रिया तजी, विद्या के आराधनविषै तत्पर निश्चल शरीर महाधीर ऐसे तिष्ठे हो मानों काष्ठ के अथवा चित्राम के हो? जैसें राम सीता को चिंतवें तैसें तुम विद्या को चिंतवौं हो, स्थिरता कर सुमेरु के तुल्य भए हो।

जब या भांति मंदोदरी रावण से कहती भई ताही समय बहुरूपिणी विद्या दशोदिशाविषै उद्योत करती जय जयकार का शब्द उचारती रावण के समीप आय ठाढ़ी भई, अर कहती भई – हे देव! आज्ञा में उद्यमी मैं तुमको सिद्ध भई, मोहि आदेश देवहु। एक चक्री अर्धचक्री को टार तिहारी आज्ञा से विमुख होय ताहि वश करूं। या लोकविषै तिहारी आज्ञाकरिणी हूं। हम सारिखनि की यही रीति है जो हम चक्रवर्तियों से समर्थ नाहीं। जो तू कहे तो सर्व दैत्यनि को जीतूं, देवनिकूं वश करूं, जो तोसै अप्रिय होय ताहि वशीभूत करूं। अर विद्याधर तो मेरे तृणसमान हैं। यह विद्या के वचन सुन रावण योग पूर्ण कर ज्योति का धारक, उदार चेष्टा का धरणहारा शांतिनाथ के चैत्यालय की प्रदक्षिणा करता भया। ताही समय अंगद मंदोदरी को छांड आकाश गमन कर राम के समीप आया, कैसा है अंगद? सूर्य समान है तेज जाका।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै श्रीशांतिनाथ के मंदिर में रावण को बहुरूपिणी विद्या के सिद्ध होने का वर्णन करने वाला इकहत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।71।।

अथानन्तर रावण की अट्ठारह हजार स्त्री रावण के पास एक साथ सब ही रुदन करती भईं, सुन्दर है दर्शन जिनका। हे स्वामिन्! सर्व विद्याधरनि के अधीश! तुम हमारे प्रभु सो तुमको होते संते मूर्ख अंगद ने आयकर हमारा अपमान किया। तुम परम तेज के धारक सूर्य समान सो ध्यानारूढ़ हुते, अर विद्याधर आगिया समान, सो तिहारे मुह आगिला छोहरा सुग्रीव का पुत्र पापी हमको उपद्रव करै। सुनकर तिनके वचन रावण सबकी दिलासा करता भया अर कहता भया – हे प्रिये! वह पापी ऐसी चेष्टा करै है सो मृत्यु के पाशकर बंधा है। तुम दुख तजो जैसें सदा आनन्दरूप रहो हो ताही भांति रहो। मैं सुग्रीव को निग्रीव कहिए मस्तक रहित भूमि पर प्रभात ही करूंगा।

अर वे दोनों भाई राम लक्ष्मण भूमिगोचरी कीट समान हैं तिनपर कहा कोप? ये दुष्ट विद्याधर सब इन पै भेले भए हैं तिनका क्षय करूंगा। हे प्रिये! मेरी भोंह टेढ़ी करने ही में शत्रु विलाय जांय। अर अब तो बहुरूपिणी महाविद्या सिद्ध भई मोसे शत्रु कहा जीवें। या भांति सब स्त्रीनिकूं महाधीर्य बंधाय मन में जानता भया मैं शत्रु हते। भगवान के मंदिर से बाहिर निकसा। नाना प्रकार के वादित्र बाजते भए, गीत नृत्य होते भए। रावण का अभिषेक भया। कामदेव समान है रूप जाका, स्वर्ण रत्ननि के कलशनिकर स्त्री स्नान करावती भईं। कैसी हैं स्त्री? कांतिरूप चांदनी से मंडित है शरीर जिनका, चन्द्रमा समान बदन, अर सफेद मणिनि के कलशनिकर स्नान करावें। सो अद्भुत ज्योति भासती भईं। अर कई स्त्री कमल समान कांति को धरे मानों सांझ फूल रही है। अर उगते सूर्य समान सुवर्ण के कलशनिकर स्नान करावें सो मानों सांझ ही जल बरसै है। अर कई एक स्त्री हरितमणि के कलशनिकर स्नान करावती अति हर्ष की भरी शोभै हैं, मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हैं, कमलपत्र है कलशनि के मुख पर। अर कई एक केले के गर्भ समान कोमल महासुगन्ध शरीर जिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं, वे नाना प्रकार के सुगन्ध उबटनाकरि रावण को नाना प्रकार के रत्नजड़ित सिंहासनविषै स्नान करावती भई।

सो रावण ने स्नान कर आभूषण पहिरे, महा सावधान भावनिकर पूर्ण शांतिनाथ के मंदिर में गया। वहां अरहंतदेव की पूजा कर स्तुति करता भया, बारंबार नमस्कार भया। बहुरि भोजनशाला में आया, चार प्रकार का उत्तम आहार किया – अशन पान खाद्य स्वाद्य। बहुरि भोजनकर विद्या की परख निमित्त क्रीड़ा भूमिविषै गया, वहां विद्याकर अनेक रूप बनाय नाना प्रकार के अद्भुत कर्म विद्याधरनि से न बनै सो बहुरूपिणी विद्या से किए। अपने हाथ को घातकरि भूकम्प किया। राम के कटकविषै कपियों को ऐसा भय उपजा मानों मृत्यु ही आई।

अर रावणकूं मंत्री कहते भए – हे नाथ! तुम टार राघव का जीतनहारा और नाहीं। राम महायोधा हैं और क्रोधवान होवैं तब कहा कहना? सो ताके सन्मुख तुम ही आवहु अर कोई रणविषै राम के सन्मुख आवने को समर्थ नाहीं।

अथानन्तर रावण ने बहुरूपिणी विद्या से मायामई कटक बनाया। अर आप उद्यानविषै जहां सीता तिष्ठे तहां गया। मंत्रिनिकरि मंडित जैसैं देवनिकर संयुक्त इन्द्र होय, सो सूर्य समान कांतिकरि युक्त आवता भया। तब ताकूं आवता देख विद्याधरी सीतासों कहती भई – हे शुभे! महाज्योतिवंत रावण पुष्पक विमान से उतरकर आया। जैसैं ग्रीष्म ऋतुविषै सूर्य की किरणकरि आतापकूं पाता गजेन्द्र सरोवरी की ओर आवै तैसैं कामरूप अग्नि से तापरूप भया आवै है। यह प्रमदनामा उद्यान पुष्पनि की शोभाकर शोभित, जहां भ्रमर गुंजार करै हैं। तब सीता बहुरूपिणी

विद्याकर संयुक्त रावणकूं देखकर भयभीत भई। मन में विचारै है याके बल का पार नाहीं। सो राम लक्ष्मण हू याहि न जीतैंगे। मैं मंदभागिनी रामकूं अथवा लक्ष्मणकूं अथवा अपने भाई भामंडलकूं मत हना सुनूं।

यह विचार कर व्याकुल है चित्त जाका, कांपती चिंतारूप तिष्ठै है। तहां रावण आया, सो कहता भया – हे देवी! मैं पापी ने तुझे कपटकर हरी। सो यह बात क्षत्रीकुलविषै उत्पन्न भए हैं जे धीर अतिवीर तिनको सर्वथा उचित नाहीं। परन्तु कर्म की गति ऐसी है। मोहकर्म बलवान है। अर मैं पूर्व अनन्तवीर्य स्वामी के समीप व्रत लिया हुता जो परनारी मोहि न इच्छै ताहि मैं न ग्रहूं। उर्वसी, रंभा अथवा और मनोहर होय तौ भी मेरे प्रयोजन नाहीं। यह प्रतिज्ञा पालते संते मैं तेरी कृपा ही की अभिलाषा करी, परन्तु बलात्कार रमी नाहीं। हे जगतविषै उत्तम सुन्दरी! अब मेरी भुजानिकर चलाए जे बाण तिनसे तेरे अवलंबन राम लक्ष्मण भिदे ही जान। अर तू मेरे संग पुष्पक विमान में बैठ आनन्द से विहार कर। सुमेरु शिखर, चैत्य वृक्ष, अनेक वन उपवन, नदी सरोवर अवलोकन करती विहार कर।

तब सीता दोऊ हाथ काननि पर धर गद्‌गद वाणी से दीन शब्द कहती भई – हे दशानन! तू बड़े कुलविषै उपजा है तो यह करियो–जो कदाचित् संग्रामविषै तेरे अर मेरे वल्लभ के शस्त्रप्रहार होय, तो पहले यह संदेशा कहे बगैर मेरे कंथकूं मत हतियो! यह कहियो – हे पद्म! भामंडल की बहिन ने तुमकूं यह कहा है– जो तिहारे वियोगकरि महाशोक के भारकरि महा दुखी हूं, मेरे प्राण तिहारे तक ही हैं, मेरी दशा यह भई है जैसैं पवन की हती दीपक की शिखा। हे राजा दशरथ के पुत्र! जनक की पुत्री ने तुमकूं बारम्बार स्तुतिकर यह कही हैं – तिहारे दर्शन की अभिलाषा कर यह प्राण टिक रहे हैं। ऐसा कहकर मूर्छित होय भूमि में पड़ी, जैसैं माते हाथीतैं भग्न करी कल्पवृक्ष की बेल गिर पड़े।

यह अवस्था महासती की देख रावण का मन कोमल भया, परम दुःखी भया– यह चिंता करता भया अहो कर्मनि के योगकर इनका निःसंदेह स्नेह का क्षय नाहीं। अर धिक्कार मोकूं मैं अति अयोग्य कार्य किया जो ऐसे स्नेहवान युगल का वियोग किया। पापाचारी महानीच जन समान मैं निःकारण अपयशरूप मल से लिप्त भया। शुद्ध चन्द्रमा समान गोत्र हमारा, मैं मलिन किया। मेरे समान दुरात्मा का जन्म मेरे वंश में न भया। ऐसा कार्य काहू ने न किया। जे पुरुषों में इन्द्र हैं ते नारी को तुच्छ गिनै हैं। यह स्त्री साक्षात् विषतुल्य है, क्लेश की उत्पत्ति का स्थानक सर्प के मस्तक की मणि समान, अर महा मोह का कारण। प्रथम तो स्त्रीमात्र ही निषिद्ध है। अर परस्त्री की कहा बात? सर्वथा त्याज्य ही है। परस्त्री नदी समान कुटिल, महा भयंकर, धर्म अर्थ

का नाश करणहारी, सदा संतों को त्याज्य ही है। मैं महा पाप की खान, अब तक यह सीता मुझे देवांगनाहूतैं अति प्रिय भासती भई? सो अब विष के कुम्भतुल्य भासै है। यह तो केवल रामसूं अनुरागिनी है। अब लग यह न इच्छती थी परन्तु मेरे अभिलाषा हुती। अब जीर्ण तृणवत् भासै है। यह तो केवल राम से तन्मय है, मौसूं कदाचित् न मिलै।

मेरा भाई महापंडित विभीषण सब जानता हुता सो मोहि बहुत समझाया। मेरा मन विकार कूं प्राप्त भया सो न मानी, तासूं द्वेष किया। जब विभीषण वचननिकरि मैत्री भाव करता तो नीकै था। महायुद्ध भया, अनेक हते गए। अब कैसी मित्रता? यह मित्रता सुभटनिकूं योग्य नाहीं। अर युद्ध करके बहुरि दया पालनी यह बनै नाहीं। अहो? मैं सामान्य मनुष्य की नाईं संकट में पड़ा हूं। जो कदाचित् जानकी राम पै पठावै तो लोग मोहि असमर्थ जानैं। अर युद्ध करिए तो महाहिंसा होय। कोई ऐसे हैं जिनके दया नाहीं केवल क्रूरतारूप हैं, ते भी कालक्षेप करै हैं। अर कोईयक दयावान हैं, संसार कार्य से रहित हैं ते सुख से जीवै हैं। मैं मानी युद्धाभिलाषी, अर कछु करुणाभाव नाहीं, सो हम सारिखे महादुखी हैं। अर राम के सिंहवाहन अर लक्ष्मण के गरुड़वाहन विद्या सो इनकर महाउद्योत है। सो इनकूं शस्त्ररहित करूं अर जीवते पकडूं। बहुरि बहुत धन दूं तो मेरी बड़ी कीर्ति होय। अर मोहि पाप न होय यह न्याय है। तातैं यही करूं।

ऐसा मन में धारे महा विभवसंयुक्त रावण राजलोकविषै गया जैसैं माता हाथी कमलनि के वनविषै जाय। बहुरि विचारी अंगद ने बहुत अनीति क्रोध किया अर लाल नेत्र होय आए। रावण होंठ डसता वचन कहता भया – वह पापी सुग्रीव नाहीं दुर्ग्रीव है। ताहि निर्ग्रीव कहिए मस्तक रहित करूंगा। ताके पुत्र अंगदसहित चन्द्रहास खड्गकर दोय टूक करूंगा। अर तमोमंडल को लोक भामंडल कहै हैं सो वह महादुष्ट है, ताहि दृढ़बंधन से बांधि लोह के मुगदरों से कूट मारूंगा। अर हनुमानकूं तीक्ष्ण करोंत की धार से काठ के युगल में बान्ध बिहराऊंगा। वह महा अनीति है। एक राम न्यायमार्गी है ताहि छाडूंगा। अर समस्त अन्यायमार्गी हैं तिनकूं शस्त्रनिकर चूर डारूंगा। ऐसा विचारकर रावण तिष्ठा।

अर उत्पात सैकड़ों होने लगे, सूर्य का मण्डल आयुध समान तीक्ष्ण दृष्टि पड़ा। पूर्णमासी का चन्द्रमा अस्त होय गया। आसन पर भूकम्प भया। दशोंदिशा कम्पायमान भईं। उल्कापात भए। शृगाली (गीदड़ी) विरस शब्द बोलती भई। तुरंग नाड़ हिलाय विरस विरूप हींसते भए। हाथी रूक्ष शब्द करते भए, सूण्ड से धरती कूटते भए। यक्षनि की मूर्ति के अश्रुपात पड़े। सूर्य के सन्मुख काग कटुक शब्द करते भए, ढीले पांख किए महाव्याकुल भए। सरोवर जलकरि भरे हुते ते शोष को प्राप्त भए। अर गिरियों के शिखर गिर पड़े। अर रुधिर की वर्षा भई। थोड़े ही दिन में जानिए है

लंकेश्वर की मृत्यु होय। ऐसे अपशकुन और प्रकार नाहीं। जब पुण्य क्षीण होय तब इन्द्र भी न बचे। पुरुष में पौरुष पुण्य के उदयकरि होय है। जो कछु प्राप्त होना होय सोई पाइए है, हीनाधिक नाहीं। प्राणियों के शूरवीरता सुकृत के बलकर है।

देखहु रावण नीतिशास्त्र विषै प्रवीण, समस्त लौकिक नीति रीति जाने, व्याकरण का पाठी, महा गुणनिकर मंडित, सो कर्मनिकर प्रेरा संता अनीतिमार्गकूं प्राप्त भया, मूढ़बुद्धि भया। लोकविषै मरण उपरांत कोई दुःख नाहीं। सो याकूं अत्यन्त गर्वकर विचार नाहीं। नक्षत्रनि के बलकरि रहित अर ग्रह सर्व ही क्रूर आए। सो यह अविवेकी रणक्षेत्र का अभिलाषी होता भया। प्रताप के भंग का है भय जाकूं, अर महा शूरवीरता के रस से युक्त, यद्यपि अनेक शास्त्रनि का अभ्यास किया है तथापि युक्त अयुक्तकूं न देखै।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै है – हे मगधाधिपति! रावण महामानी अपने मनविषै विचारै है सो सुन – सुग्रीव भामण्डलादिक समस्तकूं जीति अर कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनादकूं छुड़ाय लंका में लाऊंगा। बहुरि वानरवंशिनि का वंश नाश अर भामण्डल का पराभव करूंगा। अर भूमिगोचरिनिकूं भूमिविषै न रहने दूंगा। अर शुद्ध विद्याधरनिकूं धराविषै थापूंगा। तब तीन लोक के नाथ तीर्थंकर देव अर चक्रायुध बलभद्र नारायण हम सारिखे विद्याधर कुलहीविषै उपजैंगे। ऐसा वृथा विचार करता भया।

हे मगधेश्वर! जा मनुष्य ने जैसे संचित कर्म किए होंय तैसा ही फल भोगवै। ऐसैं न होय तो शास्त्रों के पाठी कैसैं भूलैं? शास्त्र हैं सो सूर्य समान हैं, ताके प्रकाश होते अन्धकार कैसे रहै। परन्तु जे घूघूसमान मनुष्य हैं तिनकूं प्रकाश न होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै रावण के युद्ध का निश्चय कथन वर्णन करने वाला बहत्तरवाँ पर्व पूर्ण भया।।72।।

अथानन्तर दूजे दिन प्रभात ही रावण महादेदीप्यमान आस्थान मंडपविषै तिष्ठ्या। सूर्य के उदय होते संते सभाविषै कुवेर वरुण ईशान यम सोम समान जे बड़े बड़े राजा तिनकरि सेवनीक, जैसैं देवनिकर मंडित इन्द्र विराजे तैसैं राजानिकरि मंडित सिंहासन पर विराज्या। परम कांतिकूं धरैं, जैसैं ग्रह तारा नक्षत्रनिकर युक्त चन्द्रमा सौहै। अत्यन्त सुगन्ध, मनोग्य वस्त्र, पुष्पमाला, अर महामनोहर गजमोतिनि के हार तिनकरि शोभै है उरस्थल जाका, महा सौभाग्यरूप, सौम्यदर्शन, सभाकूं देखकर चिंता करता भया – जो भाई कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनाद यहां नाहीं दीखै हैं सो उन बिना यह सभा सोहै नाहीं। और पुरुष कुमुदरूप बहुत हैं, पर वे पुरुष कमलरूप नाहीं। सो यद्यपि रावण महारूपवान सुन्दर वदन हुते, अर फूल रहे हैं नेत्र कमल जाके, महामनोग्य तथापि

पुत्र भाई कि चिंता से कुमलाया वदन नजर आवता भया।

अर महाक्रोध रूप कुटिल हैं भृकुटी जाकी, मानों क्रोध का भरया आशीविष सर्प ही है। महाभयंकर होठ डसे। महा विकराल स्वरूप मंत्री देखकर डरे। आज ऐसा कौन-सा कोप भया, यह व्याकुलता भई। तब हाथ जोड़ सीस भूमि में लगाय राजा मय उग्र शुक लोकाक्ष सारण इत्यादि धरती की ओर निरखते चलायमान हैं कुण्डल जिनके विनती करते भए - हे नाथ! तिहारे निकटवर्ती योधा सब ही यह प्रार्थना करै हैं प्रसन्न होहु। अर कैलाश के शिखर तुल्य ऊंचे महिल, जिनके मणियों की भीति, मणियों के झरोखा, तिनमें तिष्ठती भ्रमररूप हैं नेत्र जिनके, ऐसी सब राणियों सहित मंदोदरी सो याहि देखती भई। कैसा देख्या? लाल हैं नेत्र जाके, प्रताप का भरा। ताहि देखकर मोहित भया है मन जाका। रावण उठकर आयुधशाला में गया। कैसी है आयुधशाला? अनेक दिव्य शस्त्र अर सामान्य शस्त्र तिनसे भरी, अमोघ बाण अर चक्रादिक अमोघ रत्ननिसूं भरी, जैसैं वज्रशाला में इन्द्र जाय।

जा समय रावण आयुधशाला में गया ता समय अपशकुन भए। प्रथम ही छींक भई सो शकुनशास्त्रविषै पूर्वदिशाकूं छींक होय तो मृत्यु, अर अग्निकोणविषै शोक, दक्षिण में हानि, नैऋत्य में शुभ, पश्चिमविषै मिष्ट आहार, वायुकोण में सर्व सम्पदा, उत्तरविषै कलह, ईशानविषै धनागम, आकाशविषै सर्व संहार, पातालविषै सर्व सम्पदा ये दशों दिशाविषै छींक के फल कहे। सो रावण कूं मृत्यु की छींक भई।

बहुरि आगे मार्ग रोके महा नाग निरख्या। अर हा शब्द, ही शब्द, धिक् शब्द, कहां जाय है - यह वचन होते भए। अर पवनकर छत्र के वैडूर्यमणि का दण्ड भग्न भया। अर उत्तरासन गिर पड्या। काग दाहिना बोला। इत्यादि और भी अपशकुन भए। ते युद्धतैं निवारते भए, वचनकर कर्मकर निवारते भए। जे नाना प्रकार के शकुनशास्त्रविषै प्रवीण पुरुष हुते वे अत्यन्त आकुल भए। अर मंदोदरी शुक सारण इत्यादि बड़े-बड़े मंत्रिनिकूं बुलाय कहती भई - तुम स्वामीकूं कल्याण की बात काहेकूं न कहो हो? अब तक कहा अपनी अर उनकी चेष्टा न देखी। कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनाद से बंधनविषै आए, वे लोकपाल समान महातेज के धारक अद्भुत कार्य के करणहारे। तब नमस्कार कर मंत्री मंदोदरी से कहते भए - हे स्वामिनी! रावण महामानी, यमराजसा क्रूर आप ही आप प्रधान है। ऐसा या लोकविषै कोई नाहीं जाके वचन रावण मानै। जो कुछ होनहार है ता प्रमाण बुद्धि उपजै है। बुद्धि कर्मानुसारिणी है। सो इन्द्रादिककर तथा देवनि के समूहकर और भांति न होय।

सम्पूर्ण न्यायशास्त्र अर धर्मशास्त्र तिहारा पति सब जानै है परन्तु मोहकरि उन्मत्त भया है। हम बहुत प्रकार कह्या, सो काहू प्रकार मानै नाहीं। जो हठ पकड्या है सो छांड़े नाहीं। जैसैं

वर्षाकाल के समागमविषै महाप्रवाहकर संयुक्त जो नदी ताका तिरना कठिन है, तैसैं कर्मनि का प्रेरा जो जीव ताका सम्बोधना कठिन है। यद्यपि स्वामी का स्वभाव दुर्निवार है तथापि तिहारा कहा करै तो करै। तातैं तुम हित की बात कहो, यामैं दोष नाहीं।

यह मंत्रिनि ने कही तब पटराणी साक्षात् लक्ष्मी समान निर्मल है चित्त जाका, सो कम्पायमान पति के समीप जावेयकूं उद्यमी भई। महानिर्मल जलसमान वस्त्र पहिरे। जैसैं रति काम के समीप जाय तैसैं चाली। सिर पर छत्र फिरै हैं, अनेक सहेली चमर ढारै हैं। जैसैं अनेक देवनिकर इन्द्राणी इन्द्र पैं जाय तैसैं यह सुन्दर वदन की धरणहारी पतिपै गई। निश्वास नाखती, पांय डिगते, शिथिल होय गई है कटि मेखला जाकी, भरतार के कार्यविषै सावधान, अनुराग की भरी, ताहि स्नेह की दृष्टिकरि देखती भई।

आपका चित्त शस्त्रनिविषै अर बक्तरविषै तिनकूं आदर से स्पर्शें है सो मंदोदरी से कहते भए – हे मनोहरे! हंसनी समान चाल की चलनहारी हे देवी! ऐसा कहा प्रयोजन है जो तुम शीघ्रता से आवो हो। हे प्रिये! मेरा मन काहेकूं हरो हो, जैसैं स्वप्नविषै निधान।

तब वह पतिव्रता पूर्णचन्द्रसमान है वदन जाका, फूले कमलसमान नेत्र, स्वत: उत्तम चेष्टा की धरणहारी, मनोहर जे कटाक्ष वेई भए बाण सो पति की ओर चलावनहारी, महाविचक्षण, मदन का निवास है अंग जाका, महा मधुर शब्द की बोलनहारी स्वर्ण के कुम्भ समान हैं स्तन जाके, तिनके भारकर नय गया है उदर जाका, दाडिम के बीज समान दांत, मूंगासमान लाल अधर, अत्यन्त सुकुमार, अति सुन्दरी, भरतार की कृपाभूमि, सो नाथकूं प्रणाम कर कहती भई – हे देव! मोहि भरतार की भीख देवो। आप महादयावंत धर्मात्माओं से अधिक स्नेहवंत, मैं तिहारे वियोगरूप नदीविषै डूबू हूं, सो महाराज मोहि निकासो। कैसी है नदी? दु:खरूप जल की भरी, संकल्प विकल्परूप लहरकर पूर्ण है।

हे महाबुद्धे! कुटुम्बरूप आकाशविषै सूर्य समान प्रकाश के कर्त्ता एक मेरी विनती सुनहु। तिहारा कुलरूप कमलों का वन महा विस्तीर्ण प्रलय हुआ जाय है सो क्यों न राखहु। हे प्रभो! तुम मोहि पटराणी का पद दिया हुता सो मेरे कठोर वचननिकूं क्षमा करो। जे अपने हितू हैं तिनका वचन औषध समान ग्राह्य है। परिणाम सुखदाई, विरोधरहित, स्वभावरूप आनन्दकारी है। मैं यह कहूं हूं तुम काहेकूं संदेह की तुला चढ़ो हो। यह तुला चढ़िवे की नाहीं, काहे कूं आप संताप करो हो, अर हम सबनिकूं संताप करो हो, अब हू कहा गया? तिहारा सब राज, तुम सकल पृथ्वी के स्वामी, अर तिहारे भाई पुत्रनिकूं बुलाय लेहु। तुम अपना चित्त कुमार्गतैं निवारो, अपना मन वश करो। तिहारा मनोरथ अत्यन्त अकार्यविषै प्रवरता है सो इन्द्रियरूप तरल तुरंगों को विवेकरूप दृढ़

लगामकर वश करो। इन्द्रियनि के अर्थ कुमार्गविषै मन को कौन प्राप्त करै?

तुम अपवाद का देनहारा जो उद्यम ताविषै कहा प्रवर्तो हो? जैसें अष्टापद अपनी छाया कूपविषै देख क्रोधकर कूपविषै पड़े तैसें तुम आप ही क्लेश उपजाय आपदा में पड़ो हो। यह क्लेश का कारण जो अपयश रूप वृक्ष ताहि तजकर सुख से तिष्ठो। केलि के थम्भसमान असार यह विषय ताहि कहा चाहो हो? यह तिहारा कुल समुद्र समान गम्भीर प्रशंसा योग्य, ताहि शोभित करो। यह भूमिगोचरों की स्त्री बड़े कुलवंतनिकूं अग्नि की शिखा समान है ताहि तजो! हे स्वामी! जे सामंत सामंतसों युद्ध करै हैं वे मनविषै यह निश्चय करै हैं हम मरैंगे। हे नाथ! तुम कौन अर्थ मरो हो? पराई नारी ताके अर्थ कहा मरणा? या मरिवेविषै यश नाहीं। अर उनकूं मारो, तिहारी जीत होय तोहू यश नाहीं। क्षत्री मरै हैं यश के अर्थ। तातैं सीता सम्बन्धी हठ को छांडो।

अर जे बड़े बड़े व्रत हैं तिनकी महिमा तो कहा कहो? एक यह परदारपरित्याग ही पुरुष के होय तो दोऊ जन्म सुधरें। शीलवंत पुरुष भवसागर तिरें। जो सर्वथा स्त्री का त्याग करै सो तो अति श्रेष्ठ ही है। काजल समान कालिमा की उपजावनहारी यह परनारी, तिनविषै जे लोलुपी, तिनविषै मेरु समान गुण होय तोहू तृण समान लघु होय जांय। जो चक्रवर्ती का पुत्र होय अर देव जाका पक्ष होय अर परस्त्री के संगरूप कीचविषै डूबै तो महा अपयशकूं प्राप्त होय। जो मूढ़मति परस्त्री से रति करै है सो पापी आशीविष भुजंगनी से रमै है। तिहारा कुल अत्यन्त निर्मल सो अपयशकर मलिन मत करो। दुर्बुद्धि तजो! जे महाबलवान हुते अर दूसरों को निर्बल जानते अर्ककीर्ति अशनघोषादिक अनेक नाशकूं प्राप्त हुए। सो हे सुमुख! तुम कहा न सुने।

ये वचन मंदोदरी के सुन रावण कमलनयन, कारी घटा समान है वर्ण जाका, मलयागिरि चन्दन कर लिप्त मंदोदरी से कहता भया – हे कांते! तू काहेकूं कायर भई। मैं अर्ककीर्ति नाहीं जो जयकुमार से हारा। अर मैं अशनघोष नाहीं जो अमिततेज से हारा। अर और हू नाहीं, मैं दशमुख हूं, तू काहे कूं कायरता की बात कहै है। मैं शत्रुरूप वृक्षनि के समूहकूं दावानलरूप हूं। सीता कदाचित न दूं। हे मंदमानसे! तू भय मत करै। या कथा कर तोहि कहा? तोकों सीता की रक्षा सौंपी है सो रक्षा भलीभांति कर। अर जो रक्षा करिवेकूं समर्थ नाहीं तो शीघ्र मोहि सौंप देवो।

तब मंदोदरी कहती भई – तुम उससे रतिसुख बांछो हो तातैं यह कहो हो। मोहि सौंप देवो सो यह निर्लज्जता की बात कुलवंतों को उचित नाहीं। बहुरि कहती भई – तुमने सीता का कहा महात्म्य देखा जो ताहि बारम्बार बांछो हो। वह ऐसी गुणवंती नाहीं, ज्ञाता नाहीं, रूपवंतियों का तिलक नाहीं, कलाविषै प्रवीण नाहीं, मन-मोहनी नाहीं, पति के छांने (आज्ञा बिना) चलनेवारी नाहीं। ता सहित रतिविषै बुद्धि करो हो, सो हे कंत! यह कहा वार्ता? अपनी लघुता होय है सो

तुम नाहीं जानो हो? मैं अपने मुख अपनी प्रशंसा कहा करूं? अपने मुख अपने गुण कहे गुणों की गौणता होय है। अर पराए मुख सुने प्रशंसा होय है। तातैं मैं कहां कहूं तुम सब नीके जानो हो। विचारी सीता कहा? लक्ष्मी भी मेरे तुल्य नाहीं। तातैं सीता की अभिलासा तजो। मेरा निरादर कर तुम भूमिगोचरणीकूं इच्छो हो, सो मंदमति हो, जैसे बालबुद्धि वैडूर्य मणि को तज कांच को इच्छै। ताका कछू दिव्यरूप नाहीं। तिहारे मनविषै क्या रुची यह ग्राम्यजन की नारी समान अल्पमति, ताकी कहा अभिलाषा? अर आज्ञा देवो सोई रूप धरूं, तिहारे चित्त की हरणहारी मैं लक्ष्मीरूप धरूं। अर आज्ञा करो तो शची इन्द्राणी का रूप धरूं। कहो तो रति का रूप धरूं।

हे देव! तुम इच्छा करो सोई रूप धरूं। यह वार्ता मन्दोदरी की सुन रावण ने नीचा मुख किया। अर लज्जावान भया। बहुरि मन्दोदरी कहती भई – तुम परस्त्री आसक्त होय अपनी आत्मा लघु किया। विषयरूप आमिष की आसक्ती है जाके सो पाप का भाजन है। धिक्कार है ऐसी क्षुद्र चेष्टाकूं।

यह वचन सुन रावण मंदोदरी से कहता भया – हे चन्द्रवदनी! कमललोचने! तुम यह कहो – जो कहो जैसा रूप बहुरि धरूं सो औरों के रूप से तिहारा रूप कहा घटती है? तिहारा स्वत: ही रूप मोहि अति वल्लभ है। हे उत्तमे! मेरे अन्य स्त्रीनि कर कहा? तब हर्षितचित्त होय कहती भई – हे देव! सूर्य को दीप का उद्योत कहा दिखाइये? मैं जो हित के वचन आपको कहे सो औरों से पूछ देखो। मैं स्त्री हूं मेरे में ऐसी बुद्धि नाहीं। शास्त्र में कही है जो धनी सब ही नय जानैं हैं परन्तु दैवयोग थकी प्रमादरूप भया होय तो जे हितु हैं ते समझावैं। जैसे विष्णुकुमार स्वामी को विक्रियाऋद्धि का विस्मरण भया तो औरों के कहे कर जाना। यह पुरुष, यह स्त्री ऐसा विकल्प मंदबुद्धिनि के होय है। जे बुद्धिमान हैं हितकारी वचन सब ही का मान लेंय। आपका कृपाभाव मो ऊपर है तो मैं कहूं हूं। तुम परस्त्री का प्रेम तजो, मैं जानकीकूं लेकर राम पै जाऊं, अर रामकूं तिहारे पास ल्याऊं। अर कुम्भकरण, इन्द्रजीत, मेघनादकूं लाऊं। अनेक जीवनि की हिंसा कर कहा?

ऐसे वचन मन्दोदरी ने कहे तब रावण अति क्रोधकर कहता भया – शीघ्र ही जावो जावो, तहां तेरा मुख न देखूं तहां जावो। अहो तू आपको वृथा पंडित मानै है। आपकी ऊंचता तज परपक्ष की प्रशंसा में प्रवरती। तू दीनचित्त है, योधावों की माता, तेरे इन्द्रजीत मेघनाद के से पुत्र अर मेरी पटराणी, राजा मन की पुत्री। तोमें एती कायरता कहां से आई? ऐसा कहा तब मंदोदरी बोली – हे पति! सुनो जो ज्ञानियों के मुख बलभद्र नारायण प्रतिनारायण का जन्म सुनिये है।

पहिला बलभद्र विजय नारायण त्रिपृष्ठ, प्रतिनारायण अश्वग्रीव। दूजा बलभद्र अचल, नारायण द्विपृष्ठ प्रतिहरि तारक इस भांति अब तक सात बलभद्र नारायण हो चुके। सो इनके शत्रु

प्रतिनारायण इन्होंने हते। अब तुम्हारे समय यह बलभद्र नारायण भए हैं अर तुम प्रतिवासुदेव हो। आगे प्रतिवासुदेव हठकर हते गए तैसैं तुम नाश को इच्छो हो। जे बुद्धिमान हैं तिनको यही कार्य करना जो या लोक परलोक में सुख होय। अर दु:ख के अंकुर की उत्पत्ति न होय सो करना। यह जीव चिरकाल विषय से तृप्त न भया, तीन लोकविषै ऐसा कौन है जो विषयों से तृप्त होय?

तुम पापकर मोहित भए हो सो वृथा है। अर उचित तो यह है तुमने बहुकाल भोग किए, अब मुनिव्रत धरो अथवा श्रावक के व्रतधर दु:ख नाश करो। अणुव्रतरूप खड्गकर दीप्त हैं अंग जाका नियम रूप छत्रकर शोभित, सम्यक्‌दर्शनरूप वक्तर पहिरे, शीलरूप ध्वजा कर शोभित, अनित्यादि बारह भावना तेई चन्दन तिनकर चर्चित है अंग जाका, अर ज्ञानरूप धनुष को धरे, वश किया है इन्द्रियनि का बल जानै, शुभ ध्यान अर प्रतापकर युक्त, मर्यादारूप अंकुश कर संयुक्त, निश्चलरूप हाथी पर चढ़ा, जिन भक्ति की है महाभक्ति जाके, दुर्गतिरूप कुनदी सो महाकुटिल पापरूप है वेग जाका, अतिदु:सह पंडितनिकर तिरिये है, ताहि तिरकर सुखी होवौ। अर हिमवान सुमेरु पर्वतविषै जिनालय को पूजते संते मेरे सहित ढाई द्वीप में विहार कर, अष्टापद सहस्रस्त्रीनि के हस्तकमल-पल्लव तिनकर लडाया संता सुमेरु पर्वत के वनविषै क्रीड़ा कर, अर गंगा के तट पर क्रीड़ा कर, अर और भी मनवांछित प्रदेशनिविषै रमणीक क्षेत्रनिविषै हे नरेन्द्र! सुख से विहार कर।

या युद्धकर कछू प्रयोजन नाहीं, प्रसन्न हौवहु। मेरा वचन सर्वथा सुख का कारण है। लोकापवाद मत करावहु। अपयशरूप समुद्र में काहेकूं डूबौ हो? यह अपवाद विषतुल्य महानिन्द्य परम अनर्थ का कारण भला नाहीं। दुर्जन लोक सहज ही परनिन्दा करै सौ ऐसी बात सुन कर तो करै ही करैं। या भांति के शुभ वचन कह कर यह महासती हाथ जोड़ पति का परमहित वांछती पति के पांयनि पड़ी।

तब रावण मन्दोदरीकूं उठायकर कहता भया - तू नि:कारण क्यों भयकूं प्राप्त भई? सुन्दरवदनी! मोसे अधिक या संसारविषै कोई नाहीं। तू स्त्री पर्याय के स्वभावकर वृथा काहेकूं भय करै है। तैनें कही जो यह वलदेव नारायण हैं सो नाम नारायण अर नाम बलदेव भया तो कहा? नाम भए कार्य की सिद्धि नाहीं। नाम नाहर भया तो कहा? नाहर के पराक्रम भए नाहर होय। कोई मनुष्य सिद्ध नाम कहाया तो कहा सिद्ध भया? हे कांते! तू कहा कायरता की वार्ता करै? रथनूपुर का राजा इन्द्र कहावता सो कहा इन्द्र भया? तैसैं यह भी नारायण नाहीं। या भांति रावण प्रतिनारायण ऐसे प्रबल वचन स्त्री को कह महाप्रतापी क्रीड़ा भवनविषै मन्दोदरी सहित गया, जैसैं इन्द्र इन्द्राणी सहित क्रीड़ा गृहविषै जाय।

सांझ के समय सांझ फूली, सूर्य अस्त समय किरण संकोचने लगा, जैसैं संयमी कषायों को

संकोचै। सूर्य आरक्त होय अस्तकूं प्राप्त भया, कमल मुदित भए। चकवा चकवी वियोग के भय कर दीन वचन रटते भए, मानों सूर्यकूं बुलावै हैं। अर सूर्य के अस्त होयवेकर ग्रह नक्षत्रनि की सेना आकाशविषै विस्तरी, मानों चन्द्रमा ने पठाई। रात्रि के समय रत्नद्वीपों का उद्योत भया। दीपों की प्रभाकर लंका नगरी ऐसी शोभती भई मानों सुमेरु की शिखा ही है। कोऊ वल्लभा वल्लभ से मिलकर ऐसे कहती भई एक रात्रि तो तुम सहित व्यतीत करेंगे बहुरि देखिए कहा होय? अर कोई एक प्रिया नाना प्रकार के पुष्पनि की सुगन्ध के मकरंदकर उन्मत्त भई स्वामी के अंगविषै मानों महाकोमल पुष्पनि की वृष्टि ही पड़ी। कोई नारी कमल तुल्य हैं चरण जाके, अर कठिन हैं कुच जाके, महासुन्दर शरीर की धरणहारी, सुन्दरपति के समीप गई। अर कोई सुन्दरी आभूषणनिकूं पहरती ऐसी शोभती भई मानों स्वर्ण रत्नों को कृतार्थ करै है।

भावार्थ – ता समान ज्योति रत्न स्वर्णनिविषै नाहीं। रात्रि समय विद्याकरि विद्याधर मनवांछित क्रीड़ा करते भए। घर घरविषै भोगभूमि की सी रचना होती भई। महासुन्दर गीत अर बीण बांसुरियों का शब्द तिनकर लंका हर्षित भई। मानों वचनालाप ही करै है। अर ताम्बूल सुगन्ध माल्यादिक भोग अर स्त्री आदि उपभोग सो भोगोपभोपनिकरि लोक देवनि की न्याईं रमते भए। अर कईएक उन्मत्त भए स्त्रियों को नाना प्रकार रमावते भए। अर कईएक नारी अपने वदन की प्रतिबिम्ब रत्ननि की भीतिविषै देखकर जानती भई कि कोई दूजी स्त्री मन्दिर में आई है, सो ईर्षाकर नीलकमल से पतिकूं ताडना करती भई। स्त्रीनि के मुख की सुगन्धताकर मदिरा सुगन्ध होय गई, अर मदिरा के योगकर नारिनि के नेत्र लाल हो गए। अर कोईयक नायिका नवोढा हुती, अर प्रीतम ने मदिरा पिलाय उन्मत्त करी। सो मन्मथ कर्मविषै प्रवीण प्रौढ़ा के भावकूं प्राप्त भई। लज्जारूप सखीकूं दूर कर उन्मत्ततारूप सखी ने क्रीड़ाविषै अत्यन्त तत्पर करी। अर घूमै हैं नेत्र जाके अर स्खलित है वचन जाके स्त्री पुरुषनि की चेष्टा उन्मत्तताकर विकट रूप होती भई। नरनारिनि के अधर मूंगा समान शोभायमान दीखते भए। नर नारी मदोन्मत्त भए सो न कहने की बात कहते भये, अर न करने की बात करते भये। लज्जा छूट गई, चन्द्रमा के उदयकर मदन की वृद्धि भई। ऐसा ही तो इनका यौवन, ऐसे ही सुन्दर मंदिर, अर ऐसा ही अमल का जोरसूं सब ही उन्मत्त चेष्टा का कारण आय प्राप्त भया। ऐसी निशाविषै, प्रभातविषै होनहार हैं युद्ध जिनके सो संभोग का योग उत्सवरूप होता भया। अर राक्षसनि का इन्द्र सुन्दर है चेष्टा जाकी, सो समस्त ही राजलोककूं रमावता भया, बारम्बार मंदोदरीसूं स्नेह जनावता भया। याका वदनरूप चन्द्र निरखते रावण के लोचन तृप्त न भये।

मंदोदरी रावणकूं कहती भई – मैं एक क्षणमात्र हू तुमको न तजूंगी। हे मनोहर! सदा तिहारे

संग ही रहूंगी। जैसैं बेल बाहुबलि के सर्व अंगसूं लगी तैसैं रहूंगी। आप युद्धविषै विजयकर वेग ही आवो। मैं रत्ननिकूं चूर्णकर चौक पूरूंगी। अर तिहारे अर्घपाद्य करूंगी, प्रभु की महामख पूजा कराऊंगी। प्रेमकर कायर है चित्त जाका, अत्यन्त प्रेम के वचन कहते निशा व्यतीत भई, कर कूकडा बोलें, नक्षत्रनि की ज्योति मिटी, संध्या लाल भई, अर भगवान के चैत्यालयनिविषै महा मनोहर गीतध्वनि होती भई। अर सूर्यलोक का लोचन उदयकूं सन्मुख भया, अपनी किरणनिकर सर्व दिशाविषै उद्योत करता संता प्रलयकाल के अग्निमण्डल समान है आकार जाका प्रभात समय भया। तब सब राणी पतिकूं छोड़ती उदास भईं। तब रावण ने सबकूं दिलासा करी। गम्भीर वादित्र बाजे, शंखों के शब्द भए। रावण की आज्ञा कर जे युद्धविषै विचक्षण हैं महाभट, महा अहंकारकूं धरते परम उद्धत अतिहर्ष के भरे नगर से निकसे। तरंग हस्ती रथों पर चढ़े, खड्ग धनुष गदा वरछी इत्यादि अनेक आयुधनि कूं धरे, जिन पर चमर ढुरते, छत्र फिरते, महा शोभायमान देवनि जैसे स्वरूपवान्, महा प्रतापी विद्याधरनि के अधिपति योधा, शीघ्र कार्य के करणहारे, श्रेष्ठ ऋद्धि के धारक युद्धकूं उद्यमी भए। ता दिन नगरी स्त्री कमलनयनी करुणाभावकरि दुखरूप होती भईं। सो तिनकूं निरखे दुर्जन का चित्त भी दयालु होय।

कोईयक सुभट घर से युद्धकूं निकसा अर स्त्री लार लगी आवै है ताहि कहता भया – हे मुग्धे! घर जावो। हम सुखसूं जाय हैं। अर कोईयक स्त्री भरतार चले हैं तिनको पीछेसूं जाय कहती भई – हे कंत! तिहारा उत्तरासन लेवो, तब पति सन्मुख होय लेते भए! कैसी है मृगनयनी? पति के मुख देखवे की है लालसा जाके। अर कोईयक प्राणवल्लभा पतिकूं दृष्टि से अगोचर होते सखियों सहित मूर्छा खाय पड़ी। अर कोईयक पतिसूं पाछी आय मौन गह, सेज पर परी, मानों काठ की पुतली ही है। अर कोईयक शूरवीर श्रावक के व्रत का धारक पीठ पीछे अपनी स्त्रीकूं देखता भया अर आगैं देवांगनाओं कूं देखता भया।

भावार्थ – जे सामंत अणुव्रत धारक हैं वे देवलोक के अधिकारी हैं। अर जे सामंत पहिले पूर्णमासी के चन्द्रमा समान सौम्यवदन हुते वे युद्ध के आगमनविषै कालसमान क्रूर आकार होय गए। सिर पर टोप धरे वक्तर पहिरे शस्त्र लीए तेज भासते भए।

अथानन्तर चतुरंग सेना संयुक्त धनुष छत्रादिककर पूर्ण मारीच महा तेजकूं धरे युद्ध का अभिलाषी आय प्राप्त भया। फिर विमलचन्द्र आया महा धनुषधारी। अर सुनन्द आनन्द नन्द इत्यादि हजारों राजा आए। सो विद्याकर निरमापित दिव्यरथ तिनपर चढ़े अग्नि की सी प्रभाकूं धरै मानों अग्निकुमार देव ही हैं। कई एक तीक्ष्ण शस्त्रोंकर सम्पूर्ण हिमवान पर्वतसमान जे हाथी उन पर सर्वदिशावोंकूं आच्छादते हुए आए, जैसैं विजुरी से संयुक्त मेघमाला आवै। अर कई एक श्रेष्ठ

तुरंगों पर चढ़े पांचों हथियारों कर संयुक्त शीघ्र ही ज्योतिष लोककूं उलंघ आवते भए। नाना प्रकार के बड़े बड़े वादित्र और तुरंगों का हींसना। गजों का गर्जना, पयादों के शब्द, योधानि के सिंहनाद, बन्दीजनों के जय जय शब्द अर गुणीजनों के गीत वीररस के भरे इत्यादि और भी अनेक शब्द भले भए।

धरती आकाश शब्दायमान भए। जैसैं प्रलयकाल के मेघपटल होवैं तैसैं निकसे। मनुष्य हाथी घोड़े रथ पियादे परस्पर अत्यन्त विभूतिकर देदीप्यमान, बड़ी भुजानि से वख्तर पहिर उतंग हैं उरस्थल जिनके, विजय के अभिलाषी और पयादे खड्ग संभाले हैं महा चंचल आगे आगे चले जांय हैं, स्वामी के हर्ष उपजावनहारे तिनके समूहकर आकाश पृथ्वी और सर्व दिशा व्याप्त भईं। ऐसे उपाय करते भी या जीव के पूर्व कर्म का उदय है तैसा ही होय है। यह प्राणी अनेक चेष्टा करै है परन्तु अन्यथा न होय, जैसा भवितव्य है तैसा ही होय। सूर्य हू और प्रकार करिवे समर्थ नाहीं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण का युद्धविषै उद्यमी होने का वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।73।।

अथानन्तर लंकेश्वर मंदोदरीसूं कहता भया – हे प्रिये! न जानिये बहुरि तिहारा दर्शन होय वा न होय। तब मंदोदरी कहती भई – हे नाथ! सदा वृद्धिकूं प्राप्त होवो, शत्रुवोंकूं जीत शीघ्र ही आय हमको देखोगे। अर संग्राम से जीते आओगे। ऐसा कहा अर हजारों स्त्रियों कर अवलोकता संता राक्षसों का नाथ मंदिर से बाहिर गया। महा विकटताकूं धरे विद्याकर निरमाप्या ऐन्द्रनामा रथ ताहि देखता भया। जाके हजार हाथी जुतें मानों कारी घटा का मेघ ही है।

हे नाथ! हाथी मदोन्मत्त झरे हैं मद जिनके, मोतियों की माला तिनकरि पूर्ण, महा घटा के नादकर युक्त ऐरावत समान नाना प्रकार के रंगों से शोभित, जिनका जीतना कठिन, अर विनय के धाम, अत्यन्त गर्जनाकर शोभित ऐसे सोहते भए मानों कारी घटा के समूह ही हैं। मनोहर है प्रभा जिनकी ऐसे हाथियों के रथ चढ्या रावण सौहता भया। भुजबन्ध कर शोभायमान हैं भुजा जाकी, मानों साक्षात् इन्द्र ही है। विस्तीर्ण हैं नेत्र जाके, अनुपम है आकार जाका, अर तेज कर सकल लोकविषै श्रेष्ठ 10 हजार आप समान विद्याधर तिनके मंडलकर युक्त रणविषै आया, सो वे महा बलवान देवों सारिखे अभिप्राय के वेत्ता रावणकूं देखि सुग्रीव हनुमान क्रोधकूं प्राप्त भए। अर जब रावण चढ्या तब अत्यन्त अपशकुन भए। भयानक शब्द भए, अर आकाशविषै गृध्र भ्रमते भए आच्छादित किया है सूर्य का प्रकाश जिन्होंने, सो ये क्षय के सूचक अपशकुन भए। परन्तु रावण के सुभट न मानते भए, युद्धकूं आए ही।

अर श्रीरामचन्द्र अपनी सेनाविषै तिष्ठते सो लोकनिसूं पूछते भए – हे लोको! या नगरी के

समीप यह कौन पर्वत है? तब सुषेणादिक तो तत्काल ही जवाब न देय सके अर जांबुवादिक कहते भए – यह बहुरूपिणी विद्या से रचा पद्मनागनामा रथ है घनेनिकूं मृत्यु का कारण। अंगद ने नगरविषै जायकर रावणकूं क्रोध उपजाया सो अब बहुरूपिणी विद्या सिद्ध भई हमसे महाशत्रुता लिए है। सो तिनके वचन सुनकर लक्ष्मण सारथी से कहता भया मेरा रथ शीघ्र ही चलाय। तब सारथी ने रथ चलाया अर जैसैं समुद्र गाजै ऐसे वादित्र बाजे। वादित्रों के नाद सुनकर योधा विकट है चेष्टा जिनकी, लक्ष्मण के समीप आए।

कोईयक राम के कटक का सुभट अपनी स्त्री को कहता भया – हे प्रिये! तू शोक तज पाछी जावहु मैं लंकेश्वर जीत तिहारे समीप आऊंगा, या भांति गर्वकर प्रचंड जे योधा वे अपनी स्त्रीनिकूं धीर्य बंधाय अन्त:पुर से निकसे। परस्पर स्पर्धा करते वेग से प्रेरे हैं वाहन रथादिक जिन्होंने ऐसे महायोधा शस्त्र के धारक युद्धकूं उद्यमी भए। भूतस्वननामा विद्याधरनि के अधिपति महाहाथियों के रथ चढ़ा निकस्या, गंभीर है शब्द जाका।

या विधि और भी विद्याधरनि के अधिपति हर्ष सहित राम के सुभट क्रूर हैं आकार जिनके, क्रोधायमान होय रावण के योधानिसूं जैसा समुद्र गाजै तैसैं गाजते, गंगा की उतंग लहर समान उछलते, युद्ध के अभिलाषी भए, अर राम लक्ष्मण डेरानिसूं निकसे। कैसैं है दोऊ भाई? पृथ्वीविषै व्याप्त हैं अनेक यश जिनके, क्रूर आकार कूं धरे, सिंहनि के रथ चढ़े वखतर पहिरे। महा बलवान उगते सूर्य समान श्रीराम शोभते भए। अर लक्ष्मण गरुड़ की ध्वजा जाके अर गरुड़ के रथ चढ्या। कारी घटा समान है रंग जाका अपनी श्यामताकर श्याम करी हैं दशोंदिशा जाने, मुकुटकूं धरे कुण्डल पहिरे धनुष चढ़ाय बखतर पहिरे बाण लिए जैसा सांझ के समय अंजनगिर सोहै तैसैं शोभता भया।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! बड़े-बड़े विद्याधर नाना प्रकार के वाहन अर विमाननि पर चढ़े युद्ध करिवेकूं कटकसूं निकसे। जब श्रीराम चढ़े तब अनेक शुभ शकुन आनन्द के उपजावनहारे भए। राम को चढ्या जान रावण शीघ्र ही दावानल समान है आकार जाका युद्धकूं उद्यमी भया। दोनों ही कटक के योधा जे महा सामंत तिन पर आकाश से गन्धर्व अर अप्सरा पुष्पवृष्टि करती भई। अंजनगिरि से हाथी महावतों के प्रेरे मदोन्मत्त चले। पियादों कर बेढ़े, अर सूर्य के रथ समान रथ चंचल हैं तुरंग जिनके सारथीनिकर युक्त। जिन पर महायोधा चढ़े युद्ध को प्रवर्ते। अर घोड़ों पर चढ़े सामंत गम्भीर हैं नाद जिनके परम तेजकूं धरे गाजते भए। अर अश्व हींसते भए। परमहर्ष के भरे दैदीप्यमान हैं आयुध जिनके अर पियादे गर्व के भरे पृथ्वीविषै उछलते भए। खड्ग खेट बरछी है हाथविषै जिनके, युद्ध की पृथ्वीविषै प्रवेश करते भये परस्पर स्पर्धा करै

हैं दौड़े हैं, योधानिविषै परस्पर अनेक आयुधनिकर तथा लाठी मूका लोहयष्टिनिकर युद्ध भया है, परस्पर केशग्रहण भया।

खड्ग कर विदारा गया है शरीर जिनका, कईएक बाणकर बींधे गए तथापि योधा युद्ध के आगे ही भए, मारे हैं प्रहार करै हैं गाजै हैं घोड़े व्याकुल भए भ्रमै हैं, कई एक आसन खाली होय गए असवार मारे गए मुष्टियुद्ध गदायुद्ध भया, कई एक बाणनिकर बहुत मारे गए, कई एक खड्ग कर कई एक सेलोंकर घाव खाए, बहुरि शत्रुकूं घायल करते भए, कई एक मनवांछित भोगनिकर इन्द्रियनिकूं रमावते सो युद्ध विषै इन्द्रियें इनको छोड़ती भई। जैसे कार्य परे कुमित्र तजै, कई एक के आंतनि के ढेर होय गए तथापि खेद न मानते भए शत्रुनि पर जाय पड़े, अर शत्रुसहित आप प्राणांत भए, डसे हैं होंठ जिन्होंने। जे राजकुमार देवकुमार सारिखे सुकुमार रत्ननि के महिलों के शिखरविषै क्रीड़ा करते, महाभोगी पुरुष स्त्रीनि के स्तनकर रमाये संते वे खड्ग चक्र कनक इत्यादि आयुधनिकर विदारे संते संग्राम की भूमिविषै पड़े। विरूप आकार तिनको गृध्र पक्षी अर स्याल भखै हैं।

अर जैसैं रंगमहिल में रंग की रामा नखोंकर चिह्न करती, अर निकट आवतीं, तैसैं स्यालनी नख दंतनिकर चिह्न करै हैं, अर समीप आवैं हैं। बहुरि श्वास के प्रकाश कर जीवते जानि वे डर जांय हैं, जैसैं डाकनी मंत्रवादी से दूर जांय। अर सामंतनिकूं जीवते जानि यक्षिणी डर कर उड जाती भईं, जैसैं दुष्ट नारी चलायमान हैं नेत्र जिसके, पति के समीप से जाती रहे। जीवों के शुभाशुभ प्रकृति का उदय युद्धविषै लखिए है। दोनों बराबर, अर कोई की हार होय कोई की जीत होय। अर कबहूं अल्प सेना का स्वामी महा सेना के स्वामी को जीते, अर कोईयक सुकृत के सामर्थ्य से बहुतों को जीते, अर कोई बहुत भी पाप के उदय से हार जाय। जिन जीवों ने पूर्व भवविषै तप किया वे राज्य के अधिकारी होय विजय को पावें हैं। अर जिन्होंने तप न किया अथवा तप भंग किया तिनकी हार होय है।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै है – हे श्रेणिक! यह धर्म मर्म की रक्षा करै है, अर दुर्जय को जीतै है। धर्म ही बड़ा सहाई है। बड़ा पक्ष धर्म का है। धर्म सब ठौर रक्षा करै है। घोड़ों कर युक्त रथ, पर्वत समान हाथी, पवन समान तुरंग, असुर कुमार से पयादे इत्यादि सामग्री पूर्ण है, परन्तु पूर्व पुण्य के उदय बिना कोई राखिवे समर्थ नाहीं। एक पुण्याधिकारी ही शत्रुवों को जीतै हैं। इस भांति राम रावण के युद्ध की प्रवृत्तिविषै योधावों कर योधा हते गए, तिनकर रणक्षेत्र भर गया, अवकाश नाहीं। आयुधोंकर योधा उछलै हैं परै है सो आकाश ऐसा दृष्टि पड़ता भया। मानों उत्पात के बादलोंकर मंडित है।

अथानन्तर मारीच, चन्द्रनिकर, बज्राक्ष, शुकसारण और भी राक्षसों के अधीश तिन्होंने राम

का कटक दबाया। तब हनुमान चन्द्र मारीच नील मुकुंद भूतस्वन इत्यादि रामपक्ष के योधा तिन्होंने राक्षसनि की सेना दबाई। तब रावण के योधा कुंद, कुम्भ, निकुम्भ, विक्रम, क्रमाण, जम्बूमाली, काकबली सूर्यार, मकरध्वज, अशनिरथ इत्यादि राक्षसनि के बड़े बड़े राजा शीघ्र ही युद्धकूं उठे। तब भूधर, अचल, सम्मेद, निकाल, कुटिल, अंगद, सुखेण, काल, चन्द, उर्मितरंग इत्यादि वानरवंशी योधा तिनके सन्मुख भए। उन ही समान ता समय कोई सुभट प्रतिपक्षी सुभट बिना दृष्टि न पड्या।

भावार्थ – दोनों पक्ष के योधा परस्पर महायुद्ध करते भए। अर अंजनी का पुत्र हाथिनि के रथ पर चढ़कर रण में क्रीड़ा करता भया, जैसैं कमलनिकर भरे सरोवर में महागज क्रीड़ा करै।

गौतम गणधर कहै हैं – हे श्रेणिक! वा हनुमान शूरवीर ने राक्षसनि की बड़ी सेना चलायमान करी, उसे रुचा जो किया। तब राजा मय विद्याधर दैत्यवंशी मंदोदरी का बाप, क्रोध के प्रसंगकर लाल हैं नेत्र जाके, सो हनुमान के सन्मुख आया।

तब वह हनुमान कमल समान हैं नेत्र जाके बाणवृष्टि करता भया, सो मय का रथ चकचूर किया। तब वह दूजे रथ चढ़कर युद्ध को उद्यमी भया तब हनुमान बहुरि रथ तोड़ डाला। तब मय को विह्वल देख रावण ने बहुरूपिणी विद्याकर प्रज्वलित उत्तम रथ शीघ्र ही भेजा। सो राजा मय ने वा रथ पर चढ़कर हनुमान से युद्ध किया अर हनुमान का रथ तोड़ा। तब हनुमान को दबा देख भामंडल मदद आया। सो मय ने बाणवर्षा कर भामंडल का भी रथ तोड़ा। तब राजा सुग्रीव इनके मदद आए। सो मय ने ताकूं शस्त्ररहित किया अर भूमि में डारा। तब इनकी मदद विभीषण आया। तो विभीषण के अर मय के अत्यन्त युद्ध भया, परस्पर बाण चले। सो मय ने विभीषण का वख्तर तोड़ा। सो अशोक वृक्ष के पुष्प समान लाल होय तैसी लालरूप रुधिर की धारा विभीषण के पड़ी। तब वानरवंशियों की सेना चलायमान भई – अर राम युद्धकूं उद्यमी भए, विद्यामई सिंहनि के रथ चढ़े शीघ्र ही मय पर आए।

अर वानरवंशीनिकूं कहते भए – तुम भय मत करहु। रावण की सेना विजुरी सहित कारी घटा समान तामें उगते सूर्य समान श्रीराम प्रवेश करते भए। अर परसेना का विध्वंस करवेकूं उद्यमी भए। तब हनुमान भामंडल सुग्रीव विभीषणकूं धीर्य उपजा अर वानरवंशिनि की सेना युद्ध करवेकूं उद्यमी भई। राम का बल पाय राम के सेवकनि का भय मिटा। परस्पर दोनों सेना के योधानिविषै शस्त्रों का प्रहार भया, सो देख देख देव आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर दोनों सेनाविषै अंधकार होय गया। प्रकाशरहित लोकदृष्टि न पड़े। श्रीराम राजा मय को बाणनिकर अत्यन्त आच्छादते भए। थोड़े ही खेद कर मय कूं विह्वल किया, जैसैं इन्द्र चमरेन्द्रकूं करैं। तब राम के बाणोंकर मयकूं विह्वल देख,

रावण काल समान क्रोधकर राम पर धाया। तब लक्ष्मण राम की ओर रावणकूं आवता देख महातेज कर कहता भया – हो विद्याधर! तू किधर जाय है, मैं तोहि आज देख्या, खड़ा रहो। हे रंक! पापी, चोर, पर स्त्रीरूप दीपक के पतंग, अधमपुरुष, दुराचारी! आज मैं तोसों ऐसी करूं जैसी काल न करै। हे कुमानुष! श्रीराघवदेव समस्त पृथ्वी के पति तिन्होंने मोहि आज्ञा करी है जो या चोरकूं सजा देहु।

तब दशमुख महाक्रोध कर लक्ष्मणसूं कहता भया – रे मूढ़! तैंने कहा लोकप्रसिद्ध मेरा प्रताप न सुना? या पृथ्वीविषै जे सुखकारी सार वस्तु हैं सो सब मेरी ही हैं। मैं राजा पृथ्वीपति, जो उत्कृष्ट वस्तु सो मेरी। घन्टा गज के कंठविषै सोहै, स्वान के न सोहै। तैसें योग्य वस्तु मेरे घर सोहै और कै नाहीं। तू मनुष्यमात्र वृथा विलाप करै तेरी कहा शक्ति? तू दीन मेरे समान नाहीं। मैं रंक से क्या युद्ध करूं? तू अशुभ के उदय से मोसे युद्ध किया चाहे है सो जीवन से उदास भया है, मूवा चाहै है।

तब लक्ष्मण बोले – तू जैसा पृथ्वीपति है तैसा मैं नीके जानूं हूं। आज तेरा गाजना पूर्ण करूं हूं। जब ऐसा लक्ष्मण ने कहा तब रावण ने अपने बाण लक्ष्मण पर चलाए, अर लक्ष्मण ने रावण पर चलाए। जैसे वर्षा का मेघ जलवृष्टि कर गिरिकूं आच्छादित करै, तैसें बाणवृष्टिकर वाने वाकूं बेध्या अर वाने वाकूं बेध्या। सो रावण के बाण लक्ष्मण ने वज्रदंडकर बीच ही तोड़ डारे, आप तक आवने न दिए, बाणों के समूह छेद भेद तोड़े फोड़े चूर कर डारे। सो धरती आकाश बाणखंडनिकर भर गए। लक्ष्मण ने रावण कूं सामान्य शस्त्रनिकर विह्वल किया। तब रावण ने जानी यह सामान्य शस्त्रनिकर जीता न जाय, तब लक्ष्मण पर रावण ने मेघबाण चलाया सो धरती आकाश जलरूप होय गए। तब लक्ष्मण ने पवन बाण चलाया, क्षणमात्र में मेघबाण विलय किया।

बहुरि दशमुख ने अग्निबाण चलाया सो दशों दिशा प्रज्वलित भई। तब लक्ष्मण ने वरुण शस्त्र चलाया सो एक निमिष में अग्निबाण नाशकूं प्राप्त भया। बहुरि लक्ष्मण ने पापबाण चलाया सो धर्मबाणकर रावण ने निवार्‍या। बहुरि लक्ष्मण ने ईंधनबाण चलाया सो रावण के अग्निबाण कर भस्म किया। बहुरि लक्ष्मण ने तिमिरबाण चलाया सो अंधकार होय गया, आकाश वृक्षनि के समूहकर आच्छादित भया। कैसे हैं वृक्ष? आसार फलनिकूं बरसावें हैं आसार पुष्पनि के पटल छाय गए। तब रावण ने सूर्यबाण कर तिमिरबाण निवार्‍या अर लक्ष्मण पर नागबाण चलाया। अनेक नाग चले, विकराल हैं फण जिनके। तब लक्ष्मण ने गरुड़बाण कर नागबाण निवार्‍या। गरुड़ की पांखों कर आकाश स्वर्ण की प्रभारूप प्रतिभासता भया। बहुरि राम के भाई ने रावण पर सर्पबाण चलाया।

प्रलयकाल के मेघ समान है शब्द जाका, अर विषरूप अग्नि के कणनिकर महाविषम। तब रावण ने मयूरबाण कर सर्पबाण निवारा, अर लक्ष्मण पर विघ्नबाण चलाया। सो विघ्नबाण दुर्निवार, ताका उपाय सिद्धबाण, सो लक्ष्मणकूं याद न आया। तब वज्रदंड आदि अनेक शस्त्र चलाये। रावण हू सामान्य शस्त्रनिकर युद्ध करता भया, दोनों योधानि में समान युद्ध भया। जैसा त्रिपृष्ठ अर अश्वग्रीव के युद्ध भया हुता, तैसा लक्ष्मण रावण के भया। जैसा पूर्वोपार्जित कर्म का उदय होय तैसा ही फल होय। तैसी क्रिया कर जे महाक्रोध के वश में हैं अर जो कार्य आरम्भा ताविषै उद्यमी हैं, ते नर तीव्र शस्त्रकूं न गिनै, अर अग्निकूं न गिने, सूर्य को न गिने, वायुकूं न गिने।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै रावण लक्ष्मण का युद्ध वर्णन करने वाला चौहत्तरवाँ पर्व पूर्ण भया।।74।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे भव्योत्तम! दोनों ही सेनाविषै तृषावंतनिकूं शीतल मिष्ट जल प्याइये है, अर क्षुधावन्तों को अमृत समान आहार दीजिए है, अर खेदवन्तोंकूं मलयागिरि चन्दन से छिड़किये हैं, ताड़ वृक्ष के बीजने से पवन करिए है, बरफ के वारि से छांटिये है तथा और हू उपचार अनेक कीजिए है। अपना पराया कोई होऊ सबसे यत्न कीजिए है। यही संग्राम की रीति है। दश दिन युद्ध करते भए, दोऊ ही महावीर अभंगचित्त। रावण लक्ष्मण दोनों समान, जैसा वह तैसा वह। सो यक्ष गंधर्व किन्नर अप्सरा आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर दोऊनि का यश करते भए, दोऊनि पर पुष्पवर्षा करी।

अर एक चन्द्रवर्धन नामा विद्याधर ताकी आठ पुत्री, सो आकाशविषै विमानविषै बैठी देख तिनकूं कौतूहल से अप्सरा पूछती भई – तुम देवियों सारिखी कौन हो? तिहारी लक्ष्मणविषै विशेष भक्ति दीखै है, अर तुम सुन्दर सुकुमार शरीर हो। तब वे लज्जासहित कहती भईं, तुमको कौतूहल है तो सुनो – जब सीता का स्वयंवर हुआ तब हमारा पिता हम सहित तहां आया था। तहां लक्ष्मण को देख हमकूं देनी करी अर हमारा भी मन लक्ष्मणविषै मोहित भया। सो अब यह संग्राम विषै वर्ते है, न जानिए कहा होय? यह मनुष्यनिविषै चन्द्रमा समान प्राणनाथ है। जो याकी दशा सो हमारी। ऐसे इनके मनोहर शब्द सुनकर लक्ष्मण ऊपरकूं चौंके, तब वे आठों ही कन्या इनके देखवेकर परम हर्षकूं प्राप्त भईं, अर कहती भईं – हे नाथ! सर्वथा तिहारा कार्य सिद्ध होहु।

तब लक्ष्मणकूं विघ्नबाण का उपाय सिद्धबाण याद आया, अर प्रसन्न वदन भया। सिद्धबाण चलाय विघ्न बाण विलय किया। अर आप महाप्रतापरूप युद्धकूं उद्यमी भया। जो जो शस्त्र रावण चलावै सो राम का वीर महाधीर शस्त्रनिविषै प्रवीण छेद डारे, अर आप बाणनि के समूहकर सर्व दिशा पूर्ण करी, जैसे मेघपटल कर पर्वत आच्छादित होय। रावण बहुरूपिणी विद्या के बलकरि

रणक्रीड़ा करता भया। लक्ष्मण ने रावण का एक सीस छेदा, तब दोय सीस भए, दोय छेदे तब चार भए, अर दोय भुजा छेदी तब चार भईं, अर चार छेदी तब आठ भईं। या भांति ज्यों ज्यों छेदी, त्यों त्यों दुगुनी भईं। अर सीस दुगुणे भए। हजारों सिर अर हजारों भुजा भईं।

रावण के कर हाथी के सूण्ड समान भुजबन्धन कर शोभित, अर सिर मुकुटों कर मंडित, तिनकर रणछेत्र पूर्ण किया। मानों रावणरूप समुद्र महाभयंकर ताके हजारों सिर, वेई भए ग्राह, अर हजारों भुजा वेई भईं तरंग तिनकर बढ़ता भया। अर रावणरूप मेघ, जाके बाहुरूप विजुरी, अर प्रचंड हैं शब्द, अर सिर ही भए शिखर तिनकर सोहता भया। रावण अकेला ही महासेना समान भया। अनेक मस्तक तिनके समूह, जिन पर छत्र फिरै, मानों यह विचार लक्ष्मण ने याहि बहुरूप किया। जो आगे मैं अकेले अनेकनिसूं युद्ध किया अब या अकेले से कहा युद्ध करूं? तातैं याहि बहुशरीर किया। रावण प्रज्वलित वन समान भासता भया। रत्ननि के आभूषण अर शस्त्रनि की किरणनि के समूहकर प्रदीप्त रावण लक्ष्मणकूं हजारों भुजानिकर, बाण शक्ति खड्ग वरछी सामान्य चक्र इत्यादि शस्त्रनि की वर्षाकर आच्छादता भया। सो सब बाण लक्ष्मण छेदे अर महाक्रोधरूप होय सूर्य समान तेजरूप बाणनिकर रावणकूं आच्छादनेकूं उद्यमी भया। एक दोय तीन चार पांच छह दस बीस शत सहस्र मायामई रावण के सिर लक्ष्मण ने छेदे।

हजारों सिर भुजा भूमिविषै पड़े, सो रणभूमि उनकर आच्छादित भई। ऐसी सौहे मानों सर्पादि के फणनि सहित कमलनि के वन हैं। भुजोंसहित सिर पड़े वे उल्कापात से भासे। जेते रावण के बहुरूपिणी विद्याकर सिर अर भुज भए तेते सब सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने छेदे, जैसैं महामुनि कर्मनि के समूह को छेदै। रुधिर की धारा निरन्तर पड़ी। तिनकर आकाशविषै मानों सांझ फूली। दोय भुजा का धारक लक्ष्मण ताने रावण की असंख्यात भुजा विफल करीं। कैसे हैं लक्ष्मण? महा प्रभावकर युक्त हैं। रावण पसेव के समूह कर भर गया है अंग जाका, स्वास कर संयुक्त है मुख जाका, यद्यपि महाबलवान हुता तथापि व्याकुलचित्त भया।

गौतम स्वामी कहै हैं – श्रेणिक! बहुरूपिणी विद्या के बलकर रावण ने महा भयंकर युद्ध किया, पर लक्ष्मण के आगे बहुरूपिणी विद्या का बल न चला। तब रावण मायाचार तज सहज रूप होय क्रोध का भरा युद्ध करता भया। अनेक दिव्यशस्त्रनिकर अर सामान्य शस्त्रनिकर युद्ध किया, परन्तु वासुदेव को जीत न सक्या। तब प्रलय काल के सूर्य समान है प्रभा जाकी, परपक्ष का क्षय करणहारा जो चक्ररत्न ताहि चिन्तता भया। कैसा है चक्ररत्न? अप्रमाण प्रभाव के समूहकूं धरे, मोतिनि की झालरियों कर मंडित, महा दैदीप्यमान, दिव्य, वज्रमई, महा अद्भुत, नाना प्रकार के रत्ननिकर मंडित है अंग जाका, दिव्यमाला अर सुगन्धकर लिप्त अग्नि के समूह

तुल्य धारानि के समूहकर महाप्रकाशवन्त, वैडूर्य मणि के सहस्र आरे तिनकर युक्त जिसका दर्शन सहा न जाय, सदा हजार यक्ष जाकी रक्षा करैं, महाक्रोध का भरा, जैसा काल का मुख होय ता समान वह चक्र चिंतवते ही कर विषै आया। जाकी ज्योतिकर जोतिष देवों की प्रभा मन्द होय गई, अर सूर्य की कांति ऐसी होय गई मानों चित्राम का सूर्य है। अर अप्सरा विश्वासु तुंवरु नारद इत्यादि गन्धर्वनि के भेद आकाशविषै रण का कौतुक देखते हुते सो भयकर परे गए।

अर लक्ष्मण अत्यन्त धीर शत्रु को चक्र संयुक्त देख कहता भया – हे अधम नर! याहि कहा ले रहा है जैसे कृपण कौडी को ले रहा। तेरी शक्ति है तो प्रहार कर। ऐसा कह्या तब वह महा क्रोधायमान होय, दांतिनिकर डसे हैं होंठ जाने, लाल हैं नेत्र जाके, चक्रकूं फेर लक्ष्मण पर चलाया।

कैसा है चक्र? मेघमंडल समान है शब्द जाका, अर महा शीघ्रताकूं लिए प्रलयकाल के सूर्य समान मनुष्यनिकूं जीतव्य के संशय का कारण। ताहि सन्मुख आवता देख लक्ष्मण वज्रमई है मुख जिनका ऐसे वाणनिकर चक्र के निवारवेकूं उद्यमी भया। अर श्रीराम वज्रावर्त धनुष चढ़ाय अमोघ बाणनिकर चक्र के निवारवेकूं उद्यमी भए। अर हल मूसलनकूं भ्रमावते चक्र के सन्मुख भए। अर सुग्रीव गदाकूं फिराय चक्र के सन्मुख भए। अर भामंडल खड्गकूं लेकर निवारिवेकूं उद्यमी भए। अर विभीषण त्रिशूल ले ठाढ़े भए। अर हनुमान मुद्गर लांगूल कनकादि लेकर उद्यमी भए। अर अंगद पारण नामा शस्त्र लेकर ठाढ़े भए। अर अंगद का भाई अंगकुठार लेकर महा तेजरूप खड़े भए। और हू दूसरे श्रेष्ठ विद्याधर अनेकआयुधनिकर युक्त सब एक होयकर जीवने की आशा तज चक्र के निवारिवेकूं उद्यमी भए, परन्तु चक्रकूं निवार न सके। कैसा है चक्र? देव करै हैं सेवा जाकी। ताने आयकर लक्ष्मणकूं तीन प्रदक्षिणा देय अपना स्वरूप कर लक्ष्मण के करविषै तिष्ठा, सुखदाई शान्त है आकार जाका।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं – हे मगधाधिपति! राम लक्ष्मण महा ऋद्धिकूं धरै यह माहात्म्य तोहि संक्षेप से कहा। कैसा है इनका माहात्म्य? जाहि सुने परम आश्चर्य उपजै। अर लोकविषै श्रेष्ठ है। कई एक के पुण्य के उदयकर परम विभूति होय है। अर कई एक पुण्य के क्षयकर नाश होय हैं। जैसैं सूर्य का अस्त चन्द्रमा का उदय होय है तैसैं लक्ष्मण के पुण्य का उदय जानना।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण के चक्ररत्न की उत्पत्ति वर्णन करने वाला पचहत्तरवाँ पर्व पूर्ण भया।।75।।

अथानन्तर लक्ष्मण के हाथविषै महासुन्दर चक्ररत्न आया देख सुग्रीव भामण्डलादि विद्याधरनि के अधिपति अति हर्षित भए, अर परस्पर कहते भए – आगै भगवान अनन्तवीर्य केवली ने आज्ञा

करी जो लक्ष्मण आठवां वासुदेव है, अर राम आठवां बलदेव है, सो यह महाज्योति चक्रपाणि भया। अति उत्तम शरीर का धारक याके बल का कौन वर्णन कर सके। अर यह श्रीराम बलदेव जाके रथकूं महा तेजवंत सिंह चलावै, जाने राजा मय को पकड़ा, अर हल मूसल महारत्न देदीप्यमान जाके करविषै सोहै।

ये बलभद्र नारायण दोऊ भाई पुरुषोत्तम प्रकट भए, पुण्य के प्रभावकर परम प्रेम के भरे। लक्ष्मण के हाथविषै सुदर्शन चक्रकूं देख राक्षसनि का अधिपति चित्तविषै चितारै है जो भगवान अनन्तवीर्य ने आज्ञा करी हुती सोई भई। निश्चय सेती कर्मरूप पवन का प्रेरा यह समय आया। जाका छत्र देख विद्याधर डरते, अर पर की महासेना भाग जाती, परसेना की ध्वजा अर छत्र मेरे प्रताप से बहे बहे फिरते, हिमाचल विंध्याचल है स्तन जाके, समुद्र है वस्त्र जाके, ऐसी यह पृथ्वी मेरी दासी समान आज्ञाकारिणी हुती, ऐसा मैं रावण सो रणविषै भूमिगोचरनि ने जीत्या, यह अद्भुत बात है। कष्ट की अवस्था आय प्राप्त भई।

धिक्कार या राज्यलक्ष्मीकूं। कुलटा स्त्री समान है चेष्टा जाकी। पूज्य पुरुष या पापिनीकूं तत्काल तजैं। यह इन्द्रियनि के भोग इन्द्रायण के फल समान, इनका परिपाक विरस है, अनन्त दु:ख सम्बन्ध के कारण साधुनिकर निंद्य है। पृथ्वीविषै उत्तम पुरुष भरत चक्रवर्त्यादि भए ते धन्य हैं जिन्होंने नि:कंटक छह खंड पृथ्वी का राज्य किया अर विष के मिले अन्न की न्याई राज्यकूं तज जिनेन्द्र व्रत धार रत्नत्रयकूं आराधन कर परमपदकूं प्राप्त भए हैं। मैं रंक विषयाभिलाषी, मोह बलवान ने मोहि जीत्या। यह मोह संसार भ्रमण का कारण। धिक्कार मोहि जो मोह के वश होय ऐसी चेष्टा करी। रावण तो यह चिंतवन करै है। अर आया है चक्र जाके ऐसा जो लक्ष्मण महातेज का धारक सो विभीषण की ओर निरख रावण से कहता भया – हे विद्याधर! अब हू कछु न गया है, जानकीकूं लाय श्रीरामदेवकूं सौंप दे। अर यह वचन कह कि श्रीराम के प्रसादकर जीवूं हूं। हमको तेरा कछु चाहिए नाहीं। तेरी राज्यलक्ष्मी तेरे ही रहो।

तब रावण मंद हास्यकर कहता भया – हे रंक! तेरे वृथा गर्व उपजा है। अबार ही अपने पराक्रम तोहि दिखावूं हूं। हे अधमनर! मैं तोहि जो अवस्था दिखाऊं सो भोग। मैं रावण पृथ्वीपति, विद्याधर, तू भूमिगोचरी रंक।

तब लक्ष्मण बोले – बहुत कहिवेकर कहा? नारायण सर्वथा तेरा मारणहारा उपजा। तब रावण ने कहा इच्छामात्र ही नारायण हूजिए है तो जो तू चाहे सो न हो, इन्द्र हो, तू कुपुत्र पिता ने देश से बाहिर किया, महादुखी दलिद्री वनचारी भिखारी निर्लज्ज तेरी वासुदेव पदवी हमने जानी। तेरे मनविषै मत्सर है सो मैं तेरे मनोरथ भंग करूंगा। यह घेघली समान चक्र है ताकर तू

गर्वा है। सो रंकों की यही रीति है खलि का टूंक पाय मनविषै उत्सव करैं। बहुत कहिवेकर कहा? ये पापी विद्याधर तोसूं मिले हैं तिनसहित अर या चक्रसहित वाहनसहित तेरा नाशकर तोहि पातालकूं प्राप्त कराऊंगा।

ये रावण के वचन सुनकर लक्ष्मण ने कोपकर चक्र को भ्रमाय रावण पर चलाया। वज्रपात के शब्दसमान भयंकर है शब्द जाका, अर प्रलय काल के सूर्यसमान तेजकूं धरे चक्र रावण पर आया। तब रावण बाणनिकर चक्र के निवारवेकूं उद्यमी भया। बहुरि प्रचंड दंड अर शीघ्रगामी वज्रनागकर चक्र के निवारने का यत्न किया तथापि रावण का पुण्य क्षीण भया सो चक्र न रुका, नजीक आया। तब रावण चन्द्रहास खड्ग लेकर चक्र के समीप आया। चक्र के खड्ग की दई सो अग्नि के कणनिकर आकाश प्रज्वलित भया। खड्ग का जोर चक्र पर न चला। सन्मुख तिष्ठता जो रावण महाशूरवीर, राक्षसनि का इन्द्र, ताका चक्र ने उरस्थल भेदा सो पुण्य क्षयकर अंजनगिरि समान रावण भूमिविषै पर्‍या, मानों स्वर्ग से देव चया, अथवा रति का पति पृथ्वीविषै पर्‍या। ऐसा सोहता भया मानों वीर रस का स्वरूप ही है – चढ़ रही है भौंह जाकी, डसे हैं होंठ जाने।

स्वामीकूं पड़ा देख समुद्र समान था शब्द जाका। ऐसी सेना भागिवेकूं उद्यमी भई। ध्वजा छत्र बहे बहे फिरे, समस्त लोक रावण के विह्वल भए, विलाप करते भागे जाय हैं। कोई कहै हैं रथकूं दूर कर मार्ग देहु, पीछेसूं हाथी आवै हैं। कोई कहे हैं विमानकूं एक तरफ कर, अर पृथ्वी का पति पड़ा, अनर्थ भया, महा भयंकर कम्पायमान। वह तापर पड़े, वह तापर पड़े, तब सबको शरणरहित देखि भामंडल सुग्रीव हनुमान राम की आज्ञा से कहते भए – भय मत करो, भय मत करो! धीर्य बंधाया, अर वस्त्र फेर्‍या, काहू को भय नाहीं। तब अमृत समान कानों को प्रिय ऐसे वचन सुन सेनाकूं विश्वास उपज्या।

यह कथा गौतम गणधर राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! रावण ऐसी महा विभूतिकूं भोगै समुद्र पर्यंत पृथ्वी का राज्य करै, पुण्य पूर्ण भए अन्तदशाकूं प्राप्त भया। तातैं ऐसी लक्ष्मीकूं धिक्कार है। यह राजलक्ष्मी महाचंचल, पाप का स्वरूप, सुकृत के समागम के आशाकर वर्जित। ऐसा मनविषै विचारकर हो बुद्धिजन हो! तप ही धन जिनके ऐसे मुनि होवो। कैसे हैं मुनि? तपोधन, सूर्य से अधिक है तेज जिनका, मोह तिमिरकूं हरै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रावण का वध वर्णन करने वाला छिहत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।76।।

अथानन्तर विभीषण ने बड़े भाईकूं पड़ा देख महा दु:ख का भर्‍या अपने घात के अर्थ छुरी विषै हाथ लगाया। सो याकूं मरण की हरणहारी मूर्छा आय गई। चेष्टाकर रहित शरीर हो गया।

बहुरि सचेत होय महा दाह का भर्‌या मरनेकूं उद्यमी भया। तब श्रीराम ने रथ से उतर हाथ पकड़कर उर से लगाया, धीर्य बंधाया। फिर मूर्छा खाय पड्या, अचेत होय गया। श्रीराम ने सचेत किया। तब सचेत होय विलाप करता भया।

जिसका विलाप सुन करुणा उपजे। हाय भाई, उदार क्रियावन्त सामंतों के पति, महाशूरवीर, रणधीर, शरणागतपालक, महा मनोहर, ऐसी अवस्थाकूं क्यों प्राप्त भए? मैं हित के वचन कहे सो क्यों न माने? यह क्या अवस्था भई जो मैं तुमकूं चक्र के विदारे पृथ्वीविषै पड़े देखूं हूं? हे देव विद्याधरों के महेश्वर! हे लंकेश्वर! भोगों के भोक्ता? पृथ्वीविषै कहा पौढ़े? महाभोगों कर लडाया है शरीर जिनका, यह सेज आपके शयन करने योग्य नाहीं। हे नाथ! उठो, सुन्दर वचन के वक्ता। मैं तुम्हारा बालक, मुझे कृपा के वचन कहो। हे गुणाकर कृपाधार! मैं शोक के समुद्रविषै डूबूं हूं सो मुझे हस्तावलंवन कर क्यों न काढ़ो? इस भांति विभीषण विलाप करै है। डार दिये हैं शस्त्र अर वक्तर भूमिविषै जानै।

अथानन्तर रावण के मरण के समाचार रणवासविषै पहुंचे सो राणियां सब अश्रुपात की धाराकर पृथ्वी तल को सींचती भईं। अर सर्व ही अन्त:पुर शोककर व्याकुल भया। सकल राणी रणभूमिविषै आई, गिरती पड़ती, डिगे हैं चरण जिनके। वे नारी पतिकूं चेतनारहित देख शीघ्र ही पृथ्वी विषै पड़ी। कैसा है पति? पृथ्वी की चूड़ामणि है। मन्दोदरी, रंभा, चन्द्राननी, चन्द्रमण्डला, प्रवरा, उर्वशी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकांता, श्रीमती, भद्रा, कनकप्रभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनन्दा, अनंगसुन्दरी, वसुंधरा, तडिन्माला, पद्‌मा, पद्‌मावती, सुखादेवी, कांति, प्रीति, संध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकांता, मनोवती इत्यादि अष्टादशसहस्र राणी अपने अपने परिवार सहित अर सखिनि सहित महाशोक की भरी रुदन करती भईं।

कई एक मोह की भरी मूर्छाकूं प्राप्त भईं सो चन्दन के जलकर छांटी। कुमलाई कमलिनी समान भासती भईं। कई एक पति के अंग से अत्यन्त लिपटकर परी, अंजनगिरिसों लगी संध्या की द्युति को धरती भईं। कई एक मूर्छा से सचेत होय उरस्थल कूटती भईं, पति के समीप मानों मेघ के निकट विजुरी ही चमकै है। कई एक पति का वदन अपने अंगविषै लेयकर विह्वल होय मूर्छाकूं प्राप्त भईं। कई एक विलाप करै हैं – हाय नाथ! मैं तिहारे विरह से अति कायर, मोहि तजकर तुम कहां गए? तिहारे जन दु:ख सागरविषै डूबे हैं सो क्यों न देखो? तुम महाबली, महासुन्दर, परम ज्योति के धारक, विभूतिकर इन्द्र समान, मानों भरतक्षेत्र के भूपति, पुरुषोत्तम, महाराजनि के राजा, मनोरम विद्याधरनि के महेश्वर, कौन अर्थ पृथ्वी मैं पौढ़े, उठो। हे कांत!

करुणानिधि! स्वजन वत्सल! एक अमृत समान वचन हमसे कहो। हे प्राणेश्वर! प्राणवल्लभ! हम अपराध रहित तुमसे अनुरक्त चित्त हम पर तुम क्यों कोप भए? हमसे बोलो ही नाहीं। जैसे पहिले परिहास कथा करते तैसे क्यों न करो?

तिहारा मुखरूपी चन्द्र कांतिरूप चांदनी कर मनोहर, प्रसन्नतारूप जैसे पूर्व हमें दिखावते हुते तैसैं हमें दिखावो। अर यह तिहारा वक्षस्थल स्त्रियों की क्रीड़ा का स्थानक, महासुन्दर, ताविषै चक्र की धारा ने कैसे पग धारा? अर विद्रुम समान तिहारे ये लाल अधर अब क्रीड़ारूप उत्तर के देने को क्यों न स्फुटायमान होय हैं? अब तक बहुत देर लगाई। क्रोध कबहूं न किया, अब प्रसन्न होवो। हम मान करतीं तो आप प्रसन्न करते, मनावते। इन्द्रजीत मेघवाहन स्वर्गलोक से चयकर तिहारे उपजे सो यहां भी स्वर्गलोक से भोग भोगे। अब दोऊ बन्धनविषै हैं, अर कुम्भकरण बंधनविषै है, सो महा पुण्याधिकारी सुभट महागुणवंत श्रीरामचन्द्र तिनसे प्रीतिकर भाई पुत्र को छुड़ावहु।

हे प्राणवल्लभ! प्राणनाथ! उठो, हमसे हित की बात करो। हे देव! बहुत देर सोवना कहा? राजानिकूं राजनीतिविषै सावधान रहना, सो आप राज्य काज विषै प्रवर्तो! हे सुन्दर! हे प्राणप्रिय! हमारे अंग विरहरूप अग्निकर अत्यन्त जरे हैं सो स्नेहरूप जलकर बुझावो। हे स्नेहियों के प्यारे! तिहारा यह वदन कमल और ही अवस्थाकूं प्राप्त भया है। सो याहि देख हमारे हृदय के टूक क्यों न हो जावैं? यह हमारा पापी हृदय वज्र का है, दुःख का भाजन जो तिहारी यह अवस्था जानकर विनस न जाय है। यह हृदय महानिर्दई है। हाय विधाता! हम तेरा कहा बुरा किया जो तैनैं निर्दई होयकर हमारे सिर पर ऐसा दुःख डार्‍या। हे प्रीतम! जब हम मान करतीं तब तुम उर से लगाय हमारा मान दूर करते, अर वचनरूप अमृत हमको प्यावते, महाप्रेम जनावते। हमारा प्रेमरूप कोप ताके दूर करवे के अर्थ हमारे पायन पड़ते। सो हमारा हृदय वशीभूत होय जाता, अत्यन्त मनोहर क्रीड़ा करते, हे राजेश्वर! हमसे प्रीति करो। परम आनंद की करणहारी वे क्रीड़ा हमको याद आवै हैं। सो हमारा हृदय अत्यन्त दाह को प्राप्त होय है। तातैं अब उठो, हम तिहारे पायनि पड़े हैं, नमस्कार करै हैं। जे अपने प्रियजन होय तिनसे बहुत कोप न करिए। प्रीतिविषै कोप न सोहै।

हे श्रेणिक! या भांति रावण की राणी ये विलाप करती भईं जिनका विलाप सुनकर कौन का हृदय द्रवीभूत न होय?

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण भामंडल सुग्रीवादिक सहित अति स्नेह के भरे विभीषणकूं उर से लगाय आसूं डारते। महाकरुणावंत, धीर्य बंधावनेविषै प्रवीण, ऐसे वचन कहते भए - लोक वृत्तांत से सहित हे राजन्! बहुत रोयवे कर कहा? अब विषाद तजहु। यह कर्म की चेष्टा तुम कहा

प्रत्यक्ष नाहीं जानो हो? पूर्वकर्म के प्रभावकरि प्रमोदकूं धरते जे प्राणी तिनके अवश्य कष्ट की प्राप्ति होय है। ताका शोक कहा? अर तुम्हारा भाई सदा जगत के हितविषै सावधान, परम प्रीति का भाजन, समाधानरूप बुद्धि जिसकी, राजकार्यविषै प्रवीण, प्रजा का पालक, सर्व शास्त्रनि के अर्थकर धोया है चित्त जाने, सो बलवान मोहकर दारुण अवस्थाकूं प्राप्त भया अर विनाशकूं प्राप्त भया।

जब जीवनि का विनाशकाल आवे तब बुद्धि अज्ञानरूप होय जाय है। ऐसे शुभ वचन श्रीराम ने कहे। बहुरि भामंडल अति माधुर्यताकूं धरे वचन कहते भए। हे विभीषण महाराज! तिहारा भाई रावण महा उदारचित्तकर रणविषै युद्ध करता संता वीर मरणकर परलोककूं प्राप्त भया। जाका नाम न गया ताका कछु ही न गया। ते धन्य हैं जिन सुभटता कर प्राण तजे। ते महा पराक्रम के धारक वीर तिनका कहा शोक? एक राजा अरिंदम की कथा सुनो।

अक्षयकुमार नामा नगर, तहां राजा अरिंदम, जाके महाविभूति। सो एक दिन काहू तरफ से अपने मन्दिर शीघ्र गामी घोड़े चढ़ा अकस्मात् आया। सो राणीकूं श्रृंगार रूप देख अर महल की अत्यन्त शोभा देखि राणीकूं पूछ्या – तुम हमारा आगम कैसे जाण्या? तब राणी ने कही – कीर्तिधरनामा मुनि अवधिज्ञानी आज आहार को आए थे। तिनको मैंने पूछ्या – राजा कब आवेंगे? सो तिन्होंने कह्या – राजा आज अचानक आवेंगे। यह बात सुन राजा मुनि पै गया अर ईर्ष्याकर पूछता भया – हे मुनि! तुमकूं ज्ञान है तो कहो मेरे चित्त में क्या है। तब मुनि ने कहा तेरे चित्त में यह है कि मैं कब मरूंगा? सो तू आज से सातवें दिन वज्रपात से मरेगा, अर विष्टा में कीट होयगा।

यह मुनि के वचन सुन राजा अरिंदम घर जाय अपने पुत्र प्रीतिंकर को कहता भया – मैं मरकर विष्टा के घर में स्थूल कीट होऊंगा, ऐसा मेरा रंगरूप होयगा, सो तू तत्काल मार डारियो। ये वचन पुत्रकूं कह आप सातवें दिन मरकर विष्टा में कीडा भया। सो प्रीतिंकर कीट के हनिवेकूं गया सो कीट मरने के भयकरि विष्टा में पैठि गया। तब प्रीतिंकर मुनि पै जाय पूछता भया, हे प्रभो! मेरे पिता ने कही थी जो मैं मल में कीट होऊंगा सो तू हनियो। अब वह कीट मरवेसूं डरे हैं, अर भागै है। तब मुनि ने कही तू विषाद मत कर, यह जीव जिस गति में जाय है वहां ही रम रहै है। इसलिए तू आत्मकल्याण कर, जाकरि पापों से छूटे। अर यह जीव सब ही अपने अपने कर्म का फल भोगवै है, कोई काहू का नाहीं। यह संसार का स्वरूप महादुख का कारण जान प्रीतिंकर मुनि भया, सर्व बांछा तजी।

तातैं हे विभीषण! यह नाना प्रकार जगत् की अवस्था तुम कहा न जानो हो? तिहारा भाई महा शूरवीर, दैवयोग से नारायण ने हता। संग्राम के सम्मुख महा प्रधान पुरुष ताका सोच क्या?

तुम अपना चित्त कल्याण में लगावो। यह शोक दुख का कारण ताको तजहु। यह वचन अर प्रीतिंकर की कथा भामंडल के मुख से विभीषण ने सुनी। कैसी है प्रीतिंकर मुनि की कथा? प्रतिबोध देने में प्रवीण, अर नाना स्वभाव कर संयुक्त अर उत्तम पुरुषोंकर कहिवे योग्य। सो सर्व विद्याधरनि ने प्रशंसा करी, सुनकर विभीषण रूप सूर्य शोकरूप मेघ पटल से रहित भया, लोकोत्तर आचार का जानने वाला।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै विभीषण का शोक निवारण वर्णन करने वाला सतत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।77।।

अथानन्तर श्रीरामचन्द्र भामण्डल, सुग्रीवादि सबनिसूं कहते भए – जो पंडितों के बैर बैरी के मरण पर्यन्त ही है। अब लंकेश्वर परलोककूं प्राप्त भए, सो यह महानर हुते, इनका उत्तम शरीर अग्निसंस्कार करिए। तब सबनि प्रणाम करी। अर विभीषण सहित राम लक्ष्मण जहां मन्दोदरी आदि अठारह हजार राणीनि सहित जैसे कुरुचि पुकारै तैसे विलाप करती हुती, सो वाहन से उतर समस्त विद्याधरनि सहित दोऊ वीर तहां गए। सो वे राम लक्ष्मणकूं देखि अति विलाप करती भईं, तोड़ डारे हैं सर्व आभूषण जिन्होंने, अर धूलकर धूसरा है अंग जिनका।

तब श्रीराम महादयावन्त नाना प्रकार के शुभ वचननिकर सर्व राणीनि कों दिलासा करी, धीर्य बंधाया। अर आप सब विद्याधरनिकूं लेकर रावण के लोकाचारकूं गए। कपूर अगर मलियागिरि चन्दन इत्यादि नाना प्रकार के सुगन्ध द्रव्यनिकर पद्मसरोवर पर प्रतिहरि का दाह भया। बहुरि सरोवर के तीर श्रीराम तिष्ठे, कैसे हैं राम? महाकृपालु है चित्त जिनका। गृहस्थाश्रमविषै ऐसे परिणाम कोई विरले के होय हैं। बहुरि आज्ञा करी कुम्भकर्ण इन्द्रजीत मेघनादकूं सब सामंतनि सहित छोडहु।

तब कई एक विद्याधर कहते भए – वे महाक्रूरचित्त हैं, अर शत्रु हैं। छोड़वे योग्य नाहीं, बन्धन ही विषै मरें।

तब श्रीराम कहते भए – यह क्षत्रियनि का धर्म नाहीं। जिनशासनविषै क्षत्रीनि की कथा कहा तुमने नाहीं सुनी है? सूते को, बंधे को, डरते को, शरणागतकूं, दंतविषै तृण लेते को, भागे को, बाल, वृद्ध, स्त्रीनिकूं न हने। यह क्षत्री का धर्म शास्त्रनि में प्रसिद्ध है। तब सबनि कही आप जो आज्ञा करी सो प्रमाण। राम की आज्ञा प्रमाण बड़े बड़े योधा नाना प्रकार के आयुधनिकूं धरे तिनके ल्यायवेकूं गए। कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद, मारीच तथा मन्दोदरी का पिता राजा मय इत्यादि पुरुषनि को स्थूल बन्धन सहित सावधान योधा लिए आवे हैं। सो माते हाथी समान चले आवे हैं।

तिनकूं देख वानरवंशी योधा परस्पर बात करते भए – जो कदाचित् इन्द्रजीत, मेघनाद,

कुम्भकर्ण, रावण की चिता जरती देख क्रोध करे तो कपिवंशनि में इनके सन्मुख लड़नेकूं कोई समर्थ नाहीं। जो कपिवंशी जहां बैठा था तहां से उठ न सका। अर भामंडल ने अपने सब योधानिकूं कहा जो इन्द्रजीत, मेघनादकूं यहां तक बंधे ही अति यत्न से लाइयो। अबार विभीषण का भी विश्वास नाहीं है जो कदाचित् भाई भतीजेनि को निर्धन देख भाई के बैर चितारे, सो याकूं विकार उपजि आवे, भाई के दुख कर बहुत तप्तायमान है। यह विचार भामंडलादिक तिनकूं अति यत्नकर राम लक्ष्मण के निकट लाये।

सो वे महाविरक्त, राग-द्वेषरहित, जिनके मुनि होयवे के भाव, महासौम्य दृष्टिकर भूमि निरखते आवैं, शुभ हैं आनन जिनके। वे महाधीर यह विचारे हैं कि या असार संसार सागरविषै कोई सारता का लवलेश नाहीं। एक धर्म ही सब जीवन का बांधव है, सोई सार है। ये मन में विचारै हैं जो आज बंधनसूं छूटें तो दिगम्बर होय पाणिपात्र आहार करें। यह प्रतिज्ञा धरते राम के समीप आए। इन्द्रजीत, कुम्भकरणादिक, विभीषण की ओर आय तिष्ठे। यथायोग्य परस्पर संभाषण भया।

बहुरि कुम्भकरणादिक श्रीराम लक्ष्मणसूं कहते भए - अहो तिहारा परम धीर्य, परम गम्भीरता, अद्भुत चेष्टा देवनिहू कर न जीता जाय ऐसा राक्षसनि का इन्द्र रावण, मृत्युकूं प्राप्त किया। पंडितनि के अति श्रेष्ठ गुणनि का धारक शत्रुहू प्रशंसा योग्य है। तब श्रीराम लक्ष्मण इनकूं बहुत साता उपजा अति मनोहर वचन कहते भए - तुम पहिले महा भोगरूप जैसैं तिष्ठै तैसैं तिष्ठो।

तब वह महाविरक्त कहते भए - अब इन भोगनिसूं हमारे कछु प्रयोजन नाहीं। यह विषसमान महादारुण, महामोह के, कारण महाभयंकर, महानरक निगोदादि दुखदाई जिनकरि कबहूं जीव के साता नाहीं। विचक्षण हैं ते भोग सम्बन्धकूं कबहूं न बांछे। राम लक्ष्मण ने घना ही कहा तथापि तिनका चित्त भोगासक्त न भया। जैसैं रात्रिविषै दृष्टि अंधकार रूप होय अर सूर्य के प्रकाश कर वही दृष्टि प्रकाश रूप होय जाय तैसैं ही कुम्भकर्णादिक की दृष्टि पहिले भोगासक्त हुती सो ज्ञान के प्रकाशकर भोगनितै विरक्त भई। श्रीराम ने तिनके बंधन छुड़ाए, अर इन सबनि सहित पद्म सरोवरविषै स्नान किया। कैसा है सरोवर? सुगन्ध है जल जाका। ता सरोवर विषै स्नानकर कपि अर राक्षस सब अपने स्थानक गए।

अथानन्तर कई एक सरोवर के तीर बैठे विस्मयकर व्याप्त हैं चित्त जिनका, शूरवीरों की कथा करते भए। कई एक क्रूर कर्म को उलाहना देते भए। कई एक हथियार डारते भए। कई एक रावण के गुणोंकर पूर्ण है चित्त जिनका सो पुकार कर रुदन करते भए। कई एक कर्मनि की विचित्र गति का वर्णन करते भए। अर कई एक संसारबनकूं निंदते भए। कैसा है संसारवन? जा थकी निकसना

अतिकठिन है। कई एक मार्गविषै अरुचि को प्राप्त भए। राज्यलक्ष्मीकूं महाचंचल निरर्थक जानते भए। अर कई एक उत्तम बुद्धि अकार्य की निंदा करते भए। कई एक रावण की गर्व की भरी कथा करते भए, श्री राम के गुण गावते भए। कई एक लक्ष्मण की शक्ति का गुण वर्णन करते भए। कई एक सुकृत के फल की प्रशंसा करते भए, निर्मल है चित्त जिनका। घर घर मृतकों की क्रिया होती भई। बाल वृद्ध सब के मुख यही कथा। लंकाविषै सर्व लोक रावण के शोककरि अश्रुपात डारते चातुर्मास्य करते भए, शोककर द्रवीभूत भया है हृदय जिनका। सकल लोकनि के नेत्रनिसूं जल के प्रवाह बहे सो पृथ्वी जल रूप होय गई। अर तत्त्वों की गौणता दृष्टि पड़ी मानों नेत्रों के जल के भयकर आताप घुसकर लोकों के हृदय विषै पैठा।

सर्व लोकों के मुख से यह शब्द निकसे धिक्कार धिक्कार! अहो बड़ा कष्ट भया, हाय हाय यह क्या अद्भुत भया! या भांति लोक विलाप करै हैं, आंसू डारै हैं। कई एक भूमिविषै शय्या करते भए, मौन धार मुख नीचा करते भये, निश्चल है शरीर जिनका मानों काष्ठ के हैं। कई एक शस्त्रोंकूं तोड़ डारते भये। कई एकों ने आभूषण डार दिए, अर स्त्री के मुखकमल से दृष्टि संकोची। कई एक अति दीर्घ उष्ण निस्वास नाखे हैं सो कलुष होय गए अधर जिनके, मानों दुख के अंकुर हैं। अर कई एक संसार के भोगनि से विरक्त होय मनविषै जिनदीक्षा का उद्यम करते भए।

अथानन्तर पिछले पहिर महासंघ सहित अनन्तवीर्य नामा मुनि लंका के कुसुमायुध नामा वनविषै छप्पन हजार मुनि सहित आए। जैसैं तारनिकर मंडित चन्द्रमा सोहै तैसैं मुनिकर मंडित सोहते भये। जो ये मुनि रावण के जीवते आते तो रावण मारा न जाता, लक्ष्मण के अर रावण के विशेष प्रीति होती। जहां ऋद्धिधारी मुनि तिष्ठे तहां सर्व मंगल होवें। अर केवली विराजै वहां चारों ही दिशाओं में दोय सौ योजन पृथ्वी स्वर्ग तुल्य निरूपद्रव होय, अर जीवन के वैरभाव मिट जावै। जैसैं आकाशविषै अमूर्तत्व अवकाश प्रदानता, निर्लेपता; अर पवनविषै सुवीर्यता निसंगता, अग्निविषै उष्णता; जलविषै निर्मलता; पृथ्वीविषै सहनशीलता; तैसैं स्वत: स्वभाव महामुनि के लोककूं आनन्द दायक होय है। अनेक अद्भुत गुणों के धारक महामुनि तिनसहित स्वामी विराजे।

गौतम स्वामी कहै हैं, हे श्रेणिक! तिनके गुण कौन वर्णन कर सकै? जैसैं स्वर्ण का कुम्भ अमृत का भरया अति सोहै तैसैं महामुनि अनेक ऋद्धि के भरे सौहते भए। निर्जन्तु स्थानक वहां एक शिला, ता ऊपर शुक्ल ध्यान धर तिष्ठे। सो ताही रात्रि विषै केवलज्ञान उपज्या। जिनके परम अद्भुत गुण वर्णन किए पापनि का नाश होय। तब भवनवासी असुरकुमार, नागकुमार, गरुड़कुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, पवनकुमार, मेघकुमार, दिक्कुमार, दीपकुमार, उदधिकुमार, ये दश प्रकार तथा अष्ट प्रकार व्यंतर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच तथा

पंच प्रकार ज्योतिषी चन्द्र सूर्य ग्रह तारा नक्षत्र, अर सोलह स्वर्ग के सर्व ही स्वर्गवासी, ये चतुरनिकाय के देव, सौधर्म, इन्द्रादिक सहित धातुकी खंडद्वीपकैविषै श्रीतीर्थंकर देव का जन्म भया हुता सो सुमेरु पर्वतविषै क्षीरसागर के जलकरि स्नान कराए। जन्मकल्याणक का उत्सवकर प्रभुकूं माता पिताकूं सौंपि तहां उत्सवरहित तांडव नृत्य कर प्रभु की बारबार स्तुति करते भए। कैसे हैं प्रभु? बाल अवस्थाकूं धरै हैं, परन्तु बाल अवस्था की अज्ञान चेष्टासूं रहित हैं।

तहां जन्मकल्याणक का समय साध कर सब देव लंकाविषै अनन्तवीर्य केवली के दर्शनकूं आए। कई एक विमान चढ़े आए, कई एक राजहंसनि पर चढ़े आए। अर कई एक अश्व सिंह व्याघ्रादिक अनेक वाहननि पर चढ़े आए, ढोल, मृदंग, नगारे, वीण, बांसुरी, झांझ, मंजीरे, शंख इत्यादि नाना प्रकार के वादित्र बजावते, मनोहर गान करते, आकाशमंडलकूं आच्छादते, केवली के निकट महाभक्तिरूप अर्ध रात्रि के समय आए। तिनके विमाननि की ज्योतिकर प्रकाश होय गया, अर वादित्रनि के शब्दकर दशों दिशा व्याप्त होय गईं। राम लक्ष्मण यह वृत्तांत जान हर्षकूं प्राप्त भए। समस्त वानरवंशी अर राक्षसवंशी विद्याधर इन्द्रजीत कुम्भकर्ण मेघनाद आदि सब राम लक्ष्मण के संग केवली के दर्शन के लिए जायवेकूं उद्यमी भए। श्रीराम लक्ष्मण हाथी चढ़े, अर कई एक राजा रथ पर चढ़े, कई एक तुरंगनि पर चढ़े, छत्र चमर ध्वजाकरि शोभायमान, महाभक्ति कर संयुक्त देवनि सारिखे महासुगन्ध हैं शरीर जिनके, अति उदार, अपने वाहननितैं उतर महाभक्ति कर प्रणाम करते, स्तोत्र पाठ पढ़ते केवली के निकट आए। अष्टांग दण्डवत कर भूमिविषै तिष्ठे, धर्म श्रवण की है अभिलाषा जिनके, केवली के मुखतैं धर्म श्रवण करते भए।

दिव्यध्वनि में व्याख्यान भया जो ये प्राणी अष्टकर्म से बंधे महा दुख के कर्म पर चढ़े चतुर्गतिविषै भ्रमण करै हैं। आर्त रौद्र ध्यानकर युक्त, नाना प्रकार के शुभाशुभ कर्मनिकूं करै हैं। महा मोहिनी कर्म ने ये जीव बुद्धिरहित किये तातैं सदा हिंसा करै हैं। असत्य वचन कहै हैं, पराए मर्म भेद का वचन कहै हैं, परनिंदा करै हैं, पर द्रव्य हरै हैं, परस्त्री का सेवन करै हैं। प्रमाणरहित परिग्रहकूं अंगीकार करै हैं, बढ्या है महा लोभ जिनके। वे कैसे हैं? महा निंद्यकर्म कर शरीर तज, अधोलोकविषै जाय हैं। तहां महादुख के कारण सप्त नरक तिनके नाम – रत्नप्रभा, शर्करा, बालुका, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम, महातम। सदा महा दुःख के कारण सप्त नरक अंधकार कर युक्त, दुर्गंध सूंघा न जाय, देख्या न जाय, स्पर्शा न जाय, महा भयंकर, महा विकराल है भूमि जिनकी, सदा दुर्वचन त्रास, नाना प्रकार के छेदन भेदन तिनकर सदा पीड़ित। नारकी खोटे कर्मनितैं पापबन्ध कर बहुत काल सागरनि पर्यंत महातीव्र दुःख भोगवै हैं। ऐसा जानि पंडित विवेकी पापबंधतैं रहित होय धर्मविषै चित्त धरहु। कैसे हैं विवेकी? व्रत नियम के धरणहारे, निःकपट

स्वभाव, अनेक गुणनिकर मंडित वे नाना प्रकार के तपकर स्वर्गलोककूं प्राप्त होय हैं। बहुरि मनुष्यदेह पाय मोक्ष प्राप्त होय हैं। अर जे धर्म की अभिलाषा से रहित हैं ते कल्याण के मार्गतैं रहित बारम्बार जन्म मरण करते महादुखी संसारविषै भ्रमण करै हैं। जे भव्यजीव सर्वज्ञ वीतराग के वचनकर धर्मविषै तिष्ठै हैं ते मोक्षमार्गी, शील सत्य शोच सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकर जबलग अष्टकर्म का नाश न करै, तबलग इन्द्र अहमिंद्र पद के उत्तम सुख को भोगवे हैं। नाना प्रकार के अद्भुत सुख भोग, वहां से चयकर महाराजाधिराज होय, बहुरि ज्ञान पाय, जिनमुद्रा धर, महातपकर, केवलज्ञान उपाय, अष्टकर्म रहित सिद्ध होय हैं। अनन्त अविनाशी आत्मिक स्वभावमयी परम आनन्द भोगवे हैं।

यह व्याख्या सुन इन्द्रजीत, मेघनाद अपने पूर्वभव पूछते भये। सो केवली कहै हैं – एक कौशांबी नामा नगरी, तहां दो भाई दलिद्री, एक का नाम प्रथम, दूजे का नाम पश्चिम। एक दिन विहार करते भवदत्तनामा मुनि वहां आए। सो ये दोनों भाई धर्म श्रवणकर ग्यारमी प्रतिमा के धारक क्षुल्लक श्रावक भए। सो मुनि के दर्शनकूं कौशांबी नगरी का राजा इन्द्र नामा राजा आया। सो मुनि महाज्ञानी राजाकूं देख जान्या याके मिथ्यादर्शन दुर्निवार है। अर ताही समय नन्दीनामा श्रेष्ठी महाजिनभक्त मुनि के दर्शनकूं आया। ताका राजा ने आदर किया। ताकूं देख प्रथम अर पश्चिम दोऊ भाईनि में से छोटे भाई पश्चिम ने निदान किया जो मैं या धर्म के प्रसादकरि नन्दी सेठ के पुत्र होऊं। सो बड़े भाई ने अर गुरु ने बहुत संबोध्या जो जिनशासनविषै निदान महानिंद्य है। सो यह न समझा। कुबुद्धि निदान कर दुखित भया। मरण कर नन्दी के इन्दुमुखी नामा स्त्री ताके गर्भविषै आया। सो गर्भविषै आवते ही बड़े बड़े राजानि के स्थानकनिविषै कोट का निपात, दरवाजेनि का निपात इत्यादि नाना प्रकार के चिह्न होते भए।

तब बड़े बड़े राजा याकूं नाना प्रकार के निमित्त कर महानर जान जन्म ही से अति आदर संयुक्त दूत भेज भेज कर द्रव्य पठाय सेवते भए। यह बड़ा भया। याका नाम रतिवर्धन, सो सब राजा याकूं सेवै। कौशांबी नगरी का राजा इन्दु भी सेवा करै। नित्य आय प्रणाम करै। या भांति यह रतिवर्धन महाविभूति कर संयुक्त भया। अर बड़ा भाई प्रथम मरकर स्वर्गलोक गया, सो छोटे भाई के जीवकूं संबोधवे के अर्थ क्षुल्लक का स्वरूप धर आया। सो यह मदोन्मत्त राजा मदकर अंधा होय रह्या। सो क्षुल्लककूं दुष्ट लोकनिकर द्वारविषै पैठने न दिया। तब देव ने क्षुल्लक का रूप दूरकर रतिवर्धन का रूप किया। तत्काल ताका नगर उजाड़ उद्यान कर दिया, अर कहता भया अब तेरी कहा वार्ता? तब वह पांयनि परि स्तुति करता भया तब ताकूं सकल वृत्तांत कह्या जो आपां दोऊ भाई हुते। मैं बड़ा, तू छोटा। सो क्षुल्लक के व्रत धारे सो तैं नन्दी सेठ कूं देख निदान

किया सो मरि नन्दी के घर उपज्या, राजविभूति पाई। अर मैं स्वर्गविषै देव भया।

यह सब वार्ता सुनि रतिवर्धनकूं सम्यक्त उपजा, मुनि भया, अर नन्दीकूं आदि दे अनेक राजा रतिवर्धन के संग मुनि भए। रतिवर्धन, तपकरि जहां भाई का जीव देव हुता तहां ही देव भया। बहुरि दोऊ भाई स्वर्गतैं चयकर राजकुमार भए। एक का नाम उर्व, दूज का नाम उर्वस, राजा नरेन्द्र राणी विजया के पुत्र। बहुरि जिनधर्म का आराधनकरि स्वर्गविषै देव भए। वहां से चयकरि तुम दोऊ भाई रावण के राणी मंदोदरी ताके इन्द्रजीत मेघनाद पुत्र भए। अर नन्दीसेठ कैं इन्द्रमुखी रतिवर्धन की माता सो जन्मांतरविषै मंदोदरी भई। पूर्व जन्मविषै स्नेह हुता सो अब हू माता का पुत्र से अतिस्नेह भया। कैसी है मंदोदरी? जिनधर्मविषै आसक्त है चित्त जाका। यह अपने पूर्व भव सुन दोऊ भाई संसार की मायातैं विरक्त भए। उपजा है महावैराग्य जिनकूं, जैनेश्वरी दीक्षा आदरी। अर कुम्भकरण, मारीच, राजा मय और हू बड़े बड़े राजा संसारतैं महाविरक्त होय मुनि भए, तजे हैं विषय कषाय जिन्होंने। विद्याधर राज की विभूति तृणवत् तजी। महा योगीश्वर होय अनेक ऋद्धि के धारक भए, पृथ्वीविषै विहार करते भव्यनिकूं प्रतिबोधते भए।

श्रीमुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति गए पीछे तिनके तीर्थविषै यह बड़े बड़े महापुरुष भए, परम तप के धारक अनेक ऋद्धिसंयुक्त, ते भव्यजीवनिकूं बारम्बार बंदिवे योग्य हैं। अर मंदोदरी पति अर पुत्र दोऊनि के विरहकरि अतिव्याकुल भई महाशोक कर मूर्छाकूं प्राप्त भई। बहुरि सचेत होय कुरचि की न्याईं विलाप करती भई। दुखरूप समुद्रविषै मग्न होय, हाय पुत्र, इन्द्रजीत मेघनाद! यह कहा उद्यम किया, मैं तिहारी माता अतिदीन ताहि क्यों तजी? यह तुमको कहा योग्य जो दुखकरि तप्तायमान माता ताका समाधान किए बगैर चले गये। हाय पुत्र हो! तुम कैसैं मुनिव्रत धारोगे? तुम देवनि सारिखे महा भोगी, शरीरकूं लड़ावनहारे, कठोर भूमि पर कैसैं शयन करोगे? समस्त विभव तजा, समस्त विद्या तजी, केवल अध्यात्मविद्याविषै तत्पर भए।

अर राजा मय मुनि भया – ताका शोक करै है–हाय पिता! यह कहा किया? जगत् तजि मुनिव्रत धार्‌या। तुम मोतैं तत्काल ऐसा स्नेह क्यों तज्या? मैं तिहारी बालिका, मोतैं दया क्यों न करी? बाल्यावस्थाविषै मोपर तिहारी अतिकृपा हुती, मैं पिता अर पुत्र अर पति सबसे रहित भई, स्त्री के यही रक्षक हैं। अब मैं कौन के शरण जाऊं? मैं पुण्यहीन महादुखकूं प्राप्त भई। या भांति मंदोदरी रुदन करै। ताका रुदन सुन सब ही कूं दया उपजै। अश्रुपातकरि चातुर्मास कीया। ताहि शशिकांता आर्यिका वचनकरि उपदेश देती भई – हे मूर्खणी! कहा रोवै? या संसारचक्रविषै जीवनि ने अनन्त भव धारे। तिनमें नारकी अर देवनि के तो संतान नाहीं। अर मनुष्य अर तिर्यंचनि के है, सो तैं चतुरगति भ्रमण करते मनुष्य तिर्यंचनि के भी अनन्त जन्म धारे। तिनविषै तेरे अनेक

पिता पुत्र बांधव भए। तिनकूं जन्म जन्म में रुदन किया। अब कहा विलाप करै है? निश्चलता भज। यह संसार असार है, एक जिनधर्म ही सार है। तू जिनधर्म का आराधन कर, दुख से निवृत्त होहु। ऐसे प्रतिबोध के कारण आर्यिका के मनोहर वचन सुन मंदोदरी महा विरक्त भई। उत्तम हैं गुण जाविषै, समस्त परिग्रह तजकरि, एक शुक्ल वस्त्र धारि आर्यिका भई। कैसी है मंदोदरी? मनवचनकायकरि निर्मल जो जिनशासन, ताविषै अनुरागिणी है। अर चंद्रनखा रावण की बहिन हू याही आर्यिका के निकट दीक्षा धरि आर्यिका भई। जा दिन मन्दोदरी आर्यिका भई ता दिन अड़तालीस हजार आर्यिका भईं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै इन्द्रजीत मेघनाद कुम्भकर्ण का वैराग्य अर मंदोदरी आदि रानीनि का वैराग्य वर्णन करने वाला अठत्तरवाँ पर्व संपूर्ण भया।।78।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! अब श्रीराम लक्ष्मण का महाविभूतिसों लंकाविषै प्रवेश भया सो सुन। महाविमाननि के समूह, अर हाथीनि की घटा, अर श्रेष्ठ तुरंगनि के समूह, अर मंदिर समान रथ, अर विद्याधरनि के समूह, अर हजारां देव तिनकरि युक्त दोऊ भाई महाज्योति कूं धरे लंका में प्रवेश करते भए। तिनकूं लोक देखि अति हर्षित भए, जन्मान्तर के धर्म के फल प्रत्यक्ष देखते भए। राजमार्ग के विषै जाते श्रीराम लक्ष्मण तिनकूं देख नगर के नर अर नारिनि को अपूर्व आनन्द भया। फूलि रहे हैं मुख जिनके, स्त्री झरोखानिविषै बैठी जालीनि में हौय देखै हैं। कमल समान हैं मुख जिनके, महा कौतुककरि युक्त परस्पर वार्ता करै हैं – हे सखी! देखहु! यह राम राजा दशरथ का पुत्र, गुणरूप रत्ननि की राशि, पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है वदन जाका, कमल समान हैं नेत्र जाके, अद्भुत पुण्यकर यह पद पाया है, अति प्रशंसा योग्य है आकार जाका।

धन्य हैं वह कन्या जिन्होंने ऐसे वर पाए। जानैं यह वर पाए तानैं कीर्ति का थम्भ लोकविषै थाप्या। जानैं जन्मांतरविषै धर्म आचरण होय सो ऐसा नाथ पावैं। ता समान अन्य नारी कौन? राजा जनक की पुत्री महाकल्याणरूपिणी जन्मांतरविषै महापुण्य उपार्जे हैं, तातैं ऐसे पति याहि मिले। जैसैं शची इन्द्र के तैसैं सीता राम के। अर यह लक्ष्मण वासुदेव चक्रपाणि शोभै है, जाने असुरेन्द्र समान रावण रणविषै हता, नीलकमल समान है कांति जाकी। अर गौर कांतिकर संयुक्त जो बलदेव श्रीरामचन्द्र तिनसहित ऐसे सोहै जैसे प्रयागविषै गंगा यमुना के प्रवाह का मिलाप सोहै। अर यह राजा चन्द्रोदय का पुत्र विराधित है जानै लक्ष्मणसूं प्रथम मिलापकर विस्तीर्ण विभूति पाई। अर यह राजा सुग्रीव किहकंधापुर का धनी, महापराक्रमी जानै श्रीरामदेवसूं परम प्रीति जनाई।

अर यह सीता का भाई भामंडल, राजा जनक का पुत्र चन्द्रगति विद्याधर कै पल्या सो विद्याधरनि का इन्द्र है। अर यह अंगद कुमार राजा सुग्रीव का पुत्र जो रावणकूं बहुरूपिणीविद्या साधते विघ्नकूं उद्यमी भया। अर हे सखी! यह हनुमान महासुन्दर उतंग हाथिनि के रथ चढ्या पवनकरि हाले है वानर के चिह्न की ध्वजा जाके, जाहि देखि रणभूमिविषै शत्रु पलाय जांय। सो राजा पवन का पुत्र अंजनी के उदरविषै उपज्या, जानैं लंका के कोट दरवाजे ढाहे।

ऐसी वार्ता परस्पर स्त्रीजन करै हैं। तिनके वचनरूप पुष्पनि की मालानिकरि पूजित जो राम सो राजमार्ग होय आगे आए। एक चमर ढारती जो स्त्री ताहि पूछ्या – हमारे विरह के दुःखकरि तप्तायमान जो भामंडल की बहिन सो कहां तिष्ठै है? तब वह रत्ननि के चूड़ा की ज्योति करि प्रकाशरूप है भुजा जाकी सो आंगुरी की समस्याकरि स्थानक दिखावती भईं। हे देव! यह पुष्पप्रकीर्णनामा गिरि नीझरनानि के जलकरि मानों हास्य ही करै है, तहां नन्दवन समान महा मनोहर वन, ताविषै राजा जनक की पुत्री कीर्ति शील है परिवार जाके, सो तिष्ठे हैं।

या भांति रामजी से चमर ढारती स्त्री कहती भई। अर सीता के समीप जो उर्मिका नाम सखी सब सखिनिविषै प्रीति की भाजनहारी सो अंगुरी पसार सीताकूं कहती भई – हे देवी! चन्द्रमा समान है छत्र जाका, अर चांद सूर्य समान हैं कुण्डल जाके, अर शरद के नीझरने समान है हार जाकै, सो पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र तिहारे वल्लभ आए। तिहारे वियोगकरि मुखविषै अत्यन्त खेदकूं धरैं, हे कमलनेत्रे! जैसे दिग्गज आवै तैसैं आवै हैं। यह वार्ता सुनि सीता ने प्रथम तो स्वप्न समान वृत्तांत जाण्या।

बहुरि आप अति आनन्द को धरै, जैसैं मेघपटल से चन्द्र निकसे तैसैं हाथीतैं उतरि आए, जैसैं रोहिणी के निकट चन्द्रमा आवै तैसैं आए। तब सीता नाथकूं निकट आया जान अतिहर्ष की भरी उठकरि सन्मुख आई। कैसी है सीता? धूरकरि धूसर है अंग, अर केश बिखर रहे हैं, श्याम परि गए हैं होंठ जाके, स्वभाव ही करि कृश हुती अर पति के वियोगकरि अत्यन्त कृश भई। अब पति के दर्शनकरि उपज्या है अति हर्ष जाकूं प्राण की आश बंधी, मानों स्नेह की भरी शरीर की कांतिकरि पतिसूं मिलाप ही करै है। अर मानों नेत्रनि की ज्योतिरूप जलकरि पतिकूं स्नान ही करावै है। अर क्षणमात्रविषै बढ़ गई है शरीर की लावण्यतारूप सम्पदा, अर हर्ष के भरे जे निश्वास तिनकरि मानों अनुराग का बीज बोवै है।

कैसी है सीता? राम के नेत्रनिकूं विश्राम की भूमि, अर पल्लव समान जे हस्त तिनकरि जीते हैं लक्ष्मी के करकमल जानै, सौभाग्यरूप रत्ननि की खान, सम्पूर्ण चन्द्रमा समान है वदन जाका, चन्द्र कलंकी यह निःकलंक विजुरी समान है कांति जाकी, वह चंचल यह निश्चल, प्रफुल्लित

कमल समान हैं नेत्र जाके, मुखरूप चन्द्र की चंद्रिकाकरि अति शोभाकूं प्राप्त भई है। यह अद्भुत वार्ता है कि कमल तो चन्द्र की ज्योतिकरि मुदित होय है अर याके नेत्रकमल मुखचन्द्र की ज्योतिकरि प्रकाशरूप हैं। कलुषता रहित उन्नत हैं स्तन जाके, मानों काम के कलश ही हैं। सरल है चित्त जाका। सो कौशल्या का पुत्र राणी विदेहा की पुत्रीकूं निकट आवती देखी, कथनविषै न आवै ऐसे हर्षकूं प्राप्त भया। अर यह रतिसमान सुन्दरी रमणकूं आवता देखि विनयकरि हाथ जोड़ खड़ी अश्रुपातकरि भरे हैं नेत्र जाके। जैसैं शची इन्द्र के निकट आवै, रति काम के निकट आवै, दया जिनधर्म के निकट आवै, सुभद्रा भरत के निकट आवै, तैसे ही सीता सती राम केसमीप आई।

सो घने दिननि का वियोग, ताकरि खेदखिन्न राम ने मनोरथ के सैकड़ानिकर पाया है नवीन संगम जाने, सो महाज्योति का धरणहारा, सजल हैं नेत्र जाके, भुजबंधनकरि शोभित जे भुजा, तिनकरि प्राणप्रियासूं मिलता भया। ताहि उरसूं लगाय सुख के सागरविषै मग्न भया। उरसूं जुदी न कर सकैं, मानों विरह से डरै है। अर वह निर्मल चित्त की धरणहारी पति के कंठविषै अपनी भुजपांसि डारि ऐसी सोहती भई जैसैं कल्पवृक्षनिसूं लिपटि कल्पवेलि सोहै, भया है रोमांच दोउनि के अंगविषै, परस्पर मिलापकरि दोऊ ही अति सोहते भये। ते देवनि के युगल समान हैं। जैसैं देव देवांगना सोहैं तैसैं सोहते भये।

सीता अर राम का समागम देखि देव प्रसन्न भये। सो आकाशतैं दोनोंनि पर पुष्पनि की वर्षा करते भए, सुगन्ध जल की वर्षा करते भए अर ऐसे वचन मुखतैं उचारते भए – अहो! अनुपम है शील सीता का, शुभ है चित्त सीता का, सीता धन्य है, याकी अचलता गंभीरता धन्य है, व्रतशील की मनोग्यता भी धन्य है, निर्मलपन जाका धन्य है; सतीनिविषै उत्कृष्टता जाके, जानै मनहूकरि द्वितीय पुरुष न इच्छ्या, शुद्ध हैं नियम व्रत जाका। या भांति देवनि प्रशंसा करी।

ताही समय अतिभक्ति का भर्‍या लक्ष्मण आय सीता के पांयनि पर्‍या। विनयकरि संयुक्त सीता अश्रुपात डारती ताहि उरसूं लगाय कहती भई – हे वत्स! महाज्ञानी मुनि कहते जो यह वासुदेव पद का धारक है सो प्रकट भया। अर अर्धचक्री पद का राज तेरे आया। निर्ग्रंथ के वचन अन्यथा न होंय। अर यह तेरे बड़े भाई बलदेव पुरुषोत्तम जिन्होंने विरहरूप अग्निविषै जरती जो मैं सो निकासी। बहुरि चन्द्रमा समान है ज्योति जाकी, ऐसा भाई भामंडल बहिन के समीप आया। ताहि देखि अति मोहकरि मिली। कैसा है भाई? महाविनयवान है, अर रण में भला दिखाया है।

अर सुग्रीव वा हनुमान, नल, नील, अंगद, विराधित, चन्द्र, सुषेण, जांबद इत्यादिक बड़े बड़े विद्याधर अपना नाम सुनाय वन्दना अर स्तुति करते भये। नाना प्रकार के वस्त्र आभूषण कल्पवृक्षनि के पुष्पनि की माला सीता के चरण के समीप स्वर्ण के पात्रविषै मेल भेंट करते भए।

अर स्तुति करते भए – हे देवी! तुम तीन लोकविषै प्रसिद्ध हो, महा उदारताकूं धरौ हो, गुण सम्पदाकर सबनि में बड़ी हो, देवनिकरि स्तुति करने योग्य हो, अर मंगलरूप है दर्शन तिहारा, जैसैं सूर्य की प्रभा सूर्यसहित प्रकाश करै तैसैं तुम श्री रामचन्द्र सहित जयवंत होहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम और सीता का मिलाप वर्णन करने वाला उन्यासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।79।।

अथानन्तर सीता के मिलापरूप सूर्य के उदयकरि फूल गया है मुख कमल जाका ऐसे जो राम सो अपने हाथकरि सीता का हाथ गह उठे, ऐरावत गजसमान जो गज तापर सीतासहित आरोहण किया। मेघ समान वह गज ताकी पीठ पर जानकीरूप रोहिणीकरि युक्त रामरूप चन्द्रमा सोहते भए, समाधान रूप है बुद्धि जिनकी। दोऊ अति प्रीति के भरे, प्राणिनि के समूहकूं आनन्द के करता, बड़े बड़े अनुरागी विद्याधर लार, स्वर्ग विमान तुल्य रावण का महल, तहां श्रीराम पधारे।

रावण के महिल के मध्य श्री शांतिनाथ का मंदिर अति सुन्दर, तहां स्वर्ण के हजारों थम्भ, नाना प्रकार के रत्नोंकरि मंडित मंदिर की मनोहर भीति, जैसैं महाविदेह के मध्य सुमेरु गिरि सोहै तैसैं रावण के मंदिरविषै श्रीशांतिनाथ का मन्दिर सोहै। जाहि देखे नेत्र मोहित होय जांय। तहां घन्टा बाजै है, ध्वजा फहरैं हैं। महा मनोहर वह शांतिनाथ का मन्दिर वर्णनविषै न आवै। श्रीराम हाथी तैं उतरे। नागेन्द्र समान है पराक्रम जाका, प्रसन्न नेत्र, महालक्ष्मीवान, जानकीसहित किंचित् काल कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करी।

प्रलंबित है भुजा, महा प्रशांति हृदय, सामायिककूं अंगीकार करि हाथ जोड़ि शांतिनाथ स्वामी का स्तोत्र, समस्त अशुभ कर्म का नाशक पढ़ते भए – हे प्रभो! तिहारे गर्भावतारविषै शांति भई, महा कांति की करणहारी, सर्वरोग की हरणहारी, अर सकल जीवनकूं आनन्द उपजै, अर तिहारे जन्मकल्याणकविषै इन्द्रादिक देव महाहर्षित होय आए। क्षीरसागर के जलकरि सुमेरु के पर्वत पर तिहारा जन्माभिषेक भया, अर तुमने चक्रवर्ती पद धर जगत् का राज्य किया। बाह्य शत्रु बाह्यचक्र से जीते, अर मुनि होय माहिले मोह रागादिक शत्रु ध्यानकरि जीते। केवल बोध लह्या, जन्म जरा मरण से रहित जो शिवपुर कहिए मोक्ष ताका तुम अविनाशी राज्य लिया। कर्मरूप वैरी ज्ञान शस्त्रतैं निराकरण किए। कैसे हैं कर्मशत्रु? सदा भवभ्रमण के कारण, अर जन्म जरा मरण भय रूप आयुधनिकर युक्त, सदा शिवपुर पंथ के निरोधक।

कैसा है वह शिवपुर? उपमारहित, नित्य, शुद्ध, जहां परभव का आश्रय नाहीं, केवल जिन भाव का आश्रय है, अत्यन्त दुर्लभ, सो तुम आप निर्वाणरूप, औरनिकूं निर्वाणपद सुलभ करौ हो, सर्व जगतकूं शांति के कारण हो। हे श्रीशांतिनाथ! मन वचन कायकरि नमस्कार तुमकूं। हे

जिनेश! हे महेश! अत्यन्त शांति दशाकूं प्राप्त भए हो, स्थावर जंगम सर्व जीविनि के नाथ हो। जो तिहारे शरण आवै तिनके रक्षक हो। समाधि बोध के देनहारे तुम एक परमेश्वर सर्व के गुरु, सब के बांधव हो।

मोक्षमार्ग के प्ररूपणहारे, सर्व इन्द्रादिक देवनिकर पूज्य, धर्मतीर्थ के कर्त्ता हो। तिहारे प्रसाद करि सर्व दुख से रहित जो परम स्थानक ताहि मुनिराज पावै हैं। हे देवाधिदेव! नमस्कार है तुमकूं। सर्व कर्म विलय किया है। हे कृतकृत्य! नमस्कार तुमकूं। पाया है परम शांतिपद जिन्होंने, तीनलोककूं शांति के कारण, सकल स्थावर जंगम जीवनि के नाथ, शरणागतपालक, समाधि बोध के दाता, महाकांति के धारक हे प्रभो! तुम ही गुरु, तुम ही बांधव, तुम ही मोक्षमार्ग के नियंता परमेश्वर, इन्द्रादिक देवनिकरि पूज्य, धर्मतीर्थ के कर्त्ता जिनकरि भव्य जीवनिकूं सुख होय, सर्व दुख के हरणहारे, कर्मनि के अंतक! नमस्कार तुमकूं। हे लब्धलभ्य! नमस्कार तुमकूं। हे लब्धलभ्य कहिए पाया है पायवे योग्य पद जिन्होंने, महाशांत स्वभावविषै विराजमान, सर्वदोष रहित हे भगवान! कृपा करहु। वह अखंड अविनासी पद हमें देवहु।

इत्यादि महास्तोत्र पढ़ते कमल-नयन श्रीराम प्रदिक्षणा देकर वंदना करते भए, महाविवेकी, पुण्य कर्मविषै सदा प्रवीण। अर राम के पीछे नम्रीभूत है अंग जाका, दोऊ कर जोड़, महासमाधानरूप जानकी स्तुति करती भई। श्रीराम के शब्द महादुंदुभी समान अर जानकी महामिष्ट कोमल वीणा समान बोलती भई। अर विशल्या सहित लक्ष्मण स्तुति करते भए। अर भामंडल, सुग्रीव तथा हनुमान मंगल स्तोत्र पढ़ते भए। जोड़े हैं कर कमल, अर जिनराजविषै पूर्ण है भक्ति जिनकी, महागान करते, मृदंगादि बजावते महाध्वनि करते भए। सो मयूर मेघ की ध्वनि जानि नृत्य करते भए। बारम्बार स्तुति प्रणाम करि जिनमन्दिर विषै यथायोग्य तिष्ठे।

ता समय राजा विभीषण अपने दादा सुमाली, अर तिनके लघुवीर सुमाल्यवान, अर सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा रावण के पिता तिनकूं आदि दे अपने बड़े तिनका समाधान करता भया। कैसा है विभीषण? संसार की अनित्यता के उपदेशविषै अत्यन्त प्रवीण। सो बडनिसूं कहता भया - हे तात! ए सकल जीव अपने उपार्जे कर्मनिकूं भोगवै है। तातैं शोक करना वृथा है। अर अपना चित्त समाधान करहु। आप जिन आगम के वेत्ता, महाशांति चित्त, अर विचक्षण हो, औरनिकूं उपदेश देयवे योग्य आपकूं हम कहा कहें? जो प्राणी उपज्या है सो अवश्य मरणकूं प्राप्त होय है। अर यौवन पुष्पनि की सुगन्धता समान क्षणमात्रविषै और रूप होय है। अर लक्ष्मी पल्लवनि की शोभासमान शीघ्र ही और रूप होय है। अर विजुरी के चमत्कार समान यह जीतव्य है। अर पानी के बुदबुदा समान बंधुनि का समागम है। अर सांझ के बादर के रंग समान यह भोग है। अर यह

जगत की करणी स्वप्न की क्रिया समान है। जो ये जीव पर्यायार्थिक नयकरि मरण न करै तो हम भवांतरतैं तिहारे वंशविषै कैसे आवते? हे तात! अपना ही शरीर विनाशीक है तो हितूजन का अत्यन्त शोक काहेकूं करिए? शोक करना मूढ़ता है। सत्पुरुषनि को शोक के दूर करिवे अर्थि संसार का स्वरूप विचारणा योग्य है। देखे, सुने, अनुभवे जे पदार्थ वे उत्तम पुरुषनिकूं शोक उपजावै हैं। परन्तु विशेष शोक न करना, क्षणमात्र भया तो भया। शोककरि बांधव का मिलाप नाहीं, बुद्धिभ्रष्ट होय है। तातैं शोक न करना। यह विचारणा – या संसार असारविषै कौन-कौन सम्बन्ध भए, या जीव के कौन कौन बांधव भए – ऐसा जानि शोक तजना। अपनी शक्ति प्रमाण जिनधर्म का सेवन करना। यह वीतराग का मार्ग संसार-सागर का पार करणहारा है। सो जिनशासनविषै चित्त धरि आत्मकल्याण करना। इत्यादि मनोहर मधुर वचननिकर विभीषण अपने बड़ेनि का समाधान किया।

बहुरि अपने निवास गया। अर अपनी विदग्धनामा पटराणी, समस्त व्यवहारविषै प्रवीण हजारां राणीनि में मुख्य, ताहि श्रीराम के नौतिवेकूं भेज्या। सो आयकरि सीतासहित रामकूं अर लक्ष्मणकूं नमस्कारकरि कहती भई – हे देव! मेरे पति का घर आपके चरणारविन्द के प्रसंगकरि पवित्र करहु, आप अनुग्रह करिवे योग्य हो। या भांति राणी वीनती करी तब ही विभीषण आया, अति आदरतैं कहता भया – हे देव! उठिये, मेरा घर पवित्र करिए। तब आप याके लार ही याके घर जायवेकूं उद्यमी भए। नाना प्रकार के वाहन, कारी घटा समान बाजे, अति उत्तंग अर पवन समान चंचल तुरंग, अर मन्दिर समान रथ इत्यादि नाना प्रकार के जे वाहन तिनपर आरूढ़ अनेक राजा तिन सहित विभीषण के घर पधारे। समस्त राजमार्ग सामंतनिकरि आच्छादित भया। विभीषण ने नगर उछाला, मेघ की ध्वनि समान वादित्र बाजते भए। शंखनि के शब्दकरि गिरि की गुफा नाद करती भईं। झंझा भेरी मृदंग ढोल हजारों बाजते भए। लंपाक काहला धुंधु अनेक बाजे अर दुंदुभी बाजे, दशोंदिशा वादित्रनि के नादकरि पूरी गईं। ऐसे ही तो वादित्रनि के शब्द, अर ऐसे ही नाना प्रकार के वाहननि के शब्द, ऐसे ही सामंतनि के अट्टहास, तिनकर दशों दिशा पूरित भईं। कई एक सिंह शार्दूल पर चढ़े हैं, कई एक हाथीन पर, कई एक तुरंगनि पर चढ़े हैं। नाना प्रकार के विद्यामई तथा सामान्य वाहन तिन पर चढ़े चाले।

नृत्यकारणी नृत्य करै हैं, नट भाट अनेक कला अनेक चेष्टा करै हैं। अतिसुन्दर नृत्य होय है। बंदीजन विरद बखानै हैं। ऊंचे स्वर से स्तुति करै हैं। अर शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान उज्ज्वल छत्रनि के मंडल करि अम्बर छाय रहा है। नाना प्रकार के आयुधनि की कांति करि सूर्य की कांति दबि गई है। नगर के सकल नर नारी रूप कमलनि के वनकूं आनन्द उपजावते,

भानुसमान श्रीराम विभीषण के घर आए।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! ता समय की विभूति कही न जाय। महाशुभ लक्षण, जैसी देवनिके शोभा होय तैसी भई। विभीषण ने अर्घपाद्य किए, अति शोभा करी। श्रीशांतिनाथ के मंदिर तैं लेय अपने महिल तक महा मनोज्ञ तांडव किए। आप श्रीराम हाथी से उतर सीता अर लक्ष्मण सहित विभीषण के घर में प्रवेश करते भए। विभीषण के महिल के मध्य पद्मप्रभु जिनेन्द्र का मन्दिर रत्ननि के तोरणनिकरि मंडित, कनक मई, ताके चौगिर्द अनेक जिनमन्दिर। जैसे पर्वतनि के मध्य सुमेरु सोहै तैसैं पद्मप्रभु का मन्दिर सोहै। सुवर्ण के हजारा थम्भ, तिनके ऊपर अति ऊंचे दैदीप्यमान अति विस्तार संयुक्त जिनमन्दिर सोहैं। नाना प्रकार के मणिनि के समूहकरि मंडित अनेक रचना कूं धरैं। अति सुन्दर पद्मराग मणिमई पद्मप्रभु जिनेन्द्र की प्रतिमा, अति अनुपम विराजै जाकी कान्तिकरि मणिनि की भूमिविषै मानों कमलनिकर वन फूल रहे हैं। सो राम लक्ष्मण सीतासहित वंदनाकरि स्तुतिकरि यथायोग्य तिष्ठे।

अथानन्तर विद्याधरनि की स्त्री राम लक्ष्मण सीता के स्नान की तैयारी करावती भई। अनेक प्रकार के सुगन्ध तेल तिनके उबटना किए। नासिकाकूं सुगन्ध अर देहकूं अनुकूल पूर्व दिशाकूं मुखकर स्नान की चौकी पर विराजे घणी ऋद्धिकर स्नानकूं प्रवरते, सुवर्ण के, मरकत मणि के हीरानि के, स्फटिक मणि के, इन्द्रनीलमणि के कलश सुगन्ध जल के भरे तिनकर स्नान भया। नाना प्रकार के वादित्र बाजे। गीत गान भए। जब स्नान होय चुका तब महापवित्र वस्त्र आभूषण पहिरे। बहुरि पद्मप्रभु के चैत्यालय जाय वंदना करी।

विभीषण ने राम की मिजमानी करी, ताके विस्तार कहांलग कहिए– दुग्ध, दही, घी, शर्बत की बावड़ी भरवाई। पकवान अर अन्न के पर्वत किए। अर जे अद्भुत वस्तु नन्दनादि वन विषै पाइए ते मंगाईं। मनकूं आनन्दकारी, नासिकाकूं सुगन्ध नेत्रोंकूं प्रिय, अति स्वादकूं धरे जिह्वाकूं वल्लभ, षट्रस सहित भोजन की तैयारी करी। सामग्री तो सर्व सुन्दर ही हुती अर सीता के मिलापकर रामकूं अतिप्रिय लागी। राम के चित्त की प्रसन्नता कथनविषै न आवैं। जब इष्ट का संयोग होय तब पांचों इन्द्रियनि के सर्व ही भोग प्यारे लागे, नातर नाहीं। जब अपने प्रीतम का संयोग होय तब भोजन भली भांति रुचै, सुन्दर रुचै, सुन्दर वस्त्र का देखना रुचै, राग का सुनना रुचै, कोमल स्पर्श रुचै, मित्र के संयोगकर सर्व मनोहर लगै, अर जब मित्र का वियोग होय तब स्वर्ग तुल्य भी नरक तुल्य भासै ।

अर प्रिय के समागमविषै महाविषम वन स्वर्ग तुल्य भासै। महासुन्दर अमृतसारिखे रस, अर अनेक वर्ण के अद्भुत भक्ष्य तिनकर राम लक्ष्मण सीताकूं तृप्त किए। अद्भुत भोजन क्रिया भई।

भूमिगोचरी विद्याधर परिवारसहित अति सन्मानकर जिमाए। चन्दनादि सुगन्ध के लेप किए, तिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं, अर भद्रसाल नन्दनादिक वन के पुष्पनि से शोभित किये। अर महासुन्दर कोमल महीन वस्त्र पहिराए। नाना प्रकार के रत्ननि के आभूषण दिए। कैसे हैं आभूषण? जिनके रत्ननि की ज्योति के समूहकरि दशोंदिशाविषै प्रकाश होय रहा है। तेते राम की सेना के लोक हुते ते सब विभीषण ने सन्मान कर प्रसन्न किये, सब के मनोरथ पूर्ण किये। रात्रि अर दिवस सब विभीषण ही का यश करे।

अहो! यह विभीषण राक्षसवंश का आभूषण है, जाने राम लक्ष्मण की बड़ी सेवा करी। यह महाप्रशंसा योग्य है, महा पुरुष है, यह प्रभाव का धारक जगतविषै उतंगता कूं प्राप्त भया – जाके मन्दिरविषै श्रीराम लक्ष्मण पधारे। या भांति विभीषण के गुण ग्रहणविषै तत्पर विद्याधर होते भए। सर्वलोक सुखसूं तिष्ठे। राम लक्ष्मण सीता अर विभीषण की कथा पृथ्वीविषै प्रवरती भई।

अथानन्तर विभीषणादि के सकल विद्याधर राम लक्ष्मण का अभिषेक करनेकूं विनयकर उद्यमी भए। तब श्रीराम लक्ष्मण ने कहा – अयोध्याविषै हमारे पिता ने भाई भरतकूं अभिषेक कराया सो भरत ही हमारे प्रभु हैं। तब सबने कही आपकूं यही योग्य है, परन्तु अब आप त्रिखंडी भए तो यह मंगल स्नान योग्य ही है, यामें कहा दोष है? अर ऐसी सुननेविषै आवै है – भरत महाधीर हैं, अर मनवचन कायकरि आपकी सेवाविषै प्रवर्ते हैं, विक्रियाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। ऐसा कह सबने राम लक्ष्मण का अभिषेक किया। जगतविषै बलभद्र नारायण की अति प्रशंसा भई।

जैसैं स्वर्गविषै इन्द्र प्रतिइन्द्र की महिमा होय तैसैं लंकाविषै राम लक्ष्मण की महिमा भई। इन्द्र के नगर समान वह नगर महा भोगनिकर पूर्ण, तहां राम लक्ष्मण की आज्ञासूं विभीषण राज्य करै है। नदी सरोवरनि के तीर अर देश, पुर, ग्रामादिविषै विद्याधर राम लक्ष्मण ही का यश गावते भए। विद्याकरयुक्त अद्भुत आभूषण पहिरे सुन्दर वस्त्र मनोहर हार सुगन्धादिक के विलेपन उनकर युक्त क्रीड़ा करते भए। जैसैं स्वर्गविषै देव क्रीडा करैं। अर श्रीरामचन्द्र सीता का मुख देखते तृप्ति कूं न प्राप्त भए। कैसा है सीता का मुख? सूर्य के किरणकरि प्रफुल्लित भया जो कमल ता समान है प्रभा जाकी। अत्यन्त मन की हरणहारी जो सीता ता सहित राम निरन्तर रमणीय भूमिविषै रमते भए। अर लक्ष्मण विशल्या सहित रतिकूं प्राप्त भए। मनवांछित सकल वस्तु का है समागम जिनके। उन दोऊ भाईनि के बहुत दिन भोगोपभोग युक्त सुख से एक दिवस समान गए।

एक दिन लक्ष्मण सुन्दर लक्षणनि का धरणहारा विराधितकूं अपनी जे स्त्री तिनके लेयवे अर्थ पत्र लिख बड़ी ऋद्धि से पठावता भया। सो जायकर कन्यानि के पितानिकूं पत्र देता भया। माता पितानि ने बहुत हर्षित होय कन्यानिकूं पठाईं। सो बड़ी विभूतिसूं आईं। दशांग नगर के स्वामी

वज्रकर्ण की पुत्री रूपवती महारूप की धरणहारी, अर नलकूवर स्थान के नाथ बालखिल्य की पुत्री कल्याणमाला परम सुन्दरी, अर पृथ्वी नगर के राजा पृथ्वीधर की पुत्री वनमाला, गुणरूपकर प्रसिद्ध अर क्षेमांजलीपुर के राजा जितशत्रु की पुत्री जितपद्मा, अर उज्जैन नगरी के राजा सिंहोदर की पुत्री। यह सब लक्ष्मण के समीप आईं। विराधित ले आया। जन्मांतर के पूर्व पुण्य, दया, मन इन्द्रियों को वश करना, शीलसंयम, गुरुभक्ति, महा उत्तम तप, इन शुभ कर्मनिकर लक्ष्मणसा पति पाइए। इन पतिव्रतानि नैं पूर्व महातप किए हुते। रात्रिभोजन तज्या, चतुर्विध संघ की सेवा करी, तातैं वासुदेव पति पाए। उनको लक्ष्मण ही वर योग्य, अर लक्ष्मण के ऐसे ही स्त्री योग्य। तिनकरि लक्ष्मणकूं, अर लक्ष्मणकर तिनकूं अति सुख होता भया। परस्पर सुखी भए।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे श्रेणिक! जगत विषै ऐसी सम्पदा नाहीं, ऐसी शोभा नाहीं, ऐसी लीला नाहीं, ऐसी कला नाहीं जो इनके न भई। राम लक्ष्मण अर इनकी राणी तिनकी कथा कहां लग कहै? अर कहां कमल कहां चन्द्र इनके मुख की उपमा पावै? अर कहां लक्ष्मी अर कहां रति इनकी राणियों की उपमा पावै? राम लक्ष्मण की ऐसी सम्पदा देख विद्याधरनि के समूहकूं परम आश्चर्य होता भया। चन्द्रवर्धन की पुत्री अर अनेक राजानि की कन्या तिनसूं श्रीराम लक्ष्मण का अति उत्सव से विवाह होता भया। सर्व लोककूं आनंद के करणहारे वे दोऊ भाई महोभोगनि के भोक्ता, मनवांछित सुख भोगते भए। इन्द्र प्रत्येंद्र समान आनन्दकरि पूर्ण लंकाविषै रमते भए। सीताविषै है अत्यन्त राग जिनका ऐसे श्रीराम तिन्होंने छह वर्ष लंकाविषै व्यतीत किए। सुख के सागरविषै मग्न, सुन्दर चेष्टा के धरणहारे रामचन्द्र सकल दुःख भूल गए।

अथानन्तर इन्द्रजीत मुनि सर्व पापनि के हरनहारे अनेक ऋद्धि सहित विराजमान पृथ्वीविषै विहार करते भए। वैराग्यरूप पवनकरि प्रेरी ध्यानरूप अग्निकरि कर्मरूप भस्म किए। कैसी है ध्यानरूप अग्नि? क्षायिक सम्यक्त्वरूप अरण्य की लकड़ी, ताकरि करी है। अर मेघवाहन मुनि भी विषयरूप ईंधन को अग्निसमान आत्मध्यान कर भस्म करते भए, केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। केवलज्ञान जीव का निजस्वभाव है। अर कुम्भकर्ण मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के धारक, शुक्ललेश्याकरि निर्मल जो शुक्लध्यान ताके प्रभाकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। लोक अर अलोक इनकूं अवलोकन करते, मोहरजरहित इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण केवली आयु पूर्णकरि अनेक मुनिन सहित नर्मदा के तीर सिद्धपदकूं प्राप्त भए।

सुर असुर मनुष्यनि के अधिपतिकरि गाइए है उत्तमकीर्ति जिनकी, शुद्ध शील के धरणहारे, महादेदीप्यमान, जगतबन्धु, समस्त ज्ञेय के ज्ञाता, जिनके ज्ञानसमुद्रविषै लोकालोक गाय के खुरसमान भासै, संसार का क्लेश महाविषम ताके जलसे निकसे, जा स्थानक गए बहुरि यत्न नाहीं –

तहां प्राप्त भए, उपमारहित निर्विघ्न अखंड सुखकूं प्राप्त भए। जे कुम्भकर्णादिक अनेक सिद्ध भए ते जिनशासन के श्रोतावोकूं आरोग्य पद देवे। नाश किए हैं कर्मशत्रु जिन्होंने, ते जिनस्थानकों से सिद्ध भए हैं मैं वे स्थानक अद्यापि देखिये है। वे तीर्थ भव्यनिकरि बंदवे योग्य हैं। विंध्याचल की वनीविषै इन्द्रजीत मेघनाद तिष्ठे सो तीर्थ मेघरव कहावै है।

अर जाम्बुमाली महा बलवान तूणीमंतनामा पर्वतविषै अहमिंद्र पदकूं प्राप्त भए सो पर्वत नाना प्रकार के वृक्ष अर लतानिकरि मंडित, अनेक पक्षिनि के समूहकरि तथा नाना प्रकार के वचननिकर भर्‍या।

अहो भव्यजीव हो! जीवदया आदि अनेक गुणनिकर पूर्ण ऐसा जो जिनधर्म ताके सेवने से कछु दुर्लभ नाहीं, जैनधर्म के प्रसाद से सिद्ध पद, अहमिंद्र पद इत्यादि के पद सर्व ही सुलभ हैं।

जम्बूमाली का जीव अहमिंद्र पद से ऐरावतक्षेत्रविषै मनुष्य होय, केवल उपाय, सिद्धपदकूं प्राप्त होवेंगे। अर मंदोदरी का पिता चारण मुनि होय महा ज्योतिकूं धरे अढाईद्वीपविषै कैलाश आदि निर्वाण क्षेत्रनि की अर चैत्यालयनि की वंदना करते भए। देवनि का है आगमन जहां। सो मय महामुनि, रत्नत्रयरूप आभूषण करि मंडित, महाधीर्यधारी पृथ्वीविषै विहार करै। अर मारीच मंत्री महामुनि स्वर्गविषै बड़ी ऋद्धि के धारी देव भये। जिनका जैसा तप तैसा फल पाया। सीता के दृढ़ व्रतकरि पति का मिलाप भया, जाकूं रावण डिगाय सक्या नाहीं। सीता का अतुल धीर्य अद्भुत रूप, महानिर्मल बुद्धि भरतारविषै अधिक स्नेह, जो कहनेविषै न आवै। सीता महा गुणनिकरि पूर्ण, शील के प्रसादतैं जगतविषै प्रशंसा योग्य भई। कैसी है सीता? एक निजपतिविषै है संतोष जाके, भवसागर की तरणहारी, परम्पराय मोक्ष की पात्र जाकी साधु प्रशंसा करै।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! जो स्त्री विवाह ही नहीं करै, बालब्रह्मचर्य धारै, सो तो महाभाग्य ही है, अर पतिव्रत का व्रत आदरे, मनवचनकायकरि पर पुरुष का त्याग करै, तो यह व्रत भी परम रत्न है। स्त्रीकूं स्वर्ग अर परम्पराय मोक्ष देवनेकूं समर्थ है। शीलव्रत समान और व्रत नाहीं। शील भवसागर की नाव है। राजा मय मंदोदरी का पिता राज्य अवस्थाविषै मायाचारी हुता, अर कठोर परगामी हुता तथापि जिनधर्म के प्रसादकरि रागद्वेष रहित हो अनेक ऋद्धि का धारक मुनि भया।

यह कथा सुन राजा श्रेणिक गौतम स्वामीकूं पूछते भए – हे नाथ! मैं इन्द्रजीतादिक का माहात्म्य सब सुन्या। अब राजा मय का महात्म्य सुना चाहूं हूं। अर हे प्रभो! जो या पृथ्वीविषै पतिव्रता शीलवंती हैं, निज भरतारविषै अनुरक्त हैं, वे निश्चय से स्वर्ग मोक्ष की अधिकारिणी हैं, तिनकी महिमा मोहि विस्तारसूं कहो।

तब गणधर कहते भए – जे निश्चयकरि सीता समान पतिव्रता शीलकूं धारण करै हैं ते अल्प भव में मोक्ष होय हैं। पतिव्रता स्वर्ग ही जांय परम्पराय मोक्ष पावैं, अनेक गुणनिकर पूर्ण। हे राजन्! जे मनवचनकायकरि शीलवंती हैं, चित्त की वृत्ति जिन्होंने रोकी है, ते धन्य हैं। घोड़ेनि में, हाथीनि में लोहेनिविषै, पाषाणविषै, वस्त्रनिविषै, जलविषै, वृक्षनिविषै, बेलनिविषै, स्त्रीनिविषै, पुरुषनिविषै बड़ा अन्तर है। सभी बेलनि में न ककड़ी फले न कुम्हड़ा। वैसे ही सब ही नारियों में पतिव्रता न पाइए, अर सबही पुरुषनि में विवेकी नाहीं। जे शीलरूप अंकुशकरि मनरूप भाते हाथीकूं वश करैं ते पतिव्रता सबही कुलविषै होय हैं। अर वृथा पतिव्रता का अभिमान किया तो कहा?

जे जिनधर्म से बहिर्मुख हैं ते मानरूप माते हाथीकूं वश करिवे समर्थ नाहीं। वीतराग की वाणीकरि निर्मल भया है चित्त जिनका ते ही मनरूप हस्तीकूं विवेकरूप अंकुशकरि वशीभूत करि, दया शील के मार्गविषै चलायवे समर्थ हैं।

हे श्रेणिक! एक अभिमाना नामा स्त्री ताकी संक्षेप से कथा कहिए है – सो सुन, यह प्राचीन कथा प्रसिद्ध है।

एक धान्य ग्रामनामा ग्राम, तहां नोदन नामा ब्राह्मण, ताके अभिमाना नामा स्त्री, सो अग्निनामा ब्राह्मणी की पुत्री, माननी नामा माता के उदरविषै उपजी, सो अति अभिमान की धरणहारी। सो नोदन नामा ब्राह्मण क्षुधाकर पीड़ित होय अभिमानाकूं तज दई, सो गजवनविषै करूरूह नाम राजाकूं प्राप्त भई। वह राजा पुष्पप्रकीर्ण नगर का स्वामी, लंपट, सो ब्राह्मणीकूं रूपवती जान ले गया, स्नेहकर घरविषै राखी।

एक समय रातिविषै तानैं राजा के मस्तकविषै चरण की लात दई। प्रात: समय सभाविषै राजा ने पंडितनिकूं पूछ्या – जानैं मेरा सिर पावं कर हता होय ताका कहा करना? सब मूर्ख पंडित कहते भए – हे देव! ताका पांव छेदना अथवा प्राण हरना। ता समय एक हेमांक नामा ब्राह्मण राजा के अभिप्राय का वेत्ता कहता भया – ताके पांव की आभूषणादिकरि पूजा करनी। तब राजा ने हेमांककूं पूछी – हे पंडित! तुमने रहस्य कैसे जाना?

तब तानैं कही – स्त्री के दंतनि के तिहारे अधरनिविषै चिह्न दीखे, तातैं यह जानी स्त्री के पांव की लागी। तब राजा ने हेमांक को अभिप्राय का वेत्ता जान अपना निकट कृपापात्र किया, बड़ी ऋद्धि दई। सो हेमांक के घर के पास एक मित्रयशानामा विधवा ब्राह्मणी महादु:खी अमोघसर नाम ब्राह्मण की स्त्री है सो रहै। सो अपने पुत्रकूं शिक्षा देती भई। भरतार के गुण चितार चितार कहती भई – हे पुत्र! बाल अवस्थाविषै जो विद्या का अभ्यास करै सो हेमांक की न्याईं महाविभूतिकूं प्राप्त होय। या हेमांक ने बालअवस्थाविषै विद्या का अभ्यास किया सो अब याकी

कीर्ति देख। अर तेरा बाप धनुषबाण विद्याविषै अति प्रवीण हुता ताके तुम सुपुत्र भए। आंसू डार माता ने कहे।

ताके वचन सुन माताकूं धीर्य बंधाया, महा अभिमान का धारक यह श्रीवर्धित नामा पुत्र विद्या सीखने के अर्थिक व्याधपुर नगर गया। सो गुरु के निकट शस्त्र शास्त्र सर्व विद्या सीख्या। अर या नगर के राजा सुकांत की शीला नामा पुत्री ताहि ले निकस्या। तब कन्या का भाई सिंहचन्द्र या ऊपर चढ्या सो या अकेले ने शस्त्रविद्या के प्रभावकरि सिंहचन्द्रकूं जीत्या अर स्त्रीसहित माता के निकट आया। माताकूं हर्ष उपजाया। शस्त्रकलाकरि याकी पृथ्वीविषै प्रसिद्ध कीर्ति भई। सो शस्त्र के बलकरि पोदनापुर के राजा करूरूहकूं जीत्या अर व्याघ्रपुर का राजा शीला का पिता मरणकूं प्राप्त भया। ताका पुत्र सिंहचन्द्र शत्रुनि ने दबाया। सो सुरंग के मार्ग होय अपनी रानीकूं ले निकस्या, राज्यभ्रष्ट भया।

पोदनापुरविषै अपनी बहिन का निवास जान तम्बोली के लार पाननि की झोली सिर पर धरे स्त्री सहित पोदनापुर के समीप आया। रात्रिकूं पोदनापुर के वनविषै रह्या। ताकी स्त्री सर्प ने डसी। तब यह ताहि कांधे घर[1] जहां मय महामुनि विराजे हुते, वे वज्र के थम्भ समान महा निश्चल कायोत्सर्ग धरैं, अनेक ऋद्धि के धारक, तिनकूं भी सर्व औषधि ऋद्धि उपजी हुती, सो तिनके चरणारविंद के समीप सिंहचन्द्र ने अपनी राणी डारी। सो तिनके ऋद्धि के प्रभावकरि राणी निर्विष भई। स्त्रीसहित मुनि के समीप तिष्ठै था, ता मुनि के दर्शनकूं विनयदत्त नाम श्रावक आया ताहि सिंहचन्द्र मिल्या, अर अपना सर्व वृत्तांत कह्या। तब तानैं जायकरि पोदनापुर के राजा श्रीवर्धितकूं कह्या जो तिहारा स्त्री का भाई सिंहचन्द्र आया है। तब वह शत्रु जान युद्धकूं उद्यमी भया।

तब विनदयत्त ने यथावत् वृत्तांत कह्या जो तिहारे शरण आया है तब ताहि बहुत प्रीति ऊपजी अर महाविभूतिसूं सिंहचन्द्र के सन्मुख आया, दोऊ मिले, अति हर्ष उपज्या।

बहुरि श्रीवर्धित मय मुनिकूं पूछता भया – हे भगवान! मैं मेरे अपने स्वजनों के पूर्वभव सुना चाहूं हूं। तब मुनि कहते भए – एक शोभापुरनामा नगर वहां भद्राचार्य दिगम्बर ने चौमासैविषै

1. ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित पद्मपुराण में स्त्री को सर्प द्वारा डसने के बजाय राजा सिंहेन्द्र को सर्प ने डसा – ऐसा संस्कृत और हिन्दी में वर्णन है। रानी ने कंधे पर लाकर मुनिराज के चरणों में राजा को लिटाया तथा मुनिराज के चरणों का स्पर्श कर पति के शरीर का स्पर्श किया, जिससे वह पुन: जीवित हो गया।

मूल श्लोक निम्नप्रकार हैं –

1. महोरगेण सन्दष्टस्तं देवी परिदेविनी। कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मय: स्थित:।।180।। (पर्व 80)
2. पादौ मुने: परामृष्य पत्युर्गात्रं समापृशत्। देवी तत: परिप्राप्त: सिंहेन्दुर्जीवितं पुन:।।182।। (पर्व 80)

निवास किया सो अमलनामा नगर का राजा निरन्तर आचार्य के दर्शन को आवै। सो एक दिवस एक कोढ़िनी स्त्री, ताकी दुर्गंध आई। सो राजा पांव पयादा ही भाग अपने घर गया, ताकी दुर्गंध सह न सका। अर वह कोढ़नी चैत्यालय दर्शनकरि भद्राचार्य के समीप श्राविका के व्रत धारे, समाधिमरणकरि देवलोक गई। वहां से चयकर तेरी स्त्री शीला भई। अर वह राजा अमल अपने पुत्रकूं राज्यभार सौंप आप श्रावक के व्रत धारे, आठ ग्राम पुत्र पै ले संतोष धर्‍या, शरीर तज देवलोक गया। वहां से चयकरि तू श्रीवर्धित भया।

अब तेरी माता के भव सुन – एक विदेशी क्षुधाकरि पीड़ित ग्रामविषै आय भोजन मांगता भया। सो जब भोजन न मिला तब महा कोपकरि कहता भया कि मैं तिहारा ग्राम बालूंगा। ऐसे कटुक शब्द कह निकस्या। दैवयोग से ग्रामविषै आग लगी सो ग्राम के लोगनि ने जानी ताने लगाई। तब क्रोधायमान होय दौड़े, अर ताहि ल्याय अग्निविषै जराया सो महादुखकरि राजा की रसोवणि भई। मरकरि नरकविषै घोर वेदना पाई। तहां से निकसि तेरी माता मित्रयशा भई। अर पोदनापुरविषै एक गोवाणिज गृहस्थ मरकरि तेरी स्त्री का भाई सिंहचन्द्र भया। अर वह भुजपत्रा ताकी स्त्री रतिवर्धना भई। पूर्व भवविषै पशुओं पर बोझ लादे थे सो या भवविषै भार वहै। ये सबके पूर्व जन्म कहकरि मय महामुनि आकाश मार्ग विहार कर गए अर पोदनापुर का राजा श्रीवर्धित सिंहचन्द्रसहित नगरविषै गया।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! यह संसार की विचित्र गति है। कोईयक तो निर्धन से राजा हो जाय अर कोईयक राजा से निर्धन हो जाय है। श्रीवर्धित ब्राह्मण का पुत्र सो राज्यभ्रष्ट होय राजा होय गया। सिंहचन्द्र राजा का पुत्र सो श्रीवर्धित के समीप आया। एक गुरु के निकट प्राणी धर्म का श्रवण करै, तिनविषै कोई समाधि मरणकरि सुगति पावै, कोई कुमरण करि दुर्गति पावै। कोई रत्ननि के भरे जहाज सहित समुद्र उलंघ सुख से स्थानक पहुंचे, कोउ समुद्रविषै डूबै, कोउकूं चोर लूट लेय जावे। ऐसा जगत् का स्वरूप विचित्र गति जान जे विवेकी हैं ते दया, दान, विनय, वैराग्य, जप, तप, इन्द्रियों का निरोध, शांतता, आत्म-ध्यान तथा शास्त्राध्ययनकरि आत्म-कल्याण करैं। ऐसे मय मुनि के वचन सुन राजा श्रीवर्धित अर पोदनापुर के बहुतलोक शांतचित्त होय जिनधर्म का आराधन करते भए। यह मय मुनि का महात्म्य जे चित्त लगाय पढ़े, सुनै तिनकूं बैरियों की पीड़ा न होय, सिंह व्याघ्रादि न हतै, सर्पादि न डसैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै मयमुनि का माहात्म्य वर्णन करने वाला अस्सीवाँ पर्व पूर्ण भया।।80।।

अथानन्तर लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र सर्वलोक समान लक्ष्मीकूं मध्यलोकविषै भोगते भए, चन्द्र सूर्य समान है कांति जिनकी। अर इनकी माता कौशिल्या भरतार अर पुत्र के वियोगरूप अग्नि की ज्वाला कर शोककूं प्राप्त भया है शरीर जाका। महिल के सातवें खण बैठी, सखियोंकरि मंडित अतिउदास आंसुनिकर पूर्ण हैं नेत्र जाके। जैसे गाय को बच्चे का वियोग होय अर वह व्याकुल होय ता समान पुत्र के स्नेहविषै तत्पर, तीव्र शोक के सागरविषै मग्न, दशोंदिशा की ओर देखे।

महिल के शिखरविषै तिष्ठता जो काग ताहि कहै – हे वायस! मेरा पुत्र राम आवै तो तोहि खीर का भोजन दूं। ऐसे वचन कहकर विलाप करै। अश्रुपात करि किया है चातुर्मास जिसने। हाय वत्स! तू कहां गया? मैं तुझे निरंतर सुख से लडाया था, तेरे विदेश भ्रमण की प्रीति कहां से उपजी? कहा पल्लव समान तेरे चरण कोमल कठोर पंथविषै पीड़ा न पावैं? महागहन वनविषै कौन वृक्ष के तले विश्राम करता होयगा? मैं मन्द भागिनी अत्यन्त दुखी, मुझे तजकर तू भाई लक्ष्मण सहित किस दिशा को गया? या भांति माता विलाप करै ता समय नारद ऋषि आकाश मार्ग विषै आए।

पृथ्वी में प्रसिद्ध, सदा अढ़ाई द्वीप विषै भ्रमते ही रहें, सिर पर जटा, शुक्ल वस्त्र पहिरे। ताकूं समीप आवता जान कौशिल्या ने उठकर सन्मुख जाय नारदकूं आदरसहित सिंहासन बिछाय सन्मान किया। तब नारद उसे अश्रुपात सहित शोकवन्ती देख पूछते भए – हे कल्याणरूपिणी! तुम ऐसी दुःखरूप क्यों? तुमकूं दुःख का कारण कहा? सुकौशल महाराज की पुत्री, लोकविषै प्रसिद्ध राजा दशरथ की राणी, प्रशंसा योग्य श्री रामचन्द्र मनुष्यनिविषै रत्न तिनकी माता, महासुन्दर लक्षण की धरणहारी, तुमकूं कौन ने रुसाई? जो तिहारी आज्ञा न माने सो दुरात्मा है। अबार ही ताका राजा दशरथ निग्रह करें।

तब नारदकूं माता कहती भई – हे देवर्षि! तुम हमारे घर का वृत्तांत नहीं जानों हो तातै कहो हो। अर तिहारा जैसा वात्सल्य या घरसूं था सो तुम विस्मरण किया, कठोर चित्त होय गए। अब यहां आवना ही तज्या, अब तुम बात ही न बूझो। हे भ्रमणप्रिय! बहुत दिननिविषै आए।

तब नारद ने कहा – हे माता! धातुकी खंड द्वीपविषै पूर्व विदेहक्षेत्र, वहां सुरेन्द्ररमण नामा नगर, वहां भगवान तीर्थंकर देव का जन्मकल्याण भया सो इन्द्रादिक देव आए। भगवान को सुमेरुगिरि ले गए, अद्भुत विभूतिकरि जन्माभिषेक किया। सो देवाधिदेव सर्व पाप के नाशनहारे, तिनका अभिषेक मैं देख्या, जाहि देख धर्म की बढ़वारी होय। वहां देवनि ने आनन्दसूं नृत्य किया। श्री जिनेन्द्र के दर्शनविषै अनुराग रूप है बुद्धि मेरी, सो महामनोहर धात की खण्डविषै तेईस वर्ष मैंने

सुख से व्यतीत किये। तुम मेरी माता समान सो तुमकूं चितार या जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै आया। अब कई एक दिन इस मंडल ही विषै रहूंगा। अब मोहि सब वृत्तांत कहो। तिहारे दर्शनकूं आया हूं।

तब कौशल्या ने सर्व वृत्तांत कहा। भामंडल का यहां आवना, अर विद्याधरनि का यहां आवना, अर भामंडलकूं विद्याधरनि का राज्य, अर राजा दशरथ का अनेक राजानि सहित वैराग्य, अर रामचन्द्र का सीता सहित अर लक्ष्मण के लार विदेश को गमन, बहुरि सीता का वियोग, सुग्रीवादिक का रामसूं मिलाप, रावण से युद्ध, लंकेश की शक्ति का लक्ष्मण के लगना, बहुरि द्रोणमेघ की कन्या का तहां गमन – ऐती खबर हमकूं है।

बहुरि क्या भया सो खबर नाहीं। ऐसा कह महादु:खित होय अश्रुपात डारती भई, अर विलाप किया – हाय हाय! पुत्र तू कहां गया? शीघ्र अब मोसे वचन कह, मैं शोक के सागरविषै मग्न ताहि निकास। मैं पुण्यहीन तेरे मुख देखे बिना महा दु:खरूप अग्नि से दाहकूं प्राप्त भई। मोहि साता देवो। अर सीता बालिका, पापी रावण तोहि बंदीगृहविषै डारी, महादुख से तिष्ठती होयगी। निर्दई रावण ने लक्ष्मण के शक्ति लगाई सो न जानिए जीवे हैं के नाहीं? हाय! दोनों दुर्लभ पुत्र हो, हाय सीता! तू पतिव्रता काहे दु:खकूं प्राप्त भई?

यह वृत्तांत कौशल्या के मुख सुन नारद अति खेदखिन्न भया। बीण धरतीविषै डार दई, अर अचेत होय गया। बहुरि सचेत होय कहता भया – हे माता! तुम शोक तजहु, मैं शीघ्र ही तिहारे पुत्रनि की वार्ता क्षेत्र कुशल की लाऊं हूं। मेरे सब बातविषै सामर्थ्य है। यह प्रतिज्ञाकर नारद बीणकूं उठाय कांधे धरी, आकाश मार्ग गमन किया। पवन समान है वेग जाका। अनेक देश देखता लंका की ओर चाल्या। सो लंका के समीप जाय विचारा – राम लक्ष्मण की वार्ता कौन भांति जानिवेविषै आवै? जो राम लक्ष्मण की वार्ता पूछिए तो रावण के लोकनि से विरोध होय। तातैं रावण की वार्ता पूछिए तो योग्य है। रावण की वार्ता कर उनकी वार्ता जानी जायेगी।

यह विचार कर नारद पद्म सरोवर गया। तहां अन्त:पुर सहित अंगद क्रीड़ा करता हुता। ताके सेवकनि को रावण की कुशल पूछी। वे किंकर सुनकर क्रोधरूप होय कहते भए यह दुष्टतापस रावण का मिलापी है। याकूं अंगद के समीप ले गए जो रावण की कुशल पूछै है।

नारद ने कहा – मेरा रावण से कछु प्रयोजन नाहीं। तब किंकरनि ने कही तेरा कछु प्रयोजन नाहीं तो रावण की कुशल क्यों पूछे था? तब अंगद ने हंसकर कहा इस तापसकूं पद्मनाभि के निकट ले जावो। सो नारद को खींचकर ले चले। नारद विचारै है न जानिए कौन पद्मनाभि है? कौशल्या का पुत्र होय तो मोसे ऐसी क्यों होय? ये मोहि कहां ले जाय हैं, मैं संशयविषै पड़ा हूं।

जिनशासन के भक्त देव मेरी सहाय करो। अंगद के किंकर याहि विभीषण के मन्दिर श्रीराम विराजे हुते तहां ले गए। श्रीराम दूर से देख याहि नारद जान सिंहासन से उठे अति आदर किया। किंकरनि से कहा – इनसे दूर जावो। नारद श्रीराम लक्ष्मणकूं देख अति हर्षित भया। आशीर्वाद देकर इनके समीप बैठा।

तब राम बोले – अहो क्षुल्लक! कहां से आए? बहुत दिननिविषै आए हो, नीके हो? तब नारद ने कहा तिहारी माता कष्ट के सागरविषै मग्न है। सो वार्ता कहिवेकूं तिहारे निकट शीघ्र ही आया हूं। कौशल्या माता महासती, जिनमती, निरन्तर अश्रुपात डारै है। अर तुम बिना महादुखी है। जैसे सिंही अपने बालक बिना व्याकुल होय तैसें अति व्याकुल भई विलाप करै है। जाका विलाप सुन पाषाण भी द्रवीभूत होय। तुमसे पुत्र माता के आज्ञाकारी, अर तुम होते माता ऐसी कष्टरूप रहै – यह आश्चर्य की बात! वह महागुणवंती सांझ सकारेविषै प्राणरहित होयगी। जो तुम ताहि न देखोगे तो तिहारे वियोगरूप सूर्यकर सूख जायेगी। तातैं मोपै कृपा कर उठहु, ताहि शीघ्र ही देखहु। या संसारविषै माता समान पदार्थ नाहीं। तिहारी दोनों मातानि के दुख करके कैकई सुप्रभा सब ही दुखी है। कौशल्या सुमित्रा दोनों मरणतुल्य होय रही है। आहार नींद सब गई। रात दिन आंसू डारै हैं। तिनकी स्थिरता तिहारे दर्शन ही सूं होय। जैसें कुरुचि विलाप करैं तैसें विलाप करैं हैं। अर सिर अर उर हाथों से कूटै हैं। दोनों ही माता तिहारे वियोगरूप अग्नि की ज्वाला कर जरै हैं। तिहारे दर्शनरूप अमृत की धारकर उनका आताप निवारो।

नारद के वचन सुन दोनों भाई मातानि के दुखकर अति दुखी भए। शस्त्र डार दिए, अर रुदन करने लगे। तब सकल विद्याधरनि ने धीर्य बंधाया। राम लक्ष्मण नारदसूं कहते भए – अहो नारद! तुमने हमारा बड़ा उपकार किया। हम दुराचारी माताकूं भूल गए, सो तुम स्मरण कराया। तुम समान हमारे और वल्लभ नाहीं। वही मनुष्य महा पुण्यवान है जो माता के विनयविषै तिष्ठे हैं, दास भए माता की सेवा करें। जे माता का उपकार विस्मरण करै हैं वे महा कृतघ्न हैं। या भांति माता के स्नेहकरि व्याकुल भया है चित्त जिनका, दोनों भाई नारद की अति प्रशंसा करते भए।

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण ने ताही समय अति विभ्रम चित्त होय विभीषणकूं बुलाया। अर भामण्डल सुग्रीवादि पास बैठे हैं। दोऊ भाई विभीषणसूं कहते भए – हे राजन्! इन्द्र के भवन समान तेरा भवन। तहां हम दिन जाते न जाने। अब हमारे माता के दर्शन की अति वांछा है, हमारे अंग अति तापरूप हैं, सो माता के दर्शनरूप अमृतकर शांतताकूं प्राप्त होवें। अब अयोध्या नगरी के देखिवेकूं हमारा चित्त प्रवरत्या है। वह अयोध्या भी हमारी दूजी माता है। तब विभीषण कहता भया – हे स्वामिन्! जो आज्ञा करोगे सो ही होयगा। अबार ही अयोध्याकूं दूत पठावै जो तिहारी

शुभवार्ता मातानिसूं कहें अर तिहारे आगम की वार्ता कहें जो मातावों के सुख होय अर तुम कृपाकर षोडश दिन यहां ही विराजो। हे शरणागत प्रतिपालक! मोपे कृपा करो, ऐसा कह अपना मस्तक राम के चरण तले धर्‍या। तब राम लक्ष्मण ने प्रमाण करी।

अथानन्तर भले भले विद्याधर अयोध्याकूं पठाए। सो दोनों माता महिल पर चढ़ीं दक्षिण दिशा की ओर देख रही हुतीं। सो दूर से विद्याधरनिकूं देख कौशल्या सुमित्रा से कहती भई – हे सुमित्रा! देख, दोय यह विद्याधर पवन के प्रेरे मेघ तुल्य शीघ्र आवै हैं। सो है श्रावक! अवश्य कल्याण की वार्ता कहेंगे। यह दोनों भाइयों के भेजे आवै हैं। तब सुमित्रा ने कहा तुम जो कहो हो सो ही होय। यह वार्ता दोऊ मातानि में होय है तब ही विद्याधर पुष्पनि की वर्षा करते आकाश से उतरे, अतिहर्ष के भरे भरत के निकट आए। राजा भरत अति प्रमोद का भर्‍या इनका बहुत सन्मान करता भया, अर यह प्रणाम कर अपने योग्य आसन पर बैठे, अति सुन्दर है चित्त जिनका यथावत् वृत्तांत कहते भए

हे प्रभु! राम लक्ष्मण ने रावणकूं हता, विभीषणकूं लंका का राज्य दीया, श्रीरामकूं बलभद्रपद अर लक्ष्मणकूं नारायणप्रद प्राप्त भया, चक्ररत्न हाथ में आया। तिन दोऊ भाइयों के तीन खंड का परम उत्कृष्ट स्वामित्व भया। रावण के पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद, भाई कुम्भकर्ण जो बंदीग्रह में थे सो श्री राम ने छोड़े। तिन्होंने जिनदीक्षा धर निर्वाण पद पाया। अर गरुड़ेन्द्र श्रीराम लक्ष्मण से देशभूषण कुलभूषण मुनि के उपसर्ग निवारिवेकरि प्रसन्न भए थे सो जब रावणतैं युद्ध भया उस ही समय सिंहबाण अर गरुड़बाण दिये।

इस भांति राम लक्ष्मण के प्रताप के समाचार सुन भरत भूप अति प्रसन्न भए, ताम्बुल सुगन्धादिक तिनको दिये अर तिनकूं लेकर दोनों माताओं के समीप भरत गया। राम लक्ष्मण की माता पुत्रों की विभूति की वार्ता विद्याधरों के मुख से सुनि आनन्दकूं प्राप्त भई। ताही समय आकाश के मार्ग हजारों वाहन विद्यामई स्वर्ण रत्नादिक के भरे आए। अर मेघमाला के समान विद्याधरनि के समूह अयोध्या में आये, जैसे देवनि के समूह आवें। ते आकाशविषै तिष्ठे नगरविषै नाना रत्नमई वृष्टि करते भए। रत्ननि के उद्योत कर दशों दिशाविषै प्रकाश भया। अयोध्याविषै एक एक गृहस्थ के घर पर्वत समान सुवर्ण रत्ननि की राशि करी। अयोध्या के निवासी समस्त लोक ऐसे अति लक्ष्मीवान किए मानों स्वर्ग के देव ही हैं। अर नगरविषै यह घोषणा फेरी कि जाके जिस वस्तु की इच्छा हो सो लेवो। तब सब लोक आय कर कहते भए – हमारे घर में अटूट भण्डार भरे हैं, किसी वस्तु की बांछा नाहीं। अयोध्याविषै दरिद्रता का नाश भया।

राम लक्ष्मण के प्रतापरूप सूर्य करि फूल गए हैं मुख कमल जिनके, ऐसे अयोध्या के नर नारी

प्रशंसा करते भए। अर अनेक सिलावट विद्याधर महाचतुर आयकर रत्न स्वर्णमई मन्दिर बनावते भए। अर भगवान के चैत्यालय महामनोग्य अनेक बनाये, मानों बिंध्याचल के शिखर ही हैं। हजारनि स्तम्भनिकर मंडित नाना प्रकार के मंडप रचे, अर रत्ननिकरि जड़ित तिनके द्वार रचे। तिन मंदिरनि पर ध्वजानि की पंक्ति फरहरे हैं। तोरणनि के समूह तिनकर शोभायमान जिन मंदिर रचे गिरिनि के शिखर समान ऊंचे, तिनिविषै महाउत्सव होते भए। अनेक आश्चर्य कर भरी अयोध्या होती भई, लंका की शोभाकूं जीतनहारी। संगीत की ध्वनि कर दशों दिशा शब्दायमान भईं, कारी घटा समान वन उपवन सोहते भए। तिनविषै नाना प्रकार के फल फूल, तिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं। समस्त दिशानिविषै वन उपवन ऐसे सोहते भए मानों नन्दनवन ही हैं।

अयोध्या नगरी बारह योजन लम्बी, नवयोजन चौड़ी अतिशोभायमान भासती भई। सोलह दिन में विद्याधर शिलावटनि ने ऐसी बनाई जाका सौ वर्ष तक वर्णन भी न किया जाय। तहां वापीनि के रत्नस्वर्ण के सिवान, अर सरोवरनि के रत्न के तट, तिनविषै कमल फूल रहे हैं, ग्रीष्मविषै सदा भरपूर ही रहें। तिनके तट, भगवान के मंदिर, अर वृक्षनि की पंक्ति शोभाकूं धरै; स्वर्गपुरी समान नगरी निरमापी। सो बलभद्र नारायण लंकासूं अयोध्या की ओर गमनकूं उद्यमी भए।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! जिस दिन से नारद के मुख से राम लक्ष्मण ने मातानि की वार्ता सुनी ताही दिन से सब बात भूल गए। दोनों मातानिही का ध्यान करते भए। पूर्व जन्म के पुण्यकरि ऐसे पुत्र पाइए। पुण्य के प्रभाव करि सर्व स्तुति की सिद्धि होवै है। पुण्य कर क्या न होय? इसलिए हे प्राणी हो! पुण्यविषै तत्पर होहु, जाकरि शोकरूप सूर्य का आताप न होय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी, भाषावचनिकाविषै अयोध्या नगरी का वर्णन करने वाला इक्यासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।81।।

अथानन्तर सूर्य उदय होते ही बलभद्र नारायण पुष्पकनामा विमानविषै चढ़कर अयोध्याकूं गमन करते भए। नाना प्रकार के वाहननि पर आरूढ़ विद्याधरनि के, अधिपति, राम लक्ष्मण की सेवाविषै तत्पर, परिवार सहित संग चाले। छत्र अर ध्वजानिकरि रोकी है सूर्य की प्रभा जिन्होंने, आकाश में गमन करते दूर से पृथ्वीकूं देखते जाय हैं। पृथ्वी गिरि नगर वन उपवनादि कर शोभित लवण समुद्र कूं उलंघनकरि विद्याधर हर्ष के भरे लीला सहित गमन करते आगे आए। कैसा है लवण समुद्र? नाना प्रकार के जलचरजीवनि के समूहकरि भर्‍या है। राम के समीप सीता सती अनेक गुणनिकरि पूर्ण मानों साक्षात् लक्ष्मी ही है सो सुमेरु पर्वतकूं देखकरि रामकूं पूछती भई – हे नाथ! यह जम्बूद्वीप के मध्य अत्यन्त मनोज्ञ स्वर्ण कमल समान कहा दीखै है?

तब राम कहते भए – हे देवी! यह सुमेरु पर्वत है। जहां देवाधिदेव श्रीमुनिसुव्रतनाथ का

जन्माभिषेक इन्द्रादिक देवनि ने किया। कैसे हैं देव? भगवान के पांचों कल्याणकविषै जिनके अर्ति हर्ष है। यह सुमेरु रत्नमई ऊंचे शिखरनिकरि शोभित जगतविषै प्रसिद्ध है। अर बहुरि आगे आयकर कहते भए यह दंडकवन है जहां लंकापति ने तुमकूं हरी अर अपना अकाज किया। या वनविषै चारण मुनिकूं हमने पारणा कराया था। याके मध्य यह सुन्दर नदी है। अर हे सुलोचने! यह वंशस्थल पर्वत जहां देशभूषण कुलभूषण का दर्शन किया, ताही समय मुनिनकूं केवल उपज्या। अर हे सौभाग्यवती! कल्याणरूपिणी! यह बालखिल्य का नगर जहां लक्ष्मण ने कल्याणमाला पाई। अर यह दशांग नगर जहां रूपवती का पिता वज्रकर्ण परम श्रावक राज्य करे।

बहुरि जानकी पृथ्वीपतिकूं पूछती भई – हे कांत! यह नगरी कौन जहां विमान समान घर इन्द्रपुरी से अधिक शोभै है ? अब तक यह पुरी मैंने कबहूं न देखी। ऐसे जानकी के वचन सुन जानकीनाथ अवलोकनकरि कहते भए – हे प्रिये! यह अयोध्यापुरी विद्याधर सिलवटों ने बनाई है। लंकापुरी की ज्योति की जीतनहारी।

बहुरि आगे आए। तब राम का विमान सूर्य के विमान समान देख, भरत महाहस्ती पर चढ़े अति आनंद के भरे, इन्द्र समान विभूतिकरि युक्त, सन्मुख आए। सर्वदिशा विमाननिकर आच्छादित देखी। भरत कूं आवता देख राम लक्ष्मण ने पुष्पक विमान भूमिविषै उतारा। भरत गज से उतर निकट आया, स्नेह का भरा दोऊ भाईनिकूं प्रणाम करि अर्घपाद्य करता भया। अर ये दोनों भाई विमान से उतरि भरतसूं मिले, उर से लगाय लिया, परस्पर कुशल वार्ता पूछी।

बहुरि भरतकूं पुष्पक विमानविषै चढ़ाय लीया, अर अयोध्याविषै प्रवेश किया। अयोध्या राम के आगमनकरि अति सिंगारी है, अर नाना प्रकार की ध्वजा फरहरे हैं। नाना प्रकार के विमान अर नाना प्रकार के रथ, अनेक हाथी, अनेक घोड़े तिनकरि मार्ग में अवकाश नाहीं। अनेक प्रकार वादित्रनि के समूह बाजते भए, शंख, झांझ, भेरी, ढोल, धूकल, इत्यादि वादित्रों का कहां लग वर्णन करिए, महामधुर शब्द होते भए। ऐसे ही वादित्रों के शब्द, ऐसी ही तुरंगों की हींस, ऐसी ही गजों की गर्जना, सामन्तों के अट्टहास, मायामई सिंह व्याघ्रादिक के शब्द, ऐसे ही वीणा बांसुरीनि के शब्द तिनकर दशोंदिशा व्याप्त भई। बन्दीजन विरद बखाने हैं, नृत्यकारिणी नृत्य करै हैं, भांड नकल करै हैं, नट कला करें हैं। सूर्य के रथ समान रथ तिनके चित्राकार विद्याधर मनुष्य पशुनि के नाना शब्द, सो कहां लग वर्णन करिए? विद्याधरनि के अधिपतिनि ने परम शोभा करी। दोनों भाई महा मनोहर अयोध्याविषै प्रवेश करते भए।

अयोध्या नगरी स्वर्गपुरी समान, राम लक्ष्मण इन्द्र प्रतीन्द्र समान, समस्त विद्याधर देव समान, तिनका कहां लग वर्णन करिए। श्रीरामचन्द्रकूं देख प्रजारूप समुद्रविषै आनन्द की ध्वनि

बढ़ती भई। भले भले पुरुष अर्घ्यपाद्य करते भए, सोई तरंग भई। पैड पैंडविषै जगतकरि पूज्यमान दोनों वीर महाधीर तिनको समस्त जन आशीर्वाद देते भए – हे देव! जयवंत होवो, वृद्धिकूं प्राप्त होवहु, चिरंजीव होवहु। नांदो, विरधो। या भांति आसीस देते भए। अर अति ऊंचे विमान समान मन्दिर तिनके शिखरविषै तिष्ठती सुन्दरी, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके, वे मोतिनि के अक्षत डारती भईं। सम्पूर्ण पूर्णमासी के चन्द्रमासमान राम कमलनेत्र, अर वर्षा की घटा समान लक्ष्मण, शुभ लक्षण तिनके देखिवेकूं नर नारी अनुरागी भए। अर समस्त कार्य तजि झरोखोंविषै बैठी नारीजन निरखे हैं सो मानों कमलों के वन फूल रहे हैं। अर स्त्रीनि के परस्पर संघट्टकर मोतिन के हार टूटे, सो मानों मोतिन की वर्षा होय है।

स्त्रीनि के मुख से ऐसी ध्वनि निकसै – ये श्रीराम जाके समीप राजा जनक की पुत्री सीता बैठी, जाकी माता राणी विदेहा है, अर श्रीराम ने साहसगति विद्याधर मारा, वह सुग्रीव का आकार धर आया हुता, विद्याधरनिविषै दैत्य कहावै। अर यह लक्ष्मण राम का लघुवीर, इन्द्र तुल्य पराक्रम, जानें लंकेश्वरकूं चक्रकर हता। हर यह सुग्रीव जाने रामसूं मित्रता करी। अर भामंडल सीता का भाई जिसको जन्मसूं ही देव हर लेगया हुता, बहुरि दयाकर छांड्या सो राजा चन्द्रगति के पल्या, आकाशसूं वनविषै गिरा, राजा ने लेकर राणी पुष्पवती कूं सौंप्या। देवों ने काननविषै कुण्डल पहिराकर आकाश से डाल्या। सो कुण्डल की ज्योतिकर चंद्रसमान भास्या, तातैं भामण्डल नाम धर्‍या। अर राजा चन्द्रोदय का पुत्र विराधित, अर यह पवन का पुत्र हनुमान कपिध्वज। या भांति आश्चर्यकर युक्त नगर की नारी वार्ता करती भईं।

अथानन्तर राम लक्ष्मण राजमहिलविषै पधारे। मन्दिर के शिखर तिष्ठती दोनों माता पुत्रनि के स्नेहविषै तत्पर, जिनके स्तन से दुग्ध झरे, महागुणनि की धरणहारी कौशिल्या, सुमित्रा अर केकई, सुप्रभा चारों माता मंगलविषै उद्यमी पुत्रों के समीप आईं। राम लक्ष्मण पुष्पक विमान से उतरि मातानिसूं मिले। माताओंकूं देख हर्षकूं प्राप्त भए, कमल समान नेत्र दोनों भाई लोकपाल समान हाथ जोड़, नम्रीभूत होय, अपनी स्त्रियोंसहित मातानिकूं प्रणाम करते भए। वे चारों ही माता अनेक प्रकार आसीस देती भईं। तिनकी असीस कल्याण की करणहारी है। अर चारों ही माता राम लक्ष्मण को उर से लगाय परम सुखकूं प्राप्त भईं। उनका सुख वे ही जानें, कहिवेविषै न आवे। बारम्बार उर से लगाय सिर पर हाथ धरती भईं। आनन्द के अश्रुपात करि पूर्ण हैं नेत्र जिनके, परस्पर माता पुत्र कुशलक्षेम सुख दुख की वार्ता पूछि परम संतोषकूं प्राप्त भए। माता मनोरथ करती हुती।

सो हे श्रेणिक! बांछा से अधिक मनोरथ पूर्ण भए। वे माता योधावों की जननहारी, साधुओं

की भक्त, जिनधर्म विषै अनुरक्त, सुन्दरचित्त, बेटावों की बहू सैकड़ों तिनको देखि चारों ही अति हर्षित भईं। अपने योधा पुत्र तिनके प्रभाव करि पूर्व पुण्य के उदयकरि अति महिमा संयुक्त जगतविषै पूज्य भईं। राम लक्ष्मण का सागरांपर्यंत कंटक रहित पृथ्वीविषै एक छत्र राज्य भया। सब पर यथेष्ट आज्ञा करते भए।

राम लक्ष्मण का अयोध्याविषै आगमन अर माताओं से तथा भाइयों से मिलाप – यह अध्याय जो पढ़ें, सुनै, शुद्ध है बुद्धि जाकी, सो पुरुष मनवांछित सम्पदाकूं पावै, पूर्ण पुण्य उपार्जे। शुभमति एक ही नियम दृढ़ होय भावन की शुद्धता से करे तो अतिप्रताप को प्राप्त होय, पृथ्वी में सूर्य समान प्रकाशकूं करै। तातैं अव्रत तज नियमादिक धारण करो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै अयोध्याविषै राम लक्ष्मण का आगमन वर्णन करने वाला बियासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।82।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक नमस्कार कर गौतम गणधरकूं पूछता भया – हे देव! श्रीराम लक्ष्मण की लक्ष्मी का विस्तार सुनने की मेरे अभिलाषा है। तब गौतम स्वामी कहते भए – हे श्रेणिक! राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न इनका वर्णन कौन करि सके? तथापि संक्षेप से कहे हैं।

राम लक्ष्मण के विभव का वर्णन – हाथी घर के बियालीस लाख, अर रथ एते ही, घोड़े नौ कोटि, प्यादे बयालीस कोटि, अर तीन खण्ड के देव विद्याधर सेवक, राम के रत्न चार – हल मूसल रत्नमाला गदा, अर लक्ष्मण के सात संख, चक्र, गदा, खड्ग, दण्ड, नागशय्या, कौस्तुभमणि।

राम लक्ष्मण दोनों ही वीर महाधीर धनुषधारी, अर तिनका घर लक्ष्मी का निवास, इन्द्र के भवन तुल्य ऊंचे दरवाजे, अर चतुश्शाल नामा कोट, महापर्वत के शिखर समान ऊंचा, अर वैजयन्ती नामा सभा महामनोज्ञ, अर प्रसादहनामा अत्यन्त उत्तंग दशों दिशा का अवलोकन का गृह, अर विंध्याचल पर्वत सारिखा वर्धमानक नामा नृत्य देखिवे का गृह, अर अनेक सामग्रीसहित कार्य करने का गृह, अर कूकड़े के अंडे समान महा अद्भुत शीतकालविषै सोवने का गर्भगृह, अर ग्रीष्मविषै दुपहरी के विराजने का धारा मंडपगृह, इकथम्भा, महामनोहर, अर राणियों के घर रत्नमई, महा सुन्दर, दोनों भाइयों की सोयवे की शय्या, जिनके सिंहों के आकार पाए, पद्मरागमणि के अति सुन्दर।

अम्भोदकांड नामा विजुरी का-सा चमत्कार धरे वर्षा ऋतुविषै पौढवे का महिल, अर महाश्रेष्ठ उगते सूर्य समान सिंहासन, अर चन्द्रमा तुल्य उज्ज्वल चमर, अर निशाकर समान

उज्ज्वल छत्र, अर महा सुन्दर विषमोचक नाम पावड़ी तिनके प्रभाव से सुख से आकाशविषै गमन करैं, अर अमोलिक वस्त्र, अर महा दिव्य आभरण, अभेद्य वक्तर, महामनोहर मणियों के कुण्डल, अर अमोघ, गदा, खड्ग कनक बाण अनेक शस्त्र, महासुन्दर महारण के जीतनहारे, अर पचास लाख हल, कोटि से अधिक गाय, अक्षय भण्डार, अर अयोध्या आदि अनेक नगर, जिनविषै न्याय की प्रवृत्ति प्रजा सब सुखी, सम्पदाकर पूर्ण, अर महा मनोहर वन उपवन नाना प्रकार फल पुष्पोंकर शोभित, अर महा सुन्दर स्वर्ण रत्नमई सिवाणोंकर शोभित क्रीड़ा करिवे योग्य वापिका, अर पुर तथा ग्रामों विषै लोक अति सुखी, जहां महिल अति सुन्दर।

अर किसाणों को किसी भांति का दुख नाहीं। जिनके गाय, भैंसों के समूह, सब भांति के सुख। अर लोकपालों जैसैं सामंत अर इन्द्रतुल्य विभव के धरणहारे महातेजवंत अनेक राजा सेवक। अर राम के स्त्री आठ हजार, अर लक्ष्मण के स्त्री देवांगना समान सोलह हजार, जिनके समस्त सामग्री समस्त उपकरण मनवांछित सुख के देनेहारे। श्री राम ने भगवान के हजारों चैत्यालय कराए जैसे हरिषेण चक्रवर्ती ने कराए थे। वे भव्यजीव सदापूजित महाऋद्धि के निवास देश ग्राम नगर वन गृह गली सर्व ठौर ठौर जिनमंदिर करावते भए, सदा सर्वत्र धर्म की कथा, लोक अतिसुखी, सुकोशल देश के मध्य इन्द्रपुरी तुल्य अयोध्या, जहां अति उतंग जिनमन्दिर जिनका वर्णन किया न जाय। अर क्रीड़ा करवे के पर्वत मानों देवों के क्रीड़ा करिवे के पर्वत हैं, प्रकाशकर मंडित मानों शरद के बादर ही हैं।

अयोध्या का कोट अति उतंग, समुद्र की वेदिकातुल्य, महाशिखर कर शोभित, स्वर्णरत्नों का समूह अपनी किरणों कर प्रकाश किया है आकाशविषै जिसने, जिसकी शोभा मन से भी अगोचर, निश्चयसेती यह अयोध्या नगरी पवित्र मनुष्योंकरि भरी सदा ही मनोग्य हुती। अब भी रामचन्द्र ने अति शोभित करी। जैसैं कोई स्वर्ग सुनिये है जहां महा सम्पदा है, मानों राम लक्ष्मण स्वर्ग से आए। सो मानों सर्व सम्पदा ले आए। आगे अयोध्या हुती तातैं राम के पधारैं अति शोभायमान भई। पुण्यहीन जीवों को जहां का निवास दुर्लभ, अपने शरीर कर, तथा शुभ लोकोंकर, तथा स्त्री धनादि कर रामचन्द्र ने स्वर्ग तुल्य करी। सर्व ठौर राम का यश, परन्तु सीता के पूर्व कर्म के दोषकर मूढ़ लोग यह अपवाद करैं – देखो, विद्याधरों का नाथ रावण उसने सीता हरी, सो राम बहुरि ल्याये, अर गृहविषै राखी। यह कहा योग्य? राम महाज्ञानी, बड़े कुलीन, चक्री, महाशूरवीर, तिनके घर विषै जो यह रीति तो और लोकों की क्या बात? इस भांति सब जन वार्ता करैं।

अथानन्तर स्वर्ग लोककूं लज्जा उपजावे ऐसी अयोध्यापुरी तहां भरत इन्द्रसमान भोगनिकर

भी रति न मानते भए। अनेक स्त्रीनि के प्राणवल्लभ सो निरन्तर राज्य लक्ष्मी से उदास, सदा भोगों की निंदा ही करैं। भरत का मन्दिर अनेक मन्दिरनिकर मण्डित, नाना प्रकार के रत्ननिकर निर्मापित, मोतिनि की मालाकर शोभित, फूल रहे हैं वृक्ष जहां, अनेक आश्चर्य का भरा, सब ऋतु के विलासकर युक्त, जहां वीण मृदंगादिक अनेक वादित्र बाजैं, देवांगना समान अतिसुन्दर स्त्रीजनोंकर पूर्ण, जाके चौगिरद मदोन्मत्त हाथी गाजै, श्रेष्ठ तुरंग हींसैं, गीत नृत्य वादित्रनिकरि महामनोहर, रत्नों के उद्योत करि प्रकाशरूप, महारमणीक क्रीड़ा का स्थानक, जहां देवों को रुचि उपजै, परन्तु भरत संसार से भयभीत, अति उदास, उसे तहां रुचि नाहीं–जैसे पारधीकर भयभीत जो मृग सो किसी ठौर विश्राम न लहैं। भरत ऐसा विचार करै कि मैं यह मनुष्य देह महाकष्ट से पाई सो पानी के बुदबुदावत् क्षणभंगुर, अर यह यौवन झागों के पुंज समान अति असार दोषों का भरा, अर ये भोग अति विरस।

इनविषै सुख नाहीं। यह जीतव्य स्वप्न समान, अर कुटुम्ब का सम्बन्ध जैसैं वृक्षनि पर पक्षियों का मिलाप रात्रि कूं होय प्रभात ही दशों दिशाकूं उड़ जावें ऐसा जान जो मोक्ष का कारण धर्म न करै सो जराकर जर्जरा होय शोकरूप अग्निकर जरै। यह नवयौवन मूढ़ोंकूं वल्लभ, याविषै कौन विवेकी राग करे ? कदाचित न करै। यह अपवाद के समूह का निवास, संध्या के उद्योत समान विनश्वर, अर यह शरीररूपी यंत्र नाना व्याधि के समूह का घर पिता के वीर्य माता के रुधिर से उपजा, याविषै कहा रति? जैसे ईंधनकर अग्नि तृप्त न होय, अर समुद्र जल से तृप्त न होय तैसैं इन्द्रियनि के विषयनिकर तृप्ति न होय।

यह विषय अनादि से अनन्तकाल सेये परन्तु तृप्तिकारी नाहीं। यह मूढ़ जीव कामविषै आसक्त भला बुरा न जानै, पतंग समान विषयरूप अग्निविषै पड़े, पापी महा भयंकर दुःखकूं प्राप्त होय। यह स्त्रीनि के कुच मांस के पिण्ड, महावीभत्स गलगंड समान तिनविषै कहा रति? अर स्त्रीनि का मुखरूप बिल, दंतरूप कीड़ोंकर भरा, ताम्बुल के रसकरि लाल छुरी के घाव समान, ताविषै कहा शोभा? अर स्त्रीनि की चेष्टा वायु विकार समान विरूप, उन्मादकर उपजी, उसविषै कहा प्रीति? अर भोग रोग समान हैं, महा खेदरूप दुःख के निवास, इनविषै कहा विलास? अर यह गीत वादित्रों के नाद रुदन समान, तिनविषै कहा प्रीति? रुदनकर भी महल गुंमट अर गानकर भी गाजें। नारियों का शरीर मल मूत्रादिककरि पूर्ण, चर्मकर वेष्टित। याके सेवनविषै कहा सुख होय? विष्टा के कुम्भ समान तिनका संयोग अतिवीभत्स अति लज्जाकारी।

महा दुःखरूप नारियों के भोग उनविषै मूढ़ सुख मानै। देवनि के भोग इच्छा उत्पन्न होते ही पूर्ण होय तिनकरि भी जीव तृप्त न भया तो मनुष्यों के भोगोकरि कहा तृप्त होय? जैसैं दूभ की

अणी पर जो ओस की बूंद ताकर कहा तृषा बुझे? अर जैसे इंधन का बेचनहारा सिर पर भार लाय दुखी होय तैसे राज्य के भार का धरणहारा दुखी होय। हमारे बड़ेनिविषै एक राजा सौदास उत्तम भोजन कर तृप्त न भया। अर पापी अभक्ष्य का आहारकरि राज्यभ्रष्ट भया। जैसे गंगा के प्रवाहविषै मांस का लोभी काग मृतक हाथी के शरीर चूथता तृप्त न भया, समुद्रविषै डूब मुवा, तैसे यह विषयाभिलाषी भवसमुद्रविषै डूबै है। यह लोक मींडक समान मोहरूप कीचविषै मग्न, लोभरूप सर्प के ग्रसे नरकविषै पड़े हैं। ऐसे चिन्तनवन करते शांतचित्त भरत को कई एक दिवस अति बिरस से बीते। जैसे सिंह महासमर्थ पिंजरेविषै पड़ा खेदखिन्न रहे, ताके वनविषै जायवे की इच्छा, तैसैं भरत महाराज के महाव्रत धारिवे की इच्छा। सो घरविषै सदा उदास ही रहै। महाव्रत सर्वदुःख का नाशक।

एक दिवस वह शांतचित्त घर तजिवे को उद्यमी भया। तब केकई के कहे से राम लक्ष्मण ने थाम्भा, अर महा स्नेहकर कहते भए, हे भाई! पिता वैराग्यकूं प्राप्त भए, तब तोहि पृथ्वी का राज्य दिया, सिंहासन पर बैठाया, सो तू हमारा सर्व रघुवंशियों का स्वामी है, लोक का पालन कर। यह सुदर्शन चक्र, यह देव अर विद्याधर तेरी आज्ञाविषै हैं। या धरा को नारी समान भोग है। मैं तेरे सिर पर चन्द्रमा समान उज्ज्वल छत्र लिये खड़ा रहूं। अर भाई शत्रुघ्न चमर ढारे, अर लक्ष्मण सा सुन्दर तेरे मंत्री, अर तू हमारा वचन न मानेगा तो मैं बहुरि विदेश उठ जाऊंगा, मृगों की न्याईं वन उपवनविषै रहूंगा। मैं तो राक्षसों का तिलक जो रावण ताहि जीत तेरे दर्शन के अर्थ आया। अब तू निकंटक राज्य कर। पीछे तेरे साथ मैं भी मुनिव्रत आदरूंगा। इस भांति महा शुभचित्त श्रीराम भाई भरतसूं कहते भए।

तब भरत महानिस्पृह विषयरूप विष से अतिविरक्त कहता भया – हे देव! मैं राज्य सम्पदा तुरंत ही तजा चाहूं हूं, जिसको तजकरि शूरवीर पुरुष मोक्ष प्राप्त भए। हे नरेन्द्र! अर्थ काम महा दुख के कारण, जीवों के शत्रु, महापुरुष करि निंद्य हैं, तिनको मूढ़ जन सेवै हैं। हे हलायुध! यह क्षणभंगुर भोग तिनमें मेरी तृष्णा नाहीं। यद्यपि स्वर्गलोक समान भोग तुम्हारे प्रसाद करि अपने घर में हैं, तथापि मुझे रुचि नहीं। यह संसार सागर महा भयानक है, जहां मृत्युरूप पातालकुण्ड महाविषम है, अर जन्मरूप कल्लोल उठै हैं, अर राग द्वेषरूप नाना प्रकार के भयंकर जलचर हैं, अर रति अरतिरूप क्षार जलकर पूर्ण हैं। जहां शुभ अशुभ रूप चोर विचरै हैं। सो मैं मुनिव्रतरूप जहाजविषै बैठकरि संसारसमुद्रकूं तिरा चाहूं हूं।

हे गजेन्द्र! मैं नाना प्रकार योनिविषै अनन्त काल जन्म मरण किए, नरक निगोदविषै अनन्त कष्ट सहे, गर्भ वासादिविषै खेदखिन्न भया। यह वचन भरत के सुन बड़े-बड़े राजा आंखनिविषै

आंसू डारते भए। महा आश्चर्यकूं प्राप्त होय गद्‌गद वाणी से कहते भए – हे महाराज! पिता के वचन पालो, कईयक दिन राज्य करो। अर तुम इस राजलक्ष्मीकूं चंचल जान उदास भए हो तो कई एक दिन पीछे मुनि हूजियो। अबार तो तुम्हारे बड़े भाई आए हैं जिनको साता देहु। तब भरत ने कही – मैं तो पिता के वचन प्रमाण बहुत दिन राज्यसम्पदा भोगी, प्रजा के दुख हरे, पुत्र की न्याईं प्रजा का पालन किया, दान पूजा आदि गृहस्थ के धर्म आदरे, साधुवों की सेवा करी। अब जो पिता ने किया सो मैं किया चाहूं हूं। अब तुम इस वस्तु की अनुमोदना क्यों न करो? प्रशंसायोग्य वस्तुविषै कहा विवाद?

हे श्रीराम! हे लक्ष्मण! तुमने महा भयंकर युद्ध में शत्रुवों को जीत अगले बलभद्र वासुदेव की न्याईं लक्ष्मी उपार्जी, सो तुम्हारे लक्ष्मी और मनुष्यों कैसी नाहीं। तथापि राजलक्ष्मी मुझे न रुचै, तृप्ति न करै, जैसैं गंगादि नदियां समुद्रकूं तृप्त न करैं। इसलिए मैं तत्त्वज्ञान के मार्गविषै प्रवरतूंगा। ऐसा कहकरि अत्यन्त विरक्त होय राम लक्ष्मणकूं बिना पूछे ही वैराग्यकूं उठ्या जैसैं आगै भरत चक्रवर्ती उठे। यह मनोहर चाल का चलनहारा मुनिराज के निकट जायवेकूं उद्यमी भया। तब अति स्नेहकरि लक्ष्मण ने थांभा, भरत के कर पल्लव ग्रहे। लक्ष्मण खड़ा, ताही समय माता केकई आंसू डारती आई अर राम की आज्ञा से दोऊ भाईनि की राणी सब ही आई। लक्ष्मी समान है रूप जिनके, अर पवन कर चंचल जो कमल ता समान हैं नेत्र जिनके, आय भरत को थांभती भईं तिनके नाम –

सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी ऐन्द्री, रत्नवती, लक्ष्मी, गुणमती, कांता, बंधुमती, भद्रा, कुवेरा, नलकूवरा, कल्याणमाला, चन्द्रकृणी, मदनोत्सवा, मनोरमा, प्रियनन्दा, चन्द्रकांता, कलावती, रत्नस्थली, सरस्वती, श्रीकांता, गुणसागरा, पद्‌मावत, इत्यादि सब आईं, जिनके रूप गुण का वर्णन किया न जाय, मन को हरें आकार जिनके, दिव्य, वस्त्र अर आभूषण पहिरे बड़े कुलविषै उपजीं, सत्यवादनी, शीलवन्ती, पुण्य की भूमिका, समस्त कालविषै निपुण, सो भरत के चौगिर्द खड़ी मानों चारों ओर कमलनि का वन ही फूल रहा है।

भरत का चित्त राजसम्पदाविषै लगायवेकूं उद्यमी अति आदर करि भरतकूं मनोहर वचन कहती भईं कि –हे देवर! हमारा कहा मानो, कृपा करहु, आज सरोवरनि विषै जलक्रीड़ा करहु, अर चिंता तजहु। जा बातकरि तिहारे भाईयोंकूं खेद न होय सो करहु। अर तिहारी माता के खेद न होय सो करहु। अर हम तिहारी भावज हैं सो हमारी विनती अवश्य मानिये। तुम विवेकी विनयवान हो। ऐसा कहि भरतकूं सरोवर पर ले गई। भरत का चित्त जलक्रीड़ा से विरक्त यह सब सरोवरविषै पैठीं। यह विनयकरि संयुक्त सरोवर के तीर ऊभा सोहै मानों गिरिराज ही है। अर वे

स्निग्ध सुगन्ध सुन्दर वस्तुनिकरि याके शरीर का विलेपन करती भईं। अर नाना प्रकार जलकेलि करती भईं। यह उत्तम चेष्टा का धारक काहू पर जल न डारता भया।

बहुरि निर्मल जल से स्नानकरि सरोवर के तीर जे जिनमन्दिर वहां भगवान की पूजा करता भया। उस समय त्रैलोक्यमण्डन हाथी, कारी घटा समान है आकार जाका, सो गजबन्धन तुड़ाय भयंकर शब्द करता निज आवासथकी निकसा, अपने मद झरिवेकरि चौमासे कैसा दिन करता संता। मेघ गर्जना समान ताका गाज सुनकर अयोध्यापुरी के लोग भयकरि कम्पायमान भए। अर अन्य हाथियों के महावत अपने अपने हाथी को ले दूर भागे। अर त्रैलोक्यमंडन गिरिसमान नगर का दरवाजा भंग कर जहां भरत पूजा करते थे वहां आया। तब राम लक्ष्मण की समस्त राणियें भयकरि कम्पायमान होय भरत के शरण आईं, अर हाथी भरत के नजीक आया तब समस्त लोक हाहाकार करते भए। अर इनकी माता अति विह्वल भईं, विलाप करती भईं, पुत्र के स्नेहविषै तत्पर महा शंकावान भईं।

अर राम लक्ष्मण गजबन्धनविषै प्रवीण गज के पकड़नेकूं उद्यमी भए। गजराज महाप्रबल सामान्य जनों से देखा न जाय, महा भयंकर शब्द करता अति तेजवान नागफांसि कर भी रोका न जाय। अर महा शोभायमान, कमल नयन भरत निर्भय स्त्रियों के आगे तिनके बचायवेकूं खड़े। सो हाथी भरतकूं देखकर पूर्वभव चितार शांतचित्त भया। अपनी सूण्ड शिथिल कर महा विनयवान भया भरत के आगे ऊभा। भरत याकूं मधुरवाणी कर कहते भए – अहो गज! तू कौन कारणकरि क्रोधकूं प्राप्त भया?

ऐसे भरत के वचन सुन अत्यन्त शांतचित्त, निश्चल भया। सौम्य है मुख जाका, ऊभा भरत की ओर देखै है। भरत महाशूरवीर शरणागत प्रतिपालक ऐसे सोहैं जैसे स्वर्गविषै देव सोहैं। हाथीकूं जन्मांतर का ज्ञान भया सो समस्त विकार से रहित होय गया। दीर्घ निश्वास डारे। हाथी मनविषै विचारै है – यह भरत मेरा परममित्र है, छठे स्वर्गविषै हम दोनों एकत्र थे। यह तो पुण्य के प्रसाद करि वहां से चयकर उत्तम पुरुष भया, अर मैंने कर्म के योग से तिर्यंच की योनि पाई। कार्य अकार्य के विवेक से रहित महानिंद्य पशु का जन्म है। मैं कौन योग से हाथी भया, धिक्कार इस जन्म को। अब वृथा क्या शोच? ऐसा उपाय करूं जिससे आत्मकल्याण होय अर बहुरि संसार भ्रमण न करूं। शोच कीए कहा? अब सर्व प्रकार उद्यमी होय भवदुख से छूटिवे का उपाय करूं। चितारे हैं पूर्वभव जाने, गजेन्द्र अत्यन्त विरक्त पापचेष्टा से पराङ्गमुख होय पुण्य के उपार्जनविषै एकाग्रचित्त भया।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! पूर्व जीव ने अशुभ कर्म किए वे

संतापकूं उपजावें। तातैं हे प्राणी हो! अशुभ कर्म को तजि दुर्गति के गमन से छूटहु। जैसे सूर्य होते नेत्रवान मार्गविषै न अटके तैसे जिनधर्म के होते विवेकी कुमार्गविषै न पड़े, प्रथम अधर्म को तज धर्म को आदरें, बहुरि शुभ अशुभ से निवृत्त होय आत्म धर्म से निर्वाणकूं प्राप्त होवें।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी, भाषावचनिकाविषै त्रैलोक्यमंडन हाथीकूं जातिस्मरण होय उपशांत वर्णन करने वाला तिरासीवाँ पर्व पूर्ण भया।।83।।

अथानन्तर वह गजराज महा विनयवान धर्मध्यान का चिंतवन करता राम लक्ष्मण ने देखा, अर धीरे धीरे इसके समीप आए, कारी घटा समान है आकार जाका। सो मिष्ट बोल पकड्या अर निकटवर्ती लोकनिकूं आज्ञा करि गजकूं सर्व आभूषण पहिराए। हाथी शांतचित्त भया। तब नगर के लोगों की आकुलता मिटी। हाथी ऐसा प्रबल जाकी प्रचण्ड गति विद्याधरों के अधिपति से न रुके। समस्त नगरविषै लोक हाथी की वार्ता करैं हैं। यह त्रैलोक्यमंडन रावण का पाट हस्ती है। याके बल समान और नाहीं। राम लक्ष्मण ने पकड़ा। विकार चेष्टाकूं प्राप्त भया था अब शांतचित्त भया। सो लोकों के महापुण्य का उदय है। अर घने जीवों की दीर्घ आयु। भरत अर सीता विशल्या हाथी पर चढ़े बड़ी विभूति से नगरविषै आये। अर अद्भुत वस्त्राभरण से शोभित समस्त राणी नाना प्रकार वाहनों पर चढ़ी भरत को ले नगरविषै आईं। अर शत्रुघन भाई अश्व रथ पर आरूढ़, महाविभूति सहित महातेजस्वी, भरत के हाथी के आगे आगे चला। नाना प्रकार के वादित्रनि के शब्द होते नन्दनवन समान वन से वे सब नगरविषै आए, जैसे देव सुरपुरविषै आवैं। भरत हाथीसूं उतरि भोजनशालाविषै गए। साधुवों कूं भोजन देय मित्र बांधवादि सहित भोजन किया, अर भावजोंकूं भोजन कराया। फिर लोक अपने अपने स्थानकूं गए। समस्त लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। हाथी रूठा, फिर भरत के समीप खड़ा होय रह्या, सो सबों को आश्चर्य उपजा।

गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहे हैं कि हे राजन्! हाथी के समस्त महावत राम लक्ष्मण पै आय प्रणामकरि कहते भए – कि हे देव! आज गजराज को चौथा दिन है कछू खाय न पीवे न निद्रा करै। सर्व चेष्टा तजि निश्चल ऊभा है। जिस दिन क्रोध किया था अर शांत भया उस ही दिन से ध्यानारूढ़ निश्चल वरतै है। हम नाना प्रकार के स्तोत्रों कर स्तुति करें हैं, अनेक प्रिय वचन कहे हैं, तथापि आहार पानी न लेय है। हमारे वचन कान न धरे। अपनी सूण्ड को दांतोंविषै लिये मुद्रित लोचन ऊभा है, मानों चित्राम का गज है, जिसे देखे लोकों को ऐसा भ्रम होय है कि यह कृत्रिम गज है अथवा सांचा गज है। हम प्रिय वचन कहकर आहार दिया चाहे हैं सो न लेय।

नाना प्रकार के गजों के योग्य सुन्दर आहार उसे न रुचे। चिन्तावान सा ऊभा है, निश्वास डारे

है, समस्त शत्रुवों के वेत्ता महापंडित प्रसिद्ध गजवैद्यों के हाथ भी हाथी का रोग न आया। गंधर्व नाना प्रकार के गीत गावें हैं सो न सुने। अर नृत्यकारिणी नृत्य करै हैं सो न देखे। पहिले नृत्य देखे था, गीत सुने था, अनेक चेष्टा करे था, सो सब तज्या। नाना प्रकार के कौतुक होय हैं सो दृष्टि न धरै। मंत्रविद्या औषधादिक अनेक उपाय किए सो न लगे। आहार विहार निद्रा जलपानादिक सब तजे, हम अति विनती करे हैं सो न माने। जैसे रूठे मित्र को अनेक प्रकार मनाइये सो न माने। न जानिए इस हाथी के चित्तविषै कहा है? काहू वस्तु से काहू प्रकार रीझे नाहीं, काहू वस्तु पर लुभावे नाहीं। खिजाया संता क्रोध न करै, चित्राम का-सा खड़ा है। यह त्रैलोक्यमंडन हाथी समस्त सेना का श्रृंगार है, जो आपकूं उपाय करना होय सो करो। हम हाथी का सब वृत्तांत आपसे निवेदन किया।

तब राम लक्ष्मण गजराज की चेष्टा सुन अति चिंतावान भए। मन में विचारै हैं यह गजबन्धन तुड़ाय निसरा कौन प्रकार से क्षमाकूं प्राप्त भया। अर आहार पानी क्यों न लेय? दोनों भाई हाथी का शोच करते भए।

श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै त्रैलोक्यमंडन हाथी का कथन वर्णन करने वाला चौरासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।84।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं - हे नराधिपति! ताही समय अनेक मुनिनि सहित देशभूषण कुलभूषण केवली, जिनका वंशस्थल गिरि ऊपर राम लक्ष्मण ने उपसर्ग निवारा हुता, अर जिनकी सेवा करनेकरि गरुड़ेन्द्र ने राम लक्ष्मण ने प्रसन्न होय उनको अनेक दिव्यशस्त्र दिए, जिनकर युद्ध में विजय पाई। ते भगवान केवली, सुर असुरनिकर पूज्य, लोक प्रसिद्ध अयोध्या के नन्दनवन समान महेन्द्रोदय नामा वनविषै महासंघ सहित आय विराजे। तब राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न दर्शन के अर्थ प्रभात ही हाथिनि पर चढ़ि जायवेकूं उद्यमी भए। अर उपजा है जातिस्मरण जाको ऐसा जो त्रैलोक्य मण्डन हाथी सो आगे चला जाय है। जहां वे दोनों केवली कल्याण के पर्वत तिष्ठे हैं तहां देवनि समान शुभचित्त नरोत्तम गये, अर कौशिल्या सुमित्रा कैकई सुप्रभा यह चारों ही माता साधु भक्ति विषै तत्पर, जिनशासन की सेवक, स्वर्गनिवासिनी देविनी समान सैकड़ां राणीनि से युक्त चलीं। अर सुग्रीवादि समस्त विद्याधर महाविभूति संयुक्त चले। केवली के स्थानक दूरहीतैं देख रामादिक हाथीतैं उतर आगे गए। दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर पूजा करी।

आप योग्य भूमिविषै विनयतैं बैठे, तिनके वचन समाधान चित्त होय सुनते भए। ते वचन वैराग्य के मूल रागादिक नाशक क्योंकि रागादिक संसार के कारण अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र मोक्ष का कारण है। केवली की दिव्यध्वनिविषै यह व्याख्यान भया - अणुव्रतरूप श्रावक का धर्म अर

महाव्रत यति का धर्म यह दोनों ही कल्याण के कारण हैं। यति का धर्म साक्षात् निर्वाण का कारण अर श्रावक का धर्म परम्पराय मोक्ष का कारण है। गृहस्थ का धर्म अल्पारम्भ अल्प परिग्रह कों को लीए कुछ सुगम है अर यति का धर्म निरारम्भ निपरिग्रह अति कठिन, महा शूरवीरनि हीं तैं सधे है। यह लोक अनादिनिधन जाका आदि अन्त नाहीं, ताविषै यह प्राणी लोभ कर मोहित नाना प्रकार कुयोनिविषै महादु:खकूं पावै है। संसार का तारक धर्म ही है। यह धर्म नामा परम मित्र जीवों का महा हितु है। जिस धर्म का मूल जीवदया की महिमा कहिवेविषै न आवे ताके प्रसाद से प्राणी मनवांछित सुख पावै है। धर्म ही पूज्य है। जे धर्म का साधन करें ते ही पंडित हैं। यह दयामूल धर्म कल्याण का कारण, जिनशासन बिना अन्यत्र नाहीं। जे प्राणी जिनप्रणीत धर्म में लगे ते त्रैलोक्य के अग्र जो परम धाम हैं वहां प्राप्त भये। यह जिनधर्म परम दुर्लभ है, या धर्म का मुख्यफल तो मोक्ष ही है, अर गौण फल स्वर्गविषै इन्द्रपद, अर पाताल विषै नागेन्द्रपद, पृथ्वीविषै चक्रवर्त्यादि नरेन्द्रपद यह फल है। इस भांति केवली ने धर्म का निरूपण किया।

तब प्रस्ताव पाय लक्ष्मण पूछते भए – हे प्रभो! त्रैलोक्यमण्डन हाथी गज बन्धन उपाडि क्रोधकूं प्राप्त भया, बहुरि तत्काल शांत भाव कूं प्राप्त भया। सो कौन कारण? तब केवली देशभूषण कहते भए प्रथम तो यह लोकनि की भीड़ देख मदोन्मत्तता थकी क्षोभकूं प्राप्त भया। बहुरि भरतकूं देख पूर्वभव चितार शांत भावकूं प्राप्त भया। चतुर्थ काल के आदि या अयोध्याविषै नाभिराजा के मरुदेवी के गर्भविषै भगवान ऋषभ उपजे। पूर्वभवविषै षोडश कारण भावना भाय त्रैलोक्यकूं आनन्द का कारण तीर्थंकर पद उपार्ज्या। पृथ्वी विषै प्रकट भए, इन्द्रादिक देवनि ने जिनके गर्भ अर जन्मकल्याणक कीए। सो भगवान पुरुषोत्तम तीन लोक करि नमस्कार करिवे योग्य, पृथ्वीरूप पत्नी के पति भए। कैसी है पृथ्वी रूप पत्नी? विंध्याचल गिरि बेई हैं स्तन जाके, अर समुद्र है कटिमेखला जाकी। सो बहुत दिन पृथ्वी का राज्य कीया तिनके गुण केवली बिना और कोई जानवे समर्थ नाहीं। जिनका ऐश्वर्य देख इन्द्रादिक देव आश्चर्यकूं प्राप्त भए।

एक समय नीलांजना नामा अप्सरा नृत्य करती हुती सो विलाय गई, ताहि देख प्रतिबुद्ध भए। ते भगवान स्वयं बुद्ध महामहेश्वर तिनकी लौकांतिक देवनि ने स्तुति करी। ते जगत् गुरु भरत पुत्रकूं राज्य देय वैरागी भए। इन्द्रादिक देवनि ने तप कल्याणक किया, तिलक नामा उद्यानविषै महाव्रत धरे तब से यह स्थान प्रयाग कहाया। भगवान ने एक हजार वर्ष तप किया। सुमेरु समान अचल सर्व परिग्रह के त्यागी, महातप करते भए। तिनके संग चार हजार राजा निकसे ते परीषह न सह सकनेकरि व्रत-भ्रष्ट भए, स्वेच्छाविहारी होय वन फलादिक भखते भए। तिनके मध्य मारीच दण्डी का भेष धरता भया। ताके प्रसंग से सूर्योदय चन्द्रोदय राजा सुप्रभा के पुत्र राणी

प्रल्हादना की कुक्षीविषै उपजे ते भी चारित्र भ्रष्ट भए। मारीच के मार्ग लागे कुधर्म के आचरणसूं चतुर्गति संसार में भ्रमैं अनेक भवोंविषै जन्म मरण किया। बहुरि चन्द्रोदय का जीव कर्म के उदयसूं नागपुरनामा नगरविषै राजा हरिपति के राणी मनोलता के गर्भविषै उपज्या, कुलंकर नामा कहाया। बहुरि राज्य पाया। अर सूर्योदय का जीव अनेक भव भ्रमण कर उस ही नगरविषै विश्वनामा ब्राह्मण जिसके अग्निकुण्ड नामा स्त्री, उसके श्रुतिरति नामा पुत्र भया। सो पुरोहित पूर्व जन्म के स्नेह से राजा कुलंकर को अतिप्रिय भया। एक दिन राजा कुलंकर तापसियों के समीप जाय था सो मार्गविषै अभिनन्दन नामा मुनि का दर्शन भया। वे मुनि अवधिज्ञानी, सर्वलोक के हितू, तिन्होंने राजा से कही–तेरा दादा सर्प भया, सो तपस्वियों के काष्ठ मध्य तिष्ठे हैं। सो तापसी काष्ठ विदारेंगे सो तू रक्षा करियो। तब यह तहां गया जो मुनि ने कही थी त्यों हि दृष्टि पड़ी। इसने सर्प बचाया अर तापसियों का मार्ग हिंसारूप जाण्या, तिनसे उदास भया, मुनि व्रत धारिवेकूं उद्यम किया।

तब श्रुतिरति पुरोहित पापकर्मी ने कही – हे राजन्! तिहारे कुलविषै वेदोक्त धर्म चला आया है, अर तापस ही तिहारे गुरु हैं। तातैं तू राजा हरिपति का पुत्र है तो वेद मार्ग का ही आचरण कर, जिनमार्ग मत आचरै। पुत्रकूं राज देय वेदोक्त विधि कर तू तापस का व्रत धर, मैं तेरे साथ तप धरूंगा। या भांति पापी पुरोहित मूढ़मति ने कुलंकर का मन जिनशासन से फेर्‍या, अर कुलंकर की स्त्री श्रीदामा, सो पापिनी परपुरुषासक्ता। उसने विचारी कि मेरी कुक्रिया राजा ने जानी इसलिए तप धारै है, सो न जानिए तपधरै कै न धरै, कदाचित् मोहि मारे। तातैं मैं ही उसे मारूं। तब उसने विष देयकर राजा अर पुरोहित दोनों मारे। सो मरकर निकुंजिया नामा वन में पशुघातक पाप से दोनों सुआ भए। बहुरि मींढ़क भए, मूसा भए, मोर भए, सर्प भए, कूकर भए। कर्मरूप पवन के प्रेरे तिर्यंच योनिविषै भ्रमै।

बहुरि पुरोहित श्रुतिरति का जीव हस्ती भया अर राजा कुलकर का जीव मींढ़क भया। सो हाथी के पगतले दब कर मुवा। बहुरि मींढ़क भया सो सूखे सरोवरविषै काग ने भख्या सो कूकड़ा भया, हाथी मर कर मार्जार भया। उसने कुक्कुट भखा, कुलंकर का जीव तीन जन्म कूकड़ा भया, सो पुरोहित के जीव मार्जार ने भख्या। बहुरि ये दोनों मूसा, मार्जार, मच्छ भए सो धीवर ने जालविषै पकड़ कुहाडनि से काटे सो मुवे। दोनों मरकर राजगृही नगरविषै वव्हासनामा ब्राह्मण उसकी उल्का नाम स्त्री के पुत्र भए। पुरोहित के जीव का नाम विनोद, राजा कुलकंर के जीव का नाम रमण। सो महादरिद्री अर विद्यारहित। तब रमण ने विचारी देशांतर जाय विद्या पढ़ूं, तब घर से निकसा, पृथ्वीविषै भ्रमता चारों वेद अर वेदों के अंग पढ़े।

बहुरि राजगृही नगरी आय पहुंचा। भाई के दर्शन की अभिलाषा, सो नगर के बाहिर सूर्य

अस्त होय गया, आकाशविषै मेघपटल के योग से अति अन्धकार भया, सो जीर्ण उद्यान के मध्य एक यक्ष का मन्दिर तहां बैठा। अर याके भाई विनोद की समिधा नामा स्त्री जो महाकुशीला एक अशोकदत्त नामा पुरुष से आसक्त। सो तासे यक्ष के मन्दिर का संकेत किया हुता सो अशोकदत्तकूं तो मार्गविषै कोटपाल के किंकर ने पकड्या अर विनोद खड्ग हाथविषै लिए अशोकदत्त के मारवेकूं यक्ष के मन्दिर आया। सो जार समझि खड्ग से भाई रमणकूं मारा, अन्धाकर विषै दृष्टि न पड्या सो रमण मुवा, विनोद घर गया। बहुरि विनोद भी मुवा सो दोनों अनेक भव धारते भए।

बहुरि विनोद का जीव तो सालवनविषै आरण भैंसा भया अर रमण का जीव अंधा रीछ भया। सो दोनों दावानलविषै जरैं, मरकर गिरिवनविषै भील भए। बहुरि मरकर हिरण भए। सो भील ने जीवते पकड़े, दोनों अति सुन्दर सो तीसरा नारायण स्वयंभूति श्रीविमलनाथ जी के दर्शनकूं जायकर पीछा आवे था उसने दोनों हिरण लिए अर जिनमन्दिर के समीप राखे। सो राजद्वार से इनकूं मनवांछित आहार मिले। अर मुनिनि के दर्शन करैं, जिनवाणी का श्रवण करें। तिनविषै रमण का जीव जो मृग हुता सो समाधि मरणकर स्वर्गलोक गया अर विनोद का जीव जो मृग हुता वह आर्तध्यान से तिर्यंचगतिविषै भ्रम्या। बहुरि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै कम्पिल्यानगर तहां धनदत्त नामा बणिक बाईस कोटि दीनार का स्वामी भया। चार टांक स्वर्ण की एक मीनार होय है। ता बणिक के बारुणी नाम स्त्री उसके गर्भविषै दूजे भाई रमण का जीव मृग पर्याय से देव भया था सो भूषण नाम पुत्र भया। निमित्तज्ञानी ने इसके पिता से कहा कि यह सर्वथा जिनदीक्षा धरेगा। सुनकर पिता चिंतावान भया। पिता का पुत्र से अधिक प्रेम, इसको घर हीविषै राखै, बाहिर निकसने न देय, सब सामग्री वाके घर विषै विद्यमान। यह भूषण सुन्दर स्त्रीनिकर सेव्यमान वस्त्र आहार सुगन्धादि विलेपन कर घरविषै सुख से रहे। याकूं सूर्य के उदय अस्त की गम्य नाना प्रकार के नाहीं, याके पिता ने सैकड़ों मनोरथ कर यह पुत्र पाया, अर एक ही पुत्र, सो पूर्ण जन्म के स्नेह से पिताकूं प्राण से भी प्यारा। पिता तो विनोद का जीव अर पुत्र रमण का जीव आगे दोनों भाई हुते सो या जन्मविषै पिता पुत्र भए।

संसार की विचित्रगति है। ये प्राणी नटवत् नृत्य करै हैं। संसार का चरित्र स्वप्न के राज्य समान असार है। एक समय यह धनदत्त का पुत्र भूषण प्रभात समय दुंदुभी शब्द आकाशविषै देवनि का आगमन देख प्रतिबुद्ध भया। यह स्वभाव ही से कोमलचित्त, धर्म के आचार विषै तत्पर, महाहर्ष का भर्‌या दोनों हाथ जोड़ नमस्कार करता, श्रीधर केवली की वन्दनाकूं शीघ्र ही जाय था सो सिवारण से उतरते सर्प ने डसा। देह तज महेन्द्र नाम जो चौथा स्वर्ग तहां देव भया। तहांतैं चयकर

पहुकर द्वीपविषै चन्द्रादित्य नामा नगर तहां राजा प्रकाशयश ताके राणी माधवी ताके जगद्युत नामा पुत्र भया। यौवन के उदयविषै राज्यलक्ष्मी पाई, परन्तु संसार से अति उदास राजविषै चित्त नाहीं।

सो याके वृद्ध मंत्रिनि ने कही – यह राज तिहारे कुलक्रम से चला आवै है सो पालहु। तिहारे राज्य से प्रजा सुख रूप होयगी। सो मंत्रिनि के हठ से यह राज्य करै। राज्यविषै तिष्ठता यह साधुनि की सेवा करै। सो मुनि दान के प्रभाव से देवकुरु भोगभूमि गया। तहां से ईशान नाम दूजा स्वर्ग तहां देव भया। चार सागर दोय पल्य देवलोक के सुख भोग देवांगनानिकर मंडित नाना प्रकार भोग भोगि, तहां से चया सो जम्बू द्वीप के पश्चिम विदेह मध्य अचल नामा चक्रवर्ती के रत्नानामा राणी के अभिराम नामा पुत्र भया, सो महागुणनि का समूह अतिसुन्दर, जाहि देखि सर्व लोककूं आनन्द होय। सो बाल अवस्था ही से अतिविरक्त जिनदीक्षा धास्या चाहैं, अर पिता चाहै यह घरविषै रहै, तीन हजार राणी से परणाईं, सो वे नाना प्रकार के चरित्र करें, परन्तु यह विषय सुखकूं विषयसमान गिनै। केवल मुनि होयवे की इच्छा, अति शांतचित्त, परन्तु पिता घर से निकसने न देय।

यह महाभाग्य महाशीलवान महागुणवान महात्यागी, स्त्रियों का अनुराग नहीं याकूं, ते स्त्री भांति भांति के वचनकर अनुराग उपजावैं, अतियत्नकर सेवा करें, परन्तु याकूं संसार की माया गर्तरूप भासै। जैसैं गर्त में पड्या ताके पकड़नहारे मनुष्य नाना भांति ललचावैं तथापि गज को गर्त न रुचै ऐसे याहि जगत् की माया न रुचै। यह शांतचित्त पिता के निरोध से अति उदास भया घरविषै रहै। तिन स्त्रीनि के मध्य प्राप्त हुवा तीव्र असिधारा व्रत पालै।

स्त्रीनि के मध्य रहना अर शील पालना, तिनसे संसर्ग न करना ताका नाम असिधारा व्रत कहिए। मोतिन के हार बाजूबंद मुकुटादि अनेक आभूषण पहिरे तथापि आभूषणसूं अनुराग नाहीं। यह महाभाग्य सिंहासन पर बैठा निरन्तर स्त्रीनि को जिनधर्म की प्रशंसा का उपदेश देय। त्रैलोक्यविषै जिनधर्म समान और धर्म नाहीं। ये जीव अनादिकाल से संसार वनविषै भ्रमण करै है सो कोई पुण्य कर्म के योग से जीवोंकूं मनुष्य देह की प्राप्ति होय है। यह बात जानता संता कौन मनुष्य संसार कूपविषै पड़े, अथवा कौन विवेकी विषकूं पीवै, अथवा गिरि के शिखर पर कौन बुद्धिमान निद्रा करै, अथवा मणि की बांछाकर कौन पंडित नाग का मस्तक हाथ से स्पर्शे, विनाशीक ये काम भोग तिनविषै ज्ञानीकूं कैसैं अनुराग उपजे?

एक जिनधर्म का अनुराग ही महाप्रशंसा योग्य मोक्ष के सुख का कारण है। यह जीवों का जीतव्य अत्यन्त चंचल, याविषै स्थिरता कहां? जो अवांछक निस्पृह चित्त वश हैं तिनके राज्यकाज अर इन्द्रियों के भोगों से कौन काम? इत्यादिक परमार्थ के उपदेशरूप याकी वाणी सुनकर स्त्रियें भी शांतिचित्त भईं, नाना प्रकार के नियम धारती भईं। यह शीलवान तिनकूं भी

शीलविषै दृढ़चित्त करता भया। यह राजकुमार अपने शरीरविषै भी रागरहित एकांतर उपवास अथवा बेला तेला आदि अनेक उपवासोंकर कर्म कलंक खिपावता भया, नाना प्रकार के तपकर शरीरकूं शोखता भया, जैसैं ग्रीषम का सूर्य जलकूं शोखै। समाधान रूप है मन जाका, मन इन्द्रियनि के जीतवेकूं समर्थ यह सम्यक्‌दृष्टि निश्चल चित्त महाधीर वीर चौंसठ हजार वर्ष लग दुर्धर तप करता भया। बहुरि समाधिमरण कर पंचनमोकार स्मरण करता देह त्यागकर छठा जो ब्रह्मोत्तर स्वर्ग तहां महाऋद्धि का धारक देव भया।

अर जो भूषण के भवविषै याका पिता धनदत्त सेठ था, विनोद ब्राह्मण का जीव सो मोह के योगतैं अनेक क्रियोनिविषै भ्रमणकरि जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र, तहां वादम नाम नगर, ताविषै अग्निमुख नामा ब्राह्मण ताके शकुना नाम स्त्री, मृदुमतिनामा पुत्र भया। सो नामा तो मृदुमति परन्तु कठोर चित्त, अति दुष्ट महाजुवारी अविनयी अनेक अपराधों का भरा दुराचारी। सो लोकों के उराहने से माता पिता ने घर से निकास्या सो पृथ्वीविषै परिभ्रमण करता पोदनापुर गया। किसी के घर तृषातुर पानी पीवने को पैंठा सो एक ब्राह्मणी आंसू डारती हुई इसे शीतल जल प्यावती भई। यह शीतल मिष्टजल से तृप्त हो ब्राह्मणीकूं पूछता भया तू कौन कारण रुदन करै है? तब ताने कही – तेरे आकार एक मेरा पुत्र था सो मैं कठोरचित्त होय क्रोधकर घर से निकास्या। सो तैंने भ्रमण करते कहूं देख्या होय तो कह। नीलकमल समान तो सारिखा ही है। तब यह आंसू डार कहता भया – हे माता! तू रुदन तज, वह मैं ही हूं, तोहि देखे बहुत दिन भए तातैं मोहि नाहीं पहिचाने है। तू विश्वास गह मैं तेरा पुत्र हूं। तब वह पुत्र जान राखती भई, अर मोह के योगतैं ताके स्तनों से दुग्ध झरा। यह मृदुमति तेजस्वी रूपवान् स्त्रीनि के मन का हरणहारा, धूर्तों का शिरोमणि, जुवाविषै सदा जीते, बहुत चतुर, अनेक कला जाने, काम भोगविषै आसक्त।

एक बसंतमाला नामा वेश्या सो ताके अति बल्लभ, अर याके माता पिता ने यह काढ़ा हुता सो इसके पीछे वे अति लक्ष्मीकूं प्राप्त भए। पिता कुण्डलादिक अनेक भूषण करि मण्डित, अर माता कांचीदामादिक अनेक आभरणों कर शोभित सुखसूं तिष्ठे। अर एक दिन यह मृदुमति ससाक नगरविषै राजमन्दिरविषै चोरीकूं गया सो राजा नन्दीवर्धन, शशांकमुख स्वामी के मुख धर्मोपदेश सुन विरक्त चित्त भया था सो अपनी राणीसूं कहे था कि हे देवी! मैं मोक्ष सुख का देनेहारा मुनि के मुख परम धर्म सुना। ये इन्द्रियनि के विषय विषसमान दारुण हैं, इनके फल नरक निगोद हैं, मैं जैनेश्वरी दीक्षा धरूंगा, तुम शोक मत करियो। या भांति स्त्रीकूं शिक्षा देता हुता, सो मृदुमति चोर ने यह वचन सुन अपने मनविषै विचार्‌या, देखो यह राजऋद्धि तज मुनिव्रत धारै है अर मैं पापी चोरी कर पराया द्रव्य हरूं हूं, धिक्कार मोकूं। ऐसे विचारकर निर्मलचित्त होय

सांसारिक विषय भोगों से उदासचित्त भया, स्वामी चन्द्रमुख के समीप सर्व परिग्रह का त्यागकर जिनदीक्षा आदरी, शास्त्रोक्त महादुर्धर तप करता महाक्षमावान् महाप्रासुक आहार लेता भया।

अथानन्तर दुर्गनाम गिरि के शिखर एक गुणनिधि नाम मुनि चार महीने के उपवास धर तिष्ठे थे। वे सुर असुर मनुष्यनिकर स्तुति करिवे योग्य महा ऋद्धिधारी चारण मुनि थे। सो चौमासे का नियम पूर्णकर आकाश के मार्ग होय किसी तरफ चले गए, अर यह मृदुमति मुनि आहार के निमित्त दुर्गनामा गिरि के समीप आलोक नाम नगर वहां आहारकूं आया। जूड़ाप्रमाण पृथ्वीकूं निरखता जाय था। सो नगर के लोकों ने जानी यह वे ही मुनि हैं जो चार महीना गिरि के शिखर रहे। यह जानकर अति भक्तिकर पूजा करी, अर इसे अति मनोहर आहार दिया। नगर के लोकों ने बहुत स्तुति करी। इसने जानी गिरि पर चार महीना रहे तिनके भरोसे मेरी अधिक प्रशंसा होय है। सो मान का भरया मौन पकड़ रहा, लोकों से यह न कही कि मैं और ही हूं। अर वे मुनि और थे और गुरु के निकट माया शल्य दूर न करी, प्रायश्चित्त न लिया। तातैं तिर्यंचगति का कारण भया।

तप बहुत किए सो पर्याय पूरी कर छठे देवलोक जहां अभिराम का जीव देव भया था वहां ही यह गया। पूर्व जन्म के स्नेहकर उसके याके अति स्नेह भया। दोनों ही समान ऋद्धि के धारक अनेक देवांगनावोंकर मंडित, सुख के सागरविषै मग्न, दोनों ही सागरों पर्यंत सुखसूं रमे। सो अभिराम का जीव तो भरत भया। अर यह मृदुमति का जीव स्वर्ग से चय मायाचार के दोष से इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै, उतंग है शिखर जिसके ऐसा जो निकुंज नामा गिरि, उस विषै महागहन शल्लकी नामा बन, वहां मेघ की घटा समान अति सुन्दर गजराज भया, समुद्र की गाज समान है गर्जना जिसकी, अर पवन समान है शीघ्र गमन जिसका, महाभयंकर आकारकूं धरे, अति मदोन्मत्त, चन्द्रमा समान उज्ज्वल है दांत जिसके, गजराजों के गुणोकरि मंडित, विजयादिक महाहस्ती तिनके वंशविषै उपज्या।

महाकांति का धारक, ऐरावत समान अति स्वच्छ सिंह व्याघ्रादिक का हननहारा, महावृक्षों का उपारनहारा, पर्वतों के शिखर का ढाहनहारा, विद्याधरोंकर न ग्रहा जाय तो भूमिगोचरियों की क्या बात, जाके निवास से सिंहादिक निवास तजि भाग जावें। ऐसा प्रबल गजराज गिरि के वनविषै नाना प्रकार पल्लव का आहार करता मानसरोवरविषै क्रीड़ा करता, अनेक गजोंसहित विचरै। कभी कैलाशविषै विलास करै कभी गंगा के मनोहर द्रहोंविषै क्रीड़ा करै, अर अनेक वन गिरि नदी सरोवरविषै सुन्दर क्रीड़ा करै, अर हजारों हथनीनि सहित रमै। अनेक हाथियों के समूह का शिरोमणि यथेष्ट विचरता ऐसा सोहै जैसा पक्षियों के समूहकर गरुड़ सोहै। मेघसमान गर्जता मद नीझरने तिनके झरने का पर्वत, सो एक दिन लंकेश्वर ने देखा, सो विद्या के पराक्रम कर

महाउग्र उसने यह नीठि नीठि वश किया। इसका त्रैलोक्यमण्डन नाम धरया, सुन्दर हैं लक्षण जिसके। जैसैं स्वर्गविषैं चिरकाल अनेक अप्सराओं सहित क्रीड़ा करी तैसै हाथियों की पर्यायविषै हजारों हथिनियों से क्रीड़ा करता भया।

यह कथा देशभूषण केवली राम लक्ष्मणसूं कहे हैं कि ये जीव सर्व योनिविषै रति मान लेय है निश्चय विचारिए तो सर्व ही गति दुखरूप हैं। अभिराम का जीव भरत अर मृदुमति का जीव गज सूर्योदय चन्द्रोदय के जन्म से लेकर अनेक भव के मिलापी हैं तातै भरतकूं देखि पूर्व भव चितारि गज उपशांत चित्त भया। अर भरत भोगों से पराङ्मुख, दूर भया है मोह जिसका, अब मुनिपद लिया चाहै है इस ही भवसूं निर्वाण प्राप्त होवेंगे, बहुरि भव न धरेंगे। श्री ऋषभदेव के समय यह दोनों सूर्योदय चन्द्रोदय नामा भाई थे। मारीच के भरमाए मिथ्यावचन सेवन कर बहुतकाल संसारविषै भ्रमण किया, त्रस स्थावर योनिविषै भ्रमैं। चन्द्रोदय का जीव कईएक भव का पीछे राजा कुलंकर।

बहुरि कईएक भव पीछे रमण ब्राह्मण, बहुरि कई एक भव धर समाधिमरण करणहारा मृग भया, बहुरि स्वर्गविषै देव, बहुरि भूषण नामा वैश्य का पुत्र, बहुरि स्वर्ग बहुरि जगद्युति नाम राजा, वहां से भोगभूमि, बहुरि दूजे स्वर्ग देव, वहां से चयकर महाविदेह क्षेत्रविषै चक्रवर्ती का पुत्र अभिराम भए, वहां से छठे स्वर्ग देव, देव से भरत नरेन्द्र सो चरमशरीरी है, बहुरि देह न धारेंगे। अर सूर्योदय का जीव बहुत काल भ्रमण कर राजा कुलंकर का श्रुति नामा पुरोहित भया। बहुरि अनेक जन्म लेय विनोदनामा विप्र भया, बहुरि अनेक जन्म लेय आर्तध्यान से मरणहारा मृग भया, बहुरि अनेक जन्म भ्रमण कर भूषण का पिता धनदत्त नामा वणिक, बहुरि अनेक जन्म धर मृदुमति नामा मुनि, उसने अपनी प्रशंसा सुन राग किया, मायाचार से शल्य दूर न करी, तप के प्रभाव से छठे स्वर्ग देव भया।

वहां से चयकरि त्रैलोक्यमण्डन हाथी, अब श्रावक के व्रत धर देव होयगा ये भी निकट भव्य है। या भांति जीवों की गति आगति जान अर इन्द्रियों के सुख विनाशीक जान या विषम वनकूं तजकर ज्ञानी जीव धर्मविषै रमहु, जे प्राणी मनुष्य देह पाय जिन भाषित धर्म नाहीं करै हैं वे अनन्तकाल संसार भ्रमण करेंगे। आत्मकल्याण से दूर हैं तातै जिनवर के मुख से निकस्या दयामई धर्म मोक्ष प्राप्त करनेकूं समर्थ, याके तुल्य और नाहीं। मोहतिमिर का दूर करणहारा, जीती है सूर्य की कांति जानै सो मनवचन कायकर अंगीकार करो जातैं निर्मल पद पावो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै भरत के अर हाथी के पूर्वभव वर्णन करने वाला पच्चासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।85।।

अथानन्तर श्री देशभूषण केवली के वचन महा पवित्र, मोह अन्धकार के हरणहारे, संसार सागर के तारणहारे, नाना प्रकार के दुख के नाशक, उनविषै भरत अर हाथी के अनेक भव का वर्णन सुनकर राम लक्ष्मण आदि सकल भव्यजन आश्चर्यकूं प्राप्त भए, सकल सभा चेष्टारहित चित्राम जैसी होय गई। अर भरत नरेन्द्र, देवेन्द्र समान है प्रभा जाकी, अविनाशी पद के अर्थि मुनि होयवे की इच्छा जिसके, गुरुवों के चरणविषै नम्रीभूत है सीस जिसका, महाशांतचित्त परम वैराग्यकूं प्राप्त हुवा। तत्काल उठकरि हाथ जोड़ केवलीकूं प्रणामकरि महा मनोहर वचन कहता भया – हे नाथ! मैं संसारविषै अनन्त काल भ्रमण करता नाना प्रकार कुयोनियों के विषै संकट सहता दुखी भया। अब मैं संसार भ्रमण से थका। मुझे मुक्ति का कारण तिहारी दिगम्बरी दीक्षा देवहु। यह आकाशरूप नदी मरणरूप उग्ररूप तरंगकूं धरे उसविषै मैं डूबूं हूं, सो मुझे हस्तावलम्बन दे निकासो।

ऐसा कहकर केवली की आज्ञा प्रमाण तज्या है समस्त परिग्रह जिसने, अपने हाथों से शिर के केश लोंच किये, परम सम्यक्ती महाव्रतकूं अंगीकार कर जिनदीक्षा धर दिगम्बर भया। तब आकाशविषै देव धन्य कहते भए अर कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा करते भए।

हजार से अधिक राजा भरत के अनुराग से राजऋद्धि तज जिनेन्द्री दीक्षा धरते भए। अर कईएक अल्प शक्ति हुते ते अणुव्रत धर श्रावक भये। अर माता केकई पुत्र के वैराग्य सुन आंसुनि की वर्षा करती भई, व्याकुल चित्त होय दौड़ी सो भूमिविषै पड़ी, महामोहकूं प्राप्त भई। पुत्र की प्रीतिकर मृतक समान होय गया है शरीर जाका सो चन्दनादिक के जल से छांटी तो भी सचेत न भई, घनी वैर विषै सचेत भई। जैसैं वत्स बिना गाय पुकारै तैसे विलाप करती भई हाय पुत्र! महा विनयवान, गुणनि की खान, मनकूं आह्लाद का कारण, हाय तू कहां गया? हे अंगज! मेरा अंग शोक के सागरविषै डूबै है सो थांभ। तो सारिखे पुत्र बिना मैं दु:ख के सागरविषै मग्न शोक की भरी कैसे जीऊंगी? हाय! हाय! यह कहा भया? या भांति विलाप करती माता श्रीराम लक्ष्मण ने संबोधकरि विश्रामकूं प्राप्त करी, अति सुन्दर वचननिकर धीर्य बन्धाया – हे मात! भरत महाविवेकी ज्ञानवान है तुम शोक तजहु, हम कहा तिहारे पुत्र नाहीं? आज्ञाकारी किंकर हैं। अर कौशल्या सुमित्रा सुप्रभा ने बहुत सम्बोधा तब शोकरहित होय प्रतिबोधकूं प्राप्त भई।

शुद्ध है मन जाका, अपने अज्ञान की बहुत निंदा करती भई, धिक्कार या स्त्री पर्यायकूं यह पर्याय महा दोषनि की खानि है, अत्यन्त अशुचि, वीभत्स नगर की मोरी समान। अब ऐसा उपाय करूं जाकर स्त्री पर्याय न धरूं, संसार समुद्रकूं तिरूं। यह महा ज्ञानवान सदा ही जिनशासन की भक्तिवंत हुती अब महा वैराग्यकूं प्राप्त होय पृथ्वीमति आर्यिका के समीप आर्यिका भई। एक

श्वेत वस्त्र धाऱ्या अर सर्व परिग्रह तज निर्मल सम्यक्त्वकूं धरती सर्व आरम्भ टारती भई। याके साथ तीनसै आर्यिका भईं। यह विवेकिनी परिग्रह तज कर वैराग्य धार ऐसी सोहती भई जैसी कलंकरहित चन्द्रमा की कला मेघपटल रहित सोहै।

श्रीदेशभूषण केवली का उपदेश सुन अनेक मुनि भये, अनेक आर्यिका भईं। तिनकर पृथ्वी ऐसी सोहती भई जैसे कमलनिकर सरोवरी सोहै। अर अनेक नर नारी पवित्र हैं चित्त जिनके, तिन्होंने नाना प्रकार के नियम धर्मरूप श्रावक श्राविका के व्रत धारे। यह युक्त ही है जो सूर्य के प्रकाश कर नेत्रवान् वस्तु का अवलोकन करै ही करै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै भरत अर केकई का वैराग्य वर्णन करने वाला छियासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।86।।

अथानन्तर त्रैलोक्यमंडन हाथी अति प्रशांतचित्त केवली के निकट श्रावक के व्रत धारता भया। सम्यक्दर्शन संयुक्त, महाज्ञानी, शुभक्रियाविषै उद्यमी हाथी धर्मविषै तत्पर होता भया। पन्द्रह दिन के उपवास तथा मासोपवास करता भया, सूखे पत्रनिकर पारणा करता भया। हाथी संसारसूं भयभीत, उत्तम चेष्टाविषै परायण, लोकनिकर, पूज्य, महाविशुद्धताकूं धरे, पृथ्वीविषै विहार करता भया। कभी मासोपवास के पारणा ग्रामादिकविषै जाय तो श्रावक ताहि अति भक्तिकर शुद्ध अन्न शुद्ध जलकर पारणा करावते भए। क्षीण होय गया है शरीर जाका वैराग्यरूप खूंटे से बन्धा, महाउग्र तप करता भया। यह नियमरूप है अंकुश जाके। बहुरि महाउग्र तप का करणहारा गज शनै: शनै: आहार का त्याग कर अंत संलेखणा धर; शरीर तज छठे देव होता भया। अनेक देवांगनाकरि युक्त हार-कुण्डलादिक आभूषणनिकरि मंडित पुण्य के प्रभावतैं देवगति के सुख भोगता भया। छठे स्वर्गहीतैं आया हुता अर छठे ही स्वर्ग गया, परम्पराय मोक्ष पावेगा।

अर भरत महामुनि महातप के धारक, पृथ्वी के गुरु निर्ग्रंथ, जाके शरीर का भी ममत्व नाहीं, वे महाधीर जहां पिछिला दिन रहै तहां ही बैठ रहैं, जिनकूं एक स्थान न रहना, पवन सारिखे असंगी, पृथ्वीसमान क्षमाकूं धरे, जलसमान निर्मल, अग्नि समान कर्म काष्ठ के भस्म करनहारे, अर आकाश समान अलेप, चार आराधनाविषै उद्यमी, तेरह प्रकार चारित्र पालते विहार करते भए। निर्ममत्व, स्नेह के बंधनतैं रहित, मृगेन्द्र सारिखे निर्भय, समुद्र समान गम्भीर, सुमेरु समान निश्चल, यथाजात रूप के धारक, सत्य का वस्त्र पहिरे, क्षमारूप खड्गकूं धरे, बाईस परीषह के जीतनेहारे, महातपस्वी, समान हैं शत्रु मित्र जिनके, अर समान है सुख दुख जिनके, अर समान है तृण रत्न जिनके, महा उत्कृष्ट मुनि शास्त्रोक्त मार्ग चलते भए। तप के प्रभावकरि अनेक ऋद्धि उपजी। सूई समान तीक्ष्ण तृण की सली पावों में चुभै है, परन्तु ताकी कुछ सुध नाहीं। अर शत्रुनि

के स्थानक विषै उपसर्ग सहिये निमित्त विहार करते भए।

तप के संयम के प्रभावकरि शुक्लध्यान उपजा। शुक्लध्यान के बलकर मोह का नाशकर ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय कर्म हर, लोकालोककूं प्रकाश करणहारा केवलज्ञान प्रकट भया। बहुरि अघातिया कर्म भी दूरकर सिद्धपदकूं प्राप्त भए, जहांतैं बहुरि संसार विषै भ्रमण नाहीं। यह केकई के पुत्र भरत का चरित्र जो भक्ति कर पढ़े, सुनै सो सब क्लेश से रहित होय यश कीर्ति बल विभूति आरोग्यताकूं पावै, अर स्वर्ग मोक्ष पावै। यह परम चरित्र महा उज्ज्वल श्रेष्ठ गुणनिकर युक्त, भव्यजीव सुनो, जातैं शीघ्र ही सूर्य से अधिक तेज के धारक होहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै भरत का निर्वाण गमन वर्णन करने वाला सत्यासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।87।।

अथानन्तर भरत के साथ जे राजा महाधीर वीर अपने शरीरविषै भी जिनका अनुराग नाहीं, घरतैं निकसि जैनेश्वरी दीक्षा धरि दुर्लभ वस्तुकूं प्राप्त भए, तिनविषै कई एकनि के नाम कहिए हैं – हे श्रेणिक! तू सुन – सिद्धार्थ, रतिवर्धन, मेघरथ, जांबू, नन्द, शल्य, शशांक, निरसनन्दन, नन्द, आनन्द, सुमति, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्य इन्द्रध्वज, जनवल्लभ, श्रुतिधर, सुचन्द्र, पृथ्वीधर, अलंक, सुमति, अक्रोध, कुंडर, सत्यवाहन, हरि, वासुमित्र, धर्ममित्र, पूर्णचन्द्र, प्रभाकर, नघोष, सुनन्द, शांति, प्रियधर्मा इत्यादि एक हजारतैं अधिक राजा वैराग्य धारते भए। विशुद्धकुल विषै उपजे, सदा आचारविषै तत्पर, पृथ्वी विषै प्रसिद्ध हैं शुभ चेष्टा जिनकी, ये महाभाग्य हाथी घोड़े रथ पयादे स्वर्ण रत्न रणवास सर्व तजकरि पंच महाव्रत धारते भए। राज्यकूं जिनने तृणवत् तज्या, महाशांत, नाना प्रकार योगीश्वर ऋद्धि के धारक भए। सो आत्मध्यान के ध्याता कैयक तो मोक्ष गए, कोई एक अहमिंद्र भए, कई एक उत्कृष्ट देव भए।

अथानन्तर भरत चक्रवर्ती सारिखे दशरथ के पुत्र भरत तिनकूं घर से निकसे पीछे लक्ष्मण तिनके गुण चितार चितार अतिशोकवंत भया। अपना राज्य शून्य गिनता भया, शोककरि व्याकुल है चित्त जाका, अति दीर्घ आंसू डारता भया, दीर्घ निश्वास नाखता भया, नील कमल समान है कांति जाकी सो कुमलाय गया। विराधित की भुजानिकर हाथ धरे ताके सहारे बैठ्या मंद मंद वचन कहै, वे भरत महाराज, गुण ही हैं आभूषण जिनके सो कहां गए? जिन तरुण अवस्था विषै शरीरसूं प्रीति छांड़ी इन्द्र समान राजा अर हम सब उनके सेवक वे रघुवंश के तिलक समस्त विभूति तजकरि मोक्ष के अर्थी, महादुद्धर मुनि का धर्म धारते भए – भरत की महिमा कही न जाय, जिनका चित्त कभी संसारविषै न रच्या, जो शुद्ध बुद्धि है तो उनकी ही है, अर जन्म कृतार्थ है तो उनका ही है, जे विषय भरे अन्न की न्याईं राज्य कूं तजकरि जिनदीक्षा धरते भए। वे पूज्य,

प्रशंसा योग्य, परम योगी, उनका वर्णन देवेन्द्र भी न कर सके तो औरनि की कहा शक्ति जो करै?

वे राजा दशरथ के पुत्र, केकई के नन्दन तिनकी महिमा हमतैं न कही जाय। या भरत के गुण गाते एक मुहूर्त सभाविषै तिष्ठे, समस्त राजा भरत ही के गुण गाया करें। बहुरि श्रीराम लक्ष्मण दोऊ भाई भरत के अनुरागकरि अति उद्वेगरूप उठे। सब राजा अपने अपने स्थानकूं गए। घर घर भरत की चर्चा। सब ही लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। यह तो उनकी यौवन अवस्था, अर यह राज्य, ऐसे भाई, सब सामग्री पूर्ण। ऐसे ही पुरुष तजे सोई परमपदकूं प्राप्त होवैं। या भांति सब ही प्रशंसा करते भए।

बहुरि दूजे दिन सब राजा मंत्रकर राम पै आए। नमस्कारकरि अति प्रीति से वचन कहते भए। हे नाथ! जो हम असमझ हैं तो आपके, अर बुद्धिवंत हैं तो आपके। हम पर कृपा कर एक विनती सुनो – हे प्रभो! हम सब भूमिगोचरी अर विद्याधर आपका राज्याभिषेक करैं जैसे स्वर्गविषै इन्द्र का होय। हमारे नेत्र अर हृदय सफल होवैं। तिहारे अभिषेक के सुखकरि पृथ्वी सुखरूप होय।

तब राम कहते भए तुम लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो वह पृथ्वी का स्तम्भ भूधर है, राजानि का गुरु, वासुदेव, राजानि का राजा, सर्वगुण ऐश्वर्य का स्वामी, सदा मेरे चरणनिकूं नमै। या उपरांत मेरे राज्य कहां?

तब वे समस्त श्रीराम की अतिप्रशंसा कर जय जयकार शब्द कर लक्ष्मण पै गए अर सब वृत्तांत कह्या। तब लक्ष्मण सबनिकूं साथ लेय राम पै आया, अर हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया – हे वीर! या राज्य के स्वामी आप ही हो। मैं तो आपका आज्ञाकारी अनुचर हूं। तब राम ने कह्या, हे वत्स! तुम चक्र के धारी नारायण हो तातैं राज्याभिषेक तुम्हारा ही योग्य है। सो इत्यादि वार्तालाप से दोनों का राज्याभिषेक ठहरा। बहुरि जैसी मेघ की ध्वनि होय तैसी वादित्रनि की ध्वनि होती भई। दुंदुभी बाजे, नगारे, ढोल, मृदंग, वीण, तमूरे, झालर, झांझ, मजीरे, बांसुरी, शंख इत्यादि वादित्र बाजे, अर नाना प्रकार के मंगल गीत नृत्य होते भए। याचकनिकूं मनवांछित दान दीये, सबनिकूं अति हर्ष भया। दोऊ भाई एक सिंहासन पर विराजे। स्वर्ण रत्न के कलश जिनके मुख कमल कुण्डलादिक कर मंडित मनोग्य वस्तु पहिरे, सुगन्धकरि चर्चित तिष्ठे। विद्याधर भूमिगोचरी तथा तीन खंड के देव जय जय शब्द कहते भए। यह बलभद्र श्रीराम हल मूसल के धारक, अर यह वासुदेव श्री लक्ष्मण चक्र का धारक जयवंत होहु। दोऊ राजेन्द्रनि का अभिषेककरि विद्याधर बड़े उत्साह से सीता अर विशिल्या का अभिषेक करावते भए। सीता राम की राणी अर विशल्या का लक्ष्मण की, तिनका अभिषेक विधिपूर्वक होता भया।

अथानन्तर विभीषण को लंका दई, सुग्रीवकूं किहकंधापुर, हनुमानकूं श्रीनगर अर हनूरुह द्वीप

दिया। विराधितकूं नागलोक समान अलंकापुर दिया। नल नीलकूं किहकंधापुर दिया, समुद्र की लहरों के समूहकरि महाकौतुकरूप। अर भामण्डलकूं वैताड्य की दक्षिण श्रेणिविषै रथनूपुर दिया, समस्त विद्याधरनि का अधिपति किया। अर रत्नजटीकूं देवोपुनीत नगर दिया, और भी यथायोग्य सबनिकूं स्थान दिए। अपने पुण्य के उदय योग्य सब ही राम लक्ष्मण के प्रतापतैं राज्य पावते भए। राम की आज्ञाकरि यथायोग्य स्थान में तिष्ठे। जे भव्यजीव व पुण्य के प्रभाव का जगतविषै प्रसिद्ध फल जान धर्मविषै रति करैं हैं वे मनुष्य सूर्य से अधिक ज्योति पावै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मण का राज्याभिषेक वर्णन करने वाला अठासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।88।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण महा प्रीतिकरि भाई शत्रुघ्नसूं कहते भए, जो तुमको रुचै सो देश लेवहु। जो तुम आधी अयोध्या चाहो तो आधी अयोध्या लेवहु अथवा राजगृह अथवा पोदनापुर अथवा पोंड्रसुन्दर इत्यादि सैकड़ों राजधानी हैं। तिनविषै जो नीकी सो तिहारी। तब शत्रुघ्न कहता भया – मोहि मथुरा का राज्य देवो। तब राम बोले – रे भ्रात! वहां राजा मधु का राज्य है अर वह रावण का जमाई है अनेक युद्धनि का जीतनहारा ताकूं चमरेन्द्र त्रिशूल रत्न दिया है। ज्येष्ठ के सूर्य समान दुस्सह है, अर देवनि से दुर्निवार है। ताकी चिंता हमारे भी निरन्तर रहै है, वह राजा मधु हरिवंशियों के कुल रूप आकाशविषै सूर्य समान प्रतापी है जाने वंशविषै उद्योत किया है, अर जाका लवणार्णव नामा पुत्र विद्याधरनि हूंकर असाध्य है। पिता पुत्र दोऊ महाशूरवीर है। तातैं मथुरा टार और राज्य चाहो सो ही लेवहु।

तब शत्रुघ्न कहता भया – बहुत कहिवेकरि कहा? मोहि मथुरा ही देवहु जो मैं मधु के छाते की न्याईं, मधुकूं रणसंग्रामविषै न तोड़ लूं तो दशरथ का पुत्र शत्रुघ्न नाहीं। जैसैं सिंहनि के समूहकूं अष्टापद तोड़ डारै तैसे ताके कटकसहित ताहि न चूर डारूं तो मैं तिहारा भाई नाहीं। जो मधुकूं मृत्यु प्राप्त न करूं तो मैं सुप्रभा की कुक्षिविषै उपजा ही नाहीं। या भांति प्रचंड तेज का धरणहारा शत्रुघ्न कहता भया। तब समस्त विद्याधरनि के अधिपति आश्चर्यकूं प्राप्त भए, अर शत्रुघ्न की बहुत प्रशंसा करते भए। शत्रुघ्न मथुरा जायवेकूं उद्यमी भया।

तब श्रीराम कहते भए, हे भाई! मैं एक याचना करूं हूं। सो मोहि दक्षिणा देहू। तब शत्रुघ्न कहता भया – सबके दाता आप हो, सब आपके याचक हैं आप याचहु सो वस्तु कहा? मेरे प्राण ही के नाथ आप हो तो और वस्तु की कहा बात? एक मधु से युद्ध तो मैं न तजूं, अर कहो सोही करूं। तब श्रीराम ने कही – हे वत्स! तू मधु से युद्ध करै तो जा समय बाके हाथ त्रिशूल रत्न न होय तासमय करियो। तब शत्रुघ्न ने कही जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। ऐसा कह भगवान

की पूजाकर, णमोकार मंत्र जप, सिद्धनिकूं नमस्कारकरि, भोजनशालाविषै जाय भोजनकरि माता के निकट आय आज्ञा मांगी।

तब वे माता अतिस्नेहतैं याके मस्तक पर हाथ धर कहती भई – हे वत्स! तू तीक्ष्ण बाणनिकर शत्रुनि के समूहकूं जीत। यह योधा की माता अपने योधापुत्र से कहती भई – हे पुत्र! अब तक संग्रामविषै शत्रुनि ने तेरी पीठ नाहीं देखी है अर अबहु न देखेंगे, तू रण जीत आवेगा, तब मैं स्वर्ण के कमलनिकर श्रीजिनेन्द्र की पूजा कराऊंगी। वे भगवान त्रैलोक्य मंगल के कर्त्ता। आप महामंगलरूप, सुर असुरनिकर नमस्कार करिवे योग्य रागादिक के जीतनहारे तोहि मंगल करैं। वे परमेश्वर पुरुषोत्तम अरहंत भगवन्त अत्यन्त दुर्जय मोहरिपु जीता वे तोहि कल्याण के दायक होहु। सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी स्वयंबुद्ध तिनके प्रसादतैं तेरी विजय होहु। जे केवलज्ञानकरि लोकालोककूं हथेलीविषै आंवला की न्याईं देखै हैं ते तोहि मंगलरूप होहु।

हे वत्स! वे सिद्ध परमेष्ठी अष्टकर्मकर रहित अष्टगुण आदि अनन्त गुणनिकर विराजमान लोक के शिखर तिष्ठे, ते सिद्ध तोहि सिद्धि के कर्त्ता होहु। अर आचार्य भव्यजीवनि के परम आधार तेरे विघ्न हरैं, जे कमल समान अलिप्त सूर्यसमान तिमिर हर्ता, अर चन्द्रमान समान आल्हाद के कर्त्ता, भूमिसमान क्षमावान, सुमेरु समान अचल समुद्र समान गम्भीर, आकाश समान अखंड इत्यादि अनेक गुणनिकर मंडित हैं। अर उपाध्याय जिनशासन के पारगामी तोहि कल्याण के कर्ता होहु। अर कर्म शत्रुनि के जीतवेकूं महाशूरवीर बारह प्रकार तपकरि जे निर्वाण को साधै हैं ते साधु तोहि महावीर्य के दाता होहु। या भांति विघ्न की हरणहारी मंगल की करणहारी माता आशीस देती सो शत्रुघ्न माथे चढ़ाय माताकूं प्रणामकरि बाहिर निकस्या।

स्वर्ण की सांकलनिकर मंडित जो गज तापर चढ्या। सो ऐसा सोहता भया जैसै मेघमाला के ऊपर चंद्रमा सोहै, अर नाना प्रकार के वाहननि पर आरूढ़ अनेक राजा संग चाले सो तिनकरि ऐसा सोहता भया – जैसा देवनिकर मंडित देवेन्द्र सोहै। राम लक्ष्मण की भाईसूं अधिक प्रीति सो तीन मंजिल भाई के संग गये तब भाई कहता भया – हे पूज्य पुरुषोत्तम! पीछे अयोध्या जावहु। मेरी चिंता न करो। मैं आपके प्रसादतैं शत्रुनि को निस्संदेह जीतूंगा। तब लक्ष्मण ने समुद्रावर्त नामा धनुष दिया। प्रज्वलित हैं मुख जिनके, पवन सारिखे वेगकूं धरे ऐसे बाण दिए। अर कृतांतवक्रकूं लार दिया। अर लक्ष्मण सहित राम पीछे अयोध्या आए, परन्तु भाई की चिंता विशेष।

अथानन्तर शत्रुघ्न महा धीरवीर बड़ी सेना कर संयुक्त मथुरा की तरफ गया। अनुक्रम से यमुना नदी के तीर जाय डेरे दिये। जहां मंत्री महासूक्ष्मबुद्धि मंत्र करते भये। देखो, इस बालक शत्रुघ्न की बुद्धि जो मधुकूं जीतवे की बांछा करी है। यह नयवर्जित केवल अभिमान कर प्रवर्त्या है, जा मधु

ने पूर्व राजा मांधाता रणविषै जीत्या, सो मधु देवनिकर विद्याधरनिकर न जीत्या जाय, ताहि यह कैसैं जीतेगा? राजा मधु सागर समान है, उछलते पियादे तेई भये उतंग लहर, अर शत्रुनि के समूह तेई भये ग्रह तिनकर पूर्ण ऐसे मधु समुद्रकूं शत्रुघ्न भुजानिकर तिरया चाहै है। सो कैसे तिरेगा? तथा मधुभूपति भयानक वन समान है ताविषै प्रवेशकर कौन जीवता निसरै?

कैसा है राजा मधुरूप वन? पयादे के समूह तेई हैं वृक्ष जहां, अर माते हाथिनिकर महा भयंकर, अर घोड़नि के समूह तेई हैं मृग जहां ये वचन मंत्रिनि के सुन कृतांतवक्र कहता भया – तुम साहस छोड़ ऐसे कायरता के वचन क्यों कहो हो? यद्यपि वह राजा मधु चमरेन्द्र कर दिया जो अमोद्य त्रिशूल ताकर अति गर्वित है तथापि ता मधु को शत्रुघ्न सुन्दर जीतेगा। जैसे हाथी महाबलवान है अर सूण्डकरि वृक्षनिकूं उपाड़े है, मद झरै है तथापि ताहि सिंह जीतै है। यह शत्रुघ्न लक्ष्मी अर प्रतापकरि मंडित है, महाबलवान है, शूरवीर है, महापंडित प्रवीण है, अर याके सहाई श्रीलक्ष्मण हैं। अर आप सब ही भले मनुष्य याके संग हैं, तातैं यह शत्रुघ्न अवश्य जीतेगा।

जब ऐसे वचन कृतांतवक्र ने कहे तब सब ही प्रसन्न भए, अर पहिले ही मंत्रीजननि ने जो मथुरा में हलकारे पठाये हुते ते आयकर सर्व वृत्तांत शत्रुघ्न से कहते भए।

हे देव! मथुरा नगरी की पूर्व दिशा कीओर अत्यन्त मनोग्य उपवन है तहां रणवास सहित राजा मधु रमै है। राजा के जयन्ती नाम पटराणी है ता सहित वनक्रीड़ा करै है जैसे स्पर्श इन्द्रिय के वश भया गजराज बन्धन विषै पड़े हैं, तैसैं राजा मोहित भया विषयनि के बन्धन विषै पड्या है, महाकामी। आज छठा दिन है कि सर्व राज्यकाज तज प्रमाद के वश भया वनविषै तिष्ठे है। कामान्ध मूर्ख तिहारे आगमकूं नाहीं जाने है, अर तुम ताके जीतवेकूं वांछा करी है ताकी ताहि सुध नाहीं। अर मंत्रिनि ने बहुत समझाया सो काहू की बात धारे नाहीं, जैसे मूढ़ रोगी वैद्य की औषध न घारै। इस समय मथुरा हाथ आवे तो आवे। अर कदाचित् मधु पुरीविषै धसा तो समुद्रसमान अथाह है। यह वचन हलकारों के मुख से शत्रुघ्न सुनकर कार्यविषै प्रवीण ताही समय बलवान योधानि के सहित दौड़कर मथुरा गया, अर्धरात्रि के समय सर्वलोक प्रमादी हुते, अर नगरी राजा रहित हुती, सो शत्रुघ्न नगरविषै जाय पैठा। जैसै योगी कर्म नाश कर सिद्धपुरीविषै प्रवेश करै, तैसैं शत्रुघ्न द्वारकूं चूरकर मथुराविषै प्रवेश करता भया।

मथुरा महामनोग्य है। तब बन्दीजननि के शब्द होते भये जो राजा दशरथ का पुत्र शत्रुघ्न जयवंत होहु। ये शब्द सुन के नगरी के लोक परचक्र का आगम जान अति व्याकुल भए। जैसैं लंका अंगद के प्रवेशकर अति व्याकुल हुती तैसैं मथुराविषै व्याकुलता भई। कई एक कायर हृदय की धरनहारी स्त्री हुतीं। तिनके भयकर गर्भपात होय गये, अर कई एक महाशूरवीर कलकलाट

शब्द सुन तत्काल सिंह की न्याईं उठे, शत्रुघ्न राजमन्दिर गया, आयुधशाला अपने हाथ कर लीनी अर स्त्री बालक आदि जे नगरी के लोक अति त्रासकूं प्राप्त भए तिनकूं महामधुर वचनकर धीर्य बंधाया जो यह श्रीरामका राज्य है यहां काहूकूं दुख नाहीं।

तब नगरी के लोक त्रासरहित भए अर शत्रुघ्न को मथुराविषै आया सुन राजा मधु महाकोपकर उपवनतैं नगरकूं आया, सो मथुराविषै शत्रुघ्न के सुभटों की रक्षा कर प्रवेश न कर सक्या जैसैं मुनि के हृदयविषै मोह प्रवेश न कर सके। नाना प्रकार के उपाय कर प्रवेश न पाया, अर त्रिशूल हू ते रहित भया तथापि महाभिमानी मधु ने शत्रुघ्न से संधि न करी, युद्ध हीकूं उद्यमी भया। तब शत्रुघन के योधा युद्धकूं निकसे। दोनों सेना समुद्रसमान, तिनविषै परस्पर युद्ध भया। रथनि के तथा हाथिन के तथा घोड़नि के असवार परस्पर युद्ध करते भए। पयादे भिड़े। नाना प्रकार के आयुधनि के धारक, महासमर्थ नानाप्रकार आयुधनि कर युद्ध करते भये। ता समय परसेना के गर्वकूं सहता संता कृतांत वक्र सेनापति परसेनाविषै प्रवेश करता भया, नाहीं निवारी जाय है गति जाकी, तहा रणक्रीड़ा करै है जैसे स्वयंभूरमण उद्यानविषै इन्द्र कीड़ा करै।

तब मधु का पुत्र लवणार्णवकुमार याहि देख युद्ध के अर्थि आया। अपने वाणनिरूप मेघकर कृतांतवक्र तारूप पर्वतकूं आच्छादित करता भया, अर कृतांतवक्र भी आशीविष तुल्य बाणनिकर ताके बाण छेदता भया अर धरती आकाशकूं अपने वाणनिकर व्याप्त करता भया। दोऊ महायोधा सिंह समान बलवान, गजनि पर चढ़े क्रोधसहित युद्ध करते भए। वानैं वाकूं रथरहित किया अर वाने वाकूं। बहुरि कृतांतवक्र ने लवणार्णव के वक्षस्थल विषै बाण लगाया अर ताका वखतर भेदा। तब लवणार्णव कृतांतवक्र ऊपर तौमर जाति का शस्त्र चलावता भया, क्रोधकर लाल हैं नेत्र जाके। दोनों घायल भए, रुधिर कर रंग रहे हैं वस्त्र जिनके। महा सुभटता के स्वरूप दोनों क्रोध कर उद्धत फूले टेसू के वृक्ष समान सोहते भए। गदा खड्ग चक्र इत्यादि अनेक आयुधनिकर परस्पर दोऊ महाभयंकर युद्ध करते भए। बल उन्माद विषाद के भरे बहुत बेर लग युद्ध भया। कृतांतवक्र ने लवणार्णव के वक्षस्थल विषै घाव किया, सो पृथ्वीविषै पड्या। जैसे पुण्य के क्षयतैं स्वर्गवासी देव मध्य लोकविषै आय पड़े। लवणार्णव प्राणान्त भया। तब पुत्रकूं पड़ा देख मधु कृतांतवक्र पर दौड़ा तब शत्रुघ्न ने मधुकूं रोक्या, जैसैं नदी के प्रवाहकूं पर्वत रोके। मधु महा दुस्सह शोक अर क्रोध का भरा युद्ध करता भया। सो आशीविष की दृष्टि समान मधु की दृष्टि शत्रुघ्न की सेना के लोक न संहार सकते भए। जैसैं उग्र पवन के योगतैं पत्रनि के समूह चलायमान होय तैसैं लोक चलायमान भए।

बहुरि शत्रुघ्नकूं मधु के सन्मुख जाता देख धीर्यकूं प्राप्त भए। शत्रु के भयकर लोक तबलग

ही डरैं जबलग अपने स्वामीकूं प्रबल न देखैं, अर स्वामीकूं प्रसन्नवदन देख धीर्यकूं प्राप्त होय। शत्रुघ्न उत्तम रथ पर आरूढ़, मनोग्य धनुष हाथविषै, सुन्दर हार कर शोभै है वक्षस्थल जाका, सिर पर मुकुट धरे, मनोहर कुण्डल पहिरे, शरद के सूर्य समान महातेजस्वी, अखण्डित है गति जाकी शत्रु के सन्मुख जाता अति सोहता भया, जैसैं गजराज पर जाता मृगराज सोहै। अर अग्नि सूखे पत्रनि को जलावै तैसैं मधु के अनेक योधा क्षणमात्रविषै विध्वंस किए। शत्रुघ्न के सन्मुख मधु का कोई योधा न ठहर सका, जैसैं जिनशासन के पंडित स्याद्वादी तिनके सन्मुख एकांतवादी न ठहर सकैं। जो मनुष्य शत्रुघ्नसूं युद्ध किया चाहे सो तत्काल विनाशकूं पावै, जैसैं सिंह के आगैं मृग।

मधु की समस्त सेना के लोक अति व्याकुल होय मधु के शरण आये। सो मधु महासुभट शत्रुघ्नकूं सन्मुख आवता देख शत्रुघ्न की ध्वजा छेदी अर शत्रुघ्न ने बाणनिकर ताके रथ के अश्व हते। तब मधु पर्वत समान जो वरुणेन्द्र गज तापर चढ्या, क्रोधकर प्रज्वलित है शरीर जाका शत्रुघ्नकूं निरन्तर बाणनिकर आच्छादने लगा, जैसैं महामेघ सूर्यकूं आच्छादे। सो शत्रुघ्न महा शूरवीर ने ताके बाण छेद डारे, मधु का बखतर भेदा। जैसैं अपने घर कोई पाहुना आवै अर ताकी भले मनुष्य भलीभांति पाहुनगति करैं तैसैं शत्रुघ्न मधु की रणविषै शस्त्रनिकर पाहुनगति करता भया।

अथानन्तर मधु महाविवेकी शत्रुघ्नकूं दुर्जय जान, आपकूं त्रिशूल आयुध से रहित जान, पुत्र की मृत्यु देख, अर अपनी आयु हू अल्प जान मुनि का वचन चितारता भया – अहो जगत का समस्त ही आरम्भ महा हिंसारूप दुख का देनहारा सर्वथा त्याज्य है। यह क्षणभंगुर संसार का चरित्र, तामैं मूढ़ जन राचै। या संसारविषै धर्म ही प्रशंसा योग्य है, अर अधर्म का कारण अशुभ कर्म प्रशंसा योग्य नाहीं। यह प्राप्तकर्म नरक निगोद का कारण है। जो दुर्लभ मनुष्य देहकूं पाय धर्मविषै बुद्धि नहीं धरे है सो प्राणी मोह कर्मकरि ठग्या अनन्त भव भ्रमण करै है। पापी ने संसार असारकूं सार, शरीरकूं ध्रुव जाना, आत्महित न किया। प्रमादविषै प्रवरता, रोग समान ये इन्द्रियनि के भोग भले जान भोगे, जब मैं स्वाधीन हुता तब मोहि सुबुद्धि न आई, अब अन्तकाल आया अब कहा करूं?

घर में आग लागी ता समय तालाब खुदवाना कौन अर्थ? अर सर्प ने डसा ता समय देशांतर से मंत्राधीश बुलवाने अर दूरदेश से मणि औषधि मंगवाना कौन अर्थ? तातैं अब सब चिंता तज, निराकुल होय, अपना मन समाधानविषै ल्याऊं। यह विचार वह धीरवीर घावकर पूर्ण हाथी चढ्या ही भावमुनि होता भया। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुनिकूं मनकरि वचनकरि कायकरि बारम्बार नमस्कार कर अर अरहंत सिद्ध साधु तथा केवली प्रणीत धर्म यही मंगल है, यही उत्तम है, इन्हीं का मेरे शरण है। अढ़ाई द्वीपविषै पंद्रह कर्मभूमि तिनविषै भगवान अरहंत देव होय हैं वे

त्रैलोक्यनाथ मेरे हृदयविषै तिष्ठो। मैं बारम्बार नमस्कार करूं हूं।

अब मैं यावज्जीव सब पाप योग तजे, चारों आहार तजे। जे पूर्व पाप उपार्जे हुते तिनकी निन्दा करूं हूं। अर सकल वस्तु का प्रत्याख्यान करूं हूं। आदिकालतैं या संसार वनविषै जो कर्म उपार्जे हुते ते मेरे दुःकृत मिथ्या होहु।

भावार्थ – मुझे फल मत देहु, अब मैं तत्त्वज्ञानविषै तिष्ठा, तजिवे योग्य जो रागादिक तिनकूं तजू हूं अर लेयवे योग्य जो निजभाव तिनकूं लेऊ हूं। ज्ञान दर्शन मेरे स्वभाव ही हैं, सो मोसे अभेद्य हैं। अर जे शरीरादि के समस्त परपदार्थ कर्म के संयोग कर उपजे ये मोसे न्यारे हैं। देह त्याग के समय संसारी लोक भूमि का तथा तृण का सांथरा करे हैं सो सांथरा नाहीं। यह जीव ही पाप बुद्धिरहित होय तब अपना आप ही सांथरा है।

ऐसा विचारकर राजा मधु ने दोनों प्रकार के परिग्रह भावों से तजे अर हाथी की पीठ पर बैठा ही सिर के केश लोंच करता भया, शरीर घावनिकर अतिव्याप्त है तथापि महा दुर्धर धीर्यकूं धरकरि अध्यात्मयोगविषै आरूढ़ होय काया का ममत्व तजता भया, विशुद्ध है बुद्धि जाकी। तब शत्रुघ्न मधु की परम शांत दशा देखि नमस्कार करता भया अर कहता भया – हे साधो! मो अपराधी के अपराध क्षमा करहु। देवनि की अप्सरा मधु का संग्राम देखनकूं आई हुती, आकाश से कल्पवृक्षनि के पुष्पों की वर्षा करती भईं। मधु का वीर रस शांतरस देख देव भी आश्‍चर्यकूं प्राप्त भए।

बहुरि मधु महाधीर एक क्षणमात्रविषै समाधि मरण कर महासुख के सागरविषै तीजे सनतकुमार स्वर्गविषै उत्कृष्ट देव भया। अर शत्रुघ्न मधु की स्तुति करता महा विवेकी मथुराविषै प्रवेश करता भया। जैसे हस्तिनागपुर विषै जयकुमार प्रवेश करता सोहता भया तैसा शत्रुघ्न मधुपुरीविषै प्रवेश करता सोहता भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे नराधिपति श्रेणिक! प्राणियों के या संसारविषै कर्मों के प्रसंगकरि नाना अवस्था होय हैं तातैं उत्तमजन सदा अशुभ कर्म तजकरि शुभकर्म करो, जाके प्रभावकरि सूर्य समान कांतिकूं प्राप्त होहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै मधु का युद्ध अर वैराग्य अर लवणार्णव का मरण वर्णन करने वाला नवासीवाँ पर्व संपूर्ण भया।।89।।

अथानन्तर सुरकुमारों के इन्द्र जो चमरेन्द्र महाप्रचंड तिनका दिया जो त्रिशूलरत्न मधु के हुता ताके अधिष्ठाता देव त्रिशूलकूं लेकर चमरेन्द्र के पास गए। अतिखेद खिन्न महालज्जावान होय मधु के मरण का वृत्तांत असुरेन्द्र कहते भए। तिनकी मधुसूं अतिमित्रता सो पाताल से निकसकरि

महाक्रोध के भरे मथुरा आयवेकूं उद्यमी भए। ता समय गरुड़ेन्द्र असुरेन्द्र के निकट आये अर पूछते भए – हे दैत्येंद्र! कौन तरफ गमनकूं उद्यमी भए? तब चमरेन्द्र ने कही – जाने मेरा मित्र मधु मास्या है ताहि कष्ट देवेकूं उद्यमी भया हूं।

तब गरुड़ेन्द्र ने कही – कहा विशिल्या का माहात्म्य तुमने न सुण्या है? तब चमरेन्द्र कही वह अद्‌भुत अवस्था विशिल्या की कुमार अवस्थाविषै ही हुती अर अब तो निर्विष भुजंगी समान है। जौंलग विशिल्या ने वासुदेव का आश्रय न किया हुता तौंलग ब्रह्मचर्य के प्रसादतैं असाधारण शक्ति हुती, अब वह शक्ति विश्ल्यािविषै नाहीं। जे निरतिचार बालब्रह्मचर्य धारे तिनके गुणनि की महिमा कहिवेविषै न आवै। झील के प्रसादकरि सुर असुर पिशाचादि सब डरें। जौंलग शीलरूप खड्गकूं धारें तौंलग सबकर जीत्या न जाय, महादुर्जय है।

अब विशल्या पतिव्रता है, व्यभिचारिणी नाहीं तातैं वह शक्ति नाहीं। मद्यमांस मैथुन यह महापाप हैं। इनके सेवन से शक्ति का नाश होय है। जिनका व्रतशील नियमरूप कोट भग्न न भया तिनकूं कोई विघ्न करवे समर्थ नाहीं। एक कालाग्नि नाम रुद्र महा भयंकर भया सो हे गरुड़ेन्द्र! तुम सुना ही होयगा। बहुरि वह स्त्रीसूं आसक्त होय नाशकूं प्राप्त भया। तातैं विषय का सेवन विष से भी विषम है। परम आश्चर्य का कारण एक अखंड ब्रह्मचर्य है। अब मैं मित्र के शत्रु पै जाऊंगा, तुम तिहारे स्थानक जावहु। ऐसा गरुड़ेन्द्र कहकर चमरेन्द्र मथुरा आए, मित्र के मरणकरि कोपरूप मथुराविषै वही उत्सव देख्या जो मधु के समय हुता। तब असुरेन्द्र विचारी – ये लोक महादुष्ट कृतघ्न हैं, देश का धनी पुत्र सहित मर गया है, अर अन्य आय बैठ्या है, इनकूं शोक चाहिए कि हर्ष? जाके भुजा की छाया पाय बहुतकाल सुखसूं बसे ता मधु की मृत्यु का दुख इनकूं क्यों न भया? ये महा कृतघ्न हैं, सो कृतघ्न का मुख न देखिये। लोकनिकरि शूरवीर सेवायोग्य, शूरवीरनिकर पण्डित सेवा योग्य है। सो पण्डित कौन? जो पराया गुण जानै। सो ये कृतघ्न महामूर्ख है।

ऐसा विचारकर मथुरा के लोकनि पर चमरेन्द्र कोप्या, इन लोकों का नाश करूं। यह मथुरापुरी या देशसहित क्षय करूं। महाक्रोध के वश होय असुरेन्द्र लोकनिकूं दुस्सह उपसर्ग करता भया, अनेक रोग लोकनिकूं लगाए। प्रलयकारी की अग्नि समान निर्दई होय लोकरूप वनकूं भस्म करवेकूं उद्यमी भया। जो जहां ऊभा हुता सो वहां ही मर गया, अर बैठ्या हुता सो बैठा ही रह गया। सूता था सो सूता ही रह गया। मर पड़ी, लोककूं उपसर्ग देख, मित्र देव देवता के भय से शत्रुघ्न अयोध्या आया। सो जीतकर महाशूरवीर भाई आया बलभद्र नारायण अति हर्षित भए, अर शत्रुघ्न की माता सुप्रभा भगवान की अद्‌भुत पूजा करावती भई। अर दुखी जीवनकूं करुणाकर, अर धर्मात्मा जीवनिकूं अति विनयकर अनेक प्रकार दान देती भई। यद्यपि अयोध्या

महा सुन्दर है, स्वर्णरत्ननि के मंदिरनिकर मंडित है, कामधेनु समान सर्व कामना पूरणहारी देवपुरी समान पुरी है तथापि शत्रुघ्न का जीव मथुरासूं अति आसक्त, सो अयोध्याविषै अनुरागी न होता भया। जैसैं कई एक दिन सीता बिना राम उदास रहे तैसैं शत्रुघ्न मथुरा बिना अयोध्याविषै उदास रहै। जीवोंकूं सुन्दर वस्तु का संयोग स्वप्न समान क्षणभंगुर है, परमदाहकूं उपजावै है, ज्येष्ठ के सूर्य से हू अधिक आतापकारी है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै मथुरा के लोकनिकूं असुरेन्द्रकृत उपसर्ग का वर्णन करने वाला नव्वेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।90।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामी सूं पूछता भया – हे भगवन्! कौन कारण कर शत्रुघ्न मथुरा हीकूं याचता भया। अयोध्याहूतैं ताहि मथुरा का निवास अधिक क्यों रुचा? अनेक राजधानी स्वर्गलोक समान जो न वांछी अर मथुरा ही वांछी, ऐसी मथुरासूं कहा प्रीति?

तब गौतम स्वामी भी ज्ञान के समुद्र, सकल सभारूप नक्षत्रनि के चन्द्रमा, कहते भए – हे श्रेणिक! इस शत्रुघ्न के अनेक भव मथुराविषै भए तातैं याकूं मधुपुरीसूं अधिक स्नेह भया। यह जीव कर्मनि के सम्बन्धतैं अनादिकाल का संसार सागर विषै बसै है सो अनन्त भव धरै। यह शत्रुघ्न का जीव अनन्त भव भ्रमणकरि मथुराविषै एक यमनदेव नामा मनुष्य भया। महाक्रूर, धर्म से विमुख सो मरकरि शूकर खर काग ये जन्म धरि अज – पुत्र भया सो अग्निविषै जल मूवा। भैंसा जल के लादने का भया सो छै बार भैंसा होय दुखसूं मूवा। नीचकुलविषै निर्धन मनुष्य भया।

हे श्रेणिक! महापापी तो नरककूं प्राप्त होय है अर पुण्यवान जीव स्वर्ग विषै देव होय है, अर शुभाशुभमिश्रित करि मनुष्य होय हैं। बहुरि यह कुलन्धरनामा ब्राह्मण भया, रूपवान अर शील रहित। सो एक समय नगर का स्वामी दिग्विजय निमित्त देशांतर गया ताकी ललिता नाम राणी महल के झरोखा विषै तिष्ठे हुती सो पापिनी इस दुराचारी विप्रकूं देख कामबाण कर वेधी गई। सो यहि महलविषै बुलाया। एक आसन पर राणी अर यह रहे। ताही समय राजा दूरू का चल्या अचानक आया अर याहि महलविषै देख्या सो राणी मायाचार कर कही – जो यह बंदीजन है, भिक्षुक है तथापि राजा ने न मानी। राजा के किंकर ताहि पकड़कर नृप की आज्ञातैं आठों अंग दूर करवे के अर्थ नगर के बाहिर ले जाते हुते। सो कल्याणनामा साधु ने देख कही जो तू मुनि होय तो तोहि छुड़ावैं। तब यानैं मुनि होना कबूल किया। तब किंकरनि से छुड़ाया सो मुनि होय महातपकरि स्वर्गविषै ऋतु विमान का स्वामी देव भया। हे श्रेणिक! धर्म से कहा न होय?

अथानन्तर मथुराविषै चन्द्रभद्र राजा, ताके राणी धारा, ताके भाई सूर्यदेव, अग्निदेव, यमुना

देव। अर आठ पुत्र, तिनके नाम श्रीमुख, संमुख, इन्द्रमुख, प्रमुख, उग्रमुख, अर्कमुख, परमुख। अर राजा चन्द्रभद्र के दूजी राणी कनकप्रभा ताकूं वह कुलन्धर नामा ब्राह्मण का जीव स्वर्गविषै देव होय तहांतैं चयकर अचल नाम पुत्र भया सो कलावान अर गुणनिकर पूर्ण, सर्व लोक के मन का हरणहारा, देव कुमार तुल्य क्रीड़ाविषै उद्यमी होता भया।

अथानन्तर एक अंकनामा मनुष्य धर्म की अनुमोदना कर श्रावस्ती नगरीविषै एक कम्पनाम पुरुष ताके अंगिका नामा स्त्री उसके अप नामा पुत्र भया सो अविनयी, तब कम्प ने अपकूं घर से निकास दिया सो महादुखी भूमिविषै भ्रमण करै। अर अचलनामा कुमार पिताकूं अतिवल्लभ, सो अचल कुमार की बड़ी माता धरा उसके तीन भाई अर आठ पुत्र, तिन्होंने एकांत में अचल के मारणे का मंत्र किया सो यह वार्ता अचल कुमार की माता ने जानी। तब पुत्रकूं भगाय दिया। सो तिलकवनविषै उसके पांवविषै कांटा लाग्या सो कम्प का पुत्र अप काष्ठ का भार लेकर आवे सो अचलकुमारकूं कांटे के दुखसूं करुणावंत देख्या। तब अपने काष्ठ का भार मेल छुरी से कुमार का कांटा काढ़ कुमारकूं दिखाया सो कुमार अति प्रसन्न भया अर अपकूं कहा – तू मेरा अचल कुमार नाम याद रखियो। अर मोहि भूपति सुने वहां मेरे निकट आइयो।

इस भांति कह अपकूं विदा किया सो अप गया। अर राजपुत्र महादुखी कौशांबी नगरी के विषै आया, महापराक्रमीसों बाण विद्या का गुरु जो विशिखाचार्य उसे जीतकर प्रतिष्ठा पाई हुती सो राजा ने अचल कुमारकूं नगरविषै ल्यायकर अपनी इन्द्रदत्ता नामा पुत्री परणाई। अनुक्रमकरि पुण्य के प्रभाव सै राज पाया, सो अंगदेश आदि अनेक देशनिकूं जीतकर महाप्रतापी मथुरा आया, नगर के बाहिर डेरा दिया, बड़ी सेना साथ। सब सामन्तों ने सुन्या कि यह राजा चन्द्रभद्र का पुत्र अचल कुमार है सो सब आय मिले। राजा चन्द्रभद्र अकेला रह गया।

तब राणी धरा के भाई सूर्यदेव अग्निदेव यमुनादेव इनकूं संधि करने ताई भेजे सो ये जायकर कुमारकूं देख बिलखे होय भागे, अर धरा के आठ पुत्र हू भाग गए। अचलकुमार की माता आय पुत्रकूं ले गई पितासूं मिलाया, पिता ने याकूं राज्य दिया। एक दिन राजा अचल कुमार नटों का नृत्य देखे था ताही समय अप आया, जाने इसका वनविषै कांटा काढ़ा था। सो ताहि दरबान धक्का देय काढ़े हुते सो राजा ने मने किए, अर अपकूं बुलाया, बहुत कृपा करी अर जो वाकी जन्मभूमि श्रावस्ती नगरी हुती सो ताहि दई। अर ये दोनों परममित्र भेले ही रहें। एक दिवस महासंपदा के भरे उद्यानविषै क्रीड़ाकूं गये सो यशसमुद्र आचार्य को देखकरि दोनों मित्र मुनि भये। सम्यक्दृष्टि परमसंयमकूं आराध, समाधिमरण कर स्वर्गविषै उत्कृष्ट देव भये। तहां से चयकर अचलकुमार का जीव राजा दशरथ के यह शत्रुघ्न पुत्र भया। अनेक भव के सम्बन्धसूं याकी

मथुरासूं अधिक प्रीति भई।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! वृक्ष की छाया जो प्राणी बैठ्या होय तो ता वृक्षसूं प्रीति होय है। जहां अनेक भव धरै तहां की कहा बात? संसारी जीवनि की ऐसी अवस्था है। अर वह अप का जीव स्वर्गतैं चयकर कृतांतवक्र सेनापति भया। या भांति धर्म के प्रसादतैं ये दोनों मित्र सम्पदाकूं प्राप्त भये।

अर जे धर्म से रहित हैं तिनके कबहूं सुख नाहीं। अनेक भव के उपार्जे दुखरूप मल तिनके धोयवेकूं धर्म का सेवन ही योग्य है, अर जल के तीर्थनिकरि मन का मैल नाहीं धुवै हैं। धर्म के प्रसादतैं शत्रुघ्न का जीव सुखी भया। ऐसा जानकर विवेकी जीव धर्मविषै उद्यमी होवो। धर्मकूं सुनकर जिनकी आत्मकल्याणविषै प्रीति नाहीं होय है तिनका श्रवण वृथा है, जैसैं जो नेत्रवान सूर्य के उदयविषै कूपविषै पड़े तो ताके नेत्र वृथा हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै शत्रुघ्न के पूर्वभव का वर्णन करने वाला इक्याणवाँ पर्व संपूर्ण भया।।91।।

अथानन्तर आकाशविषै गमन करणहारे सप्त चारण ऋषि सप्त सूर्य समान है कांति जिनकी सो विहार करते निर्ग्रंथ मुनीन्द्र मथुरापुरी आये। तिनके नाम सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस, सजलमित्र। ये सब ही महाचरित्र के पात्र, अति सुन्दर, राजा श्रीनन्दन, राणी धरणी सुन्दरी के पुत्र, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध। पिता सहित प्रीतंकर स्वामी का केवलज्ञान देख प्रतिबोधकूं प्राप्त भये थे। पिता अर प्रीतंकर केवली के निकट मुनि भये अर एक महिने का बालक तुंवरु नामा पुत्र ताकूं राज्य दिया। पिता श्रीनन्दन तो केवली भया अर ये सातों महामुनि चारण ऋद्धि आदि अनेक ऋद्धि के धारक श्रुतकेवली भये।

सो चातुर्मासिक विषै मथुरा के वनविषै बट के वृक्ष तलै आय विराजे। तिनके तप के प्रभावकरि चमरेन्द्र की प्रेरी मरी दूर भई, जैसे श्वसुरकूं देखकर व्यभिचारिणी नारी दूर भागै। मथुरा का समस्त मण्डल सुखरूप भया, बिना बाहे धान्य सहज ही उगे, समस्त रोगनिसूं रहित मथुरापुरी ऐसी शोभती भई जैसैं नई वधू पतिकूं देखकर प्रसन्न होय। वह महामुनि रसपरित्यागादि तप अर बेला तेला पक्षोपवासादि अनेक तप के धारक, जिनकूं चार महीना चौमासे रहना तो मथुरा के वनविषै, अर चारणऋद्धि के प्रभावतैं चाहे जहां आहार कर आवें। सो एक निमिष मात्रविषै आकाश के मार्ग होय पोदनापुर पारणा कर आवैं, बहुरि विजयपुर कर आवै। उत्तम श्रावक के घर पात्र भोजन कर संयम निमित्त शरीरकूं राखें। कर्म के खिपायवेकूं उद्यमी। एक दिन वे धीर वीर महाशान्त भाव के धारक जूड़ा प्रमाण धरती देख विहार कर ईर्या समिति के पालनहारे आहार के

समय अयोध्या आये। शुद्ध भिक्षा के लेनहारे, प्रलंबित हैं महाभुजा जिनकी, अर्हद्दत्त सेठ के घर आय प्राप्त भए।

तब अर्हद्दत्त ने विचारी वर्षाकालविषै मुनि का विहार नाहीं, ये चौमासा पहिले तो यहां आये नाहीं। अर मैं यहां जे जे साधु विराजे हैं, गुफा में, नदी के तीर, वृक्षतलैं, शून्य स्थानकविषै, वन के चैत्यालयनिविषै, जहां जहां चौमासा साधु तिष्ठे हैं, वे मैं सर्व बंदे। यह तो अब तक देखे नाहीं। ये आचारांग सूत्र की आज्ञा से पराङ्मुख इच्छाबिहारी हैं, वर्षाकालविषै भी भ्रमते फिरै हैं, जिन आज्ञा पराङ्मुख ज्ञानरहित, निराचारी, आचार्य की आम्नाय से रहित हैं। जिन आज्ञा पालक होय तो वर्षाविषै विहार क्यों करै? सो यह तो उठ गया, अर याके पुत्र की वधू ने अति भक्ति कर प्रासुक आहार दिया। सो मुनि आहार लेय भगवान के चैत्यालय आय जहां द्युतिभट्टारक विराजते हुए थे सप्तऋषि ऋद्धि के प्रभावकर धरती से चार अंगुल अलिप्त चले आए अर चैत्यालयविषै धरती पर पग धरते आए। आचार्य उठ खड़े भए, अति आदर से इनकूं नमस्कार किया। अर जे द्युतिभट्टारक के शिष्य हुते तिन सबने नमस्कार किया।

बहुरि ये सप्त तो जिन वन्दनाकरि आकाश के मार्ग मथुरा गए। इनके गए पीछे अर्हद्दत्त सेठ चैत्यालयविषै आया। तब द्युतिभट्टारक ने कही – सप्त महर्षि महायोगीश्वर चारणमुनि यहां आए हुते, तुमने हूं वह बंदे हैं? वे महापुरुष तप के धारक हैं, चार महिने मथुरा निवास किया है, अर चाहें जहां अहार ले जांय। आज अयोध्याविषै अहार लिया, चैत्यालय दर्शन कर गए, हमसे धर्मचर्चा करी, वे महा तपोधन नगरगामी शुभ चेष्टा के धरणहारे, परम उदार, ते मुनि बन्दिवे योग्य हैं।

तब वह श्रावकनिविषै अग्रणी आचार्य के मुखसूं चारण मुनिनि की महिमा सुनकर खेदखिन्न होय पश्चाताप करता भया। धिक्कार मोहि मैं सम्यक्दर्शन रहित वस्तु का स्वरूप न पिछान्या मैं अत्याचारी मिथ्यादृष्टि, मो समान और अधर्मी कौन? वे महामुनि मेरे मन्दिर आहारकूं आए अर मैं नवधा भक्तिकर आहार न दिया। सो साधुकूं देख सन्मान न करै अर भक्तिकर अन्न-जल न देय सो मिथ्यादृष्टि है। मैं पापी, पापात्मा, पाप का भाजन, महानिंद्य, मो समान और अज्ञानी कौन? मैं जिनवाणी से विमुख। अब मैं जौंलग उनका दर्शन न करूं तौंलग मेरे मन का दाह न मिटे। चारण मुनिनि की तो यही रीति है – चौमासे निवास तो एक स्थान करैं आहार अनेक नगरीविषै कर आवैं। चारण ऋद्धि के प्रभावकरि उनके अंग से जीवनिकूं बाधा न होय।

अथानन्तर कार्त्तिक की पूनों नजीक जान सेठ अर्हद्दत्त महासम्यक्दृष्टि नृपतुल्य विभूति जाके, अयोध्यातैं मथुराकूं सर्वकुटुम्ब सहित सप्तऋषि के पूजन निमित्त चाल्या। जाना है मुनिनि का माहात्म्य जाने, अर अपनी बारम्बार निन्दा करै है। रथ हाथी पियादे तुरंगनि के असवार

इत्यादि बड़ी सेना सहित योगीश्वरनि की पूजाकूं शीघ्र ही चाल्या। बड़ी विभूति कर युक्त शुभ ध्यानविषै तत्पर कार्तिक सुदी सप्तमी के दिन मुनिनि के चरणविषै जाय पहुंचा। वह उत्तम सम्यक्त्व का धारक विधिपूर्वक मुनि वन्दना कर मथुराविषै अति शोभा करावता भया। मथुरा स्वर्ग समान सोहती भई।

यह वृत्तांत सुन शत्रुघ्न शीघ्र ही महातुरंग चढ्या सप्तऋषिनि के निकट आया अर शत्रुघ्न की माता सुप्रभा भी मुनिनि की भक्ति कर पुत्र के पीछे ही आई। अर शत्रुघ्न नमस्कार कर मुनिनि के मुख धर्म श्रवण करता भया। मुनि कहते भए, हे नृप! यह संसार असार है, वीतराग का मार्ग सार है, जहां श्रावक के बारह व्रत कहे, मुनि के अठाईस मूलगुण कहे। मुनीनिकूं निर्दोष आहार लेना। अकृत अकारित रागरहित प्रासुक आहार विधिपूर्वक लीये योगीश्वरों के तप की बढ़वारी होय। तब वह शत्रुघ्न कहता भया – हे देव! आपके आये या नगरतैं मरी गई, रोग गए, दुर्भिक्ष गया, सब विघ्न गए, सुभिक्ष भया, सब साता भई, प्रजा के दुख गए, सब समृद्धि भई, जैसे सूर्य के उदयतैं कमलनी फूलै, कई एक दिन आप यहां ही तिष्ठो।

तब मुनि कहते भए – हे शत्रुघ्न! जिन आज्ञा सिवाय अधिक रहना उचित नाहीं। यह चतुर्थकाल धर्म के उद्योत का कारण है। याविषै मुनीन्द्र का धर्म भव्यजीव धारै हैं, जिन आज्ञा पालै हैं, महामुनि के केवलज्ञान प्रकट होय है। मुनिसुव्रतनाथ तो मुक्त भए, अब नमि, नेमि, पार्श्व, महावीर चार तीर्थंकर और होवेंगे।

बहुरि पंचमकाल जाहि दुखमाकाल कहिये सो धर्म की न्यूनता रूप प्रवर्तेगा। ता समय पाखंडी जीवनिकर जिनशासन अति ऊंचा है तोहू आच्छादित होयगा, जैसैं रजकर सूर्य का बिंब आच्छादित होय पाखंडी निर्दई दया धर्मकूं लोपकर हिंसा का मार्ग प्रवर्तन करेंगे। ता समय मसान समान ग्राम, अर प्रेत समान लोक, कुचेष्टा के करणहारे होवेंगे, महाकुधर्मविषै प्रवीण क्रूर चोर पाखंडी, दुष्ट जीव तिनकर पृथ्वी पीड़ित होयगी। किसान दुखी होवेंगे, प्रजा निर्धन होयगी, महाहिंसक जीव परजीवन के घातक होवेंगे, निरन्तर हिंसा की बढ़वारी होयगी, पुत्र माता पिता की आज्ञा से विमुख होवेंगे, अर माता पिता हू स्नेह रहित होवेंगे। अर कलिकालविषै राजा लुटेरे होवेंगे, कोई सुखी नजर न आवेगा। कहिवे के सुखी वे पापचित्त दुर्गति की दायक, कुकथा कर परस्पर पाप उपजावेंगे।

हे शत्रुघ्न! कलिकालविषै कषाय की बहुलता होवेगी, अर अतिशय समस्त विलय जावेंगे। चारण मुनि, देव, विद्याधरनि का आवना न होयगा। अज्ञानी लोक नग्न मुद्रा के धारक मुनिनकूं

देख निन्दा करेंगे, मलिन चित्त मूढ़ जन अयोग्य को योग्य जानेंगे। जैसे पतंग दीपक की शिखाविषै पड़े तैसे अज्ञानी पापपंथविषै पड़ दुर्गति के दुख भोगेंगे। अर जे महाशांत स्वभाव तिनकी दुष्ट निंदा करेंगे, विषयी जीवनिकूं भक्तिकर पूजेंगे। दीन अनाथ जीवनिकूं दया भावकर कोई न देवेगा, सो वृथा जायगा। जैसे शिलाविषै बीज बोय निरन्तर सींचे तो हु कछु कार्यकारी नाहीं, जैसे कुशील पुरुषनिकूं विनय भक्तिकर दीया कल्याणकारी नहीं। जो कोई मुनिन की अवज्ञा करै है अर मिथ्या मार्गियोंकूं भक्तिकर पूजै है सो मलयागिरिचन्दनकूं तजकर कंटकवृक्षकूं अंगीकार करै है।

ऐसा जानकर हे वत्स! तू दान पूजाकरि जन्म कृतार्थ कर, गृहस्थीकूं दान पूजा ही कल्याण की है, अर समस्त मथुरा के लोक धर्मविषै तत्पर होवो, दया पालो, साधर्मियों से वात्सल्य धारो, जिनशासन की प्रभावना करहु, घर घर जिनबिंब थापहु, पूजा अभिषेक की प्रवृत्ति करहु, जाकरि सब शांति हो, जो जिन धर्म का आराधन न करेगा अर जाके घरविषै जिन पूजा न होयगी, दान न होवेगा ताहि आपदा पीड़ेगी। जैसे मृगकूं व्याघ्री भखै तैसे धर्म रहितकूं मरी भखैगी। अंगुष्ठ प्रमाण हू जिनेन्द्र की प्रतिमा जिसके विराजेगी उसके घरविषै मरी यू भाजेगी जैसे गरुड़ के भय से नागिनी भागे। ये वचन मुनिनि के सुन शत्रुघ्न ने कही – हे प्रभो! जो आप आज्ञा करी त्यों ही लोक धर्मविषै प्रवर्तैंगे।

अथानन्तर मुनि आकाशमार्ग विहार कर अनेक निर्वाण भूमि बंदकरि सीता के आहारकूं आये। कैसे हैं मुनि? तप ही है धन जिनके। सीता महाहर्षकूं प्राप्त होय श्रद्धा आदि गुणोंकरि मंडित परम अन्नकर विधिपूर्वक पारणा करावती भई। मुनि आहार लेय आकाश के मार्ग विहार कर गए। शत्रुघ्न ने नगरी के बाहिर अर भीतर अनेक जिनमन्दिर कराए। घर अर जिनप्रतिमा पधराईं, नगरी सब उपद्रवरहित भई। वन उपवन फल पुष्पादिक कर शोभित भए, वापिका सरोवरी कमलों कर मंडित सोहती भई, पक्षी शब्द करते भए, कैलाश के तटसमान उज्ज्वल मन्दिर नेत्रोंकूं आनन्दकारी विमान तुल्य सोहते भए, अर सर्व किसाण लोक सम्पदा कर भरे सुखसूं निवास करते भए। गिरि के शिखर समान ऊंचे अनाजों के ढेर गावोंविषै सोहते भए। स्वर्ण रत्नादिक की पृथ्वीविषै विस्तीर्णता होती भई। सकल लोक सुखी, राम के राज्यविषै देवों समान अतुल विभूति के धारक, धर्म अर्थ कामविषै तत्पर होते भए।

शत्रुघ्न मथुराविषै राज्य करै। राम के प्रताप से अनेक राजावों पर आज्ञा करता सोहै, जैसैं देवीविषै वरुण सोहे। या भांति मथुरापुरी का ऋद्धि के धारी मुनिन के प्रतापकरि उपद्रव दूर होता भया।

जो यह अध्याय बांचे सुने सो पुरुष – शुभनाम शुभ गोत्र शुभ साता वेदनीय का बंध करै।

जो साधुवों की भक्तिविषै अनुरागी होय अर साधुवों का समागम चाहे वह मनवांछित फलकूं प्राप्त होय। या साधुवों के संगकूं पायकरि धर्मकूं आराधकर प्राणी सूर्य से भी अधिक दीप्तिकूं प्राप्त होहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै मथुरा का उपसर्ग निवारण वर्णन करने वाला बानवेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।92।।

अथानन्तर विजयार्ध की दक्षिण श्रेणीविषै रत्नपुर नामा नगर, वहां राजा रत्नरथ, उसकी राणी पूर्णचन्द्रानना, उसके पुत्री मनोरमा महा रूपवती। उसे यौवनवती देख राजा वर ढूंढवे की बुद्धिकर व्याकुल भया। मंत्रियोंसूं मंत्र किया कि यह कुमारी कौनकूं परणाऊं? या भांति राजा चिंतायुक्त। कई एक दिन गए एक दिन राजा की सभाविषै नारद आया। राजा ने बहुत सन्मान किया। नारद सब ही लौकिक रीतियोंविषै प्रवीण, उसे राजा ने पुत्री के विवाहने का वृत्तांत पूछ्या। तब नारद ने कही राम का भाई लक्ष्मण महा सुन्दर है, जगतविषै मुख्य है, चक्र के प्रभावकर नवाए हैं समस्त नरेन्द्र जिसने, ऐसी कन्या उसके हृदयविषै आनन्ददायिनी होवे, जैसे कुमुदनी के वनकूं चांदनी आनन्ददायिनी हो। जब या भांति नारद ने कही तब रत्नरथ के पुत्र हरिवेग मनोवेग वायुवेगादि महामानी स्वजनों के घातकर उपज्या है वैर जिनके, प्रलयकाल की अग्नि समान प्रज्वलित होय कहते भए - जो हमारा शत्रु, जिसे हम मारा चाहें उसे कन्या कैसैं देवें? यह नारद दुराचारी है, इसे यहां से काढहु।

ऐसे वचन राजपुत्रों के सुन किंकर नारद पर दौड़े तब नारद आकाशमार्ग से विहार कर शीघ्र ही अयोध्या लक्ष्मण पै आया। अनेक देशांतर की वार्ता कह रत्नरथकी पुत्री मनोरमा का चित्राम दिखाया, सो वह कन्या तीन लोक की सुन्दरियों का रूप एकत्र कर मानों बनाई है। सो लक्ष्मण चित्रपट देख अति मोहित होय काम के वश भया। यद्यपि महा धीर वीर है तथापि वशीभूत होय गया। मनविषै विचारता भया जो यह स्त्रीरत्न मुझे न प्राप्त होय तो मेरा राज्य निष्फल अर जीतव्य वृथा। लक्ष्मण नारदसूं कहता भया - हे भगवन्! आपने मेरे गुणकीर्तन किये, अर उन दुष्टों ने आपसूं विरोध किया, सो वे पापी प्रचण्ड मानी, महा क्षुद्र, दुरात्मा, कार्य के विचारसूं रहित हैं उनका मान मैं दूर करूंगा। आप समाधानविषै चित्त लावो। तिहारे चरण मेरे सिर पर हैं अर उन दुष्टनिकूं तिहारे पायन पाडूंगा। ऐसा कहकर विराधित विद्याधरकूं बुलाया अर कही रत्नपुर ऊपर हमारी शीघ्र ही तैयारी है। तातैं पत्र लिख विद्याधरनिकूं बुलावो, रण का सरंजाम करावो।

तब विराधित ने सबनिकूं पत्र पठाये। वे महासेना सहित शीघ्र ही आए। लक्ष्मण राम सहित सर्व नृपोंकूं लेकर रत्नपुर की तरफ चाले, जैसे लोकपालों सहित इन्द्र चाले। जीत जिसके सन्मुख है, नाना प्रकार के शस्त्रों के समूहकर आच्छादित करी हैं सूर्य की किरण जाने, सो रत्नपुर जाय

पहुंचे, उज्ज्वल छत्रकर शोभित। तब राजा रत्नरथ परचक्र आया जान अपनी समस्त सेनासहित युद्धकूं निकस्या महातेजकर, सो चक्र करोत कुठार बाण खड्ग बरछी पाश गदादि आयुधनिकर तिनके परस्पर महायुद्ध भया। अप्सराओं के समूह युद्ध देख योधावों पर पुष्पवृष्टि करते भए। लक्ष्मण पर सेनारूप समुद्र के सोखिवेकूं बड़वानल समान आप युद्ध करनेकूं उद्यमी भया। परचक्र के योधारूप जलचरों के क्षय का कारण, सो लक्ष्मण के भयकर रथों के, तुरंगों के, हाथियों के, असवार सब दशों दिशाओंकूं भागे, अर इन्द्र समान है शक्ति जिनकी, ऐसे श्रीराम अर सुग्रीव हनुमान इत्यादि सब ही युद्धकूं प्रवरते। इन योधाओं कर विद्याधरों की सेना ऐसे भागी जैसे पवनकर मेघ पटल विलाय जावैं।

तब रत्नरथ के पुत्रोंकूं भागते देख नारद ने परम हर्षित होय ताली देय हंसकर कहा – अरे रत्नरथ के पुत्र हो! तुम महाचपल, दुराचारी, मंदबुद्धि, लक्ष्मण के गुणों की उच्चता न सह सके तो अब अपमानकूं पाय क्यों भागो हो? तब उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। उसी समय मनोरमा कन्या अनेक सखियों सहित रथ पर चढ़कर महाप्रेम की भरी लक्ष्मण के समीप आई जैसैं इन्द्राणी इन्द्र के समीप आवै। उसे देख कर लक्ष्मण क्रोधरहित भए, भुकुटि चढ़ रही थी सो शीतल वदन भए। कन्या आनन्द की उपजावन हारी। तब राजा रत्नरथ अपने पुत्रों सहित मान तज नाना प्रकार की भेंट लेकर श्री राम लक्ष्मण के समीप आया। राजा देश काल की विधिकूं जानै है अर देखा है अपना अर इनका पुरुषार्थ जिसने।

तब नारद सबके बीच रत्नरथकूं कहते भए – हे रत्नरथ! अब तेरी कहा वार्ता तू रत्नरथ है कि रजरथ है? वृथा मान करै हुता सो नारायण बलदवों से मान कर कहा? अर ताली बजाय रत्नरथ के पुत्रों से हंसकर कहता भया – हो रत्नरथ के पुत्र हो! यह वासुदेव जिनकूं तुम अपने घरविषै उद्धत चेष्टा रूप होय मनविषै आया सो ही कही, अब पायन क्यों पड़ो हो?

तब वे कहते भए – हे नारद! तिहारा कोप भी गुण करै, जो तुम हमसे कोप किया तो बड़े पुरुषों का सम्बन्ध भया। इनका सम्बन्ध दुर्लभ है। या भांति क्षणमात्र वार्ता करि सब नगरविषै गए। श्रीरामकूं श्रीदामा परणाई, रति समान है रूप जाका। उसे पायकर राम आनन्द से रमते भए। अर मनोरमा लक्ष्मणकूं परणाई सो साक्षात् मनोरमा ही है। या भांति पुण्य के प्रभावकरि अद्भुत वस्तु की प्राप्ति होय है। तातैं भव्यजीव सूर्य से अधिक प्रकाशरूप जो वीतराग का मार्ग उसे जानकर दया धर्म की आराधना करहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै रामकूं श्रीदामा का लाभ अर लक्ष्मणकूं मनोरमा का लाभ वर्णन करने वाला तिराणवेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।93।।

अथानन्तर और भी विजयार्ध के दक्षिण श्रेणीविषै विद्याधर हुते वे सब लक्ष्मण ने युद्धकर जीते। कैसा है युद्ध? जहां नाना प्रकार के शस्त्रों के प्रहारकरि, अर सेना के संघट्टकर अंधकार होय रहा है।

गौतम स्वामी कहे हैं – हे श्रेणिक! वे विद्याधर अत्यन्त दुस्सह महाविषधर समान हुते सो सब राम लक्ष्मण के प्रतापकर मनरूप विष से रहित होय गए, इनके सेवक भए। तिनकी राजधानी देवों की पुरी समान, तिनके नाम कईएक तुझे कहूं हूं – रविप्रभ, घनप्रभ, कांचनप्रभ, मेघप्रभ, शिवमन्दिर, गंधर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरपुर, मेघकूट, मर्त्यगति, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, श्रीमलय, श्री गृह, अरिंजय, भास्करप्रभ, ज्योतिपुर, चन्द्रपुर, गंधार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, भद्रपुर, यक्षपुर, तिलक, स्थानक इत्यादि बड़े बड़े नगर सो सब राम लक्ष्मण ने वश में किए।

सब पृथ्वीकूं जीत सप्त रत्नकर सहित लक्ष्मण नारायण के पद का भोक्ता होता भया। सप्त रत्नों के नाम चक्र, शंख, धनुष, शक्ति, गदा, खड्ग, कौस्तुभमणि। अर राम के चार हल, मूसल, रत्नमाला, गदा। या भांति दोनों भाई अभेदभाव पृथ्वी का राज्य करै।

तब श्रेणिक गौतम स्वामीकूं पूछता भया – हे भगवन्! तिहारे प्रसाद से मैं राम लक्ष्मण का माहात्म्य विधिपूर्वक सुन्या। अब लवण अंकुश की उत्पत्ति अर लक्ष्मण के पुत्रों का वर्णन सुना चाहूं हूं, सो आप कहो।

तब गौतम गणधर कहते भए – हे राजन्! मैं कहूं हूं, सुन – राम लक्ष्मण जगतविषै प्रधान पुरुष निःकंटक राज्य भोगते भए। तिनके दिन, पक्ष, मास वर्ष, सुख से व्यतीत होंय। जिनके बड़े कुल को उपजी देवांगना समान स्त्री, लक्ष्मण के सोलह हजार, तिनविषै आठ पटराणी, कीर्तिसमान, लक्ष्मीसमान, रति समान गुणवंती, शीलवंती, अनेक कलाविषै निपुण, महा–सौम्य, सुन्दराकार तिनके नाम – प्रथम पटराणी राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या, दूजी रूपवती जिस समान और रूपवान नाहीं, तीजी वनमाला, चौथी कल्याणमाला, पांचमी रतिमाला, छठी जिनपद्मा जिसने अपने मुख की शोभाकर कमल जीते, सातमी भगवती, आठमी मनोरमा। अर राम के राणी आठ हजार देवांगना समान तिनविषै चार पटराणी जगतविषै प्रसिद्ध है कीर्ति जिनकी। जिनविषै प्रथम जानकी, दूजी प्रभावती, तीजी रतिप्रभा, चौथी श्रीदामा। इन सबों के मध्य सीता सुन्दर लक्षण ऐसी सोहै ज्यों तारानिविषै चन्द्रकला। अर लक्ष्मण के पुत्र अढ़ाईसै तिनविषै कईयकों के नाम कहूं हूं सो सुनो –

वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, हरिनाग, श्रीधर, मदन। वह महाप्रसिद्ध, सुन्दर चेष्टा

के धारक जिनके गुणनिकर सब लोकिन के मन अनुरागी अर विशल्या का पुत्र श्रीधर अयोध्या में ऐसा सोहै जैसा आकाशविषै चन्द्रमा अर रूपवती का पुत्र पृथ्वीतिलक, सो पृथ्वीविषै प्रसिद्ध, अर कल्याण माला का पुत्र महाकल्याण का भाजन मंगल, अर पद्मावती का पुत्र विमलप्रभ, अर वनमाला का पुत्र अर्जुनवृक्ष, अर अतिवीर्य की पुत्री का पुत्र श्रीकेशी, अर भगवती का पुत्र सत्यकेशी, अर मनोरमा का पुत्र सुपार्श्वकीर्ति, ये सब ही महा बलवान पराक्रम के धारक, शस्त्र शास्त्र विद्या में प्रवीण। इन सब भाईनि में परस्पर अधिक प्रीति। जैसैं नख मांस में दृढ़, कभी भी जुदे न होवें, तैसैं भाई जुदे नाहीं। योग्य है चेष्टा जिनकी, परस्पर प्रेम के भरे, वह उसके हृदय में तिष्ठै, वह वाके हृदय में तिष्ठै। जैसैं स्वर्गविषै देव रमैं तैसैं ये कुमार अयोध्यापुरी में रमते भए। जे प्राणी पुण्याधिकारी हैं, पूर्व पुण्य उपार्जै हैं, महा शुभचित्त हैं, तिनके जन्म से लेकर सकल मनोहर वस्तु ही आय मिलै हैं। रघुवंशनि के साढ़े चार कोटि कुमार महामनोज्ञ चेष्टा के धारक, नगर के वन उपवनादि में महामनोज्ञ चेष्टासहित देवनिसमान रमते भए। अर राम लक्ष्मण के सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा सूर्यहू तैं अधिक तेज के धारक सेवक होते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै राम लक्ष्मण की ऋद्धि वर्णन करने वाला चौरानवेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।94।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण के दिन अति आनन्दसूं व्यतीत होय हैं। धर्म अर्थ काम ये तीनों इनके अविरुद्ध होते भए। एक समय सीता सुखसूं विमान समान जो महिल ताविषै शरद के मेघ समान उज्ज्वल सेज पर सोवती थी। सो पिछले पहिर वह कमलनयनी दोय स्वप्न देखती भई। बहुरि दिव्य वादित्रनि के नाद सुन प्रतिबोधकूं प्राप्त भई। निर्मल प्रभात भए स्नानादि देहक्रिया कर सखिनसहित स्वामी पै गई। जायकर पूछती भई – हे नाथ! मैं आज रात्रिविषै स्वप्न देखे तिनका फल कहो। दोय उत्कृष्ट अष्टापद, शरद के चन्द्रमासमान उज्ज्वल, अर क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र ताके शब्दसमान जिनके शब्द कैलाश के शिखर समान सुन्दर, सर्व आभरणनिकरि मंडित, महामनोहर हैं केश जिनके, अर उज्ज्वल है दाढ़ जिनकी, सो मेरे मुख में पैठे। अर पुष्पक विमान के शिखर से प्रबल पवन के झकोर करि मैं पृथ्वीविषै पड़ी।

तब श्रीरामचन्द्र कहते भए – हे सुन्दरी! दोय अष्टापद, मुख में पैठे देखै ताके फलकर तेरे दोय पुत्र होयेंगे। अर पुष्पक विमान से पृथ्वीविषै पड़ना प्रशस्त नाहीं सो कछु चिंता न करो, दान के प्रभाव से क्रूर ग्रह शांत होवेंगे।

अथानन्तर बसन्त समयरूपी राजा आया, तिलक जाति के वृक्ष फूले, सोई उसके बखतर, अर नीम जाति के वृक्ष फूले बेई गजराज, तिन पर आरूढ़, अर आम मौर आये सो मानों बसंत

का धनुष, अर कमल फूले सो बसंत के बाण, अर केसरी फूलें, बेई रतिराज के तरकश, अर भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों निर्मल श्लोकों कर बसंत नृप का यश गावै हैं। अर कदम्ब फूले, तिनकी सुगन्ध पवन आवै है, सोई मानों बसंत नृप के निश्वास भये। अर मालती के फूल फूले, सो मानों बसंत शीतकालादिक अपने शत्रुनि को हंसै है, अर कोयल मिष्ट वाणी बोलै है सो मानों बसंत राजा के वचन है।

या भांति बसंत समय नृपति की सी लीला धरे आया। बसंत की लीला लोकनिकूं काम का उद्वेग उपजावनहारी है। बहुरि यह बसंत मानों सिंह ही है। अंकोट जाति वृक्षादिक के फूल, बेई हैं नख जाके, अर कुरवक जाति के वृक्षनि के फूल आए तेई भए दाढ़ जाके, अर महारक्त अशोक के पुष्प बेई हैं नेत्र जाके, अर चंचल पल्लव बेई हैं जिह्वा जिनकी, ऐसा बसंत केसरी आय प्राप्त भया। लोकों के मन की वृत्ति, सोई भई गुफा, तिनमें पैठा। महेन्द्र नामा उद्यान नन्दनवन समान सदा ही सुन्दर है। सो बसंत समय अतिसुन्दर होता भया।

नाना प्रकार के पुष्पनि की पाखंडी अर नाना प्रकार की कूंपल दक्षिणदिशि की पवनकर हालती भईं। सो मानों उन्मत्त भईं घूमै हैं। अर वापिका कमलादिककरि आच्छादित अर पक्षिनि के समूह नाद करै हैं। अर लोक सिवाणों पर तथा तीर पर बैठे हैं। अर हंस सारस चकवा क्रौंच मनोहर शब्द करै हैं। अर कारंड बोल रहे हैं। इत्यादि मनोहर पक्षिनि के मनोहर शब्दकरि रागी पुरुषनिकूं राग उपजावै हैं। पक्षी जलविषै पड़े हैं, अर उठै हैं, तिनकर निर्मल जल कलोलरूप होय रह्या है। जल तो कमलादिक कर भर्‍या है, अर स्थल जो है सो स्थल पद्मादिक पुष्पनिकर भरे हैं। अर आकाश पुष्पनि की मकरंदकरि मंडित होय रह्या है। फूलनि के गुच्छे अर लता वृक्ष अनेक प्रकार के फूल रहे हैं। वनस्पति की परम शोभा होय रही है। ता समय सीता कछु गर्भ के भारकर दुर्बल शरीर भई।

तब राम पूछते भए – हे कांते! तेरे जो अभिलाषा होय सो पूर्ण करूं। तब सीता कहती भई – हे नाथ! अनेक चैत्यालयनि के दर्शन करिवे की मेरे वांछा है। भगवान के प्रतिबिंब पांचों वर्ण के लोकविषै मंगलरूप तिनकूं नमस्कार करिवेकूं मेरा मनोरथ है। स्वर्ण रत्नमई पुष्पनिकर जिनेन्द्रकूं पूजूं – यह मेरे महा श्रद्धा है। अर कहा बांछू?

ये सीता के वचन सुनकर राम हर्षित भये, फूल गया है मुख कमल जिनका, राजलोक विषै विराजते हुते सो द्वारपाली को बुलाय आज्ञा करी कि हे भद्रे! मंत्रिनिकूं आज्ञा पहुंचावो जो समस्त चैत्यालयनिविषै प्रभावना करैं। अर महेन्द्रोदयनामा उद्यानविषै जे चैत्यालय है तिनकी शोभा करावें। अर सर्व लोककूं आज्ञा पहुंचावो कि जिनमन्दिर विषै पूजा प्रभावना आदि अति उत्सव

करैं। अर तोरण ध्वजा घंटा झालरी चन्दोवा सायवान महामनोहर वस्त्रनि के बनावें, तथा सुन्दर समस्त उपकरण देहुरा चढ़ावें, लोक समस्त पृथ्वीविषै जिनपूजा करैं। अर कैलाश सम्मेदशिखर पावापुर चम्पापुर गिरनार शत्रुंजय मांगीतुंगी आदि निर्वाण क्षेत्रनिविषै विशेष शोभा करावो। कल्याणरूप दोहुला सीता कूं उपज्या है सो पृथ्वीविषै जिनपूजा की प्रवृत्ति करहु। हम सीतासहित धर्मक्षेत्रनिविषै विहार करेंगे।

यह राम की आज्ञा सुन वह द्वारपाली अपने ठौर अन्यकूं राखकर जाय मंत्रिनिकूं आज्ञा पहुंचावती भई। अर वे स्वामी की आज्ञा प्रमाण अपने किंकरनिकूं आज्ञा करते भए। सर्व चैत्यालयनिविषै शोभा कराई, अर महा पर्वतों की गुफा के द्वार पूर्ण कलश थापे, मोतिनि के हारनिकर शोभित, अर विशाल स्वर्ण की भीतिविषै मणिनि के चित्राम रचे। महेन्द्रोदय नाम उद्यान की शोभा नन्दन वन की शोभा समान कर अत्यन्त निर्मल शुद्ध मणिनि के दर्पण थम्भविषै थापे, अर झरोखनि के मुखविषै निर्मल मोतिनि के हार लटकाये। सो जल नीझरना समान सोहैं। अर पांच प्रकार के रत्ननि की चूर्णकरि भूमि मंडित करी। अर सहस्रदल कमल तथा नाना प्रकार के कमल तिनकर शोभा करी। अर पांच वर्ण के मणिनि के बंध तिनविषै महासुन्दर वस्त्रनि के ध्वजा लगाय मन्दिरनि के शिखर पर चढ़ाई। अर नाना प्रकार के पुष्पनि की माला जिन पर भ्रमर गुंजार करैं, ठौर ठौर लुम्बाई हैं, अर विशाल वादित्रशाला नाट्यशाला अनेक रची हैं तिनकर बन अति शोभै हैं, मानों नन्दन वन ही है।

तब श्री रामचन्द्र इन्द्रसमान सब नगर के लोकनिकर युक्त समस्त राजलोकनि सहित वनविषै पधारे। सीता अर आप गज पर आरूढ़ कैसैं सोहैं जैसे शची सहित इन्द्र ऐरावत गज पर चढ़े सोहै। अर लक्ष्मण भी परम ऋद्धिकूं धरे वनविषै जाते भए। अर और हू सब लोक आनन्दसूं वनविषै गये। अर सबनिकूं अन्नपान वन ही विषै भया, जहां महा मनोग्य लतानिकूं मंडप अर केलि के वृक्ष तहां राणी तिष्ठी, अर और हू लोक यथायोग्य वनविषै तिष्ठे। राम हाथीतैं उतरकर निर्मल जल का भरा जो सरोवर, नाना प्रकार के कमलनिकर संयुक्त उसविषै रमते भए, जैसे इन्द्र क्षीरसागरविषै रमै। तहां क्रीड़ाकर जलतैं बाहिर आये।

दिव्य सामग्रीकर विधिपूर्वक सीता सहित जिनेन्द्र की पूजा करते भए। राम महासुन्दर, अर वनलक्ष्मी समान जे वल्लभा, तिनकर मंडित ऐसे सोहते भये मानों मूर्तिवन्त बसंत ही हैं। आठ हजार राणी देवांगना समान तिनके सहित राम ऐसे सोहें मानों ये तारानिकर मण्डित चन्द्र ही है। अमृत का आहार, अर सुगन्ध का विलेपन, मनोहर सेज, मनोहर आसन, नाना प्रकार के सुगन्ध

माल्यादिक स्पर्श रस गन्धरूप शब्द पांचों इन्द्रियनि के विषय अति मनोहर रामकूं प्राप्त भए। जिनमन्दिरविषै भलीविधि से नृत्य पूजा करी। पूजा प्रभावनाविषै राम के अति अनुराग होता भया। सूर्यहूतैं अधिक तेज के धारक राम देवांगना समान सुन्दर जे दारा तिनसहित कई एक दिन सुख से वनविषै तिष्ठे।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै जिनेन्द्र पूजा की सीताकूं अभिलाषा गर्भ का प्रादुर्भाव वर्णन करने वाला पिचानवेवाँ पर्व पूर्ण भया।।95।।

अथानन्तर प्रजा के लोक राम के दर्शन की अभिलाषा कर वन ही विषै आए, जैसैं तिसाए पुरुष सरोवरविषै आवैं। तब बाहिर ले दरवान ने लोकों के आवने का वृत्तांत द्वारपालियोंसू कह्या। वे द्वारपाली भीतर राजलोक में रामसू जायकर कहती भईं। कि – हे प्रभो! प्रजा के लोक आपके दर्शनकूं आए हैं। अर सीता के दाहिनी आंख फुरकी। तब सीता विचारती भई यह आंख मुझे क्या कहै है, कुछ दुख का आगमन बतावै है। आगे अशुभ के उदयकरि समुद्र के मध्यविषै दुख पाए तौ हू दुष्ट कर्म संतुष्ट न भया। क्या और भी दुख दिया चाहै है। जो इस जीव ने राग-द्वेष के योगकर कर्म उपार्जे हैं तिनका फल ए प्राणी अवश्य पावै है, काहूकर निवारा न जाय?

तब सीता चिंतावती होय और राणीनिसूं कहती भई – मेरी दाहिनी आंख फरकने का फल कहो। तब एक अनुमतिनामा राणी महाप्रवीण कहती भई – हे देवि! या जीव ने जे कर्म शुभ अथवा अशुभ उपार्जे हैं वे या जीव के भले बुरे फल के दाता हैं। कर्म ही कूं काल कहिए, अर विधि कहिए, अर दैव कहिए, ईश्वर भी कहिए। सब संसारी जीव कर्मनि के आधीन हैं। सिद्ध परमेष्ठी कर्मनिसूं रहित हैं।

बहुरि गुण दोष की ज्ञाता राणी गुणमाला सीताकूं रुदन करती देख धीर्य बंधाय कहती भई – हे देवी! तुम पति के सबनिविषै श्रेष्ठ हो, तुमकूं काहू प्रकार का दुःख नाहीं। अर और राणी कहती भईं – बहुत विचारकर कहा? शांतिकर्म करो, जिनेन्द्र का अभिषेक अर पूजा करावो, अर किमिच्छिक दान देवो। जाकी जो इच्छा होय सो ले जावो। दान पूजाकर अशुभ का निवारण होय है। तातैं शुभ कार्य कर अशुभकूं निवारो।

या भांति इन्होंने कही तब सीता प्रसन्न भई अर कही – योग्य है, दान पूजा अभिषेक अर तप ये अशुभ के नाशक हैं। दान धर्म विघ्न का नाशक वैर का नाशक है, पुण्य का अर जश का मूल कारण है। यह विचारकर भद्रकलश नामा भंडारी बुलायकर कहा – मेरे प्रसूति होय तौंलग किमिच्छा दान निरन्तर देवो। तब भद्रकलश ने कही जो आप आज्ञा करोगी सो ही होयगा। यह

कहकर भंडारी गया अर जिनपूजादि शुभक्रियाविषै प्रवर्ता। जिन्होंने भगवान के चैत्यालय हैं तिनविषै नाना प्रकार के उपकरण चढ़ाये। अर सब चैत्यालयनिविषै अनेक प्रकार के वादित्र बजवाए। मानों मेघ ही गाजे हैं। अर भगवान के चरित्र पुराण आदि ग्रंथ जिनमन्दिरनिविषै पधराए। अर दूध दही घृत जल मिष्टान्न के भरे कलश अभिषेककूं पठाए, अर खोजाओंविषै प्रधान जो खोजा सो वस्त्राभूषण पहरे हाथी चढ़ा नगरविषै घोषणा फेरै – जाकूं जो इच्छा होय सो ही लेवो। या भांति विधिपूर्वक दान पूजा उत्सव कराए।

लोक पूजा दान तप आदिविषै प्रवर्ते, पापबुद्धि रहित समाधान को प्राप्त भए। सीता शांतिचित्त धर्मविषै अनुरक्त भई, अर श्रीरामचन्द्र मण्डपविषै आय तिष्ठै। द्वारपाल ने जे नगरी के लोक आए हुते ते राम से मिलाए। स्वर्ण रत्नकर निर्मापित अद्‌भुत सभाकूं देख प्रजा के लोक चकित होय गए। हृदयकूं आनन्द के उपजावनहारे राम तिनकूं देखकर नेत्र प्रसन्न भए। प्रजा के लोक हाथ जोड़ नमस्कार करते भए। कांपै हैं तन जिनका, अर डरै हैं मन जिनका। तब राम कहते भए, हे लोको! तिहारे आगमन का कारण कहो। तब विजय, सुराजी, मधुमानव, सुलोधर, काश्यप, पिंगल, कालोप इत्यादि नगर के मुखिया मनुष्य निश्चल होय चरणनि की तरफ चोंके। गल गया है गर्व जिनका राजतेज के प्रतापकरि कछु कह न सके। यद्यपि चिरकाल में सोच सोच कहा चाहैं तथापि इनके मुखरूप मंदिर से बाणीरूप वधू न निकसे।

तब राम ने बहुत दिलासा कर कही – तुम कौन अर्थ आए हो सो कहो। या भांति कही तो भी वे चित्राम कैसे होय रहे, कछु न कहै। लज्जारूप फांसकर बंधा है कंठ जिनका, अर चलायमान हैं नेत्र जिनके, जैसे हिरण के बालककूं व्याकुल चित्त तैसे देखें।

तब तिनविषै मुख्य विजयनाम पुरुष, चलायमान है शब्द जिसका, सो कहता भया, हे देव! अभयदान का प्रसाद होय। तब राम ने कही – तुम काहू बात का भय मत करहु, तिहारे चित्तविषै जो होय सो कहो। तिहारा दुःख दूर कर तुमको साता उपजाऊंगा, तिहारे औगुन न लूंगा, गुण ही लूंगा। जैसे मिले हुए दूध जल तिनमें जलकूं टार हंस दूध ही पीवै हैं। श्रीराम ने अभयदान दिया तो भी अतिकष्ट विचार विचार धीरे स्वरकर विजय हाथ जोड़ सिर नवाय कहता भया कि– हे नाथ नरोत्तम! एक विनती सुनो। अब सकल प्रजा मर्यादा रहित प्रवर्ते है। यह लोक स्वभाव ही से कुटिल है। अर एक दृष्टांत प्रकट पावें तब इनकूं अकार्य करनेविषै कहा भय?

जैसे वानर सहज ही चपल है अर महाचपल जो यन्त्र – पिंजरा उस पर चढ़ा तब कहा कहना? निर्बलों की यौवनवंती स्त्री पापी बलवंत छिद्र पाय बलात्कार हरै हैं। अर कोईएक शीलवंती विरहकर पराय घर अत्यन्त दुखी होय है तिनकूं कईएक सहाय पाय अपने घर ले आवै

हैं। सो धर्म की मर्यादा जाय है, यह न जाय सो यत्न करहु। प्रजा के हित की वांछा करहु। जिस विधि प्रजा का दुख टरै सो करहु। या मनुष्य लोकविषै तुम बड़े राजा हो। तुम समान अर कौन? तुम ही जो प्रजा की रक्षा न करोगे तो कौन करेगा?

नदियों के तट तथा वन उपवन कूप वापिका सरोवर के तीर, ग्राम ग्रामविषै, घर घरविषै, सभाविषै, एक यही अपवाद की कथा है और नाहीं कि श्रीराम राजा दशरथ के पुत्र, सर्व शास्त्रविषै प्रवीण। सो रावण सीताकूं हर ले गया, ताहि घरविषै ले आये, तब औरनिकूं कहा दोष है? जो बड़े पुरुष करै सो सब जगत्कूं प्रमाण। जिस रीति राजा प्रवर्तै उसी रीति प्रजा प्रवर्तै। ''यथा राजा तथा प्रजा'' यह वचन है। या भांति दुष्टचित्त निरंकुश भए पृथ्वीविषै अपवाद करै हैं तिनका निग्रह करहु।

हे देव! आप मर्यादा के प्रवर्तक पुरुषोत्तम हो। एक यही अपवाद तिहारे राज्यविषै न होता तो तिहारा यह राज्य इन्द्र से भी अधिक है। यह वचन विजय के सुनकर क्षणएक रामचन्द्र विषादरूप मुद्गर के मारे चलायमान चित्त होय गए। चित्तविषै चितवते भए यह कौन कष्ट उपज्या? मेरा यशरूप कमलों का वन अपयशरूपी अग्निकर जलने लाग्या है। जिस सीता के निमित्त मैं विरह का कष्ट सहा सो मेरे कुलरूप चन्द्रमाकूं मलिन करै है। अयोध्याविषै मैं सुख के निमित्त आया। अर सुग्रीव हनुमानदिक से मेरे सुभट सो मेरे गौत्र रूप कुमुदिनीकूं यह सीता मलिन करै है। जिसके निमित्त मैंने समुद्र तिरि रणसंग्राम कर रिपुकूं जीत्या सो जानकी मेरे कुलरूप दर्पण को कलुषित करै है। अर लोक कहै हैं सो सांच है। दुष्ट पुरुष के घरविषै तिष्ठी सीता मैं क्यों लाया?

अर सीता से मेरा अति प्रेम, जिसे क्षणमात्र न देखूं तो विरहकर आकुलता लहूं, अर वह पतिव्रता मोसै अनुरक्त उसे कैसैं तजूं? जो सदा मेरे नेत्र अर उरविषै बसै, महागुणवती निर्दोष सीता सती, उसे कैसे तजूं? अथवा स्त्रियों के चित्त की चेष्टा कौन जाने, जिनविषै सब दोषों का नायक मनमथ बसै है।

धिक्कार स्त्री के जन्मकूं। सर्वदोषों की खान, आताप का कारण, निर्मल कुलविषै उपजे पुरुषोंकूं कर्दम समान मलिनता का कारण है, अर जैसे कीचविषै फंसा मनुष्य तथा पशु निकल न सके तैसे स्त्री के रागरूप पंकविषै फंसा प्राणी निकस न सकै। यह स्त्री समस्त बल का नाश करणहारी है, अर राग का आश्रय है, अर बुद्धिकूं भ्रष्ट करै है, अर सत्यतैं पटवेकूं खाई समान है, निर्वाण सुख की विघ्न करणहारी, ज्ञान की उत्पत्तिकूं निवारणहारी, भवभ्रमण का कारण है, भस्म से दबी अग्नि के समान कांचिलीकूं दाहक है, डाभ की सुई समान तीक्ष्ण है, देखवे-मात्र मनोग्य परन्तु अपवाद का कारण। ऐसी सीता उसे मैं दुख दूर करिवेनिमित्त तजूं, जैसैं सर्प कांचिलीकूं तजै। फिर जिस कर मेरा हृदय तीव्र स्नेह के बन्धनकर वशीभूत सो कैसे तजी जाय, यद्यपि मैं स्थिर हूं। तथापि यह जानकी निकटवर्तिनी अग्नि की ज्वाला समान मेरे मनकूं आताप उपजावै है।

अर यह दूर रही भी मेरे मनकूं मोह उपजावै, जैसैं चन्द्ररेखा दूर ही कुमुदिनीकूं विकसित करै। एक ओर लोकापवाद का भय, अर एक ओर सीता के दुर्निवार स्नेह का भय। अर रागकर विकल्प के सागर विषै पड्या हूं। अर सीता सर्व प्रकार देवांगना से भी श्रेष्ठ महापतिव्रता, सती शीलरूपिणी मोसूं सदा एकचित्त, उसे कैसे तजूं अर जो न तजूं तो अपकीर्ति प्रकट होय है। इस पृथ्वीविषै मोसमान और दीन नाहीं। स्नेह अर अपवाद का भय उसविषै लाग्या है मन जिसका, दोनों की मित्रता का तीव्र विस्तार वेगकर वशीभूत जो राम सो अपवादरूप तीव्र कष्टकूं प्राप्त भए। सिंह की है ध्वजा जिसके ऐसे राम तिनकूं दोनों बातों की अति आकुलतारूप चिंता असाता का कारण दुस्सह आताप उपजावती भई, जैसै जेष्ठ के मध्याह्न का सूर्य दुस्सह दाह उपजावै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै रामकूं लोकापवाद की चिंता का वर्णन करने वाला छियानवेवाँ पर्व पूर्ण भया।।96।।

अथानन्तर श्रीराम एकाग्रचित्त कर द्वारपालकूं लक्ष्मण के बुलावने की आज्ञा करते भये। सो द्वारपाल लक्ष्मण पै गया, आज्ञा प्रमाण तिनकूं कही। लक्ष्मण द्वारपाल के वचन सुनकर तत्काल तेज तुरंग पर चढ़ि राम के निकट आया। हाथ जोड़ नमस्कार कर सिंहासन के नीचे पृथ्वी पर बैठा, राम के चरणों की ओर है दृष्टि जाकी। राम उठकर आधे सिंहासन पर ले बैठे, शत्रुघन आदि सब ही राजा, अर विराधित आदि सब ही विद्याधर, यथायोग्य बैठे। पुरोहित श्रेष्ठी मंत्री सेनापति सब ही सभा में तिष्ठे।

तब क्षणएक विश्रामकर रामचन्द्र ने लक्ष्मणसूं लोकापवाद का वृत्तांत कहा। सुनकर लक्ष्मण क्रोधकर लालनेत्र भए अर योधावोकूं आज्ञा करी – अबार मैं उन दुर्जनों के अंत करिवेकूं जाऊंगा, पृथ्वीकूं मृषावादरहित करूंगा। जे मिथ्या वचन कहै हैं तिनकी जिह्वा छेद करूंगा। उपमा रहित जो शीलव्रत की धारणहारी सीता वाकी जे निन्दा करै है तिनका क्षय करूंगा। या भांति लक्ष्मण महा क्रोधरूप भए, नेत्र अरुण होय गए।

तब श्रीराम इन वचनों से शांत करते भए कि हे सौम्य! यह पृथ्वी सागर पर्यंत ताकी श्रीऋषभदेव ने रक्षा करी। बहुरि भरत ने प्रतिपालना करी। अर इक्ष्वाकुवंश के तिलक बड़े बड़े राजा भए, जिनकी पीठ रण में रिपुओं न देखी, जिनकी कीर्तिरूप चांदनी से यह जगत् शोभित है, सो अपने वंशविषै अनेक यश के उपजावनहारे भए। अब मैं क्षणभंगुर पापरूप राग के निमित्त यशकूं कैसे मलिन करूं? अल्प भी अकीर्ति जो न टारिए तो वृद्धिकूं प्राप्त होय, अर उन नीतिवान् पुरुषों की कीर्ति इन्द्रादिक देवोंसूं गाइए है। ये भोग विनाशीक तिनसे क्या? जिनसे अकीर्तिरूप अग्नि कीर्तिवनकूं वाले।

यद्यपि सीता सती शीलवंती निर्मल चित्त है तथापि इसको घरविषै राखे मेरा अपवाद न मिटै। यह अपवाद शस्त्रादिक से हता न जाय। यद्यपि सूर्य कमलों के वन का प्रफुल्लित करणहारा है, अति तिमिर का हरणहारा है तथापि रात्रि के होते सूर्य अस्त होय है। तैसैं अपवादरूप रज महा विस्तारकूं प्राप्त भई तेजस्वी पुरुषों की कांति की हानि करै है। सो यह रज निवारनी चाहिए। हे भ्रात! चन्द्रमा समान निर्मल गोत्र हमारा अकीर्तिरूप मेघमालासूं आच्छादा जाय है, सो न आच्छादा जाय – यही मेरे यत्न है। जैसैं सूखे इन्धन के समूहविषै लगी आग जलसूं बुझाए बिना वृद्धिकूं प्राप्त होय है तैसैं अकीर्तिरूप अग्नि पृथ्वीविषै विस्तरै है सो निवारे बिना न मिटै। यह तीर्थंकर देवों का कुल महा उज्ज्वल प्रकाशरूप है याकूं कलंक न लगे। सो उपाय करहु। यद्यपि सीता महानिर्दोष शीलवंती है तथापि मैं तजूंगा, अपनी कीर्ति मलिन न करूंगा।

तब लक्ष्मण कहता भया। कैसा है लक्ष्मण? राम के स्नेहविषै तत्पर है बुद्धि जाकी। हे देव! सीताकूं शोक उपजावना योग्य नाहीं। लोक तो मुनियों का भी अपवाद करै हैं, जिनधर्म का अपवाद करै हैं। तो क्या लोकापवाद से धर्म तजिए है? तैसैं लोकापवादमात्रसूं जानकी कैसे तजिए, जो सब सतियों के सीस विराजै है, काहु प्रकार निंदा के योग्य नाहीं। अर पापी जीव शीलवंत प्राणियों की निन्दा करै हैं। क्या तिनके वचन से शीलवंतोंकूं दोष लागै है? वे निर्दोष ही हैं। ये लोक अविवेकी हैं। इनके वचनविषै परमार्थ नहीं। विषकर दूषित हैं नेत्र जिनके, वे चन्द्रमाकूं श्यामरूप देखै हैं, परन्तु चन्द्रमा श्वेत ही है, श्याम नाहीं। तैसे लोकों के कहें निकलंकियोंकूं कलंक नाहीं लागे हैं।

जे शील से पूर्ण हैं तिनकूं अपना आत्मा ही साक्षी है, परजीवनि का प्रयोजन नाहीं। नीच जीवनि के अपवादकरि पण्डित विवेकी क्रोधकूं न प्राप्त होय, जैसे श्वान के भोंकनेतैं गजेन्द्र नाहीं कोप करै हैं। ये लोक विचित्रगति हैं। तरंग समान है चेष्टा जिनकी, परदोष कहिवे विषै आसक्त। सो इन दुष्टों का स्वयमेव ही निग्रह होयगा। जैसे कोई अज्ञानी शिलाकूं उपाड़कर चन्द्रमा की ओर बगाय (फेंककरि) बहुरि मारा चाहे सो सहज ही आप नि:संदेह नाशकूं प्राप्त होय है। जो दुष्ट पराए गुणनिकूं न सहि सकै अर सदा पराई निन्दा करै है सो पापकर्मी निश्चय सेती दुर्गतिकूं प्राप्त होय है।

जब ऐसे वचन लक्ष्मण ने कहे तब श्रीरामचन्द्र कहते भये – हे लक्ष्मण! तू कहै है सो सब सत्य है। तेरी बुद्धि रागद्वेषरहित, अति मध्यस्थ, महा शोभायमान है, परन्तु जे शुद्ध न्यायमार्गी मनुष्य हैं वे लोकविरुद्ध कार्यकूं तजै हैं। जाकी दशों दिशा में अकीर्तिरूप दावानल की ज्वाला प्रज्वलित है ताकूं जगत में कहा सुख अर कहा ताका जीतव्य? अनर्थ का करणहारा जो अर्थ

ताकरि कहा, अर विषकर संयुक्त जो औषधि ताकरि कहा? अर बलवान् होय जीवनि की रक्षा न करै, शरणागतपालक न होय, ताकै बलकर कहा? अर जाकर आत्मकल्याण न होय ता आचरण कर कहा? चारित्र सोई जो आत्महित करै।

अर जो अध्यात्मगोचर आत्माकूं न जाने ताके ज्ञानकर कहा? अर जाकी कीर्तिरूप वधू अपवाद रूप बलवान हरै ताका जन्म प्रशस्त नाहीं, ऐसे जीवनतैं मरण भला। लोकापवाद की बात दूर ही रहो, मोहि यह महादोष है जो परपुरुष ने हरी सीता मैं बहुरि घर में ल्याया। राक्षस के भवन में उद्यान तहां यह बहुत दिन रही, अर ताने दूती पठाय मनवांछित प्रार्थना करी, अर समीप आय दुष्टदृष्टि करि देखी, अर मन में आए सो वचन कहे। ऐसी सीता मैं घर में ल्याया। या समान अर लज्जा कहा? सो मूढ़ों से कहा न होय? या संसार की मायाविषै मैं हू मूढ़ भया। या भांति कहकर आज्ञा करी जो शीघ्र ही कृतांतवक्र सेनापतिकूं बुलावो। यद्यपि दो बालकनि के गर्भसहित सीता है तौ हू याहि तत्काल मेरे घरतैं निकासो, यह आज्ञा करी।

तब लक्ष्मण हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया – हे देव! सीता कूं तजना योग्य नाहीं। यह राजा जनक की पुत्री, महाशीलवती, जिनधर्मिणी, कोमल चरणकमल जाके, महा सुकुमार, भोरी, सदा सुखिया, अकेली कहां जायेगी? गर्भ के भार कर संयुक्त परम खेदकूं धरे यह राजपुत्री तिहारे तजे कौन के शरण जायगी? अर आपने देखने की कही सो देखवेकर कहा दोष भला? जैसैं जिनराज के निकट चढ़ाया द्रव्य निर्माल्य होय है, ताहि देखिए है, परन्तु दोष नाहीं। अयोग्य अभक्ष्य वस्तु आंखिनिसूं देखिये हैं परन्तु देखे दोष नाहीं, अंगीकार कीये दोष है। तातैं हे नाथ! मोपर प्रसन्न होहु, मेरी विनती सुनहु, निर्दोष सीता सती, तुमविषै एकाग्र है चित्त जाका, ताहि न तजो।

तब राम अत्यन्त विरक्त होय क्रोध में आय गए अर अप्रसन्न होय कही – लक्ष्मण! अब कछू न कहना। मैं यह अवश्य निश्चय किया, शुभ होवै अथवा अशुभ होवै, निमानुषवन जहां मनुष्य का नाम नाहीं सुनिए वहां द्वितीय सहायरहित अकेली सीताकूं तजहु। अपने कर्म के योगकरि जीवो अथवा मरौ। एक क्षणमात्र हू मेरे देशविषै, अथवा नगरविषै, काहू के मन्दिरविषै मत रहो। वह मेरी अपकीर्ति की करणहारी है। कृतांतवक्रकूं बुलाया।

सो चार घोड़े का रथ चढ़ा बड़ी सेनासहित जाका बंदीजन विरद बखानै हैं, लोक जय जयकार करै हैं सो राजमार्ग होय आया। जापर छत्र फिरता अर धनुष चढ़ाय बखतर पहिरे कुण्डल पहिरे ताहि या विधि आवता देख नगर के नर नारी अनेक विकल्प की वार्ता करते भये। आज यह सेनापति शीघ्र दौड़ा जाय है कौन पर विदा होयगा? आप कौन पर कोप भए हैं? आज काहू का कछू बिगाड़ है? ज्येष्ठ के सूर्य समान ज्योति जाकी, काल समान भयंकर शस्त्रनि के समूह

के मध्य चला जाय है सो आज न जानिए कौन पर कोप है? या भांति नगर के नर नारी वार्ता करै हैं। अर सेनापति रामदेव समीप आया। स्वामीकूं सीस निवाय नमस्कार कर कहता भया – हे देव! जो आज्ञा होय सो ही करूं।

तब राम ने कही, शीघ्र ही सीताकूं ले जावो। अर मार्गविषै जिनमन्दिरनि का दर्शन कराय सम्मेदशिखर अर निर्वाणभूमि तथा मार्ग के चैत्यालय तहां दर्शन कराय वाकी आशा पूर्णकर, अर सिंहनाद नामा अटवी जहां मनुष्य का नाम नाहीं तहां अकेली मेल, उठ आवो। तब ताने कही जो आज्ञा होयगी सो ही होयगा, कछू वितर्क न करहुं।

अर जानकी पै जाय कही – हे माता! उठो रथविषै चढ़ो, चैत्यालयनि की वांछा है सो करो। या भांति सेनापति ने मधुर स्वरकर हर्ष उपजाया। तब सीता रथ चढ़ी, चढ़ते समय भगवानकूं नमस्कार किया अर यह शब्द कहा जो चतुर्विध संघ जयवंत होवें। श्रीरामचन्द्र महाजिनधर्मी उत्तम आचरणविषै तत्पर सो जयवंत होहु। अर मेरे प्रसाद से असुन्दर चेष्टा भई होय सो जिनधर्म के अधिष्ठाता देव क्षमा करहु। अर सखीजन लार भए तिनसूं कही तुम सुख से तिष्ठो, मैं शीघ्र ही जिनचैत्यालयनि के दर्शन कर आऊं हूं या भांति तिनसे कही। अर सिद्धनिकूं नमस्कार कर सीता आनन्द से रथ चढ़ी। सो रत्न स्वर्ण का रथ तापर चढ़ी ऐसी सोहती भई जैसी विमान चढ़ी देवांगना सोहै। वह रथ कृतांतवक्र ने चलाया सो ऐसा शीघ्र चलाया जैसा भरत चक्रवर्ती का चलाया बाण चले।

सो चलते समय सीताकूं अपशकुन भए, सूखे वृक्ष पर काग बैठा, विरस शब्द करता भया, अर माथा धुनता भया। अर सन्मुख स्त्री महा शोक की भरी, शिर के बाल बखेरे रुदन करती भई। इत्यादि अनेक अपशकुन भए तो पुणि सीता जिनभक्तिविषै अनुरागिणी निश्चलचित्त चली गई, अपशकुन न गिने। पहाड़नि के शिखर कन्दरा अनेक वन उपवन उलंघकर शीघ्र ही रथ दूर गया। गरुड़ समान वेग जाका ऐसे अश्वनिकर युक्त सफेद ध्वजाकर विराजित सूर्य के रथ समान रथ शीघ्र चला। मनोरथ समान वह रथ तापर चढ़ी राम की राणी इन्द्राणी समान सो अति सोहती भई। कृतांतवक्र सारथी ने मार्गविषै सीताकूं नाना प्रकार की भूमि दिखाई, ग्राम नगर वन अर कमल से फूल रहे हैं सरोवर, नाना प्रकार के वृक्ष कहूं सघन वृक्षनिकर वन अन्धकाररूप है, जैसें अंधेरी रात्रि मेघमालाकर मंडित महा अंधकारूप भासै, कछू नजर न आवै। अर कहूं विरले वृक्ष हैं सघनता नाहीं, तहां कैसा भासै है? जैसा पंचमकाल में भरत ऐरावत क्षेत्रनि की पृथ्वी विरले सत्पुरुषनिकरि सोहै। अर कहूं वनी पतझर होय गई है सो पत्ररहित, पुष्प फलादिरहित छायारहित दीखै जैसे बड़े कुल की स्त्री विधवा।

भावार्थ – विधवा हू पुत्ररूपी पुष्प फलादि रहित है अर आभरण तथा सुन्दर वस्त्रादिरहित, अर कांतिरहित है, शोभा रहित है, सो तैसी वनी दीखै है। अर कहूंइक वनविषै सुन्दर माधुरीलता आम्र के वृक्ष से लगी ऐसी सोहै हैं जैसी चपल वेश्या, आम्रसूं लगि अशोक की वांछा करै हैं। अर कई एक दावानलकर वृक्ष जर गए हैं सो नाहीं सोहै हैं, जैसैं हृदय क्रोधरूप दावानलकरि जरा न सोहै।

अर कहूंइक सुन्दर पल्लवनि के समूह मंद पवनकर हालते सोहै हैं, मानों वसंतराज के आयवेकर वनपंक्ति रूप नारी आनन्द से नृत्य ही करै हैं। अर कहूंइक भीलनि के समूह तिनके जे कलकलाट शब्दकर मृग दूर भाग गए हैं, अर पक्षी उड़ गए हैं। अर कहूंइक वनी अल्प हैं जल जिनमें ऐसी नदी तिनकर कैसी भासै हैं? जैसी संताप की भरी विरहिनी नायिका असुवनकर भरे नेत्र संयुक्त भासै। अर कहूंइक वनी नाना पक्षिनि के नादकर मनोहर शब्द करै हैं। अर कहूंइक नीझरनावों के नादकरि शब्द करती तीव्र हास्य करै है। अर कहू इक मकरंद में अति लुब्ध जे भ्रमर तिनके गुंजारकरि मानों वनी बसंत नृप की स्तुति ही करै है। अर कहूंइक वनी फूलनिकर नम्रीभूत भई शोभाकूं धरै हैं, जैसे सफल पुरुष दातार नम्रीभूत भए सोहै हैं। कहूंइक वायुकर हालते जे वृक्ष तिनकी शाखा हालै हैं अर पल्लव हालै हैं अर पुष्प पड़े हैं सो मानों पुष्पवृष्टि ही करै हैं। इत्यादि रीतिकूं धरे वनी अनेक क्रूर जीवनिकर भरी ताहि देखती सीता चली जाय है।

रामविषै है चित्त जाका, मधुर शब्द सुनकर विचारती भई मानों राम के दुंदुभी बाजे बाजै हैं। या भांति चितवती सीता आगैं गंगा को देखती भई। कैसी है गंगा? अति सुन्दर हैं शब्द जाके, अर जाके मध्य अनेक जलचर जीव मीन मकर ग्रहादिक विचरै हैं, तिनके विचरिवेकरि उद्धत लहर उठैं हैं, तातैं कम्पायमान भए हैं कमल जाविषै, अर मूल से उपाड़े हैं तीर के उतंग वृक्ष जाने, अर उखाड़े हैं पर्वतनि के पाषाणों के समूह जाने, समुद्र की ओर चली जाय है, अति गम्भीर है, उज्ज्वल फूलोंकर शोभै है, झागों के समूह उठै हैं, अर भ्रमते जे भंवर तिनकर महा भयानक है। अर दोनों ढाहावों पर बैठे पक्षी शब्द करै हैं सो परम तेज के धारक रथ के तुरंग या नदी को तिर पार भए, पवन समान है वेग जिनका, जैसे साधु संसार समुद्र के पार होय।

नदी के पार जाय सेनापति यद्यपि मेरुसमान अचलचित्त हुता तथापि दया के योगकर अति विषाद कूं प्राप्त भया। महादुख का भर्‍या कछू न कहि सके, आंखनितैं आंसू निकल आए। रथकूं थांभ ऊंचे स्वरकर रुदन करने लगा। ढीला होय गया है अंग जाका, जाती रही है कांति जाकी।

तब सीता सती कहती भई – हे कृतांतवक्र! तू काहेकूं महादुखी की न्याईं होवे है? आज जिनवन्दना के उत्सव का दिन, तू हर्ष में विषाद क्यों करे हैं? या निर्जन वन में क्यों रोवे है? तब वह अति रुदनकर वृत्तांत कहता भया। जो वचन विषसमान अग्निसमान शस्त्रसमान है।

हे मात! दुर्जननि के वचनतैं राम अकीर्ति के भय से जो न तजा जाय तिहारा स्नेह ताहि तजकर चैत्यालयनि के दर्शन की तिहारे अभिलाषा उपजी हुती सो तुमकूं चैत्यालयों के अर निर्वाणक्षेत्रों के दर्शन कराय भयानक वनविषै तजी है।

हे देवी! जैसैं यति रागपरणतिकूं तजै तैसैं राम ने तुमकूं तजी है। अर लक्ष्मण ने जो कहिवे की हद थी सो कही, कछू कमी न राखी। तिहारे अर्थि अनेक न्याय के वचन कहे, परन्तु राम ने हठ न छोड़ी। हे स्वामिनी! राम तुमसे निराग भए। अब तुमकूं धर्म ही शरण है। सो या संसारविषै न माता, न पिता, न भ्राता, न कुटुम्ब एक धर्म ही जीव का सहाई है। अब तुमकूं यह मृगों का भरा वन ही आश्रय है।

ये वचन सीता सुनकर वज्रपात की मारी जैसी होय गई। हृदयविषै दुख के भारकर मूर्छाकूं प्राप्त भई। बहुरि सचेत होय गद्गद वाणीसूं कहती भई - शीघ्र ही मोहि प्राणनाथसूं मिलाओ। तब वाने कही - हे माता! नगरी दूर रही, अर राम का दर्शन दूर।

तब अश्रुपातरूप जल की धारासूं मुखकमल प्रक्षालती हुई कहती भई कि हे सेनापति! तू मेरे वचन रामसूं कहियो कि मेरे त्याग का विषाद आप न करणा, परम धीर्यकूं अवलम्बनकर सदा प्रजा की रक्षा करियो, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करै। आप महान्यायवंत हो अर समस्त कला के पारगामी हो, राजाकूं प्रजा ही आनन्द का कारण है। राजा वही जाहि प्रजा शरद की पूनों के चन्द्रमा की न्याईं चाहे। अर यह संसार असार है, महा भयंकर दुखरूप है। जा सम्यग्दर्शनकर भव्यजीव संसारसूं मुक्त होवे हैं सो तिहारे आराधिवे योग्य है। तुम राजतैं सम्यग्दर्शनकूं विशेष भला जानियो। यह राज्य तो विनाशीक है अर सम्यग्दर्शन अविनाशी सुख का दाता है सो अभव्य जीव निंदा करैं तो उनकी निंदा के भय से हे पुरुषोत्तम! सम्यग्दर्शनकूं कदाचित् न तजना। यह अत्यन्त दुर्लभ है। जैसैं हाथविषै आया रत्न समुद्रविषै डालिए तो बहुरि कौन उपायसूं हाथ आवै। अर अमृतफल अंधकूप में डार्‍या बहुरि कैसैं मिले? जैसैं अमृतफलकूं डाल बालक पश्चात्ताप करै तैसैं सम्यग्दर्शन से रहित हुवा जीव विषाद करै है। यह जगत दुर्निवार है, जगत का मुख बंद करवेकूं कौन समर्थ है? जाके मुख में जो आवै सो ही कहै। तातैं जगत की बात सुनकर जो योग्य होव सो करियो।

लोक गडरिया प्रवाह हैं सो अपने हृदयविषै हे गुणभूषण! लौकिक वार्ता न धरणी, अर दानकरि, प्रीति के योगकरि जनोंकूं प्रसन्न राखना। अर विमल स्वभाव कर मित्रों कूं वश करना अर साधु तथा आर्यिका आहारकूं तिनकूं प्रासुक अन्नसूं अति भक्तिकर निरन्तर आहार देना। अर चतुर्विध संघ की सेवा करनी। मन वचन कायकरि मुनिकूं प्रणाम पूजन अर्चनादिकरि शुभ कर्म

उपार्जन करना। अर क्रोधकूं क्षमाकरि, मानकूं निगर्वता करि, मायाकूं निष्कपटताकरि लोभकूं संतोषकरि जीतना। आप सर्व शास्त्रविषै प्रवीण हो सो हम तुमकूं उपदेश देनेकूं समर्थ नाहीं, क्योंकि हम स्त्रीजन हैं। आपकी कृपा के योगकरि कभी कोई परिहास्यकरि अविनय भरा वचन कहा हो तो क्षमा करियो। ऐसा कहकर रथसूं उतरी अर तृण पाषाण करि भरी जो पृथ्वी उसमें अचेत होय मूर्छा खाय पड़ी। सो जानकी भूमिविषै पड़ी ऐसी सोहती भई मानों रत्नों की राशि ही पड़ी है।

कृतांतवक्र सीताकूं चेष्टारहित मूर्छित देख महादुखी भया, अर चित्तविषै चितवता भया – हाय! यह महा भयानक बन अनेक दुष्ट जीवोंकरि भरया, जहां जे महाधीर शूरवीर होंय तिनके भी जीवने की आशा नाहीं तो यह कैसे जीवेगी? इसके प्राण बचना कठिन हैं। इस महासती माता कूं मैं अकेली वनविषै तजकर जाऊं हूं सो मुझ समान निर्दई कौन? मुझे किसी प्रकार भी किसी ठौर शांति नाहीं। एक तरफ स्वामी की आज्ञा, अर एक तरफ ऐसी निर्दयता! मैं पापी दुख के भंवर विषै पड़ा हूं। धिक्कार पराई सेवाकूं, जगतविषै निंद्य पराधीनता, जो स्वामी कहे सो ही करना, जैसे यंत्रकू यंत्री बजावै त्यों ही बाजै। सो पराया सेवक यंत्र तुल्य है। अर चाकरसूं कूकर भला जो स्वाधीन आजीविका पूर्ण करै है। जैसे पिशाच के वश पुरुष ज्यों वह बकावै त्यों बकै, तैसे नरेन्द्र के वश नर, वह जो आज्ञा करै सो करै। चाकर क्या न करै अर क्या न कहै? अर जैसे चित्राम का धनुष निष्प्रयोजन गुण कहिये फिणच कूं धरै है, सदा नम्रीभूत है, तैसे परकिंकर निःप्रयोजन गुणकूं धरै हैं, सदा नम्रीभूत है। धिक्कार किंकर का जीवना। पराई सेवा करना तेजरहित होना है।

जैसे निर्माल्य वस्तु निंद्य है, तैसे परकिंकरता निंद्य है। धिग् धिग् पराधीन के प्राण धारणकूं। यह पराधीन पराया किंकर टीकली समान है। जैसे टीकली परतंत्र होय कूप का जीव कहिए जल हरै है तैसे यह परतंत्र होय पराए प्राण हरै है। कभी भी चाकर का जन्म मत होवे। पराया चाकर काठ की पूतली समान है। ज्यों स्वामी नचावै त्यों नाचै। उच्चता, उज्ज्वलता, लज्जा, अर कांति, तिनसे परकिंकर रहित है। जैसे विमान पराये आधीन है, चलाया चाले, थमाया थमें, ऊंचे चढ़ावे तो ऊंचा चढ़े, नीचा उतारे तो नीचा उतरे। धिक्कार पराधीन के जीतव्यकूं जो निर्बल, अपने मांसकूं बेचनहारा, महालघु, अपने अधीन नहीं, सदा परतंत्र, धिक्कार किंकर के प्राण धारणकूं। मैं पराई चाकरी करी, अर परवश भया तो ऐसे पापकर्मकूं करूं हूं, जो इस निर्दोष महासीतकूं अकेली भयानक वनविषै तजकर जाऊं हूं।

हे श्रेणिक! जैसे कोई धर्म की बुद्धिकूं तजै तैसे वह सीताकूं वनविषै तजकर अयोध्याकूं सन्मुख भया। अति लज्जावान् होयकर चाल्या। सीता याके गए पाछे केतीक वार में मूर्च्छा से सचेत होय महा दुख की यूथभ्रष्ट मृगी की न्याईं विलाप करती भई। सो याके रुदनकर मानों सब

ही वनस्पति रुदन करै है। वृक्षनि के पुष्प पड़े हैं सोई मानों आंसू भए। स्वत: स्वभाव महारमणीक याके स्वर तिनकर विलाप करती भई महा शोक की भरी हाय कमलनयन राम! नरोत्तम! मेरी रक्षा करहु, मोसै वचनरूप करहु। अर तुम तो निरन्तर उत्तम चेष्टा के धारक हो, महागुणवंत शांतचित्त हो, तिहारा लेशमात्र हू दोष नाहीं। तुम तो पुरुषोत्तम हो, मैं पूर्वभवविषै जो अशुभकर्म किए थे तिनके फल पाये। जैसा करना तैसा भोगना। कहा करे भर्तार अर कहा करे पुत्र? तथा माता पिता बांधव कहा करे?

अपना कर्म अपने उदय आवै सो अवश्य भोगना। मैं मन्दभागिनी पूर्व जन्मविषै अशुभ कर्म कीये ताके फलतैं या निर्जन वनविषै दुखकूं प्राप्त भई। मैं पूर्व भवविषै काहू का अपवाद किया परनिंदा करी होगी ताके पापकरि यह कष्ट पाया। तथा पूर्वभवविषै गुरुनि के समीप व्रत लेकर भग्न कीया ताका यह फल पाया। अथवा विषफल समान जो दुर्वचन तिनकर काहूंकूं अपमान कीया तातैं यह फल पाये। अथवा मैं परभवविषै कमलनि के वनविषै तिष्ठता चकवा चकवी का युगल विछोया तातैं मोहि स्वामी का वियोग भया।

अथवा मैं परभवविषै कुचेष्टाकर हंस हंसिनी का युगल विछोहा, जे कमलनिकर मंडित सरोवर में निवास करणहारे, अर बड़े बड़े पुष्पनिकूं जिनकी चाल की उपमा दीजै, अर जिनके वचन अति सुन्दर, जिनके चरण, चोंच, लोचन, कमल समान अरुण, सो मैं विछोहे, तिनके दोषकरि ऐसी दुख अवस्थाकूं प्राप्त भई। अथवा मैं पापिनी कबूतर कबूतरी के युगल बिछोहे हैं, जिनके लाल नेत्र आधी चिरम समाधान, अर परस्पर जिनविषै अतिस्नेह, अर कृष्णागुरु समान जिनका अंग अथवा श्याम घटा समान अथवा धूम समान धूसरे, आरंभी है सुख से क्रीड़ा जिन्होंने, अर कंठविषै तिष्ठै है मनोहर शब्द जिनके सो मैं पापिनी जुदे कीए, अथवा भले स्थानसूं बुरे स्थान में मेले अथवा बांधे मारे, ताके पापकरि असंभाव्य दु:ख मोहि प्राप्त भया।

अथवा बसंत के समय फूले वृक्ष तिनविषै केलि करते कोकिल कोकिली के युगल महामिष्ट शब्द के करनहारे परस्पर भिन्न भिन्न कीये, ताका यह फल है। अथवा ज्ञानी जीवनि के बंदिवे योग्य महाव्रती जितेन्द्रिय महामुनि तिनकी निंदा करी। अथवा पूजा दानविषै विघ्न किया, अर परोपकारविषै अन्तराय कीए, हिंसादिक पाप कीए, ग्रामदाह, वनदाह, स्त्री बालक पशु इत्यादि पाप कीए तिनके यह फल हैं। अनछाना पानी पीया, रात्रीकूं भोजन किया, बीधा अन्न भखा, अभक्ष्य वस्तु का भक्षण किया, न करिवे योग्य काम किए, तिनका यह फल है। मैं बलभद्र की पटराणी, स्वर्ग समान महिल की निवासिनी, हजारां सहेली मेरी सेवा की करनहारी, तो अब पाप के उदयकरि निर्जन वनविषै दुख के सागरविषै डूबी कैसे तिष्ठूं? रत्ननि के मन्दिरविषै महा रमणीक वस्त्र तिनकर शोभित सुन्दर सेज पर शयन करणहारी मैं कहां पड़ी हूं?

सब सामग्रीकरि पूर्ण महा रमणीक महिलविषै रहणहारी मैं अब कैसे अकेली वन का निवास करूंगी? महा मनोहर बीण, बांसुरी, मृदंगादिक के मधुर स्वर तिनकर सुख निद्रा की लेनहारी मैं कैसे भयंकर शब्दकर भयानक वनविषै अकेली तिष्ठूंगी? रामदेव की पटराणी, अपयशरूपी दावानल कर जरी, महा दु:खिनी, एकाकिनी पापिनी कष्ट का कारण जो बन, जहां अनेक जाति के कीट, अर करकश डाभ की अणी, अर कांकरनि से भरी पृथ्वी, याविषै कैसे शयन करूंगी? ऐसी अवस्था भी पायकर मेरे प्राण न जांय तो ये प्राण ही वज्र के हैं। अहा ऐसी अवस्था पायकरि मेरे हृदय के सौ टूक न होय हैं सो यह वज्र का हृदय है। कहा करूं? कहां जाऊं? कौनसूं कहा कहूं? कौन के आश्रय तिष्ठूं?

हाय गुणसमुद्र राम! मोहि क्यों तजी? हे महाभक्त लक्ष्मण! मेरी क्यों न सहाय करी? हाय पिता जनक! हाय माता विदेही! यह कहा भया? अहो विद्याधरनि के स्वामी भामण्डल! मैं दुख के भंवरविषै पड़ी कैसे तिष्ठूं? मैं ऐसी पापिनी जो मोसहित पति ने परम संपदाकर जिनेन्द्र का दर्शन अर्चन चिंतया था सो मोहि इस वनीविषै डारी।

हे श्रेणिक! या भांति सीता सती विलाप करै है। अर राजा वज्रजंघ पुण्डरीकपुर का स्वामी, हाथी पकड़िविषै निमित्त वन में आया था सो हाथी पकड़ बड़ी विभूति से पाछे जाय था। सो ताकी सेना के प्यादे शूरवीर कटारी आदि नाना प्रकार के शस्त्र धरे कमर बांधे आय निकसे। सो याके रुदन के मनोहर शब्द सुनकर संशयकूं अर भयकूं प्राप्त भए, एक पैंड भी न जाय सके। अर तुरंगनि के सवार हू ताका रुदन सुन खड़े होय रहे। उनको यह आशंका उपजी जो या वनविषै दुष्ट जीव तहां यह सुन्दर स्त्री के रुदन का नाद कहां होय है?

मृग, सुसा, रीझ, सांप, रीछ, ल्याली, बघेरा, आरणे, भैंसे, चीता, गैंड़ा, शार्दूल, अष्टापद, वनशूकर, गज तिनकर विकराल यह वन ताविषै यह चन्द्रकला समान महामनोग्य कौन रोवै है? यह कोई देवांगना सौधर्म स्वर्ग से पृथ्वीविषै आई है। यह विचारकर सेना के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त होय खड़े रहे। अर वह सेना समुद्र समान, जिसमें तुरंग ही मगर, अर पयादे मीन, अर हाथी ग्राह हैं। समुद्र भी गाजे, अर सेना भी गाजे है। अर समुद्र में लहर उठै है, सेना में सूर्य की किरणकरि शस्त्रों की जोति उठै है। समुद्र भी भयंकर है, सेना भी भयंकर है। सो सकल सेना निश्चल होय रही।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सीता का वनविषै विलाप अर वज्रजंघ का आगमन वर्णन करने वाला सत्तानवेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।97।।

अथानन्तर जैसी महाविद्या की थांभी गंगा थंभी रहै तैसैं सेनाकूं थंभा देख राजा वज्रजंघ निकटवर्ती पुरुषोंकूं पूछता भया कि सेना के थंभने का कारण क्या है? तब वह निश्चयकर राजपुत्री के समाचार कहते भये। उससे पहिले राजा ने भी रुदन के शब्द सुने, सुनकर कहता भया, जिसका यह मनोहर रुदन शब्द सुनिये सो कहो कौन है? तब कई एक अग्रेसर होय जायकर पूछते भये – हे देवी! तू कौन है? अर इस निर्जन वनविषै क्यों रुदन करै है? तो समान कोऊ और नाहीं। तू देवी है अक नागकुमारी है, अक कोई उत्तम नारी है। तू महा कल्याणरूपिणी उत्तम शरीर की धरणहारी, तोहि यह शोक कहां? हमकूं यह बड़ा कौतुक है। तब वह शस्त्रधारक पुरुषकूं देख भयकूं प्राप्त भई, कांपै है शरीर जाका, सो भयकरि उनको अपने आभरण उतारकरि देने लगी।

तब वे स्वामी के भयकरि यह कहते भये – हे देवी! तू क्यों डरै है, शोककूं तज, धीरता भज। आभूषण हमकूं काहेकूं देवे है? तेरे ये आभूषण तेरे ही रहो, ये तोहि योग्य हैं। हे माता! तू विह्वल क्यों होय है? विश्वास गह, यह राजा वज्रजंघ पृथ्वीविषै प्रसिद्ध, महा नरोत्तम, राजनीतिकर युक्त है, अर सम्यग्दर्शन रत्न भूषणकरि शोभित है। कैसा है सम्यग्दर्शन? जिस समान और रत्न नाहीं। अविनाशी है, अमौलिक है, काहू से हस्या न जाय, महासुख का दायक, शंकादिक मल रहित, सुमेरु सारिखा निश्चल है। हे माता! जाके सम्यग्दर्शन होवे उसके गुण हम कहां लग वर्णन करै?

यह राजा जिनमार्ग के रहस्य का ज्ञाता शरणागत प्रतिपालक है। परोपकार में प्रवीण, महा दयावान, महानिर्मल, पवित्रात्मा, निंद्यकर्मसूं विवृत्त, लोकों का पिता समान रक्षक, महादातार, जीवों की रक्षाविषै सावधान, दीन अनाथ दुर्बल देहधारियों कूं माता समान पालै है, सिद्धि कार्य का करणहारा, शत्रुरूप पर्वतनिकूं वज्रसमान है। शास्त्रविद्या का अभ्यासी, परधन का त्यागी, परस्त्रीकूं माता बहिन बेटी के समान मानै है। अन्यायमार्गकूं अजगर सहित अन्धकूप समान जानै हैं। धर्मविषै तत्पर, अनुरागी, संसार के भ्रमण से भयभीत, सत्यवादी, जितेन्द्रिय है। याके समस्त गुण जो मुखसूं कहा चाहै सो भुजानिकर समुद्रकूं तिरा चाहै है। ये बात वज्रजंघ के सेवक कहै हैं।

इतनेविषै ही राजा आप आया। हाथी से उतरि बहुत विनयकरि सहज ही है सुन्दर दृष्टि जाकी, सो सीतातैं कहता भया – हे बहिन! वह वज्रसमान कठोर महा असमझ है, जो तोहि ऐसे वन में तजै, अर तोहि तजतैं जाका हृदय न फट जाय। हे पुण्यरूपिणी! अपनी अवस्था का कारण कहि, विश्वासकूं भजि, भय मत कर, अर गर्भ का खेद मत कर। तब यह शोककरि पीड़ित चित्त बहुरि रुदन करती भई। राजा ने बहुत धीर्य बंधाया।

तब यह हंस की न्याईं आंसू डार गद्‌गद् वाणीतैं कहती भई – हे राजन्! मो मन्दभागिनी की कथा अत्यन्त दीर्घ है। यदि तुम सुना चाहो हो तो चित्त लगाय सुनो। मैं राजा जनक की पुत्री,

भामण्डल की बहिन, राजा दशरथ के पुत्र की वधू सीता मेरा नाम, राम की राणी। राजा दशरथ ने केकईसूं वरदान दिया हुता सो भरतकूं राज्य देकर राजा वैरागी भए। अर राम लक्ष्मण वनकूं गए सो मैं पति के संग वन में रही। रावण कपट से मोहि हर ले गया। ग्यारहवें दिन मैंने पति की वार्ता सुन भोजन किया। पति सुग्रीव के घर रहै। बहुरि अनेक विद्याधरनिकूं एकत्र कर आकाश के मार्ग होय समुद्रकूं उलंघ लंका गये, रावणकूं जीत मोहि ल्याये।

बहुरि राजरूप कीचकूं तज भरत तो वैरागी भये। कैसे हैं भरत? जैसे ऋषभदेव भरत चक्रवर्ती तिन समान हैं उपमा जिनकी। सो भरत तो कर्मकलंक रहित परमधामकूं प्राप्त भये। अर केकई शोकरूप अग्निकर आतापकूं प्राप्त भई। बहुरि वीतराग का मार्ग सार जानकर आर्यिका होय महातप से स्त्रीलिंग छेद स्वर्गविषै देव भई, मनुष्य होय मोक्ष पावेगी। राम लक्ष्मण अयोध्याविषै इन्द्र समान राज्य करैं। सो लोक दुष्टचित्त नि:शंक होय अपवाद करते भए कि रावण हरकर सीताकूं ले गया, बहुरि राम ल्याय घर में राखी। सो राम महाविवेकी, धर्मशास्त्र के वेत्ता न्यायवन्त, ऐसी रीति क्यों आचरै?

जिस रीति राजा प्रवर्ते उसी रीति प्रजा प्रवर्ते। सो लोक मर्यादारहित होने लगे, कहैं राम ही के घर यह रीति तो हमकूं कहा दोष? अर मैं गर्भसहित दुर्बल शरीर यह चिंतवन करती हुती कि जिनेन्द्र के चैत्यालयों की अर्चना करूंगी। अर भरतार भी मुझ सहित जिनेन्द्र के निर्वाण स्थानक अर अतिशय स्थानक तिनकूं वंदना करनेकूं भावसहित उद्यमी भए हुते। अर मोहि ऐसे कहते थे कि प्रथम तो हम कैलाश जाय श्री ऋषभदेव के निर्वाण क्षेत्र बंदेंगे। बहुरि और निर्वाणक्षेत्रकूं बंदकरि अयोध्याविषै ऋषभ आदि तीर्थंकर देवनि का जन्मकल्याणक है सो अयोध्या की यात्रा करेंगे। जेते भगवान के चैत्यालय हैं तिनका दर्शन करेंगे। कम्पिल्या नगरीविषै विमलनाथ का दर्शन करेंगे। अर रत्नपुर मैं धर्मनाथ का दर्शन करेंगे। कैसे हैं धर्मनाथ? धर्म का स्वरूप जीवनिकूं यथार्थ उपदेशे हैं। बहुरि श्रावस्ती नगरी संभवनाथ का दर्शन करेंगे। अर चम्पापुर में वासुपूज्य का, अर काकंदीपुर में पुष्पदंत का, चन्द्रपुरीविषै चन्द्रप्रभ का, कौशांबीपुरी में पद्मप्रभ का, भद्रलपुर में शीतलनाथ का, अर मिथिलापुरी में मल्लिनाथ स्वामी का दर्शन करेंगे।

अर वाराणसी में सुपार्श्वनाथ स्वामी का दर्शन करेंगे। अर सिंहपुरी में श्रेयांसनाथ का अर हस्तनागपुर में शांति कुंथु अरनाथ का पूजन करेंगे। अर हे देवी! कुशाग्रनगर में श्रीमुनिसुव्रतनाथ का दर्शन करेंगे। जिनका धर्मचक्र अब प्रवर्तै है, अर और हू जे भगवान के अतिशय स्थानक महापवित्र हैं, पृथ्वी में प्रसिद्ध हैं, तहां पूजा करेंगे। भगवान के चैत्यालय, अर सुर असुर अर गंधर्वनिकर स्तुति करिवे योग्य हैं, नमस्कार योग्य हैं तिन सबनि की वंदना हम करेंगे। अर पुष्पक

विमानविषै चढ़ सुमेरु के शिखर पर जे चैत्यालय हैं तिनका दर्शनकरि भद्रशाल वन, नन्दन वन सौमनस वन, तहां जिनेन्द्र की अर्चाकरि अर कृत्रिम अढ़ाई द्वीपविषै जेते चैत्यालय हैं तिनकी वंदनाकरि हम अयोध्याकूं आवेंगे।

हे प्रिये! भावसहित एक बार हू नमस्कार श्रीअरहंतदेवकूं करे तो अनेक जन्म के पापनि से छूटै है। हे कांते! धन्य तेरा भाग्य जो गर्भ के प्रादुर्भावविषै तेरे जिन वंदना की बांछा उपजी। मेरे हू मन में यही है तो सहित महापवित्र जिमन्दिरनि का दर्शन करूं। हे प्रिये! पहिले भोगभूमिविषै धर्म की प्रवृत्ति न हुती, लोक असमझ थे। सो भगवान ऋषभदेव भव्योंकूं मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। जिनकूं संसारभ्रमण का भय होय तिनको भव्य कहिये। कैसे हैं भगवान् ऋषभ? प्रजा के पति, जगतविषै श्रेष्ठ, त्रैलोक्यकरि बंदिवे योग्य, नाना प्रकार अतिशयकर संयुक्त, सुर नर असुरनिकूं आश्चर्यकारी, ते भगवान भव्यनिकूं जीवादिक तत्त्वों का उपदेश देय अनेकनिकूं तारि निर्वाण पधारे, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणमंडित सिद्ध भए। जिनका चैत्यालय सर्व रत्नमई भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर कराया। अर पांच से धनुष की रत्नमई प्रतिमा, सूर्यहूतैं अधिक तेजकूं धरे मन्दिरविषै पधराई सो विराजै है। जाकी अबहु देव विद्याधर गन्धर्व किन्नर नाग दैत्य पूजा करै हैं, जहां अप्सरा नृत्य करैं हैं। जो प्रभु स्वयंभू सर्वगति निर्मल त्रैलोक्यपूज्य जाका अन्त नाहीं, अनन्तरूप अनन्त ज्ञान विराजमान, परमात्मा सिद्ध शिव आदिनाथ ऋषभ तिनकी कैलाश पर्वत पर हम चलकर पूजा कर स्तुति करेंगे। वह दिन कब होयगा, या भांति मोसू कृपा कर वार्ता करते थे।

अर ताही समय नगर के लोक भेले होय आय लोकापवाद की दावानल से दुस्सह वार्ता रामसूं कही। सो राम बड़े विचार के कर्ता चित्त में यह चिताई यह लोक स्वभाव ही कर वक्र हैं। सो और भांति अपवाद न मिटै या लोकापवाद से प्रिय जनकूं तजना भला अथवा मरणा भला, लोकावादतैं यश का नाश होय, कल्पांतकाल पर्यंत अपयश जगत में रहै सो भला नाहीं। ऐसा विचार महाप्रवीण मेरा पति ताने लोकापवाद के भयतैं मोहि महा अरण्यवन में तजा। मैं दोषरहित सो पति नीके जाने, अर लक्ष्मण ने बहुत कहा सो न माना। मेरे ऐसा ही कर्म का उदय जे विशुद्ध कुल में उपजे क्षत्री शुभचित्त, सर्व शास्त्रनि के ज्ञाता, तिनकी यही रीति है। अर काहू से न डरै। एक लोकापवाद से डरै।

यह अपने निकासने का वृत्तांत कह बहुरि रुदन करने लगी, शोकरूप अग्निकरि तप्तायमान है चित्त जाका। सो याकूं रुदन करती अर रजकर धूसरा है अंग जाका, महादीन दुखी देख राजा वज्रजंघ उत्तम धर्म का धरणहारा अति उद्वेगकूं प्राप्त भया। अर याकूं जनक की पुत्री जान समीप आय बहुत आदर से धीर्य बंधाया। अर कहता भया – हे शुभमते! तू जिनशासन में प्रवीण है।

शोक कर रुदन मत करै। यह आर्तध्यान दुख का बढ़ावनहारा है। हे जानकी! या लोक की स्थिति तू जाने है। तू महा सुज्ञान अनित्य अशरण एकत्व अन्यत्व इत्यादि द्वादश अनुप्रेक्षावों की चिंतवन करणहारी, तेरा पति सम्यग्दृष्टि, अर तू सम्यत्वसहित विवेकवन्ती है, मिथ्यादृष्टि जीवनि की न्याईं कहा बारम्बार शोक करै? तू जिनवाणी की श्रोता, अनेक बार महा मुनिनि के मुख श्रुति के अर्थ सुने, निरंतर ज्ञान भावकूं धरणहारी, तोहि शोक उचित नाहीं।

अहो या संसार में भ्रमता यह मूढ़ प्राणी वाने मोक्षमार्गकूं न जाना, यातैं कहा कहा दुख न पाये। याकूं अनिष्टसंयोग इष्टवियोग अनेकबार भये। यह अनादिकाल सूं भवसागर के मध्य क्लेशरूप भंवर में पड़ा है। या जीव ने तिर्यंच योनिविषै जलचर नभचर के शरीर धर वर्षा शीत आताप आदि अनेक दुख पायें। अर मनुष्य देहविषै अपवाद विरह रुदन क्लेशादि अनेक दुख भोगे। अर नरकविषै शीत उष्ण छेदन भेदन शूलारोहण, परस्पर घात, महादुर्गंध क्षीरकुण्डविषै निपात, अनेक रोग, अनेक दुख लहे। अर कबहूं अज्ञान तपकरि अल्प ऋद्धि का धारक देव हू भया, तहां हू उत्कृष्ट ऋद्धि के धारक देवनिकूं देख दुखी भया। अर मरण समय महा दुखी होय विलापकर मूवा। अर कबहूं महातपकर इन्द्रतुल्य उत्कृष्ट देव भया। तो हू विषयानुरागकरि दुखी ही भया। या भांति चतुर्गतिविषै भ्रमण करते या जीव ने भववनविषै आधि व्याधि संयोग वियोग रोग शोक जन्म मृत्यु दुख दाह दरिद्र हीनता नाना प्रकार की वांछा, विकल्पताकर शोच संतापरूप होय अनन्त दुख पाये।

अधोलोक मध्यलोक ऊर्ध्वलोकविषै ऐसा स्थानक नाहीं जहां या जीव ने जन्म मरण न किये। अपने कर्मरूप पवन के प्रसंगकर भवसागरविषै भ्रमण करता जो यह जीव ताने मनुष्य देहविषै स्त्री का शरीर पाया। तहां अनेक दुख भोगे। तेरे शुभ कर्म के उदयकरि राम सारिखे सुन्दर पति भये, जिनके सदा शुभ का उपार्जन सो पुण्य के उदयकरि पति सहित महासुख भोगे। अर अशुभ के उदयतैं दुस्सह दुखकूं प्राप्त भई। लंकाद्वीपविषै रावण हर कर ले गया तहां पति की वार्ता न सुन ग्यारह दिन तक भोजन बिना रही। अर जब तक पति का दर्शन न भया तब तक आभूषण सुगन्ध लेपनादि रहित रही। बहुरि शत्रु को हत पति ले आये तब पुण्य के उदयतैं सुखकूं प्राप्त भई। बहुरि अशुभ का उदय आया तब बिना दोष गर्भवतीकूं पति ने लोकापवाद के भयतैं घरतैं निकासी। लोकापवादरूप सर्प के डसिवेकर पति अचेत चित्त भया। सो बिना समझे भयंकर वन में तजी। उत्तम प्राणी पुण्यरूप पुष्पनि का घर ताहि जो पापी दुर्वचनरूप अग्निकर बालै हैं सो आप ही दोषरूप दहन करि दाहकूं प्राप्त होंय।

हे देवी! तू परम उत्कृष्ट पतिव्रता महासती है, प्रशंसा योग्य है चेष्टा जाकी। जाके

गर्भाधानविषै चैत्यालयनि के दर्शन की बांछा उपजी अबहू तेरे पुण्य ही का उदय है। तू महाशीलवती जिनमती है। तेरे शील के प्रसादकरि या निर्जन वनविषै हाथी के निमित्त मेरा आवना भया। मैं वज्रजंघ पुण्डरीकपुर का अधिपति राजा दुरिदवाह सोमवंशी, महाशुभ आचरण के धारक, तिनके सुबंधु, महिषी नामा राणी, ताका मैं पुत्र। तू मेरे धर्म के विधानकर बड़ी बहिन है। पुण्डरीकपुर चालहु। शोक तज।

हे बहिन! शोक से कछु कार्यसिद्धि नाहीं। वहां पुण्डरीकपुर में राम तोहि ढूंढ कृपाकर बुलावेंगे। राम हू तेरे वियोगसूं पश्चात्तापकरि अति व्याकुल हैं। अपने प्रमादकरि अमोलिक महागुणवान रत्न नष्ट भया, ताहि विवेकी महा आदर से ढूंढ़ै ही। तातैं हे पतिव्रते! निसंदेह राम तुझे आदरसूं बुलावेंगे। या भांति वा धर्मात्मा ने सीताकूं शांतता उपजाई। तब सीता धीर्यकूं प्राप्त भई। मानों भाई भामण्डल ही मिला। तब वाकी अति प्रशंसा करती भई। तू मेरा अति उत्कृष्ट भाई है। महा यशवंत, शूरवीर, बुद्धिमान, शांतचित्त, साधर्मिनि पर वात्सल्य का करणहारा, उत्तम जीव है।

गौतम स्वामी कहे हैं – हे श्रेणिक! राजा वज्रजंघ अधिगम सम्यग्दृष्टि अधिगम कहिए गुरु उपदेशकरि पाया है सम्यक्त जाने, अर ज्ञानी है, परम तत्त्व का स्वरूप जाननहारा, पवित्र है आत्मा जाकी, साधु समान है, जाके व्रत गुण शीलकर संयुक्त मोक्ष मार्ग का उद्यमी सो ऐसे सत्पुरुषनि के चरित्र दोषरहित पर–उपकारकरयुक्त कौन का शोक न निवारै? कैसे हैं सत्पुरुष? जिनमतविषै अति निश्चल है चित्त जिनका।

सीता कहै है – हे वज्रजंघ! तू मेरे पूर्वभव का सहोदर है सो जो या भवविषै तैनें सांचा भाईपना जनाया। मेरा शोक संतापरूप तिमिर हरा सूर्यसमान तू पवित्र आत्मा है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सीताकूं वज्रजंघ का धीर्य बंधावने का वर्णन करने वाला अठानवेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।98।।

अथानन्तर वज्रजंघ ने सीता के चढ़िवेकूं क्षणमात्रविषै अद्भुत पालकी मंगाई। सो सीता तापर आरूढ़ भई। पालकी विमान समान महामनोग्य समीचीन प्रमाणकर युक्त, सुन्दर हैं थंभ जाके, श्रेष्ठ दर्पण थंभोंविषै जड़े हैं। अर मोतिनि की झालरीकरि पालकी मंडित है। अर चन्द्रमा समान उज्ज्वल चमर तिनकर शोभित है, मोतिनि के हार जल के बुदबुदे समान शोभै हैं, अर विचित्र जे वस्त्र तिनकर मंडित चित्रामकर शोभित हैं, सुन्दर हैं, झरोखा जाविषै। ऐसी सुखपाल पर चढ़ परम ऋद्धि कर युक्त बड़ी सेना मध्य सीता चली जाय है, आश्चर्यकूं प्राप्त भई कर्मों की विचित्रताकूं चिंतवे है। तीन दिनविषै भयंकर बनकूं उलंघ पुण्डरीक देशविषै आई। उत्तम है चेष्टा जाकी,

सर्वदेश के लोक माताकूं आय मिले ग्राम ग्रामविषै भेंट करै। कैसा है वज्रजंघ का देश? समस्त जाति के अन्नकर जहां समस्त पृथ्वी आच्छादित होय रही है। अर कूकड़ा उड़ान नजीक हैं ग्राम जहां, रत्ननि की खान, स्वर्ण रूपादिक की खान, सुरपुर जैसे पुर, सो देखती थकी सीता हर्षकूं प्राप्त भई। वन उपवन की शोभा देखती चली जाय है। ग्राम के महंत भेंटकर नाना प्रकार स्तुति करै हैं।

हे भगवती! हे माता! आपके दर्शनकर हम पापरहित भए, अर बारम्बार वंदना करते भए, अर्घपाद्य किए। अर अनेक राजा देवनि समान आय मिले सो नाना प्रकार भेंट करते भए, अर बारम्बार वंदना करते भए। या भांति सीता सती पैंड पैंड पर राजा प्रजानिकर पूजी संती चली जाय है। वज्रजंघ का देश अतिसुखी ठौर ठौर बन उपवनादिकरि शोभित ठौर ठौर चैत्यालय देख अति हर्षित भई। मन विषै विचारै है जहां राजा धर्मात्मा होय वहां प्रजा सुखी होय ही। अनुक्रमकर पुण्डरीकपुर के समीप आए सो राजा की आज्ञातैं सीता का आगमन सुन नगर के सब लोक सन्मुख आए अर भेंट करते भए।

नगर की अति शोभा करी। सुगन्धकर पृथ्वी छांटी, गली बाजार सब सिंगारे, अर इन्द्रधनुष समान तोरण चढ़ाए, अर द्वारनिविषै पूर्ण कलश थापे,जिनके मुख सुन्दर पल्लवयुक्त हैं अर मंदिरनि पर ध्वजा चढ़ी, अर घर घर मंगल गावै हैं। मानों वह नगर आनन्द कर नृत्य ही करै है। नगर के दरवाजे पर तथा कोट के कंगूरनि पर लोक खड़े देखे हैं। हर्ष की वृद्धि होय रही है। नगर के बाहिर अर भीतर राजद्वार तक सीता के दर्शनकूं लोक खड़े हैं। चलायमान जे लोकनि के समूह तिनकर नगर यद्यपि स्थावर है तथापि जानिए जंगम होय रह्या है। नाना प्रकार के वादित्र बाजै हैं। तिनके नादकर दशों दिशा शब्दायमान होय रही हैं, शंख बाजै हैं, बंदीजन विरद बखानै हैं। समस्त नगर के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए देखै हैं।

अर सीता ने नगरविषै प्रवेश किया, जैसे लक्ष्मी देवलोकविषै प्रवेश करै। वज्रजंघ के मंदिरविषै अति सुन्दर जिनमन्दिर हैं। सर्व राजलोक की स्त्रीजन सीता के सन्मुख आईं। सीता पालकीसूं उतर जिनमन्दिरविषै गई। कैसा है जिनमन्दिर? महासुन्दर उपवनकर वेष्टित है, अर वापिका सरोवरी तिनकर शोभित है, सुमेरु शिखर समान सुन्दर स्वर्णमई है। जैसे भाई भामण्डल सीता का सन्मान करै तैसें वज्रजंघ आदर करता भया। वज्रजंघ के समस्त परिवार के लोक अर राजलोक की समस्त राणी सीता की सेवा करैं। अर ऐसे मनोहर शब्द निरन्तर कहै हैं, हे देवते! हे पूज्ये! हे स्वामिनी! हे ईशानने! सदा जयवंत होहु, बहुत दिन जीवो, आनन्दकूं प्राप्त होहु, वृद्धि को प्राप्त होहु, आज्ञा करहु। या भांति स्तुति करैं। अर जो आज्ञा करैं सो सीस चढ़ावैं। अति हर्षसूं दौड़कर सेवा करैं। अर हाथ जोड़ सीस निवाय नमस्कार करैं। वहां सीता अति आनन्दतैं जिनकार्य

धर्म की कथा करती तिष्ठै। अर जो सामंतनि की भेंट आवैं अर राजा भेंट करे सो जानकी धर्मकार्यविषै लगावै। यह तो यहां धर्म की आराधना करै है।

अर वह कृतान्तवक्र सेनापति तप्तायमान है चित्त जाका, रथ के तुरंग खेदकूं प्राप्त भए हुते, तिनकूं खेदरहित करता हुआ श्रीरामचन्द्र के समीप आया। याकूं आवता सुन अनेक राजा सन्मुख आये। सो कृतान्तवक्र आयकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणनिकूं नमस्कार कर कहता भया – हे प्रभो! मैं आज्ञाप्रमाण सीताकूं भयानक वनविषै मेलकर आया हूं। वाके गर्भमात्र ही सहाई है। हे देव! वह वन नाना प्रकार के भयंकर जीवनि के अति घोर शब्दकर महा भयकारी है। अर जैसा वैताल कहिये प्रेतनि का वन, ताका आकार देखा न जाय तैसैं सघन वृक्षनि के समूह अर अंधकाररूप है। जहां स्वत: स्वभाव आरणे भैंसे अर सिंह द्वेषकर सदा युद्ध करै हैं। अर जहां घूघू बसै हैं सो विरूप शब्द करै हैं। अर गुफानिविषै सिंह गुंजार करै हैं सो गुफा गुंजार रही है। अर महाभयंकर अजगर शब्द करै हैं, अर चीतानिकर हते गये हैं मृग जहां। कालकूं भी विकराल ऐसा वन ताविषै।

हे प्रभो! सीता अश्रुपात करती महा दीनवदन आपकूं जो शब्द कहती भई सो सुनो – आप आत्मकल्याण चाहो हो तो जैसैं मोहि तजी तैसैं जिनेन्द्र की भक्ति न तजनी। जैसैं लोकनि के अपवाद कर मोसैं अति अनुराग हुता तो हू तजी, तैसैं काहूके कहिवेतैं जिनशासन की श्रद्धा न तजनी। लोक बिना विचारे निर्दोषनिकूं दोष लगावै हैं, जैसैं मोहि लगाया।

सो आप न्याय करो, सो अपनी बुद्धि से विचार यथार्थ करना, काहू के कहेतैं काहूंकूं झूठा दोष न लगावना। अर सम्यग्दर्शनतैं विमुख मिथ्यादृष्टि जिनधर्मरूप रत्न का अपवाद करैं हैं सो उनके अपवाद के भयतैं सम्यक्दर्शन की शुद्धता न तजनी। वीतराग का मार्ग उरविषै दृढ़ धारणा। मेरे तजने का या भवविषै किंचित्मात्र दुख है अर सम्यग्दर्शन की हानितैं जन्म जन्मविषै दुख है। या जीवकूं लोकविषै निधि रत्न स्त्री वाहन राज्य सब ही सुलभ हैं एक सम्यग्दर्शन रत्न ही महा दुर्लभ है। राजविषै पापकर नरकविषै पड़ना है, एक ऊर्ध्वगमन सम्यग्दर्शन के प्रताप ही से होय। जाने अपना आत्मा सम्यग्दर्शनरूप आभूषणकर मंडित किया सो कृतार्थ भया।

ये शब्द जानकी ने कहे हैं जिनकूं सुनकर कौन के धर्म बुद्धि न उपजै? हे देव! एक तो वह सीता स्वभाव ही कर कायर, अर महा भयंकर बन के दुष्ट जीवनितैं कैसैं जीवैगी?

तहां महा भयानक सर्पनि के समूह अर अल्पजल ऐसे सरोवर तिनविषै माते हाथी कर्दम करैं हैं, अर जहां मृगनि के समूह मृगतृष्णाविषै जल जानि वृथा दौड़ व्याकुल होय हैं, जैसैं संसार की मायाविषै रागकर रागी जीव दुखी होय। अर जहां कौंछिकी रज के संगकर मर्कट अति चंचल होय रहे हैं। अर जहां तृष्णासूं सिंह व्याघ्र ल्यालियों के समूह तिनकी रसनारूप पल्लव लहलहाट करै

हैं। अर चिलमसमान लालनेत्र जिनके ऐसे क्रोधायमान भुजंग फुंकार करै हैं। अर जहां तीव्र पवन के संचार कर क्षणमात्रविषै वृक्षनि के पत्रों के ढेर होय हैं। अर महा अजगर तिनकी विषरूप अग्निकर अनेक वृक्ष भस्म होय गये हैं। अर माते हाथिनि की महा भयंकर गर्जना ताकर वह वन अति विकराल है। अर वन के शूकरनि की सेनाकर सरोवर मलिनजल होय रहे हैं। अर जहां ठौर ठौर भूमिकांटे अर सांठे अर सांपों की बामी अर कंकर पत्थर तिनकर भूमि महा संकटरूप है। अर डाभ की अणी सूईतैहूं अति पैनी है, अर सूखे पान फूल पवनकर उड़े उड़े फिरै हैं। ऐसे महा अरण्यविषै, हे देव! जानकी कैसे जीवेगी? मैं ऐसा जानू हूं क्षणमात्र हू वह मात्र रखिवे को समर्थ नाहीं।

हे श्रेणिक! सेनापति के यह वचन सुन श्रीराम अति विषादकूं प्राप्त भए। कैसे हैं वचन? जिन कर निर्दई का भी मन द्रवीभूत होय। श्रीरामचन्द्र चिंतवते भए, देखो मो मूढ़चित्त ने दुष्टनि के वचननिकरि अत्यन्त निंद्यकार्य कीया। कहां वह राजपुत्री अर कहां वह भयंकर वन? यह विचारकर मूर्छाकूं प्राप्त भये। बहुरि शीतोपचारकरि सचेत होय विलाप करते भए। सीताविषै है चित्त जिनका, हाय श्वेत श्याम रक्त तीन वर्ण के कमल समान नेत्रनि की धरणहारी! हाय निर्मल गुणनि की खान! मुखकर जीता है चन्द्रमा जाने, कमल की किरण समान कोमल, हाय! जानकी मोसूं वचनालाप कर! तू जाने ही है कि मेरा चित्त तो बिना अति कायर है।

हे उपमारहित शीलव्रत की धारणहारी! मेरे मन की हरणहारी! हितकारी है आलाप जिसके, हे पापवर्जिते, निरपराध, मेरे मन की निवासनी! तू कौन अवस्थाकूं प्राप्त भई होयगी? हे देवी! वह महा भयंकर वन क्रूर जीवों कर भर्‍या, उस विषै सर्वसामग्री रहित कैसे तिष्ठेगी? हे मोविषै आसक्त चकोरनेत्र लावण्यरूप जल की सरोवरी, महालज्जावती, विनयवती! तू कहां गई? तेरे श्वास की सुगन्धकर मुख पर गुंजार करते जे भ्रमर तिनकूं हस्तकमल कर निवारती अति खेदकूं प्राप्त होयगी। तू यूथ से विछुरी मृगी की न्यांई भयंकर वनविषै कहां जायगी? जो वन चिंतवन करते भी दुस्सह, उसविषै तू अकेली कैसे तिष्ठेगी? कमल के गर्भ समान कोमल तेरे चरण महासुन्दर लक्षण के धारणहारे, कर्कश भूमि का स्पर्श कैसे सहेंगे?

अर वन के भील महा म्लेच्छ कृत्य अकृत्य के भेद से रहित है मन जिनका, सो तुझे पाकर भयंकर पल्लीविषै ले गये होवेंगे। सो पहिले दुख से भी यह अत्यन्त दुख है। तू भयानक वनविषै मो बिना महा दुःखकूं प्राप्त भई होयगी, अथवा तू खेदखिन्न महा अंधेरी रात्रिविषै वन की रजकर मंडित कहीं पड़ी होयगी। सो कदाचित् तुझे हाथियों ने दाबी होयगी। तो इस समान और अनर्थ कहां? अर गृध, रीछ, सिंह, व्याघ्र, अष्टापद इत्यादि दुष्ट जीवोंकर भर्‍या जो वन ताविषै कैसे निवास करेगी?

जहां मार्ग नाहीं, विकराल दाढ़ के धरणहारे व्याघ्र महा क्षुधातुर तिनकैसी अवस्थाकूं प्राप्त करी होयगी जो कहिवेविषै न आवै। अथवा अग्नि की ज्वाला के समूहकर जलता जो वन उसविषै अशुभ अवस्थानककूं प्राप्त भई होयगी, अथवा सूर्य की अत्यन्त दुस्सह किरण तिनके आतापकर लाख की न्याईं पिघल गई होयगी, छाया विषै जायवे की नाहीं शक्ति जाकी अथवा शोभायमान शील की धरणहारी मो निर्दईविषै मनकर हृदय फटकर मृत्युकूं प्राप्त भई होयगी। पहिले जैसे रत्नजटी ने मोहि सीता के कुशल की वार्ता आय कही थी तैसे कोई अब भी कहै। हाय प्रिये! पतिव्रते विवेकवती, सुखरूपिणी, तू कहां गई? कहां तिष्ठेगी क्या करेगी? अहो कृतांतवक्र! कह, क्या तैनें सचमुच वनहीविषै डारी? जो कहूं शुभ ठौर मेली होय तो तेरे मुखरूप चन्द्र से अमृतरूप वचन खिरैं।

जब ऐसा कहा तब सेनापति ने लज्जा के भारकर नीचा मुख किया, प्रभारहित होय गया, कछु कह न सक्या, अति व्याकुल भया, मौन गह रह्या। तब राम ने जानी सत्य ही यह सीताकूं भयंकर वनविषै डार आया। तब मूर्च्छाकूं प्राप्त होय राम गिरे। बहुरि बहुत बेर विषै नीठि नीठि सचेत भए तब लक्ष्मण आए। अन्त:करणविषै सोचकूं धरे कहते भए – हे देव! क्यों व्याकुल भए हो, धीर्य को अंगीकार करहु। जो पूर्वकर्म उपार्ज्या है उसका फल आय प्राप्त भया, अर सकल लोककूं अशुभ के उदयकर दु:ख प्राप्त भया। केवल सीताहीकूं दु:ख न भया।

सुख अथवा दुख जो प्राप्त होना होय सो स्वयमेव ही किसी निमित्तसूं आय प्राप्त होय है। हे प्रभो! जो कोई किसीकूं आकाशविषै ले जाय अथवा क्रूर जीवों के भरे वनविषै डारे अथवा गिरि के शिखर धरे तो भी पूर्व पुण्यकर प्राणी की रक्षा होय है। सब ही प्रजा दुखकर तप्तायमान है, आंसुओं के प्रवाहकर मानों हृदय गल गया है सोई झरै है। यह वचन कह लक्ष्मण भी अत्यन्त व्याकुल होय रुदन करने लगा? जैसा दाह का मारया कमल होय तैसा होय गया है मुखकमल जाका। हाय माता! तू कहां गई! दुष्टजनों के वचनरूप अग्निकर प्रज्वलित है शरीर जिनका, हे गुणरूप धान्य के उपजावने की भूमि? बारह अनुप्रेक्षा के चिंतवन की करणहारी है, शीलरूप पर्वत की पृथ्वी है, सीते! सौम्य स्वभाव की धारक है। विवेकिनी, दुष्टों के वचन सोई भए तुषार तिनकर दाहा गया है हृदय कमल जाका, राजहंस श्रीराम तिनके प्रसन्न करिवेकूं मानसरोवर समान, सुभद्रा सारिखी कल्याणरूप, सर्व आचारविषै प्रवीण, लोककूं मूर्तिवन्त सुख की आशिखा, हे श्रेष्ठे! तू कहां गई? जैसे सूर्य बिना आकाश की शोभा कहां अर चन्द्रमा बिना निशा की शोभा कहां? तैसे हे माता! तो बिना अयोध्या की शोभा कहां?

इस भांति लक्ष्मण विलाप कर रामसूं कहे हैं – हे देव! समस्त नगर बीण बांसुरी मृदंगादि की

ध्वनिकर रहित भया है, अहर्निश रुदन की ध्वनि कर पूर्ण है। गली गलीविषै, वन उपवनविषै, नदियों के तटविषै चौहटेविषै, हाट हाटविषै, घर घरविषै, समस्त लोक रुदन करै हैं। तिनके अश्रुपात की धारा कर कीच होय रही है। मानों अयोध्याविषै वर्षा काल ही फिर आया है। समस्त लोक आंसू डारते गद्‌गद वाणी कर कष्टसूं वचन उचारते, जानकी प्रत्यक्ष नहीं है परोक्ष ही है, तो भी एकाग्रचित भए गुण कीर्तिरूप पुष्पों के समूह कर पूजै हैं। वह सीता पतिव्रता समस्त सतियों के सिर पर विराजे है, गुणोंकर महा उज्ज्वल। उसके यहां आवने की अभिलाषा सबकूं है। यह सर्व लोक माता ने ऐसे पाले है जैसे जननी पुत्रकूं पाले। सो सब ही महा शोककर गुण चितार चितार रुदन करे हैं।

ऐसा कौन है जाके जानकी का शोक न होय, तातैं हे प्रभो! तुम सब बातोंविषै प्रवीण हो अब पश्चाताप तजहु। पश्चातापसूं कछु कार्य की सिद्धि नाहीं, जो आपका चित्त प्रसन्न है तो सीताकूं हेरकर बुलाय लेंगे। अर उनकूं पुण्य के प्रभावकर कोई विघ्न नहीं। आप धीर्य अवलम्बन करिवे योग्य हो।

या भांति लक्ष्मण के वचनकर रामचन्द्र प्रसन्न भए। कछु एक शोक तज कर्त्तव्यविषै मन धर्‍या। भद्र कलश भण्डारीकूं बुलाय कर कही – तुम सीता की आज्ञा सूं जिस विधि किमिच्छा दान करते थे तैसे ही दिया करो। सीता के नामसूं दान बटे। तब भंडारी ने कही जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। नव महीने अर्थियों कूं किमिच्छा दान बटिवो किया। राम के आठ हजार स्त्री तिनकर सेवमान तो भी एक क्षणमात्र भी मनकर सीताकूं न विसारता भया। सीता सीता यह आलाप सदा होता भया। सीता के गुणोंकर मोह्या है मन जाका, सर्वदिशा सीतामई देखता भया। स्वप्नविषै सीताकूं या भांति देखै – पर्वत की गुफाविषै पड़ी है, पृथ्वी को रजकरि मंडित है, अर नेत्रनि के अश्रुपात कर चौमासा कर राख्या है, महाशोककर व्याप्त है।

या भांति स्वप्नविषै अवलोकन करता भया। सीता का शब्द करता राम ऐसा चिंतवन करै है – देखो, सीता सुन्दर चेष्टा की धरणहारी, दूर देशान्तरविषै है तो भी मेरे चित्तसूं दूर न होय है। वह साधवी शीलवती मेरे हितविषै सदा उद्यमी। या भांति सदा चितारवो करै। अर लक्ष्मण के उपदेश कर, अर सूत्र सिद्धांत के श्रवण कर कछूइक रामकूं शोक क्षीण भया, धीर्यकूं धरि धर्मध्यानविषै तत्पर भया।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै है। वे दोनों भाई महा न्यायवंत अखण्ड प्रीति के धारक, प्रशंसा योग्य गुणों के समुद्र राम के हल मूसल का आयुध, लक्ष्मण के चक्रायुध, समुद्र पर्यंत पृथ्वीकूं भली भांति पालते सन्ते, सौधर्म ईशान इन्द्र सारिखे शोभते भए। वे दोनों धीरवीर

स्वर्ग समान जो अयोध्या ताविषै देवों समान ऋद्धि भोगते, महाकांति के धारक, पुरुषोत्तम पुरुषों के इन्द्र देवेन्द्र समान राज्य करते भए। सुकृत के उदयसूं सकल प्राणियोंकूं आनन्द देयवेविषै चतुर, सुन्दर चरित्र जिनके, सुख सागरविषै मग्न, सूर्य समान तेजस्वी, पृथ्वीविषै प्रकाश करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रामकूं सीता का शोक वर्णन करने वाला निन्याननेवाँ पर्व संपूर्ण भया।।99।।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं – रे नराधिप! राम लक्ष्मण तो अयोध्याविषै तिष्ठे हैं अर अब लवणांकुश का वृत्तांत कहै हैं – सो सुनो। अयोध्या के सब ही लोक सीता के शोकसूं पांडुताकूं प्राप्त भये, अर दुर्बल होय गये। अर पुण्डरीकपुरविषै सीता गर्भ के भारकर कछूएक पांडुताकूं प्राप्त भई, अर दुर्बल भई। मानूं सकल प्रजा महापवित्र उज्ज्वल इसके गुण वर्णन करै है। सो गुणों की उज्ज्वलता कर श्वेत होय गई है। अर कुचों की बीटली श्यामताकूं प्राप्त भई, सो मानूं माता के कुच पुत्रों के पान करिवे के पय के घट हैं सो मुद्रित कर राखे हैं। अर दृष्टि क्षीरसागर समान उज्ज्वल अत्यन्त मधुरता कूं प्राप्त भई। अर सर्वमंगल के समूह का आधार जिनका शरीर, सर्वमंगल का स्थानक जो निर्मल रत्नमई आंगण ताविषै मंद मंद विचरे सो चरणों के प्रतिबिंब ऐसे भासै मानूं पृथ्वी कमलनिसूं सीता की सेवा ही करै है। अर रात्रिविषै चन्द्रमा याके मन्दिर ऊपर आय निकसै सो ऐसा भासै मानूं सुफेद छत्र ही है।

अर सुगन्ध के महिलविषै सुन्दर सेज ऊपर सूती ऐसा स्वप्न देखती भई कि महागजेन्द्र कमलों के पुटविषै जल भरकर अभिषेक करावै है, अर बारम्बार सखीजनों के मुख जय जयकार शब्द सुनकर जाग्रत होय है, परिवार के लोक समस्त आज्ञारूप प्रवर्तै हैं। क्रीड़ाविषै भी यह आज्ञा भंग न सह सकैं। सब आज्ञाकारी भए, शीघ्र ही आज्ञा प्रमाण करै हैं तो भी सबों पर तेज करै हैं। काहेसूं? कि तेजस्वी पुत्र गर्भविषै तिष्ठे हैं। अर मणियों के दर्पण निकट है तो भी खड्गविषै मुख देखै हैं। अर वीणा, बांसुरी, मृदंगादि अनेक वादित्रों के नाद होय हैं, सो न रुचे, अर धनुष के चढ़ायवे की ध्वनि रुचै है। अर सिंहों के पिंजरे देख जिनके नेत्र प्रसन्न होय अर जिनका मस्तक जिनेन्द्र टार औरकूं न नमैं।

अथानन्तर नव महीना पूर्ण भये श्रावण सुदी पूर्णमासी के दिन, श्रवण नक्षत्र के विषै वह मंगलरूपिणी सर्व लक्षण पूर्ण शरद की पूनों के चन्द्रमा समान है वदन जिनका, सुखसूं पुत्रयुगल जनती भई। सो पुत्रों के जन्मविषै पुण्डरीकपुर की सकल प्रजा अति हर्षित भई। मानूं नगरी नाच उठी, ढोल नगारे आदि अनेक प्रकार के वादित्र बाजने लगे, शंखों के शब्द भये। राजा वज्रजंघ ने अति उत्साह किया, बहुत सम्पदा याचकनिकूं दई। अर एक का नाम अनंगलवण दूजे का नाम

मदनांकुश ये यथार्थ नाम धरे। फिर ये बालक वृद्धिकूं प्राप्त भए। माता के हृदयकूं अति आनन्द के उपजावनहारे महाधीर शूरवीर ताके अंकुर उपजे।

सरसूं के दाणे इनकी रक्षा के निमित्त इनके मस्तक डारे सो ऐसे सोहते भए मानूं प्रतापरूप अग्नि के कण ही हैं। जिनका शरीर तापे सुवर्ण समान अति देदीप्यमान, सहज स्वभाव तेजकर अति सोहता भया। अर जिनके नख दर्पणसमान भासते भए। प्रथम बाल-अवस्थाविषै अव्यक्त शब्द बोले सो सर्वलोक के मनकूं हरैं। अर इनकी मंद मुसकान महामनोग्य पुष्पों के विकसने समान लोकन के हृदयकूं मोहती भई। अर जैसे पुष्पनि की सुगन्धता भ्रमरों के समूहकूं अनुरागी करै तैसे इनकी वासना सबके मनकूं अनुरागरूप करती भई। यह दोनों माता का दूध पान कर पुष्ट भए। अर जिनका मुख महासुन्दर सुफेद दांतों कर अति सोहता भया। मानूं यह दांत दुग्ध समान उज्ज्वल हास्यरस समान शोभायमान दीखै है। धाय की आंगरी पकड़ आगनविषै पांव धरते कौन का मन न हरते भए? जानकी ऐसे सुन्दर क्रीड़ा के करणहारे कुमारोंकूं देखकर समस्त दुःख भूलि गई।

बालक बड़े भए। अति मनोहर, सहज ही सुन्दर है नेत्र जिनके, विद्या के पढ़ने योग्य भए। तब इनके पुण्य के योगकर एक सिद्धार्थनामा क्षुल्लक शुद्धात्मा पृथ्वीविषै प्रसिद्ध वज्रजंघ के मन्दिर आया। सो महाविद्या के प्रभाव कर त्रिकाल संध्याविषै सुमेरुगिरि के चैत्यालय बंदि आवे। प्रशांतवदन, साधु समान है भावना जाके, अर खंडितवस्त्र मात्र है परिग्रह जाके, उत्तम अणुव्रत का धारक, नाना प्रकार के गुणनिकर शोभायमान, जिनशासन के रहस्य का वेत्ता, समस्त कलारूप समुद्र का पारगामी, तपकरि मंडित अति सोहै। सो आहार के निमित्त भ्रमता संता जहां जानकी तिष्ठे हुती वहां आया। सीता महासती मानों जिनशासन की देवी पद्मावती ही है। सो क्षुल्लककूं देख अति आदर से उठकर सन्मुख जाय इच्छाकार करती भई, अर उत्तम अन्नपान से तृप्त किया। सीता जिनधर्मियोंकूं अपने भाई समान जानै है। सो क्षुल्लक अष्टांग निमित्तज्ञान का वेत्ता दोनों कुमारनिकूं देखकर अति संतुष्ट होयकर सीता से कहता भया - हे देवी! तुम सोच न करो, जिसके ऐसे देवकुमार समान प्रहस्त पुत्र उसे कहा चिंता ?

अथानन्तर यद्यपि क्षुल्लक महा विरक्तचित्त है तथापि दोनों कुमारनि के अनुराग से कई एक दिन तिनके निकट रहा। थोड़े दिनों में कुमारनिकूं शस्त्रविद्याविषै निपुण किया। सो कुमार ज्ञान विज्ञान विषै पूर्ण, सर्व कला के धारक, गुणनि के समूह, दिव्यास्त्र के चलायवे अर शत्रुओं के दिव्यास्त्र आवैं तिनके निराकरण करिवे की विद्याविषै प्रवीण होते भए। महापुण्य के प्रभावसूं परम शोभाकूं धारैं, महालक्ष्मीवान, दूर भए हैं मति श्रुति आवरण जिनके, मानों उघड़े निधि के कलश ही हैं। शिष्य बुद्धिमान होंय तब गुरुकूं पढ़ायवे का कछू खेद नाहीं।

जैसे मंत्री बुद्धिमान होंय तब राजाकूं राज्यकार्य का कछु खेद नाहीं अर जैसे नेत्रवान पुरुषनिकूं सूर्य के प्रभावकर घटपटादिक पदार्थ सुखसूं भासैं, तैसे गुरु के प्रभावकर बुद्धिवंतकूं शब्द अर्थ सुखसूं भासैं। जैसे हंसनिकूं मानसरोवरविषै आवते कछु खेद नाहीं तैसे विवेकवान् विनयवान बुद्धिमानकूं गुरुभक्ति के प्रभावसूं ज्ञान आवते परिश्रम नाहीं। सुखसूं अति गुणनि की वृद्धि होय है। अर बुद्धिमान् शिष्यनिकूं उपदेश देय गुरु कृतार्थ होय हैं। अर कुबुद्धिकूं उपदेश देना वृथा है, जैसे सूर्य का उद्योत घूघूओकूं वृथा है। यह दोनों भाई दैदीप्यमान है यश जिनका अति सुन्दर, महाप्रतापी सूर्य की न्याईं जिनकी ओर कोऊ विलोक न सके, दोऊ भाई चन्द्र सूर्य समान, दोनोंविषै अग्नि कर पवन समान प्रीति, मानूं वह दोनों ही हिमाचल विंध्याचल समान हैं, वज्रवृषभनाराचसंहनन है जिनके, सर्व तेजस्वीनि के जीतिवेकूं समर्थ, सब राजावों का उदय अर अस्त जिनके आधीन होयगा, महाधर्मात्मा, धर्म के धारी, अत्यन्त रमणीक, जगतकूं सुख के कारण, सब जिनकी आज्ञाविषै। राजा ही आज्ञाकारी तो औरनि की कहा बात? काहूंकूं आज्ञारहित न देख सक्या।

अपने पांवनि के नखनिविषै अपना ही प्रतिबिम्ब देख न सकैं तो और कौन-से नम्रीभूत होंय? अर जिनकूं अपने नख अर केशों का भंग न रुचै तो अपनी आज्ञा का भंग कैसे रुचै? अर अपने सिर पर चूड़ामणि धरिये अर सिर पर छत्र फिरै अर सूर्य ऊपर होय आय निकसे तो भी न सहार सकें तो औरनि की ऊंचता कैसे संहारै? मेघ का धनुष चढ़ा देख कोप करैं तो शत्रु के धनुष की प्रबलता कैसे देख सके? चित्राम के नृप न नमैं तो भी सहार न सकैं तो साक्षात् नृपों का गर्व कब देख सकैं ? अर सूर्य नित्य उदय अस्त होय उसे अल्प तेजस्वी गिनैं। अर पवन महा बलवान है परन्तु चंचल सो उसे बलवान न गिनैं, जो चलायमान सो बलवान काहे का? जो स्थिरभूत अचल सो बलवान्। अर हिमवान पर्वत उच्च है स्थिरीभूत है, परन्तु जड़ अर कठोर कंटक सहित है तातैं प्रशंसा योग्य न गिनैं। अर समुद्र गम्भीर है रत्नों की खान है परन्तु क्षार अर जलचर जीवों को धरै, अर शंखोंकर युक्त तातैं समुद्र कूं तुच्छ गिनैं। महा गुणनि के निवास, अति अनुपम जेते प्रबल राजा हुते तेज रहित होय उनकी सेवा करते भये।

ये महाराजाओं के राजा सदा प्रसन्नवदन मुखसूं अमृत बचन बोलैं, सबनिकर सेवने योग्य जे दूरवर्ती दुष्ट भूपाल हुते ते अपने तेजकर मलिन वदन किए सब मुरझाय गए। इनका तेज ये जब जन्मे तब से इनके साथ ही उपज्या है। शस्त्रनि के धारणकर जिनके कर अर उदर श्यामताकूं धरै हैं, अर मानूं अनेक राजावों के प्रतापरूप अग्नि के बुझावनेसूं श्याम हैं। समस्त दिशारूप स्त्री वशीभूत कर देनेवाली भईं, महधीर धनुष के धारक तिनके सब आज्ञाकारी भए। जैसा लवण तैसा

ही अंकुश। दोनों भाइनिविषै कोई कमी नहीं। ऐसा शब्द पृथ्वीविषै सबके मुख। ये दोनों नवयौवन, महा सुन्दर, अद्‌भुत चेष्टा के धरणहारे, पृथ्वीविषै प्रसिद्ध, समस्त लोकनिकर स्तुति करिवे योग्य, जिनके देखिवे की सबके अभिलाषा, पुण्य परमाणुनिकर रचा है पिंड जिनका, सुख का कारण है दर्शन जिनका, स्त्रियों के मुखरूप कुमुद तिनके प्रफुल्लित करने को शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान सोहते भए। माता के हृदय कूं आनन्द के मन्दिर ये कुमार सूर्यसमान कमल नेत्र, देवकुमार सारिखे, श्रीवत्स लक्षणकर मंडित है वक्षस्थल जिनका अनंत पराक्रम के धारक, संसार समुद्र के तट आए, चरम शरीर, परस्पर महाप्रेम के पात्र, सदा धर्म के मार्ग में तिष्ठे हैं, देवनि का अर मनुष्यनि का मन हरै हैं।

भावार्थ – जो धर्मात्मा होय सो काहू का कुछ न हरै। ये धर्मात्मा परधन परस्त्री तो न हरैं परन्तु पराया मन हरैं। इनकूं देख सबनि का मन प्रसन्न होय। ये गुणनिकी हदकूं प्राप्त भए हैं। गुण नाम डोरे का भी है, सो हद पर गांठकूं प्राप्त होय हैं। अर इनके उरविषै गांठ नाहीं, महानिष्कपट हैं। अपने तेजकर सूर्यकूं जीतै हैं, अर कांतिकर चन्द्रमाकूं जीतै हैं। अर पराक्रमकर इन्द्रकूं, अर गम्भीरता कर समुद्रकूं, स्थिरताकर सुमेरुकूं, अर क्षमाकर पृथ्वीकूं अर शूरवीरताकर सिंहकूं, चालकर हंसकूं जीतै हैं। अर महा जलविषै मकर ग्राह नक्रादिक जलचरनिसूं क्रीड़ा करै हैं। अर माते हाथियोंसूं तथा सिंह अष्टापदोंसूं क्रीड़ा करते खेद न गिनैं। अर महा सम्यक्‌दृष्टि, उत्तम स्वभाव, अति उदार उज्ज्वल भाव, जिनसूं कोई युद्ध न कर सकै, महायुद्धविषै उद्यमी जे कुमार सारिखे, मधुकैटभ सारिखे, इन्द्रजीत मेघनाद सारिखे योधा, जिनमार्गी, गुरुसेवाविषै तत्पर, जिनेश्वर की कथाविषै रत, जिनका नाम सुन शत्रुवों को त्रास उपजै।

यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहते भए – हे राजन्! ते दोनों वीर महाधीर गुणरूप रत्न के पर्वत महा ज्ञानवान, लक्ष्मीवान, शोभा कांति कीर्ति के निवास, चित्तरूप माते हाथी के वश करिवेकूं अंकुश, महाराजरूप मन्दिर के दृढ़ स्तम्भ, पृथ्वीक सूर्य, उत्तम आचरण के धारक, लवण अंकुश नरपति विचित्र कार्य के करणहारे, पुण्डरीकनगरविषै यथेष्ट देवनि की न्याईं रमै। महाउत्तम पुरुष जिनके निकट, जिनका तेज लख सूर्य भी लज्जावान होय। जैसे बलभद्र नारायण अयोध्याविषै रमैं तैसैं यह पुण्डरीकपुरविषै रमैं हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लवणांकुश का पराक्रम वर्णन करने वाला एक सौवाँ पर्व संपूर्ण भया।।100।।

अथानन्तर अति उदार क्रियाविषै योग्य, अति सुन्दर तिनकूं देख वज्रजंघ इनके परणायवेविषै उद्यमी भया। तब अपनी शशिचूला नामा पुत्री लक्ष्मीराणी के उदरविषै उपजी बत्तीस कन्या सहित

लवणकुमारकूं देनी विचारी। अर अंकुश कुमार का भी विवाह लार ही करना, सो अंकुशयोग्य कन्या ढूंढ़िवेकूं चिंतावान भया। फिर मनविषै विचारी पृथ्वीपुर नगर का राजा पृथु ताकी राणी अमृतवती, ताकी पुत्री कनकमाला, चन्द्रमा की किरण समान निर्मल, अपने रूपकर लक्ष्मीकूं जीतै है। वह मेरी पुत्री शशिचूला समान है। यह विचार तापै दूत भेज्या। सो दूत विचक्षण पृथ्वीपुर जाय पृथुसूं कही। जौं लग दूत ने कन्यायाचन के शब्द न कहै तौंलग उसका अति सन्मान किया। अर जब याने याचने का वृत्तांत कहा तब वह क्रोधायमान भया अर कहता भया – तू पराधीन है, अर पराई कहाई कहै हैं। तुम दूत लोग जल के धारा समान हो, जा दिशा चलावे वाही दिश चलो। तुमविषै तेज नाहीं, बुद्धि नाहीं। जो ऐसे पाप के वचन कहै ताकूं निग्रह करूं। पर तू पराया प्रेरा यंत्र समान है। यन्त्री बजावे है त्यों बाजै, तातैं तू हनिवे योग्य नाहीं।

हे दूत! 1 कुल, 2 शील, 3 धन, 4 रूप 5 समानता, 6 बल, 7 वय, 8 देश, 9 विद्या ये नव गुण वर के कहे हैं। तिनविषै कुल मुख्य है, सो जिनका कुल ही न जानिये, तिनकूं कन्या कैसे दीजिए? तातैं ऐसी निर्लज्ज बात कहै है सो राजा नीतिसूं प्रतिकूल है। सो कुमारी तो मैं न द्यूं अर कु कहिए खोटी मारी कहिये मृत्यु सो द्यूं। या भांति दूतकूं विदा किया। सो दूत ने आयकर वज्रजंघकूं ब्यौरा कह्या। सो वज्रजंघ आप ही चढ़कर आधी दूर आय डेरा किये। अर बड़े पुरुषनिकूं भेज बहुरि पृथुसूं कन्या याची। ताने न दई। तब राजा वज्रजंघ पृथु का देश उजाड़ने लगा, अर देश का रक्षक राजा व्याघ्ररथ ताहि युद्धविषै जीति बांध लिया। तब राजा पृथु ने सुना कि व्याघ्ररथकूं राजा वज्रजंघ बांधा अर मेरा देश उजाड़े है तब पृथु ने अपना परम मित्र पोदनापुर का पति परम सेनासूं बुलाया। तब वज्रजंघ ने पुण्डरीकपुरसूं अपने पुत्र बुलाए।

तब पिता की आज्ञा पाय पुत्र शीघ्र ही चलिवेकूं उद्यमी हुए। नगरविषै राजपुत्रनि के कूच का नगारा बाजा। तब सामन्त बख्तर पहिरे आयुध सजकर युद्ध के चलिवेकूं उद्यमी भए। नगरविषै अति कोलाहल भया, पुण्डरीकपुरविषै जैसा समुद्र गाजै ऐसा शब्द भया। तब सामन्तनि के शब्द सुन लवण अर अंकुश निकटवर्तीनिकूं पूछते भए यह कोलाहल शब्द काहे का है? तब काहू ने कही अंकुश कुमार के परणायवे निमित्त वज्रजंघ राजा ने पृथु की पुत्री याची हुती, सो ताने न दई। तब राजा युद्धकूं चढ़े। अर राजा अपनी सहायता के अर्थ अपने पुत्रनिकूं बुलाया है, अर सेना बुलाई है सो यह सेना का शब्द है। यह समाचार सुन कर दोऊ भाई आप युद्ध के अर्थ अति शीघ्र ही जायवेकूं उद्यमी भए। कैसे हैं कुमार? आज्ञाभंगकूं नाहीं सह सकै हैं। तब राजा वज्रजंघ के पुत्र इनकूं मनैं करते भए, अर सर्व राजलोक मनैं करते भए, तौ हू इन न मानी। तब सीता पुत्रनि के स्नेहकर द्रवीभूत हुवा है मन जाका सो पुत्रनिकूं कहती भई – तुम बालक हो, तिहारा युद्ध का समय नाहीं।

तब कुमार कहते भए – हे माता! तू यह कहा कही? बड़ा भया अर कायर भया तो कहा? यह पृथ्वी योधानिकर भोगवे योग्य है। अर अग्नि का कण छोटा ही होय है अर महावनकूं भस्म करै है। या भांति कुमार ने कही। तब माता इनकूं सुभट जान आंखों से हर्ष अर शोक के किंचित् मात्र अश्रुपात करती भई। ये दोऊ वीर महाधीर स्नान भोजन कर आभूषण पहिरे, मन वचन काय कर सिद्धनिकूं नमस्कार कर बहुरि माताकूं प्रणामकर, समस्त विधिविषै प्रवीण घरतैं बाहिर आए। तब भले भले शकुन भए। दोऊ रथ चढ़ सम्पूर्ण शस्त्रनिकर युक्त शीघ्रगामी तुरंग जोड़ पृथुपर चाले। महा सेनाकर मंडित, धनुषबाण ही हैं सहाय जिनके, महा पराक्रमी, परम उदारचित्त, संग्राम के अग्रेसर, पांच दिवस में वज्रजंघ पै जाय पहुंचे।

तब राजा पृथु शत्रुनि की बड़ी सेना आई सुन आप भी बड़ी सेनासहित नगर से निकस्या। जाके भाई, मित्र पुत्र, मामा के पुत्र, सब ही परम प्रीतिपात्र, अर अंगदेश, बंगदेश, मगध देश आदि अनेक देशनि के बड़े बड़े राजा तिन सहित, रथ तुरंग हाथी पयादे बड़े कटक सहित, वज्रजंघ के सामंत परसेना के शब्द सुन युद्धकूं उद्यमी भए। दोऊ सेना समीप भई। तब दोऊ भाई लवणांकुश महा उत्साहरूप परसेनाविषै प्रवेश करते भए। वे दोऊ योधा महा कोपकूं प्राप्त भए, अतिशीघ्र है परावर्त जिनका, परसेनारूप समुद्रविषै क्रीड़ा करते सब ओर परसेना का निपात करते भए। जैसे बिजली का चमत्कार जिस ओर चमके उस ओर चमक उठे, तैसे सब ओर मार मार करते भए। शत्रुनितैं न सहा जाय पराक्रम जिनका, धनुष पकड़ते बाण चलाते दृष्टि न पड़े अर बाणनि कर हते अनेक दृष्टि पड़े। नाना प्रकार के क्रूर बाण तिनकरि वासनसहित परसेना के अनेक घोड़ा पीड़े पृथ्वी दुर्गम्य होय गई, एक निमिष में पृथु की सेना भागी, जैसे सिंह के त्राससूं मदोन्मत्त गजनी के समूह भागैं। एक क्षणमात्र में पृथु की सेनारूप नदी, लवणांकुशरूप सूर्य, तिनके बाणरूप किरणनिकरि शोककूं प्राप्त भई। कई एक मारे पड़े। कई एक भयतैं पीड़ित होय भागे, जैसे आक के फूल उड़े उड़े फिरैं।

राजा पृथु सहायरहित खिन्न होय भागवेकूं उद्यमी भया। तब दोऊ भाई कहते भए – हे पृथु! हम अज्ञातकुल शील, हमारा कुल कोऊ जाने नाहीं, तिनपैं भागता तू लज्जावान न होय है? तू खड़ा रह, हमारा कुल शील तौहि बाणनिकर बतावैं। तब पृथु भागता हुता सो पीछा फिर हाथ जोड़ नमस्कार कर स्तुति करता भया। तुम महा धीर वीर हो मेरा अज्ञानताजनित दोष क्षमा करहु। मैं मूर्ख तिहारा माहात्म्य अब तक न जाना हुता। महा धीरवीरनि का कुल या सामंतताही तैं जान्या जाय है। कछु वाणी के कहे न जान्या जाय है। सो अब मैं नि:संदेह भया। वन के दाहकूं समर्थ जो अग्नि सो तेज ही तैं जानी जाय है। सो आप परम धीर महाकुलविषै उपजे हमारे स्वामी

हो। महाभाग्य के योग्य तिहारा दर्शन भया। तुम सबकूं मनवांछित सुख के दाता हो या भांति पृथु ने प्रशंसा करी।

तब दोऊ भाई नीचे होय गए, अर क्रोध मिट गया, शांत मन अर शांत सुख होय गए। वज्रजंघ कुमारनि के समीप आया, अर सब राजा आए। कुमारनि के अर पृथु के प्रीति भई। जे उत्तम पुरुष हैं वे प्रणाममात्र ही करि प्रसन्नताकूं प्राप्त होय हैं। जैसैं नदी का प्रवाह नम्रीभूत जे बेल तिनकूं न उपाड़े, अर जे महा वृक्ष नम्रीभूत नाहीं तिनकूं उपाड़े। फिर राजा वज्रजंघकूं अर दोऊ कुमारनिकूं पृथु नगरविषै ले गया। दोऊ कुमार आनन्द के कारण। मदनांकुशकूं अपनी कन्या कनकमाला महाविभूति सहित पृथु ने परणाई। एक रात्रि यहां रहे फिर ये दोऊ भाई विचक्षण दिग्विजय करिवेकूं निकसे। सुहृद्यदेय, मगधदेश, अंगदेश, बंगदेश जीति पोदनापुर के राजाकूं आदि दे अनेक राजा संग ले लोकाक्ष नगर गए। वातरफ के बहुत देश जीते।

कुबेरकांत नामा राजा अतिमानी ताहि ऐसा वश किया जैसे गरुड़ नागकूं जीतैं। सत्यार्थपनेतैं दिन दिन इनकैं सेना बढ़ी, हजारां राजा वश भए, अर सेवा करने लगे। फिर लंपाक देश गए। वहां करण नामा राजा अति प्रबल, ताहि जीतकर विजयस्थलकूं गए। वहां के राजा सौ भाई, तिनकूं अवलोकनमात्रतैं ही जीति गंगा उतर कैलाश की उत्तर दिशा गए। वहां के राजा नाना प्रकार की भेंट ले आय मिले। झष कुंतल नामा देश तथा सालायं नन्दि नन्दन समुद्र के तट के राजा अनेकनिकूं नमाये। अनेक नगर, अनेक खेट, अनेक अटम्ब, अनेक देश, वश कीये। भीरुदेश, यवन, कच्छ, चारव, त्रजट, नट, सक्र, केरल, नेपाल, मालव, अरल, सर्बर, त्रिशिर पार, शैल, गोशाल, कुसीनर, सूरपाक, सनर्त विधि शूरसैन, बाह्लीक, उलूक, कौशल, गांधार, सौवीर, अन्ध्रकाल, कलिंग इत्यादि अनेक देश वश किये। कैसे हैं देश ? जिनविषै नाना प्रकार की भाषा अर वस्त्रनि का भिन्न भिन्न पहराव, अर जुदे जुदे गुण, नाना प्रकार के रत्न अनेक जाति के वृक्ष जिनविषै अर नाना प्रकार स्वर्ण आदि धन के भरे।

कई एक देशनि के राजा प्रताप हीतैं आय मिले। कई एक युद्धविषै जीति वश किये, कई एक भाग गये। बड़े बड़े राजा देशपति अति अनुरागी होय लवणांकुश के आज्ञाकारी होते भये। इनकी आज्ञा प्रमाण पृथ्वीविषै विचरै। वे दोनों भाई पुरुषोत्तम पृथ्वीकूं जीत हजारां राजनि के शिरोमणि होते भए। सबनिकूं वशकर लार लिए, नाना प्रकार की सुन्दर कथा करते, सबका मन हरते पुण्डरीकपुर कूं उद्यमी भए। वज्रजंघ लार ही है। अति हर्ष के भरे अनेक राजनि की अनेक प्रकार भेंट आई सो महाविभूतिकूं लिए अतिसेना कर मण्डित पुण्डरीकपुर के समीप आए। सीता सतखणे महिल चढ़ी देखे हैं, राजलोक की अनेक राणी समीप हैं अर उत्तम सिंहासन पर तिष्ठे हैं। दूर से

अति सेना की रज के पटल उठे देख सखीजनकूं पूछती भई – यह दिशाविषै रज का उडाव कैसा है।

तब तिन कही – हे देवी! सेना की रज है जैसे जलविषै मकर किलोल करै तैसे सेनाविषै अश्व उछलते आवै है। हे स्वामिनि! ये दोनों कुमार पृथ्वी वशकर आए। या भांति सखीजन कहे हैं, अर बधाई देनहारे आए, नगर की अति शोभा भई, लोकनिकूं अति आनन्द भया, निर्मल ध्वजा चढ़ाई, समस्त नगर सुगन्धकर छांटा, अर वस्त्र आभूषणनिकर शोभित किया, दरवाजे पर कलश थापै, सो कलश पल्लवनिकरि ढके, अर ठौर ठौर बन्दनमाला शोभायमान दिखती भई, अर हाट बाजार पांटवरादि वस्त्रकर शोभित भए। जैसी श्रीराम लक्ष्मण के आए अयोध्या की शोभा भई हुती तैसे ही पुण्डरीकपुर की शोभा कुमारनि के आएसूं भई। जादिन महाविभूतिसूं प्रवेश किया तादिन नगर के लोगनिकूं जो हर्ष भया सो कहिवेविषै न आवै। दोऊ पुत्र कृतकृत्य, तिनकूं देखकर सीता आनन्द के सागरविषै मग्न भई। दोऊ वीर महाधीर आयकर हाथ जोड़ माताकूं नमस्कार करते भए। सेना की रजकरि धूसरा है अंग जिनका। सीता ने पुत्रनिकूं उरसूं लगाय माथे हाथ धरा। माताकूं अति आनन्द उपजाय दोऊ कुमार चांद सूर्य की न्याईं लोकविषै प्रकाश करते भये।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लवणांकुश दिग्विजय वर्णन करने वाला एक सौ एकवाँ पर्व संपूर्ण भया।।101।।

अथानान्तर ये उत्तम मानव परम ऐश्वर्य धारक प्रबल राजानि पर आज्ञा करते सुखसूं तिष्ठै। एक दिन नारद ने कृतांतवक्रकूं पूछी कि तू सीताकूं कहां मेल आया। तब ताने कही कि सिंहनाद अटवीविषै मेली। सो यह सनुकर अति व्याकुल होय ढूंढ़ता फिरे हुता सो दोऊ कुमार वनक्रीड़ा करते देखे। तब नारद इनके समीप आया। कुमार उठकर सन्मान करते भए। नारद इनकूं विनयवान देख बहुत हर्षित भया अर असीस दई जैसे राम लक्ष्मण नरनाथ के लक्ष्मी है तैसी तुम्हारे होहु।

तब ये पूछते भए कि हे देव! राम लक्ष्मण कौन हैं, अर कौन कुलविषै उपजे हैं, अर कहा उनविषै गुण हैं, अर कैसा तिनका आचरण है? तब नारद क्षण एक मौन पकड़ कहते भए, हे दोऊ कुमारो! कोई मनुष्य भुजानिकर पर्वतकूं उखाड़े अथवा अथवा समुद्रकूं तिरै तौहू राम लक्ष्मण के गुण न कहि सकै। अनेक वदननिकर दीर्घ काल तक तिनके गुण वर्णन करैं तो भी राम लक्ष्मण के गुण कह न सकै, तथापि मैं तिहारे वचनसूं किंचित्मात्र वर्णन करूं हूं, तिनके गुण पुण्य के बढ़ावनहारे हैं।

अयोध्यापुरीविषै राजा दशरथ होते भए। दुराचार रूप ईंधन के भस्म करिवेकूं अग्नि समान, अर इक्ष्वाकुवंशरूप आकाशविषै चन्द्रमा, महा तेजोमय सूर्य समान, सकल पृथ्वीविषै प्रकाश करते अयोध्याविषै तिष्ठे। वे पुरुषरूप पर्वत तिनकरि कीर्तिरूप नदी निकसी, सो सकल जगतकूं

आनन्द उपजावती समुद्र पर्यन्त विस्तारकूं धरती भई। ता दशरथ भूपति के राज्यभार के धुरन्धर ही चार पुत्र महा गुणवान भए, एक राम, दूजा लक्ष्मण, तीजा भरत, चौथा शत्रुघ्न। तिनविषै राम अति मनोहर, सर्वशास्त्र के ज्ञाता पृथ्वीविषै प्रसिद्ध। सो छोटे भाई लक्ष्मण सहित अर जनक की पुत्री जो सीता ता सहित पिता की आज्ञा पालिवे निमित्त अयोध्याकूं तज पृथ्वीविषै विहार करते दंडकवनविषै प्रवेश करते भए। सो स्थानक महाविषम, जहां विद्याधरनि के गम्यता नहीं, खरदूषणतैं संग्राम भया। रावण ने सिंहनाद किया। ताहि सुनकर लक्ष्मण की सहाय करिवेकूं राम गया। पीछेसूं सीताकूं रावण हर ले गया। तब रामसूं सुग्रीव हनुमान विराधित आदि अनेक विद्याधर भेले गये, राम के गुणनि के अनुरागकरि वशीभूत है हृदय जिनका। सो विद्याधरनिकूं लेयकरि राम लंकाकूं गए। रावणकूं जीत, सीताकूं लेय अयोध्या आए।

स्वर्गपुरी समान अयोध्या विद्याधरनि ने बनाई। तहां राम लक्ष्मण पुरुषोत्तम नागेन्द्र समान सुखसूं राज्य करैं। रामकूं तुम अब तक कैसे न जाना, जाके लक्ष्मणसा भाई, ताके हाथ सुदर्शन चक्र सो आयुध, जाके एक एक रत्न की हजार हजार देव सेवा करें। सात रत्न लक्ष्मण के, अर चार रत्न राम के जाने। प्रजा के हितनिमित्त जानकी तजी। ता रामकूं सकल लोक जानैं। ऐसा कोई पृथ्वीविषै नाहीं जो रामकूं न जाने। या पृथ्वी की कहा बात, स्वर्गविषै देवनि के समूह राम के गुण वर्णन करै हैं।

तब अंकुश ने कही – हे प्रभो! राम ने जानकी काहे तजी सो वृत्तांत मैं सुना चाहूं हूं। तब सीता के गुणनिकर धर्मानुराग में चित्त जाका ऐसा नारद सो आंसू डार कहता भया – हे कुमार हो! वह सीता सती महा कुलविषै उपजी शीलवती, गुणवती, पतिव्रता, श्रावक के आचारविषै प्रवीण, राम की आठ हजार राणी तिनकी शिरोमणि, लक्ष्मी कीर्ति धृति लज्जा तिनकूं अपनी पवित्रतातैं जीत कर साक्षात् जिनवाणी तुल्य। सो कोई पूर्वोपार्जित पाप के प्रभावकर मूढ़ लोक अपवाद करते भए। तातैं राम ने दुखित होय निर्जन वनविषै तजी। खोटे लोक तिनकी वाणी सोई भई जेठ के सूर्य की किरण, ताकर तप्तायमान वह सती कष्टकूं प्राप्त भई। महा सुकुमार, जाविषै अल्प भी खेद न सहारा पड़े। मालती की माला दीप के आतापकरि मुरझाय सो दावानल का दाह कैसे सहार सकै? महाभीम बन जाविषै अनेक दुष्ट जीव तहां सीता कैसैं प्राणिनिकूं धरै? दुष्ट जीवनि की जिह्वा भुजंग समान निरपराध प्राणिनिकूं क्यों डसै? शुभ जीवनि की निन्दा करते दुष्टनि के जीभ के सौ टूक क्यों न होवै? वह महासती पतिव्रतानि की शिरोमणि पटुता आदि अनेक गुणनिकर प्रशंसा योग्य, अत्यन्त निर्मल, महासती, ताकी जो निंदा करैं सो या भव अर परभवविषै दुखकूं प्राप्त होय। ऐसा कहकरि शोक के भारकर मौन गहि रहा, विशेष कछू न कह सक्या।

सुनकर अंकुश बोले – हे स्वामी! भयंकर वनविषै राम ने सीताकूं तजते भला न किया। यह कुलवंतों की रीति नाहीं है। लोकापवाद निवारिवे के और अनेक उपाय हैं, ऐसा अविवेक का कार्य ज्ञानवंत क्यों करैं? अंकुशतैं तो यही कही अर अनंगलवण बोल्या यहांसूं अयोध्या केतीक दूर है?

तब नारद कही – यहां से एक सौ साठ योजन है जहां राम विराजे हैं। तब दोऊ कुमार बोले– हम राम लक्ष्मण पर जावैंगे। या पृथ्वीविषै ऐसा कौन जाकी हम आगे प्रबलता? नारदसूं यह कही अर वज्रजंघसूं कही – हे मामा! सूझदेश, सिंधदेश, कलिंगदेश इत्यादि देशनि के राजानिकूं आज्ञापत्र पठावहु जो संग्राम का सब सरंजाम लेकर शीघ्र ही आवैं। हमारा अयोध्या की तरफ कूच है। अर हाथी सम्हारो मदोन्मत्त केते अर निर्मद केते? अर घोड़े वायु समान है वेग जिनका सो संग लेकर अर जे योधा रणसंग्रामविषै विख्यात कभी पीठ न दिखावैं तिनकूं लार लेवहु। सब शस्त्र सम्हारो, वक्तरनि की मरम्मत करावहु। अर युद्ध के नगाड़े दिवावहु, ढोल बजावहु, शंखनि के शब्द करावहु। सब सामंतनि कूं युद्ध का विचार प्रकट करहु। यह आज्ञाकर दोऊ वीर मनविषै युद्ध का निश्चयकरि तिष्ठे, मानों दोऊ भाई इन्द्र ही हैं। देवनि समान जे देशपति राजा तिनकूं एकत्र करिवेकूं उद्यमी भए।

तब राम लक्ष्मण पर कुमारनि की असवारी सुनि सीता रुदन करती भई। अर सीता समीप नारदकूं सिद्धार्थ कहता भया यह अशोभन कार्य तुम कहा आरम्भा? रणविषै उद्यम करिवे का है उत्साह जिनके ऐसे तुम, सो पिता अर पुत्रनिविषै क्यों विरोध का उद्यम किया? अब काहू भांति यह विरोध निवारो, कुटुम्बभेद करना उचित नाहीं। तब नारद कही मैं तो ऐसा कछू जान्या नाहीं। इन विनय किया मैं आशीस दई कि तुम राम लक्ष्मण से होवहु। इनने सुनकर पूछी राम लक्ष्मण कौन हैं? मैं सब वृत्तांत कहा। अब भी तुम भय न करहु सब नीके ही होयगा। अपना मन निश्चल करहु। कुमारिन सुनी कि माता रुदन करै है। तब दोऊ पुत्र माता के पास आय कहते भए, हे मात! तुम रुदन क्यों करो हो? सो कारण कहहु। तिहारी आज्ञाकूं कौन लोपै? असुन्दर वचन कौन कहे ता दुष्ट के प्राण हरैं। ऐसा कौन है जो सर्प की जीभतैं क्रीड़ा करै? ऐसा कौन मनुष्य अर देव जो तुमकूं असाता उपजावै?

हे माता! तुम कौन पर कोप किया है? जापर तुम कोप करहु ताकूं जानिए आयु का अन्त आया है। हम पर कृपाकर कोप का कारण कहहु। या भांति पुत्रनि विनती करी तब माता आंसू डार कहती भई। हे पुत्र! मैं काहू पर कोप न किया, न मुझे काहू ने असाता दई। तिहारा पितासूं युद्ध का आरम्भ सुनि मैं दुखित भई रुदन करूं हूं।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! तब पुत्र मातासूं पूछते भए, हे माता! हमारा पिता कौन?

तब सीता आदिसूं लेय सब वृत्तांत कह्या। राम का वंश, अर अपना वंश, विवाह का वृत्तांत, अर वन का गमन, अपना रावणकर हरण अर आगमन जो नारद ने वृत्तांत कह्या हुता सो सब विस्तारसूं कह्या कछु छिपाय न राख्या। अर कही तुम गर्भविषै आए तब ही तिहारे पिता ने लोकापवाद का भयकर सिंहनाद अटवीविषै तजी। तहां मैं रुदन करती हुती, सो राजा वज्रजंघ हाथी पकड़ने गया हुता, सो हाथी पकड़ बाहुड़े था।

मोहि रुदन करती देखी सो यह महा धर्मात्मा शीलवंत श्रावक मोहि महा आदरसूं ल्याय बड़ी बहिन का आदर जनाया अर सत् सन्मानतैं यहां राखी। मैं भाई भामंडल समान याका घर जान्या। तिहारा यहां सन्मान भया। तुम श्रीराम के पुत्र हो। राम महाराजधिराज हिमाचल पर्वतसूं लेय समुद्रांत पृथ्वी का राज्य करैं हैं। जिनके लक्ष्मण-सा भाई महा बलवान संग्रामविषै निपुण है। न जानिए नाथ की अशुभ वार्ता सुनूं अक तिहारी अथवा देवर की। तातैं आर्तचित्त भई रुदन करूं हूं। अर कोऊ कारण नाहीं। तब सुनकर पुत्र प्रसन्नवदन भए अर मातासूं कहते भये, हे माता! हमारा पिता महा धनुषधारी लोकविषै श्रेष्ठ लक्ष्मीवान विशालकीर्ति का धारक है अर अनेक अद्भुत कार्य किए हैं, परन्तु तुमकूं वनविषै तजी सो भला न किया। तातैं हम शीघ्र ही राम लक्ष्मण का मानभंग करेंगे। तुम विषाद मत करहु। तब सीता कहती भई, हे पुत्र हो! वे तिहारे गुरुजन है, उनसूं विरोध योग्य नाहीं, तुम चित्त सौम्य करहु। महा विनयवन्त होय जायकर पिताकूं प्रणाम करहु। यह ही नीति का मार्ग है।

तब पुत्र कहते भए, हे माता! हमारा पिता शत्रुभावकूं प्राप्त भया। कैसे जाय प्रणाम करैं अर दीनता के वचन कैसे कहैं? हम तो माता तिहारे पुत्र हैं तातैं रणसंग्रामविषै हमारा मरण होय तो होवो परन्तु योधानि से निन्द्य कायर वचन तो हम न कहैं। यह वचन पुत्रनि के सुन सीता मौन पकड़ रही। परन्तु चित्त में अति चिन्ता है। दोऊ कुमार स्नानकर भगवान की पूजाकरि मंगलपाठ पढ़, सिद्धनिकूं नमस्कारकरि माताकूं धीर्य बन्धाय प्रणामकरि दोऊ महा मंगलरूप हाथी पर चढ़े, मानूं चांद सूर्य गिरि के शिखर तिष्ठे हैं। अयोध्या ऊपर युद्धकूं उद्यमी भए, जैसे राम लक्ष्मण लंका ऊपर उद्यमी भए हुते।

इनका कूच सुन हजारां योधा पुण्डरीकपुरसूं निकसे, सब ही योधा अपना अपना हल्ला देते भए। वह जाने मेरी सेना अच्छी दीखै है वह जाने मेरी। महाकटक संयुक्त नित्य एक योजन कूच करैं सो पृथ्वी की रक्षा करते चले जांय हैं, किसी का कछु उजाड़े नाहीं। पृथ्वी नानाप्रकार के धान्यकरि शोभायमान है। कुमारनि का प्रताप आगे बढ़ता जाय है। मार्ग के राजा भेंट दे मिलैं हैं। दस हजार बेलदार कुदाल लिये आगे आगे चले जांय हैं, अर धरती ऊंची नीचीकूं सम करै हैं।

अर कुल्हाड़े हैं हाथविषै जिनके वे भी आगे आगे चले जाय हैं। अर हाथी, ऊंट, भैंसा, बलद, खच्चर खजाने के लदे जाय हैं। मंत्री आगे आगे चले जाय हैं। अर प्यादे हिरण की न्याईं उछलते जाय हैं। अर तुरंगनि के असवार अति तेजी से चले जाय हैं।

तुरंगनि की हींस होय रही है। अर गजराज चले जाय हैं जिनके स्वर्ण की सांकल, अर महा घण्टानि के शब्द होय हैं, अर जिनके कानों पर चमर शोभै है। अर शंखनि की ध्वनि होय रही है। अर मोतिनि की झालरी पानी के बुदबुदा समान अत्यन्त सोहै है। अर सुन्दर हैं आभूषण जिनके, महाउद्धत, जिनके उज्ज्वल दांतनि के स्वर्ण आदिक बन्ध बन्धे हैं, अर रत्न स्वर्ण आदिक की माला तिनकरि शोभायमान, चलते पर्वत समान नानाप्रकार के रंग सूं रंगे अर जिनके मद झरै हैं अर कारी घटा समान श्याम प्रचण्ड वेगकूं धरैं जिन पर पाखर परी हैं नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि शोभित हैं अर गर्जना करै हैं, अर जिन पर महादीप्ति के धारक सामन्त लोक चढ़े हैं, अर महावतनि ने अति सिखाये हैं, अपनी सेना का अर परसेना का शब्द छिपाने हैं, सुन्दर है चेष्टा जिनकी।

अर घोड़ानि के असवार बखतर पहिरे खेट नामा आयुधनिकूं धरे, वरछी है जिनके हाथविषै, घोड़ानि के समूह तिनके खुरनि के घातकर उठी जो रज ताकरि आकाश व्याप्त होय रह्या है, ऐसा सोहै है मानों सफेद बादलनिसूं मंडित है। अर पियादे शस्त्रनि के समूहकरि शोभित अनेक चेष्टा करते गर्व से चले जाय हैं। वह जाने मैं आगे चलूं, वह जाने मैं। अर शयन आसन तांबूल सुगन्ध माला महामनोहर वस्त्र आहार विलेपन नाना प्रकार की सामग्री बटती जाय है, ताकरि सबही सेना के सुखरूप हैं। काहूकूं काहू प्रकार का खेद नाहीं। अर मंजल मंजलते कुमारनि की आज्ञाकरि भले भले मनुष्यनिकूं लोक नाना प्रकार की वस्तु देवैं हैं। उनकूं यही कार्य सौंप्या है सो बहुत सावधान हैं। नाना प्रकार के अन्न जल मिष्टान्न लवण घृत, दुग्ध, दही, अनेक रस भांति भांति खाने की वस्तु आदरसूं देवैं हैं।

समस्त सेनाविषै कोई दीन बुभुक्षित तृषातुर कुवस्त्र मलिन चिन्तावान दृष्टि नाहीं पड़े है। सेना रूप समुद्र में नर नारी नाना प्रकार के आभरण पहिरे सुन्दर वस्त्रनिकर शोभायमान महा रूपवान अति हर्षित दीखैं। या भांति महाविभूति कर मण्डित सीता के पुत्र चले चले अयोध्या के देशविषै आये, मानों स्वर्गलोकविषै इन्द्र आए। जा देशविषै यव गेहूं चावल आदि अनेक धान्य फल रहे हैं, अर पौंड़े सांठेनि के बाड़े ठौर ठौर शोभै हैं। पृथ्वी अन्न जल तृण कर पूर्ण है। अर जहां नदीनि के तीर हू मुनि के समूह क्रीड़ा करै हैं, अर सरोवर कमलनि के शोभायमान हैं अर पर्वत नाना प्रकार के पुष्पनिकर सुगन्धित होय रहे हैं, अर गीतनि की ध्वनि ठौर ठौर रही है, अर गाय, भैंस, बलधनि के समूह विचर रहे हैं। अर ग्वालणी विलोवणा बिलौवे हैं, जहां नगरनि सारिखे नजीक ग्राम हैं, अर नगर ऐसे शोभैं हैं मानों सुरपुर ही हैं।

महा तेजकरि युक्त लवणांकुश देश की शोभा देखते अति नीति से आये। काहूकूं काहू की प्रकार का खेद न भया। हाथिनि के मद झरिवेकरि पंथविषै रज दब गई, कीच होय गयी। अर चंचल घोड़नि के खुरनि के घातकरि पृथ्वी जर्जरी होय गई। चले चले अयोध्या के समीप आए। दूर से संध्या के बादलनि के रंग समान अति सुन्दर अयोध्या देख वज्रजंघकूं पूछी – हे मामा! यह महाज्योति रूप कौन–सी नगरी है? तब वज्रजंघ ने निश्चयकर कही, हे देव! यह अयोध्या नगरी है। जाके स्वर्णमई कोट तिनकी यह ज्योति भासै है। या नगरीविषै तिहारा पिता बलदेव स्वामी विराजै है, जाके लक्ष्मण अर शत्रुघ्न भाई। या भांति वज्रजंघ ने कही। अर दोऊ कुमार शूरवीरता की कथा करते हुए सुखसूं आय पहुंचे। कटक के अर अयोध्या के बीच सरयू नदी रही। दोऊ भाईनि के यह इच्छा कि शीघ्र ही नदी को उतर नगरी लेवैं। जैसैं कोई मुनि शीघ्र ही मुक्त हुवा चाहै, ताहि मोक्ष की आशारूप नदी यथाख्यातचारित्र होने न देय, आशारूप नदीकूं तिरै तब मुनि मुक्त होय। तैसैं सरयू नदी के योग से शीघ्र ही नदीतैं पार उतरि नगरीविषै न पहुंच सके। तब जैसे नन्दन वनविषै देवनि की सेना उतरै तैसैं नदी के उपवनविषै ही कटक के डेरा कराए।

अथानन्तर परसेना निकट आई सुन राम लक्ष्मण आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर दोनों भाई परस्पर बतलावे ये कोई युद्ध के अर्थ हमारे निकट आए है सो मूवा चाहै हैं। वासुदेव ने विराधितकूं आज्ञा करी युद्ध के निमित्त शीघ्र ही सेना भेली करो, ढील न होय। जिन विद्याधरनि के कपियों की ध्वजा, अर हाथिनि की ध्वजा, अर बैलनि की ध्वजा, सिंहनि की ध्वजा इत्यादि अनेक भांति की ध्वजा तिनकूं वेग बुलाओ। सो विराधित ने कही जो आज्ञा होयगी सोई होयगा। उस ही समय सुग्रीवादिक अनेक राजावों पर दूत पठाए सो दूत के देखिवेमात्र ही सर्व विद्याधर बड़ी सेनासूं अयोध्या आए। भामंडल भी आया। सो भामण्डलकूं अत्यन्त आकुल देख शीघ्र ही सिद्धार्थ अर नारद जायकर कहते भए – यह सीता के पुत्र हैं। सीता पुण्डरीकपुरविषै है।

तब यह बात सुनकर बहुत दुखित भया अर कुमारों के अयोध्या आयवे पर आश्चर्यकूं प्राप्त भया, अर इनका प्रताप सुन हर्षित भया। मन के वेग समान जो विमान, उस पर चढ़कर परिवारसहित पुण्डरीकपुर गया, बहिनसूं मिला। सीता भामंडलकूं देख अति मोहित भई, आंसू नाखती संती विलाप करती भई। अर अपने ताईं घरसूं काढ़ने का अर पुण्डरीकपुर आयवे का सर्व वृत्तांत कह्या। तब भामण्डल बहिन को धीर्य बंधाय कहता भया – हे बहिन! तेरे पुण्य के प्रभावसूं सब भला होयगा। अर कुमार अयोध्या गए सो भला न कीया, जायकर बलभद्र नारायणकूं क्रोध उपजाया। राम लक्ष्मण दोनों भाई पुरुषोत्तम देवों से भी न जीते जांय, महायोधा हैं। अर कुमारों के अर उनके युद्ध न होय सो ऐसा उपाय करैं इसलिए तुम हू चलो।

तब सीता पुत्रों की वधूसंयुक्त भामण्डल के विमानविषै बैठि चाली। राम लक्ष्मण महा क्रोधकर रथ घोटक गज पियादे देव विद्याधर तिनकर मंडित समुद्रसमान सेना लेय बाहिर निकसे। अर घोड़ानिके रथ चढ़ा शत्रुघ्न, महाप्रतापी, मोतिन के हारकर शोभायमान है वक्षस्थल जाका सो राम के संग भया। अर कृतांतवक्र सब सेना का अग्रेसर भया, जैसैं इन्द्र की सेना का अग्रभागी हृदयकेशी नामा देव होय। उसका रथ अत्यन्त सोहता भया। देवनि के विमान समान जिसका रथ सो सेनापति चतुरंग सेना लिए अतुलवली, अतिप्रतापी महाज्योतिकूं धरे धनुष चढ़ाय बाण लिए चला जाय है, जिसकी श्याम ध्वजा शत्रुवों से देखी न जाय। उसके पीछे त्रिमूर्ध्न विह्ण शिखसिंहविक्रम दीर्घभुज सिंहोदर सुमेरु बालखिल्य रौद्रभूत जिसके अष्टापदों के रथ, वज्रकर्ण पृथु सारदमन मृगेन्द्रहव इत्यादि पांच हजार नृपति कृतांतवक्र के संग अग्रभागी भए।

बन्दीजन बखानै हैं विरद जिनके, अर अनेक रघुवंशी कुमार देखे हैं अनेक रण जिन्होंने, शस्त्रों पर है दृष्टि जिनकी, युद्ध का उत्साह जिनके, स्वामिभक्तिविषै तत्पर, महाबलवान, धरतीकूं कम्पाते शीघ्र ही निकसे। कई एक नाना प्रकार के रथों पर चढ़े, कई एक पर्वत समान ऊंचे कारी घटा समान हाथिनि पर चढ़े, कई एक समुद्र की तरंग समान चंचल तुरंग तिन पर चढ़े इत्यादि अनेक वाहनों पर चढ़े युद्धकूं निकसे। वादित्रों के शब्दोंकर करी है व्याप्त दशों दिशा जिन्होंने। बख्तर पहिरे, टोप धरै, क्रोधकर संयुक्त हैं चित्त जिनका। तब लव अंकुश परसेना का शब्द सुन युद्धकूं उद्यमी भए। वज्रजंघकूं आज्ञा करी। कुमार की सेना के लोक युद्ध के उद्यमी हुते ही। प्रलयकाल की अग्निसमान महाप्रचंड अंगदेश, बंगदेश, नेपाल, वर्वर पौंड्र मागध पारसेल स्यंघल कलिंग इत्यादि अनेक देशनि के राजा रत्नांककूं आदि दे महा बलवंत ग्यारह हजार राजा उत्तम तेज के धारक युद्ध के उद्यमी भए। दोनों सेनानि का संघट्ट भया। दोनों सेनानि के संगमविषै देवनिकूं असुरनिकूं आश्चर्य उपजै ऐसा महा भयंकर शब्द भया, जैसा प्रलयकाल का समुद्र गाजै। परस्पर यह शब्द होते भए – क्या देख रह्या है प्रथम प्रहार क्यों न करै?

मेरा मन तोपर प्रथम प्रहार करिवे पर नाहीं, तातैं तू ही प्रथम प्रहार कर। अर कोई कहै है एक डिग आगे होवो जो शस्त्र चलाऊं। कोई अत्यन्त समीप होय गए तब कहै है खंजर तथा कटारी हाथ लेवो, निकट नजीक भए वाण का अवसर नाहीं। कोई कायरकूं देख कहै है तू क्यों कांपै हैं, मैं कायरकूं न मारूं तू परे हो, आग महायोधा खड़ा है उससे युद्ध करने दे। कोई वृथा गाजै है उसे सामंत कहै है – हे क्षुद्र! कहा वृथा गाजै है, गाजनेविषै सामंतपना नाहीं। जो तोविषै सामर्थ्य है तो आगै आव, तेरी रण की भूख भगाऊं।

इस भांति योधानिविषै परस्पर वचनालाप होय रहे हैं, तरवार बहै है, भूमिगोचरी विद्याधर सब ही आए हैं। भामण्डल पवनवेग वीर मृगांक विद्युद्ध्वज इत्यादि बड़े बड़े राजा विद्याधर बड़ी सेनाकरि युक्त महारणविषै प्रवीण सो लवण अंकुश के समाचार सुन युद्ध से पराङ्मुख शिथिल होय गए, अर सब बातोंविषै प्रवीण हनुमान सो भी सीता के पुत्र जान युद्धसूं शिथिल होय रह्या। अर विमान के शिखरविषै आरूढ़ जानकीकूं देख सब ही विद्याधर हाथ जोड़ शीस निवाय प्रणामकर मध्यस्थ होय रहे। सीता दोनों सेना देख रोमांच होय आई कापैं है अंग जाका। लवण अंकुश लहलहाट करै है ध्वजा जिनकी।

राम लक्ष्मणसूं युद्धकूं उद्यमी भए राम के सिंह की ध्वजा, लक्ष्मण के गरुड़ की सो दोनों कुमार महायोधा राम लक्ष्मणसूं युद्ध करते भए। लवण तो राम से लड़े अर अंकुश लक्ष्मण से लड़े, सो लव ने आवते ही श्रीराम की ध्वजा छेदी अर धनुष तोड़ा। तब राम हंसकर और धनुष लेयवेकूं उद्यमी भए। इतनेविषै लव ने राम का रथ तोड़ा। तब राम और रथ चढ़े। प्रचण्ड है पराक्रम जिसका क्रोधकर भृकुटि चढ़ाय ग्रीष्म के सूर्य समान तेजस्वी जैसे चमरेन्द्र पर इन्द्र जाय तैसैं गया। तब जानकी का नन्दन लवण युद्ध की पाहुनिगति करनेकूं राम के सन्मुख आया। राम के अर लव के परस्पर महायुद्ध भया। वाने वाके शस्त्र छेदे वाने वाके। जैसा युद्ध राम अर लव का भया तैसा ही अंकुश अर लक्ष्मण का भया।

या भांति परस्पर दोनों युगल लड़े। तब योधा भी परस्पर लड़े। घोड़ों के समूह रणरूप समुद्र की तरंग समान उछलते भए। कोईएक योधा प्रतिपक्षीकूं टूटे बखतर देख दयाकर मौन गह रह्या। अर कई एक योधा मने करते परसेनाविषै पैठे सो स्वामी का नाम उचारते परचक्र सै लड़ते भए। कई एक महाभट माते हाथियों से भिड़ते भए। कई एक हाथियों के दांतरूप सेज पर रणनिद्रा सुखसूं लेते भए। काहू एक महाभट का तुरंग काम आया सो पियादा ही लड़ने लगा। काहू के शस्त्र टूट गए तो भी पीछे न होता भया, हाथों से मुष्टि प्रहार करता भया।

अर कोई इक सामंत बाण बाहने चूक गया उसे प्रतिपक्षी कहता भया, बहुरि चलाय, सो लज्जाकर न चलावता भया। अर कोई एक निर्भयचित्त प्रतिपक्षीकूं शस्त्ररहित देख आप भी शस्त्र तज भुजाओं से युद्ध करता भया। ते योधा बड़े दाता रणसंग्रामविषै प्राण देते भए परन्तु पीठ न देते भए। जहां रुधिर की कींच होय रही है सो रथों के पहिए डूब गए हैं, सारथी शीघ्र ही नहीं चला सकै है। परस्पर शस्त्रों के सम्पातकर अग्नि पड़ रही है अर हाथियों की सूण्ड के छांटे उछलै हैं। अर सामन्तों ने हाथियों के कुम्भस्थल विदारे हैं, अर सामंतनि के उरस्थल विदारे हैं। हाथी काम आय गए हैं। तिनकर मार्ग रुक रह्या है। अर हाथियों के मोती बिखर रहे हैं। वह युद्ध महा भयंकर

होता भया। जहां सामंत अपना सिर देयकर यशरूप रत्न खरीदते भए, जहां मूर्छित पर कोई घात नहीं करै अर निर्बल पर घात न करै, सामंतों का है युद्ध जहां महायुद्ध के करणहारे योधा जिनके जीवने की आशा नहीं, क्षोभकूं प्राप्त भया समुद्र गाजै तैसा होय रह्या है शब्द जहां, सो वह संग्राम सब समरस कहिए समान रस होता भया।

भावार्थ – न वह सेना, हटी न वह सेना हटी, योधाविषै न्यूनाधिकता परस्पर दृष्टि न पड़ी। कैसे हैं योधा? स्वामिविषै है परमभक्ति जिनकी। अर स्वामी ने दई थी उसके बदले यह जीव दिया चाहे हैं। प्रचण्ड रण की है खाज जिनके, सूर्य समान तेजकूं धरे संग्राम के धुरंधर होते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लवणांकुश का राम लक्ष्मण से युद्ध वर्णन करने वाला एक सौ दोवाँ पर्व संपूर्ण भया।।102।।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! अब जो वृत्तांत भया सो सुनो। अनंगलवण के तो सारथी राजा वज्रजंघ अर मदनांकुश के राजा पृथु अर लक्ष्मण के विराधित, अर राम के कृतांतवक्र। तब श्रीराम वज्रावर्त धनुषकूं चढ़ायकर कृत्तांतवक्रसूं कहते भए – अब तुम शीघ्र ही शत्रुवों पर रथ चलावो, ढील न करो। तब वह कहता भया, हे देव! देखो यह घोड़े नरवीर के बाणनिकर जरजरे होय रहे हैं, इनविषै तेज नाहीं, मानूं निद्राकूं प्राप्त भए हैं। यह तुरंग लोहू की धाराकर धरतीकूं रंगै हैं, मानूं अपना अनुराग प्रभुकूं दिखावै हैं। अर मेरी भुजा इसके बाणनिकर भेदी गई है, वक्तर टूट गया है। तब श्रीराम कहते भए मेरा भी धनुष युद्धकर्मरहित ऐसा होय गया है मानूं चित्राम का धनुष है, अर यह मूसल भी कार्यरहित होय गया है, अर दुर्निवार जे शत्रुरूप गजराज तिनकूं अंकुश समान यह हल सो भी शिथिलताकूं भजै है। शत्रु के पक्षकूं भयंकर मेरे अमोघशस्त्र जिनकी सहस्र यक्ष रक्षा करैं वे शिथिल होय गए हैं। शस्त्रों की सामर्थ्य नाहीं जो शत्रु पर चले।

गौतम स्वामी कहे हैं – हे श्रेणिक! जैसें अनंगलवण आगे राम के शस्त्र निरर्थक होय गये तैसें ही मदनांकुश के आगे लक्ष्मण के शस्त्र कार्यरहित होय गए। वे दोनों भाई तो जाने कि ये राम लक्ष्मण तो हमारे पिता अर पितृव्य (चाचा) है सो वे तो इनका अंग बचाय शर चलावैं। अर ये उनको जाने नाहीं सो शत्रु जानकर शर चलावैं। लक्ष्मण दिव्यास्त्र की सामर्थ्य उन पर चलिवे की न जान शर शेल सामान्य चक्र खड्ग अंकुश चलावता भया। सो अंकुश ने वज्रदण्डकर लक्ष्मण के आयुध निराकरण किए। अर राम के चलाए आयुध लवण ने निराकरण किए। फिर लवण ने राम की ओर शैल चलाया अर अंकुश ने लक्ष्मण पर चलाया सो ऐसी निपुणता से दोनों

के मर्म की ठौर न लागे, सामान्य चोट लगी। सो लक्ष्मण के नेत्र घूमने लगे। विराधित ने अयोध्या की ओर रथ फेरा।

तब लक्ष्मण सचेत होय कोपकर विराधितसूं कहता भया - हे विराधित! तैंने क्या किया? मेरा रथ फेर्या। अब पीछे बहुरि शत्रु का सन्मुख लेवो, रणविषै पीठ न दीजिये। जे शूरवीर है तिनकूं शत्रु के सन्मुख मरण भला, परन्तु यह पीठ देना महा निन्द्यकर्म शूरवीरोंकूं योग्य नाहीं। कैसे हैं शूरवीर? युद्धविषै बाणनिकरि पूरित है अंग जिनका, जे देव मनुष्यनि कर प्रशंसा के योग्य वे कायरता कैसे भजैं? मैं दशरथ का पुत्र, राम का भाई वासुदेव पृथ्वीविषै प्रसिद्ध सो संग्राम में पीठ कैसे दोऊं?

यह वचन लक्ष्मण ने कहे तब विराधित ने रथकूं युद्ध के सन्मुख किया। सो लक्ष्मण के अर मदनांकुश के महायुद्ध भया। लक्ष्मण ने क्रोधकर महाभयंकर चक्र हाथविषै लिया। महाज्वालारूप देख्या न जाय, ग्रीष्म के सूर्य समान। सो अंकुश पर चलाया। सो अंकुश के समीप जाय प्रभावरहित होय गया अर उलटा लक्ष्मण के हाथविषै आया। बहुरि लक्ष्मण ने चक्र चलाया सो पीछे आया। या भांति बार बार पाछे आया। बहुरि अंकुश ने धनुष हाथविषै गह्या, तब अंकुशकूं महातेजरूप देख लक्ष्मण के पक्ष के सब सामन्त आश्चर्यकूं प्राप्त भए। तिनकूं यह बुद्धि उपजी यह महापराक्रमी अर्धचक्री उपज्या, लक्ष्मण ने कोटिशिला उठाई, अर मुनि के वचन जिनशासन का कथन और भांति कैसे होय? अर लक्ष्मण भी मनविषै जानता भया कि ये बलभद्र नारायण उपजे। आप अति लज्जावान होय युद्ध की क्रिया से शिथिल भया।

अथानन्तर लक्ष्मणकूं शिथिल देख, सिद्धार्थ नारद के कहेसूं लक्ष्मण के समीप आय कहता भया - वासुदेव तुम ही हो। जिनशासन के वचन सुमेरुसूं अति निश्चल हैं। यह कुमार जानकी के पुत्र हैं, गर्भविषै थे तब जानकीकूं वनविषै तजी। यह तिहारे अंग हैं। तातैं इन पर चक्रादिक शस्त्र न चलैं। तब लक्ष्मण ने दोनों कुमारों का वृत्तांत सुन हर्षित होय, हाथ से हथियार डार दिए, वक्तर दूर किया। सीता के दु:खकर अश्रुपात डारने लगा। अर नेत्र घूमने लगे। राम शस्त्र डार वक्तर उतार मोहकर मूर्छित भए, चन्दन से छांटि सचेत किये। तब स्नेह के भरे पुत्रनि के समीप चाले। पुत्र रथ से उतर हाथ जोड़ सीस निवाय पिता के पांयन पड़े।

श्रीराम स्नेहकर द्रवीभूत भया है मन जिनका, पुत्रोंकूं उर से लगाय विलाप करते भए। आंसुनि कर मेघ का-सा दिन किया। राम कहै हैं हाय पुत्र हो! मैं मन्दबुद्धि गर्भविषै तिष्ठते तुमकूं सीता सहित भयंकर वनविषै तजै। तिहारी माता निर्दोष। हाय पुत्र हो! मैं कोई विस्तीर्ण पुण्यकरि तुम सारिखे पुत्र पाए, सो उदरविषै तिष्ठते तुम भयंकर वनविषै कष्ट कूं प्राप्त भए। हाय वत्स! जो यह वज्रजंघ वनविषै न आवता तो तिहारा मुखरूप चन्द्रमा मैं कैसे देखता?

हाय बालक हो! इन अमोघ दिव्यास्त्रोंकर तुम न हते गए सो पुण्य के उदयकर देवों ने सहाय करी। हाय मेरे अंगज हो! मेरे बाणनिकर बींधे तुम रणक्षेत्रविषै पड़ते तो न जानूं जानकी क्या करती। सब दुखोंविषै घर से काढ़ने का बड़ा दुःख है। सो तिहारी माता महा गुणवन्ती, व्रतवन्ती मैं पतिव्रता वनविषै तजी। अर तुम-से पुत्र गर्भविषै, सो मैं यह काम बहुत बिना समझे किया। अर जो कदाचित् तिहारा युद्धविषै अन्यथा भाव भया होता तो मैं निश्चय से जानूं हूं शोक से विह्वल जानकी न जीवती। या भांति राम ने विलाप किया।

बहुरि कुमार विनय कर लक्ष्मणकूं प्रणाम करते भए। लक्ष्मण सीता के शोक से विह्वल, आसूं डारता स्नेह का भर्‍या, दोनों कुमारनिकूं उर से लगावता भया। शत्रुघ्न आदि यह वृत्तांत सुन वहां आए। कुमार यथायोग्य विनय करते भये, ये उरसूं लगाय मिले। परस्पर अति प्रीति उपजी। दोनों सेना के लोक अति हित कर परस्पर मिले, क्योंकि जब स्वामी कूं स्नेह होय तब सेवकनि के भी होय। सीता पुत्रों का माहात्म्य देख अति हर्षित होय, विमान के मार्ग होय पीछे पुण्डरीकपुरविषै गई। अर भामंडल विमान से उतर स्नेह का भर्‍या आंसू डारता भानजों सैं मिला, अति हर्षित भया। अर प्रीति का भर्‍या हनुमान उरसूं लगाय मिल्या। अर बारम्बार कहता भया – भली भई, भली भई। अर विभीषण सुग्रीव विराधित सब ही कुमारनिसूं मिले। परस्पर हितसंभाषण भया। भूमिगोचरी विद्याधर सब ही मिले। अर देवनि का आगमन भया। सबोंकूं आनन्द उपज्या, राम पुत्रनिकूं पायकर अति आनन्दकूं प्राप्त भए। सकल पृथ्वी के राज्य से पुत्रनि का लाभ अधिक मानते भए। जो राम के हर्ष भया सो कहिवेविषै न आवै।

अर विद्याधरी आकाशविषै आनन्दसूं नृत्य करती भईं। अर भूमिगोचरिनि की स्त्री पृथ्वीविषै नृत्य करती भईं। अर लक्ष्मण आपकूं कृतार्थ मानता भया, मानों सर्व लोक जीत्या, हर्षसूं फूल गए हैं लोचन जिनके। अर राम मनविषै जानता भया मैं सगर चक्रवर्ती समान हूं अर कुमार दोनों भीम अर भागीरथ समान हैं। राम वज्रजंघ से अति प्रीति करता भया जो तुम मेरे भामंडल समान हो। अयोध्यापुरी तो पहले ही स्वर्गपुरी समान थी तो बहुरि कुमारनि के आयवेकरि अति शोभायमान भई, जैसैं सुन्दर स्त्री सहज ही शोभायमान होय अर श्रृंगारकरि अति शोभाकूं पावै। श्रीराम लक्ष्मणसहित अर दोऊ पुत्रों सहित सूर्य की ज्योति समान जो पुष्पक विमान उसविषै विराजे, सूर्य समान हैं ज्योति जिनकी। राम लक्ष्मण अर दोऊ कुमार अद्भुत आभूषण पहिरे सो कैसी शोभा बनी है मानूं सुमेरु के शिखर पर महामेघ बिजुरी के चमत्कार सहित तिष्ठा है।

भावार्थ – विमान तो सुमेरु का शिखर भया, अर लक्ष्मण महामेघ का स्वरूप भया, अर राम तथा राम के पुत्र विद्युत् समान भए, सो ए चढ़कर नगर के बाह्य उद्यानविषै जिनमन्दिर हैं तिनके

दर्शनकूं चाले। सो नगर के कोट पर ठौर ठौर ध्वजा चढ़ी हैं, तिनकूं देखते धीरे धीरे जाय हैं। लार अनेक राजा केई हाथियों पर चढ़े, कई घोड़ों पर, कई रथों पर चढ़े जाय हैं, अर पियादों के समूह जाय हैं। धनुष बाण इत्यादि अनेक आयुध अर ध्वजा छत्रनिकर सूर्य की किरण नजर नाहीं पड़े हैं। अर स्त्रीनि के समूह झरोखनिविषै बैठे देखै हैं। लव अंकुश देखिवे का सबनिकूं बहुत कौतूहल है। नेत्ररूप अंजुलिनिकर लवणांकुश के सुन्दरतारूप अमृत के पान करै हैं सो तृप्त नाहीं होय हैं। एकाग्रचित्त भई उनकूं देखै हैं। अर नगरविषै नर नारीनि की ऐसी भीड़ भई कि काहू के हार कुण्डल की गम्य नाहीं। अर नारीजन परस्पर वार्ता करै हैं।

कोई कहै है – हे माता! टुक मुख इधर कर मोहि कुमारनि के देखिवे का कौतुक है। हे अखण्डकौतुक! तूने तो घनी बार लगि देखे अब हमें देखने देवो, अपना सिर नीचा कर ज्यों हमकूं दीखै, कहा ऊंचा सिर कर रही है। कोई कहै है – हे सखि! तेरे सिर के केश बिखर रहे हैं, सो नीके सम्हार। अर कोई कहै है – हे क्षिप्तमान से कहिये एक ठौर नाहीं चित्त जाका सो तू कहा हमारे प्राणनिकूं पीड़े है? तू न देखै, यह गर्भवती स्त्री खड़ी है, पीड़ित है। कोऊ कहे टुक परे होहु कहा अचेतन होय रही है। कुमारनिकूं न देखने देहै, यह दोनों रामदेव के कुमार रामदेव के समीप बैठे अष्टमी के चन्द्रमा समान है ललाट जिनका। कोई पूछे है इनविषै लवण कौन अर अंकुश कौन? यह तो दोनों तुल्यरूप भासैं हैं। तब कोई कहै है यह लाल वस्त्र पहिरे लवण है अर यह हरे वस्त्र पहिरे अंकुश है। अहो धन्य सीता महापुण्यवती जिनने ऐसे पुत्र जने।

अर कोई कहै है धन्य है वह स्त्री जिसने ऐसे वर पाए हैं। एकाग्रचित्त भई स्त्री इत्यादि वार्ता करती भई, इनके देखिवेविषै है चित्त जिनका, अति भीड़ भई। सो भीड़विषै कर्णाभरणरूप सर्प की डाढ़कर डसे गए हैं कपोल जिनके सो न जानती भई, तद्‌गत है चित्त जिनकी। काहू की कांचीदाम जाती रही सो वाहि खबर नहीं। काहू के मोतिन के हार टूटे सो मोती बिखर रहे हैं। मानूं कुमार आए सो ये पुष्पांजलि बरसैं हैं। अर कई एकोंकूं नेत्रों की पलक नाहीं लगैं हैं असवारी दूर गई है तो भी उसी ओर देखै हैं। नगर की उत्तम स्त्री वेई भई वेल सो पुष्पवृष्टि करती भई सो पुष्पनि की मकरंदकर मार्ग सुगन्ध होय रह्या है। श्रीराम अति शोभाकूं प्राप्त भए पुत्रनि सहित बन के चैत्यालयनि के दर्शन कर अपने मन्दिर आए। कैसा है मन्दिर? महा मंगलकर पूर्ण है ऐसे अपने प्यारे जनों के आगम का उत्साह सुखरूप ताकूं वर्णन कहां लग कहिए। पुण्यरूपी सूर्य का प्रकाश कर फूल्या है मनकमल जिनका ऐसे मनुष्य वेई अद्‌भुत सुखकूं पावै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मणसूं लवणांकुश का मिलाप वर्णन करने वाला एक सौ तीनवाँ पर्व संपूर्ण भया।।103।।

अथानन्तर विभीषण, सुग्रीव, हनुमान मिलकर राम से विनती करते भये – हे नाथ! हम पर कृपा करहु, हमारी विनती मानों, जानकी दुखसूं तिष्ठे है। इसलिए यहां लायवे की आज्ञा करहु। तब राम दीर्घ उष्ण निश्वास नाख क्षण एक विचारकर बोले, मैं सीताकूं शील दोषरहित जानूं हूं, वह उत्तम चित्त है। परन्तु लोकापवादकर घर से काढी है। अब कैसे बुलाऊं? इसलिये लोकनिकूं प्रतीति उपजायकर जानकी आवै तब हमारा उसका सहवास होय, अन्यथा कैसे होय। इसलिये सब देशनि के राजानिकूं बुलावो समस्त विद्याधर अर भूमिगोचरी आवें, सबनि के देखते सीता दिव्य लेकर शुद्ध होय मेरे घरविषै प्रवेश करै। जैसे शची इन्द्र के घरविषै प्रवेश करै।

तब सबने कही जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। तब सब देशनि के राजा बुलाये सो बाल वृद्ध स्त्री परिवार सहित अयोध्या नगरी आए। जे सूर्यकूं भी न देखै, घर ही विषै रहैं, वे नारी भी आईं और लोकनि की कहा बात? जे वृद्ध बहुत वृत्तांत के जाननहारे देशविषै मुखिया, सब देशनिसूं आए। कई एक तुरंगनि पर चढ़े, कई एक रथनि पर चढ़े तथा पालकी अर अनेक प्रकार असवारिनि पर चढ़े बड़ी विभूतिसूं आए। विद्याधर आकाश के मार्ग होय विमान बैठे आए अर भूमिगोचरी भूमि के मार्ग आए। मानों जगत् जंगम होय गया। राम की आज्ञा से जे अधिकारी हुते तिन्होंने नगर के बाहिर लोकनि के रहने के लिए डेरे खड़े कराए।

अर महा विस्तीर्ण अनेक महिल बनाए तिनके दृढ़ स्तम्भ के ऊंचे मंडप, उदार झरोखे, सुन्दर जाली, तिनविषै स्त्रियें भेली अर पुरुष भेले भए। पुरुष यथायोग्य बैठे दिव्यकूं देखिवे की है अभिलाषा जिनके। जेते मनुष्य आए तिनकी सर्व भांति पाहुनगति राजद्वार के अधिकारियों ने करी। सबनिकूं शय्या आसन भोजन तांबूल वस्त्र सुगन्ध मालादिक समस्त सामग्री राजद्वार से पहुंची। सबनि की स्थिरता करी। अर राम की आज्ञासूं भामण्डल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव विराधित रत्नजटी यह बड़े बड़े राजा आकाश के मार्ग क्षणमात्रविषै पुण्डरीकपुर गए। सो सब सेना नगर के बाहिर राखि अपने समीप लोगनि सहित जहां जानकी थी वहां आए, जय जय शब्दकर पुष्पांजलि चढ़ाय पायनकूं प्रणामकर अति विनयसंयुक्त आंगणविषै बैठे। तब सीता आंसू डारती अपनी निंदा करती भई – दुर्जनों के वचनरूप दावानलकरि दग्ध भए हैं अंग मेरे सो क्षीरसागर के जलकर भी सींचे शीतल न होय।

तब वे कहते भए – हे देवी भगवती सौम्य उत्तमे! अब शोक तजो, अर अपना मन समाधानविषै लावो। या पृथ्वीविषै ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारा अपवाद करै? ऐसा कौन जो पृथ्वीकूं चलायमान करै अर अग्नि की शिखाकूं पीवै, अर सुमेरु के उठायवे का उद्यम करै, अर जीभकर चांद सूर्यकूं चाटै? ऐसा कोई नाहीं। तुम्हारा गुणरूप रत्ननि का पर्वत कोई चलाय न

सकै। अर जो तुम सारिखी महासतियों का अपवाद करै तिनकी जीभ के हजार टूंक क्यों न होवैं? हम सेवकों के समूहकूं भेजकर जो कोई भरतक्षेत्रविषै अपवाद करेंगे उन दुष्टों का निपात करेंगे। अर जो विनयवान तुम्हारे गुणगायवेविषै अनुरागी हैं उनके गृहविषै रत्नवृष्टि करेंगे। यह पुष्पक विमान श्रीरामचन्द्र ने भेज्या है उसविषै आनन्द रूप हो अयोध्या की तरफ गमन करहु। सब देश अर नगर अर श्रीराम का घर तुम बिना न सोहै, जैसे चन्द्रकला बिना आकाश न सोहै, अर दीपक बिना मन्दिर न सोहै, अर शाखा बिना वृक्ष न सोहै।

हे राजा जनक की पुत्री! आज राम का मुखचन्द्र देखो। हे पंडिते पतिव्रते! तुमकूं अवश्य पति का वचन मानना। जब ऐसा कहा तब सीता मुख्य सहेलियों को लेकर पुष्पकविमानविषै आरूढ़ होय शीघ्र ही संध्या के समय अयोध्या आई। सूर्य अस्त होय गया सो महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषै रात्रि पूर्ण करी। आगै रामसहित यहां आवती हुती सो बन अति मनोहर देखती हुती सो अब राम बिना रमणीक न भासा।

अथानन्तर सूर्य उदय भया कमल प्रफुल्लित भए। जैसे राजा के किंकर पृथ्वीविषै विचरैं तैसें सूर्य की किरणें पृथ्वीविषै विस्तरीं। जैसें दिव्यकर अपवाद नश जाय तैसें सूर्य के प्रतापकर अंधकार दूर भया। तब सीता उत्तम नारियोंकर युक्त राम के समीप चाली, हथिनी पर चढ़ी। मन की उदासीनता कर हती गई है प्रभा जाकी तो भी भद्र परिणाम की धरणहारी अत्यन्त सोहती भई। जैसे चन्द्रमा की कला ताराओंकर मंडित सोहै तैसे सीता सखियोंकरि मंडित सोहै। सब सभा विनय संयुक्त सीताकूं देख वंदना करती भई। यह पापरहित धीरता की धरणहारी राम की रमा सभाविषै आई।

राम समुद्र समान क्षोभकूं प्राप्त भए। लोक सीता के जायवेकर विषाद के भरे थे, अर कुमारों का प्रताप देख आश्चर्य भरे भए। अब सीता के आयवेकर हर्ष के भरे ऐसे शब्द करते भए – हे माता! सदा जयवंत होवो, नन्दो, वरधो, फूलो फलो। धन्य यह रूप, धन्य यह धीर्य, धन्य यह सत्य, धन्य यह ज्योति, धन्य यह भावुकता, धन्य यह गम्भीरता, धन्य निर्मलता। ऐसे वचन समस्त ही नर नारीनि के मुख से निकसे। आकाशविषै विद्याधर भूमिगोचरी महाकौतुक भरे पलक रहित सीता के दर्शन करते भए। अर परस्पर कहते भए – पृथ्वी के पुण्य के उदय से जनकसुता पीछे आई। कई एक तो वहां श्रीराम की ओर निरखैं हैं जैसे इन्द्र की ओर देव निरखैं। कई एक राम के समीप बैठे लव अर अंकुश तिनकूं देख परस्पर कहे हैं ये कुमार राम के सदृश ही हैं। अर केई शत्रुघ्न की ओर, केईएक भामंडल की ओर, केईएक हनुमान की ओर, केईएक विभीषण की ओर, केईएक विराधित की ओर, अर केईएक सुग्रीव की ओर निरखे हैं, अर केईएक आश्चर्यकूं प्राप्त भए सीता की ओर देखे हैं।

अथानन्तर जानकी जायकर रामकूं देख आपकूं वियोग सागर के अन्तकूं प्राप्त भई मानती भई। जब सीता सभाविषै आई तब लक्ष्मण अर्घ देय नमस्कार करता भया, अर सब राजा प्रणाम करते भए। सीता शीघ्रताकर निकट आवने लगी तब राघव यद्यपि क्षोभित हैं, तथापि सकोप होय मन में विचारते भये इसे विषम वनविषै मेली थी सो मेरे मन की हरणहारी फिर आई। देखो यह महाढीठ है। मैं तजी तो भी मोसैं अनुराग नाहीं छांड़े हैं। यह राम की चेष्टा जान महासती उदासचित्त होय विचारती भई – मेरे वियोग का अन्त नहीं आया, मेरा मनरूप जहाज विरहरूप समुद्र के तीर आय फटा चाहै है। ऐसी चिंता से व्याकुलचित्त भई, पग के अंगूठेसूं पृथ्वी कुचरती भई, बलदेव के समीप भामण्डल की बहिन कैसी सोहै है जैसी इन्द्र के आगे सम्पदा सोहै।

तब राम बोले – हे सीते! मेरे आगे कहां तिष्ठे है? तू परे जा, मैं तेरे देखिवे का अनुरागी नाहीं। मेरी आंख मध्याह्न के सूर्य अर आशीविषसर्प तिनकूं देख सकै परन्तु तेरे तनकूं न देख सकै है। तू बहुत मास दशमुख के मन्दिरविषै रही अब तोहि घरविषै राखना मोहि कहा उचित? तब जानकी बोली – तुम महा निर्दईचित्त हो, तुमने महापंडित होयकर भी मूढलोकनि की न्याईं मेरा तिरस्कार कीया सो कहा उचित? मुझे गर्भवती कूं जिनदर्शन का अभिलाष उपजा हुता सो तुम कुटिलतासूं यात्रा का नाम लेय विषम वनविषै डारी यह कहां उचित? मेरा कुमरण होता अर कुगति जाती याविषै तुमकूं कहां सिद्ध होता? जो तिहारे मनविषै तजिवे की हुती तो आर्यिकावों के समीप मेली होती। जे अनाथ दीन दरिद्री, कुटुम्बरहित महादुखी तिनकूं दुःख हरिवे का उपाय जिनशासन का शरण है, या समान और उत्कृष्ट नाहीं।

हे पद्मनाभ! तुम करिवेविषै तो कछू कमी न करी, अब प्रसन्न होवो, आज्ञा करो सो करूं। यह कह कर दुख की भरी रुदन करती भई। तब राम बोले – मैं जानूं हूं। तिहारा निर्दोष शील है, अर तुम निष्पाप अणुव्रत की धरणहारी मेरी आज्ञाकारिणी हो, तिहारे भावन की शुद्धता मैं भली भांति जानूं हूं, परन्तु ये जगत के लोक कुटिल स्वभाव हैं। इन्होंने वृथा तेरा अपवाद उठाया सो इनकूं संदेह मिटै, अर इनकूं यथावत् प्रतीत आवै, सो करहु। तब सीता ने कहा – आप आज्ञा करो सो ही प्रमाण। जगतविषै जेते प्रकार के दिव्य हैं सो सब करके पृथ्वी का संदेह हरूं।

हे नाथ! विषोंविषै महाविषै कालकूट है, जिसे सूंघकर आशाविष सर्प भी भस्म होय जाय, सो मैं पीऊं। अर अग्नि की विषम ज्वालाविषै प्रवेश करूं। अर जो आप आज्ञा करो सो करूं। तब क्षण एक विचारकर राम बोले – अग्नि कुण्डविषै प्रवेश करो। सीता महाहर्ष की भरी कहती भई – यही प्रमाण। तब नारद मनविषै विचारते भए यह तो महासती है, परन्तु अग्नि का कहा

विश्वास? याने मृत्यु आदरी। अर भामण्डल हनुमानादिक महाकोप से पीड़ित भए, अर लव अंकुश माता का अग्निविषै प्रवेश करिवे का निश्चय जान अति व्याकुल भये। अर सिद्धार्थ दोनों भुजा ऊंचीकर कहता भया, हे राम! देवों से भी सीता के शील की महिमा न कही जाय तो मनुष्य कहा कहै?

कदाचित् सुमेरु पातालविषै प्रवेश करै, अर समस्त समुद्र सूख जाय, तो भी सीता का शीलव्रत चलायमान न होय। जो कदाचित् चन्द्रकिरण उष्ण होय, अर सूर्यकिरण शीतल होय तो भी सीताकूं दूषण न लगे। मैं विद्या के बल से पंच सुमेरुविषै तथा जे और अकृत्रिम चैत्यालय शास्वते वहां जिनवन्दना करी – हे पद्मनाथ! सीता के व्रत की महिमा मैं ठौर ठौर मुनियों के मुख से सुनी है। तातैं तुम महा विचक्षण हो, महासतीकूं अग्निप्रवेश की आज्ञा न करो। अर आकाशविषै विद्याधर और पृथ्वीविषै भूमिगोचरी सब यही कहते भए – हे देव! प्रसन्न होय सौम्यता भजहु। हे नाथ! अग्नि समान कठोर चित्त न करो, सीता सती है, सीता अन्यथा नाहीं। अन्यथा जे महापुरुषों की राणी होवै कदे ही विकार रूप न होवैं। सब प्रजा के लोक यही वचन कहते भए, अर व्याकुल भए मोटी मोटी आंसुओं की बूंद डारते भए।

तब राम ने कही – तुम ऐसे दयावान हो तो पहिले अपवाद क्यों उठाया? राम ने किंकरोंकूं आज्ञा करी – एक तीन सै हाथ चौखटिया वापी खोदहु, अर सूखे ईंधन चन्दन अर कृष्णागुरु तिनकर भरहु, अर अग्नि कर जाज्वल्यमान करहु, साक्षात् मृत्यु का स्वरूप करहु। तब किंकरनि ने आज्ञा प्रमाण कुदालनि से खोद अग्निवापिका बनायी। अर ताही रात्रिकूं महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषै सकलभूषण मुनिकूं पूर्व वैर के योगकर महारौद्र विद्युद्वक्रनामा राक्षसी ने अत्यन्त उपसर्ग किया सो मुनि अत्यन्त उपसर्गकूं जीति केवलज्ञानकूं प्राप्त भये।

यह कथा सुनि गौतम स्वामी सूं श्रेणिक ने पूछी, हे प्रभो! राक्षसी के अर मुनि के पूर्व वैर कहा?

तब गौतम स्वामी कहते भये – हे श्रेणिक! सुनो विजयार्द्धगिरि की उत्तर श्रेणीविषै महा शोभायमान गुंजनामा नगर, तहां सिंहविक्रमराजा, ताकै श्री राणी, ताके पुत्र सकलभूषण, ताके स्त्री आठसै, तिनविषै मुख्य किरणमण्डला। सो एक दिन उसने अपनी सौकिन के कहेसूं अपने मामा के पुत्र हेमशिख का रूप चित्रपटविषै लिखा। सो सकलभूषण ने देख कोप किया। तब सब स्त्रीनि ने कही यह हमने लिखवाया है इसका कोई दोष नाहीं। तब सकलभूषण कोप तजि प्रसन्न भया। एक दिन यह किरणमण्डला पतिव्रता पति सहित सूती थी। सो प्रमादरथ की बरडिकर हेमशिख ऐसा नाम कहा, सो यह तो निर्दोष, याके हेमशिख से भाई की बुद्धि, अर सकलभूषण

ने कछु और भाव विचारा। राणी सूं कोपकरि वैराग्यकूं प्राप्त भए।

अर राणी किरणमण्डला भी आर्यिका भई, परन्तु धनीसूं द्वेषभाव, जो याने मोहि झूठा दोष लगाया। सो मरकर विद्युद्वक्र नामा राक्षसी भई। सो पूर्व वैर थकी सकल भूषण स्वामी आहारकूं जांय तब यह अन्तराय करै, कभी माते हाथियों के बन्धन तुड़ाय देय, हाथी ग्राम में उपद्रव करैं, इनकूं अन्तराय होय। कभी यह आहारकूं जांय तब अग्नि लगाय देय। कभी यह रजोवृष्टि करै, इत्यादि नाना प्रकार के अन्तराय करै। कभी अश्व का कभी वृषभ का रूपकरि इनके सन्मुख आवै। कभी मार्ग में कांटे बखेरै। या भांति यह पापिनी कुचेष्टा करै।

एक दिन स्वामी कायोत्सर्ग धर तिष्ठे थे अर इसने शोर किया – यह चोर है सो इसका शोर सुनकर दुष्टों ने पकड़ अपमान किया। बहुरि उत्तम पुरुषों ने छुड़ाय दिये। एक दिन यह आहार लेकर जाते थे सो पापिनी राक्षसी ने काहू स्त्री का हार लेकर इनके गले में डार दिया अर शोर किया कि यह चोर है, हार लिये जाय है। तब लोग आय पहुंचे इनको पीड़ा करी, हार लिया, भले पुरुषों ने छुड़ाय दिये। या भांति यह क्रूरचित्त दयारहित पूर्व वैर विरोध से मुनिकूं उपद्रव करै। गई रात्रिकूं प्रतिमायोग धर महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषै विराजे हुते सो राक्षसी ने रौद्र उपसर्ग किया, विंतर दिखाये अर हस्ती, सिंह, व्याघ्र, सर्प दिखाये अर रूप गुणमण्डित नाना प्रकार की नारी दिखाई, भांति भांति के उपद्रव किये, परन्तु मुनि का मन न डिगा। तब केवलज्ञान उपजा। सो केवल की महिमा कर दर्शनकूं इन्द्रादिक देव कल्पवासी, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी कईएक हाथिनि पर चढ़े, कई एक सिंहनि पर चढ़े, कईएक ऊंट, खच्चर, मीढ़ा, बघेरा, अष्टापद इन पर चढ़े, कई एक पक्षियों पर चढ़े, कईएक विमान बैठे, कईएक रथनि पर पालकी चढ़े इत्यादि मनोहर वाहनों पर चढ़े आए।

देवों की असवारी के तिर्यंच नाहीं, देवों ही की माया है। देव ही विक्रियाकरि तिर्यंच का रूप धरै हैं। आकाश के मार्ग होय महाविभूति सहित सर्व दिशाविषै उद्योत करते आये। मुकुट धरे हार कुण्डल पहिरे अनेक आभूषणनिकर शोभित सकलभूषण केवली के दर्शन कूं आये। पवन से चंचल है ध्वजा जिनकी। अप्सरानि के समूह अयोध्या की ओर आए। महेन्द्रोदय उद्यानविषै विराजे हैं तिनके चरणारविंदविषै है मन जिनका, पृथ्वी की शोभा देखते, आकाश से नीचे उतरे। अर सीता के दिव्यकूं अग्निकुण्ड तैयार होय रहा हुता सो देखकर एक मेघकेतु नामा देव इन्द्र से कहता भया – हे देवेंद्र! हे नाथ! सीता महासतीकूं उपसर्ग आय प्राप्त भया है। यह महाश्राविका पतिव्रता शीलवंती अतिनिर्मल चित्त है। इसे ऐसा उपद्रव क्यों होय?

तब इन्द्र ने आज्ञा करी हे मेघकेतु! मैं सकलभूषण केवली के दर्शन कूं जाऊं हूं, अर तू महासती का उपसर्ग दूर करियो। या भांति आज्ञाकर इन्द्र तो महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषै केवली के दर्शन कूं गया, अर मेघकेतु सीता के अग्निकुण्ड के ऊपर आय आकाशविषै विमानविषै तिष्ठा। कैसा है विमान? सुमेरु के शिखर समान है शोभा जाकी। वह देव आकाशविषै सूर्य सरीखा दैदीप्यमान श्रीराम की ओर देखै, राम महासुन्दर सब जीवनि के मनकूं हरै हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै सकलभूषण केवली के दर्शनकूं देवनि का आगमन वर्णन करने वाला एक सौ चारवाँ पर्व संपूर्ण भया।।104।।

अथानन्तर श्रीराम उस अग्निवापिकाकूं निरखकरि व्याकुलमन भया विचारै है- अब इस कांताकूं कहां देखूंगा? यह गुणनि की खान लावण्यताकरि युक्त, कांति की धरणहारी, शीलरूप वस्त्रकरि मण्डित, मालती की माला समान सुगन्ध, सुकुमार शरीर, अग्नि के स्पर्श ही से भस्म होय जायगी। जो यह राजा जनक के घर न उपजती तो भला था। यह लोकापवाद, अग्निविषै मरण तो न होता। इस बिना मुझे क्षणमात्र भी सुख नाहीं।

इस सहित वनविषै वास भला अर या बिना स्वर्ग का वास भी भला नाहीं। यह शीलवती परम श्राविका है, इसे मरण का भय नाहीं, इहलोक, परलोक, मरण, वेदना, अकस्मात्, असहायता, चोर यह सप्त भय तिनकर रहित, सम्यक्दर्शन इसके दृढ़ है, यह अग्निविषै प्रवेश करेगी। अर मैं रोकूं तो लोकनिविषै लज्जा उपजै। अर यह लोक सब मोहि कह रहे यह महासती है याहि अग्निकुण्डविषै प्रवेश न करावो, सो मैं न मानी। अर सिद्धार्थ हाथ ऊंचे कर कर पुकारा सो मैं न मानी, सो वह भी चुप होय रहा। अब कौन मिसकर इसे अग्निकुण्डविषै प्रवेश न कराऊं? अथवा जिसके जिस भांति मरण उदय होय है उसी भांति होय है, टारा टरे नाहीं। तथापि इसका वियोग मुझसे सहा न जाय। या भांति राम चिंता करै हैं।

अर वापीविषै अग्नि प्रज्वलित भई, समस्त नर नारियों के आंसुवों के प्रवाह चले, धूमकरि अन्धकार होय गया। मानों मेघमाला आकाशविषै फैल गई। आकाश भ्रमर समान श्याम होय गया अथवा कोकिलस्वरूप होय गया। अग्नि के धूमकर सूर्य आच्छादित हुवा, मानों सीता का उपसर्ग देख न सक्या सो दयाकर छिप गया। ऐसी अग्नि प्रज्वली जिसकी दूर तक ज्वाला विस्तरी, मानों अनेक सूर्य ऊगे, अथवा आकाशविषै प्रलयकारी सांझ फूली, जानिये दशों दिशा स्वर्णमई होय गई हैं मानों जगत् विजुरीमय होय गया। अथवा सुमेरु के जीतिवेकूं दूजा जंगम सुमेरु और प्रकटा।

तब सीता उठी, अत्यन्त निश्चलचित्त होय कायोत्सर्गकरि अपने हृदयविषै श्रीऋषभादि

तीर्थंकर देव विराजे हैं तिनकी स्तुतिकरि, सिद्धनिकूं, साधुनिकूं नमस्कारकरि श्रीमुनिसुव्रतनाथ हरिवंश के तिलक बीसवां तीर्थंकर जिनके तीर्थविषै ये उपजे हैं तिनका ध्यानकरि सर्व प्राणियों के हितू आचार्य तिनकूं प्रणामकरि, सर्व जीवनिसूं क्षमाभावकरि जानकी कहती भई – मनकरि वचनकरि कायकरि स्वप्नविषै भी राम बिना और पुरुष मैं न जाना। जो मैं झूठ कहती हूं तो यह अग्नि की ज्वाला क्षणमात्रविषै मुझे भस्म करियो। जो मेरे पतिव्रता भावविषै अशुद्धता होय राम सिवाय और नर मन से भी अभिलाषा होय तो हे वैश्वानर! मुझे भस्म करियो। जो मैं मिथ्यादर्शिनी, पापिनी, व्यभिचारिणी हूं तो इस अग्नि से मेरा देह दाहकूं प्राप्त होवै। अर जो मैं महासती पतिव्रता अणुव्रतधारिणी श्राविका हूं तो मुझे भस्म न करियो।

ऐसा कहकर नमोकार मंत्र जप सीता सती अग्निवापिका में प्रवेश करती भई। सो याके शील के प्रभाव से अग्नि था सो स्फटिक मणि सारिखा निर्मल शीतल जल होय गया। मानों धरती को भेदकर यह वापिका पाताल से निकसी। जलविषै कमल फूल रहे हैं, भ्रमर गुंजार करै हैं, अग्नि की सामग्री सब विलाय गई, न ईंधन, न अंगार। जल के झाग उठने लगे, अर अति गोल गम्भीर महाभयंकर भ्रमर उठने लगे। जैसी मृदंग की ध्वनि होय तैसैं शब्द जलविषै होते भए, जैसा क्षोभकूं प्राप्त भया समुद्र गाजै वैसा शब्द वापीविषै होता भया। अर जल उछला, पहले गोड़ों तक आया, बहुरि कमर तक आया, फिर निमिषमात्रविषै छाती तक आया। तब भूमिगोचरी डरे, अर आकाशविषै जे विद्याधर हुते तिनकूं भी विकल्प उपजा न जानिए क्या होय?

बहुरि वह जल लोगों के कंठ तक आया तब अति भय उपजा। सिर ऊपर पानी चला तब लोग अति भयकूं प्राप्त भए। ऊंची भुजाकर वस्त्र अर बालकों को उठाय पुकार करते भए – हे देवी! हे लक्ष्मी! हे सरस्वती! हे कल्याणरूपिणी! हे धर्मधुरंधरे! हे मान्य! हे प्राणीदयारूपिणी! हमारी रक्षा करो। हे महासाध्वी! मुनिसमान निर्मल मन की धरणहारी! दया करो। हे माता! बचावो, बचावो, प्रसन्न होवो। जब ऐसे वचन विह्वल जो लोक तिनके मुख से निकसे तब माता की दया से जल थम्भा, लोक बचे, जलविषै नाना जाति के ठौर ठौर कमल फूले, जल साम्यताकूं प्राप्त भया। जे भंवर उठे थे सो मिटै, अर भयंकर शब्द मिटे। वह जल जो उछला था मानों वापीरूप वधू अपने तरंगरूप हस्तोंकर माता के चरणयुगल स्पर्शती हुती।

कैसे हैं चरणयुगल? कमल के गर्भ से हू अति कोमल हैं, अर नखों की ज्योतिकर देदीप्यमान हैं। जलविषै कमल फूले, तिनकी सुगन्धताकरि भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों संगीत करैं हैं। अर क्रौंच चकवा हंस तिनके समूह शब्द करैं हैं। अति शोभा होय रही है। अर मणि स्वर्ण के सिवाण बन गए तिनकूं जल के तरंगों के समूह स्पर्शैं हैं, अर जिसके तट मरकत मणिकर निर्मापे अति सोहै हैं।

ऐसे सरोवर के मध्य एक सहस्रदल का कमल कोमल, विमल विस्तीर्ण, प्रफुल्लित, महाशुभ उसके मध्य देवनि ने सिंहासन रचा, रत्ननि की किरणनिकर मंडित, चन्द्रमंडल तुल्य निर्मल। उसमें देवांगनाओं ने सीताकूं पधराई, अर सेवा करती भईं। सो सीता सिंहासनविषै तिष्ठी, अति अद्‌भुत है उदय जाका, शची तुल्य सोहती भई। अनेक देव चरणनि के तल पुष्पांजली चढ़ाय धन्य धन्य शब्द कहते भए। आकाशविषै कल्पवृक्षनि के पुष्पनि की वृष्टि करते भए। अर नाना प्रकार के दुन्दुभी बाजे तिनके शब्दकर सब दिशा शब्दरूप होती भई। गुंज जाति के वादित्र महामधुर गुंजार करते भये। अर मृदंग बाजते भए। ढोल दमामा बाजे, नन्दी जाति के वादित्र बाजे, अर कोलाहल जाति के वादित्र बाजे, अर तुरहा करनाल अनेक वादित्र बाजे, शंख के समूह शब्द करते भए।

अर बीणा बाजा, ताल, झांझ, मंजीर, झालरी इत्यादि अनेक वादित्र बाजे। विद्याधरनि के समूह नाचते भए अर देवनि के यह शब्द भए – श्रीमत् जनक राजा की पुत्री, परम उदय की धरणहारी, श्रीमत् राम की राणी अत्यन्त जयवंत होवे, अहो निर्मल शील जाका आश्चर्यकारी। ऐसे शब्द सब दिशाविषै देवनि के होते भये। तब दोनों पुत्र लव अंकुश अकृत्रिम है मातासूं हित जिनका, सो जल तिरकर अतिहर्ष के भरे माता के समीप गए। दोनों पुत्र दोनों तरफ जाय ठाढे भए, माताकूं नमस्कार किया। सो माता ने दोनों के शिर हाथ धरा। रामचन्द्र मिथिलापुरी के राजा की पुत्री मैथिली कहिए सीता उसे कमलवासिनी लक्ष्मी समान देख महा–अनुराग से समीप गए। कैसी है सीता? मानों स्वर्ण की मूर्ति अग्निविषै शुद्ध भई है, अति उत्तम ज्योति के समूहकर मंडित है शरीर जाका।

राम कहै हैं, हे देवी! कल्याणरूपिणी, उत्तम जीवनिकर पूज्य, महा अद्‌भुत चेष्टा की धरणहारी, शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है मुख जाका, ऐसी तुम सो हम पर प्रसन्न होहु। अब मैं कभी ऐसा दोष न करूंगा जिसमें तुमकूं दुःख होय। हे शीलरूपिणी! मेरा अपराध क्षमा करहु। मेरे आठ हजार स्त्री हैं तिनकी सिरताज तुम हो, मोकूं आज्ञा करहु सो करूं। हे महासती! मैं लोकापवाद के भय से अज्ञानी होयकरि तुमकूं कष्ट उपजाया सो क्षमा करहु।

अर हे प्रिये! पृथ्वीविषै मो सहित यथेष्ट विहार करहु। यह पृथ्वी अनेक वन उपवन गिरियों कर मंडित है, देव विद्याधरनिकर संयुक्त है, समस्त जगतकर आदरसों पूजी थकी मोसहित लोकविषै स्वर्ग समान भोग भोगि, उगते सूर्यसमान यह पुष्पकविमान, ताविषै मेरे सहित आरूढ़ होय, सुमेरु पर्वत के वनविषै जिनमन्दिर हैं तिनका दर्शन कर अर जिन जिन स्थानविषै तेरी इच्छा होय वहां क्रीड़ा कर। हे कांते! तू जो कहै सो ही मैं करूं, तेरा वचन कदाचित् न उलंघू, देवांगनासमान वह विद्याधरी तिनकर मंडित हे बुद्धिवंती! तू ऐश्वर्यकूं भज, जो तेरी अभिलाषा

होयगी सो तत्काल सिद्ध होयगी। मैं विवेकरहित दोष के सागरविषै मग्न तेरे समीप आया हूं सो साध्वि अब प्रसन्न होहु।

अथानन्तर जानकी बोली – हे राजन्! तिहारा कुछ दोष नाहीं, अर लोकनि का दोष नाहीं। मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म के उदय से यह दुःख भया, मेरा काहू पर कोप नाहीं। तुम क्यों विषादकूं प्राप्त भए? हे बलदेव! तिहारे प्रसाद से स्वर्ग समान भोग भोगे। अब यह इच्छा है ऐसा उपाय करूं जिस कर स्त्रीलिंग का अभाव होय। यह महाक्षुद्र विनश्वर भयंकर इन्द्रियनि के भोग मूढ़जनोंकरि सेब्य तिनकर कहा प्रयोजन? मैं अनन्त जन्म चौरासी लक्ष योनिविषै खेद पाया। अब समस्त दुःख के निवृत्ति के अर्थ जिनेश्वरी दीक्षा धरूंगी। ऐसा कहकर नवीन अशोक वृक्ष के पल्लव समान अपने जे कर तिनकर सिर के केश उपाड़ राम के समीप डारे।

सो इन्द्रनीलमणि समान श्याम, सचिक्कण, पातरे, सुगन्ध, वक्र, लंबायमान, महामृदु, महा मनोहर, ऐसे केशनिकूं देखकर राम मोहित होय मूर्छा खाय वापिविषै पड़े। सो जौंलग इनकूं सचेत कर तौंलग सीता पृथ्वीमती आर्यिका पै जायकर दीक्षा धरती भई। एक वस्त्रमात्र है परिग्रह जाके। सब परिग्रह तजकर आर्यिका के व्रत धरे। महापवित्रता परम वैराग्यकर दीक्षा धरती भई। व्रतकर शोभायमान जगत के बंदिवे योग्य होती भई। अर राम अचेत भए थे सो मुक्ताफल अर मलयागिरि चन्दन के छांटिवेकरि तथा ताड़के बीजनों की पवनकरि सचेत भए।

तब दशों दिशा की ओर देखैं तो सीताकूं न देखकरि चित्त शून्य होय गया। शोककरि कषायकरि युक्त महागजराज पर चढ़े, सीता की ओर चाले। सिर पर छत्र फिरैं हैं, चमर ढुरैं हैं, जैसैं देवनिकर मंडित इन्द्र चालै तैसैं नरेन्द्रनिकरि युक्त राम चाले। कमलसारिखे हैं नेत्र जिनके, कषाय के वचन कहते भए, अपने प्यारे जन का मरण भला परन्तु विरह भला नाहीं। देवनि ने सीता का प्रातिहार्य किया सो भला किया पर उसने हमकूं तजना विचारा सो भला न किया। अब मेरी राणी जो यह देव न दें तो मेरे अर देवनि के युद्ध होयगा। यह देव न्यायवान् होयकरि स्त्रीकूं हरैं ऐसे अविचार के वचन कहे। लक्ष्मण समझावै सो समाधान न भया।

अर क्रोध संयुक्त श्रीरामचन्द्र सकलभूषण केवली की गंधकुटीकूं चाले। सो दूर से सकलभूषण, केवली की गन्धकुटी देखी। केवली महाधीर सिंहासन पर विराजमान, अनेक सूर्य की दीप्ति धरें, केवली ऋद्धिकर युक्त, पापों के भस्म करिवेकूं साक्षात् अग्निरूप, जैसैं– मेघपटल रहित सूर्य का बिंब सोहै तैसैं कर्मपटलरहित केवलज्ञान के तेजकर परम ज्योतिरूप भासैं हैं। इन्द्रादिक समस्त देव सेवा करै हैं। दिव्यध्वनि खिरै है, धर्म का उपदेश होय है। सो श्रीराम गन्धकुटीकूं देखकरि शांतचित्त होय हाथीतैं उतरि प्रभु के समीप गए। तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ नमस्कार किया।

केवली के शरीर की ज्योति की छटा राम पर आय पड़ी सो अति प्रकाशरूप होय गए। भाव सहित नमस्कारकरि मनुष्यनि की सभाविषै बैठे। अर चतुरनिकाय के देवनि की सभा नाना प्रकार के आभूषण पहिरे ऐसी भासै मानों केवलीरूप जे रवि तिनकी किरण ही है। अर राजानि के राजा श्रीरामचन्द्र केवली के निकट ऐसे सोहै मानों सुमेरु के शिखर की निकट कल्पवृक्ष ही है।

अर लक्ष्मण नरेन्द्र मुकट कुण्डल हारादिकर शोभित ऐसे सौहे मानों विजुरीसहित श्याम घटा ही है। अर शत्रुघ्न शत्रुनि के जीतनहारे ऐसे सौहे मानों दूसरे कुवेर ही हैं। अर लव अंकुश दोऊ वीर, महाधीर, महासुन्दर, गुण सौभाग्य के स्थानक, चांद सूर्य से सोहैं। अर सीता आर्यिका आभूषणादि रहित एक वस्त्रमात्र परिग्रह ऐसी सोहै मानों सूर्य की मूर्ति शांतताकूं प्राप्त भई है। मनुष्य अर देव सब ही विनय संयुक्त भूमिविषै बैठे। धर्मश्रवण की है अभिलाषा जिनके।

तहां एक अभयघोष नामा मुनि सब मुनिन विषै श्रेष्ठ, संदेहरूप आताप की शांति के अर्थ केवलीकूं पूछते भए – हे सर्वोत्कृष्ट सर्वज्ञदेव! ज्ञानरूप शुद्ध आत्मतत्त्व का स्वरूप नीके जानने से मुनिनिकूं केवल बोध होय उसका निर्णय करो। तब सकलभूषण केवली, योगीश्वरों के ईश्वर, कर्मों के क्षय का कारण तत्त्व का उपदेश दिव्यध्वनिकर कहते भए। हे श्रेणिक! केवली ने जो उपदेश दिया ताका रहस्य मैं तुमकूं कहूं हूं। जैसे समुद्र में से एक बूंद कोई लेय तैसे केवली की बाणी अति अथाह उसके अनुसार संक्षेप व्याख्यान करूं हूं, सो सुनो।

हो भव्य जीव हो! आत्मतत्त्व जो अपना स्वरूप सो सम्यक्दर्शन ज्ञान आनन्दरूप, अर अमूर्तीक, चिद्रूप, लोकप्रमाण, असंख्य प्रदेशी, अतींद्रिय अखंड अव्याबाध निराकर निर्मल निरंजन, परवस्तु से रहित, निज गुण पर्याय स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावकर अस्तित्वरूप है, जिसका ज्ञान निकट भव्यकूं होय। शरीरादिक परवस्तु असार हैं, आत्मतत्त्व सार है। सो अध्यात्म विद्याकरि पाइये है। वह सबका देखनहारा जाननहारा अनुभवदृष्टिकर देखिये, आत्मज्ञानकरि जानिये।

अर जड़ पदार्थ पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाश ज्ञेयरूप हैं, ज्ञाता नाहीं। अर यह लोक अनन्त अलोकाकाश के मध्य अनंतवें भागविषै तिष्ठे हैं। अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक ये तीनलोक। तिनविषै सुमेरु पर्वत की जड़ हजार योजन उसके तल पाताल लोक है। उसविषै सूक्ष्म स्थावर तो सर्वत्र हैं, अर बादर स्थावर आधारविषै हैं। विकलत्रय अर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नाहीं, मनुष्य नाहीं। खरभाग, पंकभागविषै भवनवासी देव तथा व्यंतरदेवनि के निवास हैं। तिनके तले सात नरक हैं। तिनके नाम – रत्नप्रभा 1, शर्कराप्रभा 2, बालुकाप्रभा 3, पंकप्रभा 4, धूमप्रभा 5, तम:प्रभा 6, महातम:प्रभा 7, सो सात ही नरक की धरा, महादु:ख की देनहारी, सदा अन्धकाररूप है।

चार नरकनिविषै तो उष्ण की बाधा है अर पांचवे नरक में ऊपर ले तीन भाग उष्ण, अर नीचला चौथा भाग शीत। अर छठा नरक शीत ही है। अर सातवां महाशीत। ऊपर ले नरकविषै उष्णता है, सो महाविषम। अर नीचले नरकविषै शीत सो अति विषम। नरक की भूमि महादुस्सह और परम दुर्गम है, जहां राधि रुधिर का कीच है, महादुर्गंध है, श्वान, सर्प, मार्जार मनुष्य, खर, तुरंग, ऊंट इनका मृतक शरीर सड़ जाय, उसकी दुर्गंध से असंख्यात गुणा दुर्गंध है। नाना प्रकार दुखिने के सर्व कारण हैं। अर पवन महाप्रचण्ड विकराल चलै है, जाकरि भयंकर शब्द होय रह्या है।

जे जीव विषय-कषाय संयुक्त हैं, कामी हैं, क्रोधी हैं, पंच इन्द्रियों के लोलुपी हैं, जैसें - लोह का गोला जलविषै डूबै तैसें नरकविषै डूबै हैं। जे जीवनि की हिंसा करैं, मृषावाणी बोलैं, परधन हरै, परस्त्री सेवैं, महा आरम्भी, परिग्रही, ते पाप के भारकर नरकविषै पड़ै हैं। मनुष्य देह पाय जे निरंतर भोगासक्त भए हैं जिनके जीभ वश नाहीं, मन चंचल, ते प्रचंड कर्म के करणहारे नरक जाय हैं। जे पाप करैं करावैं पाप की अनुमोदना करैं, ते आर्त रौद्रध्यानी नरक के पात्र हैं। वह वज्राग्नि के कुण्ड में डारिए हैं, वज्राग्नि के दाहकर जलते थके पुकारे हैं। अग्निकुण्ड से छूटैं हैं तब वैतरणी नदी की ओर शीतल जल की वांछाकर जाय हैं। वहां जल महाक्षार, दुर्गंध, उसके स्पर्श से ही शरीर गल जाय है। दुःख का भाजन वैक्रियिक शरीर, ताकर आयुपर्यंत नाना प्रकार दुख भोगवे हैं।

पहिले नरक आयु उत्कृष्ट सागर 1, दूजे 3, तीजे 7, चौथे 13, पांचवें 17, छठे 22, सातमें 33, सो पूर्णकर मरैं है मारे से मरै नाहीं। वैतरणी के दुख से डरे छाया के अर्थ असिपत्र वन में जाय है, तहां खड्ग बाण बरछी कटारी सभी पत्र असराल पवनकर पड़े हैं। तिनकर तिनका शरीर विदारा जाय है, पछाड़ खाय भूमि में पड़े हैं, अर तिनकूं कभी कुंभीपाक में पकावै हैं, कभी नीचा माथा ऊंचा पगकर लटकावै हैं, मुद्गरनिसूं मारिए है, कुहाड़ों से कटिये हैं, करोतन से विदारिए हैं, घानी में पेलिए हैं, नाना प्रकार के छेदन भेदन है। यह नारकी जीव महादीन महा तृषाकरि तृषित, पीने का पानी मांगे हैं तब तांबादिक गाल प्यावै हैं। ते कहै हैं हमको यहां तृषा नाहीं, हमारा पीछा छोड़ दो, तब बलात्कार तिनकूं पछाड़ संडासियों से मुख फार मार मार प्यावै हैं। कंठ हृदय विदीर्ण होय जाय हैं, उदर फट जाय हैं। तीजे नरक तक तो परस्पर ही दुःख हैं, अर असुरकुमारिन की प्रेरणा से भी दुःख है। अर चौथे से लेय सातवें तक असुरकुमारिन का गमन नाहीं, परस्पर ही पीड़ा उपजावै हैं। नरकविषै नीचले सें नीचले में बढ़ता दुख है। सातवां नरक सबनि में महा दुखरूप है। नारकियोंकूं पहिला भव याद आवै है, अर दूसरे नारकी तथा तीजे लग असुरकुमार पूर्वले कर्म याद करावैं हैं।

तुम भले गुरुनि के वचन उलंघ कुगुरु कुशास्त्र के बलकर मांसकूं निर्दोष कहते हुते, नाना प्रकार के मांसकर, अर मधुकर, अर मदिराकरि कुदेवनि का आराधन करते हुते, सो मांस के दोषतैं नरकविषै पड़े हो। ऐसा कहकरि इन्हीं का शरीर काट काट इनके मुखविषै देय हैं। अर लोहे के तथा ताम्बे के गोला बलते पछाड़ पछाड़ संडासियों से मुख फाड़ फाड़ छाती पर पांव देय देय तिनके मुखविषै घालै हैं। अर मुद्‌गरों से मारै हैं। अर मद्यपायीकूं मार मार ताता तांबा शीशा प्यावैं हैं। अर परदारारत पापिनकूं वज्राग्निकर तप्तायमान लोहे की जे पूतली तिनसूं लिपटावै हैं। अर जे परदारारत फूलनि के सेज सूते हैं तिनकूं सूलनि के सेज ऊपर सुवावै हैं। अर स्वप्न की माया समान असार जो राज्य उसे पायकर जे गर्वैं हैं, अनीति करै हैं, तिनकूं लोहे के कीलों पर बैठाय मुद्‌गरों से मारै हैं, सो महाविलाप करै हैं। इत्यादि पापी जीवनिकूं नरक के दुख होय है।

सो कहां लग कहै। एक निमिषमात्र भी नरक में विश्राम नाहीं। आयुपर्यंत तिलमात्र आहार नाहीं, अर बून्दमात्र जलपान नाहीं, केवल मार ही का आहार है।

तातैं यह दुस्सह दुःख अधर्म के फल जान अधर्मकूं तजहु। ते अधर्म मधुमांसादिक अभक्ष्य भक्षण, अन्याय वचन, दुराचार, रात्रि आहार, वेश्यासेवन, परदारागमन, स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, कृतघ्नता लंपटता, ग्रामदाह, वनदाह, परधनहरण, अमार्गसेवन, परनिंदा, परद्रोह, प्राणघात, बहुआरम्भ, बहुपरिग्रह, निर्दयता, खोटी लेश्या, रौद्रध्यान, मृषावाद, कृपणता, कठोरता, दुर्जनता, मायाचार, निर्माल्य का अंगीकार, माता पिता गुरुओं की अवज्ञा, बाल वृद्ध स्त्री दीन अनाथनि का पीड़न इत्यादि दुष्ट कर्म नरक के कारण हैं। वे तज शांतभाव धर जिनशासनकूं सेवहु, जाकर कल्याण होय।

जीव छै काय के हैं - पृथ्वीकाय, अप (जल) काय, तेज (अग्नि) काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय तिनकी दया पालहु। अर जीव पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश काल छै द्रव्य है, अर सात तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय तिनकी श्रद्धा करहु। अर चतुर्दश गुणस्थान स्वरूप अर सप्तभंगी वाणी का स्वरूप भलीभांति केवली की आज्ञा प्रमाण उरविषै धारो। स्यात् अस्ति, स्यान्नास्ति, स्यात्‌अस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यात्‌अस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये सप्तभंग कहे।

अर प्रमाण कहिए वस्तु का सर्वांग कथन, अर नय कहिए वस्तु का एकअंग कथन, अर निक्षेप कहिए नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार, अर जीवनिविषै एकेंद्री के दोय भेद सूक्ष्म बादर, अर पंचेंद्री के दोय भेद सैनी असैनी अर बेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री ये सात भेद जीवों के हैं, सो पर्याप्त अपर्याप्तकर चौदह भेद जीवसमास होय हैं। अर जीव के दोय भेद एक संसारी एक सिद्ध।

जिसमें संसारी के दोय भेद – एक भव्य दूसरा अभव्य। जो मुक्ति होने योग्य सो भव्य, अर मुक्ति न होने योग्य सो अभव्य।

अर जीव का निजलक्षण उपयोग है ताके दोय भेद एक ज्ञान एक दर्शन। ज्ञान समस्त पदार्थकूं जानै, दर्शन समस्त पदार्थकूं देखै। सो ज्ञान के आठ भेद – मति, श्रुति, अवधि, मन:पर्यय, केवल, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, अर दर्शन के चार भेद – चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल।

अर जिनके एक स्पर्शन इन्द्री होय सो स्थावर कहिये, तिनके भेद पांच – पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पति।

अर त्रस के भेद चार – वेइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री। जिनके स्पर्श अर रसना वे द्वेइन्द्री, जिनके स्पर्श रसना नासिका सो तेइन्द्री, जिनके स्पर्श रसना नासिका चक्षु वे चौइन्द्री, जिनके स्पर्श रसना नासिका चक्षु श्रोत्र वे पंचेन्द्री। चौइन्द्री तक तो सब सम्मूर्छन अर असैनी है, अर पंचेन्द्रीविषै कई सम्मूर्छन, कई गर्भज।

तिनविषै कई सैनी कई असैनी। जिनके मन वे सैनी, अर जिनके मन नाहीं वे असैनी। अर जे गर्भ से उपजैं वे गर्भज अर जे गर्भबिना उपजैं स्वत: स्वभाव उपजैं वे सम्मूर्छन, गर्भज के भेद तीन – जरायुज अंडज पोतज। जे जराकर मंडित गर्भ से निकसे मनुष्य घोटकादिक वे जरायुज, अर जे बिना जेर के सिंहादिक सो पोतज, अर जे अंडावों से उपजे पक्षी आदिक वे अंडज। अर देव नारकियों का उपपाद जन्म है, माता पिता के संयोग बिना ही पुण्य पाप के उदय से उपजै हैं। देव तो उत्पादक शय्याविषै उपजै हैं, अर नारकी बिलों में उपजै हैं।

देवयोनि पुण्य के उदय से है अर नारकयोनि पाप के उदय से है। अर मनुष्य जन्म पुण्य पाप की मिश्रता से है, अर तिर्यंच गति मायाचार के योग से है। देव नारकी मनुष्य इन बिना सब तिर्यंच जानने।

जीवों की चौरासी लाख योनियें हैं, उनके भेद सुनो – पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्य निगोद, इतरनिगोद ये तो सात सात लाख योनि हैं, सो बयालीस लाख योनि भईं। अर प्रत्येक वनस्पति दस लाख से बावन लाख भेद स्थावर के भये। अर वेइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री ये दोय दोय लाख योनि, उसके छै लाख योनि भेद विकलत्रय के भए, अर पंचेन्द्री तिर्यंच के भेद चार लाख योनियें, सब तिर्यंच योनि के बासठ लाख भेद भए, अर देवयोनि के भेद चार लाख, नरकयोनि के भेद चार लाख, अर मनुष्य योनि के चौदह लाख। ये सब चौरासी लाख योनि महा दुखरूप हैं। इनसे रहित सिद्धपद ही अविनाशी सुखरूप है। संसारी जीव सब ही देहधारी हैं, अर सिद्ध परमेष्ठी देहरहित निराकार हैं।

शरीर के भेद पांच – औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण। तिनविषै तैजस

कार्माण तो अनादिकाल से सब जीवनकूं लगि रहे हैं, तिनका अंतकरि महामुनि सिद्ध पद पावै है। औदारिक से असंख्यात गुणी अधिक वर्गणा वैक्रियक के है अर वैक्रियकतैं असंख्यातगुणी आहारक के है, अर आहारकतैं अनंतगुणी तेजस की है, अर तेजसतैं अनन्त गुणी कार्माण की है।

जा समय संसारी जीव देहकूं तजकर दूसरी गतिकूं जाय है तासमय अनाहार कहिए। जितनी देर एक गति से दूसरी गतिविषै जाते हुए जीव को लगै है, उस अवस्था में जीवकूं अनाहारी कहिए। अर जितना वक्त एक गति से दूसरी गति में जाने में लगे सो वह एक समय तथा दो समय, अधिकतैं अधिक तीन समय लगै है। सो ता समय जीव के तैजस अर कार्माण ये दो ही शरीर पाइये हैं। बगैर शरीर के यह जीव सिवा सिद्ध अवस्था के अर काहू अवस्था में काहू समय नाहीं होता। या जीव के हर वक्त अर हर गति में जन्मते मरते साथ ही रहते हैं। जा समय यह जीव घातिया अघातिया दोऊ प्रकार के कर्म क्षय कर के सिद्ध अवस्थाकूं जाता है ता समय तैजस अर कार्माण का क्षय होता है। अर जीवनि के शरीर के परमाणुनि की सूक्ष्मता या प्रकार है – औदरिकतैं वैक्रियक सूक्ष्म, अर वैक्रियकतैं आहारक सूक्ष्म, आहारकतैं तैजस सूक्ष्म, अर तैजसतैं कार्माण सूक्ष्म है।

सो मनुष्य अर तिर्यंचनि के तो औदारिक शरीर है, अर देव नारकिनि के वैक्रियक है। अर आहारक ऋद्धिधारी मुनिनि के संदेह निवारिवे के अर्थ दसमें द्वार से निकसे। सो केवली के निकट जाय संदेह निवारि पीछा आय दशमे द्वार में प्रवेश करै है। ये पांच प्रकार के शरीर कहे, तिनमें एक काल एक जीवन के कबहू चार शरीर हू पाइए ताका भेद सुनहु – तीन तो सब ही जीविन के पाइए – नर अर तिर्यंच के औदारिक, अर देव नारकनि के वैक्रियक, अर तैजस कार्माण सब के हैं। तिनमें कार्माण तो दृष्टिगोचर नाहीं, अर तैजस काहू मुनि के प्रकट होय है।

ताके भेद दोय हैं – एक शुभ तैजस एक अशुभ तैजस। सो शुभ तैजस तो लोकनिकूं दुखी देख दाहिनी भुजातैं निकसि लोकनि का दुख निवारै है, अर अशुभ तैजस क्रोध के योगकर वामभुजातैं निकसि प्रजाकूं भस्म करै है, अर मुनिकूं हूं भस्म करै है। अर काहू मुनि के विक्रियाऋद्धि प्रकट होय है तब शरीरकूं सूक्ष्म तथा स्थूल करै है सो मुनि के चार शरीर हू काहू समय पाइए एक काल पांचों शरीर काहू जीव के न होंय।

अथानन्तर मध्यलोक में जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप, अर लवणसमुद्र आदि असंख्यात समुद्र हैं। शुभ हैं नाम जिनके सो द्विगुण द्विगुण विस्तारकूं लिए वलयाकार तिष्ठै हैं। सबके मध्य जम्बूद्वीप है, ताके मध्य सुमेरुपर्वत तिष्ठै है। सो लाख योजन ऊंचा है। अर जे द्वीप समुद्र कहे तिनमें जम्बूद्वीप लाख योजन के विस्तार है, अर प्रदक्षिणा तिगुणी से कछु इक अधिक है।

जम्बूद्वीपविषै देवारण्य अर भूतारण्य दो बन हैं। तिनविषै देवनि के निवास हैं। अर षट् कुलाचल हैं, पूर्व समुद्रसूं पश्चिम के समुद्र तक लांबे पड़े हैं। तिनके नाम हिमवान् महाहिमवान्, निषध, नील, रुकमी, शिखरी। समुद्र के जल का है स्पर्श जिनके, तिनमें ह्रद, अर ह्रदनि में कमल, तिनमें षट्कुमारिका देवी हैं – श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी।

अर जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं – भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत। अर षट्कुलाचलनिसूं गंगादिक चौदह नदी निकसी हैं, आदि के से तीन अर अंत के से तीन अर मध्य के चारों से दोय दोय यह चौदह है। अर दूजा द्वीप धातकी खण्ड सो लवण समुद्रतें दूना है। ताविषै दोय सुमेरु पर्वत हैं, अर बारह कुलाचल अर चौदह क्षेत्र। यहां एक भरत वहां दोय यहां एक हिमवान् वहां दोय। याही भांति सर्व दुगुणे जानने। अर तीजा द्वीप पुष्कर ताके अर्ध भाग विषै मानुषोत्तर पर्वत है, सो अढ़ाई द्वीप ही विषै मनुष्य पाइये है आगे नाहीं। आधे पुष्करविषै दोय दोय मेरु, बारा कुलाचल, चौदह क्षेत्र, धातु की खंडद्वीप समान तहां जानने।

अढ़ाई द्वीपविषै पांच सुमेरु, तीस कुलाचल, पांच भरत, पांच ऐरावत, पांच महाविदेह, तिनमें एक सौ साठ विजय, समस्त कर्मभूमि के क्षेत्र एक सौ सत्तर, एक एक क्षेत्र में छह छह खण्ड, तिनमें पांच पांच म्लेच्छखण्ड, एक एक आर्य खण्ड। आर्यखण्ड में धर्म की प्रवृत्ति, विदेहक्षेत्र अर भरत ऐरावत इनविषै कर्मभूमि, तिनमें विदेह में तो शाश्वती कर्मभूमि अर भरत ऐरावत में अठारा कोडाकोडी सागर भोगभूमि, दोय दोय कोडाकोडी सागर कर्मभूमि। अर देवकुरु उत्तर कुरु यह शाश्वती उत्कृष्ट भोग भूमि। तिनमें तीन तीन पल्य की आयु, अर तीन तीन कोस की काय, अर तीन तीन दिन पीछे अल्प आहार। सो पांच मेरु सम्बन्धी पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु, अर हरि, अर रम्यक, यह मध्य भोगभूमि तिनविषै दोय पल्य की आयु, अर दोय कोस की काय; दोय दिन गए आहार। या भांति पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरि रम्यक यह दश मध्य भोगभूमि। अर हैमवत हैरण्यवत यह जघन्य भोगभूमि, तिनमें एक पल्य की आयु अर एक कोस की काय, एक दिन के अंतरे आहार, सो पांच मेरु संबंधी पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, जघन्य भोगभूमि दश या भांति तीस भोगभूमि अढ़ाई द्वीप में जाननी। अर पंच महाविदेह, पंच भरत, पंच ऐरावत यह पन्द्रह कर्मभूमि हैं तिनमें मोक्षमार्ग प्रवरतै है।

अढ़ाई द्वीप के आगे मानुषोत्तर के परे मनुष्य नाहीं, देव अर तिर्यंच ही हैं। तिनविषै जलचर तो तीन ही समुद्रविषै हैं – लवणोदधि, कालोदधि तथा स्वयंभूरमण। इन तीन बिना और समुद्रनिविषै जलचर नाहीं। अर विकलत्रय जीव अढ़ाईद्वीपविषै हैं। अर स्वयंभूरमण द्वीप ताके अर्ध भागविषै नागेन्द्र पर्वत है। ताके परे आधे स्वयंभूरमण द्वीपविषै अर सारे स्वयंभूरमण समुद्रविषै

विकलत्रय हैं। मानुषोत्तरसूं लेय नागेन्द्र पर्वत पर्यंत जघन्य भोगभूमि की रीति है। वहां तिर्यंचनि की एक पल्य की आयु है। अर सूक्ष्म स्थावर तो सर्वत्र तीन लोक में हैं अर बादर स्थावर आधारविषै सर्वत्र नाहीं। एकराजूविषै समस्त मध्य लोक है। मध्य लोक में अष्ट प्रकार व्यंतर अर दश प्रकार भवनपतिनि के निवास हैं। अर ऊपर ज्योतिषी देवनि के विमान हैं।

तिनके पांच भेद – चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, तारा, नक्षत्र सो अढ़ाई द्वीपविषै ज्योतिषीचर हू हैं अर स्थिर हू हैं। आगे असंख्यात द्वीपनि में ज्योतिषी देवनि के विमान स्थिर ही हैं। बहुरि सुमेरु के ऊपर स्वर्गलोक हैं। तहां सोलह स्वर्ग तिनके नाम – सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, यह सोलह स्वर्ग, तिनमें कल्पवासी देव देवी हैं। अर सोलह स्वर्गनि के ऊपर नवग्रीव, तिनके ऊपर नव अनुत्तर, तिनके ऊपर पंचोत्तर विजय वैजयंत जयंत अपराजित सर्वार्थसिद्धि, यह अहमिंद्रनि के स्थानक हैं। जहां देवांगना नाहीं, अर स्वामी सेवक नाहीं, और ठौर गमन नाहीं। अर पांचवां स्वर्ग ब्रह्म ताके अन्त में लोकांतिकदेव हैं, तिनके देवांगना नाहीं, वे देवर्षि हैं। भगवान के तपकल्याण में ही आवै। ऊर्ध्वलोक में देव ही हैं अथवा पंच स्थावर ही हैं।

हे श्रेणिक! यह तीन लोक का व्याख्यान जो केवली ने कह्या ताका संक्षेप रूप जानना। विस्तारसूं त्रिलोकसारसूं जानना। तीन लोक के शिखर सिद्धलोक हैं। ता समान दैदीप्यमान और क्षेत्र नाहीं, जहां कर्मबन्धन से रहित अनन्त सिद्ध विराजै हैं, मानों वह मोक्ष स्थानक तीन भुवन का उज्ज्वल छत्र ही है। वह मोक्ष स्थानक अष्टमी धरा है। ये अष्ट पृथ्वी के नाम नारक 1, भवनवासी 2, मानुष 3, ज्योतिषी 4, स्वर्गवासी 5, ग्रीव 6, अर अनुत्तर विमान 7, मोक्ष 8, ये आठ पृथ्वी हैं सो शुद्धोपयोग के प्रसादकरि जे सिद्ध भए हैं तिनकी महिमा कही न जाय। तिनका मरण नाहीं। बहुरि जन्म नाहीं, महासुखरूप हैं, अनेक शक्ति के धारक समस्त दुखरहित महा निश्चल सर्व के ज्ञाता-द्रष्टा हैं।

यह कथन सुन रामचन्द्र सकलभूषण केवलीसूं पूछते भए – हे प्रभो! अष्टकर्मरहित अष्टगुण आदि अनन्तगुण सहित सिद्ध परमेष्ठी संसार के भावन से रहित हैं सो दुख तो उनको काहू प्रकार का नाहीं अर सुख कैसा है?

तब केवली दिव्यध्वनिकर कहते भए – इस तीन लोकविषै सुख नाहीं, दुख ही है, अज्ञान से वृथा सुख मान रहे हैं। संसार का इन्द्रियजनित सुख बाधासंयुक्त क्षणभंगुर है। अष्टकर्म करि बंधे, सदा पराधीन ये जब तक जीव तिनके तुच्छ मात्रहू सुख नाहीं। जैसैं स्वर्ण का पिंड लोहकरि संयुक्त होय तब स्वर्ण की कांति दब जाय है तैसैं जीव की शक्ति कर्मनिकरि दब रही है सो सुख-

रूप दुख ही भोगवे है। यह प्राणी जन्म मरण रोग शोक जे अनन्त उपाधी तिनकरि महा पीड़ित है। तिनका अर मन का दुख मनुष्य तिर्यंच नारकीनिकूं है। अर देवनिकूं दुख मन ही का है सो मन का महादुख है ताकर पीड़ित हैं। या संसारविषै सुख काहे का?

ये इन्द्रजनित विषय के सुख इन्द्र धरणींद्र चक्रवर्तीनिकूं शहद की लपेटी खड्ग की धारा समान है, अर विषमिश्रित अन्न समान हैं। अर सिद्धनि के मन इन्द्री नाहीं, शरीर नाहीं, केवल स्वाभाविक अविनाशी उत्कृष्ट निराबाध निरूपम सुख है। ताकी उपमा नाहीं। जैसे निद्रारहित पुरुषकूं सोयवेकरि कहा अर निरोगनिकूं औषधिकर कहा? तैसे सर्वज्ञ वीतराग कृतार्थ सिद्ध भगवान तिनकूं इन्द्रीनि के विषयनिकर कहा? दीपककूं सूर्य चन्द्रादिक कर कहा? जे निर्भयजिन के शत्रु नाहीं, तिनके आयुधनिकरि कहा? जे सबके अंतर्यामी सबकूं देखे, जानैं, जिनके सकल अर्थ सिद्ध भए, कछु करना नाहीं, वांछा काहू वस्तु की नाहीं, ते सुख के सागर हैं। इच्छा मनसूं होय है, सो मन नाहीं, परम आनन्द स्वरूप क्षुधा तृषादि बाधारहित हैं। तीर्थंकर देव जा सुख की इच्छा करैं ताकी महिमा कहांलग कहिए। अहमिंद्र इन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र चक्रवर्त्यादिक निरंतर ताही पद का ध्यान करैं हैं। अर लोकांतिक देव ताही सुख के अभिलाषी हैं ताकी उपमा कहांलग करैं। यद्यपि सिद्धपद का सुख उपमारहित केवलीगम्य है, तथापि प्रतिबोध के अर्थ तुमकूं सिद्धनि के सुख का कछु इक वर्णन करै हैं।

अतीत अनागत वर्तमान तीन काल के तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिक सर्व उत्कृष्ट भूमि के मनुष्यनि का सुख, अर तीन काल का भोगभूमि का सुख, अर इन्द्र अहमिंद्र आदि समस्त देवनि का सुख, भूत भविष्यत् वर्तमान काल का सकल एकत्र करिए, अर ताहि अनन्त गुणा फलाइए, सो सिद्धनि के एक समय के सुख तुल्य नाहीं। काहे? जो सिद्धिनि का सुख निराकुल निर्मल अव्याबाध अखण्ड अतींद्रिय अविनाशी है। अर देव मनुष्यनि का सुख उपाधिसंयुक्त, बाधासहित विकल्परूप व्याकुलताकरि भर्‍या विनाशीक है।

अर एक दृष्टांत और सुनहु - मनुष्यनितैं राजा सुखी, राजानितैं चक्रवर्ती सुखी, अर चक्रवर्तीनितैं व्यंतरदेव सुखी, अर व्यन्तरनि सैं ज्योतिषी देव सुखी, तिनमें भवनवासी अधिक सुखी, अर भवनवासीनितैं कल्पवासी सुखी, अर कल्पवासीनितैं नवग्रीव के सुखी, नवग्रीवतैं नव अनुत्तर के सुखी, अर तिनतैं पंचोत्तर के सुखी, पंचोत्तर सर्वार्थसिद्धि समान और सुखी नाहीं।

सो सर्वार्थसिद्धि के अहमिंद्रनितैं अनन्तानन्तगुणा सुख सिद्धपद में है, सुख की हद्द सिद्धपद का सुख है, अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान अनन्तसुख अनन्तवीर्य यह आत्मा का निज स्वरूप सिद्धनि में प्रवर्ते हैं। अर संसारी जीविनि के दर्शन ज्ञान सुख वीर्य कर्मनि के क्षयोपशम से बाह्य वस्तु के

निमित्त थकी विचित्रता लिये अल्परूप प्रवरतै हैं। यह रूपादिक विषय सुख व्याधिरूप विकल्परूप मोह के कारण इनमें सुख नाहीं। जैसैं फोड़ा राध रुधिरकरि भस्या फूले ताहि सुख कहा? तैसे विकल्परूप फोड़ा महा व्याकुलतारूप राध का भस्या जिनके है तिनके सुख कहां? सिद्ध भगवान गतागतरहित समस्त लोक के शिखर विराजै हैं। तिनके सुख समान दूजा सुख नाहीं। जिनके दर्शन ज्ञान लोकालोककूं देखैं, जानैं, तिनसमान सूर्य कहां? सूर्य तो उदय अस्तकूं धरै है सकल प्रकाशक नाहीं। वह भगवान सिद्ध परमेष्ठी हथेलीविषै आंवले की नाईं सकल वस्तुकूं देख जानैं। छद्मस्थ पुरुष का ज्ञान उन समान नाहीं।

यद्यपि अवधिज्ञान महापर्ययज्ञानी मुनि अविभागी परमाणु पर्यन्त देखै है, अर जीवनि के असंख्यात जन्म जानै है तथापि अरूपी पदार्थनिकूं न जानै है अर अनन्तकाल की न जानै, केवली ही जानै। केवलज्ञान केवल दर्शनकरि युक्त तिन समान और नाहीं। सिद्धनिके ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त अर संसारी जीवनि के अल्पज्ञान अल्प दर्शन, सिद्धनि के अनन्त सुख अनन्त वीर्य अर संसारनि के अल्पसुख अल्पवीर्य। यह निश्चय जानो। सिद्धनि के सुख की महिमा केवलज्ञानी ही जानैं, अर चार ज्ञान के धारकहू पूर्ण न जानैं। यह सिद्धपद अभव्योंकूं अप्राप्य है। इस पदकूं निकट भव्य ही पावैं, अभव्य अनन्त कालहू काय क्लेशकरि अनेक यत्न करै तोहू न पावै। अनादिकाल की लगी जो अविद्यारूप स्त्री ताका विरह अभव्यनि के न होय। सदा विद्याकूं लिये भववनविषै शयन करैं। अर मुक्तिरूप स्त्री के मिलाप की बांछाविषै तत्पर जे भव्य जीव ते कईएक दिन संसारविषै रहैं हैं, सो संसार में राजी नाहीं, तपविषै तिष्ठते मोक्ष ही के अभिलाषी हैं। जिनविषै सिद्ध होने की शक्ति नाहीं उन्हें अभव्य कहिये। अर जे सिद्ध होनहार हैं उन्हें भव्य कहिए।

केवली कहैं हैं – हे रघुनन्दन! जिनशासन बिना और कोई मोक्ष का उपाय नाहीं। बिना सम्यक्त कर्मनि का क्षय न होय। अज्ञानी जीव कोटि भवविषै जे कर्म न खिपाय सकै सो ज्ञानी तीन गुप्तिकूं धरे एक मुहूर्तविषै खिपावै। सिद्ध भगवान परमात्मा प्रसिद्ध हैं, सर्व जगत के लोग उनकूं जाने हैं कि वे भगवान हैं। केवली बिना उनकूं कोई प्रत्यक्ष देख न जान सकै। केवलज्ञानी ही सिद्धनिकूं देखैं जानै हैं। मिथ्यात्व का मार्ग संसार का कारण या जीव ने अनन्त भवविषै धास्या। तुम निकटभव्य हो, परमार्थ की प्राप्ति के अर्थ जिनशासन की अखण्ड श्रद्धा धारहु।

हे श्रेणिक! यह वचन सकलभूषण केवली के सुनि श्रीरामचन्द्र प्रणामकरि कहते भये – हे नाथ! या संसार समुद्रतैं मोहि तारहु, हे भगवन्! यह प्राणी कौन उपायकरि संसार के वासतैं छूटै है। तब केवली भगवान कहते भए – हे राम! सम्यक्दर्शन ज्ञानचारित्र मोक्ष का मार्ग है, जिनशासनविषै यह कहा है। तत्त्व का जो श्रद्धान ताहि सम्यक्दर्शन कहिए, अनन्त गुणपर्यायरूप

है ताके दोय भेद हैं – एक चेतन दूसरा अचेतन। सो जीव चेतन है, और सर्व अचेतन हैं। अर दर्शन दोय प्रकारतैं उपजै हैं एक निसर्ग एक अधिगम। जो स्वत:स्वभाव उपजे सो निसर्ग, अर गुरु के उपदेशतै उपजे सो अधिगम। सम्यक्दृष्टि जीव जिनधर्मविषै रत है। सम्यक्त्व के अतीचार पांच हैं – शंका कहिये जिनधर्मविषै संदेह, अर कांक्षा कहिये भोगनि की अभिलाषा, अर विचिकित्सा कहिए महामुनिकूं देख ग्लानि करनी, अर अन्यदृष्टि प्रशंसा कहिये मिथ्यादृष्टिकूं मनविषै भला जानना, अर संस्तव कहिये वचनकरि मिथ्यादृष्टि की स्तुति करना, इनकरि सम्यक्तविषै दूषण उपजै है। अर मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ ये चार भावना अथवा अनित्यादि बारह भावना, अथवा प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य अर शंकादि दोष रहितपना, जिनप्रतिमा जिनमन्दिर जिनशास्त्र मुनिराजनि की भक्ति इनकरि सम्यग्दर्शन निर्मल होय है।

अर सर्वज्ञ के वचन प्रमाण वस्तु का जानना सो ज्ञान की निर्मलता का कारण है। अर जो काहूतैं न सधै ऐसी दुर्धरक्रिया आचरणी ताहि चारित्र कहिए। पांचों इन्द्रियनि का निरोध मन का निरोध, वचन का निरोध, सर्व पापक्रियानि का त्याग सो चारित्र कहिए। त्रस स्थावर सर्व जीव की दया, सब कूं आप समान जाने सो चारित्र कहिए। अर सुनने वाले के मन अर काननिकूं आनन्दकारी स्निग्ध मधुर अर्थसंयुक्त कल्याणकारी वचन बोलना सो चारित्र कहिए। अर मन वचन कायकरि परधन का त्याग करना, किसी का बिना दीया कछु न लेना, अर दीया हुआ आहारमात्र लेना, सो चारित्र कहिए। अर जो देवनिकरि पूज्य महादुर्धर ब्रह्मचर्यव्रत का धारण सो चारित्र कहिए। अर शिवमार्ग कहिए निर्वाण का मार्ग ताहि विघ्नकरणहारी मूर्छा कहिए मन की अभिलाषा ताका त्याग सोई परिग्रह का त्याग सो हू चारित्र कहिए है। ये मुनिनि के धर्म कहे।

अर जो अणुव्रती श्रावक मुनिनिकूं श्रद्धा आदि गुणनिकरि युक्त नवधा भक्तिकर आहार देना सो एकदेशचारित्र कहिए। अर परदारा परधन का परिहार, परपीडा का निवारण, दयाधर्म का अंगीकार, दान शील पूजा प्रभावना, पर्वोपवासादिक सो ये देशचारित्र कहिए अर यम कहिए। यावज्जीव पाप का परिहार नियम कहिए, मर्यादारूप व्रत तप का अंगीकार, वैराग्य, विनय विवेक, ज्ञान, मन-इन्द्रियों का निरोध ध्यान इत्यादि धर्म का आचरण सो एकदेश चारित्र कहिए। यह अनेक गुणकरि युक्त, जिनभासित चारित्र, परम धाम का कारण कल्याण की प्राप्ति के अर्थ सेवने योग्य है। जो सम्यग्दृष्टि जीव जिनशासन का श्रद्धानी परनिंदा का त्यागी अपनी अशुभ क्रिया का निंदक जगत के से न सधै ऐसे दुर्द्धर तप का धारक संयम का साधनहारा सो ही दुर्लभ चारित्र धारिवेकूं समर्थ होय।

अर जहां दया आदि समीचीन गुण नाहीं, अर चारित्र बिना संसारकूं निवृत्ति नाहीं। जहां दया

क्षमा ज्ञान वैराग्य तप संयम नाहीं तहां धर्म नाहीं। विषयकषाय का त्याग सोई धर्म है। शम कहिए समता भाव, परम शांत, दम कहिये मन इन्द्रियों का निरोध, संवर कहिए नवीन कर्म का निरोध, जहां ये नाहीं तहां चारित्र नाहीं। जे पापी जीव हिंसा करैं हैं झूठ बोलें हैं चोरी करैं हैं परस्त्री सेवन करैं हैं महा आरम्भी हैं, परिग्रही हैं तिनके धर्म नाहीं। जे धर्म के निमित्त हिंसा करैं हैं ते अधर्मी अधमगति के पात्र हैं। जो मूढ़ जिनदीक्षा लेकर आरम्भ करैं हैं यो यति नाहीं। यति का धर्म आरम्भ परिग्रहसूं रहित है। परिग्रह धारियोंकूं मुक्ति नाहीं। जे हिंसा में धर्म जान षट्कायिक जीवों की हिंसा करैं हैं ते पापी हैं।

हिंसाविषै धर्म नाहीं, हिंसकोंकूं या भव पर भव के सुख नाहीं, शिव कहिए मोक्ष नाहीं। जे सुख के अर्थ धर्म के अर्थ जीवघात करैं हैं सो वृथा है। जे ग्राम क्षेत्रादिकविषै आसक्त हैं, गाय, भैंस राखैं हैं, मारै हैं, बांधै हैं, तोड़े हैं, दाहै हैं, उनके वैराग्य कहां? जे क्रय विक्रय करै हैं, रसोई परहैंडा आदि आरम्भ राखैं हैं सुवर्णादिक राखै हैं तिनकूं मुक्ति नाहीं। जिनदीक्षा निरारम्भ है अतिदुर्लभ हैं। जे जिनदीक्षा धारि जगत का धंधा करैं हैं वे दीर्घ संसारी हैं। जे साधु होय तैलादिक का मर्दन करैं हैं शरीर का संस्कार करै हैं। पुष्पादिककूं सूंघै हैं सुगन्ध लगावैं हैं, दीपक का उद्योत करैं हैं धूप खेवैं हैं, सो साधु नाहीं, मोक्षमार्गसूं परांगमुख हैं। अपनी बुद्धिकरि जे कहैं हैं–हिंसाविषै दोष नाहीं वे मूर्ख हैं। तिनकूं शास्त्र का ज्ञान नाहीं, चारित्र नाहीं।

जे मिथ्यादृष्टि तप करैं हैं, ग्रामविषै एक रात्रिविषै बसै हैं, नगरविषै पांच रात्रि, अर सदा ऊर्ध्वबाहु राखै हैं, मास मासोपवास करै हैं, अर वनविषै विचरैं हैं, मौनी हैं, निपरिग्रह ही हैं, तथापि दयावान नाहीं, दुष्ट है हृदय जिनका, सम्यक्त बीज बिना धर्मरूप वृक्षकूं न उपाय सकै। अनेक कष्ट करैं तौ भी शिवालय कहिए मुक्ति उसे न लहें। जे धर्म की बुद्धिकर पर्वतसूं पड़े, अग्निविषै जरैं, जल विषै डूबैं, धरतीविषै गढ़े, वे कुमरणकर कुगतिकूं जावैं हैं। जे पापकर्मी कामना परायण आर्त रौद्र ध्यानी, विपरीत उपाय करैं वे नरक निगोद लहैं। मिथ्यादृष्टि जो कदाचित् दान दे, तप करै, सो पुण्य के उदयकरि मनुष्य अर देव गति के सुख भोगै हैं, परन्तु श्रेष्ठ मनुष्य न होय, सम्यग्दृष्टियों के फल के असंख्यातवें भाग भी फल नाहीं। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणठाणे अव्रती है–तौ हूं नियमविषै है प्रेम जिनके सो सम्यकदर्शन के प्रसादसूं देवलोकविषै उत्तम देव होवैं, अर मिथ्यादृष्टि कुलिंगी महातप भी करैं तो देवनि के किंकर हीनदेव होंय, बहुरि संसारभ्रमण करैं।

अर सम्यक्दृष्टि भाव धरैं तो उत्तम मनुष्य होय, तिनमें देवन के भव सात, मनुष्यनि के भव आठ या भांति पन्द्रह भवविषै पंचम गति पावैं। वीतराग सर्वज्ञदेव ने मोक्ष का मार्ग प्रकट दिखाया है, परन्तु यह विषयी जीव अंगीकार न करै है। आशारूपी फांसी से बन्धे मोह के वश पड़े तृष्णा

के भरे पापरूप जंजीर से जकड़े, कुगतिरूप बन्दीगृहविषै पड़े है, स्पर्श अर रसना आदि इन्द्रियों के लोलुपी दु:खहीकूं सुख मानै हैं। यह जगत के जीव एक जिनधर्म के शरण बिना क्लेश भोगै हैं, इन्द्रियों के सुख चाहैं सो मिले नाहीं। अर मृत्युसूं डरें सो मृत्यु छोड़े नाहीं विफल कामना अर विफल भय के वश भए जीव केवल ताप हीकूं प्राप्त होय हैं। ताप के हरिवे का उपाय और नाहीं, आशा अर शंका तजना यही सुख का उपाय है। यह जीव आशाकरि भर्या भोगनि का भोग किया चाहै है, अर धर्मविषै धीर्य नाहीं धरै है। क्लेशरूप अग्निकर उष्ण महा आरंभविषै उद्यमी कुछ भी अर्थ नाहीं पावै है उलटा गांठ का खोवै है। यह प्राणी पाप के उदयसूं मनवांछित अर्थकूं नाहीं पावै है, उलटा अनर्थ होय है सो अनर्थ अतिदुर्जय है, यह मैं किया यह मैं करूं हूं, यह करूंगा, ऐसा विचार करते ही मरकर कुगति जाय है। ये चारों ही गति कुगति है। एक पंचमगति निर्वाण सोई सुगति है। जहां से बहुरि आवना नाहीं, अर जगतविषै मृत्यु ऐसी नाहीं देखै हैं, जो याने यह किया, यह न किया, बाल अवस्था आदि से सर्व अवस्थाविषै आय दावै है, जैसे सिंह मृगकूं सब अवस्थाविषै आय दाबै।

अहो! यह अज्ञानी जीव अहितविषै हित की वांछा धरै है, अर दुखविषै सुख की आशा करै है। अनित्यकूं नित्य जानै है, भयविषै शरण मानै है। इनके विपरीतबुद्धि है। यह सब मिथ्यात्व का दोष है। यह मनुष्यरूप माता हाथी मायारूप गर्तविषै पड्या अनेक दुख रूप बन्धनकरि बन्धै है, विषयरूप मांस का लोभी मत्स्य की नाईं विकल्परूपी जाल में पड़े है। यह प्राणी दुर्बल बलद की न्याईं कुटुम्बरूप कीच में फंसा खेदखिन्न होय है। जैसे बोरियों से बंध्या अर अंधकूप में पड्या उसका निकसना अति कठिन तैसे स्नेहरूप फांसीकरि बंध्या संसारूप अंधकूपविषै पड़ा, अज्ञानी जीव उसका निकसना अति कठिन है। कोई निकट भव्य जिनवाणीरूप रस्तेकूं गहै अर श्रीगुरु निकासने वाले होय तो निकसै। अर अभव्य जीव जैनेन्द्री आज्ञारूप अति दुर्लभ आनन्द का कारण जौ आत्मज्ञान उसे पायबे समर्थ नाहीं। जिनराज का निश्चय मार्ग निकट भव्य ही पावै अर अभव्य सदा कर्मनिकरि कलंकी भए अति क्लेशरूप संसारचक्रविषै भ्रमै है।

हे श्रेणिक! यह वचन श्री भगवान सकलभूषण केवली ने कहे। तब श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़ सीस निवाय कहते भए - हे भगवान्! मैं कौन उपायकरि भवभ्रमणसूं छूटूं? मैं सकल राणी अर पृथ्वी का राज्य तजिवे समर्थ हूं, परन्तु भाई लक्ष्मण का स्नेह तजिवे समर्थ नाहीं। स्नेह समुद्र की तरंगनिविषै डूबूं हूं। आप धर्मोपदेशरूप हस्तावलंबन कर काढहु।

हे करुणानिधान! मेरी रक्षा करहु। तब भगवान कहते भए - हे राम! शोक न कर, तू बलदेव है। कईएक दिन वासुदेव सहित इन्द्र की न्याईं या पृथ्वी का राज्य कर जिनेश्वर का व्रतधरि

केवलज्ञान पावेगा। ये केवली के वचन सुनि श्रीरामचन्द्र हर्षकरि रोमांचित भए, नयनकमल फूलि गए, वदनकमल विकसित भया, परम धीर्य युक्त होते भए। अर रामकूं केवली के मुख से चरम शरीरी जान सुन नर असुर सब ही प्रशंसाकरि अति प्रीति करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रामकूं केवली के मुख धर्म श्रवण करने वाला एक सौ पाँचवाँ पर्व संपूर्ण भया।।105।।

अथानन्तर विद्याधरनिविषै श्रेष्ठ विभीषण रावण का भाई, सुन्दर शरीर का धारक, राम की भक्ति ही है आभूषण जाके सो दोऊ कर जोड़ि प्रणामकरि केवलीकूं पूछता भया, हे देवाधिदेव! श्रीरामचन्द्र ने पूर्व भवविषै क्या सुकृत किया जाकरि ऐसी महिमा पाई अर इनकी स्त्री सीता दण्डक बनतैं कौन प्रसंगकरि रावण हर ले गया। धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थ का वेत्ता अनेक शास्त्र का पाठी, कृत्य अकृत्यकूं जाने, धर्म अधर्मकूं पिछाने, प्रधानगुण सम्पन्न, सो काहेसूं मोह के वश होय परस्त्री की अभिलाषारूप अग्निविषै पतंग के भावकूं प्राप्त भया? अर लक्ष्मण ने उसे संग्रामविषै हत्या। रावण ऐसा बलवान विद्याधरनि का महेश्वर अनेक अद्भुत कार्यनि का करणहारा कैसे ऐसे मरणकूं प्राप्त भया?

तब केवली अनेक जन्म की कथा विभीषण कूं कहते भए – हे लंकेश्वर! राम लक्ष्मण दोनों अनेकभव के भाई हैं अर रावण के जीवसूं लक्ष्मण के जीव का बहुत भव से बैर है सो सुन। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषै एक नगर, वहां नयदत्तनामा वणिक अल्पधन का धनी, उसकी सुनन्दा स्त्री, उसके धनदत्तनामा पुत्र, सो राम का जीव अर दूजा वसुदत्त सो लक्ष्मण का जीव, अर एक एक यज्ञवलिनामा विप्र वसुदत्त का मित्र सो तेरा जीव। अर उस ही नगरविषै एक और वणिक सागरदत्त, जिसके स्त्री रत्नप्रभा, पुत्री गुणवती सो सीता का जीव, अर गुणवती का छोटा भाई जिसका नाम गुणवान सो भामंडल का जीव, अर गुणवती का रूप, यौवन कला कांति लावण्यताकरि मण्डित सो पिता का अभिप्राय जान धनदत्तसूं बहिन की सगाई गुणवान ने करी। अर उस ही नगर में एक महाधनवान वणिक श्रीकांत सो रावण का जीव जो निरन्तर गुणवती के परिणवे की अभिलाषा राखै, अर गुणवती के रूपकर हरा गया है मन जाका सो गुणवती का भाई लोभी धनदत्तकूं अल्प धनवंत जान, श्रीकान्तकूं महाधनवंत देख परणायवेकूं उद्यमी भया।

सो यह वृत्तांत यज्ञवलि ब्राह्मण ने वसुदत्त सूं कहा। तेरे बड़े भाई की मांग कन्या का बड़ा भाई श्रीकांतकूं धनवान जान परणाया चाहै है। तब वसुदत्त यह समाचार सुन श्रीकांत के मारिवे कूं उद्यमी भया, खड्ग पैनाय अंधेरी रात्रि विषै श्याम वस्त्र पहिर शब्दरहित धीरा धीरा पग धरता जाय – श्रीकांत के घरविषै गया सो यह असावधान बैठा हुता सो खड्गसूं मारया। तब पड़ते पड़ते

श्रीकांत ने भी वसुदत्त कूं खड्ग सूं मार्‍या सो दोऊ मरे सो विंध्याचल के वन में हिरण भए। अर नगर के दुर्जन लोक हुते तिन्होंने गुणवती धनदत्त कूं न परणायवे दीनी कि इसके भाई ने अपराध कीया। दुर्जन लोक बिना अपराध कोप करैं सो यह तो एक बहाना पाया तब धनदत्त अपने भाई का मरण अर अपना अपमान तथा मांग का अलाभ जान महा दुखी होय घर सूं निकस विदेश गमन करता भया अर वह कन्या धनदत्त की अप्राप्तिकरि अति दुखी भई और भी किसीकूं न परणती भई, अर कन्या मुनिनि की निंदा अर जिनमार्ग की अश्रद्धा मिथ्यात्व के अनुरागकरि पाप उपार्जे, काल पाय आर्तध्यानकरि मूई सो जिस वनविषै दोनों मृग भए हुते तिस वनविषै यह मृगी भई।

सो पूर्वले विरोधकरि इसी के अर्थतैं दोनों मृग परस्पर लड़करि मूए, सो वन सूकर भए। बहुरि हाथी, भैंसा, बैल, वानर, गैंडा, ल्याली, मींढ़ा इत्यादि अनेक जन्म धरते भए। अर यह वाही जाति की तिर्यंचनी होती भई। सो याके निमित्त परस्पर लड़कर मूए। जल के जीव थल के जीव होय प्राण तजते भए।

अर धनदत्त मार्ग के खेदकरि अति दुखी एक दिन सूर्य के अस्त समय मुनिन के आश्रय गया। भोला कछु जानै नाहीं, साधुनिसूं कहता भया मैं तृषाकरि पीड़ित हूं मुझे जल पिलावहु, तुम धर्मात्मा हो। तब मुनि तो न बोले अर कोई जिनधर्मी मधुर वचनकरि इसे संतोष उपजायकरि कहता भया, हे मित्र! रात्रिकूं अमृत भी न पीवना, जल की कहा बात जिस समय आंखनिकर कछु सूझै नाहीं। सूक्ष्म जीव दृष्टि न पड़े ता समय, हे वत्स! यदि तू अति आतुर भी होय तो भी खानपान न करना। रात्रि आहारविषै मांस का दोष लागै है इसलिये तू न कर जाकरि भवसागरविषै डूबिये। यह उपदेश सुन धनदत्त शांतचित्त भया, शक्ति अल्प थी इसलिए यति न होय सका। दयाकरि युक्त है चित्त जाका सो अणुव्रती श्रावक भया, बहुरि काल पाय समाधिमरण करि सौधर्म स्वर्गविषै बड़ी ऋद्धि का धारक देव भया, मुकुट हार भुजबंधादिककरि शोभित पूर्व पुण्य के उदयसूं देवांगनादिक सुख भोगे।

बहुरि स्वर्गसूं चयकरि महापुरनामा नगरविषै मेरु नामा श्रेष्ठी ताकी धारिणी स्त्री के पद्मरुचि नामा पुत्र भया। अर ताही नगरविषै राजा छत्रछाय, राणी श्रीदत्ता, गुणनि की मंजूषा हूती। सो एक दिन सेठ का पुत्र पद्मरुचि अपने गोकुलविषै अश्व चढ़ा आया सो एक वृद्धिगति बलदकूं कंठगत प्राण देख्या। तब इस सुगन्ध वस्त्र माला के धारक ने तुरंगतैं उतरि अति दयाकरि बैल के कानविषै नमोकार मंत्र दिया। सो बलद ने चित्त लगाय सुन्या, अर प्राण तजि राणी श्रीदत्ता के गर्भविषै आय उपज्या। राजा छत्रछाय के पुत्र न था सो पुत्र के जन्मविषै अतिहर्षित भया, नगर की अतिशोभा करी, बहुत द्रव्य खरच्या, बड़ा उत्सव कीया। वादित्रों के शब्दकरि दशों दिशा शब्दायमान भईं।

यह बालक पुण्यकर्म के प्रभावकरि पूर्व जन्म जानता भया। सो बलद के भव का शीत आताप आदि महादुख, अर मरण समय नमोकार मंत्र सुन्या ताके प्रभावकरि राजकुमार भया, सो पूर्व अवस्था यादकरि बालक अवस्थाविषै ही महाविवेकी होता भया।

जब तरुण अवस्था भई, तब एक दिन विहार करता बलद के मरण के स्थानक गया, अपना पूर्व चरित चितार यह वृषभध्वज कुमार हाथीसूं उतर पूर्वजन्म की मरणभूमि देख दुखित भया। अपने मरण का सुधारणहारा, नमोकार मंत्र का देनहारा उसके जानिवे के अर्थ एक कैलाश के शिखर समान ऊंचा चैत्यालय बनाया। अर चैत्यालय के द्वारविषै एक बैल की मूर्ति जिसके निकट बैठा एक पुरुष नमोकार मंत्र सुनावै है, ऐसा एक चित्रपट लिखाय मेल्या अर उसके समीप समझने के मनुष्य मेले। दर्शन करिवेकूं मेरु श्रेष्ठी का पुत्र पद्मरुचि आया, सो देख अतिहर्षित भया। अर भगवान का दर्शनकरि पीछे आय बैल के चित्रपट की ओर निरखकरि मनविषै विचारै है बैलकूं नमोकार मंत्र मैंने सुनाया था। सो खड़ा खड़ा देखै। जे पुरुष रखवारे थे तिन जाय राजकुमारकूं कही।

सो सुनते ही बड़ी ऋद्धिसूं युक्त हाथी चढ्या शीघ्र ही अपने परम मित्रसूं मिलने आया। हाथीसूं उतरि जिनमन्दिरविषै गया बहुरि बाहिर आया। पद्मरुचिकूं बैल की ओर निहारता देख्या। राजकुमार ने श्रेष्ठी के पुत्रकूं पूछी तुम बैल के चित्रपट की ओर कहा निरखो हो?

तब पद्मरुचि ने कही एक मरते बैल को मैंने नमोकर मंत्र दिया था सो कहा उपज्या है यह जानिवे की इच्छा है। तब वृषभध्वज बोले वह मैं हूं। ऐसा कह पायन पड्या, अर पद्मरुचि स्तुति करी, जैसैं गुरु को शिष्य करै, अर कहता भया – मैं पशु महा अविवेकी मृत्यु के कष्टकरि दुखी था सो तुम मेरे महामित्र नमोकारमंत्र के दाता समाधिमरण के कारण होते भए। तुम दयालु पर भव के सुधारणहारे ने महामंत्र मुझे दिया उससे मैं राजकुमार भया। जैसा उपकार राजा, देव, माता, सहोदर, मित्र, कुटुम्ब कोई न करै तैसा तुम किया।

अहो! जो तुम नमोकार मंत्र दिया उस समान पदार्थ त्रैलोक्य में नाहीं। ताका बदला मैं क्या दूं। तुमसे उऋण नाहीं, तथापि तुमविषै मेरी भक्ति अधिक उपजी है जो आज्ञा देवो सो करूं। हे पुरुषोत्तम! तुम आज्ञा दानकरि मोकूं भक्त करो। यह सकल राज्य लेहु, मैं तुम्हारा दास, यह मेरा शरीर उसकरि इच्छा होय सो सेवा करावो। या भांति वृषभध्वज ने कही तब पद्मरुचि के अर याके अति प्रीति बढ़ी। दोनों सम्यग्दृष्टि राजविषै श्रावक के व्रत पालते भए। ठौर ठौर भगवान के बड़े बड़े चैत्यालय कराए तिनमें जिन बिंब पधराए। यह पृथ्वी तिनकरि शोभायमान होती भई। बहुरि समाधि मरण करि वृषध्वज पुण्यकर्म के प्रसादकरि दूजे स्वर्गविषै देव भया, देवांगनानि के नेत्ररूप कमल तिनके प्रफुल्लित करने कूं सूर्य समान होता भया, तहां मनवांछित क्रीडा करता भया। अर

पद्मरुचि सेठ भी समाधिमरण करि दूजे ही स्वर्ग देव भया। दोऊ वहां परम मित्र भए। वहां से चयकरि पद्मरुचि का जीव पश्चिम विदेहविषै विजयार्धगिरि जहां नंद्यावर्त नगर वहां राजा नदीश्वर उसकी राणी कनकप्रभा उसके नयनानन्द नामा पुत्र भया। सो विद्याधरनि के चक्रपद की सम्पदा भोगी बहुरि महामुनि की अवस्था धरि विषम तप किया। समाधि मरणकरि चौथे स्वर्ग देव भया। वहां पुण्य रूप बल के सुख रूप फल महा मनोग्य भोगे।

बहुरि वहां से चयकरि सुमेरु पर्वत के पूर्व दिशा की ओर विदेह, वहां क्षेमपुरी नगरी, राजा विपुलवाहन, राणी पद्मावती तिनके श्रीचन्द्र नामा पुत्र भया। वहां स्वर्ग समान सुख भोगे। तिनके पुण्य के प्रभावसूं दिन दिन राजा की वृद्धि भई, अटूट भंडार भया, समुद्रांत पृथ्वी एक ग्राम की न्याईं वश करी। अर जिसके स्त्री इन्द्राणी समान, सो इन्द्र कैसे सुख भोगे, हजारां वर्ष सुखसूं राज्य किया। एक दिन महासंघ सहित तीन गुप्ति के धारक समाधिगुप्ति योगीश्वर नगर के बाहिर आय विराजे। तिनकूं उद्यानविषै आया जान नगर के लोक वन्दनाकूं चले। सो महा स्तुति करते वादित्र वजावते हर्ष से जाय हैं। श्रीचन्द्र समीप के लोकनिकूं पूछता भया यह हर्ष का नाद जैसा समुद्र गाजै तैसा होय है सो कौन कारण है? तब मंत्रियनि ने किंकर दौड़ाए, निश्चय किया जो मुनि आए हैं तिनके दर्शनकूं लोक जाय हैं।

यह समाचार सुनकरि राजा फूले कमल समान भए हैं नेत्र जाके, अर शरीरविषै हर्षकरि रोमांच होय आये। राजा समस्त लोक अर परिवारसहित मुनि के दर्शनकूं गया, प्रसन्न है मुख जिनका, ऐसे मुनिराज तिनकूं राजा देखि प्रणामकरि महा विनयसंयुक्त पृथ्वीविषै बैठा। भव्यजीव रूप कमल तिनके प्रफुल्लित करिवेकूं सूर्य समान ऋषिनाथ तिनके दर्शनसूं राजाकूं अति धर्मस्नेह उपज्या। वे महा तपोधर, धर्म शास्त्र के वेत्ता, परम गम्भीर, लोकनिकूं तत्त्वज्ञान का उपदेश देते भए। यति का धर्म अर श्रावक का धर्म, संसार समुद्र का तारणहारा अनेक भेद संयुक्त कह्या। अर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग का स्वरूप कहया। प्रथमानुयोग कहिए उत्तम पुरुषनि का कथन, अर करणानुयोग कहिए तीन लोक का कथन, चरणानुयोग कहिए मुनि श्रावक का धर्म, अर द्रव्यानुयोग कहिए षटद्रव्य सप्त तत्त्व नवपदार्थ पंचास्तिकाय का निर्णय।

कैसे हैं मुनिराज? वक्तानिविषै श्रेष्ठ हैं। अर आक्षेपणी कहिए जिनमार्ग उद्योतनी, अर विक्षेपणी कहिए मिथ्यात्वखंडनी, अर संवेगिनी कहिए धर्मानुरागी, अर निर्वेदनी कहिए वैराग्यकरिणी – यह चार प्रकार कथा कहते भए। इस संसार असारविषै कर्म के योगसूं भ्रमता जो यह प्राणी सो महाकष्ट सूं मोक्षमार्गकूं प्राप्त होय हैं। संसार के ठाठ विनाशीक हैं। जैसा संध्या समय का वर्ण, अर जल का बुदबदा, तथा जल के झाग अर लहर, अर बिजुरी का चमत्कार, इन्द्र धनुष क्षणभंगुर

हैं, असार हैं, ऐसा जगत का चरित्र क्षणभंगुर जानना। यामैं सार नाहीं। नरक तिर्यंचगति तो दु:खरूप ही हैं, अर देव मनुष्यगतिविषै यह प्राणी सुख जानै है सो सुख नाहीं, दु:ख ही है। जिससे तृप्ति नाहीं सो ही दु:ख। जो महेंद्र स्वर्ग के भोगनिकरि तृप्त नाहीं भया, सो मनुष्यभव के तुच्छ भोगनिकरि कैसे तृप्त होय?

यह मनुष्यभव भोग योग्य नाहीं, वैराग्य योग्य है। काहु एक प्रकारसूं दुर्लभ मनुष्य देह पाया, जैसे दरिद्री निधान पावै, सो विषयरस का लोभी होय वृथा खोय, मोहकूं प्राप्त भया। जैसे सूखे ईंधनसूं अग्निकूं कहां तृप्ति, अर नदीनि के जलकरि समुद्रकूं कहां तृप्ति? तैसै विषयसुखसूं जीवनकूं तृप्ति न होय। चतुर भी विषयरूप मदकरि मोहित भया मदताकूं प्राप्त होय है। अज्ञानरूप तिमिरसूं मंद भया है मन जाका सो, जलविषै डूबता खेदखिन्न होय त्यों खेदखिन्न हैं। परन्तु अविवेकी तो विषय ही कूं भला जानै है। सूर्य तो दिनकूं ताप उपजावै है, अर काम रात्रिदिन आताप उपजावै। सूर्य के आताप निवारिवे के अनेक उपाय हैं, अर काम के निवारिवे का उपाय एक विवेक ही है। जन्म जरा मरण का दु:ख संसारविषै भयंकर है जिसका चिंतवन किए कष्ट उपजे। यह कर्मजनित जगत का ठाठ अरहट के यंत्र की घड़ी समान है, रीता भर जाय है भरा रीता होय है, नीचला ऊपर, ऊपरला नीचे। अर यह शरीर दुर्गन्ध है, यंत्र समान चलाया चलै है, विनाशीक है, मोह कर्म के योगसूं जीव का कायासूं स्नेह है। जल के बुदबुदा समान मनुष्य भव के उपजे सुख असार जानि बड़े कुल के उपजे पुरुष विरक्त होय जिनराज का भाषा मार्ग अंगीकार करें हैं। उत्साहरूप बखतर पहिरैं निश्चयरूप तुरंग के असवार, ध्यानरूप खड्ग के धारक, धीर कर्मरूप शत्रुकूं विनाशि निर्वाणरूप नगर लेय है। यह शरीर भिन्न अर मैं भिन्न, ऐसा चिंतवन करि शरीर का स्नेह तजै है।

हे मनुष्यों! धर्मकूं करो। धर्म समान और नाहीं। अर धर्मनि में मुनि का धर्म श्रेष्ठ है। जिन महामुनियों के सुख दुख दोनों तुल्य अपना अर पराया तुल्य। जे राग द्वेष रहित महापुरुष हैं वे परम उत्कृष्ट शुक्ल ध्यानरूप अग्निसूं कर्मरूप वनी दुखरूप दुष्टों से भरी भस्म करै हैं।

ये मुनि के वचन राजा श्रीचन्द्र सुन बोधकूं प्राप्त भया। विषयानुभव सुखतैं वैराग्य होय अपने ध्वजकांतिनामा पुत्रकूं राज्य देय समाधिगुप्त नामा मुनि के समीप मुनि भया। विरक्त है मन जाका, सम्यक्त की भावनाकरि तीनों योग मन वचन काय तिनकी शुद्धता धरता संता, पांच समिति, तीन गुप्तिसूं मंडित, रागद्वेष सूं परांगसुख, रत्नत्रयरूप आभूषणनि का धारक, उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्मकरि मंडित, जिनशासन का अनुरागी, समस्त अंग पूर्वांग का पाठक, समाधानरूप पंच महाव्रत का धारक, जीवनि का दयालु, सप्त भयरहित, परमधीर्य का धारक,

बाईस परीषह का सहनहारा, वेला तेला पक्ष मासादिक अनेक उपवास का करणहारा, शुद्ध आहार का लेनहारा, ध्यानाध्ययन में तत्पर, निर्ममत्व, अतींद्रिय, भोगनि की बांछा का त्यागी, निदान बंधनरहित, महाशांत, जिनशासन में है वात्सल्य जाका, यति के आचार में संघ के अनुग्रहविषै तत्पर, बाल के अग्रभाग के कोटि में भागहू नाहीं है परिग्रह जाके, स्नान का त्यागी, दिगम्बर, संसार के प्रबंधतैं रहित, ग्राम के वनविषै एक रात्रि अर नगर के वनविषै पांच रात्रि रहनहारा, गिरिशिखर नदी के पुलिन उद्यान इत्यादि प्रशस्त स्थानविषै निवास करणहारा, कायोत्सर्ग का धारक, देहतैं हू निर्ममत्व, निश्चल, मौनी, पंडित, महातपस्वी इत्यादि गुणनिकरि पूर्ण कर्म पिंजरकूं जर्जराकरि काल पाय श्रीचन्द्रमुनि रामचन्द्र का जीव पांचवें स्वर्ग इन्द्र भया।

तहां लक्ष्मी कीर्ति कांति प्रताप का धारक, देवनि का चूड़ामणि, तीन लोकविषै प्रसिद्ध, परम ऋद्धिकरयुक्त, महासुख भोगता भया। नन्दनादिक वनविषै सौधर्मादिक इन्द्र याकी सम्पदाकूं देख रहे हैं। याके अवलोकन की वांछा रहै। महासुन्दर विमान मणि हेममई मोतिनि की झालरिनि का मण्डित, वामें बैठा विहार करै। दिव्य स्त्रीनि के नेत्रों कूं उत्सवस्वरूप महासुखतैं काल व्यतीत करता भया।

श्रीचन्द्र का जीव ब्रह्मेंद्र ताकी महिमा, हे विभीषण! वचन कर न कही जाय, केवलज्ञानगम्य है। यह जिनशासन अमौलिक परमरत्न उपमारहित त्रैलोक्यविषै प्रकट है तथापि मूढ़ न जानै। श्रीजिनेन्द्र मुनीन्द्र अर जिनधर्म इनकी महिमा जानकर हू मूर्ख मिथ्या अभिमानकरि गर्वित भए, धर्म से परांगमुख रहें। जो अज्ञानी या लोक के सुखविषै अनुरागी भया है, सो बालक समान अविवेकी है। जैसे बालक बिना समझे अभक्ष्य का भक्षण करै है, विषपान करै है तैसे मूढ़ अयोग्य का आचरण करै है। जे विषय के अनुरागी हैं सो अपना बुरा करै हैं। जीवों के कर्मबन्ध की विचित्रता है। इसलिए सब ही ज्ञान के अधिकारी नाहीं। कईएक महाभाग्य ज्ञानकूं पावै हैं, अर कईएक ज्ञानकूं पाय और वस्तु की वांछाकरि अज्ञान दशाकूं प्राप्त होय हैं। अर कईएक महानिंद्य जो यह संसारी जीवनि के मार्ग तिनमें रुचि करै हैं। वे मार्ग महादोष के भरे हैं जिनमें विषय कषाय की बहुलता है। जिनशासनसूं और कोई दुखतैं छुड़ायवे का मार्ग नाहीं, तातैं हे विभीषण! तुम आनन्द चित्त होयकर जिनेश्वर देव का अर्चन करहु।

इस भांति धनदत्त का जीव मनुष्य से देव, देव से मनुष्य होयकर नवमें भव रामचन्द्र भया, उसकी विगत पहले भव धनदत्त 1, दूजे भव पहले स्वर्ग देव 2, तीजे भव पद्मरुचि सेठ 3, चौथे भव दूजे स्वर्ग देव 4, पांचवें भव नयनानन्द राजा 5, छठे भव चौथे स्वर्ग देव 6, सातवें भव श्रीचन्द्र 7, आठवें भव पांचवें स्वर्ग 8, नवमें भव रामचन्द्र 9, आगे मोक्ष।

यह तो राम के भव कहे, अब हे लंकेश्वर! वसुदत्तादिक का वृत्तांत सुन – कर्मनि की

विचित्रगति, ताके योगकरि मृणालकुण्ड नामा नगर, तहां राजा विजयसेन, राणी रत्नचूला, उसके व्रजकंबुनामा पुत्र, उसके हेमवती राणी, उसके शंभु नामा पुत्र, पृथ्वी में प्रसिद्ध, सो यह श्रीकांत का जीव रावण होनहार सो पृथ्वी में प्रसिद्ध, अर वसुदत्त का जीव राजा का पुरोहित उसका नाम श्रीभूति सो लक्ष्मण होनहार, महा जिनधर्मी सम्यग्दृष्टि। उसके स्त्री सरस्वती उसके वेदवती नामा पुत्री भई। सो गुणवती का जीव सीता होनहार गुणवती के भवसूं पूर्व सम्यक्त बिना अनेक तिर्यंच योनिविषै भ्रमणकरि साधुनि की निंदा के दोषकरि गंगा के तट मरकर हथिनी भई। एक दिन कीच में फंसी, पराधीन होय गया है शरीर जाका, नेत्र तिरमिराट अर मंद मंद सांस लेय, सो एक तरंगवेग नामा विद्याधर महादयावान, उसने हथिनी के कान में नमोकार मंत्र दिया। सो नमोकार मंत्र के प्रभावकरि मंदकषाय भई। अर विद्याधर ने व्रत भी दिए। सो जिनधर्म के प्रसाद से श्रीभूति पुरोहित के वेदवती पुत्री भई। एक दिन मुनि आहारकूं आए सो यह हंसने लगी।

तब पिता ने निवारी सो यह शांतचित्त होय श्राविका भई। अर यह कन्या परमरूपवती सो अनेक राजानि के पुत्र याके परिणवेकूं अभिलाषी भए। अर यह राजा विजयसेन का पोता शंभु जो रावण होनहार है सो विशेष अनुरागी भया। अर यह पुरोहित श्रीभूति महा जिनधर्मी, सो उसने जो मिथ्यादृष्टि कुवेर समान धनवान होय तो हू मैं पुत्री न दूं, यह मेरे प्रतिज्ञा है। तब शंभु कुमार ने रात्रिविषै पुरोहितकूं मारया सो पुरोहित जिनधर्म के प्रसादतैं स्वर्गलोकविषै देव भया। अर शंभुकुमार पापी वेदवती साक्षात् देवी समान उसे न इच्छतीकूं बलात्कार परिणवेकूं उद्यमी भया। वेदवती के सर्वथा अभिलाषा नाहीं। तब कामकरि प्रज्वलित इस पापी ने जोरावरी कन्याकूं आलिंगनकरि मुखचुम्ब मैथुन किया। तब कन्या विरक्त हृदय, कांपे शरीर जाका, अग्नि की शिखा समान प्रज्वलित अपने शील घातकरि अर पिता के घातकरि, परम दुखकूं धरती, लाल नेत्र होय महाकोपकरि कहती भई – अरे पापी! तैने मेरे पिताकूं मारा, मो कुमारीसूं बलात्कार विषयसेवन किया, सो नीच! मैं तेरे नाश का कारण होऊंगी। मेरा पिता तैने मारा सो बड़ा अनर्थ किया। मैं पिता का मनोरथ कभी भी न उलंघूं। मिथ्यादृष्टि सेवनसूं मरण भला।

ऐसा कह वेदवती श्रीभूति पुरोहित की कन्या हरिकांता आर्यिका के समीप जाय आर्यिका के व्रत लेय परम दुर्धर तप करती भई। केशलुंच किए, महातपकरि रुधिर मांस सुखाय दिए। प्रकट दीखै है अस्थि अर नसा जिसके, तपकर सुखाय दिया है देह जिसने, समाधि मरणकरि पांचवें स्वर्ग गई। पुण्य के उदयकरि स्वर्ग के सुख भोगे। अर शंभू संसारविषै अनीति के योगकर अति निंदनीक भया। कुटुम्ब, सेवक अर धन से रहित भया। उन्मत्त होय गया, अर जिनधर्म परांगमुख भया। साधुनिकूं देख हंसै, निंदा करै, मद्य मांस शहद का आहारी, पापक्रियाविषै उद्यमी, अशुभ उदयकरि नरक तिर्यंचविषै महादुख भोगता भया।

अथानन्तर कछुइक पापकर्म के उपशम से कुशध्वज नामा ब्राह्मण, ताके सावित्री नामा स्त्री के प्रभासकुंद नामा पुत्र भया। सो दुर्लभ जिनधर्म का उपदेश पाय विचित्रमुनि के निकट मुनि भया। काम क्रोध मद मत्सर हरे, आरम्भरहित भया, निर्विकार तपकरि दयावान, निस्पृही, जितेन्द्री, पक्ष मास उपवास करै। जहां सूर्य अस्त हो तहां शून्य वनविषै बैठ रहे। मूलगुण उत्तरगुण का धारक, बाईस परीषह का सहनहारा, ग्रीष्मविषै गिरि के शिखर रहै, वर्षा में वृक्ष तले बसै, अर शीतकालविषै नदी सरोवरी के नट निवास करै। या भांति उत्तम क्रियाकर युक्त श्री सम्मेदशिखर की वन्दनाकूं गया। वह निर्वाण क्षेत्र कल्याण का मन्दिर, जाका चिंतवन किये पापनि का नाश होय। तहां कनक प्रभ नामा विद्याधर की विभूति आकाशविषै देख मूर्ख ने निदान किया जो जिनधर्म के तप का महात्म्य सत्य है तो ऐसी विभूति मैं हूं पाऊं।

यह कथा भगवान केवली ने विभीषण कूं कही – देखो जीवनि की मूढ़ता, तीन लोक जाका मोल नाहीं, ऐसा अमौलिक तपरूप रत्न, भोगरूपी मूठी साग के अर्थ बेच्या। कर्म के प्रभावकरि जीवन की विपर्यय बुद्धि होय है। निदानकरि दु:खित विषम तपकरि वह तीजे स्वर्ग देव भया। तहांतैं चयकरि भोगनिविषै है चित्त जाका, सो राजा रत्नश्रवा के राणी केकसी, ताका रावण नाम पुत्र भया। लंका में महाविभूति पाई, अनेक है आश्चर्यकारी बात जाकी, प्रतापी पृथ्वी में प्रसिद्ध। अर धनदत्त का जीव रात्रिभोजन के त्यागकरि सुर नरगति के सुख भोग श्रीचन्द्र राजा होय, पंचम स्वर्ग दश सागर सुख भोगि, बलदेव भया। रूपकरि बलकरि विभूतिकरि जा समान जगतविषै और दुर्लभ है। महामनोहर, चन्द्रमासमान उज्ज्वल यश का धारक।

अर वसुदत्त का जीव अनुक्रम से लक्ष्मीरूप लता के लपटाने का वृक्ष वसुदेव भया। ताके भव सुनो – वसुदत्त 1, मृग 2, सूकर 3, हस्ती 4, महिष 5, वृषभ 6, वानर 7, चीता 8, ल्याली 9, मींढ़ा 10, अर जलचर, स्थलचर के अनेक भव 11, श्रीभूति पुरोहित 12, देवराजा 13, पुनर्वसु विद्याधर 14, तीजे स्वर्गदेव 15, वासुदेव 16, मेघा 17, कुटुम्बी का पुत्र 18, देव 19, बणिकूं 20, भोगभूमि 21, देव 22, चक्रवर्ती का पुत्र 23 ।

बहुरि कईएक उत्तमभव धर पुष्करार्द्ध के विदेहविषै तीर्थंकर अर चक्रवर्ती दोय पद का धारी होय मोक्ष पावेगा। अर दशानन के भव श्रीकांत 1, मृग 2, सूकर 3, गज 4, महिष 5, वृषभ 6, वानर 7, चीता 8, ल्याली 9, मींढ़ा 10, अर जलचर स्थलचर के अनेक भव 11, शंभु 12, प्रभासकुन्द 13, तीजे स्वर्ग 14, दशमुख 15, बालुका 16, कुटुम्बी पुत्र 17, देव 18, बणिक 19, भोगभूमि 20, देव 21, चक्रीपुत्र 22, बहुरि कईएक उत्तम भव धरि भरतक्षेत्रविषै जिनराज होय मोक्ष पावेगा, बहुरि जगत जालविषै नाहीं।

अर जानकी के भव गुणवती 1, मृगी 2, शूकरी 3, हथिनी 4, महिषी 5, गो 6, वानरी 7, चीती 8, ल्याली 9, गारढ़ 10, जलचर स्थलचर के अनेक भव 11, चितोत्सवा 12, पुरोहित की पुत्री वेदवती 13, पांचवें स्वर्ग देवी अमृतवती 14, बलदेव की पटराणी 15, सोलहवें स्वर्ग प्रतेन्द्र 16, चक्रवर्ती 17, अहमिंद्र 18, रावण का जीव तीर्थंकर होयगा, ताके प्रथम गणधर देव होय मोक्ष प्राप्त होयगा।

भगवान सकलभूषण विभूषणसूं कहै हैं – श्रीकांत का जीव कईएक भव में शंभु प्रभासकुन्द होय अनुक्रमसूं रावण भया, जाने अर्द्ध भरतक्षेत्र में सकल पृथ्वी वश करी, एक अंगुल सिवाय न रही। अर गुणवती का जीव श्रीभूति की पुत्री होय अनुक्रमकरि सीता भई, राजा जनक की पुत्री, श्रीरामचन्द्र की पटराणी विनयवती, शीलवती, पतिव्रतानि में अग्रसर भई। जैसैं इन्द्र के शची, चन्द्र के रोहिणी, रवि के रेणा, चक्रवर्ती के सुभद्रा, तैसैं राम के सीता, सुन्दर है चेष्टा जाकी। अर जो गुणवती का भाई गुणवान सो भामण्डल भया। श्रीराम का मित्र जनक राजा की राणी विदेहा के गर्भविषै युगल बालक भए, भामण्डल भाई सीता बहिन, दोनों महा मनोहर। अर यज्ञवलि ब्राह्मण का जीव विभीषण भया अर बैल का जीव जो नमोकार मंत्र के प्रभावतैं स्वर्गगति नरगति के सुख भोगे यह सुग्रीव कपिध्वज भया। भामण्डल, सुग्रीव अर तू पूर्वभव की प्रीतिकर तथा पुण्य के प्रभावकरि महा पुण्याधिकारी श्रीराम ताके अनुरागी भए।

यह कथा सुन विभीषण बालि के भव पूछता भया सो केवली कहै हैं – हे विभीषण! तू सुन! राग द्वेषादि दुखनि के समूहकरि भरा यह संसार सागर चतुर्गतिमई, ताविषै वृन्दावनविषै एक कालेरा मृग, सो साधु स्वाध्याय करते हुते तिनका शब्द अंतकाल में सुनकरि ऐरावत क्षेत्रविषै दित नामा नगर तहां विहित नामा मनुष्य, सम्यग्दृष्टि सुन्दर चेष्टा का धारक, ताकी स्त्री शिवमति, ताके मेघदत्त नामा पुत्र भया। सो जिन पूजाविषै उद्यमी, भगवान का भक्त, अणुव्रतधारक, समाधिमरणकरि दूजे स्वर्ग देव भया। वहां से चयकरि जम्बूद्वीपविषै पूर्व विदेह, विजयावतीपुरी, ताके समीप महा उत्साह का भर्‍या एक मत्तकोकिला नामा ग्राम, ताका स्वामी कांतिशोक, ताकी स्त्री रत्नांगिनी, ताके स्वयंप्रभ नामा पुत्र भया, महासुन्दर, जाकूं शुभ आचार भावै। सो जिनधर्मविषै निपुण संयतनामा मुनि होय हजारों वर्ष विधिपूर्वक बहुत भांति के महातप किए। निर्मल है मन जाका सो तप के प्रभावकरि अनेक ऋद्धि उपजी, तथापि अति निर्गर्व संयोग संबंधविषै ममताकूं तजि, उपशमश्रेणी धार शुक्लध्यान के पहिले पाये के प्रभावतैं सर्वार्थसिद्धि गया, सो तैंतीस सागर अहमिंद्र पद के सुख भोगि राजा सूर्यरज ताके बालि नामा पुत्र भया।

विद्याधरनि का अधिपति किहकन्धपुर का धनी, जिसका भाई सुग्रीव सो महा गुणवान। सो जब रावण चढ़ आया तब जीवदया के अर्थ बाली ने युद्ध न किया, सुग्रीव कूं राज्य देय दिगम्बर भया। सो जब कैलाशविषै तिष्ठे था अर रावण आय निकस्या। क्रोधकरि कैलाश के उठायवे कूं उद्यमी भया, सो बाली मुनि चैत्यालय की भक्तिसूं ढीला सो अंगुष्ठे दाब्या, सो रावण दबने लगा। तब राणी ने साधु की स्तुति करी अभयदान दिवाया। रावण अपने स्थानक गया। अरबाली महामुनि गुरु के निकट प्रायश्चितनामा तप लेय दोष निराकरणकरि क्षपकश्रेणी चढ़ कर्म दग्ध किए, लोक के शिखर सिद्धक्षेत्र हैं वहां गए, जीव का निज स्वभाव प्राप्त भया।

अर वसुदत्त के अर श्रीकांत के गुणवती के कारण महाबैर उपज्या था सो अनेक भवविषै दोऊ परस्पर लड़ लड़ मूवे। अर गुणमतीसूं तथा वेदवतीसूं रावण के जीव के अभिलाषा उपजी हुती, उस कारणकरि रावण ने सीता हरी। अर वेदवती का पिता श्रीभूति सम्यग्दृष्टि उत्तम ब्राह्मण सो वेदवती के अर्थ शत्रु ने हता, सो स्वर्ग जाय वहां से चयकर प्रतिष्ठित नाम नगरविषै पुनर्वसु नाम विद्याधर भया। सो निदान सहित तपकर तीज स्वर्ग जाय राम का लघु भ्राता महास्नेहवंत लक्ष्मण भया। यह पूर्वले बैर के योगसूं रावणकूं मार्‍या। अर वेदवतीसूं शम्भु ने विपर्यय करी तातैं सीता रावण के नाश का कारण भई, जो जाकूं हतै सो ताकरि हत्या जाय। तीन खण्ड की लक्ष्मी सोई भई रात्रि, ताका चन्द्रमा रावण, ताहि हतकरि लक्ष्मण सागरांत पृथ्वी का अधिपति भया।

रावण-सा शूरवीर पराक्रमी या भांति मार्‍या जाय यह कर्मनि का दोष है। दुर्बल से सबल होय, सबल से दुर्बल होय, घातक है सो हता जाय अर हता होय सो घातक होय जाय। संसार के जीवनि की यही गति है। कर्म की चेष्टाकरि कभी स्वर्ग के सुख पावै, कभी नरक के दुख पावैं। अर जैसे काहू महास्वादरूप परम अन्नविषै विष मिलाय दूषित करै तैसे मूढ़ जीव उग्र तपकूं भोगविलास करि दूषित करै है। जैसे कोई कल्पवृक्षकूं काटि कोदूं की बाढ़ करै, अर विष के वृक्षकूं अमृत रसकरि सींचे अर भस्म के निमित्त रत्ननि की राशिकूं जलावै, अर कोयलनि के निमित्त मलयागिरि चन्दनकूं दग्ध करै, तैसै निदान बंध कर तपकूं यह अज्ञानी दूषित करै।

या संसारविषै सब दोष की खान स्त्री है। ताके अर्थ कहा कुकर्म अज्ञानी न करै? जो या जीवनतैं कर्म उपार्जै हैं सो अवश्य फल देय हैं, कोऊ अन्यथा करिवे समर्थ नाहीं। जे धर्मविषै प्रीति करैं बहुरि अधर्म उपार्जे वे कुगतिकूं प्राप्त होय हैं। तिनकी भूल कहा कहिए? जे साधु होयकर मदमत्सर धरै है तिनकूं उग्र तपकरि मुक्ति नाहीं। अर जाके शांति भाव नाहीं संयम नाहीं, तप नाहीं, उसे दुर्जन मिथ्यादृष्टि के संसार सागर के तिरवे का उपाय कहा? अर जैसे असराल पवनकरि मदोन्मत्त गजेंद्र उड़े तो सुसा के उड़िवे का कहा आश्चर्य? तैसैं संसार की झूठी मायाविषै

चक्रवर्त्यादिक बड़े पुरुष भूलें तो छोटे मनुष्यनि की कहा बात? या जगत विषै परम दुःख का कारण वैरभाव है सो विवेकी न करै, आत्मकल्याण की भावना जिनके पाप की करणहारी वाणी कदापि न बोले। गुणवती के भवविषै मुनि का अपवाद किया था अर वेदवती के भव में एक मंडलकानामा ग्राम वहां सुदर्शननामा मुनि वन में आये। लोक वंदना कर पीछे गए, अर मुनि की बहिन सुदर्शना नामा आर्यिका सो मुनि के निकट बैठी धर्म श्रवण करै थी। सो वेदवती ने देखकर ग्राम के लोकनिके निकट मुनि की निंदा करी कि मैं मुनिकूं अकेली स्त्री के समीप बैठा देख्या।

तब कईएकनि ने बात मानी, अर कईएक बुद्धिवंतनि ने न मानी, परन्तु ग्राम में मुनि का अपवाद भया। तब मुनि ने नियम किया कि यह झूठा अपवाद दूर होय तो आहारकूं उतरना अन्यथा नाहीं। तब नगर के देवता ने वेदवती के मुखकरि समस्त ग्राम के लोकनिकूं कहाई कि मैं झूठा अपवाद किया। यह बहिन भाई हैं, अर मुनि के निकट जाय वेदवती ने क्षमा कराई कि हे प्रभो! मैं पापिनी ने मिथ्यावचन कहे सो क्षमा करहु। या भांति मुनि की निंदाकरि सीता का झूठा अपवाद भया, अर मुनिसूं क्षमा कराई, उसकरि अपवाद दूर भया।

तातैं जे जिनमार्गी हैं वे कभी भी परनिंदा न करैं। किसी में सांचा दोष है तौहू ज्ञानी न कहैं। अर कोऊ कहता होय ताहि मनै करैं। सर्वथा प्रकार पराया दोष ढाकैं। जे कोई परनिंदा करै हैं सो अनन्तकाल संसार वनविषै दुख भोगवै हैं। सम्यक्‌दर्शन रूप जो रत्न ताका बड़ा गुण यही है जो पराया अवगुण सर्वथा ढाके। जो सांचा भी दोष पराया कहै सो अपराधी हैं। अर जो अज्ञानसूं मत्सर भाव से पराया झूठा दोष प्रकाशै उस समान और पापी नहीं। अपने दोष गुरु के निकट प्रकाशने अर पराए दोष सर्वथा ढाकने। जो पराई निन्दा करैं सो जिनमार्ग से परांगमुख हैं।

यह केवली के परम अद्‌भुत वचन सुनकरि सुर असुर नर सब ही आनन्दकूं प्राप्त भए। वैर भाव के दोष सुन सब सभा के लोग महादुख के भयकरि कम्पायमान भए। मुनि तो सर्व जीवनिसूं निर्वैर है अधिक शुद्ध भाव धारते भए। अर चतुर्निकाय के सर्व ही देव क्षमाकूं प्राप्त होय वैरभाव तजते भए। अर अनेक राजा प्रतिबद्ध होय शांतिभाव धार, गर्व का भार तजि मुनि अर श्रावक भए। अर जे मिथ्यावादी थे वह हू सम्यक्तकूं प्राप्त भए। सब ही कर्मनि की विचित्रता जान निश्वास नाखते भए। धिक्कार या जगत् की मायाकूं, या भांति सब ही कहते भए। अर हाथ जोड़ सीस निवाय केवलीकूं प्रणाम करि सुर असुर मनुष्य विभीषण की प्रशंसा करते भए जो तिहारे आश्रयसूं हमने केवली के मुख उत्तम पुरुषनि के चरित्र सुने। तुम धन्य हो।

बहुरि देवेन्द्र, नरेन्द्र, नागेन्द्र सब ही आनन्द के भरे अपने परिवारवर्ग सहित सर्वज्ञ देव की स्तुति करते भए। हे भगवान पुरुषोत्तम! यह त्रैलोक्य सकल तुमकरि शोभै है। तातैं तिहारा

सकलभूषण नाम सत्यार्थ है। तिहारी केवलदर्शन केवलज्ञानमई निज विभूति सर्व जगत की विभूतिकूं जीतकरि शोभै है। यह अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी सर्व लोक का तिलक है। यह जगत के जीव अनादिकाल के कर्मवश होय रहे हैं, महादुख के सागर में पड़े हैं, तुम दीननि के नाथ दीनबन्धु करुणानिधान जीवनिकूं जिनराजपद देहु। हे केवलिन्! हम भव वन के मृग, जन्म जरा मरण रोग शोक वियोग व्याधि अनेक प्रकार के दुख भोक्ता, अशुभ कर्मरूप जाल विषै पड़े हैं तातैं छूटना अति कठिन है, सो तुम ही छुडायवे समर्थ हो। हमकूं निज बोध देवहु जाकरि कर्म का क्षय होय।

हे नाथ! यह विषय, वासनारूप गहन वन, तामें हम निजपुरी का मार्ग भूल रहे हैं, सो तुम जगत के दीपक हम कूं शिवपुरी का पंथ दरसाओ। अर जे आत्मबोधरूप शांत रस के तिसाए तिनकूं तुम तृषा के हरणहारे महासरोवर हो, अर कर्म भर्मरूप वन के भस्म करिवेकूं साक्षात् दावानल रूप हो, अर जे विकल्पजाल नाना प्रकार के तेई भए बरफ ताकरि कम्पायमान जगत् के जीव तिनकी शीत व्यथा हरिवेकूं तुम साक्षात् सूर्य हो। हे सर्वेश्वर ! सर्व भूतेश्वर! जिनेश्वर! तिहारी स्तुति करिवेकूं चार ज्ञान के धारक गणधरदेव हू समर्थ नाहीं तो और कौन? हे प्रभो! तुमकूं हम बारम्बार नमस्कार करैं हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम लक्ष्मण विभीषण सुग्रीव सीता भामण्डल के पूर्वभव वर्णन करने वाला एक सौ छहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।106।।

अथानन्तर केवली के वचन सुनकर संसार भ्रमण का जो महा दुःख ताकरि खेदखिन्न होय जिनदीक्षा की है अभिलाषा जाके, ऐसा राम का सेनापति कृतांतवक्र रामसूं कहता भया – हे देव! मैं या संसार असारविषै अनादिककाल का मिथ्या मार्गकर भ्रमता हुवा दुःखित भया। अब मेरे मुनिव्रत धारिवे की इच्छा है।

तब श्रीराम कहते भए – जिनदीक्षा अति दुर्धर है, तू जगत का स्नेह तजि कैसे धारेगा? महातीव्र शीत उष्ण आदि बाईस परीषह कैसे सहेगा? अर दुर्जन जननि के दुष्ट वचन कंटक तुल्य कैसै सहेगा? अर अब तक तैनैं कभी भी दुख सहे नाहीं, कमल की कर्णिका समान शरीर तेरा सो कैसैं विषमभूमि के दुख सहेगा? गहन वनविषै कैसैं रात्रि पूरी करेगा? अर प्रकट दृष्टि पड़े हैं शरीर के हाड अर नसाजाल जहां, ऐसे उग्रतप कैसैं करेगा? अर पक्ष मास उपवास, दोष टाल परघर नीरस भोजन कैसैं करेगा? तू महा तेजस्वी, शत्रुओं की सेना के शब्द न सहि सकै, सो कैसैं नीच लोकनि के किए उपसर्ग सहेगा?

तब कृत्तांतवक्र बोला – हे देव! जब मैं तिहारे स्नेहरूप अमृतकूं ही तजवेकूं समर्थ भया तो मुझे कहा विषम है। जब तक मृत्युरूप वज्रकरि यह देहरूप स्तंभ न चिगै ता पहिले मैं महादु:खरूप यह भवबन अंधकारमई वाससूं निकस्या चाहूं हूं। जो बलते घर में से निकसै उसे दयावान न रोकै। यह संसार असार महानिंद्य है, इसे तजकरि आत्महित करूं। अवश्य इष्ट का वियोग होयगा या शरीर के योगकरि सर्व दुख हैं सो हमारे शरीर बहुरि उदय न आवै या उपायविषै बुद्धि उद्यमी भई है। ये वचन कृतांतवक्र के सुन श्रीराम के आंसू आए अर नीठे नीठे मोहकूं दाबि कहते भए – मेरी–सी विभूतिकूं तज तू तप के सन्मुख भया है सो धन्य है। जो कदाचित् या जन्मविषै मोक्ष न होय अर देव होय तो संकटविषै आय मोहि संबोधियो। हे मित्र! जो तू मेरा उपकार जानै है तो देवगति में विस्मरण मत करियो।

तब कृतांतवक्र ने नमस्कार कर कही – हे देव! जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। ऐसा कह सर्व आभूषण उतारे अर सकलभूषण केवलीकूं प्रणामकरि अंतर बाहिर परिग्रह तजे। कृतांतवक्र था सो सौम्यवक्र होय गया। सुन्दर है चेष्टा जाकी, इसको आदि दे अनेक महाराजा वैरागी भए। उपजी है जिनधर्म की रुचि जिनके निर्ग्रंथव्रत धारते भए। अर कईएक श्रावक व्रतकूं प्राप्त भए, अर कईएक सम्यक्तकूं धारते भए। वह सभा, हर्षित होय रत्नत्रय आभूषणकरि शोभित भई। समस्त सुर असुर नर सकलभूषण स्वामीकूं नमस्कारकरि अपने अपने स्थानक गए। अर कमलसमान हैं नेत्र जिनके, ऐसे श्रीराम सकलभूषण स्वामीकूं अर समस्त साधुनिकूं प्रणामकरि महाविनयरूपी सीता के समीप आए।

कैसी है सीता? महानिर्मल तपकरि तेज धरे। जैसी घृत की आहूतिकरि अग्नि की शिखा प्रज्वलित होय तैसी पापों के भस्म करिवेकूं साक्षात् अग्निरूप तिष्ठी है। आर्यिकानि के मध्य तिष्ठती देखी, दैदीप्यमान है किरणनि का समूह जाके, मानों अपूर्व चन्द्रकांति तारानि के मध्य तिष्ठी है, आर्यिकानि के व्रत धरे। अत्यन्त निश्चल है। तजे हैं आभूषण जाने, तथापि श्री हरि धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी लज्जा इनकी शिरोमणि सोहै है। श्वेत वस्त्रकूं धरे कैसी सोहै है? मानों मंद पवनकर चलायमान है फेन कहिए झाग जाके , ऐसी पवित्र नदी ही है, अर मानों निर्मल शरद पूनों की चांदनी समान शोभाकूं धरे समस्त आर्यिकारूप कुमुदनियोंकूं प्रफुल्लित करणहारी भासै है। महा वैराग्यकूं धरै मूर्तिवंती जिनशासन की देवता ही हैं।

सो ऐसी सीताकूं देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया है मन जिनका, ऐसे श्रीराम कल्पवृक्ष समान क्षण एक निश्चल होय रहै। स्थिर हैं नेत्र भृकुटि जिनकी, जैसे शरद की मेघमाला के समीप कंचनगिरि सौहै तैसे श्रीराम आर्यिकानि के समीप भासते भए। श्रीराम चित्तविषै चिंतवते हैं यह साक्षात्

चन्द्रकिरण भव्यजन कुमुदनीकूं प्रफुल्लित करणहारी सोहै है। बड़ा आश्चर्य है यह कायर स्वभाव मेघ के शब्द से डरती सो अब महा तपस्विनी भयंकर वनविषै कैसे भयकूं न प्राप्त होयगी? नितम्ब ही के भारसूं आलस्यरूप गमन करणहारी महा कोमलशरीर तपसूं विलाय जायगी। कहां यह कोमल शरीर, अर कहां यह दुर्धर जिनराज का तप? सो अति कठिन है। जो दाह बड़े बड़े वृक्षनिकूं दाहे, ताकरि कमलिनी की कहा बात? यह सदा मनवांछित मनोहर आहार की करणहारी, अब कैसैं यथालाभ भिक्षाकरि कालक्षेप करेगी?

यह पुण्याधिकारणी रात्रिविषै स्वर्ग के विमान समान सुन्दर महिल में मनोहर सेज पर पौढ़ती, अर बीण बांसुरी मृदंगादि मंगल शब्दकरि निद्रा लेती, सो अब भयंकर वनविषै कैसे रात्रि पूर्ण करैगी? वन तो डाभ की तीक्ष्ण अणियों कर विषम अर सिंह व्याघ्रादिक के शब्दकरि डरावना। देखहु मेरी भूल जौ मूढ़ लोकनि के अपवादसूं मैं महासती पतिव्रता शीलवती सुन्दरी मधुर भाषिणी घर से निकासी। या भांति चिंता के भारकरि पीड़ित श्रीराम पवन करि कम्पायमान कमल समान कम्पायमान होते भए। फिर केवली के वचन चितार धीर्य धरि, आंसू पोंछि, शोकरहित होय महा विनयकरि सीताकूं नमस्कार किया। लक्ष्मण भी सौम्य है चित्त जाका, हाथ जोड़ि नमस्कारकरि राम सहित स्तुति करता भया।

हे भगवती! धन्य, तू सती वंदनीक है, सुन्दर है चेष्टा जाकी। जैसे धरा सुमेरु कूं धारैं तैसैं तू जिनराज का धर्म धारै है। तैने जिनवचनरूप अमृत पीया उसकरि भवरोग निवारेगी, सम्यक्त ज्ञानरूप जहाजकरि संसार समुद्रकूं तिरैगी। जे पतिव्रता निर्मलचित्त की धरणहारी हैं तिनकी यही गति है – अपनी आत्मा सुधारें, अर दोऊ लोक अर दोऊ कुल सुधारैं। पवित्र चित्तकरि ऐसी क्रिया आदरी। हे उत्तम नियम की धरणहारी! हम जो कोई अपराध किया होय सो क्षमा करियो। संसारी जीवनि के भाव अविवेकरूप होय हैं सो तू जिनमार्गविषै प्रवरती संसार की माया अनित्य जानी, अर परम आनन्दरूप यह दशा जीवनिकूं दुर्लभ है। या भांति दोऊ भाई जानकी की स्तुतिकरि लव अंकुशकूं आगे धरें। अनेक विद्याधर महीपाल तिनसहित अयोध्या में प्रवेश करते भए, जैसे देवनिसहित इन्द्र अमरावती में प्रवेश करै। अर समस्त राणी नाना प्रकार के वाहननि परि चढ़ी परिवार सहित नगर में प्रवेश करती भई। सो रामकूं नगर में प्रवेश करता देखि मन्दिर ऊपर बैठीं स्त्री परस्पर वार्ता करै हैं। यह श्रीरामचन्द्र महा शूरवीर, शुद्ध है अंत:करण जिनका, महा विवेकी, मूढ़ लोकनि के अपवादसूं ऐसी पतिव्रता नारी खोई। तब कईयक कहती भई जे निर्मल कुल के जन्म शूरवीर क्षत्री हैं तिनकी यही रीति हैं – किसी प्रकार कुलकूं कलंक न लगावैं। लोकनि के संदेह दूर करिवे निमित्त राम ने उसकूं दिव्य दई। वह निर्मल आत्मा दिव्य में सांची होय लोकनिके संदेह मेटि जिनदीक्षा धारती भई।

अर कोई कहै – हे सखी! जानकी बिना राम कैसे दीखै हैं, जैसे बिना चांदनी चांद, अर दीप्ति बिना सूर्य। तब कोई कहती भई यह आप ही महा कांतिधारी हैं इनकी कांति पराधीन नाहीं। अर कोई कहती भई सीता का वज्रचित्त है जो ऐसे पुरुषोत्तम पतिकूं छोड़ि जिनदीक्षा धारी। तब कोई कहती भई, धन्य है सीता जो अनर्थरूप गृहवासकूं तजि आत्मकल्याण किया। अर कोई कहती भई ऐसे सुकुमार दोऊ कुमार महाधीर लव अंकुश कैसे तजे गए? स्त्री का प्रेम पति सूं छूटै, परन्तु अपने जाए पुत्रनिसूं न छूटै। तब कोई कहती भई ये दोऊ पुत्र परम प्रतापी हैं इनका माता क्या करैगी? इनका सहाई पुण्य ही है। अर सब ही जीव अपने अपने कर्म के आधीन हैं। या भांति नगर की नारी वचनालाप करै हैं। जानकी की कथा कौनकूं आनन्दकारणी न होय, अर यह सब ही राम के दर्शन की अभिलाषिनी रामकूं देखती देखती तृप्त भईं, जैसे भ्रमर कमल के मकरंदसूं तृप्त न होय। अर कईएक लक्ष्मण की ओर देख कहती भई ये नरोत्तम नारायण लक्ष्मीवान अपने प्रतापकरि वश करी है पृथ्वी जिन्होंने, चक्र के धारक, उत्तम राज्य लक्ष्मी के स्वामी, वैरिनि की स्त्रीनिकूं विधवा करणहारे, राम के आज्ञाकारी हैं। या भांति दोनों भाई लोककरि प्रशंसा योग्य अपने मंदिर में प्रवेश करते भए। जैसे देवेन्द्र देवलोक में करै। यह श्रीराम का चारित्र जो निरंतर धारण करैं सो अविनाशी लक्ष्मीकूं पावैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै कृतांतवक्र के वैराग्य वर्णन करने वाला एक सौ सातवाँ पर्व पूर्ण भया।।107।।

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामी के मुख श्रीराम का चरित्र सुन मनविषै विचारता भया कि सीता ने लव अंकुश पुत्रनिसूं मोह तज्या सो वह सुकुमार मृगनेत्र निरन्तर सुख के भोक्ता कैसैं माता का वियोग सहि सके? ऐसे पराक्रम के धारक उदारचित्त तिनकूं भी इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग होय है तो और की कहा बात? यह विचारकरि गणधर देवसूं पूछ्या – हे प्रभो! मैं तिहारे प्रसादकरि राम लक्ष्मण का चरित्र सुण्या, अब बाकी लव अंकुश का सुण्या चाहूं हूं।

तब इन्द्रभूति कहिए गौतम स्वामी कहते भए – हे राजन्! काकंदी नाम नगरी, तामें राजा रतिवर्द्धन, राणी सुदर्शना, ताके पुत्र दोय एक प्रियंकर, दूजा हितंकर। अर मंत्री सर्वगुप्त राज्यलक्ष्मी का धुरंधर सो स्वामीद्रोही, राजा के मारिवे का उपाय चिंतवे। अर सर्वगुप्त की विजयावती सो पापिनी राजासूं भोग किया चाहै। अर राजा शीलवान परदारा परांगमुख याकी मायाविषै न आया। तब याने राजासूं कही – मंत्री तुम कूं मार्‍या चाहे है सो राजा ने याकी बात न मानी। तब यह पतिकूं भरमावती भई – जो राजा तोहि मार मोहि लिया चाहै है। तब मंत्री दुष्ट

ने सब सामंत राजासूं फोरै, अर राजा का जो सोवने का महिल तहां रात्रिकूं अग्नि लगाई। सो राजा सदा सावधान हुता अर महिलविषै गोप्य सुरंग रखाई थी सो सुरंग के मार्ग होय दोऊ पुत्र अर स्त्रीकूं लेय राजा निकस्या। सो काशी का धनी राजा कश्यप महान्यायवान, उग्रवंशी राजा रतिवर्धन का सेवक था, ताके नगरकूं राजा गोप्य चाल्या। अर सर्वगुप्त रतिवर्धन के सिंहासन पर बैठ्या। सबकूं आज्ञाकारी किए। अर राजा कश्यपकूं भी पत्र लिख दूत पठाया कि तुम भी आय मोहि प्रणामकरि सेवा करो।

तब कश्यप ने कही, हे दूत! सर्वगुप्त स्वामीद्रोही है, सो दुर्गति के दु:ख भोगेगा, स्वामीद्रोही का नाम न लीजै, मुख न देखिये, सो सेवा कैसैं कीजै? ताने राजाकूं दोऊ पुत्र अर स्त्री सहित अग्नि में जलाया सो स्वामिघात, स्त्रीघात, अर बालघात यह महादोष उसने उपार्जे। तातैं ऐसे पापी का सेवन कैसे करिये? जाका मुख न देखना। सो सर्व लोकनि के देखते उसका शिर काटि धनी का बैर लूंगा। तब यह वचन कहि दूत फेरि दिया। दूत ने जाय सर्वगुप्तकूं सर्व वृत्तांत कहा। सो अनेक राजानिकरियुक्त महासेना सहित कश्यप ऊपर आया। सो आयकरि कश्यप का देश घेरा, काशी के चौगिर्द सेना पड़ी तथापि कश्यप के सुलह की इच्छा नाहीं, युद्ध ही का निश्चय। अर राजा रतिवर्धन रात्रि के विषै काशी के वनविषै आया। अर एक द्वारपाल तरुण कश्यप पर भेजा सो जाय कश्यपसूं राजा के आवने का वृत्तांत कहता भया। सो कश्यप अतिप्रसन्न भया अर कहां महाराज! कहां महाराज! ऐसे वचन बारम्बार कहता भया।

तब द्वारपाल ने कह्या, महाराज वनविषै तिष्ठे हैं। तब यह धर्मी स्वामिभक्त अतिहर्षित होय परिवार सहित राजा पै गया अर उसकी आरती करी, अर पांव पकड़करि जय जयकार करता नगर में लाया, नगर उछाला। अर यह ध्वनि नगरविषै विस्तरी कि जो काहूसूं न जीत्या जाय ऐसा रतिवर्धन राजेन्द्र जयवंत होहु। राजा कश्यप ने धनी के आवने का अति उत्सव किया। अर सब सेना के सामंतनिकूं कह य भेज्या जो स्वामी तो विद्यमान तिष्ठे हैं अर तुम स्वामीद्रोही के साथ होय स्वामीसूं लड़ोंगे, कहा तुमकूं उचित है?

तब वह सकल सामंत सर्वगुप्तकूं छोड़ि स्वामी पै आए। अर युद्धविषै सर्वगुप्तकूं जीवता पकड़ि काकंदी नगरी का राज्य रतिवर्धन के हाथविषै आया। राजा जीवता बच्या सो बहुरि जन्मोत्सव किया, महादान किए, सामंतनि के सन्मान किए, भगवान की विशेष पूजा करी, कश्यप का बहुत सन्मान किया, अति बधाया, अर घरकूं विदा किया। सो कश्यप काशी के विषै लोकपालनि की नाईं रमै। अर सर्वगुप्त सर्वलोकनिंद्य मृतक के तुल्य भया कोई भीटे नाहीं, मुख देखे नाहीं। तब सर्वगुप्त ने अपने स्त्री विजयावती का दोष सर्वत्र प्रकाशा, जो याने राजाबीच अर

मो बीच अन्तर डाल्या। यह वृत्तांत सुन विजयावती अति द्वेषकूं प्राप्त भई – जो मैं न राजा की भई, न धनी की भई। सो मिथ्या तपकरि राक्षसी भई, अर राजा रतिवर्धन ने भोगनितैं उदास होय सुभानुस्वामी के निकट मुनिव्रत धरे। सो राक्षसी ने रतिवर्धन मुनिकूं अत्यन्त उपसर्ग किए।

मुनि शुद्धोपयोग के प्रसादतैं केवली भए। प्रियंकर हितंकर दोनों कुमार पहिले याही नगरविषै दामदेव नामा विप्र के श्यामली स्त्री के सुदेव वसुदेव नामा पुत्र हुते। सो वसुदेव की स्त्री विश्वा अर सुदेव की स्त्री प्रियंगु। इनका गृहस्थ पद प्रशंसा योग्य हुता। इन श्रीतिलकनामा मुनिकूं आहारदान दिया सो दान के प्रभावकरि दोनों भाई स्त्रीसहित उत्तरकुरु भोगभूमिविषै उपजे, तीन पल्य की आयु भई। साधु का जो दान सोई भया वृक्ष, ताके महाफल भोगभूमिविषै भोगि दूजे स्वर्ग देव भए। वहां सुख भोगि चये सो सम्यग्ज्ञानरूप लक्ष्मी करि मंडित पाप कर्म के क्षय करणहारे प्रियंकर हितंकर भये। मुनि होय ग्रैवेयक गये। तहांतैं चयकरि लवणांकुश भये, महाभव्य तद्भव मोक्षगामी। अर राजा रतिवर्धन की राणी सुदर्शना प्रियंकर हितंकर की माता पुत्रनि से जाका अत्यन्त अनुराग था सो भरतार अर पुत्रनि के वियोगतैं अत्यन्त आर्तरूप होय नाना योनि में भ्रमणकरि किसी एक जन्मविषै पुण्य उपार्ज, यह सिद्धार्थ भया, धर्मविषै अनुरागी, सर्वविद्याविषै निपुण। सो पूर्व भव के स्नेहसूं लव अंकुशकूं पढ़ाए। ऐसे निपुण किए जो देवनिकरि भी न जीते जांय।

यह कथा गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिकसूं कही। अर आज्ञाकारी हे नृप! यह संसार असार है। अर इस जीव के कौन कौन माता पिता न भये? जगत के सब ही सम्बन्ध झूठे हैं एक धर्म ही का सम्बन्ध सत्य है। इसलिये विवेकिनिकूं धर्म ही का यत्न करना, जिसकरि संसार के दुखनिसूं छूटैं। समस्त कर्म महानिंद्य, दु:ख की वृद्धि के कारण, तिनकूं तजकरि जैन का भाषा तपकरि अनेक सूर्य की कांति कूं जीत साधु शिवपुर कहिये मुक्ति तहां जाय हैं।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लवणांकुश के पूर्व भव का वर्णन करने वाला एक सौ आठवाँ पर्व संपूर्ण भया।।108।।

अथानन्तर सीता पति अर पुत्रनिकूं तजकरि कहां कहा तप करती भई सो सुनहु – कैसी है सीता? लोकविषै प्रसिद्ध है यश जाका। जिस समय सीता भई वह श्री मुनिसुव्रतनाथजी का समय था। ते वीसवें भगवान् महा शोभायमान, भवभ्रम के निवारणहारे, जैसा अरनाथ अर मल्लिनाथ का समय तैसा मुनिसुव्रतनाथ का समय, ताविषै श्रीसकलभूषण केवली केवलज्ञानकरि लोकालोक के ज्ञाता विहार करैं हैं। अनेक जीव महाव्रत किए, सकल अयोध्या के लोक जिनधर्मविषै निपुण विधिपूर्वक गृहस्थ का धर्म आराधें। सकल प्रजा भगवान् श्रीसकलभूषण के वचनविषै श्रद्धावान। जैसैं चक्रवर्ती की आज्ञाकूं पालें तैसे भगवान धर्मचक्री तिनकी आज्ञा भव्यजीव पालैं। राम का

राज्य महाधर्म का उद्योतरूप जा समय घनै लोक विवेकी साधु सेवाविषै तत्पर।

देखहु जो सीता अपनी मनोग्यताकरि देवांगनानिकरि शोभाकूं जीतती हुती सो तपकरि ऐसी होय गई मानों दग्ध भई माधुरी लता ही है। महा वैराग्यकरि मंडित अशुभ भावकरि रहित, स्त्री पर्यायकूं अतिनिन्दती, महातप करती भई। धूरकर धूसर होय रहे हैं केश जाके, अर स्नानरहित, शरीर के संस्काररहित, पसेवकरि युक्त गात्र, जाविषै रज आय पड़े सो शरीर मलिन होय रहा है। वेला तेला पक्ष उपवासकरि तनु क्षीण किया, दोष टारि शास्त्रोक्त पारणा करै। शीलव्रत गुणनिविषै अनुरागिणी, अध्यात्म के विचारकरि अत्यन्त शांत होय गया है चित्त जाका वश किये हैं इन्द्रिय जानैं, औरनितैं न बनै ऐसा उग्रतप करती भई। मांस अर रुधिरकरि वर्जित भया है सब अंग जाका, प्रकट नजर आवै है अस्थि अर नशाजाल जाके, मानों काठ की पुतली ही है। सूखी नदी समान भासती भई। बैठ गये हैं कपोल जाके, जूड़ा प्रमाण धरती देखती चलै, महा दयावन्ती, सौम्य है दृष्टि जाकी, तप का कारण देह ताके समाधान के अर्थि विधिपूर्वक भिक्षावृत्तिकरि आहार करैं। ऐसा तप किया कि शरीर और ही होय गया। अपना पराया कोई न जानै जो यह सीता है।

इसे ऐसा तप करती देख सकल आर्या याही की कथा करैं, याही की रीति देखि और हू आदरैं, सबनिविषै मुख्य भई। या भांति बासठ वर्ष महातप कीए। अर तेतीस दिन आयु के बाकी रहे तब अनशन व्रत धार परम आराधना आराधि, जैसैं पुष्पादिक उछिष्ट साथरेकूं तजिये तैसे शरीरकूं तजकरि अच्युतस्वर्गविषै प्रतीन्द्र भई।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! जिनधर्म का माहात्म्य देखो जो यह प्राणी स्त्री पर्यायविषै उपजी हुती सो तप के प्रभावकरि देवों का प्रभु होय। सीता अच्युतस्वर्गविषै प्रतीन्द्र भई। वहां मणिनि की कांतिकरि उद्योत किया है आकाशविषै जाने ऐसे विमानविषै उपजी, मणि कांचनादि महाद्रव्यनिकरि मंडित, विचित्रता धरे, परम अद्भुत सुमेरु के शिखर समान ऊंचा है, वहां परम ईश्वर ताकरि, संपन्न प्रतेन्द्र भया। हजारों देवांगना तिनके नेत्रों का आश्रय, जैसा तारावोंकरि मंडित चन्द्रमा सोहै तैसा सोहता भया। अर भगवान की पूजा करता भया। मध्यलोक में आय तीर्थों की यात्रा, साधुवों की सेवा करता भया अर तीर्थंकरों के समोसरण में गणधरों के मुखसूं धर्म श्रवण करता भया।

यह कथा सुनि गौतम स्वामीसूं राजा श्रेणिक पूछी – हे प्रभो! सीता का जीव सोलहवें स्वर्ग प्रतेन्द्र भया उस समय वहां इन्द्र कौन था? तब गौतम स्वामी ने कही उस समय वहां राजा मधु का जीव इन्द्र था। उसके निकट यह आया, सो वह मधु का जीव नेमिनाथ स्वामी के समय अच्युतेन्द्रपदसूं चयकरि वासुदेव की रुक्मणी राणी ताके प्रद्युम्न पुत्र भया अर उसका भाई कैटभ

जाम्बुवती के शम्भु नामा पुत्र भया, तब श्रेणिक ने गौतम स्वामीसूं विनती करी – हे प्रभो! मैं तुम्हारे वचनरूप अमृत पीवता पीवता तृप्त नाहीं, जैसे लोभी जीव धनसूं तृप्त नाहीं। इसलिए मुझे मधु का अर उसके भाई कैटभ का चरित्र कहो।

तब गणधर कहते भए – एक मगधनामा देश सर्व धान्यकरि पूर्ण, जहां चारों वर्ण हर्षसूं बसै, धर्म काम अर्थ मोक्ष के साधन अनेक पुरुष पाइए, अर भगवान के सुन्दर चैत्यालय, अर अनेक नगर ग्राम तिनकरि वह देश शोभित, जहां नदियों के तट गिरियों के शिखर वन में ठौर ठौर साधुवों के संघ विराजे हैं। राजा नित्योदित राज्य करै। उस देश में एक शालि नाम ग्राम, नगर सारिखा शोभित, वहां एक ब्राह्मण सोमदेव उसके स्त्री अग्निला, पुत्र अग्निभूत वायुभूत सो वे दोनों भाई लौकिक शास्त्र में प्रवीण अर पठन पाठन दान प्रतिग्रह में निपुण, अर कुल के तथा विद्या के गर्वकरि गर्वित, मनविषै ऐसा जान – हमसे अधिक कोई नाहीं। जिनधर्मतैं परांगमुख, रोग समान इन्द्रिनि के भोग तिनहीकूं भले जानै।

एक दिन स्वामी नन्दीवर्धन अनेक मुनिनिसहित वनविषै आय विराजे, बड़े आचार्य अवधिज्ञानकरि समस्त मूर्तिक पदार्थनिकूं जानैं। सो मुनिनि का आगमन मुनि ग्राम के लोक सब दर्शनकूं आए हुते अर अग्निभूत वायुभूत ने काहूसूं पूछी जो यह लोक कहां जाय हैं? तब वाने कही नन्दीवर्धन मुनि आए हैं तिनके दर्शनकूं जाय है। तब सुनकरि दोऊ भाई क्रोधायमान भए जो हम वादकरि साधुनिकूं जीतेंगे। तब इनकूं माता पिता ने मने किया जो तुम साधुनितैं बाद न करो, तथापि इन्होंने न मानी। बादकूं गए। तब इनकूं आचार्य के निकट जाते देखि एक सात्विकनामा मुनि अवधिज्ञानी इनकूं पूछते भए – तुम कहां जावो हो? तब इन्होंने कही तुमविषै श्रेष्ठ तुम्हारा गुरु है, उसकूं बादकरि जीतवे जाय हैं। तब सात्त्विक मुनि ने कही हमसूं चर्चा करो। तब यह क्रोधकरि मुनि के समीप बैठे अर कही तू कहांतैं आया है। तब मुनि ने कही तुम कहांतै आए?

तब वह क्रोधकरि कहते भए यह तैं कहा पूछी? हम ग्रामतैं आए हैं। कोई शास्त्र की चर्चा करहु। तब मुनि ने कही यह तो हम जानै हैं तुम शालिग्रामसूं आए हो, अर तिहारे बाप का नाम सोमदेव, माता का नाम अग्निला, अर तिहारे नाम अग्निभूत वायुभूत। तुम विप्रकुल हो, सो यह तो प्रकट है परन्तु हम तुमसूं यह पूछै हैं – अनादिकाल के भववनविषै भ्रमण करो हो सो या जन्मविषै कौन जन्मसूं आए हो? तब इनने कही यह जन्मांतर की बात हमकूं पूछी सो और कोई जानैं है? तब मुनि ने कही हम जानै हैं, तुम सुनो।

पूर्वभवविषै तुम दोऊ भाई या ग्राम के वनविषै परस्पर स्नेह के धारक स्याल हुते, विरूपमुख। अर ग्रामविषै एक बहुत दिन का वासी पामर नामा पितहड ब्राह्मण, सो वह खेतविषै सूर्य अस्त

समय क्षुधाकरि पीड़ित नाड़ी आदि उपकरण तजकरि आया। अर अंजनगिरि तुल्य मेघ माला उठी। सात दिन अहो रात्र का झड भया। सो पामर तो घर से आय न सक्या। अर वे दोऊ स्याल अति क्षुधातुर अंधेरी रात्रिविषै आहारकूं निकसे। सो पामर के खेतविषै भीजी नाड़ी कर्दमकरि लिप्त पड़ी हुती सो उन भक्षण करी। उसकरि विकराल उदर वेदना उपजी, स्याल मूवे, अकाम निर्जराकरि तुम सोमदेव के पुत्र भए। अर वह पामर सात दिन पीछे खेत में आया सो दोऊ स्याल मूए देखि अर नाड़ी कटी देखि स्यालनि की चर्म ले भाथड़ी करी सो अब तक पामर के घरविषै टंगी है।

अर पामर मरकरि पुत्र के घर पुत्र भया सो जातिस्मरण होय मौन पकड्या जो मैं कहा कहो? पिता तो मेरा पूर्वभव का पुत्र अर माता पूर्वभव की पुत्र की वधू तातैं न बोलना ही भला। सो यह पामर का जीव मौनी यहां ही बैठा है। ऐसा कहि मुनि पामर के जीवसूं बोले–अहो तू पुत्र के पुत्र भया सो यह आश्चर्य नाहीं, संसार का ऐसा ही चरित्र है। जैसें नृत्य के अखाड़े में बहुरूपिया अनेक रूप बनाय नाचै, तैसें यह जीव नाना पर्यायरूप भेष धर नाचै है, राजातैं रंक होय, रंक सूं राजा होय स्वामीसूं सेवक, सेवकसूं स्वामी, पितासूं पुत्र, पुत्रसूं पिता, मातासूं भार्या, भार्यासूं माता। यह संसार अरहट की घड़ी है। ऊपरली नीचे, नीचली ऊपर, ऐसा संसार का स्वरूप जान, हे वत्स! अब तू गूंगापन तजि वचनालाप करहु। या जन्म का पिता है तासे पिता कहि मातासूं माता कहि। पूर्वभव का कहा व्यवहार रहा? यह वचन सुन वह विप्र हर्षकरि रोमांच होय फूल गए हैं नेत्र जाके मुनिकूं तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कारकरि जैसें वृक्ष की जड़ उखड़ जाय अर गिर पड़े तैसें पायन पड्या। अर मुनिकूं कहता भया – हे प्रभो। तुम सर्वज्ञ हो, सकल लोक की व्यवस्था जानो हो या भयानक संसार सागरविषै मैं डूबूं था सो तुम दयाकरि निकास्या, आत्मबोध दिया। मेरे मन की सब जानी। अब मोहि दीक्षा देवहु ऐसा कहकरि समस्त कुटुम्ब का त्यागकरि मुनि भया।

यह पामर का चरित्र सुन अनेक लोक मुनि भए, अनेक श्रावक भए, अर इन दोनों भाईनि की पूर्वभव की खाल लोक ले आए सो इनन ने देखी, लोकों ने हास्य करी जो यह मांस के भक्षक स्याल थे सो यह दोऊ भाई द्विज बड़े मूर्ख जो मुनिनिसूं बाद करने आए। ये महामुनि तपोधन शुद्धभाव, सबके गुरु, अहिंसा महाव्रत के धारक, इन समान और नाहीं, यह महामुनि महाव्रतरूप शिक्षा के धारक, क्षमारूप यज्ञोपवीत धरें, ध्यानरूप अग्निहोत्र के कर्ता महाशांत मुक्ति के साधनविषै तत्पर। अर जे सर्व आरम्भविषै प्रवरतैं ब्रह्मचर्यरहित वे मुखसूं कहै हैं कि हम द्विज हैं परन्तु क्रिया करे नाहीं।

जैसे कोई मनुष्य या लोक में सिंह कहावै देव कहावै, परन्तु वह सिंह देव नाहीं, तैसे यह नाममात्र ब्राह्मण कहावैं परन्तु इनमें ब्रह्मत्व नाहीं। अर मुनिराज धन्य हैं परम संयमी महाक्षमावान्

तपस्वी जितेन्द्री निश्चयथकी ये ही ब्राह्मण हैं। सो साधु महाभद्र परिणामी भगवत के भक्त, महातपस्वी, यति, धीर, वीर, मूलगुण उत्तरगुण के पालक, इन समान और कोऊ नाहीं। यह अलौकिक गुण लिए हैं। अर इनहीकूं परिव्राजक कहिए, काहेतैं? जो वह संसारकूं तजि मुक्तिकूं प्राप्त होय ये निर्ग्रंथ अज्ञान तिमिर के हर्ता तपकरि कर्मनि की निर्जरा करैं हैं। क्षीण किए हैं रागादिक जिन्होंने महाक्षमावान पापनि के नाशक तातैं इनकूं क्षपणक हू कहिए।

यह संयमी कषायरहित शरीरतैं निर्मोह दिगम्बर योगीश्वर ध्यानी ज्ञानी पंडित निस्पृह सो ही सदा बंदिवे योग्य हैं। ए निर्वाणकूं साधैं तातैं ये साधु कहिए। अर पंच आचारकूं आप आचरैं औरनिकूं आचरावें तातैं आचार्य कहिए। आगार कहिए घर ताके त्यागी, तातैं अनगार कहिए। शुद्ध भिक्षा के ग्राहक तातैं भिक्षुक कहिए। अति कायक्लेशकरि अशुभकर्म के त्यागी, उज्ज्वल क्रिया के कर्त्ता, तप करते खेद न मानैं तातैं श्रमण कहिए। आत्मस्वरूपकूं प्रत्यक्ष अनुभवैं तातैं मुनि कहिए। रागादिक रोगों के हरिवे का यत्न करैं तातैं यति कहिए। या भांति लोकनि ने साधु की स्तुति करी अर इन दोनों भाईनि की निंदा करी। तब यह मानरहित बिलखे होय घर गए रात्रि के विषै पापी मुनि के मारिवेकूं आए। अर वे सात्त्विक मुनि अपरिग्रही संघकूं तजि अकेले मसान भूमिविषै अस्थ्यादिकसूं दूर एकांत पवित्र भूमि में विराजे थे। कैसी है वह भूमि?

जहां रीछ व्याघ्र आदि दुष्ट जीवों का नाद होय रहा है। अर राक्षस भूत पिशाचोंकरि भर्‍या है, नागों का निवास है, अंधकाररूप भयंकर। तहां शुद्ध शिला जीव जन्तुरहित उस पर कायोत्सर्ग धरि खड़े थे। सो उन पापियों ने देखे। दोनों भाई खड्ग काढ़ि क्रोधायमान होय कहते भए जब तो तोहि लोकों ने बचाया अब कौन बचावेगा? हम पंडित पृथ्वीविषै श्रेष्ठ प्रत्यक्ष देवता, तू निर्लज्ज हमकूं स्याल कहै। यह शब्द कहि दोनों अत्यन्त प्रचंड होठ डसते लाल नेत्र दयारहित मुनि के मारिवेकूं उद्यमी भए। तब वन का रक्षक यक्ष उसने देखे, मनविषै चितवता भया - देखो ऐसे निर्दोष साधु ध्यानी कायासूं निर्ममत्व तिनके मारिवेकूं उद्यमी भए। तब यक्ष ने इन दोनों भाईकूं कीले सो हलचल सकै नाहीं, दोनों पसवारे खड़े। प्रभात भया, सकल लोक आए, देखें तो यह दोनों मुनि के पसवारे कीले खड़े हैं। अर इनके हाथविषै नंगी तलवार है। तब इनकूं सब लोक धिक्कार धिक्कार कहते भए। यह दुराचारी पापी अन्याई ऐसा कर्म करनेकूं उद्यमी भए इन समान अर पापी नाहीं। और यह दोनों चित्तविषै चितवते भए जो यह धर्म का प्रभाव है हम पापी थे सो बलात्कार कीले, स्थावर-सम करि डारे। अब या अवस्थासूं जीवते बचें तो श्रावक के व्रत आदरें।

अर उस ही समय इनके माता-पिता आए बारम्बार मुनिकूं प्रणामकरि विनती करते भए - हे देव! यह कुपूत पुत्र हैं। इन्होंने बहुत बुरी करी। आप दयालु हो, जीवदान देवो। तब साधु बोले

हमारे काहूसूं कोप नाहीं, हमारे सब मित्र बांधव हैं। तब यक्ष लाल नेत्रकरि अति गुंजारसूं बोल्या अर सबों के समीप सर्व वृत्तांत कह्या कि जो प्राणी साधुवों की निंदा करैं सो अनर्थकूं प्राप्त होवें। जैसे निर्मल कांचविषै बाका मुखकरि निरखै तो बांका ही दीखै, तैसे जो साधुवों कूं जैसा भावकरि देखे तैसा ही फल पावै। जो मुनियों की हास्य करै सो बहुत दिन रुदन करै। अर कठोर वचन कहै सो क्लेश भोगवै, अर मुनि का वध करै तो अनेक कुमरण पावे, द्वेष करै सो पाप उपार्जे, भव भव दुख भोगवै। अर जैसा करै तैसा फल पावै।

यक्ष कहै है, हे विप्र! तेरे पुत्रों के दोषकरि मैं कीले हैं, विद्या के मानकरि गर्वित मायाचारी दुराचारी संयमियों के घातक हैं। ऐसे वचन यक्ष ने कहे। तब सोमदेव विप्र हाथ जोड़ि साधु की स्तुति करता भया, अर रुदन करता भया। आपकूं निंदता छाती कूटता ऊर्ध्व भुजाकरि स्त्रीसहित विलाप करता भया। तब मुनि परम दयालु यक्षकूं कहते भए - हे सुन्दर! हे कमल नेत्र! यह बालबुद्धि है, इनका अपराध, तुम क्षमा करो। तुम जिनशासन के सेवक हो, सदा जिनशासन की प्रभावना करो हो, तातैं मेरे कहे सूं इनकूं क्षमा करो। तब यक्ष ने कही आप कहो सो ही प्रमाण। वे दोनों भाई छोड़े। तब यह दोनों भाई मुनिकूं प्रदक्षिणा देय नमस्कारकरि साुध का व्रत धरिवेकूं असमर्थ, तातैं सम्यक्सहित श्रावक के व्रत आदरते भए। जिनधर्म की श्रद्धा के धारक भए।

अर इनके माता-पिता व्रत ले छोड़ते भए सो वे तो अव्रत के योगसूं पहिले नरक गये अर यह दोनों विप्रपुत्र निसंदेह जिनशासन रूप अमृत का पानकरि हिंसा का मार्ग विषवत् तजते भए। समाधिमरणकरि पहिले स्वर्ग उत्कृष्ट देव भए। वहां सूं चयकरि अयोध्याविषै समुद्र सेठ, उसके धारणी स्त्री, उसकी कुक्षिविषैं उपजे, नेत्रनिकूं आनन्दकारी, एक का नाम पूर्णभद्र, दूजे का नाम कांचनभद्र। सो श्रावक के व्रत धारि पहिले स्वर्ग गए। अर ब्राह्मण के भव के इनके पिता माता पाप के योगसूं नरक गए हुते वे नरकसूं निकसि चांडाल अर कूकरी भए वे पूर्णभद्र अर कांचनभद्र के उपदेशसूं जिनधर्म का आराधन करते भए, समाधिमरणकरि सोमदेव द्विज का जीव चांडालसूं नन्दीश्वर द्वीप का अधिपति देव भया, अर अग्निला ब्राह्मणी का जीव कूकरीसूं अयोध्या के राजा की पुत्री होय उस देव के उपदेशसूं विवाह का त्यागकरि आर्यिका होय उत्तम गति गई। वे दोनों परम्पराय मोक्ष पावेंगे।

अर पूर्णभद्र कांचनभद्र का जीव प्रथम स्वर्गसूं चयकरि अयोध्या का राजा हेम, राणी अमरावती, तिसके मधु कैटभ नामा पुत्र जगत् विख्यात भए। जिनकूं कोई जीत न सकै, महाप्रबल, महारूपवान जिन्होंने यह समस्त पृथ्वी वश करी। सब राजा तिनके आधीन भए। भीम नामा राजा गढ़ के बलकरि इन की आज्ञा न मानैं। जैसैं चमरेन्द्र असुर कुमारनि का इन्द्र

नन्दनवनकूं पाय प्रफुल्लित होय है तैसैं वह अपने स्थान के बलकरि प्रफुल्लित रहै। अर एक वीरसेन नाम राजा बटपुर का धनी, मधु कैटभ का सेवक, उसने मधु कैटभकूं विनीत पत्र लिख्या – हे प्रभो! भीमरूप अग्नि से मेरा देशरूप वन भस्म किया।

तब मधु क्रोधकरि बड़ी सेनासूं भीम ऊपरि चढ्या, सो मार्गविषै बटपुर जाय डेरा किए। वीरसेन ने सम्मुख जाय अति भक्तिकरि मिहमानी करी। उसके स्त्री चन्द्रमा समान है बदन जाका, सो वीरसेन मूर्ख ने उसके हाथ मधु का आरत्या कराया, अर उस ही के हाथ जिमाया। चन्द्राभा ने पतिसूं घनी ही कही जो अपने घरविषै सुन्दर वस्तु होय सो राजाकूं न दिखाइए, पति ने न मानी। राजा मधु चन्द्राभाकूं देखि मोहित भया। मनविषै विचारी इस सहित विंध्याचल के वन का वास भला अर या बिना सब भूमि का राज्य भी भला नाहीं। सो राजा अन्याय ऊपर आया। तब मंत्री ने समझाया – अवार यह बात करोगे तो कार्य सिद्ध न होयगा, अर राज्य भ्रष्ट होयगा। तब राजा मंत्रियों के कहेसूं राजा वीरसेनकूं लार लेय भीम पै गया। उसे युद्धविषै जीत वशीभूत किया अर और सब राजा वश किए। बहुरि अयोध्या आय चन्द्राभा के लेयवे का उपाय चिंत्या।

सर्व राजा बसंत की क्रीड़ा के अर्थ स्त्रीसहित बुलाये। अर वीरसेनकूं चन्द्राभा सहित बुलाया, तब हू चन्द्राभा ने कही कि मुझे मत ले चलो, सो न मानी ले ही आया। राजा ने मास पर्यंत वनविषै क्रीड़ा करी। अर राजा आए थे तिनकूं दान सन्मानकरि स्त्रियों सहित विदा किए। अर वीरसेनकूं कैयक दिन राख्या अर वीरसेनकूं भी अतिदान सन्मान करि विदा किया। अर चन्द्राभा के निमित्त कही इनके निमित्त अद्‌भुत आभूषण बनवाए हैं सो अभी बन नहीं चुके हैं। तातैं इनकूं तिहारे पीछे विदा करेंगे। सो वह भोला कुछ समझे नाहीं, घर गया। वाके गए पीछे मधु ने चन्द्राभाकूं महलविषै बुलाया। अभिषेककरि पटराणीपद दिया, सब राणियों के ऊपर करी। भोगकरि अंध भया है मन जिसका, इसे राखि आपकूं इन्द्र समान मानता भया। अर वीरसेन ने सुना कि चन्द्राभा मधु ने राखी तब पागल होय कैयक दिनविषै मंडवनामा तापस का शिष्य होय पंचाग्नि तप करता भया।

अर एक दिन राजा मधु न्याय के आसन बैठ्या सो एक परदारारत का न्याय आया। सो राजा न्यायविषै बहुत देर तक बैठे रहे। बहुरि मन्दिरविषै गए, तब चन्द्राभा ने हंसकरि कही – महाराज! आज घनी वेर क्यों लागी? हम क्षुधाकरि खेदखिन्न भईं। आप भोजन करो तो पीछे भोजन करूं। तब राजा मधु ने कही आज एक परनारीरत का न्याय आय पड्या, तातैं देर लागी।

तब चन्द्राभा ने हंसकरि कही, जो परस्त्रीरत होय उसकी बहुत मानता करनी। तब राजा ने क्रोधकरि कह्या तुम यह क्या कही जे दुष्ट? व्यभिचारी हैं तिनका निग्रह करना। जे परस्त्री का

स्पर्श करें ते पापी हैं। सेवन करें तिनकी कहा बात? ऐसे कर्म करें तिनकूं महादण्ड दे नगरसूं काढने। जे अन्याय मार्गी हैं वे महापापी नरकविषै पड़े हैं। अर राजाओं के दंड योग्य हैं तिनका मान कहा? तब राणी चन्द्राभा राजाकूं कहती भई – हे नृप! यह परदारा सेवन महादोष है तो तुम आपकूं दंड क्यों न देवो? तुम ही परदाररत हो तो औरोंकूं कहा दोष? जैसा राजा तैसी प्रजा। जहां राजा हिंसक होय अर व्यभिचारी होय तहां न्याय कैसा? तातैं चुप होय रहो। जिस जलकरि बीज उगै अर जगत् जीवै, सो जल ही जो जलाय मारे तो और शीतल करणहारा कौन? ऐसे उलाहना के वचन चन्द्राभा के सुन राजा कहता भया – हे देवी! तुम कहो हो सो ही सत्य। बारम्बार इसकी प्रशंसा करी, अर कहा मैं पापी लक्ष्मीरूप पाशकरि बेढ्या विषयरूप कीचविषै फंस्या, अब इस दोषसूं कैसे छूटूं? राजा ऐसा विचार करै है।

अर अयोध्या के सहश्रीनामा वनविषै महासंघसहित सिंहपाद नामा मुनि आए। राजा सुनकरि रणवास सहित अर लोकूंसहित मुनि के दर्शनकूं गया। विधिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देय प्रणामकरि भूमिविषै बैठ्या, जिनेंद्र का धर्म श्रवणकरि भोगोंसूं विरक्त होय मुनि भया। अर राणी चन्द्राभा बड़े राजा की बेटी रूपकरि अतुल्य, सो राज विभूति तजि आर्यिका भई। दुर्गति की वेदना का है अधिक भय जिसकूं। अर मधु का भाई कैटभ राजकूं विनाशीक जान महाव्रत धरि मुनि भया। दोऊ भाई महातपस्वी पृथ्वीविषै विहार करते भए अर सकल स्वजन परजन के नेत्रनिकूं आनन्द का कारण मधु का पुत्र कुलवर्धन अयोध्या का राज्य करता भया, अर मधु सैकड़ों बरस व्रत पाल दर्शन ज्ञान चारित्र तप यही चार आराधना आराधि समाधिमरणकरि सोलहवाँ अच्युतनामा स्वर्ग वहां अच्युतेन्द्र भया। अर कैटभ पन्द्रहवां आरण नामा स्वर्ग वहां आरणेन्द्र भया।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! यह जिनशासन का प्रभाव जानों जो ऐसे अनाचारी भी अनाचार का त्यागकरि अच्युतेन्द्र पद पावैं अथवा इन्द्र पद का कहा आश्चर्य? जिनधर्म के प्रसादसूं मोक्ष पावें। मधु का जीव अच्युतेन्द्र था उसके समीप सीता का जीव प्रतेन्द्र भया, अर मधु का जीव स्वर्गसूं चयकरि श्रीकृष्ण की रुक्मिणी राणी के प्रद्युम्न नामा पुत्र कामदेव होय, मोक्ष लही अर कैटभ का जीव कृष्ण की जामवंती राणी के शम्भुकुमार नामा पुत्र होय परम धामकूं प्राप्त भया। यह मधु का व्याख्यान तुझे कह्या।

अब हे श्रेणिक! बुद्धिवंतों के मनकूं प्रिय ऐसे लक्ष्मण के अष्ट पुत्र महाधीर वीर तिनका चरित्र पापों का नाश करणहारा चित्त लगाय सुनहु।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राजा मधु का वैराग्य वर्णन करने वाला एक सौ नौवाँ पर्व संपूर्ण भया।।109।।

अथानन्तर कांचन स्थान नामा नगर, वहां राजा कांचनरथ, उसकी राणी शतह्रदा, ताके पुत्री दोय, अति रूपवती, रूप के गर्वकरि महागर्वित, तिनके स्वयंवर के अर्थ अनेक राजा भूचर खेचर तिनके पुत्र कन्या के पिता ने पत्र लिख दूत भेजि शीघ्र बुलाए। सो दूत प्रथम ही अयोध्या पठाया। अर पत्रविषै लिख्या – मेरी पुत्रियों का स्वयंवर है सो आप कृपाकरि कुमारोंकूं शीघ्र पठावो। तब राम लक्ष्मण ने प्रसन्न होय परम ऋद्धियुक्त सर्व सुत पठाए। दोनों भाइयों के सकल कुमार लव अंकुशकूं अग्रेसरकरि परस्पर महाप्रेम के भरे कांचनस्थानपुरकूं चाले। सैकड़ों विमानविषै बैठे अनेक विद्याधर लार, रूपकरि लक्ष्मीकरि देवनि सारिखे आकाश के मार्ग गमन करते भये सो बड़ी सेना सहित आकाशसूं पृथ्वीकूं देखते जावें, कांचनस्थानपुर पहुंचे। वहां दोनों श्रेणियों के विद्याधर राजकुमार आये थे सो यथायोग्य तिष्ठे। जैसे इन्द्र को सभाविषै नाना प्रकार के आभूषण पहिरे देव तिष्ठें, अर नन्दनवनविषै देव नाना प्रकार की चेष्टा करें, चेष्टा तैसे करते थे।

अर वे दोनों कन्या मन्दाकनी अर चन्द्रवक्रा मंगल स्नानकरि सर्व आभूषण पहिरे। निज वाससूं रथ चढ़ी निकसी, मानों साक्षात् लक्ष्मी अर लज्जा ही हैं। महागुणोंकरि पूर्ण तिनके खोजा लार था, सो राजकुमारों के देश कुल सम्पत्ति गुण नाम चेष्टा सब कहता भया। अर कही ए आए हैं तिनविषै कई वानरध्वज, कई सिंहध्वज, कई वृषभध्वज, कई गज ध्वज इत्यादि अनेक भांति की ध्वजाकूं धरे महा पराक्रमी हैं। इनविषै इच्छा होय ताहि वरहु। तब वह सबनिकूं देखती भई अर यह सब राजकुमार उनकूं देखि संदेह की तुलाविषै आरूढ़ भए कि यह रूपगर्वित है न जानिए कौनकूं वरें। ऐसी रूपवती हम देखी नाहीं। मानों ये दोनों समस्त देवियों का रूप एकत्रकरि बनाई हैं। यह काम की पताका लोकनिकूं उन्माद का कारण। इस भांति सब राजकुमार अपने अपने मनविषै अभिलाषारूप भए। दोनों उत्तम कन्या लव अंकुशकूं देखि कामबाणकरि बेधी गई। उनमें मंदाकिनी नामा जो कन्या उसने लव के कंठविषै वरमाला डारी। अर दूजी कन्या चन्द्रवक्रा ने अंकुश के कंठविषै वरमाला डारी। तब समस्त राजकुमारों के मनरूप पक्षी तनुरूप पिंजरेसूं उड़ गए। अर जे उत्तम जन हुते तिन्होंने प्रशंसा करी कि इन दोनों कन्याओं ने राम के दोनों पुत्र वरे सो नीके करी। ए कन्या इन ही योग्य हैं। इस भांति सज्जनों के मुखसूं बाणी निकसी। जे भले पुरुष हैं तिनका चित्त योग्य सम्बन्धसूं आनन्दकूं प्राप्त होय।

अथानन्तर लक्ष्मण की विशल्यादि आठ पटरानी तिनके पुत्र आठ महासुन्दर उदार चित्त शूरवीर पृथ्वीविषै प्रसिद्ध इन्द्रसमान सो अपने अढ़ाईसै भाइयों सहित महाप्रीति युक्त तिष्ठते थे। जैसे तारावों में ग्रह तिष्ठे। सो आठ कुमारनि बिना और सब ही भाई राम के पुत्रनि पर क्रोधित भए। जो हम नारायण के पुत्र कांतिधारी कलाधारी नवयौवन लक्ष्मीवान बलवान सेनावान कौन

गुणकरि हीन जो इन कन्यानि ने हमकूं न बस्या अर सीता के पुत्र बरे। ऐसा विचारकरि कोपित भए। तब बड़े भाई आठ ने इनकूं शांतचित्त किए, जैसे मंत्रकरि सर्पकूं वश करिए। तिनके समझावेतैं सब ही भाई लव अंकुशसूं शांतचित्त भए अर मनविषै विचारते भए जो इन कन्यानि ने हमारे बाबा के बेटे बड़े भाई वरे तब ए हमारे भावज सो माता समान है, अर स्त्री पर्याय महानिंद्य है।

स्त्रीनि की अभिलाषा अविवेकी करें। स्त्रियें स्वभाव ही तैं कुटिल हैं इनके अर्थ विवेकी विकारकूं न भजें। जिनकूं आत्मकल्याण करना होय सो स्त्रीनितैं अपना मन फेरैं। या भांति विचार सबही भाई शांतचित्त भए। पहिले सब ही युद्धकूं उद्यमी भए हुते, रण के वादित्रनि का कोलाहल शंख झंझा भेरी झंझार इत्यादि अनेक जाति के वादित्र बाजने लगे, अर जैसे इन्द्र की विभूति देखि छोटे देव अभिलाषी होय तैसे ये सब स्वयंवरविषै कन्यानि के अभिलाषी भए हुते। सो बड़े भाइनि के उपदेशतैं विवेकी भये, अर उन आठों बड़े भाइनिकूं वैराग्य उपज्या। सो विचारै हैं यह स्थावर जंगमरूप जगत के जीव कर्मनिकी विचित्रता के योगकरि नानारूप हैं, विनश्वर हैं। जैसा जीवनि के होनहार है तैसा ही होय है। जाके जो प्राप्ति होनी है सो अवश्य होय है, और भांति नाहीं।

अर लक्ष्मण की राणी का पुत्र हंसकर कहता भया – जो भ्रात हो! स्त्री कहा पदार्थ है? स्त्रीनितैं प्रेम करना महा मूढ़ता है। विवेकिनकूं हांसी आवै है जो यह कामी कहा जानि अनुराग करै है। इन दोऊ भाइनि ने ये दोनों राणी पाई तौ कहा बड़ी वस्तु पाई। जे जिनेश्वरी दीक्षा धरें वे धन्य हैं। केला के स्तम्भ समान असार काम भोग आत्मा के शत्रु, तिनके वश होय रति अरति मानना महा मूढ़ता है, विवेकिनकूं शोक हू न करना, अर हास्य हू न करना। ए सब ही संसारी जीव कर्म के वश भ्रमजालविषै पड़े हैं। ऐसा नाहीं करै हैं जाकर कर्मों का नाश होय, कोई विवेकी करै सोई सिद्धपदकूं प्राप्त होय, या गहन संसार वनविषै ये प्राणी निजपुर का मार्ग भूल रहे हैं, ऐसा करहु जातैं भवदुख निवृत्ति होय।

हे भाई हो! यह कर्मभूमि आर्यछेत्र मनुष्य देह उत्तम कुल हमने पाया सो एते दिन योंही खोये। अब वीतराग का धर्म आराधि मनुष्य देह सफल करो। एक दिन मैं बालक अवस्थाविषै पिता की गोदविषै बैठा हुता सो वे पुरुषोत्तम समस्त राजानिकूं उपदेश देते थे। वे वस्तु का स्वरूप सुन्दर स्वरसूं कहते भए। सो मैं रुचिसूं सुण्या – चारों गतिविषै मनुष्यगति दुर्लभ है। जो मनुष्यभव पाय आत्मरहित न करैं हैं सो ठगाए गए जानो दानकरि तो मिथ्यादृष्टि भोगभूमि जावैं, अर सम्यग्दृष्टि दानकरि तपकरि स्वर्ग जाय, परम्पराय मोक्ष जावें। अर शुद्धोपयोग रूप आत्मज्ञानकरि यह जीव याही भव मोक्ष पावै। अर हिंसादिक पापनिकरि दुर्गति लहै।

जो तप न करै सो भव वनविषै भटके, बारम्बार दुर्गति के दुःख संकट पावै, या भांति विचार

वे अष्ट कुमार शूरवीर प्रतिबोधकूं प्राप्त भए। संसार सागर के दुःखरूप भवनिसूं डरे, शीघ्र ही पितापै गए, प्रणामकरि विनयसूं खड़े रहे, अर महा मधुर वचन हाथ जोड़ कहते भए - हे तात! हमारी विनती सुनहु। हम जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार किया चाहै हैं, तुम आज्ञा देवहु। यह संसार विजुरी के चमत्कार समान अस्थिर है, केला के स्तम्भ समान असार है हमकूं अविनाशीपुर के पंथ चलते विघ्न न करहु। तुम दयालु हो, कोई महाभाग्य उदयतैं हमकूं जिनमार्ग का ज्ञान भया, अब ऐसा करें जाकरि भवसागर के पार पहुंचे। ये काम भोग आशीविष सर्प के फण समान भयंकर है, परम दुःख के कारण हम दूर हीतैं छोड़्या चाहैं हैं। या जीव के कोई माता पिता पुत्र बांधव नाहीं, कोई याका सहाई नाहीं, यह सदा कर्म के आधीन भववनविषै भ्रमण करै है। याके कौन कौन जीव कौन सम्बन्धी न भए।

हे तात! हमसूं तिहारा अत्यन्त वात्सल्य है अर माताओं का है, सो ये ही बन्धन है। हमने तिहारे प्रसादतैं बहुत दिन नाना प्रकार संसार के सुख भोगे। निदान एक दिन हमारा तिहारा वियोग होयगा, यामें संदेह नाहीं। या जीव ने अनेक भोग किए परन्तु तृप्त न भया। ये भोग रोग समान है। इनविषै अज्ञानी राचें। अर यह देह कुमित्र समान है, जैसे कुमित्रकूं नाना प्रकारकरि पोषिये परन्तु वह अपना नाहीं, तैसे यह देह अपना नाहीं। याके अर्थ आत्मा का कार्य न करना यह विवेकिन का काम नाहीं। यह देह तो हमकूं तजैगी हम इससूं प्रीति क्यों न तजैं।

यह वचन पुत्रनि के सुन लक्ष्मण परम स्नेह करि विह्वल होय गए। इनकूं उरसूं लगाय मस्तक चूम्ब बारम्बार इनकी ओर देखते भए, अर गद्गद वाणीकरि कहते भए - हे पुत्र हो! ये कैलाश के शिखर समान हजारां कनक के स्तंभ तिनविषै निवास करहु। नाना प्रकार रत्नों से निरमाए हैं आंगन जिनके, महा सुन्दर, सर्व उपकरणोंकरि मण्डित, मलयागिरि चन्दन की आवै है सुगन्ध जहां, उसकरि भंवर गुंजार करै हैं, अर स्नानादिक की विधि जहां ऐसी मंजनशाला, अर सब सम्पत्तिसूं भरे निर्मल है भूमि जिनकी, इन महिलोंविषै देवों समान क्रीड़ा करहु। अर तिहारे सुन्दर स्त्री देवांगना समान दिव्यरूपकूं धरें शरद के पूनों के चन्द्रमा समान प्रजा जिनकी, अनेक गुणनिकरि मंडित वीण बांसुरी मृदंगादि अनेक वादित्र बजायवेविषै निपुण, महासुकण्ठ, सुन्दर गीत गायबेविषै निपुण, नृत्य की करणहारी जिनेन्द्र की कथाविषै अनुरागिणी, महापतिव्रता पवित्र तिनसहित बन उपबन तथा गिरि नदियों के तट निज भवन के उपवन तहां नाना विधि क्रीड़ा करते देवों की न्याईं रमो। हे वत्स! ऐसे मनोहर सुखोंकूं तजकरि जिनदीक्षा धरि कैसे विषम वन अर गिरि के शिखर कैसे रहोगे? मैं स्नेह का भर्‌या अर तिहारी माता तिहारे शोककरि तप्तायमान तिनकूं तजकरि जाना तुमकूं योग्य नाहीं। कैयक दिन पृथ्वी का राज्य करहु।

तब वे कुमार स्नेह की वासना से रहित भया है चित्त जिनका, संसार से भयभीत, इन्द्रियों के सुखसूं पराङ्मुख, महा उदार, महाशूरवीर, कुमारश्रेष्ठ, आत्मतत्त्वविषै लाग्या है चित्त जिनका, क्षण एक विचार कर कहते भए – हे पिता! इस संसारविषै हमारे माता पिता अनन्त भए। यह स्नेह का बन्धन नरक का कारण है। यह घर पिंजरा पापारम्भ का अर दु:ख का बढ़ावनहारा है। उसमें मूर्ख रति माने है, ज्ञानी न मानै। अब कबहूं देह संबंधी तथा मन संबंधी दुख हमकूं न होय निश्चय से ऐसा ही उपाय करेंगे। जो आत्मकल्याण न करै सो आत्मघाती है। कदाचित् घर न तजे अर मनविषै ऐसा जाने मैं निर्दोष हूं, मुझे पाप नाहीं तो वह मलिन है, पापी है। जैसे सुफेद वस्त्र अंग के संयोग से मलिन होय तैसे घर के संयोग से गृहस्थी मलिन होय है। जे गृहस्थाश्रमविषै निवास करै हैं तिनके निरन्तर हिंसा आरम्भकर राग उपजै। तातैं सत्पुरुषों ने गृहस्थाश्रम तजे। अर तुम हमसूं कही कईएक दिन राज्य भोगो सो तुम ज्ञानवान् होयकर हमकूं अंधकूपविषै डारो हो?

जैसे तृषाकर आतुर मृग जल पीवें अर उसे पारधी मारै तैसैं भोगनिकर अतृप्त जो पुरुष उसे मृत्यु मारे है। जगत् के जीव विषय की अभिलाषा कर सदा आर्त्तध्यानरूप पराधीन हैं। जे काम सेवे हैं, वे अज्ञानी विषहरणहारी जड़ी बिना आशीविष सर्प से क्रीड़ा करे हैं, सो कैसे जीवैं? यह प्राणी मीन समान गृहरूप तालाबविषै बसते, विषयरूप मांस के अभिलाषी, रोग रूप लोहे के आंकड़े के योगकर काल रूप धीवर के जालविषै पड़े हैं। भगवान श्री तीर्थंकर देव, तीन लोक के ईश्वर, सुर नर विद्याधरनिकर वंदित, यह ही उपदेश देते भये कि यह जगत के जीव अपने अपने उपार्जे कर्मों के वश हैं। अर या जगतकूं तजै सो कर्मोंकूं हते। तातैं हे तात! हमारे इष्टसंयोग के लोभकर पूर्णता न होवे। यह संयोग सम्बन्ध विजुरी के चमत्कारवत् चंचल है। जे विचक्षण जन हैं वे इनसे अनुराग न करैं, अर निश्चय सेती इन तनु से अर तनु के सम्बन्धियोंसूं वियोग होयगा। इनविषै कहा प्रीति! अर महाक्लेशरूप यह संसार बन उसविषै कहा निवास? अर यह मेरा प्यारा, ऐसी बुद्धि जीवों के अज्ञान से है। यह जीव सदा अकेला भवविषै भटके है, गति गतिविषै गमन करता महादुखी है।

हे पिता! हम संसार सागरविषै झकोला खाते अति खेदखिन्न भए। कैसा है संसार सागर? मिथ्या शास्त्ररूप है दुखदाई द्वीप जिसविषै, अर मोहरूप है मगर जिसमें, अर शोक संतापरूप सिवानकर संयुक्त सो, अर दुर्जयरूप नदियों कर पूरित है, अर भ्रमणरूप भंवर के समूहकरि भयंकर है, अर अनेक आधिव्याधि उपाधिरूप कलोलोंकर युक्त है, अर कुभावरूप पाताल कुण्डोंकर अगम है, अर क्रोधादिकर भावरूप जलचरों से समूह से भरा है, अर वृथा बकवादरूप होय है शब्द जहां, अर ममत्वरूप पवनकर उठे हैं विकल्प रूपतरंग जहां, अर दुर्गतिरूप क्षार जलकर भरा है,

अर महादुस्सह इष्ट वियोग अनिष्ट संयोगरूप आताप सोई हैं बडवानल जहां, ऐसै भवसागरविषै हम अनादिकाल के खेदखिन्न पड़े हैं।

नाना योनिविषै भ्रमण करते अतिकष्टसूं मनुष्यदेह उत्तम कुल पाया है सो अब ऐसा करेंगे बहुरि भवभ्रमण न होय। सो सबसे मोह छुड़ाय आठौं कुमार महाशूरवीर घररूप बन्दीखाने से निकसे। उन महाभाग्यों के ऐसी वैराग्य बुद्धि उपजी जो तीन खंड का ईश्वरपणा जीर्ण तृणवत् तजा। ते विवेकी महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषै जायकर महाबल नामा मुनि के निकट दिगम्बर भए। सर्व आरम्भरहित अन्तर्वाह्य परिग्रह त्यागी, विधिपूर्वक ईर्यासमिति पालते, विहार करते भए। महा क्षमावान इन्द्रियों के वश करणहारे, विकल्परहित, निस्पृही, परम योगी, महाध्यानी, बारह प्रकार के तपकर कर्मोंकूं भस्मकर अध्यात्म योग से शुभाशुभ भावों का निराकरण कर क्षीणकषाय होय केवलज्ञान लह अत्यन्त सुखरूप सिद्धपदकूं प्राप्त भए। जगत के प्रपंच से छूटे।

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसूं कहे हैं – हे नृप! यह अष्ट कुमारों का मंगलरूप चरित्र जो विनयवान भक्तिकर पढ़े सुने, उसके समस्त पाप क्षय जावें जैसैं सूर्य की प्रभाकर तिमिर विलाय जाय।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण के आठ कुमारों का वैराग्य वर्णन करने वाला एक सौ दशवाँ पर्व संपूर्ण भया।।110।।

अथानन्तर महावीर जिनेन्द्र के प्रथम गणधर मुनियोंविषै मुख्य गौतम ऋषि श्रेणिकसूं भामंडल का चरित्र कहते भए – हे श्रेणिक! विद्याधरनि की जो ईश्वरता सोई भई कुटिला स्त्री, उसका विषय वासनारूप मिथ्या सुख सोई भया पुष्प, उसके अनुरागरूप मकरंदविषै भामण्डलरूप भ्रमर आसक्त होता भया। चित्त में यह चिंतवे जो मैं जिनेन्द्री दीक्षा धरूंगा तो मेरी स्त्रियों का सौभाग्यरूप कमलनि का वन सूख जायेगा। ये मेरे से आसक्त चित्त हैं, अर इनके विरह कर मेरे प्राणनि का वियोग होयगा। मैं यह प्राण सुखसूं पाले हैं, इसलिए कईएक दिन राज्य के सुख भोग कल्याण का कारण जो तप सो करूंगा। यह कामभोग दुर्निवार हैं। अर इनकर पाप उपजेगा सो ध्यानरूप अग्निकर क्षणमात्र विषै भस्म करूंगा।

कोईयक दिन राज्य करूं। बड़ी सेना राख जे मेरे शत्रु हैं तिनकूं राज्यरहित करूंगा। वे खड्ग के धारी बड़े सामंत मुझसे पराङ्मुख, ते भए खड्गी कहिए मैंडा, तिनके मानरूप खड्गकूं भंग करूंगा। अर दक्षिणश्रेणी उत्तरश्रेणी विषै अपनी आज्ञा मनाऊं, अर सुमेरु पर्वत आदि पर्वतोंविषै मरकत मणि आदि नाना जाति के रत्ननि की निर्मलशिला तिनविषै स्त्रियोंसहित क्रीड़ा करूंगा। इत्यादि मन के मनोरथ करता हुवा भामंडल सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्त की न्याईं व्यतीत करता भया।

यह किया, यह करूं, यह करूंगा, ऐसा चिंतवन करता आयु का न जानता भया। एक दिन सतखणें महिल के ऊपर सुन्दर सेज पर पौढ़ा हुता सो विजुरी पड़ी अर तत्काल कालकूं प्राप्त भया।

दीर्घसूत्री मनुष्य अनेक विकल्प करें, परन्तु आत्मा के उद्धार का उपाय न करैं। तृष्णाकर हता क्षणमात्र में साता न पावें, मृत्यु सिर पर फिरै ताकी सुध नाहीं। क्षणभंगुर सुख के निमित्त दुर्बुद्धि आत्महित न करै। विषय वासनाकर लुब्ध भया अनेक भांति विकल्प करता रहै। सो विकल्प कर्मबंध के कारण हैं। धन यौवन जीतव्य सब अस्थिर हैं। जो इनकूं अस्थिर जान सर्व परिग्रह का त्याग कर आत्मकल्याण करैं सो भवसागर न डूबें। अर विषयाभिलाषी जीव भवविषै कष्ट सहें, हजारों शास्त्र पढ़े, अर शांतता न उपजी तो क्या? अर एक ही पढ़कर शांतदशा होय तो प्रशंसा योग्य है। धर्म करिवे की इच्छा तो सदा करवहु करे, अर करे नाहीं, सो कल्याणकूं न प्राप्त होय। जैसैं कटी पक्ष का काग उड़कर आकाशविषै पहुंचा चाहै पर जाय न सकै।

जो निर्वाण के उद्यमकर रहित है सो निर्वाण न पावै। जो निरुद्यमी सिद्धपद पावै, तो कौन काहेकूं मुनिव्रत आदरै? जो गुरु के उत्तम वचन उरविषै धार धर्मकूं उद्यमी होय सो कभी खेदखिन्न न होय। जो गृहस्थ द्वारे आया साधु उसकी भक्ति न करै, आहारादिक न दे सो अविवेकी है। अर गुरु के वचन सुन धर्मकूं न आदरै सो भवभ्रमण से न छूटै। जो घने प्रमादी हैं अर नाना प्रकार के अशुभ उद्यम कर व्याकुल है, उनकी आयु वृथा जाय है, जैसैं हथेली में आया रत्न जाता रहे। ऐसा जान, समस्त लौकिक कार्यकूं निरर्थक मान, दुःखरूप इन्द्रियों के सुख तिनकूं तजकर परलोक सुधारिवे के अर्थ जिनशासनविषै श्रद्धा करहु। भामंडल मरकर पात्रदान के प्रभावसूं उत्तम भोग भूमि गया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै भामण्डल का मरण वर्णन करने वाला एक सौ ग्यारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।111।।

अथानन्तर राम लक्ष्मण परस्पर महास्नेह के भरे प्रजा के पिता समान परम हितकारी तिनका राज्यविषै सुखसूं समय व्यतीत होता भया। परम ईश्वरतारूप अति सुन्दर राज्य सोई भया कमलों का वन, उसविषै क्रीड़ा करते वे पुरुषोत्तम पृथ्वीकूं प्रमोद उपजावते भए। इनके सुख का वर्णन कहां तक करैं? ऋतुराज कहिए बसंतऋतु उसमें सुगन्ध वायु बहै, कोयल बोलै, भ्रमर गुंजार करें, समस्त वनस्पति फूलै, मदोन्मत्त होय समस्त लोक हर्ष के भरे शृंगार क्रीड़ा करैं। मुनिराज विषम वनविषै विराजैं आत्मस्वरूप का ध्यान करैं।

उस ऋतुविषै राम लक्ष्मण रणवाससहित अर समस्त लोकनि सहित रमणीक वनविषै तथा उपवनविषै नाना प्रकार के रंग-क्रीड़ा, रागक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, वनक्रीड़ा करते भए। अर ग्रीष्मऋतुविषै नदी सूखे दावानल समान ज्वाला बरसै महामुनि गिरि के शिखर सूर्य के सन्मुख कायोत्सर्ग धर

तिष्ठे। उस ऋतुविषै राम लक्ष्मण धारामंडप महलविषै, अथवा महारमणीक वनविषै, जहां अनेक जलयंत्र चन्दन कर्पूर आदि शीतल सुगन्ध सामग्री वहां सूखसूं विराजे हैं, चमर ढुरे हैं, ताड़ के बीजना फिरे हैं, निर्मल स्फटिक की शिला पर तिष्ठे हैं, अगुरु चन्दन कर चर्चे जलकर तरु ऐसे कमलदल तथा पुष्पों के सांथरे पर तिष्ठे, महामनोहर निर्मल शीतल जल, जिसविषै लवंग इलायची कपूर अनेक सुगन्धरूप उनकर महासुगन्ध उसका पान करते, लतावों के मंडपविषै विराजते नाना प्रकार की सुन्दर कथा करते, सारंग आदि अनेक राग सुनते, सुन्दर स्त्रीनि सहित उष्ण ऋतुकूं बलात्कार शीतकाल-सम करते, सुखसूं पूर्ण करते भए।

अर वर्षाऋतु विषै योगीश्वर तरु तले तिष्ठते महातपकर अशुभ कर्म का क्षय करैं है। विजुरी चमकै है, मेघकर अंधकार होय रहा है, मयूर बोले हैं ढाहा उपाडती महाशब्द करती नदी बहे हैं, उस ऋतुविषै दोनों भाई सुमेरु के शिखर समान ऊंचे, नाना मणिमई, जे महिल तिनविषै महाश्रेष्ठ रंगीले वस्त्र पहिरे, केसर के रंगकर लिप्त है अंग जिनका, अर कृष्णागर का धूप खेए रहे हैं महासुन्दर स्त्रियों के नेत्ररूप भ्रमरों के कमल सारिखे इन्द्रसमान क्रीड़ा करते सुखसूं तिष्ठे। अर शरदऋतुविषै आकाश निर्मल होय, चन्द्रमा की किरण उज्ज्वल होय, कमल फूले, हंस मनोहर शब्द करें, मुनिराज वन पर्वत सरोवर नदी के तीर बैठे चिद्रूप का ध्यान करें।

उस ऋतुविषै राम लक्ष्मण राजलोकों सहित चांदनी के वस्त्र आभरण पहिरे सरिता सरोवर के तीर नाना विधि क्रीड़ा करते भए। अर शीतऋतुविषै योगीश्वर धर्मध्यान को ध्यावते रात्रिविषै नदी तालाबों के तट पै जहां अति शीत पड़े, बर्फ बरसै, महाठण्डी पवन बाजे, तहां निश्चल तिष्ठे हैं। महाप्रचण्ड शीत पवनकर वृक्ष दाहे मारे हैं। अर सूर्य का तेज मन्द होय गया है। ऐसी ऋतुविषै राम लक्ष्मण महिलनि के भीतर ले चौबारोंविषै तिष्ठते मनवांछित विलास करते, सुन्दर स्त्रीनि के समूह सहित, वीणा, मृदंग, बांसुरी आदि अनेक वादित्रनि के शब्द कानों को अमृतसमान श्रवणकर मनकूं आह्लाद उपजावते, दोनों वीर महाधीर, देवांसमान, अर जिनके स्त्री देवांगना समान, वीणाकर जीती है वीणा की ध्वनि जिन्होंने, महापतिव्रता, तिनकर आदरते संते पुण्य के प्रभावते सुखसूं शीतकाल व्यतीत करते भए। अद्‌भुत भोगों की सम्पदा कर मण्डित वे पुरुषोत्तम प्रजाकूं आनन्दकारी दोनों भाई सुखसूं तिष्ठे हैं।

अथानन्तर गौतम स्वामी कहें हैं - हे श्रेणिक! अब तू हनुमान का वृत्तांत सुन।

हनुमान पवन का पुत्र कर्णकुण्डल नगरविषै पुण्य के प्रभावसूं देवनि के सुख भोगवै, जिसकी हजारां विद्याधर सेवा करें। अर उत्तम त्रिया का धारक स्त्रियोंसहित परिवारसहित अपनी इच्छाकरि पृथ्वी में विहार करै। श्रेष्ठ विमानविषै आरूढ़ परम ऋद्धिकर मंडित महा शोभायमान सुन्दर वनों

में देवनि समान क्रीड़ा करैं। सो बसंत का समय आया। कामी जीवनकूं उन्माद का कारण, अर समस्त वृक्षोंकूं प्रफुल्लित करणहारा, प्रिया अर प्रीतम के प्रेम का बढ़ावनहारा, सुगन्ध चले है पवन जिसमें, ऐसे समय में अंजनी का पुत्र जिनेन्द्र की भक्ति में आरूढ़चित्त, अतिहर्ष कर पूर्ण हजारां स्त्रीनिसहित सुमेरु पर्वत की ओर चल्या। हजारां विद्याधर हैं संग जिसके, श्रेष्ठ विमानविषै चढ़े, परम ऋद्धिकरि संयुक्त मार्गविषै वनविषै क्रीड़ा करते भए।

कैसे हैं वन? शीतल मंद सुगन्ध चले हैं पवन जहां, नाना प्रकार के पुष्प अर फलों करि शोभित वृक्ष हैं, जहां देवांगना रमें है, अर कुलाचलों के विषै सुन्दर सरोवरोंकरि युक्त अनेक मनोहर वन जिनविषै भ्रमर गुंजार करैं हैं, अर कोयल बोल रही हैं, अर नाना प्रकार के पशु पक्षियों के युगल विचरें हैं जहां सर्व जाति के पत्र पुष्प फल शोभै हैं, अर रत्ननि की ज्योतिकरि उद्योतरूप हैं पर्वत जहां, अर नदी निर्मल जल की भरी सुन्दर हैं तट जिनके, अर सरोवर अति रमणीक नाना प्रकार के कमलों के मकरंदकरि रंग रूप होय रहा है सुगन्ध जल जिसका, अर वापिका अति मनोहर जिनके रत्नों के सिवान अर तटों के निकट बड़े बड़े वृक्ष हैं, अर नदी में तरंग उठे हैं, झागों के समूहसहित महाशब्द करती बहै हैं, जिनमें मगरमच्छ आदि जलचर क्रीड़ा करैं, अर दोनों तटविषै लहलहाट करते अनेक वन उपवन महा मनोहर विचित्रगति लिये शोभैं हैं जिनमें क्रीड़ा करिवे के सुन्दर महिल अर नाना प्रकार रत्ननिकरि निर्मापे जिनेश्वर के मन्दिर पापों के हरणहारे अनेक हैं। पवनपुत्र सुन्दर स्त्रियोंकरि सेवित, परम उदयकरि युक्त अनेक गिरियोंविषै अकृत्रिम चैत्यालयों का दर्शनकरि विमानविषै चढ्या स्त्रियोंकूं पृथ्वी की शोभा दिखावता, अति प्रसन्नतासूं स्त्रियोंसूं कहै है – हे प्रिये! सुमेरुविषै अति रमणीक जिनमन्दिर स्वर्णमयी भासे हैं। अर इनके शिखर सूर्य समान दैदीप्यमान महामनोहर भासै हैं। अर गिरि की गुफा तिनके मनोहर द्वार रत्नजड़ित शोभा नाना रंग की ज्योति परस्पर मिल रही है।

वहां अरति उपजे ही नाहीं, सुमेरु की भूमितलविषै अतिरमणीक भद्रशालवन है अर सुमेरु की कटिमेखला विषै विस्तीर्ण नन्दनवन अर सुमेरु के वक्षस्थलविषै सौमनसबन है, जहां कल्पवृक्ष कल्पलताओं से बेढे सोहै हैं, अर नाना प्रकार रत्नों की शिला शोभित हैं। अर सुमेरु के शिखर में पांडुक बन है जहां जिनेश्वर देव का जन्मोत्सव होय है। इन चारों ही वनविषै चार चार चैत्यालय हैं, जहां निरन्तर देव देवियों का आगम है। यक्ष किन्नर गन्धर्वों के संगीतकरि नाद होय रहा है। अप्सरा नृत्य करै हैं। कल्पवृक्षों के पुष्प मनोहर हैं। नाना प्रकार के मंगल द्रव्यकरि पूर्ण यह भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय अनादिनिधन हैं।

हे प्रिये! पांडुक वनविषै परम अद्भुत जिनमन्दिर सोहै हैं, जिनके देखे मन हरा जाय,

महाप्रज्वलित निर्धूम अग्निसमान संध्या के बादरों के रंग समान उगते सूर्य समान स्वर्णमई शोभै है, समस्त उत्तम रत्ननिकरि शोभित सुन्दराकार हजारों मोतियों की माला, तिनकरि मंडित महामनोहर हैं। मालावों के मोती कैसे सोहै हैं मानों जल के बुदबुदा ही है। अर घण्टा, झांझ, मजीरा, मृदंग, चमर तिनकरि शोभित हैं। चौगिरद कोट ऊंचे दरवाजे इत्यादि परमविभूति करि विराजमान हैं। नाना रंग की फहराती हुई ध्वजा स्वर्ण के स्तंभनिकरि दैदीप्यमान। इन अकृत्रिम चैत्यालयों की शोभा कहां लग कहें जिनका सम्पूर्ण वर्णन इन्द्रादिक देव भी न कर सकें। हे कांते! पाण्डुकवन के चैत्यालय मानों सुमेरु के मुकुट ही हैं, अति रमणीक हैं।

या भांति महाराणी पटराणियों से हनुमान बात करते, जिनमन्दिर की प्रशंसा करते मंदिर के समीप आए। विमानसूं उतरि महाहर्षित होय प्रदक्षिणा दई। वहां श्रीभगवान के अकृत्रिम प्रतिबिंब सर्व अतिशय विराजमान महा ऐश्वर्यकरि मंडित, महातेज पुंज दैदीप्यमान शरद के उज्ज्वल बादर तिनमें जैसे चन्द्रमा सोहै तैसे सर्व लक्षणमंडित हनुमान हाथ जोड़ रणवास सहित नमस्कार करता भया। कैसा है हनुमान? जैसे ग्रह तारावों के मध्य चन्द्रमा सोहै तैसे राजा लोक के मध्य सोहै है। जिनेन्द्र के दर्शनकरि उपज्या है अतिहर्ष जिसकूं सो सम्पूर्ण स्त्रीजन अति आनन्दकूं प्राप्त भईं। रोमांच होय आए, नेत्र प्रफुल्लित भए। विद्याधरी परम भक्तिकरि युक्त सर्व उपकरणों सहित परम चेष्टा की धरणहारी, महापवित्र कुलविषै उपजी देवांगनाओं की न्याईं अति अनुराग से देवाधिदेव की विधिपूर्वक पूजा करती भईं। महापवित्र पद्‌मह्रद आदि का जल अर महासुगन्ध चन्दन मुक्ताफलनि के अक्षत, स्वर्णमई कमल तथा पद्‌मराग मणिमई तथा चन्द्रकांति मणिमई तिनकर पूजा करती भईं। अर कल्पवृक्षनि के पुष्प अर अमृतरूप नैवेद्य अर महाज्योतिरूप रत्नों के दीप चढ़ाए, अर मलयागिरि चंदन आदि महासुगन्ध जिनकरि दशोंदिशा सुगन्धमई होय रही हैं, अर परम उज्ज्वल महाशीतल जल, अर अगुरु आदि महापवित्र द्रव्योंकरि उपज्या जो धूप, सो खेवती भई। अर महा पवित्र अमृत फल चढ़ावती भईं। अर रत्नों के चूर्णकरि मांडला मांडती भईं। महा मनोहर अष्ट द्रव्यों से पति सहित पूजा करती भई। हनुमान राणिनि सहित भगवान की पूजा करता कैसे सोहै है जैसा सौधर्म इन्द्र पूजा करता सोहै।

कैसा है हनुमान? जनेऊ पहिरे, सर्व आभूषण पहरे, महीन वस्त्र पहिरे, महापवित्र पापरहित, वानर के चिह्न का है देदीप्यमान रत्नमई मुकुट जिसके, महा प्रमोद का भर्‌या, फूल रहे हैं नेत्रकमल जिसके, सुन्दर है वदन जिसका, पूजाकरि पापनि के नाश करणहारे स्त्रोत तिनकरि सुर असुरों के गुरु जिनेश्वर तिनके प्रतिबिंब की स्तुति करता भया। सो पूजा करता अर स्तुति करता इन्द्र की अप्सरावों ने देख्या सो अति प्रशंसा करती भईं। अर यह प्रवीण बीण लेयकरि

जिनेन्द्रचन्द्र के यश गावता भया। जे शुद्ध चित्त जिनेन्द्र की पूजाविषै अनुरागी हैं सर्व कल्याण तिनके समीप हैं, तिनकूं कुछ ही दुर्लभ नाहीं। तिनका दर्शन मंगलरूप है।

उन जीवों ने अपना जन्म सुफल किया जिन्होंने उत्तम मनुष्य देह पाय श्रावक के व्रतधरि जिनवरविषै दृढ़ भक्ति धारी। अपने कर कल्याणकूं धरै है, जन्म का फल तिनही पाया। हनुमान ने पूजा स्तुति वन्दना करि बीण बजाय अनेक राग गाय अद्‌भुत स्तुति करी। यद्यपि भगवान के दर्शन से बिछुरने का नहीं है मन जिसका तथापि चैत्यालय विषै अधिक न रहहु, मति कोऊ आच्छादना लागै, तातैं जिनराज के चरण उरविषै धरि मन्दिरसूं बाहिर निकस्या। विमानों में चढ़े। हजारों स्त्रियोंकरि संयुक्त सुमेरु की प्रदक्षिणा दी। जैसे सूर्य देय तैसे श्रीशैल कहिए हनुमान सुन्दर है क्रिया जिसकी, सो शैलराज कहिए सुमेरु उसकी प्रदक्षिणा देय, समस्त चैत्यालयोंविषै दर्शन करि भरतक्षेत्र की ओर सन्मुख भया।

सो मार्ग विषै सूर्य अस्त होय गया। अर संध्या भी सूर्य के पीछे विलय गई। कृष्णपक्ष की रात्रि सो तारारूप बंधुओंकर मंडित चन्द्रमा रूप पति बिना न सोहती भई। हनुमान ने तले उतर एक सुरदुन्दुभि नामा पर्वत वहां सेना सहित रात्रि व्यतीत करी। कमल आदि अनेक सुगन्ध पुष्पों से स्पर्श पवन आई, उसकरि सेना के लोक सुखसूं रहे। जिनेश्वर देव की कथा करवो किए। रात्रिकूं आकाशसूं दैदीप्यमान एक तारा टूट्या सो हनुमान ने देखकरि मनविषै विचारी – हाय हाय! इस संसार असार वनविषै देव भी कालवश हैं। ऐसा कोई नाहीं जो कालसूं बचै। विजुरी का चमत्कार अर जल की तरंग जैसे क्षणभंगुर है तैसैं शरीर विनश्वर है। इस संसारविषै इस जीव ने अनन्त भवविषै दुख ही भोगे। यह जीव विषय के सुखकूं सुख मानै है सो सुख नाहीं, दुख ही है। विषम क्षणभंगुर संसारविषै दुःख ही है, सुख नाहीं होय है। मोह का माहात्म्य है जो अनन्तकाल जीव दुख भोगता भ्रमण करै है। अनन्तावसर्पणी काल भ्रमणकरि मनुष्य देह कभी कोई पावै है, सो पायकरि धर्म के साधन वृथा खोवै हैं। यह विनाशीक सुखविषै आसक्त होय महासंकट पावे है। यह जीव रागादिक के वश भया वीतराग भावकूं नाहीं जाने है। यह इन्द्रिय जैन मार्ग के आश्रय बिना न जीती जांय। ये इन्द्री चंचल कुमार्गविषै लगायकरि इस जीवकूं इस भव पर भवविषै दुःखदायी हैं।

जैसे मृग, मीन अर पक्षी लोभ के वशसूं बधिक के जाल में पड़े हैं तैसैं यह कामी क्रोधी लोभी जीव जिनमार्गकूं पाए बिना अज्ञान के वशसूं प्रपंचरूप पारधी के बिछाए विषयरूप जालविषै पड़े हैं। जो जीव आशीविषै सर्प समान यह मन इन्द्री तिनके विषयों में रमैं हैं सो मूढ़ दुःखरूप अग्निविषै जरै है। जैसे कोई एक दिन राज्यकरि वर्ष दिन त्रास भोगवे तैसे यह मूढ़ जीव अल्पदिन

विषयों के सुख भोगि अनन्तकाल पर्यंत निगोद के दुख भोगवै है। जो विषय के सुख का अभिलाषी है सो दुखों का अधिकारी है। नरक निगोद के मूल यह विषय तिनकूं ज्ञानी न चाहैं। मोहरूप ठग का ठगा जो आत्मकल्याण न करैं सो महाकष्टकूं पावै।

जो पूर्व भवविषै धर्म उपार्ज, मनुष्यदेह पाय धर्म का आदर न करै सो जैसे धन ठगाय कोई दुखी होय तैसैं दुखी होय है। अर देवों के भी भोग भोगि यह जीव मरकरि देवसूं एकेन्द्री होय है। इस जीव के पाप शत्रु हैं, अर यह भोग ही पाप के मूल हैं। इनसूं तृप्ति न होय। यह महा भयंकर हैं। अर इनका वियोग निश्चय होगा। यह रहने के नाहीं। जो मैं इस राज्यकूं अर यह जो प्रियजन हैं तिनकूं तजकरि तप न करूं तो अतृप्त भया सुभूमि चक्रवर्ती की नाईं मरकर दुर्गति को जाऊंगा। अर यह मेरे स्त्री शोभायमान, मृगनयनी, सर्व मनोरथ की पूर्णहारी, पतिव्रता, स्त्रियों के गुणनिकर मण्डित, नवयौवन हैं सो अब तक मैं अज्ञानसूं तज न सका। सो मैं अपनी भूल को कहां तक उराहना दूं।

देखो! मैं सागर पर्यंत स्वर्गविषै अनेक देवांगना सहित रम्या। अर देवसूं मनुष्य होय इस क्षेत्रविषै भया। सुन्दर स्त्रियों सहित रम्या, परन्तु तृप्त न भया। जैसे ईंधनसूं अग्नि तृप्त न होय अर नदियोंसूं समुद्र तृप्त न होय तैसे यह प्राणी नाना प्रकार के विषयसुख का तिनकरि तृप्त न होय। मैं नाना प्रकार के जन्म तिनविषै भ्रमणकरि खेदखिन्न भया। रे मन! अब तू शांतताकूं प्राप्त होहु। कहा व्याकुल होय रहा है। क्या तैने भयंकर नरकों के दु:ख न सुने। जहां रौद्रध्यान हिंसक जीव जाय हैं, जिन नरकनिविषै महातीव्र वेदना, असिपत्र बन वतरणी नदी, संकटरूप है सकल भूमि जहां।

रे मन! तू नरकसूं न डरै है। राग द्वेष करि उपजे जे कर्म-कलंक तिनकूं तपकरि नाहिं खिपावे है। तेरे एते दिन यों ही वृथा गए, विषय सुखरूप कूपविषै पड़ा अपने आत्माकूं भवपिंजरसूं निकास। पाया है जिन मार्गविषै बुद्धि का प्रकाश तैने, तू अनादिकाल का संसार भ्रमणसूं खेदखिन्न भया। अब अनादि के बंधे आत्माकूं छुड़ाय। हनुमान ऐसा निश्चयकरि संसार शरीर भोगोंसूं उदास भया। जाना है यथार्थ जिनशासन का रहस्य जिसने। जैसैं सूर्य मेघरूप पटल से रहित महा तेजरूप भासै तैसैं मोह पटलसूं रहित भासता भया। जिस मार्ग होय जिनवर सिद्धपदकूं सिधारे उस मार्गविषै चलिवेकूं उद्यमी भया।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान का वैराग्य चिंतवन वर्णन करने वाला एक सौ बारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।112।।

अथानन्तर रात्रि व्यतीत भई, सोला बानी के स्वर्ण समान सूर्य अपनी दीप्तिकरि जगतविषै उद्योत करता भया, जैसे साधु मोक्षमार्ग का उद्योत करे। नक्षत्रों के गण अस्त भए, अर सूर्य के उदयकरि कमल फूले जैसे जिनराज के उद्योतकरि भव्यजीवरूप कमल फूलै। हनुमान महा वैराग्य

का भर्या, जगत के भोगोंसूं विरक्त मंत्रियों सूं कहता भया – जैसे भरत चक्रवर्ती पूर्व तपोवनकूं गए तैसे हम जावेंगे। तब मंत्री प्रेम के भरे परम उद्वेगकूं प्राप्त होय नाथसूं विनती करते भए। हे देव! हमकूं अनाथ न करो प्रसन्न होवो, हम तिहारे भक्त हैं, हमारा प्रतिपालन करो, तब हनुमान ने कही – तुम यद्यपि निश्चयकर मेरे आज्ञाकारी हो तथापि अनर्थ के कारण हो, हित के कारण नाहीं। जो संसार समुद्रसूं उतरे अर उसे पीछे सागर मैं डारैं ते हितू कैसे? निश्चयथकी उनकूं शत्रु ही कहिए।

जब या जीव ने नरक के निवासविषै महादु:ख भोगे तब माता, पिता, मित्र, भाई, कोई ही सहाई न भया। यह दुर्लभ मनुष्य देह अर जिनशासन का ज्ञान पाय बुद्धिमानोंकूं प्रमाद करना उचित नाहीं। अर जैसे राज्य के भोगसूं मेरे अप्रीति भई तैसे तुमसूं भी भई। यह कर्मजनित ठाठ सर्व विनाशीक हैं। निसंदेह हमारा तिहारा वियोग होयगा। जहां संयोग है तहां वियोग है। सुर नर अर इनके अधिपति इन्द्र नरेन्द्र यह सब ही अपने अपने कर्मों के आधीन हैं। कालरूप दावानल करि कौन कौन भस्म न भए? मैं सागरां पर्यंत अनेक भव देवों के सुख भोगे, परन्तु तृप्त न भया, जैसे सूखे ईंधनकरि अग्नि तृप्त न होय। गति जाति शरीर इनका कारण नाम कर्म है, जाकरि ये जीव गति गतिविषै भ्रमण करै है। सो मोह का बल महाबलवान है, जाके उदयकरि यह शरीर उपज्या है, सो न रहेगा। यह संसार वन महाविषम है, जाविषै ये प्राणी मोहकूं प्राप्त भए भवसंकट भोगै है। उसे उलंघकरि मैं जन्म जरा मृत्यु रहित जो पद तहां गया चाहूं हूं।

यह बात हनुमान मंत्रियोंसूं कही सो रणवास की स्त्रियों ने सुनी, उसकरि खेदखिन्न होय महारुदन करती भईं। जे समझानेविषै समर्थ ते उनकूं शांतचित्त करी। कैसे हैं समझावन हारे? नाना प्रकार के वृत्तांतविषै प्रवीण। अर हनुमान निश्चल है चित्त जाका सो अपने बड़े पुत्रकूं राज्य देय अर सबनिकूं यथायोग्य विभूति देय रत्नों के समूहकरि युक्त देवों के विमान समान जो अपना मंदिर उसे तजकरि निकस्या। स्वर्ण रत्नमई दैदीप्यमान जो पालकी तापर चढ़ि चैत्यवान नामा वन तहां गया। सो नगर के लोक हनुमान की पालिकी देख सजल नेत्र भये। पालिकी पर ध्वजा फरहरैं हैं, चमरोंकरि शोभित है, मोतियों की झालरियोंकरि मनोहर है। हनुमान वनविषै आया सो वन नाना प्रकार के वृक्षोंकरि मंडित। अर जहां सूवा, मैना, मयूर, हंस, कोयल, भ्रमर सुन्दर शब्द करै हैं, अर नाना प्रकार के पुष्पोंकरि सुगन्ध है, वहां स्वामी धर्मरत्न, संयमी, धर्मरूप रत्न की राशि, योगीश्वर, जिनके दर्शनसूं पाप विलाय जावै ऐसे सन्त चारण मुनि अनेक चारण मुनियोंकरि मंडित तिष्ठते थे। आकाशविषै है गमन जिनका। सो दूरसूं उनकूं देखि हनुमान पालकीसूं उतर्या। महा भक्तिकर युक्त नमस्कारकरि हाथ जोड़ि कहता भया – हे नाथ! मैं शारीरिक परद्रव्योंसूं निर्ममत्व भया। यह परमेश्वरी दीक्षा आप मुझे कृपाकर देवहु।

तब मुनि कहते भए – अहो भव्य! तैंने भली विचारी। तू उत्तम जन है, जिनदीक्षा लेहु। यह जगत असार है, शरीर विनश्वर है। शीघ्र आत्मकल्याण करो। अविनश्वर पद लेवे की परमकल्याणकारणी बुद्धि तुम्हारे उपजी है। यह बुद्धि विवेकी जीव के ही उपजै है। ऐसी मुनि की आज्ञा पाय मुनिकूं प्रणामकरि पद्मासन धर तिष्ठा। मुकट कुण्डल हार आदि सर्व आभूषण डारे। जगतसूं मन का राग निवास्या, स्त्रीरूप बंधन तुड़ाय, ममता मोह मिटाय, आपकूं स्नेहरूप पाश से छुड़ाय, विष समान विषय सुख तजकरि, वैराग्यरूप दीप की शिखाकरि रागरूप अंधकार निवारकरि, शरीर अर संसारकूं असार जान, कमलोंकूं जीतैं ऐसे सुकुमार जे कर तिनकरि सिर के केश लौंच करता भया।

समस्त परिग्रहसूं रहित होय मोक्षलक्ष्मीकूं उद्यमी भया, महाव्रत धरे, असंयम परिहरे। हनुमान की लार साड़े सात सौ बड़े राजा विद्याधर शुद्ध चित्त विद्युद्गतिकूं आदि दे हनुमान के परम मित्र अपने पुत्रोंकूं राज्य देय अठाईस मूलगुण धार योगीन्द्र भए। अर हनुमान की रानी अर इन राजावों की राणी प्रथम तो वियोग रूप अग्निकरि तप्तायमान विलाप करती भईं फिर वैराग्यकूं प्राप्त होय बंधुमति नामा आर्यिका के समीप जाय, महा भक्तिकरि संयुक्त नमस्कार कर आर्यिका व्रत धारती भईं। वे महाबुद्धिवंती शीलवंती भवभ्रमण के भयसूं आभूषण डार एक सफेद वस्त्र राखती भईं। शील ही है आभूषण जिनके तिनकूं राज्यविभूति जीर्ण तृण समान भासती भई।

अर हनुमान महाबुद्धिमान महातपोधन महापुरुष अत्यन्त विरक्त, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति धार शैल कहिए पर्वत उससे भी अधिक श्रीशैल कहिए हनुमान राजा पवन के पुत्र चारित्रविषै अचल होते भए। तिनका यश निर्मल इन्द्रादिक देव गावैं, बारम्बार वन्दना करैं, अर बड़े बड़े कीर्ति करैं। निर्मल है आचरण जिनका, ऐसा सर्वज्ञ वीतराग देव का भाषा निर्मल धर्म आचस्या सो भवसागर के पार भया। वे हनुमान महामुनि पुरुषोंविषै सूर्य समान तेजस्वी जिनेन्द्र देव का धर्म आराधि ध्यान अग्निकरि अष्ट कर्म की समस्त प्रकृति ईंधनरूप तिनकूं भस्मकरि तुंगी गिरि के शिखरसूं सिद्ध भए। केवलज्ञान केवलदर्शन आदि अनन्त गुणमई सदा सिद्ध लोकविषै रहैंगे।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै हनुमान का निर्वाण गमन वर्णन करने वाला एक सौ तेरहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।113।।

अथानन्तर राम सिंहासन पर विराजे थे। लक्ष्मण के आठों पुत्रों का अर हनुमान का मुनि होना मनुष्यों के मुखसूं सुनकरि हंसे, अर कहते भए – इन्होंने मनुष्य भव के क्या सुख भोगे? यह छोटी अवस्था में ऐसे भोग तजकरि योग धारण करै हैं सो बड़ा आश्चर्य है? यह हठरूप ग्राहकरि ग्रहे हैं। देखो! ऐसे मनोहर काम भोग तजि विरक्त होय बैठे हैं। या भांति कही। यद्यपि श्रीराम

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है तथापि चारित्रमोह के वश कई एक दिन लोकों की न्याईं जगतविषै रहते भये। संसार के अल्पसुख तिन विषै राम लक्ष्मण न्याय सहित राज्य करते भए।

एक दिन महाज्योति का धारक सौधर्म इन्द्र परम ऋद्धिकरि युक्त महाधीर्य अर गम्भीरताकरि मंडित, नाना अलंकार धरे सामान्य जाति के देव जे गुरुजन तुल्य, अर लोकपाल जाति के देव देशपाल तुल्य, अर त्रायस्त्रिंशत् जाति के देव मंत्री समान तिनकरि मंडित, तथा अन्य सकल देव सहित इन्द्रासनविषै बैठे कैसे सोहै जैसे सुमेरु पर्वत और पर्वतों के मध्य सोहै।

महातेज पुंज अद्भुत रत्नों का सिंहासन, उस पर सुखसूं विराजता ऐसा भासै जैसे सुमेरु के ऊपर जिनराज भासैं। चन्द्रमा अर सूर्य की ज्योतिकूं जीतैं ऐसे रत्नों के आभूषण पहिरे। सुन्दर शरीर मनोहर रूप नेत्रोंकूं आनन्दकारी जैसी जल की तरंग निर्मल तैसी प्रभाकर युक्त हार पहिरे ऐसा सोहै मानों शीतोदा नदी के प्रवाहकरि युक्त निषद्याचल पर्वत ही है। मुकट कंठाभरण कुण्डल केयूर आदि उत्तम आभूषण पहिरे देवोंकरि मंडित जैसा नक्षत्रोंकरि चन्द्रमा सोहै तैसा सोहै है।

अपने मनुष्य लोकविषै चन्द्रमा नक्षत्र ही भासैं तातैं चन्द्रमा नक्षत्रों का दृष्टांत दिया है। चन्द्रमा नक्षत्र ज्योतिषी देव हैं तिनसूं स्वर्गवासी देवों की अति अधिक ज्योति है। अर सब देवोंसूं इन्द्र की ही अधिक है। अपने तेजकरि दशों दिशाविषै उद्योत करता सिंहासनविषै तिष्ठता जैसा जिनेश्वर भासै तैसा भासै। इन्द्र के इन्द्रासन का अर सभा का जो समस्त मनुष्य जिह्वाकरि सैकड़ों वर्षलग वर्णन करैं तो भी न कर सकैं। सभाविषै इन्द्र के निकट लोकपाल सब देवनिविषै मुख्य हैं। सुन्दर हैं चित्त जिनके स्वर्गसूं चयकरि मनुष्य होय मुक्ति जावैं हैं। सोलह स्वर्ग के बारह इन्द्र हैं। एक एक इन्द्र के चार चार लोकपाल एक भवधारी हैं। अर इन्द्रनिविषै सौधर्म सनत्कुमार महेन्द्र, लांतवेन्द्र, शतारेन्द्र, आरणेन्द्र यह षट् एक भवधारी हैं। अर शची इन्द्राणी लौकांतिक देव। पंचम स्वर्ग के तथा सर्वार्थसिद्धि के अहमिंद्र मनुष्य होय मोक्ष जावे हैं। सो सौधर्म इन्द्र अपनी सभाविषै अपने समस्त देवनिकरि युक्त बैठे, लोकपालादिक अपने अपने स्थानक बैठे।

सो इन्द्र शास्त्र का व्याख्यान करते भए। वहां प्रसंग पाय यह कथन किया – अहो देवो! तुम अपने भावरूप पुष्प निरन्तर महा भक्तिकरि अर्हंत देवकूं चढ़ावो। अर्हंतदेव जगत् का नाथ है। समस्त दोषरूप वन के भस्म करिवेकूं दावानल समान है, जिसने संसार का कारण मोहरूप महा असुर अत्यन्त दुर्जन ज्ञानकरि मारा, वह असुर जीवों का बड़ा बैरी निर्विकल्प सुख का नाशक है। अर भगवान् वीतराग भव्य जीवोंकूं संसार समुद्र से तारिवे समर्थ हैं। संसार-समुद्र कषायरूप उग्र तरंगकरि व्याकुल है। काम रूपग्राहकरि चंचलतारूप, मोहरूप मगरकरि मृत्युरूप है ऐसे भवसागरसूं भगवान बिना कोई तारिवे समर्थ नाहीं।

कैसे हैं भगवान? जिनकूं कल्याणकविषै इन्द्रादिक देव सुमेरुगिरि ऊपर क्षीरसागर के जलकरि अभिषेक करावे हैं। अर महा भक्तिकरि एकाग्रचित्त होय परिवार सहित पूजा करै हैं। अर धर्म अर्थ अर काम मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ हैं तिनविषै लगा है चित्त जिनका। जिनेन्द्र देव पृथ्वीरूप स्त्रीकूं तजकरि सिद्धरूप वनिताकूं वरते भए। कैसी है पृथ्वीरूप स्त्री? विंध्याचल अर कैलाश हैं कुच जिसके, अर समुद्र की तरंग हैं कटिमेखला जिसके। ये जीव अनाथ महा मोहरूप अन्धकार कर आच्छादित तिनकूं वे प्रभु स्वर्गलोक से मनुष्यलोकविषै जन्म धरि भवसागरसूं पार करते भए। अपने अद्‌भुतानन्तवीर्य कर आठों कर्मरूप वैरी क्षणमात्रविषै खिपाए। जैसे सिंह मदोन्मत्त हस्तियोंकूं नसावै।

भगवान सर्वज्ञदेवकूं अनेक नामकरि भव्य जीव गावै हैं जिनेन्द्र भगवान अर्हंत स्वयंभू शम्भु स्वयंप्रभु सुगत शिवस्थान महादेव कालंजर हिरण्यगर्भ देवाधिदेव ईश्वर महेश्वर ब्रह्मा विष्णु बुद्ध वीतराग विमल विपुल प्रबल धर्मचक्री प्रभु विभु परमेश्वर परमज्योति परमात्मा तीर्थकर कृतकृत्य कृपालु संसारसूदन सुर ज्ञानचक्षु भवांतक इत्यादि अपार नाम योगीश्वर गावैं हैं, अर इन्द्र धरणींद्र चक्रवर्ती भक्तिकरि स्तुति करैं हैं जो गोप्य हैं अर प्रकट हैं जिनके नाम सकल अर्थ संयुक्त हैं जिसके प्रसादकरि यह जीव कर्म से छूटकरि परम धामकूं प्राप्त होय है जैसा जीव का स्वभाव है तैंसा वहां रहै हैं। जो स्मरण करै उसके पाप विलाय जांय। वह भगवान पुराण पुरुषोत्तम परम उत्कृष्ट आनन्द की उत्पत्ति का कारण महा कल्याण का मूल देवनि के देव उसके तुम भक्त होवो। अपना कल्याण चाहो हो तो अपने हृदय कमलविषै जिनराजकूं पधरावो।

यह जीव अनादिनिधन है, कर्मों का प्रेर्‍या भववनविषै भटके है। सर्व जन्मविषै मनुष्य भव दुर्लभ है। सो मनुष्यजन्म पायकर जे भूले हैं तिनकूं धिक्कार है। चतुर्गतिरूप है भ्रमण जिसविषै ऐसा संसाररूप समुद्र उसमें बहुरि कब बोध पावोगे। जे अरहंत का ध्यान नाहीं करै हैं, अहो! धिक्कार उनकूं जे मनुष्यदेह पायकर जिनेन्द्रकूं न जपैं हैं। जिनेन्द्र कर्मरूप वैरी का नाश करणहारा उसे भूल पापी नाना योनिविषै भ्रमण करैं हैं। कभी मिथ्या तपकरि क्षुद्र देव होय हैं। बहुरि मरकरि स्थावर योनिविषै जाय महा कष्ट भोगै हैं। यह जीव कुमार्ग के आश्रयकरि महा मोह के वश भए इन्द्रों का इन्द्र जो जिनेन्द्र उसे नाहीं ध्यावैं हैं। देखो मनुष्य होयकरि मूर्ख विषयरूप मांस के लोभी मोहिनी कर्म के योगकरि अहंकार ममकारकूं प्राप्त होय हैं, जिनदीक्षा नाहीं धरै हैं।

मंदभागियों के जिनदीक्षा दुर्लभ है। कभी कुतपकरि मिथ्यादृष्टि स्वर्गसूं आन उपजे हैं। सो हीन देव होय पश्चात्ताप करैं हैं कि हम मध्यलोक रत्न द्वीपविषै मनुष्य भए थे, सो अरहंत का मार्ग न जान्या, अपना कल्याण न किया, मिथ्या तपकरि कुदेव भए। हाय हाय! धिक्कार उन पापियोंकूं

जो कुशास्त्र की प्ररूपणाकरि मिथ्या उपदेश देय महा मान के भरे जीवोंकूं कुमार्गविषै डारै हैं। मूढ़ोंकूं जिनधर्म दुर्लभ है तातैं भव भवविषै दुखी होय हैं। अर नारकी तिर्यंच तो दुखी ही हैं, अर हीन देव भी दुखी ही हैं। अर बड़ी ऋद्धि के धारी देव भी स्वर्गसूं चये हैं सो मरण का बड़ा दुख है, अर इष्ट वियोग का बड़ा दुख है। बड़े देवों की भी यह दशा तो और क्षुद्रों की क्या बात? जो मनुष्य देहविषै ज्ञान पाय आत्मकल्याण करैं हैं सो धन्य हैं। इन्द्र या भांति कहकर बहुरि कहता भया – ऐसा दिन कब होय जो मेरी स्वर्गलोकविषै स्थिति पूर्ण होय अर मैं मनुष्यदेह पाय, विषयरूप वैरियोंकूं जीत, कर्मों का नाशकरि तप के प्रभावसूं मुक्ति पाऊं।

तब एक देव कहता भया यहां स्वर्गविषै तो अपनी यही बुद्धि होय है परन्तु मनुष्य देह पाय भूल जाय हैं। जो कदाचित् मेरे कहे की प्रतीति न करो तो पंचम स्वर्ग का ब्रह्मेंद्रनामा इन्द्र अब रामचन्द्र भया है। सो यहां तो यों ही कहते थे अर अब वैराग्य का विचार ही नाहीं।

तब शची का पति सौधर्म इन्द्र कहता भया सब बंधन में स्नेह का बड़ा बंधन है। जो हाथ पग कंठ आदि अंग अंग बंधा होय सो तो छूटै, परन्तु स्नेहरूप बंधनकरि बंध्या कैसे छूटे? स्नेह का बंध्या एक अंगुल न जाय सकै। रामचन्द्र के लक्ष्मणसूं अति अनुराग है। लक्ष्मण के देखे बिना तृप्ति नाहीं। अपने जीवसूं भी उसे अधिक जानै है। एक निमिषमात्र भी लक्ष्मणकूं न देखै तो राम का मन विकल होय जाय। सो लक्ष्मणकूं तजकरि कैसैं वैराग्यकूं प्राप्त होय? कर्मों की ऐसी ही चेष्टा है जो बुद्धिमान भी मूर्ख होय जाय है। देखो सुनै हैं अपने सर्व भव जिसने ऐसा विवेकी राम भी आत्महित न करै।

अहो देव हो! जीवों के स्नेह का बड़ा बंधन है, या समान और नाहीं तातैं सुबुद्धियोंकूं स्नेह तजि संसार सागर तरिवे का यत्न करना चाहिए। या भांति इन्द्र के मुख का उपदेश तत्त्वज्ञानरूप अर जिनवर के गुणों के अनुरागसूं अत्यन्त पवित्र उसे सुनकर देव चित्त की विशुद्धताकूं पाय जन्म जरा मरण के भयसूं कम्पायमान भए, मनुष्य होय मुक्ति पायवे की अभिलाषा करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत, ताकी ग्रंथ भाषावचनिकाविषै इन्द्र का देवनिकूं उपदेश वर्णन करने वाला एकसौ चौदहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।114।।

अथानन्तर इन्द्र सभा से उठे। तब सुर कहिए कल्पवासी देव अर असुर कहिए भवनवासी विंतर ज्योतिषी देव इन्द्रकूं नमस्कारकरि उत्तम भावधरि अपने अपने स्थानक गए। पहिले दूजे स्वर्ग लग भवनवासी विंतर ज्योतिषीदेव कल्पवासी देवोंकरि ले गए जाय हैं। सो सभाधर्म के दो स्वर्गवासी देव रत्नचूल अर मृगचूल बलभद्र नारायण के स्नेह परखिवेकूं उद्यमी भए। मनविषै यह धारणा करी – ते दोनों भाई परस्पर प्रेम के भरे कहिए है, देखैं उन दोनों की प्रीति? राम के

लक्ष्मणसूं एता स्नेह है जाके देखे बिना न रहैं। सो राम का मरण सुनि लक्ष्मण की क्या चेष्टा होय? लक्ष्मण शोककरि विह्वल भया क्या चेष्टा करै? सो क्षण एक देखकरि आवेंगे। शोककरि लक्ष्मण का कैसा मुख हो जाए, कौन सूं कोप करै, क्या कहे, ऐसी धारणाकरि दोनों दुराचारी देव अयोध्या आए। सो राम के महिलविषै विक्रियाकरि समस्त अन्तःपुर की स्त्रीनि का रुदन शब्द कराया। अर ऐसी विक्रिया करी – द्वारपाल उमराव मंत्री पुरोहित आदि नीचा मुखकरि लक्ष्मण पै आए।

अर राम का मरण कहते भए, कि हे नाथ! राम परलोक पधारे। ऐसे वचन सुनकरि लक्ष्मण ने मंद पवनकरि चपल जो नील कमल ता समान सुन्दर हैं नेत्र जाके सो हाय! यह शब्द हू आधा-सा कह तत्काल ही प्राण तजे, सिंहासन ऊपर बैठ्या हुता सो वचनरूप वज्रपात का मार्‌या जीवरहित होय गया। आंख की पलक ज्यों थी त्यों ही रह गई। जीव जाता रह्या। शरीर अचेतन रह गया। लक्ष्मणकूं भ्राता की मिथ्या मृत्यु के वचन रूप अग्निकरि जरा देखि दोनों देव व्याकुल भए। लक्ष्मण के जियायवेकूं असमर्थ। तब विचारी याकी मृत्यु इस ही विधि कही हुती, मनविषै अति पछताए। विषाद अर आश्चर्य के भरे अपने स्थानक गए। शोकरूप अग्निकरि तप्तायमान है चित्त जिनका। लक्ष्मण की वह मनोहर मूर्ति मृतक दोई देव देखि न सके। तहां खड़े न रहे, निंद्य है उद्यम जिनका।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं – हे राजन्! बिना विचारे जे पापी कार्य करैं तिनकूं पश्चात्ताप ही होय। देवता गए। अर लक्ष्मण की स्त्री पतिकूं अचेतनरूप देखि प्रसन्न करनेकूं उद्यमी भई। कहै हैं, हे नाथ! किस अविवेकनी सौभाग्य के गर्वकरि गर्वित ने आपका मान न किया, सो उचित न करी। हे देव! आप प्रसन्न होवहु। तिहारी अप्रसन्नता हमकूं दुख का कारण है। ऐसा कहकरि वे परम प्रेम की भरी लक्ष्मण के अगसूं आलिंगनकरि पायन पड़ीं। वे राणी चतुराई के वचन कहिवेविषै तत्पर कोई एक तो बीण लेय बजावती भई, कोई मृदंग बजावती भई, पति के गुण अत्यन्त मधुर स्वरसूं गावती भई। पति के प्रसन्न करिवेविषै उद्यमी है चित्त जिनका। कोई एक पति का मुख देखै है अर पति के सुनिवे की है अभिलाषा जिनके। कोई एक निर्मलस्नेह की धरणहारी पति के तनुसूं लिपटकरि कुण्डलकरि मंडित महासुन्दर कांति के कपोलोंकूं स्पर्शती भई। अर कोईएक मधुरभाषिणी पति के चरणकमल अपने सिर पर मेलती भई। अर कोई मृगनयनी उन्माद की भरी विभ्रमकरि कटाक्षरूप जे कमल पुष्प तिनका सेहरा रचती भई, जम्भाई लेती पति का वदन निरखि अनेक चेष्टा करती भई।

या भांति ये उत्तम स्त्रियें पति के प्रसन्न करिवेकूं अनेक यत्न करैं हैं, परन्तु उनके शरीरविषै निरर्थक भए। वे समस्त राणी लक्ष्मण की स्त्री ऐसे कम्पायमान हैं जैसै कमलों का वन पवनकरि

कम्पायमान होय। नाथ की यह दशा होते संते स्त्रियों का मन अतिव्याकुल भया। संशयकूं प्राप्त भईं कि क्षणमात्र में यह क्या भया? चितवन में न आवै अर कथन में न आवे ऐसा खेद का कारण शोक, उसे मन में धरकरि वे मुग्धा, मोह की मारीं पसर गईं। इन्द्र की इन्द्राणी समान है चेष्टा जिनकी, ऐसी वे राणी तापकरि तप्तायमान सूख गईं। न जानिए तिनकी सुन्दरता कहां जाती रही? यह वृत्तांत भीतर के लोकों के मुखसूं सुनि श्रीरामचन्द्र मंत्रियोंकरि मंडित महासंभ्रम के भरे भाई पै आए। भीतर राजलोक में गए। लक्ष्मण का मुख प्रभात के चन्द्रमा समान मंदकांति देख्या। जैसा तत्काल का वृक्ष मूलसूं उखड़ पड़ा होय तैसा भाई को देख्या। मन में चितवते भये, बिना कारण भाई आज मोसूं रूस्या है। यह सदा आनन्द रूप आज क्यों विषादरूप होय रहा है? स्नेह के भरे शीघ्र ही भाई के निकट जाय ताकूं उठाय उरसूं लगाय मस्तक चूमते भए। दाह का मास्या जो वृक्ष उस समान हरिकूं निरखि हलधर अंग से लिपट गया। यद्यपि जीतव्यता के चिह्न रहित लक्ष्मणकूं देख्या तथापि स्नेह के भरे राम उसे मूवा न जानते भए।

वक्र होय गई है ग्रीवा जिसकी, शीतल होय गया है अंग जिसका, जगत की आगल ऐसी भुजा सो शिथिल होय गई, सांसोस्वास नाहीं, नेत्रों की पलक लगे न विघटै। लक्ष्मण की यह अवस्था देखि राम खेदखिन्न होयकरि पसेवसूं भर गए। यह दीनों के नाथ राम दीन होय गए। बारम्बार मूर्छा खाय पड़े। आसुवोंकरि भर गए हैं नेत्र जिनके, भाई के अंग निरखे। इसके एक नख की भी रेखा न आई कि ऐसा यह महाबली कौन कारणकरि ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया? यह विचार करते संते भया है कम्पायमान शरीर जिनका, यद्यपि आप सर्व विद्या के निधान, तथापि भाई के मोहकरि विद्या बिसर गई। मूर्छा का यत्न जानै ऐसे वैद्य बुलाए। मंत्र ओषधिविषैं प्रवीण, कला के पारगामी ऐसे वैद्य आए सो जीवना होय तो कछु यत्न करें। वे माथा धुन नीचे होय रहे।

तब राम निराश होय मूर्छा खाय पड़े। जैसे वृक्ष की जड़ उखड़ जाय अर वृक्ष गिर पड़े तैसे आप पड़े। मोतियों के हार चंदनकरि मिश्रित जल ताड़ के वीजनावों की पवनकरि रामकूं सचेत किया। तब महाविह्वल होय विलाप करते भए, शोक अर विषादकरि महापीडित राम आंसुवों के प्रवाहकरि अपना मुख आच्छादित करते भए। आंसुवोंकरि आच्छादित राम का मुख ऐसा भासै जैसा जलधाराकरि चन्द्रमा भासै। अत्यन्त विह्वल रामकूं देखि सर्वराजलोकरूप समुद्रसूं रुदनरूप ध्वनि होती भई। दुखरूप सागरविषै मग्न सकल स्त्रीजन अत्यर्थपणे रुदन करती भईं। तिनके शब्दकरि दशोंदिशा पूर्ण भईं। कैसैं विलाप करैं हैं? हास नाथ! पृथ्वीकूं आनन्द के कारण सर्व सुन्दर हमकूं वचनरूप दान देवहु। तुमने बिना अर्थ क्यों मौन पकड़ी? हमारा अपराध क्या? बिना अपराध हमकूं क्यों तजी हो? तुम तो ऐसे दयालु हो जो अनेक चूक पड़े तो क्षमा करो।

अथानन्तर इस प्रसंगविषै लव अंकुश परमविषादकूं प्राप्त होय विचारते भए कि धिक्कार इस संसार असारसंसारकूं। अर इस शरीर समान और क्षणभंगुर कौन? जो एक निमिष मात्र में मरणकूं प्राप्त होय। जो वसुदेव विद्याधरोंकरि न जीत्या जाय सो भी काल के जाल में आय पड्या। इसलिए यह विनश्वर शरीर, यह विनश्वर राज्य सम्पदा उसकरि हमारे क्या सिद्धि? यह विचार सीता के पुत्र फिर गर्भ में आयवे का है भय जिनकूं, पिता के चरणारविंदकूं नमस्कारकरि महेन्द्रोदयनामा उद्यान विषै जाय अमृतेश्वर मुनि की शरण लेय दोनों भाई महाभाग्य मुनि भए। जब इन दोनों भाइयों ने दीक्षा धरी तब लोक अतिव्याकुल भए कि हमारा रक्षक कौन? रामकूं भाई के मरण का बड़ा दुःख सो शोकरूप भंवर में पड़े । जिनकूं पुत्र निकसने की कुछ सुधि नाहीं। रामकूं राज्यसूं पुत्रोंसूं प्रियाओंसूं अपने प्राणसूं लक्ष्मण अतिप्यारा। यह कर्मों की विचित्रता जिसकरि ऐसे जीवों की ऐसी अशुभ अवस्था होय। ऐसा संसार का चरित्र देखि ज्ञानी जीव वैराग्यकूं प्राप्त होय हैं। जे उत्तम जन हैं तिनके कछु इक निमित्त मात्र वाह्य कारण देखि अन्तरंग के विकारभाव दूर होय ज्ञानरूप सूर्य का उदय होय है। पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षयोपशम होय तब वैराग्य उपजै है।

इति श्री रविषेणाचार्य महापद्मपुराण संस्कृतग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण का मरण अर लवणांकुश वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ पन्द्रहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।115।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे भव्योत्तम! लक्ष्मण के काल प्राप्त भए समस्त लोक व्याकुल भए। अर युगप्रधान जे राम सो अति व्याकुल होय सब बातोंसूं रहित भए। कछु सुध नाहीं। लक्ष्मण का शरीर स्वभाव ही करि महासुरूप कोमल सुगन्ध मृतक भया तो जैसे का तैसा। सो श्रीराम लक्ष्मणकूं एक क्षण न तजें। कबहूं उर से लगाय लेंय, कभी पपोलें, कभी चूमें, कबहूं इसे लेकर आप बैठ जावैं, कभी लेकर उठ चलें, एकक्षण काहू का विश्वास न करैं, एकक्षण न तजै। जैसे बालक के हाथ अमृत आवै अर वह गाढ़ा गाढ़ा गहै तैसे राम महाप्रिय जो लक्ष्मण उसकूं गाढ़ा गाढ़ा गहैं। अर दीनों की नाईं विलाप करै। हाय भाई! यह तोहि कहा योग्य जो मुझे तजकरि तैंने अकेले भाजिवे की बुद्धि करी। मैं तेरा विरह एकक्षण सहारिवैं समर्थ नाहीं। यह बात तू कहा न जानै है? तू तो सब बातोंविषै प्रवीण है। अब मोहि दुख के सागरविषै डारकरि ऐसी चेष्टा करै है। हाय भ्रात! यह क्या क्रूर उद्यम किया जो मेरे बिना जाने, मेरे बिना पूछे कूच का नगारा बजाय दिया। हे वत्स! हे बालक! एक बार मुझे वचनरूप अमृत प्याय। तू जो अति विनयवान हुता, बिना अपराध मोसूं क्यों कोप किया?

हे मनोहर! अब तक कभी मोसूं ऐसा मान न किया, अब कछु और ही होय गया। कह मैं क्या किया, जो तू रूसा। तू सदा ऐसा विनय करता मुझे दूरसूं देखि उठ खड़ा होय, सन्मुख

आवता, मोहि सिंहासन ऊपर बैठावता, आप भूमि में बैठता। अब कहा दशा भई? मैं अपना सिर तेरे पायन में दूं तो भी नहीं बोलै है। तेरे चरणकमल चन्द्रकांत मणिसूं अधिक ज्योतिकूं धरे जे नखोंकरि शोभित देव विद्याधर सेवें हैं।

हे देव! अब शीघ्र ही उठो। मेरे पुत्र वनकूं गये, सो दूर न गये हैं, तिनकूं हम तुरंत ही उलटा लावें। अर तुम बिना यह तिहारी राणी आर्त्तध्यान की भरी कुरची की नाईं कलकलाट करें हैं, तुम्हारे गुणरूप पाशसूं बंधी पृथ्वी में लोटी फिरै हैं। तिनके हार बिखर गये हैं, अर शीसफूल चूड़ामणि कटिमेखला कर्णाभरण बिखरे फिरें हैं। यह महा विलापकरि रुदन करै हैं, अति आकुल हैं। इनकूं रुदनसूं क्यों न निवारो? अब मैं तुम बिना कहा करूं कहां जाऊं? ऐसा स्थानक नाहीं जहां मोहि विश्राम उपजे। अर यह तिहारा चक्र तुमसूं अनुरक्त इसे तजना तुमकूं कहा उचित? अर तिहारे वियोग में मोहि अकेला जानि यह शोकरूप शत्रु दबावै है, अब मैं हीनपुण्य कहा करूं? मोहि अग्नि ऐसे न दहै अर ऐसा विष कंठकूं न सोखैं जैसा तिहारा विरह सोखै है।

अहो लक्ष्मीधर! क्रोध तजि, घनी वेर भई। अर तुम ऐसे धर्मात्मा त्रिकालसामायिक के करणहारे, जिनराज की पूजा में निपुण, सो सामायिक का समय टल पूजा का समय टल्या। अब मुनिनि के आहार देयने की बेला है सो उठो। तुम सदा साधुनि के सेवक ऐसा प्रमाद क्यों करो हो? अब यह सूर्य भी पश्चिम दिशाकूं आया। कमल सरोवर में मुद्रित होय गये तैसैं तिहारे दर्शन बिना लोकों के मन मुद्रित होय गये। या प्रकार विलाप करते करते व्यतीत भया, निशा भई। तब राम सुन्दर सेज बिछाय भाईकूं भुजावों में लेय सूते, किसी का विश्वास नाहीं। राम ने सब उद्यम तजि एक लक्ष्मण में जीव, रात्रिकूं कानोविषै कहै हैं - हे देव! अब तो मैं अकेला हूं, तिहारे जीव की बात मोहि कहो। तुम कौन कारण ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भये हो, तिहारा वदन चन्द्रमाहूतैं अतिमनोहर अब कांतिरहित क्यों भासै है? अर तिहारे नेत्र मंद पवनकरि चंचल जो नील कमल उस समान अब और रूप क्यों भासैं हैं? अहो तुमकूं कहा चाहिए सो ल्याऊं।

हे लक्ष्मण! ऐसी चेष्टा करनी तुमकूं सोहै नाहीं, जो मनविषै होय सो मुखकरि आज्ञा करो। अथवा सीता तुम कूं याद आई होय वह पतिव्रता अपने दुखविषै सहाय थी सो तो अब परलोक गई तुमकूं खेद करना नाहीं। हे धीर! विषाद तजो। विद्याधर अपने शत्रु है सो छिद्र देख आए। अब अयोध्या लुटेगी तातैं यत्न करना होय सो करो। अर हे मनोहर! तुम काहूसूं क्रोध ही करते तब भी ऐसे अप्रसन्न देखे नाहीं, अब ऐसे अप्रसन्न क्यों भासो हो। हे वत्स! अब ये चेष्टा तजो, प्रसन्न होवो। मैं तिहारे पायन परूं हूं, नमस्कार करूं हूं। तुम तो महा विनयवंत हो। सकल पृथ्वीविषै यह

बात प्रसिद्ध है कि लक्ष्मण राम का आज्ञाकारी है, सदा सन्मुख है, कभी परांगमुख नाहीं। तुम अतुल प्रकाश जगत के दीपक हो, मत कभी ऐसा होव जो कालरूप वायुकरि बुझ जावो।

हे राजनि के राजन्! तुमने या लोककूं अति आनन्दरूप किया। तिहारे राज्य में अचैन किसी ने न पाया। या भरतक्षेत्र के तुम नाथ हो। अब लोकनिकूं अनाथकरि गमन करना उचित नाहीं। तुमने चक्रकरि शत्रुनि के सकल चक्र जीते अब कालचक्र का पराभव कैसे सहो हो? तिहारा यह सुन्दर शरीर राज्यलक्ष्मीकरि जैसा सोहता था, वैसा ही मूर्छित भया सोहै है। हे राजेन्द्र! अब रात्रि भी पूर्ण भई, संध्या फूली, सूर्य उदय होय गया। अब तुम निद्रा तजो। तुम जैसे ज्ञाता श्रीमुनिसुव्रतनाथ के भक्त प्रभात का समय क्यों चूको हो। जो भगवान वीतराग देव मोहरूप रात्रिकूं हर लोकालोक का प्रकट करणहारा केवलज्ञान रूप प्रताप करते भए, वे त्रैलोक्यरूप के सूर्य भव्य जीवरूप कमलोंकूं प्रकट करणहारे तिनका शरण क्यों न सेवो? अर यद्यपि प्रभात समय भया परन्तु मुझे अंधकार ही भासै है। क्योंकि मैं तिहारा मुख प्रसन्न नाहीं देखूं।

तातैं हे विचक्षण! अब निद्रा तजो, जिनपूजाकरि सभाविषै तिष्ठो, सब सामंत तिहारे दर्शनकूं खड़े हैं। बड़ा आश्चर्य है! सरोवरविषै कमल फूले, तिहारा वदन कमल मैं फूला नाहीं देखूं हूं। ऐसी विपरीत चेष्टा तुमने अब तक कभी भी नहीं करी। उठो, राज्यकार्यविषै चित्त लगावो। हे भ्रात! तिहारी दीर्घ निद्रासूं जिनमन्दिरों की सेवाविषै कमी पड़े हैं, सम्पूर्ण नगरविषै मंगल शब्द मिट गए, गीत नृत्यवादित्रादि बन्द हो गये हैं। औरों की कहा बात? जे महाविरक्त मुनिराज हैं तिनकूं भी तिहारी यह दशा सुनि उद्वेग उपजै है। तुम जिनधर्म के धारी हो, सब ही साधर्मीजन तिहारी शुभदशा चाहैं हैं। वीणा, बांसुरी, मृदंगादिक के शब्दरहित यह नगरी तिहारे वियोगकरि व्याकुल भई नहीं सोहै है। कोई अगिले भव में महाअशुभ कर्म उपार्जे तिनके उदयकरि तुम सारिखे भाई की अप्रसन्नतासूं महाकष्टकूं प्राप्त भया हूं। हे मनुष्यों के सूर्य! जैसैं युद्धविषै शक्ति के चावकरि अचेत होय गए थे अर आनन्दसूं उठे, मेरा दुख दूर किया, तैसैं ही उठकरि मेरा खेद निवारो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रामदेव का विलाप वर्णन करने वाला एक सौ सोलहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।116।।

अथानन्तर यह वृत्तांत सुन विभीषण अपने पुत्रनिसहित अर विराधित सकल परिवार सहित अर सुग्रीव आदि विद्याधरनि के अधिपति अपनी स्त्रियों सहित शीघ्र अयोध्यापुरी आए। आंसुनिकरि भरे हैं नेत्र जिनके, हाथ जोड़ि सीस निवाय राम के समीप आए। महाशोकरूप हैं चित्त जिनके, अति विषाद के भरे रामकूं प्रणामकरि भूमिविषै बैठे, क्षण एक तिष्ठकरि मंद मंद बाणीकर

विनती करते भए – हे देव! यद्यपि यह शोक दुर्निवार है तथापि आप जिनवाणी के ज्ञाता हो, सकल संसार का स्वरूप जानो हो, तातैं आप शोक तजिवे योग्य हो। ऐसा कहि सबही चुप होय रहे।

बहुरि विभीषण सब बातविषै महाविचक्षण सो कहता भया – हे महाराज! यह अनादिकाल की रीति है कि जो जन्मा सो मूवा। सब संसारविषै यही रीति है, इन्हींकूं नाहीं भई। जन्म का साथी मरण है। मृत्यु अवश्य है, काहूसूं न टरी अर न काहूसूं टरै। या संसार पिंजरेविषै पड़े यह जीवरूप पक्षी सब ही दुखी हैं, काल के वश हैं। मृत्यु का उपाय नाहीं अर सबके उपाय हैं। यह देह नि:संदेह विनाशीक है। तातैं शोक करना वृथा है। जे प्रवीण पुरुष हैं वे आत्मकल्याण का उपाय करै हैं। रुदन किएसूं मरा न जीवै अर न वचनालाप करै। तातैं हे नाथ! शोक न करो। यह मनुष्यनि के शरीर तो स्त्री-पुरुषनि के संयोगसूं उपजे हैं, सो पानी के बुदबुदावत् विलाय जांय। इसका आश्चर्य कहा? अहमिंद्र इन्द्र लोकपाल आदि देव आयु के क्षय भए स्वर्गसूं चये हैं। जिनकी सागरों की आयु अर किसी के मारे न मरें वे भी काल पाय मरें, मनुष्यनि की कहा बात? यह तो गर्भ के खेदकरि पीड़ित अर रोगनिकरि पूर्ण, डाभ की अणी के ऊपर जो ओस की बूंद आय पड़े, उस समान पड़नेकूं सन्मुख हैं, महा मलिन हाडों के पिंजरे ऐसे शरीर के रहिवे की कहा आशा? आप यह प्राणी अपने सुजनों का सोच करै सो आप क्या अजर अमर है? आप ही काल की दाढ़ में बैठे हैं उसका सोच क्यों न करें? जो इनही की मृत्यु आई होय, अर और अमर हैं तो रुदन करना।

जब सबकी यही दशा है तो रुदन काहे का? जेते देहधारी हैं तेते सब काल के आधीन हैं। सिद्ध भगवान के देह नाहीं तातैं मरण नाहीं। यह देह जिस दिन उपज्या उसही दिनसूं काल इसके लेयवे के उद्यम में है। यह सब संसारी जीवों की रीति है। तातै संतोष अंगीकार करो। इष्ट के वियोगसूं शोक करै सो वृथा है। शोककरि मरै तो भी वह वस्तु पीछी न आवै। तातैं शोक क्यों करिये। देखो काल तो वज्रदण्ड लिए सिर पर खड़ा है, अर संसारी जीव निर्भय भये तिष्ठे हैं। जैसे सिंह को शिर पर खडया है अर हिरण हरा तृण चरै है। त्रैलोक्यनाथ परमेष्ठी, अर सिद्ध परमेश्वर तिन सिवाय कोई तीन लोकविषै मृत्युसूं बच्या सुण्या नाहीं। वे ही अमर है, अर सब जन्म मरण करै हैं। यह संसार विंध्याचल के वन समान कालरूप दावानल बलै है। सो तुम क्या न देखो हो?

यह जीव संसार वन में भ्रमणकरि अति कष्टसूं मनुष्य देह पावै हैं सो वृथा खोवै है, काम भोग के अभिलाषी होय माते हाथी की न्याईं बंधनविषै पड़े हैं, नरक निगोद के दुख भोगवै हैं। कभीयक व्यवहार धर्मकरि स्वर्गविषै देव भी होय है, आयु के अन्त में वहांसूं पड़े हैं। जैसे नदी के ढाहे का वृक्ष कभी उखड़े ही तैसैं चारों गति के शरीर मृत्युरूप नदी के ढाहे के वृक्ष हैं। इनके उखड़वि का

क्या आश्चर्य है? इन्द्र, धरणेंद्र, चक्रवर्ती आदि अनन्त नाशकूं प्राप्त भए। जैसे मेघकरि दावानल बुझै तैसे शांतिरूप मेघकरि कालरूप दावानल बुझै, और उपाय नाहीं। पातालविषै भूतलविषै अर स्वर्गविषै ऐसा कोई स्थान नाहीं जहां कालसूं बचैं।

अर छठे काल के अन्त इस भरतक्षेत्र में प्रलय होयगी, पहाड़ विलय हो जावेंगे तो मनुष्यनिकी कहा बात? जे भगवान तीर्थकर देव, वज्रवृषभनाराचसहनन के धारक, जिनके समचतुरस्रसंस्थानक, सुर असुर नरोंकरि पूज्य, जो किसी कर जीते न जाय, तिनका भी शरीर अनित्य, वे भी देह तजि सिद्धलोकविषै निज भावरूप रहैं तो औरों की देह कैसैं नित्य होय? सुर नर, नारक तिर्यंचों का शरीर केले के गर्भ समान असार है। जीव तो देह का यत्न करै है, अर काल प्राण हरै है। जैसे बिल के भीतरसूं गरुड़ सर्पकूं ले जाय तैसै देह के भीतरसूं काल ले जाय है। यह प्राणी अनेक मूवोंकूं रोवै है – हाय भाई! हाय पुत्र! हाय मित्र! या भांति शोक करै है। अर कालरूप सर्प सबोंकूं निगलै हैं जैसे सर्प मींड़ककूं निगलै। यह मूढ़ बुद्धि झूठे विकल्प करें हैं – यह मैं किया, यह मैं करूं हूं, यह करूंगा। सो ऐसे विकल्पकरि काल के मुखविषै जाय है, जैसैं टूटा जहाज समुद्र के तले जाय। परलोककूं गया जो सज्जन उसके लार कोई जाय सकै तो इष्ट का वियोग कभी न होय।

जो शरीरादिक पर वस्तुसूं स्नेह करें हैं सो क्लेशरूप अग्निविषै प्रवेश करें हैं। अर इन जीवों के इस संसारविषै एते स्वजनों के समूह भए जिसकी संख्या नाहीं, जे समुद्र की रेणुका के कण तिनसूं भी अपार हैं। अर निश्चयकरि देखिये तो या जीव के न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। शत्रु तो रागादिक हैं, अर मित्र ज्ञानादिक हैं। जिनकूं अनेक प्रकारकरि लडाइये, अर निज जानिए सो भी वैरकूं प्राप्त भया महारोषकरि हणे, जिसके स्तनों का दुग्ध पिया, जिसकरि शरीर वृद्ध भया, ऐसी माताकूं भी हनैं है। धिक्कार है इस संसारी की चेष्टाकूं जो पहिले स्वामी था, अर बार बार नमस्कार करावता सो भी दास होय जाय है, तब पायों की लातोंसूं मारिये है।

हे प्रभो! मोह की शक्ति देखो, इसके वश भया यह जीव आपकूं नहीं जानै है, परकूं आप मानै है। जैसैं कोई हाथकरि कारे नागकूं गहै तैसैं कनक कामिनीकूं गहै हैं। इस लोकाकाशविषै ऐसा तिलमात्र क्षेत्र नाहीं जहां जीव ने जन्म मरण न किए। अर नरकविषै इसकूं प्रज्वलित ताम्बा प्याया। अर एती बार यह नरककूं गया जो उसका प्रज्वलित ताम्र पान जोड़िये तो समुद्र के जलसूं अधिक होय। अर सूकर कूकर गर्दभ होय इस जीव ने एता मल का आहार किया जो अनन्त जन्म का जोड़िये तो हजारां विंध्याचल की राशिसूं अधिक होय। अर या अज्ञानी जीव ने क्रोध के वशसूं

एते पराए शिर छेदे अर उन्होंने इसके छेदे जो एकत्र करिए तो ज्योतिषचक्रकूं उलंघकरि अधिक होवें। जीव नरक प्राप्त भया वहां अधिक दुख पाया, निगोद गया वहां अनन्तकाल जन्म मरण किए। यह कथा सुनकरि कौन मित्रसूं मोह मानै?

एक निमिषमात्र विषय का सुख उसके अर्थ कौन अपार दु:ख सहै? यह जीव मोहरूप पिशाच के वश पड्या संसार वनविषै भटकै है। हे श्रेणिक! विभीषण रामसूं कहैं हैं, हे प्रभो! यह लक्ष्मण का मृतक शरीर तजिवे योग्य है, अर शोक करना योग्य नाहीं। यह कलेवर उरसूं लगाये रहना योग्य नाहीं। या भांति विद्याधरनि का सूर्य जो विभीषण उसने श्रीरामसूं विनती करी अर राम महाविवेकी, जिनसूं और प्रतिबुद्ध होय, तथापि मोह के योगसूं लक्ष्मण की मूर्तिकूं न तजी। जैसैं विनयवान गुरु की आज्ञा न तजै।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण का वियोग, राम का विलाप अर विभीषण का संसारस्वरूप वर्णन करने वाला एक सौ सत्रहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।117।।

अथानन्तर सुग्रीवादिक सब राजा रामचन्द्रसूं विनती करते भए – अब वासुदेव की दग्ध क्रिया करो। तब श्रीरामकूं यह वचन अति अनिष्ट लगा अर क्रोधकरि कहते भए – तुम अपने माता पिता पुत्र पौत्र सबों की दग्धक्रिया करो, मेरे भाई की दग्धक्रिया क्यों होय? जो तुम्हारा पापियों का मित्र बंधु कुटुम्ब सो सब नाशकूं प्राप्त होय। मेरा भाई क्यों मरै? उठो लक्ष्मण! इन दुष्टनि के संयोगतैं और ठोर चलें, जहां इन पापीनि के कटुकवचन न सुनिये। ऐसा कहि भाइकूं उरसूं लगाय कांधे धरि, उठ चले। विभीषण सुग्रीवादिक अनेक राजा इनकी लार पीछे पीछे चले आवें। राम काहू का विश्वास न करै। भाईकूं कांधे धरे फिरैं। जैसैं बालक के हाथ विषफल आया अर हितू छुड़ाया चाहै, वह न छोड़े, तैसैं राम लक्ष्मण के शरीरकूं न छोड़े।

आंसुनिकरि भीज रहे हैं नेत्र जिनके, भाईसूं कहते भए– हे भ्राता! अब उठो, बहुत वेर भई, ऐसे कहा सोवो हो? अब स्नान की बेला भई। स्नान के सिंहासन विराजो। ऐसा कहि मृतक शरीरकूं स्नान के सिंहासन पर बैठाया। अर मोह का भऱ्या राम मणि स्वर्ण के कलशोंसूं स्नान करावता भया। अर मुकुट आदि सर्व आभूषण पहिराये। अर भोजन की तैयारी कराई, सेवकोकूं कही नाना प्रकार रत्न स्वर्ण के भाजन में नाना प्रकार का भोजन ल्यावो, उसकरि भाई का शरीर पुष्ट होय। सुन्दर भात, दाल, फुलका नाना प्रकार के व्यंजन नाना प्रकार के रस शीघ्र ही ल्यावो। यह आज्ञा पाय सेवक सब सामग्रीकरि ल्याये, नाथ के आज्ञाकारी, तब आप रघुनाथ लक्ष्मण के मुख मैं ग्रास देवें सो न ग्रसै, जैसे अभव्य जिनराज का उपदेश न ग्रहैं।

तब आप कहते भए जो तैंने मोसूं कोप किया तो आहारसूं कहा कोप? आहार तो करो, मोसूं मति बोलो। जैसैं जिनवाणी अमृतरूप है, परन्तु दीर्घ संसारीकूं न रुचै, तैसे वह अमृतमई आहार लक्ष्मण के मृतक शरीरकूं न रुच्या। बहुरि रामचन्द्र कहै हैं– हे लक्ष्मीधर! यह नाना प्रकार की दुग्धादि पीवने योग्य वस्तु सो पीवो। ऐसा कहकरि भाईकूं दुग्धादि प्याया चाहें सो कहा पीवै?

यह कथा गौतमस्वामी श्रेणिकसूं कहै हैं। वह विवेकी राम स्नेहकरि जीवते की सेवा करिये तैसैं मृतक भाई की करता भया। अर नाना प्रकार के मनोहर गीत बीण बांसुरी आदि नाना प्रकार के नाद करता भया। सो मृतककूं कहा रुचै? मानों मरा हुवा लक्ष्मण राम का संग न तजता भया। भाईकूं चन्दनसूं चर्चा भुजावोंसूं उठाय लेय, उरसूं लगाय लेय, सिर चूम्बै, मुख चूम्बै, हाथ चूम्बै, अर कहै है – हे लक्ष्मण! यह क्या भया? तू तो ऐसा कभी न सोवता, अब तो विशेष सोवने लगा। अब निद्रा तजो। या भांति स्नेहरूप ग्रह का ग्रहा बलदेव नाना प्रकार की चेष्टा करै।

यह वृत्तांत सब पृथ्वी में प्रकट भया कि लक्ष्मण मूवा, लव अंकुश मुनि भये, अर राम मोह का मार्‍या मूढ़ होय रहा है। तब बैरी क्षोभकूं प्राप्त भए, जैसैं वर्षाऋतु का समय पाय मेघ गाजैं। शंबूक का भाई सुन्दर इसका नन्दन विरोधरूप है चित्त जिसका, सो इन्द्रजीत के पुत्र वज्रमाली पै आया, अर कहा मेरा बाबा अर दादा दोनों लक्ष्मण ने मारे सो मेरा रघुवंशिनिसूं वैर है। अर हमारा पाताल लंका का राज्य खोस लिया, अर विराधितकूं दिया, अर वानरवंशियों का शिरोमणि सुग्रीव स्वामीद्रोही होय रामसूं मिला, सो राम समुद्र उल्लंघ लंका आए, राक्षसद्वीप उजाड़्या। रामकूं सीता का अति दु:ख, सो लंका लेयवे का अभिलाषी भया। अर सिंहवाहिनी अर गरुड़वाहिनी दोय महाविद्या राम लक्ष्मणकूं प्राप्त भईं तिनकरि इन्द्रजीत कुम्भकर्ण बंदी में किए। अर लक्ष्मण के चक्र हाथ आया। उसकरि रावणकूं हत्या। अब कालचक्रकरि लक्ष्मण मूवा सो वानरवंशियों की पक्ष टूटी, वानरवंशी लक्ष्मण की भुजावों के आश्रयसूं उन्मत्त होय रहे थे।

अब क्या करेंगे, वे निरपक्ष भए। अर रामकूं ग्यारह पक्ष हो चुके, बारहवां पक्ष लगा है, सो गहला होय रहा है। भाई के मृतक शरीरकूं लिए फिरै है। ऐसा मोह कौनकूं होय? यद्यपि राम समान योधा पृथ्वी में और नाहीं, वह हल मूसल का धरणहारा अद्वितीय मल्ल है, तथापि भाई के शोकरूप कीच में फंस्या निकसवे समर्थ नाहीं। सो अब रामसूं बैर-भाव लेने का दाव है। जिसके भाई ने हमारे वंश के बहुत मारे। शम्बूक के भाई के पुत्र ने इन्द्रजीत के बेटेकूं यह कह्या सो क्रोधकरि प्रज्वलित भया, मंत्रियोंकूं आज्ञा देय रणभेरी दिवाय सेना भेलीकर शम्बूक के भाई के पुत्रसहित अयोध्या की ओर चाल्या। सेनारूप समुद्रकूं लिए प्रथम तो सुग्रीव पर कोप किया कि सुग्रीवकूं मार अथवा पकड़ उसके देश खोसलें। बहुरि रामसूं लड़ें। यह विचार इन्द्रजीत के पुत्र

वज्रमाली ने किया। सुन्दर के पुत्र सहित चढ्या, तब ये समाचार सुनकरि सब विद्याधर जे राम के सेवक थे वे रामचन्द्र के निकट अयोध्या आय भेले भए। जैसी भीड़ अयोध्या में अंकुश के आयवे के दिन भई थी तैसी भई। वैरियों की सेना अयोध्या के समीप आई सुनकरि रामचन्द्र लक्ष्मणकूं कांधे लिए ही धनुष बाण हाथविषै सम्हारे, विद्याधरनिकूं संग लेय आप बाहिर निकसे।

उस समय कृत्तांतवक्र का जीव अर जटायु पक्षी का जीव चौथे स्वर्ग देव भए थे तिनके आसन कम्पायमान भए। कृत्तांतवक्र का जीव स्वामी, अर जटायु पक्षी का जीव सेवक। सो कृत्तांतवक्र का जीव जटायु जीवसूं कहता भया– हे मित्र! आज तुम क्रोधरूप क्यों भए हो? तब वह कहता भया – जब मैं गृधपक्षी था तो राम ने मुझे प्यारे पुत्र की न्याईं पाल्या, अर जिनधर्म का उपदेश दीया। मरणसमय नमोकार मंत्र दीया। उसकरि मैं देव भया। अब वह तो भाई कै शोककरि तप्तायमान है अर शत्रु की सेना उस पर आई है। तब कृतांतवक्र का जीव जो देव था उसने अवधि जोड़करि कही – हे मित्र! मेरा वह स्वामी था। मैं उसका सेनापति था। मुझे बहुत लड़ाया, भ्रात पुत्रोंसूं भी अधिक गिण्या, अर मेरे उनके वचन है तब तुमकूं खेद उपजेगा तब तिहारे पास मैं आऊंगा।

सो ऐसा परस्पर कहकरि वे दोनों देव चौथे स्वर्ग के वासी सुन्दर आभूषण पहिरे, मनोहर हैं केश जिनके, सो अयोध्या की ओर आए। दोनों विचक्षण, परस्पर दोनों बतलाए।

कृतांतवक्र के जीव ने जटायु के जीवसूं कहा – तुम तो शत्रुओं की सेना की ओर जावो, उनकी बुद्धि हरो। अर मैं रघुनाथ के समीप जाऊं हूं। तब जटायु का जीव शत्रुओं की ओर गया। कामदेव का रूपकरि उनकूं मोहित किया। अर उनकूं ऐसी माया दिखाई जो अयोध्या के आगे अर पीछे दुर्गम पहाड़ पड़े हैं, अर अयोध्या काहूसूं जीती न जाय। यह कौशलीपुरी सुभटोंकरि भरी है। कोट आकाश लग रहे हैं। अर नगर के बाहिर भीतर देव विद्याधर भरे हैं। हमने न जानी जो यह नगरी महाविषम है। धरतीविषै देखिए तो आकाश में देखिए तो देव विद्याधर भर रहे हैं। अब कौन प्रकार हमारे प्राण बचें? कैसे जीवते घर जावें?

जहां श्रीरामदेव विराजे सो नगरी हमसूं कैसे लई जाय? ऐसी विक्रियाशक्ति विद्याधरनिविषै कहां? हम बिना विचारे ये काम किया। जो पटबीजना सूर्यसूं बैर विचारै तो क्या कर सकै। अब जो भागो तो कौन राह होयकरि भागो, मार्ग नाहीं। या भांति परस्पर वार्ता करि कांपने लगे। समस्त शत्रुओं की सेना विह्वल भई। तब जटायु के जीव ने देव विक्रिया की क्रीड़ा कर उनकूं दक्षिण की ओर भागने का मार्ग दिया। वे सब प्राण रहित होय कांपते भागे जैसैं सिचान आगे परै वे भागें। आगे जायकरि इन्द्रजीत के पुत्र ने विचारी जो हम विभीषणकूं कहा उत्तर देंगे।

अर लोकोंकूं क्या मुख दिखावेंगे? ऐसा विचार लज्जावान् होय सुन्दर के पुत्र चारों रत्नसहित अर विद्याधरनि सहित इन्द्रजीत के पुत्र वज्रमाली रतिवेग नामा मुनि के निकट मुनि भए, तब यह जटायु का जीव देव उन साधुओं का दर्शनकरि अपना सकल वृत्तांत कहि क्षमा कराय अयोध्या आया, जहां राम भाई के शोककरि बालक की-सी चेष्टा कर रहे हैं। तिनके संबोधिवेके अर्थ वे दोनों देव चेष्टा करते भए। कृतांतवक्र का जीव तो सूखे वृक्षकूं सींचने लगा, अर जटायु का जीव मृतक बैल युगल तिनकरि हल बाहवे का उद्यमी भया, अर शिला ऊपर बीज बोनै लगा। सो ये भी दृष्टांत राम के मन में न आया। बहुरि कृतांतवक्र का जीव राम के आगे जलकूं घृत के अर्थ विलोवता भया अर जटायु का जीव बालू रेतकूं घानी में तेल के निमित्त पेलता भया। सो इन दृष्टांत निकरि रामकूं प्रतिबोध न भया। और भी अनेक कार्य इसी भांति देवों ने किए।

तब राम ने पूछी – तुम बड़े मूढ़ हो, सूखा वृक्ष सींचा सो कहा? अर मूवे बैलोंसूं हल बाहना करो सो कहा। अर शिला ऊपर बीज बोवना सो कहा। अर जल का बिलोवना अर बालू का पेलना इत्यादि कार्य तुम किए सो कौन अर्थ?

तब वे दोनों कहते भए – तुम भाई के मृतक शरीरकूं वृथा लिए फिरो हो उसविषै क्या?

यह वचन सुनकरि लक्ष्मणकूं गाढ़ा उरसूं लगाय पृथ्वी का पति जो राम सो क्रोधकरि उनसूं कहता भया – हे कुबुद्धि हो! मेरा भाई पुरुषोत्तम, उसे अमंगल के शब्द क्यों कहो हो? ऐसे शब्द बोलते तुमकूं दोष उपजेगा। या भांति कृतांतवक्र के जीव के और राम के विवाद होय है। उस ही समय जटायु का जीव मूवे मनुष्य का कलेवर लेय राम के आगे आया।

उसे देख राम बोले – मरे का कलेवर काहेकूं कांधे लिये फिरो हो?

तब उसने कही – तुम प्रवीण होय प्राणरहित लक्ष्मण के शरीरकूं क्यों लिये फिरो हो? पराया अणुमात्र भी दोष देखो हो, अर अपना मेरु प्रमाण दोष नाहीं देखो हो। सारिखे की सारिखे सूं प्रीति होय है। सो तुमकूं मूढ़ देखि हमारे अधिक प्रीति उपजी है। हम वृथा कार्य के करणहारे तिनविषै तुम मुख्य हो। हम उन्मत्त ताकी ध्वजा लिये फिरे हैं, सो तुमकूं अति उन्मत्त देखि तुम्हारे निकट आए हैं।

या भांति उन दोनों मित्रों के वचन सुनि राम मोहरहित भया। शास्त्रनि के वचन चितार सचेत भए। जैसे सूर्य मेघ पटलसूं निकसि अपनी किरणकरि दैदीप्यमान भासै, तैसे भरतक्षेत्र का पति राम सोई भया भानु, सो मोहरूप मेघपटलसूं निकसि, ज्ञानरूप किरणनिकरि भासता भया, जैसे शरद् ऋतु में कारी घटासूं रहित आकाश निर्मल सोहै तैसैं राम का मन शोकरूप कर्दमसूं रहित निर्मल भासता भया। राम समस्त शास्त्रनि में प्रवीण, अमृत समान जिनवचन चितार खेदरहित भए।

धीरता के अवलंबनकरि ऐसे सौहैं जैसा भगवान् का जन्माभिषेकविषै सुमेरु सोहै। जैसे महादाह की शीतल पवन के स्पर्शसूं रहित कमलों का वन सोहै, अर फूलै तैसैं शोकरूप कलुषतारहित राम का चित्त विकसता भया।

जैसैं कोई रात्रि के अन्धकार में मार्ग भूल गया था अर सूर्य के उदय के भए मार्ग पाय प्रसन्न होय महाक्षुधाकरि पीड़ित मनवांछित भोजन खाय अत्यन्त आनन्दकूं प्राप्त होय, अर जैसे कोई समुद्र के तिरिवे का अभिलाषी जहाजकूं पाय हर्षरूप होय, अर वन में मार्ग भूल नगर का मार्ग पाय खुशी होय, अर तृषाकरि पीड़ित महा सरोवरकूं पाय सुखी होय, रोगकरि पीड़ित रोग हरण ओषधकूं पाय अत्यन्त आनन्दकूं पावै, अर अपने देश गया चाहे अर साथी देखि प्रसन्न होय, अर बंदीगृहसूं छूट्या चाहै, अर बेड़ी कटै जैसे हर्षित होय तैसे रामचन्द्र प्रतिबोधकूं पाय प्रसन्न भए। प्रफुल्लित भया है हृदय-कमल जिनका, परम कांतिकूं धारते, आपकूं संसार अंधकूपसूं निकस्या मानते भए। मन में जानी मैं नया जन्म पाया।

श्रीराम विचारै हैं - अहो! डाभ की अणी पर पड़ी ओस की बून्द ता समान चंचल मनुष्य का जीतव्य एक क्षणमात्र में नाशकूं प्राप्त होय है। चतुर्गति संसार में भ्रमण करते मैंने अत्यन्त कष्टसूं मनुष्य शरीरकूं पाया सो वृथा खोया। कौन के पुत्र, कौन का परिवार, कौन का धन, कौन की स्त्री? या संसार में या जीव ने अनन्त सम्बन्धी पाये। एक ज्ञान दुर्लभ है। या भांति श्रीराम प्रतिबुद्ध भए। तब वे दोनों देव अपनी माया दूरकरि लोकोंकूं आश्चर्य की करणहारी स्वर्ग की विभूति प्रकट दिखावते भए। शीतलमंद सुगन्धपवन बाजी अर आकाश में देवों के विमान ही विमान होय गए, अर देवांगना गावती भई, बीण, बांसुरी, मृदंगादि बाजते भए।

वे दोनों देव रामसूं पूछते भए - आप इतने दिवस राज्य कीया सो सुख पाया? तब राम कहते भए, राज्यविषै काहे का सुख? जहां अनेक व्याधि हैं। जो याहि तजि मुनि भए वे सुखी। अर मैं तुमकूं पूछूं हूं- तुम महासौम्य वदन कौन हो, अर कौन कारण करि मोसूं इतना हित जनाया।

तब जटायु का जीव कहता भया - हे प्रभो! मैं वह गृद्ध पक्षी हूं आप मुनिनकूं आहार दिया वहां मैं प्रतिबुद्ध भया। अर आप मोहि निकट राख्या, पुत्र की न्याईं पाल्या अर लक्ष्मण सीता मोसूं अधिक कृपा करते। सीता हरी गई तादिन मैं रावणसूं युद्धकरि कंठगत प्राण भया। आपने आय मोहि पंच नमोकार मंत्र दिया, सो मैं तिहारे प्रसादकरि चौथे स्वर्ग देव भया। स्वर्ग के सुखकरि मोहित भया, अब तक आपके निकट न आया। अब अवधिज्ञानकरि तुमकूं लक्ष्मण के शोककरि व्याकुल जान तिहारे निकट आया हूं।

अर कृतांतवक्र के जीव ने कही – हे नाथ! मैं कृतांतवक्र आपका सेनापति हुता। आप मोहि भ्रात पुत्रनि ते हू अधिक जान्या। अर वैराग्य होते मोहि आप आज्ञा करी हुती जो देव होवो तो हमकूं कबहूं चिन्ता उपजै तब चितारियो। सो आपके लक्ष्मण के मरण की चिंता जानि हम तुम पै आए।

तब राम दोनों देवनिसूं कहते भए – तुम मेरे परममित्र हो। महा प्रभाव के धारक चौथे स्वर्ग के महाऋद्धिधारी देव मेरे संबोधिवेकूं आए। तुमकूं यही योग्य। ऐसा कहकरि राम ने लक्ष्मण के शोकसूं रहित होय लक्ष्मण के शरीरकूं सरयू नदी के ढाहे दग्ध किया। श्री राम आत्मभाव के ज्ञाता धर्म की मर्यादा पालने के अर्थ शत्रुघ्न भाईकूं कहते भए – हे शत्रुघ्न! मैं मुनि के व्रतधारि सिद्धपदकूं प्राप्त हुआ चाहूं हूं। तू पृथ्वी का राज्य करि।

तब शत्रुघ्न कहते भए – हे देव! मैं भोगनि का लोभी नाहीं, जाके राग होय सो राज्य करै। मैं तिहारे संग जिनराज के व्रत धारूंगा, अन्य अभिलाषा नाहीं है। मनुष्यनि के शत्रु ये काम भोग मित्र बांधव जीतव्य इनसूं कौन तृप्त भया? कोई ही तृप्त न भया। तातैं इन सबनि का त्याग ही जीवकूं कल्याणकारी है।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै लक्ष्मण की दग्धक्रिया अर मित्रदेवनि का आगमन वर्णन करने वाला एक सौ अठारहवाँ पर्व संपूर्ण भया।।118।।

अथानन्तर श्रीरामचन्द्र ने शत्रुघ्न के वैराग्यरूप वचन सुनि ताहि निश्चयसूं राज्यसूं परांगमुख जानि क्षण एक बिचारि अनंग लवण के पुत्रकूं राज्य दिया। सो पिता तुल्य गुणनि की खानि, कुल की धुरा का धरणहारा, नमस्कार करै हैं समस्त सामंत जाकूं, सो राज्यविषै तिष्ठ्या। प्रजा का अति अनुराग है जासूं। महाप्रतापी पृथ्वीविषै आज्ञा प्रवर्ताता भया। अर विभीषण लंका का राज्य अपने पुत्र सुभूषणकूं देय वैराग्यकूं उद्यमी भया। अर सुग्रीवहू अपना राज्य अंगदकूं देयकरि संसार शरीर भोगसूं उदास भया। ये सब राम के मित्र राम की लार भवसागर तरिवेकूं उद्यमी भए। राजा दशरथ का पुत्र राम भरत चक्रवर्ती की न्याईं राज्य का भार तजता भया।

कैसा है राम? विषसहित अन्न समान जानै विषय सुख जाने, अर कुलटा स्त्री समान जानी है समस्त विभूति जाने। एक कल्याण का कारण मुनिनि के सेयवे योग्य, सुर असुरोंकरि पूज्य श्री मुनिसुव्रतनाथ का भाख्या मार्ग ताहि उरविषै धारता भया। जन्म मरण के भयसूं कम्पायमान भया है हृदय जाका, ढीले किए हैं कर्मबंध जानै, धोय डाले हैं रागादिक कलंक जाने, महावैराग्यरूप चित्त है जाका। क्लेशभावसूं निवृत्त जैसा मेघपटलसूं रहित भानु भासै तैसा भासता भया। मुनिव्रत

धारिवे का है अभिप्राय जाके। ता समय अरहदास सेठ आया। तब ताहि श्रीराम चतुर्विध संघ की कुशल पूछते भए।

तब वह कहता भया – हे देव! तिहारे कष्टकरि मुनिन काहू मन अनिष्ट संयोगकूं प्राप्त भया। ये बात करैं हैं अर खबर आई है कि मुनिसुव्रतनाथ के वंश में उपजे चार ऋद्धि के धारक स्वामी सुव्रत, महाव्रत के धारक, कामक्रोध के नाशक आए हैं। यह वार्ता सुनकरि महाआनन्द के भरे राम, रोमांच होय गया है शरीर जिनका, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके, अनेक भूचर खेचर नृपनिसहित जैसे प्रथम बलभद्र विजय स्वर्णकुम्भ स्वामी के समीप जाय मुनि भए हुते तैसैं मुनि होनेकूं सुव्रतमुनि के निकट गये। ते महा श्रेष्ठ गुणों के धारक, हजारां मुनि मानै हैं आज्ञा जिनकी, तिनपै जाय प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ि सिर निवाय नमस्कार किया। साक्षात् मुक्ति के कारण महामुनि तिनका दर्शनकरि अमृत के सागरविषै मग्न भए। परम श्रद्धाकरि मुनिराजतैं रामचन्द्र ने जिनचन्द्र की दीक्षा धारिवे की विनती करी।

हे योगीश्वरनि के इन्द्र! मैं भव प्रपंचसूं विरक्त भया तिहारी शरण ग्रहा चाहूं हूं। तिहारे प्रसादसूं योगीश्वरनि के मार्गविषै विहार करूं। या भांति राम ने प्रार्थना करी। कैसे हैं राम? धोये हैं समस्त रागद्वेषादिक कलंक जिन्होंने। तब मुनीन्द्र कहते भए – हे नरेन्द्र! तुम या बात के योग्य ही हो, यह संसार कहा पदार्थ है? यह तजकरि तुम जिनधर्म रूप समुद्र का अवगाह करो। यह मार्ग अनादिसिद्ध बाधारहित अविनाशी सुख का देनहारा तुमसे बुद्धिमान ही आदरैं।

ऐसा मुनि ने कहा, तब राम संसारसूं विरक्त महाप्रवीण, जैसैं सूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणा करैं तैसैं मुनीन्द्र की प्रदक्षिणा करते भए। उपज्या है महाज्ञान जिनकूं, वैराग्य रूप वस्त्र पहिरे, बांधी है कर्मों के नाशकूं कमर जिन्होंने, आशारूप पाश तोड़ि स्नेह का पींजरा दग्धकरि, स्त्रीरूप बंधनसूं छूटि, मोह का मान मारि, हार कुण्डल मुकुट केयूर कटिमेखलादि सर्व आभूषण डारि, तत्काल वस्त्र तजे। परम तत्त्वविषै लगा है मन जिनका, वस्त्राभरण यूं तजे ज्यों शरीर तजिए। महासुकुमार अपने कर तिनकरि केशलोंच किए। पद्मासन धरि विराजे।

शील के मन्दिर अष्टम बलभद्र समस्त परिग्रहकूं तजकरि ऐसे सोहते भए जैसा राहुसूं रहित सूर्य सोहै। पंच महाव्रत आदरे। पंच समिति अंगीकार करि तीन गुप्तिरूप गढ़विषै विराजे। मनोदण्ड, वचनदण्ड, कायदण्ड के दूर करणहारे, षट्काय के मित्र, सप्त भयरहित, आठ कर्मों के रिपु, नवधा ब्रह्मचर्य के धारक, श्रीवत्स लक्षणकरि शोभित है उरस्थल जिनका, गुणभूषण, सकलभूषण रहित, तत्त्वज्ञानविषै दृढ़, रामचन्द्र महामुनि भए। देवनि ने पंचाश्चर्य किए। सुन्दर

दुंदुभी बाजे। अर दोनों देव कृतांतवक्र का जीव अर एक जटायु का जीव तिनने परम उत्साह किए।

जब पृथ्वी का पति राम पृथ्वीकूं तजि निकस्या तब भूमिगोचरी विद्याधर सब ही राजा आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर विचारते भए जो ऐसी विभूति, ऐसे रत्न, यह प्रताप तजकरि रामदेव मुनि भए तो और हमारे कहा परिग्रह, जाके लोभतैं घर में तिष्ठै। व्रत बिना हम एते दिन योंही खोए। ऐसा विचारकरि अनेक राजा गृहबंधनसूं निकसे। अर रागमई पाशी काटि द्वेषरूप वैरीकूं विनाशि सर्व परिग्रह का त्यागकरि भाई शत्रुघ्न मुनि भए। अर विभीषण, सुग्रीव, नील, नल, चन्द्रनख, विराधित इत्यादि अनेक राजा मुनि भए। विद्याधर सर्व विद्या का त्यागकरि ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त भए। कईएकनिकूं चारणऋद्धि उपजी। या भांति राम के वैराग्य भए सोलह हजार कछु अधिक महीपति मुनि भए। अर सत्ताईस हजार राणी श्रीमती आर्यिका के समीप आर्यिका भईं।

अथानन्तर श्रीराम गुरु की आज्ञा लेय एकविहारी भए। तजे हैं समस्त विकल्प जिन्होंने गिरिनि की गुफा अर गिरिनि के शिखर अर विषम वन जिनविषै दुष्टजीव विचरें वहां श्रीराम जिनकल्पी होय ध्यान धरते भए। अवधिज्ञान उपज्या। जाकरि परमाणुपर्यंत देखते भए। अर जगत के पदार्थ सकल भासे। लक्ष्मण के अनेक भव जाने, मोह का सम्बन्ध नाहीं, तातैं मन ममत्वकूं न प्राप्त होता भया।

अब राम की आयु का व्याख्यान सुनो। कौमार कालवर्ष सौ 100, मंडलीक पद वर्ष तीन सौ 300, दिग्विजय वर्ष चालीस 40, अर ग्यारह हजार पांच सौ साठ वर्ष 11560 तीन खंड का राज्यकरि बहुरि मुनि भए। लक्ष्मण का मरण याही भांति था। देवनि का दोष नाहीं। अर भाई के मरण निमित्ततैं राम के वैराग्य का उदय था। अवधिज्ञान के प्रतापकरि राम ने अपने अनेक भव जाने। महाधीर्यकूं धरे व्रतशील के पहाड़, शुक्ल लेश्याकरि युक्त, महा गम्भीर, गुणनि के सागर, समाधान चित्त, मोक्ष लक्ष्मीविषै तत्पर, शुद्धोपयोग के मार्गविषै प्रवरते। सो गौतमस्वामी राजा श्रेणिक आदि सकल श्रोताओं सूं कहै हैं जैसे रामचन्द्र जिनेन्द्र के मार्गविषै प्रवर्ते तैसैं तुमहू प्रवरतो, अपनी शक्ति प्रमाण महाभक्ति करि जिनशासनविषै तत्पर होवों।

जिन नाम के अक्षर महारत्नोंकूं पायकरि हो प्राणी हो! खोटा आचरण तजहु। दुराचार महादुःख का दाता है, खोटे ग्रंथनिकरि मोहित है आत्मा जिनका, अर पाखण्ड क्रियाकरि मलिन है चित्त जिनका, वे कल्याण के मार्गकूं तजि जन्म के आंधे की न्याईं खोटे पन्थ में प्रवरते हैं। कईएक मूर्ख साधु का धर्म नाहीं जानै हैं अर नाना प्रकार के उपकरण साधु के बतावें हैं। अर निर्दोष जान ग्रहै हैं वे वाचाल हैं। जे कुलिंग कहिये खोटे भेष मूढ़नि ने आचरे हैं वे वृथा हैं। तिनसूं

मोक्ष नाहीं। जैसे कोई मूर्ख मृतक के भारकूं वहै है सो वृथा खेद करै है, जिनके परिग्रह नहीं अर काहूसूं याचना नाहीं, वे ऋषि हैं, निर्ग्रंथ, उत्तम गुणनिकरि मंडित पंडितोंकरि सेयवे योग्य हैं। यह महाबली बलदेव के वैराग्य का वर्णन सुनि संसारसूं विरक्त होवो, जाकरि भवतापरूप सूर्य का आताप न पावो।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिकाविषै श्रीराम का वैराग्य वर्णन करने वाला एक सौ उन्नीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।119।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे भव्योत्तम! रामचन्द्र के अनेक गुण धरणींद्र हू अनेक जीभकरि गायवे समर्थ नाहीं, वे महामुनीश्वर जगत के त्यागी, महाधीर, पंचोपवास की है प्रतिज्ञा जिनके, सो ईर्यासमिति पालते नन्दस्थलीनामा नगरी, तहां पारणा के अर्थ गए। उगते सूर्य समान है दीप्ति जिनकी, मानों चालते पहाड़ ही हैं। महा स्फटिकमणि समान शुद्ध हृदय जिनका, वे पुरुषोत्तम मानों मूर्तिवंत धर्म ही मानों तीन लोक का आनन्द एकत्र होय राम की मूर्ति निपजी है। महाकांति के प्रवाहकरि पृथ्वीकूं पवित्र करते मानों आकाशविषै अनेक रंगकरि कमलों का वन लगवाते नगरविषै प्रवेश करते भए। तिनके रूपकूं देखि नगर के सब लोक क्षोभकूं प्राप्त भए।

लोक परस्पर बतलावें हैं – अहो देखो! यह अद्भुत रूप, ऐसा आकार, जगतविषै दुर्लभ, कबहु देखिवेविषै न आवै, यह कोई महापुरुष महासुन्दर शोभायमान, अपूर्व नर दोनों बाहु लम्बाये आवैं हैं। धन्य यह धीर्य! धन्य यह पराक्रम! धन्य यह रूप! धन्य यह कांति! धन्य यह दीप्ति! धन्य यह शांति! धन्य यह निर्ममत्वता! यह कोई मनोहर पुराणपुरुष है ऐसा और नाहीं। जूड़े प्रमाण धरती देखता, जीवदया पालता, शांतिदृष्टि, समाधानचित्त जैन का यति चाल्या आवै है। ऐसा कौन का भाग्य जाके घर यह पुण्याधिकारी आहारकरि कौनकूं पवित्र करै? ताके बड़े भाग्य जाके घर यह आहार लेय।

यह इन्द्र समान रघुकुल का तिलक, अक्षोभ पराक्रमी, शील का पहाड़ रामचन्द्र पुरुषोत्तम है। याके दर्शनकरि नेत्र सकल होय मन निर्मल होय, जन्म सफल होय देही पाये का यह फल जो चारित्र पालिए। या भांति नगर के लोक राम के दर्शनकरि आश्चर्यकूं प्राप्त भए, नगर में रमणीक ध्वनि भई। श्रीराम नगरविषै पैठे, अर समस्त गली अर मार्ग स्त्री पुरुषनि के समूहकरि भरि गया। नर नारी नाना प्रकार के भोजन हैं घरविषै जिनके, प्रासुक जल की झारी भरे द्वारे पेखन करै हैं निर्मल जल दिखावते पवित्र धोवती पहिरे नमस्कार करै हैं।

हे स्वामी! अत्र तिष्ठो, अन्न जल शुद्ध है या भांति के शब्द करै हैं। नाहीं समावै है हृदयविषै हर्ष जिनके हे मुनीन्द्र! जयवंत होवो, हे पुण्य के पहाड़! नादो विरदो। इन वचनोंकरि दशोंदिशा पूरित भईं, घर घरविषै लोग परस्पर बात करैं हैं। स्वर्ण के भाजन में दुग्ध दधि घृत ईखरस दाल भात क्षीर शीघ्र ही तैयार करि राखो, मिश्री मोदक कपूरकरि युक्त शीतल जल। सुन्दरी पूरी शिखरणी भलीभांति विधि से राखो। या भांति नर-नारिनि के वचनालाप तिनकरि समस्त नगर शब्दरूप होय गया। महासंभ्रम के भरे जन अपने बालकों को न विलोकते भए। मार्ग में लोक दौड़े सो काहू के धक्केसूं कोई गिर पड़े। या भांति लोकनि के कोलाहल करि हाथी खूंटा उपाड़ते भए, अर ग्रामविषै दौड़ते भए, तिनके कपोलोंसूं मद झरिवेकरि मार्गविषै जल का प्रवाह होय गया। हाथिनि के भयसूं घोड़े घास तजि तजि बन्धन तुड़ाय तुड़ाय भाजे, अर हींसते भए, सो हाथी घोड़नि की घमासाणकरि लोक व्याकुल भए। तब दानविषै तत्पर राजा कोलाहल शब्द सुनि मंदिर के ऊपर आय खड्या रह्या। दूरसूं मुनि का रूप देखि मोहित भया।

राजा के मुनिसूं राग विशेष, परन्तु विवेक नाहीं। सो अनेक सामंत दौड़ाए अर आज्ञा करी- स्वामी पधारे हैं, सो तुम जाय प्रणाम करि बहुत भक्ति विनती करि यहां आहारकूं ल्यावो। सो सामंत भी मूर्ख जाय, पायन पर पड़ि कहते भए - हे प्रभो! राजा के घर भोजन करहु। वहां महापवित्र सुन्दर भोजन हैं। अर सामान्य लोकनि के घर आहार विरस आपके लेयवे योग्य नाहीं। अर लोकोंकूं मनै किए कि तुम कहा दे जानो हो? यह वचन सुनकरि महामुनि आपकूं अन्तराय जानि नगरसूं पीछे चाल्ये। तब सब लोग व्याकुल भए। वे महापुरुष जिन आज्ञा के प्रतिपालक आचारांग सूत्रप्रमाण है आचरण जिनका, आहार के निमित्त नगरविषै विहारकरि अन्तराय जानि नगरसूं पीछे वनविषै गए। चिद्रूप ध्यानविषै मग्न कायोत्सर्ग धरि तिष्ठे। वे अद्भुत अद्वितीय सूर्य, मन अर नेत्रकूं प्यारा लागे रूप जिनका, नगरसूं बिना आहार गए तब सब ही खेदखिन्न भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम मुनि का आहार के अर्थि नगर में आगमन बहुरि लोकनि के कोलाहलतैं अन्तराय पाछा वन में आना, वर्णन करने वाला एक सौ बीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।120।।

अथानन्तर राम मुनियों में श्रेष्ठ, बहुरि पंचोपवास का प्रत्याख्यान करि यह अवग्रह धारते भये कि वनविषै कोई श्रावक शुद्ध आहार देय तो लेना, नगर में न जाना। या भांति कांतारचर्या की प्रतिज्ञा करी। सो एक राजा प्रतिनन्द वाकूं दुष्ट तुरंग लेय भागा। सो लोकनि की दृष्टिसूं दूर गया। तब राजा की पटरानी प्रभवा अति चिंतातुर शीघ्रगामी तुरंग पर आरूढ़ राजा के पीछे ही सुभटनि

के समूह करि चाली। अर राजाकूं तुरंग हर ले गया था सो वन के सरोवरनिविषै कीच में फंस गया। उतने ही में पटराणी जाय पहुंची। राजा राणी पै आया। तब राणी राजासूं हास्य के वचन कहती भई – हे महाराज! जो यह अश्व आपकूं न हरता तो यह नन्दनवन–सा वन अर मानसरोवर–सा सर कैसैं देखते!

राजा ने कही – हे राणी! वनयात्रा सब सुफल भई जो तिहारा दर्शन भया। या भांति दम्पत्ति परस्पर प्रीति की बातकरि सखीजन सहित सरोवर के तीर बैठि नाना प्रकार जलक्रीड़ा करि दोनों भोजन के अर्थ उद्यमी भए। ता समय श्रीराम मुनि कांतारचर्या के करणहारे या तरफ आहारकूं आए।

यह साधु की क्रिया में प्रवीण, तिनकूं देखि राजा हर्षकरि रोमांच भया, राणीसहित सम्मुख जाय नमस्कारकरि ऐसे शब्द कहता भया – हे भगवान ! यहां तिष्ठौ, अन्न जल पवित्र है। प्रासुक जलकरि राजा ने मुनि के पग धोए। नवधा भक्ति करि सप्तगुण सहित मुनिकूं महापवित्र क्षीर आहार दिया। स्वर्ण के पात्र में लेयकरि महापात्र जे मुनि तिनके करपात्र में पवित्र अन्न देता भया। निरंतराय आहार भया। तब देव हर्षित होय पंचाश्चर्य करते भए। अर आप अक्षीण महा ऋद्धि के धारक सो वा दिन रसोई का अन्न अटूट होय गया। पंचाश्चर्य के नाम – पंच वर्ण रत्नों की वर्षा, अर महासुगन्ध कल्पवृक्षों के पुष्प की वर्षा, शीतल मंद सुगन्ध पवन, दुंदुभी नाद, जय जय शब्द। धन्य यह दान, धन्य यह पात्र धन्य यह विधि, धन्य यह दाता नीके करी नीके करी नादो विरधो फूलो।

या भांति के शब्द आकाश में देव करते भए। अथवा नवधा भक्ति के नाम मुनि को पडगाहनो, ऊंचे स्थानक राखना, चरणारविंद धोवने, चरणोदक माथे चढ़ाबना, पूजा करनी, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध, आहार शुद्ध, यह नवधा भक्ति। अर श्रद्धा शक्ति, निर्लोभता, दया, क्षमा, अदेयसापणो नहीं, हर्षसंयुक्त यह दाता के सात गुण। वह राजा प्रतिनन्दी मुनिदानसूं देवोंकरि पूज्य भया, अर श्रावक के व्रत धारे। निर्मल है सम्यक्त जाके, पृथ्वी में प्रसिद्ध होता भया। बहुत महिमा पाई। अर पंचाश्चर्य में नाना प्रकार के रत्न स्वर्ण की वर्षा भई, सो दशों दिशा में उद्योत भया अर पृथ्वी का दरिद्र गया। राजा राणीसहित महाविनयवान भक्तिकरि नम्रीभूत महामुनिकूं विधिपूर्वक निरन्तराय आहार देय प्रबोधकूं प्राप्त भया, अपना मनुष्य जन्म सफल जानता भया। अर राम महामुनि तप के अर्थ एकांत रहैं। बारह प्रकार तप के करणहारे, तप ऋद्धिकरि अद्वितीय, पृथ्वी में अद्वितीय सूर्य विहार करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै राम मुनिकूं निरंतराय आहार वर्णन करने वाला एक सौ इक्कीसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।121।।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे श्रेणिक! वह आत्माराम महामुनि बलदेव स्वामी शांत किए हैं रागद्वेष जानै, जो और मनुष्यों सूं न बन आवै ऐसा तप करते भए। महा वनविषै विहार करते पंचमहाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति पालते शास्त्र के वेत्ता, जितेन्द्री, जिनधर्म में है अनुराग जिनका, स्वाध्याय ध्यान में सावधान, अनेक ऋद्धि उपजी, परन्तु ऋद्धिनि की खबर नाहीं। महाविरक्त, निर्विकार, बाईस परीषह के जीतनहारे, तिनके तपके प्रभावतैं वन के सिंह व्याघ्र मृगादिक के समूह निकट आय बैठै। जीवों का जातिविरोध मिट गया। राम का शांतरूप निरखि शांतरूप भए। श्रीराम महाव्रती चिदानन्दविषै है चित्त जिनका, परवस्तु की बांछारहित, विरक्त, कर्मकलंक हरिवेकूं है यत्न जिनका, निर्मल शिला पर तिष्ठते, पद्मासन धरे आत्मध्यानविषै प्रवेश करते भए, जैसे रवि मेघमालाविषै प्रवेश करै। वे प्रभु सुमेरु सारिखे, अचल है चित्त जिनका, पवित्र स्थानविषै कायोत्सर्ग धरे निज स्वरूप का ध्यान करते भए।

कबहुंक विहार करै सो ईर्यासमिति पालते जूडा प्रमाण पृथ्वी निरखते, महाशांत जीवदया प्रतिपालक के देव देवांगनादिक करि पूजित भए। वे आत्मज्ञानी जिन आज्ञा के पालक जैन के योगी ऐसा तप करते भए जो पंचम कालविषै काहू के चिंतवनविषै न आवै। एक दिन विहार करते कोटिशिला आए जो लक्ष्मण ने नमोकार मंत्र जपकर उठाई हुती। सो आप कोटिशिला पर ध्यान धरि तिष्ठे। कर्मों के खिपायवेविषै उद्यमी क्षपकश्रेणि चढ़िवे का है मन जिनका।

अथानन्तर अच्युत स्वर्ग का प्रतींद्र सीता का जीव स्वयंप्रभ नाना अवधिकरि विचारता भया– राम का अर आपका परम स्नेह, अपने अनेक भव, अर जिनशासन का माहात्म्य, अर राम का मुनि होना अर कोटिशिला पर ध्यान धरि तिष्ठना। बहुरि मनविषै विचारी वे मनुष्यनि के इन्द्र, पृथ्वी के आभूषण मनुष्यलोकविषै पति हुते मैं उनकी स्त्री सीता हुती। देखो कर्म की विचित्रता, मैं तो व्रत के प्रभावतैं स्वर्गलोक पाया, अर लक्ष्मण राम का भाई प्राणहूतैं प्रिय सो परलोक गया, राम अकेले रह गए। जगत के आश्चर्य के करणहारे दोनों भाई बलभद्र नारायण कर्म के उदयतैं बिछुरे। श्रीराम कमल सारिखे नेत्र जिनके, शोभायमान हल मूसल के धारक, बलदेव, महाबली सो वासुदेव के वियोगकरि जिनदेव की दीक्षा अंगीकार करते भये। राज अवस्थाविषैं तो शस्त्रोंकरि सर्व शत्रु जीते, बहुरि मुनि होय मन इन्द्रिय जीते। अब शुक्लध्यान धारकरि कर्म शत्रुकूं जीत्या चाहै हैं। ऐसा होय जो मेरी देव मायाकरि कछुइक इनका मन मोह में आवैं। वह शुद्धोपयोगसूं च्युत होय शुभोपयोगविषै आय यहां अच्युतस्वर्गविषै आवै। मेरे इनके महाप्रीति है। मैं अर वे मेरु नन्दीश्वरादिक की यात्रा करें, अर बाईस सागरपर्यंत भेले रहें। मित्रता बढ़ावें अर दोनों मिल लक्ष्मणकूं देखें।

यह विचारकरि सीता का जीव प्रतींद्र जहां राम ध्यानारूढ़ थे तहां आया। इनको ध्यानसूं च्युत करवे अर्थ देवमाया रची। बसंतऋतु वनविषै प्रकट करी। नाना प्रकार के फूल फूले। अर सुगन्ध वायु बाजने लगी, पक्षी मनोहर शब्द करने लगे, अर भ्रमर गुंजार करै हैं, कोयल बोलें हैं, मैना, सुवा नाना प्रकार की ध्वनि कर रहे हैं, आंव मौर आये, भ्रमरोंकरि मण्डित सोहै हैं। काम के बाण जे पुष्प तिनकी सुगन्धता फैल रही है। अर कर्णकार जाति के वृक्ष फूले हैं तिनकरि वन पीत हो रहा है, सो मानों बसंतरूप राजा पीतांबरकरि क्रीड़ा कर रहा है। अर मौलश्री की वर्षा होय रही है।

ऐसी बसंत की लीलाकरि आप वह प्रतीन्द्र जानकी का रूप धरि राम के समीप आया। वह मनोहर वन जहां अर कोई जन नाहीं, अर नाना प्रकार के वृक्ष, सब ऋतु के फूल रहे हैं, ता समय राम के समीप सीता सुन्दरी कहती भई - हे नाथ! पृथ्वीविषै भ्रमण करते कोई पुण्य के योगतैं तुमकूँ देखे। वियोगरूप लहर का भऱ्या जो स्नेहरूप समुद्र ताविषै मैं डूबूँ हूं। सो मोहि थांभो। अनेक प्रकार राग के वचन कहे, परन्तु अकंप। सो वह सीता का जीव मोह के उदयकरि कभी दाहिने कभी बांये भ्रमै, कामरूप ज्वर के योगकरि कम्पित है शरीर, अर महा सुन्दर अरुण हैं अधर जाके, या भांति कहती भई - हे देव! मैं बिना विचारे तिहारी आज्ञा बिना दीक्षा लीनी। मोहि विद्याधरनि ने बहकाया। अब मेरा मन तुमविषै है। या दीक्षाकरि पूर्णता होवै। यह दीक्षा अत्यन्त वृद्धनिकूं योग्य है। कहां यह यौवन अवस्था अर कहां यह दुर्द्धर व्रत?

महा कोमल फूल दावानल की ज्वाला कैसे सहार सकै? अर हजारां विद्याधरनि की कन्या और हू तुमकूं बऱ्या चाहे हैं मोहि आगे धार ल्याई हैं कहैं हैं, तिहारे आश्रय हम बलदेवकूं वरें। यह कहै है। अर हजारां दिव्य कन्या नाना प्रकार के आभूषण पहरे राजहंसनी समान है चाल जिनकी, सो प्रतीन्द्र की विक्रियाकरि मुनीन्द्र के समीप आईं। कोयलतैं हूं अधिक मधुर बोलैं- ऐसी सोहें मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हैं, मनकूं आह्लाद उपजावें, कानोंकूं अमृत समान ऐसा दिव्य गीत गावतीं भईं। अर बीण बांसुरी, मृदंग बजावती भईं।

भ्रमर सारिखे श्याम केश बिजुरी समान चमत्कार, महासुकुमार पातरी कटि, कठोर अति उन्नत हैं कुच जिनके, सुन्दर श्रृंगार करे, नाना वर्ण के वस्त्र पहिरे, हाव-भावविलास विभ्रमकूं धरती मुलकती अपनी कांतिकरि व्याप्त किया है आकाश जिन्होंने, मुनि के चौगिर्द बैठी प्रार्थना करती भईं - हे देव! हमारी रक्षा करो। अर कोईएक पूछती भई - हे देव! यह कौन वनस्पति है? अर कोई एक माधवी लता के पुष्प के ग्रहण के मिस बाहु ऊंची करती अपना अंग दिखावती भई, अर कईएक भेली होयकरि ताली देती रासमण्डल रचती भईं। पल्लव समान हैं कर जिनके, अर

कोई परस्पर जलकेलि करती भईं। या प्रकार नाना भांति की क्रीड़ाकरि मुनि के मन डिगायवे का उद्यम करती भई।

सो हे श्रेणिक! जैसैं पवनकरि सुमेरु न डिगै तातैं श्रीरामचन्द्र मुनि का मन न डिगै। आत्मस्वरूप के अनुभवी रामदेव, सरल है दृष्टि जिनकी, विशुद्ध है आत्मा जिनका, परीषहरूप वज्रपातसूं न डिगै। क्षपकश्रेणी चढ़े शुक्लध्यान के प्रथम पाएविषै प्रवेश किया। रामचन्द्र का भाव आत्माविषै लगि अत्यन्त निर्मल भया। सो उनका जोर न पहुंच्या। मूढ़जन अनेक उपाय करैं परन्तु ज्ञानी पुरुषनि का चित्त न चलैं। वे आत्मस्वरूपविषै ऐसे दृढ़ भए जो काहू प्रकार न चिगे। प्रतींद्र देव ने मायाकरि राम का ध्यान डिगायवेकूं अनेक यत्न किए परन्तु कछु ही उपाय न चल्या। वे भगवान पुरुषोत्तम अनादि काल के कर्मों की वर्गणा के दग्ध करिवेकूं उद्यमी भए। पहिले पाए के प्रसादसूं मोह का नाशकरि बारहवें गुणस्थान चढ़े। तहां शुक्लध्यान के दूजे पाए के प्रसादतैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय का अंत किया। माघ शुक्ल द्वादशी की पिछली रात्रि केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। केवलज्ञानविषै सर्व द्रव्य समस्त पर्याय प्रतिभासूं ज्ञानरूप दर्पण में लोकालोक सब भासे।

तब इन्द्रादिक देवनि के आसन कम्पायमान भए। अवधिज्ञानकरि भगवान रामकूं केवल उपज्या जानकरि केवलज्ञानकल्याणक की पूजाकूं आए। महाविभूति संयुक्त देवनि के समूह सहित बड़े श्रद्धावान् सब ही इन्द्र आए। घातिया कर्म के नाशक अर्हंत परमेष्ठी तिनकूं चारणमुनि अर चतुरनिकाय के देव सब ही प्रणाम करते भए। वे भगवान् छत्र चमर सिंहासन आदिकर शोभित त्रैलोक्यकरि बन्दिवे योग्य सयोगकेवली, तिनकी गंधकुटी देव रचते भए, दिव्यध्वनि खिरती भई। सब ही श्रवण करते भए। अर बारम्बार स्तुति करते भए। सीता का जीव स्वयंप्रभ नामा प्रतीन्द्र केवली की पूजाकरि तीन प्रदक्षिणा देय बारम्बार क्षमा करावता भया। हे भगवन्! मैं दुर्बुद्धि ने जो दोष किए सो क्षमा करहु।

गौतम स्वामी कहै हैं – हे श्रेणिक! वे भगवान् बलदेव अनन्त लक्ष्मी कांतिकरि संयुक्त आनन्द मूर्ति, केवली तिनकी इन्द्रादिक देव महाहर्ष के भरे अनादिरीति प्रमाण पूजा स्तुतिकर विनती करते भए। केवली विहार किया तब देवहू विहार करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै रामकूं केवलज्ञान की उत्पत्ति वर्णन करने वाला एक सौ बाईसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।122।।

अथानन्तर सीता का जीव प्रतीन्द्र लक्ष्मण के गुण चितारि लक्ष्मण का जीव जहां हुता, अर खरदूषण का पुत्र शम्बूक असुरकुमार जाति का देव हुता तहां जायकरि ताकूं सम्यग्ज्ञान का ग्रहण कराया। सो तीजे नरक नारकिनकूं बाधा करावै। हिंसानन्द रौद्रध्यानविषै तत्पर, पापी नारकीनिकूं

परस्पर लड़ावै। पाप के उदयकरि जीव अधोगति जाय। सो तीजे तक तो असुरकुमारहू लड़ावैं आगे असुरकुमार न जांय, नारकी ही परस्पर लड़े। जहां कईएकनिकूं अग्निकुण्डविषै डारैं हैं सो पुकारैं हैं। कईएकनिकूं कांटनिकर युक्त शाल्मली वृक्ष तिन पर चढ़ाय घसीटें हैं। कईएकनिकूं लोहमई मुद्गरिनि करि कूटैं हैं।

अर जे मांस आहारी पापी तिनकूं उनही का मांस काटि खवावै हैं। अर प्रज्वलित लोह के गोला तिनकूं मुख में मारि मारि देहैं। अर कईएक मार के मारे भूमिविषै लोटै हैं अर मायामई श्वान, मार्जार, सिंह, व्याघ्र दुष्ट पक्षी भखै हैं। तहां तिर्यंच नाहीं नरक की विक्रिया है। कईएकनिकूं सूली चढ़ावै हैं अर वज्र के मुद्गरनितैं मारैं हैं। कईएकनिकूं ताता ताम्बा गालि गालि प्यावें हैं अर कहैं हैं ये मदिरापान के फल हैं। कईएकों को काठ में बांधकरि करोंतांसूं चीरें हैं। अर कईएकों को कुठारनिसूं काटै हैं। कईएकोकूं घानी में पेले हैं। कैयकों की आंख काढ़े हैं, कैयकों की जीभ काढ़े हैं। वह क्रूर कईएकों के दांत तोड़े हैं। इत्यादि नारकीनिकूं अनेक दुख हैं सो अवधिज्ञानकरि प्रतीन्द्र नारकीनि की पीड़ा देखि शम्बूक के समझायवेकूं तीजी भूमि गया।

सो असुर कुमार जाति के देव क्रीड़ा करते हुते वे तो इनके तेजसूं डर गए। अर शम्बूककूं प्रतीन्द्र कहते भए – अरे पापी निर्दई! तैनैं यह क्या आरम्भा जो जीवोकूं दुख देवै है। हे नीच देव! क्रूरकर्म तजि क्षमा पकड़। यह अनर्थ के कारण कर्म तिनकरि कहा? अर यह नरक के दुख सुनकरि भय उपजे है। तू प्रत्यक्ष नारकीनिकूं पीड़ा करै है, करावै है सो तुझे त्रास नाहीं। यह वचन प्रतीन्द्र के सुन शंबूक प्रशांत भया। दूसरे नारकी तेज न सह सके, रोवते भए, अर भागते भए। तब प्रतीन्द्र ने कही– हो नारकी हो! मुझसूं मत डरहु, जिन पापनिकरि नरक मैं आए हो तिनसूं डरो। जब या भांति प्रतीन्द्र कही तब उनमें कईएक मन में विचारते भए जो हम हिंसा, मृषावाद, परधन हरण, परनारि रमण, बहु आरंभ, बहु परिग्रह में प्रवर्ते, रौद्र ध्यानी भए, उसका यह फल है। भोगनिविषै आसक्त भए, क्रोधादिक की तीव्रता भई, खोटे कर्म कीए, उससूं दुख पाया। देखहु यह स्वर्गलोक के देव पुण्य के उदयसूं नाना प्रकार के विलास करै है, रमणीक विमान चढ़े जहां इच्छा होय वहां ही जांय। या भांति नारकी विचारते भए। अर शम्बूक का जीव जो असुर कुमार उसकूं ज्ञान उपज्या।

फिर रावण के जीव ने प्रतीन्द्रकूं पूछा – तुम कौन हो? तब वाने सकल वृत्तांत कहा। मैं सीता का जीव तप के प्रभावकरि सोंलवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र भया। अर श्रीरामचन्द्र महा मुनीन्द्र होय ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहिनीय अंतरायनि का नाशकरि केवली भए। सो धर्मोपदेश देते जगतकूं तारते भरतक्षेत्रविषै तिष्ठै हैं। नाम गोत्र वेदनी आयु का अंतकरि परमधाम पधारेंगे। अर तू विषयवासना करि विषमभूमिविषै पड्या। अब भी चेत ज्यूं कृतार्थ होय। तब रावण का जीव

प्रतिबोधकूं प्राप्त भया। अपने स्वरूप का ज्ञान उपज्या, अशुभ कर्म बुरे जाने। मन में विचारता भया मैं मनुष्य भव पाय अणुव्रत महाव्रत न आराधे तातैं इस अवस्थाकूं प्राप्त भया। हाय हाय! मैं कहा किया जो आपकूं दुख समुद्र में डास्या। यह मोह का माहात्म्य है जो जीव आत्महित न कर सके। रावण प्रतीन्द्रकूं कहै है – हे देव! तुम धन्य हो! विषय की वासना तजी, जिनवचन रूप अमृतकूं पीकर देवों के नाथ भए। तब प्रतीन्द्र ने दयालु होयकर कही – तुम भय मत करो, लो हमारे स्थानकूं चलो। ऐसा कहि याके उठायवेकूं उद्यमी भया। तब रावण के जीव के शरीर की परमाणु बिखर गई। जैसैं अग्निकरि माखन पिघल जाय। काहू उपायकरि याहि ले जायवे समर्थ न भया। जैसैं दर्पण में तिष्ठती छाया न ग्रही जाय।

तब रावण का जीव कहता भया – हे प्रभो! तुम दयालु हो, सो तुमकूं दया उपजे ही, परन्तु इन जीवनि ने पूर्वे जे कर्म उपार्जे हैं तिनका फल अवश्य भोगै हैं। विषयरूप मांस का लोभी दुर्गति की आयु बांधै है सो आयु पर्यंत दुख भोगवे है। यह जीव कर्मों के आधीन, इसका देव क्या करें? हमने अज्ञान के योगसूं अशुभ कर्म उपार्जे हैं, इनका फल अवश्य भोगेंगे। आप छुड़ायवे समर्थ नाहीं। तिससूं कृपाकरि वह उपदेश कहो जिसकरि फिर दुर्गति के दुख न पावैं। हे दयानिधे! तुम परम उपकारी हो। तब देव ने कही – परमकल्याण का मूल सम्यग्ज्ञान है, सो जिनशासन का रहस्य है, अविवेकियोंकूं अगम्य है, तीन लोक में प्रसिद्ध है, आत्मा अमूर्तिक सिद्ध समान उसे समस्त परद्रव्योंसूं जुदा जानै। जिनधर्म का निश्चयकरि यह सम्यग्दर्शन कर्मों का नाशक शुद्ध पवित्र परमार्थ का मूल जीवों ने न पाया। तातैं अनंत भव ग्रहे।

यह सम्यग्दर्शन अभव्योंकूं अप्राप्य है, अर कल्याणरूप है, जगत में दुर्लभ है, सकल में श्रेष्ठ है। सो जो तू आत्मकल्याण चाहै है तो उसे अंगीकार करहु, जिसकरि मोक्ष पावै। उससूं श्रेष्ठ और नाहीं, न हुआ, न होयगा। याही करि सिद्ध भए हैं, अर होयंगे। जे अर्हंत भगवान ने जीवादिक नव पदार्थ भासै हैं तिनकी दृढ़श्रद्धा करनी उसे सम्यग्दर्शन कहिए। इत्यादि वचनोंकरि रावण के जीव कूं सुरेन्द्र ने सम्यक्त्व ग्रहण कराया। अर याकी दशा देखि विचारता भया जो देखो रावण के भव में याकी कहा कांति थी, महासुन्दर लावण्यरूप शरीर था, सो अब ऐसा होय गया जैसा नवीन वन अग्निकरि दग्ध हो जाय। जिसे देखि सकल लोक आश्चर्यकूं प्राप्त होते सो ज्योति कहां गई? बहुरि ताहि कहता भया कर्मभूमि में तुम मनुष्य भए थे सो इन्द्रियों के क्षुद्र सुख के कारण दुराचारकरि ऐसे दुखरूप समुद्र में डूबे।

इत्यादि प्रतीन्द्र ने उपदेश के वचन कहे। तिनकूं सुनकरि उसके सम्यग्दर्शन दृढ़ भया। अर मन में विचारता भया कर्मों के उदयकरि दुर्गति के दुख प्राप्त भए, तिनकूं भोगि, यहां से छूट मनुष्यदेह

पाय, जिनराज का शरण गहूंगा। प्रतींद्रसूं कही – अहो देव! तुम मेरा बड़ा हित किया जो सम्यग्दर्शन में मोहि लगाया। हे प्रतीन्द्र महाभाग्य! अब तुम जावो। वहां अच्युतस्वर्ग में धर्म के फलसूं सुख भोगि मनुष्य होय शिवपुरकूं प्राप्त होवो। जब ऐसा कह्या तब प्रतीन्द्र उसे समाधानरूपकरि कर्मों के उदय कूं सोचते संते सम्यग्दृष्टि वहांसूं ऊपर आया। संसार की मायासूं शंकित है आत्मा जाका। अर्हंत सिद्ध साधु जिनधर्म के शरणविषै तत्पर है मन जाका, तीन बेर पंचमेरु की प्रदक्षिणाकरि चैत्यालयों का दर्शनकरि, नारकीनि के दुखसूं कम्पायमान है चित्त जाका, स्वर्गलोक में हूं भोगाभिलाषी न भया। मानों नारकीनि की ध्वनि सुनै है। सोलवें स्वर्ग के देवकूं छठे नरक लग अवधिज्ञानकरि दीखै है। तीजे नरक के विषै रावण के जीवकूं अर शंबूक का जीव जो असुर कुमार देव था ताहि संबोधि सम्यक्त्व प्राप्त किया।

हे श्रेणिक! उत्तम जीवोंसूं परम उपकार बने। बहुरि स्वर्गलोकसूं भरतक्षेत्र में श्रीराम के दर्शन कूं आए। पवनसूं हू शीघ्रगामी जो विमान तामें आरूढ़ अनेक देवनिकूं संग लिए, नाना प्रकार के वस्त्र पहिरे, हार माला मुकुटादिककरि मंडित, शक्ति गदा खड्ग धनुष वरछी शतघ्नी इत्यादि अनेक आयुधोंकूं धरे, गज तुरंग सिंह इत्यादि अनेक वाहनों पर चढ़े, मृदंग, बांसुरी, वीण इत्यादि अनेक वादत्रनि के शब्द तिनकरि दशोंदिशा पूर्ण करते, केवली के निकट आए। देवों के वाहन गज तुरंग सिंहादिक तिर्यंच नाहीं देवों की विक्रिया है।

श्रीरामकूं हाथ जोड़ि सीस निवाय बारम्बार प्रणामकरि सीता का जीव प्रतीन्द्र स्तुति करता भया – हे संसारसागर के तारक! तुमने ध्यानरूप पवनकरि ज्ञानरूप अग्नि दीप्त करी, संसाररूप वन भस्म किया अर शुद्ध लेश्यारूप त्रिशूलकरि मोहरिपु हुता, वैराग्य रूप वज्रकरि दृढ़ स्नेहरूप पिंजरा चूर्ण किया। हे नाथ! हे मुनीन्द्र! हे भवसूदन! संसाररूप वनसूं जे डरें हैं तिनकूं तुम शरण हो। हे सर्वज्ञ कृतकृत्य! जगतगुरु! पाया है पायवे योग्य पद जिन्होंने, हे प्रभो! मेरी रक्षा करो, संसार के भ्रमणसूं अति व्याकुल है मन मेरा, तुम अनादिनिधन जिनशासन का रहस्य जानि प्रबल तपकरि संसारसागरसूं पार भए। देवाधिदेव! यह तुमकूं कहा युक्त, जो मुझे भववन में तजि आप अकेले विमलपदकूं पधारे।

तब भगवान कहते भए – हे प्रतीन्द्र! तू राग तजि जे वैराग्य में तत्पर हैं तिनहीकूं मुक्ति है। रागी जीव संसार में डूबें हैं। जैसैं कोई शिलाकूं कंठ में बांधि भुजावों करि नदीकूं नहीं तिर सकै तैसैं रागादिक के भारकरि चतुर्गतिरूप नदी न तिरी जाय। जे ज्ञान वैराग्य शील संतोष के धारक हैं वेई संसारकूं तिरै हैं। जे श्रीगुरु के वचनकरि आत्मानुभव के लगे वेई भव भ्रमण सूं छूटै और उपाय नाहीं। काहू का भी ले जाया लोकशिखर न जाय, एक वीतराग भाव ही सूं जाय। इस भांति

श्रीराम भगवान सीता के जीवकूं कहते भए। सो यह वार्ता गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिकसूं कही। बहुरि कहते भए – हे नृप! सीता के जीव प्रतीन्द्र ने जो केवलीसूं पूछी अर इनने कहा सो सुन। प्रतीन्द्र ने पूछी – हे नाथ! दशरथादिक कहां गए, अर लव अंकुश कहां जावेंगे? तब भगवान ने कही – दशरथ कौशल्या सुमित्रा केकई सुप्रभा अर जनक अर जनक का भाई कनक यह सब तप के प्रभावकरि तेरहवें देवलोक गए हैं। यह सब ही समान ऋद्धि के धारी देव हैं। अर लव अंकुश महाभाग्य कर्मरूप रजसूं रहित होय विमलपदकूं इस ही जन्मसूं पावेंगे।

इस भांति केवली की ध्वनि सुन भामण्डल की गति पूछी। हे प्रभो! भामंडल कहां गया? तब आप कहतै भए – हे प्रतीन्द्र! तेरा भाई राणी सुन्दर मालिनी सहित मुनिदान के प्रभावकरि देवकुरु भोगभूमि में तीन पल्य की आयु के भोक्ता भोगभूमिया भए।

तिनके दान की वार्ता सुनि – अयोध्या में एक बहुकोटि धन का धनी सेठ कुलपति, उसके मकरा नामा स्त्री, जिसके पुत्र राजावों के तुल्य पराक्रमी, सो कुलपति ने सुनी सीताकूं वन में निकासी। तब उसने विचारी वह महागुणवती शीलवती सुकुमार अंग निर्जन वन में कैसैं अकेली रहेगी। धिक्कार है संसार की चेष्टाकूं। यह विचारि दयालुचित्त होय द्युति भट्टारक के समीप मुनि भया। अर उसके दोय पुत्र एक अशोक दूजा तिलक। यह दोनों मुनि भए। सो द्युति भट्टारक तो समाधिमरणकरि नवम ग्रैवेयक में अहमिंद्र भए अर यह पिता पुत्र तीनों मुनि ताम्रचूर्ण नामा नगर वहां केवली की बंदनाकूं गए। सो मार्ग में पचास योजन की एक अटवी वहां चातुर्मासिक आय पड्या। तब एक वृक्ष के तले तीनों साधु विराजे मानों साक्षात् रत्नत्रय ही हैं। वहां भामंडल आय निकस्या। अयोध्या आवै था सो विषमवन में मुनिनकूं देखि विचार किया, यह महापुरुष जिनसूत्र की आज्ञा प्रमाण निर्जन वन में विराजे, चौमासे मुनियों का गमन नाहीं। अब यह आहार कैसैं करें? तब विद्या की प्रबल शक्तिकरि निकट एकनगर बसाया, जहां सब सामग्री पूर्ण, बाहिर नाना प्रकार के उपवन, सरोवर, अर धान के क्षेत्र, अर नगर के भीतर बड़ी बस्ती, महासम्पत्ति, चार महीना आप भी परिवार सहित उस नगर में रह्या अर मुनियों के वैयाव्रत किये।

यह वन ऐसा था जिसमें जल नाहीं, सो अद्भुत नगर बसाया, जहां अन्न जल की बाहुल्यता। सो नगर में मुनियों का आहार भया, अर और भी दुखित भुखित जीवोंकूं भांति भांति के दान दिए अर सुन्दरमालिनी राणीसहित आप मुनियोंकूं अनेकवार निरंतराय आहार दीया। चतुर्मास पूर्ण भए मुनि विहार करते भए। अर भामण्डल अयोध्या आय फिर अपने स्थानक गया। एक दिन सुन्दरमालिणी राणीसहित सुखसूं शयन करै था सो महल पर विजुरी पड़ी। राजा राणी दोनों मरकरि मुनिदान के प्रभावसूं सुमेरु पर्वत की दाहिनी ओर देवकुरु भोगभूमि, वहां तीन पल्य के आयु के

भोक्ता युगल उपजे। सो दान के प्रभावसूं सुख भोगवै हैं। सम्यक्तरहित हैं, अर दान करै हैं, सो सुपात्रदान के प्रभावसूं उत्तमगति के सुख पावै है। सो यह पात्रदान महासुख का दाता है। यह बात सुनि फिर प्रतीन्द्र ने पूछी – हे नाथ! रावण तीजी भूमिसूं निकसि कहां उपजेगा, अर मैं स्वर्गसूं चयकरि कहां उपजूंगा। मेरे अर लक्ष्मण के अर रावण के केते भव बाकी हैं सो कहो!

तब सर्वज्ञदेव ने कही – हे प्रतीन्द्र सुन! वे दोनों विजयावती नगरी में सुनन्द नामा कुटुम्बी सम्यक्दृष्टि उसके रोहिणी नामा भार्या, उसके गर्भविषै अरहदास ऋषिदास नामा पुत्र होवेंगे, महा गुणवान निर्मलचित्त दोनों भाई उत्तम क्रिया के पालक, श्रावक के व्रत आराधि समाधि मरणकरि जिनराज का ध्यान धरि स्वर्गविषै देव होवेंगे। तहां सागरांत पर्यंत सुख भोगि स्वर्गसूं चयकरि बहुरि वाही नगरी विषै बड़े कुलविषै उपजेंगे। सो मुनिनिकूं दान देकर हरिक्षेत्र जो मध्यम भोगभूमि वहां युगलिया होय, दोय पल्य की आयु भोगि, स्वर्ग जावेंगे। बहुरि उस ही नगरीविषै राजा कुमार कीर्ति, राणी लक्ष्मी, तिनके महायोधा जयकांत जयप्रभ नामा पुत्र होवेंगे।

बहुरि तपकरि सातवें स्वर्ग उत्कृष्ट देव होवेंगे देवलोक के महासुख भोगेंगे। अर तू सोलहवां अच्युत स्वर्ग वहांसूं चयकरि या भरतक्षेत्रविषै रत्नस्थलपुरनामा नगर वहां चौदह रत्न का स्वामी षट्खण्ड पृथ्वी का धनी चक्रनामा चक्रवर्ती होयगा। तब वे सातवें स्वर्गसूं चयकरि तेरे पुत्र होवेंगे। रावण के जीव का नाम तो इन्द्ररथ, अर वसुदेव के जीव का नाम मेघरथ, दोनों महा धर्मात्मा होवेंगे। परस्पर उनमें अति स्नेह होयगा। अर तेरा उनसूं अति स्नेह होयगा। जिस रावण ने नीतिसूं तीन खंड पृथ्वी का अखण्ड राज्य कीया अर ये प्रतिज्ञा जन्म पर्यंत निवाही – जो परस्त्री मोहि न इच्छे ताहि मैं न सेऊं, सो रावण का जीव इन्द्ररथ धर्मात्मा कईएक श्रेष्ठ भवधरि तीर्थंकर देव होयगा, तीन लोक उसकूं पूजेंगे। अर तू चक्रवर्ती राज्यपद तजि मुनिव्रतधारी होय, पंचोत्तरोंविषै वैजयंतनामा विमान, तहां तप के प्रभावसूं अहमिंद्र होवेगा। तहांसूं चयकरि रावण का जीव तीर्थंकर, उसके प्रथम गणधर होय निर्वाण पद पावेगा। यह कथा श्री भगवान राम केवली तिनके मुख प्रतीन्द्र सुनकरि अतिहर्षित भया।

बहुरि सर्वज्ञदेव ने कही – हे प्रतीन्द्र! तेरा चक्रवर्ती पद का दूजा पुत्र मेघरथ सो कईएक महाउत्तम भवधरि धर्मात्मा पुष्करद्वीप के महाविदेह क्षेत्रविषै शतपत्रनामा नगर तहां पंचकल्याणक का धारक तीर्थंकर देव चक्रवर्ती पदकूं धरे होयगा – संसार का त्यागकरि केवल उपाय अनेकोंकूं तारेगा। अर आप परमधाम पधारेगा। ये वासुदेव के भव तोहि कहे। अर मैं अब सात वर्षविषै आयु पूर्णकरि लोक शिखर जाऊंगा। जहांसूं बहुरि आना नाहीं। अर जहां अनन्त तीर्थंकर गए अर

जावेंगे, अनंत केवली तहां पहुंचे, जहां ऋषभादि भरतादि विराजे हैं, अविनाशीपुर त्रैलोक्य के शिखर हैं। जहां अनन्तसिद्ध हैं, वहां मैं तिष्ठूंगा।

ये वचन सुनि प्रतींद्र पद्मनाथ जे श्रीरामचन्द्र सर्वज्ञ वीतराग तिनकूं बार-बार नमस्कार करता भया। अर मध्यलोक के सर्व तीर्थ बंदे, भगवान के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय अर निर्वाणक्षेत्र वहां सर्वत्र पूजाकरि अर नन्दीश्वरद्वीपविषै अंजनगिरि दधिमुख रतिकर तहां बड़े निधानसूं अष्टाह्निका की पूजा करी। देवाधिदेव जे अरहंत सिद्ध तिनका ध्यान करता भया। अर केवली के वचन सुन ऐसा निश्चय भया जो मैं केवली होय चुका अल्प भव हैं, अर भाई के स्नेहसूं भोगभूमिविषै जहां भामण्डल का जीव है तहां उसे देखा अर उसकूं कल्याण का उपदेश दीया अर बहुरि अपना स्थान सोलहवां स्वर्ग वहां गया, जाके हजारों देवांगना तिनसहित मानसिक भोग भोगता भया।

श्रीरामचन्द्र का सत्रह हजार वर्ष की आयु, सोलह धनुष की ऊंची काया, कई एक जन्म के पापों से रहित होय सिद्ध भये। वे प्रभु भव्यजीवों का कल्याण करो। जन्म जरा मरण महारिपु जीते। परमात्मा भये, जिनशासनविषै प्रकट है महिमा जिनकी, जन्म जरा मरण का विच्छेदकरि अखण्ड अविनाशी परम अतींद्रिय सुख पाया। सुर असुर मुनिवर तिनके जे अधिपति तिनकर सेयवे योग्य, नमस्कार करवे योग्य, दोषों के विनाशक, पच्चीस वर्ष तपकरि मुनिव्रत पालि केवली भये। सो आयु पर्यंत केवलीदशाविषै भव्योंकूं धर्मोपदेश देय तीन भवन का शिखर जो सिद्धपद वहां सिधारे।

सिद्धपद सकल जीवों का तिलक है। राम सिद्ध भए। तुम रामकूं सीस निवाय नमस्कार करो। राम सुरनर मुनियोंकरि आराधिवे योग्य हैं। शुद्ध हैं भाव जिनके, संसार के कारण जे रागद्वेष मोहादिक तिनसूं रहित हैं। परम समाधि के कारण हैं। अर महामनोहर हैं। प्रतापकरि जीत्या है तरुण सूर्य का तेज जिनने, अर उन जैसी शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमा में कांति नाहीं। सर्व उपमारहित अनुपम वस्तु है। अर स्वरूप जो आत्मरूप उसमें आरूढ़ हैं, श्रेष्ठ है चरित्र जिनके, श्रीराम यतीश्वरों के ईश्वर देवों के अधिपति, प्रतीन्द्र की मायासूं मोहित न भए। जीवों के हितू परम ऋद्धिकरि युक्त, अष्टम बलदेव, पवित्र शरीर शोभायमान अनन्त वीर्य के धारी, अतुल महिमाकरि मंडित, निर्विकार, अठारह दोषकरि रहित, अष्टादश सहस्र शील के भेद तिनकरि पूर्ण, अति उदार, अति गम्भीर ज्ञान के दीपक, तीन लोक में प्रकट है प्रकाश जिनका, अष्टकर्म के दग्ध करणहारे, गुणों के सागर, क्षोभरहित सुमेरु से अचल, धर्म के मूल कषायरूप रिपु के नाशक, समस्त विकल्परहित महानिर्द्वंद्व, जिनेन्द्र के शासन का रहस्य पाय अंतरात्मासूं परमात्मा भए।

उनने त्रैलोक्य पूज्य परमेश्वर पद पाया, तिनकूं तुम पूजो। धोय डारे हैं कर्मरूप मल जिनने, केवल दर्शनमई। योगीश्वरों के नाथ, सर्व दुख के दूर करणहारे, मन्मथ के मथनहारे, तिनकूं प्रणाम

करो। यह श्रीबलदेव का चरित्र महामनोज्ञ जो भावधर निरंतर बांचै, सुनै, पढ़े, पढ़ावै, शंका रहित होय महाहर्ष का भरा राम की कथा का अभ्यास करै, तिसके पुण्य की वृद्धि होय। अर बैरी खड्ग हाथ में लिए मारिवेकूं आया होय सो शांत होय जाय। या ग्रंथ के श्रवणसूं धर्म के अर्थी इष्टधर्मकूं लहैं, यश का अर्थी यशकूं पावै, राज्यभ्रष्ट हुआ अर राज्य कामना होय तो राज्य पावै, यामैं संदेह नाहीं। इष्ट संयोग का अर्थी इष्टसंयोग लहै, धन का अर्थी धन पावे, जीत का अर्थी जीत पावै, स्त्री का अर्थी सुन्दर स्त्री पावै, लाभ का अर्थी लाभ पावै, सुख का अर्थी सुख पावै, अर काहू का कोई बल्लभ विदेश गया होय अर उसके आयवे की आकुलता होय सो वह सुखसूं घर आवै, जो मनविषै अभिलाषा होय सो ही सिद्ध होय। सर्व व्याधि शांत होय, ग्राम के नगर के वन के देव जल के देव प्रसन्न होय। अर नवग्रहों की बाधा न होय, क्रूर ग्रह सोम्य होय जांय अर जे पाप चिंतवन में न आवें वे विलाय जांय, अर सकल अकल्याण राम कथाकरि क्षय होय जांय अर जितने मनोरथ हैं, वे सब रामकथा के प्रसादतैं पावैं, अर वीतराग भाव दृढ़ होय उसकरि हजाराभव के उपार्जे पापोंकूं प्राणी दूर करै। कष्टरूप समुद्र कूं तिर सिद्धपद शीघ्र ही पावैं।

यह ग्रंथ महापवित्र है, जीव को समाधि उपजावने का कारण है। नाना जन्म में जीव ने पाप उपार्जे, महाक्लेश के कारण तिनका नाशक है अर नाना प्रकार के व्याख्यान तिनकरि संयुक्त है। जिसमें बड़े बड़े पुरुषों की कथा भव्यजीवरूप कमलों को प्रफुल्लित करणहारी है। सकल लोककरि नमस्कार करिवे योग्य श्रीवर्धमान भगवान उनने गौतमसूं कहा अर गौतम ने श्रेणिकसूं कहा। याही भांति केवली श्रुतकेवली कहते भए।

रामचन्द्र का चरित्र साधुओं की समाधि की वृद्धि का कारण, सर्वोत्तम महामंगलरूप सो मुनिनि की परिपाटी करि प्रकट होता भया। सुन्दर है वचन जिसमें, समीचीन, अर्थकूं धरे, अति अद्‌भुत इन्द्रगुरुनामा मुनि तिनके शिष्य दिवाकर सेन, तिनके शिष्य लक्ष्मणसेन, तिनके शिष्य रविषेण, तिन जिन आज्ञा अनुसार कहा। यह राम का पुराण सम्यग्दर्शन की सिद्धि का कारण, महाकल्याण का कर्ता, निर्मल ज्ञान का दायक, विचक्षण जीवों के निरंतर सुनिवे योग्य है, अतुल पराक्रमी, अद्‌भुत आचरण के धारक, महासुकृती जे दशरथ के नन्दन तिनकी महिमा कहां लग कहूं। इस ग्रन्थ में बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, तिनका विस्ताररूप चरित्र है। जो यामें बुद्धि लगावे तो अकल्याणकरूप पापोकूं तजकरि शिव कहिये मुक्ति उसे अपनी करै।

जीव विषय की बांछाकरि अकल्याण को प्राप्त होय हैं। विषयाभिलाष कदाचित् शांति के अर्थ नाहीं। देखो, विद्याधरनि का अधिपति रावण परस्त्री की अभिलाषाकरि कष्टकूं प्राप्त भया, काम के रोगकरि हता गया। ऐसे पुरुषों की यह दशा है तो और प्राणी विषय वासनाकरि कैसैं सुख

पावै? रावण हजारां स्त्रियोंकरि मण्डित निरन्तर सुख सेवै था, तृप्त न भया, परदारा की कामनाकर विनाशकूं प्राप्त भया। इन व्यसनोंकरि जीव कैसैं सुखी होय। जो पापी परदारा का सेवन करै सो कष्ट के सागर में पड़े। अर श्रीरामचन्द्र महाशीलवान, परदारा पराङ्मुख, जिनशासन के भक्त, धर्मानुरागी वे बहुतकाल राज्य भोग संसारकूं असार जानि वीतराग के मार्ग में प्रवर्ते परमपदकूं प्राप्त भए।

और भी जे वीतराग के मार्ग में प्रवर्तेंगे वे शिवपुर पहुंचेंगे। इसलिए जे भव्यजीव हैं वे जिनमार्ग की दृढ़प्रीति कर अपनी शक्तिप्रमाण व्रत का आचरण करो जो पूर्णशक्ति होय तो मुनि होवो अर न्यून शक्ति होय तो अणुव्रत के धारक श्रावक होवो।

यह प्राणी धर्म के फलकरि स्वर्ग मोक्ष के सुख पावै हैं, अर पाप के फलसूं नरक निगोद के फल पावै हैं। यह निसंदेह जानो। अनादिकाल की यही रीति है धर्म सुखदायी। पाप किसे कहिए अर पुण्य किसे कहिए सो उरविषै धारो। जेते धर्म के भेद हैं तिनविषै सम्यक्त्व मुख्य है। अर जितने पाप के भेद हैं तिनमें मिथ्यात्व मुख्य है। सो मिथ्यात्व कहा?

अतत्त्व की श्रद्धा, अर कुगुरु कुदेव कुधर्म का आराधन, परजीवकूं पीड़ा उपजावना, अर क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता, अर पांच इन्द्रियों के विषय सप्तव्यसन का सेवन, अर मित्रद्रोह, कृतघ्न, विश्वासघात, अभक्ष्य का भक्षण, अगम्यविषै गमन, मर्म का छेदक वचन, दुर्जनता, इत्यादि पाप के अनेक भेद हैं वे सब तजने। अर दया पालनी, सत्य बोलना, चोरी न करनी, शीलपालना, तृष्णा तजनी, कामलोभ तजने, शास्त्र पढ़ना, काहूंकूं कुवचन न कहना, गर्व न करना, प्रपंच न करना, अदेखसका न होना, शान्तभाव धरना, पर उपकार करना, परदारा परधन परद्रोह तजना, परपीड़ा का वचन न कहना, बहु आरंभ बहु परिग्रह का त्याग करना, दान देना, तप करना, पर दु:खहरना इत्यादि जो अनेक भेद पुण्य के हैं, वे अंगीकार करने।

अहो प्राणी हो! सुखदाता शुभ है अर दुखदाता अशुभ है। दारिद्र दु:ख रोग पीड़ा अपमान दुर्गति यह सब अशुभ के उदयसूं होय हैं। अर सुख सम्पत्ति सुगति यह सब शुभ के उदयसूं होय हैं। शुभ अशुभ ही सुख दु:ख के कारण हैं। अर कोई देव दानव मानव सुख दुख का दाता नाहीं। अपने अपने उपजे कर्म का फल सब भोगवै हैं। सब जीवोंसूं मित्रता करना, किसी से वैर न करना, किसी को दुख न देना, सब ही सुखी हों, यह भावना मन में धरनी, प्रथम अशुभ को तज शुभ में आवना, बहुरि शुभाशुभतैं रहित होय शुद्ध पदकूं प्राप्त होना। बहुत कहिवे कर क्या? इस पुराण के श्रवणकर एक शुद्ध सिद्धपद में आरूढ़ होना, उनके भेद कर्मनिकर विलयकरि आनन्दरूप रहना।

हो पंडित हो! परम पद के उपाय निश्चय थकी जिनशासन में कहे हैं वे अपनी शक्ति प्रमाण

धारण करो, जिसकरि भवसागर से पार होवो। यह शास्त्र अति मनोहर, जीवों को शुद्धताकर देनहारा, रविसमान सकल वस्तु का प्रकाशक है सो सुनकर परमानन्द स्वरूप मग्न होवो। संसार असार है, जिन धर्म सार है, जाकरि सिद्ध पद को पाइये है। सिद्धपद समान और पदार्थ नाहीं। जब श्रीभगवान त्रैलोक्य के सूर्य वर्द्धमान देवाधिदेव सिद्ध लोक को सिधारे तब चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढ़े आठ महीना शेष थे। सो भगवान को मुक्त भए पीछे पंचमकाल में तीन केवली, अर पांच श्रुतकेवली भए। सो वहां लग तो पुराण पूर्ण रह्या।

जैसे भगवान ने गौतम गणधरसूं कहा अर गौतम ने श्रेणिकसूं कहा, वैसा श्रुतकेवलीनि ने कहा। श्री महावीर पीछे बासठ वर्ष लग केवलज्ञान रहा। अर केवली पीछे सौ वर्ष तक श्रुतकेवली रहे। पंचम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी, तिनके पीछे काल के दोषसूं ज्ञान घटता गया। तब पुराण का विस्तार का न्यून होता भया।

श्री भगवान महावीरकूं मुक्ति पधारे, बारह सौ साढ़े तीन वर्ष भये, तब रविषेणाचार्य ने अठारह हजार अनुष्टुप् श्लोकों में व्याख्यान किया। यह राम का चरित्र सम्यक्त्वचारित्र का कारण केवली श्रुतकेवली प्रणीत सदा पृथ्वी में प्रकाश करो। जिनशासन के सेवक देव, जिनभक्तिविषै परायण, जिनधर्मी जीवों की सेवा करै हैं जे जिनमार्ग के भक्त हैं, उनके निकट सभी सम्यक्दृष्टि देव आवै हैं, नानाविधि सेवा करै हैं, महा आदर संयुक्त सर्व उपाय कर आपदा में सहाय करैं हैं। अनादिकालसूं सम्यक्दृष्टि देवों की ऐसी रीति है।

जैनशास्त्र अनादि है, काहू का किया नाहीं, व्यंजन स्वर यह सब अनादि सिद्ध रविषेणाचार्य कहे हैं। मैं कछु नाहीं किया, शब्द अर्थ अकृत्रिम हैं। अलंकार छन्द आगम निर्मलचित्त होय नीके जानने। या ग्रंथविषै धर्म अर्थ काम मोक्ष सर्व हैं। अठारह हजार तेईस श्लोक का प्रमाण पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ है। इस पर यह भाषा भई सो जयवंत होवै, जिनधर्म की वृद्धि होवै, राजा प्रजा सुखी होवें।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषावचनिकाविषै मोक्ष प्राप्ति का वर्णन करने वाला एक सौ तेईसवाँ पर्व संपूर्ण भया।।123।।

भाषाकार का परिचय

चौपाई

जम्बूद्वीप सदा शुभथान। भरतक्षेत्र ता माहि प्रमाण।
उसमें आरज खण्ड पुनीत। वसैं ताहि में लोक विनीत।।1।।
तिनके मध्य ढुंढार जु देश। निवसें जैनी लोक विशेष।
नगर सवाई जयपुर महा। तास की उपमा जाय न कहा।।2।।
राज्य करै माधव नृप जहां। कामदार जैनी जन तहां।
ठौर ठौर जिन मन्दिर बने। पूजैं तिनकूं भविजन घने।।3।।
बसें महाजन नाना जाति। सेवै जिनमारग बहुन्याति।
रायमल्ल साधर्मी एक। जाके घट में स्वपर विवेक।।4।।
दयावंत गुणवंत सुजान। पर उपकारी परम निधान।
दौलतराम सु ताको मित्र। तासों भाष्यो वचन पवित्र।।5।।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ। तामें लोकशिखर को पन्थ।
भाषारूप होय जो येह। बहुजन बांच करैं अति नेह।।6।।
ताके वचन हिये में धार। भाषा कीनी मति अनुसार।
रविषेणाचारज कृतसार। जाहि पढ़े बुधजन गुणधार।।7।।
जिनधर्मिन की आज्ञा लेय। जिनशासनमांही चित देय।
आनन्दसुत ने भाषा करी। नन्दो विरदो अति रस भरी।।8।।
सुखी होहु राजा अर लोक। मिटो सबनि के दुख अरु शोक।
वरतो सदा मंगलाचार। उतरो बहुजन भवजल पार।।9।।
सम्वत अष्टादश शत जान। ता ऊपर तेईस बखान (1823)।
शुक्लपक्ष नवमी शनिवार। माघमास रोहिणि ऋख सार।।10।।

दोहा

ता दिन सम्पूरण भयो, यहै ग्रंथ सुखदाय।
चतुरसंघ मंगल करो, बढ़े धर्म्म जिनराय।।
या श्रीराम पुराण के, छंद अनूपम जान।
सहस बीस द्वय पांच सौ भाषा ग्रंथ प्रमान।।

।।इति श्रीपद्मपुराणजी भाषावचनिका समाप्त।।

– तदि हनुमान बोले – अनादिकालतैं जीव चतुर्गतिविषै भ्रमण करै हैं, पंचमगति जो मुक्ति सो जब तक अज्ञान का उदय है तब तक जीव ने पाई नाहीं, परन्तु भव्यजीव पावैं ही हैं। तैसैं हमने अब तक युद्ध किया नाहीं, परन्तु अब युद्धकर वरुण को जीतैंहींगे

– वरुण का समस्त कटक हनुमानतैं हार्‍या, जैसैं जिनमार्गी के अनेकांतनयकरि मिथ्यादृष्टि हारैं।

– लोकनिकूं भयरूप देख आप धनुष की पिणच उतार महाविनय संयुक्त राम के निकट आए। जैसैं ज्ञान के निकट वैराग्य आवै।

पुराण या कथा साहित्य प्रथमानुयोग पढने का उद्देश्य – परजीवों का जो दृष्टांत है सो अपनी शांतभाव की उत्पत्ति का कारण है। या पक्षीकूं अपनी विपरीति चेष्टा पूर्वभव की याद आई है सो कम्पायमान है।

– चालते अंजनगिरि समान दशोंदिशाविषै श्यामता होय रही है। विजुरी चमकै है, बगुलानि की पंक्ति विचरै है अर निरन्तर बादलनि के जल बरसै है जैसैं भगवान के जन्मकल्याणक विषै देव रत्नधारा बरसावैं।

जैसे यौवन अवस्थाविषै असंयमियों का मन विषय वासनाविषै भ्रमै। अर यह मेघ नाज के खेत छोड़ वृथा पर्वत के विषै बरषै है, जैसे कोई द्रव्यवान पात्रदान अर करुणादान तज वेश्यादिक कुमार्गविषै धन खोजै।

सो दोऊ पुरुष सीता बिना न शोभते भए, जैसैं सम्यक्‌दृष्टि बिना ज्ञान–चारित्र न सोहै।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं – हे राजन्! अकेला लक्ष्मण विद्याधरनि की सेनाकूं बाणनिकरि ऐसा रोकता भया जैसैं संयमी साधु आत्मज्ञानकर विषयावासनाकूं रोकें।

जैसैं या भव वनविषै अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य की देह महापुण्य कर्मकर पाई, ताहि वृथा खोवे, सो बहुरि कब पावे? अर त्रैलोक्यविषै दुर्लभ महारत्न ताहि समुद्र में डारे, बहुरि कहां पावै? तैसै बनितारूप अमृत मेरे हाथ सूं गया? बहुरि कौन उपायकरि पाइये। या निर्जन वनविषै कौनकूं दोष दूं।

बहुरि महेन्द्र ने दूजा धनुष लेवे का उद्यम किया ताके पहिले ही बाणनिकरि ताके घोड़े छुटाय दिए सो रथ के समीप भ्रमै, जैसे मन के प्रेरे इन्द्रिय विषयनि में भ्रमै।

तब आप दृष्टि धर देखा कोटविषै प्रवेश कठिन जाना। मानों यह कोट विरक्त स्त्री के मन

समान दु:प्रवेश है।

तब वे रावण की आज्ञा प्रमाण कुवचन बोलते ले निकसे। सो यह बन्धन तुड़ाय ऊंचा चल्या जैसैं यति मोहफांस तोड़ मोक्षपुरीकूं जांय।

सो आप नरसिंहरूप तीक्ष्ण नखनिकर बिदारी अर गदा के घातकरि कोट चूरण किया, जैसे शुक्लध्यानरूपी मुनि निर्मल भावनिकरि घातिया कर्म की स्थिति चूरण करैं।

अथानन्तर यह विद्या महा भयंकर भंगकूं प्राप्त भई। तब मेघ की ध्वनि समान ध्वनि भई, विद्या भाग गई, कोट विघट गया। जैसे जिनेन्द्र के स्तोत्रकरि पापकर्म विघट जाय।

स्वामी के कार्य ऐसा युद्ध भया जैसा मान के मार्दव के युद्ध होय। अपने अपने स्वामी की दृष्टिविषै योधा गाज गाज युद्ध करते भए, जीवनिविषै नाहीं है स्नेह जिनके।

सांझ के समय सांझ फूली, सूर्य अस्त समय किरण संकोचने लगा, जैसैं संयमी कषायों को संकोचै।

अर आपने देखने की कही सो देखवेकर कहा दोष भला? जैसैं जिनराज के निकट चढ़ाया द्रव्य निर्माल्य होय है, ताहि देखिए है, परन्तु दोष नाहीं। अयोग्य अभक्ष्य वस्तु आंखिनिसूं देखिये हैं परन्तु देखे दोष नाहीं, अंगीकार कीये दोष है।

जैसैं दर्शनावरणीय कर्म दर्शन के प्रकाशकूं रोकै तैसैं कुम्भकरण की विद्या वानरवंशीनि के नेत्रनि के प्रकाशकूं रोकती भई।

कर्मभूमि में जो मनुष्य जन्म पाकर सुकृत (पुण्य) नाहीं करै हैं, उनके हस्त में प्राप्त हुआ अमृत जाता रहै है। – पद्मपुराण भाषा वचनिका, पृष्ठ क्रमांक 19

जैसे भले क्षेत्र में बोया बीज बहुत गुणा होय फलै है तैसै शुद्धचित्तकरि पात्रनि कों दिया दान अधिक फल को फलै है, – पद्मपुराण भाषा वचनिका, पृष्ठ क्रमांक 206

एक विजयसिंह के विना ताकी सर्व सेना बिखर गई, जैसैं एक आत्मा विना सर्व इंद्रियों के समूह विघटि जांहि। **58 पेज पर है। पुराने प्रूफ में।**